श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)

'गीताप्रेस गोरखपुर' (प्रधान कार्यालय—श्रीगोविन्दभवन, कलकत्ता)-द्वारा सचालित राजस्थानके चूरू नगर-स्थित इस आश्रमम बालकाके लिये प्राचीन भारतीय सस्कृति एव वैदिक परम्परानुरूप शिक्षा-दीक्षा और आवासकी उचित व्यवस्था है। इस आश्रमकी स्थापना ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा आजसे लगभग ७६ वर्ष पूर्व इस विशेष उद्देश्यसे की गयी थी कि इसमे पढनेवाले बालक अपनी सस्कृतिके अनुरूप विशुद्ध सस्कार तथा तदनुरूप शिक्षा प्राप्तकर सच्चरित्र आध्यात्मिक दृष्टिसे सम्पन्न आदर्श नागरिक बन सके—एतदर्थ भारतीय सस्कृतिके अमूल्य स्रोत—वेद तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रों एव प्राचीन आचार-विचारोकी दीक्षाका यहाँ विशेष प्रबन्ध है। सस्कृतके मुख्य अध्ययनके साथ अन्य महत्त्वपूर्ण उपयोगी विषयोंकी शिक्षा भी यहाँ दी जाती है। विस्तृत जानकारीके लिये मन्त्री, श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)-के पतेपर सम्पर्क करना चाहिये।

व्यवस्थापक— गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोना विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थ-रत्न हैं। इनके पठन-पाठन एव मननसे मनुष्य लोक-परलोक दोनाम अपना कल्याण-साधन कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण-आश्रम जाति, अवस्था आदि कोई भी बाधक नहीं है। आजके इस कुसमयम इन दिव्य ग्रन्थाके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। अत धर्मपरायण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोमे प्रतिपादित सिद्धान्तो एव विचारोसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सघकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्योकी सख्या इस समय लगभग ३० हजार है। इसमें श्रीगीताके छ प्रकारके और श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके सदस्य बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्यप्रति इष्टदेवके नामका जप ध्यान और मूर्तिकी पूजा करनेवाले सदस्योकी श्रेणी भी है। इन सभाको श्रीमद्भगवद्गीता एव श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन तथा उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन 'परिचय-पुस्तिका' नि शुल्क मँगवाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा कर एव श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमे सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याणमय पथ प्रशस्त करे।

पत्र-व्यवहारका पता—मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सघ पत्रालय—स्वर्गाश्रम, पिन—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-गढवाल (उ० प्र०)

साधक-सघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्मविकासपर ही अवलम्बित है। आत्मविकासके लिये जीवनमें सत्यता, सरलता निष्कपटता सदाचार भगवत्परायणता आदि दैवी गुणाका ग्रहण और असत्य क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, हिसा आदि आसुरी गुणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ और सरल उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ५२ वर्ष पूर्व 'साधक-सघ'-की स्थापना की गयी थी। इसकी सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषाको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्याके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम बने हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एव एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोको 'साधक-दैनन्दिनी' का वर्तमान मूल्य रु० २०० तथा डाकखर्च रु० १ ००—कुल रु० ३ ०० मात्र डाक टिकट या मनीआर्डरद्वारा अग्रिम भेजकर उन्हे मँगवा लेना चाहिये। सघके सदस्य इस दैनन्दिनीमे प्रतिदिन साधन-सम्बन्धी अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। विशेष जानकारीके लिये कृपया नियमावली नि शुल्क मँगवाइये।

पता— सयोजक, 'साधक-सघ', पत्रालय— गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—ये दोनो मङ्गलमय एव दिव्यतम ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है तथा जीवनमे अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्राय सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योने इनके अनुवादाको पढकर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारके द्वारा लोकमानसको अधिकाधिक परिष्कृत करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग दस हजार परीक्षार्थियाके लिये २०० परीक्षा-केन्द्राकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति पत्रालय—स्वर्गाश्रम, पिन—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश) -गढवाल (उ० प्र०)

॥श्रीहरि॥

'संक्षिप्त गरुडपुराणाङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

कल्याणकारी संकल्प

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

जो जागते हुए पुरुषका दूर चला जाता है और सोते हुए पुरुषका वैसे ही निकट आ जाता है, जो परमात्माके साक्षात्कारका प्रधान साधन है, जो भूत, भविष्य, वर्तमान, सन्निकृष्ट और व्यवहित पदार्थोंका एकमात्र ज्ञाता है और जो विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेवाले श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका एकमात्र प्रकाशक और प्रवर्तक है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

कर्मनिष्ठ एवं धीर विद्वान् जिसके द्वारा यज्ञिय पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करके यज्ञमें कर्मोंका विस्तार करते हैं, जो इन्द्रियोंका पूर्वज अथवा आत्मस्वरूप है, जो पूज्य है और समस्त प्रजाके हृदयमें निवास करता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

जो विशेष प्रकारके ज्ञानका कारण है, जो सामान्य ज्ञानका कारण है, जो धैर्यरूप है, जो समस्त प्रजाके हृदयमें रहकर उनकी समस्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है, जो स्थूल शरीरकी मृत्यु होनेपर भी अमर रहता है और जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

जिस अमृतस्वरूप मनके द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्यत्सम्बन्धी सभी वस्तुएँ ग्रहण की जाती हैं और जिसके द्वारा सात होतावाला अग्निष्टोम यज्ञ सम्पन्न होता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

जिस मनमें रथचक्रकी नाभिमें लगे अरोंके समान ऋग्वेद और सामवेद प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजाका सब पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान ओतप्रोत है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

श्रेष्ठ सारथि जैसे घोड़ोंका संचालन और रासके द्वारा घोड़ोंका नियन्त्रण करता है, वैसे ही जो प्राणियोंका संचालन तथा नियन्त्रण करनेवाला है, जो हृदयमें रहता है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और जो अत्यन्त वेगवान् है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

'ॐ असतो मा सद्गमय'

गरुडपुराणका माहात्म्य

विद्याकीर्तिप्रभालक्ष्मीजयारोग्यादिकारकम् । य पठेच्छृणुयाद्रुद्र सर्ववित् स दिव व्रजेत्॥

[भगवान् हरिने कहा—]हे रुद्र! यह गरुडमहापुराण विद्या यश, सौन्दर्य लक्ष्मी, विजय और आरोग्यादिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है वह सब कुछ जान जाता है और अन्तम उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

य पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा समाहित ॥
सलिखेल्लेखयेद्वापि धारयेत् पुस्तक ननु। धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्॥

जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस महापुराणका पाठ करता है, सुनता है अथवा सुनाता है, जो इसको लिखता है, लिखाता है या पुस्तकके ही रूपमे इसे अपने पास रखता है तो वह यदि धर्मार्थी है तो उसे धर्मकी प्राप्ति होती है, यदि वह अर्थका अभिलाषी है तो अर्थ प्राप्त करता है।

गारुड यस्य हस्ते तु तस्य हस्तगतो नय । य पठेच्छृणुयादेतद्भुक्ति मुक्ति समाप्नुयात्॥

जिस मनुष्यके हाथमे यह गरुडमहापुराण विद्यमान है उसके हाथमे ही नीतियाका कोश है। जो प्राणी इस पुराणका पाठ करता है या इसको सुनता है, वह भोग और मोक्ष दोनोको प्राप्त कर लेता है।

धर्मार्थकाममोक्षाश्च प्राप्नुयाच्छ्रवणादित । पुत्रार्थी लभते पुत्रान् कामार्थी काममाप्नुयात्॥

इस महापुराणको पढने एव सुननेसे मनुष्यके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारा पुरुषार्थोंकी सिद्धि हो जाती है। इस महापुराणका पाठ करके या इसको सुन करके पुत्र चाहनेवाला पुत्र प्राप्त करता है तथा कामनाका इच्छुक अपनी कामना-प्राप्तिमे सफलता प्राप्त कर लेता है।

विद्यार्थी लभते विद्या जयार्थी लभते जयम्। ब्रह्महत्यादिना पापी पापशुद्धिमवाप्नुयात्॥

विद्यार्थीको विद्या विजिगीषुको विजय ब्रह्महत्यादिसे युक्त पापी पापसे विशुद्धिको प्राप्त होता है।

वन्ध्यापि लभते पुत्र कन्या विन्दति सत्पतिम्। क्षेमार्थी लभते क्षेम भोगार्थी भोगमाप्नुयात्॥

वन्ध्या स्त्री पुत्र कन्या सज्जन पति, क्षेमार्थी क्षेम तथा भोग चाहनेवाला भोग प्राप्त करता है।

मङ्गलार्थी मङ्गलानि गुणार्थी गुणमाप्नुयात्। काव्यार्थी च कवित्व च सारार्थी सारमाप्नुयात्॥

मङ्गलकी कामनावाला व्यक्ति अपना मङ्गल गुणोका इच्छुक व्यक्ति गुण काव्य करनेका अभिलाषी मनुष्य कवित्वशक्ति और जीवनका सारतत्त्व चाहनेवाला व्यक्ति सारतत्त्व प्राप्त करता है।

ज्ञानार्थी लभते ज्ञान सर्वससारमर्दनम्। इद स्वस्त्ययन धन्य गारुड गरुडेरितम्॥

ज्ञानार्थी सम्पूर्ण ससारका मर्दन करनेवाला ज्ञान प्राप्त करता है। [हे रुद्र!] पक्षिश्रेष्ठ गरुडके द्वारा कहा गया यह गारुडमहापुराण धन्य है। यह तो सबका कल्याण करनेवाला है।

नाकाले मरण तस्य श्लोकमेक तु य पठेत्। श्लोकार्धपठनादस्य दुष्टशत्रुक्षयो ध्रुवम्॥

जो मनुष्य इस महापुराणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसकी अकाल-मृत्यु नहीं होती। इसके मात्र आधे श्लोकका पाठ करनेसे निश्चित ही दुष्ट शत्रुका क्षय हो जाता है।

अतो हि गारुड मुख्य पुराण शास्त्रसम्मतम्। गारुडेन सम नास्ति विष्णुधर्मप्रदर्शने॥

इसलिये यह गरुडपुराण मुख्य और शास्त्रसम्मत पुराण है। विष्णुधर्मके प्रदर्शनमे गरुडपुराणके समान दूसरा कोई भी पुराण नहीं है।

यथा सुराणा प्रवरो जनार्दनो यथायुधाना प्रवर सुदर्शनम्। तथा पुराणेषु च गारुड च मुख्य तदाहुर्हरितत्त्वदर्शने॥

जैसे देवामे जनार्दन श्रेष्ठ हैं और आयुधामे सुदर्शन श्रेष्ठ है वैसे ही पुराणोमे यह गरुडपुराण हरिके तत्त्वनिरूपणमे मुख्य कहा गया है।

गारुडाख्यपुराणे तु प्रतिपाद्यो हरि स्मृत । अतो हरिर्नमस्कार्यो गम्यो योग्यो हरि स्मृत ॥

इस गरुडपुराणमे हरि ही प्रतिपाद्य हैं, इसलिये हरि ही नमस्कार करने योग्य हैं, हरि ही शरण्य हैं और वे हरि ही सब प्रकारसे सेवा करने योग्य हैं।

पुराण गारुड पुण्य पवित्र पापनाशनम्। शृण्वता कामनापूर श्रोतव्य सर्वदैव हि॥
यश्चेद शृणुयान्मर्त्यो यश्चापि परिकीर्तयेत्। विहाय यातना घोरा धूतपापो दिव व्रजेत्॥

यह गरुडमहापुराण बडा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोका विनाशक एव सुननेवालोको समस्त कामनाओका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये। जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या इसका पाठ करे तो वह निष्पाप होकर यमराजकी भयकर यातनाओको तोडकर स्वर्गको प्राप्त करता है।

गरुडपुराण—सिंहावलोकन

नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यास ततो जयमुदीरयेत्॥

नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनर-नारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणकी चर्चा करनी चाहिये।

पुराण वाङ्मयमे गरुडपुराणका महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योकि सर्वप्रथम परब्रह्म परमात्मप्रभु साक्षात् भगवान् विष्णुने ब्रह्मादि देवताओसहित देवदेवेश्वर भगवान् रुद्रदेवको सभी शास्त्रामे सारभूत तथा महान् अर्थ बतानेवाले इस 'गरुडमहापुराण'को सुनाया था।

एक बार तीर्थयात्राके प्रसगमे सर्वशास्त्रपारगत शान्तचित्त महात्मा सूतजी नैमिषारण्यमे पधारे, वहाँ शौनकादि ऋषि-मुनियोने उनकी पूजा की आर जिज्ञासारूपमे कुछ प्रश्न भी किये। प्रश्नोके समाधानम सूतजीने गरुडमहापुराणकी कथा उन ऋषि-महर्षियोको सुनायी। सूतजीने यह कथा भगवान् व्याससीसे सुनी थी, व्यासजीको यह कथा पितामह ब्रह्मासे प्राप्त हुई। वास्तवमे मूलरूपसे इस महापुराणको गरुडजीने कश्यप ऋषिको सुनाया था।

प्राचीनकालमे पृथ्वीपर पक्षिराज गरुडने तपस्याके द्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना की जिससे सतुष्ट होकर प्रभुने अभीष्ट वर माँगनके लिये कहा। गरुडने भगवान्से निवेदन किया कि नागोने मेरी माता विनताको दासी बना लिया है। हे देव। आप प्रसन्न होकर मुझे यह वरदान प्रदान करे कि मैं उनको जीतकर अमृत प्राप्त करनेमे समर्थ हो सकूँ और माँको नागाकी माता कद्रूकी दासतासे मुक्त करा सकूँ। मैं आपका वाहन बनूँ और नागोका विदीर्ण करनेम समर्थ हो सकूँ तथा जिस प्रकार पुराणसहिताका रचनाकार हो सकूँ वैसा ही करनेकी कृपा कर।

भगवान् श्रीहरिने पक्षिराज गरुडको ये अभीष्ट वरदान प्रदान किये तथा कहा कि आप अत्यन्त शक्तिसम्पन्न होकर मेरे वाहन बनेंगे। विषाके विनाशकी शक्ति भी आपका प्राप्त होगी मेरी कृपासे आप मर ही माहात्म्यको कहनेवाली पुराणसहिताका प्रणयन करगे। मेरा जैसा स्वरूप कहा गया है वैसा ही आपम भी प्रकट होगा। आपक द्वारा प्रणीत यह पुराणसहिता आपके गरुड नामसे लोकम प्रसिद्ध होगी। हे विनतासुत। जिस प्रकार देवदेवाके मध्यम मैं ऐश्वर्य और श्रीरूपमे विख्यात हूँ, उसी प्रकार हे गरुड। सभी पुराणाम यह गरुडमहापुराण भी ख्याति अर्जित करेगा। जैसे विश्वमे मेरा कीर्तन होता है, वैसे ही गरुड नामसे आपका भी सकीर्तन होगा। हे पक्षिश्रेष्ठ। आप मेरा ध्यान करके उस पुराणका प्रणयन करे'—

यथाह देवदेवाना श्री ख्यातो विनतासुत।
तथा ख्याति पुराणेषु गारुड गरुडैष्यति॥
यथाह कीर्तनीयोऽथ तथा त्व गरुडात्मना।
मा ध्यात्वा पक्षिमुख्येद पुराण गद गारुडम्॥
(१। २।५६-५७)

भगवान्के द्वारा यह वरदान दिये जानेके बाद, इसी सम्बन्धम कश्यप ऋषिके द्वारा पूछे जानेपर गरुडने इसी पुराणको उन्हे सुनाया। कश्यपने इस गरुडमहापुराणका श्रवण करके 'गारुडी विद्या'के बलसे एक जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था। गरुडने स्वय भी इसी विद्याके द्वारा अनेक प्राणियाको जीवित किया था।

इस गरुडमहापुराणके प्रारम्भम सर्ग-वर्णन किया गया है। तदनन्तर देवार्चनकी विधियाँ प्रस्तुत की गयी हैं, 'विष्णुपञ्जरस्तोत्र' कहा गया है, जो जीवाके लिये अत्यन्त कल्याणकारी है। इसके बाद भोग और मोक्षको प्रदान करनेवाले ध्यानयोगका वर्णन हुआ है—

'मैं जगत्का साक्षी, जगत्का नियन्ता और परमानन्दस्वरूप हूँ। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन सभी अवस्थाआमें जगत्का साक्षी होते हुए भी मैं इन अवस्थाआसे रहित हूँ, मैं ही तुरीय ब्रह्म और विधाता हूँ। मैं दृग्रूप अर्थात् समस्त प्रपञ्चका द्रष्टा दृश्य एव दृष्टि हूँ। मैं ही निर्गुण मुक्त, बुद्ध शुद्ध-प्रबुद्ध अजर, सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप एव शिवस्वरूप परमात्मा हूँ।' इस प्रकार जो विद्वान् इन परमपद परमेश्वरका ध्यान करते हैं वे निश्चय ही ईश्वरका सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं। यह स्वय श्रीहरि भूतभावन भगवान् शङ्करसे कहते हैं कि हे सुव्रत शङ्कर। आपसे ही इस ध्यानयोगकी चर्चा मैंन की है। जो व्यक्ति सदैव इस ध्यानयोगका पाठ (मनन-चिन्तन) करता है वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीरुद्र पूछते हैं—हे प्रभो। मनुष्य किस मन्त्रका जप करके इस अथाह ससार-सागरसे पार हो सकता

है? इसपर श्रीहरिने उत्तर दिया कि परब्रह्म, परमात्मा नित्य, परमेश्वर भगवान् विष्णुकी सहस्रनामसे स्तुति करनेपर मनुष्य भवसागरका पार कर सकता है। इस क्रमम समस्त पापोको विनष्ट करनेवाल 'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र'को भगवान्ने उन्ह सुनाया। यह विष्णुसहस्रनाम इस पुराणम प्रस्तुत है, जो अन्य विष्णुसहस्रनामासे भिन्न है।

भगवान् विष्णुकी आराधनाक बाद भगवान् सूर्यकी पूजाका भी वर्णन मिलता है। तदनन्तर जीवाका उद्धार करनेवाली पुण्यप्रदायिनी सर्वदेवमय मृत्युञ्जयपूजाका निरूपण हुआ है तथा मृत्युञ्जयजपकी महिमा भी प्रस्तुत की गयी है। यह मन्त्र मृत्यु और दरिद्रताका मर्दन करनेवाला है तथा शिव, विष्णु, सूर्य आदि सभी दवाका कारणभूत है 'ॐ जू स '—यह महामन्त्र 'अमृतेश'क नामसे कहा जाता है। इस मन्त्रका जप करनेसे प्राणी सम्पूर्ण पापासे छूट जाता ओर मृत्युरहित हो जाता है। अर्थात् मृत्युके समान होनेवाले उसके कष्ट दूर हा जाते है।

भगवान् मृत्युञ्जय श्वेतकमलक ऊपर बैठे हुए वरदहस्त तथा अभयमुद्रा धारण किये रहते हैं। तात्पर्य यह है कि उनके एक हाथम अभयमुद्रा है ओर एक हाथम वरदमुद्रा। दो हाथाम अमृतकलश हे। इस रूपम अमृतेश्वरका ध्यान करनेके साथ ही भगवान्के वामाङ्गमे स्थित अमृतभाषिणी अमृतादेवीका भी ध्यान करना चाहिये। दवीके दाय हाथम कलश और बाये हाथमे कमल सुशोभित रहता है।

इस महापुराणम प्राणेश्वरी विद्याका निरूपण हुआ हे। सर्पोके विष हरनेके उपाय तथा दुष्ट उपद्रवाको दूर करनेके मन्त्र दिये गये हैं। पञ्चवक्त्रपूजन शिवार्चन-विधि भगवती त्रिपुरा तथा गणश आदि देवोकी पूजाविधि प्रस्तुत की गयी है। भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली श्रीगोपालजी तथा भगवान् श्रीधरविष्णुकी पूजाका वर्णन भी किया गया है। इसके साथ ही श्रीधरविष्णुका ध्यान तथा उनकी स्तुति प्रस्तुत की गयी है। पञ्चतत्त्वार्चन-विधि, सुदर्शनचक्र-पूजाविधि भगवान् हयग्रीवके पूजनकी विधि, देवी दुर्गाका स्वरूप, सूर्यध्यान तथा माहेश्वरीपूजन-विधि प्रस्तुत की गयी हे।

तदनन्तर ब्रह्ममूर्तिके ध्यानका निरूपण किया गया है। 'हृदयकमलकी कर्णिकाके मध्य विराजमान रहनेवाले शख चक्र, गदा ओर कमलस सुशाभित तथा श्रीवत्स कौस्तुभमणि, वनमाला एव लक्ष्मीसे विभूषित नित्य-शुद्ध ऐश्वर्यसम्पन्न, सत्य, परमानन्दस्वरूप, आत्मस्वरूप, परब्रह्म तथा परमज्योति स्वरूप हैं, ऐसे वे परमेश्वर ध्यानके योग्य हैं तथा पूजनीय हैं।' में भी वही हूँ—एसा समझना चाहिये।

इस प्रकार आत्मस्वरूप नारायणका यम-नियम इत्यादि योगके साधनास एकाग्रचित्त होकर जो ध्यान करता हे, वह मनाभिलषित इच्छाओको प्राप्तकर दवस्वरूप हो जाता है। यदि निष्काम होकर उन हरिकी मूर्तिका ध्यान और स्तवन करे तो मुक्ति प्राप्त हो जाती हे।

इसके बाद विविध शालग्राम शिलाओके लक्षण वास्तुमण्डल-पूजाकी विधि तथा प्रासाद-लक्षण (वास्तुकी दृष्टिसे) प्रस्तुत किये गये हैं। दवप्रतिष्ठाकी भी सामान्य विधि बतायी गयी है। वर्ण एव आश्रम-धर्मोका निरूपण किया गया है। इसके साथ ही सदाचार एव शौचाचारकी महत्ता बतायी गयी है। वर्णाश्रम-धर्मका निरूपण करते हुए ब्रह्माजीने व्यासजीसे कहा कि परमात्मप्रभु परमेश्वरकी पूजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारा वर्णोका अपने-अपने धर्मके अनुसार करनी चाहिये। उनके द्वारा पृथक्-पृथक् रूपसे ही उनके धर्मोका वर्णन किया गया है।

यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, अध्ययन ओर अध्यापन—ये छ कर्म ब्राह्मणके धर्म बताये गये। दान, अध्ययन तथा यज्ञ—ये क्षत्रिय तथा वैश्यके साधारण धर्म हैं। शस्त्रोपजीवी होना तथा प्राणियाकी रक्षा करना क्षत्रियाका विशष धर्म हे। पशुपालन, कृषिकर्म तथा व्यापार—य वेश्यवर्णकी वृत्ति कही गयी है। द्विजातिकी सेवा शूद्रका कर्तव्य माना गया है। शिल्पकारी उनकी आजीविका कही गयी है।

इसी प्रकार आश्रम-धर्मका भी वर्णन हुआ है। भिक्षाचरण, गुरुशुश्रूषा, स्वाध्याय तथा अग्निकार्य—ये ब्रह्मचारियाके धर्म बताये गये हैं।

अग्निहात्र-धर्मका पालन तथा कहे गये अपने विहित कर्मोक अनुसार जीविकोपार्जन पर्वरात्रिका छाडकर अन्य रात्रियाम धर्मपत्नीका सहवास, देवता पितर तथा अतिथिगणाकी विधिवत् पूजाम सलग्न रहना और श्रुतियो एव स्मृतियोम कह गये धर्मोक अनुसार अर्थोपार्जन करना—ये गृहस्थाके धर्म कहे गये हें। इसके साथ हा सस्काराका भी वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार गर्भाधानस लकर मृत्युपर्यन्तके सस्कार बताये गये हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय और वश्य बालकाके

लिये उपनयन-संस्कारकी अनिवार्यताका दिग्दर्शन कराया गया है।

गृहस्थाश्रमके धर्ममें स्त्रियोंके कर्तव्यका भी विवेचन हुआ है। स्त्रियोंको अपने पतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिये, यही उनका परम धर्म है। जिस घरमें पति-पत्नीके मध्य किसी प्रकारका विरोध नहीं होता, उस घरमें धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी अभिवृद्धि होती है। जो स्त्री पतिकी मृत्युके पश्चात् अथवा उसके जीवित रहते हुए अन्य पुरुषका आश्रय नहीं लेती, वह इस लोकमें यश प्राप्त करती है और अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे परलोकमें जाकर पार्वतीके साहचर्यमें आनन्द प्राप्त करती है।

अग्निहोत्रका पालन, पृथ्वीपर शयन, मृगचर्मका धारण, वनमें निवास, दूध, मूल, फल तथा निवारका भक्षण, निषिद्ध कर्मका परित्याग, त्रिकाल-संध्या, ब्रह्मचर्यका पालन और देवता तथा अतिथिकी पूजा—यह वानप्रस्थीका धर्म है।

सभी प्रकारके आरम्भोंका परित्याग, भिक्षासे प्राप्त अन्नका भोजन, वृक्षकी छायामें निवास, अपरिग्रह, अद्रोह, सभी प्राणियोंमें समानभाव, प्रिय तथा अप्रियकी प्राप्तिमें एवं सुख और दुःखमें समान स्थिति, शरीरकी बाह्य और आन्तरिक शुद्धता, वाणीमें संयम, परमात्माका ध्यान, सभी इन्द्रियोंका निग्रह, धारणा तथा ध्यानमें तत्परता और भाव-शुद्धि—ये सभी परिव्राजक या संन्यासीके धर्म कहे गये हैं।

'इसके साथ ही अहिंसा, प्रिय और सत्य वचन, पवित्रता, क्षमा तथा दया—सभी आश्रमों और वर्णोंका सामान्य धर्म कहा गया है'—

अहिंसा सूनृता वाणी सत्यशौचे क्षमा दया।
वर्णिनां लिगिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते॥

(१। २१३। २२)

सदाचार और शौचाचारका निरूपण करते हुए सूतजी शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र)-का भली प्रकारसे अध्ययन करके श्रुति-प्रतिपादित धर्मका पालन करना चाहिये क्योंकि श्रुति ही सब धर्मोंका मूल है। श्रुतिमें कहा गया धर्म परम धर्म है। स्मृति और शास्त्रोंमें प्रतिपादित धर्म अपर धर्म है। यदि [illegible] नहीं हो रहा है तो उसका [illegible] अनुसार [illegible] करना चाहिये। क्योंकि [illegible] और स्मृति ये नेत्रस्वरूप हैं। यदि इन दोनोंसे दिशा-निर्देश नहीं मिल पाता है तो सदाचार (शिष्टाचार)-धर्मका पालन करना चाहिये। इस प्रकार श्रुति, स्मृति और शिष्टाचारसे प्राप्त धर्म—ये तीन प्रकारके सनातन धर्म हैं।

सत्य, दान, दया, निर्लोभता, विद्या, यज्ञ, पूजा और इन्द्रिय-दमन—ये आठ शिष्टाचारके पवित्र लक्षण कहे गये हैं। यहाँ प्रातःकाल जगनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक पालन करने योग्य गृहस्थके धर्मका वर्णन भी हुआ है। गृहस्थको ब्राह्ममुहूर्तमें निद्राका परित्याग करके धर्म और अर्थका भलीभाँति चिन्तन करना चाहिये। शौचादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर दन्तधावन, स्नान करके समाहितचित्त होकर संध्योपासन, तर्पण, देवार्चन आदि नित्यक्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। शौचादि क्रियाओंकी शुद्धिका विस्तृत वर्णन यहाँ हुआ है।

शुद्धि दो प्रकारकी है—पहली बाह्य तथा दूसरी आभ्यन्तरिक। मिट्टी तथा जलसे की जानेवाली बाह्य शुद्धि और भावोंकी शुद्धि ही आभ्यन्तरिक शुद्धि मानी गयी है। आचमनको शुद्धिका प्रमुख अङ्ग माना गया है।

दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकारका हित सम्पादन होनेके कारण प्रातःकालके स्नानकी अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। शरीर अत्यन्त मलिन है। उसमें स्थित नवछिद्रोंसे सदैव मल निकलता ही रहता है। अतः प्रातःकालका स्नान शरीरकी शुद्धिका हेतु, मनको प्रसन्न रखनेवाला तथा रूप और सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला है। यह शोक और दुःखका विनाशक है। गङ्गास्नानकी विशेष महिमा है। गङ्गास्नानसे सर्वविध पापोंका नाश होता है।

शास्त्रोंमें तीन करोड मंदेह नामक राक्षस माने गये हैं। वे दुरात्मा राक्षस सदैव प्रातःकाल उदित हो रहे सूर्यदेवको खा जानेकी इच्छा करते हैं। अतः सूर्योदयसे पूर्व स्नान करके संध्योपासनकर्म नहीं करता, सूर्यदेवका ही [illegible] है। जो लोग यथाविधि स्नानकर यथाधिकार संध्योपासन करते हैं, वे मन्त्रसे पवित्र किये गये जलरूपी अर्घ्य (जल)-से उन मंदेह नामक राक्षसोंका [illegible] देते हैं। [illegible] और रात्रिका [illegible] सन्धिकाल है, वही संध्याकाल (४८ मिनट) होता है। यह संध्याकाल सूर्योदयसे पूर्व [illegible] होता है। [illegible] है जो उपासक [illegible] लिये 'संध्योपासन' [illegible] करता है वह [illegible] नहीं [illegible]।

इस सम्बन्धमें [illegible] हैं—[illegible]

हिरण्य (सोना), घृत, सूर्य, जल और राजा। सदैव इनका दर्शन और पूजन करना चाहिये तथा यथासाध्य अपने दाहिने करके ही चलना चाहिये।

'माता, पिता, गुरु, भ्राता, प्रजा, दीन, दु खी, आश्रितजन, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि—ये पोष्यवर्ग कहे गये हैं। पोष्यवर्गका भरण-पोषण करना स्वर्गका प्रशस्त साधन है। अत मनुष्यको पोष्यवर्गका पालन-पोषण प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। इस ससारमे उसी व्यक्तिका जीवन श्रेष्ठ है, जो बहुतोंके जीवनका साधक बनता है अर्थात् बहुतोका पालन-पोषण करता है। जो मात्र अपने भरण-पोषणमे लगे रहते हैं, वे जीवित रहते हुए भी मरे हुएके समान हैं, क्योंकि अपना पेट कुत्ता भी पालता है'—

माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीना समाश्रिता ॥
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्नि पोष्यवर्गा उदाहृता ।
भरण पोष्यवर्गस्य प्रशस्त स्वर्गसाधनम्॥
भरण पोष्यवर्गस्य तस्माद् यत्नेन कारयेत्।
स जीवति वरश्चैको बहुभिर्योपजीव्यति॥
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषा स्वोदरम्भरा ।
स्वकीयोदरपूर्तिश्च कुक्करस्यापि विद्यते॥

(१।२१३।७९—८२)

व्यवहारमे अर्थका अत्यधिक महत्त्व है। अर्थ उन्हे ही कहते हैं जो हमारे सभी कार्योकी सम्पन्नतामे अनिवार्य रूपसे उपयोगी हो। इसी दृष्टिसे सभी रत्नोकी निधि पृथ्वी, धान्य पशु, स्त्रियाँ आदि अर्थ माने जाते हैं। इस तरह अर्थका महत्त्व होनेपर भी इसके उपार्जनमे सयम आवश्यक है। शास्त्रसम्मत विधिसे अर्जित धनके लाभाशसे सभी लोगोको पितृगण, देवगण तथा ब्राह्मणोकी पूजा करनी चाहिये। ये सतुष्ट होकर धनोपार्जनमे अज्ञानवश हुए दोषको नि सदेह शान्त कर देते हैं।

विद्या शिल्प वेतन, सेवा गोरक्षा व्यापार कृषि, वृत्ति भिक्षा और व्याज—ये दस जीवनयापनके साधन हैं।

नित्य नैमित्तिक काम्य, क्रियाङ्ग मलापकर्षण, मार्जन आचमन और अवगाहन—ये आठ प्रकारके स्नान बताये गये हैं। प्रात काल पूजा-पाठ आदि धार्मिक कृत्यके लिये जो स्नान किया जाता है उसीको नित्य स्नान कहा गया है। चाण्डाल शव विष्ठा तथा रजस्वला आदिके स्पर्शके बाद जो स्नान किया जाता है वह नैमित्तिक कहलाता है। पुष्य आदि नक्षत्रोमे जो स्नान किया जाता है उसे काम्य स्नान कहते हैं। इन स्नानोको तीर्थका अभाव होनेपर उष्ण जल अथवा किसी प्रकार प्राप्त कृत्रिम जलसे सम्पन्न कर लेना चाहिये।

भूमिसे निकला जल पवित्र होता है, इस जलकी अपेक्षा पर्वतसे निकलनेवाले झरनेका जल पवित्र होता है। इससे भी बढकर पवित्र जल सरोवरका है। उसकी अपेक्षा नदीका जल पवित्र है, नदीके जलसे तीर्थजल श्रेष्ठ है। 'इन सभी जलोकी अपेक्षा गङ्गाका जल परम पवित्र है। गङ्गाके श्रेष्ठतम जलसे जीवनपर्यन्त किये गये पापोका विनाश शीघ्र हो जाता है'—

तीर्थतोय तत पुण्य गाङ्ग पुण्य तु सर्वत ॥
गाङ्ग पय पुनात्याशु पापमामरणान्तिकम्।

(१। २१३। ११७-११८)

मनुष्य आचार (सदाचार-शौचाचार)-से ही सब कुछ प्राप्त कर लेता है। सध्या, स्नान, जप, होम, देव और अतिथिपूजन—इन षट्कर्मोको प्रतिदिन करना कर्तव्य है। पञ्चमहायज्ञामे—अध्ययन और अध्यापन ब्रह्मयज्ञ, तर्पण, पितृयज्ञ होम, देवयज्ञ बलिवैश्वदेव, भूतयज्ञ तथा अतिथिका पूजन मनुष्ययज्ञ है। गृहस्थको दिनका यथायोग्य पाँच विभाग करके पितृगण देवगणकी अर्चा और मानवोचित कार्य करना चाहिये। जो मनुष्य अन्नदान करके सर्वप्रथम ब्राह्मणको भोजन कराकर अपने मित्रगणोके साथ स्वय भोजन करता है, वह देहत्यागके बाद स्वर्गलोकके सुखका अधिकारी बन जाता है।

अभक्ष्यभक्षण (शास्त्रनिषिद्ध भोजन), चोरी और अगम्यागमन करनेसे व्यक्तिका पतन हो जाता है। सदाचार एव धर्मका पालन करनेवाला अधिकारी मनुष्य साक्षात् केशव (विष्णु) ही माना गया है।

कलियुगमे दानधर्मका विशेष महत्त्व है। सत्पात्रमे श्रद्धापूर्वक किये गये अर्थ (भोग्य वस्तु)-का प्रतिपादन (विनियोग) दान कहलाता है। इस लोकमे यह दान भोग तथा परलोकमे मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक अर्थका उपार्जन करे क्योंकि न्यायपूर्वक उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है।

जलदानसे तृप्ति, अन्नदानसे अक्षय सुख, तिलदानसे अभीष्ट सतान, दीपदानसे उत्तमनेत्र, भूमिदानसे समस्त अभिलषित पदार्थ, सुवर्णदानसे दीर्घ आयु, गृहदानसे उत्तम भवन तथा रजतदानसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है। वस्त्र प्रदान करनेसे चन्द्रलोक तथा अश्वदान करनेसे अश्विनीकुमारके लोककी प्राप्ति होती है। वृषभका दान देनेसे विपुल सम्पत्ति

और गोदानसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

यान और शय्याका दान करनेपर भार्या, भयभीतको अभय प्रदान करनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। धान्यदानसे शाश्वत अविनाशी सुख तथा वेदाध्यापन (वेदके दान)-से ब्रह्मका सानिध्य-लाभ होता है। गायको घास देनेसे पापोंसे मुक्ति हो जाती है। ईंधनके लिये काष्ठ आदिका दान करनेसे व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। रोगियोंके रोग-शान्तिके लिये औषधि, तेल आदि पदार्थ एवं भोजन देनेवाला मनुष्य रोगरहित, सुखी और दीर्घायु हो जाता है। जो मनुष्य परलोकमें अक्षय सुखकी अभिलाषा रखता है, उसे अपने लिये संसार या घरमें जो वस्तु सर्वाधिक प्रिय है, उस वस्तुका दान गुणवान् ब्राह्मणको करना चाहिये।

दानधर्मसे बढ़कर श्रेष्ठ धर्म इस संसारमें प्राणियोंके लिये कोई दूसरा नहीं है। गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवोंको दिये जानेवाले दानसे जो मनुष्य मोहवश दूसरोंको रोकता है, वह पापी तिर्यक् (पक्षी)-की योनिको प्राप्त करता है।

दानधर्मके बाद प्रायश्चित्तका निरूपण किया गया है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, स्वर्णकी चोरी, और गुरुपत्नीगमन—ये चार महापाप कहे गये हैं। इन सभीका साथ करनेवाला पाँचवाँ महापातकी होता है। गोहत्या आदि जो अन्य पाप हैं वे उपपातकमें माने गये हैं। इन सभी पापोंका प्रायश्चित्त-विधान यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

इसके अनन्तर भारतवर्षका वर्णन, तीर्थोंका वर्णन और उनकी महिमा प्रस्तुत की गयी है। ज्योतिश्चक्रमें वर्जित नक्षत्र, उनके देवता एवं कतिपय शुभ-अशुभ योगों तथा मुहूर्तोंका वर्णन, ग्रहदशा, यात्रा, शकुन, छींकका फल, ग्रहोंके शुभ एवं अशुभ स्थान तथा उनके अनुसार शुभाशुभ फलका विवेचन यहाँ प्रस्तुत है। इसी प्रकार लग्न-फल, राशियोंके चर-स्थिर आदि भेद, ग्रहोंका स्वभाव तथा सात वारोंमें किये जाने योग्य प्रशस्त कार्यका भी निरूपण किया गया है। सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार स्त्री-पुरुषके शुभाशुभ लक्षण, मस्तक एवं हस्तरेखासे आयुका परिज्ञान भी यहाँ कराया गया है। स्वरोदय विज्ञानका निरूपण भी हुआ है। चातुर्मास्यव्रतका, तिथि, नक्षत्र आदि व्रतोंका निरूपण, एकादशी-निरूपण, शिवरात्रिव्रत-कथा तथा व्रत-विधान माहात्म्य आदि प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त सूर्यवंश-चन्द्रवंशका वर्णन, भविष्यके राजवंशका वर्णन किया गया है। रत्नोंके प्रादुर्भावका आख्यान, वज्र (हीरे)-की परीक्षा, पद्मराग, मरकतमणि, इन्द्रनीलमणि, वैदूर्यमणि, पुष्परागमणि, विद्रुममणि, स्फटिक, रुधिराक्षरत्न, पुलक, कर्केतनमणि, भीष्मकमणि तथा मुक्ता आदि रत्नोंके विविध भेद, लक्षण और परीक्षण-विधि बतायी गयी है।

गङ्गा आदि विविध तीर्थों—प्रयाग, वाराणसी, कुरुक्षेत्र, द्वारका, केदार, बदरिकाश्रम, श्वेतद्वीप, मायापुरी (हरिद्वार), नैमिषारण्य, पुष्कर, अयोध्या, चित्रकूट, काञ्चीपुरी, तुंगभद्रा, श्रीशैल, सेतुबन्ध-रामेश्वर, अमरकण्टक, उज्जयिनी, मथुरापुरी आदि स्थानोंको महातीर्थ कहा गया है। इन पवित्र तीर्थस्थलोंमें किया गया स्नान, दान, जप, पूजा, श्राद्ध तथा पिण्डदान आदि अक्षय होता है।

गयातीर्थका माहात्म्य तथा गयाक्षेत्रमें श्राद्धादि करनेका फल सविस्तार समारोहपूर्वक यहाँ प्रस्तुत हुआ है। गय नामक असुरकी उत्कट तपस्यासे संतप्त देवगणोंकी प्रार्थनापर भगवान् विष्णुकी गदासे वह असुर मारा गया। यहाँ उस गयासुरके नामपर ही गयातीर्थ प्रसिद्ध हुआ। यहाँ गदाधर भगवान् विष्णु मुख्यदेवके रूपमें अवस्थित हैं।

गयामें श्राद्ध करनेसे पञ्चमहापापोंकी निवृत्ति तो होती ही है, इसके साथ ही अन्य सम्पूर्ण पापोंका भी विनाश होता है। जिनकी संस्काररहित दशामें मृत्यु हो जाती है अथवा जो मनुष्य पशु या चोरद्वारा मारे जाते हैं। जिनकी मृत्यु सर्पके काटनेसे होती है, वे सभी गयाश्राद्धके पुण्यसे उन्मुक्त होकर स्वर्ग चले जाते हैं। गयामें पिण्डदान करनेमात्रसे पितरोंको परम गति प्राप्त होती है।

गयातीर्थमें पितरोंके लिये पिण्डदान करनेसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, सौ करोड़ वर्षोंमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। यहाँतक कहा गया है कि गयागमनमात्रसे ही व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है—'गयागमनमात्रेण पितृणामनृणं भवेत्।' कहते हैं गयाक्षेत्रमें भगवान् विष्णु पितृदेवताके रूपमें विराजमान रहते हैं। पुण्डरीकाक्ष उन भगवान् जनार्दनका दर्शन करनेपर मनुष्य अपने तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है।

गयाक्षेत्रमें कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँपर तीर्थ नहीं है। पाँच कोशके क्षेत्रफलमें स्थित गयाक्षेत्रमें जहाँ-तहाँ भी पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अक्षयफलको प्राप्तकर अपने पितृगणोंको ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

प्राचीनकालमें रुचि नामक प्रजापति संसारके माया-

मोहको छोडकर गृहस्थादिक आश्रमोके नियमोसे रहित हो इधर-उधर निरहकार भावसे अकेले ही विचरण करने लगे। यह देखकर उनके पितृजनोने उन्हे गृहस्थाश्रमकी महिमा बताते हुए पाणिग्रहण-सस्कारको स्वर्ग एव मोक्षप्राप्तिका हेतु बताया। क्योकि गृहस्थ समस्त देवताओ, पितरो, ऋषियो और याचकोकी पूजा करके उत्तम लोकको प्राप्त करता है। रुचिने भी पितरासे अपनी शकाएँ प्रस्तुत कीं। इसका पितराने समुचित उत्तर देते हुए गृहस्थाश्रमके धर्मपालनके लिये रुचिसे आग्रह किया। रुचि भी दुविधामे आ गये और उन्होने तपस्याद्वारा ब्रह्माको प्रसन्न किया। ब्रह्माके निर्देशसे ऋषि रुचिने नदीके एकान्त तटपर पितरोका तर्पणकर उन्हे सतृप्त किया और पितराकी स्तुतियोसे आराधना की। पितृजनाने सतुष्ट हो प्रकट होकर रुचिको मनोरमा पत्नी तथा पुत्रादिकी प्राप्ति करनेका वरदान दिया और यह भी कहा कि जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस स्तुतिसे हम पितराको सतुष्ट करेगा, उससे प्रसन्न होकर हम लोग उसे उत्तम भोग, आत्मविषयक उत्तम ज्ञान, आयु, आरोग्य तथा पुत्र-पौत्रादि प्रदान करेगे। अत कामनाआकी पूर्ति चाहनेवाले श्रद्धालुआको निरन्तर इस स्तोत्र[१]से पितराकी स्तुति करनी चाहिये।

तदनन्तर द्रव्यशुद्धि एव कर्मविपाक, प्रायश्चित्त-विधान—सातपन, कृच्छ्र, पराक तथा चान्द्रायणादि व्रताके विविध स्वरूपोको दर्शाया गया है।

इसके साथ ही ऋषि-महर्षि तथा देवताआद्वारा प्रतिपादित नीतिशास्त्रका विवेचन किया गया है, जो सभीके लिये हितकर तथा पुण्य, आयु एव स्वर्गादिको प्रदान करनेवाला है।

जो मनुष्य धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ-चतुष्टयकी सिद्धि चाहता है, उसे सदैव सज्जनाकी ही सगति करनी चाहिये। दुर्जनाके साथ रहनसे इस लोक तथा परलोकमे हित सम्भव नहीं है।

दूसरेकी निन्दा, दूसरेका धनग्रहण परायी स्त्रीके साथ परिहास तथा पराये घरम निवास कभी नहीं करना चाहिय।

'मनुष्यको दुर्जनाके सगका परित्यागकर साधुजनाकी सगति करनी चाहिये और दिन-रात पुण्यका सचय करते हुए नित्य अपनी अनित्यताको स्मरण रखना चाहिये'—

त्यज दुर्जनससर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्र स्मर नित्यमनित्यताम्॥

(१।१०८।२१)

'नरकम निवास करना अच्छा है, किंतु दुश्चरित्रके घरमे वास करना उचित नहीं है। नरकवासके कारण पाप विनष्ट हो जाते हैं, किंतु दुश्चरित्रके घरमे निवास करनेसे पाप विनष्ट नहीं होते'—

वर हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे।
नरकात् क्षीयते पाप कुगृहान्न निवर्तते॥

(१।१०९।३)

जो बाल्यावस्थाम विद्याध्ययन नहीं करते हैं, फिर युवावस्थाम कामातुर होकर यौवन तथा धनको नष्ट कर देते हैं, वे वृद्धावस्थामे चिन्तासे जलते हुए शिशिरकालमे कुहासेस झुलसनेवाले कमलके समान सतप्त जीवन व्यतीत करते हैं।

इसके बाद राजनीतिका वर्णन किया गया है। राजाको सत्यपरायण तथा धर्मपरायण होना चाहिये। जो धार्मिक राजा गौ-ब्राह्मणके हितम रत रहता है, वही जितेन्द्रिय राजा प्रजाके पालनम समर्थ हो सकता है। 'जो राजा शास्त्रसम्मत तथा युक्तियुक्त सिद्धान्तोका उल्लघन करता है, वह निश्चित ही इस लोक तथा परलोक दोनोमे नष्ट हो जाता है'—

लघयेच्छास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च।
स हि नश्यति वै राजा इह लोके परत्र च॥

(१।१११।२२)

'सत्यके पालनसे धर्मकी रक्षा होती है, सदा अभ्यास करनेसे विद्याकी रक्षा होती है, मार्जनके द्वारा पात्रकी रक्षा होती है और शीलके द्वारा कुलकी रक्षा होती है'—

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते पात्र कुल शीलेन रक्ष्यते॥

(१।११३।१०)

'सत्यपालनरूपी शुचिता, मन शुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, सभी प्राणियामे दया और जलसे प्रक्षालन—ये पाँच प्रकारके शौच माने गय हैं। जिसम सत्यपालनकी शुचिता है, उसके लिये स्वर्गकी प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। जो मनुष्य सत्य-सम्भाषण ही करता है, वह अश्वमेधयज्ञ करनेवाले व्यक्तिसे बढकर है'—

सत्यशौच मन शौच शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
सर्वभूते दयाशौच जलशौच च पञ्चमम्॥
यस्य सत्य च शौच च तस्य स्वर्गो न दुर्लभ ।
सत्य हि वचन यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते॥

(१।११३।३८-३९)

१-यह स्तोत्र इसी अङ्कम पृ०स० १२८ मे दिया गया है।

जिस व्यक्तिने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरासे युक्त शब्दका उच्चारण कर लिया है, वह अपने कटिप्रदेशमे परिकर (फेंटा) बाँधकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये तैयार रहता है। ऐसा मनुष्य मोक्षका अधिकारी होता है।

इस प्रकार मनुष्यको उन्नतिके पथपर ले जानेवाले नीतिस युक्त कल्याणकारी वचनोका सग्रह इस महापुराणमे प्राप्त होता हे, जिसे ग्रहणकर मानव शाश्वत सुखानुभूतिसे लाभान्वित हो सकता है।

तदनन्तर भगवान्‌के विभिन्न अवतारोकी कथा तथा पतिव्रता-माहात्म्यम ब्राह्मणपत्नी, अनसूया एव भगवती सीताके पातिव्रतका आख्यान मिलता है। रामचरितवर्णन (रामायणकथा), हरिवशवर्णन (श्रीकृष्णकथा) तथा महाभारतकी कथा और बुद्ध आदि अवताराकी कथाका वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है।

इसक बाद आयुर्वेदका प्रकरण प्रारम्भ होता है। भगवान् धन्वन्तरिप्रोक्त सम्पूर्ण आयुर्वेदको अष्टाङ्ग आयुर्वेद कहा गया है। यह अथर्ववेदका उपवेद है। शारीरिक, मानसिक तथा आगन्तुक—इस प्रकारसे व्याधियाँ तीन प्रकारकी कही गयी हैं।

प्रस्तुत गरुडपुराणमे मुख्यरूपसे निदान-स्थान, चिकित्सा-स्थान, कल्प-स्थान [विषौषधिज्ञान तथा चिकित्सा] और उत्तरतन्त्रम कौमार्यतन्त्र एव भूतविद्या आदि विषयाका ही निरूपण हुआ हे। साथ ही गवायुर्वेद, अश्व-चिकित्सा गज-चिकित्सा आदिका भी सक्षेपमे निर्देश हुआ है।

गरुडपुराणके आयुर्वेद-प्रकरणके प्रथम बीस अध्यायामे निदान-स्थानके विषय वर्णित हैं। किस कारणसे रोग उत्पन्न हुआ ह रोगके लक्षण क्या हैं? जिससे रोगका निर्णय हो सके इत्यादि विषय निदान शब्दस अभिप्रेत हैं। इसमे प्रारम्भमे ज्वर, रक्त, पित्त श्वास राजयक्ष्मा मदात्यय, अर्श अतिसार मूत्राघात प्रमेह गुल्म, पाण्डु कुष्ठ वातदोष आदि रोगोके उत्पत्तिजनक कारणो तथा उनके लक्षणोका वर्णन हुआ हे। गरुडपुराणका यह वर्णन आचार्य वाग्भट्टके अष्टाङ्गहृदयसे बहुत अशाम मान्य रखता है। इसके बाद लगभग चालीस अध्यायाम विभिन्न रोगाकी चिकित्साहेतु औषधियोका निरूपण हुआ है। अमुक रोग हानेपर अमुक-अमुक औषधियाका प्रयोग करना चाहिये। इनके निर्माणकी तथा अनुपान आदिकी विधि बतायी गयी है। एक ही रोगक लिये अनेक औषधिक योगोको भी बताया गया है।

आयुर्वेदकी औषधिया और वनस्पतियोका वर्णन जो भगवान् श्रीहरिने शिवजीसे किया था, उसे सुनानेके बाद सूतजीने शौनकादि ऋषियोको कुमार अर्थात् भगवान् स्कन्दक द्वारा कात्यायनसे कहे गये व्याकरणशास्त्रको सुनाया। यह व्याकरण सिद्ध शब्दाके ज्ञान एव बालकोकी व्युत्पत्ति प्रक्रियाको बढानेम सहायक है। इसके अनन्तर सूतजीने अल्प बुद्धिवालोके लिये विशिष्ट बुद्धिकी प्राप्ति-हेतु मात्रा और वर्णके भेदके अनुसार छन्द-विधानको प्रस्तुत किया है।

कर्मविपाकका वर्णन

जगत्सृष्टि और प्रलय आदिकी चक्रगतिको जाननेवाले विद्वान् यदि आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीन सासारिक तापाको जानकर ज्ञान और वैराग्यका मार्ग स्वीकार कर लेते हैं तो आत्यन्तिक लय (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं।

सूतजी कर्मविपाकका वर्णन करते हुए कहते हैं—जीव पापकर्म करनेके कारण नरक-लोकमे जाता है और पुण्यकर्मके कारण स्वर्ग। अपने उन पाप-पुण्याके प्रभावसे नरक तथा स्वर्गम गया प्राणी पुन नरक और स्वर्गसे लौटकर स्त्रियोके गर्भम जाता है। गर्भमे विकसित होता हुआ यह जीव नौ मासतक अधोमुख स्थित रहकर दसवे मासम जन्म लेता है। यह जीव बाल्यावस्था, कौमारावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्थाको प्राप्त करता है। इसके बाद पुन यह मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह जीव इस ससारचक्रमे घटीयन्त्रके समान घूमता रहता है। जीव नरक-भोग करनेके पश्चात् पापयोनियामे जन्म लेता है। यहाँ पापयोनियोका वर्णन सविस्तार किया गया है—मित्रका अपमान करनेवाला गधेकी योनिम जन्म लेता है। माता-पिताको कष्ट पहुँचानवाले प्राणीको कछुवेकी योनिमें जाना पडता है। जो मनुष्य अपने स्वामीका विश्वसनीय बनकर उसको छलकर जीवन-यापन करता है वह व्यामोहम फँसे बदरकी योनिम जाता है। धरोहर रूपमे अपने पास रखे हुए पराये धनका अपहरण करनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है नरकसे निकलनेके बाद वह कृमियानिम जन्म लेता है। जो मनुष्य विश्वासघाती होता है, वह मत्स्ययोनिम उत्पन्न होता है। यज्ञ दान तथा विवाहादिम विघ्न डालनेवाले

मनुष्यको कृमियोनि प्राप्त होती है।

देवता, पितर और ब्राह्मणोको बिना भोजन आदि दिये जो मनुष्य अन्न ग्रहण कर लेता है, वह नरकको जाता है। वहाँसे मुक्त होकर वह काकयोनिको प्राप्त करता है। कृतघ्न व्यक्ति कृमि, कीट, पतग तथा बिच्छूकी योनियाम भ्रमण करता है।

दूसरेकी निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरेकी मर्यादाको नष्ट करना, निष्ठुरता, अत्यन्त घृणित व्यवहारमे अभिरुचि, परस्त्रीके साथ सहवास करना, पराये धनका अपहरण करना, अपवित्र रहना देवोकी निन्दा, मर्यादाके बन्धनको तोडकर अशिष्ट व्यवहार करना, कृपणता तथा मनुष्योका हनन—यह सब नरक भोगकर जन्म लिये हुए मनुष्याका लक्षण कहा गया है।

प्राणियोके प्रति दया, सद्भावपूर्ण वार्तालाप, परलोकके लिये सात्त्विक अनुष्ठान, सत्कार्योंका निष्पादन, सत्यधर्मका पालन दूसरेका हितचिन्तन, मुक्तिकी साधना, वेदोमे प्रामाण्य-बुद्धि, गुरु-देवर्षि और सिद्धर्षियोकी सेवा, साधुजनाद्वारा बताये गये नियमोका पालन, सत्क्रियाओका अनुष्ठान तथा प्राणियोके साथ मैत्रीभाव—ये स्वर्गसे आये मनुष्योके लक्षण हैं।

जो मनुष्य योगशास्त्रद्वारा बताये गये यम-नियम आदि अष्टाङ्गयोगके साधनसे सत् ज्ञानको प्राप्त करता है, वह आत्यन्तिक फल—मोक्षका अधिकारी बन जाता है।

महायोगका वर्णन

श्रीसूतजीने यहाँ समस्त अङ्गोसहित महायोगका वर्णन किया है। यह महायोग मनुष्याको भोग और मोक्ष प्रदान करनेका श्रेष्ठतम साधन है।

महामति भगवान् दत्तात्रेयने राजा अलर्कसे कहा था—हे राजन्! ममता ही दु खका मूल है और ममताका परित्याग ही दु खसे निवृत्तिका उपाय है। अहकार अज्ञानरूपी महातरुका अकुर है। पापमूलक आपातरमणीय सुख-शान्तिके लिये यह अज्ञानरूपी महातरु पैदा हुआ है। जो लोग ज्ञानरूपी कुल्हाडीसे अज्ञानरूप महावृक्षको काट गिराते हैं, वे परब्रह्मम लीन हो जाते हैं। तदनन्तर ब्रह्मरसको प्राप्त कर उसका भलीभाँति पान करके प्राज्ञपुरुष नित्य सुख एव परम शान्तिको प्राप्त करते हैं। जो लोग मायापाशसे आबद्ध हैं, वे सभी नित्य-नैमित्तिक ही कार्य करते हैं और उसीमे अन्ततक लगे रहते हैं। इस कारण उन्हे परमात्माका ऐक्य प्राप्त नहीं होता। जो पुन इस ससारमे जन्म लेते हैं जो अज्ञानस मोहित हैं वे ज्ञानयोग प्राप्त करके अज्ञानसे मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद वह जीवन्मुक्त योगी न कभी मरता है, न दु खी होता है, न रोगी होता है और न ससारके किसी बन्धनसे आबद्ध होता है। न वह पापोसे युक्त होता है, न तो उसे नरकयातनाका ही दु ख भोगना पडता है और न उसे गर्भवासमे जाना पडता है। वह स्वय अव्यय नारायणस्वरूप हो जाता है। इस प्रकारकी अनन्य भक्तिसे वह योगी भाग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् नारायणको प्राप्त कर लेता है।

ध्यान, पूजा, जप, स्तोत्र, व्रत, यज्ञ और दानके नियमाका पालन करनेसे मनुष्यके चित्तकी शुद्धि होती है। चित्तशुद्धिसे ज्ञान प्राप्त होता है तथा इससे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति मिलती है।

भगवद्भक्तिका निरूपण

सूतजी भगवद्भक्तिका निरूपण करते हुए कहते हैं कि प्रभु भक्तिसे जितना सतुष्ट होते हैं, उतना किसी अन्य साधनसे नहीं। भगवान् हरिका निरन्तर स्मरण करना मनुष्याके लिये महान् श्रेयका मूल है। यह पुण्योकी उत्पत्तिका साधन है और जीवनका मधुर फल है। इसलिये विद्वानाने प्रभुकी सेवाको भक्तिका बहुत बडा साधन कहा है। भगवान् त्रिलोकीनाथ विष्णुके नाम तथा गुणोके कीर्तनम तन्मय होकर जो प्रसन्नताके आँसू बहाते हैं, रोमाञ्चित होकर गद्गद हो उठते हैं, वे ही उनके भक्त हैं। इस ससारम वही श्रेष्ठ है, वही ऐश्वर्यसे सम्पन्न है और वही मोक्षको प्राप्त करता है, जो भगवान् हरिकी भक्तिम तन्मय रहता है। यदि कोई भगवद्भक्त चाण्डाल जातिका है तो वह भी अपनी पवित्र भक्तिकी महिमासे सबको पवित्र कर देता है।

'हे नाथ! आप मुझपर दया करो, मैं आपकी शरणम हूँ—ऐसा जो प्राणी कहता है, उसको भगवान् हरि अभय कर देते हैं। किसीसे भी उसको भय नहीं होता, यह भगवान्की प्रतिज्ञा है'—

> दया कुरु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत्।
> अभय सर्वभूतभ्यो दद्यादेतद् व्रत हरे ॥
>
> (१।२२७।११)

जिन मनुष्याका मन हरिभक्तिमे रमा हुआ है, उनके सभी प्रकारके पापाका विनाश निश्चित है।

हाथमे पाश लकर खडे हुए अपने दूतको देखकर यमराज उसके कानमे कहते हैं कि हे दूत! तुम उन लोगाका छोड दना जो मधुसूदन विष्णुक भक्त हैं। मैं तो

अन्य दुराचारी पापियोका स्वामी हूँ, भक्तोके स्वामी स्वय हरि हैं। श्रीविष्णुने सर्वदा कहा है—यदि दुराचारी मनुष्य भी मुझमे अनन्य भक्ति रखता ह तो वह साधु ही है, क्योंकि उसने यह निश्चय कर लिया है कि भगवान्की भक्तिके समान अन्य कुछ भी नहीं ह। भगवान् हरिम जिस मनुष्यकी भक्ति रहती है, उसके लिये धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गका कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि परम सुखरूप मुक्ति उसके हाथमे ही सदा रहती ह।

'इस ससाररूपी विषवृक्षके अमृतके समान दो फल हैं। एक फल है भगवान् केशवकी भक्ति और दूसरा फल है उनके भक्तोका सत्सङ्ग'—

ससारविषवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे।
कदाचित् केशवे भक्तिस्तद्भक्तैर्वा समागम ॥
(१।२२७।३२)

नाम-सकीर्तनकी महिमाका वर्णन करते हुए सूतजी कहते हैं कि मुक्तिके कारणभूत अनादि अनन्त, अज, नित्य, अव्यय और अक्षय भगवान् विष्णुको जो व्यक्ति नमन करता है, वह समस्त ससारके लिये नमस्कारके योग्य हो जाता है। स्वप्नमे भी भगवान् नारायणका नाम लनेवाला मनुष्य अपनी अक्षय पापराशिको विनष्ट कर देता ह। यदि कोई मनुष्य जाग्रत् अवस्थाम परात्पर प्रभुका नाम लेता ह तो फिर उसके विषयमे कहना ही क्या? 'हे कृष्ण! हे अच्युत! हे अनन्त! हे वासुदव! आपको नमस्कार है।' ऐसा कहकर जो भक्तिभावस विष्णुका प्रणाम करते हैं, वे यमपुरी नहीं जाते। सूर्यके उदित हो जानेपर जैसे अन्धकार विनष्ट हो जाता है वैसे ही हरिका नाम-सकीर्तन करनेसे प्राणियाके पापसमूहका विनाश हो जाता है।

सूतजी कहते हैं कि सभी शास्त्रोका अवलाकन करके तथा पुन -पुन विचार करनेपर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यको सदैव नारायणका ध्यान करना चाहिये। इस लोक और परलाकमे प्राणीके लिये जो कुछ दुर्लभ है जा अपन मनमे भी साचा नहीं जा सकता वह बिना माँगे ही ध्यानमात्र करनम भगवान् मधुसूदन प्रदान कर दत हैं। पापकर्म करनेवालोकी शुद्धिका ध्यानके समान अन्य काई साधन नहीं है। यह ध्यान पुनर्जन्म दनेवाले कारणाको भस्म करनवाली अग्नि है। भगवान्का भक्त अनासक्त भावसे यदि अपने सभी कर्मोंको विष्णुके चरणोमे समर्पित करता है तो उससे कर्म [illegible] नहीं होते। [illegible]

इसके अनन्तर श्रीसूतजी भगवान् शिवद्वारा कही गयी नारसिहस्तुति (नृसिहस्तोत्र)-का वर्णन करते हैं। इसके साथ ही 'कुलामृतस्तोत्र' का वर्णन किया गया है, जो देवर्षि नारदके पूछनेपर शिवजीने कहा था। तदनन्तर मार्कण्डेय मुनिके द्वारा कहे गये मृत्युको निवारण करनेवाले 'मृत्य्वष्टकस्तोत्र' को कहा गया है। इसके बाद प्राणियाको सब कुछ प्रदान करनेवाले 'अच्युतस्तोत्र' का वर्णन किया गया है। यह स्तोत्र देवर्षि नारदके पूछनेपर ब्रह्माजीने कहा था। सूतजीने इस स्तोत्रकी अत्यधिक महिमाका वर्णन किया है।

आचारकाण्डके अन्तम ब्रह्मज्ञान और षडङ्गयोग, आत्मज्ञान तथा गीतासारका निरूपण किया है।

जीवका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है। यह मुक्ति जीवको तभी प्राप्त हाती है, जब वह पुर्यष्टक तथा त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका परित्याग कर देता है। जीवको मुक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रकृतिसे स्वयको अलग करना अनिवार्य है। इसके लिये शब्द आदि विषयाके प्रति अनासक्त होना आवश्यक है। प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा, समाधि और ध्यान—ये छ योगके साधन हैं।

इन्द्रियसयमसे पापक्षय और पापक्षयसे देवप्रीति सुलभ हाती है। देवप्रीति मुक्ति एव मुक्ति-साधनकी ओर उन्मुख होनके लिय प्रथम एव अनिवार्य साधन है।

आत्मज्ञान

भगवान् नारदजीसे कहत हैं—कर्मोसे भवबन्धन और ज्ञान होनसे जीवकी ससारसे मुक्ति हो जाती है। इसलिये आत्मज्ञानका आश्रय करना चाहिये। जो आत्मज्ञानसे भिन्न ज्ञान है, उसे अज्ञान कहा जाता है। 'जब हृदयमें स्थित सभी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं तब जीव निस्सदह जीवनकालमें ही अमृत प्राप्त कर लेता है'—

यदा सर्वे विमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिता।
तदाऽमृतत्वमाप्नोति जीवन्नेव न सशय ॥
(१।२३६।१२)

वस्तुमात्रका सार ब्रह्म ही है। तेजोरूप ब्रह्मको एक अखण्ड परम पुण्यरूप समझना चाहिये। जैसे अपनी आत्मा सबको प्रिय है, वैसे ही ब्रह्म सबको प्रिय है क्योंकि आत्मा ही ब्रह्म है। सभी तत्त्वज्ञ ज्ञानको सर्वोच्च मानते हैं। इसलिये चित्तका आलम्बन बोधस्वरूप आत्मा ही है। यह आत्मचिन्तन है। यह पूर्ण है। शाश्वत है। जाग्रत-[illegible] तथा सुषुप्त्यवस्थामे प्राप्त होनेवाला सुख पूर्ण सुखरूप

ब्रह्मका ही एक क्षुद्र अश समझना चाहिये।

हे नारद! मैं अनन्त हूँ, हमारा ज्ञान भी अनन्त है। मैं अपनेमे पूर्ण हूँ। आत्माके द्वारा अनुभूत अन्त सुख मैं ही हूँ। सात्त्विक, राजस और तामस गुणसे सम्बन्धित भावोसे मैं नित्य परे रहता हूँ। मैं शुद्ध हूँ। अमृतस्वरूप हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। मैं प्राणियोके हृदयमे प्रज्वलित वह ज्योति हूँ, जो दीपकके समान उनके अज्ञानरूपी अन्धकारको विनष्ट करती रहती है। यही आत्मज्ञानकी स्थिति है।

गीतासार

गीतासारका वर्णन करते हुए भगवान् नारदजीसे कहते हैं—हे नारद! आत्मकल्याण ही परम कल्याण है। उस आत्मज्ञानसे उत्कृष्ट और कुछ भी नहीं है। आत्मा देहरहित, रूप आदिसे हीन, इन्द्रियोसे अतीत है। मैं आत्मा हूँ। ससार आदि सम्बन्धके कारण मुझे किसी प्रकारका दु ख नहीं है। जैसे आकाशमे विद्युत् अग्निका प्रकाश होता है, वैसे ही हृदयमे आत्मा(आत्मज्ञान)-के द्वारा आत्मा प्रकाशित होता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि—यह अष्टाङ्गयोग मुक्तिके लिये कहा गया है। शरीर, मन और वाणीको सदा सभी प्राणियोकी हिंसासे निवृत्त रखना चाहिये, क्योंकि 'अहिंसा ही परम धर्म है और उसीसे परम सुख मिलता है'—

'हिंसाविरामको धर्मो ह्यहिंसा परम सुखम्'

(१।२३८।३)

सदा सत्य और प्रिय वचन बोलना चाहिये। कभी भी अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये। प्रिय मिथ्या वचन भी नहीं बोलना चाहिये। चोरीसे या बलपूर्वक दूसरेके द्रव्यका अपहरण करना स्तेय है। स्तेय कार्य (चोरी) कभी भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि अस्तेय (चोरी न करना) ही धर्मका साधन है। आपत्तिकालमे भी इच्छापूर्वक द्रव्यका ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है। यदृच्छालाभ तथा अनायास-प्राप्तिसे सतुष्ट होना ही सतोष है। यह सतोष ही सभी प्रकारके सुखका साधन है। मन और इन्द्रियोकी जो एकाग्रता है, वही परम तप है।

कर्म, मन और वाणीसे हरिकी स्तुति, नाम-स्मरण पूजा आदि कार्य और हरिके प्रति *निश्चला* भक्तिको ही ईश्वरका चिन्तन कहा जाता है। अपने शरीरगत वायुका नाम प्राण है। उस वायुके निरोधको प्राणायाम कहा जाता है। इन्द्रियाँ असत् विषयोमे विचरण करती हैं। उनको विषयोसे निवृत्त करना चाहिये। मूर्त और अमूर्त ब्रह्मचिन्तनको ध्यान कहा जाता है। योगारम्भके समय मूर्तिमान् और अमूर्तरूपमे हरिका ध्यान करना चाहिये। तेजोमण्डलके मध्यमे शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्मधारी चतुर्भुज, कौस्तुभचिह्नसे विभूषित, वनमाली, वायुस्वरूप जो ब्रह्म अधिष्ठित है, 'मैं वही हूँ'। इस प्रकार मनका लय करके परमात्मप्रभुको धारण करना ही धारणा है। 'मैं ही ब्रह्म हूँ' और 'ब्रह्म ही मैं हूँ'—इस प्रकार अह और ब्रह्म पदार्थका तादात्म्य रूप ही समाधि है।

ब्रह्मगीताका सारतत्त्व वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं—यह सिद्ध है कि परमात्मा है। उसी परमात्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल तथा जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है। जो इस जगत्प्रपञ्चकी भी जन्मदात्री है।

जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्तिकी अवस्थाओसे परे वह ब्रह्म अपने निर्गुण स्वभावमे ही रहता है। उस क्रियाशील शरीरके साथ रहने तथा न रहनेकी स्थितिमे भी वह नित्य शुद्ध स्वभाववाला ही है। उसमे कोई विकृति नहीं आती है। मुमुक्षुके अन्त करणमे कैवल्य अर्थात् उस परमात्माके साक्षात्कारकी अवस्था आ जाती है। अत मोक्षार्थीको उस स्थितिमे जीवात्माके विषयमे विचारकर उसको शरीरसे पृथक् समझना चाहिये क्योंकि आत्मतत्त्वको शरीरसे अतिरिक्त न माननेपर ब्रह्मतत्त्वसे साक्षात्कार करनेमे अनेक बाधाएँ होती हैं। अत उन बाधाओको दूर करना अपेक्षित है।

ब्रह्मको नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सत्य तथा अद्वैत कहा जाता है। यह आत्मतत्त्व परम ज्योति स्वरूप है। यह चिदानन्द है। यह सत्य ज्ञान और अनन्त है। यही तत्त्वमसि है—ऐसा वेदोका भी कथन है। 'मैं ब्रह्म हूँ', सांसारिक विषयोसे जो परे रहता है, मैं वही निर्लिप्त देव हूँ। मैं तो वही अनादि देवदेवेश्वर परब्रह्म ही हूँ, जिसके आदि और अन्तका ज्ञान किसीको भी नहीं है, यही गीताका सार है। इसको सुनकर मनुष्य ब्रह्ममे लीन हो सकता है। अर्थात् उसे जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

गरुणपुराणका माहात्म्य

आचारकाण्डके अन्तिम अध्यायमे गरुडपुराणका माहात्म्य वर्णित है। भगवान् श्रीहरि भूतभावन रुद्रसे कहते हैं कि मैंने गरुडपुराणका वह सारभाग आपको सुना दिया, जो भोग एव मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यह विद्या, यश सौन्दर्य, लक्ष्मी और आरोग्य आदिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है वह सब कुछ जान लेता है और अन्तमे उसका परम कल्याण हो जाता है।

जिस व्यक्तिके घरमे यह महापुराण रहता है, उसको इसी जन्मम सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

इस महापुराणको पढने एव सुननेमे मनुष्यका धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारो पुरुषार्थोंकी सिद्धि हो जाती है। जो मनुष्य इस पुराणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसकी अकालमृत्यु नहीं होती है। पक्षिश्रेष्ठ गरुडजीके द्वारा कहा गया यह महापुराण धन्य है। यह सबका कल्याण करनेवाला है।

धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

धर्मकाण्ड (प्रेतकल्प)-म सर्वप्रथम भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार किया गया है। तदनन्तर देवक्षेत्र नैमिषारण्यम शौनकादि श्रेष्ठ मुनिगण सूतजी महाराजसे प्रश्न करते हैं कि कुछ लोगाका कहना है कि शरीरधारी जीव एक शरीरके बाद दूसरे शरीरका आश्रय ग्रहण करता है, जबकि दूसरे विद्वानोका कहना है कि प्राणीको मृत्युके पश्चात् यमराजकी यातनाओका भोग करनके बाद दूसरे शरीरकी प्राप्ति हाती है—इन दोनाम क्या सत्य है, यह बतानकी कृपा करे। सूतजी महाराज प्रश्नको सुनकर प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार कथाका वर्णन करते हैं—

एक बार विनतापुत्र गरुडके हृदयम इस ब्रह्माण्डके सभी लोकोको देखनेकी इच्छा हुई। अत हरिनामका उच्चारण करते हुए उन्हाने पाताल, पृथ्वी तथा स्वर्ग आदि सभी लोकाका भ्रमण किया।

पृथ्वीलोकके दु खसे अत्यन्त दु खित एव अशान्तचित्त होकर वे पुन वैकुण्ठलोक वापस आ गये। वैकुण्ठलोकम मृत्युलोकके समान रजागुण तथा तमोगुण आदिकी प्रवृत्ति नहीं है। केवल शुद्ध सत्त्वगुणकी ही प्रवृत्ति है। वहाँ राग-द्वेषादि षड्विकार भी नहीं हैं। किसीका वहाँ विनाश नहीं होता। वहाँ भगवान्‌के मनोहारी सुन्दर पार्षद उपस्थित हैं। गरुडजीन दखा कि हरि झूलेपर विराजमान हैं। भगवान् हरिका दर्शन करनेस विनतासुत गरुडका हृदय आनन्दविभार हा उठा। आनन्दमग्न हाकर उन्हाने प्रभुको प्रणाम करते हुए कहा—भगवन्। आपकी कृपासे त्रिलोकका परिभ्रमण मैंने कर लिया है। यमलाकको छाडकर पृथ्वालोकसे सत्य-लाकतक सब कुछ मर द्वारा दखा जा चुका है। सभी लोकाकी अपेक्षा पृथ्वीलोक प्राणियासे अधिक परिपूर्ण है। सभी योनियाम मानवयोनि ही भाग और माक्षका शुभ आश्रय है। अत सुकृतियाके लिये ऐसा लोक न तो अभीतक बना है और न भविष्यम बनेगा। 'देवता लोग भी इस लोकको प्रशसामे गीत गाते हुए कहते हैं कि जो लोग पवित्र भारतभूमिमे जन्म लेकर निवास करते हैं, वे धन्य हैं। सुरगण भी स्वर्ग एव अपवर्गरूप फलकी प्राप्तिक लिय पुन भारतभूमिम मनुष्यरूपम जन्म लेनेकी इच्छा करत हैं—

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूय पुरुषा सुरत्वात्॥
(२।१।२७)

गरुड पूछते हैं—हे प्रभो। आप यह बतानकी कृपा कर कि मरणासन्न व्यक्तिको किस कारण पृथ्वीपर सुलाया जाता है? उसक मुखम पञ्चरत्न क्या डाला जाता है? उसके नीचे कुश और तिल क्या बिछाये जात हैं? हे केशव! मृत्युक समय विविध वस्तुआके दान एव गोदान, अष्ट महादान किसलिये दिया जाता है? प्राणी कैसे मरता है और मरनेके बाद कहाँ जाता है? उस समय प्राणी आतिवाहिक शरीर कैसे प्राप्त करता है? अग्नि देनेवाले पुत्र-पौत्र उसे कन्धेपर क्यो ल जाते हैं? शवमे घृतका लेप क्यो किया जाता है? शवके उत्तर दिशामे 'यमसूक्त' का पाठ क्यो होता है? मरे हुए व्यक्तिको पीनेके लिये जल एक ही वस्त्र धारण करके क्यों दिया जाता है? शवका दाह-सस्कार करनेके पश्चात् उस व्यक्तिको अपन परिजनोके साथ बैठकर भोजन आदि क्यों नहीं करना चाहिये? मृत व्यक्तिके पुत्र दसव दिनके पहले किसलिये नौ पिण्डाका दान देते हैं? शवका दाह-सस्कार तथा उसके अनन्तर जलतर्पणकी क्रिया क्यो की जाती है? किस विधानसे पिताको पिण्डदान देना चाहिये? उस पिण्डको स्वीकार करनेके लिये उनका आवाहन कैसे किया जाता है? दाह-सस्कारके बाद अस्थि-सचयन और घट फोडनेका विधान क्या है? दसवें दिन सभी परिजनाके साथ शुद्धिके लिये स्नान तथा पिण्डदान क्या करना चाहिये? एकादशाहको वृषोत्सर्ग आदिके सहित पिण्डदान करनेका क्या प्रयोजन है? तेरहवे दिन पददान आदि क्यों किया जाता है? वर्षपर्यन्त सोलह श्राद्ध क्यों किये जाते हैं?

हे प्रभो। मनुष्यका यह शरीर अनित्य है और समय आनेपर ही वह मरता है किंतु मैं उस छिद्रको नहीं देख पाता हूँ, जिससे जीव निकल जाता है?

प्राणी अपने जीवनकालम पुण्य और पाप जो भी करता है नाना प्रकारक दान दता है वे सब शरीरक नष्ट हो जानेपर उसके साथ कैसे चले जाते हैं? मरे हुए प्राणीके

लिये सपिण्डीकरण क्यों होता है? इस कृत्यमें प्रेतपिण्डका मिलन किसके साथ किस विधिसे होना चाहिये? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

जो मनुष्य पापी, दुराचारी अथवा हतबुद्धि हैं, मरनेके बाद वे किस स्थितिको प्राप्त करते हैं? जो पुरुष आत्मघाती, ब्रह्महत्यारा, स्वर्ण आदिकी चोरी करनेवाला, मित्रादिके साथ विश्वासघात करनेवाला है, उस महापातकीका क्या होता है?

हे माधव! यदि शूद्र प्रणव महामन्त्रका जप करता है तथा ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीतको धारण करता है तो मृत्युके बाद उसकी क्या गति होती है?

गरुडजी कहते हैं कि हे विश्वात्मन्! मैंने कौतूहलवश सम्पूर्ण जगत्‌का भ्रमण किया है, उसमें रहनेवाले लोगोंको मैंने देखा है कि वे सभी दुःखमें ही डूबे रहते हैं। उनके अत्यन्त कष्टोंको देखकर मेरा अन्तःकरण पीडासे भर गया, स्वर्गमें दैत्योंकी शत्रुतासे भय है, पृथ्वीलोकमें मृत्यु और रोगादिसे तथा अभीष्ट वस्तुके वियोगसे लोग दुःखी हैं। पाताललोकमें रहनेवाले प्राणियों (नाग आदि)-को मेरे भयसे दुःख बना रहता है। हे प्रभो! आपके इस वैकुण्ठधामके अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी लोकमें ऐसी निर्भयता नहीं दिखायी देती। कालके वशीभूत इस जगत्‌की स्थिति स्वप्नकी मायाके समान असत्य है। उसमें भी इस भारतवर्षमें रहनेवाले लोग बहुत-से दुःखोंको भोग रहे हैं। मैंने देखा है कि उस देशके मनुष्य राग-द्वेष तथा मोह आदिमें आकण्ठ डूबे हुए हैं। उस देशमें कुछ लोग अन्धे हैं, कुछ टेढ़ी दृष्टिवाले हैं, कुछ दुष्ट वाणीवाले हैं, कुछ लूले हैं, कुछ लँगड़े हैं, कुछ काने हैं, कुछ बहरे हैं, कुछ गूँगे हैं कुछ कोढ़ी हैं, कुछ अधिक रोमवाले हैं, कुछ नाना रोगसे घिरे हैं और कुछ आकाश-कुसुमकी तरह नितान्त मिथ्याभिमानसे चूर हैं। उनके विचित्र दोषोंको तथा उनकी मृत्युको देखकर मेरे मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी है कि यह मृत्यु क्या है? इस भारतवर्षमें यह कैसी विचित्रता है? ऋषियोंसे मैंने पहले ही इस विषयमें सामान्यतः यह सुन रखा है कि जिसकी विधिपूर्वक वार्षिक क्रियाएँ नहीं होतीं हैं उसकी दुर्गति होती है। फिर भी प्रभो! इसकी विशेष जानकारीके लिये मैं आपसे पूछ रहा हूँ।

हे उपेन्द्र! मनुष्यकी मृत्युके समय उसके कल्याणके लिये क्या करना चाहिये? कैसा दान देना चाहिये? मृत्यु और श्मशानभूमितक पहुँचनेकी कौन-सी विधि अपेक्षित है? चितामें शवको जलानेकी क्या विधि है? तत्काल अथवा विलम्बसे उस जीवको कैसे दूसरी देह प्राप्त होती है? यमलोक (संयमनी नगरी)-को जानेवालेके लिये वर्षपर्यन्त कौन-सी क्रियाएँ करनी चाहिये? दुर्बुद्धि अर्थात् दुराचारी व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर उसका प्रायश्चित्त क्या है? पञ्चकादिमें मृत्यु होनेपर पञ्चकशान्तिके लिये क्या करना चाहिये? हे देव! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप मेरे इस सम्पूर्ण भ्रमको विनष्ट करनेमें समर्थ हैं। मैंने आपसे यह सब लोकमङ्गलकी कामनासे पूछा है, मुझे बतानेकी कृपा करें।

मरणासन्न व्यक्तिके कल्याणके लिये किये जानेवाले कर्म

श्रीकृष्णजी गरुडसे कहते हैं—आपने मनुष्योंके हितमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात पूछी है। जिसको देवतागण, योगीजन नहीं देख सके, जो गुह्यातिगुह्य है, उसे मैं बता रहा हूँ।

पुत्रकी महिमा बताते हुए भगवान् कहते हैं—यदि मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता है तो पुत्र नरकसे उसका उद्धार कर देता है। पुत्र और पौत्रको मरे हुए प्राणीको कन्धा देना चाहिये तथा उसका यथाविधान अग्निदाह करना चाहिये।

सबसे पहले गोबरसे भूमिको लीपना चाहिये। तदनन्तर जलकी रेखासे मण्डल बनाना चाहिये। इसके बाद उस स्थानपर तिल और कुश बिछाकर मरणासन्न व्यक्तिको कुशासनपर सुला देना चाहिये तथा उसके मुखमें स्वर्ण आदि पञ्चरत्न डालना चाहिये। यह सब कार्य करनेसे वह प्राणी अपने समस्त पापोंको जलाकर पापमुक्त हो जाता है। भूमिपर मण्डल बनानेका अत्यधिक महत्त्व बताया गया है। भूमिपर बनाये गये ऐसे मण्डलमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी तथा अग्नि आदि देवता विराजमान हो जाते हैं, अतः मण्डलका निर्माण अवश्य करना चाहिये। मण्डलविहीन भूमिपर प्राणत्याग करनेपर उसे अन्य योनि नहीं प्राप्त होती, उसकी जीवात्मा वायुके साथ भटकती रहती है। तिल और कुशकी महत्ता बताते हुए भगवान् कहते हैं कि हे गरुड! तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हुए हैं, अतः तिल बहुत ही पवित्र हैं। तिलका प्रयोग करनेपर असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं। एक ही तिलका दान स्वर्णके बत्तीस सेर तिलके बराबर है। तर्पण, दान एवं होममें दिया गया तिलका दान अक्षय होता है। कुश मेरे शरीरके रोमोंसे उत्पन्न हुए हैं। कुशके मूलमें ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु तथा अग्रभागमें शिवको जानना चाहिये। ये तीनों देव कुशमें प्रतिष्ठित माने गये हैं। इसलिये देवताओंकी तृप्तिके लिये मुख्यरूपसे

कुशकी और पितरोकी तृप्तिके लिये तिलकी आवश्यकता होती है। देवताओ और पितराकी तृप्ति ही विश्वकी तृप्तिम हेतु है। अत श्राद्धकी जो विधियाँ बतायी गयी हैं, उन्हींके अनुसार मनुष्यको ब्रह्मा, देवदेवेश्वर तथा पितृजनाको सतृप्त करना चाहिये। ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी— य बार-बार प्रयुक्त हानेपर भी बासी नहीं हाते।

'हे पक्षिश्रेष्ठ! विष्णु, एकादशीव्रत, गीता तुलसी, ब्राह्मण और गो—य छ दुर्गम असार-ससारम लोगाको मुक्ति प्रदान करनेके साधन हें'—

विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनव ॥
असार दुर्गससारे षट्पदी मुक्तिदायिनी।
(२।२।२४-२५)

मृत्युकालम मरणासन्नके दानो हाथाम कुश रखना चाहिये। इससे प्राणी विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

लवणरस पितराको प्रिय होता है आर स्वर्गको प्रदान करता है। यह लवणरस भगवान् विष्णुक शरीरसे उत्पन्न हुआ है। इसलिये अन्नादिके साथ लवणका दान करना चाहिये। इस पृथ्वीपर यदि किसी आतुर व्यक्तिके प्राण न निकलते हा तो उसके लिये स्वर्गका द्वार खोलनेके लिय लवणका दान करना चाहिये।

उसके समीप तुलसीका वृक्ष एव शालग्रामकी शिलाको भी लाकर रख। तत्पश्चात् यथाविधान विभिन्न सूक्ताका पाठ करना चाहिये, क्योकि ऐसा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु मुक्तिदायक हाती है। उसके बाद मरे हुए प्राणीके शरीरगत विभिन्न स्थानोम सानकी शलाकाओको रखनका विधान है जिसके अनुसार क्रमश एक शलाका मुख एक-एक शलाका नाकके दोनो छिद्र दो-दो शलाकाएँ नेत्र आर कान एक शलाका लिङ्ग तथा एक शलाका उसके ब्रह्माण्डम रखनी चाहिये। उसके दोना हाथ एव कण्ठभागम तुलसी रखे। उसके शवको दा वस्त्रासे आच्छादित करके कुकुम और अक्षतसे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पुष्पाकी मालामे विभूषित करक उसे बन्धु-बान्धवा तथा पुत्र एव पुरवासियोके साथ अन्य द्वारसे ले जाय। उस समय अपने बान्धवोके साथ पुत्रको मर हुए पिताके शवका कन्धेपर रखकर स्वय ले जाना चाहिये।

श्मशान दशम पहुँचकर पुत्र पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख वहाँकी उस भूमिपर चिताका निर्माण करवाय जा पहलसे जली न हो। उस चिताम चन्दन तुलसी और पलाशादिकी लकडीका प्रयाग करना चाहिये।

जब मरणासन्न व्यक्तिकी इन्द्रियाका समूह व्याकुल हो उठता है, चेतन शरीर जडीभूत हो जाता है, उस समय प्राण शरीरको छोडकर यमराजके दूतोंके साथ चल देते हैं।

उस समय जो प्राणी दुरात्मा होत हैं, उन्ह यमदूत अपन पाशबन्धनास जकडकर मारते हैं। जो सुकृती हैं, उनको स्वर्गके पार्षद सुखपूर्वक अपन लोकका ले जाते हैं। यमलोकके दुर्गम मार्गम पापियोको दु ख झेलते हुए जाना पडता है।

यमराज अपने लाकम शङ्ख, चक्र तथा गदा आदिसे विभूषित चतुर्भुज रूप धारणकर पुण्यकर्म करनेवाले साधु पुरुषोक साथ मित्रवत् आचरण करते हैं और पापियोको मनिकट बुलाकर उन्हे अपने दण्डस तर्जना देते हैं। वे प्रलयकालीन मघके समान गर्जना करनवाल हैं। अञ्जनगिरिके सदृश उनका कृष्णवर्ण हे। तथा एक बहुत बडे भैंसेपर सवार होते हैं। वे महाक्रोधी एव अत्यन्त भयकर हैं। भीमकाय दुराकृति यमराज अपने हाथामे लोहेका दण्ड और पाश धारण करते हैं। उनके मुख तथा नेत्रोको देखनसे ही पापियोके मनमे भय उत्पन्न हो उठता है। इस प्रकारका महाभयानक यमराज जब पापियोको दिखायी पडते हैं, उस समय हाहाकार करता हुआ अङ्गुष्ठमात्रका मृत पुरुष अपने घरकी और देखता हुआ यमदूतोके द्वारा ले जाया जाता है।

प्राणासे मुक्त-शरीर—चेष्टाहीन हा जाता है। उसको देखनेस मनम घृणा उत्पन्न होने लगती है। वह तुरत अस्पृश्य तथा दुर्गन्धयुक्त और सभी प्रकारसे निन्दित हो जाता है। यह शरीर अन्तम कीट, विष्ठा या राखमें परिवर्तित हो जाता है। ह तार्क्ष्य! क्षणभरमे विध्वस होनेवाले इस शरीरपर कौन ऐसा होगा जो गर्व करेगा। इस असत्-शरीरसे होनेवाले वित्तका दान आदरपूर्वक वाणी कीर्ति, धर्म आयु और परोपकार ही सारभूत है। यमलोक ले जाते हुए यमदूत प्राणीको बार-बार नरकका तीव्र भय दिखाते हुए डाँटकर यह कहते हैं कि हे दुष्टात्मन्! तू शीघ्र चल। तुझे यमराजक घर जाना है। शीघ्र ही हम सब तुझे 'कुम्भीपाक' नामक नरकम ले चलगे। उस समय इस प्रकारकी वाणी और बन्धु-बान्धवोका रुदन सुनकर ऊँचे स्वरमें हा-हा करके विलाप करता हुआ वह मृतक यमदूताके द्वारा यमलोक पहुँचाया जाता है। [शष पृष्ठ-सख्या ५१५ से]

ॐ श्रीपरमात्मने नम

श्रीगणेशाय नम

ॐ नमो भगवते वासुदवाय

संक्षिप्त गरुडपुराण

आचारकाण्ड

भगवान् विष्णुकी महिमा तथा उनके अवतारोका वर्णन

नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यास ततो जयमुदीरयत्॥

'नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनरनारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणका प्रवचन करना चाहिय।'

जो जन्म और जरासे रहित कल्याणस्वरूप अजन्मा तथा अजर हैं, अनन्त एव ज्ञानस्वरूप हैं, महान् हैं, विशुद्ध (मलरहित), अनादि एव पाञ्चभौतिक शरीरस हीन हैं, समस्त इन्द्रियोसे रहित और सभी प्राणियाम स्थित हैं, मायासे परे हैं उन सर्वव्यापक परम पवित्र, मङ्गलमय, अद्वय भगवान् श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ। में मन-वाणी और कर्मसे विष्णु, शिव, ब्रह्मा गणेश तथा देवी सरस्वताका सर्वदा नमस्कार करता हूँ।[1]

एक बार सर्वशास्त्रपारङ्गत, पुराणविद्याकुशल शान्तचित्त महात्मा सूतजी तीर्थयात्राके प्रसङ्गम नैमिषारण्य आये और एक पवित्र आसनपर स्थित होकर भगवान् विष्णुका ध्यान करने लगे। एसे उन क्रान्तदर्शी तपस्वीका दशन करके नैमिषारण्यवासी शौनकादि मुनियाने उनकी पूजा की और स्तुति करते हुए उनसे यह निवेदन किया—

ऋषियोने कहा—ह सूतजा! आप तो सन कुछ जानते हैं, इसलिय हम सब आपसे पूछते हैं कि दवताआम सर्वश्रेष्ठ देव कौन हैं, ईश्वर कौन हैं और कौन पूज्य हैं? ध्यान करनेके योग्य कोन हैं? इस जगत्के स्रष्टा, पालनकर्ता और सहर्ता कौन हैं? किनक द्वारा यह (सनातन) धर्म प्रवर्तित हो रहा है और दुष्टोके विनाशक कौन हैं? उन देवका कैसा स्वरूप है? किस प्रकार इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि हुई है? किन व्रताका पालन करनेसे वे देव सतुष्ट हाते हैं? किस योगके द्वारा उनको प्राप्त किया जा सकता है? उनके कितने अवतार हैं? उनकी वश-परम्परा कैसी है? वर्णाश्रमादि धर्मोंके प्रवर्तक एव रक्षक कौन हैं? हे महामते श्रीसूतजी! इन सवका ओर अन्य विषयाको हम बताय तथा भगवान् नारायणकी सभी उत्तम कथाआका वणन कर।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! मैं उस गरुडमहापुराणका वर्णन करता हूँ, जा सारभूत हे आर भगवान् विष्णुकी कथाआसे परिपूर्ण है। प्राचीन कालम इस पुराणको श्रीगरुडजीन कश्यप ऋषिको सुनाया था और मैंने इसे व्यासजीस सुना था। ह ऋषियो! भगवान् नारायण ही सब दवाम श्रेष्ठ दव हैं। व ही परमात्मा एव परब्रह्म ह। उन्हासे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और सहारकी क्रियाएँ हाती हैं। वे जरा-मरणसे रहित हैं। वे भगवान् वासुदेव अजन्मा

---

१ अजमजरमनन्त ज्ञानरूप महान्त शिवममलमनादि भूतदहादिहीनम्।
सकलकरणहीन सर्वभूतस्थित त हरिममलममाय सर्वग वन्द एकम्॥
नमस्यामि हरिं रुद्र ब्रह्माण च गणाधिपम्। देवीं सरस्वतीं चैव मनोवाक्कर्मभि सदा॥ (१।१-२)

होते हुए भी जगत्की रक्षाके लिये सनत्कुमार आदि अनेक रूपोंमें अवतार ग्रहण करते हैं।

हे ब्रह्मन्! उन भगवान् श्रीहरिने सर्वप्रथम कौमार-सर्गमें (सनत्कुमारादिके रूपमें) अवतार धारण करके कठोर तथा अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया। दूसरे अवतारमें उन्हीं यज्ञेश्वर श्रीहरिने जगत्की स्थितिके लिये (हिरण्याक्षके द्वारा) रसातलमें ले जायी गयी पृथिवीका उद्धार करते हुए 'वराह'-शरीरको धारण किया। तीसरे ऋषि-सर्गमें देवर्षि (नारद)-के रूपमें अवतरित होकर उन्होंने 'सात्वत तन्त्र' (नारदपाञ्चरात्र)-का विस्तार किया, जिससे निष्काम कर्मका प्रवर्तन हुआ। चौथे 'नरनारायण'-अवतारमें भगवान् श्रीहरिने धर्मकी रक्षाके लिये कठोर तपस्या की और वे देवताओं तथा असुरोंद्वारा पूजित हुए। पाँचवें अवतारमें भगवान् श्रीहरि 'कपिल'-नामसे अवतरित हुए, जो सिद्धोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और जिन्होंने कालके प्रभावसे लुप्त हो चुके सांख्यशास्त्रकी शिक्षा दी। छठे अवतारमें भगवान् नारायणने महर्षि अत्रिकी पत्नी अनसूयाके गर्भसे 'दत्तात्रेय' के रूपमें अवतीर्ण होकर राजा अलर्क और प्रह्लाद आदिको आन्वीक्षिकी (ब्रह्म) विद्याका उपदेश दिया। सातवें अवतारमें श्रीनारायणने इन्द्रादि देवगणोंके साथ यज्ञका अनुष्ठान किया और इसी स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वे आकूतिके गर्भसे रुचि प्रजापतिके पुत्ररूपमें 'यज्ञदेव' नामसे अवतीर्ण हुए। आठवें अवतारमें वे ही भगवान् विष्णु नाभि एवं मेरुदेवीके पुत्ररूपमें 'ऋषभदेव' नामसे प्रादुर्भूत हुए। इस अवतारमें इन्होंने नारियोंके उस आदर्श मार्ग (गृहस्थाश्रम)-का निदर्शन किया, जो सभी आश्रमोंद्वारा नमस्कृत है। ऋषियोंकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीहरिने नवें अवतारमें पार्थिव शरीर अर्थात् 'पृथु'का रूप धारण किया और (गोरूपा पृथिवीसे) दुग्धरूपमें (अन्नादिक) महौषधियोंका दोहन किया, जिससे प्रजाओंके जीवनकी रक्षा हुई। दसवें अवतारमें 'मत्स्यावतार' ग्रहणकर इन्होंने चाक्षुष मन्वन्तरके बाद आनेवाले प्रलयकालमें (निराश्रित) वैवस्वत मनुको पृथ्वीरूपी नौकामें बैठाकर सुरक्षा प्रदान की। ग्यारहवें अवतारमें देवों और दानवोंने समुद्र-मन्थन किया तो उस समय भगवान् नारायणने कूर्म रूप ग्रहण करके मन्दराचल पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया। उन्होंने बारहवें अवतारमें 'धन्वन्तरि' तथा तेरहवें अवतारमें 'मोहिनी'का रूप ग्रहण किया और इसी स्त्रीरूपमें उन्होंने (अपने सौन्दर्यसे) दैत्योंको मुग्ध करते हुए देवताओंको अमृतपान कराया। चौदहवें अवतारमें भगवान् विष्णुने 'नृसिंह'का रूप धारणकर अपने तेज नखाग्रोंसे पराक्रमी दैत्यराज हिरण्यकशिपुके हृदयको उसी प्रकार विदीर्ण किया, जिस प्रकार चटाई बनानेवाला व्यक्ति तिनकेको चीर डालता है। पंद्रहवें अवतारमें 'वामन'रूप धारणकर वे राजा बलिके यज्ञमें गये और देवोंको तीनों लोक प्रदान करनेकी इच्छासे उनसे तीन पग भूमिकी याचना की। सोलहवें (परशुराम नामक) अवतारमें ब्राह्मणद्रोही क्षत्रियोंके अत्याचारोंको देखकर उनको क्रोध आ गया और उसी भावावेशमें उन्होंने इक्कीस बार पृथिवीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया। तदनन्तर सत्रहवें अवतारमें ये पराशरद्वारा सत्यवतीसे (व्यास-नामसे) अवतरित हुए और मनुष्योंकी अल्पज्ञताको जानकर इन्होंने वेदरूपी वृक्षको अनेक शाखाओंमें विभक्त किया। श्रीहरिने देवताओंके कार्योंको करनेकी इच्छासे राजाके रूपमें 'श्रीराम'-नामसे अट्ठारहवाँ अवतार लेकर समुद्रबन्धन आदि अनेक पराक्रमपूर्ण कार्य किया। उन्नीसवें तथा बीसवें अवतारमें श्रीहरिने वृष्णिवंशमें 'कृष्ण' एवं 'बलराम'का रूप धारण करके पृथ्वीके भारका हरण किया। इक्कीसवें अवतारमें भगवान् कलियुगकी सन्धिके अन्तमें देवद्रोहियोंको मोहित करनेके लिये कीकट देशमें जिनपुत्र 'बुद्ध'के नामसे अवतीर्ण होंगे और इसके पश्चात् कलियुगकी आठवीं सन्ध्यामें अधिकांश राजवर्गके समाप्त होनेपर वे ही श्रीहरि विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके घरमें 'कल्कि' नामसे अवतार ग्रहण करेंगे।

हे द्विजो! (मैंने यहाँपर भगवान् नारायणके कुछ ही अवतारोंकी कथाका वर्णन किया है। सत्य तो यह है कि) सत्त्वगुणके अधिष्ठान भगवान् विष्णुके असंख्य अवतार हैं। मनु, वेदवेत्ता तथा सृष्टिप्रवर्तक सभी ऋषि उन्हीं विष्णुकी विभूतियाँ कही गयी हैं। उन्हीं मनु आदि श्रेष्ठ ऋषियोंसे इस जगत्की सृष्टि आदि होती है, इसलिये व्रत आदिके द्वारा इनकी पूजा करनी चाहिये। प्राचीन कालमें भगवान् वेदव्यासने इसी 'गरुडमहापुराण'का मुझे सुनाया था। (अध्याय १)

गरुडपुराणकी वक्तृ-श्रोतृ-परम्परा, भगवान् विष्णुद्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा गरुडजीको पुराणसहिताके प्रणयनका वरदान

ऋषियोंने पुन कहा—(हे सूतजी महाराज!) आपको महात्मा व्यासजीने विष्णुकथासे आश्रित इस श्रेष्ठ गरुडमहापुराणका किस प्रकार सुनाया था? वह सब आप हमे विधिवत् सुनानेकी कृपा कर।

सूतजी बोले—एक बार मुनियोक साथ मैं बदरिकाश्रम गया था। वहाँपर परमेश्वरके ध्यानम निमग्न भगवान् व्यासका मुझ दर्शन हुआ। उन्ह प्रणाम करके मैं वहींपर बठ गया आर उन मुनीश्वरस मैने पृछा—ह व्यासजी! आप परमेश्वर भगवान् श्रीहरिक स्वरूप और जगत्की सृष्टि आदिका मुझ सुनाय, क्याकि मैं जानता हूँ कि आप उन्हीं परम पुरुपका ध्यान कर रहे है और उन सर्वज्ञके स्वरूपका परिज्ञान भी आपको है। हे विप्रवृन्द! मैने व्यासदवके सामने जब एसी जिज्ञासा की तो उन्हान मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं आप सभीसे कह रहा हूँ, सुन।

व्यासजीने कहा—हे सूतजी! ब्रह्माजीने जिस प्रकार नारद एव प्रजापति दक्ष आदिस तथा मुझसे इस पुराणकी कथा कही थी, उसी प्रकार में गरुडमहापुराणको सुनाता हूँ। आप सब (उसे) सुने।

सूतजीने पूछा—(ह भगवन्!) ब्रह्माजीने देवर्षि नारद और प्रजापति दक्षसहित आपसे किस प्रकारके पवित्र एव सारतत्त्व बतानेवाले पुराणको कहा था?

व्यासजीने कहा—एक बार नारद, दक्ष तथा भृगु आदि ऋषियाके साथ मे ब्रह्मलाकम विद्यमान श्रीब्रह्माजीके पास गया और उन्ह प्रणामकर मने प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप हम सारतत्त्व बतानेकी कृपा कर।

ब्रह्माजी बोले—यह गरुडमहापुराण अन्य सभी शास्त्रोका सारभूत है। प्राचीन कालम भगवान् विष्णुने अन्य देवताआसहित रुद्रदेव (शिव) ओर मुझस जिस प्रकार इसे कहा था, उसी प्रकार मैं भी इसका वर्णन आपस कर रहा हूँ।

व्यासजीने कहा—भगवान् श्रीहरिने अन्य देवाके साथ रुद्रदेवको किस प्रकारसे सारभूत और महान् अर्थ बतलानवाले इस गरुडमहापुराणको सुनाया था? हे ब्रह्मन्! उस आप सुनाय।

ब्रह्माजी बोले—एक वार इन्द्रादि दवताआके साथ मैं केलासपर्वतपर पहुँच गया। वहाँ मेन दखा कि रुद्रदव शङ्कर परम तत्त्वके ध्यानम निमग्न हैं। मैंने प्रणाम करके उनसे पूछा—हे सदाशिव! आप किस देवका ध्यान कर रह हैं? मैं तो आपसे अतिरिक्त अन्य किसी देवताको नहीं जानता हूँ। इन सभी देवताओक साथ उस परम सारतत्त्वको जाननेकी मरी इच्छा ह। अत आप उसका वर्णन करे।

श्रीरुद्रजीने ब्रह्माजीसे कहा—में तो सर्वफलदायक सर्वव्यापी, सर्वरूप, सभी प्राणियाके हृदयमे अवस्थित, परमात्मा तथा सर्वेश्वर उन भगवान् विष्णुका ध्यान करता हूँ। हे पितामह! उन्हीं विष्णुकी आराधना करनेके लिये मैं शरीरमे भस्म तथा सिरपर जटाजूट धारण करके व्रताचरणम निरत रहता हूँ। जो सर्वव्यापक, जयशील, अद्वैत, निराकार एव पद्मनाभ हे, जो निर्मल (शुद्ध) तथा पवित्र हसस्वरूप हैं, मैं उन्हीं परमपद परमश्वर भगवान् श्रीहरिका ध्यान करता हूँ। इस सारतत्त्व (श्रीविष्णु)-के विषयम उन्हींके पास चलकर हम सभीको पूछना चाहिये।

जिनमे सम्पूर्ण जगत्का वास ह। प्रलयकालम जिनम सम्पूर्ण जगत् प्रविष्ट हो जाता हे, सब प्रकारसे अपनेको उन्हींकी शरणमे करके में उन्हींका चिन्तन करता हूँ। जिन सर्वभूतेश्वरमे सत्त्वगुण, रजोगुण एव तमोगुण एक सूत्रम अवगुम्फित मणियोके समान विद्यमान रहते है, जो हजार नेत्र हजार चरण, हजार जघा तथा श्रेष्ठ मुखसे युक्त हैं, जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, स्थूलसे भी स्थूल, गुरुसे गुरुतम ओर पूज्योम पूज्यतम तथा श्रेष्ठाम भी श्रेष्ठतम हैं, जा सत्याक परम सत्य और सत्यकर्मा कहे गय ह, जो (पुराणामे) पुराणपुरुप और द्विजातियाम ब्राह्मण है, जा प्रलयकालम सङ्कर्षण कहलाते हैं, मैं उन्हां परम उपास्यकी उपासना करता हूँ।

जिन सत्-असत्से पर, ऋत (सत्यस्वरूप), एकाक्षर (प्रणवस्वरूप) परब्रह्मकी दव यक्ष, राक्षस ओर नागगण अर्चना करते हैं, जिनम सभी लाक उसी प्रकार स्फुरित होते हे जिस प्रकार जलम छाटी-छोटी मछलियाँ स्फुरित्त होती हे, जिनका मुख अग्नि, मस्तक द्युलोक नाभि आकाश चरणयुग्म पृथ्वी ओर नत्र सूर्य तथा चन्द्र हैं, ऐसे उन (विष्णु) देवका म ध्यान करता हूँ।

जिनक उदरम स्वर्ग, मत्य एव पाताल—य तीना लोक

विद्यमान हैं। समस्त दिशाएँ जिनकी भुजाएँ हैं, पवन जिनका उच्छ्वास है, मेघमालाओंका समूह जिनका केश-पुञ्ज है, नदियाँ ही जिनके सभी अङ्गोंकी सन्धियाँ हैं और चारों समुद्र जिनकी कुक्षि हैं, जो कालातीत हैं, यज्ञ एवं सत्-असत्से पर हैं, जो जगत्के आदि कारण तथा स्वयं अनादि हैं, ऐसे उन नारायणका मैं चिन्तन करता हूँ।

जिनके मनसे चन्द्रमा, नेत्रोंसे सूर्य और मुखसे अग्नि उत्पन्न हैं, जिनके चरणोंसे पृथिवीकी, कानोंसे दिशाओंकी और मस्तकसे स्वर्गकी सृष्टि हुई है, जिन परमेश्वरसे सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित प्रवर्तित हुआ है, उन देवका मैं आराधना करता हूँ। परम सारतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये हम सभीको उन्हींकी शरणमें जाना चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी! प्राचीन कालमें रुद्रके द्वारा ऐसा कहे जानेपर श्वेतद्वीपमें निवास करनेवाले भगवान् विष्णुको प्रणाम करके उनकी स्तुतिकर उस परम तत्त्वके सारको सुननेकी इच्छासे देवगणोंके साथ मैं भी वहींपर स्थित हो गया। तदनन्तर हमारे मध्य अवस्थित रुद्रने उन परम सारतत्त्वस्वरूप विष्णुको प्रणाम करके (यह) जिज्ञासा करते हुए कहा—हे देवेश्वर! हे हरे! आप हम सबको यह बताये कि कौन देवाधिदेव हैं और कौन ईश्वर हैं? कौन ध्येय तथा कौन पूज्य हैं? किन व्रतोंसे वे परम तत्त्व संतुष्ट होते हैं? किन धर्मोंके द्वारा, किन नियमोंसे अथवा किस धार्मिक पूजामें और किस आचरणमें वे प्रसन्न होते हैं? उन ईश्वरका वह स्वरूप कैसा है? किन देवके द्वारा इस जगत्की सृष्टि हुई है और कौन इस जगत्का पालन करते हैं? वे किन-किन अवतारोंको धारण करते हैं? प्रलयकालमें यह विश्व किन देवमें लीन होता है? सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश तथा मन्वन्तर किन देवसे प्रवर्तित होते हैं और यह सब (दृश्यमान जगत्) किन देवमें प्रतिष्ठित है? हे हरे! इन सभी विषयोंके साथ अन्य जो भी सारतत्त्व हैं, उन्हें बतायें और इसके साथ ही परमेश्वरके माहात्म्य तथा ध्यानयोगके विषयमें भी बतानेकी कृपा करें।

तदनन्तर भगवान् विष्णुने रुद्रको उस परमेश्वरके माहात्म्य एवं (उसकी प्राप्तिके साधनभूत) ध्यान और यागादिक नियमों तथा अष्टादश विद्याओंका ज्ञान (इस प्रकारसे) दिया—

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! मैं बताता हूँ, ब्रह्मा और अन्य देवोंके साथ आप उसका श्रवण करें—

मैं ही सभी देवोंका देव हूँ। मैं ही सभी लोकोंका स्वामी हूँ। देवोंका मैं ही ध्येय, पूज्य और स्तुतियोंसे स्तुति करने-योग्य हूँ। हे रुद्र! मैं ही मनुष्योंसे पूजित होकर उन्हें परम गति प्रदान करता हूँ तथा व्रत, नियम और सदाचरणसे संतुष्ट होकर हे शिव! मैं ही इस संसारकी स्थितिका मूल कारण हूँ। मैं ही जगत्की रचना करनेवाला हूँ। हे शङ्कर! मैं ही दुष्टोंका निग्रह और धर्मकी रक्षा करता हूँ। मैं ही मत्स्य आदिके रूपमें अवतीर्ण होकर अखिल भूमण्डलका पालन करता हूँ। मैं ही मन्त्र हूँ। मैं ही मन्त्रका अर्थ हूँ और मैं ही पूजा तथा ध्यानके द्वारा प्राप्त होनेवाला परम तत्त्व हूँ। मैंने ही स्वर्ग आदिकी सृष्टि की है और मैं ही स्वर्गादि भी हूँ। मैं ही योगी, आद्य योग और पुराण हूँ। ज्ञाता, श्रोता तथा मननकर्ता मैं ही हूँ। वक्ता और सम्भाषणका विषय भी मैं ही हूँ। इस जगत्के समस्त पदार्थ मेरे ही स्वरूप हैं और मैं ही सब कुछ हूँ। मैं ही भोग और मोक्षका प्रदायक परम देव हूँ। हे रुद्र! ध्यान, पूजाके उपचार और (सर्वतोभद्र) मण्डल आदि सब कुछ मैं ही हूँ। हे शिव! मैं ही सम्पूर्ण वेद हूँ। मैं ही इतिहासस्वरूप हूँ। मैं ही सर्वज्ञानमय हूँ। मैं ही ब्रह्म और सर्वात्मा हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही सर्ववाक्मय हूँ तथा मैं ही सभी देवोंका आत्मस्वरूप हूँ। मैं ही साक्षात् सदाचार हूँ। मैं ही धर्म हूँ। मैं ही वैष्णव हूँ। मैं ही वर्णाश्रम हूँ। मैं ही सभी वर्णों और आश्रमोंका सनातन धर्म हूँ। हे रुद्र! मैं ही यम-नियम और विविध प्रकारका व्रत हूँ। मैं ही सूर्य, चन्द्र एवं मंगल आदि ग्रह हूँ।

प्राचीन कालमें पृथिवीपर पक्षिराज गरुडने तपस्याके द्वारा मेरी ही आराधना की थी। उनकी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैंने उनसे कहा था कि आप मुझसे अभीष्ट वर माँग लें।

उस समय गरुडने कहा—हे हरि! नागोंने मेरी माता विनताको दासी बना लिया है। हे देव! आप प्रसन्न होकर मुझे यह वर प्रदान करें कि मैं उनको जीतकर अमृत प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकूँ और माँको (नागोंकी माता) कद्रूकी दासतासे मुक्त करा सकूँ, मैं आपका वाहन बन सकूँ, महान् बली, महान् शक्तिशाली, सर्वज्ञ और नागोंको विदीर्ण करनेमें समर्थ हो सकूँ तथा जिस प्रकार पुराण-संहिताका रचनाकार हो सकूँ वैसा ही करनेकी कृपा करें।

श्रीविष्णु बोले—हे पक्षिराज गरुड! आपने जैसा वर

माँगा है वैसा ही सब कुछ होगा। आप नागोंकी दासतासे

अपनी माता विनताको मुक्त करवा सकोगे। सभी देवताओंको जीतकर अमृत ग्रहण करनेमें आपको सफलता प्राप्त होगी। अत्यन्त शक्तिसम्पन्न होकर आप मेरे वाहन होंगे। विषोंके विनाशकी शक्ति भी आपको प्राप्त होगी। मेरी कृपासे आप मेरे ही माहात्म्यको कहनेवाली पुराण-संहिताका प्रणयन करेंगे। मेरा जैसा स्वरूप कहा गया है, वैसा ही आपमें भी प्रकट होगा। आपके द्वारा प्रणीत यह पुराणसंहिता, आपके 'गरुड' नामसे लोकमें प्रसिद्ध होगी।

हे विनतासुत! जिस प्रकार देव-देवोंके मध्य मैं ऐश्वर्य और श्रीरूपमें विख्यात हूँ, उसी प्रकार हे गरुड! सभी पुराणोंमें यह गरुडमहापुराण भी ख्याति अर्जित करेगा। जैसे विश्वमें मेरा कीर्तन होता है, वैसे ही गरुडके नामसे आपका भी संकीर्तन होगा। हे पक्षिश्रेष्ठ! अब आप मेरा ध्यान करके उस पुराणका प्रणयन करें।

हे रुद्र! मेरे द्वारा यह वरदान दिये जानेके बाद इसी सम्बन्धमें कश्यप ऋषिके द्वारा पूछे जानेपर गरुडने इसी पुराणको उन्हें सुनाया। कश्यपने इस गरुडमहापुराणका श्रवण करके गारुडीविद्याके बलसे एक जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था। गरुडने स्वयं (भी) इसी विद्याके द्वारा अनेक प्राणियोंको जीवित किया था। 'यक्षि ॐ उ स्वाहा' यह जप करने योग्य गारुडी पराविद्या है। हे रुद्र! मेरे स्वरूपसे परिपूर्ण गरुडद्वारा कहे गये इस गरुडमहापुराणको आप सुनें।

(अध्याय २)

गरुडपुराणके प्रतिपाद्य विषयोंका निरूपण

सूतजीने कहा—हे शौनक! जिस गरुडमहापुराणको ब्रह्मा और शिवने भगवान् विष्णुसे, मुनिश्रेष्ठ व्याससे ब्रह्मासे और मैंने व्याससे सुना था, उसे ही इस नैमिषारण्यमें आप सबको मैं सुना रहा हूँ। इस गरुडमहापुराणके प्रारम्भमें सर्गवर्णन, तदनन्तर देवार्चन, तीर्थमाहात्म्य, भुवनवृत्तान्त, मन्वन्तर, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, दानधर्म, राजधर्म, व्यवहार, व्रत, वंशानुचरित, निदानपूर्वक अष्टाङ्ग आयुर्वेद, प्रलय, धर्म, काम, अर्थ, उत्तम ज्ञान और भगवान् विष्णुकी मायामय एवं सहज लीलाओंका विस्तारपूर्वक कहा गया है। भगवान् वासुदेवके अनुग्रहसे इस गरुडमहापुराणके उपदेष्टारूपमें श्रीगरुड सब प्रकारसे अत्यन्त सामर्थ्यवान् हो गये और उसीके प्रभावसे उन्होंके वाहन बनकर वे सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयके कारण भी बन गये। देवोंको जीतकर (अपनी माताको दासतासे मुक्त करानेके लिये) अमृत प्राप्त करनेमें भी उन्होंने सफलता प्राप्त की।

जिन भगवान् विष्णुके उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विद्यमान है, उनकी क्षुधाको भी उन्होंने (अपनी भक्तिसे) शान्त किया। जिनके दर्शन या स्मरणमात्रसे सर्पोका विनाश हो जाता है, जिस गरुडमन्त्रके बलसे कश्यप ऋषिने जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था, उन्हीं हरिरूप गरुडने इस गरुडमहापुराणका वर्णन श्रीकश्यपसे किया था।

हे शौनक! यह श्रीमद्गरुडमहापुराण अत्यन्त पवित्र तथा पाठ करनेपर सब कुछ प्रदान करनेवाला है। व्यासजीको नमस्कार करके मैं यथावत् उसे कह रहा हूँ। आप सब उसको सुनें। (अध्याय ३)

सृष्टि-वर्णन

रुद्रजी बोले—हे जनार्दन! आप सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित—इन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! सर्ग आदिके साथ ही पापोंका नाश करनेवाली सृष्टि-स्थिति एवं प्रलयरूप भगवान् विष्णुकी सनातन क्रीडाका अब मैं वर्णन करूँगा, उसको आप सुनें।

नरनारायण-रूपमें उपास्य वे वासुदेव प्रकाशस्वरूप परमात्मा, परब्रह्म और देवाधिदेव हैं तथा इस जगत्‌की सृष्टि-स्थिति एवं प्रलयके कर्ता हैं। यह सब जो कुछ दृष्ट-अदृष्ट है, उन भगवान्‌का ही व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप है। वे ही पुरुष एवं कालरूपमें विद्यमान हैं। जिस प्रकार बालक क्रीडा करता है, उसी प्रकार व्यक्तरूपमें भगवान् विष्णु और अव्यक्तरूपमें काल एवं पुरुष (निराकार ब्रह्म)-की क्रीडा होती है। उन्हीं लीलाओंको आप भी सुनें।

उन परमात्मा परमेश्वरका आदि और अन्त नहीं है, वे ही जगत्‌को धारण करनेवाले अनन्त पुरुषोत्तम हैं। उन्हीं परमेश्वरसे अव्यक्तकी उत्पत्ति होती है और उन्हींमें आत्मा (पुरुष) भी उत्पन्न होता है। उस अव्यक्त प्रकृतिसे बुद्धि, बुद्धिसे मन, मनसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथिवीकी उत्पत्ति हुई है।

हे रुद्र! इसके पश्चात् हिरण्मय अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्डमें वे प्रभु स्वयं प्रविष्ट होकर जगत्‌की सृष्टिके लिये सर्वप्रथम शरीर धारण करते हैं। तदनन्तर चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें शरीर धारणकर रजोगुणके आश्रयसे उन्हीं देवने इस चराचर विश्वकी सृष्टि की।

देव, असुर एवं मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् उसी अण्डमें विद्यमान है। वे ही परमात्मा स्वयं स्रष्टा (ब्रह्मा)-के रूपमें जगत्‌की संरचना करते हैं, विष्णुरूपमें जगत्‌की रक्षा करते हैं और अन्तमें संहर्ता शिवके रूपमें वे ही देव संहार करते हैं। इस प्रकार एकमात्र वे ही परमेश्वर ब्रह्माके रूपमें सृष्टि, विष्णुके रूपमें पालन और कल्पान्तके समय रुद्रके रूपमें सम्पूर्ण जगत्‌का विनाश करते हैं। सृष्टिके समय वे ही वराहका रूप धारणकर अपने दाँतोंसे जलमग्न पृथिवीका उद्धार करते हैं। हे शङ्कर! संक्षेपमें हो मैं देवादिकी सृष्टिका वर्णन कर रहा हूँ, आप उसको सुनें।

सबसे पहले उन परमेश्वरसे महत्तत्त्वकी सृष्टि होती है। वह महत्तत्त्व उन्हीं ब्रह्मका विकार है। पञ्च तन्मात्राओं (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द)-की उत्पत्तिसे युक्त द्वितीय सर्ग है। उसे भूत-सर्ग कहा जाता है। (इन पञ्च तन्मात्राओंसे पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश-रूपमें महाभूतोंकी सृष्टि होती है।) तीसरा वैकारिक सर्ग है (इसमें कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रियोंकी सृष्टि आती है इसलिये) इसे ऐन्द्रिक भी कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति बुद्धिपूर्वक होती है, यह प्राकृत-सर्ग है। चौथा सर्ग मुख्य-सर्ग है। पर्वत और वृक्षादि स्थावरोंको मुख्य माना गया है। पाँचवाँ सर्ग तिर्यक्-सर्ग कहा जाता है, इसमें तिर्यक्स्रोता[1] (पशु-पक्षी आदि) आते हैं। इसके पश्चात् ऊर्ध्वस्रोताओंकी[2] सृष्टि होती है। इस छठे सर्गको देव-सर्ग भी कहा गया है। तदनन्तर सातवाँ सर्ग अर्वाक्स्रोताओंका[3] होता है। यही मानुष-सर्ग है।

आठवाँ अनुग्रह नामक सर्ग है। वह सात्त्विक और तामसिक गुणोंसे संयुक्त है। इन आठ सर्गोंमें पाँच वैकृत-सर्ग और तीन प्राकृत-सर्ग कहे गये हैं। कौमार नामक सर्ग नवाँ सर्ग है। इसमें प्राकृत और वैकृत दोनों सृष्टियाँ विद्यमान रहती हैं।

हे रुद्र! देवोंसे लेकर स्थावरपर्यन्त चार प्रकारकी सृष्टि कही गयी है। सृष्टि करते समय ब्रह्मासे (सबसे पहले) मानसपुत्र उत्पन्न हुए। तदनन्तर देव, असुर, पितृ और मनुष्य—इस सर्गचतुष्टयका प्रादुर्भाव हुआ।

इसके बाद जल-सृष्टिकी इच्छासे उन्होंने अपने मनको सृष्टि-कार्यमें संलग्न किया। सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्त होनेपर प्रजापति ब्रह्मासे तमोगुणका प्रादुर्भाव हुआ। अतः सृष्टिकी अभिलाषा रखनेवाले ब्रह्माकी जङ्घासे सर्वप्रथम असुर उत्पन्न हुए। हे शङ्कर! तदनन्तर ब्रह्माने उस तमोगुणसे युक्त शरीरका परित्याग किया तो उस शरीरसे निकली हुई तमोगुणकी मात्राने स्वयं

---

१. जिनका स्रोत (आहार-संचार) तिर्यक् (वक्र) होता है उन्हें तिर्यक्स्रोता कहते हैं इसलिये पशु-पक्षियोंको तिर्यक्स्रोता कहा जाता है। इनके द्वारा खाये गये अन्न-जल आदिका इनके उदर (पेट) में वक्र (टेढ़ा-तिरछा) गतिमें संचरण होता है।

२. ऊर्ध्वस्रोता शब्द देवताओंका वाचक है क्योंकि इनका आहार-संचार ऊपरकी ओर होता है।

३. 'अर्वाक्स्रोता' शब्द मनुष्योंका वाचक है क्योंकि इनका आहार संचार अर्वाक् (नीचेकी ओर) होता है।

रात्रिका रूप धारण कर लिया। उस रात्रिरूप सृष्टिको देखकर यक्ष आर राक्षस बहुत ही प्रसन्न हुए।

हे शिव! उसके बाद सत्त्वगुणकी मात्राके उत्पन्न होनेपर प्रजापति ब्रह्माके मुखसे देवता उत्पन्न हुए। तदनन्तर जब उन्हान सत्त्वगुण-समन्वित अपने उस शरीरका परित्याग किया तो उससे दिनका प्रादुर्भाव हुआ, इसीलिये रात्रिम असुर और दिनमे देवता अधिक शक्तिशाली होते हैं। उसके पश्चात् ब्रह्माके उस सात्त्विक शरीरस पितृगणाकी उत्पत्ति हुई।

इसके बाद ब्रह्माके द्वारा उस सात्त्विक शरीरका परित्याग करनेपर सध्याकी उत्पत्ति हुई जो दिन और रात्रिके मध्य अवस्थित रहती है। तदनन्तर ब्रह्माके रजोमय शरारसे मनुष्योका प्रादुर्भाव हुआ। जब ब्रह्माने उसका परित्याग किया ता उससे ज्योत्स्ना (प्रभातकाल) उत्पन्न हुई जो प्राक्सन्ध्याके नामसे जानी जाती हे। ज्यात्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या—ये चारो उस ब्रह्माके ही शरीर हैं।

तत्पश्चात् ब्रह्माके रजोगुणमय शरीरके आश्रयसे क्षुधा और क्रोधका जन्म हुआ। उसके बाद ब्रह्मासे ही भूख-प्याससे आतुर एव रक्त-मास पीने-खानेवाले राक्षसा तथा यक्षाकी उत्पत्ति हुई। राक्षसासे रक्षणके कारण राक्षस[1] कहा गया ओर भक्षणके कारण यक्षाका यक्ष[2]-नामकी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। तदनन्तर ब्रह्माके केशासे सर्प उत्पन्न हुए। ब्रह्माके केश उनके सिरस नीच गिरकर पुन उनके सिरपर आरूढ हो गये—यही सर्पण हे। इसी सर्पण (गतिविरोध)-के कारण उन्हे सर्प कहा गया। उसक बाद ब्रह्माके क्राधसे भूतोका जन्म हुआ। (इसीलिये इन प्राणियाम क्रोधकी मात्रा अधिक होती है।) तदनन्तर ब्रह्मासे गन्धर्वोकी उत्पत्ति हुई। गायन करते हुए इन सभीका जन्म हुआ था, इसलिये इन्हे गन्धर्व आर अप्सराकी ख्याति प्राप्त हुई।

उसक बाद प्रजापति ब्रह्माके वक्ष स्थलसे स्वर्ग ओर द्युलोक उत्पन्न हुआ। उनके मुखसे अज, उदर-भागसे तथा पार्श्व-भागसे गौ, पेर-भागसे हाथीसहित अश्व, महिष, ऊँट ओर भेडकी उत्पत्ति हुई। उनके रोमोस फल-फूल एव औपधियोका प्रादुर्भाव हुआ।

गा, अज पुरुप—ये मेध्य (पवित्र) हैं। घाड, खच्चर ओर गदहे ग्राम्य पशु कहे जाते हैं। अब मुझस वन्य पशुआका सुनो—इन वन्य जन्तुआम पहले श्वापद (हिसक व्याघ्रादि) पशु, दूसरे दा खुरावाले, तीसरे हाथी, चौथे बदर पाँचव पक्षी, छठे कच्छपादि जलचर और सातव सरीसृप जीव (उत्पन्न हुए) हे।

उन ब्रह्माक पूर्वादि चारा मुखोसे ऋक्, यजुप्, साम तथा अथर्व—इन चार वेदाका प्रादुर्भाव हुआ। उन्हींके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओस क्षत्रिय, ऊरु-भागस वश्य तथा पेरासे शूद्र उत्पन्न हुए। उसक बाद उन्हाने ब्राह्मणाके लिये ब्रह्मलाक, क्षत्रियाके लिये इन्द्रलोक, वैश्याके लिय वायुलाक ओर शूद्राके लिये गन्धर्वलोकका निर्धारण किया। उन्हाने हा ब्रह्मचारियोक लिय ब्रह्मलाक, स्वधर्मनिरत गृहस्थाश्रमका पालन करनेवाले लोगाक लिये प्राजापत्यलोक वानप्रस्थाश्रमियाके लिय सप्तर्पिलोक आर सन्यासी तथा इच्छानुकूल सदैव विचरण करनेवाले परम तपोनिधियाक लिय अक्षयलोकका निधारण किया। (अध्याय ४)

मानस-सृष्टि-वर्णन, दक्ष प्रजापतिद्वारा मिथुनधर्मसे सृष्टिका विस्तार

श्रीहरिने पुन कहा—ह रुद्र! प्रजापति ब्रह्माने परलोकम रहनेवाली मानस-प्रजाआकी सृष्टिक अनन्तर सृष्टि-विस्तार करनेवाले मानस-पुत्राकी सृष्टि की। उनसे धर्म, रुद्र, मनु, सनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार, रुचि श्रद्धा मरीचि अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य पुलह, क्रतु वसिष्ठ और नारदका प्रादुर्भाव हुआ। साथ ही बर्हिपद्, अग्निष्वात्त, क्रव्याद, आज्यप, सुकालिन, उपहूत एव दीप्य नामक (सात पितृगण) उत्पन्न हुए। इन बर्हिपदादि सप्त पितृगणाम पथम तीन पितृगण अमूर्तरूप ओर शप चार मूर्तिमान् ह।

कमलयोनि ब्रह्माक दक्षिण अँगूठस ऐश्वयसम्पन्न दक्ष प्रजापति आर वाम अँगूठेस उनकी भार्याका जन्म हुआ। प्रजापतिन अपना उस पत्नीक गर्भस अनक शुभ लक्षणावाला

१ जिससे सब लोग अपनी रक्षा कर वह राक्षस है। इमी दृष्टिस रक्षणका आशय यह ह—जिनस अपना रक्षण—बचाव आवश्यक हे व राक्षस हैं।

२ यक्ष धनके देवता हैं। ये धनक लिये पूज्य हाते हैं। भक्षण पूजाका एक भाग ह। यक्ष धन प्रदान करनेके लिय धनकी कामना करनेवालास भक्षणकी अपक्षा रखते ह इसी दृष्टिस भक्षणके आधारपर यक्ष नाम समुचित जान पड़ता है। यक्षका अथ पूजा भी हो सकता ह। इसक लिय ऋग्वेद (७।६१।५)-का सायणभाष्य भी द्रष्टव्य है।

कन्याआका उत्पन्न किया आर उन्ह ब्रह्माक मानस पुत्राका समर्पित कर दिया। उन्हाने सती नामक पुत्रीका विवाह रद्रक साथ किया उनस रुद्रक असख्य महापराक्रमशाली पुत्राकी उत्पत्ति हुइ।

दक्षन असाधारण रूपवती सुन्दर लक्षणावाली ख्याति नामक पुत्री भृगुको समर्पित की, जिसस भृगुक धाता और विधाता नामक दो पुत्र हुए। उमी ख्यातिस भगवान् नारायणकी जा श्री नामक पत्नी हैं, उनकी भी उत्पत्ति हुई। उन श्राके गर्भसे हरिने 'बल' आर 'उन्माद' नामक दा पुत्राका उत्पन्न किया ह।

महात्मा मनुक आयति आर नियति नामवाली दा कन्याएँ हुई जिनका विवाह भृगुपुत्र धाता और विधाताक साथ हुआ। उन दोनासे एक-एक पुत्रका जन्म हुआ। आयतिक गर्भस धातान प्राण और नियतिक गर्भम विधाताने 'मृकण्डु' का उत्पन्न किया। उन्हा मृकण्डुस महामुनि माकण्डयकी उत्पत्ति हुई।

मरीचिका पत्नी सम्भूतिने पाणमास नामक एक पुत्रका जन्म दिया। उस महात्मा पौणमासक दा पुत्र हुए, जिनका नाम विरजा आर सर्वग है।

अङ्गिराने दक्षकन्या स्मृतिसे अनेक पुत्र और सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति नामक चार कन्याआका जन्म दिया।

अनसूयान अत्रिसे चन्द्रमा, दुर्वासा एव यागा दत्तात्रय नामक तीन पुत्राका उत्पन्न किया। पुलस्त्यकी पत्नी प्रीतिसे दत्तोली नामक पुत्र हुआ। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमासे कर्मश अर्थवीर तथा सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। क्रतुकी पत्नी सुमतिस साठ हजार बालखिल्य ऋषियाकी उत्पत्ति हुई। य सभी ऊर्ध्वरेता, अङ्गुष्ठपर्व परिमाणवाल तथा ददीप्यमान सूर्यके समान तजस्वी है।

वसिष्ठका पत्नी ऊर्जासे रज गात्र ऊर्ध्वबाहु शरण अनघ, सुतपा आर शुक्र—य सात पुत्र हुए। य सभी सप्तर्षि थ।

ह हर! उस दक्ष प्रजापतिन शरारधारी अग्निका स्वाहा नामक पुत्रा प्रदान की थी। उस स्वाहादवान अग्निदवस पावक पवमान तथा शुचि[1] नामक आजस्वी तान पुत्राका प्राप्त किया।

दक्षकन्या स्वधान पितरास मना तथा वैतरणी नामवाली दा पुत्रियाका जन्म दिया। व दाना कन्याएँ 'ब्रह्मवादिनी' थीं। मनाका विवाह हिमाचलक साथ हुआ। हिमाचलन मनास मनाक नामक पुत्र उत्पन्न किया था तथा गौरी (पार्वती)-नामसे प्रसिद्ध पुत्रीको उत्पन्न किया जो पूर्वजन्ममें सती थीं।

ह शिव! तदनन्तर भगवान् ब्रह्माने अपने ही समान गुणवाले स्वायम्भुव मनुका जन्म दिया और उन्ह प्रजापालनके कार्यम नियुक्त किया। उन्हीं ब्रह्मासे दवी शतरूपाका आविर्भाव हुआ। सर्ववभवसम्पन्न महाराज स्वायम्भुव मनुने तपस्याके प्रभावसे परम शुद्ध तपस्विनी उस शतरूपा नामक कन्याका पत्नीरूपम ग्रहण किया जिससे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दा पुत्र तथा प्रसूति, आकूति और दवहूति नामकी तीन पुत्रियाका जन्म हुआ। उनमसे मनुन आकूति नामक कन्याका विवाह प्रजापति 'रुचि' क साथ किया। प्रसूति तथा दवहूति क्रमश दक्ष एव कर्दममुनिको प्रदान की गया।

रुचिस यज्ञ और दक्षिणाका जन्म हुआ। यज्ञसे दक्षिणाक बारह पुत्र हुए, जा महाबलशाली 'याम' (दवगण विशष)-क नामसे प्रसिद्ध हैं।

दक्ष प्रजापतिने (प्रसूतिसे) चौबीस श्रष्ठ कन्याआकी उत्पत्ति की। उन कन्याआमें श्रद्धा लक्ष्मी धृति तुष्टि, पुष्टि मधा क्रिया, बुद्धि लज्जा वपु, शान्ति ऋद्धि आर कीर्ति नामका जा तरह कन्याएँ थीं उनका पत्नीके रूपम दक्षिणाके पुत्र धर्मने स्वाकार किया। इसके बाद शष जो ख्याति, सती सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा सन्नति अनसूया, ऊर्जा स्वाहा और स्वधा नामक ग्यारह कन्याएँ था उनका विवाह क्रमश मुनिश्रेष्ठ भृगु, महादव मरीचि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु, अत्रि वसिष्ठ अग्नि और पितृगणाके साथ हुआ।

श्रद्धाने काम लक्ष्मीने दर्प धृतिने नियम, तुष्टिने सताप तथा पुष्टिने लाभको उत्पन्न किया। मेधासे श्रुतका तथा क्रियासे दण्ड लय और विनय नामक तीन पुत्राका जन्म हुआ। बुद्धिन बोधको लज्जाने विनयका वपुन व्यवसाय

---

[1] पावक पवमान और शुचि नामक तीन अग्नियाँ कहा गयी हैं। उनमें विद्युत्-सम्बन्धी अग्निको पावक तथा मन्थनसे उत्पन्न अग्निको पवमान कहा जाता है और जो यह सूर्य चमकता है वही शुचि (नामक) अग्नि कहलाता है—

पावक पवमानश्च शुचिरग्निश्च त त्रय। निर्मथ्य पवमान स्याद् वैद्युत पावक स्मृत ॥

यश्चासौ तपत सूर्य शुचिरग्निस्त्वसौ स्मृत। (कूर्मपुराण पूर्वविभाग १२। १५-१६)

एव शान्तिन क्षेमको उत्पन्न किया। ऋद्धिसे सुख और कीर्तिसे यश उत्पन्न हुए। ये सभी धर्मके पुत्र हैं। धर्मके पुत्र कामकी पत्नीका नाम रति है, उसक पुत्रको हर्ष कहा गया है।

दक्ष प्रजापतिने किसी समय अश्वमध-यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञम रुद्र ओर सतीके अतिरिक्त निमन्त्रित दक्षके सभी जामाता अपनी पत्नियाक साथ उपस्थित हुए। ऐसा देखकर विना बुलाय ही सती भी उस यज्ञम जा पहुँचीं किंतु वहाँ अपने पिता दक्षक द्वारा किय गये तिरस्कारपूर्ण व्यवहारका देखकर उनसे न रहा गया और उन्हाने वहींपर अपने प्राणोका परित्याग कर दिया। वे ही सती पुन हिमालयसे मेनाक गर्भम उत्पन्न हुईं और गोरीके नामस प्रसिद्ध होकर शम्भुकी पत्नी बनीं। तदनन्तर उनसे गणेश और कार्तिकेय हुए। (सतीके देहत्यागसे) अत्यन्त क्रुद्ध महातेजस्वी भृङ्गीश्वर पिनाकपाणि भगवान् शङ्करने यज्ञका विध्वस करके उस दक्षको यह शाप दिया कि तुम ध्रुवके वशम मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करोगे। (अध्याय ५)

ध्रुववश तथा दक्ष प्रजापतिकी साठ कन्याओकी सन्ततियोका वर्णन

श्रीहरिन (रुद्रमे) कहा—उत्तानपादकी सुरुचि नामक पत्नीस उत्तम और सुनीति नामवाली भार्यासे ध्रुव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उनम ध्रुवने देवर्षि नारदकी कृपास प्राप्त उपदेशके द्वारा देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी आराधना करक श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया।

ध्रुवके महाबलशाली एव पराक्रमशील शिलष्ट नामका पुत्र हुआ। उससे प्राचानवर्हि नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उमस उदारधा नामक पुत्रन जन्म लिया। उसके दिवञ्जय नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र रिपु हुआ। रिपुस चाक्षुप नामक पुत्रने जन्म लिया। उसीने चाक्षुप मनुकी ख्याति प्राप्त की थी। उस चाक्षुप मनुसे रुरु उत्पन्न हुआ। तदनन्तर उसक भी ऐश्वर्यसम्पन्न अङ्ग नामवाला एक पुत्र हुआ। उस पुत्रस वेण (वेन)-ने जन्म लिया, जो नास्तिक एव धर्मच्युत था। मुनियाके द्वारा किये गये कुशाघातसे उस अधर्मी वनकी मृत्यु हुई। उसके बाद पुत्र प्राप्त करनेक लिये तपस्वियाने उसके ऊरु-भागका मन्थन किया, जिससे एक पुत्र हुआ जो अत्यन्त छोटा और कृष्णवर्णका था। मुनियान उससे कहा 'त्व निषीद' अर्थात् तुम बैठो। इसी शब्दके कथनसे उसको निपाद नामकी प्रसिद्धि प्राप्त हुई और वह विन्ध्याचलम निवास करनेके लिये चला गया।

तदनन्तर उन मुनियाने पुन उस वेनके दाहिने हाथका मन्थन किया। उस मन्थन-कर्मसे वेनको विष्णुका मानसरूप धारण करनवाला पृथु नामका पुत्र हुआ। राजा पृथुने प्रजाकी जावन-रक्षाके लिये पृथिवीका दोहन किया। उस पृथुराजका अन्तर्धान नामक एक पुत्र था। उससे हविधान नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उस हविधानका पुत्र प्राचीनवर्हि हुआ जो पृथिवीका एकच्छत्र सम्राट् था। उसन लवण-समुद्रकी पुत्री सामुद्रीक साथ विवाह किया। उस प्राचीनबर्हिसे सामुद्रीन दस पुत्राका जन्म दिया। ये सभा प्राचतस नामवाले धनुर्वेदम निष्णात हुए। धर्माचरणम निरत रहत हुए इन लोगाने दस हजार वर्षोतक जलम निमग्न होकर अत्यन्त कठिन तपस्या की। (तपस्याके प्रभावसे) प्रजापतिका पद प्राप्त करनेवाले उन तपस्वियाका विवाह मारिषा नामक कन्यासे हुआ।

शिवके शापस ग्रस्त दक्षने इसी मारियाके गर्भसे पुन जन्म ग्रहण किया। दक्षने सवस पहले चार प्रकारकी मानस प्रजाआकी सृष्टि की, किंतु महादेवके शापसे उन मानस सतानाकी अभिवृद्धि नहीं हुई। अत उन प्रजापतिने 'स्त्री-पुरुष'क सयोगसे हानेवाली मैथुनी सृष्टिकी इच्छा की।

इसके बाद दक्षन प्रजापति वीरणकी पुत्री असिक्नीके साथ विवाह किया। इस असिक्नीके गर्भसे उन दक्षके हजार पुत्र उत्पन्न हुए। नारदके उपदेशसे वे सभी पृथिवीकी अन्तिम सीमाका जाननेके लिये निकल पडे, किंतु पुन वापस नहीं आये।

हे हर! इस प्रकार उन हजार पुत्राके नष्ट हो जानेपर दक्षने पुन हजार पुत्रोको जन्म दिया। वे सभी 'शबलाश्व' नामसे प्रसिद्ध हुए। उन लोगाने भी अपन बडे भाइयाक मार्गका ही अनुसरण किया। पुत्राके ऐसे विनाशको दखकर (क्रुद्ध) दक्षने नारदको शाप दे दिया कि 'तुम्हे भी (पृथ्वीपर) जन्म लेना हागा।' अत नारद कश्यपमुनिक पुत्ररूपमे उत्पन्न हुए।

इसक वाद दक्ष प्रजापतिन असिक्नीसे साठ रूपवती कन्याआका जन्म दिया जिनमस उन्हान दा कन्याआका

विवाह अङ्गिराके साथ किया। उनके द्वारा दो कन्याएँ कृशाश्व दस कन्याएँ धर्म, चौदह कन्याएँ कश्यप तथा अट्ठाईस कन्याएँ चन्द्रमाको दी गयीं। हे महादेव! इसके पश्चात् दक्षने मनोरमा, भानुमती, विशाला तथा बहुदा नामक चार कन्याओंका विवाह अरिष्टनेमिके साथ किया।

दक्ष प्रजापतिने कृशाश्वको सुप्रजा और जया नामक कन्याओंको प्रदान किया। अरुन्धती, वसु, यामी लम्बा, भानुमती मरुत्वती सङ्कल्पा, मुहूर्ता साध्या तथा विश्वा—ये धर्मकी दस पत्नियाँ कही गयी हैं। अब मैं कश्यपकी पत्नियोंके नामोंको भी कहता हूँ, उनके नाम हैं—अदिति दिति दनु, काला, अनायु, सिंहिका मुनि, कद्रू, साध्या इरा क्रोधा, विनता, सुरभि और खगा।

हे रुद्र! (धर्मकी पत्नी) विश्वासे विश्वेदेव और साध्यासे साध्यगणोंकी उत्पत्ति हुई है। मरुत्वतीसे मरुत्वान् तथा वसुसे (आठ) वसुगणोंका आविर्भाव हुआ। हे शङ्कर! भानुसे (द्वादश) भानु और मुहूर्तासे मुहूर्तगणोंकी उत्पत्ति हुई। लम्बासे घोष तथा यामीसे नागवीथिका जन्म हुआ और सङ्कल्पासे सर्वात्मक सङ्कल्पका प्रादुर्भाव हुआ।

आप, ध्रुव, सोम धर, अनिल अनल प्रत्यूष तथा प्रभास—ये आठ वसु माने गये हैं। आपके वैतुण्डि श्रम श्रान्त और ध्वनि नामक चार पुत्र हुए। ध्रुवके पुत्ररूपमें भगवान् कालका जन्म हुआ, जो लोकके संहारक हैं। सोमसे पुत्ररूपमें भगवान् वर्चा हुए, जिनकी कृपासे ही मनुष्य वर्चस्वी होता है। मनोहरासे धरके द्रुहिण, हुत हव्यवह शिशिर प्राण और रमण नामवाले पुत्र उत्पन्न हुए। अनिलकी पत्नीका नाम शिवा है। अनिल और शिवासे पुलोमज तथा अविज्ञातगति नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। अनल (अग्नि)-के पुत्र कुमार हैं, जिनकी उत्पत्ति शरकाननपर हुई थी। कृत्तिकाओंके पालित पुत्र होनेसे इन्हें कार्तिकेय भी कहा जाता है। इनके शाख विशाख और नैगमेय नामक तीन अन्य छोटे भाई भी हैं।

महर्षि देवलको प्रत्यूष नामक वसुका पुत्र माना गया है। प्रभासवसुसे विख्यात देवशिल्पी विश्वकर्माका जन्म हुआ। विश्वकर्माके महाबलवान् अजकपाद, अहिर्बुध्न्य त्वष्टा तथा पराक्रमी रुद्र—ये चार पुत्र हुए। त्वष्टाके विश्वरूप नामक एक महातपस्वी पुत्र हुआ। हर बहुरूप त्र्यम्बक अपराजित वृषाकपि शम्भु, कपर्दी रैवत मृगव्याध शर्व और कपाली—ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं। ये तीनों लोकोंके स्वामी हैं।

कश्यपकी पत्नी अदितिमें द्वादश सूर्योंकी उत्पत्ति हुई है। उन्हें विष्णु, शक्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता मित्र वरुण, अंशुमान् तथा भग कहा गया है। ये ही द्वादश आदित्य कहे जाते हैं।

रोहिणी आदि जो प्रसिद्ध सत्ताईस नक्षत्र हैं, वे सब सोम (चन्द्रमा)-की पत्नियाँ हैं। दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए तथा सिंहिका नामकी एक कन्या भी हुई जिसका विवाह विप्रचित्तिके साथ हुआ। हिरण्यकशिपुके महापराक्रमशाली चार पुत्र हुए। उनके नाम अनुह्लाद (अनुह्राद), ह्लाद (ह्राद), प्रह्लाद (प्रह्राद) तथा संह्लाद (संह्राद) हैं। उनमें प्रह्लाद विष्णुपरायण भक्तके रूपमें प्रसिद्ध हुए। संह्लादके आयुष्मान्, शिबि और बाष्कल नामक तीन पुत्र हुए। प्रह्लादके पुत्र विरोचन हुए। विरोचनसे बलिकी उत्पत्ति हुई। हे वृषभध्वज! बलिके सौ पुत्र हुए, जिनमें बाण सबसे ज्येष्ठ है।

हिरण्याक्षके सभी पुत्र महाबलवान् थे। उनके नाम उत्कुर, शकुनि भूतसन्तापन महानाभ महाबाहु तथा कालनाभ हैं।

दनुके द्विमूर्धा शङ्कर अयोमुख शङ्कुशिरा, कपिल, शम्बर एकचक्र, महाबाहु तारक, महाबल, स्वर्भानु, वृषपर्वा, पुलोमा, महासुर और पराक्रमी विप्रचित्ति नामक पुत्र विख्यात हुए।

स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभा तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा थी। इसके अतिरिक्त उसे उपदानवी और हयशिरा नामकी दो अन्य श्रेष्ठ कन्याएँ हुईं।

वैश्वानरकी दो पुत्रियाँ थीं। उनका नाम पुलोमा तथा कालका था। उन दोनों परम सौभाग्यशालिनी कन्याओंका विवाह मरीचिके पुत्र कश्यपके साथ हुआ था। उन दोनोंसे साठ हजार श्रेष्ठ दानव उत्पन्न हुए। कश्यपके इन पुत्रोंको पौलोम और कालकञ्ज कहा गया है।

विप्रचित्तिके पुत्रोंका जन्म सिंहिकासे हुआ। उनके नाम व्यंश शल्य बलवान्, नभ महाबल वातापि, नमुचि, इल्वल खसृमान्, अजक नरक तथा कालनाभ हैं।

प्रह्लादके कुलमें निवातकवच नामक दैत्योंकी उत्पत्ति हुई। ताम्रासे सत्त्वगुणसम्पन्न छः कन्याओंका जन्म हुआ। उनके नाम शुकी श्येनी भासी सुग्रीवा शुचि और गृध्रिका हैं।

शुकीसे शुक उलूक एवं उलूकोंके प्रतिपक्षी काकादि उत्पन्न हुए। श्येनीसे श्येन (बाज) भासीसे भास गृध्रिकासे

गृध्र (गीध), शुचिसे जलचर पक्षिगण तथा सुग्रीवीसे अश्व, ऊँट और गधाका जन्म हुआ। इसको ताम्रावश कहा गया है।

विनताके गर्भसे गरुड और अरुण नामक दो विख्यात पुत्र हुए। सुरसाके गर्भसे अपरिमित तेजसम्पन्न सहस्रों सर्पोकी उत्पत्ति हुई। कद्रूसे भी अत्यधिक तेजस्वी सहस्रों सर्प हुए। इन सभी सर्पोंमे प्रधान सर्प शेष, वासुकि, तक्षक, शङ्ख, श्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, नाग, कर्कोटक और धनञ्जय हैं। इस सर्पसमूहका क्रोधसे परिपूर्ण जान। इन सभीके बडे-बडे दाँत हैं।

क्रोधाने महाबली पिशाचाका उत्पन्न किया। सुरभिसे गाया और भैंसाका जन्म हुआ। इरासे समस्त वृक्ष, लता-वल्लरी और तृणाकी उत्पत्ति हुई।

खगासे यक्ष-राक्षस, मुनिसे (नृत्य-गान करनवाली) अप्सराएँ तथा अरिष्टासे परम सत्त्वसम्पन्न गन्धर्व उत्पन्न हुए। दितिसे मरुत् नामक उनचास देवाका जन्म हुआ।

उन मरुद्गणोम एकज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति, चतुर्ज्योति, एकशुक्र, द्विशुक्र तथा महाबलशाली त्रिशुक्र—इन साताका एक गण हे। ईदृक्, सदृक्, अन्यादृक्, प्रतिसदृक्, मित, समित, सुमित नामवाले मरुताका परम शक्तिसम्पन्न दूसरा गण हे। ऋतजित्, सत्यजित्, सुषण, सेनजित्, अतिमित्र, अमित्र तथा दूरमित्र नामक मरुतोका तीसरा अजेय गण है। ऋत, ऋतधर्म, विहर्ता, वरुण, ध्रुव, विधारण और दुर्मेधा नामवाले मरुताका चौथा गण है। ईदृश, सदृक्ष, एतादृक्ष, मिताशन, एतेन, प्रसदृक्ष ओर सुरत नामक महातपस्वी मरुताका पाँचवाँ गण है। हेतुमान्, प्रसव, सुरभ, नादिरुग्र, ध्वनिर्भास, विक्षिप तथा सह नामवाला मरुताका छठा गण है। द्युति, वसु, अनाधृष्य, लाभ, काम, जयी विराट् तथा उद्वषण नामका सातवाँ वायु-गण (स्कन्ध) है।

ये सभी उनचास मरुद्गण भगवान् विष्णुके ही रूप हैं। राजा, दानव देव, सूर्यादि ग्रह तथा मनु आदि इन्हीं श्रीहरिका पूजन करते हैं। (अध्याय ६)

देवपूजा-विधान, विष्णुपूजोपयोगी वज्रनाभमण्डल, विष्णुदीक्षा तथा लक्ष्मी-पूजा

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाली सूर्यादि देवाकी पूजाका में वर्णन करता हूँ। हे वृषभध्वज! ग्रहदेवताओके आसनकी पूजाकर निम्न मन्त्रा—

ॐ नम सूर्यमूर्तये। ॐ ह्रा ह्रीं स सूर्याय नम। ॐ सोमाय नम। ॐ मङ्गलाय नम। ॐ बुधाय नम। ॐ बृहस्पतये नम। ॐ शुक्राय नम। ॐ शनैश्चराय नम। ॐ राहवे नम। ॐ केतवे नम। ॐ तेजश्चण्डाय नम—से आसन, आवाहन, पाद्य अर्घ्य, आचमन स्नान वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध पुष्प, धूप, दीप नमस्कार, प्रदक्षिणा और विसर्जन आदि उपचारोको प्रदान करके सूर्यादि ग्रहोकी पूजा करनी चाहिये।

ॐ ह्रा शिवाय नम -मन्त्रसे आसनकी पूजाकर ॐ ह्रा शिवमूर्तये शिवाय नम -मन्त्रसे नमस्कार कर और साधक शिवपूजामे सर्वप्रथम— ॐ ह्रा हृदयाय नम। ॐ ह्रीं शिरस स्वाहा। ॐ हू शिखायै वषट्। ॐ है कवचाय हु। ॐ ह्रौ नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ह्र अस्त्राय नम—इन मन्त्रासे षडङ्गन्यास करे। तत्पश्चात्— ॐ ह्रा सद्योजाताय नम। ॐ ह्रीं वामदेवाय नम। ॐ हू अघोराय नम। ॐ है तत्पुरुषाय नम। ॐ ह्रौ ईशानाय नम—इन मन्त्रासे शिवके पाँचा मुखोको नमस्कार करना चाहिये।

इसी प्रकार विष्णुपूजामे ॐ वासुदेवासनाय नम—मन्त्रसे भगवान् विष्णुके आसनकी पूजा करे और— ॐ वासुदेवमूर्तये नम। ॐ अ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नम। ॐ आ ॐ नमो भगवते सङ्कर्षणाय नम। ॐ अ ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नम। ॐ अ ॐ नमो भगवते अनिरुद्धाय नम— इन मन्त्रोके द्वारा साधक हरिके चतुर्व्यूहको नमन करे। उसक वाद— ॐ नारायणाय नम। ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नम। ॐ हू विष्णवे नम। ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिहाय नम। ॐ भू ॐ नमो भगवते वराहाय नम। ॐ क ट प श वैनतेयाय नम। ॐ ज ख र सुदर्शनाय नम। ॐ ख ठ फ ष गदायै नम। ॐ व ल म क्ष पाञ्चजन्याय नम। ॐ घ ढ भ ह श्रियै नम। ॐ ग ड व स पुष्ट्यै नम। ॐ ध ष व स वनमालायै नम। ॐ स द ल श्रीवत्साय नम। ॐ ठ च भ य कौस्तुभाय नम। ॐ गुरुभ्यो नम। ॐ इन्द्रादिभ्यो नम। ॐ विष्वक्सेनाय नम—इन मन्त्रास भगवान् श्रीहरिके अवतारा, आयुधा एव वाहन आदिका नमस्कार करत हुए उन्ह आसनादि उपचार प्रदान करने चाहिय।

हे वृषध्वज! भगवान् विष्णुकी शक्ति देवी सरस्वतीकी मङ्गलकारिणी पूजामें ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः—इस मन्त्रसे देवी सरस्वतीको नमस्कारकर निम्न मन्त्रोंसे षडङ्गन्यास करना चाहिये—

ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे नमः। ॐ ह्रूं शिखायै नमः। ॐ ह्रैं कवचाय नमः। ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः। ॐ ह्रः अस्त्राय नमः।

इसी प्रकार श्रद्धा, ऋद्धि, कला, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, प्रभा तथा मति—ये जो सरस्वतीदेवीकी आठ शक्तियाँ हैं, इनका पूजन निम्न नाममन्त्रोंसे करे—

ॐ ह्रीं श्रद्धायै नमः। ॐ ह्रीं ऋद्ध्यै नमः। ॐ ह्रीं कलायै नमः। ॐ ह्रीं मेधायै नमः। ॐ ह्रीं तुष्ट्यै नमः। ॐ ह्रीं पुष्ट्यै नमः। ॐ ह्रीं प्रभायै नमः। ॐ ह्रीं मत्यै नमः।

[इन शक्तियोंकी पूजा करनेके पश्चात्] क्षेत्रपाल, गुरु और परम गुरुका ॐ क्षेत्रपालाय नमः। ॐ गुरुभ्यो नमः। ॐ परमगुरुभ्यो नमः—इन मन्त्रोंसे नमस्कार करना चाहिये।

तदनन्तर कमलवासिनी सरस्वतीदेवीको आसनादि उपचार प्रदान करने चाहिये। पूजनके अनन्तर सूर्यादि देवताओंके लिये प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रोंसे उनका पवित्रारोहण करना चाहिये।

श्रीहरिने कहा—हे शिव! भगवान् विष्णुकी विशेष पूजाके लिये पाँच प्रकारके रंगोंसे बने हुए चूर्णके द्वारा वज्रनाभ-मण्डलका निर्माण करना चाहिये, जो सोलह समान कोष्ठकोंसे संयुक्त हो।

वज्रनाभ-मण्डल बनाकर सबसे पहले न्यास करे और उसके बाद भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे। हृदयके मध्यमें भगवान् विष्णु, कण्ठमें सङ्कर्षण सिरपर प्रद्युम्न, शिखा-भागमें अनिरुद्ध सम्पूर्ण शरीरमें ब्रह्मा तथा दोनों हाथोंमें श्रीधरका न्यास करे। तत्पश्चात् 'अहं विष्णुः' (मैं ही विष्णु हूँ)—ऐसा ध्यान करते हुए पद्मके कर्णिका-भागमें भगवान् श्रीहरिकी स्थापना करे। इसी प्रकार मण्डलके पूर्वमें सङ्कर्षण दक्षिणमें प्रद्युम्न पश्चिममें अनिरुद्ध और उत्तरमें ब्रह्माकी स्थापना करे। तदनन्तर ईशानकोणमें श्रीधर तथा पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि देवोंकी स्थापना करनी चाहिये। यथा—पूर्व दिशामें (ॐ इन्द्राय नमः मन्त्रसे) इन्द्र अग्निकोणमें (ॐ अग्नये नमः मन्त्रसे) अग्नि, दक्षिण दिशामें (ॐ यमाय नमः मन्त्रसे) यम, नैर्ऋत्यकोणमें (ॐ निर्ऋतये नमः मन्त्रसे) निर्ऋति, पश्चिम दिशामें (ॐ वरुणाय नमः मन्त्रसे) वरुण, वायुकोणमें (ॐ वायवे नमः मन्त्रसे) वायु, उत्तर दिशामें (ॐ कुबेराय नमः मन्त्रसे) कुबेर और ईशानकोणमें (ॐ ईशानाय नमः मन्त्रसे) ईशान नामक दिक्पालकी स्थापना करे। उसके बाद उन सभी देवोंकी गन्धादि उपचारोंके द्वारा पूजा करनी चाहिये। इससे साधक परमपदको प्राप्त हो जाता है।

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! दीक्षित शिष्यको वस्त्रसे अपने दोनों नेत्र बंद करके अग्निमें देवताके मूलमन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। हे रुद्र! पुत्र-लाभके लिये द्विगुण (दो सौ सोलह), साधनासिद्धिके निमित्त त्रिगुण (तीन सौ चौबीस) और मोक्ष-प्राप्तिकी कामनासे देशिक (उपदेष्टा आचार्य)-को चाहिये कि वह चतुर्गुण (चार सौ बत्तीस) आहुतियाँ उसी विष्णु-मन्त्रसे प्रदान करे।

विद्वान् देशिकको सबसे पहले भगवान्का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर वे वायवी कला (य बीज-मन्त्र)-से शिष्योंकी स्थिति, आग्नेय कला (र बीज-मन्त्रके)-द्वारा उनकी मनस्ताप-वेदना तथा वारुण कला (व बीज-मन्त्र)-से हृदयकी स्थिति (धर्मकी अभिरुचि)-का विचार करें। इसके बाद देशिकको उस परम तेजमें आत्मतेजका निक्षेप करके जीवात्मा और परमात्माके ऐक्य अर्थात् अभेद-ज्ञानका चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तर वे आकाश-तत्त्वमें 'ॐकार'का ध्यानकर शरीरमें स्थित अन्य कारणभूत वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी-तत्त्वका चिन्तन करें। इस प्रकार प्रणव (ॐकार)-मन्त्रका चिन्तन करते हुए प्रत्येक कारणभूत तत्त्वोंपर जो साधक विजय प्राप्त करता है, वह शरीरधारी होनेके कारण उस पञ्चमहाभूतके ज्ञानरूपी शरीरको ग्रहण कर लेता है। अतः हे वृषभध्वज! अपने अन्तःकरणमें उस सूक्ष्म शरीरधारी (क्षेत्रज्ञ) ज्ञानको उत्पन्न करके प्रत्येक महाभूतको उसीमें संयुक्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

मण्डलादिके निर्माणमें जो लोग असमर्थ हैं, वे मात्र मानसमण्डलकी कल्पना करके भगवान् श्रीहरिका पूजन करें। [शरीरमें ब्रह्मतीर्थादिकी कल्पना की गयी है।

अतएव] उसी क्रमसे वह (मानस-मण्डल भी) चार द्वारोसे युक्त है। हाथको पद्म तथा अँगुलियोको पद्मपत्र कहा गया है। हथेली उस पद्मकी कर्णिका है और नख उसक केशर हैं, इसलिये साधकको उस हाथरूपी कमलमे सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, अग्नि तथा यमसहित श्रीहरिका ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिये।

उसके बाद वह देशिक सावधान होकर अपने उस हाथको शिष्यके सिरपर रखे, [क्योकि हाथम विष्णु विद्यमान रहते हैं, अत] यह हाथ स्वय विष्णु-स्वरूप है। उस हाथके स्पर्शमात्रसे शिष्यके समस्त पाप विनष्ट हो जात हैं। तदनन्तर गुरु शिष्यकी विधिवत् पूजा करे और उस शिष्यका नामकरण करे।

श्रीहरिने (रुद्रसे) कहा—[अब मैं] सिद्धि प्राप्त करनेके लिये स्थण्डिल आदिमे की जानेवाली श्रीलक्ष्मीकी पूजाके सम्बन्धमे कह रहा हूँ। सबसे पहले— **ॐ श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै नम** —यह कहकर साधक— **'श्रा श्रीं श्रू श्रै श्रौ श्र '**— इन बीजमन्त्रोसे क्रमश हृदय, सिर, शिखा, कवच, नत्र और अस्त्र[1]मे इस प्रकारस षडङ्गन्यास करे—

'ॐ श्रा हृदयाय नम । ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ श्रू शिखायै वषट्। ॐ श्रै कवचाय हुम्। ॐ श्रौ नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ श्र अस्त्राय फट्।'

साधनारत भक्तको अङ्गन्यास करके आसनसहित श्रीमहालक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद चार प्रकारके वर्णोसे अनुरञ्जित पद्मगर्भ चार द्वार और चौंसठ प्रकोष्ठोसे युक्त मण्डलके मध्य लक्ष्मी और उनके अङ्गोका तथा एक कोणमे दुर्गा, गण एव गुरुका तदनन्तर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करनेके लिये तत्पर साधक अग्नि आदि कोणाम क्षेत्रपाल देवाकी पूजा करके हवन करे। तत्पश्चात् वह— **'ॐ घ ट ड ह श्रीमहालक्ष्म्यै नम '**—इस महामन्त्रसे पूर्व उल्लिखित परिवारके सहित श्रीमहालक्ष्मीदेवीका पूजन करे।

तदनन्तर उस साधकका **'ॐ सौं सरस्वत्यै नम ।' 'ॐ ह्रीं सौं सरस्वत्यै नम ।' 'ॐ ह्रीं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा।', 'ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नम '**—इन मन्त्रोको कहकर सरस्वतीको नमस्कार करना चाहिये।

(अध्याय ७—१०)

नवव्यूहार्चनविधि, पूजानुक्रम-निरूपण

श्रीहरिने (रुद्रसे) कहा—(गरुडने) कश्यप ऋषिको जो नवव्यूहकी पूजाका वर्णन सुनाया था उसको (अब) मैं कह रहा हूँ, आप सुने।

साधक सबसे पहले [योग-क्रियाक द्वारा] जीवात्माको मस्तक, नाभि और [हृदयरूपी] आकाश नामक तत्त्वम प्रविष्ट करे। तदनन्तर वह 'र' (इस अग्निबीज) मन्त्रसे पाञ्चभौतिक शरीरका शोधन करे। उसक बाद वह 'य' (इस वायु) बीजमन्त्रसे उस सम्पूर्ण शरीरक लयकी भावना करे। तत्पश्चात् वह 'ल' इस बीजमन्त्रसे चराचर जगत्-(के साथ उस विलान हुए शरीर)-के सम्प्लावित होनेकी भावना करे। उसके बाद वह 'व इस बाजमन्त्रस पुन स्वयम अमरत्वकी भावना कर। तदनन्तर [अमृतक] बुद्बुदाक बीच 'मैं ही पीताम्बरधारी चतुर्भुज भगवान् श्राहरि हूँ' ऐसा मानकर आत्मतत्त्वके ध्यानम निमग्न हा जाय।

इसक बाद शरीर तथा हाथम तीन प्रकारका मन्त्र-न्यास करना चाहिये। पहल द्वादशाक्षर बीजमन्त्रसे, तदनन्तर कहे गये बीजमन्त्रस न्यास और बादम षडङ्गन्यास कर। इससे साधक साक्षात् नारायणस्वरूप हो जाता है। साधक दक्षिण अङ्गुष्ठसे प्रारम्भकर मध्यमा अङ्गुलिपर्यन्त न्यास कर। उसक बाद वह पुन मध्य अङ्गुलिपर ही दो बीजमन्त्रसे न्यास करक पुन शरीरके विभिन्न अङ्गापर न्यास करे। क्रमश हृदय सिर, शिखा, कवच, मुख नत्र, उदर और पीठ-भागसे अङ्गन्यास करते हुए दाना बाहु दोना हाथ, दोना जानु और दोना पराम भी न्यास करना चाहिय।

तदनन्तर अपन दाना हाथाको कमलवत् आकृति प्रदान करक उसक मध्य-भागम दाना अङ्गुष्ठाका सनिविष्ट कर।

[1] समस्त शरीरको रक्षक आवरक शक्ति 'अस्त्र'की कल्पना दोना हाथाम की जाती है।

तत्पश्चात् उसी मुद्राकृतिम परमतत्त्वस्वरूप, अनामय सर्वेश्वर भगवान् नारायणका चिन्तन करे।

इसक बाद इन्हीं बीजमन्त्रोसे क्रमश तर्जनी आदि अङ्गुलियाम न्यास करके यथाक्रम सिर, नेत्र, मुख कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, जानुद्वय तथा पादद्वयम भी न्यास करना चाहिये।

बीजमन्त्रोसे दानो हाथाम न्यास तथा षडङ्गन्यास करके सम्पूर्ण शरीरम न्यास करना चाहिय। वह अङ्गुष्ठस कनिष्ठा अङ्गुलितक पाँच बीजमन्त्रासे न्यास करे। उसके बाद हाथके मध्य-भागम नेत्रके बीजमन्त्रसे न्यास करनका विधान है। अङ्गन्यासमे भी इसी क्रमसे हृदय-भागम हृदय, मस्तकम मस्तक, शिखामे शिखा दाना स्तन-प्रदशम कवच नत्रद्वयम नेत्र तथा दाना हाथाम अस्त्र-बीजमन्त्रको अवस्थित करना चाहिय।

तदनन्तर उन्ही बीजमन्त्रोसे दिशाआका प्रतिबद्ध करके माधक पूजनकी क्रिया प्रारम्भ कर। सबस पहले एकाग्रचित्त होकर उसका अपने हृदयम योगपीठका ध्यान करना चाहिये। उसके बाद वह आग्नेयादिस पूर्व दिशाओम यथाक्रम धर्म ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यका विन्यस्त करके पूर्वादि दिशाआम अधर्मादिका न्यास करे। यथा— अग्निकोणम '३ॐ धर्माय नम ', नैर्ऋत्यकोणम '३ॐ ज्ञानाय नम ', वायुकाणमे '३ॐ वैराग्याय नम और इशानकाणम '३ॐ ऐश्वर्याय नम ', पूर्व दिशाम '३ॐ अधर्माय नम ', दक्षिण दिशाम '३ॐ अज्ञानाय नम ', पश्चिम दिशामे '३ॐ अवैराग्याय नम ' तथा उत्तर दिशाम '३ॐ अनैश्वर्याय नम ' कहकर न्यास करे।

साधक इस प्रकार इन न्यास-विधियासे आच्छादित अपन शरारका आराध्यका पीठ और स्वयका उसीका स्वरूप समझकर पूर्वाभिमुख उन्नत अवस्थाम स्थिर हाकर अनन्त भगवान् विष्णुका अपनम प्रतिष्ठित कर। तदनन्तर नानारूपी सरावरम उत्पन्न ऊपरकी आर उठी हुइ कर्णिकास युक्त शतपत्रवाल आठा दिशाआम प्रसरित श्वेत अष्टदल-कमलका ध्यान कर।

तत्पश्चात् साधकका आनन्दादिक मन्त्राम सूर्य चन्द्र तथा अग्निस्वरूप मण्डलाका क्रमश एकक ऊपर एकका ध्यान करना चाहिय। उसक बाद वह पूर्वादि दिशाआम भगवान् केशवके पास ही अवस्थित विमलादि शक्तियोको अष्टदल-कमलपर विन्यस्त करके नवा शक्तिको कर्णिकाम स्थापित करे।

इस प्रकार ध्यान करक उस साधकको योगपीठकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् वह पुन मनसे भगवान् विष्णुका अङ्गसहित आवाहनकर [उस योगपीठमे उन्हे] प्रतिष्ठित करे। तदनन्तर पूर्वादि चारा दिशाओमे अवस्थित चतुर्दल-कमलपर हृदयादिन्यास करना चाहिय। कमलक मध्यभागम तथा काणापर अस्त्रमन्त्रका न्यास करे। अर्थात् उसके पूर्व दराम '**हृदयाय नम**', दक्षिण दलम '**शिरस स्वाहा**', पश्चिम दलम '**शिखायै वषट्**', उत्तर दलम '**कवचाय हुम्**', मध्यम '**नेत्रत्रयाय वौषट्**' तथा कोणमे '**अस्त्राय फट्**' कहकर न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् पूर्वादि दिशाआम यथाक्रम सङ्कर्षण आदिक बीजमन्त्राको विन्यस्त करनेका विधान है। तदनन्तर वह पूर्व और पश्चिम दिशाके द्वारपर '३ॐ वैनतेयाय नम ' कहकर वैनतेयका प्रतिष्ठित कर। उसके बाद दक्षिण द्वारपर '३ॐ सुदर्शनाय नम ', '३ॐ सहस्राराय नम ' का उच्चारण करके हजार अरावाले सुदर्शन चक्रकी वह स्थापना करे। तदनन्तर दक्षिण द्वारपर '३ॐ श्रियै नम ' मन्त्रसे श्रीका न्यास करके उत्तर द्वारपर '३ॐ लक्ष्म्यै नम ' मन्त्रसे लक्ष्मीको प्रतिष्ठित करे।

साधकको इसक बाद उत्तर दिशाम '३ॐ गदायै नम ' मन्त्रस गदा, काणोम '३ॐ शङ्खायै नम ' मन्त्रसे शङ्खका न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् उन विष्णुदेवक दोना ओर आयुधाका न्यास करना चाहिय। विद्वान् साधक दक्षिणकी ओर शार्ङ्ग (धनुष) तथा दवके बायीं ओर इषु (बाण)-का न्यास कर। इसी प्रकार दाना भागाम खड्ग और चर्मका न्यास कर।

तदनन्तर वह साधक मण्डलक मध्य दिशाभदक अनुसार पूर्वादि दिशाआम इन्द्रादि लाकपालाका प्रतिष्ठित कर और उनक आयुधाका भी स्थापित कर। उसक बाद विद्वान् साधकका ऊपरका आर '३ॐ ब्रह्मणे नम ' मन्त्रस ब्रह्मा तथा नाचकी आर '३ॐ अनन्ताय नम ' मन्त्रस अनन्तरूपका न्यास करना चाहिय।

इस प्रकार साधक सभी देवोका न्यास एव ध्यान करके उनकी पूजा कर और उनक सामने उनकी ही मुद्राका प्रदर्शन करे। अञ्जलिबद्ध होना प्रथम मुद्रा है। इसके प्रदर्शनसे शीघ्र ही देवसिद्धि हो जाती है। दूसरी वन्दिनी मुद्रा है आर तीसरी मुद्रा हृदयासक्ता है। इस मुद्रामे बाय हाथकी मुट्ठीसे दाहिने हाथके अँगूठेको बाँधकर बाय हाथके अँगूठेको ऊपर उठाये हुए हृदयभागसे सलग्न रखना चाहिये। व्यूह-पूजाम मूर्तिभेदसे इन तीन मुद्राओको साधारण मुद्रा माना गया है। दोनो हाथाम अँगूठेसे कनिष्ठापर्यन्त तीन अँगुलियोको नवाकर क्रमश उन्हे मुक्त करनेसे आठ मुद्राएँ बनती हैं।

दोनो हाथाके अँगूठोसे अपने-अपने हाथकी मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा अँगुलियोको नीचेकी ओर झुकाकर जो मुद्रा बनायी जाती हे, उसको 'नरसिह-मुद्रा' कहते हैं। दाहिने हाथके ऊपर बाय हाथको उत्तान स्थितिम रखकर प्रतिमाके ऊपर धीरे-धीरे घुमानेको 'वाराही मुद्रा' कहते हैं। भगवान् वाराहको सदा ही यह प्रिय हे। दोनो मुट्ठियोको उत्तान रखकर क्रमश एक-एक अँगुली सीधे खोलते हुए सभीको खोल द। तदनन्तर उन सभी अँगुलियोकी पुन मुट्ठी बाँध ले। यह 'अङ्गमुद्रा' कहलाती है। साधकको इन मुद्राओका प्रदशन क्रमश दसो दिक्पालाके लिये करना चाहिये।

भगवान् वासुदेव, बलराम प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध क्रमश प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ दव-स्थानके अधिकारी दव हैं। साधकको—'ॐ अ वासुदेवाय नम' मन्त्रसे वासुदेव, 'ॐ आ बलाय नम' मन्त्रसे बलराम, 'ॐ अ प्रद्युम्नाय नम' मन्त्रस प्रद्युम्न तथा 'ॐ अ अनिरुद्धाय नम' मन्त्रसे अनिरुद्धकी पूजा करनी चाहिये।

ॐकार, तत्सत्, हु क्षौ तथा भू—य पाँच क्रमश नारायण ब्रह्मा विष्णु, नरसिह और महावराह भगवान्के बीजमन्त्र हैं इसलिये साधक—'ॐ नारायणाय नम' मन्त्रसे भगवान् नारायण 'ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नम' मन्त्रस पद्मयोनि ब्रह्मा, 'ॐ हु विष्णवे नम' मन्त्रसे विष्णु, 'ॐ क्षौं नरसिहाय नम' मन्त्रसे नरसिह तथा 'ॐ भू महावराहाय नम' मन्त्रसे आदिवराहका पूजन करे।

उपर्युक्त इन नो देवताओ (वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिह तथा महावराह) (नवव्यूह)-का वर्ण क्रमश श्वेत, अरुण, हरिद्रावत् पीत, नील श्यामल, लोहित, मेघवत् श्याम, अग्निवत् पीत एव मधु पिङ्गल हे। अर्थात् वासुदेव श्वेत, बलदेव अरुण, प्रद्युम्न हरिद्रावत् पीत अनिरुद्ध नील, नारायण श्याम, ब्रह्मा रक्ताभ, विष्णु मेघवत् श्याम, नरसिह अग्निवत् पीत तथा वराहदेव मधु पिङ्गल वर्णकी तेजस्वी आभासे सुशोभित रहते हैं।

'(ॐ) क ट प श' बीजमन्त्रसे गरुड, '(ॐ) ज ख व' बीजमन्त्रसे सुदर्शन', '(ॐ) प च फ प' बीजमन्त्रसे गदादेवी, '(ॐ) व ल म क्ष' बीजमन्त्रसे शङ्ख, '(ॐ) घ ढ भ ह' बीजमन्त्रसे श्रीलक्ष्मी, '(ॐ) ग ज व श' बीजमन्त्रसे पुष्टि, '(ॐ) घ व' बीजमन्त्रस वनमाला, '(ॐ) द स' बीजमन्त्रसे श्रीवत्स और '(ॐ) छ ड प य' बीजमन्त्रस कोस्तुभमणि युक्त ह। [इसक अतिरिक्त] में स्वय अनन्त (विष्णु) हूँ। ये सभी उस देवाधिदेव विष्णुके अङ्ग हैं।

गरुड कमलक समान लाल, गदा कृष्णवर्ण पुष्टि शिरीष-पुष्परगके समान आभासे समन्वित तथा लक्ष्मी सुवर्ण-कान्तिस सुशोभित हैं। शङ्ख पूर्ण चन्द्रकी कान्तिके समान श्वेत और कौस्तुभमणि नवोदित अरुणके सदृश वर्णवाला है। चक्र सहस्र सूर्योकी कान्तिके सदृश और श्रीवत्स कुन्द पुष्पक समान श्वत है। वनमाला पाँच वर्णोसे युक्त पञ्चवर्णी आर अनन्त भगवान् मघकी भाँति श्याम वणका है। जिन अस्त्रोके रगोका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है, व सभी विद्युत्-कान्तिक समान हैं। (भगवान् विष्णुक इन समस्त अङ्गोको) 'पुण्डरीकाक्ष' नामक विद्यास अर्घ्य और पाद्यादि समर्पित करने चाहिये। (अध्याय ११)

पूजानुक्रम-निरूपण

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! देवके पूजनका जो क्रम है, उसके ज्ञानके लिये पूजाविधिके क्रमको कहा जा रहा है। सर्वप्रथम साधकको 'ॐ नमः' मन्त्रसे परमात्माका स्मरण करना चाहिये। तदनन्तर वह 'यं रं वं लम्' इन बीजमन्त्रोंके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके 'ॐ नमः' इस मन्त्रसे चतुर्भुज भगवान् विष्णुके रूपमें ही अपनेको मान ले।

तत्पश्चात् करन्यास तथा देहन्यास करे। तदनन्तर हृदयमें यागपीठकी पूजाका विधान है। जिसको इन मन्त्रोंमें करे—

'ॐ अनन्ताय नमः। ॐ धर्माय नमः। ॐ ज्ञानाय नमः। ॐ वैराग्याय नमः। ॐ ऐश्वर्याय नमः। ॐ अधर्माय नमः। ॐ अज्ञानाय नमः। ॐ अवैराग्याय नमः। ॐ अनैश्वर्याय नमः। ॐ पद्माय नमः। ॐ आदित्यमण्डलाय नमः। ॐ चन्द्रमण्डलाय नमः। ॐ वह्निमण्डलाय नमः। ॐ विमलाय नमः। ॐ उत्कर्षिण्यै नमः। ॐ ज्ञानायै नमः। ॐ क्रियायै नमः। ॐ योगायै नमः। ॐ प्रह्व्यै नमः। ॐ सत्याय नमः। ॐ ईशानाय नमः। ॐ सर्वतोमुख्यै नमः। ॐ साङ्गोपाङ्गाय हरेरासनाय नमः।

इसके बाद साधक कर्णिकाके मध्यमें 'अं वासुदेवाय नमः' कहकर भगवान् वासुदेवको नमस्कार करके निम्न मन्त्रोंसे हृदयादिन्यास करे—

'आं हृदयाय नमः। ईं शिरसे नमः। ऊँ शिखायै नमः। ऐं कवचाय नमः। औं नेत्रत्रयाय नमः। अः फट् अस्त्राय नमः।'

तदनन्तर—'आं सङ्कर्षणाय नमः। अं प्रद्युम्नाय नमः। अः अनिरुद्धाय नमः। ॐ अः नारायणाय नमः। ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः। ॐ हं विष्णवे नमः। क्ष्रौं नरसिंहाय नमः। भूर्वराहाय नमः।'—इन मन्त्रोंसे संकर्षण आदि व्यूहदेवोंको नमस्कार करे।

तत्पश्चात् साधक निम्न मन्त्रोंसे भगवान् विष्णुके वाहन एवं आयुधादिको नमस्कार करे—

कं टं जं शं वैनतेयाय (नमः)। जं खं वं सुदर्शनाय (नमः)। खं चं फं षं गदायै (नमः)। वं लं मं क्षं पाञ्चजन्याय (नमः)। घं ढं भं हं श्रियै (नमः)। गं डं वं शं पुष्ट्यै (नमः)। धं वं वनमालायै (नमः)। दं शं श्रीवत्साय (नमः)। छं डं यं कौस्तुभाय (नमः)। शं शार्ङ्गाय (नमः)। इं इषुधिभ्यां (नमः)। चं चर्मणे (नमः)। खं खड्गाय (नमः)।

तत्पश्चात् इन बीजमन्त्रोंसे इन्द्रादि दिक्पालोंको नमस्कार करना चाहिये—

(ॐ) लं इन्द्राय सुराधिपतये (नमः)। (ॐ) रं अग्नये तेजोऽधिपतये (नमः)। (ॐ) यमाय धर्माधिपतये (नमः)। (ॐ) क्षं नैर्ऋताय रक्षोऽधिपतये (नमः)। (ॐ) वं वरुणाय जलाधिपतये (नमः)। (ॐ) यों वायवे प्राणाधिपतये (नमः)। (ॐ) धां धनदाय धनाधिपतये (नमः)। (ॐ) हां ईशानाय विद्याधिपतये (नमः)।

इसके बाद क्रमशः पूर्वोक्त इन्द्र आदि दिक्पाल देवताओंके निम्न आयुधोंको प्रणाम करनेका विधान है—

(ॐ) वज्राय (नमः)। (ॐ) शक्त्यै (नमः)। (ॐ) दण्डाय (नमः)। (ॐ) खड्गाय (नमः)। (ॐ) पाशाय (नमः)। (ॐ) ध्वजाय (नमः)। (ॐ) गदायै (नमः)। (ॐ) त्रिशूलाय (नमः)।

इसके बाद भगवान् अनन्त तथा ब्रह्मदेवको इस मन्त्रसे प्रणाम करे—

(ॐ) लं अनन्ताय पातालाधिपतये (नमः)। (ॐ) खं ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये (नमः)।

अब इसके बाद साधक भगवान् वासुदेवको नमस्कार करनेके लिये द्वादशाक्षर-मन्त्रका प्रयोग करे। साथ ही द्वादशाक्षर-मन्त्रके बीजमन्त्रों और दशाक्षर-मन्त्रके बीज-मन्त्रोंको इस प्रकार नमस्कार करे—

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः।'

ॐ ॐ नमः। ॐ नं नमः। ॐ मो नमः। ॐ ॐ भं नमः। ॐ गं नमः। ॐ वं नमः। ॐ तें नमः। ॐ वां नमः। ॐ सुं नमः। ॐ दें नमः। ॐ वां नमः। ॐ यं नमः। ॐ ॐ नमः। ॐ नं नमः। ॐ मो नमः। ॐ नां नमः। ॐ रां नमः। ॐ यं नमः। ॐ णां नमः। ॐ यं नमः।

द्वादशाक्षर-मन्त्र— ॐ नमो भगवते वासुदेवाय दशाक्षर-मन्त्र— ॐ नमो नारायणाय नमः तथा अष्टाक्षर-मन्त्र— ॐ पुरुषोत्तमाय नमः—इन मन्त्रोंका यथाशक्ति जप करके निम्न मन्त्रसे भगवान् पुण्डरीकाक्षको नमस्कार करे—

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज॥

हे पुण्डरीकाक्ष! (कमलनयन) आपको नमस्कार है। हे विश्वके कारणभूत! आपको मेरा प्रणाम है। हे ब्रह्मण्यदेव! आपको नमस्कार है। हे महापुरुष! हे पूर्वज! आपको मेरा प्रणाम है।

इस प्रकार भगवान् विष्णुकी स्तुति करके साधकको हवन करना चाहिये। तदनन्तर साधक (महापुरुषविद्या नामक) मन्त्रका विधिपूर्वक एक सौ आठ बार जप करके अर्घ्य प्रदान करे और 'जित तेन' (यह स्तोत्र ही महापुरुषविद्या है) इसी स्तोत्रसे उन भगवान् नारायणको बारम्बार प्रणाम करना चाहिये।

तत्पश्चात् [अग्निकी स्थापना करक] साधक उस अग्निदेवकी पूजा करनेके बाद हवन करे। अपन (यथाविहित) बीजमन्त्रस दवाधिदेव भगवान् विष्णु तथा अङ्गमन्त्राके द्वारा अच्युतादि आङ्गिक दवताओको आहुति प्रदान करे। सबस पहले मन्त्रविद् साधकको कुण्डम ॐकारक द्वारा [तान रेखाआका] उल्लेखन करना चाहिये और उसके बाद यज्ञकुण्डका अभ्युक्षण[1] करना चाहिये। तदनन्तर यथाविधि भ्रामणपूर्वक हवनकुण्डम अग्नि स्थापित करक उत्तम फल आदिसे सविधि उसकी पूजा करनी चाहिय।

पहले साङ्गोपाङ्ग दव ब्रह्मका मनस ध्यानकर मण्डलमे उन सभाको स्थापित कर। तदनन्तर वह साधक वासुदव-मन्त्रसे एक सौ आठ बार आहुति दे। तत्पश्चात् वह सङ्कर्षण आदि दवाके बीजमन्त्रम उन छ देवाको भी पूजा करके अङ्ग दवताआका तीन-तीन आर दिक्पालाका एक-एक आहुति प्रदान करे। उसके बाद हवन पूर्ण हानपर साधकका पुन एकाग्रचित्त स्थित होकर पूर्णाहुति दनी चाहिये।

तदनन्तर वह साधक 'वाणीस अतीत उस परमात्मा'म अपने आत्माको लीन करे और निम्नलिखित मन्त्रस वासुदव और उन सभी देवाका विसर्जन करे—

'गच्छ गच्छ पर स्थान यत्र देवो निरञ्जन ॥
गच्छन्तु दवता सर्वा स्वस्थानस्थितिहेतवे।'

'ह देवाधिदेव भगवान् वासुदव! अब आप उस अपन परम स्थानको प्राप्त कर, जहाँपर निर्मल (प्रकाशस्वरूप) परम ब्रह्मका निवास है। अङ्गदव, सङ्कषणादि ओर इन्द्रादि दिक्पाल! आप सभी देव अपने-अपन स्थानमे निवास करनक लिये प्रस्थान कर।'

सुदशन, श्रीहरि, अच्युत, त्रिविक्रम, चतुर्भुज वासुदेव, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण आर पुरुषसे युक्त देवोका (एक जो समूह है उस) नवव्यूह माना गया है। इसम दसव परम तत्त्वका योग हानस यह दशात्मक कहा जाता है। इसी नवव्यूहम अनिरुद्ध तथा अनन्तका सनिवश हानेसे यह एकादश व्यूह द्वादशात्मक कहलाता है।

अङ्कित चक्राम उस प्रधान देवकी पूजा करनेपर वह (साधकक) घर आदिकी रक्षा करता है। अत निम्न मन्त्रासे चक्रादिकी पूजा करनी चाहिय—

ॐ चक्राय स्वाहा। ॐ विचक्राय स्वाहा। ॐ सुचक्राय स्वाहा। ॐ महाचक्राय स्वाहा। ॐ असुरान्तकृत् हु फट्। ॐ हु सहस्रार हु फट्।

उपर्युक्त मन्त्रास की गयी पूजा द्वारकाचक्रकी पूजा कही जाती है। इस प्रकार सम्पन्न की गयी चक्रकी पूजा 'घरम' सब प्रकारस रक्षा करनेवाली तथा मङ्गलदायिनी है। (अध्याय १२)

विष्णुपञ्जरस्तोत्र[2]

श्रीहरिने पुन कहा—ह रुद्र! अब में विष्णुपञ्जर नामक स्तोत्र कहता हूँ। यह स्तोत्र (बडा ही) कल्याणकारी हे। उसे सुने—

प्रवक्ष्याम्यधुना ह्येतद्वैष्णव पञ्जर शुभम्।
नमो नमस्ते गोविन्द चक्र गृह्य सुदर्शनम्॥
प्राच्या रक्षस्व मा विष्णो त्वामह शरण गत।
गदा कौमोदका गृह्य पद्मनाभ नमास्तु ते॥
याम्या रक्षस्व मा विष्णो त्वामह शरण गत।
हलमादाय सौनन्द नमस्ते पुरुषोत्तम॥
प्रतीच्या रक्ष मा विष्णो त्वामह शरण गत।
मुसल शातन गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम्॥
उत्तरस्या जगन्नाथ भवन्त शरण गत।
खड्गमादाय चर्माथ अस्त्रशस्त्रादिक हर॥
नमम्त रक्ष रक्षोघ्न एशान्या शरण गत।
पाञ्चजन्य महाशङ्खमनुघाष्य च पङ्कजम्॥
प्रगृह्य रक्ष मा विष्णा आग्नय्या यज्ञशूकर[3]।
चन्द्रसूर्यं समागृह्य खड्ग चान्द्रमस तथा॥
नैर्ऋत्या मा च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकसरिन्।

१ 'अभ्युक्षण' जलके द्वारा पवित्र करनकी एक शास्त्राय विधि है।

२ पञ्जर'का अर्थ ह—रक्षक। यह विष्णुका स्तात्र हम सबका रक्षक ह इसलिय 'विष्णुपञ्जरस्तात्र कहा जाता ह।

३ वामनपुराण अध्याय १७ क अनुसार यज्ञशूकर पाट उचित ह।

वैजयन्तीं सम्प्रगृह्य श्रीवत्स कण्ठभूषणम्॥
वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्तु ते।
वैनतेय समारुह्य त्वन्तरिक्षे जनार्दन॥
मां रक्षस्वाजित सदा नमस्तेऽस्त्वपराजित।
विशालाक्षं[1] समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले॥
अकूपार[2] नमस्तुभ्यं महामीन नमोऽस्तु ते।
करशीर्षाद्यङ्गुलीषु सत्य त्वं बाहुपञ्जरम्॥
कृत्वा रक्षस्व मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम।
एतदुक्तं शङ्कराय वैष्णवं पञ्जरं महत्॥
पुरा रक्षार्थमीशान्याः कात्यायन्या वृषध्वज।
नाशयामास सा येन चामरं महिषासुरम्॥
दानवं रक्तबीजं च अन्यांश्च सुरकण्टकान्।
एतज्जपन्नरो भक्त्या शत्रून् विजयते सदा॥
(१२।१—१४)

हे गोविन्द! आपको नमस्कार है। आप सुदर्शनचक्र लेकर पूर्व दिशामें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पद्मनाभ! आपको मेरा नमन है। आप अपनी कौमोदकी गदा धारणकर दक्षिण दिशामें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पुरुषोत्तम! आपको मेरा प्रणाम है। आप सौनन्द नामक हल लेकर पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष! आप शातन नामक मुसल हाथमें लेकर उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करें। हे जगन्नाथ! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे हरे! आपको मेरा नमस्कार है। आप खड्ग चर्म (ढाल) आदि अस्त्र-शस्त्र ग्रहणकर ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। हे दैत्यविनाशक! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे यज्ञवराह (महावराह)! आप पाञ्चजन्य नामक महाशङ्ख और अनुबोध (अनुबोध) नामक पद्म ग्रहणकर अग्निकोणमें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मेरी रक्षा करें। हे दिव्य-शरीर भगवान् नृसिंह! आप सूर्यके समान देदीप्यमान और चन्द्रके समान चमत्कृत खड्गको धारणकर नैर्ऋत्यकोणमें मेरी रक्षा करें। हे भगवान् हयग्रीव! आपको प्रणाम है। आप वैजयन्ती माला तथा कण्ठमें सुशोभित होनेवाले श्रीवत्स नामक आभूषणसे विभूषित होकर वायुकोणमें मेरी रक्षा करें। हे जनार्दन! आप वैनतेय गरुडपर आरूढ होकर अन्तरिक्षमें मेरी रक्षा करें। हे अजित! हे अपराजित! आपको सदैव मेरा प्रणाम है। हे कूर्मराज! आपको नमस्कार है। हे महामीन! आपको नमस्कार है। हे सत्यस्वरूप महाविष्णो! आप अपनी बाहुको पञ्जर (रक्षक)- जैसा स्वीकार करके हाथ सिर, अङ्गुला आदि समस्त अङ्ग-उपाङ्गसे युक्त मेरे शरीरकी रक्षा करें। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है।

हे वृषध्वज! मैंने प्राचीन कालमें सर्वप्रथम भगवती ईशानी कात्यायनीकी रक्षाके लिये इस विष्णुपञ्जर नामक स्तोत्रको कहा था। इसी स्तोत्रके प्रभावसे उस कात्यायनीने स्वयंको अमर समझनेवाले महिषासुर, रक्तबीज और देवताओंके लिये कण्टक बने हुए अन्यान्य दानवोंका विनाश किया था। इस विष्णुपञ्जर नामक स्तुतिका जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जप करता है, वह सदा अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेमें सफल होता है। (अध्याय १३)

ध्यान-योगका वर्णन

श्रीहरिने पुनः कहा—अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले योगको कह रहा हूँ। योगियोंके द्वारा ध्यानगम्य जो देव हैं, उन्हें ही ईश्वर कहा जाता है। हे महेश्वर! उनके लिये किये जानेवाले योगको सुनें। यह योग समस्त पापोंका विनाशक है। योगीको आत्मस्वरूप परमात्माकी स्वयंमें इस प्रकार भावना करनी चाहिये—

मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही सभीका ईश्वर हूँ, मैं ही अनन्त हूँ और मैं ही छः ऊर्मियों[3] (शोक मोह जरा मृत्यु, क्षुधा एवं पिपासा)-से रहित हूँ। मैं ही वासुदेव हूँ, मैं ही जगन्नाथ और ब्रह्मरूप हूँ। मैं ही समस्त प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाला आत्मा और सर्वदेहविमुक्त परमात्मा हूँ। मैं ही शरीरधर्मसे रहित क्षर[4] (समस्त प्रपञ्च), अक्षर (कूटस्थ चेतन भोक्ता)-से

१ विशालाक्ष—गरुडवंशविशेष (शब्दकल्पद्रुम)।

२ अकूपार—कूर्मराज (मेदिनीकोश)।

३ शोकमोहौ जरामृत्यू क्षुत्पिपासे षडूर्मयः (शब्दकल्पद्रुम)।

४ क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते (गीता १५।१६)-के अनुसार समस्त प्रपञ्च क्षर है। 'अक्षर' का अर्थ कूटस्थ है। श्रीधरस्वामीने 'कूटस्थ' का अर्थ चेतन भोक्ता किया है।

अतीत, मनके साथ पाँच इन्द्रियोमे मूल शक्तिरूपसे स्थित में स्वय अतीन्द्रिय (इन्द्रियासे अग्राह्य) होता हुआ द्रष्टा, श्रोता एव घ्राता (गन्ध ग्रहण करनेवाला) हूँ।

में इन्द्रियधर्मसे रहित, जगत्का स्रष्टा, नाम और गोत्रसे शून्य, मननशील सबके मनमें स्थित देवता हूँ, किंतु मुझमे मन नहीं है और न तो उसका धर्म ही है। मैं ही विज्ञान[1] तथा ज्ञानस्वरूप[2] हूँ। मैं ही समस्त ज्ञानका आश्रय, बुद्धिरूप गुहामे स्थित प्राणिमात्रका साक्षी (तटस्थ द्रष्टा) तथा सर्वज्ञ और बुद्धिकी अधीनतासे मुक्त हूँ। मैं ही बुद्धिके धर्मोसे भी शून्य हूँ, मैं ही सर्वस्वरूप सर्वगतमनस्स्वरूप ओर प्राणिमात्रके किसी भी प्रकारके बन्धनसे सर्वथा विनिर्मुक्त तथा प्राणधर्म[3] (बुभुक्षा एव पिपासा)-से विमुक्त हूँ। में ही प्राणियाका प्राणस्वरूप हूँ, में ही महाशान्त, भयशून्य तथा अहकारादिसे रहित हूँ और अहकारजन्य विकारोसे भी मे रहित हूँ।

मैं जगत्का साक्षी, जगत्का नियन्ता और परमानन्दस्वरूप हूँ। जाग्रत्, स्वप्न एव सुषुप्ति—इन सभी अवस्थाओमे जगत्का साक्षी होते हुए भी मैं इन अवस्थाआसे रहित हूँ। मे ही तुरीय ब्रह्म और विधाता हूँ। मैं ही दृग्रूप[4] हूँ। में ही निर्गुण, मुक्त, बुद्ध, शुद्ध-प्रबुद्ध, अजर, सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप एव शिवस्वरूप परमात्मा हूँ।

इस प्रकार जो विद्वान् इन परमपद-परमेश्वरका ध्यान करते हें, वे निश्चय ही ईश्वरका सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं, इसम सदेह नहीं ह। हे सुव्रत शङ्कर! आपसे ही इस ध्यानयोगकी चर्चा मैंने की हे। जो व्यक्ति सदेव इस ध्यानयोगका पाठ (चिन्तन-मनन) करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १४)

विष्णुसहस्त्रनाम

श्रीरुद्रने पूछा— ह प्रभो! मनुष्य किस मन्त्रका जप करके इस अथाह ससार-सागरस पार हो सकता है? आप जप करने-योग्य उस श्रेष्ठ मन्त्रको मुझे बताय।

श्रीहरिने कहा— हे रुद्र! परम ब्रह्म, परमात्मा, नित्य, परमेश्वर भगवान् विष्णुकी सहस्रनामसे स्तुति करनेपर मनुष्य भवसागरको पार कर सकता है। हे वृषभध्वज! मैं उस पवित्र, श्रेष्ठतम और जप करने-योग्य (विष्णु) 'सहस्रनाम' को कहता हूँ। वह समस्त पापाको विनष्ट करनेवाला स्तोत्र है। आप उसे सावधान होकर सुन—

ॐ वासुदेवो महाविष्णुर्वामनो वासवो वसु।
बालचन्द्रनिभो बालो बलभद्रो बलाधिप॥
बलिबन्धनकृद्वेधा वरेण्यो वेदवित् कवि।
वेदकर्ता वेदरूपो वेद्यो वेदपरिप्लुत॥
वेदाङ्गवेत्ता वेदेशो बलाधारो बलार्दन।
अविकारो वरेशश्च वरुणो वरुणाधिप॥
वीरहा च बृहद्वीरो वन्दित परमेश्वर।
आत्मा च परमात्मा च प्रत्यगात्मा वियत्पर॥
पद्मनाभ पद्मनिधि पद्महस्तो गदाधर (धराधर)।
परम परभूतश्च पुरुषात्तम ईश्वर॥
पद्मजङ्घ पुण्डरीक पद्ममालाधर प्रिय।
पद्माक्ष पद्मगर्भश्च पर्जन्य पद्मसस्थित॥
अपार परमार्थश्च पराणा च पर प्रभु।
पण्डित पण्डितेड्यश्च पवित्र पापमर्दक॥
शुद्ध प्रकाशरूपश्च पवित्र परिरक्षक।
पिपासावर्जित पाद्य पुरुष प्रकृतिस्तथा॥
प्रधान पृथिवीपद्म पद्मनाभ प्रियप्रद (प्रियवद)।
सर्वेश सर्वग सर्व सर्ववित् सर्वद सुर (पर)॥
सर्वस्य जगतो धाम सर्वदर्शी च सर्वभृत्।
सर्वानुग्रहकृद्देव सर्वभूतहृदि स्थित॥
सर्वपूज्यश्च सर्वाद्य सर्वदेवनमस्कृत।
सर्वस्य जगतो मूल सकलो निष्कलोऽनल॥
सर्वगोप्ता सर्वनिष्ठ सर्वकारणकारणम्।
सर्वध्येय सर्वमित्र सवदेवस्वरूपधृक्॥
सर्वाध्यक्ष सुराध्यक्ष सुरासुरनमस्कृत।

---

१ 'विज्ञान'—परमार्थज्ञान। २ 'ज्ञान —व्यावहारिक ज्ञान। ३ बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य (शब्दकल्पद्रुम)।

४ दृग्रूप'का तात्पर्य यह है—समस्त प्रपञ्च द्रष्टा दृश्य एव दृष्टि—इन तीनामें अन्तर्हित है। परमेश्वर विष्णु ही द्रष्टा हैं व ही दृश्य हैं दृष्टि भी वे हो हैं। यह दृष्टि ही दृग्' शब्दसे कही जाती है।

दुष्टाना चासुराणा च सर्वदा घातकोऽन्तक ॥
सत्यपालश्च सन्नाभ सिद्धेश सिद्धवन्दित ।
सिद्धसाध्य सिद्धसिद्ध साध्यसिद्धो (सिद्धिसिद्ध) हृदीश्वर ॥
शरण जगतश्चैव श्रेय क्षेमस्तथैव च।
शुभकृच्छोभन सौम्य सत्य सत्यपराक्रम ॥
सत्यस्थ सत्यसङ्कल्प सत्यवित् सत्य(त्र)दस्तथा।
धर्मो धर्मी च कर्मी च सर्वकर्मविवर्जित ॥
कर्मकर्ता च कर्मेव क्रिया कार्यं तथैव च।
श्रीपतिर्नृपति श्रीमान् सर्वस्य पतिरूर्जित ॥
सदेवाना पतिश्चैव वृष्णीना पतिरीडित ।
पतिर्हिरण्यगर्भस्य त्रिपुरान्तपतिस्तथा॥
पशूना च पति प्रायो वसूना पतिरेव च।
पतिराखण्डलस्यैव वरुणस्य पतिस्तथा॥
वनस्पतीना च पतिरनिलस्य पतिस्तथा।
अनलस्य पतिश्चैव यमस्य पतिरेव च॥
कुबेरस्य पतिश्चैव नक्षत्राणा पतिस्तथा।
ओषधीना पतिश्चैव वृक्षाणा च पतिस्तथा॥
नागाना पतिरर्कस्य दक्षस्य पतिरव च।
सुहृदा च पतिश्चैव नृपाणा च पतिस्तथा॥
गन्धर्वाणा पतिश्चैव असूना पतिरुत्तम ।
पर्वताना पतिश्चैव निम्नगाना पतिस्तथा॥
सुराणा च पति श्रेष्ठ कपिलस्य पतिस्तथा।
लताना च पतिश्चैव वीरुधा च पतिस्तथा॥
मुनीना च पतिश्चैव सूर्यस्य पतिरुत्तम ।
पतिश्चन्द्रमस श्रेष्ठ शुक्रस्य पतिरेव च॥
ग्रहाणा च पतिश्चैव राक्षसाना पतिस्तथा।
किन्नराणा पतिश्चैव द्विजाना पतिरुत्तम ॥
सरिता च पतिश्चैव समुद्राणा पतिस्तथा।
सरसा च (रसाना च) पतिश्चैव भूताना च पतिस्तथा॥
वेतालाना पतिश्चैव कूष्माण्डाना पतिस्तथा।
पक्षिणा च पति श्रेष्ठ पशूना पतिरेव च॥
महात्मा मङ्गला मेयो मन्दरा मन्दरेश्वर ।
मेरुर्माता प्रमाण च माधवो मलवर्जित ॥
मालाधरो महादेवो महादेवन पूजित ।
महाशान्तो महाभागो मधुसूदन एव च॥
महावीर्यो महाप्राणो मार्कण्डेयर्षिवन्दित ।
मायात्मा मायया बद्धो मायया तु विवर्जित ॥
मुनिस्तुतो मुनिर्मैत्रो महाना (रा) सो महाहनु ।
महाबाहुर्महादान्तो (महादन्तो) मरणेन विवर्जित ॥
महावक्त्रो महात्मा च महाकायो महोदर ।
महापादो महाग्रीवो महामानी महामना ॥
महागतिर्महाकीर्तिर्महारूपा महासुर ।
मधुश्च माधवश्चैव महादेवो महेश्वर ॥
मखेज्यो मखरूपी च माननीयो मखेश्वर (महेश्वर)।
महावातो महाभागो महेशोऽतीतमानुष ॥
मानवश्च[१] मनुश्चैव मानवाना प्रियङ्कर ।
मृगश्च मृगपूज्यश्च मृगाणा च पतिस्तथा॥
बुधस्य च पतिश्चैव पतिश्चैव बृहस्पत ।
पति शनैश्चरस्यैव राहो केतो पतिस्तथा॥
लक्ष्मणो लक्षणश्चैव लम्बौष्ठो ललितस्तथा।
नानालङ्कारसयुक्तो नानाचन्दनचर्चित ॥
नानारसोज्ज्वलद्वक्त्रो नानापुष्पोपशोभित ।
रामो रमापतिश्चैव सभार्य[२] परमेश्वर ॥
रत्नदो रत्नहर्ता च रूपी रूपविवर्जित ।
महारूपोग्ररूपश्च सौम्यरूपस्तथैव च॥
नीलमेघनिभ शुद्ध कालमेघनिभस्तथा।
धूम्रवर्ण पीतवर्णो नानारूपो (नानावर्णो) ह्यवर्णक ॥
विरूपो रूपदश्चैव शुक्लवर्णस्तथैव च।
सर्ववर्णो महायोगी यज्ञो (याज्यो) यज्ञकृदेव च॥
सुवर्णवर्णवाश्चैव सुवर्णाख्यस्तथैव च।
सुवर्णावयवश्चैव सुवर्ण स्वर्णमेखल ॥
सुवर्णस्य प्रदाता च सुवर्णेशस्तथैव (सुवर्णांशस्तथैव च) च।
सुवर्णस्य प्रियश्चैव सुवर्णाढ्यस्तथैव च॥
सुपर्णी च महापर्णी सुपर्णस्य च कारणम्।
वैनतेयस्तथादित्य आदिरादिकर शिव ॥
कारण महतश्चैव प्रधानस्य च कारणम्।
बुद्धीनां कारणं चैव कार्यं मनसस्तथा॥
कारणं चेतसश्चैव अहङ्कारस्य कारणम्।

१-मनवो मनुश्चैव०। २-श्रभार्य पा०।

भूतानां कारणं तद्वत् कारणं च विभावसो ॥
आकाशकारणं तद्वत् पृथिव्या कारणं परम्।
अण्डस्य कारणं चैव प्रकृते कारणं तथा॥
देहस्य कारणं चैव चक्षुषश्चैव कारणम्।
श्रोत्रस्य कारणं तद्वत् कारणं च त्वचस्तथा॥
जिह्वाया कारणं चैव प्राणस्यैव च कारणम्।
हस्तयो कारणं तद्वत् पादयो कारणं तथा॥
वाचश्च कारणं तद्वत् पायोश्चैव तु कारणम्।
इन्द्रस्य कारणं चैव कुबेरस्य च कारणम्॥
यमस्य कारणं चैव ईशानस्य च कारणम्।
यक्षाणां कारणं चैव रक्षसां कारणं परम्॥
नृपाणां कारणं श्रेष्ठ धर्मस्यैव तु कारणम्।
जन्तूनां कारणं चैव वसूनां कारणं परम्॥
मनूनां कारणं चैव पक्षिणां कारणं परम्।
मुनीनां कारणं श्रेष्ठं योगिनां कारणं परम्॥
सिद्धानां कारणं चैव यक्षाणां कारणं परम्।
कारणं किन्नराणां च गन्धर्वाणां च कारणम्॥
नदानां कारणं चैव नदीनां कारणम् परम्।
कारणं च समुद्राणां वृक्षाणां कारणं तथा॥
कारणं वीरुधां चैव लोकानां कारणं तथा।
पातालकारणं चैव देवानां कारणं तथा॥
सर्पाणां कारणं चैव श्रेयसां कारणं तथा।
पशूनां कारणं चैव सर्वेषां कारणं तथा॥
देहात्मा चेन्द्रियात्मा च आत्मा बुद्धिस्तथैव च।
मनसश्च तथैवात्मा चात्माहङ्कारचेतस[1]॥
जाग्रत स्वपतश्चात्मा महदात्मा परस्तथा।
प्रधानस्य परात्मा च आकाशात्मा ह्यपां तथा॥
पृथिव्या परमात्मा च रसस्यात्मा तथैव च।
गन्धस्य परमात्मा च रूपस्यात्मा परस्तथा॥
शब्दात्मा चैव वागात्मा स्पर्शात्मा पुरुषस्तथा।
श्रोत्रात्मा च त्वगात्मा च जिह्वात्मा परमस्तथा॥
घ्राणात्मा चैव हस्तात्मा पादात्मा परमस्तथा।
उपस्थस्य तथैवात्मा पाय्वात्मा परमस्तथा॥
इन्द्रात्मा चैव ब्रह्मात्मा रुद्रा (शान्ता) त्मा च मनास्तथा।
दक्षप्रजापतरात्मा सत्या (त्वष्टा) त्मा परमस्तथा॥

ईशात्मा परमात्मा च रौद्रात्मा मोक्षविद्यति।
यतश्च गता यतश्चमी चक्री मुण्डक (अमुण्डक)॥
हौप्रवर्तनशीलश्च यतीनां च हित रत।
यतिरूपी च योगी च योगिध्येयो हरि शिति॥
संविन्मेधा च कालश्च ऊष्मा वर्षा म (म) तिस्तथा।
संवत्सरो मोक्षकरो मोहप्रध्वंसकस्तथा॥
मोहकर्ता च दुष्टानां माण्डव्यो वडवामुख।
संवर्त कालकर्ता च गौतमो भृगुरङ्गिरा॥
अत्रिर्वसिष्ठ पुलह पुलस्त्य कुत्स एव च।
याज्ञवल्क्यो देवलश्च व्यासश्चैव पराशर॥
शर्मदश्चैव गाङ्गेयो हृषीकेशो बृहच्छ्रवा।
केशव क्लेशहन्ता च सुकर्ण कर्णवर्जित॥
नारायणो महाभाग प्राणस्य पतिरेव च।
अपानस्य पतिश्चैव व्यानस्य पतिरेव च॥
उदानस्य पति श्रेष्ठ समानस्य पतिस्तथा।
शब्दस्य च पति श्रेष्ठ स्पर्शस्य पतिरेव च॥
रूपाणां च पतिश्चाद्य खड्गपाणिर्हलायुध।
चक्रपाणि कुण्डली च श्रीवत्साङ्कस्तथैव च॥
प्रकृति कौस्तुभग्रीव पीताम्बरधरस्तथा।
सुमुखो दुर्मुखश्चैव मुखेन तु विवर्जित॥
अनन्तोऽनन्तरूपश्च सुनख सुरमन्दर।
सुकपालो विभुर्जिष्णुर्भ्राजिष्णुश्चेषुधीस्तथा॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता हिरण्याक्षविमर्दक।
निहन्ता पूतनायाश्च भास्करान्तविनाशन॥
केशिनो दलनश्चैव मुष्टिकस्य विमर्दक।
कंसदानवभेत्ता च चाणूरस्य (धनुकस्य) प्रमर्दक॥
अरिष्टस्य निहन्ता च अक्रूरप्रिय एव च।
अक्रूर क्रूररूपश्च अक्रूरप्रियवन्दित॥
भगहा भगवान् भानुस्तथा भागवत स्वयम्।
उद्धवश्चोद्धवस्येशो ह्युद्धवन विचिन्तित॥
चक्रधृक् चञ्चलश्चैव चलाचलविवर्जित।
अहङ्कारोपमश्चित्तं गगन पृथिवी जलम्॥
वायुश्चक्षुस्तथा श्रोत्रं जिह्वा च घ्राणमेव च।
वाक्पाणिपादजवन[2] पायूपस्थस्तथैव च॥
शङ्करश्चैव सर्वश्च क्षान्तिद क्षान्तिकृन्नर।

१-वाह्यहंकार०। २-पणिपान्नविति पा०।

भक्तप्रियस्तथा भर्ता भक्तिमान् भक्तिवर्धन ॥
भक्तस्तुतो भक्तपर कीर्तिद कीर्तिवर्धन ।
कीर्तिर्दीप्ति क्षमाकान्तिर्भक्तश्चैव दया परा॥
दान दाता च कर्ता च देवदवप्रिय शुचि ।
शुचिमान् सुखदो मोक्ष कामश्चार्थ सहस्रपात्॥
सहस्रशीर्षा वैद्यश्च मोक्षद्वार तथैव च।
प्रजाद्वार सहस्राक्ष सहस्रकर एव च॥
शुक्रश्च (सुधु) सुकिरीटी च सुग्रीव कौस्तुभस्तथा।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च हयग्रीवश्च सूकर ॥
मत्स्य परशुरामश्च प्रह्लादो बलिरेव च।
शरण्यश्चैव नित्यश्च बुद्धो मुक्त शरीरभृत्॥
खरदूषणहन्ता च रावणस्य प्रमर्दन ।
सीतापतिश्च वर्धिष्णुर्भरतश्च तथैव च॥
कुम्भेन्द्रजिन्निहन्ता च कुम्भकर्णप्रमर्दन ।
नरान्तकान्तकश्चैव देवान्तकविनाशन ॥
दुष्टासुरनिहन्ता च शम्बरारिस्तथैव च।
नरकस्य निहन्ता च त्रिशीर्षस्य विनाशन ॥
यमलार्जुनभेत्ता च तपोहितकरस्तथा।
वादित्र चैव वाद्य च बुद्धश्चैव वरप्रद ॥
सार सारप्रिय सौर कालहन्तृनिकृन्तन ।
अगस्त्यो देवलश्चैव नारदो नारदप्रिय ॥
प्राणोऽपानस्तथा व्यानो रज सत्त्व तम शरत्।
उदानश्च समानश्च भेषज च भिषक् तथा॥
कूटस्थ स्वच्छरूपश्च सर्वदेहविवर्जित ।
चक्षुरिन्द्रियहीनश्च वागिन्द्रियविवर्जित ॥
हस्तेन्द्रियविहीनश्च पादाभ्या च विवर्जित ।
पायूपस्थविहीनश्च महातापविवर्जित ॥
प्रबोधेन विहीनश्च बुद्ध्या चैव विवर्जित ।
चेतसा विगतश्चैव प्राणेन च विवर्जित ॥
अपानेन विहीनश्च व्यानेन च विवर्जित ।
उदानेन विहीनश्च समानेन विवर्जित ॥
आकाशेन विहीनश्च वायुना परिवर्जित ।
अग्निना च विहीनश्च उदकेन विवर्जित ॥
पृथिव्या च विहीनश्च शब्देन च विवर्जित ।
स्पर्शेन च विहीनश्च सर्वैरूपैर्विवर्जित ॥

रागेण विगतश्चैव अघेन परिवर्जित ।
शोकेन रहितश्चैव वचसा परिवर्जित ॥
रजोविवर्जितश्चैव विकारै षड्भिरेव च।
कामेन वर्जितश्चैव क्रोधेन परिवर्जित ॥
लोभेन विगतश्चैव दम्भेन च विवर्जित ।
सूक्ष्मश्चैव सुसूक्ष्मश्च स्थूलात्स्थूलतरस्तथा॥
विशारदो बलाध्यक्ष सर्वस्य क्षोभकस्तथा।
प्रकृते क्षोभकश्चैव महत क्षोभकस्तथा॥
भूताना क्षोभकश्चैव बुद्धेश्च क्षोभकस्तथा।
इन्द्रियाणा क्षोभकश्च विषयक्षोभकस्तथा॥
ब्रह्मण क्षोभकश्चैव रुद्रस्य क्षोभकस्तथा।
अगम्यश्चक्षुरादेश्च श्रोत्रागम्यस्तथैव च॥
त्वचा न गम्य कूर्मश्च जिह्वाऽग्राह्यस्तथैव च।
घ्राणेन्द्रियागम्य एव वाचाऽग्राह्यस्तथैव च॥
अगम्यश्चैव पाणिभ्या पदागम्यस्तथैव च।
अग्राह्यो मनसश्चैव बुद्ध्याऽग्राह्यो हरिस्तथा॥
अह बुद्ध्या तथा ग्राह्यश्चेतसा ग्राह्य एव च।
शङ्खपाणिश्चाव्ययश्च गदापाणिस्तथैव च॥
शार्ङ्गपाणिश्च कृष्णश्च ज्ञानमूर्ति परन्तप ।
तपस्वी ज्ञानगम्यो हि ज्ञानी ज्ञानविदेव च॥
ज्ञेयश्च ज्ञेयहीनश्च ज्ञप्तिश्चैतन्यरूपक ।
भावो भाव्यो भवकरो भावनो भवनाशन ॥
गोविन्दो गोपतिर्गोप सर्वगोपीसुखप्रद ।
गोपालो गोगतिश्चैव गोमतिर्गोधरस्तथा॥
उपेन्द्रश्च नृसिहश्च शौरिश्चैव जनार्दन ।
आरणेयो बृहद्भानुर्बृहद्दीप्तिस्तथैव च॥
दामोदरस्त्रिकालश्च कालज्ञ कालवर्जित ।
त्रिसन्ध्यो द्वापर त्रेता प्रजाद्वार त्रिविक्रम ॥
विक्रमो दण्ड(र)हस्तश्च ह्येकदण्डी त्रिदण्डधृक्।
सामभेदस्तथोपाय सामरूपी च सामग ॥
सामवेदो ह्यथर्वश्च सुकृत सुखरूपक ।
अथर्ववेदविच्चैव ह्यथर्वाचार्य एव च॥
ऋग्रूपी चैव ऋग्वेद ऋग्वेदेषु प्रतिष्ठित ।
यजुर्वेत्ता यजुर्वेद यजुर्वेदविदेकपात्॥
यज्ञपाय्य सुयज्ञश्चैव तथैव च महायजन्।

चक्रप श्रीपतिश्चैव नृपाणा चक्रवर्तिनाम्॥
ईशश्च सर्वदेवाना द्वारकासस्थितस्तथा।
पुष्कर पुष्कराध्यक्ष पुष्करद्वीप एव च॥
भरतो जनको जन्य सर्वाकारविवर्जित।
निराकारो निर्निमित्तो निरातको निराश्रय॥
इति नामसहस्र ते वृषभध्वज कीर्तितम्।
देवस्य विष्णारीशस्य सर्वपापविनाशनम्॥
पठन् द्विजश्च विष्णुत्व क्षत्रियो जयमाप्नुयात्।
वैश्यो धन सुख शूद्रो विष्णुभक्तिसमन्वित॥

हे वृषभध्वज! मैंने सर्वपापविनाशक, जगदीश्वर, दवाधिदेव, विष्णुक इस सहस्रनामका जो कीर्तन किया है इसका पाठ करनेसे ब्राह्मण विष्णुत्व अर्थात् विष्णुस्वरूप, क्षत्रिय विजय, वैश्य धन तथा सुख और शूद्र विष्णुकी भक्ति प्राप्त करता है। (अध्याय १५)

भगवान् विष्णुका ध्यान एव सूर्यार्चन-निरूपण

रुद्रने कहा—हे शख-चक्र आर गदाको धारण करनेवाले भगवान् हरि! आप पुन दवदेवेश्वर शुद्धरूप परमात्मा विष्णुक ध्यानका वर्णन कर।

हरिने कहा—हे रुद्र! ससाररूपी वृक्षका विनाश करनवाल व हरि ज्ञानरूप अनन्त, सर्वव्याप्त, अजन्मा आर अव्यय हैं। व अविनाशी सर्वत्रगामी, नित्य, महान्, अद्वितीय ब्रह्म हैं। सम्पूर्ण ससारक मूल कारण तथा समस्त चराचरम गतिमान् परमेश्वर हैं। वे समस्त प्राणियाके हृदयम निवास करनवाल तथा सभीक ईश्वर हैं, सम्पूण जगत्का आधार होते हुए भी वे स्वय निराधार ह। सभी कारणाक कारण हैं।

सासारिक विषयोकी आसक्तिस परे उनकी स्थिति है वे निर्मुक्त है। मुक्त योगियाक ध्येय ह। वे स्थूल शरीरसे रहित नेत्र, पाणि पाद पायु, उपस्थादि समस्त इन्द्रियोसे विहीन है। वे हरि मन एव मनके धर्म सङ्कल्प-विकल्प आदिस रहित हैं। वे बुद्धि (भौतिक इन्द्रियविशेष)-स रहित बुद्धि-धर्म-विवर्जित अहकारसे शून्य चित्तसे अगाह्य प्राण-अपान-व्यानादि वायुसे रहित हैं।

हरिने कहा—अब मैं सूर्यकी पूजाका पुन वर्णन करता हूँ, जो प्राचान कालम भृगु ऋषिको सुनायी गयी थी।

'ॐ खखाल्काय नम'—यह भगवान् सूर्यदेवका मूल मन्त्र है जा साधकका भोग और मोक्ष पदान करता ह। (निम्न मन्त्रसे अङ्गन्यास करके साधकको सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये।) यथा—

'ॐ खखोल्काय त्रिदशाय नम। 'ॐ विचि ठठ शिरसे नम।' 'ॐ ज्ञानिने ठठ शिखायै नम। 'ॐ सहस्ररश्मये ठठ कवचाय नम। ॐ सर्वतेजोऽधिपतये ठठ अस्त्राय नम। 'ॐ ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ठठ नम।'

सूर्यका यह मन्त्र साधकके समस्त पापाका विनाश करनवाला है। इसे अग्नि-प्राकार मन्त्र भा कहते हैं।

भगवान् सूर्यको प्रसन्न करनेवाला मन्त्र इस प्रकार है, यह सूर्य-गायत्री-मन्त्र कहलाता है—इस मन्त्र-जपके पश्चात् साधकको सूर्य एव गायत्रीका सकलीकरण करना चाहिये—

'ॐ आदित्याय विद्महे, विश्वभावाय धीमहि, तन्न सूर्य प्रचोदयात्।'

साधकका प्रत्येक दिशा-प्रदिशाम निम्नलिखित दिक्पाल देवोके लिये प्रणाम निवेदन करना चाहिये—

'**ॐ धर्मात्मने नम**' पूर्वम, '**ॐ यमाय नम**' दक्षिणमें, '**ॐ दण्डनायकाय नम**' पश्चिममे, '**ॐ दैवताय नम**' उत्तरमें '**ॐ श्यामपिगलाय नम**' ईशानम '**ॐ दीक्षिताय नम**' अग्निकोणम, '**ॐ वज्रपाणये नम**' नैर्ऋत्यकोणमे, '**ॐ भूर्भुव स्व नम**' वायुकोणमे।

हे वृषध्वज! साधकको चाहिय कि वह निम्नाङ्कित मन्त्रोसे पूर्वादि दिशाओसे प्रारम्भ करके ईशानकाणतक चन्द्रादि ग्रहाकी भी पूजा करे—

'ॐ चन्द्राय नक्षत्राधिपतये नम।' 'ॐ अङ्गारकाय क्षितिसुताय नम।' 'ॐ बुधाय सोमसुताय नम।' 'ॐ वागीश्वराय सर्वविद्याधिपतये नम। 'ॐ शुक्राय महर्षये भृगुसुताय नम।' 'ॐ शनैश्चराय सूर्यात्मजाय नम।' 'ॐ राहवे नम।' 'ॐ केतवे नम।

निम्न तीन मन्त्रोसे सूर्यदेवको प्रणाम करके उन देवका अर्घ्यादि प्रदान करनेके लिय आवाहित करना चाहिये—

'ॐ अनूरुकाय नम।' 'ॐ प्रमथनाथाय नम।' 'ॐ

बुधाय नम ।'

'ॐ भगवन्नपरिमितमयूखमालिन् सकलजगत्पते सप्ताश्ववाहन चतुर्भुज परमसिद्धिप्रद विस्फुलिङ्गपिङ्गल तत् एह्येहि इदमर्घ्यं मम शिरसि गत गृह्ण गृह्ण तजोग्ररूपम् अनग्र ज्वल ज्वल ठठ नम ।'

उपर्युक्त मन्त्रसे आवाहित इन अभीष्ट देवका निम मन्त्रसे विसर्जन करे—

'ॐ नमो भगवते आदित्याय सहस्रकिरणाय गच्छ सुख पुनरागमनाय।'

हे सहस्ररश्मि भगवान् आदित्य! आपके लिये मेरा प्रणाम है। हे कृपालु! आप पुन आगमनके लिये सुखपूर्वक पधारे।

हरिने कहा—हे रुद्र! मैं पुन सूर्य-पूजाकी विधिका वर्णन करूँगा, जिसे मैंने पहले कुबेरसे कहा था।

[सूर्यपूजा प्रारम्भ करनसे पूर्व] एकाग्रचित्त होकर पवित्र स्थानपर कर्णिकायुक्त अष्टदलकमल बनाये। तदनन्तर सूर्यदेवका आवाहन करे। तत्पश्चात् भूमिपर निर्मित कमलदलके मध्यमे यन्त्ररूपी खखोल्क भगवान् सूर्यकी उनके परिकराके साथ स्थापना करे तथा उन्हे स्नान कराये।

हे शिव! इसके बाद साधक अग्निकोणमे (अभीष्ट) देवके हृदयकी स्थापना करे। ईशानकोणम सिरकी स्थापना करके नैर्ऋत्यकोणम शिखाका विन्यास करे। वह पुन एकाग्रचित्त हाकर पूर्व दिशामे उनके धर्म, वायुकोणमे उनके नेत्र और पश्चिम दिशामे उनके अस्त्रका विन्यास करे।

इसी प्रकार अष्टदलकमलके ईशानकोणम चन्द्र, पूर्व दिशाम मगल, अग्निकोणमे बुध, दक्षिण दिशामे बृहस्पति, नैर्ऋत्यकोणम शुक्र, पश्चिम दिशामे शनि, वायुकोणमे केतु एव उत्तर दिशामे राहुके पूजनका विधान है। अत (साधकको इन सभी ग्रहाकी पूजा करके) द्वितीय कक्षामे साथ ही द्वादश सूर्योंकी पूजा भी करनी चाहिय।

भग, सूर्य, अर्यमा मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु—ये द्वादश सूर्य कहे गये हैं।

द्वादश सूर्योंकी पूजा करनेके बाद पूर्वादि दिशाओमे इन्द्रादि देवोकी अर्चना करे तथा जया-विजया-जयन्ती एव अपराजिता शक्तियोकी और शेष, वासुकि आदि नागोकी पूजा करे। (अध्याय १६-१७)

मृत्युञ्जय-मन्त्र-जपकी महिमा

सूतजीने कहा—अब मैं मृत्युञ्जय-पूजाका वर्णन करूँगा, जिसको गरुडने कश्यप ऋषिसे कहा था। वह साधकका उद्धार करनेवाली, पुण्यप्रदायिनी एव सर्वदेवमय पूजा है, ऐसा सभाका अभिमत है।

सूतजीने कहा—मृत्युञ्जय-मन्त्र 'ॐ जु स' तीन अक्षरोवाला है। पहले ॐकारका उच्चारण करके जु (हु)-का उच्चारण करे। तदनन्तर विसर्गके साथ 'स' (स)-का उच्चारण करना चाहिये। यह मन्त्र मृत्यु और दरिद्रताका मर्दन करनेवाला है तथा शिव, विष्णु, सूर्य, आदि सभी देवोका कारणभूत है। 'ॐ जु स' यह महामन्त्र अमृतेशके नामसे कहा जाता है। इस मन्त्रका जप करनेसे प्राणी सम्पूर्ण पापोसे छूट जाता है और मृत्युरहित हो जाता है अर्थात् मृत्युके समान होनवाले उसक कष्ट दूर हो जाते हैं।

इस मन्त्रका सौ बार जप करनेस वेदाध्ययनजनित पुण्यफल तथा यज्ञकृत फल एव तीर्थ-स्नान-दान-पुण्यादिका फल प्राप्त होता है। तीना सध्याओमे एक सो आठ बार इस मन्त्रका जप करनेसे मनुष्य मृत्युको जीत लेता है। कठिन-स-कठिन विघ्न-बाधाओको पार कर जाता है, शत्रुओपर विजय प्राप्त कर लता है।

भगवान् मृत्युञ्जय श्वेत कमलके ऊपर बैठे हुए वरद-हस्त तथा अभय-मुद्रा धारण किये रहते हैं। तात्पर्य यह कि उनक एक हाथम अभय-मुद्रा है और एक हाथमे वरद-मुद्रा। दो हाथोमे अमृत-कलश है। इस रूपमे अमृतेश्वरका ध्यान करनेके साथ ही अमृतेश्वर भगवान्के वामाङ्गमे रहनेवाली अमृतभाषिणी अमृतादेवीका भी ध्यान करना चाहिये। देवीके दाय हाथमे कलश और बाये हाथम कमल सुशोभित रहता है।

हे शिव! यदि एक मासतक अमृतादेवीके साथ अमृतेश्वर भगवान्का ध्यान करते हुए मानव 'ॐ जु स' इस मन्त्रका तीना सन्ध्याओमे आठ हजार जप करे ता वह जरा, मृत्यु तथा महाव्याधियासे मुक्त हो जाता है और शत्रुओपर विजय प्राप्त कर लेता है। यह मन्त्र महान् शान्ति प्रदान करनेवाला है।

अमृतेश्वर भगवान्‌की पूजामे आवाहन, स्थापन, राधन (प्रतिष्ठा), सन्निधान, निवेशन करनेके बाद पाद्य आचमन, स्नान, अर्घ्य, माला, अनुलेपन, दीप, वस्त्र, आभूषण, नवद्य, पान, आचमन, वीजन (पखेसे हवन करना), मुद्रा-प्रदशन, मन्त्र-जप, ध्यान, दक्षिणा, आहुति, स्तुति, वाद्य और गीत तथा नृत्य न्यासयोग ओर प्रदक्षिणा साष्टाङ्ग प्रणति, मन्त्रशय्या, वन्दन आदि उपचाराका निवेदित करक उनका विसर्जन करना चाहिये।

षडङ्ग प्रकारका पूजन जिसे परमेश परमात्माने अपने मुखसे स्वय कहा है, वह क्रमसे बतलाया गया है, उसे जो जानता है वही पूजक है। षडङ्ग-पूजा इस प्रकार है—

साधकको प्रारम्भम अर्घ्य प्रदान करनेके लिये प्रयुक्त पात्रकी पूजा करक अस्त्र अर्थात् फट् मन्त्रसे हस्तताडन (दाहिन हाथके द्वारा बाय हाथपर ध्वनि) करना चाहिये। उसक बाद कवच (हु) मन्त्रस शोधनकर अमृतकरणकी क्रियाको पूर्ण करे। तत्पश्चात् आधारशक्ति आदिकी पूजा, प्राणायाम, आसनोपवशन तथा देहशुद्धि करक भगवान् अमृतेशका ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर अपनी आत्माको देवस्वरूपम स्वीकारकर अङ्गन्यास, करन्यास करके साधक हृदयकमलम स्थित ज्योतिर्मय आत्मदेवका पूजन करे।

उसके बाद मूर्तिपर अथवा यज्ञके लिये बनी हुई वेदीपर चित्रित देवके ऊपर सुन्दर पुष्प अर्पित कर। द्वारपर अवस्थित रहनेवाल देवोका आवाहन और पूजन करनेके लिये पहले आधारशक्तिकी पूजा करे। तदनन्तर देवताकी प्रतिष्ठा करके उनक (देव) परिवारका पूजन करना चाहिये, क्योकि विद्वानोने बतलाया है कि मुख्य देवक पूजाक साथ उसके अङ्ग-परिवार आदिकी भी पूजा करनेका विधान है। आयुधा एव परिवारोके साथ धर्म आदिकी तथा इन्द्र आदिकी, युगा, वेदा और मुहूर्तोकी भी मुख्य देवके रूपम पूजा करनी चाहिये। यह पूजा भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाली है। अत साधक विद्वानोको उनकी षडङ्ग-पूजा करनी चाहिये।

देवमण्डलकी पूजा करनक पूर्व मातृका, गणदेवता नन्दी और गङ्गाकी पूजा करके देवस्थानके देहली-भागपर महाकाल तथा यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। इस पूजामें 'ॐ अमृतेश्वर भैरवाय नम ।' तथा 'ॐ जु ह स सूर्याय नम ' कहना चाहिये। इसी प्रकार प्रारम्भम प्रणव मन्त्र ॐकारको जोडकर नामोच्चार करते हुए अन्तमे 'नम ' शब्दका प्रयोग करके शिव, कृष्ण, ब्रह्मा गण, चण्डिका, सरस्वती और महालक्ष्मी आदिकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १८)

सर्पोके विष हरनेके उपाय तथा दुष्ट उपद्रवोको दूर करनेके मन्त्र
(प्राणेश्वरी विद्या)

श्रीसूतजी बोले—हे ऋषियो। अब म शिवद्वारा पक्षिराज गरुडको सुनाये गये प्राणेश्वर महामन्त्रका वर्णन करता हूँ, किंतु उसके पूर्व उन स्थानोका वर्णन करूँगा, जहाँ सर्पके काटनेसे प्राणी जीवित नही रह सकता।

श्मशान वल्मीक (बाँबी) पर्वत कुआँ और वृक्षके कोटर—इन स्थानोमे स्थित सर्पके द्वारा काट लेनेपर यदि उस दाँत-लगे स्थानपर तीन प्रच्छन्न रेखाएँ बन जाती हैं तो वह प्राणी जीवित नही रहता है। षष्ठी तिथिमे कर्क और मेष राशिमे आर्द्रा नक्षत्र तथा मूल आश्लेषा मघा आदि क्रूर नक्षत्रोमे सर्पदंश होनेसे प्राणीका जीवन समाप्त हो जाता है तथा काँख कटि गला सन्धि-स्थान मस्तक या कनपटीके अस्थिभाग और उदरादिमे काटनेपर प्राणी जीवित नही रहता है।

यदि सर्पदंशके समय दण्डी शस्त्रधारी, भिक्षु तथा नग्न प्राणीका दर्शन होता है तो उसे कालका ही दूत समझना चाहिये। हाथ मुख गर्दन और पीठमे सर्पके काटनेसे प्राणी जीवित नहीं बचता है।

दिनके प्रथम भागक पूर्व अर्ध यामका भोग सूर्य करता ह। उस दिवाकर-भोगके पश्चात् गणनाक्रममें जो ग्रह आते हैं उन ग्रहाके द्वारा यथाक्रम शेष यामोका भाग होता है। इस कालगतिमे प्रत्येक दिन छ परिवर्तनाके साथ अन्य शेष ग्रहोका भाग माना गया है। यथा—ज्योतिषियाने काल-चक्रक आधारपर रात्रिकालम शेषनाग 'सूर्य', वासुकि नाग 'चन्द्र' तक्षक नाग 'मङ्गल' कर्कोटक नाग 'बुध', पद्म नाग 'गुरु', महापद्म नाग 'शुक्र', शङ्ख नाग 'शनि' और कुलिक नाग 'राहु' का स्वीकार किया।

रात या दिनमे बृहस्पतिका भोगकाल आनेपर सर्प, देवोका भी अन्त करनेवाला हा जाता है। अत इस कालमे सर्पद्वारा काटा गया प्राणी बच नही सकता है। दिनम शनि-ग्रहकी वेलाके आनेपर राहु अशुभ धर्मसे सयुक्त रहता है। अत वह अपने यामार्ध भोग और सन्धिकालकी अवस्थितिमे काल अर्थात् यमराजकी गतिके समान गतिमान् रहता हे।

रात्रि और दिनका मान लगभग तीस-तीस घटीका होता है। इस मानके अनुसार निर्मित कालचक्रम चन्द्रमा प्रतिपदा तिथिको पादाङ्गुष्ठ, द्वितीयाको पैरसे ऊपर, तृतीयाको गुल्फ, चतुर्थीको जानु, पञ्चमीको लिङ्ग, षष्ठीको नाभि सप्तमीको हृदय, अष्टमीको स्तन, नवमीको कण्ठ दशमीका नासिका, एकादशीको नेत्र, द्वादशीको कान, त्रयोदशीका भौंह, चतुर्दशीको शख अर्थात् कनपटी तथा पूर्णिमा एव अमावस्याको मस्तकपर निवास करता है। पुरुषके दक्षिणाङ्गम तथा स्त्रीके वामभागमे चन्द्रकी स्थिति होती है। चन्द्रकी स्थिति जिस अङ्गमे होती है, उस अङ्गमे सर्पके डसनेपर प्राणी जीवित बच सकता है। यद्यपि सर्पदशसे शरीरमे उत्पन्न हुई मूर्च्छा शीघ्र समाप्त होनेवाली नहीं है, फिर भी शरीर-मर्दनसे वह दूर हो सकती है।

स्फटिकके समान निर्मल 'ॐ हस ' नामक बीजमन्त्र साधकका परम मन्त्र है। विषरूपी पापका नष्ट करनेमे समर्थ इस बीज-मन्त्रका प्रयाग सर्पदशसे मूर्च्छित प्राणीपर करना चाहिये। इसके चार प्रकार हैं। प्रथम मात्रा बीज बिन्दुसे युक्त है। दूसरा पाँच स्वरासे सयुक्त है। तीसरा छ स्वरोंवाला और चौथा विसर्गयुक्त है। प्राचीन समयमे पक्षिराज गरुडने तीनो लोकोकी रक्षाके लिये 'ॐ कुरु कुले स्वाहा' इस महामन्त्रको आत्मसात् किया था। अत सर्प एव सर्पिणियाके विषको शान्त करनेके लिये इच्छुक व्यक्तिको मुखमे 'ॐ' कण्ठम 'कुरु', दोनो गुल्फामे 'कुले' तथा दोना पैरोम 'स्वाहा' मन्त्रका न्यास करना चाहिये। जिस घरमे उपर्युक्त मन्त्र भली प्रकारसे लिखा रहता है सर्प उस घरको छोडकर चले जाते हैं। जो मनुष्य एक हजार बार इस मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित सूत्रको कानपर धारण करता है, उसको सर्प-भय नहीं रहता। जिस घरम इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित शर्कराखण्ड फेक दिये जाते हैं, उस घरको भी सर्प छोड देते हैं। देवताओ और असुराने इस मन्त्रका सात लाख जप करके सिद्धि प्राप्त की थी।

इसी प्रकार एक अष्टदल पद्मका रेखाङ्कनकर उसके प्रत्येक दलपर इस—'ॐ सुवर्णरखे कुक्कुटविग्रहरूपिणि स्वाहा'—मन्त्रके दो-दो वण लिखे तथा 'ॐ पक्षि स्वाहा'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा स्नान करानेसे विषविह्वल प्राणीका विष दूर हो जाता है।

'ॐ पक्षि स्वाहा' इस मन्त्रके द्वारा अङ्गुष्ठ-भागसे लेकर कनिष्ठापर्यन्त करन्यास तथा मुख-हृदय-लिङ्ग और पैरोम अङ्गन्यास करे तो विषधर नाग ऐसे मनुष्यकी छायाको स्वप्नमे भी लाँघ नहीं सकता। जो मनुष्य इस मन्त्रका एक लाख जप करके सिद्धि प्राप्त कर लेता है, वह अपनी दृष्टिमात्रसे व्यथित व्यक्तिक शरीरमे व्याप्त विषको नष्ट कर देता है।

'ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रीं भि (भी) रुण्डायै स्वाहा'—इस मन्त्रका जप सर्पदशित व्यक्तिके कानमे करनेपर विषका प्रभाव क्षीण हो जाता हे।

यदि दाना पैरके अग्रभागम 'अ आ', गुल्फमें 'इ ई' जानुमे 'उ ऊ', कटिमें 'ए ऐ', नाभिमे 'ओ', हृदयमें 'औ', मुखमें 'अ' तथा मस्तकमें 'अ ' वर्णका स्थापनकर 'ॐ हस ' बीजमन्त्रके सहित न्यास करके साधक इस बीजमन्त्रका ध्यान-पूजन और जप करे तो वह सर्प-विषको दूर कर सकता है।

'मैं (स्वय) गरुड हूँ' यह ध्यान (भावना) करके साधकको विष-शमनका कार्य करना चाहिये। 'ह'बीजमन्त्रका शरीरमे विन्यास विषादिका हरण करनेवाला कहा गया है। वाम हाथमे 'हस ' मन्त्रका न्यास करके जो साधक इस मन्त्रका ध्यान-पूजन और जप करता है, वह सर्प-विषको दूर करनेम समर्थ होता है, क्याकि यह मन्त्र विपधर नागोके नासिकाभाग और मुँहकी श्वास-नलिकाको भी रोकनेम पूर्ण समर्थ है। यह मन्त्र शरीरकी त्वचा-मास आदिमे व्याप्त सर्प-विषको भी विनष्ट कर दता है।

सर्पदशसे मूर्च्छित प्राणीके शरीरम 'ॐ हस ' मन्त्रका न्यास करके भगवान् नीलकण्ठ आदि देवाका भी ध्यान करना चाहिये। एसा करनेसे यह मन्त्र अपनी वायु शक्तिके द्वारा उस सम्पूर्ण विषका हरण कर लेता है।

प्रत्यङ्गिराकी जडको चावलके जलके साथ पीसकर पीनेसे विषका प्रभाव दूर हो जाता है। पुनर्नवा, प्रियगु,

वक्त्रज (ब्राह्मी), श्वेत, बृहती, कूष्माण्ड, अपराजिताकी जड़, गरू तथा कमलगट्टेके फलको जलमे पीसकर घृतके साथ लेप तैयार करना चाहिये, इस प्रकार बना हुआ लेप भी शरीरमे लगानेसे विषको शान्त कर देता है। सर्पके काटनेपर जो मनुष्य उष्ण (गरम) घृतका पान कर लेता है उसके शरीरमे विषका अधिक प्रभाव नहीं बढ़ता। सर्पदंश होनेपर शिरीष नामक वृक्षके पञ्चाङ्ग (पत्र, पुष्प, फल, मूल एवं छाल)-के सहित गाजरके बीजोको पीसकर सर्वाङ्गमे लेप करनेसे अथवा पीनेसे भी विषका प्रभाव समाप्त हो जाता है।

'ॐ ह्रीं' बीजमन्त्र, गोनस (गोहुअन) आदि विषैले सर्पोके विषको दूर करनेमे समर्थ है। इस मन्त्रके साथ 'अ'-का प्रयोगकर अर्थात् 'ॐ ह्रीं अ' का उच्चारण करते हुए हृदय, ललाट आदिमे विन्यास करके उसका ध्यान करनेमात्रसे ही सर्पादिका वशीकरण हो जाता है। इसका पंद्रह हजार जप करके साधक गरुडके समान सर्वगामी, कवि—विद्वान्, वेदविद् हो जाता है तथा दीर्घ आयुको प्राप्त करता है।

सूतजीने पुनः कहा—ऋषियो! अब मैं आप सभीको शिवके द्वारा कथित अत्यन्त गोपनीय मन्त्रोको बताऊँगा, जिनसे अभिमन्त्रित पाश, धनुष, चक्र, मुद्गर, शूल और पट्टिश नामक आयुधोको धारण करके राजा शत्रुओपर भी विजय प्राप्त कर लेता है।

मन्त्रोद्धारके लिये कमल-पत्रपर अष्टवर्ग बनाकर पूर्व (दिशा)-से शुरू करके क्रमशः ईशान-कोणतक बीजमन्त्र (ॐ ह्रीं ह्रीं)-को लिखना चाहिये। 'ॐ'कार ब्रह्मबीज है, 'ह्रीं'कार विष्णुबीज है और 'ह्रीं'कार शिवबीज है। त्रिशूलके तीनों शीर्षपर 'ह्रीं' लिखकर क्रमानुसार न्यास करे। मन्त्र 'ॐ ह्रीं ह्रीं' है।

साधक हाथमे शूल ग्रहण करे। तत्पश्चात् उसको आकाशमे घुमाये, जिसे देखते ही दुष्ट ग्रह और सर्प नष्ट हो जाते हैं। साधक धूम्रवर्णके धनुषको हाथमे लेकर आकाशकी ओर भुजा उठाकर इस मन्त्रका चिन्तन करे। ऐसा करनेसे दुष्ट विषैले सर्प, कुत्सित ग्रह, विनाशकारी मेघ और राक्षस नष्ट होते हैं। यह मन्त्र तो त्रिलोककी रक्षा करनेमे समर्थ है, मृत्युलोकके विषयमे कहना ही क्या है?

'ॐ जूं सः हूं फट्' यह दूसरा मन्त्र है। साधक खैरकी आठ लकड़ियोको इसी मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर उन्हें आठ दिशाओमे गाड़ दे तो उस कीलाङ्कित क्षेत्रमे वज्रपात (विद्युत्-निपात) तथा इसकी गर्जनाका उपद्रव नहीं होता। गरुडद्वारा कहे गये इस मन्त्रसे आठ कीलोको इक्कीस बार अभिमन्त्रितकर रात्रिके समय अपने अभीष्ट क्षेत्रकी चारो दिशाओ और विदिशाओमे गाड़ देना चाहिये। इससे भी वहाँ विद्युत्-निपात, वज्रपतन तथा चूहा, टिड्डी आदिसे होनेवाले उपद्रवोका भय नहीं रहता।

'ॐ ह्रां सदाशिवाय नमः' ऐसा कहकर साधक तर्जनी अंगुलिके द्वारा अनार-पुष्पके सदृश कान्तिमान् एक पिण्डका निर्माण करे। उस पिण्डके प्रदर्शनमात्रसे ही दुष्ट जन, मेघ, विद्युत्, विष, राक्षस, भूत और डाकिनी आदि दसो दिशाओको छोड़कर भाग जाते हैं।

'ॐ ह्रीं गणेशाय नमः।' 'ॐ ह्रीं स्तम्भनादिचक्राय नमः।' 'ॐ ऐं ग्राहायै त्रैलोक्यडामराय नमः।'—इस मन्त्र-संग्रहको भैरव-पिण्ड कहा जाता है। यह भैरव-पिण्ड विष तथा पापग्रहोके कुप्रभावको समाप्त करनेमे समर्थ है। यह साधकके कार्यक्षेत्रकी रक्षा और भूत-राक्षसादिकी उपद्रवी शक्तियोको नष्ट करता है।

'ॐ नमः' यह कहकर साधक अपने हाथमे इन्द्रवज्रका ध्यान करे। इस वज्रमुद्रासे विष, शत्रु और भूतगण विनष्ट हो जाते हैं। 'ॐ क्षुं (क्षः) नमः' इस मन्त्रसे बाये हाथमें पाशका स्मरण करे, जिससे विष तथा भूतादिका विनाश होता है। इसी प्रकार 'ॐ हां (ह्रों) नमः' इस मन्त्रके उच्चारणसे उपद्रवकारी मेघ ओर पापग्रहोके प्रभाव नष्ट हो जाते हैं। कृतान्त—यमराजका ध्यान करके साधक छेदक अस्त्र (भाल)-से शत्रु-समूहका विनाश करे। 'ॐ क्षण (क्षम्) नमः' इस मन्त्रोच्चारके साथ कालभैरवका ध्यान करके मनुष्य पापग्रह, भूत, विषके प्रभावका शमन कर सकता है।

'ॐ लसद्द्विजिह्वाक्ष स्वाहा' इस मन्त्रका ध्यान करके मनुष्य खेती-बाड़ीमे विघ्न डालनेवाले ग्रह, भूत, विष और पक्षियोका निवारण कर सकता है। 'ॐ क्षं (क्षः) नमः' इस मन्त्रको रक्त-वर्णकी स्याहीसे नगाड़ेपर लिखकर उसे बजाना चाहिये। उसके शब्दोको सुनकर पापग्रह आदि सभी उपद्रवकारी तत्त्व भयभीत हो उठते हैं।

(अध्याय १९-२०)

पञ्चवक्त्र-पूजन तथा शिवार्चन-विधि

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! अब मैं पञ्चमुख शिवकी पूजाका वर्णन करूँगा, जो साधकको भुक्ति और मुक्ति दोनो प्रदान करती है। साधकको सबसे पहले निम्न मन्त्रसे उन देवका आवाहन करना चाहिये—

'**ॐ भूर्विष्णवे आदिभूताय सर्वाधाराय मूर्तये स्वाहा।**'

पुन '**ॐ हा सद्योजाताय नम ।**' कहकर साधक सद्योजातका आवाहन करे। इन सद्योजातकी आठ कलाएँ कही गयी हैं। उनका नाम सिद्धि, ऋद्धि, धृति, लक्ष्मी, मेधा, कान्ति, स्वधा और स्थिति है। सद्योजातकी पूजा करनेके पश्चात् '**ॐ सिद्धयै नम**' इत्यादि मन्त्रोसे उन सभी आठ कलाओकी पूजा करनेका विधान है। तदनन्तर '**ॐ ह्रीं वामदेवाय नम**' इस मन्त्रसे साधक वामदेवकी पूजा करे। वामदेवकी तेरह कलाएँ हैं, जिन्हे रजा, रक्षा, रति, पाल्या, कान्ति तृष्णा, मति, क्रिया, कामा, बुद्धि, रात्रि, त्रासनी तथा मोहिनी कला कहा गया है। इन कलाओके अतिरिक्त मनोन्मनी, अघोरा, मोहा, क्षुधा, निद्रा, मृत्यु, माया तथा भयकरा नामकी आठ कलाएँ (अघोरकी) हैं।

उक्त समस्त कलाओका पूजन करनेके बाद साधकको '**ॐ है तत्पुरुषाय नम**' इस मन्त्रसे तत्पुरुपदेवकी पूजा करनी चाहिये। उनकी निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और सम्पूर्णा—ये पाँच कलाएँ हैं। साधक कलाओकी पूजा करके '**ॐ हौं ईशानाय नम**' इस मन्त्रसे ईशानदेवकी पूजा करे। तत्पश्चात् ईशानदेवकी निश्चला, निरञ्जना, शशिनी, अगना मरीचि और ज्वालिनी नामकी जो छ कलाएँ हैं उनकी पूजा करके पूजन पूर्ण करे।

सूतजीने पुन कहा—हे ऋषियो! अब मैं शिवकी अर्चनाका वर्णन करूँगा जो भुक्ति और मुक्ति दोना प्रदान करनेवाली है। बारह अगुलके मापमे बिन्दुद्वारा (किसी पात्रमे) भगवान् शिवकी मूर्ति बनानी चाहिये। उसम शान्त, सर्वगत और निराकारका चिन्तन करना चाहिये। बिन्दुद्वारा बनायी गयी मूर्तिमे ऊपरकी ओर पाँच बिन्दु लगाने चाहिये, जो शिवका मुख है। वह छोटे आकारम होना चाहिये और नीचेकी ओर मूर्तिके अनुसार बिन्दु लगाकर बडे-बडे अङ्ग बनाने चाहिये। मूर्तिके अधोभागम छठा बिन्दु विसर्गके साथ होना चाहिये, जो अस्त्र है। इसके साथ 'हौं' लिख देना चाहिये—यह महामन्त्र है और सम्पूर्ण अर्थोको देनेवाला है। साधक मूर्तिके ऊर्ध्वभागसे लेकर मूर्तिके चरणपर्यन्त अपने दोनो हाथासे स्पर्श कर और महामुद्रा दिखाये, इसके बाद सम्पूर्ण अङ्गोम न्यास-करन्यास आदि करे।

तदनन्तर वह अस्त्रमन्त्र 'ॐ फट्' का उच्चारण करता हुआ दाहिनी हथेलीसे स्पर्श करके शोधन करे। उसके बाद कनिष्ठा अँगुलीसे लेकर महामन्त्रसे ही तर्जनी अँगुलीतक न्यास करना चाहिये।

अब मैं हृदय-कमलकी कर्णिकाम[1] पूजनकी विधि बतलाऊँगा। उसम धर्म, ज्ञान, वैराग्य, एश्वर्यादिकी अर्चना करे। सर्वप्रथम आवाहन, स्थापन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान अर्पित करे तथा अन्य विविध मानस उपचारोका करके तदाकार हो जाय। उसके बाद अग्निमे आहुति देनेकी विधि कह रहा हूँ। साधकको पूजा-स्थलपर अग्नि प्रज्वलित करनेके लिये '**ॐ फट्**' अस्त्रमन्त्रसे एक कुण्डका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् '**ॐ हू**' इस कवचमन्त्रसे उस कुण्डका अभ्युक्षण करके मानसिकरूपसे उसम शक्तिका विन्यास करे। उसके बाद साधकको हृदय अथवा शक्तिकुण्डमे क्रमश ज्ञानरूपी तेज तथा अग्निका विन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् अग्निके निष्कृति-सस्कारको छोडकर गर्भाधानादि समस्त सस्कार करनेका विधान है। निष्कृति या माक्ष-सस्कार आहुतिके पश्चात् किया जाता है। [इसलिये आहुतिके पूर्व उस सस्कारका निषेध है।] समस्त सस्काराके बाद साधकको उस प्रज्वलित अग्निम समस्त आङ्गिकदेवाके साथ मानसिकरूपसे शिवको आहुति देनी चाहिये।

तदनन्तर कमलाङ्कित गर्भवाले उस मण्डलम नीलकण्ठ शिवका पूजन करना चाहिये। इस मण्डलक अग्निकोणमे अर्धचन्द्राकार कल्याणकारी एक अग्निकुण्ड बनाना चाहिये।

तदनन्तर अग्निदेवताके अस्त्रासे युक्त हृदयादिम न्यास करनेका विधान है। उसके बाद मण्डलके अन्तर्गत बने हुए कमलकी कर्णिकापर सदाशिवकी तथा दिशाआम अस्त्रकी पूजा करे।

अब श्रेष्ठ पञ्चतत्त्वामे स्थित पृथ्वी जल आदि तत्त्वाकी

[1] यहाँ बाह्यपूजन तथा मानसपूजन दोनोका एक साथ वर्णन है।

दीक्षा बतलायी जाती है। इन दोनों शान्तियोंके लिये पृथक्-पृथक् रूपसे सौ-सौ आहुतियाँ पाँच बार देनी चाहिये। तत्पश्चात् साधक पूर्णाहुति देकर प्रसन्नतापूर्वक त्रिशूली भगवान् शिवका ध्यान करे।

उसके बाद प्रायश्चित्त-शुद्धिके लिये आठ बार आहुति देनी चाहिये। यह आहुति अस्त्र-बीज 'हुं फट्' मन्त्रसे प्रदान करनेका विधान है। इस प्रकार संस्कारसे शुद्ध हुआ वह साधक निःसंदेह शिव-स्वरूप हो जाता है।

शिवकी विशेष पूजामें साधकको चाहिये कि वह प्रथम—'ॐ हां आत्मतत्त्वाय स्वाहा', 'ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा' तथा 'ॐ हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा'—ऐसा उच्चारण करके आचमन करे। तत्पश्चात् उस मानसिक रूपसे कर्णेन्द्रियोंका स्पर्श करना चाहिये। उसके बाद भस्म-धारण और तर्पण आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिये। 'ॐ हां प्रपितामहेभ्यः स्वधा', 'ॐ हां मातामहेभ्यः स्वधा' और 'ॐ हां नमः सर्वमातृभ्यः स्वधा' इन मन्त्रोंसे तर्पण करे। इसी रीतिसे पिता, पितामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह आदिका भी तर्पण करे और फिर प्राणायाम करना चाहिये।

इसके बाद आचमन तथा मार्जन करके साधकको शिवके गायत्रीमन्त्रका जप करना चाहिये। वह मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ हां तन्महेशाय विद्महे, वाग्विशुद्धाय धीमहि, तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।'

अर्थात् प्रणवसे युक्त 'हां' बीजशक्तिसे सम्पन्न उन महेश्वरका हम सभी चिन्तन करते हैं। वाणीकी पवित्रताके लिये उनका हम ध्यान करते हैं। वे रुद्र हम सभीको सन्मार्गपर चलनेके लिये प्रेरणा प्रदान करें।

शिव-गायत्रीमन्त्र-जपके पश्चात् सूर्योपस्थान करके सूर्य-मन्त्रोंसे सूर्यरूप शिवकी पूजा करनी चाहिये। उन मन्त्रोंका स्वरूप इस प्रकार है—

ॐ हां ह्रीं हूं हैं हौं हः शिवसूर्याय नमः।' ॐ हं खखोल्काय सूर्यमूर्तये नमः।' 'ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।

—इस पूजाके बाद क्रमशः नामके आदि और अन्तमें 'ॐ नमः' शब्दका प्रयोग करके दण्डी तथा पिङ्गल आदि भूतनायकोंका स्मरण करे। तदनन्तर अग्नि आदि कोणोंमें 'ॐ विमलायै नमः' 'ॐ ईशानायै नमः'—आदि मन्त्रोंसे क्रमशः विमला और ईशानादि शक्तियोंकी स्थापना करके पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे उपासकको परम सुखकी प्राप्ति होती है। [इन शक्तियोंकी पूजाके लिये पृथक्-पृथक् बीजमन्त्र निर्दिष्ट हैं।] यथा—

'ॐ रां पद्मायै नमः' (अग्निकोणमें), 'रीं दीप्तायै नमः' (नैर्ऋत्यकोणमें), 'रूं सूक्ष्मायै नमः' (वायव्यकोणमें), 'रें जयायै नमः' (ईशानकोणमें), 'रैं भद्रायै नमः' (पूर्व दिशामें) 'रों विभूत्यै नमः' (दक्षिण दिशामें), 'रौं विमलायै नमः' (पश्चिम दिशामें), 'रं अमोघिकायै नमः', 'रः विद्युतायै नमः' (उत्तर दिशामें) और 'रं सर्वतोमुख्यै नमः' (मण्डलके मध्यमें)। इसके बाद शिवस्वरूप सूर्यप्रतिमाको सूर्यासन प्रदान करके 'ह्रां ह्रूं (ह्रीं) सः' इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यकी अर्चना करे और फिर निम्न मन्त्रोंसे न्यास करे—

'ॐ आं हृदर्काय नमः', 'ॐ भूर्भुवः स्वः शिरसे स्वाहा', 'ॐ भूर्भुवः स्वः शिखायै वौषट्', 'ॐ हूं ज्वालिन्यै नमः', 'ॐ हुं कवचाय हुम्', 'ॐ हूं अस्त्राय फट्', 'ॐ हः फट् राज्यै नमः', 'ॐ हः फट् दीक्षितायै नमः।'

साधकको अङ्गन्यासके पश्चात् निम्न मन्त्रोंसे सूर्यादि सभी नवग्रहोंकी मानसी पूजा करनी चाहिये—

'ॐ सं सूर्याय नमः, ॐ सों सोमाय नमः, ॐ मं मङ्गलाय नमः, ॐ बुं बुधाय नमः, ॐ बृं बृहस्पतये नमः, ॐ भं भार्गवाय नमः, ॐ शं शनैश्चराय नमः, ॐ रं राहवे नमः, ॐ कं केतवे नमः, ॐ तेजश्चण्डाय नमः।'

इस प्रकार सूर्यदेव आदिकी पूजा करके साधकको आचमन करना चाहिये। उसके बाद वह कनिष्ठिका आदि अंगुलियोंमें करन्यास तथा पुनः निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे अङ्गन्यास करे—

'ॐ हां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ हूं शिखायै वौषट्, ॐ हैं कवचाय हुम्, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हः अस्त्राय फट्।'

तदनन्तर भूतशुद्धि करे तथा पुनः न्यास करे। अर्घ्यस्थापन करके उसी जलसे अपने शरीरका प्रोक्षण करना चाहिये। उसके बाद वह साधक शिवसहित नन्दी आदिकी पूजा करे। 'ॐ ह्रौं शिवाय नमः' मन्त्रसे पद्ममें स्थित शिवकी पूजा करके नन्दी महाकाल गङ्गा यमुना, सरस्वती श्रीवत्स, वास्तुदेवता ब्रह्मा गणपति तथा गुरुकी पूजा करे।

तत्पश्चात् साधकको पद्मके मध्यम शक्ति पूर्व, अनन्त देवकी पूजा करके पूर्व दिशाम धर्म, दक्षिणम ज्ञान, पश्चिमम वैराग्य, उत्तरमे ऐश्वर्य, अग्निकोणमे अधर्म, नैर्ऋत्यम अज्ञान, वायव्यमे अवैराग्य, ईशानम अनैश्वर्य, पद्मकी कर्णिकामे वामा और ज्येष्ठा उसके बाद पूर्व आदि दिशाआमे रौद्री, काली, शिवा तथा असिता आदि शक्तियाकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर साधकको शिवके आगे स्थित पीठके मध्यम **'ॐ ह्रीं कलविकरिण्यै नम , ॐ ह्रौ बलविकरिण्यै नम , ॐ ह्रीं बलप्रमथिन्यै नम , ॐ सर्वभूतदमन्यै नम , ॐ मनोन्मन्यै नम '**—इन मन्त्रासे कलविकरिणी एव बलविकरिणी आदि शक्तियोकी पूजा करनी चाहिये। साधक भगवान् शिवके लिये आसन प्रदानकर महामूर्तिकी स्थापना करे। तदनन्तर मूर्तिके मध्यम शिवको उद्दिष्ट करके आवाहन-स्थापन-सन्निधान-सन्निरोध-सकलीकरण आदि मुद्रा दिखाये और अर्घ्य, पाद्य, आचमन, अभ्यङ्ग उद्वर्तन तथा स्नानीय जल समर्पित करे एव अरणि-मन्थन करक पूज्यदेवको वस्त्र, गन्ध, पुष्प, दीप और नैवेद्यम चरु समर्पित करे। नैवेद्यके अनन्तर आचमन दे करके मुखशुद्धिके लिये ताम्बूल, करोद्वर्तन, छत्र चामर, पवित्रक (यज्ञोपवीत) प्रदानकर परमीकरण (अर्चनीय देवम सर्वोत्कृष्टताका भाव) करे। तदनन्तर साधक आराध्यक साथ तदाकार हाकर उनका जप करे तथा विनम्रभावस स्तुतिकर उन्हे प्रणाम करे। इसी हृदयादिन्यास आदिके साथ पूर्ण की गयी पूजाको 'षडङ्गपूजा' यह नाम दिया गया है।

इस प्रकार शिवपूजन पूर्ण करनके पश्चात् साधकको अग्नि आदि चतुर्दिक् कोणो, मध्यभाग तथा पूर्वादि दिशाआम अग्नि आदि दिग्देवताओ तथा इन्द्रादि दिक्पालाकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर उसको उन देवाके मध्य स्थित चण्डेश्वरकी पूजाकर उनके लिये निर्माल्य समर्पित करना चाहिये। उसके बाद वह निम्नाङ्कित स्तुतिसे क्षमापन (क्षमा-याचना) करके उनका विसजन करे—

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्व गृहाणास्मत्कृत जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिति ॥
यत्किंचित् क्रियते कर्म सदा सुकृतदुष्कृतम्।
तन्म शिवपदस्थस्य रुद्र क्षपय शङ्कर॥
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिव सर्वमिद जगत्।
शिवो जयति सर्वत्र य शिव सोऽहमेव च॥
यत्कृत यत् करिष्यामि तत् सर्व सुकृत तव।
त्व त्राता विश्वनेता च नान्यो नाथाऽस्ति मे शिव॥
(२३। २६—२९)

हे प्रभो। आप गुह्य-से-गुह्य तत्त्वाके सरक्षक हैं। आप मरे किये हुए जपको स्वीकार कर। हे देव! मुझे सिद्धि प्राप्त हो। आपकी कृपासे आपमे मेरी निष्ठा बनी रहे। हे रुद्र! हे भगवान् शङ्कर! मेरे द्वारा सर्वदा पाप-पुण्यरूप जो कर्म किया जाता है, उसे आप नष्ट कर। मैं आपके इन कल्याणकारी चरणाम पडा हूँ। हे शिव! आप अपने भक्ताको सर्वस्व देनेवाल हैं। आप ही भोक्ता हैं, हे शिव! यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् भी तो आप ही हैं। ह शङ्कर! आपकी विजय हो। सर्वत्र जब शिव ही हैं तो मैं भी वही हूँ। जो कुछ मैंने किया है और जो कुछ भविष्यम करूँगा वह सब आपके द्वारा ही किया हुआ है। आप रक्षक हैं। आप विश्वनायक हैं। हे शिव! आपके अतिरिक्त मेरा कोई स्वामी नहीं है।

(हरिने पुन कहा—हे रुद्र!) इसके बाद मैं शिवपूजाकी दूसरी विधि कह रहा हूँ—

इस विधिके अनुसार गणेश-सरस्वती-नन्दी-महाकाल-गङ्गा-यमुना, अस्त्र तथा वास्तुपतिदेवकी पूजा मण्डलके द्वारपर करनी चाहिये और साधक पूर्वादि दिशाआमे इन्द्रादि सभी दिक्पालाकी पूजा करे। उसके बाद कारणभूत समस्त तत्त्वाकी पूजा करे।

उन तत्त्वोम 'पृथिवी, जल, तेज वायु और आकाश'—ये पञ्चमहाभूत हैं। गन्ध, रस, रूप स्पर्श तथा शब्द—ये उनकी पाँच तन्मात्राएँ हैं। वाक्, पाणि, पाद पायु एव उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और श्रोत्र त्वक् चक्षु, जिह्वा तथा घ्राण—य पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है। इनके अतिरिक्त मन, बुद्धि, चित्त और अहकार—ये अन्त करणचतुष्टय हैं। इनसे ऊपर 'पुरुष' की स्थिति है। इन्हीं (पुरुष)-को शिव कहा जाता है।

इन तत्त्वाके साथ राग (गानशास्त्रीय रागविशेष) बुद्धि विद्या, कला काल नियति, माया, शुद्धविद्या, ईश्वर और सदाशिव जो सबक मूल हैं, उनकी भी पूजा होनी चाहिय। इन समस्त तत्त्वाम जो शिव और शि पुरुष एव प्रकृतिका तत्त्व अनुस्यूत ह, उसका

साधक जीवन्मुक्त होकर शिवरूप हो जाता है। इन तत्त्वाम जो शिवतत्त्व है, वही विष्णु है, वही ब्रह्मा है और वही ब्रह्मतत्त्व है।

भगवान् सदाशिवका मङ्गलमय ध्यानस्वरूप इस प्रकार है—वे देव पद्मासनपर विराजमान रहते हैं। उनका वर्ण शुक्ल है। सदैव सोलह वर्षकी आयुमे स्थित रहते हैं। व पाँच मुखोवाले हैं। उनके दसा हाथोमे क्रमश दक्षिणभागकी ओर अभयमुद्रा, प्रसादमुद्रा, शक्ति, शूल तथा खट्वाङ्ग और वामभागकी ओर सर्प, अक्षमाला, डमरू, नीलकमल तथा श्रेष्ठ बीजपूरक (बिजौरा नीबू) स्थित रहता है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया नामक तीन शक्तियाँ उनके तीन नेत्र हैं। ऐस वे दव सर्वदा कल्याणकी भावनामे अवस्थित रहते हैं, इसीलिये इन्हे सदाशिव कहा गया है।[1]

ऐसे मूर्तिमान् देवका चिन्तन करनेवाला साधक सदैव कालभयसे रहित रहता है। इस प्रकार शिवोपासना करनेवाले साधककी न तो अकालमृत्यु होती है और न शीत तथा ऊष्णादि कारणोसे ही उसकी मृत्यु होती है।

(अध्याय २१—२३)

भगवती त्रिपुरा तथा गणेश आदि देवोकी पूजा-विधि

सूतजीने कहा—अब मैं गणेश आदि देवोकी तथा त्रिपुरादेवीकी पूजाको कहूँगा, जो अपने भक्तोका सर्वदा अभीष्ट प्रदान करनेवाली तथा श्रेष्ठ है। साधकको सबसे पहले गणपतिदेवके आसन एव उनके मूर्तस्वरूपका पूजन करके न्यासपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। साधक 'गा' आदि बीजमन्त्रोसे निम्न रीतिसे हृदयादिन्यास करे—

ॐ गा हृदयाय नम , ॐ गीं शिरसे स्वाहा, ॐ गू शिखायै वषट्, ॐ गैं कवचाय हुम्, ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ग अस्त्राय फट्।

इस न्यासके पश्चात् साधकका—' ॐ दुर्गाया पादुकाभ्या नम ', 'ॐ गुरुपादुकाभ्या नम '—मन्त्रसे माता दुर्गा और गुरुकी पादुकाओको नमस्कार करके देवी त्रिपुराके आसन और मूर्तिको प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् वह (साधक) 'ॐ ह्रीं दुर्गे रक्षिणि'—इस मन्त्रसे हृदयादिन्यास करे और फिर इसी मन्त्रसे 'रुद्रचण्डा प्रचण्डदुर्गा चण्डोग्रा चण्डनायिका चण्डा चण्डवती चण्डरूपा चण्डिका तथा दुर्गा'—इन नौ शक्तियोका पूजन करे। तदनन्तर वज्र खड्ग आदि मुद्राओका प्रदर्शनकर उसके अग्निकोणमे सदाशिव आदि दवाकी पूजा करे। अत साधक पहले 'ॐ सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नम' कहकर प्रणाम कर। तत्पश्चात् 'ॐ ए क्लीं (ह्रीं) सौं त्रिपुरायै नम' यह मन्त्रोच्चार करते हुए उस त्रिपुराशक्तिको नमस्कार करे।

साधक उसके बाद भगवती त्रिपुराके पद्मासन, मूर्ति और हृदयादि अङ्गाको प्रणाम करे। तत्पश्चात् उस पद्मपीठपर ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और चण्डिका—इन आठ देवियोकी पूजा करे। इन देवियाकी पूजाके बाद 'भैरव' नामक देवाकी पूजाका विधान है। असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त कपाली, भीषण तथा सहार नामवाले—ये आठ भैरव हैं।

भैरव-पूजाके पश्चात् रति, प्रीति, कामदव, पञ्चबाण, योगिनी बटुक, दुर्गा, विघ्नराज, गुरु और क्षेत्रपाल-देवाका भी पूजन कर।

साधकको पद्मगर्भ-मण्डल या त्रिकोणपीठ बनाकर उसपर और हृदयमे शुक्ल वर्णवाली, वरदायिनी, अक्षमाला पुस्तक एव अभय-मुद्रासे सुशोभित भगवती सरस्वतीका भी ध्यान करना चाहिये। एक लाख मन्त्रका जप और हवन करनेसे भगवती त्रिपुरेश्वरी साधकके लिये सिद्धिदात्री हो जाती हैं। पूजामें दवाके आसन तथा पादुकाकी पूजाका भी विधान है। विशेष पूजनमें मन्त्रन्यास तथा मण्डलादि-पूजन भी करना चाहिय। *(अध्याय २४—२६)*

---

[1] १-बद्धपद्मासनासीन सित षाडशवार्षिक ॥
पञ्चवक्त्र कराग्रै स्वैर्दशभिश्चैव धारयन्। अभय प्रसाद शक्ति शूल खट्वाङ्गमाधर ॥
दक्षै करैर्वामकैश्च भुजग चाक्षसूत्रकम्। डमरुक नीलोत्पल बीजपूरकमुत्तमम्॥ (२३। ५४—५६)

सर्पो एव अन्य विषैले जीव-जन्तुओके विषको दूर करनेका मन्त्र

सूतजीने कहा—अब मैं सर्पादि विभिन्न विषले जीव-जन्तुओके काटनेसे कष्ट पहुँचानेवाले विषको दूर करनेमे समर्थ मन्त्रका कह रहा हूँ, जो इस प्रकार है—

'ॐ कणिचिकीणिकक्वाणी चर्वाणी भूतहारिणि फणिविषिणि विरथनारायणि उमे दह दह हस्ते चण्डे रौद्र माहेश्वरि महामुखि ज्वालामुखि शङ्कुकर्णि शुकमुण्ड शत्रु हन हन सर्वनाशिनि स्वेदय सर्वाङ्गशोणित तन्निरीक्षयि मनसा देवि सम्मोहय सम्मोहय रुद्रस्य हृदये जाता रुद्रस्य हृदये स्थिता। रुद्रो रौद्रेण रूपेण त्व देवि रक्ष रक्ष मा हू मा हू फफफ ठठ स्कन्दमेखलाबालग्रहशत्रुविषहारी ॐ शाल माले हर हर विषोङ्काररहिविषवेगे हा हा शवरि हु शवरि आकौलवेगशे सर्वे विचमेघमाले सर्वनागादिविषहरणम्।'

इस मन्त्रका प्रयोग करते समय माहेश्वरी उमादेवीमे प्रार्थना करे कि हे उमे! तुम रुद्रके हृदयमे उत्पन्न हुई हो और उसीम रहती हो। तुम्हारा रौद्र रूप हे। तुम्हे रोद्री भी कहा जाता है। तुम्हारा मुख ज्वालाके समान जाज्वल्यमान है तथा तुमने अपने कटिप्रदेशमे क्षुद्र घण्टिका लगी करधनी पहन रखी है। तुम भूताकी प्रिय हो, सर्पोके लिये विषरूपिणी हो, तुम्हारा नाम विरथनारायणी है तथा तुम शुकमुण्डा हो और कानोमे शङ्कु पहनी हुई हो। हे विशाल मुखवाली, भयकर एव प्रचण्ड स्वभाववाली चण्डादेवी! हाथोम ज्वलन-शक्ति पैदा कर, शत्रुका हनन कर, हनन कर। सब प्रकारके विषोका नाश करनेवाली हे देवि! मेर सर्वाङ्गमे फैले हुए विषको प्रभावहीन कर दे। उस विषको तुम देख रही हा। [उस काटनेवाले जन्तुको] सम्मोहित करो, सम्मोहित करो। हे देवि! तुम मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। इस प्रकार प्रार्थना एव चिन्तन करके 'हू मा हू फफफ ठठ' इसका उच्चारण करे तथा 'स्कन्दकी मेखलारूपी बालग्रहो, शत्रुओ और विषोका हरण करनेवाली हे शाला-माला! नाना प्रकारके विषोके वगका हरण कर, हरण कर।' ऐमा उच्चारण करे और 'हा हा शवरि हु' शवरि कहकर वेगपूर्ण गतिशीलोमे अतिगतिशील सर्वत्र व्यापिनी मेघमालारूपिणी देवि! मरे सभी नागादि विषजन्तुओसे उत्पन्न विषका हरण करो।

[इस प्रकार चिन्तन और प्रार्थना करते हुए रोगीके प्रति स्पर्शादि करते हुए मन्त्रपाठ करे।]

(अध्याय २७)

श्रीगोपालजीकी पूजा, त्रैलोक्यमोहन-मन्त्र तथा श्रीधर-पूजनविधि

श्रीसूतजीने कहा—हे ऋषियो! मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली श्रीगापालजी तथा भगवान् श्रीधर विष्णुकी पूजाका वर्णन कर रहा हूँ, इसे सुन। पूजा प्रारम्भ करनेसे पहले पूजा-मण्डलक द्वारदेशमे गङ्गा ओर यमुनाक साथ धाता और विधाताकी, श्रीके साथ शङ्ख, पद्मनिधि एव शार्ङ्गधनुप और शरभकी पूजा करना चाहिय तथा पूर्व दिशाम भद्र और सुभद्रकी दक्षिण दिशामे चण्ड और प्रचण्डकी पश्चिम दिशाम बल और प्रबलका, उत्तर दिशाम जय और विजयकी तथा चारा दरवाजोपर श्री, गण दुर्गा और सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये।

मण्डलके अग्नि आदि कोणोमें और दिशाआम परम भागवत नारद सिद्ध तथा गुरुका एव नल-कूबरका पूजन करे। पूर्व दिशाम विष्णु, विष्णुतपा तथा विष्णुशक्तिकी अर्चना करे। इसक बाद विष्णुक परिवारकी अर्चना करे। मण्डलके मध्यमे शक्तिकी और कूर्म, अनन्त, पृथ्वी, धर्म, ज्ञान तथा वेराग्यकी अग्नि आदि कोणोमे पूजा करे। वायव्य-कोणके साथ उत्तर दिशाम प्रकाशात्मक एव ऐश्वर्यकी पूजा करे। 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा'—यह गोपालमन्त्र ह। मण्डलकी पूर्व दिशासे आरम्भ करके क्रमश आठा दिशाआम जाम्बवती और सुशीलाके साथ रुक्मिणी, सत्यभामा, सुनन्दा, नाग्रजिती, लक्ष्मणा और मित्रविन्दाकी पूजा करनी चाहिये।

साथ ही श्रीगोपालके शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुसल, खड्ग, पाश अङ्कुश, श्रीवत्स, कौस्तुभ, मुकुट, वनमाला, इन्द्रादि ध्वजवाहक दिक्पाल, कुमुदादिगण और विष्वक्सेनका पूजन करक श्रीलक्ष्मीसहित कृष्णकी भी अर्चना करनी चाहिये।

गोपीजनवल्लभक मन्त्र जपनेसे तथा उनका ध्यान

करनेसे एव उनकी (साङ्गापाङ्ग) पूजा करनसे साधक सभी कामनाओको पूर्ण कर लेता है।

त्रैलोक्यमोहन श्रीधरके मन्त्र इस प्रकार हैं—

'ॐ श्रीं (श्री) श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नम । क्लीं पुरुषोत्तमाय त्रैलोक्यमोहनाय नम । ॐ विष्णवे त्रैलोक्यमोहनाय नम । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नम ।

—ये मन्त्र समस्त प्रयोजनाको पूर्ण करनेवाले हैं।

श्रीसूतजी पुन बोले—अब मैं श्रीधर भगवान् (विष्णु)-की मङ्गलमयी पूजाका वर्णन करता हूँ।

साधकको सर्वप्रथम 'ॐ श्रां हृदयाय नम, ॐ श्रीं शिरस स्वाहा, ॐ श्रूं शिखायै वषट्, ॐ श्रैं कवचाय हुम्, ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रः अस्त्राय फट्'—इन मन्त्रासे अङ्गन्यास और करन्यास करना चाहिये। तदनन्तर भगवान्‌को शङ्ख, चक्र, गदास्वरूपिणी मुद्रा प्रदर्शितकर शङ्ख, चक्र तथा गदा-पद्मसे सुशोभित आत्मस्वरूप श्रीधर भगवान् पुरुषोत्तमका ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वस्तिक या सर्वतोभद्र-मण्डलमे श्रीधरदेवकी पूजा करनी चाहिये।

सर्वप्रथम शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णुके आसनकी पूजा करनी चाहिये।

'ॐ श्रीधरासनदेवता आगच्छत' इस मन्त्रसे आवाहन करके 'ॐ समस्तपरिवारायाच्युतासनाय नम', 'ॐ धात्रे नम', 'ॐ विधात्रे नम', 'ॐ गङ्गायै नम', 'ॐ यमुनायै नम', 'ॐ आधारशक्त्यै नम', 'ॐ कूर्माय नम', 'ॐ अनन्ताय नम', 'ॐ पृथिव्यै नम, 'ॐ धर्माय नम', 'ॐ ज्ञानाय नम', 'ॐ वैराग्याय नम' 'ॐ ऐश्वर्याय नम' 'ॐ अधर्माय नम', 'ॐ अज्ञानाय नम, 'ॐ अवैराग्याय नम', 'ॐ अनैश्वर्याय नम', 'ॐ कन्दाय नम' ॐ नालाय नम', 'ॐ पद्माय नम', 'ॐ विमलाय नम,' 'ॐ उत्कर्षिण्यै नम', 'ॐ ज्ञानायै नम, ॐ क्रियायै नम 'ॐ योगायै नम, ॐ प्रह्व्यै नम 'ॐ सत्यायै नम', 'ॐ ईशानायै नम, 'ॐ अनुग्रहायै नम'—इन मन्त्रोसे श्रीधरके आसनका पूजन करके (हे रुद्र!) पूर्वोक्त धाता विधाता गङ्गा आदि देवोका पूजा करना चाहिये। तदनन्तर हरिका आवाहन करके पूजन करे। उसके बाद ॐ ह्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नम आगच्छ।'—इस मन्त्रसे श्रीधरदेवका आवाहन तथा पूजन करना चाहिये।

इस पूजाके पश्चात् 'ॐ श्रियै नम'—इस मन्त्रसे लक्ष्मीका पूजन करना चाहिये। 'ॐ श्रां हृदयाय नम' 'ॐ श्रीं शिरसे नम', 'ॐ श्रूं शिखायै नम,' 'ॐ श्रैं कवचाय नम', 'ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय नम', 'ॐ श्रः अस्त्राय नम', 'ॐ शङ्खाय नम', 'ॐ पद्माय नम', 'ॐ चक्राय नम', 'ॐ गदायै नम', 'ॐ श्रीवत्साय नम', 'ॐ कौस्तुभाय नम', 'ॐ वनमालायै नम', 'ॐ पीताम्बराय नम,' 'ॐ ब्रह्मणे नम', 'ॐ नारदाय नम', 'ॐ गुरुभ्यो नम', 'ॐ इन्द्राय नम', 'ॐ अग्नये नम', 'ॐ यमाय नम', 'ॐ निर्ऋतये नम', 'ॐ वरुणाय नम', 'ॐ वायवे नम', 'ॐ सोमाय नम', 'ॐ ईशानाय नम', 'ॐ अनन्ताय नम', 'ॐ ब्रह्मणे नम', 'ॐ सत्त्वाय नम', 'ॐ रजसे नम', 'ॐ तमसे नम', 'ॐ विष्वक्सेनाय नम'—इत्यादि मन्त्रासे षडङ्गन्यास, अस्त्र-पूजा तथा उक्त देव-परिवारकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर सपरिकर भगवान् विष्णुका अभिषेक करके वस्त्र यज्ञोपवीत गन्ध, पुष्प धूप, दीप तथा नैवेद्य निवेदित करके प्रदक्षिणा करे। मूल मन्त्रका जप १०८ बार करे और किया हुआ जप अभीष्ट देव भगवान् श्रीधरको समर्पित कर दे।

तत्पश्चात् विद्वान् साधकको चाहिये कि मुहूर्तभर अपने हृदयदेशमे स्थित विशुद्ध स्फटिक मणिके समान कान्तिमान्, करोडो सूर्यके सदृश प्रभावाले प्रसन्नमुख, सौम्य मुद्रावाले, चमचमाते हुए धवल-मकराकृति-कुण्डलोसे सुशोभित, सिरपर मुकुटको धारण किये हुए, शुभलक्षणसम्पन्न अङ्गोवाले तथा वनमालासे अलंकृत परब्रह्मस्वरूप श्रीधरदेवका ध्यान करे।

उसके बाद इन स्तोत्रासे भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये—

श्रीनिवासाय देवाय नम श्रीपतये नम।
श्रीधराय सशार्ङ्गाय श्रीप्रदाय नमो नम॥
श्रीवल्लभाय शान्ताय श्रीमते च नमो नम।
श्रीपर्वतनिवासाय नम श्रेयस्कराय च॥

श्रेयसा पतये चैव ह्याश्रयाय नमो नम ।
नम श्रेय स्वरूपाय श्रीकराय नमो नम ॥
शरण्याय वरेण्याय नमो भूयो नमा नम ।
स्तोत्र कृत्वा नमस्कृत्य दवदेव विसर्जयत् ॥
इति रुद्र समाख्याता पूजा विष्णोर्महात्मन ।
य करोति महाभक्त्या स याति परम पदम् ॥
(३०। १५—१९)

हे देव। आप लक्ष्मीनिवास और श्रीपति हैं आपको मेरा नमस्कार है। आप श्रीधर हैं, शार्ङ्गपाणि हैं एव साधकको लक्ष्मी प्रदान करनेवाल ह, आपका मरा नमस्कार है। आप ही श्रीवल्लभ, शान्तिस्वरूप तथा ऐश्वर्यसम्पन्न दव हैं, आपका मेरा प्रणाम है।

आप श्रीपर्वतपर निवास करनेवाल हैं, समस्त मङ्गलाक स्वामी, सर्वकल्याणकर्ता तथा सर्वमङ्गलाधार हें, आपको मेरा बार-बार नमस्कार है। आप कल्याण और ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हें आपको मेरा नमन है। आप शरण दनवाले तथा सर्वश्रेष्ठ हैं, आपको बारम्बार प्रणाम है।

इस प्रकार देवाधिदेव श्रीधर भगवान् विष्णुका स्तवन ओर नमन करके उनका विसर्जन करना चाहिये। भक्तिपूर्वक इस पूजाको करनेवाला परमपदको प्राप्त करता है। जो विष्णुपूजाको प्रकाशित करनेवाले इस अध्यायका पाठ करता है, वह इस लोकम समस्त पापोसे मुक्त होकर अन्तम विष्णुके परमपदको प्राप्त करता है।

रुद्रने कहा—हे प्रभो। ह जगत्के स्वामी। पुन उस प्रकारकी पूजा-विधिको बतानेकी कृपा कर, जिसके द्वारा इस अत्यन्त दुस्तर भवसागरको पार किया जा सकता ह।

श्रीहरि बोले—हे वृषभध्वज। मैं विष्णुदवक पूजन-विधानको कह रहा हूँ। ह महाभाग। उस भोग ओर माक्षको देनेवाल कल्याणकारी पूजनके विपयम सुन।

हे रुद्र। सर्वप्रथम मनुष्यको स्नान करना चाहिय। तदनन्तर सध्यासे निवृत्त हाकर यज्ञमण्डपम प्रवेश करना चाहिये। हाथ-पैरका प्रक्षालनकर विधिवत् आचमन करके न्यासविधिके अनुसार दोना हाथाक द्वारा व्यापक रूपम मूलमन्त्रका करन्यास करना चाहिय। हे रुद्र। उन विष्णु-देवक मूलमन्त्रका कह रहा हूँ, आप सुन—

'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीधराय विष्णवे नम ।'

—यह मन्त्र दवाधिदव परमश्वर विष्णुका वाचक है। यह समस्त रोगाको हरण करनेवाला तथा सभी ग्रहोका शमनकर्ता है। यह सर्वपापविनाशक और भुक्ति-मुक्ति प्रदायक है।

साधकको इन मन्त्रोके द्वारा अङ्गन्यास करना चाहिये—

'ॐ हा हृदयाय नम , ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ हू शिखायै वपट्, ॐ हैं कवचाय हुम्, ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौपट्, ॐ ह अस्त्राय फट्।'

आत्मसयमी साधकका चाहिये कि वह अङ्गन्यास करक आत्ममुद्रा प्रदर्शित करे। तदनन्तर हृदयगुहाम विराजमान शङ्ख-चक्रसे युक्त, कुन्द-पुष्प आर चन्द्रमाके समान शुभ्र कान्तिवाल, श्रीवत्स और कोस्तुभमणिसे समन्वित, वनमाला तथा रत्नहार धारण किय हुए परमेश्वर भगवान् विष्णुका ध्यान करे।

तदनन्तर 'विष्णुमण्डलम अवस्थित होनेवाले आप सभी देवगणा, पार्पदा तथा शक्तियाका मैं आवाहन करता हूँ, यहाँपर आप सब पधार'—ऐसा कहकर—

'ॐ समस्तपरिवारायाच्युताय नम , ॐ धात्रे नम , ॐ विधात्रे नम , ॐ गङ्गायै नम , ॐ यमुनायै नम , ॐ शङ्खनिधये नम , ॐ पद्मनिधये नम , ॐ चण्डाय नम , ॐ प्रचण्डाय नम , ॐ द्वारश्रियै नम , ॐ आधारशक्त्यै नम , ॐ कूर्माय नम , ॐ अनन्ताय नम , ॐ श्रियै नम , ॐ धर्माय नम , ॐ ज्ञानाय नम , ॐ वैराग्याय नम , ॐ ऐश्वर्याय नम , ॐ अधर्माय नम , ॐ अज्ञानाय नम , ॐ अवैराग्याय नम , ॐ अनैश्वर्याय नम , ॐ स सत्त्वाय नम , ॐ र रजसे नम , ॐ त तमसे नम , ॐ क कन्दाय नम , ॐ न नालाय नम , ॐ ला पद्माय नम , ॐ अ अर्कमण्डलाय नम , ॐ सो सोममण्डलाय नम , ॐ व वह्निमण्डलाय नम , ॐ विमलायै नम , ॐ उत्कर्पिण्यै नम , ॐ ज्ञानायै नम , ॐ क्रियायै नम , ॐ योगायै नम , ॐ प्रह्व्यै नम , ॐ सत्यायै नम , ॐ ईशानायै नम , ॐ अनुग्रहायै नम'—इन नाममन्त्रोस गन्ध-पुष्पादि उपचाराके द्वारा धाता, विधाता गङ्गा यमुना आदि दवताआका नमस्कारपूर्वक पूजन करना चाहिय।

तदनन्तर हे रुद्र! सृष्टि तथा संहार करनेवाले, सभी पापोंको दूर करनेवाले परमेश्वर भगवान् विष्णुका मण्डलमें आवाहन करके इस विधिसे उनका पूजन करना चाहिये।

जिस प्रकार सर्वप्रथम अपने शरीरमें न्यास किया जाता है, उसी प्रकार प्रतिमामें भी सर्वप्रथम न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् मुद्राका प्रदर्शनकर अर्घ्य-पाद्यादि उपचारोंको अर्पण करना चाहिये। उसके बाद स्नान, वस्त्र, आचमन, गन्ध पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यरूपमें चरु अर्पित करके उन देवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदनन्तर उनके मन्त्रका जप करके इस जप-पूजनको उन्हें ही समर्पित कर देना चाहिये।

हे वृषभध्वज! उन श्रीधरदेवकी पूजा उनके मूल मन्त्रसे करनी चाहिये। हे त्रिनेत्र! इस समय में उन मन्त्रोंको भी कह रहा हूँ, जिनसे न्यास तथा विष्णुके परिवार, दिग्देवता और आयुध आदिकी पूजा करनी चाहिये। उन्हें आप सुनें—

ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे नमः, ॐ ह्रूं शिखायै नमः, ॐ ह्रैं कवचाय नमः, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः, ॐ ह्रः अस्त्राय नमः, ॐ श्रियै नमः, ॐ शङ्खाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ श्रीवत्साय नमः, ॐ कौस्तुभाय नमः, ॐ वनमालायै नमः, ॐ पीताम्बराय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ मुसलाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ शार्ङ्गाय नमः, ॐ शराय नमः ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ नारदाय नमः, ॐ पूर्वसिद्धेभ्यो नमः, ॐ भागवतेभ्यो नमः, ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ इन्द्राय सुराधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ अग्नये तेजोऽधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ यमाय प्रेताधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ वरुणाय जलाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ वायवे प्राणाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ सोमाय नक्षत्राधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ ईशानाय विद्याधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः ॐ अनन्ताय नागाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ ब्रह्मणे लोकाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ वज्राय हुं फट् नमः ॐ शक्त्यै हुं फट् नमः ॐ दण्डाय हुं फट् नमः ॐ खड्गाय हुं फट् नमः ॐ पाशाय हुं फट् नमः ॐ ध्वजाय हुं फट् नमः, ॐ गदायै हुं फट् नमः, ॐ त्रिशूलाय हुं फट् नमः, ॐ चक्राय हुं फट् नमः, ॐ पद्माय हुं फट् नमः, तथा ॐ वौं विष्वक्सेनाय नमः।

हे महादेव! इस प्रकार इन मन्त्रोंसे अधिकारी मनुष्योंको चाहिये कि वे विष्णुके विभिन्न अङ्गोंकी पूजा करें, तदनन्तर ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका पूजन करके इस स्तुतिसे उन अविनाशी परमात्म प्रभुका स्तवन करें—

विष्णवे देवदेवाय नमो वै प्रभविष्णवे॥
विष्णवे वासुदेवाय नमः स्थितिकराय च।
ग्रसिष्णवे नमश्चैव नमः प्रलयशायिने॥
देवानां प्रभवे चैव यज्ञानां प्रभवे नमः।
मुनीनां प्रभवे नित्यं यक्षाणां प्रभविष्णवे॥
जिष्णवे सर्वदेवानां सर्वगाय महात्मने।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवन्द्याय सर्वेशाय नमो नमः॥
सर्वलोकहितार्थाय लोकाध्यक्षाय वै नमः।
सर्वगोप्त्रे सर्वकर्त्रे सर्वदुष्टविनाशिने॥
वरप्रदाय शान्ताय वरेण्याय नमो नमः।
शरण्याय सुरूपाय धर्मकामार्थदायिने॥
(३१। २४—२९)

देवाधिदेव, तेजोमूर्ति भगवान् विष्णुदेवके लिये नमस्कार है। संसारकी स्थिति (पालन) करनेवाले वासुदेव विष्णुके लिये नमन है। प्रलयके समय संसारको अपने मूल कारण प्रकृतिमें लीन करके आत्मसात्‌कर शयन करनेवाले विष्णुको प्रणाम है। देवोंके अधिपति तथा यज्ञोंके अधिपति विष्णुको नमन है। मुनियों तथा यक्षोंके प्रभु और समस्त देवोंपर विजय प्राप्त करनेवाले, सबमें व्याप्त रहनेवाले महात्मा ब्रह्मा इन्द्र-रुद्रादिके वन्दनीय सर्वेश्वर भगवान् विष्णुके लिये नमस्कार है।

समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले, लोकाध्यक्ष सर्वगोप्ता, सर्वकर्ता तथा समस्त दुष्टोंके विनाशक भगवान् विष्णुके लिये नमन है। वर प्रदान करनेवाले परम शान्त, सर्वश्रेष्ठ शरणागतकी रक्षा करनेवाले सुन्दर रूपवाले धर्म-काम तथा अर्थ—इस त्रिवर्गके प्रदाता भगवान् विष्णुके लिये बार-बार प्रणाम है।

हे शङ्कर! इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप अव्यय, परात्पर भगवान् विष्णुकी स्तुति करके अपने हृदयमें उनका ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् मूल मन्त्रसे उन विष्णुकी पूजा

करनी चाहिये और मूल मन्त्रका जप करना चाहिये। जो अधिकारी व्यक्ति ऐसा करता है, वह भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है। हे रुद्र! इस प्रकार मैंने आपसे इस रहस्यपूर्ण, परम गुह्य, भुक्ति-मुक्तिप्रद और उत्तम विष्णुकी पूजाविधिको कहा है। हे शङ्कर! जो विद्वान् पुरुष इसका पाठ करता है, वह विष्णुभक्त हो जाता है। इसे जो सुनता है अथवा सुनाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय २८—३१)

पञ्चतत्त्वार्चन-विधि

महेश्वरने कहा—हे शङ्ख-चक्र-गदाधर! आप पञ्चतत्त्वोकी उस पूजा-विधिको मुझे बतानेकी कृपा करे, जिसका ज्ञान प्राप्त कर लेनेमात्रसे ही मनुष्य परमपदको प्राप्त कर लेता है।

श्रीहरिने कहा—हे सुव्रत शिव! मैं आपसे पञ्चतत्त्व-पूजा-विधिको कह रहा हूँ, यह दिव्य, मङ्गलस्वरूप, कल्याणकारी, रहस्यपूर्ण, श्रेष्ठ तथा अभीष्टोकी सिद्धि करनेवाली है। हे महादेव! ऐसे उस परम पवित्र कलिदोष-विनाशक पूजन-विधिका आप श्रवण करे।

हे सदाशिव! एक ही परमात्मा जो वासुदेव श्रीहरि हैं, वे ही अविनाशी, शान्त, सनातन, सत्-स्वरूप हैं। वे ध्रुव (नित्य, अचल), शुद्ध, सर्वव्याप्त तथा निरञ्जन हैं। वे ही विष्णुदेव अपनी मायाके प्रभावसे पाँच प्रकारसे अवस्थित हैं। वे जगत्का कल्याण करनेवाले हैं। वे ही अद्वितीय विष्णु वासुदेव सकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायणस्वरूपसे पाँच रूपा (तत्त्वो)-मे स्थित हैं।

हे वृषध्वज! जनार्दन विष्णुके उक्त पञ्चरूपोके वाचक मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ अ वासुदेवाय नम , ॐ आ सकर्षणाय नम , ॐ अ प्रद्युम्नाय नम , ॐ अ अनिरुद्धाय नम , ॐ ॐ नारायणाय नम ।

—ये पाँच मन्त्र उक्त पाँच देवताओके वाचक हैं, जो सभी पातक, महापातकोके विनाशक, पुण्यजनक तथा समस्त रोगाको दूर करनेवाले हैं। अब मैं आपसे मङ्गलमय पञ्चतत्त्वार्चन-विधिको कह रहा हूँ। हे शिव! उसको जिस विधिसे और जिन मन्त्रोके द्वारा सम्पन्न करना चाहिये, उसका आप श्रवण करे।

—इन पाँच देवोकी पूजामे सर्वप्रथम स्नान करके विधिवत् सध्या करनी चाहिये। तदनन्तर हाथ-पैर धोकर पूजा-गृहमे प्रवेश करके विद्वान् साधकको चाहिये कि वह आचमन करके मनोऽनुकूल आसन लगाकर बैठ जाय और—'अ क्षौं रम्'—इन मन्त्रोसे शोषणादि क्रिया करे।

वे वासुदेव कृष्ण जगत्के स्वामी, पीतवर्णके कौशेय (रेशमी) वस्त्रोसे विभूषित, सहस्रो सूर्यकी किरणोके समान तेज स्वरूप तथा देदीप्यमान मकराकृति-कुण्डलोसे सुशोभित हैं, ऐसे उन भगवान् कृष्णका अपने हृदय-कमलमे ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर भगवान् सकर्षणका ध्यान करे। उसके बाद यथाक्रम प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा श्रीमन्नारायणके स्वरूपका ध्यान करके उन देवाधिदेवसे प्रादुर्भूत इन्द्रादि देवोका ध्यान करके मूल मन्त्रके द्वारा दोनो हाथासे व्यापक रूपमे करन्यास करे, तत्पश्चात् अङ्गन्यासके मन्त्रोसे अङ्गन्यास करे। हे महादेव! सुव्रत! उन न्यास एव पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—

'ॐ आ हृदयाय नम , ॐ ईं शिरसे नम , ॐ ऊ शिखायै नम , ॐ ऐ कवचाय नम , ॐ औं नेत्रत्रयाय नम , ॐ अ अस्त्राय फट्, ॐ समस्तपरिवारायाच्युताय नम , ॐ धात्रे नम , ॐ विधात्रे नम , ॐ आधारशक्त्यै नम , ॐ कूर्माय नम , ॐ अनन्ताय नम , ॐ पृथिव्यै नम , ॐ धर्माय नम , ॐ ज्ञानाय नम , ॐ वैराग्याय नम , ॐ ऐश्वर्याय नम , ॐ अधर्माय नम , ॐ अज्ञानाय नम , ॐ अनैश्वर्याय नम , ॐ अ अर्कमण्डलाय नम , ॐ सो सोममण्डलाय नम , ॐ व वह्निमण्डलाय नम , ॐ व वासुदेवाय परब्रह्मणे शिवाय तेजोरूपाय व्यापिने सर्वदेवाधिदेवाय नम , ॐ पाञ्चजन्याय नम , ॐ सुदर्शनाय नम , ॐ गदायै नम , ॐ पद्माय नम , ॐ श्रियै नम , ॐ ह्रियै नम , ॐ पुष्ट्यै नम , ॐ गीत्यै नम , ॐ शक्त्यै नम , ॐ प्रीत्यै नम , ॐ इन्द्राय नम , ॐ अग्नये नम , ॐ यमाय नम , ॐ निर्ऋतये नम , ॐ वरुणाय नम , ॐ वायवे नम , ॐ सोमाय नम , ॐ ईशानाय नम , ॐ अनन्ताय नम , ॐ ब्रह्मणे नम , ॐ विष्वक्सेनाय नम ।'

तत्पश्चात् 'ॐ पद्माय नम ' ऐसा कहकर स्वस्तिक और सर्वतोभद्रादि मण्डलोका निर्माण करके उस मण्डलमे इन्हीं मन्त्रासे देवोका पूजन करना चाहिये।

मूल मन्त्रसे पाद्य आदिका निवेदन करके स्नान वस्त्र,

आचमन गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य प्रदान करके नमस्कार तथा प्रदक्षिणा करनी चाहिये। हे शङ्कर! उसके बाद यथाशक्ति मूल मन्त्रका जपकर उसे प्रभुको समर्पित कर दे।

तदनन्तर भगवान् वासुदेवका स्मरणकर इस स्तोत्रका पाठ करे—

ॐ नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च॥
प्रद्युम्नायादिदेवायानिरुद्धाय नमो नमः।
नमो नारायणायैव नराणां पतये नमः॥
नरपूज्याय कीर्त्याय स्तुत्याय वरदाय च।
अनादिनिधनायैव पुराणाय नमो नमः॥
सृष्टिसंहारकर्त्रे च ब्रह्मणः पतये नमः।
नमो वै वेदवेद्याय शङ्खचक्रधराय च॥
कलिकल्मषहर्त्रे च सुरेशाय नमो नमः।
संसारवृक्षच्छेत्रे च मायाभेत्रे नमो नमः॥
बहुरूपाय तीर्थाय त्रिगुणायागुणाय च।
ब्रह्मविष्ण्वीशरूपाय मोक्षदाय नमो नमः॥
मोक्षद्वाराय धर्माय निर्वाणाय नमो नमः।
सर्वकामप्रदायैव परब्रह्मस्वरूपिणे॥
संसारसागरे घोरे निमग्नं मां समुद्धर।
त्वदन्यो नास्ति देवेश नास्ति त्राता जगत्प्रभो॥
त्वामेव सर्वगं विष्णुं गतोऽहं शरणं ततः।
ज्ञानदीपप्रदानेन तमोमुक्तं प्रकाशय॥

(३२।३०—३८)

'हे वासुदेव! हे संकर्षण (बलराम)! आपको नमस्कार है। हे प्रद्युम्न, आदिदेव अनिरुद्ध! आपके लिये नमस्कार है। हे नारायण! नराधिपति! आपको नमन है, कीर्तन करने योग्य मनुष्योंसे पूजनीय, स्तुति करने योग्य, वर देनेवाले, आदि तथा अन्तसे रहित सनातन प्रभुको बारम्बार नमस्कार है। सृष्टि और संहारकर्ता ब्रह्माके भी स्वामी तथा शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। नमस्कार है।'

कलिकालके दोषोंको नष्ट करनेवाले, देवोंके ईश! आपको बारम्बार प्रणाम है। सम्पूर्ण जगत्-रूपी मूल वृक्षको छेदन करनेवाले, मायाको भेदन करनेवाले, बहुत-से रूपोंको धारण करनेवाले तीर्थस्वरूप सत्त्व, रजस् तथा तमोरूप एवं वस्तुतः निर्गुण तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन रूपोंमें अवस्थित रहनेवाले मोक्षदायक भगवान् विष्णु परमेश्वरको नमस्कार है। मोक्षके द्वारभूत धर्मस्वरूप निर्वाणरूप, समस्त अभीष्टोंको प्रदान करनेवाले परब्रह्मस्वरूप आपके लिये बार-बार नमस्कार है। इस गहन संसारसागरमें मैं डूब रहा हूँ, आप मेरा उद्धार करें। हे देवदेवेश्वर! हे जगत्‌के स्वामी! आपके अतिरिक्त मेरा कोई भी रक्षक नहीं है। सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले हे भगवान् विष्णु! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे भगवन्! ज्ञानरूपी दीपकको प्रज्वलितकर मेरे (अज्ञानरूपी) अन्धकारको दूर करके मुझे प्रकाशित कर दें।

इस प्रकार समस्त कष्टोंको दूर करनेवाले देवेश भगवान् वासुदेवकी स्तुति करके हे नीललोहित शिव! अन्य वैदिक स्तोत्र-पाठोंसे भी स्तुति करके पञ्चतत्त्वोंसे युक्त उन भगवान् विष्णुका अपने हृदयमें ध्यान करे। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये। इस प्रकार हे शङ्कर! सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली वासुदेवकी श्रेष्ठ पूजा कही गयी। इस पूजाके करनेमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।

हे रुद्र! जो व्यक्ति इस पञ्चतत्त्वार्चनको पढ़ता है, सुनता है अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ३२)

सुदर्शनचक्र-पूजा-विधि

रुद्रने कहा—हे शङ्ख-गदाधर! उस सुदर्शनकी पूजाके विषयमें मुझे बताये, जिसे करनेसे ग्रहदोष और रोगादि—सभी कष्ट विनष्ट हो जाते हैं।

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! सुदर्शनचक्रकी पूजा-विधिको मैं कह रहा हूँ, आप सुनें। सर्वप्रथम स्नान करके हरिका पूजन करे। साधकको चाहिये कि अपने निर्मल एवं शुभ हृदय-कमलमें भगवान् सुदर्शनदेव विष्णुका ध्यान करे। हे महादेव! उसके बाद मण्डलमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करनेवाले सौम्य आकृतिवाले किरीटी भगवान् विष्णुदेवका आवाहन करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि विविध उपचारोंसे पूजा करे।

पूजाके अन्तमें मूल मन्त्रका १०८ बार जप करे। हे रुद्र! जो इस प्रकार सुदर्शनचक्रका उत्तम पूजन करता है, वह इस लोकमें समस्त रोगोंसे विमुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। मन्त्र-जपके पश्चात् सभी व्याधियोंको विनष्ट करनेवाले इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये—

नम सुदर्शनायैव सहस्रादित्यवर्चसे ॥
ज्वालामालाप्रदीप्ताय सहस्राराय चक्षुषे।
सर्वदुष्टविनाशाय सर्वपातकमर्दिने ॥
सुचक्राय विचक्राय सर्वमन्त्रविभेदिने।
प्रसवित्रे जगद्धात्रे जगद्विध्वसिने नम ॥
पालनार्थाय लोकाना दुष्टासुरविनाशिने।
उग्राय चैव सौम्याय चण्डाय च नमो नम ॥
नमश्चक्षु स्वरूपाय ससारभयभेदिने।
मायापञ्जरभेत्रे च शिवाय च नमो नम ॥
ग्रहातिग्रहरूपाय ग्रहाणा पतये नम ।
कालाय मृत्यवे चैव भीमाय च नमो नम ॥
भक्तानुग्रहदात्रे च भक्तगोप्त्रे नमो नम ।
विष्णुरूपाय शान्ताय चायुधाना धराय च॥
विष्णुशस्त्राय चक्राय नमो भूयो नमो नम ।
इति स्तोत्र महत्पुण्य चक्रस्य तव कीर्तितम्॥
य पठेत् परया भक्त्या विष्णुलोक स गच्छति।
चक्रपूजाविधि यश्च पठद्रुद्र जितन्द्रिय ।
स पाप भस्मसात्कृत्वा विष्णुलोकाय कल्पते॥

(३३।८—१६)

सहस्रा सूर्यके समान तेज सम्पन्न सुदर्शनचक्रके लिये नमस्कार है। तेजस्वी किरणाकी मालाआसे प्रदीप्त हजारा अरे (चक्रक अवयव)-वाल, नत्रस्वरूप, सर्वदुष्टविनाशक तथा सभी प्रकारके पापोको नष्ट करनवाल आपको नमन है। सुचक्र तथा विचक्र नामधारी, सम्पूर्ण मन्त्रका भेदन करनेवाले, जगत्की सृष्टि करनेवाले, पालन-पोषण करनवाले एव जगत्का सहार करनवाले हे सुदर्शनचक्र! आपको नमस्कार है। (ससारकी रक्षा करनेक लिय) देवताआका कल्याण करनेवाले, दुष्ट राक्षसाका विनाश करनवाल, दुष्टाका सहार करनके लिये उग्र-स्वरूप एव प्रचण्ड-स्वरूप और सज्जनाके लिये सोम्य-स्वरूप धारण करनेवाले आपको बारम्बार नमस्कार हे। जगत्के लिय नत्रस्वरूप ससारभयको काटनेवाले मायारूपी पिजडेका भेदन करनेवाल, कल्याणकारी सुदर्शनचक्रको नमस्कार ह। ग्रह एव अतिग्रहस्वरूप, ग्रहपति, कालस्वरूप, मृत्युस्वरूप, पापात्माओक लिये महाभयकर आपक लिये बार-बार नमन है। भक्तापर कृपा करनवाले उनक अभिरक्षक, विष्णुस्वरूप, शान्तस्वभाव समस्त आयुधाकी शक्तिका अपनेम धारणकर स्थित रहनवाले विष्णुके शस्त्रभूत हे सुदर्शनचक्र! आपक लिय बारम्बार नमस्कार हे।

हे शङ्कर! सुदर्शनचक्रक इस महत्पुण्यशाली स्तोत्रका जो मनुष्य परम भक्तिस पाठ करता ह, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय ३३)

भगवान् हयग्रीवके पूजनकी विधि

रुद्रने कहा—हे हृषीकेश! हे गदाधर! आप पुन देवार्चनविधिको बताये। आपके द्वारा बार-बार दव-पूजनविधिको सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं हा रही ह।

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं हयग्रीव नामक दवके पूजनविधानको कहता हूँ, आप सुन। उसक्र करनेस जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु अत्यन्त सतुष्ट हो जायँगे।

हे शङ्कर! उस पूजनका मूल मन्त्र हयग्रीवदवका ही वाचक है। वह परम पुण्यशाली मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ सौं क्षौं शिरसे नम ' यह प्रणव-युक्त मन्त्र सभी प्रकारका विद्याआको प्रदान करनवाला है।

'ॐ क्षा हृदयाय नम , ॐ क्षीं शिरस स्वाहा, ॐ क्षू शिखायै वषट्, ॐ क्षै कवचाय हुम्, ॐ क्षौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह अस्त्राय फट्—इन मन्त्रासे अङ्गन्यास और करन्यास करना चाहिय।

ह शङ्कर! वे हयग्रीव दव शङ्ख, कुन्दपुष्प, चन्द्रक सदृश श्वतवर्ण, कमलनालतन्तु आर रजतधातुकी कान्तिक समान दहकान्तिका धारण करनवाल गौक दुग्धका भाँति और कराडा सूर्योक सदृश प्रनिभासित हानवाले, शङ्ख, चक्र गदा तथा पद्मका धारण किय हुए चार भुजावाल हैं। व सवव्यापी दवता मुकुट कुण्डल, वनमालास सुशाभित, सुदर्शनचक्रस युक्त सुन्दर-सुन्दर कपालावाल पीताम्बरका धारण किय हुए हैं। सभी दवास युक्त उन विराट्दवकी अपनम भावना करक अङ्गमन्त्राम तथा मूल मन्त्रसे न्यास करना चाहिये। इसक पश्चात् मूल मन्त्रस ही शङ्ख पद्मादिकी मङ्गलमयी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिय। ह शङ्कर! इस प्रकार मुद्राएँ दिखा करक मूल मन्त्रम विष्णुका ध्यान

अर्चा करनी चाहिये।

हे रुद्र! इसके बाद हयग्रीवके आसनके सन्निकट अवस्थित रहनेवाले जो अन्य देव हैं, उनका आवाहन करना चाहिये। यथा—

'ॐ हयग्रीवासनस्थ आगच्छत च देवता।'

—इस प्रकार आवाहन करके स्वस्तिक या सर्वतोभद्र-मण्डलके अन्तर्गत उन देवोंका पूजन करके द्वारपर धाता और विधाताकी पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

हे वृषध्वज! 'समस्तपरिवाराय अच्युताय नमः'—इस मन्त्रसे मण्डलके मध्यमें भगवान् विष्णुका पूजन करके द्वारपर गङ्गा, महादेवी तथा शङ्ख एवं पद्म नामक निधिकी पूजा करके अग्रभागमें गरुड तथा मध्यभागमें आधार नामवाली शक्तिकी पूजा करनी चाहिये।

हे महादेव! तदनन्तर कूर्म, अनन्त एवं पृथ्वीका पूजन करे और अग्निकोणमें धर्म, नैर्ऋत्यकोणमें ज्ञान, वायुकोणमें वैराग्य तथा ईशानकोणमें ऐश्वर्यका पूजन करना चाहिये। इसके बाद पूर्व दिशामें अधर्म, दक्षिण दिशामें अज्ञान, पश्चिम दिशामें अवैराग्य तथा उत्तर दिशामें अनैश्वर्यका भी पूजन करना चाहिये। इसके बाद मण्डलके मध्यमें सत्त्व, रजस् तथा तमस्—इन तीन गुणोंकी पूजा करके मध्यभागमें ही कन्द नाल और पद्मकी विधिवत् पूजा करे। तदनन्तर मध्यदेशमें अर्क सोम और अग्निमण्डलका पूजन करना चाहिये।

हे वृषध्वज! विमला, उत्कर्षिणी ज्ञाना, क्रिया योगा प्रह्वी सत्या, ईशाना तथा अनुग्रहा नामक ये शक्तियाँ हैं। पूर्वादि दिशाओंमें—पूर्व, दक्षिण पश्चिम तथा उत्तरमें अवस्थित पद्मपत्रोंपर यथाक्रम 'ॐ विमलायै नमः', 'ॐ उत्कर्षिण्यै नमः', ॐ ज्ञानायै नमः', 'ॐ क्रियायै नमः', 'ॐ योगायै नमः इत्यादि मन्त्रोंसे विमलादि शक्तियोंका पूजन करना चाहिये। कल्याणकामी व्यक्तिको चाहिये कि वे अनुग्रहा नामक शक्तिकी पूजा पद्मकी कर्णिकामें 'ॐ अनुग्रहायै नमः' इस मन्त्रसे करे।

इस विधिसे स्नान गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य समर्पण करके देवके आसनका मङ्गलमय पूजन करना चाहिये। इस पूजाके पश्चात् देवाधिदेव भगवान् हयग्रीवदेवका मण्डलमें आवाहन करना चाहिये। आवाहन करके समाहित होकर उनका न्यास भी करना चाहिये। न्यास करनेके पश्चात् देवों और असुरोंसे नमस्कृत देवाधिदेव परमेश्वर भगवान् हयग्रीवका पुनः ध्यान करना चाहिये और शङ्ख-चक्रादि मङ्गलमयी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये। उसके बाद पाद्य, अर्घ्य, आचमन तथा स्नान प्रदान करे। हे वृषध्वज! उन्हें वस्त्र प्रदान करनेके बाद आचमन प्रदानकर उनको सुन्दर यज्ञोपवीत समर्पित करना चाहिये और उन्हें पाद्य, अर्घ्य आदि प्रदान करना चाहिये। अनन्तर मूल मन्त्रसे भैरवदेवका पाद्यादि प्रदान करते हुए उनका विधिवत् पूजन करना चाहिये।

हे शिव! इसके बाद शुभदायिनी तथा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली परमादेवी लक्ष्मीकी पूजा करे। पूर्व दिशामें 'ॐ शङ्खाय नमः' कहकर शङ्खका, दक्षिण दिशामें 'ॐ पद्माय नमः' कहकर पद्मका, पश्चिम दिशामें 'ॐ चक्राय नमः' से चक्रका तथा उत्तर दिशामें 'ॐ गदायै नमः' से गदाका यथाक्रम पूजन करे।

इसी प्रकार पुनः पूर्व दिशामें 'ॐ खड्गाय नमः' से खड्ग, दक्षिण दिशामें 'ॐ मुसलाय नमः' से मुसल, पश्चिम दिशामें 'ॐ पाशाय नमः' से पाश, उत्तर दिशामें 'ॐ अङ्कुशाय नमः' से अङ्कुश तथा मध्यमें 'ॐ सशराय धनुषे नमः' कहकर शरयुक्त धनुषकी पूजा करनी चाहिये।

हे रुद्र! पुनः पूर्व आदि चार दिशाओंमें श्रीवत्स, कौस्तुभ वनमाला और मङ्गलमय पीताम्बरकी पूजा करके पुनः शङ्ख चक्र, गदाधारी भगवान् हयग्रीवकी पूजा करे।

तदनन्तर 'ॐ ब्रह्मणे नमः' से ब्रह्मा, 'ॐ नारदाय नमः' से नारद, 'ॐ सिद्धाय नमः' से सिद्ध 'ॐ गुरुभ्यो नमः' से गुरु, 'ॐ परगुरुभ्यो नमः' से परगुरु और 'ॐ गुरुपादुकाभ्यां नमः' से गुरुपादुकाकी पूजा करे।

तत्पश्चात् 'ॐ सवाहनाय सपरिवाराय इन्द्राय नमः', 'ॐ सवाहनाय सपरिवाराय अग्नये नमः', 'ॐ यमाय नमः', 'ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ वरुणाय नमः', 'ॐ वायवे नमः', 'ॐ सोमाय नमः', 'ॐ ईशानाय नमः', 'ॐ अनन्ताय नमः', 'ॐ ब्रह्मणे नमः'—इन मन्त्रोंसे पूर्व आदि दिशाओंसे ऊर्ध्वदिशापर्यन्त इन्द्र अग्नि आदि सभी दिग्-देवताओंकी पूजा करनी चाहिये।

इसक बाद 'ॐ वज्राय नम ', 'ॐ शक्तये नम ', 'ॐ दण्डाय नम ', 'ॐ खड्गाय नम ', 'ॐ पाशाय नम ', 'ॐ ध्वजाय नम ', 'ॐ गदायै नम ', 'ॐ त्रिशूलाय नम ', 'ॐ चक्राय नम ', 'ॐ पद्माय नम '—इन मन्त्रोसे वज्र, शक्ति आदि आयुधाकी पूजा करे।

तत्पश्चात् ईशानकोणम 'ॐ विष्वक्सेनाय नम ' इस मन्त्रसे विष्वक्सेनकी पूजा करे। इसी प्रकार अनन्तकी भी पूजा करे। हे वृषभध्वज! भगवान् हयग्रीवके मूल मन्त्रसे गन्ध पुष्प, धूप, दीप तथा नेवेद्यके द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् उन (दव हयग्रीव)-की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे और यथाशक्ति मूल मन्त्रका जपकर उन्ह समर्पित कर दे। तदनन्तर देवश्वर भगवान् हयग्रीवकी इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये—

ॐ नमो हयशिरसे विद्याध्यक्षाय वै नम ॥
नमो विद्यास्वरूपाय विद्यादात्र नमो नम ।
नम शान्ताय देवाय त्रिगुणायात्मने नम ॥
सुरासुरनिहन्त्रे च सर्वदुष्टविनाशिने।
सर्वलोकाधिपतये ब्रह्मरूपाय वै नम ॥
नमश्शेश्वरवन्द्याय शङ्खचक्रधराय च।
नम आद्याय दान्ताय सर्वसत्त्वहिताय च॥
त्रिगुणायागुणायैव ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणे।
कर्त्रे हर्त्रे सुरेशाय सर्वगाय नमो नम ॥
(३४।५०—५४)

'सर्वविद्याधिपति, अश्वशिर भगवान्को नमस्कार है। विद्यास्वरूप, विद्याप्रदायक उन देवके लिये बार-बार नमन है। शान्तस्वरूप, त्रिगुणात्मक, सुर तथा असुराका निग्रह करनेवाले, सभी दुष्टोका विनाश करनेवाले, सर्वलाकाधिपति ब्रह्मस्वरूप उन देव हयग्रीवके लिये नमस्कार है। महेश्वरके लिये भी वन्दनीय, शङ्ख-चक्रधारी, जगत्के आदि कारण, परम उदार तथा सभी प्राणियोका हित करनेवाले देवके लिये नमस्कार हे। त्रिगुणात्मक, त्रिगुणातीत, ब्रह्मा-विष्णुस्वरूप, जगत्की सृष्टिके कर्ता, सहर्ता, देवश्वर तथा सर्वव्यापक उन भगवान् हयग्रीवको बारम्बार नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके अपने हृदयकमलके मध्य शङ्ख, चक्र और गदाको धारण करनेवाल, करोडो सूर्योंके समान कान्तिमान्, सर्वाङ्गसुन्दर, अविनाशी महश्वरके भी ईश, देवाधिदेव, परमात्मा हयग्रीवका ध्यान करना चाहिये।

हे शङ्कर! इस प्रकार मॅंन भगवान् हयग्रीवकी पूजा-विधिका वर्णन किया। परम भक्तिपूर्वक जो इसका पाठ करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। (अध्याय ३४)

गायत्रीन्यास तथा सध्या-विधि

श्रीहरिने कहा—हे शङ्कर! अब मैं गायत्रीदेवीके [पूजनमें] न्यासादिका वर्णन करूँगा आप इसका श्रवण कर। इस (गायत्री-मन्त्र)-के ऋषि विश्वामित्र, देवता सविता, मस्तक ब्रह्मा और शिखा रुद्र हैं। ये विष्णुके हृदयमें रहनेवाली हैं। ये विनियोग-कालमे एकनेत्रा हैं। इनका प्रादुर्भाव कात्यायन-गोत्रमे हुआ है, तीनो लोक इनके चरण हैं तथा ये पृथ्वीकी कोखमे स्थित रहती हैं। गायत्रीदेवीके स्वरूपको इस प्रकार जानकर [गायत्री-मन्त्रका] बारह लाख जप करना चाहिये।

इस मन्त्रके त्रिपाद तथा चतुष्पाद अर्थात् तीन चरण तथा चार चरण होते हैं। त्रिपादके प्रत्येक चरणम आठ अक्षर तथा चतुष्पादके प्रत्येक चरणमे छ अक्षर होते हैं। जपम त्रिपदा और पूजनम चतुष्पदा गायत्रीक मन्त्रका प्रयोग करनेके लिये कहा गया है[1]।

जप, ध्यान यज्ञादि कृत्य एव पूजनक कार्योंमें [illegible] इस सर्वपापविनाशिनी गायत्रीदवीका विधिवत् अपने अङ्गोंमें न्यास करना चाहिय।

पैरके अङ्गुष्ठ-भागमें [illegible][2]के मध्यमें दोनों [illegible] दोना जानुओं[3] [illegible][4] [illegible] [illegible] [illegible] नाभि [illegible] दोनों [illegible] हृदय, कण्ठ ओष्ठ मुख [illegible] दोनों [illegible] दोनों नेत्र और भौंहों [illegible]

१-जिस गायत्री-मन्त्रका जप किया जाता है वह त्रिपदा [illegible] है। [illegible] चतुष्पदा गायत्रीका प्रयोग सूर्योपस्थान पूजन आदिमें होता है। २-[illegible] ([illegible]) [illegible]। ३-[illegible] ([illegible])। ४-[illegible] ऊपरका भाग।

मस्तकमें इस (गायत्री)-मन्त्रका न्यास करके क्रमशः पूर्व, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिम दिशामें इनका न्यास करना चाहिये।

हे रुद्र! इन गायत्रीदेवीके मन्त्रके वर्णों (रंगों)-को कह रहा हूँ। क्रमशः इसके (चौबीस) अक्षर इन्द्रनीलमणि, अग्निसदृश, पीत, श्याम, कपिलवर्ण, श्वेत, विद्युत्प्रभ, मौक्तिकवर्ण, कृष्ण, रक्त, श्याम, शुक्ल, पीत, श्वेत, पद्मरागतुल्य, शङ्खवर्ण, पाण्डुर, रक्त, आसवके समान रक्तकृष्णमिश्रित, सूर्यसदृश, सौम्य, श्वेत, शङ्खकी आभाके समान तथा श्वेत हैं।

गायत्रीदेवीके मन्त्रका जप करके मनुष्य जिन-जिन वस्तुओंका हाथसे स्पर्श करता है और नेत्रोंसे जिनका-जिनका अवलोकन करता है, वे सभी पवित्र हो जाते हैं। गायत्रीसे श्रेष्ठ कोई दूसरा मन्त्र नहीं है, ऐसा समझना चाहिये—

यद्यत्स्पृशति हस्तेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
पूतं भवति तत् सर्वं गायत्र्या न परं विदुः॥ (३५। ११)

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! अब पापविनाशिनी संध्याकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ। उसे आप सुनें। तीन बार प्राणायाम[1] करके संध्या[2]-स्नानका उपक्रम करे। प्राणवायुको संयतकर प्रणवमन्त्र (ॐकार) तथा सप्त व्याहृतिसे युक्त गायत्री-मन्त्रका (आपो ज्योतीरसोऽमृतं भूर्भुवः स्वरोम्) इस गायत्री सिरके साथ तीन बार उच्चारण करनेको प्राणायाम कहते हैं। द्विज प्राणायामोंके द्वारा मानसिक, वाचिक तथा कायिक दोषोंको भस्म कर लेता है। इसीलिये यथाविधि यथानियत सभी कालोंमें प्राणायामपरायण होना चाहिये।

प्रातः 'सूर्यश्च०'[3] इस मन्त्रके द्वारा मध्याह्नमें 'आपः पुनन्तु०'[4] इस मन्त्रसे तथा सायंकाल 'अग्निश्च मा मन्युश्च०'[5] इस मन्त्रके द्वारा यथाविधि आचमन करके प्रणव-मन्त्रसे युक्त 'आपो हि०'[6] इस ऋचासे कुशोदकके द्वारा मार्जन करते हुए प्रत्येक पदपर जल सिरपर छिड़के।

रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाले पाप, तमोगुण और अज्ञानजन्य पाप, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिकी स्थितिमें होनेवाले पाप तथा कायिक, वाचिक एवं मानसिक—ये नवों पाप इन मन्त्रोंसे (मार्जनद्वारा) भस्म हो जाते हैं—

रजस्तमःस्वमोहोत्थान् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिजान्।
वाङ्मनःकर्मजान् दोषान् नवैतान् नवभिर्दहेत्॥ (३६। ६)

दाहिने हाथमें जल लेकर उसे 'द्रुपदा०'[7] मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रितकर सिरपर छोड़ दे। अघमर्षण[8] मन्त्रकी तीन, छः, आठ अथवा बारह आवृत्ति करके अघमर्षण करे। तत्पश्चात् 'उदु त्यं०'[9] तथा 'चित्रं०'[10]—इन मन्त्रोंसे सूर्योपस्थान करना चाहिये। इससे दिन तथा रात्रिमें किये गये समस्त पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं।

१-यहाँ संध्याका प्रकरण प्राणायामसे प्रारम्भ किया गया है, परंतु प्राणायामसे पूर्व संध्योपासनमें मलापकर्षण, पवित्रीकरण, शिखाबन्धन, भस्मधारण आदि करनेका विधान है। तत्पश्चात् आचमन, मार्जन, भूमिशोधनके अनन्तर संकल्प करके 'ऋतञ्च०' इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये। तदनन्तर गायत्री-मन्त्रसे दिग्रक्षण करनेके पश्चात् विनियोगपूर्वक प्राणायाम करनेकी विधि है। पूरी संध्योपासनविधि जाननेके लिये गीताप्रेससे प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' ग्रन्थ देखना चाहिये।

२-संध्यासे संध्याकाल लेना है। यह काल प्रातः, सायं एवं मध्याह्नमें आता है।

३-सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किंच दुरितं मयि इदमहममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा। (तै० आ० प्र० १०, अ० २५)

४-ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहं स्वाहा। (तै० आ० प्र० १० अ० २३)

५-ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किंच दुरितं मयि इदमहममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा। (तै० आ० प्र० १० अ० २४)

[illegible]

(यजु० ११। ५०—५२)

[illegible] (यजु० २०। २०)

[illegible] (ऋग्वेद १०। १९०। १)

[illegible] (यजु० ३३। ३१)

[illegible] (यजु० ७। ४२)

[illegible]

प्रात कालकी सध्या खडा होकर तथा मध्याह्न एव सायकालकी सध्या बैठकर करनी चाहिये। प्रणव (ॐकार) और महाव्याहृतियो अर्थात् 'भू, भुव, स्व' से सयुक्त करके गायत्री-मन्त्रका दस बार जप करनेसे इस जन्मके पाप, सौ बार जप करनेपर पूर्वजन्मके पाप तथा हजार बार गायत्रीका जप करनेसे तीन युगोके पाप नष्ट हो जाते हैं—

दशभिर्जन्मजनित शतेन तु पुरा कृतम्।
त्रियुग तु सहस्रेण गायत्री हन्ति दुष्कृतम्॥
(३६। १०)

प्रात कालमे गायत्री रक्तवर्णा, मध्याह्नकालमे सावित्री शुक्लवर्णा और सायकालमे सरस्वती कृष्णवर्णा कही गयी हैं।[१] गायत्री-मन्त्रकी प्रथम व्याहृति 'भू'का 'ॐ भू हृदयाय नम'से हृदयम, द्वितीय व्याहृति 'भुव'का 'ॐ भुव शिरसे स्वाहा'से सिरम तथा तृतीय व्याहृति 'स्व'का 'ॐ स्व शिखायै वषट्'से शिखाम न्यास करे। गायत्री-मन्त्रके प्रथम पाद (**तत्सवितुर्वरेण्य**)-का कवचम, द्वितीय पाद (**भर्गो देवस्य धीमहि**)-का नेत्रोमे तथा तृतीय पाद (**धियो यो न प्रचोदयात्**)-का अस्त्रमे और चतुर्थ पाद (**परोरजसेऽसावदोम्**)-का सर्वाङ्गम न्यास करे। सध्याओके समय इस कथित विधिसे न्यास करके वेदमाता गायत्रीका जप करनेवालेका सब प्रकारसे कल्याण होता है। प्राणायामके अनन्तर सभी अङ्गोमें न्यास करे।

त्रिपदा गायत्री ब्रह्मा-विष्णु और शिवस्वरूपा है। इसके ऋषि, छन्द और विनियोगको भलीभाँति जानकर जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे साधक सभी पापोसे विमुक्त होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

'**परोरजसेऽसावदोम्**' यह गायत्रीका तुरीय पाद कहा जाता है। जो व्यक्ति सध्योपासन नहीं करता है, उसको सूर्यदेव विनष्ट कर देते हैं। तुरीय पादके ऋषि निर्मल तथा छन्द गायत्री एव देवता परमात्मा हैं।

जो मनुष्य योग और मोक्षको प्रदान करनेवाली परमश्रेष्ठा देवी गायत्रीका जप करता है, उसके महान्-से-महान् पाप नष्ट हो जाते हैं।

प्रात, मध्याह्न एव साय—इन तीनो सध्याआम १००८ या १०८ बार गायत्री-मन्त्रका जप करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मलोक जानेका अधिकारी हो जाता है।

(अध्याय ३५—३७)

देवी दुर्गाका स्वरूप, सूर्य-ध्यान तथा माहेश्वरीपूजन-विधि

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! नवमी आदि तिथियामे '**ॐ ह्रीं दुर्गे रक्षिणि**'—इस मन्त्रसे देवी दुर्गाका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्ष (अगहन)-मासकी तृतीया तिथिसे आरम्भ करके नामक्रमके अनुसार गौरी काली, उमा दुर्गा, भद्रा, कान्ति, सरस्वती, मङ्गला, विजया, लक्ष्मी, शिवा और नारायणी-रूपम उन देवीका पूजन करनेवाले अधिकृत मनुष्यका इष्ट (प्रियजना या प्रिय वस्तुओ)-से वियोग नहीं होता।

दुर्गादेवीके अट्ठारह हाथ हैं। उन हाथोमे खेटक[२], घण्टा दर्पण, तर्जनी-मुद्रा, धनुष, ध्वज, डमरू परशु, पाश, शक्ति मुद्गर, शूल, कपाल, शरक (बाण), अकुश वज्र चक्र और शलाका—ये सभी सुशोभित रहत हैं। इनसे सुसज्जित उन अष्टादशभुजा देवीका स्मरण करना चाहिये।

अट्ठाईस भुजावाली या अट्ठारह भुजावाली अथवा बारह भुजावाली या आठ भुजा अथवा चार भुजावाली दुर्गादेवीका भी ध्यान करना चाहिये। महिषासुरका वध करनेवाली व देवी सिहपर विराजमान रहती हैं।

वासुदेवने कहा—हे रुद्र! सूर्यार्चनम भगवान् सूर्यका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

वे भगवान् सूर्य तेज स्वरूप रक्त वर्णवाले, श्वेत पद्मपर विराजमान, एक चक्रवाले रथपर समासीन, दो भुजाओसे युक्त तथा कमल धारण करनेवाले हैं। इस रूपमे उनका सदेव ध्यान करना चाहिये।

श्रीहरिने पुन कहा—हे वृषध्वज! [अब] मैं माहेश्वरी-पूजाका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनो—पहले स्नान तथा आचमन कर ले। इसके बाद आसनपर बैठकर न्यास करके मण्डलम महेश्वरकी पूजा करे। हे महेशान! हरकी

१-गायत्री सावित्री एव सरस्वती—ये गायत्रीके ही तीन स्वरूप हैं।

२-खेटक— खेटति भयमुत्पादयति अनन इति खेटक ' इस व्युत्पत्तिके अनुसार भय उत्पन्न करनेवाली यष्टि (दण्ड विशेष)-को खेटक या खेट कहते हैं। यह देवीके हाथम रहता है—

यष्टिरूपेण खेट त्वमरिसहारकारक । देवीहस्तस्थितो नित्य मम रक्षा कुरुष्व च॥ (शारदीय दुर्गापूजापद्धति अस्त्र-पूजा-प्रकरण)

पूजा परिवारके साथ करे। हे रुद्र। 'ॐ हा शिवासनदेवता आगच्छत'—इस मन्त्रसे आसनके देवताओका आवाहन करे। मण्डलके मुख्य द्वारपर स्नान, गन्ध आदिद्वारा 'ॐ हा गणपतये नम ' मन्त्रसे गणपतिकी, 'ॐ हा सरस्वत्यै नम ' मन्त्रसे सरस्वतीकी, 'ॐ हा नन्दिने नम ' मन्त्रसे नन्दीकी, 'ॐ हा महाकालाय नम ' मन्त्रसे महाकालकी, 'ॐ हा गङ्गायै नम ' मन्त्रसे गङ्गाकी, 'ॐ हा लक्ष्म्यै नम ' मन्त्रसे लक्ष्मीकी, 'ॐ हा महाकलायै नम ' मन्त्रसे महाकलाकी तथा 'ॐ हा अस्त्राय नम ' मन्त्रसे अस्त्रकी पूजा करे।

इसी प्रकार 'ॐ हा ब्रह्मणे वास्त्वधिपतये नम ' से वास्त्वधिपतिकी, 'ॐ हा गुरुभ्यो नम 'से गुरुकी, 'ॐ हा आधारशक्त्यै नम ' से आधारशक्तिकी, 'ॐ हा अनन्ताय नम ' से अनन्तकी, 'ॐ हा धर्माय नम ' से धर्मकी, 'ॐ हा ज्ञानाय नम 'से ज्ञानकी, 'ॐ हा वैराग्याय नम 'से वैराग्यकी, 'ॐ हा ऐश्वर्याय नम ' से ऐश्वर्यकी, 'ॐ हा अधर्माय नम ' से अधर्मकी, 'ॐ हा अज्ञानाय नम ' से अज्ञानकी, 'ॐ हा अवैराग्याय नम ' से अवैराग्यकी, 'ॐ हा अनेश्वर्याय नम 'से अनैश्वर्यकी, 'ॐ हा ऊर्ध्वच्छन्दाय नम ' से ऊर्ध्वच्छन्दकी, 'ॐ हा अधश्छन्दाय नम ' से अधश्छन्दकी, 'ॐ हा पद्माय नम ' से पद्मकी, 'ॐ हा कर्णिकायै नम ' से कर्णिकाकी, 'ॐ हा वामायै नम 'से वामाकी, 'ॐ हा ज्येष्ठायै नम 'से ज्येष्ठाकी, 'ॐ हा रौद्र्यै नम से रौद्रीकी, 'ॐ हा काल्यै नम ' से कालीकी, 'ॐ हा कलविकरण्यै नम ' से कलविकरणीकी, 'ॐ हा बलप्रमथिन्यै नम 'से बलप्रमथिनीकी 'ॐ हा सर्वभूतदमन्यै नम ' से सर्वभूतदमनीकी, 'ॐ हा मनोन्मन्यै नम ' से मनोन्मनीकी, 'ॐ हा मण्डलत्रितयाय नम 'से मण्डलत्रितयकी ॐ हा हाँ ह शिवमूर्तये नम ' से शिवमूर्तिकी 'ॐ हा विद्याधिपतये नम से विद्याधिपतिकी और 'ॐ हा हीं हौं शिवाय नम ' से शिवकी पूजा कर।

अनन्तर ॐ हा हृदयाय नम ' से हृदयकी 'ॐ हीं शिरसे नम से सिरकी 'ॐ हू शिखायै नम से शिखाकी ॐ हैं कवचाय नम से कवचकी ॐ हौं नेत्रत्रयाय नम स नेत्रत्रयकी 'ॐ ह अस्त्राय नम से अस्त्रकी ... सद्योजाताय नम स सद्योजातकी पूजा कर।

सद्योजातकी आठ कलाएँ जाननी चाहिए, जो पूर्व आदि दिशाओमे स्थित हैं। उनकी पूजा [गन्ध आदिसे] इस प्रकार करनी चाहिये—'ॐ हा सिद्ध्यै नम 'से सिद्धिकी, 'ॐ हा ऋद्ध्यै नम 'से ऋद्धिकी, 'ॐ हा विद्युतायै नम ' –से विद्युताकी, 'ॐ हा लक्ष्म्यै नम 'से लक्ष्मीकी, 'ॐ हा बोधायै नम ' से बोधाकी, 'ॐ हा काल्यै नम ' से कालीकी, 'ॐ हा स्वधायै नम 'से स्वधाकी और 'ॐ हा प्रभायै नम 'से प्रभाकी अर्चना करनी चाहिये।

हे वृषध्वज। वामदेवकी तेरह कलाएँ जाननी चाहिये, उनकी भी पूजा गन्ध-पुष्प आदिसे करनी चाहिये। उनकी पूजामे पहले 'ॐ हा वामदेवाय नम ' कहकर वामदेवकी पूजा करनेके बाद उनकी कलाओका पूजन करना चाहिये। जैसे—'ॐ हा रजसे नम ' से रजस्की, 'ॐ हा रक्षायै नम ' से रक्षाकी, 'ॐ हा रत्यै नम 'से रतिकी, 'ॐ हा कन्यायै नम ' से कन्याकी, 'ॐ हा कामायै नम ' से कामाकी, 'ॐ हा जनन्यै नम ' से जननीकी, 'ॐ हा क्रियायै नम 'से क्रियाकी 'ॐ हा वृद्ध्यै नम 'से वृद्धिकी, 'ॐ हा कार्यायै नम 'से कार्याकी, 'ॐ रा (धा)-त्र्यै नम ' से रा (धा)-त्रि (त्री)-की, 'ॐ हा भ्रामण्यै नम ' से भ्रामणीकी, 'ॐ हा मोहिन्यै नम ' से मोहिनीकी और 'ॐ हा क्ष (त्व) रायै नम ' से क्ष (त्व)-राकी अर्चना करनी चाहिये।

हे वृषध्वज। तत्पुरुषकी चार कलाएँ हैं। पहले 'ॐ हा तत्पुरुषाय नम 'इस मन्त्रद्वारा तत्पुरुषकी पूजा करे। तदनन्तर 'ॐ हा निवृत्यै नम 'से निृवत्तिकी 'ॐ हा प्रतिष्ठायै नम 'से प्रतिष्ठाकी, 'ॐ हा विद्यायै नम 'से विद्याकी और 'ॐ हा शान्त्यै नम ' से शान्तिकी पूजा करनी चाहिये।

अघोरकी भैरव-सम्बन्धी छ कलाएँ जाननी चाहिये। इनकी पूजाम पहले 'ॐ हा अघोराय नम ' मन्त्रद्वारा अघोरकी पूजा करनेके पश्चात् 'ॐ हा उमायै नम ' से उमाकी 'ॐ हा क्षमायै नम 'से क्षमाकी 'ॐ हा निद्रायै नम ' से निद्राकी 'ॐ हा व्याध्यै नम ' से व्याधिकी, ॐ हा क्षुधायै नम 'स क्षुधाकी तथा 'ॐ हा तृष्णायै नम -से तृष्णाकी पूजा करनी चाहिये।

हे वृषभध्वज। ईशानदेवकी पाँच कलाएँ हैं, इनक

पूजामे 'ॐ हा ईशानाय नम ' इस मन्त्रसे ईशानकी पूजा करनेके पश्चात् 'ॐ हा समित्यै नम ' से समितिकी, 'ॐ हा अङ्गदायै नम ' से अङ्गदाकी, 'ॐ हा कृष्णायै नम 'से कृष्णाकी, 'ॐ हा मरीच्यै नम 'से मरीचिकी और 'ॐ हा ज्वालायै नम 'से ज्वालाकी पूजा करे।

तदनन्तर हे शङ्कर! 'ॐ हा शिवपरिवारेभ्यो नम ' से शिवपरिवारका, 'ॐ हा इन्द्राय सुराधिपतये नम 'से सुराधिपति इन्द्रका, 'ॐ हा अग्नये तेजोऽधिपतये नम 'से तजोऽधिपति अग्निका 'ॐ हा यमाय प्रताधिपतये नम ' से प्रेताधिपति यमका, 'ॐ हा निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये नम 'से रक्षोऽधिपति निर्ऋतिका, 'ॐ हा वरुणाय जलाधिपतये नम 'से जलाधिपति वरुणका 'ॐ हा वायवे प्राणाधिपतये नम ' से प्राणाधिपति वायुका, 'ॐ हा सोमाय नेत्राधिपतये नम ' से नेत्राधिपति सोमका, 'ॐ हा ईशानाय सर्वविद्याधिपतये नम ' से सर्वविद्याधिपति ईशानका 'ॐ हा अनन्ताय नागाधिपतये नम 'से नागाधिपति अनन्तका, 'ॐ हा ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये नम 'से सर्वलोकाधिपति ब्रह्माका और 'ॐ हा धूलिचण्डेश्वराय नम ' से धूलिचण्डेश्वरका आवाहन, स्थापन, सनिधान, सनिरोध तथा सकलीकरण करना चाहिये।

तदनन्तर तत्त्व-न्यास करके मुद्रा दिखानी चाहिये तथा ध्यान करना चाहिये। इसके बाद पाद्य, आचमन, अर्घ्य, पुष्प, अभ्यङ्ग, उद्वर्तन और स्नान तथा सुगन्धानुलेपन, वस्त्र, अलकार, भोग, अङ्गन्यास, धूप, दीप, नैवेद्य-अर्पण, करोद्वर्तन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, गन्ध एव ताम्बूल निवेदन करनेके बाद गीत, वाद्य, नृत्यसे महेश्वरको सतुष्टकर छत्र आदि समर्पित करना चाहिये। मुद्राका प्रदर्शन करके आवाहित देवके रूपका ध्यान, जप तथा तादात्म्य-भावसे मूलमन्त्रद्वारा जप और पूजाको समर्पित करे।

इस प्रकार विविध कामनाओकी सिद्धिके लिये विश्वावसु गन्धर्व तथा देवी कालरात्रि आदिकी उपासना करनी चाहिये। (अध्याय ३८—४१)

शिवके पवित्रारोपणकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे महादेव! अमङ्गलका नाश करनेवाले भगवान् शिवके पवित्रारोपणके पूजा-विधानको कह रहा हूँ। यह पूजा आपाढ श्रावण माघ या भाद्रपद मासमे होती है। पवित्रारोपणकी इस पूजामे पवित्रक (जनेऊ) बनानेके लिये सत्ययुग आदिके भेदसे सूत्र-धारणका नियम है। जैसे—सत्ययुगमे सुवर्णके, त्रेतामे रजतके, द्वापरम ताम्रके और कलियुगमें कन्याके हाथसे बनाये गये कपासके सूत्र (सूत)-को ग्रहण करना चाहिये। सूत्रको लेकर पहल उसे तिगुना करके पुन उसका तिगुना करना चाहिये। इस प्रकार नवगुणित सूत्रसे पवित्रकका निर्माण करके वामदेवमन्त्रसे उसमे ग्रन्थि देनी चाहिये। तदनन्तर हे शिव! सद्योजातमन्त्रस उसका प्रक्षालन करक अघोरमन्त्रसे उसका शाधन करना चाहिये। तत्पुरुषमन्त्रसे उसम बन्धन तथा ईशानमन्त्रसे तन्तुदेवताओको सुगन्धित धूप दिखाना चाहिये।

तन्तुआमे क्रमश— ॐकार, चन्द्र अग्नि, ब्रह्मा, नाग, शिखिध्वज, सूर्य विष्णु और शिवका वास है—ये नौ तन्तुके देवता हैं। हे रुद्र! उस पवित्रकमे एक सौ आठ या पचास अथवा पच्चीस तन्तु होने चाहिये। ये क्रमश उत्तम मध्यम तथा कनिष्ठ हैं। पवित्रकम दस ग्रन्थिका मान है। अतएव प्रत्येक चार अगुल या दो अगुल अथवा एक अगुलका अन्तर देकर एक-एक ग्रन्थिका बन्धन देना चाहिये। हे सदाशिव! उन ग्रन्थियाके नाम इस प्रकार हैं—प्रकृति, पौरुषी, वीरा, अपराजिता, जया, विजया, रुद्रा, अजिता मनोन्मनी तथा सर्वमुखी।

हे शिव! ग्रन्थिबन्धनके पश्चात् उस पवित्रकको कुकुम, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंसे रञ्जित करना चाहिय। उस गन्धानुरञ्जित पवित्रकको दवका समर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर यथाविधि सभी क्रियाओको करके 'ह देवेश! ह महेश्वर! आप अपने गणाके साथ यहाँपर आमन्त्रित हैं। प्रात काल यहींपर आपका पूजन करूँगा अत आप यहाँपर उपस्थित रह।'—इस प्रकार देवताको निमन्त्रित करे और गीत-वाद्यादिक द्वारा रात्रि-जागरण करे।

प्रात उन आमन्त्रित पवित्रकोको भगवान् महेश्वरके पास स्थापित करके चतुर्दशी तिथिमे स्नान करे और सबसे पहले सूर्य तथा रुद्रकी पूजा करे, तदनन्तर ललाटस्थ विश्वरूपका ध्यानकर अपने आत्मस्वरूपकी पूजा करे।

तत्पश्चात् अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षित और हृदयमन्त्रके द्वारा अर्पित तथा संहितामन्त्रोंसे धूपित पवित्रकोको भगवान्को समर्पित करना चाहिये। सबसे पहले शिवतत्त्व और विद्यातत्त्वकी पूजा करके आत्मतत्त्व और देवतत्त्वका पूजन इन निर्धारित मन्त्रोसे करे—

'ॐ हौं हौं शिवतत्त्वाय नम , ॐ हीं (ही) विद्यातत्त्वाय नम , ॐ हा (हौं) आत्मतत्त्वाय नम , ॐ हा हीं हू क्षौं सर्वतत्त्वाय नम ।'

भगवान् महेश्वरको पवित्रक विधिपूर्वक निवेदितकर स्वय भी धारण करना चाहिये। (अध्याय ४२)

विष्णुके पवित्रारोपणकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज। अब मैं आपसे विष्णुके पवित्रारोपणका वर्णन करूँगा, जो भोग तथा मोक्ष दोनोको देनेवाला है। प्राचीन समयमे हो रहे देवासुर-सग्राममे [अपनी विजय न होते देखकर] ब्रह्मादि देवगण विष्णुकी शरणमे गये। उन सबकी प्रार्थना सुन करके विष्णुने विजय-प्राप्तिके लिये उन्हे अपने गलेका हार, पवित्र नामक ग्रैवेयक तथा एक ध्वज प्रदान किया और कहा कि इन्हे देखते ही दानव नष्ट हो जायँगे। तभीसे उन पवित्रकोकी पूजा आरम्भ हुई।

हे हर। प्रतिपदासे लेकर पौर्णमासीतक जिस देवताकी जो तिथि कही गयी है, उसके अनुसार ही उस तिथिमे उन देवताआका पवित्रारोपण करना चाहिये। हे शिव। शुक्ल-पक्ष हो अथवा कृष्णपक्ष द्वादशी तिथिमे विष्णुके लिये पवित्रारोपणका विधान है। व्यतीपातयोग, उत्तरायण दक्षिणायन चन्द्र तथा सूर्यग्रहण, विवाहादि मङ्गल एव वृद्धि-कार्यो तथा गुरुजनके आगमन इत्यादि अवसरोपर यह पूजा करनी चाहिये। पवित्रकके उद्देश्यसे भी नित्य पूजन हो सकता है, किंतु वर्षाकालमे इसका पूजन आवश्यक है।

हे रुद्र। इन पवित्रकाका निर्माण वर्णानुसार होना चाहिये जैसे—ब्राह्मणोका पवित्रक कौशेय[1] कपास क्षौम[2] अथवा कुशसूत्रसे निर्मित होना चाहिय। क्षत्रियोका पवित्रक कौशेयसूत्रसे वैश्योका क्षौमसूत्र तथा वल्कलसूत्रसे[3] और शूद्रोका सनसे बना हुआ पवित्रक प्रशस्त माना गया है। कपास या पद्मज (कमल)-से निर्मित पवित्रक समस्त वर्णोके लिये प्रशस्त है।

ॐकार, शिव, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, शेष, सूर्य, गणेश और विष्णु—इन नौ देवताओका इस पवित्रकके तन्तुओमे निवास है।

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये पवित्रकके तीन सूत्राके देवता हैं। जो उनमे अधिष्ठित रहते हैं। इन सूत्राको सुवर्ण, रजत, ताम्र, बाँस या मिट्टीके बने हुए पात्रम रखना चाहिये। एक सौ आठ तन्तुओका सूत्र उत्तम, चौवन तन्तुओका सूत्र मध्यम तथा सताईस तन्तुओका पवित्रक कनिष्ठ होता है।

इन पवित्रकोके प्रत्येक ग्रन्थि-पर्वोको कुकुम, हल्दी या चन्दनसे चर्चितकर उपवास रखते हुए उन्हे शास्त्रसम्मत पात्रमे रखकर अधिवासित करे।

पवित्रकको पृथक्-पृथक् अभिमन्त्रित करके उसका सम्यक् दर्शन तथा पुन पूजन करना चाहिये और यत्नपूर्वक उसका वस्त्राच्छादन करके उसे मण्डलस्थ देवप्रतिमाके समक्ष यत्नपूर्वक स्थापित कर देना चाहिये।

ब्रह्मादि अन्य देवोकी स्थापना करके कलशकी पूजा करे। मण्डलका निर्माण करके नैवेद्य समर्पित करे। पवित्रकको पुन अधिवासित[4] करके तीन या नौ वार सूत्र घुमाकर वेदीको वेष्टित करे। तदनन्तर अपनेको तथा

१-कौशेय—विशेष कीडके कोशसे बननेवाला वस्त्र (रेशमी वस्त्र)।
२-क्षौम—तीसी केलेकी छाल या अन्य लताविशेषसे बना वस्त्र।
३-वल्कल—भोजपत्र नामके वृक्षविशेष अथवा अन्य मुलायम छालवाले वृक्षकी छालसे बना वस्त्र (वल्कल वस्त्र)।
४ अधिवासन—संस्कार विशेष।

कलश, घी, अग्निकुण्ड, विमान, मण्डप और गृहको सूत्रसे वेष्टित करके एक सूत्र देवताके मस्तकपर अर्पित करे।

इस प्रकार सम्पूर्ण सामग्री निवेदितकर महेश्वर विष्णुकी पूजा करके इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

आवाहितोऽसि देवेश पूजार्थं परमेश्वर॥
तत्प्रभातेऽर्चयिष्यामि सामग्र्या सन्निधौ भव।
(४३।२८-२९)

हे परमेश्वर! देवदेवेश्वर! आप यहाँपर पूजाके लिये आवाहित हैं। इस समस्त सामग्रीसे प्रभातकालमें मैं आपका पूजन करूँगा। आपकी सन्निधि यहाँ बनी रहे।

एक रात्रि या तीन रात्रितक पवित्रकको अधिवासित-कर स्वयं रात्रिमें जागरण करके प्रातःकाल भगवान् केशवका पूजन करे और निर्मित पवित्रकाको उन देवको अर्पित करे। पवित्रकको धूपसे धूपित करके मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित भी करना चाहिये।

गायत्री-मन्त्रसे पूजित इस पवित्रकके द्वारा देव-पूजन करके उसे मन्त्र पढकर देवताके समक्ष स्थापित कर दे—

विशुद्धग्रन्थिकं रम्यं महापातकनाशनम्।
सर्वपापक्षयं देव तवाग्रे धारयाम्यहम्॥
(४३।३३)

हे देव! यह पवित्रक विशुद्ध रूपसे ग्रथित, सुन्दर तथा महापातकोंको नष्ट करनेवाला और सम्पूर्ण पापोंका क्षय करनेवाला है। इसे मैं आपके समक्ष स्थापित करता हूँ। तदनन्तर इस मन्त्रका पाठकर स्वयं भी धारण करना चाहिये—

पवित्रं वैष्णवं तेजः सर्वपातकनाशनम्॥
धर्मकामार्थसिद्ध्यर्थं स्वकण्ठे धारयाम्यहम्।
(४३।३४-३५)

[हे देव!] यह विष्णु-तेज स्वरूप, सर्वपाप-विनाशक पवित्रक है। मैं धर्म, काम तथा अर्थ—इस त्रिवर्गकी सिद्धिके लिये इसे अपने कण्ठमें धारण करता हूँ। अनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—

वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि।
तद्वत् पवित्रं तन्तूनां मालां त्वं हृदये धर॥
(४३। ४१)

हे देव! आपके हृदयपर जिस प्रकार वनमाला और कौस्तुभ विराजते हैं, उसी प्रकार तन्तुओंकी बनी हुई यह माला और पवित्रक आप अपने हृदयपर धारण करें।

इस प्रकार प्रार्थना करके ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और उन्हें दक्षिणा देकर उसी दिन सायंकाल या दूसरे दिन पुनः उसी प्रकार पूजा सम्पन्न करके निम्न मन्त्र पढते हुए विसर्जन करे—

सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मया।
व्रज पवित्रकेदानीं विष्णुलोकं विसर्जितः॥
(४३। ४३)

हे पवित्रक! मैंने इस सांवत्सरी पूजाको विधिवत् सम्पादित किया है। इस समय मेरे द्वारा विसर्जित आप विष्णुलोकको पधारें। (अध्याय ४३)

ब्रह्ममूर्तिके ध्यानका निरूपण

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! भगवान्‌की पवित्रक आदिसे पूजाकर ब्रह्मका ध्यान करके साधक हरि बन जाता है (मेरा स्वरूप हो जाता है)। अब मैं मायाजालका नष्ट करनेवाले ब्रह्मके ध्यानका वर्णन करता हूँ। आप सुनें—

ब्रह्मके ध्यानके लिये प्रवृत्त प्राज्ञ (विशेष साधक) अपनी वाणी एवं मनको नियन्त्रितकर अपनी आत्मामें ही ज्ञानस्वरूप ब्रह्मका यजन करे और जिस प्राज्ञको यह उत्कट इच्छा हो कि मैं अपनी आत्मामें ब्रह्मका दर्शन (जीव-ब्रह्मका अभेददर्शन) करूँ, उसे महद्ब्रह्म (प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परब्रह्म)-में ज्ञानकी भावना (ब्रह्म एव निर्विषय-नित्य-ज्ञानमें अभेदभाव) करनी चाहिये।

ब्रह्मका ध्यान ही समाधि है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस रूपमें सदा स्वयंकी अवस्थिति ही ब्रह्मका ध्यान है। स्वयंसे अभिन्न ब्रह्म देह इन्द्रिय, मन, बुद्धि प्राण और पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आ[illegible] पञ्चतन्मात्र (गन्धतन्मात्र, रसतन्मात्र रूपतन्मात्र, [illegible]

एव शब्दतन्मात्र) विविध गुण, जन्म और भोजन, शयन आदि भोगसे सर्वथा रहित, स्वप्रकाश, निराकार, सदा निरतिशय, नित्य आनन्दस्वरूप, अनादि, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सर्वत परिपूर्ण, सत्यस्वरूप, परमसुखस्वरूप, परमपद एव तुरीय (कूटस्थ निरञ्जन परब्रह्म)-के रूपमे वेदोमे वर्णित है।

हे वृषभध्वज! अपनी आत्माको रथी और शरीरको रथ समझना चाहिये। बुद्धि उसमे सारथि तथा मन लगाम है। इन्द्रियाको उस रथमे जुते हुए अश्वके रूपमे स्वीकार किया गया है। ये इन्द्रियाँ ही रूप रस, गन्ध आदि विषयका अनुभव करती हैं।

इन्द्रिय और मनसे युक्त आत्माको ही मनीषियोने भोक्ता कहा है। जो मनुष्य विज्ञानरूपी सारथिसे युक्त है मनरूपी लगामको अपने वशमे रखता है, वही उस परमपदको प्राप्त करता है, फिर वह उत्पन्न नहीं होता। जो विज्ञानरूपी सारथिसे नियन्त्रित मनरूपी लगामवाला मनुष्य है, वह स्वर्धुनी[1] (अज्ञान)-से पार हो जाता है और वही विष्णुका परमपद है[2]।

इस योगकी परम साधनामें अहिंसादि धर्मोंको यम तथा शौचादिक कर्मोंको नियम कहा गया है। पद्मादि आसन हैं। प्राण, अपानादिक वायुपर विजय प्राप्त करना प्राणायाम है। इन्द्रियापर विजय प्रत्याहार और ईश्वरका चिन्तन करना ध्यानावस्था है। मनको नियन्त्रित करना ही धारणा है और ब्रह्ममे मनको केन्द्रित करनेकी जो स्थिति होती है, वह समाधि है। यदि पहले इस योगके द्वारा चञ्चल चित्त स्थिर नहीं होता तो उस मूर्ति (परमेश्वर)-का इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये—

जो हृदयकमलकी कर्णिकाके मध्य विराजमान रहनेवाले है तथा शङ्ख, चक्र, गदा और कमलसे सुशोभित हैं, जो श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि, वनमाला एव लक्ष्मीसे विभूषित हैं, जो नित्य-शुद्ध, ऐश्वर्यसम्पन्न, सत्य, परमानन्दस्वरूप, आत्मस्वरूप, परमब्रह्म तथा परम ज्योति स्वरूप हैं—ऐसे वे चौबीस स्वरूप (अवतार)-वाले, शालग्रामकी शिलामे विराजमान, द्वारकादि[3] शिलाओपर अवस्थित रहनेवाले परमेश्वर ध्यानके योग्य हैं और पूजनीय हैं। मैं भी वही हूँ—ऐसा समझना चाहिये।

इस प्रकार आत्मस्वरूप नारायणका यम-नियम इत्यादिक योगके साधनासे एकाग्रचित्त होकर जो ध्यान करता है, वह मनोऽभिलषित इच्छाओंको प्राप्तकर वैमानिक[4] देव हो जाता है। यदि निष्काम होकर उन हरिका मूर्तिका ध्यान और स्तवन करे तो मुक्ति प्राप्त हो जाती है। (अध्याय ४४)

~~~~~~

१-शब्दकल्पद्रुमके—'धूनयति कम्पयति शत्रून्'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'धुनी' शब्द कम्पित कर देनेवालेके लिये प्रयुक्त होता है। इसलिये यहाँ प्रसगानुसार 'स्व' शब्दका मोक्ष अर्थ मानकर मोक्षको कम्पित (प्रतिबन्धित) करनेवाले अज्ञानको 'स्वर्धुनी' कह सकते हैं। इस तरह अज्ञानको पार कर लेना ही 'स्वर्धुनी' का पार करना समझना चाहिये।

२-आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेव तु। बुद्धि च सारथि विद्धि मन प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरा॥
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिण। यस्तु विज्ञानवानात्मा युक्तेन मनसा सदा॥
स तु तत्पदमाप्नोति स हि भूयो न जायते। विज्ञानसारथिर्यस्तु मन प्रग्रहवान्नर॥
स्वर्धुन्या पारमाप्नोति तद्विष्णो परम पदम्। (४४।६—९)

३-शब्दकल्पद्रुमके अनुसार द्वारकामें होनेवाली चक्रशिला भी भगवान् विष्णुकी मूर्ति मानी जाती है। इसीलिये जैसे गण्डकी नदीमें होनेवाली चक्रयुक्त शिला (शालग्रामशिला)-मे विष्णुका सदा सनिधान है वैसे ही द्वारकाकी शिलामें भी विष्णुका सनिधान है।

४-वैमानिक देव—शब्दकल्पद्रुमके—'विगत मानम् उपमा यस्य'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार निरुपमका विमान कहा जा सकता है। 'विमान एव वैमानिक' इस व्युत्पत्तिके अनुसार वैमानिक शब्द भी निरुपमेय (उपमारहित)-का बोधक हो सकता है। इसलिये प्रकृतमें 'वैमानिक देव' का अर्थ निरुपमेय—उपमारहित—सर्वोत्कृष्ट देव महाविष्णु किया जा सकता है।
~~~~~~

विविध शालग्रामशिलाओंके लक्षण

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! अब मैं प्रसगवश शालग्रामका लक्षण कहता हूँ। शालग्रामशिलाओंके स्पर्शमात्रसे करोडो जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। केशव, नारायण, गोविन्द तथा मधुसूदन आदि नामोंवाली विभिन्न शालग्रामशिलाएँ होती हैं, जो शख, चक्र आदि चिह्नोंसे सुशोभित रहती हैं। इन शिलाओंके लक्षण इस प्रकार हैं—

शख, चक्र, गदा तथा पद्मके चिह्नसे सुशोभित शिला **'केशव'**, पद्म, कौमोदकी[1] गदा, चक्र तथा शखके चिह्नसे सुशोभित शिला **'नारायण'**, चक्र शख, पद्म तथा गदाके चिह्नसे विभूषित शिला **'माधव'** और गदा पद्म, शख तथा चक्रके चिह्नसे शोभायमान शिला **'गोविन्द'** नामसे जानी जाती है।

पद्म, शख चक्र, गदासे युक्त **'विष्णु'** नामकी, शख, पद्म, गदा तथा चक्रसे युक्त **'मधुसूदन'** नामकी, गदा, चक्र, शख, पद्मसे सयुक्त **'त्रिविक्रम'** नामकी, चक्र, गदा, पद्म शखसे चिह्नित **'वामन'** नामकी, चक्र, पद्म, शख एव गदासे समन्वित **'श्रीधर'** नामकी और पद्म, गदा, शख, चक्रसे अकित **'हृषीकेश'** नामकी शालग्राम-मूर्ति कही गयी हैं। इन देवमूर्तियोंको बार-बार नमन है।

पद्म, चक्र, गदा शख-चिह्नपूरित शालग्रामशिला **'पद्मनाभ'**, शख, चक्र, गदा, पद्मयुक्त शालग्रामशिला **'दामोदर'**, चक्र शख, गदा तथा पद्मसे सयुक्त शालग्रामशिला **'वासुदेव'**, शख, पद्म चक्र, गदा-चिह्नसे समन्वित शालग्रामशिला **'सकर्षण'**, शख गदा, पद्म, चक्रसे सुशोभित शालग्रामशिला **'प्रद्युम्न'** तथा गदा, शख पद्म और चक्रसे शोभित शालग्रामशिला **'अनिरुद्ध'** नामसे अभिहित है। इन्हे बारम्बार प्रणाम है।

पद्म, शख, गदा, चक्रके चिह्नसे विभूषित **'पुरुषोत्तम'** नामकी, गदा, शख, चक्र, पद्म-चिह्नसे विभूषित **'अधोक्षज'** नामकी, पद्म, गदा शख, चक्रसे विभूषित **'नृसिंह'** नामकी, पद्म चक्र शख, गदासे अकित **'अच्युत'** नामकी और शख, चक्र, पद्म गदासे सयुक्त **'जनार्दन'** की शालग्राम-मूर्ति है—इन देवनामोसे अभिहित मूर्तियोंको नमस्कार है।

गदा चक्र पद्म शखसे अकित शालग्राम **'उपेन्द्र'**, चक्र, पद्म, गदा, शखसे युक्त शालग्राम **'हरि'**, गदा, पद्म चक्र, शख-चिह्नसे शोभित शालग्राम **'श्रीकृष्ण'** नामसे प्रसिद्ध हैं और शालग्रामशिलाके द्वारदेशपर चिह्नित दो चक्र धारण करनेवाले, शुक्लवर्णवाले भगवान् वासुदेव हैं। इन सभी रूपों एव नामोंको धारण करनेवाले हे गदाधर भगवान् विष्णु! हम सबकी आप रक्षा करें।

दो चक्रोंसे युक्त, रक्त आभावाली और पूर्वभागमे पद्म-चिह्नसे अकित शालग्रामशिला **'सकर्षण'** की मूर्ति होता है, किंतु छोटे-छोटे चक्रोंवाली तथा पीतवर्णकी होनेपर वह शिला **'प्रद्युम्न'** कही जाती है। यदि शालग्रामशिला बडी तथा छिद्रसे सयुक्त शिरोभागवाली और वर्तुलाकार हो तो उसे **'अनिरुद्ध'** नामक शालग्राम-मूर्ति कहते हैं। जो द्वारमुखपर नीलवर्णकी तीन रेखाओंसे युक्त होती है और जिसका शेष सम्पूर्ण भाग कृष्णवर्णसे सुशोभित रहता है, वह शालग्रामशिला **'नारायण'** शिलाके नामसे जानी जाती है।

जिस शिलाके मध्यमे गदाके समान रेखा हो, यथास्थान नाभिचक्र उन्नत हो तथा वक्ष स्थल विस्तृत हो, वह **'नृसिंह'** नामवाली शालग्रामशिला है और इन चिह्नोंके साथ ही उसमे तीन विन्दु अथवा पाँच विन्दु हो तो वह **'कपिल'** नामक शिला है, वह शिला हम सबकी रक्षा करे। उसका पूजन ब्रह्मचारियोंको करना चाहिये। विषम परिमाणवाले दो चक्रोंसे चिह्नित शक्ति-चिह्नसे युक्त शिलाको **'वाराह'** शिला कहते हैं। वह हम सबकी रक्षा करे। नीलवर्णवाली, तीन रेखाओंसे युक्त, स्थूल तथा विन्दुयुक्त शिला **'कूर्ममूर्ति'** है और वही अगर वर्तुलाकार है तथा उसका पीछेका भाग झुका हुआ हो तो वह शिला **'कृष्ण'** कही गयी है, वह हम सबकी रक्षा करे। पाँच रेखावाली शिला **'श्रीधर'** नामकी कही जाती है। गदासे अकित शिला **'वनमाली'** है—ये हम सबकी रक्षा करें। गोलाकार तथा छोटी शिला **'वामन'** शिला है, बाये भागमे चक्राङ्कित शिला **'सुरेश्वर'** की मूर्ति है। विभिन्न रगोवाली, अनेक रूपोवाली, नागके समान फणोसे युक्त शिला **'अनन्तक'** है। स्थूल हो, नीलवर्णकी हो और मध्यमे नीलवर्णका चक्र हो तो वह **'दामोदर'**-

[1] १-श्रीविष्णुकी गदाका नाम 'कौमोदकी' है।

शिला है। सकुचित द्वारवाली, रक्तवर्णवाली, लम्बी रेखाओवाली, छिद्रयुक्त, एक चक्र तथा एक कमलवाली विस्तीर्ण शिला 'ब्रह्मशिला' है, ये सब हम सबकी रक्षा कर। विस्तृत छिद्रवाली तथा स्थूल चक्रवाली शिला 'कृष्णशिला' तथा विल्वाकार शिला 'विष्णुशिला' है। अकुशके आकारवाली, पाँच रेखाओवाली तथा कौस्तुभ-चिह्नसे युक्त शिला 'हयग्रीव' शिला है। एक चक्र तथा एक कमलसे अकित, मणि तथा रत्नोकी आभासे युक्त कृष्णवर्णकी शिला 'वैकुण्ठ' शिला और द्वारपर रेखावाली, विस्तृत कमलसदृश शिला 'मत्स्यशिला' है—ये हम सबकी रक्षा करे। दाहिनी ओर रेखायुक्त, श्यामवर्णसे समन्वित, रामचक्रसे अकित 'त्रिविक्रम' नामवाली शिला हम सबकी रक्षा करे। द्वारकामे स्थित, शालग्रामम निवास करनेवाले गदाधारी भगवान्‌को नमस्कार है। एक द्वारवाली, चार चक्रोसे युक्त, वनमालासे विभूपित, स्वर्णरेखासमन्वित गोपदसे सुशोभित तथा कदम्बके पुष्पकी आकृतिवाली 'लक्ष्मीनारायण' नामवाली शिला हम सबकी रक्षा करे।

एक चक्रवाले शालग्रामको 'सुदर्शन' कहते हैं, उनके रूपमे वे गदाधारी श्रीविष्णु हम सबकी रक्षा करे। दो चक्र होनेसे शालग्रामशिलाकी 'लक्ष्मीनारायण' सज्ञा होती है। जिसमे तीन चक्र हैं, वह (शिला) 'त्रिविक्रम'की मूर्ति है, चार चक्रवाली चतुर्व्यूह, पाँच चक्रवाली 'वासुदेव', छ चक्रवाली शालग्रामशिला 'प्रद्युम्न', सात चक्रवाली शिला 'सकर्पण', आठ चक्रवाली 'पुरुपोत्तम', नव चक्रवाली शिला 'नवव्यूह', दस चक्रवाली 'दशावतार' तथा ग्यारह चक्रवाली शिला 'अनिरुद्ध' कहलाती है—ये हम सबकी रक्षा करे। बारह चक्रोसे युक्त शिला 'द्वादशात्मा' है। बारहसे अधिक चक्रकी शिला 'अनन्त' नामवाली है।

जो मनुष्य इस विष्णुमूर्तिमय स्तोत्रका पाठ करता है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ४५)

~~~~~

वास्तुमण्डल-पूजाविधि

श्रीहरिने कहा—गृहनिर्माणके प्रारम्भमे जिसके करनेसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। सक्षेपम उस वास्तुपूजाकी विधि कहता हूँ, यह पूजा ईशानकोणसे प्रारम्भ होकर इक्यासी पदवाले मण्डपके अन्तर्गत पूर्ण की जानी चाहिये।

इस मण्डलके ईशानकोणमे वास्तुदेवताका मस्तक होता है। नैर्ऋत्यकोणमे उनके दोनो पाद तथा अग्नि और वायुकोणम दोनो हाथ होते हैं। आवास अर्थात् भवन गृह आदि नगर, ग्राम, व्यापारिकपथ प्रासाद उद्यान, दुर्ग देवालय तथा मठ आदिके निर्माणमें वास्तुदेवताकी स्थापनापूर्वक पूजा करनी चाहिये। बाईस[1] देवता बाह्यभागमे तथा तेरह देवता अन्त भागम अवस्थित रहते हैं।

यथा—ईश, शिखी पर्जन्य, जयन्त कुलिशायुध सूर्य सत्य भृगु, आकाश, वायु, पूपा, वितथ ग्रहक्षेत्र यम गन्धर्व भृगुराज मृग पितृगण दौवारिक सुग्रीव, पुष्पदन्त गणाधिप असुर शेप पाप रोग अहिमुख भल्लाट, साम सर्प अदिति तथा दिति—ये वास्तुमण्डलके बाह्य देव हैं।

—इन बाह्य देवोका पूजन करके बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि वह ईशानादि चारो कोणोपर स्थित देवताओकी पूजा करे। यथा—ईशानकोणम आप (जल), अग्निकोणमें सावित्री, नैर्ऋत्यकोणमे जय और वायुकोणमे रुद्रदेवकी पूजा करे। नवपद परिमापके मध्यमे ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये आर उनके समीप ही अन्य आठ देवताओका भी पूजन करे। पूर्वादिक क्रमसे उन पूजनीय देवाके नाम इस प्रकार हैं—

अर्यमा, सविता विवस्वान्, विबुधाधिप मित्र, राजयक्ष्मा पृथ्वीधर और अपवत्स—ये आठ देव हैं, जो ब्रह्माके चारो ओर मण्डलाकार स्थित हैं।

दुर्गनिर्माणमे ईशानकोणसे नैर्ऋत्यकोणपर्यन्त सूत्रद्वारा किया गया रेखाङ्कन वश कहा जाता है और अग्निकोणसे जब वायुकोणपर्यन्त दूसरी रेखा खींची जाती है तो वह वश-रेखा, दुर्धर-रेखा कहलाती है। वश-रेखापर ईशानकोणमें अदिति, दुर्धरयोग विन्दुपर हिमवन्त नैर्ऋत्यकोण अर्थात् वास्तुमण्डलक अन्तिम नैर्ऋत्य विन्दुपर जयन्तके पूजनका

१-मूलपाठमें द्वाविंशति पाठ है वास्तवमें द्वात्रिंशत् पाठ होना चाहिये।
~~~~~

विधान है। तत्पश्चात् दुर्धर-रेखाके प्रारम्भमे अग्निकोणपर नायिका तथा अन्तिम छोर वायुकोणपर कालिकादेवीकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर शुक्र अर्थात् इन्द्रसे लेकर गन्धर्वपर्यन्त उक्त वास्तुदेवोकी पूजा करके भवन-निर्माणका कार्य प्रारम्भ करना चाहिये।

वास्तु (भवन)-के सम्मुख-भागमें देवालय, अग्निकोणमे पाकशाला, पूर्व दिशामे यज्ञ-मण्डप, ईशानकोणमे काष्ठ या प्रस्तरसे बनी पट्टिकाआके द्वारा घिरा हुआ सुगन्धित पदार्थो तथा पुष्पोको रखनेका स्थान, उत्तर दिशामे भाण्डारागार, वायुकोणमें गोशाला, पश्चिम दिशामे खिडकी तथा जलाशय, नैर्ऋत्यकोणमे समिधा, कुश, ईंधन तथा अस्त्र-शस्त्रका कक्ष, दक्षिण दिशामे सुन्दर शय्या, आसन, पादुका, जल, अग्नि, दीप और सज्जन भृत्यासे युक्त अतिथिगृहका निर्माण करना चाहिये।

गृहके बीच समस्त रिक्तभागम कूप, जलसिचित कदलीगृह और पाँच प्रकारके पुष्पपादपोको सुनियोजित करे। भवनके बाह्य भागम चारो ओर पाँच हाथ ऊँची दीवाल बनाकर वन और उपवनसे आच्छादित भगवान् विष्णुका मन्दिर बनाना चाहिये।

इस मन्दिरके निर्माणकार्यके प्रारम्भमे चौंसठ पदका वास्तुमण्डल बनाकर वास्तुदेवताकी विधिवत् पूजा करे। उक्त रीतिके अनुसार वास्तुमण्डलके मध्य भागम चार पदके मण्डलान्तर्गत ब्रह्मा तथा उनके समीपस्थ प्रत्यक दो पदपर अर्यमादि आठ देवोकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर कर्णभागपर कार्तिकेय आदिका पूजन करके, दोनो ओर पार्श्व बिन्दुओपर दो-दो पदोकी दूरीसे स्थित अन्य पार्श्व देवोका पूजन करे। तत्पश्चात् वास्तुमण्डलके ईशानादि कोणोपर क्रमश चरकी, विदारी पूतना और पापराक्षसी नामक देवशक्तियोकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद बाह्य भागम हैतुकादि देवाका पूजन करे। इनके नाम हेतुक, त्रिपुरान्तक अग्नि, वैताल, यम, अग्निजिह्वा, कालक, कराल और एकपाद हैं। उनकी पूजा करनेके पश्चात् ईशानकोणम भीमरूप, पातालमे प्रेतनायक, आकाशमें गन्धमाली तथा उसके बाद क्षेत्रपाल दवाकी पूजा करनी चाहिये।

यथासाध्य वास्तु सकुचित या विस्तृत क्षेत्रफलकी राशिको वसुओकी सख्या अर्थात् आठसे पहले भाग दे, उसके बचे हुए शेष भागको यम माने। पुन उक्त वास्तुराशिको आठसे गुणा करे, जो गुणनफल हो उसको ऋक्ष भाग अर्थात् सत्ताईससे भाग दे, जो शेष हो उसे ऋक्ष या नक्षत्रराशि कहते हैं और जो भागफल है, वह अव्यय कहलाता है।

उस ऋक्षराशिको चारसे गुणा करके गुणनफलम नौसे भाग दे, जो शेषाश हो उसका नाम स्थिति है। इसी स्थिति अङ्कपर वास्तुमण्डलका निर्धारण करना चाहिये। ऐसा देवल ऋषिका अभिमत है।

उक्त वास्तुराशिका आठसे गुणा करके जो गुणनफल हो उसे पिण्ड कहते हैं। उस पिण्डको साठसे भाग देना चाहिये, जो शेषाक हो उसके द्वारा गृहस्वामीके जीवन-मरण और परिजनोके विनाशका निर्धारण होता है।

मनुष्यको चाहिये कि वास्तुमण्डलके मध्यम ही सदा गृहका निर्माण करे। उसके पृष्ठभागमे न करे। इसी प्रकार वास्तुमण्डलके वामपार्श्वम भी गृह-निर्माण करना उचित नहीं होता है, क्योकि वामपार्श्वम वास्तुदेव सोये रहते हैं। अत इसमे गृह-निर्माण नहीं करना चाहिये।

सिह, कन्या तथा तुला राशि रहनेपर उत्तर दिशाके द्वारका शोधन करे ओर उसी प्रकार वृश्चिकादि अन्य राशियाके रहनपर पूर्व-दक्षिण तथा पश्चिम द्वारका शोधन करना चाहिये (क्योकि भाद्रपद, आश्विन तथा कार्तिकमासम पूर्व दिशामे मस्तक, उत्तर दिशामे पृष्ठ दक्षिण दिशाम क्रोड और पश्चिम दिशामे चरण फैलाकर वास्तुनाग सोये रहते हैं। अत उत्तर दिशाका द्वार इस कालम प्रशस्त होता है। वृश्चिक, धनु एव मकर राशि अर्थात् मार्गशीर्ष, पौष और माघम वास्तुनागका सिर दक्षिण, पृष्ठ पूर्व, क्रोड पश्चिम और पैर उत्तर दिशाम रहता है। जिससे उस समय पूर्व दिशाका द्वार-शाधन उचित हे। कुम्भ मीन और मप राशि अर्थात् फाल्गुन, चैत्र तथा वैशाखमासम वास्तुनागका मस्तक पश्चिम, पृष्ठ दक्षिण तथा पैर उत्तर-पूर्व दिशाम रहता है। अत दक्षिण दिशाके द्वारका शाधन इस कालमे श्रेयस्कर है। इसी प्रकार वृप, मिथुन और कर्कराशि अर्थात् ज्येष्ठ,

आषाढ तथा श्रावणमासमे वास्तुनागका सिर उत्तर, पृष्ठ पश्चिम, क्रोड पूर्व और पैर दक्षिण दिशामे रहता है। उस समय पश्चिम द्वारका शोधन करना उचित होता है)।

वास्तुके विस्तारके अनुसार आधे भागमे द्वारका निर्माण करना चाहिये। इस प्रकार आठ दिशाओमे आठ द्वार कहे गये हैं।

यदि उपर्युक्त शास्त्र-सम्मत विधिसे द्वार-शोधन नहीं होता है तो हानि होती है।

अत उपर्युक्त विधिसे प्रासाद या भवनका निर्माण करके उसके पूर्वमे पीपल, दक्षिणमे पाकड, पश्चिमम बरगद, उत्तरम गूलर तथा इशानकाणम समलका वृक्ष लगाना चाहिये, जो घरक लिये शुभ-फलदायी होते हैं। इस प्रकार पूजित वास्तु प्रासाद और घरके विघ्नोका नाश करनेवाला होता है। (अध्याय ४६)

प्रासाद-लक्षण

श्रीसूतजीने पुन कहा—हे शौनक। अब मैं प्रासाद-निर्माण एव उसके लक्षणाके विषयमे कह रहा हूँ। आप सुन।

सर्वप्रथम कुशल वास्तुविद्की देख-रेखमें चारो दिशाआमे चौंसठ-चौंसठ पद परिमापका एक चतुष्कोण भूखण्ड तैयार करना चाहिये। जिसमे अडतालीस पद-परिमाण-भूमिमे दीवालका निर्माण करे। साथ ही चारा दिशाआम कुल बारह द्वार (बारादरी) बनाये जायँ।

प्रासादकी ऊँचाईके परिमाणको अर्थात् पृथ्वीतलपर प्रासादका बनाया गया ऊँचा जो धरातल है, उसको प्रासादिक-जघा (कुर्सी) कहते हैं। भवनकी यह जघा मानव जघाकी अपेक्षा ढाई गुना अधिक होनी चाहिये। उसके ऊपर निर्मित होनवाले गर्भभागके विस्तार-परिमापको शुक्राघ्रि कहते हैं। गर्भभागको पुन तीन अथवा पाँच भागामे विभक्त करना चाहिये और शुक्राघ्रिके द्वारकी ऊँचाई शिखर भागकी आधी करनी चाहिये। चार शिखर बनाकर उसके तीसरे भागपर वेदि-बन्धन करे। उसके चतुर्थ भागपर पुन प्रासादके कण्ठ-भागका निर्माण करना चाहिये।[1] अथवा भवनका निर्माण करनेके लिये भूमिखण्डको समान सोलह भागाम विभक्त करके उस सोलहवे भागके चतुर्थ-भागके मध्यमे गर्भगृहका निर्माण करवाये। बचे हुए बारह भागम भित्ति (दीवाल)-का निर्माण करे। चतुर्थभागकी ऊँचाईक अनुसार ही अन्य भित्तियाको ऊँचाईका परिमाण निश्चित करना चाहिये। भित्तिकी ऊँचाईके मानकी अपेक्षा शिखरकी ऊँचाई दो गुनी हो। मन्दिरके चारा ओर बननेवाले प्रदक्षिणा-भागका विस्तार शिखर भागकी ऊँचाईके मानका चतुर्थांश होना चाहिये।

बुद्धिमानाको चाहिये कि वे उस देवप्रासादमे चारो दिशाआम निर्गम (बाहर निकलनेके) द्वार रखे। गर्भगृहकी चतुर्दिक् भित्तियोमे प्रत्येक भित्तिका पाँच भाग करके उसके मध्यके पाँचवे भागमे द्वार लगाना चाहिये। ऐसा हो गर्भगृहके प्रत्येक द्वारका मान वास्तुविद् विद्वानोने निर्धारित किया है। गर्भगृहके समान ही उसक अग्रभागमे मुखमण्डप बनाना चाहिये। यह प्रसादका सामान्य लक्षण कहा गया है। अब मैं लिङ्गनिर्माणके परिमाणको कह रहा हूँ।

हे शौनक। लिङ्गके परिमाणके अनुसार उसकी पीठका निर्माण होना चाहिये। पीठभागका दुगुना चारों ओर पीठका गर्भभाग हो। पीठगर्भके अनुमार ही उसकी भित्ति तथा उसक विस्तारके अर्धपरिमाणमे उस लिङ्गपीठका जघा-भाग निर्मित करे।

हे शौनक। जघा-भागके परिमाणकी अपेक्षा द्विगुणित ऊँचा शिखर होना चाहिये। पीठ और गर्भभागके मध्य जो परिमाण हो, उस परिमाणके अनुसार शुक्राघ्रिभाग निर्मित होता है। द्वारनिर्माणके समय पहले जैसा कहा जा चुका है शेष कार्य वैसे ही होगा। लिङ्गका परिमाण बनाया जा चुका है। अब द्वारका परिमाण कहते हैं। चार हाथ (छ फुट)-का द्वार बनाया जाय जो वास्तुसे आठवाँ हिस्सा होता है। स्वेच्छानुसार इसका दुगुना विस्तार हो सकता है।

द्वारके सदृश पीठके मध्यभागको छिद्रयुक्त हो रखना चाहिये। पादिक शैषिक तथा भित्तिद्वार परिमाणके अनुसार ही उसके अर्ध-अर्ध परिमाणकी दूरीपर निर्मित करे। उस

१-चारों दिशाओंके मध्यमें ऊपरके हिस्सेका कण्ठभाग कहते हैं।

गर्भभागके विस्तारके समान ही मण्डपके जघाभागका निर्माण करके उस जघाभागके द्विगुणके परिमाणमे ऊँचे शिखरभागको निर्मित करे। शुक्राग्रिभागको पहलेकी ही भाँति बनवाकर निर्गम अर्थात् द्वारभागको ऊँचा ही बनवाय—ऐसा मण्डपनिर्माणका मान है। इसके अतिरिक्त शेष प्रासाद-भागके स्वरूपको कह रहा हूँ, सुने—

प्रासाद-मण्डपके अग्रभागमे त्रैवेद अर्थात् त्रिद्वारीका निर्माण करवाना चाहिये, जिसके क्षेत्रभागमें देवगण विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार प्रासादके मानका अवधारण करके बाह्य भागका निर्माण करे।

इस निर्माणकार्यमे प्रासादके चारो ओर एक पाद परिमाणवाली नेमि या नींवका निर्माण करना चाहिये। वैसे ससारम गर्भगृहके परिमाणके अनुसार नेमिका मान उसका द्विगुण है। भित्तिकी चौडाईसे दो गुणा ऊँचा उसका शिखर-भाग होना चाहिये।

लक्षणा एव स्वरूपकी भिन्नताके कारण प्रासाद अनेक प्रकारके होते हैं। यथा—वैराज, पुष्पक, कैलास, मालिका (माणिक) तथा त्रिविष्टप—ये पाँच प्रकारके प्रासाद हैं। इनमे प्रथम प्रकारका वैराज नामक प्रासाद सब प्रकारसे चौकोर और समतल होता है। द्वितीय प्रकारका पुष्पक प्रासाद आयताकार होता है। तृतीय प्रकारका कैलाश नामक प्रासाद वृत्ताकार चौथा मालिका नामक प्रासाद वृत्तायत और पाँचवाँ त्रिविष्टप नामक प्रासाद अष्टकोणाकार होता है। इस प्रकारसे चने हुए ये प्रासाद बडे ही मनोहारी होते हैं। इन प्रासादोसे ही अन्य प्रकारके प्रासादाका स्वरूप निर्मित हुआ है।

यथा—मेरु, मन्दर विमान भद्रक, सर्वताभद्र रुचक, नन्दन, नन्दिवर्धन और श्रीवत्स—ये नौ प्रकारके चौकोर प्रासाद वैराज नामक प्रासाद निर्माणकी कलासे ही उत्पन्न हुए हैं।

वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विमान ब्रह्ममन्दिर भवन उत्तम्भ और शिविकावेश्म—ये नौ प्रासाद पुष्पक नामक प्रासादकलासे उत्पन्न हुए हैं।

वलय दुन्दुभि पद्म महापद्म मुकुली उष्णीपी, शख, कलश गुवावृक्ष तथा अन्य वृत्ताकार प्रासाद कैलास प्रासादसे निकले हैं। गज, वृषभ, हस, गरुड, सिह, सम्मुख, भूमुख भूधर, श्रीजय तथा पृथिवीधर—इन प्रासादोका उद्भव 'मालिका' (मणिक) नामक वृत्तायत प्रासादसे हुआ है।

वज्र, चक्र, मुष्टिकवभ्रु, वक्रस्वस्तिक, खड्ग, गदा, श्रीवृक्ष, विजय तथा श्वेत—इन नौ प्रासादोका प्रादुर्भाव त्रिविष्टप नामक प्रासादसे हुआ है।

इसके अतिरिक्त त्रिकोण पद्माकार, अर्धचन्द्राकार, चतुष्कोण तथा षोडशकोणीय प्रकारसे भी मण्डपके सस्थानका निर्माण जहाँ-तहाँ किया जा सकता है, जो क्रमश —राज्य, ऐश्वर्य, आयुवर्धन, पुत्रलाभ और स्त्रीप्राप्ति करानेवाले होते हैं।

मुख्यद्वारके स्थानमे ही ध्वजा आदि तथा गर्भगृहका निर्माण कराना चाहिये। सूत्रके द्वारा सम सख्याओसे गुणित मण्डपका निर्माण करके उस मण्डपके चतुर्थांश अर्थात् चौथाई परिमाणका एक भद्रगृह निर्मित करवाये। भद्रगृहको समानान्तर वातायन (रोशनदान)-से अथवा वातायनसे रहित बनाना चाहिये। कहीं मण्डपकी दीवालके बराबर अथवा कहीं उससे डेढ गुना अथवा कहीं दुगुने मापके मण्डप बनाये जाने चाहिये। प्रासादके लतामण्डपकी भूमि विपम तथा चित्र-विचित्र (रग-बिरगी) वर्णकी बनानी चाहिये। परिमाण-विरोध रहनेपर उसे विपम रेखाआसे अलकृत किया जा सकता है।

प्रासादकी आधारभूमि प्रत्येक दिशाओम अवस्थित चार द्वारों और चार मण्डपोसे सुशोभित होनी चाहिये। जो प्रासाद सौ शृगावाला अर्थात् सौ मीनारोसे युक्त रहता है, उसे मेरु-सज्ञासे अभिहित किया जाता है। यह अन्य प्रासादाकी अपेक्षा उत्तम कोटिका होता है। इस प्रकारके प्रासादमें प्रत्येक मण्डप तीन-तीन भद्रगृहासे अलकृत होने चाहिये।

निर्माणपद्धति, आकार और परिमाणके वैभिन्यके कारण वे प्रासाद भिन्न-भिन्न प्रकारके हो जाते हैं। जिनम कुछ प्रासादोका आधार होता है, किंतु कुछ आधारसे रहित होते हैं। वे प्रासाद अपने छन्दक अर्थात् छत-निर्माणके भेदसे भी भिन्न-भिन्न प्रकारके हो जाते हैं। रचना-पद्धति तथा नामके भेदसे परस्पर साकर्यके कारण भी भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रासाद हा जाते हैं।

देवताओकी विशेपताके कारण बहुत प्रकारके प्रासाद

बताये गये हैं। यद्यपि स्वयंभू (स्वतः प्रादुर्भूत देवमूर्ति) देवताओंके लिये निर्मित होनेवाले प्रासादके निमित्त कोई नियम नहीं हैं, तथापि देवोंके लिये उक्त मानके अनुसार ही उन प्रासादोंका निर्माण करवाना चाहिये, जो चतुरस्र अर्थात् चौरस भूमिपर समान चार कोणोंसे समन्वित हो। वे प्रासाद चन्द्रशालाओं (बारादरी)-से युक्त तथा भेरीशिखर (नौबतखानों)-से संयुक्त होने चाहिये। उनके सामनेके भागमें वाहनोंके लिये लघु मण्डप भी निर्मित हों।

देवप्रासादके द्वारदेशकी संनिधिमें नाट्यशाला बनानी चाहिये। प्रासादके विभिन्न दिशाओंके मुख्य द्वारोंपर अलग-अलग द्वारपाल बनाने चाहिये। उस देवप्रासादसे कुछ दूर देवालयमें रहनेवाले सेवकवर्गके लिये आवास बनवाना चाहिये।

देवप्रासादकी भूमि फल, पुष्प और जलसे परिपूर्ण होनी चाहिये। ऐसे प्रासादोंमें देवताओंको स्थापित करके उनकी अर्घ्यादिक विविध प्रकारके उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। वासुदेव तो सर्वमय हैं, उनके भवनका निर्माण करनेवाला व्यक्ति सभी फलोंको प्राप्त करता है। (अध्याय ४७)

देव-प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि

सूतजीने कहा—अब मैं सभी देवताओंकी प्रतिष्ठा-विधिको संक्षेपमें कह रहा हूँ। प्रशस्त तिथि-नक्षत्रादिमें प्रतिष्ठा करवानी चाहिये।

सर्वप्रथम अपनी वैदिक शाखामें कहे गये विधानके अनुसार या प्रणव-मन्त्र (ॐकार)-का उच्चारण करके पाँच या उससे अधिक ऋत्विजोंके साथ मध्य स्थानमें स्थित आचार्यका वरण करे। तदनन्तर पाद्य, अर्घ्य और मुद्रिका, वस्त्र-गन्ध-माल्य एवं अनुलेपनीय द्रव्योंसे उनका पूजन करे। गुरुको चाहिये कि वे मन्त्रन्यासपूर्वक प्रतिष्ठाकर्मका समारम्भ करें।

प्रासादके अग्रभागमें दस अथवा बारह हाथका एक वर्गाकार सोलह खम्भोंवाला मण्डप तैयार करके उसमें (पूर्वादिक चारों दिशाओं और ईशानादिक चार विदिशाओंमें एक-एक ध्वजा—इस तरह) कुल आठ ध्वजाओंको प्रतिष्ठित करना चाहिये। तदनन्तर मण्डपके मध्यभागमें चार हाथ परिमाणकी एक वेदीका निर्माण कराये। उस वेदीके ऊपरी भागमें नदियोंके संगम-स्थलके किनारेसे लायी गयी बालुका बिछाये। प्रधान कुण्डका निर्माण करवाकर उसके पूर्व दिशामें वर्गाकार, दक्षिणमें धनुषाकार, पश्चिममें वर्तुलाकार और उत्तरमें पद्माकार—इस प्रकार पाँच कुण्डोंका निर्माण करवाना चाहिये अथवा सभी कुण्ड चौकोर रखे जा सकते हैं।

कुण्ड-निर्माणके पश्चात् समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये आचार्य शान्तिकर्मके लिये विहित विधिसे हवन करें। कुछ लोग मण्डपके ईशानकोणकी भूमिको गायके गोबर या स्वच्छ मिट्टीसे लीपकर उसमें होम करते हैं।

मण्डपमें लगे तोरणोंके समीप ही पूर्वादिक दिशाओंमें चार द्वारोंका निर्माण करवाना चाहिये। मण्डपके तोरणस्तम्भ न्यग्रोध (वट), उदुम्बर (गूलर), अश्वत्थ (पीपल) बिल्व, पलाश, खदिर (खैर) काष्ठसे निर्मित होने चाहिये। प्रत्येक तोरणस्तम्भका परिमाप पाँच हाथ होना चाहिये और प्रत्येक स्तम्भको वस्त्र-पुष्पादिसे अलंकृत करना चाहिये तथा उसके निचले भागको एक हाथ नापकर पृथ्वीमें गाड़ देना चाहिये। शेष चार हाथ परिमाणका भाग ऊपर रखे। इसी प्रकार उन्हें मण्डपके चारों ओरकी दिशाओंमें स्थापित करवाना चाहिये।

मण्डपके पूर्वी द्वारपर मृगेन्द्र, दक्षिणी द्वारपर हयराज, पश्चिमी द्वारपर गोपति तथा उत्तरी द्वारपर देवशार्दूलका न्यास करे। पहले *'अग्निमीळे०'* इस मन्त्रसे पूर्व द्वारकी दिशामें मृगेन्द्रका न्यास करे। तदनन्तर *'इषेत्वेति च०'* इस मन्त्रसे दक्षिण द्वारकी दिशामें हयराजका, *'अग्न आयाहि०'* इस मन्त्रसे पश्चिम द्वारकी दिशामें गोपतिका और *'शन्नोदेवी०'* मन्त्रसे उत्तर द्वारकी दिशामें देवशार्दूलका न्यास करना चाहिये।

मण्डपकी पूर्व दिशामें मेघवर्णके समान श्याम, अग्निकोणमें धूम्रवर्ण दक्षिण दिशामें कृष्णवर्ण, नैर्ऋत्यकोणमें धूसरवर्ण[1], पश्चिम दिशामें पाण्डुरवर्ण, वायुकोणमें पीतवर्ण उत्तर दिशामें रक्तवर्ण ईशानकोणमें शुक्लवर्ण तथा मण्डपके

[1] १-पीतवर्णके साथ शुक्लवर्ण पाण्डुरवर्ण है और थोड़ा कम पाण्डुरवर्ण धूसरवर्ण है।

मध्यभागमे अनेक वर्णवाली पताकाको स्थापित करे।

'इन्द्रविद्येति०' इस मन्त्रसे पूर्व दिशामे इन्द्र, 'ससुप्ति०' इस मन्त्रसे अग्निकोणमे अग्नि, 'यमोनाग०' इस मन्त्रसे दक्षिणमे यम, 'रक्षोहणावेति०' मन्त्रसे (नैर्ऋत्यमे निर्ऋति) पश्चिममे वरुण तथा 'ॐ वातेति०' मन्त्रसे वायव्यमे वायुदेवका अभिषेक करके उत्तरमे 'ॐ आप्यायस्वेति०' मन्त्रसे कुबेरकी पूजा करे। 'ॐ तमीशान०' इस मन्त्रसे ईशान दिशामें ईशान और मण्डपके मध्यभागमें 'ॐ विष्णोर्लोकेति०' मन्त्रसे विष्णुका पूजन करना चाहिये।

प्रत्येक तोरणके समीप दो-दो कलश स्थापित करनेके पश्चात् वस्त्र तथा उपवस्त्रसे आच्छादित चन्दनादि सुगन्धित पदार्थोंसे अलकृत, पुष्प, वितान एव अन्यान्य पूजा-उपचारोंसे सुशोभित दिक्पालोकी पूजा करनी चाहिये।

'ॐ त्रातारमिन्द्र०' मन्त्रसे इन्द्र, 'ॐ अग्निर्मूर्धा०' मन्त्रसे अग्नि, 'ॐ असिमन्वृक्ष०' मन्त्रसे निर्ऋति 'ॐ कि चे दधातु०' मन्त्रसे वरुण, 'ॐ आचत्वा०' मन्त्रसे कुबेर, 'ॐ इमा रुद्रेति०' मन्त्रसे रुद्र आदि दिक्पालाकी पूजा करके विद्वान् आचार्यको चाहिये कि वह वायव्यकोणमे होमद्रव्य एव अन्य पूजामे प्रयुक्त वस्तुआको स्थापित करे।

तदनन्तर वह गुरु वहाँ रखी गयी श्वेत शखादिक शास्त्र-विहित समस्त वस्तुआपर एक बार दृष्टिपात कर ले ऐसा करनेसे निश्चित द्रव्याकी शुद्धि हो जाती है।

तत्पश्चात् हृदयादि षडङ्गोका न्यास व्याहृति और प्रणवमन्त्रसे सयुक्त करके क्रमश —(ॐ हृदयाय नम , ॐ भू शिरसे स्वाहा, ॐ भुव शिखायै वषट्, ॐ स्व कवचाय हुम्, ॐ भूर्भुव स्व नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ भूर्भुव स्व करतलकरपृष्ठाभ्या फट् मन्त्रका उच्चारण करते हुए) हृदय, सिर शिखा, कवच, नेत्र, करतल और करपृष्ठका स्पर्श करे। तदनन्तर 'ॐ अस्त्राय फट्' मन्त्रसे अस्त्रका न्यास भी करना चाहिय, क्योकि यह न्यास-कर्म समस्त इच्छाओको पूर्ण करनेवाला होता है।

अस्त्र-मन्त्रके द्वारा अक्षत और विष्टरका अभिमन्त्रित करके उसी विष्टरके द्वारा यज्ञमण्डपमे एकत्रित समस्त द्रव्योका स्पर्श करे। तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रसे पवित्र किय गये उन अक्षताको अपने चारो ओर बिखर दे। उसके बाद पूर्व दिशासे लेकर अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्यकोण, पश्चिम, वायुकोण, उत्तर और ईशानकोणपर्यन्त मण्डपमे अभिमन्त्रित अक्षताका निक्षेप करके सम्पूर्ण यज्ञ-मण्डपका लेपन करवाना चाहिये।

तदनन्तर याज्ञिक गुरुको चाहिये कि वह अर्घ्यपात्रमे गन्धादिसे युक्त जलको पूर्णकर मन्त्रसमूहोसे उसे अभिमन्त्रित करे। उसी अभिमन्त्रित जलसे यज्ञमण्डपका प्रोक्षण करना चाहिय। उसके बाद जिस देवकी प्रतिष्ठा करनी है, उसी देवके नामसे मण्डपके ईशानकोणमे कलश स्थापितकर उसके दक्षिण भागमे अस्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित वर्द्धिनीकी[1] स्थापना करे। उसके बाद कलश, वर्द्धिनी, ग्रह और वास्तोष्पति देवकी यथाविहित आसनपर प्रतिष्ठाके साथ पूजा करके आचार्य प्रणव-मन्त्रका जप करे। तदनन्तर सूत्रसे वेष्टित, पञ्चरत्नोसे युक्त दो वस्त्रासे आच्छादित सब प्रकारकी औषधियो तथा चन्दनादि सुगन्धित पदार्थोंसे अनुलिप्त उस कलशकी पुन पूजा करे, साथ ही उस कलशमे प्रतिष्ठित देवताकी भी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर उत्तम वस्त्रसे वर्द्धिनीको आच्छादित करके उसके साथ कलशको घुमाये। वर्द्धिनीकी जलधारासे उस कुम्भका सिञ्चित करके उसके आगे ही वर्द्धिनीको स्थापित करे। वर्द्धिनीके साथ उस कुम्भका पूजन करके स्थण्डिलमे मूल देवताकी पूजा करे।

उसके बाद वायव्यकोणमे एक घटकी स्थापना करनी चाहिय। उसमे गणपतिका आवाहनकर 'ॐ गणाना त्वेति०' मन्त्रसे उनकी पूजा करके ईशानकोणमे दूसरा घट स्थापित करे। उसमे वास्तुदोष-परिहारके लिये 'ॐ वास्तोष्पते०' इस मन्त्रसे वास्तुदेवकी पूजा करनी चाहिये। कुम्भके पूर्वभागमे भूत और गणदेवको बलि प्रदानकर वेदीका आलम्भन करे। तदनन्तर 'ॐ योगेयोगेति०' मन्त्रसे हरे कुशाका आस्तरण करे और ऋत्विजोके साथ आचार्य तथा यज्ञदीक्षित वह श्रेष्ठ यजमान स्नान-पीठपर उस देवमूर्तिको प्रतिष्ठित करे। उस समय विविध वैदिक मन्त्रोच्चारके साथ जय-जयकारकी मङ्गल ध्वनि करनी चाहिये।

स्नान करवानेके लिये पीठसहित उस देवमूर्तिको ब्रह्मरथपर बैठाकर ईशानकोणमे अवस्थित मण्डपपीठमे

१-कमण्डलु (गडुआ) कलशविशेष-देवताकी प्रतिष्ठा आदिमें विहित पात्र।

स्थापित करे। तदनन्तर 'ॐ भद्र कर्णेति०' मन्त्रसे स्नान कराकर यज्ञीय सूत्र या वल्कल वस्त्रसे पोछकर मूर्तिको स्वच्छ करके तूर्यादिक वाद्य-यन्त्रोका वादन करते हुए लक्षणोद्धार (मूर्तिका नामकरण) करे।

उसके बाद कांस्य या ताम्र-पात्रमे स्थित घृत और मधुसे मिश्रित अञ्जनको सोनेकी शलाकासे लेकर उस प्रतिमाकी आँखोमे अञ्जन करे। अञ्जन लगानेके लिये 'ॐ अग्निर्ज्योतीति०' मन्त्रसे देवके नेत्रोको उद्घाटित करना चाहिये।

अञ्जनादिसे सुशोभित उस देवप्रतिमाका नामकरण स्थापना करनेवाला व्यक्ति करे। तदनन्तर 'ॐ इम मे गङ्गेति०' मन्त्रसे प्रतिमाके नेत्रोमे शीतल-क्रिया (शीतलीकरण)-का सम्पादनकर 'ॐ अग्निर्मूर्द्धेति०' मन्त्रसे बाँबी अर्थात् दीमकादिके द्वारा एकत्रित की गयी मिट्टी उस देवमूर्तिको समर्पित करे और बिल्व, गूलर, पीपल, वट, पलाशद्वारा निर्मित पञ्चकषायको लेकर 'ॐ यज्ञायज्ञेति०' मन्त्रसे प्रतिमाको स्नान कराये। तत्पश्चात् पञ्चगव्यसे स्नान कराकर सहदेवी, बला, शतमूली, शतावरी, घृतकुमारी, गुडूची, सिंही तथा व्याघ्री—इन औषधियोसे युक्त जलसे 'ॐ या ओषधीति०' मन्त्रद्वारा स्नान कराये। तदनन्तर 'ॐ या फलिनीति०' मन्त्रके द्वारा फल-स्नान करानेका विधान है।

तत्पश्चात् 'ॐ द्रुपदादिवेति०' मन्त्रसे विद्वानोको उद्वर्तन-कृत्य करना चाहिये। अनन्तर उत्तर आदि दिशाओमे क्रमश चार कलशोका स्थापन करना चाहिये और उन कलशोमे विविध रत्न सप्तधान्य[1] और शतपुष्पिका[2] नामक औषधिका निक्षेप करना चाहिये। इसके अतिरिक्त उन चारो कलशोमे चारो समुद्र एव चारो दिशाओके अधिष्ठाता देवोका आवाहन करना चाहिये। साथ ही दूध दही क्षीरोदक एव घृतोदकसे चारो कलशोको पृथक्-पृथक् परिपूर्ण करके 'आप्यायस्व०' इस मन्त्रसे दुग्धकुम्भ 'दधिक्राव्णो०' मन्त्रसे दधिकुम्भ, 'या ओषधी०' इस मन्त्रसे क्षीरोदककुम्भ तथा 'तेजोसि०' मन्त्रसे घृतकुम्भको अभिमन्त्रित करना चाहिये। अभिमन्त्रित इन चारो कलशोको चार समुद्रोका प्रतिनिधि समझते हुए इनके द्वारा देवप्रतिमाको स्नान कराना चाहिये।

इस प्रकार स्नान-सम्पन्न उस देवप्रतिमाको सुन्दर वेश-भूषासे अलंकृत करके गुग्गुलका धूप प्रदान करे। तत्पश्चात् पुन कुम्भोमे पृथ्वीपर विद्यमान सभी तीर्थों, नदियो तथा सागरोका विन्यास करना चाहिये। उन कुम्भोको 'ॐ या ओषधीति०' मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उनसे पुन उस देवप्रतिमाका अभिषेक करे। जो व्यक्ति अभिषेकके अवशिष्ट जलसे स्नान करता है, वह सभी पापोसे मुक्त हो जाता है।

समुद्रके प्रतिनिधिरूप उन कुम्भोसे उस देवमूर्तिका अभिषेक-कृत्य सम्पन्न होनेके पश्चात् अर्घ्य प्रदान करके 'ॐ गन्धद्वारेति०' मन्त्रसे सुगन्धित चन्दनादि पदार्थोद्वारा अनुलेप करे। साथ ही शास्त्रोमे विविध वेदमन्त्रोसे देवमूर्ति-न्यासकी प्रक्रिया भी सम्पन्न करे। तत्पश्चात् 'ॐ इम वस्त्रेति०' मन्त्रके द्वारा वस्त्रोसे मूर्तिको आच्छादित करे। उसके बाद 'ॐ कविहाविति०' मन्त्रका उच्चारण करते हुए उस प्रतिमाको सुन्दर मण्डपमे ला करके 'ॐ शाम्भवायेति०' मन्त्रसे शय्यापर स्थापित करे। तदनन्तर 'ॐ विश्वतश्चक्षु०' मन्त्रका उच्चारणकर समस्त पूजाविधिको सब प्रकारसे परिपूर्ण करे। तत्पश्चात् वहींपर बैठकर परमतत्त्वका ध्यान करते हुए आचार्यको शास्त्रीय विधानके अनुसार मन्त्रन्यास करना चाहिये। मन्त्रन्यासकी प्रक्रिया मन्त्रशास्त्रोमे बतायी गयी है। इस न्यासके बाद मण्डपमे प्रतिष्ठापित देवप्रतिमाको वस्त्रसे आच्छादित करना चाहिये और उसकी यथाविधि पुन पूजा भी करनी चाहिये। शास्त्रीय विधिके अनुसार जो देवताको समर्पित करना है, वह उनके पादमूलमे समर्पित कर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त देवताके शिरोभागमे दो वस्त्रोसे वेष्टित स्वर्णसे युक्त एव प्रणवसे अंकित कलश स्थापित करना चाहिये।

तदनन्तर कुम्भके सन्निकट बैठकर आचार्य वेदमन्त्रोच्चारके साथ अग्निकी स्थापना करे। तदनन्तर पूर्वदिशामे ऋग्वेदवेत्ता ऋत्विक् कुण्डके समीप बैठकर श्रीसूक्त तथा पवमान आदि सूक्तोका पाठ करे।

कुण्डके दक्षिण दिशामें स्थित अध्वर्यु अर्थात् यजुर्वेदवेत्ता आचार्य रुद्रसूक्त तथा पुरुषसूक्तका पारायण करे। कुण्डके पश्चिममे बैठा हुआ उद्गाता सामवेदीय आचार्य वेदव्रत,

१-जौ धान तिल कँगनी मूँग चना साँवा—इन धान्योका समूह सप्तधान्य कहलाता है।

२-शतपुष्पिका सौंफ या वनसौंफको कहते हैं।

वामदेव्य, ज्येष्ठसाम, रथन्तर एवं भेरुण्डसामका पाठ करे। ऐसे ही कुण्डके उत्तरमें स्थित अथर्ववेदवेत्ता अथर्वशिरस्, कुम्भसूक्त, नीलरुद्रसूक्त एवं मैत्रसूक्तका पारायण करे।

तदनन्तर आचार्य अस्त्र-मन्त्रके द्वारा भलीभाँति कुण्डका प्रोक्षण करके स्वसामर्थ्यके अनुसार प्राप्त ताम्र या अन्य किसी धातुसे निर्मित पात्रमें अग्नि ग्रहणकर उसे मूर्तिके आगे स्थापित करे। तत्पश्चात् उस अग्निको अस्त्र-मन्त्रसे प्रज्वलित करके कवच-मन्त्रके द्वारा वेष्टित कर देना चाहिये (इसे अग्निका अमृतीकरण-कृत्य कहते हैं)।

इस प्रकार अमृतीकृत अग्निको गुरु वेदमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके पात्रसहित कुण्डके चारों ओर घुमाये और वैष्णवयोगसे उसे प्रज्वलितकर वहीं कुण्डके मध्य स्थापित करे। अग्निके दक्षिणमें ब्रह्मा और उत्तरमें प्रणीताका स्थापितकर कुण्डकी प्रत्येक दिशाओं एवं विदिशाओंमें कुशाके विष्टरोंसे परिधिका निर्माण करे।

तदनन्तर गुरु ब्रह्मा, विष्णु, हर और ईशानकी पूजा करके दर्भोंके ऊपर अग्निको रखकर दर्भसे ही वेष्टित करके दर्भजलसे ही प्रोक्षण करे, क्योंकि कुशाद्वारा प्रदत्त जलका प्रोक्षण करनेसे बिना मन्त्रके भी शुद्धि हो जाती है और पूर्वाग्र, उत्तराग्र एवं पश्चिमाग्र अखण्डित तथा विस्तृत कुशाओंसे वेष्टित वह्नि देवताका सांनिध्य स्वयं ही हो जाता है।

अग्निकी रक्षाके लिये मन्त्रज्ञान जो उपर्युक्त नियम कहे हैं, उनके विषयमें कुछ आचार्योंका विचार है कि उन सभी कृत्योंको जातकर्म-संस्कारके पश्चात् करना चाहिये।

अग्निका पवित्रीकरण करके आचार्यको आज्य-संस्कार करना चाहिये। अनन्तर आज्य (घृत)-को आहुतियोग्य बनानेके लिये उसका अवेक्षण, निरीक्षण, नीराजन एवं अभिमन्त्रण करके उसके द्वारा मुख्य हवनके पूर्व करणीय आज्यभाग एवं अभिघार[1] नामका कृत्यविशेष सम्पन्न करना चाहिये। तदनन्तर उस आज्यसे पाँच-पाँच आहुतियाँ देनी चाहिये। उसके बाद गर्भाधान-संस्कारसे लेकर गोदान-संस्कारपर्यन्त अग्निका संस्कार करके आचार्यको अपनी शाखाके अनुसार विहित मन्त्रोंसे अथवा प्रणवसे आहुति प्रदान करनी चाहिये। आचार्य अन्तमें पूर्णाहुति प्रदान करे, क्योंकि पूर्णाहुति देनेसे यजमानकी अभिलाषा पूर्ण हो जाती है।

इन वेद-विहित नियमोंसे उत्पन्न हुई अग्नि सभी कार्योंमें सिद्धि प्रदान करनेवाली होती है। अतएव पुनः उसकी पूजा करके अन्य सभी कुण्डोंमें उसे प्रतिष्ठित करना चाहिये। वहाँ प्रत्येक आचार्य अपने शाखामन्त्रोंसे इन्द्रादि सभी देवोंको सौ-सौ आहुतियाँ प्रदान करें। सौ आहुतियोंके पश्चात् पूर्णाहुति समर्पित करके सभी देवोंको एक-एक आहुति पुनः प्रदान करनी चाहिये।

होता अपने द्वारा अनुष्ठित आज्याहुतियोंके शेष भागको यथाविधान कलशमें समर्पित करें। इसके बाद आचार्य देवता, मन्त्र एवं अग्निके साथ अपने तादात्म्यकी भावना करते हुए पूर्णाहुति सम्पन्न कराये।

यज्ञमण्डपसे बाहर आकर आचार्य दिक्पालोंको बलि प्रदान करे। इस बलिकृत्यके साथ भूतों, देवताओं और नागोंको बलि देनी चाहिये। तिल और समिधा—यही दो होम-पदार्थ विहित हैं। आज्य तो उन दोनोंका सहयोगी है, क्योंकि घृतके बिना हवनीय द्रव्य अक्षय (परिपूर्ण) नहीं होता।

इस हवनकृत्यमें पुरुषसूक्त, रुद्रसूक्त, ज्येष्ठसाम तथा 'तन्त्रयामि' इस मन्त्रसे युक्त भारुण्डसूक्त, महामन्त्रके रूपमें प्रसिद्ध नीलरुद्रसूक्त एवं अथर्वके कुम्भसूक्तका पारायण यथाक्रम पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम आदि दिशाओंमें आसीन ऋत्विजोंसे करवाना चाहिये। इस हवन-कर्ममें एक-एक सहस्र आहुतिका विधान है और इन आहुतियोंमें वेदोंके आदि मन्त्रों, देवताके नाम-मन्त्रों, अपनी शाखाके विहित मन्त्रों, गायत्री-मन्त्रके साथ यथाविधान व्याहृति एवं प्रणवका प्रयोग करना चाहिये। साथ ही यह भावना करनी चाहिये कि हम इन आहुतियोंको देवताके शिरोभाग, मध्यभाग तथा पादभाग आदिमें समर्पित कर रहे हैं और स्वयंको देवमय समझना चाहिये।

इस प्रकार होम-विधिको सम्पन्न करके देशिक (आचार्य)-को चाहिये कि वह देव-विग्रहमें मन्त्रोंका न्यास करे। यथा—'ॐ अग्निमीळे०' मन्त्रका देवके दोनों चरणोंमें, 'ॐ इषेत्वेति०' मन्त्रका दोनों गुल्फोंमें, 'ॐ अग्न आयाहि०' मन्त्रसे देवकी दोनों जंघाओंमें, 'ॐ शन्नोदेवीति०' मन्त्रका दोनों जानुओंमें, 'ॐ बृहद्रथन्तर०' मन्त्रका दोनों ऊरुओंमें

१-अभिघार (आघार) एवं आज्यभाग आहुतिविशेषका नाम है। यह कुशकण्डिका नामके विशेष कृत्यके सम्पादन-कालमें मुख्य आहुतियोंके पूर्व अवश्य करणीय है।

न्यास विहित है। दवके उदर भागम भी इसी प्रकार न्यास करना चाहिये। तदनन्तर '*ॐ दीर्घायुष्ट्वाय०*' मन्त्रका देवके हृदयमे, '*ॐ श्रीश्चते०*' मन्त्रका गलम, '*ॐ त्रातारमिन्द्र०*' मन्त्रका वक्ष स्थलमे, '*ॐ त्र्यम्बक०*' मन्त्रका दाना नेत्राम तथा '*ॐ मूर्द्धा भव०*' मन्त्रका मस्तकम न्यास करक विहित लग्नमुहूर्तमे हवन करे।

इसके पश्चात् '*ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०*' मन्त्रस दवमूर्तिका उत्थापन करके मन्त्रवेत्ता आचार्य '*देवस्य त्वा०*' मन्त्रसे मूर्तिका स्पर्श करते हुए वेदोक्त पुण्याहवाचनक साथ दवप्रासादकी प्रदक्षिणा करे। इसके अनन्तर विविध रत्न, विविध धातु, लौहद्रव्य एव विधानके अनुसार अनेक प्रकारके सिद्धबीजोके साथ दिक्पाल आदि देवताओकी प्रदक्षिणा विहित है। इसके अनन्तर यथास्थान प्रधान दवप्रतिमाकी प्रतिष्ठा होनी चाहिये।

देवमूर्तिको मन्दिरके मुख्य गर्भभागम स्थापित नहीं करना चाहिये ओर न उस गर्भका परित्याग करके अन्यत्र हा उसकी स्थापना हानी चाहिये, अपितु गर्भभागका कुछ मध्यभाग छोडकर उसे स्थापित करनस दोषका परिहार हो जाता है। अत तिलक कणमात्र परिमाणमे मूर्तिको उत्तरकी ओर कुछ बढा लना चाहिये।

'*ॐ स्थिरा भव*', '*शिवो भव*', '*प्रजाभ्यश्च नमो नम* ', '*देवस्य त्वा सवितु ०*' आदि मन्त्रासे गुरु देवमूर्तिका यथाविधि विन्यास एव अभिमन्त्रण करे। साथ ही सुप्रतिष्ठित देवप्रतिमाको यथाविधान सम्पानकलशके जलसे ही स्नान कराना चाहिये।

तदनन्तर धूप-दीप, अन्य सुगन्धित पदार्थ तथा नैवेद्यसे उस दवप्रतिमाकी विधिवत् पूजा करक अर्घ्य प्रदान करे ओर प्रणाम निवेदन करके क्षमा-प्रार्थना करे।

उसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार यजमान ऋत्विजोंको पात्र, वस्त्र एव उपवस्त्र, छत्र, सुन्दर बहुमूल्य अँगूठी तथा दक्षिणा देकर सतुष्ट करे। तदनन्तर सावधान होकर यजमान चतुर्थी होम करे। सो आहुतियोको देकर अन्तम वह पूर्णाहुति प्रदान करे।

इसक बाद आचार्य मण्डपसे बाहर आकर दिक्पालाको बलि प्रदान करके पुष्प लेकर '*क्षमस्व*' इस वाक्यसे उन दवोका विसजन कर दे।

इस प्रकार यज्ञ पूर्ण होनेके पश्चात् आचार्यको कपिला धेनु, चामर, मुकुट, कुण्डल, छत्र, केयूर, कटिसूत्र व्यजन (पखा), वस्त्रादि वस्तुएँ, ग्राम तथा साज-सज्जापूर्ण सुन्दर भवन प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर आचार्य तथा अन्य सहयागीजनाके लिये सुन्दर विशाल भोजका आयोजन कराकर सबको सतुष्ट करना चाहिये। ऐसा करनेसे यजमान कृतार्थ हो जाता है और वास्तुदवकी प्रसन्नतासे उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। (अध्याय ४८)

वर्ण एव आश्रमधर्मोका निरूपण

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजा महाराज! स्वायम्भुव मनु आदि शास्त्रकाराके द्वारा पुज्य तथा सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाले भगवान् हरिकी पूजा ब्राह्मणादि चारा वर्ण अपने-अपने धर्मक अनुसार करत हैं। मैं पृथक्-पृथक् रूपसे उनके धर्मोंको कह रहा हूँ। आप उसे सुन।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! यजन याजन दान प्रतिग्रह अध्ययन और अध्यापन—ये छ कर्म ब्राह्मणके धर्म हैं। दान अध्ययन तथा यज्ञ—ये क्षत्रिय एव वैश्यके साधारण धर्म हैं। इसक अतिरिक्त दण्ड क्षत्रियक लिये और कृषि करना वैश्यके लिय विशेष धर्म स्वीकार किया गया है।

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों द्विजातियोका [illegible] धर्म है। [illegible] उनको [illegible] है। धर्मानुसार वे पाकयज्ञ-सस्थाका निर्वहन भी कर सकते हैं।

भिक्षाचरण गुरु-शुश्रूषा स्वाध्याय, सध्या तथा अग्नि-कार्य—ये ब्रह्मचारियाके धर्म हैं।

चारा आश्रमाके दा भेद माने गये हैं। इसके अनुसार ब्रह्मचारीके उपकुर्वाण तथा नैष्ठिक—य दो भेद हैं। जो द्विज विधिवत् वदादिका अध्ययन करके गृहस्थाश्रमम प्रविष्ट हो जाता है वह उपकुर्वाण है। जो मृत्युपर्यन्त गुरुकुलमें निवास करते हुए वेदाध्ययन करते रहते हैं—ब्रह्मतत्पर होते हैं उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारीके नामसे जानना चाहिये।

हे द्विजश्रेष्ठ! अग्निकार्य अतिथिसेवा यज्ञ-दान और देवार्चन—ये सभी गृहस्थोंके सक्षिप्त धर्म हैं। गृहस्थके साधक और उदासीन दो प्रकार हैं। जो गृहस्थ परिवारके

भरण-पोषणमे लगा रहता है, वह साधक है। जो गृहस्थ पितृऋण, देवऋण और ऋषिऋण—इन तीनोसे मुक्त होकर पत्नी-धनादिका भी त्याग करके एकाकी धर्माचरण करता हुआ विचरण करता रहता है, वह उदासीन गृहस्थ है। उसीको मौक्षिक भी कहते हैं।

भूमिशयन, फल-मूलका आहार, वेदाध्ययन, तप और अपनी सम्पत्तिका यथाधिकार यथोचित विभाग—ये सभी वानप्रस्थके धर्म हैं। जो वानप्रस्थ अरण्यमे तपश्चरण करता है, देवार्चन और उन्हे आहुति प्रदान करता है तथा स्वाध्यायमे सदैव अनुरक्त रहता है, वह वानप्रस्थ तापसोत्तम कहा जाता है। ऐसे ही जो वानप्रस्थ तपके द्वारा शरीरको अत्यन्त क्षीण करके ईश्वरके ध्यानमे सदा निमग्न रहता है, वह वानप्रस्थाश्रमम रहता हुआ भी सन्यासीके रूपमे जाना जाता है।

जो भिक्षु (सन्यासाश्रमी) नित्य यागाभ्यासमे अनुरक्त होकर ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये प्रयासरत एव जितेन्द्रिय बना रहता है, उसको पारमेष्ठिक सन्यासी कहते हैं। जो सदेव आत्मतत्त्वानुसधानमे प्रेम रखनेवाले हैं, नित्य तृप्त हैं, जो सयम-नियमसे रहते हैं, ऐसे महामुनि योगी भिक्षु कहे जाते हैं। भिक्षाचरण, वेदाध्ययन, मौनावलम्बन, तप, ध्यान, सम्यक् ज्ञान और वैराग्य—ये भिक्षुक (सन्यासाश्रमी)-के सामान्य धर्म माने गये हैं।

पारमेष्ठिक सन्यासी तीन प्रकारके हैं—ज्ञानसन्यासी, वेदसन्यासी एव कर्मसन्यासी। योगीके भी तीन प्रकार हैं—जिन्हे भौतिक, (क्षत्र) एव अन्त्याश्रमी योगी कहते हैं। ये तीनो योगमूर्तिस्वरूप परमात्माका आश्रयकर स्थित रहते हैं।

इन योगियोकी पृथक्-पृथक् ब्रह्मभावनाएँ होती हैं। प्रथम प्रकारकी ब्रह्मभावना भौतिक योगीम रहती है। दूसरी (मोक्ष) भावना क्षत्र योगीमे रहती है, इसीको अक्षर भावना कहते हैं। तीसरी भावनाको अन्तिम भावना कहते हैं, जो पारमेश्वरी भावनाके नामसे भी जानी जाती है[१]।

मनुष्यको धर्मसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है, अर्थसे काम-पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है। वेदमे प्रवृत्ति और निवृत्तिके भेदसे दो प्रकारके कर्म कहे गये हैं। वेदशास्त्रानुसार अग्नि आदि देव एव गुरु-विप्रादिको प्रसन्न करनेके लिये जो कर्म विहित हैं, वे प्रवृत्तिकर्म हैं तथा सविधि कर्मानुष्ठानसे चित्तशुद्धिके अनन्तर आत्मज्ञानमात्रम सदा रत रहना निवृत्तिकर्म है।

क्षमा, दम, दया, दान, निर्लोभता, स्वाध्याय, सरलता, अनसूया, तीर्थका[२] अनुसरण, सत्य, सतोष, आस्तिक्य, इन्द्रियनिग्रह, देवार्चन—विशेषकर ब्राह्मणोका पूजन, अहिसा, प्रियवादिता, अरूक्षता और अपैशुन्य (चुगली न करना)—इन सभीको चारो आश्रमोका सामान्य धर्म स्वीकार किया गया है[३]।

इसके बाद अब मैं चारा वर्णोंको प्राप्त होनेवाले स्थानके विषयम कह रहा हूँ।

उपर्युक्त वेद-विहित कर्मोको करनेवाले ब्राह्मणोके निमित्त प्राजापत्य नामका स्थान है (अर्थात् ब्राह्मण ऐसे धर्मोका पालन करता हुआ अन्त समयम प्राजापत्य लोक प्राप्त करता है)। युद्धमे न भागनेवाले धर्मरत क्षत्रियोको स्वर्गमे इन्द्रका स्थान प्राप्त होता है। सदैव अपन धर्मम अनुरक्त रहनेवाले वैश्य अन्तमे मरुद् देवके स्थानको प्राप्त करते हैं। ब्राह्मणादि द्विजोकी सेवामे तत्पर रहनेसे शूद्राको गन्धर्वलोक प्राप्त होता है।

ऊर्ध्वरेतस् ब्रह्मनिष्ठ अट्ठासी सहस्र ऋषियोने तपस्याके द्वारा जिस स्थानको प्राप्त किया था, वही स्थान गुरुकुलमे निवास करनेवाले ब्रह्मचारीको प्राप्त होता है। जो स्थान मरीचि, अत्रि आदि सप्तर्षियोको प्राप्त है, वह स्थान वानप्रस्थाश्रमी प्राप्त करते हैं। सयमित चित्तवाले, ऊर्ध्वरेतस् सन्यासियाको वह आनन्दरूप परब्रह्मपद प्राप्त होता है। जहाँसे पुन आगमनकी सम्भावना नहीं होती। यह परब्रह्मपद व्योम नामके अक्षरतत्त्वके रूपमे, यागियोके अमृतस्थानके

१-ब्रह्मभावनाके ये तीन भेद ब्रह्मानुसधानकी प्राथमिक माध्यमिक और अन्तिम स्थितिको दृष्टिमें रखकर किये गये हैं।

२-'तीर्थ शब्द श्रेष्ठताका वाचक है।

३-क्षमा दमो दया दानमलोभा (भो) भ्यास एव च॥
आर्जव चानसूया च तीर्थानुसरण तथा। सत्य सतोष आस्तिक्य तथा चेन्द्रियनिग्रह ॥
देवताभ्यर्चन पूजा ब्राह्मणाना विशेयत। अहिसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमरूक्षता॥
एते आश्रमिका धर्माश्चातुर्वर्ण्य ब्रवीम्यत। (४९। २१—२४)

रूपमे एव ईश्वरसम्बन्धी परम आनन्दक रूपम प्रसिद्ध है। इस स्थानको प्राप्त करनेवाला मुक्त आत्मा पुन ससारम नहीं आता है। अभी जिस मुक्तात्माकी चर्चा की गयी है, उसको प्राप्त होनेवाली मुक्ति अष्टाङ्ग-मार्गका सम्यक्-ज्ञान रखनेसे प्राप्त होती है। अत मैं सक्षेपमे उसे भी कह रहा हूँ। आप सुनें।

अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। प्राणीकी हिसा न करना अहिसा है। प्राणियाके हितम बोलना सत्य है। दूसरकी वस्तु अपहरण न करना अस्तेय है। अमैथुनका पालन करना ब्रह्मचर्य है और सब कुछ त्याग देना अपरिग्रह है।

शौच सतोष, तप, स्वाध्याय तथा प्रणिधान—ये पाँच नियम हैं। बाह्य और आभ्यन्तर रूपसे शौचके दा भेद हैं। इसी प्रकार सतोषको तुष्टि, इन्द्रिय-निग्रहको तप, मन्त्र-जपको स्वाध्याय और भगवत्पूजादिको प्रणिधान कहते हैं[1]।

साधकके द्वारा पद्मादि पकारसे स्थित होना आसन कहा जाता है। वायुका निराध करना प्राणायाम है। यह दो प्रकारका होता है। मन्त्रोच्चार करते हुए देवका ध्यान करना सगर्भ-प्राणायाम है। उसके विपरीत (अमन्त्रक, प्राणायाम) अगर्भ-प्राणायाम है। यह दो प्रकारका प्राणायाम प्रकारान्तरसे तीन प्रकारका कहा गया है। यथा—वायु अदर खींचकर अवस्थित होना पूरक नामक प्राणायाम है। वायुको रोककर देहेन्द्रियोको स्थिर करना कुम्भक और उस वायुको धीरे-धीरे बाहर निकालना रेचक नामक प्राणायाम है।

बारह मात्रावाला प्राणायाम 'लघु' है। चौबीस मात्राका प्राणायाम 'मध्यम' तथा छत्तीस मात्रावाला प्राणायाम 'उत्तम' है।

अपने-अपने विषयोसे असम्बद्ध इन्द्रियाके द्वारा चित्तके स्वरूपमात्रका अनुकरण करना एक विशेष प्रकारका निरोध है और इसी निराधको प्रत्याहार कहते हैं। ब्रह्मके साथ आत्माका अभेद चिन्तन करना (ब्रह्माकारवृत्तिका अखण्ड प्रवाह) ध्यान है। उस कालमं मनके द्वारा धैर्यका अवलम्बन करना (ध्येयमे चित्तकी निश्चलरूपम स्थिति) धारणा है।

'अह ब्रह्म' इस प्रकार अभेद ज्ञानके साथ ब्रह्मरूपमे अवस्थिति ही समाधि है। मैं आत्मा ही परमात्मा—परब्रह्म हूँ। वह परब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानरूप और अनन्त है। वही ब्रह्म है। उसीका विज्ञान कहते हैं। वही आनन्दस्वरूप है, उसीका 'तत्त्वमसि' इस श्रुतिसे बोध कराया गया है। 'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं अशरीरी, इन्द्रियातीत हूँ, मन, बुद्धि, महत्तत्त्व अहङ्कारादिसे रहित, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाआस मुक्त जो ब्रह्मका तेज स्वरूप है, मैं वही हूँ। नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्दस्वरूप, अद्वय कहा जानेवाला जो वह आदित्य पुरुष है, वहा मैं पूर्ण पुरुष हूँ।' इस प्रकार ब्रह्मका ध्यान करता हुआ ब्राह्मण भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। (अध्याय ४९)

सध्योपासन, तर्पण, देवाराधन आदि नित्य कर्मो तथा आशौचका निरूपण

ब्रह्माजीन कहा—जो मनुष्य प्रतिदिन शास्त्रविहित क्रियाओको करता है, उसको दिव्य ज्ञानकी पाप्ति होती है। अत ब्राह्म-मुहूर्तम उठकर मनुष्यका धम और अथका चिन्तन करना चाहिये।

उष काल होनेपर विद्वान् व्यक्ति सर्वप्रथम अपने हृदयकमलम विराजमान आनन्दघन अजर अमर सनातन पुरुष भगवान् हरिका ध्यान करे। तदनन्तर यथाविधि शौचादि आवश्यक क्रियाओसे निवृत्त होकर पवित्र नदियाम स्नान करे। प्रात काल स्नान करनसे पापकर्म करनेवाले मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिये यत्नपूर्वक प्रात काल स्नान करना चाहिये। प्रात कालके स्नानकी लोगाने प्रशसा का है क्योकि यह स्नान लौकिक और पारलौकिक

१-यमा पञ्च त्वहिंसाद्या अहिंसा प्राण्यहिंसनम्॥
सत्य भूतहित वाक्यमस्तेय स्वाग्रर परम्। अमैथुन ब्रह्मचर्य सर्वत्यागोऽपरिग्रह ॥
नियमा पञ्च सत्याद्या बाह्यमाभ्यन्तर द्विधा। शौच तुष्टिश्च सतोपस्तपश्चेन्द्रियनिग्रह ॥
स्वाध्याय स्यान्मन्त्रजाप प्रणिधान हरेर्यजि । (४९। ३०—३३)

२-प्रणवके जपकी प्रक्रियामें मात्रा'का विशेष महत्त्व है। उस मात्राके अनुसार बारह बार प्रणव-जपके साथ सम्पन्न प्राणायामको 'द्वादशमात्रिक' चौबीस बार प्रणव-जपके साथ सम्पन्न प्राणायामको चतुर्विंशतिमात्रिक और छत्तीस बार प्रणव-जपके साथ सम्पन्न प्राणायामको षट्त्रिंशन्मात्रिक कहा जाता है। यहाँ प्रणवके स्थानपर बीजमन्त्र भी दिया जा सकता है।

फलोको प्रदान करनेमे समर्थ होता है।

रात्रिमे सुखपूर्वक सोये हुए व्यक्तिके मुखसे निरन्तर लार आदि अपवित्र मल गिरते रहते हैं। (अत सम्पूर्ण शरीर अपवित्र हो जाता है।) इसलिये प्रथमत स्नान करके ही सध्या-वन्दनादिके धार्मिक कृत्य करने चाहिये (बिना प्रात काल स्नान-कृत्य किये सध्या-वन्दनादि करना उचित नहीं है)।

प्रात स्नान करनेसे अलक्ष्मी, कालकर्णी अर्थात् विघ्न डालनेवाली अनिष्टकारी शक्तियाँ, दु स्वप्न एव दुर्विचारसे होनेवाले चिन्तनके पाप धुल जाते हैं, इसमे सशय नहीं। यह स्मरणीय है कि बिना स्नानके किये गये कार्य प्रशस्त नहीं होते। अतएव होम और जपादिके कार्योंमें विशेषरूपसे सबसे पहले विधिवत् स्नान करना चाहिये।

अशक्त होनेपर बिना सिरपर जल डाले ही स्नान करनेका विधान है। आर्द्र वस्त्रसे भी शरीरको पोछा जा सकता है। इसको कायिक स्नान कहते हैं।

ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण और यौगिक— ये छ प्रकारके स्नान हैं, यथाधिकार मनुष्यको स्नान करना चाहिये। मन्त्रोसहित कुशके द्वारा जल-विन्दुआसे मार्जन करना ब्राह्म-स्नान है। सिरसे लेकर पैरतक यथाविधान भस्मके द्वारा अङ्गोका लेपन आग्नेय-स्नान है। गोधूलिसे शरीरको पवित्र करना वायव्य-स्नान कहा गया है। यह उत्तम स्नान माना जाता है। धूपके साथ होनेवाली वृष्टिमें किये गये स्नानको दिव्य-स्नान कहते हैं। जलमे अवगाहन करना वारुण-स्नान है। योगद्वारा हरिका चिन्तन यौगिक स्नान है। इसीको मानस-आत्मवेदन (ब्रह्माकार अखण्ड चित्तवृत्ति) कहते हैं। यह यौगिक स्नान ब्रह्मवादियाके द्वारा सेवित है, इसे ही आत्मतीर्थ भी कहते हैं।

(स्नानके पूर्व) दुग्धधारी वृक्षासे उत्पन्न काष्ठ, मालती, अपामार्ग, बिल्व अथवा करवीर अर्थात् कनेरकी दातौन लेकर उत्तर या पूर्व दिशाकी ओर पवित्र स्थानमे बैठकर दाँतोको स्वच्छ करना चाहिये और उसे धोकर उसका पवित्र स्थानमे त्याग करना चाहिये।

तदनन्तर स्नान करके देवताओ, ऋषियो और पितृगणाका विधिवत् तर्पण करना चाहिये। यहाँ यथाशास्त्र स्नानका अङ्गभूत आचमन एव सध्योपासनके अङ्गभूत आचमनका विधान है। सध्योपासनके अङ्गरूपमे ही कुशोदक विन्दुओसे 'आपो हि ष्ठा०' आदि वारुणमन्त्र एव यथाविधान सावित्रीमन्त्रके द्वारा मार्जन करना विहित है। इसी क्रममे ॐकार और 'भू भुव स्व' इन व्याहृतियोसे युक्त वेदमाता गायत्रीका जप करके अनन्यभावसे भगवान् सूर्यके प्रति जलाञ्जलि समर्पित करे (सूर्यार्घ्य प्रदान करे)।

इसी क्रममे पूर्वकी ओर अग्रभागवाले कुशोके आसनपर समाहितचित्तसे बैठकर प्राणायाम करके सध्या-ध्यान करनेका श्रुतिमे विधान है। यह जो सध्या है, वही जगत्की सृष्टि करनेवाली है, मायासे परे है, निष्कला, ऐश्वरी, केवला शक्ति तथा तीन तत्त्वोसे समुद्भूत है। अत अधिकारी व्यक्ति (प्रात काल) रक्तवर्ण, (मध्याह्नकाल) शुक्लवर्ण एव (सायकाल) कृष्णवर्ण गायत्रीका ध्यान करके गायत्रीमन्त्रका जप करे।

द्विजको सदैव पूर्वाभिमुख होकर सध्योपासन करना चाहिये। सध्या-कृत्यसे रहित ब्राह्मण सदा अपवित्र रहता है, वह सभी कार्योंके लिये अयोग्य होता है। वह जो भी अन्य कोई कार्य करता है, उसका कुछ भी फल उस प्राप्त नहीं हाता। अनन्यचित्त होकर वेदपारङ्गत ब्राह्मणान विधिवत् सध्योपासन करके अपने पूर्वजोके द्वारा प्राप्त उत्तम गतिको प्राप्त किया है। सध्यापासनका त्यागकर जो द्विजोत्तम अन्य किसी धर्म-कार्यके लिये प्रयत्न करता है, उसे दस हजार वर्षोतक नरक भोग करना पडता है। अत सभी प्रकारका प्रयत्न करके सध्योपासन अवश्य करना चाहिये[१]।

उस सध्योपासनकर्मसे योगमूर्ति परमात्मा भगवान् नारायण पूजित हो जाते हैं। अत अधिकारीको चाहिये कि वह पवित्र होकर पूर्वाभिमुख बैठ करके नित्य सयत-भावसे एक सहस्र या एक सौ अथवा दस बार गायत्रीका

१-प्राड्मुख सतत विप्र सध्योपासनमाचरेत्। सध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्ह सर्वकर्मसु॥
यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलभाग्भवेत्। अनन्यचेतस सतो ब्राह्मणा वेदपारगा ॥
उपास्य विधिवत्सध्या प्राप्ता पूर्वपरा गतिम्। योऽन्यत्र कुरुते यत्न धर्मकार्ये द्विजोत्तम ॥
विहाय सध्याप्रणति स याति नरकायुतम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सध्योपासनमाचरेत्॥
उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनु पर । (५०। २१—२५)

जप (अवश्य) करे। गायत्रीका एक सहस्र जप उत्तम, एक सौ जप मध्यम तथा दस बार किया गया जप कनिष्ठ जप कहलाता है।

एकाग्रचित्त होकर उदय होते हुए भगवान् भास्करका उपस्थान करे। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदमे आये हुए विविध सौर मन्त्रोसे देवाधिदेव महायोगेश्वर भगवान् दिवाकरका उपस्थान करके पृथिवीपर मस्तक टेककर इस मन्त्रसे प्रणाम करे—

ॐ खखोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे॥
निवेदयामि चात्मान नमस्ते ज्ञानरूपिणे।
त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्योती रसोऽमृतम्॥
भूर्भुव स्वस्त्वमोङ्कार सर्वो रुद्र सनातन ।

(५०। २८—३०)

शान्तस्वरूप भगवान् भास्कर आप सृष्टि, स्थिति और सहार—इन तीना कारणोके कारण हैं, आप ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपको आत्मनिवेदन करता हूँ, आप ही परब्रह्म हैं, आप ही ज्योति स्वरूप, अप्-स्वरूप, रसरूप तथा अमृतस्वरूप हैं। भू , भुव , स्व —ये तीना आप ही हैं और आप ही ॐकाररूप सर्वस्वरूप रुद्र तथा अविनाशी हैं, आपको नमस्कार है।

इस उत्तम आदित्यहृदय-स्तोत्रका जप करके भगवान् दिवाकरको प्रात और मध्याह्न (तथा सायकाल)-मे नमस्कार करना चाहिये।

इसके पश्चात् घर आ करके ब्राह्मण पुन विधिवत् आचमन करे।

तदनन्तर उसे अग्निको प्रज्वलित करके विधिवत् भगवान् अग्निदेवको आहुति प्रदान करनी चाहिये। मुख्य अधिकारीकी अशक्तावस्थामे उसकी आज्ञा प्राप्त करके ऋत्विक् पुत्र अथवा पत्नी शिष्य या सहोदर भ्राता भी हवन करे। मन्त्रविहीन एव विधिकी उपेक्षा करके किया गया कोई भी कर्म इस लोक या परलोकमे फल देनेवाला नहीं होता।

तदनन्तर देवताओको नमस्कार करके (अर्घ्य पाद्य, चन्दन सुगन्धित पदार्थका अनुलेपन वस्त्र तथा नैवेद्यादि) पूजाके उपचारोको निवेदनकर गुरुका पूजन करे और उनके हित-साधनमे लग जाय। तत्पश्चात् प्रयत्नपूर्वक यथाशक्ति द्विजको वेदाभ्यास करना चाहिये और उसके बाद इष्ट मन्त्राका जप (वेदपारायण) करके शिष्याके अध्यापन-कार्यमे प्रवृत्त होना चाहिये। वह शिष्योको वेदार्थ धारण कराये और दत्तचित्त होकर वेदार्थका विचार करे। द्विजोत्तम धर्मशास्त्र आदि विविध शास्त्राका अवलोकन करे और वेदादि निगमशास्त्रा (उपनिषदो) तथा व्याकरणादि वेदाङ्गोंका अच्छी प्रकार अवलोकन करे। इसके बाद वह पुन योग-क्षेमके लिये राजा या श्रीमानूके पास जाय और अपने परिवारके लिये विविध प्रकारके अर्थोंका उपार्जन करे।

इसके पश्चात् मध्याह्न कालके आनेपर स्नान करनेके लिये शुद्ध मिट्टी, पुष्प, अक्षत, तिल, कुश और गोमय (गायके गोबर) आदि पदार्थोंको एकत्र करना चाहिये। उसके बाद नदी, देव, पोखर, तडाग या सरोवरमे जाकर स्नान करे। प्रत्येक दिन तडाग, सरोवर या नदी आदिसे पाँच मृत्तिकापिण्ड बिना निकाले स्नान करना दोपयुक्त होता है। (अत पाँच पिण्ड मिट्टी निकाल करके ही स्नान करना चाहिये।) स्नानके समय (स्नानके लिये लायी गयी) मिट्टीके एक भागसे सिर धोना चाहिये, दूसरे भागसे नाभिके ऊपरी भागको और तीसरे भागसे नाभिसे नीचेके भागका तथा मृत्तिकाके छठे भागसे पैरोका प्रक्षालन करना चाहिये। इन मृत्तिकापिण्डाको परिमाणमे पके हुए आँवलेके फलके समान होना चाहिये। मृत्तिकाके समान ही गोमय स्नान भी होना चाहिये। तदनन्तर शरीरके अङ्गोको विधिवत् धोकर आचमन करके स्नान करना चाहिये।

जलाशयके तीरपर स्थित होकर ही मृत्तिका गोमय आदिका अपने अङ्गोंमें लेपन करना चाहिये और इस लेपनके अङ्गभूत स्नानके अनन्तर पुन वारुण (वरुणदेवताके)-मन्त्रोंसे जलाशयके जलका अभिमन्त्रण करके पुन जल-स्नान करना चाहिये, क्योकि जल भगवान् विष्णुका ही रूप है। यह स्नानकी प्रक्रिया प्रणवस्वरूप भगवान् सूर्यका दर्शनकर जलाशयमे तीन बार निमज्जन (डुबकी लगाना)-से पूरी होती है। तदनन्तर स्नानाङ्ग आचमन करके नीचे लिखे मन्त्रसे आचमन करे—

अन्तश्चरसि भूतेषु गुहाया विश्वतोमुख ॥
त्व यज्ञस्त्व वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्।

(५०।४५-४६)

हे जलदव। आप समस्त प्राणियाके अन्त करणरूपी गुहामे विचरण करते हैं। आप सर्वत्र मुखवाले हैं। आप ही यज्ञ हैं। आप ही वषट्कार हैं। आप ही ज्योति स्वरूप तेज और आप ही अमृतमय रसस्वरूप हैं।

'द्रुपदादिव०' इस मन्त्रका तीन बार उच्चारण अथवा प्रणव एव व्याहृतियोसहित सावित्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। विद्वान् अघमर्षण-मन्त्रका जप करे। तदनन्तर '**ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुव**', '**इदमाप प्रवहत**' तथा व्याहृतियोसे मार्जन करना चाहिये। अनन्तर '**आपो हि ष्ठा०**' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा अभिमन्त्रित जलसे अघमर्षण-मन्त्रका तीन बार जप करते हुए अघमर्षण सम्पन्न करना चाहिये। अघमर्षणके अनन्तर 'द्रुपदादिव०' आदि मन्त्र अथवा गायत्री-मन्त्र या '**तद्विष्णो परम पदम्**' आदि मन्त्र अथवा प्रणवकी आवृत्ति करनी चाहिये और देवाधिदेव श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये। जिस जलको हाथमे लेकर अघमर्षण-क्रिया एव मार्जन-क्रिया सम्पन्न की जाती है, उस जलको अपने सिरपर धारण करनेसे सभी प्रकारके पातकासे मुक्ति मिलती है। सध्योपासनके अनन्तर आचमन करके सदा परमेश्वरका स्मरण करना चाहिये। पुष्पसे युक्त अञ्जलिको शिरोभागसे लगाकर सूर्यका उपस्थान करना चाहिये और उपस्थानके बाद अपनी अञ्जलिके पुष्पाको भगवान् सूर्यके चरणोमे अर्पित करना चाहिये। उदित होते हुए सूर्यको नहीं देखना चाहिये, अत विशेष मुद्राद्वारा ही उनका दर्शन करना चाहिये। '**ॐ उदुत्य०**', '**चित्र०**', '**तच्चक्षु०**'—इन मन्त्रोसे तथा '**ॐ हꣳस शुचिषद्०**' इस मन्त्रसे और सावित्रीके विशेष मन्त्रसे एव अन्य सूर्यसे सम्बन्धित वैदिक मन्त्रोसे सूर्यका उपस्थान करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वाग्र कुशाओके आसनपर बैठकर सूर्यका दर्शन करते हुए समाहितचित्तसे गायत्री-मन्त्र एव अन्य विहित मन्त्राका जप करना चाहिये। मन्त्र-जपके लिये स्फटिक रुद्राक्ष अथवा पुत्रजीव (जीवन्तिका) या अब्जाक्षसे निर्मित मालाका प्रयोग करना चाहिये।

यदि आर्द्र वस्त्रावाला हो तो जलके मध्य खडे होकर जप करना चाहिये। अन्यथा (सूख वस्त्राकी स्थितिम) पवित्र भूमिमे कुशासनपर बैठकर एकाग्रचित्त होकर जप करना चाहिये। जपके पश्चात् प्रदक्षिणाकर भूमिपर दण्डवत् नमस्कार करना चाहिये। तदनन्तर आचमन करके यथाशक्ति अपनी शाखाके अनुसार स्वाध्याय करे। उसके बाद देवो, ऋषियो और पितरोका तर्पण करना चाहिये। मन्त्रोके प्रारम्भमे ॐकारका और अन्तमे 'नम'का प्रयोगकर प्रत्येक देव ऋषि और पितृका तर्पण कर रहा हूँ—ऐसा कहकर तर्पण करे। देवताआ और मरीच्यादि ब्रह्मर्षियोका तर्पण अक्षत और जलके साथ करना चाहिये। पितृगणा, देवो और मुनियोके लिये अपने शाखासूत्रके विधानसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे। तर्पण जलाञ्जलियाके द्वारा करे। देवताओका तर्पण यज्ञोपवीती अर्थात् सव्य होकर देवतीर्थसे करे और निवीती होकर (कण्ठमे यज्ञोपवीत कर) ऋषियोका ऋषितीर्थसे तथा प्राचीनावीती अर्थात् अपसव्य होकर पितृतीर्थसे पितरोका तर्पण करे।

तदनन्तर हे हर! स्नानमे प्रयुक्त वस्त्रको निचोडकर मौन होकर आचमन करके मन्त्रोसे पुष्प, पत्र तथा जलसे ब्रह्मा, शिव, सूर्य एव मधुसूदन विष्णुदेवका पूजन करे। क्रोधरहित होकर भक्तिपूर्वक अन्य अभीष्ट देवोकी भी पूजा करनी चाहिये। 'पुरुषसूक्त'के द्वारा पुष्पादि समर्पित करे। जल सर्वमय देव है अर्थात् समस्त देवता जलमे व्याप्त रहते हैं। अत उस जलमात्रसे भी वे सभी देवता पूजित होते हैं। इस पूजामे पूजकको समाहितचित्त होना चाहिये तथा प्रणवके साथ देवताका ध्यान करना चाहिये। उसके बाद प्रणाम करते हुए समस्त देवोको पृथक्-पृथक् पुष्पाञ्जलि समर्पित करे।

देवताओकी आराधनाके बिना कोई भी वैदिक कर्म पुण्यप्रद नहीं होता है। अतएव समस्त कार्योके आदि, मध्य और अन्तमे हृदयसे भगवान् हरिका ध्यान करना चाहिये। '**ॐ तद्विष्णोरिति०**' मन्त्र तथा पुरुषसूक्तके मन्त्राका जप करते हुए उस निर्मल विष्णुके परमतेजके सामने आत्मनिवेदन करे अर्थात् शरणागत हो जाय।

उसके बाद विष्णुमे अनुरक्तचित्त, शान्तस्वभाव वह भक्त '**तद्विष्णो ०**' इस मन्त्रसे और '**अग्रेतेसशिरा ०**' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित पुष्पासनपर विराजमान हरिकी पुन पूजा करके देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मानुषयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ नामक पञ्चयज्ञाको करे। तर्पणसे पूर्व ब्रह्मयज्ञ कैसे हो सकता है? अत मानुषयज्ञ करके स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) करना चाहिये।

वैश्वदेव ही देवयज्ञ है। काक आदि प्राणियोके लिये जो बलि प्रदान की जाती है, वह भूतयज्ञ है। हे द्विजोत्तम! चाण्डाल एव पतित आदिको घरके बाहर अन्न देना चाहिये और कुत्ता आदि पशुआ तथा पक्षियोको घरके बाहर भूमिपर अन्न दना चाहिये। पितराके उद्देश्यसे प्रतिदिन एक ब्राह्मणको भोजन कराये। पितरोके निमित्त जो नित्य श्राद्ध

किया जाता है, उसीको पितृयज्ञ कहते हैं। यह उत्तम गति प्रदान करनेवाला है।

अथवा समाहितचित्त होकर यथाशक्ति कुछ कच्चा अन्न निकालकर वैदिक तत्त्ववेत्ता विद्वान् ब्राह्मणको प्रदान करे। प्रतिदिन अतिथि-सत्कार करना चाहिये। घरपर आये हुए शान्तस्वभाव द्विज (ब्राह्मण)-को मन, और वचनसे स्वागतपूर्वक नमस्कार करे तथा उनका अर्चन करे।

एक ग्रास परिमाणमात्र अन्नको 'भिक्षा' कहा गया है। उसका जो चार गुना अन्न है उसको 'पुष्कल' तथा उस पुष्कलके चार गुना अन्नको 'हन्तकार भिक्षा' कहते हैं।

गोदोहनमात्र कालतक अतिथिके आगमनकी प्रतीक्षा स्वयं करनी चाहिये। आये हुए अभ्यागत (अतिथि)-का सत्कार यथाशक्ति करना चाहिये।

ब्रह्मचारी भिक्षुकको विधिवत् भिक्षा देनी चाहिये। लोभसे रहित होकर याचकोंको अन्न प्रदान करे। तत्पश्चात् अपने बन्धुजनोंके साथ मौन होकर अन्नकी निन्दा न करते हुए भोजन करे।

हे द्विजश्रेष्ठ! जो देवयज्ञादि पञ्चयज्ञोंको बिना किये भोजन करते हैं, वे मूढात्मा तिर्यक्-योनि (पक्षियोंकी योनि)-में जाते हैं। यथाशक्ति प्रतिदिन किये जानेवाले वेदाभ्यासके साथ पञ्चमहायज्ञ एवं देवतार्चन शीघ्र ही सभी पापोंको नष्ट कर देते हैं। जो मोहवश अथवा आलस्यके कारण बिना देवार्चन किये ही भोजन करता है उसे नाना प्रकारके कष्टदायक नरकोंमें जाकर सूकरकी योनिमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

अब मैं अशौचका सम्यक् प्रकारसे वर्णन करता हूँ। जो अपवित्र है, वह सदा पातकी है। अपवित्र व्यक्तियोंके संसर्गसे अशौच होता है और उनके संसर्गका परित्याग कर देनेसे शरीर पवित्र हो जाता है। हे द्विजोत्तम! सभी विद्वान् ब्राह्मण दस दिनोंका अशौच मानते हैं। यह अशौच मृत्यु अथवा जन्म दोनोंमें होता है। दाँत निकलनेके पूर्वतक बालककी मृत्यु होनेपर सद्यः स्नान करनेसे अशौचकी निवृत्ति हो जाती है। उसके बाद चूडा (मुण्डन)-संस्कारपर्यन्त बालककी मृत्यु होनेपर एक रात्रिका अशौच होता है।

उपनयन-संस्कारके पूर्वतक बालककी मृत्यु होनेपर तीन रात्रियोंका अशौच होता है। उपनयन-संस्कारके बाद किसीका मरण होनेपर यथाविधान दस रात्रिका अशौच ब्राह्मणोंका होता है।

क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें तथा शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। क्योंकि इनको यथाक्रम बारह दिनका, पंद्रह दिनका एवं एक मासका अशौच होता है। संन्यासियोंको अशौच नहीं लगता है। गर्भस्राव होनेपर गर्भमासके अनुसार जितने मासका गर्भ हो, उतनी रात्रिका अशौच होता है। (अर्थात् एक मासका गर्भस्राव होनेपर एक रात्रि, दो मासका गर्भस्राव होनेपर दो रात्रिका अशौच होता है। इसी क्रममें अन्य मासोंकी गणना करके अशौचकी रात्रियोंका निश्चय करना चाहिये।) (अध्याय ५०)

दानधर्मका निरूपण एवं विभिन्न देवताओंकी उपासना

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं सर्वोत्तम दानधर्मके विषयमें कह रहा हूँ—

सत्पात्रमें श्रद्धापूर्वक किये गये अर्थ (भोग्यवस्तु)-का प्रतिपादन (विनियोग) दान कहलाता है—ऐसा दानधर्मवित्-जनोंका कहना है। यह दान इस लोकमें भोग और परलोकमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक ही अर्थका उपार्जन करे, क्योंकि न्यायसे उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है।

अध्यापन, याजन तथा प्रतिग्रह—ये तीनों ब्राह्मणोंकी वृत्ति (आजीविका) हैं। उनके लिये कुसीद अर्थात् सूदखोरी कृषिकर्म तथा वाणिज्य अथवा क्षत्रियवृत्ति (युद्धादि कृत्य) त्याज्य है। उक्त सद्वृत्तिसे प्राप्त हुआ धन यदि सुयोग्य पात्रोंको दिया जाता है तो उसीको दान कहा जाता है। यह नित्य, नैमित्तिक, काम्य और विमल—चार प्रकारका कहा गया है।

फलकी अभिलाषा न रखकर प्रत्युपकारकी भावनासे रहित होकर ब्राह्मणको प्रतिदिन जो दान दिया जाता है, वह नित्यदान है। अपने पापोंकी शान्तिके लिये विद्वान् ब्राह्मणोंके हाथोंपर जो धन दिया जाता है, सत्पुरुषोंके द्वारा अनुष्ठित ऐसा दान नैमित्तिक दान है। संतान, विजय, ऐश्वर्य और

स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छासे जो दान किया जाता है, उसको धर्मवेत्ता ऋषिगण काम्य दान कहते हैं। ईश्वरकी प्रसन्नताको प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मवित्-जनोको सत्त्ववृत्तिसे युक्त चित्तवाले मनुष्यके द्वारा जो दान दिया जाता है, वह विमल दान है। यह दान कल्याणकारी है।

ईखकी हरी-भरी फसलसे युक्त या यव-गेहूँकी फसलसे सम्पन्न (शस्य-श्यामल) भूमिका दान वेदविद् ब्राह्मणोको जो देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। भूमिदानसे श्रेष्ठ दान न हुआ है और न होगा ही।

ब्राह्मणको विद्या प्रदान करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति प्रतिदिन ब्रह्मचारीको श्रद्धापूर्वक विद्या प्रदान करता है, वह सभी पापोसे विमुक्त होकर ब्रह्मलोकके परमपदको प्राप्त करता है।

वैशाखमासकी पूर्णिमा तिथिका उपवास रखकर जो व्यक्ति पाँच या सात ब्राह्मणोकी विधिवत् पूजा करके उन्हे मधु, तिल और घृतसे सतुष्ट करता है तथा उनकी गन्धादिसे भली प्रकार पूजा करके उनसे यह कहलवाता है या स्वय कहता है—

प्रीयता धर्मराजेति यथा मनसि वर्तते॥
(५१। १३)

(हे धर्मराज! मेरे मनमे जैसा भाव है, उसीके अनुकूल आप प्रसन्न हो।)

—ऐसा कहनेपर उसके जन्मभर किये गये समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं।

जो व्यक्ति स्वर्ण, मधु एव घीके साथ तिलोको कृष्ण-मृगचर्मपर रखकर ब्राह्मणको देता है वह सभी प्रकारके पापोसे मुक्त हो जाता है।

वैशाखमासमे घृत अन्न और जलका दान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है। अत उस मासमे धर्मराजको उद्देश्य करके घृत, अन्न और जलका दान ब्राह्मणोके लिये अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे सभी प्रकारके भयसे मुक्ति हो जाती है। द्वादशी तिथिमे स्वय उपवास रखकर पापोका विनाश करनेवाले भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे निश्चित ही मनुष्यके सभी पाप नष्ट हो जाते है। जो मनुष्य जिस देवताकी पूजा करनेके लिये इच्छा करता है, उसकी पूजा वह अपने इष्टको प्राप्त करनेके लिये करे और उसको उस देवकी प्रतिमूर्ति मानकर प्रयत्नपूर्वक ब्राह्मणोकी पूजा करके उन्हे भोजन भी कराये। साथ ही सौभाग्यवती स्त्रियो तथा अन्य देवोको भी पूजन-भोजनादिके द्वारा सतुष्ट करे।

सतान-प्राप्तिके इच्छुक व्यक्तिको इन्द्रदेवका पूजन करना चाहिये। ब्रह्मवर्चस्की कामना करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मरूपमे ब्राह्मणोको स्वीकार करके उनकी पूजा करे। आरोग्यकी इच्छावाला मनुष्य सूर्यकी तथा धन चाहनेवाला मनुष्य अग्निकी पूजा करे। कार्योमे सिद्धि प्राप्त करनेकी अभिलाषा करनेवाला व्यक्ति विनायक (गणेश)-का पूजन करे। भोगकी कामना होनेपर चन्द्रमाकी तथा बल-प्राप्तिकी इच्छा होनेपर वायुकी पूजा करे। ससारसे मुक्त होनेकी अभिलाषा होनेपर प्रयत्नपूर्वक भगवान् हरिकी आराधना करनी चाहिये। निष्काम तथा सकाम सभी मनुष्योको भगवान् गदाधर हरिकी पूजा करनी चाहिये।

जलदानसे तृप्ति, अन्नदानसे अक्षय सुख, तिलदानसे अभीष्ट सतान, दीपदानसे उत्तम नेत्र, भूमिदानसे समस्त अभिलषित पदार्थ, सुवर्णदानसे दीर्घ आयु, गृहदानसे उत्तम भवन तथा रजतदानसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है।[1]

वस्त्र प्रदान करनेसे चन्द्रलोक तथा अश्वदान करनेसे अश्विनीकुमारके लोककी प्राप्ति होती है। अनडुह् (बैल)-का दान देनेसे विपुल सम्पत्तिका लाभ और गोदानसे सूर्यलोक प्राप्त होता है।

यान और शय्याका दान करनेपर भार्या तथा भयार्त (भयभीत)-को अभय प्रदान करनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। धान्य-दानसे शाश्वत (अविनाशी) सुख तथा वेदके (वेदाध्यापन) दानसे ब्रह्मका सानिध्य लाभ होता है। वेदविद् ब्राह्मणको ज्ञानोपदेश करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति तथा गायको घास देनेसे सभी पापोसे मुक्ति हो जाती है। ईंधन (अग्निको प्रज्वलित करने)-के लिये काष्ठ आदिका दान करनेपर व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। रोगियोके रोगशान्तिके लिये औषधि, तेल आदि

१-वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षयमन्नद । तिलप्रद प्रजामिष्टा दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥
भूमिद सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यद । गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥ (५१। २२-२३)

पदार्थ एव भोजन देनवाला मनुष्य रोगरहित होकर सुखी और दीर्घायु हो जाता है।

छत्र और जूतेका दान करनेवाला मनुष्य प्रचण्ड धूपके कारण तीक्ष्ण तापवाले तथा तलवारके समान तीक्ष्ण धारवाली नुकीली पत्तियासे परिव्याप्त असिपत्रवन नामके नारकीय मार्गोको पार कर जाता है। जो मनुष्य परलोकम अक्षय सुखकी अभिलाषा रखता है, उस अपन लिये ससार या घरम जो वस्तु अभीष्टतम है तथा प्रिय है, उस वस्तुका दान गुणवान् ब्राह्मणको करना चाहिये।[१]

उत्तरायण[२], दक्षिणायन[३], महाविषुवत्काल[४], सूर्य तथा चन्द्रग्रहणम एव कर्क-मेष-मकरादिकी सक्रान्तियाके आनेपर ब्राह्मणाका दिया गया दान परलाकमे अक्षय सुख देनेवाला होता है। इस प्रकारके दानका महत्त्व प्रयागादि तीर्थोंम बहुत है, गया-क्षेत्रके तीर्थोमे किया गया दान विशेष महत्त्व रखता है।[५]

दान-धर्मसे बढकर श्रेष्ठ धर्म इस ससारमे प्राणियोके लिये कोई दूसरा नहीं है। दान स्वर्ग, आयु तथा ऐश्वर्यको प्राप्त करनेकी इच्छासे और अपने पापोकी उपशान्तिके लिये भी किया जाता है। गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवोंको दिये जानेवाले दानसे जो मनुष्य मोहवश दूसरोको रोकता है, वह पापी तिर्यक् (पक्षीकी)-योनिको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति दुर्भिक्षकालम और मरणासन्न ब्राह्मणको अन्नादिका दान नहीं करता हे, वह ब्रह्महत्या करनेवालके समान तथा अति निन्दित है। (अध्याय ५१)

प्रायश्चित्त-निरूपण

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्राह्मणो! अब इसके बाद मैं प्रायश्चित्त-विधिको भली प्रकार कह रहा हूँ—

ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला ब्रह्महन्ता, मदिरा-पान करनेमे निरत मद्यपी, चोरी करनेवाला स्तेयी तथा गुरुकी पत्नीक साथ गमन करनेवाला गुरुतल्पगामी (गुरुपत्नीगामी)— ये चार महापातकी हैं। इन सभीका ससर्ग (साथ) करनेवाला पाँचवाँ महापातकी है। गाहत्यादि जो अन्य पाप होते हैं—वे उपपातक हैं ऐसा देवताआका कहना है।

जिसने ब्रह्महत्या की है, उसे वनम स्वय पर्णकुटी बनाकर उसीम उपवास करते हुए बारह वर्षोंतक रहना चाहिये अथवा पर्वतके उस ऊँचे भागसे गिरकर अपने प्राणाका परित्याग करना चाहिये, जिस भागसे गिरनेपर कहीं बीचमे रुकनेकी सम्भावना न हो और मरण निश्चित हो। इसके अतिरिक्त जलती हुई अग्निमें प्रवेशकर प्राण-परित्याग अगाध जलमे प्रवेशकर प्राण-परित्याग, ब्राह्मण या गौकी रक्षाके लिये प्राण-परित्याग भी ब्रह्महत्या-दोषके निवारक होते हैं। इतना अवश्य ध्यानम रखना है कि ब्रह्महत्याके दोष-निवारणके लिये प्राण-परित्यागके जो साधन बताये गय हैं, उनको करनेके पहले यथाशक्ति विद्वान् ब्राह्मणको अन्नदान करना *अनिवार्य* है।

अश्वमेध-यज्ञके अन्तम हानेवाले अवभृथ-स्नानसे ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। वेदविद् ब्राह्मणको सर्वस्व दान करनेसे ब्रह्महत्याजनित पापका नाश हो जाता है। सरस्वतीजी, गङ्गा तथा यमुना—इन नदियाके

१-वासादश्चन्द्रसालोक्यमश्चिसालोक्यमश्वद । अनडुद्द श्रिय पुष्टा गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्॥
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रद । धान्यद शाश्वत सौख्य ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम्॥
वदवित्सु ददज्ज्ञान स्वर्गलोके महीयते। गवा घासप्रदानेन सर्वपापै प्रमुच्यते॥
इन्धनाना प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नर । औषध स्नेहमाहार रोगिरोगप्रशान्तये॥
ददाना रोगरहित सुखी दीर्घायुरेव च। असिपत्रवन मार्ग क्षुरधारासमन्वितम्॥
तीक्ष्णातप च तरतिच्छत्रोपानत्प्रदो नर । यद्यदिष्टतम लोके यच्चास्य दयित गृहे॥
ततद्गुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता। अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो ॥
सक्रान्त्यादिषु कालपु दत्त भवति चाक्षयम्। (५१। २४—३०)

२-मकर-राशिसे मिथुन राशितक सूर्यके रहनेके कालका उत्तरायण कहत हैं। यह माघ माससे आषाढ मासतकका काल है।

३-कर्क राशिसे धनु राशितक सूर्यके रहनेक कालको दक्षिणायन कहते हैं। यह श्रवण माससे पौष मासतकका काल है।

४ जिस कालम दिन रात दोना बराबर हाते हैं वह विषुवकाल कहा जाता है। यह काल तुला और मेषका सूर्य सक्रान्तिका हाता है।

५ प्रयागादिषु तीर्थेषु गयाया च विशेषत ॥ (५१। ३१)

पवित्र सगमपर तीन रात्रियातक उपवास रख करक प्रतिदिन तीनो कालाम स्नान करके भी द्विज ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। सेतुबन्ध रामेश्वरम् (कपालमोचन तीर्थ या वाराणसीके पवित्र तीर्थ)-में स्नान करके ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति हो जाती है।

मद्यपी द्विज अग्निवर्णके सदृश (अन्त करणको जला देनेवाली) खौलती हुई मदिरा अथवा दूध, घृत या गोमूत्रका पान करके तज्जनित पापसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। सुवर्णकी चोरी करनवाला राजाआके द्वारा दण्डरूपमे मूसलप्रहारसे पापमुक्त हो जाता है अथवा जीर्ण-शीर्ण वस्त्र धारण करके वनम ब्रह्महत्यानाशक प्रायश्चित्त-व्रतको करनेसे पापमुक्त हो जाता है।

कामसे मोहित ब्राह्मण यदि अपने गुरुकी पत्नीके पास जाता है तो उसे इस गुरुपत्नीगमनरूप पापसे मुक्त होनेके लिये जलती हुई—तपती हुई लौह-निर्मित स्त्रीका सर्वाङ्ग आलिङ्गन करना चाहिये। अथवा ब्रह्महत्याके पापसे मुक्तिके लिये जो व्रत विहित है, उस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। चार या पाँच चान्द्रायणव्रत करनेसे भी गुरुपत्नीगमनजनित पापसे मुक्ति हो सकती है।

जो द्विज पतितजनाका ससर्ग करता है, उसे विभिन्न ससर्गोंसे होनेवाले पापाको दूर करनेके लिये उन-उन पापाके निमित्त कहे गये व्रतोका पालन करना चाहिये। अथवा वह आलस्यसे रहित हाकर एक सवत्सरपर्यन्त तप्तकृच्छ्रव्रतका अनुपालन करे। विधिवत् किया गया सर्वस्वदान सभी पापाको दूर करनेवाला होता है। अथवा विधिवत् चान्द्रायणव्रत तथा अतिकृच्छ्रव्रत भी सभी पापाको दूर करनेवाला होता है।

गया आदि पुण्यक्षेत्रोंकी यात्रा करनेसे भी ऐसे पापाका विनाश हो जाता है। अमावास्या तिथिमे जो महादव भगवान् शङ्करकी सम्यक्-रूपसे आराधना करके ब्राह्मणाको भोजन प्रदान कराता है, वह सभी पापासे मुक्त हो जाता है।

जो मनुष्य कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमे उपवास रखकर सयतचित्तसे पवित्र नदीम स्नान करक ॐकारसे युक्त यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल तथा सर्वभूतक्षय—इन नामाका उच्चारणकर तिलसे सयुक्त सात जलाञ्जलियासे तर्पण करता है, वह समस्त पापासे मुक्त हो जाता है।

इन व्रताके पालन करते समय शान्त रहकर तथा मनका निग्रहकर, ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भूमिपर सोना चाहिये और उपवास रखकर ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। (कार्तिक) शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिमे उपवास रखकर सप्तमी तिथिको सूर्यदेवकी पूजा करनेसे भी सभी प्रकारके पापासे मुक्ति हो जाती है।

शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमे निराहार रहकर जो द्वादशी तिथिम जनार्दन भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह समस्त महापापास मुक्त हो जाता है।

सूर्य-चन्द्र-ग्रहण आदि समयामें मन्त्रका जप, तपस्या, तीर्थसेवन, देवार्चन तथा ब्राह्मण-पूजन—ये सभी कृत्य भी महापातकाका नष्ट करनेवाले होते हैं। समस्त पापासे युक्त मनुष्य भी पुण्य-तीर्थोंमे जाकर नियमपूर्वक अपने प्राणोका परित्यागकर समस्त पापासे मुक्त हो जाता है।

पतिव्रता नारी पतिके देहावसानके बाद पतिका वियोग असह्य होनेके कारण पति-धर्मके अनुसार पतिके शरीरके साथ शास्त्रीय विधिका पालन करते हुए अग्निमे प्रवेश करती है तो ब्रह्महत्या, कृतघ्नता आदि बडे-बडे पातकासे दूषित भी अपने पतिका उद्धार कर देती है।

जो स्त्री पतिव्रता है, अपने पतिकी सेवा-शुश्रूषाम दत्तचित्त रहती है, उसको इस लोक तथा परलोकमे कोई पाप नहीं लगता। वह वैसे ही निर्दोष रहती है, जैसे दशरथपुत्र श्रीरामकी पत्नी जगद्विख्यात भगवती सीतादेवी लङ्कामें रहकर भी निर्दोष रहीं तथा (अपने पातिव्रतके प्रभावसे) उन्होंने राक्षसराज रावणपर विजय प्राप्त की।

हे यतव्रत! सयतचित्त होकर विविध [illegible] व्रतका अनुष्ठान करनेवाले! भगवान् विष्णुने मुझसे बहुत पहले ही यह बताया था कि गयाम स्थित [illegible] ([illegible]) आदि तीर्थोंमें यथाविधि श्रद्धाके साथ [illegible] [illegible] व्यक्ति सभी प्रकारके पातकसे मुक्त हो जाता है और समस्त [illegible] फल भी प्राप्त करता है (अध्याय ५[illegible])

नवनिधियोंके लक्षणोंसे युक्त पुरुषके ऐश्वर्य एवं स्वभावका वर्णन

सूतजीने कहा—भगवान् विष्णुसे अष्टनिधियोंके विषयमें सुनकर ब्रह्माजीने उनका वर्णन इस प्रकार किया था कि 'पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द (नन्द), नील और शङ्ख नामकी अष्टनिधियाँ' हैं। नवीं निधि मिश्र कहलाती है। अब मैं उनके स्वरूपका वर्णन करता हूँ।

पद्मनिधिके लक्षणोंसे सम्पन्न मनुष्य सात्त्विक और दाक्षिण्य गुणसे सम्पन्न होता है। वह सुवर्ण-चाँदी आदि मूल्यवान् धातुओंका संग्रह करके यतियों, देवताओं और याज्ञिकोंको दान करता है। महापद्म-चिह्नसे लक्षित व्यक्ति भी अपने संग्रहीत धन आदिका दान धार्मिक जनोंको करता रहता है। पद्म तथा महापद्मनिधिसम्पन्न पुरुष सात्त्विक स्वभाववाले कहे गये हैं।

मकरनिधिके चिह्नसे चिह्नित मनुष्य खड्ग, बाण एवं कुन्त (भाला) आदि अस्त्रोंका संग्रह करनेवाला होता है। वह नित्य श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान देता है और राजाओंके साथ उसकी सदैव मित्रता बनी रहती है। द्रव्यादिका आहरण करनेके लिये वह शत्रुओंका विनाश करता है और युद्धके लिये सदा तत्पर रहता है। कच्छपनिधि-लक्षित व्यक्ति तामस गुणवाले होते हैं। कच्छप-चिह्नसे युक्त व्यक्ति किसीपर विश्वास नहीं करता है। वह न अपनी सम्पत्तिका स्वयं उपभोग करता है और न तो उसमेंसे वह किसीको कुछ देता ही है। वह एकान्तमें जाकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिको पृथिवीमें गाड़कर छिपा देता है। उसकी सम्पत्ति एक पीढ़ीतक रहती है।

मुकुन्दनिधिके चिह्नसे अंकित पुरुष रजोगुणसम्पन्न होता है। वह राज्य-संग्रहमें लगा रहता है, वह भोगोंका उपभोग करते हुए गायक और वेश्या आदिको धन देता है।

नन्दनिधिसे युक्त व्यक्ति राजस और तामस गुणोंवाला होता है। वही कुलका आधार बनता है। वह स्तुति करनेपर प्रसन्न होता है तथा बहुत-सी स्त्रियोंका पति होता है। पूर्वकालके मित्रोंमें उसकी प्रीति शिथिल होती है और वह अन्य नये मित्रोंके साथ प्रेम करने लगता है।

नीलनिधिके चिह्नसे सुशोभित मानव सात्त्विक तेजसे संयुक्त होता है। वह वस्त्र-धान्यादिका संग्रह तथा तडागादिका निर्माण करता है। उसके द्वारा (जनहितमें) आम्रादिके उद्यान भी लगवाये जाते हैं। उसकी सम्पत्ति तीन पीढ़ीतक रहती है।

शङ्खनिधि एक ही पुरुष (पीढ़ी)-के लिये होती है। इससे समन्वित मनुष्य धनादिका स्वयं तो उपभोग करता है, किंतु उसके परिजन कुत्सित अन्नका भोजन तथा अच्छे न लगनेवाले मैले-कुचैले वस्त्रोंसे जीवनयापन करते हैं। वह स्वयंके भरण-पोषणमें सदैव तत्पर रहता है। यदि वह किसीको कुछ वस्तु देता भी है तो वह व्यर्थकी वस्तु होती है (जिसका कोई उपयोग नहीं होता)।

मिश्र (मिली-जुली)-निधिके चिह्नसे युक्त होनेपर मनुष्यके स्वभावमें मिश्रित फल दिखलायी देते हैं।

भगवान् विष्णुने भी निधियोंके ऐसे ही स्वरूपका वर्णन शिव आदि देवोंसे किया था (उसको मैंने आप सभीको सुना दिया)। अब हरिने भुवनकोशादिका जैसा वर्णन किया था वैसा ही मैं कह रहा हूँ। (अध्याय ५३)

भुवनकोशवर्णनमें राजा प्रियव्रतके वंशका निरूपण

श्रीहरिने कहा—राजा प्रियव्रतके आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, शवल, पुत्र और ज्योतिष्मान् नामके दस पुत्र हुए थे।

इन पुत्रोंमेंसे मेधा, अग्निबाहु तथा पुत्र नामक तीन पुत्र योगपरायण (योगी), जातिस्मर (इन्हें पूर्वजन्मका वृत्तान्त विस्मृत नहीं हुआ था) तथा महासौभाग्यशाली थे। इन लोगोंने राज्यके प्रति अपनी कोई अभिरुचि प्रकट नहीं की। अतः राजाने सप्तद्वीपा पृथिवीको अपने अन्य सात पुत्रोंमें विभक्त कर दिया।

पचास करोड़ योजनमें विस्तृत सम्पूर्ण पृथिवी नदीकी जलराशिमें तैरती हुई नौकाके समान चारों ओर अवस्थित अथाह जलके ऊपर स्थित है।

हे शिव! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर नामक ये सात द्वीप हैं, जो सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। उन सात समुद्रोंके नाम लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और जलके सागररूपमें प्रसिद्ध हैं। हे

वृषभध्वज! ये सभी द्वीप तथा समुद्र उक्त क्रमसे एक-दूसरेसे द्विगुण परिमाणमें अवस्थित हैं।

जम्बूद्वीपमें मेरु नामक पर्वत है, जो एक लाख योजनके परिमाणमें फैला हुआ है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। इसका अधोभाग पृथिवीमें सोलह हजार योजन धँसा हुआ है और शिखरदेश बत्तीस हजार योजन विस्तृत है। इसका अधोभाग जो पृथिवीके ऊपर सन्निहित है, वह भी सोलह हजार योजनके विस्तारमें कर्णिकाके रूपमें अवस्थित है। इसके दक्षिणमें हिमालय, हेमकूट तथा निषध, उत्तरमें नील, श्वेत और शृंगी नामक वर्षपर्वत हैं।

हे रुद्र! प्लक्ष आदि द्वीपोंके निवासी मरणादिसे मुक्त हैं। उनमें युग या अवस्थाके आधारपर कोई विषमता नहीं है।

जम्बूद्वीपके राजा आग्नीध्रके नौ पुत्र उत्पन्न हुए। उन सभीका नाम क्रमशः—नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल था। राजाने उन सभी पुत्रोंको उनके नामसे ही अभिहित (प्रसिद्ध) एक-एक भूखण्ड प्रदान किया। हे हर! राजा नाभि और उनकी पत्नी मेरुदेवीसे ऋषभ नामक पुत्र हुए थे, उनसे भरत नामके पुत्र हुए, जो शालग्रामतीर्थमें स्थित रहकर विभिन्न व्रतोंके पालनमें ही निरत रहते थे। उन भरतसे सुमति नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र तैजस हुआ।

तैजसके इन्द्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्नसे परमेष्ठी, परमेष्ठीके प्रतीहार तथा प्रतीहारसे प्रतिहर्ता नामक पुत्र कहे गये हैं।

प्रतिहर्ताके पुत्र प्रस्तार, प्रस्तारके पुत्र विभु, विभुके पुत्र नक्त और नक्तके पुत्र गय नामके राजा हुए।

गयका पुत्र नर हुआ। नरसे विराट्, विराट्से महातेजस्वी धीमान्, धीमान्से भौवन नामके पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भौवनके त्वष्टा, त्वष्टाके विरजा, विरजाके रज, रजके शतजित् तथा शतजित्के विष्वग्ज्योति नामक पुत्र हुआ था। (अध्याय ५४)

भारतवर्षका वर्णन

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! जम्बूद्वीपके मध्यभागमें इलावृत नामक वर्ष है। उसके पूर्वमें अद्भुत भद्राश्ववर्ष तथा उसके पूर्व-दक्षिण (अग्निकोण)-में हिरण्वान् नामक वर्ष है।

मेरुके दक्षिणभागमें किम्पुरुषवर्ष कहा गया है। उसके दक्षिणभागमें भारतवर्ष कहा गया है। मेरुके दक्षिण-पश्चिममें हरिवर्ष, पश्चिममें केतुमालवर्ष, पश्चिमोत्तरमें रम्यक् और उत्तरमें कुरुवर्ष स्थित हैं, जिनके भू-भाग कल्पवृक्षोंसे आच्छादित हैं।

हे रुद्र! भारतवर्षको छोड़कर अन्य सभी वर्षोंमें सिद्धि स्वभावसे ही प्राप्त हो जाती है। यहाँ इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल और वारुण नामक आठ वर्ष हैं। नवाँ वर्ष भारतवर्ष है, जो चतुर्दिक् समुद्रसे घिरा हुआ है।

इस (भारतवर्ष)-के पूर्वमें किरात तथा पश्चिममें यवन देश स्थित हैं। हे रुद्र! दक्षिणमें आन्ध्र, उत्तरमें तुरुष्क आदि देश हैं। इस भारतवर्षमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-वर्णके लोग रहते हैं।

यहाँ महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं। इस वर्षमें वेद, स्मृति, नर्मदा, वरदा, सुरसा, शिवा, तापी, पयोष्णी, सरयू, कावेरी, गोमती, गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, महानदी, केतुमाला, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, सरस्वती, ऋषिकुल्या, कावेरी, मत्तगङ्गा, पयस्विनी, विदर्भा, शतद्रू नामक मङ्गल प्रदान करनेवाली तथा पापविनाशिनी नदियाँ हैं, जिनके जलका पान मध्यदेशादिक निवासीजन करते हैं।

पाञ्चाल, कुरु, मत्स्य, यौधेय, पटच्चर, कुन्त तथा शूरसेन देशके निवासी मध्यदेशीय हैं। पाद्म, सूत, मागध, चेदि, काशेय तथा विदेह पूर्वमें स्थित हैं। कोशल, कलिंग, वंग, पुण्ड्र, अंग और विदर्भ-मूलकजनोंके देश और विन्ध्यपर्वतके अन्तर्गत विद्यमान देश पूर्व तथा दक्षिणके तटवर्ती भूभागमें स्थित हैं। पुलिन्द, अश्मक, जीमूत, नय राष्ट्रमें निवास करनेवाले, कर्णाटक, कम्बोज तथा घण—ये दक्षिणापथ भूभागके निवासी हैं। अम्बष्ठ, द्रविड, लाट, कम्बोज, स्त्रीमुख, शक और आनर्तवासी दक्षिण-पश्चिमके निवासी हैं। स्त्रीराज्य, सैन्धव, म्लेच्छ, नास्तिक, यवन, निषधके रहनेवाले लोगोंके देश पश्चिमी भूभाग हैं।

तुषार, मूलिका, अश्वमुख, खश, महाकेश, महानास देश उत्तर-पश्चिमभागमें स्थित हैं।

लम्बक, स्तननाग, माद्र, गान्धार, बाह्लिक तथा म्लेच्छ देश हिमाचलके उत्तरतटवर्ती भूभागमें स्थित हैं। त्रिगर्त, नील, कोलात, ब्रह्मपुत्र, सटङ्कण, अभीषाह और कश्मीर देश उत्तर-पूर्व-दिशामें अवस्थित कहे गये हैं। (अध्याय ५५)

प्लक्ष तथा पुष्कर आदि द्वीपों एवं पाताल आदिका निरूपण

श्रीहरिने कहा—प्लक्षद्वीपके स्वामी मेधातिथिके सात पुत्र थे। उन सबमें शान्तभव नामक पुत्र ज्येष्ठ था। उससे छोटा शिशिर था। तदनन्तर सुखोदय, नन्द, शिव और क्षेमक हुए। उनका जो सातवाँ भाई था, वह ध्रुव नामसे प्रसिद्ध हुआ—ये सभी प्लक्षद्वीपके राजा बने।

इस द्वीपमें गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमनस और वैभ्राज नामक सात पर्वत हैं। यहाँ अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, क्रमु, अमृता तथा सुकृता नामकी सात नदियाँ प्रवाहित होती रहती हैं।

वपुष्मान् शाल्मलद्वीपके स्वामी थे। उस द्वीपमें अवस्थित सात वर्षोंके नामसे ही प्रसिद्ध उनके सात पुत्र थे, जिनके नाम श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ हैं।

यहाँ कुमुद, उन्नत, द्रोण, महिष, बलाहक, क्रौञ्च तथा ककुद्मान् नामक सात पर्वत हैं। योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचनी और विधृति—ये सात नदियाँ हैं। ये पापोंका प्रशमन करनेवाली हैं।

कुशद्वीपमें ज्योतिष्मान्‌का स्वामित्व था। उनके भी सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे उद्भिद, वेणुमान्, द्वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर और कपिल नामसे प्रसिद्ध थे। उन्हींके नामसे इस द्वीपके जो सात वर्ष थे, वे प्रसिद्ध हुए। यहाँ विद्रुम, हेमशैल, द्युमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि तथा मन्दराचल नामक सात वर्षपर्वत हैं। यहाँ धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सन्मति, विद्युदभ्रा, मही और काशा नामकी ये सात नदियाँ हैं, जो सब प्रकारके पापोंका विनष्ट करनेवाली हैं।

हे शिव! क्रौञ्चद्वीपके अधीश्वर महात्मा द्युतिमान्‌के भी सात पुत्र हुए। कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि—ये उनके नाम हैं।

यहाँ क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, दिवावृत्, महाशैल, दुन्दुभि तथा पुण्डरीकवान् नामके सात वर्षपर्वत हैं। वहाँपर गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका—ये सात नदियाँ (प्रवाहित होती रहती) हैं।

शाकद्वीपके राजा भव्यके भी सात पुत्र उत्पन्न हुए। वे जलद, कुमार, सुकुमार, अरुणीबक, कुसुमोद, समोदार्कि तथा महाद्रुम नामसे ख्याति प्राप्त थे। यहाँ सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गभस्ति नामसे प्रसिद्ध सात नदियाँ हैं।

पुष्करद्वीपके स्वामी महाराज शबलके महावीर तथा धातकि नामक दो पुत्र हुए। उन्हींके नामसे वहाँपर दो वर्ष हैं। इन दोनोंके मध्य एक ही मानसोत्तर नामक वर्षपर्वत है। यह पचास सहस्र योजनमें विस्तृत तथा इतना ही ऊँचा है। यह चतुर्दिक् विस्तारमें भी उसी परिमाणको प्राप्तकर मण्डलाकार अवस्थित है। इस पुष्करद्वीपको स्वादिष्ट जलवाला समुद्र चारों ओरसे घेरकर स्थित है। उस स्वादिष्ट जलवाले समुद्रके सामने उससे द्विगुण जनजावनसे रहित स्वर्णमयी भूमिवाली जगत्‌की स्थिति दिखायी देती है। वहाँपर दस हजार योजनमें फैला हुआ लोकालोक नामक पर्वत है। वह अन्धकारसे आच्छादित है और वह अन्धकार भी अण्डकटाहसे आवृत है।

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! इस भूमिकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन है। इसमें दस-दस सहस्र योजनकी दूरीपर एक-एक पाताललोक स्थित हैं, जिन्हें अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल तथा पाताल कहा जाता है।

इन लोकोंकी भूमि कृष्ण, शुक्ल, अरुण, पीत, शर्करा-सदृश, शैलमयी तथा स्वर्णमयी है। वहाँपर दैत्य तथा नागोंका निवास है। हे रुद्र! दारुण पुष्करद्वीपमें जो नरक स्थित हैं, उनके विषयमें आप सुनें। यहाँ रौरव, सूकर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विमोहित, रुधिर, वैतरणी, कृमिश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, नानाभक्ष (लालाभक्ष), दारुण, पूयवह, पाप, वह्निज्वाल

अध शिरा, सदश, कृष्णसूत्र तमस्, अवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ तथा उष्णवीचि नामक नरक हैं। उनम विष देनेवाले, शस्त्रसे हत्या करनेवाले तथा अग्निसे जलाकर मारनेवाले पापीजन अपने-अपने पापका फलभोग करत हैं।

हे रुद्र। यथाक्रम उनक ऊपर अन्य लाकोकी स्थिति है। उन लाकाका क्रमश—जल, अग्नि, वायु तथा आकाश घेरे हुए है। इस प्रकार अवस्थित ब्रह्माण्ड प्रधान तत्त्वसे आवेष्टित है। वह ब्रह्माण्ड अन्य ब्रह्माण्डाकी अपेक्षा दस गुना अधिक है। इस परिव्याप्तकर स्वय नारायण अवस्थित रहते हैं। (अध्याय ५६-५७)

भुवनकोश-वर्णनमे सूर्य तथा चन्द्र आदि नौ ग्रहोके रथोका विवरण

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज। अब मैं सूर्यादि ग्रहाकी स्थिति एव उनके परिमाणसे सम्बन्धित विषयका वर्णन कर रहा हूँ।

सूर्यदेवके रथका विस्तार नौ हजार योजन है। उसका ईषादण्ड अर्थात् जुआ तथा रथक बीचका जो भाग है, वह उस रथ-विस्तारका दुगुना है। उसकी धुरी एक करोड सत्तावन लाख योजन लम्बी है तथा उसमे चक्र लगा हुआ है। उस चक्रकी (पूर्वाह्न, मध्याह्न तथा अपराह्णरूप) तीन नाभियाँ हैं, (परिवत्सरादिक) पाँच अरे हैं, (वसन्तादि षड्ऋतुरूपी) छ नेमियाँ हैं तथा अक्षयस्वरूपवाले सवत्सरस युक्त उस चक्रमे सम्पूर्ण कालचक्र सन्निहित है। सूर्यक रथकी दूसरी धुरी चालीस हजार योजन लम्बी है।

हे वृषभध्वज। रथके जा पहियोके अक्ष हैं, व साढे पाँच हजार योजन लम्बे हैं। रथके कहे गये प्रधान दोना अक्षाके परिमाणके समान जुएके दोनो अर्द्धोंकी लम्बाई है। सबसे छोटा अक्ष जुएके अर्द्धभाग-परिमाणवाला है, जो रथके ध्रुवाधारपर अवस्थित है। रथके दूसरे अक्षमे चक्र लगा हुआ है जा मानसोत्तर पर्वतपर स्थित है।

गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् तथा पक्ति नामक—ये सात छन्द ही सूर्यके सात घोडे कहे गये हैं।

चैत्रमासमे सूर्यके इस रथपर धाता नामक आदित्य क्रतुस्थला नामकी अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकि नाग रथकृत् ग्रामणी, हेति नामका राक्षस और तुम्बुरु गन्धव स्थित रहते हैं। वैशाखमासम इस रथपर अर्यमा नामवाल आदित्य पुलह ऋषि, रथौजा यक्ष, पुञ्जिकस्थला अप्सरा प्रहेति राक्षस कच्छनीर सर्प तथा नारद नामक गन्धर्व आसीन रहते हैं। ज्येष्ठमासम सूर्यके इस रथम मित्र नामक आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक नाग पौरुषय राक्षस, मनका अप्सरा, हाहा नामक गन्धर्व और रथस्वन यक्षका वास रहता है।

आषाढमासम इस रथके ऊपर वरुण नामसे प्रसिद्ध आदित्य, वसिष्ठ ऋषि, रम्भा तथा सहजन्या नामक अप्सरा, हूहू गन्धर्व, रथचित्र नामक यक्ष एव राक्षसगुरु शुक्र निवास करते हैं। श्रावणमासम इस रथपर इन्द्र नामसे विख्यात आदित्य विश्वावसु गन्धर्व, स्रात नामक यक्ष, एलापत्र सर्प, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्प नामक राक्षसाका निवास रहता है। भाद्रपदमासम विवस्वान् नामक आदित्य उग्रसेन गन्धर्व, भृगु ऋषि, आपूरण नामक यक्ष, अनुम्लोचा नामक अप्सरा, शखपाल नामक सर्प तथा व्याघ्र राक्षसका सूर्य-रथम निवास रहता है।

आश्विनमासम इस रथपर पूषा नामक आदित्य, सुरुचि नामक गन्धर्व, धाता एव गौतम ऋषि, धनञ्जय नाग, सुषण तथा घृताची अप्सराका वास होता है। कार्तिकमासम पर्जन्य नामके आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, भरद्वाज ऋषि, ऐरावत सर्प, विश्वाची अप्सरा, सनजित् यक्ष एव आप नामक राक्षसका निवास उस रथपर रहता है। मार्गशीर्षमासम अशु नामक आदित्य, कश्यप ऋषि, तार्क्ष्य, महापद्म नाग, उर्वशी अप्सरा चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत् नामक राक्षस उस रथमे सचरण करते हैं।

पौषमासम भर्ग नामके आदित्य, क्रतु ऋषि, उर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक नाग, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वचित्ति नामक अप्सरा सूर्यमण्डलमे निवास करते ह। माघमासम त्वष्टा नामक आदित्य, जमदग्नि ऋषि कम्बल सर्प तिलात्तमा अप्सरा, ब्रह्मापत राक्षस ऋतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र नामक गन्धर्व सूर्यमण्डलम रहते हैं। फाल्गुनमासम विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर सर्प, रम्भा अप्सरा सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और

यज्ञापत राक्षसका उस रथमें वास रहता है।

हे ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुकी शक्तिसे तेजोमय बने मुनिगण सूर्यमण्डलके सामने उपस्थित रहकर उनकी स्तुति करते है, गन्धर्वजन यशोगान करत हैं। अप्सराएँ नृत्य करती हैं। राक्षस उस रथके पीछ-पीछ चलत हैं। सर्प उस रथका वहन करत है आर यक्षगण उसकी बागडोर सँभालनेका कार्य करते हैं। बाल्यखिल्य नामक ऋषिगण उस रथको सब ओरस घेरकर स्थित रहत ह।

चन्द्रमाका रथ तीन पहियावाला है। उसके घोडे कुन्द-पुष्पके समान श्वेतवणवाले हैं। व रथक जुएमे बाये और दाहिन दोना ओर जुतकर उसे खींचते हैं। उनकी सख्या दस हे।

चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ जल तथा अग्निस मिश्रित द्रव्यका बना हुआ है। उसमे वायुक समान वेगशाली पिशग (भूरे) वर्णके आठ घाडे जुत रहत ह।

शुक्रका महान् रथ सेन्यबलसे युक्त अनुकर्ष (रथको सुदृढ बनानेके लिये सम्पन्न रथक नीचे लगा काष्ठविशेष), ऊँचे शिखरवाला, पृथिवीपर उत्पन्न हानेवाले घोडासे सयुक्त, उपासङ्ग (तरकश) तथा ऊँची पताकासे विभूषित हे।

भूमिपुत्र मगलका महान् रथ तपाये गये स्वर्णके सदृश काञ्चन वर्णवाला है। उसमे आठ घोड लगे रहते हैं जा अग्निसे प्रादुर्भूत हैं तथा पद्मरागमणिके समान अरुण वणक हैं।

आठ पाण्डुर (कुछ पीलापन लिये हुए सफेद) वर्णके घोडासे युक्त स्वर्णके रथपर विद्यमान बृहस्पति एक-एक राशिम एक-एक वर्ष स्थित रहते हैं।

शनिका रथ आकाशसे उत्पन्न हुए चितकबरे घोडोसे युक्त है। व उसम चढकर धीरे-धीरे चलते हैं। उनका मन्दगामी भी नाम है।

स्वभानु अर्थात् राहुके [रथम] आठ घोडे हैं जो भमरके सदृश काले हैं। उसका रथ धूसर[1] वर्णका है। हे भूतेश शिव! उन घोडोको एक बार रथमे जोत दिय जानेपर वे निरन्तर चलते रहते हैं। इसी प्रकार केतुके रथम भी वायुके समान वगवाले आठ घोडे हैं। उनके वर्णोंकी आभा पुवालसे निकलनेवाले धुएँके सदृश तथा लाक्षारसकी भाँति अरुण रगकी है।

[हे शिव! इस प्रकार सूर्य-चन्द्रादि उपर्युक्त ग्रहोसे युक्त] द्वीप, नदी, पर्वत समुद्र आदिसे समन्वित समस्त भुवन-मण्डल भगवान् विष्णुका विराट् शरीर ही है।

(अध्याय ५८)

ज्योतिश्चक्रमे वर्जित नक्षत्र, उनके देवता एव कतिपय शुभ-अशुभ योगो तथा मुहूर्तोका वर्णन

श्रीसूतजीने कहा—[ऋषियो!] केशवने भगवान् शिवसे पृथिवीका परिमाण बताकर कहा कि ह रुद्र! ज्योतिष्-शास्त्रकी गणना चार लाखम है, पर उनमसे में अब ज्योतिश्चक्र अर्थात् नक्षत्रास युक्त राशिचक्रका सक्षेपसे वणन करूँगा जो सब कुछ देनेवाला है।

श्रीहरिने कहा—ह शिव! कृत्तिका नक्षत्रक दवता अग्नि हैं। राहिणी नक्षत्रके देवता ब्रह्मा हैं। मृगशिराक चन्द्रमा तथा आर्द्राक रुद्र देवता कह गय हैं। इसी प्रकार पुनर्वसुक आदित्य तथा तिष्य पुष्यक गुरु हैं। आश्लेषा नक्षत्रक सप तथा मघा नक्षत्रक देवता पितृगण हैं। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रक दवता भाग्य (भग) उत्तराफाल्गुनाक अयमा हस्तक सविता और चित्राक दवता त्वष्टा हैं। स्वाती नक्षत्रक दवता वायु और विशाखा नक्षत्रक दवता इन्द्राग्नि हैं। अनुराधा नक्षत्रके देवता मित्र और ज्येष्ठाके शक्र (इन्द्र) दवता कहे गये हैं। नक्षत्रज्ञ विद्वानोने मूल नक्षत्रका दवता निर्ऋतिको बताया है। पूर्वाषाढ नक्षत्रके देवता आप तथा उत्तराषाढक विश्वेदेव हैं। अभिजित्के देवता ब्रह्मा और श्रवणक विष्णु कहे गये हैं। धनिष्ठा नक्षत्रके देवता वसु तथा शतभिषाके वरुण कहे गये हैं। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रके देवता अजपाद उत्तराभाद्रपदके अहिर्बुध्न्य रेवतीके पूषा अश्विनीके अश्विनीकुमार और भरणीके यम देवता कहे गये हैं।

प्रतिपदा तथा नवमी तिथिम ब्रह्माणी नामकी योगिनी पूर्व दिशाम अवस्थित रहती है। द्वितीया और दशमी तिथिम माहेश्वरी नामक योगिनी उत्तर दिशामें रहती है। पञ्चमी तथा त्रयोदशी तिथिम वाराही नामक योगिनी दक्षिण दिशामें स्थित रहती है।

---

[1] १-श्वेत पाण्डु वर्णको धूसर और कुछ पीलापन लिये सफेद वर्णको पाण्डुवर्ण कहते हैं।

षष्ठी और चतुर्दशी तिथिमे इन्द्राणी नामकी योगिनीका वास पश्चिमम होता है। सप्तमी और पौर्णमासी तिथिमे चामुण्डा नामसे अभिहित योगिनीका निवास वायुगोचर अर्थात् वायव्यकोणम रहता है। अष्टमी तथा अमावास्यामे महालक्ष्मी नामकी योगिनी ईशानकोणम रहती है। एकादशी एव तृतीया तिथिम वैष्णवी नामकी योगिनी अग्निकोणम वास करती है। द्वादशी और चतुर्थी तिथिम कौमारी नामवाली योगिनीका निवास नैर्ऋत्यकोणम रहता है। योगिनीके सम्मुख रहनेपर यात्रा नहीं करनी चाहिये।

अश्विनी, अनुराधा, रवती, मृगशिरा, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त और ज्येष्ठा नक्षत्र प्रस्थान (यात्रा)-के लिये प्रशस्त कहे गये हैं।

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा—ये पाँच नक्षत्र तथा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी रोहिणी, पुष्य धनिष्ठा और पुनर्वसु नक्षत्र नवीन वस्त्र धारण करनेके लिये श्रेष्ठ हैं।

कृत्तिका भरणी, अश्लेषा, मघा, मूल विशाखा तथा पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ और पूर्वाफाल्गुनी—इन नक्षत्रोंको अधोमुखी कहा गया है। इन अधोमुखी नक्षत्रोंम वापी, तडाग सरोवर, कूप, भूमि, तृण आदिका खनन, देवालयके लिये नींवादिके खननका शुभारम्भ भूमि आदिम गडी हुई धन-सम्पत्तिकी खुदाई, ज्योतिश्चक्रका गणनारम्भ और सुवर्ण, रजत, पत्रा तथा अन्य धातुओंको प्राप्त करनेके लिये भू-खदानोंम प्रविष्ट होना आदि अन्य अधोमुखी कार्य इन अधोमुखी नक्षत्रोम करने चाहिये। रेवती, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, हस्त पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा एव ज्येष्ठा नक्षत्र पार्श्वमुखी हैं। इन पार्श्वमुखी नक्षत्रोमे हाथी, ऊँट, अश्व, बैल तथा भैंसेको वशम करनेका उपाय करना चाहिये। (अर्थात् इनके नाक आदिमे छेद करके छल्ला या रस्सी डालनेका कार्य करना चाहिये।)

खेतामे बीज बाना, गमनागमन चक्रयन्त्र (चरखी चरसा, रहट आदि यन्त्र) अथवा रथ एव नौकादिका [illegible] और निर्माण उक्त पार्श्वमुखी नक्षत्राम करना चाहिये [illegible] अन्य पार्श्व कार्योंको भी इन पार्श्व नक्षत्रोम करना [illegible]

रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, धनिष्ठा उत्तराफाल्गुन, [illegible] उत्तराभाद्रपद, शतभिष (वारुण) तथा श्रवण—[illegible] ऊर्ध्वमुखी कहे गये हैं। इन नक्षत्रामें [illegible] पट्टबन्ध आदि शुभ कार्य करवाने चाहिये। ऊर्ध्वमुखी अर्थात् अभ्युदय प्रदान करनेवाले अन्य विशिष्ट कार्योंका भी इन नक्षत्रामे कराना प्रशस्त होता है।

चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी, अमावास्या तथा पूर्णिमा तिथि अशुभ होती है। इन तिथियामे शुभ कार्य नहीं करने चाहिये। कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तथा बुधवारसे युक्त द्वितीया तिथि शुभ होती है। यदि भूमिपुत्र मगलसे युक्त तृतीया हो, शनैश्चरको चतुर्थी हो, गुरुवारको पञ्चमी पड रही हो, षष्ठीको मगल या शुक्रवार हो तो वे तिथियाँ भी शुभ होती हैं। बुधवारको सप्तमी, मगल तथा रविवारको अष्टमी, सोमवारको नवमी और गुरुवारको पडनेवाली दशमी तिथि शुभ होती है। एकादशी तिथिम गुरु तथा शुक्र होनेपर, बुधवारको द्वादशी तिथि पडनेपर, शुक्र तथा मगलवारको त्रयोदशी और शनिवारको चतुर्दशी तिथि शुभ होती है। इसी प्रकार बृहस्पतिको पूर्णिमा या अमावास्या तिथिका होना भी शुभ होता है।

द्वादशी तिथि रविवार, एकादशी सोमवार, [illegible] मगलवार, नवमी बुधवार, अष्टमी गुरुवार, [illegible] शुक्रवार और षष्ठी तिथि शनिवारसे [illegible] ऐसे तिथि-दग्ध-योगमे यात्रादिका [illegible] चाहिये। प्रतिपदा, नवमी, चतुर्दशी [illegible] यदि बुधवारका सयोग हो [illegible] विचारका दूरसे ही परित्याग [illegible] कर्क-सक्रान्तिकी षष्ठी, [illegible] अष्टमी, वृष तथा [illegible] और तुला-सक्रान्तिकी [illegible]-सक्रान्तिकी दशमी तथा [illegible] चतुर्दशी—ये दग्ध तिथियाँ हैं। इन [illegible] करनी चाहिये। ये [illegible]

[illegible] अनुराधा और [illegible] उत्तराषाढ [illegible] शतभिष और [illegible] अश्विनी [illegible] रोहिणी मृगशिरा [illegible] अश्लेषा [illegible] हस्त [illegible] होता है। [illegible]

उत्पात मृत्यु और रोगकी उत्पत्ति होती है।

हे रुद्र! रविवारको मूल, सोमवारको श्रवण, मगलवारको उत्तराभाद्रपद, बुधवारको कृत्तिका, बृहस्पतिके दिन पुनर्वसु, शुक्रवारको पूर्वाफाल्गुनी तथा शनिवारको स्वाती नक्षत्र हो तो अमृत योग होता है। ये सभी कार्योंको सिद्ध करनेवाले हैं।

विष्कुम्भ योगकी पाँच घटी, शूल यागकी सात घटी, गण्ड तथा अतिगण्ड योगकी छ -छ घटी, व्याघात ओर वज्र योगकी नौ-नौ घटी एव व्यतीपात, परिघ और वैधृति योग—ये मृत्युतुल्य कष्टदायी होते हैं, इनमे सभी कर्मोंका परित्याग करना चाहिये।

रविवारका हस्त, गुरुवारको पुष्य, बुधवारका अनुराधा नक्षत्र—ये शुभ होते हैं। शनिवारको रोहिणी उत्तम आर सोमवारको मृगशिरा नक्षत्र शुभ है। उसी प्रकार शुक्रवारको रेवती तथा मगलवारको अश्विनी नक्षत्र शुभ फल देता है। इस प्रकारका योग होनेपर सिद्धि योग बनता है। य सिद्धि याग सभी प्रकारके दोपाका विनाश करनेवाले होते हैं।

ह वृपभध्वज! शुक्रवारको भरणी, सोमवारको चित्रा, मगलवारका उत्तरापाढ, बुधवारको धनिष्ठा, बृहस्पतिको शतभिप, शुक्रवारको राहिणी और शनिवारको रेवती नक्षत्र होनेपर विपयोग होता है।

पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, चित्रा, श्रवण धनिष्ठा, हस्त अश्विनी, मृगशिरा एव शतभिप नक्षत्र होनेपर जातकर्म आदि सस्कार करनेके लिये उत्तम माने गये हैं।

हे शिव! विशाखा उत्तराफाल्गुनी उत्तरापाढ उत्तराभाद्रपद, मघा आर्द्रा, भरणी, अश्लेषा और कृत्तिका नक्षत्रम यात्रा करनपर मृत्युका भय रहता है। (अध्याय ५९)

ग्रहदशा, यात्राशकुन, छींकका फल तथा सूर्यचक्र आदिका निरूपण

श्रीहरिने कहा—[ह शिव! अब मैं ग्रहाकी महादशाका वर्णन कर रहा हूँ] सूर्यकी दशा छ वर्ष चन्द्रकी दशा पद्रह वर्ष मगलकी दशा आठ वर्ष, बुधकी दशा सत्रह वर्ष, शनिकी दशा दस वर्ष, बृहस्पतिकी दशा उन्नीस वर्ष राहुकी दशा बारह वर्ष तथा शुक्रकी दशा इक्कीस वर्ष रहती है[1]।

सूर्यकी दशा दु ख दनेवाली हाती है और उद्वगका पैदा करती है तथा राजाका नाश करती है। चन्द्रकी दशा ऐश्वर्य दनवाली सुख पैदा करनवाली तथा (इष्ट) मनाऽनुकूल अन्न दनवाली हाती है।

मगलकी दशा दु ख दनवाली तथा राज्यादिका विनाश करनेवाली है। बुधकी दशा दिव्य स्त्रीका लाभ राज्य-प्राप्ति एवं कोपवृद्धि करनवाली है। शनिकी दशा राज्यका नाश और बन्धु-बान्धवाका कष्ट-प्रदान करनवाला है। बृहस्पतिका दशा राज्य-लाभ और सुख-समृद्धि तथा धर्म दनवाला है। राहुकी दशा राज्यका नाश करती है व्याधियाकी प्राप्ति कराती है और दु ख पैदा करता है। शुक्रकी दशाम हाथी घाडा, राज्य तथा स्त्रीका लाभ होता है।

मेप मगलका वृप शुक्रका मिथुन बुधका और कर्क चन्द्रमाका क्षेत्र कहा गया है। सूर्यका क्षेत्र सिंह एव बुधका क्षेत्र कन्याराशि है। तुलाराशि शुक्रका क्षेत्र है और वृश्चिक मगलका क्षत्र है। बृहस्पतिका क्षेत्र धनु, शनिका क्षेत्र मकर एव कुम्भ और मीन बृहस्पतिका क्षत्र कहा गया है।

कर्कराशिम सूर्य आ जानेपर भगवान् विष्णु शयन करत हैं।

अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा—ये नक्षत्र आभूषण धारण करनमं उत्तम माने गये हैं।

यात्रामें यदि दाहिने हाथी घोड़े बन्दर [illegible] सुअर, पक्षी (नीलकण्ठ आदि) [illegible] [illegible] ता यात्रा मङ्गलकारी होती है। यात्रामें [illegible]

[1] [illegible]

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय एवं वाचनालय

दर्शन हो जाना मङ्गल होनेका सूचक है तथा शङ्ख और मृदगकी आवाज सुनना एव सदाचारी श्रीमन्त व्यक्तिका दर्शन हो जाना, वेणु, स्त्री, जलसे भरा कलश दिखायी देना कल्याण-प्राप्तिका सूचक है।

यात्रामे बायीं ओर शृगाल, ऊँट और गदहा आदिका दिखायी देना मङ्गलकारी होता है। यात्रामे कपास, ओषधि, तेल, दहकते अगारे, सर्प, बाल बिखेरे, लाल माला पहने और नग्न अवस्थामे यदि कोई व्यक्ति दिखायी दे तो अशुभ होता है।

अब मैं हिक्का (छींक)-के शुभ-अशुभ फलोंका वर्णन कर रहा हूँ। पूर्व दिशामे छींक होनेपर बहुत बडा फल प्राप्त होता है। अग्निकोणमें छींक होनेपर शोक और सताप तथा दक्षिणमे छींक होनेपर हानि उठानी पडती है। नैर्ऋत्यकोणमे छींक होनेपर शोक और सताप तथा पश्चिममे छींक होनेपर मिष्टान्नकी प्राप्ति होती है। वायव्यकोणमे छींक होनेपर धनकी प्राप्ति और उत्तरमे छींक होनेपर कलह होता है। ईशानकोणमें छींक होनेपर मरणके समान कष्ट प्राप्त होना बतलाया गया है।

मनुष्यके आकारमे भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका चित्रण करे। सूर्यकी प्रतिमा बनानेके दिन सूर्य जिस नक्षत्रपर हो, उस नक्षत्रसे तीन नक्षत्र उस प्रतिमाके मस्तकपर अकित करे। मुखके मध्यमें अकित सूर्यनक्षत्रसे आगे तीन नक्षत्र लिखे और उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनो कन्धोपर लिखे। फिर उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनो भुजाओंपर लिखे और उससे आगेके एक-एक नक्षत्र दोनो हाथोपर लिखे। उससे आगे पाँच नक्षत्र हृदय-प्रदेशपर लिखे तथा उससे आगे एक नक्षत्र नाभिमण्डलमे लिखे। उससे आगे गुह्यस्थानमें एक नक्षत्र लिखे। उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनो घुटनोपर लिखे। शेष नक्षत्र सूर्यके चरणोपर लिखे।

सूर्यचक्रके चरणोमे जातकका जन्मनक्षत्र पडता हो तो जातक अल्पायु होता है। वही नक्षत्र यदि घुटनोपर पडता है तो जातक विदेश यात्रावाला होता है और यदि गुह्यस्थानपर पडे तो पर-स्त्रीगामी होता है। नाभिस्थानमे पडनेपर थोडेमें ही प्रसन्न हो जानेवाला होता है। यदि हृदयस्थानमे पडता है तो महेश्वर होता है। यदि पाणिस्थानमे पडता है तो चोर होता है। वही यदि भुजाओपर पडता है तो उसका कहीं निश्चित स्थान नहीं रहता। यदि कन्धोपर पड जाय तो वह धनपति—कुबेर होता है। यदि मुखपर पड जाय तो मिष्टान्न प्राप्त करता रहता है और यदि मस्तकपर जातक-नक्षत्र पड जाय तो जातक रेशम-वस्त्रधारी होता है। (अध्याय ६०)

ग्रहोके शुभ एव अशुभ स्थान तथा उनके अनुसार शुभाशुभ फलका सक्षिप्त विवेचन

श्रीहरिने कहा—लग्नसे सप्तम भाव तथा उपचयमें स्थित चन्द्रमा सर्वत्र मङ्गलकारी होता है। शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथि तथा पञ्चम और नवम भावमे स्थित चन्द्रमा गुरुके सदृश पूज्य है।

हे शिव। चन्द्रमाकी बारह अवस्थाएँ हैं। आप उनके विषयमे भी सुने। अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्रोसे एक-एक अवस्था बनती है। अत उन अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्राके क्रमसे 'प्रवासावस्था, दृष्टावस्था मृतावस्था जयावस्था हास्यावस्था नतावस्था प्रमोदावस्था विषादावस्था, भोगावस्था, ज्वरावस्था, कम्पावस्था तथा सुखावस्था'—ये चन्द्रकी बारह अवस्थाएँ होती हैं।

इन्हीं अवस्थाआके क्रममे चन्द्रकी स्थिति होनेपर क्रमश —प्रवास हानि, मृत्यु, जय, हास रति सुख शोक, भोग, ज्वर, कम्प तथा सुख—ये फल प्राप्त होते हैं।

चन्द्रके जन्मलग्नमे होनेपर तुष्टि, द्वितीय भावमे रहनेपर सुख-हानि, तृतीय भावमे रहनेपर राजसम्मान, चतुर्थ भावमे कलह और पञ्चम भावमे रहनेपर स्त्रीका लाभ होता है। यदि चन्द्र षष्ठ (स्थान) भावमे रहता है तो धन-धान्यकी प्राप्ति सप्तम भावमे रहनेपर प्रेम तथा सम्मानकी प्राप्ति होती है। चन्द्रमाके अष्टम भाव (स्थान)-मे रहनेपर मनुष्यके प्राणाको सकट बना रहता है। नवम भावमे उसकी स्थिति रहनेपर कोषमे धनकी वृद्धि होती है। दशम भावमे चन्द्रके रहनेपर कार्यसिद्धि और एकादश भावमे होनेपर विजय निश्चित है। जब वह द्वादश भावमे रहता है तो जातकको निश्चित ही मृत्यु होती है। इसमे सदेह नहीं है।

कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु पुष्य, अश्लेषा—इन सात नक्षत्रोंमें पूर्व दिशाकी यात्रा करनी चाहिये। मघा पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती तथा विशाखा—इन सात नक्षत्रोंमें दक्षिणकी यात्रा करनी चाहिये। अनुराधा ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, श्रवण और धनिष्ठा—इन सात नक्षत्रोंमें पश्चिमकी यात्रा करनी चाहिये। धनिष्ठा, शतभिष पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी—इन सात नक्षत्रोंमें उत्तरकी यात्रा प्रशस्त होती है।

अश्विनी, रेवती, चित्रा तथा धनिष्ठा नक्षत्र नवीन अलंकारोंको धारण करनेके लिये श्रेष्ठ हैं। मृगशिरा, अश्विनी, चित्रा, पुष्य, मूल और हस्त नक्षत्र कन्यादान, यात्रा तथा प्रतिष्ठादि कार्योंमें शुभप्रद होते हैं।

जन्मलग्नमें शुक्र और चन्द्रके रहनेपर शुभ फलकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार ये दोनों ग्रह द्वितीय भावमें रहनेपर भी शुभ फल प्रदान करते हैं। तृतीय भावमें स्थित चन्द्र, बुध शुक्र और बृहस्पति, चतुर्थ भावमें मंगल, शनि, चन्द्र, सूर्य और बुध श्रेष्ठ होते हैं। पञ्चम भावमें शुक्र, बृहस्पति, चन्द्रमा और केतुके रहनेपर शुभ होता है। षष्ठ भावमें शनि सूर्य और मंगल, सप्तम भावमें बृहस्पति तथा चन्द्रमा शुभ हैं। इसी प्रकार अष्टम भावमें बुध और शुक्र तथा नवम भावमें स्थित गुरु शुभ फल देनेवाला है। जन्मके दशम भावमें स्थित सूर्य, शनि एवं चन्द्रमा तथा एकादश भावमें सभी ग्रह शुभ फल देते हैं। ऐसे ही जन्मके द्वादश भावमें स्थित बुध और शुक्र सब प्रकारके सुखोंको प्रदान करते हैं।

सिंहके साथ मकर, कन्याके साथ मेष, तुलाके साथ मीन, कुम्भके साथ कर्क धनुके साथ वृष और मिथुनके साथ वृश्चिकराशिका योग श्रेष्ठ होता है। यह षडष्टक योग है। यह योग प्रीतिकारक होता है[१], इसमें संशय नहीं है। (अध्याय ६१)

लग्न-फल, राशियोंके चर-स्थिर आदि भेद, ग्रहोंका स्वभाव तथा सात वारोंमें किये जाने योग्य प्रशस्त कार्य

श्रीहरिने कहा—हे शिव! सूर्य उदयकालसे मेषादि राशियोंपर अवस्थित रहते हैं। वे दिनमें क्रमशः छः राशियोंको पारकर रात्रिमें शेष छः राशियोंको पार करते हैं।

मेषलग्नमें कन्याका जन्म होनेपर वह वन्ध्या होती है। वृषलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या कामिनी होती है, मिथुन-लग्नवाली सौभाग्यशालिनी तथा कर्कलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या वेश्या होती है। सिंहलग्नमें जन्म-प्राप्त कन्या अल्पपुत्रावाली कन्यालग्नवाली रूपसे सम्पन्न तुलालग्नवाली रूप और ऐश्वर्यसे युक्त तथा वृश्चिकलग्नवाली कर्कश स्वभावकी होती है। धनुलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या सौभाग्यवती तथा मकरलग्नवाली निम्न पुरुषोंके साथ गमन करनेवाली होती है। कुम्भलग्नमें जन्म-प्राप्त कन्या अल्पपुत्रों तथा मीनलग्नवाली वैराग्ययुक्त होती है[२]।

तुला, कर्क, मेष और मकर—ये चर राशियाँ हैं इनमें यात्रादि चर कार्य करने चाहिये। सिंह, वृष, कुम्भ और वृश्चिक स्थिर राशि हैं। इनमें स्थिर कार्य करने चाहिये। कन्या, धनु, मीन एवं मिथुनराशि द्विस्वभावकी होती हैं। विद्वान् व्यक्तिको इन राशियोंमें द्विस्वभावसे युक्त कर्म करने चाहिये। यात्रा चरलग्नमें तथा गृह-प्रवेशादिका कार्य स्थिरलग्नमें करना चाहिये। देवताओंकी स्थापना और वैवाहिक संस्कारको द्विस्वभावके लग्नमें करना श्रेयस्कर है।

हे वृषभध्वज! प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशी तिथियाँ नन्दा मानी जाती हैं। द्वितीया सप्तमी और द्वादशी तिथियाँ भद्रा कही गयी हैं। तृतीया अष्टमी और त्रयोदशी तिथियाँ जया कही गयी हैं। चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी—ये तीन

१-यहाँ षडष्टक योगको शुभ बताया गया है किंतु मतान्तरसे वर-वधूके मेलापक प्रकरणमें यह षडष्टक योग अशुभ माना गया है। वर या वधूकी परस्पर जन्म-राशि एक-दूसरेसे छठी या आठवीं होना ही षडष्टक योग है। अर्थात् यदि एककी सिंह राशि हो और दूसरेकी मकरराशि तो ये राशियाँ गणना करनेपर एक-दूसरेसे छठी या आठवीं पड़ेंगी ऐसे ही मेष-कन्या वृष-तुला मिथुन-वृश्चिक कर्क-धनु आदिके विषयमें समझना चाहिये। प्रायः ऐसेमें विवाहादि नहीं किया जाता। षडष्टकके समान ही द्विर्द्वादश योग तथा नवम पञ्चम योगपर भी विचार किया जाता है।

२-ज्योतिष शास्त्रके अनुसार अन्य सभी योग एवं ग्रह स्थितियोंको ध्यानमें रखकर ही इस फलपर विचार करना चाहिये। यहाँ दिग्दर्शनमात्र है।

रिक्ता तिथि हैं। ये शुभ कार्यके लिये वर्जित हैं।

सौम्य स्वभाववाला बुध ग्रह चर स्वभाव है। गुरु क्षिप्र, शुक्र मृदु और रवि ध्रुव स्वभावका है। शनि दारुण, मगल उग्र तथा चन्द्रको समस्वभावका जानना चाहिये।

चर और क्षिप्र स्वभाववाले (अर्थात् बुध एव बृहस्पति) वारम यात्रा करनी चाहिये तथा मृदु और ध्रुव स्वभावसे सयुक्त शुक्र अथवा रविवारको गृह-प्रवेशादिका कार्य करना चाहिये। दारुण और उग्र स्वभाववाले शनि तथा मगलवारको विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषासे क्षत्रियादि वीराको युद्धके लिये प्रस्थान करना चाहिये।

राज्याभिषेक और अग्निकार्य सामवारको प्रशस्त माना गया है। सोमवारम लिपाईका कार्य एव गृहका शुभारम्भ करना श्रेयस्कर है। मगलवारको सेनापतिका पद-भार वहन करना, शौर्य, पराक्रमका कार्य तथा शस्त्राभ्यासका प्रारम्भ करना शुभ हे। बुधके दिन किसी कार्यकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करना, मन्त्रणा करना और यात्रा करना सफलतादायक माना गया है। बृहस्पतिवारको वेदपाठ, देवपूजा, वस्त्र तथा अलकारादि धारणके कार्य करने चाहिये। शुक्रवारको कन्यादान, गजारोहण तथा स्त्रीसहवास उचित है। शनिवारको गृहारम्भ, गृहप्रवेश और गजबन्धनके कार्य शुभ माने गये हैं।

(अध्याय ६२)

सामुद्रिकशास्त्रके अनुसार स्त्री-पुरुषके शुभाशुभ लक्षण, मस्तक एव हस्तरेखासे आयुका परिज्ञान

श्रीहरिने कहा—हे शिव। अब मैं स्त्री-पुरुषके लक्षणोका वर्णन सक्षेपम कर रहा हूँ, आप सुने।

जिनके हाथ-पाँवके तल पसीनेसे रहित हो, कमलके भीतरी भागकी तरह मृदु एव रक्त हा, अँगुलियाँ सटी हुई हा नाखून ताँबेके वर्णके समान थोडे रक्त हो, पाँव सुन्दर गुल्फवाले, नसोसे रहित और कूर्मके समान उन्नत हा, उन्ह नृपश्रेष्ठ समझना चाहिये।

रूक्ष एव थोडा पीलापन लिये, श्वेत नखवाले, वक्र, तथा नसोसे भरे हुए और विरल अँगुलियोसे युक्त शूर्पाकार चरणोवाले मनुष्य दु खी एव दरिद्र होते हैं।

अल्परोमसे युक्त, गलशुण्डके समान सुन्दर जघा-प्रदेश तथा एक-एक रोमसे भरे हुए रोमकूपोवाला शरीर राजाओ और महात्माआका माना गया है। प्रत्येक रोमकूपमे दो-दो रोम होनेपर मनुष्य श्रोत्रिय या पण्डित होता है। तीन-तीन रोमासे व्याप्त रोमकूप दरिद्राके होते हैं।

मासरहित, अत्यन्त कृश जानुयुगलवाला मनुष्य रोगी होता है। समान उदरभागसे सुशोभित मनुष्य अतिशय भोगसे समृद्ध और कुम्भके सदृश उन्नत या सर्पके समान उदरभागवाले लोग अत्यन्त दरिद्र होते हैं।

रेखाआके द्वारा आयुका निर्णय किया जाता है। जिसके ललाटपर समान आकारवाली तीन रेखाएँ स्पष्ट दिखायी देती हैं, वह पुत्रादिसे सम्पन्न रहकर सुखपूर्वक साठ वर्षतक जीवित रहता है। मस्तकपर दो रेखाओके दृष्टिगोचर हानेपर मनुष्यकी आयु चालीस वर्षकी होती है। एक रेखाके होनेपर उस मनुष्यका जीवन बीस वर्ष मानना चाहिये किंतु कर्णपर्यन्त एक रेखाके होनपर वह शतायु होता है।

ललाटपर कानतक विस्तृत दो रेखाओंके हानेसे मनुष्यकी आयु सत्तर वर्ष तथा वैसी ही तीन रेखाओके रहनेपर उसकी आयु साठ वर्ष होती है। ललाटपर रेखाआकी व्यक्त (प्रकट)-अव्यक्त (अप्रकट) स्थिति होनेपर मनुष्य बीस वर्षकी अल्पायुको ही प्राप्त करता है। रेखाविहीन ललाटके हानेपर मनुष्य चालीस वर्षतक जीवित रहता है। रेखाआके छिन्न-भिन्न रहनेपर मनुष्यकी अकालमृत्यु हाती है।

जिसके मस्तकपर त्रिशूल अथवा फरसेके समान चिह्न दिखायी देता है, वह धन-पुत्रादिसे परिपूर्ण होकर सौ वर्षतक जीवित रहता है।

हे रुद्र। तर्जनी और मध्यमा अगुलीके मध्यभागतक आयुरेखाके पहुँचनपर मनुष्य शतायु होता हे। अगुष्ठके

मूलभागसे निकलनेवाली प्रथम रेखा ज्ञानरेखा है। मध्यमा अंगुलीके मूलसे जो रेखा जाती है, वह आयुरेखा है। यह रेखा कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे निकलकर मध्यमाके मूल भागको पार करती है। यदि यह रेखा विच्छिन्न या किसी अन्य रेखासे विभक्त नहीं होती है तो ऐसे व्यक्तिकी आयु सौ वर्ष होती है।

हे रुद्र! जिसके हाथमें यह आयुरेखा स्पष्ट दिखायी देती है। उसकी आयु सौ वर्ष अवश्य होती है, इसमें संदेह नहीं। जो रेखा कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे होकर मध्यमा अंगुलीके मूलतक विस्तारको प्राप्त करती है, वह रेखा मनुष्यको साठ वर्ष आयु प्रदान करनेमें सक्षम होती है। (अध्याय ६३)

स्त्रियोंके शुभाशुभ लक्षण

श्रीहरिने कहा—जिस कन्याके केश घुँघराले मुख मण्डलाकार अर्थात् गोल एवं नाभि दक्षिणावर्त होती है, वह कुलकी वृद्धि करनेवाली होती है। जो स्वर्णसदृश आभावाली होती है, जिसके हाथ लाल कमलके समान सुन्दर होते हैं, वह हजारों स्त्रियोंमें अद्वितीय तथा पतिव्रता होती है।

जो कन्या वक्र केशोंवाली और गोल नेत्रवाली होती है, वह निश्चित ही दुःख भोगनेवाली होती है तथा उसका पति शीघ्र ही मर जाता है।

पूर्णचन्द्रके सदृश मुखमण्डलसे सुशोभित, बालसूर्यके समान लाल-लाल कान्तिवाली, विशाल नेत्रोंसे युक्त, बिम्बाफलकी भाँति ओष्ठवाली कन्या चिरकालतक सुखका उपभोग करती है। हस्ततलमें बहुत-सी रेखाओंके होनेपर कष्ट तथा अल्प रेखाओंके होनेपर वह धनहीनताका दुःख भोगती है। हाथमें रक्तवर्णकी रेखाओंके होनेसे वह सुखी जीवन व्यतीत करती है, किंतु कृष्णवर्णकी रेखाओंके होनेपर वह दास्यवृत्तिवाली दूतीका जीवन व्यतीत करती है।

अच्छी स्त्री वह है जो पतिके कार्योंमें मन्त्रीके समान परामर्श देनेवाली होती है। सहयोगमें मित्रके समान बर्ताव करती है। स्नेहके व्यवहारमें भार्या अथवा माता तथा शयन-कालमें वेश्याके समान सुख प्रदान करती है।

जिस कन्याके हाथमें अंकुश, कुण्डल और चक्रके चिह्न विद्यमान रहते हैं वह पुत्रसे सम्पन्न होती है और राजाको पतिके रूपमें वरण करती है।

जिस स्त्रीके दोनों पार्श्व और स्तन-प्रदेश रोमसमन्वित होते हैं तथा अधरोष्ठ-भाग ऊँचा उठा हुआ होता है वह निश्चित ही शीघ्र पतिका नाश करनेवाली होती है। जिसके हाथमें प्राकार और तोरणकी रेखाएँ दिखायी देती हैं, वह दासकुलमें भी उत्पन्न होकर रानीके पदको प्राप्त करती है। जिस कन्याकी नाभि ऊपरकी ओर उठी हुई मण्डलाकार एवं कपिलवर्णकी रोमावलियोंसे आवृत्त रहती है, वह कन्या राजकुलमें उत्पन्न होकर दासीकी वृत्तिसे जीवनयापन करती है।

जिस स्त्रीके चलनेपर दोनों पैरकी अनामिका तथा अंगुष्ठ पृथिवीतलका स्पर्श नहीं करते हैं, वह शीघ्र ही पतिका नाश करती है तथा स्वयं स्वेच्छाचारपूर्वक जीवन बितानेवाली होती है। जिस स्त्रीके चलनेसे पृथिवीमें कम्पन हो उठता है, वह शीघ्र ही पतिका नाश करके स्वेच्छाचारिणी बन जाती है।

सुन्दर मनोहारी नेत्रोंके होनेसे स्त्री सौभाग्यशालिनी, उज्ज्वल चमकते हुए दाँतोंके होनेपर उत्तम भोजन प्राप्त करनेवाली, शरीरकी त्वचा सुन्दर एवं कोमल होनेसे उत्तम प्रकारकी शय्या तथा कोमल स्निग्ध चरणोंके होनेपर वह श्रेष्ठ वाहनका सुख प्राप्त करती है।

चिकने ऊँचे उठे हुए ताम्रवर्णके समान लाल-लाल नखोंसे युक्त मत्स्य, अंकुश, पद्म, चक्र तथा लाङ्गल (हल)-चिह्नसे सुशोभित एवं पसीनेसे रहित और कोमल तलवाले स्त्रीके चरण सौभाग्यशाली होते हैं।

सुन्दर रोमविहीन जंघा, गजशुण्डके सदृश ऊरु, पीपलपत्रके समान विशाल उत्तम गुह्यभाग, दक्षिणावर्त गम्भीर नाभि रोमरहित त्रिवली और हृदयपर सुशोभित रोमरहित स्तन-प्रदेश—ये उत्तम स्त्रीके शुभ लक्षण हैं। (अध्याय ६४)

स्त्री एव पुरुषोके शुभाशुभ लक्षण

श्रीहरिने कहा—अब मे सामुद्रिकशास्त्रम कहे गये स्त्री और पुरुषके शुभाशुभ लक्षणोका वर्णन करता हूँ, जिन्हे जान लेनेसे भूत तथा भविष्यका ज्ञान हो जाता है।

मार्गमे गमन करनपर विषम रूपसे पडनेवाले, कषाय वर्णसे युक्त विचित्र प्रकारके बन हुए चरण वशका नाश करते हैं। शङ्खाकार चरणोसे युक्त मनुष्य ब्रह्महत्या करता है तथा अगम्या स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा रखता है।

विरल रोमभागयुक्त जघा तथा हाथीके सूँडके समान सुन्दर ऊरु भागोवाले अग राजाके शरीरम सुशोभित होते हैं। दरिद्रकी जघाएँ सियारकी जघाओंके समान होती हैं। कुचित केशराशिवाले मनुष्यकी मृत्यु विदेशम होती है।

मासरहित जानु-प्रदेशवाला व्यक्ति सौभाग्यशाली होता है। अल्प ओर छोटी-छोटी जानुओके होनेसे मनुष्य स्त्री-प्रेमी तथा विशाल विकटाकार होनेपर दरिद्र होता है। माँससे भरपूर जानुओके होनेपर मनुष्यको राज्यकी प्राप्ति होती है। बडी जानुआके होनेपर मनुष्य दीर्घायु होता है।

मासल स्फिक् (कूल्हा)-प्रदेशवाला व्यक्ति सुखी तथा सिहके समान स्फिक् होनेपर वह राजपुरुष माना गया है। इसी प्रकार सिहके सदृश कटिप्रदेशके होनेपर वह राजा होता है किंतु कपिके समान कटिभागवाला व्यक्ति निर्धन होता है।

समान कक्ष (काँख)-प्रदेशवाले अत्यधिक भोग-विलासी होते हैं। निम्न कक्षाआवाले धनहीन तथा उन्नत एव विषम कक्षाओवाले कुटिल होते हैं।

मत्स्यके समान उदरवाले प्रचुर धनवान् होते हैं। विस्तीर्ण नाभिप्रदेशसे सुशोभित जन सुखी एव अत्यधिक गहरी नाभिके होनेपर कष्ट भागनेवाले हाते हैं।

त्रिवलीके मध्यभागम नाभिके अवस्थित हानपर प्राणी शूलरोगसे ग्रसित हाते हैं। वामावर्त नाभिके होनेपर शक्तिसम्पन्न और दक्षिणावर्त होनेपर मेधावी होते हैं। पार्श्वदेशम नाभिके विस्तृत होनेसे मनुष्य चिरजीवी उन्नत होनेपर ऐश्वर्यशाली अधोमुख होनेपर गाधनसे सम्पन्न एव पद्मकर्णिकाके सदृश सुन्दर हानेपर वे राजत्वका प्राप्त करते हैं।

उदरभागपर एक वलिक रहनेपर मनुष्य शतायु हाता है। दो वलियाके होनेसे वह ऐश्वर्यका भोग करनवाला तथा त्रिवलियोके होनेपर राजा या आचार्यकी पदवीको प्राप्त करता है। सरल वलियोवाला मनुष्य सुखी होता है। वक्र वलिवाला व्यक्ति अगम्यागामी होता है।

जिसके दोनो पार्श्वभाग माँसल होते हैं, वह राजा होता है। मृदु, कोमल, सुन्दर और समभागकी दूरियोपर अवस्थित दक्षिणावर्तीय रोमराशियोस सुशोभित व्यक्ति भी राजा होते हैं। यदि उदर-प्रदेशपर इन लक्षणाके विपरीत रोम-राशियाँ होती हैं तो ऐसे मनुष्य दूत-कर्म करनेवाले, निर्धन तथा सुखसे रहित होते हैं।

समुनत, माँसल तथा कम्पनरहित विशाल वक्ष स्थल राजाओका हाता है। अधम जनोका वक्ष स्थल तो गर्दभोकी रोमराशिके समान कर्कश तथा रोमावलियोसे युक्त स्पष्ट परिलक्षित होनेवाली नसासे व्याप्त रहता है।

समतल वक्ष स्थलवाले मनुष्य धन-सम्पन्न होते हैं। पीन (माँसल) वक्ष स्थलासे युक्त प्राणी शक्तिसम्पन्न होता है। विषम वक्ष स्थलक होनेपर मनुष्य निर्धन होता है आर उसकी मृत्यु शस्त्राघातस होती है।

स्कन्ध-प्रदेशक सन्धिस्थान (पखुरा)-म विषमता तथा अस्थि-सलग्नताक होनेपर भी मनुष्य निर्धन होत हैं। उन्नत स्कन्ध-प्रदेशके रहनेसे व्यक्ति भोगी, निम्न होनेपर धनहीन तथा स्थूल हानेपर धनी होते है।

चिपटाकार कण्ठसे युक्त मनुष्य निर्धन, शुष्क एव उन्नत शिराओसे व्याप्त गलेवाला सुखी होता है। महिषके सदृश ग्रीवावाला वीर तथा मृगके समान कण्ठवाला शास्त्रोमे पारगत होता है। शखके समान ग्रीवावाला मनुष्य राजा और लम्बे कण्ठवाला बहुत भोजन करनेवाला होता है।

रामरहित एव मुडा हुआ पृष्ठ-प्रदेश शुभ तथा उसके विपरीत रहनेपर अशुभ माना गया है।

पीपल-पत्रके सदृश, सुगन्धित तथा मृगक सदृश रोमावलियावाली कक्षाएँ उत्तम हाती हैं। इसक विपरीत कक्षाआके जा लक्षण हाते हैं व निर्धनाकी दरिद्रताके कारण हैं।

माँसल, शिलष्ट, विशाल, बलिष्ठ, वृत्ताकार तथा जानुपर्यन्त लम्बी सुन्दर भुजाएँ राजाका होता हैं। प्रचुर रोमावलियासे

युक्त छोटे-छोटे हाथ निर्धनके होते हैं। हाथीकी शुण्डके समान सुन्दर भुजाएँ श्रेष्ठ मानी गयी है।

भवनमे वायु-प्रवेशके लिये बने द्वारके समान बनी हुई अंगुलियाँ शुभ होती हैं। मेधावी जनोंकी अंगुलियाँ छोटी होती हैं। चिपटाकार अंगुलियाँ भृत्योंमे पायी जाती हैं। स्थूल अंगुलियोंके होनेपर मनुष्य निर्धन होते हैं। जब मनुष्यकी अंगुलियाँ कृश होती हैं तो वे विनयी होते हैं। बन्दरके सदृश हाथके होनेपर मनुष्य निर्धन और बाघके समान हाथ होनेपर बलवान् होते हैं।

करतल भागके निम्न होनेसे मनुष्य पिताके द्वारा संचित धनको नष्ट करनेवाले होते हैं। मणिबन्धके सुगठित श्लिष्ट तथा सुगन्धयुक्त होनेपर व्यक्तियोंको राजपदकी प्राप्ति होती है। कटे-फटे कर-भागसे युक्त, शब्द करनेवाले मणिबन्धोंके रहनेसे मनुष्य धनहीन और नीच प्रकृतिके माने जाते हैं।

सवृत्त अर्थात् गोलाकार एवं गहरे करतलोंके होनेसे मनुष्योंको धनवान् कहा गया है। उन्नत करतलोंके होनेपर व्यक्ति दानी और विषम भागवाले व्यक्ति कठोर होते हैं। लाक्षारसके समान करतलोंके होनेसे प्राणी राजा होते हैं। पीतवर्णवाले करतलोंसे युक्त व्यक्ति परस्त्रीके साथ रमण करनेवाले होते हैं। जिनके हाथ और तल-प्रदेश रूखे हैं वे मनुष्य निर्धन होते हैं।

तुष (भूसी)-के समान रंगसे युक्त नखवाले लोग नपुंसक, कुटिल तथा फटे हुए नखवाले धनहीन होते हैं। विवर्ण नखवाले दूसरेके साथ तर्क करनेवाले होते हैं।

ताम्रवर्णके सदृश रक्ताभ नखवाले मनुष्य राजा होते हैं। यव-चिह्नसे युक्त अंगुष्ठवाले व्यक्ति अत्यधिक धन-वैभवसे युक्त होते हैं। अंगुष्ठके मूलभागमें यव-चिह्नके होनेसे व्यक्ति पुत्रवान् होता है। लम्बे पर्वोंसे युक्त अँगुलियोंके होनेपर दीर्घायु तथा पुत्र-पौत्रादिसे परिपूर्ण होता है किंतु विरल अँगुलियोंवाला व्यक्ति निर्धन होता है। सघन अँगुलियोंके होनेसे मनुष्य धन-सम्पन्न होता है। मणिबन्धसे निकलकर तीन रेखाएँ जिसके करतल भागको पार कर जाती हैं, वह राजा होता है।

दो मत्स्याङ्कित करतलभागवाला पुरुष यज्ञकर्ता एवं दानी होता है। वज्राकार चिह्नवाले करतल धनीजनोंके होते हैं। विद्वानोंका करतलभाग मीन-पुच्छके चिह्नसे अङ्कित होता है।

राजाके करतलमें शङ्ख, छत्र शिविका (डोली), गज और पद्माकार चिह्न रहते हैं। अतुलनीय ऐश्वर्यसम्पन्न राजाके करतलमें कुम्भ, अङ्कुश, पताका तथा मृणालके समान चिह्न रहते हैं। गोधनके स्वामीजनोंके करतलोंमें रस्सीके चिह्न होते हैं। जिसके हाथमें स्वस्तिकका चिह्न होता है, वह सम्राट् होता है। राजाके हाथमें चक्र, कृपाण, तोमर, धनुष और भालेके आकारके चिह्न होते हैं।

ओखलीके चिह्नसे युक्त व्यक्ति यज्ञादिक कर्मकाण्डोंमें निष्णात होता है। जिनके हाथोंमें वेदिकाकार रेखा होती है, वे अग्निहोत्री होते हैं। वापी, देवकुल्या तथा त्रिकोण रेखाओंके रहनेपर मनुष्य धार्मिक होता है।

अंगुष्ठ-मूलतक रेखाके होनेमें व्यक्ति पुत्रवान् होते हैं। यदि वे रेखाएँ सूक्ष्म होती हैं तो उन्हें कन्याएँ होती हैं। कनिष्ठिकाके मूलसे निकलकर तर्जनीके मूलतक रेखाका विस्तार होनेपर मनुष्य शतायु होता है, किंतु किसी स्थानपर उसके विच्छिन्न होनेपर प्राणीको वृक्षसे गिरकर मृत्युका भय बना रहता है। बहुत-सी रेखाओंके होनेसे मनुष्य दरिद्र होते हैं। चिबुक (ठुड्डी)-के कृश होनेपर भी मनुष्योंको धनहीन समझना चाहिये, किंतु जिनकी ठुड्डियाँ मांसल होती हैं, वे धन-सम्पदाओंसे परिपूर्ण होते हैं। अरुणाभ, बिम्बाफलके समान सुन्दर अधरोंसे सुशोभित मुख राजाओंका माना गया है, किंतु जिसके ओष्ठ रूखे खण्डित, फटे हुए तथा विषम होते हैं, वे निर्धन होते हैं।

स्निग्ध (चिकने) चमकते हुए, सघन एवं समान भागवाले सुन्दर तीक्ष्ण दाँतोंका होना शुभ है। रक्तवर्णकी समतल चिकनी एवं दीर्घ जिह्वा श्रेष्ठ होती है। राजाओंका मुख कठोर सम सौम्य गोल मलरहित तथा स्निग्ध होता है। दुःख भोगनेवाले लोगोंमें इन लक्षणोंके विपरीत लक्षण होते हैं। कुत्सित एवं भाग्यहीनोंको स्त्रीमुखी पुत्र प्राप्त होता है। धनी लोगोंका मुख गोलाकार तथा निर्धनोंका मुख लम्बा होता है। पापकर्मीका मुख भयाक्रान्त होता है। धूर्तोंके मुख चौकोर पुत्रहीनोंके निम्न एवं कंजूसोंके छोटे मुख होते हैं। भोगीजनोंका मुख सुन्दर आभामय मूँछोंसे युक्त, स्निग्ध शुभ तथा कोमल होता है।

चोर-वृत्तिवाले व्यक्ति निम्नतः मुरझायी हुई लालवर्णकी दाढ़ी और मूँछोंवाले होते हैं। रक्तवर्णके थोड़े तथा कड़े बालयुक्त दाढ़ीवाले और छोटे-छोटे कानोंवाले मनुष्योंको

मृत्यु पापकर्म करनेसे होती है। मासरहित, चिपटे कानावाले लोग भोगी और अत्यन्त छाटे-छोटे कानासे युक्त मनुष्य कजूस होते हैं। शङ्खाकार कानोके होनेपर मनुष्य राजा होता है तथा रोमराशिस भरे होनपर उसे क्षीण आयुकी प्राप्ति होती है। वडे कानावाल धनी अथवा राजा माने जाते हैं। स्निग्ध विस्तृत मासल तथा दीर्घ कानावाले राजा होते हैं। निम्न गण्डस्थलवाला भोगी और पूर्ण सुडौल एव सुन्दर हानेपर मनुष्य मन्त्री होता है।

सुग्गेकी नासिकाक समान सुन्दर नासिकावाला व्यक्ति सुखी और शुष्क नासिकावाला दीर्घजीवी होता है। नासिकाका अग्रभाग छिन्न तथा कूपके समान नासिकाके होनेपर मनुष्य अगम्या स्त्रीके साथ सहवास करता है। दीर्घ नासिकाके रहनेपर सौभाग्यवान् एव आकुचित अर्थात् टेढी नासिका होनेसे व्यक्ति चौरकार्यमे प्रवृत्त होता है। नासिकाके चिपटी होनेपर मनुष्यकी अकालमृत्यु होती है। भाग्यवान्की नासिका छोटी होती ह। चक्रवर्ती सम्राट्की नासिकाम छोटे-छोटे गोल और सीधे छिद्र होते हैं। दक्षिणभागकी ओर नासिकाके वक्र होनेपर मनुष्योम क्रूर-स्वभाव होता है।

वक्र उपान्तभागासे युक्त तथा पद्म-पत्रके समान सुन्दर नेत्र सुखी लोगाके होते हैं। बिल्लीके सदृश नेत्राके होनेपर मनुष्य पापात्मा तथा मधु-पिगलवर्णवाले नेत्राके होनेपर वह दुरात्मा होता है। केकडेके नेत्रोकी भाँति नेत्र हानेसे व्यक्ति क्रूर और हरितवर्णके नेत्रवाले पापकर्मम अनुरक्त होते हैं। वक्र नेत्र बलवान् पुरुपाका लक्षण है। हाथीके समान नेत्रोवाले मनुष्य सनानी होते हैं। गम्भीर नेत्रोवाला पुरुप राजा तथा स्थूल नेत्रोवाला मन्त्री होता है। नीलकमलके सदृश नेत्राके होनेपर व्यक्ति विद्वान् तथा श्यामवर्णके नत्रवाले सौभाग्यशाली होते हैं। कृष्णवर्णके तारक विन्दुओसे युक्त नेत्रावाले पुरुपोम उत्पाटन-क्षमता होती है। मण्डलाकार नेत्राके होनेपर व्यक्ति पापी तथा दैन्यभावयुक्त नेत्रवाले मनुष्य दरिद्र होते हैं। सुन्दर एव विशाल नेत्रावाले ससारम विभिन्न प्रकारके सुखोका उपभोग करते ह। जिनके नेत्र अधिक उन्नत अर्थात् ऊपरकी ओर अधिक उठे हाते हैं, वे अल्पायु होते हैं। विशाल और उन्नत नेत्राके होनेपर मनुष्य सुखी हाते हैं।

विषम भौंहावाल दरिद्र हाते हैं तथा दीर्घ, सघन एक-दूसरेसे सयुक्त, बालचन्द्रके सदृश पतले, वक्र एव उन्नत सुन्दर भौंहासे सुशाभित प्राणी धन-वैभवसे सम्पन्न हाते हैं। मध्यभागम कटी हुई भौंहोक होनेपर मनुष्य निर्धन तथा झुकी हुई भौंहाके होनेसे अगम्या स्त्रियाम रत रहनवाले और पुत्रसे रहित होते हैं।

उन्नत, विशाल, शङ्खाकार एव विषम मस्तक हानेपर पुरुपाम निर्धनता ओर अर्द्धचन्द्राकार ललाटके हानेपर वे धनसम्पन्नतास परिपूर्ण रहते हैं। सीपके समान आभावाले तथा विशाल मस्तकवाले आचार्यके पदको सुशोभित करते हैं, जिनक मस्तकापर शिराएँ स्पष्ट प्रतीत होती रहती हैं, वे पापकर्मम लगे रहत हैं। उन्नत शिराआसे युक्त स्वस्तिकाकार, सुन्दर ललाटके होनपर मनुष्य धनवान् तथा निम्न ललाटके होनेपर बन्दी बनाये जानेयोग्य हाते हैं और क्रूर कर्मोंको करते हैं। गोल ललाटवाले कृपण और उन्नत भालवाले राजा होते हैं।

लोगाका अश्रुरहित, दीनतारहित, स्निग्ध रुदन मङ्गलकारी हाता है तथा अविरल अश्रुधारवाला, दैन्यभावको प्रकट करता हुआ रूखा रुदन सुखकारी होता है।

कम्पनरहित हँसी श्रेष्ठ होती है। आँख मूँदकर हँसनेवाला व्यक्ति पापी होता है। बार-बार हँसनेवाला दुष्ट होता है और उन्मत्तकी हँसी अनेक प्रकारकी होती है।

सौ वर्षतक जीवन प्राप्त करनेवाले लोगाके मस्तकपर तीन रेखाएँ होती हैं। मस्तकपर चार रेखाओके होनेपर मनुष्य राजा होता है और उसकी आयु पचानबे वर्षतक हाती है। रेखारहित ललाटवाला व्यक्ति नब्बे वर्ष जीवित रहता है। विच्छिन्न रेखाआसे व्याप्त मस्तकवाले पुरुष लम्पट होते हैं। मस्तकपर केशपर्यन्त रेखाआके हानेसे मनुष्यकी आयु अस्सी वर्षकी होती है। पाँच, छ अथवा सात रेखाआके होनेसे प्राणीकी आयु पचास वर्ष तथा सातसे अधिक रेखाआके होनेपर चालीस वर्षकी आयु माननी चाहिये। मस्तकपर रेखाआकी वक्रता एव भौंहपर्यन्त स्थिति होनेसे पुरुष तीस वर्ष तथा बाँयी ओर वक्र होनपर बीस वर्षकी अल्पायुको प्राप्त करत हैं। रेखाआके क्षुद्र होनेपर मनुष्य अल्पायु होता हे।

छत्राकार सिरवाल मनुष्य राजा और निम्न सिरवाले धनी होते हैं। चिपट सिरसे युक्त पुरुपाके पिताकी मृत्यु शीघ्र हाती

है। मण्डलाकार सिर होनेपर व्यक्ति गौ आदि प्राणियोसे सम्पन्न होत हैं। घटाकार मूर्द्धाभागके होनेपर मनुष्य पापमे अभिरुचि रखनेवाला तथा धनहीन हाता है।

काले-काले घुँघराले, स्निग्ध, एक छिद्रमे एक-एक उत्पन्न, अभिन्न अग्रभागवाले, अत्यधिक, न छोटे न बडे, सुन्दर केशोवाले राजा होते हैं। एक छिद्रमे अनेक बालवाले, विषम, स्थूलाग्र तथा कपिलवर्णके केशोसे युक्त पुरुष निर्धन हात हैं। अत्यन्त कुटिल, सघन एव काले बालवाले भी निर्धन होते हैं।

मनुष्यके जो अङ्ग अतिशय रूक्ष, शिराओसे व्याप्त तथा मासरहित होते हैं, व सभी अशुभ हैं। यदि वे अङ्ग इसके विपरीत होते हैं तो उन्हे शुभ मानना चाहिये।

मानव-शरीरमे तीन अङ्ग विशाल और तीन अङ्ग गम्भीर, पाँच अङ्ग दीर्घ तथा सूक्ष्म, छ अङ्ग उन्नत, चार ह्रस्व एव सात अङ्ग रक्तवर्णके होनेपर वह राजा हाता है।

नाभि, स्वर तथा सत्त्व (स्वभाव)[१]—ये तीन गम्भीर होने चाहिये। ललाट, मुख तथा वक्ष स्थल विशाल, नेत्र, कक्षा (काँख), नासिका तथा कृकाटिका अर्थात् गरदनका उठा हुआ भाग, सिर और गरदनका जोड—इन छ को उन्नत होना चाहिये, ऐसा होनेपर मनुष्य राजा होता है। जघा, ग्रीवा, लिङ्ग तथा पृष्ठभाग—ये चार अङ्ग ह्रस्व होने चाहिये। करतल तालु, अधर और नख—ये चार रक्ताभ हाने चाहिये। नेत्रान्तभाग चरणतल जिह्वा और दोनो ओष्ठ—ये पाँच सूक्ष्म होन चाहिये। दाँत, अँगुली, पर्व, नख, कश और त्वचा—ये पाँच अङ्ग दीर्घ होनेपर शुभकारी हैं। दोनो स्तनोका मध्यभाग, दोनो भुजाएँ, दाँत, नेत्र और नासिकाका भी दीर्घ होना शुभ है।

इस प्रकार मनुष्याका लक्षण कहकर अब स्त्रियाका लक्षण कह रहा हूँ।

रानीके दोनों चरण स्निग्ध समान पदतलवाले ताम्रवर्णकी आभासे सुशोभित नखोसे युक्त, सघन अँगुलियोवाले तथा उन्नत अग्रभागवाले होते हैं। ऐसी स्त्रीको प्राप्तकर मनुष्य राजा बन जाता है।

गूढ गुल्फ-प्रदेशसे युक्त पद्मपत्रके समान चरणतल शुभ होते हैं। जिसके चरणतलाम पसीना नहीं छूटता है और वे कोमल होते हैं, उनमे मत्स्य, अकुश, ध्वज, वज्र, पद्म तथा हलका चिह्न हो तो वह रानी होती है। इन लक्षणोसे रहित चरणवाली स्त्री दासी होती है। स्त्रियोकी रोमरहित, सुन्दर, शिराविहीन, गोल-गोल जघाएँ शुभ हैं। सन्धिस्थान तथा दोना जानु समान होने चाहिये, ऐसा शुभ होता है। गजशुण्डके सदृश, रोमरहित तथा समान भागवाले दोनो ऊरु श्रेष्ठ माने जाते हैं।

विस्तीर्ण, मासल, गम्भीर, विशाल तथा दक्षिणावर्त नाभि तथा मध्यभागम त्रिवलियाँ श्रेष्ठ होती हैं। स्त्रियोके रोमरहित, विशाल, भरे हुए, सघन एव समान भागवाले कठार स्तन-प्रदेश शुभ हैं। रोमरहित, शङ्खके आकारवाली सुन्दर ग्रीवा प्रशस्त होती है। अरुणाभ अधरोष्ठवाला तथा वर्तुलाकार मासल भरा हुआ मुख श्रेष्ठ हाता है। कुन्द-पुष्पके समान दन्तपक्ति तथा कोयलकी भाँति वाणी शुभ होती है, जो सदैव दाक्षिण्य भावसे परिपूण रहती है, उसमें शठता नहीं होती, अपितु हसोके समान मधुर शब्दाका प्रयोग करके वह दूसरोको सुख प्रदान करती है, वही स्त्री श्रेष्ठ होती है। स्त्रियाकी नासिका और नासिका-छिद्र समान होना मनोहर और मङ्गलदायी होता है।

स्त्रियोके नीलकमलके समान नेत्र अच्छे होते हैं। बालचन्द्रके सदृश भौंहाका होना शुभ है, किंतु उनका मोटा होना अच्छा नहीं है। उनका मस्तक अर्द्धचन्द्रके समान सुन्दर, समतल तथा रोमविहीन होना शुभ है।

सुन्दर, समान, मासल एव कोमल कान श्रेष्ठ होते हैं। स्त्रियोके चिकने नीलवर्णवाले मृदु और घुँघराले केश प्रशस्त माने गये हैं। उनका सम आकारवाला सिर शुभ होता है। चरणतल अथवा करतलमे अश्व हस्ति, श्री वृक्ष, यूप, बाण यव तोमर, ध्वज, चामर माला पर्वत कुण्डल वेदी शङ्ख छत्र पद्म स्वस्तिक, रथ तथा अङ्कुश आदि चिह्नवाली स्त्रियाँ राजवल्लभा होती हैं।

स्त्रियोके मासल मणिबन्धवाले तथा कमलदलके समान

१-किरातार्जुनीय १२। ३१ के अनुसार सत्त्व का अर्थ स्वभाव भी होता है।

हाथोंको शुभ माना जाता है। स्त्रियोंके करतलोका न तो अधिक निम्न और न अधिक उन्नत होना अच्छा होता है। शुभ रेखाओसे व्याप्त करतलवाली स्त्रियाँ आजीवन सधवा रहकर विभिन्न प्रकारके सुखोंका उपभोग करती हैं। हाथमे जो रेखा मणिबन्धसे निकलकर मध्यमा अँगुलीतक जाती है, वह ऊर्ध्वरेखा कही जाती है। ऐसी रेखा यदि स्त्री या पुरुषके करतल अथवा चरणतलमें अवस्थित रहती है तो वे स्त्री या पुरुष राज्य अथवा अन्य प्रकारके सुखोंका उपभोग करते हैं।

कनिष्ठिका अँगुलीके मूलसे निकलकर तर्जनी और मध्यमा अँगुलियोके मध्यभागतक रेखाके पहुँचनेपर स्त्री या पुरुषकी आयु सौ वर्षकी होती है। यदि इन अँगुलियोके बीचतक आनेवाली रेखाका परिमाण उसकी अपेक्षा कम हो तो उसी अनुपातमे मनुष्यकी आयु भी कम होती है।

अङ्गुष्ठमूलक रेखाओके रहनेपर स्त्री या पुरुष बहुत-से पुत्रो या कन्याओंवाले होते हैं। स्थान-स्थानपर आयुरेखाके छिन्न-भिन्न होनेसे मनुष्यकी आयु अल्प हो जाती है। यदि वह रेखा दीर्घ एव अविच्छिन्न हो तो उस पुरुष अथवा स्त्रीको दीर्घायु माना जाता है। स्त्रियोके विषयमें कहे गये ये सभी लक्षण शुभ हैं। इनके विपरीत लक्षणोके होनेपर उन्हे अशुभ मानना चाहिये। (अध्याय ६५)

चक्राङ्कित शालग्रामशिलाओके विविध नाम, तीर्थमाहात्म्य तथा साठ संवत्सरोके नाम

श्रीहरिने कहा—हे शिव! चक्राङ्कित शालग्राम-शिलाकी पूजा सब प्रकारके कल्याण-मङ्गल प्रदान करती है।

प्रथम शालग्राम-शिलाका नाम सुदर्शन है। (इसमे एक चक्रका चिह्न अङ्कित होता है।) दूसरी शिलाका नाम लक्ष्मीनारायण है। (इसमें दो चक्रोंके चिह्न होते हैं।) तीन चक्रोंवाली शिलाको अच्युत तथा चार चक्रोंवाली शिलाको चतुर्भुज कहा जाता है। इस प्रकार चक्रसमन्वित अन्य शालग्राम-शिलाओंको क्रमश—वासुदेव, प्रद्युम्न, सकर्षण तथा पुरुषोत्तमके नामसे अभिहित किया गया है। नौ चक्रोवाली शिलाको नवव्यूह और दस चक्रोवाली शिलाको दशात्मक कहते हैं। एकादश चक्रोसे युक्त शिलाको अनिरुद्ध एव द्वादश चक्रोसे समन्वित शिलाका नाम द्वादशात्मक है। उसके ऊपर चक्रोकी चाहे जितनी सख्या हो, उनसे लक्षित शिलामूर्तिका नाम भगवान् अनन्त कहा गया है। जो शिलामूर्ति सबसे सुन्दर हो, उसका पूजन करना चाहिये, ऐसी सुदर्शन मूर्तियाँ पूजित होनेपर सभी कामनाओको पूर्ण करती हैं।

जहाँ शालग्राम और द्वारका-शिला रहती हैं और इन दोनो शिलाओका जहाँ सगम है, वहाँ मुक्ति रहती है, इसमे संशय नहीं है—

'शालग्रामशिला यत्र देवो द्वारवतीभव ।
उभयो सगमो यत्र तत्र मुक्तिर्न सशय ॥'
(६६। ५)

हे शकर! शालग्राम, द्वारका, नैमिष, पुष्कर, गया, वाराणसी, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, सूकरक्षेत्र, गङ्गा, नर्मदा, चन्द्रभागा, सरस्वती, पुरुषोत्तमक्षेत्र तथा महाकालका अधिष्ठान उज्जयिनी—ये सभी तीर्थ सब प्रकारके पापोका विनाश करनेवाले एव भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं।[1]

प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, विषु, चित्रभानु, स्वभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकार, शर्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत्, परिधावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, नल, पिगल, काल, सिद्धार्थ, रौद्रि, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन एव अक्षय—ये साठ सवत्सर अपने नामके अनुसार शुभ और अशुभ फल प्रदान करनेवाले हैं। (अध्याय ६६)

---

१ शालग्रामो द्वारका च नैमिष पुष्कर गया। वाराणसी प्रयागश्च कुरुक्षेत्र च सूकरम्॥
गङ्गा च नर्मदा चैव चन्द्रभागा सरस्वती। पुरुषोत्तमो महाकालस्तीर्थान्येतानि शङ्कर॥
सर्वपापहराण्येव भुक्तिमुक्तिप्रदानि वै। (६६। ६—८)

स्वरोदय-विज्ञान

स्वरके उदयसे कार्योंके शुभ और अशुभका ज्ञान होता है। शरीरमे बहुत प्रकारकी नाडियाका विस्तार है। नाभि-प्रदेशके नीचे जो कन्दस्थान अर्थात् मूलाधार है, वहींसे उन नाडियोंका अङ्कुरण होकर सम्पूर्ण शरीरमे विस्तार होता है। बहत्तर हजार नाडियाँ नाभिके मध्यमे चक्राकार अवस्थित रहती हैं। उन नाडियोमे वामा, दक्षिणा और मध्यमा नामक तीन श्रेष्ठ नाडियाँ हैं। (उन्हींका क्रमश — इडा, पिंगला और सुषुम्णा कहा जाता है।) इनमे वामा सोमात्मिका, दक्षिणा सूर्यके समान तथा मध्यमा नाडी अग्निके समान फलदायिनी एव कालरूपिणी हैं।

वामा नाडी अमृतरूपा है, वह जगत्को आप्यायित करती रहती है। दक्षिणा नाडी अपने रौद्रगुणसे सदैव जगत्का शोषण करती रहती है। जब शरीरमे इन दोनोका एक साथ प्रवाह होता है, उस समय समस्त कार्योंका विनाश करनेवाली मृत्यु आ पहुँचती है।

यात्रादिके लिये प्रस्थानकालमें वामा तथा प्रवेशके अवसरपर दक्षिणा नाडीप्रवाहको शुभ माना गया है। इडा अर्थात् वामाके श्वास-प्रवाह-कालमे ऐसा सौम्य शुभकारी कार्य करना चाहिये, जो चन्द्रके समान जगत्के लिये भी शुभकारी हो तथा पिंगला अर्थात् दक्षिणा नाडीमे प्राणवायुके प्रवाहित होनेके समय सूर्यके समान तेजस्वी क्रूर कार्य करना चाहिये। यात्रामे, सभी कार्योंमे तथा विषको दूर करनेमें इडा नाडीका चलना अच्छा होता है। भोजन, मैथुन, युद्धारम्भमें, पिंगला नाडी सिद्धिदायक होती है। उच्चाटनादि अभिचार कर्मोंमे भी पिंगला नाडीका चलना उत्तम होता है।

मैथुन, सग्राम और भोजन करते समय राजाओंको पिंगला नाडीके श्वास-प्रवाहपर ध्यान रखना चाहिये। शुभ कार्योंके सम्पादनमे, यात्रामे, विषापनोदनमे तथा शान्ति एव मुक्तिकी सिद्धिमे राजाओंको इडा नाडीकी गतिपर विचार करना चाहिये।

पिंगला एव इडा नामक दोनो नाडियाँ चल रही हों तो क्रूर तथा सौम्य दोनो प्रकारका कार्य न करे। विद्वान्को यह समय विषके समान मानना चाहिये।

सौम्यादि शुभ कार्योमे लाभादिके कर्मोंमे, विजयके लिये, जीवनके लिये तथा गमनागमनके लिये वामा नाडी सर्वत्र प्रशस्त मानी जाती है। घात-प्रतिघात, युद्धादिके क्रूर कार्य, भोजन और स्त्री-सहवासमें दक्षिणा नाडी प्रशस्त होती है। प्रवेश तथा क्षुद्र-कार्योंमे भी दक्षिणा नाडी श्रेष्ठ होती है।

शुभ-अशुभ, लाभ-हानि, जय-पराजय तथा जीवन और मृत्युके विषयमे प्रश्न करनेपर यदि प्रश्नकर्ताकी उस समय मध्यमा नाडी चल रही हो तो सिद्धि प्राप्त नहीं होती और यदि वामा तथा दक्षिणा नाडीके चलते समय प्रश्न हो तो निश्चित ही सिद्धि प्राप्त होती है, इसमे सशय नहीं है।

इसी प्रकार प्रश्नकर्ताके स्वरमे उदय तथा प्रश्नकर्ताकी अवस्थिति आदिपर विचार करनेसे भी कार्यकी सिद्धि-असिद्धिका निर्णय तथा शुभ-अशुभ-कालका ज्ञान किया जाता है। इसके लिये स्वरोदय-विज्ञानकी जानकारी अपेक्षित होती है[१]। (अध्याय ६७)

रत्नोके प्रादुर्भावका आख्यान तथा वज्र (हीरे)-की परीक्षा

सूतजीने कहा—अब मैं रत्नपरीक्षाका वर्णन करता हूँ। प्राचीनकालमे बल नामक एक असुर था। उसने इन्द्रादि सभी देवोको पराजित कर दिया था। उसको जीतनेमे देवगण समर्थ नहीं थे। अत असमर्थ देवोने एक यज्ञ करनेका विचार किया और उस असुरके सन्निकट पहुँचकर उससे यज्ञपशु बननेकी अभ्यर्थना की। वचनबद्ध बलासुरने अपना शरीर उन देवोको दानमें दे दिया। अत अपने वाग्वज्रसे वह पशुवत् मारा गया।

वचनपर अडिग पशु-शरीरवाले उस असुरने ससारके कल्याणार्थ एव देवताओंकी हितकामनाके कारण यज्ञमें शरीरका परित्याग किया था उस विशुद्ध कर्मका करनेसे उसका शरीर भी विशुद्ध सत्वगुण सम्पन्न हो उठा था।

१-यहाँ स्वरोदय-विज्ञानका दिग्दर्शनमात्र किया गया है। विस्तृत जानकारी प्रमाण एवं तथ्यतथ्यके स्पष्टीकरणके लिये तद्विषयक ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये।

अत उसके शरीरके सभी अङ्ग रत्नोंके बीजके रूपमे परिणत हो गये।

इस प्रकार रत्नोकी उत्पत्ति होनेपर देवता, यक्ष, सिद्ध तथा नागोका उस समय बहुत बडा उपकार हुआ। जब वे सभी विमानके द्वारा उसके शरीरको आकाशमार्गसे ले जाने लगे तो यात्रावेगके कारण उसका शरीर स्वत खण्ड-खण्ड होकर पृथिवीपर इधर-उधर गिरने लगा।

बलासुरके शरीरके अङ्ग खण्ड-खण्ड होकर समुद्र, नदी, पर्वत, वन अथवा जहाँ-कहीं रचमात्र भी गिरे, वहाँ रत्नोकी खान बन गयी और उन स्थानोकी प्रसिद्धि उन्हीं रत्नोके नामपर हो गयी। पृथिवीकी उन खानोमे विविध प्रकारके रत्न उत्पन्न होने लगे, जो राक्षस, विष, सर्प, व्याधि तथा विविध प्रकारके पापोको नष्ट करनेम समर्थ थे।

रत्नोके विविध प्रकारोको वज्र (हीरा), मुक्तामणि, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, पुलक, रुधिर, स्फटिक तथा प्रवालादि कहा गया है। पारदर्शी विद्वज्जनाने उनका यह नामकरण तथा सग्रह यथायोग्य गुणोको दृष्टिमे रखकर किया है।

अत रत्नपारखी विद्वानोको सर्वप्रथम रत्नोके आकार, वर्ण, गुण, दोष, फल, परीक्षा तथा मूल्य आदिका ज्ञान तत्सम्बन्धित सभी शास्त्रोके द्वारा विधिवत् प्राप्त करना चाहिये क्योकि कुत्सित लग्न या अनेक कुयोगोसे बाधित अशुभ दिनामे जिन रत्नाकी उत्पत्ति होती है, वे सभी दोषपूर्ण होकर अपनी गुण-क्षमताको नष्ट करते हैं।

ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले राजाको चाहिये कि वह परीक्षासे किये गये अत्यन्त शुद्ध रत्नाको धारण करे अथवा उनका सग्रह करे।

जो रत्नशास्त्रोके ज्ञाता, कुशल, रत्नसग्रही तथा परीक्षण-कार्यमे दक्ष होते हैं, उन्हींको रत्नोके मूल्य और मात्राको जाननेवाले कहा गया है। वज्र (हीरा)-को महाप्रभावशाली कहा गया है, इसलिये सर्वप्रथम उसीकी परीक्षाको बतायेगे।

वज्रायुध इन्द्रपर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले उस बल नामक असुरके अस्थिभाग पृथिवीके जिन-जिन स्थानोंमे गिरे, वे हीरे बनकर उन स्थानोम नाना प्रकारकी आकृतिवाले हो गये।

हिमाञ्चल, मातग, सोराष्ट्र, पौण्ड्र, कलिग, कोसल, वेण्वातट तथा सौवीर नामक आठ भूभाग हीरोके क्षेत्र हैं। हिमालयसे उत्पन्न हीरे ताम्रवर्ण, वेणुकाके तटसे प्राप्त चन्द्रमाके समान श्वेत, सौवीर देशवाले नीलकमल तथा कृष्णमेघके समान, सौराष्ट्रप्रान्तीय ताम्रवर्ण एव कलिगदेशीय सोनेके समान आभावाले होते हैं। इसी प्रकार कोसल देशके हीरोका वर्ण पीत, पुण्ड्रदेशीय श्याम तथा मतग-क्षेत्रवाले हलके पीतवर्णके होते हैं।

यदि इस ससारमे कहींपर भी अत्यन्त क्षुद्र वर्ण, पार्श्वभागोम भली प्रकारसे परिलक्षित होनेवाली रेखा, बिन्दु कालिमा, काकपदक[1] और त्रास[2] दोषसे रहित, परमाणुकी भाँति अत्यन्त लघु तथा तीक्ष्ण धारसे युक्त जो भी वज्र अर्थात् हीरा दिखायी देता है, उसमे निश्चित ही देवताका वास समझना चाहिये।

रगके अनुसार हीरकोमे देवताओके विग्रहोका निश्चय किया गया है। वर्णको ध्यानमे रखकर ही हीरोका विभाजन करना चाहिये। हरित, श्वेत, पीत, पिगल, श्याम तथा ताम्रवर्णके हीरे स्वभावत सुन्दर होते हैं। उन हीरोमें क्रमानुसार विष्णु, वरुण, इन्द्र, अग्नि यम और मरुत्-देव प्रतिष्ठित रहते हैं।

ब्राह्मणके लिये शङ्ख, कुमुद अथवा स्फटिकके समान शुभ्रवर्णका हीरा प्रशस्त होता है। क्षत्रियके लिये शश (चन्द्रलाञ्छनके समान वर्णवाला), बभ्रु (पिगल—भूरे वर्णके धातु विशेषके समान वर्णवाला), विलोचन[3] (आँखकी ताराके समान वर्णवाला), वैश्यवर्णके निमित्त कान्त (कुकुम) अथवा कदलीदलके समान आभावाला तथा शूद्रवर्णके लिये धौत (चाँदी)-के समान अथवा तलवारके सदृश हीरा प्रशस्त है।

विद्वानाने राजाओके योग्य दो प्रकारके हीरोको उत्तम माना है, जो अन्य लोगाके लिये प्रशस्त नहीं होते हैं। जो हीरा जवावर्ण तथा प्रवालके समान रक्तवर्ण अथवा हल्दी-रसके सदृश पीतवर्णका होता है, वह राजाआके लिये

१-काकके पदके समान आभारविशेषसे युक्त।

२-त्रास—मणिके दोषविशेषको त्रास कहते हैं।

३-विलोचन (आँख) प्रसगके अनुसार आँखकी तारा।

लाभप्रद है। सभी वर्णोंका स्वामी होनेके कारण अथवा समस्त वर्णोंके गुणोको अपनेमे समाविष्ट करनेके उद्देश्यसे राजाओंको सभीके कल्याणकी इच्छासे उक्त दो प्रकारके हीरोंको धारण करना चाहिये। ऐसे हीरोको धारण करनेका अधिकार अन्यके लिये किसी भी प्रकारसे नहीं है।

जिस प्रकार लोकमे निम्न और उच्च वर्णका वर्णसाकर्य दोषावह एव दु खदायी होता है, रत्नोका वर्णसाकर्य उससे भी अधिक दु खदायी होता है।

केवल वर्णमात्रको देखकर ही विद्वानोको रत्नका सचय नहीं करना चाहिये, क्योकि जो गुणवान् रत्न होता है, वही गुण और सम्पत्तिकी विभूति होता है, इसके विपरीत गुणहीन रत्न कष्टका हेतु होता है। जिस हीरेका एक भी शृग टूटा हुआ अथवा छिन्न-भिन्न दिखायी दे तो गुणवान् होनेपर भी धनार्थी जनोको उसे अपने घरमे नहीं रखना चाहिये।

अग्निके समान स्फुटित, विशीर्ण शृगभागसे युक्त, मलिन वर्णवाले तथा मध्यमे विन्दुओसे चिह्नित हीरकको धारण करनेपर इन्द्र भी श्रीहीन हो जाते हैं। ऐसे हीरेके सग्रह करनेकी लालसा नहीं करनी चाहिये। जिस हीरेका *एक भाग अस्त्र-शस्त्रादिसे विदीर्ण क्षत-विक्षत शरीरकी* आभाको प्राप्त हो तथा वह रक्तवर्णसे चित्रित हो तो वैसा हीरा इच्छा-मृत्युसे सम्पन्न शक्तिशाली व्यक्तिकी भी शीघ्र मृत्युको रोक नहीं सकता है। ऐसे हीरेको धारण नहीं करना चाहिये।

षट्कोण, अष्टकोण, द्वादशकोण, षट्पार्श्व, अष्टपार्श्व, द्वादशपार्श्व षड्धारा, अष्टधारा, द्वादशधारा, उत्तुग, सम एव तीक्ष्णाग्र भाग हीरेके खानिक अर्थात् प्रकृतिगत गुण हैं।

जो हीरा षट्कोण, विशुद्ध निर्मल, तीक्ष्ण धारवाला लघु, सुन्दर पार्श्वभागसे युक्त और निर्दोष है तथा इन्द्रायुध वज्रके समान स्फुरित अपनी प्रभाको विकीर्ण करनेमें समर्थ हो तो अन्तरिक्ष भागमे स्थित वह हीरा इस पृथिवीलोकमें सुलभ नहीं है।

जो मनुष्य तीक्ष्णाग्र, निर्मल तथा दोषशून्य हीरेको धारण करता है वह जीवनपर्यन्त प्रतिदिन स्त्री सम्पत्ति, पुत्र धन-धान्य और गवादिक पशुओंकी श्रीवृद्धिको प्राप्त करता है। सर्प विष व्याधि अग्नि जल तथा तस्करादिक भय एवं अभिचार-मन्त्रोके उच्चाटनादिक प्रयोग उसके सन्निकट आनेके पूर्व दूरसे ही प्रत्यागमित हो जाते हैं।

यदि हीरा सभी दोषोसे रहित तथा भारमे बीस तण्डुलके बराबर हो तो मणिशास्त्रके पण्डितोने उसका मूल्य अन्य हीरेकी अपेक्षा द्विगुण अधिक कहा है। पूर्वोक्त परिमाणमे तीन भाग, अर्द्धभाग, चतुर्थांश, त्रयोदशाश और *तीसवाँ अश, साठवाँ अश, अस्सीवाँ अश, शताश तथा* सहस्राश भाग न्यूनाधिक होनेपर मूल्यका निर्धारण भी उसके समान ही न्यूनाधिक होता है।

आठ गौर सरसोके दानोके भारके बराबर एक तण्डुलका भार होता है।

जो हीरा सभी गुणोंसे सम्पन्न होता है और जलमे डालनेपर तैरता है, वह सभी रत्नोमे सर्वश्रेष्ठ होता है। उसीको धारण करना उचित है।

जिस हीरेमे अल्पमात्र भी *स्पष्ट अथवा अस्पष्ट दोष* होता है तो स्वाभाविक मूल्यकी अपेक्षा उस हीरेको मनुष्य दशाश कम मूल्यमे ही प्राप्त कर लेता है। जिस हीरेमें छोटे अथवा बडे अनेक दोष प्रकट रहते हैं, उस हीरेका मूल्य स्वाभाविक मूल्यकी अपेक्षा शताश ही माना गया है।

अलकारके रूपमे प्रयुक्त हीरेमें यदि किसी भी प्रकारका दोष परिलक्षित होता है तो अपेक्षाकृत उसका मूल्य बहुत ही कम हो जाता है। यदा-कदा जो हीरा सबसे पहले गुण-सम्पत्तियोसे परिपुष्ट माना जाता है, वही बादमें दोषयुक्त हो जाता है। राजाको ऐसे दोषपूर्ण हीरेसे बने आभूषणको धारण नहीं करना चाहिये। गुणहीन होनेपर तो मणि भी आभूषणके योग्य नहीं होती है।

पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषा रखनेवाली स्त्रीके लिये सर्वगुण-सम्पन्न होनेपर भी हीरा प्रशस्त नहीं होता है। *दीर्घ, चिपटा, ह्रस्व तथा अन्यान्य गुणोंसे रहित हीरेके विषयमें कुछ कहना ही नहीं, वह तो दोषपूर्ण होता ही है।*

हीरेके कुशल विशेषज्ञ लौह, पुष्पराग, गोमेद, वैदूर्य स्फटिक एव विविध प्रकारके काँचोंसे हीरकके प्रतिरूपोंका निर्माण कर लेते हैं। अत विद्वानोको कुशल परीक्षकोसे उनकी परीक्षा करवा लेनी चाहिये।

क्षार-द्रव्यके द्वारा उल्लेखन-विधिसे एव शाण-प्रयोगसे हीरोंका परीक्षण करना चाहिये। पृथिवीमें जितने भी रत्न हैं

अथवा लौहादिक जितनी अन्य धातुएँ हैं, हीरा उन सबमे चिह्नाङ्कन कर सकता है, किंतु अन्य कोई भी रत्न या धातु हीरेमे चिह्न करनेमे समर्थ नहीं है।

गुरुता समस्त रत्नोके महत्त्वका कारण है, फिर भी रत्नशास्त्रज्ञ हीरेके विषयमे इस निर्देशके विपरीत ही कहते हैं।

पुष्परागादि जातिविशेषके रत्न दूसरी जातिके रत्नको काट सकते हैं, किंतु हीरक एव कुरुवृन्द[1] अपनी ही जातिके रत्नको काटनेमे सक्षम होते हैं। हीरेसे हीरा ही कट सकता है, अन्य रत्नोसे वह हीरा काटा नहीं जा सकता है।

स्वाभाविक हीरेके अतिरिक्त हीरक तथा मुक्तादि जितने प्रकारके रत्न हैं, उनमे किसी भी रत्नकी प्रभा ऊर्ध्वगामिनी नहीं होती है। मात्र हीरा ही ऐसा रत्न है, जिसकी प्रभा ऊपरकी ओर जाती है।

यदि हीरा टूटे हुए किनारोसे दोषयुक्त हो या विन्दु तथा रेखासे समन्वित हो अथवा विशेष वर्णसे रहित हो तो भी इन्द्रायुध-चिह्नसे अङ्कित होनेपर वह मनुष्यको धन-धान्य एव पुत्रादिसे परिपूर्ण करता है।

जो राजा विद्युत्-तुल्य, समुज्ज्वल एव चमकते हुए शोभा-सम्पन्न हीरेको धारण करता है, वह अपने पराक्रमसे दूसरेके प्रतापको आक्रान्त करनेमे समर्थ होता है तथा अपने समस्त सामन्तोको वशमे रखकर वह पृथिवीका उपभोग करता है। (अध्याय ६८)

मुक्ताके विविध भेद, लक्षण और परीक्षण-विधि

सूतजीने कहा—श्रेष्ठ हाथी, जीमूत (मेघ), वराह, शङ्ख, मत्स्य, सर्प, शुक्ति तथा बाँसमे उत्पन्न मुक्ताफलोकी ससारमे प्रसिद्धि है, किंतु इनमे शुक्ति (सीप)-मे प्रादुर्भूत मुक्ताएँ ही अधिक उपलब्ध हैं।

मुक्ताशास्त्री कहते हैं कि इन मुक्ताओमे मात्र एक ही ऐसी मुक्ता होती है, जिसको रत्नपदपर अधिष्ठित किया जा सकता है। वह शुक्तिसे उत्पन्न होनेवाली मुक्ता है। यह सूचिकादि यन्त्रोसे वेध्य होती है शेष मुक्ताएँ अवेध्य हैं।

प्राय बाँस, हाथी, मत्स्य शङ्ख एव वराहसे उत्पन्न मुक्ताएँ प्रभाविहीन होती हैं, फिर भी माङ्गलिक होनेसे वे प्रशस्त मानी जाती हैं।

रत्ननिर्णायक विद्वानोने मुक्ताओके जिन आठ प्रकारोका वर्णन किया है, उनमे शङ्खसे उत्पन्न और हाथीसे प्राप्त होनेवाली मुक्ताको अधम कहा है।

शङ्खसे उत्पन्न मुक्ता, अपने मूल कारणके मध्यभागमे अवस्थित वर्णके समान वर्णवाली तथा परिमाणमे बृहल्लोल फलके सदृश होती है। जो मुक्ता हाथीके कुम्भस्थलसे निकलती है, वह पीतवर्णवाली एव प्रभाविहीन होती है। जो शङ्खोद्भव मुक्ताएँ हैं, वे शार्ङ्गधनुषके तुल्य वर्णको प्राप्त पीतशङ्खोके श्रेष्ठ गोत्रमे ही उत्पन्न होती हैं। जो गजमुक्ताएँ हैं, उनका भी जन्म विशुद्ध वशवाले मदमत्त गजराजोमे होता है, उन्हे मौक्तिकप्रभव अर्थात् गजमुक्ता नामसे अभिहित किया गया है। इनसे प्राप्त मुक्ता पूर्णतया पीतवर्णसे युक्त एव प्रभाविहीन होती है।

मत्स्यसे उत्पन्न मुक्ता पाठीन मत्स्यके पीठके समान वर्णवाली, अत्यन्त सुन्दर, वृत्ताकार, लघु एव अत्यधिक सूक्ष्म होती है। यह जलचर प्राणियोके मुखोमे प्राप्त होती है, उनमे भी जो मत्स्य अथाह समुद्रकी जलराशिमे विचरण करते हैं, वे इसके जनक होते हैं।

वराहके दाँतसे उत्पन्न मुक्ता उसके ही दन्ताङ्कुरोके सदृश वर्णवाली होती है, किंतु ऐसी मुक्ता प्रदान करनेवाले विशिष्ट वराहराज कहीं किसी विशेष भूप्रदेशमे ही पाये जाते हैं।

बाँसके पर्वोसे उत्पन्न मुक्ताएँ वर्षोपल (ओले)-के समान समुज्ज्वल वर्णकी सुन्दर शोभासे सुशोभित रहती हैं। ऐसी मुक्ताओके जनक बाँसोके वश दिव्यजनोके लिये उपभोग्य विशेष स्थानमे अङ्कुरित होते हैं। वे सार्वजनिक स्थानोमे नहीं पाये जाते।

सर्पमुक्ता मत्स्यमुक्ताके सदृश विशुद्ध तथा वृत्ताकार होती है। स्थान-विशेषके कारण उसकी अत्यन्त उज्ज्वल शोभा होती है। इसकी कान्ति शाणपर चढायी गयी तलवारकी धारके समान अत्यन्त स्वच्छ होती है। सर्पोके

१-कुरुविन्द—माणिक्य अथवा कुरुबिल्व नामका रत्नविशेष।

सिरसे प्राप्त होनवाली इस मुक्ताको अर्जित करनेवाले मनुष्य अतिशय प्रभासम्पन्न, राज्यलक्ष्मीसे युक्त तथा दु साध्य महान् ऐश्वर्यसम्पन्न, तेजस्वी एव पुण्यवान् होते हैं।

रत्नाके गुण एव अवगुणाको जाननेकी इच्छासे यदि रत्न-विधियोमे पूर्ण अधिकार रखनेवाले विद्वानोके द्वारा शुभ मुहूर्तम प्रयत्नपूर्वक समस्त रक्षा-विधिसे सम्पन्न भवनके ऊपर उस मुक्ताको स्थापित करा दिया जाय तो उस समय आकाशम देव-दुन्दुभियोकी ध्वनि परिव्याप्त हो उठती है। इन्द्रधनुपकी टकार, विद्युल्लताओके सघर्पण एव सघन पयोधरोकी पारस्परिक टकराहटसे अन्तरिक्ष आच्छादित हो उठता है।

जिसके कोशागारम यह सर्पमुक्ता रहती है, उसकी मृत्यु सर्प, राक्षस, व्याधि या अन्य आभिचारिक दोपके कारण नहीं होती।

मेघसे उत्पन्न होनेवाली मुक्ता पृथ्वीतक आ ही नहीं पाती। दवगण आकाशमे ही उसका हरण कर लेते हैं। उस मेघमुक्ताके तेजकी दिव्य कान्तिसे अनावृत समस्त दिशाएँ आलोकित हो उठती हैं। सूर्यके समान देदीप्यमान उसका परिमण्डल देखनेमे कष्टसाध्य होता है। अग्नि, चन्द्र, नक्षत्र तथा ताराओके तेजको तिरस्कृत करके जैसे सूर्यके कारण दिन प्रतिभासित होता है, उसी प्रकार गहन अन्धकारसे भरी हुई रात्रियाम भी उस मेघमुक्ताका तेज दिनकी प्रभाके समान ही प्रभाको विकोर्ण करता है। विचित्र रत्नकान्तिको प्राप्त सुन्दर आभूपणका प्रशस्त बनानके लिये जलराशिवाले चारा समुद्रासे इस मुक्ताका जन्म हुआ है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि इसका कोई मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह जिसके पास रहती है वह राजा होता है। उसके राज्यकी सम्पूर्ण भूमि सोनसे परिपूर्ण होती है। कदाचित् शुभ तथा महान् कर्मविपाकसे यदि काई दरिद्र भी इस मेघमुक्ताको प्राप्त कर लेता है ता उस व्यक्तिके पास जबतक यह रहती है तबतक वह शत्रुआस रहित सम्पूर्ण पृथिवीका उपभाग करता है।

यह मेघमणि मात्र राजाके लिये हा शुभप्रद है एसा नहीं है अपितु प्रजाओंके भाग्यसे भी इसका जन्म हाता है। यह अनन्त स्वर्ग और सागर पातालपर्यन्त क्षेत्रमें अनर्थोको आने नहीं देती।

दैत्यराज बलासुरके मुखसे विशीर्ण हुई दन्तपक्ति आकाशमे फैली हुई नक्षत्रमालाके समान प्रतीत होती थी। विचित्र वर्णोंम भी अपना विशुद्ध स्थान रखनेवाली वह दन्तावलि आकाशसे उस समुद्रकी जलराशिम गिरी, जो पूर्णिमाके चन्द्रकी समस्त पाडशकलाआको तिरस्कृत करनेमे समर्थ महागुणसम्पन्न मणिरत्नका निधान है। समुद्रके जलमें उसे शुक्तिम स्थान प्राप्त हुआ। अत वह सामुद्रिक मुक्ताका प्राचीन बीज बन गया, जिससे अन्य मुक्ताआका उद्भव हुआ। समुद्रके जिस जल-प्रदेशम सुन्दर रत्न मुक्तामणिके बीज गिरे, उसी प्रदेशम वे बीज फैलकर शुक्तियोम स्थित होनेके कारण मुक्तामणि (मोती) हो गये। अतएव सिहल, परलोक, सौराष्ट्र, ताम्रपर्ण, पारशव, कुबेर, पाण्ड्य, हाटक और हेमक—ये मुक्ताआके खजाने हैं।

वर्धन, पारसीक, पाताल, लोकान्तर तथा सिहलादिकी शुक्ति-मुक्ताएँ प्रमाण, स्थान, गुण और कान्तिकी दृष्टिसे अन्य क्षेत्राम प्राप्त होनेवाली मुक्ताओकी तुलनामे अत्यधिक हीन वर्णकी नहीं होती हैं। अत विद्वान् व्यक्तिको उनके मूल उत्पत्ति-स्थानका लेकर चिन्तन नहीं करना चाहिये, बल्कि उनके रूप एव प्रमाणपर ही विशेप ध्यान दनेकी आवश्यकता होती है। इस प्रकारकी मुक्तासे सम्बन्धित गुण-अवगुणकी कोई व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। ये सर्वत्र सब प्रकारकी आकृतियाम पायी जाती हैं।

शुक्तिसे उत्पन्न एक मुक्ताफलका मूल्य एक हजार तीन सौ पाँच मुद्रा होता है। आधे तोले भारवाली मुक्ताका मूल्य उक्त मूल्यकी अपेक्षा २/५ भाग कम होता है। जिस मुक्ताका भार तीन माशा अधिक हो, उसका मूल्य दो हजार मुद्रा कहा गया है।

ढाई माशा परिमाणवाली मुक्ताका मूल्य तेरह सौ मुद्रा हाता है। जो मुक्ता दो माशा परिमाणकी होता है उसका मूल्य आठ सौ मुद्रा है। जिसका परिमाण आधा माशा है उसका मूल्य तीन सौ बीस मुद्रा है। जा मुक्ता भारमें पाँच गुञ्जाके बराबर है पण्डिताने उसका मूल्य दो सौ मुद्रा स्वीकार किया है। जिसका परिमाण तीन गुञ्जा है, वह एक सौ मुद्राका हाती है। जो मुक्ता उक्त परिमाणमें सासहवाँ

भाग है, विद्वानोने उसको दार्विका कहा है। उसका मूल्य एक सौ दस मुद्रा होता है।

जिस मुक्ताका कथित परिमाणकी तुलनामे भार १/२० भाग होता है, उसको विद्वानोने भवककी सज्ञा प्रदान की है। यदि वह मुक्ता गुणहीन न हो तो उसका मूल्य सत्तानबे मुद्रा होता है। जो मुक्ता उक्त स्वाभाविक परिमाणमे १/३० भागकी होती है, उसको शिक्य कहा जाता है। उसका मूल्य चालीस मुद्रा होता है। जिसका परिमाण कहे गये परिमाणकी अपेक्षा १/४० वाँ अश हो तो उसका मूल्य तीस मुद्रा है। जो मुक्ता १/५० वाँ अश परिमित होती है, उसे सोम कहा जाता है। उसका मूल्य बीस मुद्रा है। जो मुद्रा १/६० अशके बराबर होती है, उसको निकरशीर्ष कहा जाता है। वह चौदह मुद्रा मूल्यकी होती है। १/८० तथा १/९० अश परिमित मुक्ताको कूप्य नामसे अभिहित किया गया है। उनका मूल्य क्रमश ग्यारह और नौ मुद्रा है।

विशुद्धताके लिये मुक्ताओको अन्नपात्र (अर्थात् अन्न रखनेवाले मटके)-म भरे हुए जम्बीर-रसमे डालकर पकाना चाहिये। तत्पश्चात् उनकी मूल आकृतियाको घिसकर चिक्कण एव समुज्वल आकार प्रदान करके उनम यथाशीघ्र छेद भी कर देना चाहिये।

सर्वप्रथम पूर्णतया आर्द्र मिट्टीसे लिप्त मत्स्य पुटपाक और फिर बिडाल पुटपाकमे मुक्ताओका पाचन करे। उसके बाद उन्ह चिकना और उज्ज्वल बनानेके लिये उसमसे निकालकर दूध अथवा जल या सुधारसमे पकाया जाता है। तदनन्तर स्वच्छ वस्त्रसे घिस-घिसकर उन्ह उज्ज्वल और चमकदार रूप प्रदान किया जाता है। ऐसा करनेसे वह मौक्तिक अत्यधिक गुणवान् तथा कान्तिसे युक्त हो जाता है। महाप्रभावशाली, सिद्ध एव सतत्सज्जनोके हितम लगे रहनेवाले, दयावान् आचार्य व्याडिने ऐसा ही कहा है।

रसविशेषमे शोधित वही मुक्ता शरीरका अलङ्कार होती है—जो श्वेत काँचके समान हो, स्वर्ण-जटित हो तथा रत्नशास्त्रके अनुसार सुपरीक्षित होनेके कारण (तार) कष्टका निवारण करनेवाली हो। सिहल-देशके कुशलजन एसा ही (शाधनादि कार्य) करते हैं।

यदि किसी मुक्ताके कृत्रिम होनेका सदेह हो तो उसको लवणमिश्रित उष्ण, स्नेह द्रव्यमे एक रात रखकर सूखे वस्त्रमे वेष्टित करक यथायोग्य धान्यके साथ उसका मर्दन करे। ऐसा करनेसे यदि उसमे विवर्ण भाव नहीं आता है तो उसको स्वाभाविक मुक्ता ही मानना चाहिये।

यथोक्त प्रमाणवाली गुरु, श्वेत, स्निग्ध, स्वच्छ, निर्मल एव तेजसम्पन्न, सुन्दर एव वृत्ताकार मुक्ता गुणसम्पन्न मानी गयी है। प्रमाणम बडी-बडी, सुन्दर, रश्मि-कान्तिसे परिपूर्ण, श्वेत, सुवृत्ताकार, समान एव सूक्ष्म छिद्रसे युक्त जो मुक्ता होती है, वह क्रय न करनेवाल व्यक्तिको भी आनन्दित करती है[1]। अत ऐसी मुक्ताको प्रशस्त मानना चाहिये।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रत्नशास्त्रीय परीक्षा-विधिके अनुसार जिस मुक्तामे सभी गुणोका उदय हा गया है, यदि वह मुक्ता किसी पुरुपका योग (सयोग) प्राप्त कर लेती है तो वह अपन स्वामीको किसी भी प्रकारके एक भी अनर्थोत्पादक दापके सम्पर्कम नहीं आने देती। (अध्याय ६९)

पद्मरागके विविध लक्षण एव उसकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—भगवान् भास्कर जब महामहिम दैत्यराज बलासुरके उस श्रेष्ठ रत्नबीजरूप शरीरके रक्तको लेकर स्वच्छ नीले आकाश-मार्गसे देवलोकको जा रहे थे, उसी समय निरन्तर देवापर विजय प्राप्त करनेसे अहकारम भरे हुए लकाधिपति रावणने आकर बलात् उनको शत्रुक समान आधे मार्गम ही रोक लिया। भयवश सूर्यने बलासुरके रत्नबीजरूपी रक्तको लका देशकी एक श्रेष्ठ नदीके जलम छाड दिया, जो उस देशकी सुन्दर रमणियाके कान्तिमय नितम्बाकी प्रतिच्छायासे झिलमिलाते हुए अगाधजलसे परिपूर्ण तथा सुपारीकी वृक्ष-पक्तियासे आच्छादित

१-उत्तम मुक्ताका क्रय (मुक्ता विक्रय) करनेसे रुपय मिलत हैं उससे आनन्दानुभूति हाती है। क्रय किये बिना भी अपनी उत्तमताके कारण यथाविधि यदि मुक्ता धारणकी जाय तो वह स्वय विविध ऐश्वर्य देती ही है। इसलिये आनन्दानुभूति दोनो दशा (क्रय करने न करने)-म समान है।

अपने दोनों तटोंसे सुशोभित हो रही थी। गङ्गाके समान पवित्र एवं उत्तम फलोंको प्रदान करनेमें सक्षम उस नदीका नाम रावणगङ्गा प्रसिद्ध हो गया।

बलासुरके रत्नबीजरूपी रक्तके गिरनेसे उस नदीके तटपर उसी समयसे रात्रिमें रत्नराशियाँ स्वयं आकर एकत्र होने लगीं। अतएव नदीका अन्तःभाग एवं बाह्यभाग सैकड़ों स्वर्ण-बाणोंके समान अपनी प्रभाको बिखेरनेमें समर्थ रत्नोंसे प्रतिभासित होने लगा। उस रावणगङ्गाके दोनों तट सदैव रत्नोंकी उज्ज्वल प्रभासे सुशोभित रहते हैं। उसके जलमें उत्पन्न पद्मराग नामक रत्न सौगन्धिक (शापमाल-विकसित होनेवाला श्वेतमाल), कुरुविन्दज (रत्नविशेष) तथा स्फटिक रत्नोंके प्रधान गुणोंका धारण करते हैं। उनका स्वरूप बन्धूकपुष्प, गुञ्जाफल, वीरबहूटी कीट तथा जवाकुसुम और अष्टक (कुंकुम)-के वर्णोंकी कान्तियोंसे सुशोभित रहता है। कुछ पद्मराग दाडिम-बीजकी आभासे सम्पन्न तथा कुछ किंशुक (पलाश)-पुष्पके समान रक्तवर्णकी कान्तिसे युक्त रहते हैं। सिन्दूर, रक्तकमल, नीलोत्पल, कुंकुम और लाक्षारसके समान रंगवाले भी पद्मराग होते हैं। गहरा वर्ण होनेपर भी उन पद्मरागरत्नोंमें स्फुरित शोभासम्पन्न कान्तियाँ सुन्दर आभाको फैलाती रहती हैं।

स्फटिकसे उद्भूत पद्मराग सूर्यकी किरणोंसे सम्पृक्त होकर अपनी रश्मियोंके द्वारा दूर रहते हुए भी पार्श्वभागोंको अनुरञ्जित करते हैं। कुछ रत्न कुसुम्भवर्ण एवं नीलवर्णकी मिश्रित आभासे सम्पन्न रहते हैं तो कुछ रत्नोंका वर्ण नये विकसित कमलके सदृश शोभाको धारण करता है। कुछ रत्न भल्लन्तक तथा कण्टकारी-पुष्पके समान कान्ति प्राप्त करनेवाले हैं और कुछ रत्न हिंगुल अर्थात् हींग-वृक्षके पुष्पोंकी शोभासे सुशोभित रहते हैं। कतिपय रत्नोंका वर्ण चकोर, पुंस्कोकिल तथा सारस पक्षियोंके नेत्रोंके समान होता है। कुछ रत्न कुमुद-पुष्पके सदृश होते हैं। प्रायः गुण-प्रभाव शारीरिक काठिन्य एवं गुरुत्वमें स्फटिकोद्भूत पद्मरागमणियाँ समान होती हैं।

सौगन्धिक मणियोंसे प्रादुर्भूत पद्मराग मणिका वर्ण नाल और लाल कमलके समान होता है। कुरुविन्दकसे उत्पन्न पद्मराग मणियोंमें वैसी आभा नहीं होती है जैसी आभा स्फटिकसे उद्भूत पद्मराग मणियोंमें रहती है। अधिकांश मणियोंमें प्रभा अन्तर्निहित होती है। फिर भी वे अपनी समस्त पुञ्जीभूत रश्मि-प्रभाओंसे लोगोंपर अपना अत्यधिक प्रभाव डालती हैं।

उस रावणगङ्गामें जो भी कुरुविन्दक रत्न पाये जाते हैं, वे सभी सघन, रक्ताभवर्ण तथा स्फटिक प्रभावाले होते हैं। उन रत्नोंकी वर्ण-समानताको प्राप्त करनेवाले अन्य रत्न आन्ध्रादिक किसी दूसरे देशमें दुर्लभ हैं। उन स्थानोंमें जो भी कुरुविन्दक रत्न प्राप्त होते हैं, उनका मूल्य इस रावणगङ्गा नदीसे प्राप्त रत्नोंकी अपेक्षा बहुत ही कम होता है। उसी प्रकार यहाँपर उत्पन्न स्फटिक मणियोंसे प्रादुर्भूत पद्मरागकी समानतामें तुम्बुरु देशसे प्राप्त होनेवाली मणियोंका भी मूल्य कम ही माना गया है।

वर्णाधिक्य, गुरुता, स्निग्धता, समता, निर्मलता, पारदर्शिता, तेजस्विता एवं महत्ता श्रेष्ठ मणियोंका गुण है। जिन मणियोंमें करकराहट, छिद्र, मल, प्रभाहीनता, परुषता तथा वर्ण-विहीनता होती है, वे सभी जातीय गुणोंके रहनेपर प्रशस्त नहीं मानी जातीं।

यदि अज्ञानतावश कोई मनुष्य ऐसी दोषयुक्त मणियोंको धारण कर लेता है तो उनके कुप्रभावसे उत्पन्न शोक, चिन्ता, रोग, मृत्यु तथा धननाशादि आपदाएँ उसको घेर लेती हैं।

पूर्वकथित श्रेष्ठ मणियोंकी तुलनामें अत्यधिक सौन्दर्य-सम्पन्न एवं उनके प्रतिरूप होनेपर भी पाँच जातियोंकी मणियोंको विजातीय माना गया है। जिनका परीक्षण विद्वान् पुरुषको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। कलशपुर, सिंहल, तुम्बुरु, मुक्तपाणि तथा श्रीपूर्णकमें उत्पन्न पद्मरागका रावणगङ्गासे प्राप्त शुभप्रद पद्मराग मणियोंसे सादृश्य होनेपर भी वे विजातीय ही माने गये हैं।

तुषका-सदृश (मलिन वर्णका) होनेसे कलशपुर, अल्प ताम्रवर्णके कारण तुम्बुरु देश, कृष्णवर्णके रहनेसे सिंहल, नीलवर्णके होनेसे मुक्त तथा कान्तिविहीन होनेसे श्रीपूर्णककी मणियोंमें (रावणगङ्गाकी मणियोंकी अपेक्षा) विजातीय रूप होनेसे ही भेद स्पष्ट होता है।

जो पद्मराग ताम्रिका (गुञ्जा)-के वर्णको धारण करता

है, तुष (बहेडा)-के समान मध्यमे पूर्णतासे युक्त (गोलाकार) होता है तथा स्नेहसे प्रदिग्ध (स्वभावत स्नेहिल) होता है और अत्यन्त घिसनेके कारण कान्तिविहीन हो जाता है, मस्तक-सघर्षण अथवा हाथोकी अँगुलियाके स्पर्शसे जिसके पार्श्वभाग काले हो जाते हैं, हाथमे लेकर बार-बार ऊपरकी ओर उछालनेपर जो मणि प्रत्येक बार एक ही वर्णको धारण करती है, वह सभी गुणोसे युक्त होती है। समान प्रमाण समान जाति अथवा गुरुत्व धर्मसे दो वस्तुआमे तुलना होती है। अत विशेष रत्नाकरसे प्राप्त रत्नोकी स्वजातिका निर्धारण गुरुत्व और गुण-धर्मके अनुसार विद्वान् व्यक्तिको करना चाहिये। यदि उनमे सदेह उत्पन्न हो जाय तो उनको शाणपर चढाकर खरादना चाहिये। वज्र या कुरुविन्दक रत्नको छोडकर अन्य किसी भी रत्नके द्वारा पद्मराग एव इन्द्रनीलमणिमें चिह्न-विशेष टकित नहीं किया जा सकता है।

जातिविशेषमें उत्पन्न सभी मणियाँ विजातीय नहीं होती हैं। उनका वर्ण समान होता है, फिर भी उनके पृथक्करणके लिये उनम विभिन्न भेद बताये गये हैं। गुणयुक्त मणिके साथ गुणरहित मणिको धारण नहीं करना चाहिये। विद्वान् पुरुषको कौस्तुभ मणिके साथ विजातीय मणिको धारण नहीं करना चाहिये, क्योकि अनेक गुणोसे सम्पन्न मणियोको एक ही विजातीय मणि नष्ट करनेमे समर्थ होती है।

शत्रुओके बीच निवास करने तथा प्रमाद-वृत्तिमे आसक्त रहनेपर भी विशुद्ध महागुणसम्पन्न पद्मराग मणिका स्वामी होनेसे किसी भी व्यक्तिको आपदाएँ स्पर्शतक नहीं कर सकतीं। जो गुणोसे परिपूर्ण तेजस्वी सुन्दर वर्णवाले पद्मरागमणिको धारण करता है, उसके समीपमे उपस्थित होकर दोष-ससर्गजनित उपद्रव कोई कष्ट देनेमे अपनेको सक्षम नहीं कर पाते हैं।

जिस प्रकार तण्डुल-परिमाणके अनुसार हीरेका मूल्य निर्धारित होता है, उसी प्रकार महागुणसम्पन्न पद्मराग मणिके मूल्यका निर्धारण उडदके परिमाणका आकलन करके करना चाहिये।

जो मणि या रत्न उत्तम वर्ण एव श्रेष्ठ कान्तियोसे सम्पन्न रहते हैं, उन्हींको प्रशस्त माना जाता है। यदि उनमे तनिक भी दोषके कारण भ्रष्टता आ जाती है तो उनका मूल्य घट जाता है। (अध्याय ७०)

मरकतमणि[१]का लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—नागराज वासुकि उस असुरपति बलासुरके पित्तको लेकर अत्यन्त वेगसे मानो आकाशमार्गको दो भागोम विभक्त करते हुए देवलोकको जा रहे थे। उस समय वे अपने ही सिरपर अवस्थित मणिकी प्रभासे देदीप्यमान होनेके कारण आकाशरूपी समुद्रपर बने हुए एक अद्वितीय रजतसेतुके समान सुशोभित हो रहे थे। उसी समय अपने पख-निपातसे पृथिवी एव आकाशको आतकित करते हुए पक्षिराज गरुडने सर्पदेव वासुकिपर प्रहार करनेका प्रयत्न किया।

भयभीत वासुकिने सहसा उस रत्नबीजरूप पित्तको मधुर-सुस्वादु जलसे परिपूर्ण सरिता एव वृक्षोसे सुशोभित तथा पुष्पोकी नव-कलिकाआकी सान्द्र गन्धसे सुवासित तुरुष्कदेशकी एक श्रेष्ठ माणिक्योंसे परिपूर्ण पर्वतको उपत्यकामें छोड दिया। वह पित उस पर्वतसे निकलनेवाले जल-प्रपातके समान ही था। अत उसीकी जलधाराके साथ बहता हुआ वह पित्त भगवती महालक्ष्मीके समीपमे स्थित उनके श्रेष्ठ भवन अर्थात् समुद्रको प्राप्त करके उसकी तटवर्ती भूमिके समीप मरकतमणियाका खजाना बन गया।

फणिराज वासुकिने जिस समय उस पित्तका परित्याग किया था, उसी समय गरुडने गिरते हुए उस पित्तका कुछ अश ग्रहण (पान)-कर लिया। जिससे वे मूर्च्छित हो गये और सहसा उन्हाने अपने दोनो नासाछिद्रासे उस पित्तको बाहर कर दिया। उस स्थानपर प्राप्त होनेवाली मरकत-मणियाँ कोमल शुकपक्षीके कण्ठ, शिरीषपुष्प, खद्योतके पृष्ठप्रदेश, हरित तृणक्षेत्र शैवाल, कल्हारपुष्प (श्वतकमल) नयी निकली हुई घास सर्पभक्षिणी मयूरी तथा हरितपत्रकी कान्तिसे सुशोभित होकर लोगाको कल्याण देनेवाली होती हैं।

१-मरकतमणि—पन्ना।

इन्द्रनीलमणिका लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

सूतजीने पुन कहा—जिस स्थानपर सिंहल देशकी रमणियाँ अपने करपल्लवके अग्रभागसे नवीन लवली[1] कुसुम तथा प्रवालका चयन कर रही थीं, वहाँपर उस बलासुरके विकसित कमलसदृश शोभासम्पन्न दोनो नेत्र आकर गिर पडे। समुद्रकी वह कछारभूमि, रत्नके समान चमकनेवाले नेत्रोकी प्रभातरगोसे सुशोभित होकर एक विशाल क्षेत्रमे फैली हुई है। वहींपर विकसित केतकी नामक पुष्पाके वनाकी शोभाको फैलानेमे प्रतिक्षण लगी रहनेवाली इन्द्रनीलमणियाकी एक भूमि है। उस वनस्थलीपर अवस्थित पर्वतकी जो कर्णिकाभूमि है, उसमे प्रादुर्भूत होनेवाली वे मरकतमणियाँ नीलकमलसदृश कृष्ण एव हलधर बलरामके द्वारा धारण किये जानेवाले पीत और नील वर्णोंकी आभासे सम्पन्न हैं। काले भ्रमरके समान हैं, शार्ङ्गधनुषसे सुशोभित स्कन्ध-प्रदेशवाले भगवान् विष्णुकी कान्तिसे युक्त हैं तथा भगवान् शिवके कण्ठके समान (नीलवर्ण) और नवीन कषाय पुष्पोके समान आभावाली हैं।

उन मणियोमे कोई स्वच्छ तरङ्गायित जलके समान, कोई मयूरके समान, कोई नीलीरसके समान, कोई जल-बुद्बुदके समान और कोई मणि मदमस्त कोकिल पक्षीके कण्ठकी प्रभासे आभासित रहती है। उन सभी मणियोमे एक प्रकारकी ही निर्मलता तथा प्रभाशक्तिकी भास्वरता विद्यमान रहती है, उस पर्वतके रत्नगर्भसे प्राप्त होनेवाली मणियामें इन्द्रनीलमणि नामके रत्न अत्यधिक गुणशाली होते हैं।

जिन मणियोमें मिट्टी, पत्थर, छिद्र और करकराहटकी ध्वनि तथा नीलगगनपर आच्छादित सघन मेघच्छायाकी आभा रहती है, वे वर्णदोषसे दूषित मानी जाती हैं। किंत गुणोको प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार पद्मरा[illegible] तीन जातियाँ हैं, उसी प्रकार सामान्य रूपसे इन्द्र[illegible] भी तीन जातियाँ देखी जा सकती हैं। जिन उ[illegible] पद्मरागमणिका परीक्षण किया जाता है, उन[illegible] इन्द्रनीलमणिका भी परीक्षण होता है।

पद्मरागमणिको उपयोगयोग्य बनानेके [illegible] अग्निके साथ उसका सन्निधान अपेक्षित है, उ[illegible] अधिक अग्निका सन्निधान इन्द्रनीलमणिके [illegible] चाहिये। तब भी परीक्षण अथवा गुणाकी अभि[illegible] किसी भी प्रकारकी मणिको अग्निमे डालकर [illegible] करना चाहिये। अज्ञानतावश भी यदि कोई ऐ[illegible] तो अग्निकी सम्यक् मात्राके परिज्ञानसे र[illegible] जलानेके कारण उत्पन्न दोषोसे प्रदूषित वह मणि[illegible] करनेवाले कर्ता एव कारयिता (करवानेवाला) [illegible] अनिष्टकारी होती हैं।

काँच, उत्पल, करवीर, स्फटिक एव [illegible] मणियाँ इन्द्रनीलमणिके सदृश होनेपर भी र[illegible] अनुसार विजातीय ही मानी जाती हैं। अतएव इ[illegible] मणियोके गुरुत्व एव काठिन्य धर्मकी अवश्य [illegible] चाहिये। जिस प्रकार कोई इन्द्रनीलमणि ताम्रव[illegible] कर लेती है, उसी प्रकार ताम्रवर्णवाले करवीर [illegible] नामक दोनों मणियाकी भी रक्षा करनी चा[illegible] इन्द्रनीलमणिके मध्य इन्द्रायुधकी प्रभा अव[illegible] रहती है, उस इन्द्रनीलमणिका पृथ्वीपर अत्यन्[illegible] अत्यधिक मूल्यवाली कहा गया है।

सौगुना अधिक परिमाणवाले दूधमे र[illegible] जिसकी सान्द्रवर्णकी कान्तिसे वह दूध स्वय[illegible] हो जाता है [illegible]

वैदूर्यमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! अब मैं ब्रह्माके द्वारा बतायी हुई तथा व्यासजीद्वारा कही हुई वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन तथा भीष्मकमणियाकी परीक्षा-विधिको पृथक्-पृथक् कहता हूँ।

कल्पान्तकालम क्षुब्ध अगाध समुद्रकी जलराशिके गम्भीर महानादके समान दिति-पुत्र बलासुरके नादसे विभिन्न वर्णोवाली, अत्यन्त सौन्दर्य-सम्पन्न वैदूर्यमणियोका बीज उत्पन्न हुआ था।

उत्तुग शिखरावाले विदूर नामक पर्वतके सन्निकट स्थित कामभूतिक सीमासे मिले हुए क्षेत्रमे उस वैदूर्यबीजका अवधान होनेसे एक रत्नगर्भकी उत्पत्ति हुई।

बलासुरके नादसे उत्पन्न यह रत्नाकर महागुणसम्पन्न तथा तीना लोकाका श्रेष्ठतम आभूषणस्वरूप है। उस रत्नाकरमे दैत्यराजके महानादका अनुकरण करनेवाली, वर्षाकालीन श्रेष्ठ मेघोकी आभावाली बडी ही सुन्दर विचित्र प्रकारकी मणियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे प्रभाके स्फुलिङ्गोका समूह निकलता रहता है।

पृथिवीपर पद्मरागमणियोके जो वर्ण हैं, उन सभी वर्णोकी शोभाका अनुगमन वैदूर्यमणि करती है। उन मणियाम जो मणि मयूरकण्ठके सदृश अथवा वशपत्रके समान वर्णवाली होती है, उसको श्रेष्ठ माना गया है। जिन मणियाका वर्ण चपक नामक पक्षीके सदृश होता है, उन वैदूर्यमणियोको मणिशास्त्रवेत्ताओने प्रशस्त नहीं कहा है।

गुणयुक्त वैदूर्यमणि अपने स्वामीको परम सौभाग्यसे सम्पन्न बनाती है ओर दोषयुक्त मणि अपने स्वामीको दोषोसे सयुक्त कर देती है। अतएव प्रयत्नपूर्वक परीक्षा करनी चाहिये।

वैदूर्यमणिके अतिरिक्त गिरिकाँच शिशुपाल, काँच तथा स्फटिक—ये चार विजातीय मणियाँ हैं, जो वैदूर्यके समान ही आभा फैलाती हैं। किंतु लेखनकी सामर्थ्यसे रहित होनेके कारण काँच, गुरुत्वभावसे हीन होनेके कारण शिशुपाल, कान्तियुक्त होनेसे गिरिकाँच एव अपने समुज्ज्वल वर्णके कारण स्फटिकमणिसे इस मणिमे भेद होता है। महागुणसम्पन्न इन्द्रनीलमणिका सुवर्ण (अस्सी रत्ती मात्रा) परिमाणके अनुसार जो मूल्य निर्धारित किया गया है, वही मूल्य दो पल भारयुक्त वैदूर्यमणिका कहा गया है।

एक विजातीय मणिमे वे सभी वर्ण समान होते हैं, जो वर्ण मणियाम पाये जाते हैं, फिर भी उनम महान् भेद माना गया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वे विशेष भेदक तत्त्वपर विचार करें। स्नेह, लघुता और मृदुताके द्वारा सजातीय और विजातीय मणियाके चिह्नाका भेद सार्वजनीन है।

मणिशोधनम कुशल या अकुशलजनाके द्वारा प्रयुक्त उचित एव अनुचित उपायोके कारण भी विभिन्न प्रकारकी मणियाम उत्पन्न हुए गुण-दोषके अनुसार उनके मूल्यमे न्यूनाधिक्य हो जाता है।

मणिबन्धक अर्थात् मणिवेत्ताके द्वारा भली प्रकारसे शोधित मणियाँ यदि दोषरहित होती हैं तो उनका सामान्य मूल्यकी अपेक्षा छ गुना अधिक मूल्य होता है। समुद्रके तीरकी सन्निधिम स्थित आकरसे प्राप्त हुई मणियोका जो मूल्य होता है, पृथिवीपर सर्वत्र मणियाका वही मूल्य नहीं रहता।

मनुने सोलह माशेका एक 'सुवर्ण' (भार) बताया है[1]। उसका सातवाँ हिस्सा सज्ञारूप प्राप्त करता है। चार माशेका एक 'शाण' पाँच कृष्णलका एक 'माशा' और एक पलका दशम भाग 'धरण' कहलाता है। इस प्रकार रत्नाके मूल्य निश्चयके लिये यह मणिविधि कही गयी है। (अध्याय ७३)

पुष्परागमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने पुन कहा—देवशत्रु बलासुरके शरीरकी त्वचा हिमालय पर्वतपर गिरी थी, जिनसे महागुणसम्पन्न पुष्परागमणियाका प्रादुर्भाव हुआ। जो पाषाण पूर्णपीत एव पाण्डुरवर्णकी सुन्दर आभासे समन्वित रहता है उसका नाम 'पद्मराग' है। यदि वह लोहित और पीतवर्णकी आभासे युक्त है तो उसको 'कौकण्टक' नामसे जानना चाहिये।

जो पाषाण पूर्ण लोहित एव सामान्य पीतवर्णसे सयुक्त होता है उसे 'काषायकमणि' कहते हैं। जिस पत्थरका वर्ण

पूर्णरूपसे नीला और शुक्लवर्णसमन्वित तथा स्निग्ध होता है, वह सोमालक गुणयुक्त मणि है। जो पत्थर अत्यन्त लोहित वर्णका होता है, उसीको 'पद्मराग' कहा जाता है। जो पूर्ण नीलवर्णकी सुन्दर आभासे सम्पन्न रहता है, उसे 'इन्द्रनीलमणि' कहते हैं।

मणिशास्त्रवेत्ताओने वैदूर्यमणिके समान ही पुष्प मूल्य स्वीकार किया है। इसको धारण करनेसे प्राप्त होते हैं, जो वैदूर्यमणिके धारणसे होते हैं। द्वारा धारण किये जानेपर यह मणि उन्हे 'पुत्र' प्र है। (अध्याय ७४)

कर्केतनमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—पवनदेवने रत्नबीजरूप उस दैत्यराज बलासुरके नखोको प्रसन्नतापूर्वक लेकर कमल-वनप्रान्तमे बिखेर दिया। वायुद्वारा विकीर्ण उन नखोसे पृथिवीपर कर्केतन नामक पूज्यतम मणिका जन्म हुआ। उसका वर्ण रक्त, चन्द्र एव मधुसदृश, ताम्र, पीत, अग्निवत् प्रज्वलित, समुज्ज्वल, नील तथा श्वेत होता है। रत्न-व्याधि आदि दोषाके कारण वह कठोर एव विभिन्न वर्णोंमे भी प्राप्त होती है।

जो कर्केतनमणियाँ स्निग्ध, स्वच्छ, समराग, अनुरञ्जित, पीत, गुरुत्व धर्मसे सयुक्त एव विचित्र आभासे व्याप्त तथा सताप, व्रण और व्याधि आदि दोषासे रहित होती हैं, उन्हे विशुद्ध या परम पवित्र माना जाता है।

स्वर्ण-पत्रमे सम्पुटितकर जब उन मणियोको अग्निमे शोधित किया जाता है तो वे अत्यधिक देदीप्यमान हो उठती हैं। ऐसी विशुद्ध कर्केतनमणि रोगका नाश क कलिके दोषोको नष्ट करनेवाली, कुलकी वृद्धि तथा सुख प्रदान करनेवाली होती है।

जो मनुष्य अपने शरीरको अलकृत करनेके प्रकारके बहुत-से गुणोवाली कर्केतन नामक मणि करते हैं, वे पूजित, प्रचुर धनसे परिपूर्ण तथा अ बान्धवोसे सम्पन्न होते हैं और नित्य उज्ज्वल की तथा प्रसन्न रहते हैं।

अन्य दूषित कर्केतनमणिका धारण करनेव व्याकुल, नीली कान्तिवाले, मलिन द्युतिवाले, कलुषित तथा विरूपवान् हो जाते है। वे तेज, पुष्टि आदिसे विहीन होकर दूषित कर्केत शरीरको धारण करते हैं। (अध्याय ७५)

भीष्मकमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने पुन कहा—उस देवशत्रु बलासुरका वीर्य हिमालय पर्वतके उत्तरी प्रान्तमे गिरा था। अत वह देश उत्तम भीष्मकमणियोका रत्नाकर बन गया। वहाँसे प्राप्त होनेवाली भीष्मकमणियाँ शङ्ख एव पद्मके समान समुज्ज्वल, मध्याह्नकालीन सूर्यकी प्रभाके समान शोभावाली तथा वज्रके समान तरुण होती हैं।

जो मनुष्य अपने कण्ठादिक अङ्गोमे स्वर्णसूत्रमे गुँथी हुई विशुद्ध भीष्मकमणिको धारण करता है, वह सदा सुख-

भीष्मकमणिसे सयुक्त अँगूठीको धारण व्यक्ति अपने पितराका तर्पण करता है, उस बहुत वर्षोंतकके लिये सतृप्ति प्राप्त हो जाती है प्रभावसे सर्प, आखु (चूहा), बिच्छू आदि अ विष स्वय शान्त हो जाते हैं। जल, अग्नि, शत्रु भयकर भय भी नष्ट हो जाते हैं।

शैवाल एव मेघकी आभासे युक्त, प्रभावाली मलिन द्युति और विकृत वर्णवाली भ

पुलकमणिके लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—वासुदेवने दानवराज वलासुरके नखसे लेकर भुजापर्यन्त गतिमान् रत्नमयी प्रकाशकी विधिवत् पूजा करके उसको श्रेष्ठ पर्वतो नदियो तथा उत्तरदेशके अन्य प्रसिद्ध स्थानोमे स्थापित किया था। अतएव दाशार्ण, वागदर, मेकल, कलिङ्ग आदि देशोमे उस प्रकाशरूपी बीजसे उत्पन्न पुलकमणियाँ गुञ्जाफल, अञ्जन, क्षौद्र (मधु) और कमलनालके समान तथा गन्धर्व एव अग्निदेशमे उत्पन्न हुई मणियाँ केलेके समान कान्तिवाली होती हैं। इन सभी पुलकमणियोको प्रशस्त माना गया है।

कुछ पुलकमणियोकी भगिमा शख, पद्म, भ्रमर तथा सूर्यके समान विचित्र होती है। ऐसी परम पवित्र मणियोको सूत्रमे गूँथकर धारण करनेसे सब प्रकारका कल्याण होता है, क्योकि वे पुलकमणियाँ माङ्गलिक एव धन-धान्यादि ऐश्वर्यकी अभिवृद्धि करनेवाली होती हैं।

कौआ, घोडा, गधा, सियार, भेडिया तथा भयकर रूप धारण करनेवाले और मास-रुधिरादिसे सलिप्त मुखवाले गृध्रोके समान वर्णवाली जो पुलकमणियाँ होती हैं, वे मृत्युदायक होती हैं। विद्वान् व्यक्तिको उनका परित्याग कर देना चाहिये। श्रेष्ठ एक पल प्रमाणवाली पुलकमणिका मूल्य पाँच सौ मुद्रा कहा गया है। (अध्याय ७७)

रुधिराक्ष रत्न-परीक्षा

सूतजीने कहा—अग्निदेवने दानवराजके अभीष्टरूपको ग्रहणकर कुछ अश नर्मदा नदीके प्रान्तभागमे तथा कुछ अश उस देशके निम्न भू-भागोमे फेक दिया था। अत उन स्थानोपर इन्द्रगोप (वीरबहूटी कीट) तथा शुक पक्षीके मुखकी भाँति वर्णवाली एव प्रकट पीलु फलके समान वर्णवाली रुधिराक्ष मणियाँ प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त भी यहाँपर नाना प्रकारकी मणियाँ प्राप्त होती हैं, इनका आकार एक समान होता है।

जो मणि मध्यभागमे चन्द्रके सदृश पाण्डुर तथा अत्यन्त विशुद्ध वर्णवाली होती है तुलनामे वह इन्द्रनीलमणिके समान होती है। इसे ऐश्वर्य, धन-धान्य एव भृत्यादिकी अभिवृद्धि करनेवाली माना गया है। इस मणिका पाक-क्रियासे शोधन होनेपर देववज्रके समान वर्ण होता है। (अध्याय ७८)

स्फटिक-परीक्षा

सूतजीने कहा—हलधारी बलरामने उस दैत्यराजके मेदोभागको लेकर कावेरी विन्ध्य, यवन चीन तथा नेपाल देशके भूभागोमे प्रयत्नपूर्वक बिखेरा था। अत उन स्थानोपर आकाशके समान निर्मल तेल-स्फटिक नामक मणि उत्पन्न हुई। यह मणि मृणाल एव शखके सदृश धवल होती है किंतु कुछ मणियाँ उक्त वर्णके अतिरिक्त अन्य वर्णोको भी धारण करती हैं।

रत्नोमे उस मणिके समान अन्य कोई नहीं है, जो पाप-विनाश करनेमे उसके बराबर क्षमता रखती हो। शिल्पकारके द्वारा सस्कारित होनेपर ही स्फटिकके मूल्यका कुछ आकलन किया जा सकता है। (अध्याय ७९)

विद्रुममणिकी परीक्षा

सूतजीने पुन कहा—हे शौनक! शेषनागने उस वलासुरके अन्त्र-भागको ग्रहणकर केरल आदि देशोमे छोडा था अतएव उन स्थानोपर महागुणसम्पन्न विद्रुममणियोका जन्म हुआ। उन विद्रुममणियोमे जो खरगोशके रक्तके समान [illegible] धारण करती हैं उन्हे श्रेष्ठ माना गया है। नील देश, देवक तथा रोमक नामक स्थान इन मणियोकी जन्मभूमि है। उनमे उत्पन्न हुई विद्रुममणि अत्यन्त लाल वर्णकी होती है। अन्य स्थानोसे प्राप्त होनेवाली मणियाँ प्रशस्त नहीं मानी गयी हैं। शिल्पकलाके [illegible] निर्माण होता है।

जो विद्रुममणि सुन्दर, कोमल, स्निग्ध तथा लाल-लाल वर्णकी होती है, वह निश्चित ही इस ससारमे मनुष्यको धन-धान्य-सम्पन्न बनानेवाली तथा उसके विषादिक दु खाको दूर करनेवाली होती है। (अध्याय ८०)

गङ्गा आदि विविध तीर्थोकी महिमा

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं समस्त तीर्थोका वर्णन करूँगा। जितने भी तीर्थ हैं, उनमे गङ्गा उत्तमोत्तम तीर्थ है। यद्यपि गङ्गा सर्वत्र सुलभ है, किंतु हरिद्वार, प्रयाग एव गङ्गासागरके सगम—इन तीन स्थानाम वह दुर्लभ है[१]।

प्रयाग परम श्रेष्ठ तीर्थ है, जो मरनेवालेको मुक्ति और भुक्ति दोनो प्रदान करता है। इस महातीर्थमे स्नान करके जो अपने पितरोके लिये पिण्डदान करते हैं, वे अपने समस्त पापोका विनाशकर सभी अभीष्टाकी सिद्धि प्राप्त करते हैं।

वाराणसी परमतीर्थ है। इस तीर्थमे भगवान् विश्वनाथ और केशव सदैव निवास करते हैं। कुरुक्षेत्र भी बहुत बडा तीर्थ है। इस तीर्थम दानादि करनेसे यह भोग और मोक्ष दोनाकी प्राप्ति करानेवाला है। प्रभास श्रेष्ठतम तीर्थ है, जहाँपर भगवान् सोमनाथ विराजमान रहते हैं। द्वारका अत्यन्त सुन्दर नगरी है। यह मुक्ति-भुक्ति दोनाको प्रदान करनेवाली है। पूर्व दिशामे अवस्थित सरस्वती पुण्यदायिनी तीर्थ है। इसी प्रकार सप्तसारस्वत परमतीर्थ है।

केदारतीर्थ समस्त पापोका विनाशक है। सम्भलग्राम उत्तम तीर्थ है। बदरिकाश्रम भगवान् नरनारायणका महातीर्थ है, जो मुक्तिप्रदायक है।

श्वेतद्वीप, मायापुरी (हरिद्वार), नैमिषारण्य, पुष्कर, अयोध्या, चित्रकूट, गोमती, वैनायक, रामगिर्याश्रम, काञ्चीपुरी, तुगभद्रा, श्रीशैल, सेतुबन्ध-रामेश्वर, कार्तिकेय, भृगुतुग, कामतीर्थ, अमरकण्टक, महाकालेश्वरकी निवासभूमि उज्जयिनी, श्रीधर हरिका निवासस्थल कुब्जक, कुब्जाम्रक, कालसर्पि, कामद, महाकेशी, कावेरी, चन्द्रभागा, विपाशा, एकाम्र, ब्रह्मेश, देवकोटक, रम्य मथुरापुरी, महानद शोण तथा जम्बूसर नामक स्थानाको महातीर्थ कहा गया है।

इन तीर्थोमे सदा सूर्य, शिव, गणपति, महालक्ष्मी एव भगवान् हरि निवास करते हैं। यहाँ और अन्यान्य पवित्र स्थानोमे किया गया स्नान, दान, जप, तप, पूजा, श्राद्ध तथा पिण्डदानादि अक्षय होता है। इसी प्रकार शालग्राम तथा पाशुपततीर्थ भी परम पवित्र तीर्थ हैं, जो भक्ताको सब कुछ प्रदान करते हैं।

कोकामुख, वाराह, भाण्डीर और स्वामि नामक तीर्थ महातीर्थके रूपमे विख्यात हैं। लोहदण्ड नामक तीर्थमे महाविष्णु तथा मन्दारतीर्थमे मधुसूदन निवास करते हैं।

कामरूप महान् तीर्थ है। इस स्थानमे कामाख्यादेवी सदा विराजमान रहती हैं। पुण्ड्रवर्धनतीर्थम भगवान् कार्तिकेय प्रतिष्ठित रहते हैं। विरज, श्रीपुरुषोत्तम, महेन्द्रपर्वत, कावेरी, गोदावरी, पयोष्णी, वरदा, विन्ध्य और नर्मदाभद नामक महातीर्थ समस्त पापाके विनाशक हैं। गोकर्ण माहिष्मती, कलिजर एव श्रेष्ठ शुक्लतीर्थको महातीर्थ माना गया है। यहाँपर स्नान करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस तीर्थम भगवान् शार्ङ्गधारी हरि निवास करते हैं। भक्ताको सब कुछ देनेवाले विरज तथा स्वर्णाक्षतीर्थ भी उत्तम तीर्थ हैं।

नन्दितीर्थ मुक्तिदायक और कोटितीर्थोका फल प्रदान करनेवाला है। नासिक, गोवर्धन, कृष्णा, वेणी, भीमरथी, गण्डकी, इरावती, विदुसर एव विष्णुपादोदक महापुण्यप्रदायक परमतीर्थ हैं।

ब्रह्मध्यान और इन्द्रियनिग्रह महान् तीर्थ हैं, दम तथा भावशुद्धि श्रेष्ठ तीर्थ हैं। ज्ञानरूपी सरोवर और ध्यानरूपी जलमे, राग-द्वेषादि रूप मलका नाश करनेके लिये ऐसे मानस तीर्थमे जो मनुष्य स्नान करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है।

यह तीर्थ है, यह तीर्थ नहीं है—जो लोग इस प्रकारके भेद-ज्ञानको रखते हैं, उन्हीं लोगाके लिये तीर्थ-गमन और उसके उत्तम फलका विधान किया गया है, किंतु जो 'सर्वत्र ब्रह्ममय है' ऐसा स्वीकार करते हैं, उनके लिये कोई भी स्थान अतीर्थ नहीं है। इन सभीमे स्नान, दान श्राद्ध,

१-सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा॥ गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे। (८१।१-२)

पिण्डदान आदि कर्म करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। समस्त पर्वत, समस्त नदियाँ एव देवता, ऋषि-मुनि तथा सता आदिसे सेवित स्थान तीर्थ ही हैं—

इद तीर्थमिद नेति ये नरा भेददर्शिन ।
तेषा विधीयते तीर्थगमन तत्फल च यत्॥
सर्वं ब्रह्मेति यो वेत्ति नातीर्थं तस्य किञ्चन।
एतेषु स्नानदानानि श्राद्ध पिण्डमथाक्षयम्॥
सर्वा नद्य सर्वशैला तीर्थं देवादिसेवितम्।
(८१।२५—२७)

श्रीरगपत्तनम् भगवान् हरिका महान् तीर्थ है। ताप्ती एक श्रेष्ठ महानदी हे। सप्तगोदावरी एव कोणगिरि भी महातीर्थ हें। कोणगिरितीर्थमे महालक्ष्मी नदीके रूपम स्वय विराजमान रहती हैं। सह्यपर्वतपर भगवान् देवदेवेश्वर एकवीर तथा महादेवी सुरेश्वरी निवास करती हैं।

गङ्गाद्वार, कुशावर्त, विन्ध्यपर्वत, नीलगिरि और कनखल —इन महातीर्थोमे जा व्यक्ति स्नान करता है, वह पुन ससारमे जन्म नहीं लेता—

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते विन्ध्यके नीलपर्वते॥
स्नात्वा कनखले तीर्थे स भवन्न पुनर्भवे।
(८१।२९-३०)

सूतजीने (आगे) कहा कि उपर्युक्त वर्णित और अन्य जो अवर्णित तीर्थ हैं, सभी स्नानादिक क्रियाआको सम्पन्न करनेपर सदैव सब कुछ प्रदान करनेवाले हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीहरिसे तीर्थोका माहात्म्य सुनकर ब्रह्माने दक्षप्रजापति आदिके साथ महामुनि व्यासको उनका श्रवण कराया और पुन तीर्थोत्तम एव अक्षय फल देनेवाले तथा ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाले 'गया' नामक तीर्थका वणन किया। (अध्याय ८१)

गया-माहात्म्य तथा गयाक्षेत्रके तीर्थोमे श्राद्धादि करनेका फल

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी। मैं भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करानेवाले परम सार-स्वरूप उत्तम गया-माहात्म्यको सक्षेपमे कहूँगा, आप सुने।

पूर्वकालम गय नामक परम वीर्यवान् एक असुर हुआ। उसने सभी प्राणियाको सतप्त करनेवाली महान् दारुण तपस्या की। उसकी तपस्यासे सतप्त देवगण उसके वधकी इच्छासे भगवान् श्रीहरिकी शरणम गये। श्रीहरिने उनसे कहा—आप लोगाका कल्याण होगा, इसका महादेह गिराया जायगा। देवताआने 'वहुत अच्छा' इस प्रकार कहा। एक समय शिवजीकी पूजाके लिये क्षीरसमुद्रसे कमल लाकर गय नामका वह वलवान् असुर विष्णुमायासे विमोहित हाकर कीकट देशम शयन करन लगा और उसी स्थितिम वह विष्णुकी गदाके द्वारा मारा गया।

भगवान् विष्णु मुक्ति देनेके लिये 'गदाधर'के रूपम गयामे स्थित हैं। गयासुरके विशुद्ध देहमे ब्रह्मा, जनार्दन शिव तथा प्रपितामह स्थित हैं विष्णुने वहाँकी मर्यादा स्थापित करते हुए कहा कि इसका दह पुण्यक्षेत्रक रूपम होगा। यहाँ जा भक्ति यज्ञ श्राद्ध पिण्डदान अथवा स्नानादि करगा वह स्वर्ग तथा ब्रह्मलोकम जायगा नरकगामी नहीं हागा। पितामह ब्रह्माने गयातीर्थको श्रेष्ठ जानकर वहाँ यज्ञ किया और ऋत्विक्-रूपम आये हुए ब्राह्मणोकी पूजा की।

ब्रह्माने वहाँ रसवती अर्थात् जलसे परिपूर्ण एक विशाल नदी, वापी, जलाशय आदि तथा विविध भक्ष्य, भोज्य, फल आदि और कामधेनुकी सृष्टि की। तदनन्तर ब्रह्माने इन सब साधनोसे सम्पन्न पाँच कोशके परिक्षेत्रम फैले हुए उस गया तीर्थका दान उन ब्राह्मणाको कर दिया।

ब्राह्मणाने उस धर्मयज्ञमे दिये गये धनादिक दानको लोभवश ही स्वीकार किया था। अत उसी कालसे वहाँके ब्राह्मणाके लिये यह शाप हो गया कि 'तुम्हारे द्वारा अर्जित विद्या और धन तीन पुरुषपर्यन्त अर्थात् तीन पीढियातक स्थायी नहीं रहगा। तुम्हारे इस गया परिक्षेत्रमे प्रवाहित होनेवाली रसवती नदी जल एव पत्थराके पर्वतमात्रके रूपमे ही अवस्थित रहेगी।

सतप्त ब्राह्मणाके द्वारा प्रार्थना करनेपर प्रभु ब्रह्माने अनुग्रह किया और कहा—गयाम जिन पुण्यशाली लागाका श्राद्ध होगा वे ब्रह्मलाकको प्राप्त करग। जा मनुष्य यहाँ आकर आप सभीका पूजन करगे, उनक द्वारा मैं भी अपनको पूजित स्वीकार करूँगा।

'ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोशालाम मृत्यु तथा कुरुक्षेत्रमे निवास—ये चारो मुक्तिके साधन हैं—'

ब्रह्मज्ञान गयाश्राद्ध गोगृहे मरण तथा।
वास पुसा कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा॥
(८२।१५)

हे व्यासजी! सभी समुद्र, नदी, वापी, कूप, तडागादि जितने भी तीर्थ हैं, वे सब इस गयातीर्थमे स्वयमेव स्नान करनेके लिये आते हैं, इसम सदेह नहीं है।

'गयामे श्राद्ध करनेसे ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णकी चोरी, गुरुपत्नीगमन और उक्त ससर्ग-जनित सभी महापातक नष्ट हा जाते हैं'—

ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वंगनागम ।
पाप तत्सगज सर्वं गयाश्राद्धाद् विनश्यति॥
(८२।१७)

जिनकी सस्काररहित दशामे मृत्यु हो जाती है अथवा जो मनुष्य पशु तथा चोरद्वारा मारे जाते हैं या जिनकी मृत्यु सर्पके काटनेसे होती है, वे सभी गया-श्राद्ध-कर्मके पुण्यसे बन्धन-मुक्त होकर स्वर्ग चले जाते हैं।

'गयातीर्थमे पितरोके लिये पिण्डदान करनेसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, सौ करोड वर्षोंमे भी उसका वर्णन मेरेद्वारा नहीं किया जा सकता'।

ब्रह्माजीने पुन व्यासजीसे कहा—कीकट-देशमे गया पुण्यशाली है। राजगृह, वन तथा विषयचारण परम पवित्र है एव नदियोमें पुन पुना नामक नदी श्रेष्ठ है।

गयातीर्थमे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तरम 'मुण्डपृष्ठ' नामक तीर्थ है, जिसका मान ढाई कोश विस्तृत कहा गया है। 'गयाक्षेत्रका परिमाण पाँच कोश और गयाशिरका परिमाण एक कोश है। वहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोको शाश्वत तृप्ति हो जाती है'—

पञ्चक्रोश गयाक्षेत्र क्रोशमेक गयाशिर ।
तत्र पिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती॥
(८३।३)

विष्णुपर्वतस लेकर उत्तरमानसतकका भाग गयाका सिर माना गया है। उसीको फल्गुतीर्थ भी कहा जाता हे। यहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोको परमगति प्राप्त होती है। गयागमनमात्रसे ही व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है—

गयागमनमात्रेण पितृणामनृणो भवेत्॥
(८३।५)

गयाक्षेत्रमे भगवान् विष्णु पितृदेवताके रूपमे विराजमान रहते हैं। पुण्डरीकाक्ष उन भगवान् जनार्दनका दर्शन करनेपर मनुष्य अपने तीनो ऋणासे मुक्त हो जाता है। गयातीर्थमे रथमार्ग तथा रुद्रपद आदिमे कालेश्वर भगवान् केदारनाथका दर्शन करनेसे मनुष्य पितृऋणसे विमुक्त हो जाता है।

वहाँ पितामह ब्रह्माका दर्शन करके वह पापमुक्त और प्रपितामहका दर्शनकर अनामयलोककी प्राप्ति करता है। उसी प्रकार गदाधर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करनेसे उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

हे ब्रह्मर्षि! गयातीर्थमे (मौन धारण करके जो) मौनादित्य और महात्मा कनकार्कका दर्शन करता हे, वह पितृऋणसे विमुक्त हो जाता हे और ब्रह्माकी पूजा करके ब्रह्मलोकको प्राप्त करता हे।

जो मनुष्य प्रात काल उठ करके गायत्रीदेवीका दर्शनकर विधि-विधानसे प्रात कालीन सध्या सम्पन्न करता हैं, उसे सभी वेदोका फल प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति मध्याह्नकालमे सावित्रीदेवीका दर्शन करता है, वह यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार जो सायकालमे सरस्वतीदेवीका दर्शन करता है, उसे दानका फल प्राप्त होता है।

यहाँ पर्वतपर विराजमान भगवान् शिवका दर्शन करके मनुष्य अपने पितृऋणसे विमुक्त हो जाता है। धर्मारण्य और उस पवित्र वनके स्वामी धर्मस्वरूप देवका दर्शन करनेसे समस्त ऋण नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार गृध्रेश्वर महादेवका दर्शन करके कौन ऐसा व्यक्ति है, जो भव-बन्धनसे विमुक्त नहीं हो सकता।

प्राणी धेनुवन (गो-प्रचारतीर्थ) नामक महातीर्थमे धेनुका दर्शन करके अपने पितरोको ब्रह्मलोक ले जाता है। प्रभास-तीर्थम प्रभासेश्वर शिवका दर्शन-लाभ करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है। कोटीश्वर और अश्वमेधका दर्शन करनेपर ऋणका विनाश हो जाता है। स्वर्गद्वारेश्वरका दर्शन करके

मनुष्य भवबन्धनसे विमुक्त हो जाता है।

उसी धर्मारण्यम अवस्थित गदालोलतीर्थ तथा भगवान् रामेश्वरका दर्शन करके मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होता है। भगवान् ब्रह्मेश्वरके दर्शनसे ब्रह्महत्याके पापसे विमुक्ति हो जाती है।

मुण्डपृष्ठतीर्थम महाचण्डीका दर्शन करक प्राणी अपनी समस्त इच्छाओको पूर्ण कर लेता है। फल्गुतीर्थके स्वामी फल्गु, चण्डीदेवी, गौरी, मङ्गला, गोमक, गोपति, अङ्गारेश्वर, सिद्धेश्वर, गयादित्य, गज तथा मार्कण्डेयेश्वर भगवान्के दर्शनसे व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। फल्गुतीर्थम स्नान करके जा मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करता है, वह पितराके ऋणसे विमुक्त हो जाता है।

पुण्यकर्म करनेवाले जनाके लिये क्या इतने कर्मसे पर्याप्त सतोष नहीं होता? (अरे इन तीर्थोम अवस्थित देव-दर्शन तथा स्नान करनेसे मनुष्यके कुलकी) इक्कीस पुरुषपर्यन्त पीढियाँ ब्रह्मलोकको प्राप्त हो जाती हैं।

पृथिवीपर जितने भी तीर्थ, समुद्र और सरावर हैं, वे सभी प्रतिदिन एक बार फल्गुतीर्थ जाते हैं। पृथिवीम गया पुण्यशाली तीर्थ है। गयाम गयाशिर श्रेष्ठ है और उसम भी फल्गुतीर्थ उसका मुखभाग है—

पृथिव्या यानि तीर्थानि ये समुद्रा सरासि च।
फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेक दिने दिने॥
पृथिव्या च गया पुण्या गयाया च गयाशिर ।
श्रेष्ठ तथा फल्गुतीर्थं तन्मुख च सुरस्य हि॥
(८३।२२-२३)

उदीची, कनका नदी और नाभितीर्थ उसका मध्यभाग है। उसी तीर्थके सन्निकट ब्रह्मसदस्तीर्थ है, जो स्नान करनेसे मनुष्यको ब्रह्मलोक प्रदान करता है। वहाँपर स्थित कूपमे पिण्डदानादि कृत्य करके मनुष्य अपने पितराके ऋणसे विमुक्त हो जाता है। अक्षयवटम श्राद्धकर्म सम्पन्न करके मनुष्य अपने पितृगणाको ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है।

हसतीर्थम स्नान करके मनुष्य सभी पापासे मुक्त हो जाता है। कोटितीर्थ गयालोल वैतरणी तथा गोमकतीर्थम पितराके लिय श्राद्ध करनपर मनुष्य अपने इक्कीस पुरुषपर्यन्त (इक्कीस पीढी)-का ब्रह्मलाक ले जाता है। ब्रह्मतीर्थ रामतीर्थ अग्नितार्थ सामतीर्थ और रामह्रदतीर्थम श्राद्ध करनेवाला अपने पितरोको ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है। उत्तरमानसतीर्थमे श्राद्ध करनेपर पुनर्जन्म नहीं होता। दक्षिणमानसतीर्थम श्राद्ध करनेसे श्राद्ध करनेवाले अपने पितराको ब्रह्मलोक पहुँचाते हैं। स्वर्गद्वारतीर्थमे श्राद्ध करनेसे भी श्राद्धकर्ताओके पितृजन ब्रह्मलोकको जाते हैं। भीष्म-तर्पणका कृत्य जिस स्थानपर हुआ था, उस कूट स्थानपर श्राद्ध करनेसे भी मनुष्य पितृगणाको भवसागरसे पार उतार देता है। गृध्रेश्वरतीर्थम श्राद्ध करनेसे श्राद्धकर्ता अपने पितृऋणसे विमुक्त हो जाते हैं।

धेनुकारण्यम श्राद्धकर तिलस बनी हुई गौका दान करनवाला व्यक्ति यदि स्नान करके वहाँपर अवस्थित धेनुमूर्तिका दर्शन करता है तो निश्चित ही वह अपने पितृजनाको ब्रह्मलोक पहुँचाता है।

ऐन्द्रतीर्थ, वासवतीर्थ, रामतीर्थ, वैष्णवतीर्थ तथा महानदीके पवित्र तीर्थपर श्राद्ध करनेवाला मनुष्य पितरोको ब्रह्मलोक ले जाता है। गायत्रीतीर्थ, सावित्रीतीर्थ, सारस्वततीर्थमे स्नान-सध्या तथा तर्पण करके श्राद्ध-क्रिया-सम्पन्न करनेसे श्राद्धकर्ता एक सौ एक पुरुषपर्यन्त पितरोकी पीढीको ब्रह्मलोक ले जाते हैं।

सयतमनसे पितरोके प्रति ध्यान लगाकर मनुष्यको ब्रह्मयोनि नामक तीर्थको विधिवत् पार करना चाहिये। वहाँपर पितृगणो एव देवोका तर्पण करके मनुष्य पुन गर्भ-यन्त्रणाके सकटमे नहीं पडता है।

काकजङ्घातीर्थम तर्पण करनेसे पितरोको अक्षयतृप्ति होती है। धर्मारण्य तथा मतङ्गवापीतीर्थमे श्राद्ध करनेसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। धर्मकूप तथा कूपतीर्थमे श्राद्ध करनेपर प्राणी पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। यहाँ श्राद्धादि कृत्य करके इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

प्रमाण देवता सन्तु लोकपालाश्च साक्षिण ।
मयागत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितृणा निष्कृति कृता॥
(८३।३६)

अर्थात् मेरे द्वारा किये जा रहे श्राद्धादि कृत्याके साक्षी यहाँके देवता प्रमाण हा और लोकपाल साक्षी हों। इस मतङ्गतीर्थम आ करक मैंने पितरास ऋण-मुक्तिका कार्य किया है।

रामतीर्थमें स्नान करके प्रभासतीर्थ और प्रेतशिलातीर्थमें श्राद्ध करनेसे पितृगण निश्चित ही प्रेतभावसे मुक्त हो जाते हैं। (ऐसा करके) वह श्राद्धकर्ता अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार करता है। मुण्डपृष्ठादि तीर्थोंमें भी श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न करके अपने पितरोंको ब्रह्मलोक ले जाता है।

गयाक्षेत्रमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँपर तीर्थ नहीं है। पाँच कोशके क्षेत्रफलमें स्थित गयाक्षेत्रमें जहाँ-तहाँ भी पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अक्षय फलको प्राप्तकर अपने पितृगणोंको ब्रह्मलोक प्रदान करता है—

गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते।
पञ्चक्रोशे गयाक्षेत्रे यत्र तत्र तु पिण्डदः ॥
अक्षयं फलमाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन्।
(८३।३९-४०)

भगवान् जनार्दनके हाथमें अपने लिये पिण्डदान समर्पित करके यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन।
परलोकं गते मोक्षमक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥
(८३।४१)

हे जनार्दन! भगवान् विष्णु! मैंने आपके हाथमें यह पिण्ड प्रदान किया है। अतः परलोकमें पहुँचनेपर मुझे मोक्ष प्राप्त हो। ऐसा करनेसे मनुष्य पितृगणोंके साथ स्वयं भी ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

गयाक्षेत्रमें स्थित धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसर, गयाशीर्ष तथा अक्षयवट-तीर्थमें पितरोंके लिये जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। धर्मारण्य, धर्मपृष्ठ, धेनुकारण्य नामक तीर्थोंका दर्शन करनेसे व्यक्ति अपनी बीस पीढ़ियोंका उद्धार करता है।

महानदीके पश्चिमी भागको ब्रह्मारण्य कहा जाता है। उसके पूर्वभागमें ब्रह्मसद, नागाद्रि पर्वत तथा भरताश्रम है। भरताश्रम एवं मतङ्गपर्वतपर मनुष्यको पितरोंके लिये श्राद्ध करना चाहिये।

गयाशीर्षतीर्थसे दक्षिण तथा महानदीतीर्थके पश्चिम चम्पक वन स्थित है, जहाँपर पाण्डुशिला नामक तीर्थ है। श्रद्धावान् व्यक्तिको उस तीर्थमें तृतीया तिथिको श्राद्ध करना चाहिये। उसी तीर्थके सन्निकट निश्चिरामण्डल, महाह्रद और कौशिकी आश्रम है। इन पवित्र तीर्थोंमें भी श्राद्ध करनेसे प्राणीको अक्षय-फलकी प्राप्ति होती है।

वैतरणी नदीके उत्तरमें तृतीया नामक एक जलाशय है, वहींपर क्रौञ्च-पक्षियोंका निवास है। इस तीर्थमें श्राद्ध करनेवाला पितृगणोंको स्वर्ग ले जाता है।

क्रौञ्चपदतीर्थसे उत्तर निश्चिरा नामसे प्रसिद्ध एक जलाशय है, वहाँपर एक बार जाने और एक बार पिण्डदान करनेसे मनुष्यको कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है, किंतु जो इस तीर्थमें नित्य निवास करते हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है?

महानदीके जलका स्पर्श करके मनुष्यको पितृदेवोंका तर्पण करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे अक्षय-लोकोंकी प्राप्ति होती है और उसके कुलका उद्धार हो जाता है।

सावित्रीतीर्थमें (एक बार) संध्या करनेसे मनुष्यको द्वादशवर्षीय संध्याका फल प्राप्त हो जाता है।

शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्षमें जो मनुष्य गयातीर्थ जाकर वहाँपर रात्रिवास करते हैं, निश्चित ही उनके सात कुलोंका उद्धार हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। इस गयातीर्थमें मुण्डपृष्ठ, अरविन्दपर्वत तथा क्रौञ्चपाद नामक तीर्थोंका दर्शन करके प्राणी समस्त पापोंसे विमुक्त हो जाता है। मकर-संक्रान्ति, चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहणके अवसरपर गयातीर्थमें जाकर पिण्डदान करना तीनों लोकोंमें दुर्लभ है।

महाह्रद, कौशिकी, मूल-क्षेत्र तथा गृध्रकूटपर्वतकी गुफामें श्राद्ध करनेपर महाफलकी प्राप्ति होती है। जहाँ भगवान् महेश्वर शिवकी जटाओंसे निकली हुई गङ्गाकी माहेश्वरी धारा प्रवाहित है, वहाँ श्राद्ध करके मनुष्यको ऋणमुक्त होना चाहिये। उसी क्षेत्रमें तीनों लोकोंमें विश्रुत पुण्यतमा विशाला नामक नदीतीर्थ है। वहाँ श्राद्ध करनेसे व्यक्ति अग्निष्टोम नामक यज्ञका फल प्राप्त करता है एवं मृत्युके पश्चात् उसको स्वर्गलोक प्राप्त होता है। श्राद्धकर्ताको उस क्षेत्रमें स्थित मासपद नामसे विख्यात तीर्थके जलमें स्नान करके वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त करना चाहिये।

रविपाद नामक तीर्थमें पिण्डदान करके पतितजनोंको अपना उद्धार करना चाहिये। गयातीर्थमें जाकर जो मनुष्य अन्नदान करते हैं, उन्हींसे पितृगण अपनेको पुत्रवान् मानते हैं। नरकके भयसे डरे हुए पितृजन इसीलिये पुत्र-प्राप्तिकी

ते हैं कि गयातीर्थमें जो कोई भी मेरा पुत्र हमारा उद्धार करेगा। इस तीर्थमें पहुँचे हुए देखकर पितृजनोंमें यह उत्सव होता है कि हुआ यह मेरा पुत्र अपने पैरोंसे भी इस स्पर्श करके हम सबको निश्चित ही कुछ- करेगा—

सुतं दृष्ट्वा पितॄणामुत्सवो भवेत्।
जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किल दास्यति॥
(८३।६०)

अथवा पिण्डदान देनेके अधिकारी अन्य के द्वारा जब कभी इस गयाक्षेत्रमें स्थित पवित्र तीर्थमें जिसके भी नामसे पिण्डदान उसे शाश्वत ब्रह्मगति प्राप्त करा देता है—

वा तथान्यो वा गयाकूपे यदा तदा।
ातयेत् पिण्डं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम्॥
(८३।६१)

स्थित कोटितीर्थमें जानेसे मनुष्यको पुण्डरीक त होता है। उस क्षेत्रमें त्रिलोकविश्रुत वैतरणी । वह उस गयाक्षेत्रमें पितरोंका उद्धार करनेके हुई है।

व्यक्ति वहाँपर पिण्डदान एवं गोदान करता उसके द्वारा अपने कुलकी इक्कीस पुरुषपर्यन्त ार होता है, इसमें संदेह नहीं है।

वैतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुता॥
गयाक्षेत्रे पितॄणां तारणाय हि।
(८३।६२-६३)

य किसी समय गयातीर्थकी यात्रा करता है सके द्वारा उन्हीं कुलके ब्राह्मणोंको भोजन ये, जिनका ब्रह्माने अपने यज्ञमें वरण किया र्थमें ब्रह्मपद तथा सोमपान नामक तीर्थ उन्हीं न हैं जिनका निर्माण ब्रह्माजीने किया था। रा प्रकल्पित तीर्थपुरोहितोंकी पूजा करनेपर ता भी पूजित हो जाते हैं।

ीर्थमें हव्य-कव्यादि पक्वान्नके द्वारा वहाँके ब्राह्मणोंको विधिवत् संतुष्ट करना चाहिये। गयामें निवास तथा देह-परित्यागकी भी विधि है। उत्तमोत्तम गयाक्षेत्रमें जो वृषोत्सर्ग करता है, उसे एक सौ अग्निष्टोम-यज्ञोंका पुण्य-लाभ होता है, इसमें संदेह नहीं है।

बुद्धिमान् मनुष्यको इस गयाक्षेत्रमें अपने लिये भी तिलरहित पिण्डदान करना चाहिये और अन्य व्यक्तियोंके लिये भी पिण्डदान करना चाहिये[1]।

हे व्यासजी! जातिके जितने भी पितृ, बन्धु-बान्धव एवं सुहृद् जन हों, उन सभीके लिये गयाभूमिमें विधिपूर्वक पिण्डदान किया जा सकता है।

रामतीर्थमें स्नान करके मनुष्य एक सौ गोदानका फल प्राप्त करता है। मतङ्गवापीमें स्नान करके एक सहस्र गायोंके दानका फल प्राप्त होता है। निश्चिरा-संगममें स्नान करके मनुष्य अपने पितृजनोंको ब्रह्मलोक ले जाता है। वसिष्ठाश्रममें स्नान करनेसे वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। महाकौशिकीतीर्थमें निवास करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

ब्रह्मसरोवरके निकट संसारको पवित्र करनेवाली प्रसिद्ध अग्निधारा नामक नदी प्रवाहित होती है। उसीको कपिला कहते हैं। इस नदीमें स्नान करके कृतकृत्य हुआ श्रद्धालु व्यक्ति पितरोंके लिये श्राद्ध करके अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त करता है।

कुमारधारामें श्राद्ध करके मनुष्यको अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करना चाहिये और वहाँपर स्थित कुमारदेवको प्रणाम-निवेदन करके उसे मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये।

सोमकुण्डतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सोमलोकको जाता है। संवर्तवापी नामक तीर्थमें स्नान करके पिण्डदान करनेवाला प्राणी महासौभाग्यशाली बन जाता है।

प्रेतकुण्डतीर्थमें पिण्डदान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे विमुक्त हो जाता है। देवनदी लेलिहान मथन, जानुगर्तक तथा इसी प्रकारके अन्य पवित्र तीर्थोंमें पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अपने पितृजनोंको तार देता है। गयाक्षेत्रमें वसिष्ठेश्वर आदि देवताओंको प्रणाम करके प्राणी सभी ऋणोंसे विमुक्त हो जाता है। (अध्याय ८२-८३)

---

[1] पि महाबुद्धिर्गयायां तु तिलैर्विना। पिण्डनिर्वापणं कुर्यादन्येषामपि मानव॥ (८३।६९)

गयाके तीर्थोका माहात्म्य तथा गयाशीर्षमे पिण्डदानकी महिमामे विशालकी कथा

ब्रह्माजीने कहा—व्यासजी! गयातीर्थकी यात्राके लिये उद्यत मनुष्यको विधिपूर्वक श्राद्ध करके सन्यासीके वेषमे अपने गाँवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदनन्तर दूसरे गाँवमे वह जाकर श्राद्धसे अवशिष्ट अन्नका भोजन ग्रहण करके प्रतिग्रहसे विवर्जित होकर यात्रा करे।

गयायात्राके लिये मात्र घरसे चलनेवालेके एक-एक कदम पितरोके स्वर्गारोहणके लिये एक-एक सीढी बनते जाते हैं—

> गृहाच्चलितमात्रस्य गयाया गमन प्रति।
> स्वर्गारोहणसोपान पितृणा तु पदे पदे॥
> (८४।३)

कुरुक्षेत्र, विशाला (बदरीक्षेत्र), विरजा (जगन्नाथक्षेत्र) तथा गयातीर्थको छोडकर शेष सभी तीर्थोमे मुण्डन एव उपवासका विधान है।

गयातीर्थमे दिन तथा रात (प्रत्येक समय)-मे कभी भी श्राद्ध किया जा सकता है। वाराणसी, शोणनद और महानदी पुन पुनाके तटपर श्राद्ध करके अपने पितृजनोको स्वर्गलोकमे ले जाय। मनुष्य उत्तर मानसतीर्थमे जाकर श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करता है। उस तीर्थमे उसे स्नान तथा श्राद्धादि क्रियाओको सम्पन्न करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह दिव्य कामनाओको तथा मोक्षको प्राप्त करता है।

दक्षिण मानसतीर्थमे जाकर श्रद्धावान् पुरुषको मौन धारण करके पिण्डदानादि करना चाहिये, उस तीर्थमे श्राद्धादि करनेसे मनुष्य देव ऋषि एव पितृ—इन तीनो ऋणोसे मुक्त हो जाता है।

उस गयाक्षेत्रमे सिद्धजनोके लिये प्रीतिकारक, पापियोके लिये भयोत्पादक, अपनी जिह्वाको लपलपाते हुए महाभयकर, नष्ट न होनेवाले महासर्पोसे परिव्याप्त कनखल नामक त्रिलोकविश्रुत महातीर्थ है। उदीचितीर्थमे देवर्षियोसे सेवित मुण्डपृष्ठ नामसे एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उस तीर्थमे स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है एव श्राद्ध करनेपर उसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। उस तीर्थमे सूर्यदेवको नमस्कार करके पिण्डदानादि सत्क्रियाओको अवश्य ही सम्पन्न करना चाहिये।

[कव्यवाह, साम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात, बर्हिषद् और सोमपा नामक पितृदेवता हे। गयाके तीर्थमे श्राद्ध करते समय इन सभी पितृदेवोकी इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—]

> कव्यवाहस्तथा सोमो यमश्चैवार्यमा तथा।
> अग्निष्वात्ता बर्हिषद सोमपा पितृदेवता॥
> आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह।
> मदीया पितरो ये च कुले जाता सनाभय॥
> तेषा पिण्डप्रदानार्थमागतोऽस्मि गयामिमाम्।
> (८४।१२—१४)

हे कव्यवाह! सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात, बर्हिषद, सोमप (दिव्य) पितृदेवता! आप महाभाग! यहाँ पधारे! आप लोगोद्वारा रक्षित हमारे कुलमे उत्पन्न जो सपिण्ड पितर पितृलोकमे चले गये है, उन सभी पितृजनोके लिये पिण्डदान करनेके निमित्त मैं इस गयातीर्थमे आया हूँ।

—ऐसी प्रार्थना करके फल्गुतीर्थमे पिण्डदान करके मनुष्यको पितामहका दर्शन करना चाहिये। उसके बाद भगवान् गदाधर विष्णुका दर्शन करे। ऐसा करनेसे वह पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। फल्गुतीर्थमे स्नान करके जो मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करता है, वह सद्य अपना तो उद्धार करता ही है, साथ ही वह अपने कुलके दस पूर्व पुरुष एव दस पश्चाद्वर्ती पुरुषपर्यन्त इक्कीस पीढियोका उद्धार करता है।

गयातीर्थमे पहुँचे हुए श्रद्धालु व्यक्तिके लिये यह प्रथम दिनकी विधिका वर्णन किया गया है। दूसरे दिन धर्मारण्य एव मतङ्गवापीमें जाकर श्राद्ध करनेवाला मनुष्य पिण्डदान आदि करे, धर्मारण्यमे जानेसे मनुष्यको वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् ब्रह्मतीर्थमे राजसूय-यज्ञ एव अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। तदनन्तर कूप और यूप नामक तीर्थोके मध्य श्राद्ध एव पिण्डादिक कृत्य सम्पन्न करना चाहिये। कूपोदकके द्वारा किया गया वह श्राद्धादि कार्य अक्षय होता है। तीसरे दिन ब्रह्मसदतीर्थमे जाकर स्नानकर तर्पण करना चाहिये, तदनन्तर यूप एव कूपतीर्थके मध्यमे श्राद्ध तथा पिण्डदान करनेका नियम है।

तदनन्तर गोप्रचारतीर्थके समीपमे ब्रह्माके द्वारा कल्पित ब्राह्मणोके सेवनमात्रसे पितृजन मोक्ष प्राप्त कर लेते है।

यूपतीर्थकी प्रदक्षिणा करके वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त कर लना चाहिये।

चौथे दिन फल्गुतीर्थम स्नान करक देवादिकाका तर्पण करे और उसके वाद गयाशीर्षम रुद्रपदादि तीर्थोम जाकर वह पितराके लिये श्राद्ध करे।

तदनन्तर व्यास, देहिमुख, पञ्चाग्नि तथा पदत्रय नामक तीर्थम पिण्डदान करके सूर्यतीर्थ, सामतीर्थ एव कार्तिकेय-तीर्थम जाकर किये गये श्राद्धका फल अक्षय हाता है।

गयातीर्थम नवदवत्य और द्वादशदेवत्य नामक श्राद्ध करना चाहिये। अन्वष्टका तिथियाम वृद्धिश्राद्धम, गयाम आर मृत्युतिथिम माताक लिये पृथक् रूपस श्राद्ध करनका विधान है। अन्यत्र तीर्थोम पिताक साथ ही माताका श्राद्ध करना चाहिये[१]। दशाश्वमधतीर्थम स्नान करके पितामहका दशनकर यदि मनुष्य रुद्रपादका स्पर्श करता है ता वह पुन इस लाकम नहीं आता ह।

वित्तपरिपूर्ण समग्र पृथिवाका तीन वार दान करनसे जा फल प्राप्त हाता है, वह फल गयाशिरतीर्थम श्राद्ध करनपर प्राप्त हो जाता है। इस गयाशिरताथम शमीपत्र प्रमाणक बरावर पिण्डदान करना चाहिये। इससे पितृगण दवत्वका प्राप्त करते ह। इस कार्यम विचार करनकी आवश्यकता नहा ह[२]।

भगवान् शिवन मुण्डपृष्ठतीर्थपर अपना चरण रखा था। अत उस तीर्थम अल्पमात्र तपस्यासे ही मनुष्य महान् पुण्य प्राप्त कर लेता है। जा व्यक्ति गयाशीर्षतीर्थमे नामाच्चारके साथ जिन पितराको पिण्डदान करता ह उससे नरकलाकम निवास करनेवाले पितृजन स्वर्गलोक एव स्वर्गम रहनेवाले पितराको मोक्ष प्राप्त हो जाता है—

मुण्डपृष्ठ पद न्यस्त महादवेन धीमता॥
अल्पेन तपसा तत्र महापुण्यमवाप्नुयात्।
गयाशीर्षे तु य पिण्डान्नाम्ना येषा तु निर्वपत्॥
नरकस्था दिव यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयु।
(८४। २८—३०)

पाँचव दिन गदालोलतीर्थम स्नान करके अक्षयवटके नीचे पिण्डदान करनवाला अपने समस्त कुलका उद्धार कर देता ह। अक्षयवटके मूलम शाक अथवा उष्णादकसे एक ब्राह्मणका भाजन करानपर कराड ब्राह्मणाका भाजन करानका फल प्राप्त हो जाता है[३]। अक्षयवटम श्राद्ध करनेके पश्चात् प्रपितामहका दर्शन करके मनुष्य अक्षय लोकाको प्राप्त करता है एव अपने सा कुलाका उद्धार कर देता है।

मनुष्यको वहुत-से पुत्राकी कामना करनी चाहिये, क्याकि उनमसे एक भी पुत्र गयातीर्थम जाय अथवा अश्वमध-यज्ञ करे या नीलवृषात्सर्ग करे[४]।

एक प्रेतने किसी वणिक्से कहा—ह वणिक्! गयाशीर्षतार्थम तुम मरे नामसे पिण्डदान करो, जिससे मैं इस प्रतयानिसे मुक्त हो जाऊँगा। यह पिण्डदान दाताके लिये भी स्वर्गप्रदान करनेवाला होगा। ऐसा सुनकर उस वणिक्ने गयाशीर्षतीर्थम उस प्रेतराजके लिय पिण्डदान किया। तदनन्तर अपने छाटे भाइयाक साथ उसने अपने पितृजनाको भी पिण्डदान प्रदान किया। वणिक्के द्वारा वहाँ पिण्डदान करनेसे उस प्रतराजके साथ उसके सभी पितर मुक्त हो गय आर पिण्डदान करनेवाला वह विशाल वणिक् पुत्रवान् हा गया। मृत्युके पश्चात् उसने विशालाम राजपुत्रके रूपम जन्म लिया। उसने ब्राह्मणासे कहा कि मुझे किस प्रकारके सत्कार्योको करनेसे पुत्र-प्राप्ति हो सकती है। ब्राह्मणाने विशाल नामक राजपुत्रसे कहा कि गयातीर्थम पिण्डदान करनेसे आपकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो सकती ह।

तदनन्तर विशालने गयाशीर्षतीर्थम जाकर पिण्डदान किया, जिसक पुण्यसे वह पुत्रवान् हो गया। एक दिन उसने आकाशम श्वेत, रक्त एव कृष्णवर्णवाले पुरुषोको देखा। उन लोगाको दखकर उसने पूछा कि तुम सब कौन हो? उनमसे श्वेतवर्णवाले पुरुषने उस विशालसे कहा कि श्वेतवर्णवाला मैं तुम्हारा पिता हूँ। तुम्हारे द्वारा दिये गये पिण्डदानके पुण्यलाभसे मैंने शुभ इन्द्रलोकको प्राप्त किया

१-श्राद्ध तु नवदैवत्य कुर्याद्द्वादशदेवतम्। अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयाया मृतवासरे॥
अत्र मातु पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह। (८४। २४-२५)

२-त्रिर्वित्तपूर्णां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात्॥
स तत्फलमवाप्नोति कृत्वा श्राद्ध गयाशिरे। शमीपत्रप्रमाणेन पिण्ड दद्याद् गयाशिर॥
पितरो यान्ति दवत्व नात्र कार्या विचारणा। (८४। २६—२८)

३-वटमूल समासाद्य शाकनाष्णादकेन वा॥ एकस्मिन् भाजित विप्रे काटिभवति भाजिता। (८४। ३१-३२)

४-एष्टव्या बहव पुत्रा यद्येकोऽपि गया व्रजत्॥ यजत वाश्वमेधन नील वा वृषमुत्सृजत्। (८४। ३३-३४)

है। हे पुत्र! ये जो रक्तवर्णवाले पुरुष दिखायी दे रहे हैं, मेरे पिता हैं। ये ब्रह्महत्या करनेवाले तथा अन्यान्य महापापोंसे युक्त थे। ये कृष्णवर्णवाले तेरे पितामह हैं। इन्होंने अपने जीवनकालमें अनेक ऋषियोंका वध किया। अतः इन लोगोंको अवीचि नामक नरक प्राप्त हुआ था, किंतु तुम्हारे द्वारा प्रदत्त पिण्डदानसे हम सभी पापविमुक्त हो गये हैं। अब हम लोग उत्तम स्वर्गलोकमें जा रहे हैं।

यह सुनकर कृतकृत्य होकर विशाला नगरीमें राज्य करके वह विशाल स्वर्गलोकमें चला गया।

[गयातीर्थमें पिण्डदान करते हुए निम्न मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये—]

येऽस्मत्कुले तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रिया ॥
ये चाप्यकृतचूडास्तु ये च गर्भाद्विनिस्सृता ।
येषां दाहो न क्रिया च येऽग्निदग्धास्तथापरे॥
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही।
तथा मातामहश्चैव प्रमातामह एव च॥
वृद्धप्रमातामहश्च तथा मातामही परम्।
प्रमातामही तथा वृद्धप्रमातामहीति वै॥
अन्येषां चैव पिण्डोऽयमक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥
(८४।४३—४८)

इसका भाव यह है कि हमारे कुलमें जो पितर पिण्डदान एवं जल-तर्पण क्रियासे वञ्चित रहे हैं, जो चूडाकर्म-संस्कारविहीन हैं, जो गर्भसे निकले हुए हैं (गर्भपातके कारण मृत्युको प्राप्त हुए हैं), जिनका अग्निदाह अथवा अन्य अन्तिम क्रिया-संस्कार नहीं हुआ है, अग्निमें जलकर जिनकी मृत्यु हुई है और जो दूसरे पितृगण हैं, वे भूमिमें मेरे द्वारा किये गये इस पिण्डदानसे तृप्त हों और तृप्त होकर परमगतिको प्राप्त करें। पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह, मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही और अन्य पितृजनोंको मेरे द्वारा दिया गया यह पिण्ड अक्षय होकर उन्हें प्राप्त हो।

(अध्याय ८४)

गयातीर्थमें पिण्डदानकी महिमा

ब्रह्माजीने कहा—पिण्डदान करनेवालेको चाहिये कि वह प्रेतशिलादि तीर्थोंमें स्नान करके 'अस्मत्कुले मृता ये च०' आदि मन्त्रोंसे अपने श्रेष्ठ पितरोंका आवाहनकर इस दर्भपृष्ठपर तिलोदकके द्वारा उन सभी पितरोंका वरुणानदीके अमृतमय जलसे पिण्डदान प्रदान करे[1]। हमारे कुलमें जो मरे हैं, जिनकी सद्गति नहीं हुई है।

१-अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहयिष्ये तान् सर्वान् दर्भपृष्ठे तिलोदकैः ॥
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
अजातदन्ता ये केचिद्ये च गर्भे प्रपीडिताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
बन्धुवर्गाश्च ये केचिन्नामगोत्रविवर्जिताः । स्वगोत्रे परगोत्रे वा गतिर्येषां न विद्यते।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये। आत्मोपघातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥
अग्निदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये। दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि तेषां पिण्डं ददाम्यहम्॥
अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथापरे। विद्युच्चौरहता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥
रौरवे चान्धतामिस्रे कालसूत्रे च ये गताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाके च ये गताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
अन्येषां यातनास्थानां प्रेतलोकनिवासिनाम्। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
पशुयोनिं गता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः । अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥
असंख्ययातनासंस्था ये नीता यमशासनैः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
जात्यन्तरसहस्रेषु भ्रमन्ति स्वेन कर्मणा। मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥
ये बान्धवाऽबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा॥
ये केचित् प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा॥

आवाहन करता हूँ। पितृवश एव मातृवशम जिन लागाकी मृत्यु हुई है, उन लागाक उद्धारक लिये मैं यह पिण्डदान द रहा हूँ। मातामह अथात् नानाक कुलम जा लाग मर गय हैं जिनका काइ सद्गति प्राप्त नहीं हुई है, उनक उद्धारक लिय मैं यह पिण्ड द रहा हूँ। हमार कुलम जा दाँत निकलनेक पूर्व ही मृत्युको प्राप्त हा गय आर जा काई गर्भकालम विनष्ट हा गये हैं, उन लागाक उद्धारक लिय मैं यह पिण्डदान दे रहा हूँ। वन्धुकुलम उत्पन्न जा काई नाम-गात्रस रहित हैं स्वगात्र एव परगात्रम जिनकी काई गति नहीं रही है, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड द रहा हूँ। उद्बन्धन (फाँसीद्वारा) अथवा विषसे या शस्त्राघातसे जिनकी मृत्यु हुई ह, जिन्हान आत्महत्या की है, उन लागाक लिये यह पिण्ड द रहा हूँ।

जा लाग अग्निम जलकर मर गय हैं, जिनकी मृत्यु सिह और व्याघ्रादि हिसक प्राणियाके द्वारा हुई ह अथवा विशाल दाँतावाले हाथिया या सींगधारी पशुआक आघातसे जो मरे हैं, उन सभीके उद्धारक लिय मैं पिण्ड दे रहा हूँ। जिनकी मृत्यु अग्निम जलकर अथवा विना अग्निम जले हा गयी है, जो विद्युत्से या चाराक द्वारा मार गये ह, उनके लिये मैं पिण्ड दे रहा हूँ। जो रौरव, अन्धतामिस्र तथा कालसूत्र नामक नरकाम गये हैं, उन सबक उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ। जो असिपत्रवन आर घोर-कुम्भीपाक नामक नरकाम पडे हुए हैं, उनके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ। अन्य जा यातना भोग रहे ह ओर प्रेतलोकम निवास कर रह हैं उनके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ।

जो पितृगण पशुयोनिम चले गये हैं अथवा जो पक्षी कीट-पतग सर्प सरीसृप (छिपकली गिरगिट सर्पादि) हा गय हैं या जा वृक्षयानिम अवस्थित हैं, उनक लिय मैं यह पिण्ड द रहा हूँ। जा यमराजके शासनादशसे यमगणाक द्वारा असख्य यातनाआक वीच पहुँचाये गय हैं, उन सभीक उद्धारक लिय यह पिण्ड दे रहा हूँ। जो अपने कर्मानुसार हजारा यानियाम घूमत हुए कष्ट भोग रह हैं, जिनका मानुषयानि दुर्लभ है, उन सभीके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ।

जा हमारे वान्धव हैं या वान्धव नहीं हैं अथवा जो अन्य जन्माम मर वन्धु-वान्धव रह हैं, वे मरे द्वारा दिये गय इस पिण्डदानसे सदैव तृप्तिका प्राप्त कर। जो कोई भी पितृजन प्रेतरूपम अवस्थित हैं, वे सभी इस पिण्डदानसे तृप्ति प्राप्त कर।

जा हमार पितृकुल, मातृकुल, गुरु, श्वशुर वान्धव अथवा अन्य सम्वन्धियाक कुलम उत्पन्न होकर मृत्युको प्राप्त हुए हैं और जा अन्य वान्धव हैं, जो मेरे कुलम पुत्र-पत्नीस रहित होनके कारण लुप्तपिण्ड हैं, क्रियालोपसे जिनकी दुगति हुई है, जा जन्मान्ध या पगु हैं, जो विरूप हैं अथवा अल्प-गर्भम ही मृत्युको प्राप्त हुए हैं, जो ज्ञात अथवा अज्ञात हैं, उनक निमित्त मेरे द्वारा दिया गया यह पिण्डदान अक्षय होकर उन्हे प्राप्त हो।

ब्रह्मा ओर ईशान आदि देव! आप सब मरे इस कार्यमे साक्षी हा। मने गयातीर्थम आ करके पितराके उद्धारके लिये यह पिण्डदानादिक कार्य सम्पन्न किया है।

हे देव! भगवान् गदाधर विष्णु! मैं पितृकार्यके लिये इस गयातीर्थम उपस्थित हुआ हूँ। मरे द्वारा सम्पन्न किये गये आजके इस पितृकार्यमे आप साक्षी हो। आज मैं (दव-गुरु एव पितृ) तीना ऋणासे विमुक्त हो गया हूँ। (अध्याय ८५)

ये मे पितृकुले जाता कुले मातुस्तथैव च। गुरुश्वशुरबन्धूना ये चान्ये वान्धवा मृता॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डा पुत्रदारविवर्जिता। क्रियालोपहता ये च जात्यन्धा पङ्गवस्तथा॥
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाता कुले मम। तेषा पिण्ड मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥
साक्षिण सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा। मया गया समासाद्य पितृणा निष्कृति कृता॥
आगतोऽह गया देव पितृकार्ये गदाधर। तन्मे साक्षी भवत्वद्य अनृणोऽहमृणत्रयात्॥ (८५। २—२२)

गयाके तीर्थोंकी महिमा तथा आदिगदाधरका माहात्म्य

ब्रह्माजीने कहा—इस गयाक्षेत्रमे जो विख्यात प्रेतशिला है, वह प्रभास, प्रेतकुण्ड एव गयासुरशीर्ष नामक तीर्थोंमे तीन प्रकारसे अवस्थित है। सर्वदेवमयी इस शिलाको धर्मदेवताके द्वारा ऐश्वर्यके लिये धारण किया गया है। अपने मित्रादिक बन्धु-बान्धवोमे जिन लोगोको प्रेतयोनि प्राप्त हो गयी है, उनका उद्धार करनेके लिये यह प्रेतशिला शुभ है। अतएव मुनिजन, नृपगण तथा राजपत्न्यादि इस प्रेतशिलापर आ करके अपने पितृजनोके लिये श्राद्धादिकर ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं।

गयासुरके मुण्डके पृष्ठभागमे जो शिला स्थित है, उसका नाम 'मुण्डपृष्ठगिरि' है, इसी कारण यह पर्वत सर्वदेवमय है। इसके पाददेशमे ब्रह्मसरोवरादि अनेक तीर्थ हैं। उन तीर्थोंमे एक अरविन्दवन नामक तीर्थ है। उस वनसे सुशोभित होनेके कारण उसके पर्वतीय प्रान्त-भागको 'अरविन्दगिरि' कहते हैं। वहाँपर क्रौञ्च पक्षियोके चरण-चिह्न विद्यमान रहते हैं। इसलिये वह पर्वतीय भाग 'क्रौञ्चपाद'के नामसे प्रसिद्ध है। श्राद्धादि करनेसे वह तीर्थ पितरोको ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

आदिकालसे ही यहाँपर आदिदेव भगवान् गदाधर विष्णु अव्यक्तरूपमे शिलारूपसे स्थित हैं। इसलिये यह शिला देवमयी कही गयी है। यह शिला गयासुरके सिरको आच्छादित करके वर्तमान समयमे भी अपने गुरुत्व भावके कारण चारो ओरसे अवस्थित है। कालान्तरमे महारुद्रादि देवोके साथ आदि-अन्तसे रहित हरि आदि गदाधरके रूपमे व्यक्त होकर यहाँ स्थित हो गये हैं।

जिस प्रकार पूर्वकालमे धर्म-सरक्षण एव अधर्म-विनाशके निमित्त दैत्यो और राक्षसोका सहार करनेके लिये मत्स्यावतार हुआ। जैसे कूर्म, वराह, नृसिह, वामन, परशुराम, दाशरथी राम, कृष्ण और बुद्ध हुए। तदनन्तर कल्कि अवतार भी हुआ। उसी प्रकार यहाँपर व्यक्ताव्यक्त भगवान् आदि गदाधर प्रकट हुए।

आदिकालमे इसी पवित्र तीर्थपर ब्रह्मादि देवोने आदिदेव भगवान् गदाधर विष्णुकी पूजा की थी। इसलिये यहाँपर अर्घ्य पाद्य पुष्पादिक उपहारोसे उन भगवान् गदाधरकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य इस तीर्थमे जाकर अन्य देवताओके साथ इन आदिदेव भगवान् गदाधरको अर्घ्य-पात्र, पाद्य, गन्ध, पुष्प, धूप, सुन्दर नैवेद्य, विविध प्रकारके पुष्पोसे बनी हुई मालाएँ, वस्त्र, मुकुट, घण्टा, चामर, दर्पण, अलकार, पिण्ड, अन्न तथा अन्यान्य वस्तुओको प्रदान करता है, वह जबतक इस पृथिवीपर जीवित रहता है, तबतक धन, धान्य, आयु, आरोग्य, सम्पदाओ, पुत्र-पौत्रादिक सतति, श्रेय, विद्या, अर्थ एव अभीष्ट कामनाओको प्राप्त करता है। भार्याको प्राप्तकर (अन्तमे) स्वर्गका निवासी बन जाता है। तदनन्तर वह पुन पृथिवीपर जन्म लेकर राज्यसुख प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठ कुलीन मनुष्य सत्त्वसम्पन्न होकर युद्धभूमिमे शत्रुओको पराजित करनेमे समर्थ रहते हुए वध और बन्धनसे विमुक्त होकर मृत्युके पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है।

जो इस गयातीर्थमे अपने पितृजनोके लिये श्राद्ध तथा पिण्डदानादिक क्रियाओको सम्पन्न करनेवाले हैं, वे उन पितृगणोके साथ स्वय भी ब्रह्मलोकगामी होते हैं[1]।

जो व्यक्ति पुरुषोत्तमक्षेत्रमे जाकर भगवान् जगन्नाथ, सुभद्रा एव बलभद्रकी पूजा करते हैं, वे लोग ज्ञान, लक्ष्मी तथा पुत्रादिकोको प्राप्तकर अन्त समयमे भगवान् पुरुषोत्तम विष्णुके सानिध्यमे चले जाते हैं। जो मनुष्य वहाँ स्थित भगवान् पुरुषोत्तम जगन्नाथ, सूर्यदेव और गणनायक विघ्नेश्वरके समक्ष पितरोंके लिये पिण्डदानादिक कार्य करते हैं, उन लोगोको वह सम्पूर्ण कृत्य ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

इस क्षेत्रमे विद्यमान कपर्दी भगवान् शिव और गणेशको नमस्कार करके मनुष्य समस्त विघ्नोसे मुक्त हो जाता है। यहाँपर विराजमान भगवान् कार्तिकेयका पूजनकर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। द्वादशादित्य सूर्यदेवकी सम्यक् अर्चनासे पुरुष सर्वरोग-विमुक्त हो जाता है। भगवान् वैश्वानर अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके पुरुष उत्तम कान्ति प्राप्त करता है। रेवन्त देवकी पूजा करके मनुष्य उत्तम जातिके अश्वोको प्राप्त करता है। देवराज इन्द्रकी भलीभाँति पूजा करके महान् ऐश्वर्य एव गौरीदेवीकी पूजा करके सौभाग्यकी प्राप्ति करनी चाहिये। मनुष्य सरस्वतीदेवीकी पूजा करके विद्या, लक्ष्मीकी पूजा करके सम्पत्ति तथा गरुडकी पूजा करके विघ्नोके समूहोसे विमुक्त हो जाता है।

१-वधबन्धविनिर्मुक्तश्चान्ते मोक्षमवाप्नुयात्। श्राद्धपिण्डादिकर्तार पितृभिर्ब्रह्मलोकगा ॥ (८६। १८)

क्षेत्रपालदेवकी पूजा करके व्यक्ति ग्रहाके समूहसे निर्मुक्त हो जाता है। मुण्डपृष्ठकी पूजा करके अपनी सम्पूर्ण अभिलापाआकी पूर्ति करनी चाहिय। अष्टनागदवकी पूजा करके प्राणी सर्पदशसे मुक्त हा जाता है। ब्रह्माकी पूजा करके ब्रह्मलोकका पुण्य अर्जित करना चाहिये।

भगवान् बलभद्रकी सम्यक् पूजा करक शक्ति आर आराग्य तथा सुभद्रादेवीकी विधिवत् पूजा करके परम साभाग्यकी प्राप्ति हाती है। भगवान् पुरुपात्तम जगन्नाथकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण कामनाआकी पूर्ति हाती है। भगवान् नारायणकी पूजा करके वह मनुष्याका अधिपति होता है।

नृसिहदेवके चरणाका स्पर्श एव नमन करक मनुष्य सग्रामम विजयी होता है। वराहदवकी पूजा करके वह पृथिवीका राज्य प्राप्त करता है तथा मालाधर एव विद्याधरका स्पर्श करके विद्याधराके पदको प्राप्त कर लता है।

भगवान् आदिगदाधरकी सम्यक् पूजा करके प्राणी समस्त अभिलापाआका पूर्ण कर लता है। भगवान् सामनाथकी पूजासे शिवलोकको प्राप्त करता है। रुद्रदवको नमस्कार करके रुद्रलोकम प्रतिष्ठापित होता है।

रामेश्वर-शिवको प्रणाम करके मनुष्यका रामके समान अतिशय प्रिय बनना चाहिये। भगवान् ब्रह्मेश्वरकी पूजा करके ब्रह्मलाक-प्राप्तिकी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। कालेश्वरकी भलीभाँति पूजा करक कालजयी बनना चाहिये। केदारनाथकी पूजा करक शिवलाकम प्रतिष्ठा प्राप्त करनी चाहिये और भगवान् सिद्धेश्वरकी पूजा करके मनुष्यको ब्रह्मलाक प्राप्त करना चाहिये।

आद्यदव रुद्र आदिके साथ भगवान् आदिगदाधर विष्णुका दर्शन करके अपने सो कुलाका उद्धार कर उन्ह ब्रह्मलोक प्राप्त कराये। आदिगदाधरकी पूजासे धर्मार्थी धर्मका, धनार्थी धनको, कामार्थी कामको तथा माक्षार्थी मोक्षको प्राप्त करता है। इनकी पूजासे राज्य चाहनेवाला पुरुप राज्य ओर शान्तिका इच्छुक शान्ति प्राप्त कर लेता है। सब प्रकारकी कामना करनेवाला सब कुछ प्राप्त कर लेता ह। इन भगवान् आदिगदाधरकी अर्चनासे पुत्रकी कामना करनेवाली स्त्रीका पुत्र, सौभाग्य चाहनेवालीको सोभाग्य तथा वशाभिवृद्धिकी इच्छुक स्त्रीको वशाभिवृद्धिका पुण्य प्राप्त करना चाहिये। मनुष्य श्राद्ध, पिण्डदान, अन्नदान आर जलदानक द्वारा भगवान् गदाधरदेवकी विधिवत् पूजा करके ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। पृथिवीपर अवस्थित सभी तीर्थोकी अपेक्षा जिस प्रकार गयापुरी श्रेष्ठ है, उसी प्रकार शिलाके रूपम विराजमान गदाधर श्रेष्ठ हैं। उनकी मूर्तिका दर्शन करनेसे सम्पूर्ण शिलाका दर्शन हो जाता है, क्याकि सब कुछ तो भगवान् गदाधर विष्णु ही हैं—

श्राद्धेन पिण्डदानेन अन्नदानन वारिद ॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति सम्पूज्यादिगदाधरम्।
पृथिव्या सर्वतीर्थेभ्यो यथा श्रेष्ठा गयापुरी॥
तथा शिलादिरूपश्च श्रेष्ठश्चैव गदाधर।
तस्मिन् दृष्ट शिला दृष्टा यत्त सर्वं गदाधर ॥

(८६।३८—४०)

(अध्याय ८६)

चोदह मन्वन्तरोका वर्णन तथा अठारह विद्याओके नाम

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं चौदह मनु और उनके पुत्राका वर्णन करूँगा। पूर्वकालम सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुए। उनके अग्नीध्र आदि अनेक पुत्र थे। मरीचि अत्रि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु तथा वसिष्ठ—ये इस मन्वन्तरके सात ऋषि (सप्तर्षि) कह गय ह। इस मन्वन्तरम जय अमित शुक्र एव याम नामक (दवताआके) बारह गण थे जिनम चार सामपायी थे। इसीम विश्वभुक् और वामदव इन्द्रपदसे प्रसिद्ध हुए। बाप्कलि नामक दत्य उनका शत्रु था वह भगवान् विष्णुक द्वारा चक्रसे मारा गया।

तदनन्तर स्वाराचिप मनुका प्रादुर्भाव हुआ। उनक चैत्रक विनत, कर्णान्त, विद्युत, रवि, बृहद्गुण और नभ नामसे विख्यात महाबली मण्डलेश्वर एव पराक्रमशाली पुत्र हुए थे। ऊर्ज, स्तम्ब प्राण ऋपभ, निश्चल, दत्तालि और अर्वरीवान्—ये सात ऋषि सप्तर्पिरूपग प्रसिद्ध हुए। इस मन्वन्तरम द्वादश तुपित और पारावतदवगण हुए। विपश्चित् नामक इन्द्र थे। उनका शत्रु पुरुकृत्सर नामक दैत्य था। मधुसूदन भगवान् विष्णुन हाथीका रूप धारण करक उसे मारा था।

हे रुद्र! स्वारोचिप मनुके पश्चात् आत्तम मनु हुए। इस मनुक अज परशु, विनात सुकतु, सुमित्र सुबल

शुचि, देव, देवावृध, महोत्साह और अजित नामक पुत्र थे। इस मन्वन्तरमे रथोजा, ऊर्ध्वबाहु, शरण, अनघ, मुनि, सुतप और शकु—ये सप्तर्षि हुए। वशवर्ति, स्वधाम, शिव, सत्य तथा प्रतर्दन नामक पाँच देवगण हुए। इन सभी देवगणोके प्रत्येक गणमे बारह देवता थे। स्वशान्ति नामक इन्द्र हुए, जिनका शत्रु प्रलम्बासुर दत्य था। भगवान् विष्णुने मत्स्यावतार धारण करके उस दैत्यका वध किया।

उस मनुके बाद तामस मनु हुए। उनके जानुजङ्घ, निर्भय, नवख्याति, नय, विप्रभृत्य, विविक्षिप, दृढेपुधि, प्रस्तलाक्ष, कृतबन्धु, कृत ज्योतिर्धाम, पृथु, काव्य, चैत्र, चेताग्नि और हेमक नामक पुत्र थे। इस मन्वन्तरम सुरागा तथा सुधी आदि सात ऋषि कहे गये हैं। इसमे हरि आदि देवताओके चार गण थे, प्रत्येकमे पचीस देवता हुए। उसी गणमे शिवि इन्द्र हुए। उनका शत्रु भीमरथ नामक असुर हुआ। भगवान् विष्णुने कूर्मावतार लेकर उसका वध किया।

तदनन्तर रैवत मनुका आविर्भाव हुआ। उनके महाप्राण, साधक, वनबन्धु (वलबन्धु), निरमित्र, प्रत्यङ्ग परहा, शुचि, दृढव्रत और केतुशृग नामक ऋषि कहे गये ह। इस मन्वन्तरम वेदश्री, वेदबाहु, ऊद्ध्र्वबाहु, हिरण्यरोम, पर्जन्य, सत्यनेत्र और स्वधाम—ये सात ऋषि हुए। इस मन्वन्तरमे अभूतरजस्, अश्वमेधस्, वकुण्ठ तथा अमृत नामक चार देवगण हुए, जिनमे चोदह देव हुए। विभु नामक इन्द्र हुए। उनका शत्रु शान्त नामक दत्य था। भगवान् विष्णुने हसरूप धारण करके उसका विनाश किया।

इसके बाद चाक्षुष मनुका प्रादुर्भाव हुआ। इनके ऊरु, पूरु, महाबल, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यबाहु कृति, अग्निष्णु, अतिरात्र, सुद्युम्न तथा नर नामक पुत्र हुए। हविष्मान्, उत्तम स्वधामा, विरज, अभिमान, सहिष्णु तथा मधुश्री नामक—ये सात ऋषि हुए। आर्य प्रभूत, भाव्य, लेख ओर पृथुक नामवाले पाँच गणामे आठ-आठ देवता कह गये हैं। इस मन्वन्तरक इन्द्र मनोजव थे, उनका शत्रु महान् भुजाआवाला महाबली महाकाल कहा गया है। जगदाधार भगवान् विष्णुने अश्वरूप धारण करके उसका वध किया था।

तत्पश्चात् वैवस्वत मनु हुए। उनके इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति नरिष्यन्त पासु, नभ, नदिष्ठ, करूप, पृपध्र और सुद्युम्न नामक विष्णुपरायण पुत्र हुए। इस मन्वन्तरम अत्रि, वसिष्ठ, जमदग्नि, कश्यप, गातम, भरद्वाज तथा विश्वामित्र नामक सात ऋषि (सप्तर्षि) कहे गये हैं। इसमे उनचास मरुद्गण, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, साध्यगण आठ वसु, अश्विनीकुमारद्वय, दस विश्वेदेव, दस आगिरसदेव तथा नौ देवगण कहे गये ह। इस मनुके समयमे तेजस्वी नामक इन्द्र ह। उनका शत्रु हिरण्याक्ष माना गया है। भगवान् विष्णुने वराह अवतार धारण करके उस दैत्यका विनाश किया था।

अब में भविष्यम होनेवाले सावर्णि मनुके पुत्राका वर्णन कर रहा हूँ। उन मनुके विजय, आर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति, वरिष्ठ, गरिष्ठ, वाच सगति नामक पुत्र हागे। इस मन्वन्तरम अश्वत्थामा, कृपाचार्य, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, ऋष्यशृग और परशुराम—ये सात ऋषि कहे गये ह। सुतपा, अमृताभ तथा मुख्य नामक तीन देवगण हैं, जिनके प्रत्येक गणम बीस-बीस देव माने गये हैं। विरोचन-पुत्र बलि इन्द्र हाग, जो वामनरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा याचित तीन पग भूमिदान देनेसे ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्रपदको छोडकर सिद्धि प्राप्त करगे।

हे ब्रह्मा! नवे वरुणपुत्र दक्षसावर्णि मनुके पुत्राको सुने। धृतिकेतु, दीप्तिकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, बृहद्द्युम्न, ऋचीक तथा बृहद्गुण नामके पुत्र हुए। इस मन्वन्तरमे मेधातिथि, द्युति, सवस, वसु, ज्योतिष्मान् हव्य और कव्य तथा विभु—ये सप्तर्षि हुए। पर, मरीचिगर्भ तथा सुधर्मा—ये तीन देवता हुए। इस मन्वन्तरम कालकाक्ष नामक देवशत्रु हुआ, जिसका वध पद्मनाभ विष्णुने किया था।

दसवे मनु (धर्म) के पुत्र धर्मसावर्णिके पुत्राको सुनो—सुक्षेत्र, उत्तमाजा भूरिश्रेण्य, शतानीक, निरमित्र, वृपसन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न, सुवर्चा, शान्ति एव इन्द्र नामक महाप्रतापी पुत्र थे। इस मन्वन्तरम अयामूर्ति, हविष्मान्, सुकृति, अव्यय, नाभाग, अप्रतिमोजा और सारभ नामक सप्तर्षि हुए। इसम देवताआके प्राण नामक एक सौ गण विद्यमान थे। उन गणाके इन्द्र महाबलशाली शान्त नामक देवपुरुष थे। उनका शत्रु बलि नामक असुर होगा। भगवान् विष्णु अपनी गदास उसका वध करगे।

हे रुद्र! अब मैं आपक पुत्र एकादश मनु (रुद्रसावर्णि)-की सतानाका वर्णन करता हूँ। इनक सर्वत्रग, सुशर्मा, दवानीक, पुरु, गुरु क्षेत्रवण, दृढेपु, आद्रक तथा पुत्र नामक

पुत्र हागे। इस मन्वन्तरम हविष्मान्, हविष्य, वरुण, विश्व, विस्तर, विष्णु ओर अग्नितेज नामक सप्तर्षि कहे गये हैं और इसमे विहङ्गम, कामगम, निर्माण तथा रुचि नामक चार देवगण हुए। एक-एक गणम तीस-तीस देवता कह गये हे। उन समस्त देवगणाके इन्द्र वृषभ हुए, जिनका शत्रु दशग्रीव नामक राक्षस होगा। लक्ष्मीका रूप धारण करके विष्णु उसका विनाश करगे।

इसके पश्चात् दक्षके पुत्र दक्षसावर्णि बारहव मनु हुए। उनके पुत्राका वर्णन सुन—इन मनुके दववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रविन्दु, वीर्यवान्, मित्रवाह, प्रवाह नामक पुत्र हैं। इस मन्वन्तरम तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, द्युति तथा तपोधन नामसे विख्यात सप्तर्षि हुए। स्वधर्मा, सुतपस, हरित और रोहित नामक देव सुरगण हैं। उनके प्रत्येक गणाम दस-दस देव हुए। हे शिव! इस मन्वन्तरमे ऋतधामा नामके इन्द्र हागे। उनका शत्रु तारकासुर होगा। विष्णु नपुसकस्वरूप धारण करके उसका वध करगे।

तदनन्तर रौच्य नामक त्रयोदश मनुके पुत्रोको मुझसे सुन। इस मनुके चित्रसेन, विचित्र, तप, धर्मरत, धृति, सुनेत्र, क्षेत्रवृत्ति तथा सुनय नामक पुत्र कहे गये हैं। इस मन्वन्तरम धर्म धृतिमान्, अव्यय, निशारूप, निरुत्सक, निर्मोह और तत्त्वदर्शी नामक सप्तर्षि कहे गये हैं। इस मन्वन्तरम सुरोम, सुधर्म तथा सुकर्म—तीन देवगणाका उद्भव हुआ। इन सभी गणाम तेंतीस-तेंतीस देवगण कहे गये हैं। इन देवगणाका इन्द्र दिवस्पति और शत्रु त्वष्टिभ नामक दानव था। भगवान् विष्णु मयूरका स्वरूप धारण करके उस दैत्यका वध करगे।

हे शिव! अव मेरे पुत्र चोदहव मनु भौत्यके पुत्राका श्रवण कर—इन मनुके ऊरु, गभीर, धृष्ट, तरस्वी, ग्राह, अभिमानी, प्रवीर, जिष्णु, सक्रन्दन, तजस्वी तथा दुर्लभ नामक पुत्र हागे। इस मन्वन्तरमे अग्नीध्र, अग्निबाहु, मागध शुचि, अजित, मुक्त और शुक्र—ये सप्तर्षि हागे। इस मन्वन्तरम चाक्षुष, कर्मनिष्ठ पवित्र, भ्राजिन तथा वचोवृद्ध नामक पाँच देवगणाके प्रत्यक गणका सात-सात देवगणोसे समन्वित कहा गया ह। इस मन्वन्तरम शुचि नामसे प्रसिद्ध इन्द्र हागे तथा महादैत्य उनका शत्रु होगा। स्वय भगवान् विष्णु ही उस महादानवका वध करेगे।

उन्हीं भगवान् विष्णुने व्यासरूपम अवतरित होकर एक ही वेदसहिताको चतुर्धा विभाजित किया। तदनन्तर अठारह पुराणाका प्रणयन किया। उन्हाने ही चारा वद, छ वेदाङ्ग ओर मीमासा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अर्थवेद, धनुर्वेद और गन्धर्ववेद—इन अष्टादश विद्याआका विस्तार किया। (अध्याय ८७)

प्रजापति रुचि और उनके पितरोका सवाद

सूतजीने कहा—भगवान् हरिने ब्रह्मा और भगवान् शिवको चौदह मन्वन्तराका जो वर्णन सुनाया था, मैंने आपको वह सुना दिया। अब मार्कण्डयजीने क्रौष्टुकि मुनिको जो पितृस्तोत्र सुनाया था वह आप सभीको सुना रहा हूँ। आप सब उस श्रवण कर।

मार्कण्डेयजीने कहा—प्राचीनकालमं रुचि नामक प्रजापति मायामोहको छोडकर, निर्भय हाकर स्वल्प शयन करते हुए निरहकारभावसे इस पृथिवीपर विचरण करन लगे। उन्हाने अग्निहोत्रका परित्याग कर दिया। घरम रहना छाड़ दिया। य एक बार भाजन करत और गृहस्थादिक आश्रमके नियमोंस रहित हो सगरहित हाकर इधर-उधर अकेले ही विचरण करते थे। उन्हें देखकर उनके पितृजनोंने उनसे कहा—

हे वत्स! तुमने किस कारण दार-परिग्रह (विवाह) नहीं किया। यह दार-परिग्रह स्वर्ग एव मोक्ष-प्राप्तिका हेतु है। गृहस्थाश्रमके विना प्राणीका शाश्वत बन्धन हाता है क्याकि गृहस्थ समस्त दवताओ पितरों, ऋषियों और याचकोंका पूजा करके उत्तम लोकोंको प्राप्त करता है। वह दवताओंको स्वाहा एव पितरोंको स्वधा शब्दके उच्चारणसे तथा अतिथि एव भृत्यादि जनोंको अन्न-दानसे सतुष्ट करता है। ऐसा न करके तुम देवऋण और हम सभी पितृजनोंके ऋणसे आबद्ध हो। मनुष्य ऋषि एवं अन्य प्राणिजनोंके लिये भी तुम प्रतिदिन ऋणी हो हो रहे हो। पुत्रोत्पत्ति, देव-पूजा तथा पितृतर्पण तथा सन्ध्योपासन किये बिना ही तुम कैसे उस स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छा कर रहे हो।

हे पुत्र! इस अन्यायसे तुमको मात्र कष्ट ही प्राप्त होगा।

इससे तो मरनेके बाद तुम्हें नरककी प्राप्ति होगी और दूसरे जन्ममें भी क्लेश ही होगा।

रुचिने पितृजनोंसे कहा—जीवनमें परिग्रह (ग्रहण करना) अत्यन्त दुःख-भोग, पाप-संग्रह एवं अन्तकालमें अधोगति प्रदान करनेके लिये होता है। ऐसा विचार करके ही मैंने स्त्रीपरिग्रह (विवाह) नहीं किया है। क्षणमात्र विचार करनेसे ही अपने अन्तःकरणमें विद्यमान संशय—संदेहको दूर करनेका उपाय किया जा सकता है। परिग्रह उस मुक्तिका कारण नहीं हो सकता है। जो निष्परिग्रह-व्यक्ति प्रतिदिन विद्याके सद्-ज्ञानोपार्जनरूपी जलद्वारा अपने आत्माको निर्मल करता है, मेरे लिये तो वही श्रेष्ठ है। विद्वानोंने अनेक प्रकारके सांसारिक कर्मरूपी पंकिलचिह्नोंका वर्णन किया है। अतएव जितेन्द्रिय पुरुषोंको तत्त्वज्ञानरूपी जलसे आत्माका प्रक्षालन करना चाहिये।

पितरोंने कहा—'हे वत्स! जितेन्द्रियजनोंके द्वारा आत्माका प्रक्षालन करना चाहिये'—ऐसा तुम्हारा कहना

उचित ही है, किंतु यह कल्याणका मार्ग नहीं है जिसके ऊपर तुम चल रहे हो। पञ्चयज्ञ, तप तथा दानके द्वारा अपने अमङ्गलको दूर करते हुए फलप्राप्तिकी कामनासे रहित किये हुए जो शुभ और अशुभ कर्म हैं, वे बन्धनके हेतु नहीं होते और जो पूर्वका कर्म है, वह भोगसे नष्ट होता है।

प्रारब्धका जो पुण्यापुण्य कर्म है, वह सुख-दुःखात्मक भोग भोगनेसे निरन्तर नष्ट होता रहता है। इस प्रकार विद्वज्जनोंके द्वारा अपनी आत्माका प्रक्षालन होता रहता है और कर्मबन्धनसे उसकी रक्षा की जाती है। अपने विवेकसे रक्षित आत्मा पापरूपी पंकसे लिप्त नहीं होता।

रुचिने कहा—हे पितामह आदि पितृगण! वेदमें कर्म-मार्गके प्रतिपादनके द्वारा अविद्या—मायाकी परिपुष्टि की गयी है। इसलिये आप सब कैसे मुझे उसी मार्गमें चलनेके लिये प्रवृत्त कर रहे हैं।

पितरोंने कहा—'कर्मके द्वारा जो कुछ किया जाता है, वह सब अविद्या है'—ऐसा जो तुम्हारा कहना है, वह असत्य वचन नहीं है, किंतु विद्याकी सम्यक्-प्राप्तिमें भी तो कर्म ही हेतु है। शास्त्र-प्रतिपादित जो विहित कर्म हैं, सज्जन पुरुष उनका उल्लङ्घन नहीं करते। उन्हें उसीसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। विहित कर्मका अनुष्ठान न करना अधोगति-प्रदायक है। हे वत्स! 'मैं अपरिग्रहादिके द्वारा आत्मप्रक्षालन कर रहा हूँ', ऐसा तुम उचित मानते हो, किंतु शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान न करनेसे उत्पन्न पापोंके द्वारा भी तुम स्वयं अपनेको जला रहे हो।

अविद्या भी विषके समान मनुष्योंका उपकार करनेके लिये ही होती है। जिस प्रकार विषका यथोचित उपयोग करनेसे प्राणीका कल्याण होता है, उसी प्रकार समुचित रूपसे अविद्यारूप विहित कर्मका अनुष्ठान करनेसे कर्ताका हित ही होगा। वह भवबन्धनके लिये नहीं, अपितु मोक्षके लिये है।

हे पुत्र! इस कारण तुम विधिपूर्वक दार-परिग्रह अर्थात् अपना विवाह करो। लौकिक कर्मोंका सम्यक् रीतिसे अनुष्ठान न करनेसे तुम आजन्म विफलताको ही प्राप्त करोगे।

रुचिने कहा—हे पितृगण! अब तो मैं वृद्ध हो गया हूँ। कौन मुझे अपनी कन्या प्रदान करेगा? वैसे भी मुझ-जैसे अकिञ्चन व्यक्तिके लिये दार-परिग्रह अर्थात् विवाह करना अत्यन्त कष्टसाध्य है।

पितरोंने कहा—हे वत्स! यदि तुम हमारे वचनका अनुपालन नहीं करते हो तो निश्चित ही हम सभी पितरोंका पतन होगा और तुम्हारी अधोगति होगी।

हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर उस प्रजापति रुचिके सभी पितृगण देखते-ही-देखते वायुवेगके झोंकासे बुझे हुए दीपकोंके समान सहसा अदृश्य हो गये। (अध्याय ८८)

रुचिद्वारा की गयी पितृस्तुति तथा श्राद्धमे इस पितृस्तुतिके पाठका माहात्म्य

पितृजनोके द्वारा उस प्रकारके वाक्यका सुनकर वे ब्रह्मर्षि रुचि मन-ही-मन अत्यधिक व्याकुल हा उठ और कन्या प्राप्त करनेकी इच्छासे पृथिवीलोकमे विचरने लगे, किंतु उन्हे कोई कन्या प्राप्त न हो सकी। अतएव पितराके उक्त वचनरूपी अग्निसे सतप्त हुए वे अतिशय चिन्ताग्रस्त होकर व्यग्र-मनसे इस प्रकार सोचने लगे—

'मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मरे पितृगणाका और मेरा अभ्युदय करनेवाला वह स्त्री-परिग्रह (विवाह-सस्कार) किस प्रकार हो सकेगा?'

इस प्रकार चिन्तन करते हुए उनक मनम यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं कमलयोनि उन ब्रह्माका ही तपस्याके द्वारा प्रसन्न करता हूँ। तदनन्तर महात्मा रुचिने सौ दिव्य वर्षोतक कठिन तप किया। वे तपस्याक लिये वनम एक ही स्थानपर चिरकालतक अवस्थित रह।

तत्पश्चात् जगत्पितामह ब्रह्माने दर्शन दिया और कहा

कि मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम अपनी अभिलाषा प्रकट करो। तदनन्तर सम्पूर्ण ससारको गति प्रदान करनेवाले उन आराध्य-देव ब्रह्माको प्रणाम करके रुचिने पितृजनाके कथनानुसार जा-जो उनकी अभिलाषा थी, उनसे निवेदन किया।

इसपर ब्रह्माजीने कहा—हे विप्र! तुम प्रजापति होओगे। तुम्हारे द्वारा प्रजाओकी सृष्टि होगी। प्रजारूपी पुत्राकी उत्पत्ति करके ही तुम पितृजनाके लिये श्राद्ध एव पिण्डदानादिको सम्पन्न करनेके पश्चात् साधिकार उक्त कामनाकी सिद्धि प्राप्त कर सकोगे। अत तुम्हारे पितराके द्वारा उचित ही कहा गया है कि 'तुम स्त्री-परिग्रह करो।' इस अभिलाषाको भलीभाँति ध्यानम रखते हुए तुम्हे पितराकी ही पूजा करनी चाहिये। प्रसन्न होकर वे ही पितृगण तुम्हारी इस कामनाको पूर्ण करेगे। सम्यक् पूजासे सतुष्ट हुए पितामहादि पितृगण स्त्री-पुत्र आदि क्या नहीं दे सकते।

ब्रह्माजीका इस प्रकारका वचन सुनकर ऋषि रुचिने नदीके एकान्त तटपर पहुँच करके अपने पितराका तर्पण-कर उन्हे सतृप्त किया। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक वे इन स्तुतियाक द्वारा पितराकी आराधना करने लगे[1]—

रुचि बोले—जो अधिदेवताके रूपमे विद्यमान रहते हैं और जा श्राद्धके अवसरपर देवताओसे, स्वधाद्वारा तृप्त किये जाते ह मैं उन पितृगणाको नमस्कार करता हूँ। स्वर्गम भी अवस्थित महर्षिगण भुक्ति और मुक्तिकी कामनासे मानसिक श्राद्धक द्वारा जिनको भक्तिपूर्वक तृप्त करते हैं उन पितराको मैं प्रणाम करता हूँ।

स्वर्गम सिद्धजन श्राद्धके सुअवसरापर सभी दिव्य उत्तम उपहाराके द्वारा जिन पितराको भलीभाँति सतुष्ट करते ह उन पितराको मेरा नमन है। गुह्यकजन स्वर्गमे आत्यन्तिकी श्रेष्ठ ऋद्धिकी कामनासे भक्तिपूर्वक तन्मय-

१-रुचिरुवाच
नमस्येऽह पितृन् भक्त्या ये वसन्त्यधिदैवतम्। देवैरपि हि तर्प्यन्ते य श्राद्धेषु स्वधोत्तरै ॥
नमस्येऽह पितृन् स्वर्गे ये तर्प्यन्त महर्षिभि । श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभि ॥
नमस्येऽह पितृन् स्वर्गे सिद्धा सतर्पयन्ति यान्। श्राद्धेषु दिव्यै सकलैरुपहारैरनुत्तमै ॥
नमस्येऽह पितृन् भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैर्दिवि। तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम्॥
नमस्येऽह पितृन् मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा। श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकपुष्टिप्रदायिन ॥
नमस्येऽह पितृन् विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा। वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिन ॥
नमस्येऽह पितृन् ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभि । वन्यै श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकल्मषै ॥
नमस्येऽह पितृन् विप्रैर्नैष्ठिकैर्धर्मचारिभि । ये सयतात्मभिर्नित्य सतर्प्यन्ते समाधिभि ॥
नमस्येऽह पितृञ्छ्राद्धै राजन्यास्तर्पयन्ति यान्। कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकद्वयफलप्रदान् ॥

ावसे जिन पितरोका पूजन करते हैं, उनको में नमस्कार ाता हूँ। पृथिवीपर मनुष्याके द्वारा श्राद्धामें सदैव जिनकी ज़ा होती है, जो श्रद्धापूर्वक स्वजनासे पूजित होकर अभीष्ट

लोक प्रदान करते हैं, म उन पितृगणाको प्रणाम करता हूँ। इस पृथिवीपर ब्राह्मणजन वाञ्छित अभीष्ट लाभके लिये प्राजापत्यलोक प्रदान करनेवाले जिन पितरोकी सदैव पूजा

नमस्येऽह पितॄन् वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । स्वकर्माभिरतैर्नित्य पुष्पधूपान्नवारिभि ॥
नमस्येऽह पितॄञ्छ्राद्धे शूद्रैरपि च भक्तित । सतर्प्यन्ते जगत्कृत्स्न नाम्ना ख्याता सुकालिन ॥
नमस्येऽह पितॄञ्छ्राद्धे पाताले ये महासुरै । सतर्प्यन्ते सुधाहारास्त्यक्तदम्भमदै सदा ॥
नमस्येऽह पितॄञ्छ्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले । भोगैरशेषैर्विधिवन्नागै कामानभीप्सुभि ॥
नमस्येऽह पितॄञ्छ्राद्धै सर्पै सतर्पितान् सदा । तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितै ॥
पितॄन्नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोकेऽथ महीतले वा । तथान्तरिक्षे च सुरारिपूज्यास्ते वै प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् ॥
पितॄन्नमस्ये परमार्थभूता ये वै विमाने निवसन्त्यमूर्ता । यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वरा क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥
पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्ता स्वधाभुज काम्यफलाभिसन्धौ । प्रदानशक्ता सकलेप्सिताना विमुक्तिदा येऽनभिसहितेषु ॥
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितर समस्ता इच्छावता ये प्रदिशन्ति कामान् । सुरत्वमिन्द्रत्वमितोऽधिक वा गजाश्वरत्नानि महागृहाणि ॥
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति । तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥
येषा हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसस्था । ये पिण्डदानेन मुद प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयै ॥
ये खड्गमासेन सुरैरभीष्टै कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च । कालेन शाकेन महर्षिवर्यै सप्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥
कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषा मम पूजितानाम् । तेषा च सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धाम्बुभोज्येषु मया कृतेषु ॥
दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु । ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्या प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तुष्टिम् ॥
पूज्या द्विजाना कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणा ज्वलनार्कवर्णा । तथा विशा ये कनकावदाता नीलीप्रभा शूद्रजनस्य ये च ॥
तेऽस्मिन्समस्ता मम पुष्पगन्धधूपाम्बुभोज्यादिनिवेदनेन । तथाग्निहोमेन च यान्ति तृप्ति सदा पितृभ्य प्रणतोऽस्मि तेभ्य ॥
ये देवपूर्वाण्यभितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहृतानि । तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्य ॥
रक्षासि भूतान्यसुरास्तथोग्रान् निर्णाशयन्तु त्वशिव प्रजानाम् । आद्या सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्य ॥
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपा सोमपास्तथा । व्रजन्तु तृप्ति श्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पिता मया ॥
अग्निष्वात्ता पितृगणा प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् । तथा बर्हिषद पान्तु याम्या मे पितर सदा ।
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपा ॥
रक्षाभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषत । सर्वत पितरो रक्षा कुर्वन्तु मम नित्यश ॥
विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्य शुभानन । भूतिदो भूतिकृद् भूति पितृणा ये गणा नव ॥
कल्याण कल्यद कर्ता कल्य कल्यतराश्रय । कल्यताहेतुरनघ षडिमे ते गणा स्मृता ॥
वरो वरेण्यो वरदस्तुष्टिद पुष्टिदस्तथा । विश्वपाता तथा धाता सप्तैते च गणा स्मृता ॥
महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबल । गणा पञ्च तथैवैते पितृणा पापनाशना ॥
सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिद । पितृणा कथ्यते चैव तथा गणचतुष्टयम् ॥
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिल जगत् । त एवात्र पितृगणास्तुष्यन्तु च मदाहितात् ॥

मार्कण्डेय उवाच

एव तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रित । प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारक ॥
तद्दृष्ट्वा सुमहत्तेज समाच्छाद्य स्थित जगत् । जानुभ्यामवनीं गत्वा रुचि स्तोत्रमिद जगौ ॥

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्ताना पितृणा दीप्ततेजसाम् । नमस्यामि सदा तेषा ध्यानिना दिव्यचक्षुषाम् ॥
इन्द्रादीना च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा । सप्तर्षीणा तथान्येषा तान्नमस्यामि कामदान् ॥
मन्वादीना च नेतार सूर्याचन्द्रमसोस्तथा । तान्नमस्याम्यह सर्वान् पितॄनप्युदधावपि ॥
नक्षत्राणा ग्रहाणा च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा । द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलि ॥
प्रजापते कश्यपाय सोमाय वरुणाय च । योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलि ॥
नमो गणेभ्य सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु । स्वायम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्तिधरास्तथा । नमस्यामि तथा सोम पितर जगतामहम् ॥
अग्निरूपास्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम् । अग्निसोममय विश्व यत एतदशेषत ॥
ये च तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्तय । जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिण ॥
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्य पितृभ्यो यतमानस । नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रसीदन्तु स्वधाभुज ॥

मार्कण्डेय उवाच

एव स्तुतास्ततस्तेन तेजसो मुनिसत्तमा । निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश ॥
निवेदन च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् । तद्भूषितानथ स तान् ददृशे पुरत स्थितान् ॥
प्रणिपत्य रुचिर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलि । नमस्तुभ्य नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृत ॥ (८९।१३—६३)

करते हैं, मैं उन सभीको नमन करता हूँ।

तपके द्वारा निर्धूतकल्मष, सयत आहार करनेवाले अरण्यवासी मुनियाके द्वारा वनमें उत्पन्न पदार्थोंके माध्यमसे किये गये श्राद्धद्वारा जिन पितराका तृप्ति प्रदान की जाती है, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। नैष्ठिक धर्मचारी, जितेन्द्रिय एव समाधिस्थ ब्राह्मणाके द्वारा जो विधिवत् नित्य सतृप्त किये जाते हैं, उन पितराको मैं प्रणाम करता हूँ। क्षत्रियगण इस लोक तथा स्वर्गलोकका फल प्रदान करनेवाले जिन पितृगणाको श्राद्धमे प्रदत्त कव्य-पदार्थोंसे सतुष्ट करते हैं, उन सभी पितराको मेरा नमन है। स्वकर्मनिरत वैश्यगण पृथ्वीपर सदा जल, पुष्प धूप तथा अन्नादिके द्वारा जिनकी अर्चना करते हैं उन पितरोका मैं नमस्कार करता हूँ। शूद्रगण इस भूतलपर भक्तिपूर्वक श्राद्धमें जिन समस्त लोकको सतृप्त करते हैं, मैं ऐसे सुकालिन् नामसे विख्यात पितराको प्रणाम करता हूँ।

पाताललोकमे रहनेवाले असुरगण अपने दम्भ एव अहकारका परित्यागकर श्राद्धमे जिन अमृतपान करनेवाले पितराको तृप्ति प्रदान करते हैं, मैं उन सभी पितृजनाको नमन करता हूँ। रसातलमें अवस्थित नागगण अपनी मनोवाञ्छित कामनाआको पूर्ण करनेकी अभिलाषाआसे प्रेरित होकर विधिपूर्वक श्राद्धमे प्रदत्त भोग-पदार्थोंके द्वारा जिन पितृगणाकी पूजा करते हैं, मैं उन पितराको नमस्कार करता हूँ। रसातलमें स्थित सर्पगण भी विधिवत् मन्त्रोच्चारके साथ प्रदान किये गये भोग-पदार्थोंसे समन्वित श्राद्धके द्वारा जिन पितृगणाकी अर्चना करते हैं, मैं उन सभीका प्रणाम करता हूँ। जो देवलोक अन्तरिक्ष एव पृथिवीलोकमें प्रत्यक्षरूपसे निवास करते हैं, देवताआ तथा दैत्योके भी जो पूज्य हैं, ऐसे उन पितृजनाको मैं नमन करता हूँ। वे मेरे द्वारा निवेदित वस्तुआको प्राप्त करें।

जो परमार्थ अर्थात् दूसरेका हित करनेके लिये पितृयोनिमें रहकर भी अमूर्तरूपसे विमानमे विद्यमान रहते हैं, श्रेष्ठ योगीजन कष्टोंसे मुक्ति प्रदान करनेवाले जिन पितृजनोकी पूजा अपने निर्मल मनसे करते हैं, मैं उन पितराको नमस्कार करता हूँ। जो स्वर्गमें मूर्तिमान् होकर निवास करते हैं एव स्वधाभोजी हैं जो सभी अभिलषित जनाका उनकी इच्छित कामनाआका फल प्रदान करनेमे समर्थ हैं और जो निष्काम-जनाकी मुक्तिके कारण हैं मैं उन पितराको प्रणाम करता हूँ।

जो इच्छुकजनाके अभीष्टको इसी लोकमें सिद्ध कर देते हैं तथा देवत्व इन्द्रत्व और उससे भी अधिक श्रेष्ठ पद अथवा हाथी, घोडे, रत्न और उत्तम प्रकारके भवन प्रदान करनेमें सक्षम हैं, वे समस्त पितृजन मेरी इस प्रार्थनासे सतुष्ट हों। जो चन्द्ररश्मि, सूर्यमण्डल और स्वच्छ विमानमे सदा निवास करते हैं, वे पितृजन इस पूजामें हमारे द्वारा प्रदत्त अन्न, जल, गन्धादिके द्वारा सतुष्ट हों और शक्तिवान् बनें।

अग्निमे प्रदान की गयी हविष्यकी आहुतिसे जिन्हें सतुष्टि प्राप्त होती है, जो ब्राह्मणके शरीरमे प्रविष्ट होकर श्राद्ध-भोजन करते हैं, जो पिण्डदान देनेसे प्रसन्न होते हैं, वे सभी पितृगण हमारी इस पूजामें प्रदान किये गये अन्न-जलसे सतुष्ट हों। जो काले-काले सुन्दर तिलोंद्वारा प्रसन्न होते हैं, जो महर्षिजनाके द्वारा श्राद्धमे उस कालमें प्राप्त शाक-पातसे आनन्दित हो उठते हैं, वे पितृजन प्रसन्न हों।

मेरे उन पूज्य पितराके जो अतिशय प्रिय समस्त कव्य पदार्थ हैं, उन्हें उन सभी पदार्थोंकी प्राप्ति, इस पूजामे मेरे द्वारा प्रदान किये गये पुष्प, गन्ध, जल तथा पक्वान्न—भोज्य पदार्थोंमें ही हो जाय। इस भूलोकमें प्रतिदिन जो पितृगण श्रद्धावान् जनाके द्वारा सम्पन्न की गयी पूजाको स्वीकार करते हैं जो प्रत्येक मासकी अन्तिम तिथि तथा अष्टकाकालमे श्रद्धालुआके पूज्य हैं और जिन पितृजनाकी पूजा वर्षान्त एव अभ्युदयकालमें होती है, वे सभी मेरे पितृगण इस श्राद्धमें सतुष्टि प्राप्त करें।

कुन्द-पुष्प तथा चन्द्रके समान स्वच्छ गौर वर्णकी कान्तिको धारण करनेवाले जो पितृजन ब्राह्मणाके पूज्य हैं, देदीप्यमान सूर्यके समान वर्णवाले जिन पितराका पूजन क्षत्रियजन करते हैं, स्वर्णके समान कान्तिको धारण किये हुए जो पितृगण वैश्यवर्ण और नीला कान्तिसे सुशोभित जो पितृजन शूद्रवर्णके पूजनीय हैं, वे सभी इस पूजामे मेरे द्वारा निवेदित गन्ध, पुष्प धूप, जल एव भोज्यादि-पदार्थ तथा अग्निमे समर्पित आहुतिसे सदाके लिये तृप्ति प्राप्त करें। मैं उन सभी पितराका प्रणाम करता हूँ।

श्राद्धादिमें अपनी क्षुधाको पूर्णरूपसे सतुष्ट करनेके निमित्त जो पितृगण देवताआके पूर्व ही श्रद्धालु व्यक्तियाके द्वारा अर्पित कव्य-पदार्थोंका ग्रहण कर लेते हैं और सतुष्ट होकर जो अपने स्वजनाके लिये ऐश्वर्योंकी सृष्टि करते हैं मैं इस श्राद्धमे उन सभी पितराको प्रणाम करता हूँ। जो देवताआके आदिपुरुष एव देवराज इन्द्रसे भी पूजित हैं, वे राक्षस भूत, वेताल, असुर तथा उग्र योनिवाले (हिंसक जीव-जन्तुआ)-का विनाश करके अपनी प्रजा (सतति)-का रक्षा करें। मैं उन पितराको प्रणाम करता हूँ।

जो अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप तथा सोमप नामक पितृगण हैं, वे सभी इस श्राद्धमे मेरे द्वारा सतृप्त होकर तृप्तिको प्राप्त कर। अग्निष्वात्त पितर मेरी पूर्व दिशाकी रक्षा कर। बर्हिषद् नामक पितृगण सर्वदा मेरी दक्षिण दिशाकी अभिरक्षा करे। आज्यप पितृजन पश्चिम दिशा तथा सोमप पितृगण उत्तर दिशाको रक्षा कर। ये समस्त पितृजन राक्षस, भूत, पिशाच एव असुरगणाके कारण उत्पन्न दोपोसे नित्य सब प्रकारसे हमारी रक्षा कर।

विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धान्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति नामक जो पितराके नौ गण हैं तथा कल्याण आर कल्यद, कल्यकर्ता, कल्यतराश्रय, कल्यताहेतु एव अनघ नामक जो पितराके छ गण कहे गये हैं और वर, वरेण्य, वरद, तुष्टिद, पुष्टिद, विश्वपात एव धाता नामसे विख्यात—ये सात गण तथा पितृगणाके पापविनाशक जा महान्, महात्मा, महित, महिमावान् और महाबल नामसे प्रसिद्ध—ये पाँच गण हैं, उन गणोके ही साथ सुखद, धनद, धर्मद और भूतिद नामक पितरोका एक अन्य गण-चतुष्टय कहा गया है। इस प्रकार कुल मिलाकर उन पितरोके एकतीस गण हो जाते हैं, जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् परिव्याप्त है। ये सभी पितृजन इस श्राद्धमे मेरे द्वारा प्रदत्त कव्यादिसे सतुष्ट हो।'

इस प्रकार उस रुचिकी स्तुतिसे पितर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उसी समय सहसा एक दिव्य तेजोराशि उत्पन्न हुई, जो आकाशमण्डलको अपने तेजसे चतुर्दिक् परिव्याप्त कर रही थी। सम्पूर्ण विश्वको अपने तेजसे भलीभाँति आच्छादित करनेवाली उस तेजोराशिको देखकर रुचि पृथिवीपर घुटने टेककर पुन इस स्तुतिका गान करने लगे—

रुचि बोले—'जो सर्वपूज्य, अमूर्त, देदीप्यमान तेजसे युक्त, ध्यानियाके हृदयमे विराजमान रहनेवाले एव दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न पितृजन हैं, उन सभीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो इन्द्रादि देवगण, दक्ष, मरीचि एव सप्तर्पिया तथा अन्य श्रेष्ठजनाके नायक और सभी कामनाआको पूर्ण करनेवाले हैं, उन पितरोको मैं नमन करता हूँ। जो मनु आदि तथा सूर्य, चन्द्र एव समुद्रके भी अधिनायक हैं, उन समस्त पितृगणोको मैं प्रणाम करता हूँ। जो नक्षत्र, ग्रह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग ओर पृथिवीके नेता है, उन पितरोको मैं हाथ जोडकर नमस्कार करता हूँ।

मैं प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण और श्रेष्ठ योगीजनोको सर्वदा हाथ जोडकर नमन करता हूँ। मैं साता लोकमे अवस्थित सप्तगणाको प्रणाम करता हूँ। स्वयम्भू और योगचक्षुप् ब्रह्माको नमन करता हूँ। जो चन्द्रलोकको भूमिपर अवस्थित रहनेवाले एव योगमूर्ति-स्वरूप हैं, ऐसे पितरोको नमस्कार करता हूँ तथा इस जगत्के पितृदेव सोमको भी मैं नमन करता हूँ।

अग्नि ही जिनका रूप ह—ऐसे पितराको मैं प्रणाम करता हूँ। उसी प्रकार जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व अग्नि-सोममय है, ऐसे पितरोको भी नमस्कार करता हूँ। जो तजम विद्यमान रहते हैं, जो चन्द्र-सूर्य ओर अग्निकी प्रतिमूर्ति ह, जा जगत्स्वरूप एव ब्रह्मस्वरूप हैं—ऐसे उन योगपरायण समस्त पितराको सयतचित्तसे अवस्थित होकर मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। वे सभी स्वधाभुजी पितृजन प्रसन्न हा।'

मार्कण्डेयजीने कहा—ह मुनिश्रेष्ठ क्रोष्टुकि। रुचिके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये गये तेज स्वरूप वे सभी पितृगण दसा दिशाआको प्रतिभासित करते हुए प्रत्यक्ष प्रकट हो गये।

रुचिने जिन पुष्प, गन्ध और अनुलेप पदार्थका उन्ह निवेदन किया था, उन्हींसे विभूपित उन पितराको उन्हाने अपने समक्ष उपस्थित देखा।

रुचिने पुन भक्तिपूर्वक हाथ जोडकर प्रणाम निवेदन किया और 'पृथक्-पृथक्-रूपसे आप सभीको नमन ह,

नमन है'—ऐसा आदरपूर्वक कहा—

प्रसन्न होकर उन पितृजनोंने उन मुनिश्रेष्ठ रुचिसे 'वर माँगो'—ऐसा कहा। नतमस्तक रुचिने उन पितरोंसे कहा—

रुचिने कहा—हे पितृदेव! ब्रह्माने प्रजाओंकी सृष्टि करनेके लिये मुझे आदेश दिया है। अतः मैं आपसे संतानोत्पादनमें समर्थ, श्रेष्ठ एवं दिव्य पत्नीकी कामना करता हूँ।

पितरोंने कहा—हे मुनिसत्तम! इसी स्थानपर आपको अभी इसी क्षण मनोरमा पत्नीकी प्राप्ति होगी, उसीसे आपको पुत्र होगा। हे रुचि! वह बुद्धिमान् मन्वन्तराधिप होकर आपके ही रौच्य इस नामसे तीनों लोकोंमें ख्याति प्राप्त करेगा। उसके भी अतिशय बलवान्, महापराक्रमशाली महात्मा और पृथिवीका पालन करनेवाले बहुत-से पुत्र होंगे। आप भी प्रजापति होकर चार प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि करके अधिकार समाप्त होनेपर धर्मके तत्त्वज्ञानको प्राप्तकर सिद्धि प्राप्त करेंगे।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस स्तुतिसे हम सभीको संतुष्ट करेगा, उससे प्रसन्न होकर हम लोग उसे उत्तम भोग, आत्मविषयक उत्तम ध्यान, आयु, आरोग्य तथा पुत्र-पौत्रादि प्रदान करेंगे। अतः कामनाओंकी पूर्ति चाहनेवाले श्रद्धालुओंको निरन्तर इस स्तोत्रसे पितरोंकी स्तुति करनी चाहिये। जो मनुष्य श्राद्धमें भोजन कर रहे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके समक्ष भक्तिपूर्वक अत्यन्त प्रिय इस स्तोत्रका पाठ करेगा तो उस स्तवनको सुननेके प्रेमसे हम सबकी भी वहाँ उपस्थिति रहेगी। हम लोगोंकी उपस्थितिसे वह श्राद्ध अक्षय होगा इसमें संदेह नहीं है[1]।

जिस श्राद्धमें इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है, उस श्राद्धमें हमारी तृप्ति बारह वर्षतकके लिये हो जाती है। हेमन्त-ऋतुमें इस स्तोत्रका पाठ बारह वर्षपर्यन्त हमें संतृप्ति प्रदान करता है। शिशिर-ऋतुमें इस शुभ स्तोत्रका पाठ करनेसे चौबीस वर्षोंतक हमारी तृप्ति रहती है। वसन्त एवं ग्रीष्म-ऋतुमें सम्पन्न होनेवाले श्राद्ध-कर्मके अवसरपर इस स्तोत्रका पाठ हम लोगोंके लिये सोलह वर्षोंतक तृप्ति प्रदान करनेका साधन होता है। हे रुचे! वर्षाकालके दिनोंमें इस स्तोत्र-पाठके साथ किया गया श्राद्ध हम सभीके लिये अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला होता है। शरत्कालमें सम्पादित श्राद्धके अवसरपर पठित यह स्तोत्र हम लोगोंको पंद्रहवर्षीय तृप्ति प्रदान करता है।

जिस घरमें लिखकर यह सम्पूर्ण स्तोत्र सदैव रखा रहता है, वहाँ श्राद्ध करनेपर हमारी उपस्थिति विद्यमान रहती है अर्थात् उस श्राद्धमें हम लोग उपस्थित रहते हैं। हे महाभाग! इसलिये श्राद्धमें भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके सामने हम लोगोंको तृप्ति प्रदान करनेवाले इस स्तोत्रको सुनाना चाहिये[1]। (अध्याय ८९)

१-[illegible]

[illegible]

प्रम्लोचा नामक अप्सराकी दिव्य कन्या मानिनीसे प्रजापति रुचिका विवाह

मार्कण्डेय मुनिने कहा—पितरोकी कृपासे उसी समय उस नदीके मध्यसे ही रुचिक समीप प्रम्लोचा नामकी मनको प्रिय लगनेवाली कृशाङ्गी, सुन्दर श्रेष्ठ एक अप्सरा प्रकट हुई। उस श्रेष्ठ अप्सराने प्रिय एव मधुर वाणीम महात्मा रुचिसे कहा—हे तपस्विश्रेष्ठ। मेरी प्रसन्नतासे वरुणके पुत्र महात्मा पुष्करद्वारा मेरी एक अतिशय सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई हे। मैं उस सुन्दर स्वरूपवाली मानिनी नामवाली कन्याको भार्याके रूपमे आपको प्रदान करती हूँ, आप उसे वरण करे, इस कन्यासे अतिशय बुद्धिमान् मनु नामक आपका पुत्र उत्पन्न होगा।

इसपर उस रुचिने 'ऐसा ही होगा।'—इस प्रकार कहा। ऐसा कहनेपर उस नदीके मध्य-जलसे मानिनी नामकी शरीरधारिणी एक दिव्य कन्या निकली।

उस नदीके तटपर मुनिश्रेष्ठ रुचिने अनेक महामुनियोको बुलाकर विधिपूर्वक कन्याके साथ पाणिग्रहण किया । उस कन्यासे अतिशय पराक्रमी और महाद्युति तथा पिताके नामसे रौच्यके रूपम विख्यात एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो रौच्य मन्वन्तरका अधिपति हुआ। (अध्याय ९०)

भगवान् विष्णुका अमूर्त ध्यान-स्वरूप

सूतजीने कहा—हे शौनक! स्वायम्भुव मनु आदि मुनिजन व्रत, यम, नियम, पूजा, ध्यान, स्तुति तथा जपमे निरत रहकर भगवान् हरिका ध्यान करते हैं। वे हरि देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहकारसे रहित हैं। वे आकाश, तेज, जल, वायु तथा पृथिवी नामक सभी पञ्चभूतोसे असम्बद्ध हैं तथा उनके धर्मसे भी रहित हैं। वे सभी प्राणियाके स्वामी, सबको आबद्धकर नियमन करनेवाले नियन्ता एव इस जगत्के प्रभु हैं। वे चैतन्यरूप, सबके स्वामी और निराकार हैं। वे सभी आसक्तियासे रहित, सभी देवोसे पूजित तथा महेश्वर हैं। वे तेज स्वरूप तथा तीना गुणसे भिन्न हैं। वे सभी रूपोसे रहित एव कर्तृत्वादिसे शून्य हैं।

वे वासनाविहीन, शुद्ध, सर्वदोषरहित, पिपासावर्जित तथा शोक-मोहादिसे दूर रहते हैं। वे हरि जरा-मरणसे रहित कूटस्थ तथा मोहवर्जित हैं। वे सृष्टि एव प्रलयसे रहित एव सत्यस्वरूप हैं, निष्कल परमेश्वर हैं। वे जाग्रत्, स्वप्न एव सुपुप्ति आदि अवस्थाओसे रहित तथा नामरहित हैं। वे जाग्रत् आदि अवस्थाओके अध्यक्ष, शान्तस्वरूप देवाधिदेव हैं। वे जाग्रत् आदि अवस्थाओमे विद्यमान रहनेवाले हैं तथा नित्य हैं और कार्य-कारणभावसे रहित हैं।

वे सभीके द्वारा दखने योग्य, मूर्तस्वरूप, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर एव सूक्ष्मतम हैं। वे ज्ञानदृष्टिवाले, कर्णेन्द्रियके लिये सुनने योग्य विज्ञान और परमानन्दस्वरूप हैं। वे ससारसे रहित तथा तैजससे भी वर्जित हैं। वे प्रकृष्ट ज्ञानसे अप्राप्य, तुरीयावस्थामे विद्यमान रहनेवाले परमाक्षरस्वरूप ब्रह्म हैं। वे सभीके रक्षक एव सभीके हन्ता हैं। वे सभी प्राणियाके आत्मस्वरूप हैं, बुद्धि ओर धर्मसे रहित हैं। व हरि निराधार हैं। साक्षात् कल्याणस्वरूप शिव हैं। वे विकारहीन, वेदान्तियाके द्वारा जानने योग्य, वेदरूप, इन्द्रियातीत, सर्वकल्याणप्रद, परमशुभ, भूतेश्वर, शब्द-रूप-रस-स्पर्श और गन्ध—इन पाँच तन्मात्राआसे रहित अनादि ब्रह्म हैं। वे योगियाके द्वारा सम्पुटित ब्रह्मरन्ध्रम अवस्थित 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसे परिज्ञानमात्र हैं।

हे महादव! इस प्रकार ज्ञान प्राप्तकर जितेन्द्रिय मनुष्यको उन हरिका ध्यान करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकारसे उन हरिका ध्यान करता है, वह निश्चित ही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। (अध्याय ९१)

भगवान् विष्णुका मूर्त ध्यान-स्वरूप

भगवान् हरिका मूर्त ध्यानरूप इस प्रकार है—वे विष्णु करोड़ों सूर्यके समान जयशील, अद्वितीय प्रभासम्पन्न, कुन्दपुष्प एवं गोदुग्ध-सदृश धवल-वर्ण हैं। मोक्ष चाहनेवाले मुनियोंको ऐसे श्रीहरिका ध्यान करना चाहिये। वे अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल शङ्ख-समन्वित हैं। हजारों सूर्यके समान प्रचण्ड ज्वालाओंकी मालासे आवेष्टित, उग्ररूप, चक्रसे युक्त, शान्तस्वभाव और सुन्दर मुखमण्डलवाले वे विष्णु अपने हाथमें गदा धारण करते हैं।

वे रत्नोंसे देदीप्यमान बहुमूल्य किरीटसे युक्त सर्वत्रगामी देव कमलको धारण करते हैं। वे वनमालाको धारण करनेवाले तथा शुभ्र हैं, समान स्कन्धोंवाले तथा स्वर्णाभूषणको धारण करते हैं, वे शुद्ध वस्त्र धारण करनेवाले, विशुद्ध देहवाले और सुन्दर कान्तिवाले हैं तथा कमलपर विराजमान रहते हैं।

वे स्वर्णमय शरीरवाले विष्णु सुन्दर हार, शुभ अंगद (बाजूबंद), केयूर और वनमालासे अलंकृत हैं। वे श्रीवत्स कौस्तुभमणि धारण करनेवाले हैं एवं लक्ष्मीसे वन्दनीय और नेत्रद्वयसे शोभायमान हैं। वे अणिमादिक गुणोंसे समन्वित विष्णु जगत्के सृष्टिकर्ता और संहारक हैं।

वे मुनि, देव तथा दानव सभीके लिये ध्यानगम्य, अत्यन्त सुन्दर हैं। वे ब्रह्मादिसे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणिवर्गके हृदयमें विराजमान हैं। वे सनातन, अव्यय, सभीके ऊपर कृपालु, प्रभु-नारायण, देवाधिदेव तथा चमकते हुए मकराकृत कर्णकुण्डलोंसे सुशोभित हैं। वे दुःखविनाशक, पूजनीय, मङ्गलमय, दुष्टोंके संहारक, सर्वात्मा, सर्वस्वरूप, सर्वत्रगामी और ग्रहदोषोंके निवारक हैं।

वे देदीप्यमान नखोंसे समन्वित तथा सुन्दर-सुन्दर अँगुलियोंसे सम्पन्न, जगत्के शरणस्थल, सभीको सुख देनेवाले सौम्यस्वरूप महेश्वर हैं। वे समस्त अलंकारोंसे अलंकृत, सुन्दर चन्दनसे संलिप्त, सर्वदेवसमन्वित तथा सभी देवताओंका प्रिय करनेवाले हैं।

वे सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी, सर्वेश्वर एवं सभीकी भावनाओंमें विराजमान रहते हैं। वे सूर्यमण्डलसे अधिष्ठित देव, अग्नि और जलमें भी निवास करते हैं। वे वासुदेव जगत्के धाता और मुमुक्षुओंके ध्यान करने योग्य हैं। हे हर! इस लोकमें प्राणियोंके द्वारा 'मैं ही वासुदेव हूँ', इस प्रकार चिन्तनीय वे हरि आत्मस्वरूप हैं।

जो मनुष्य इस प्रकारके भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं, वे परमगति प्राप्त करते हैं। प्राचीन कालमें महर्षि याज्ञवल्क्यने ऐसे स्वरूपवाले उन देवेश्वरका ध्यान किया था, जिसके फलस्वरूप धर्मोपदेशकके कर्तृत्वको प्राप्त करके उन्होंने परमपद प्राप्त किया था। जो मनुष्य इस विष्णु-ध्यान नामक अध्यायका पाठ करता है, उसको भी परमगतिकी प्राप्ति होती है। (अध्याय १२)

वर्णधर्म-निरूपण

श्रीशिवजीने कहा—हे हर! हे केशिहन्ता! हे माधव! महर्षि याज्ञवल्क्यजीने जिस धर्मका प्रतिपादन किया था, आप मुझको उसे सुनानेकी कृपा करें।

श्रीहरिने कहा—मिथिलापुरीमें विराजमान महर्षि याज्ञवल्क्यजीके पास पहुँचकर ऋषियोंने उनका अभिवादन किया और उनसे सभी वर्णोंके धर्मादिक कर्तव्योंको जाननेकी अपनी इच्छा प्रकट की। तत्पश्चात् वे जितेन्द्रिय महामुनि सर्वप्रथम भगवान् विष्णुका ध्यान करके उन सभी ऋषियोंसे धर्मसम्बन्धित विषयका वर्णन करने लगे।

याज्ञवल्क्यजीने कहा—जिस देशमें कृष्णसार नामक मृग विचरण करते हैं, मैं उस देशके धर्मादिक विषयोंका वर्णन करता हूँ, आप सब सुनें।

पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिषके सहित चार वेद—ये धर्म तथा चौदह विद्याओंके स्थान हैं। मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शङ्ख-लिखित, हारीत और अत्रिके साथ मैं स्वयं—हम सब भगवान् विष्णुका ध्यान करके धर्मोपदेशक हुए।

धर्मका अर्थ है—पुण्य। पुण्यकी उत्पत्तिके हेतु हैं—

शास्त्रविहित देशम, शास्त्रविहित कालमे, शास्त्रविहित उपायसे श्रद्धापूर्वक योग्य पात्र (विद्या एव तपसे समृद्ध ब्राह्मण)-को दिया गया दान तथा इसके अतिरिक्त अन्य सभी शास्त्रोक्त कर्म। इन्ह अलग-अलग तथा समूहरूपम धर्म (पुण्य)-का उत्पादक समझना चाहिये। धर्मके उत्पादक इन हेतुआका मुख्य फल (परम धर्म) योग (चित्तवृत्तिनिरोध)-के द्वारा आत्मदर्शन (आत्माका साक्षात्कार) ही है। इस आत्मदर्शनरूप परम धर्मके लिये देश आदिका कोई नियम नहीं है। चित्तवृत्तिनिरोध (योग) होनेसे यह हाता ही है। चित्तवृत्तिनिरोधके लिये विहित उपायोके अनुष्ठानकी सम्पन्नतामे देश आदिका नियम आवश्यक हे। अभी धर्मके उत्पादक जिन हेतुआका निर्देश किया गया है, उनके बारेम सदेह होनेपर निर्णय प्राप्त करनेके लिये परिषद् (धर्मसभा)-का सहयोग लेना चाहिये। यह परिषद् वेदा एव धर्मशास्त्राके ज्ञाता चार ब्राह्मणोकी अथवा तीन ब्राह्मणाकी होती है। इस परिषद्का निर्णय धर्मके सम्बन्धमे मान्य होता है। ब्रह्मवेत्ता—वेद एव धर्मशास्त्रका विज्ञ एक ब्राह्मण भी धर्मके विषयम उत्पन्न सदेहका निराकरण कर सकता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं। इनमे प्रारम्भके तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं। गर्भाधानसे लेकर श्मशानपर्यन्त ऐसे द्विजाकी समस्त क्रियाएँ मन्त्राके द्वारा होती हैं।

गर्भाधान-सस्कार ऋतुकाल[1]मे होता है। गर्भस्पन्दन होनेसे पूर्व ही पुसवन-सस्कार किया जाता है। गर्भाधानके छठे अथवा आठवें मासमें सीमन्तोन्नयन-सस्कार होता है। सतानोत्पत्तिके बाद जातकर्म और ग्यारहवे दिन नामकरण-सस्कार करनेका विधान हे। चतुर्थ मासम निष्क्रमण तथा छठे मासमे अन्नप्राशन-सस्कार करना चाहिये। उसके बाद कुल-परम्पराके अनुसार चूडाकरण नामक सस्कार करनेका विधान है।

इस प्रकार सतानके लिये विहित उक्त सस्कारोको करनेसे बीज (शुक्र) तथा गर्भ (शोणित)-के कारण उत्पन्न हुए सभी पाप शान्त हो जाते हैं। स्त्रियाकी ये सभी क्रियाएँ (सस्कार) अमन्त्रक होती हैं और विवाह-सस्कार समन्त्रक होता है। (अध्याय ९३)

वर्णधर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—गर्भधारण अथवा जन्म-ग्रहणके आठवे वर्षमे ब्राह्मण, ग्यारहवे वर्षमे क्षत्रिय तथा बारहव वर्षम वैश्यका उपनयन-सस्कार गुरु करे अथवा कुल-परम्पराके अनुसार करे। गुरु इस उपनीत शिष्यको महाव्याहृतियांके सहित वेद पढाये ओर शोचाचारकी शिक्षा प्रदान करे।

द्विजाको दिन ओर सध्याकालम उत्तराभिमुख तथा रात्रिके समय दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्रका परित्याग करना चाहिये। तदनन्तर मिट्टीसे एव जलसे[2] मल-मूत्रक गन्ध एव लेपका निवारण जबतक न हो तबतक इन्द्रियोका परिमार्जन करे।

तत्पश्चात् शुद्ध स्थानमे जाकर दोनो पाँवाको भलीभाँति धोकर दोना जानुआके मध्य अपने हाथोको अवस्थित करके उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख बैठे और दाहिने हाथमे स्थित ब्राह्मतीर्थ (अर्थात् अगुष्ठका मूल स्थान)-से आचमन करे। कनिष्ठा, तर्जनी एव अगुष्ठ अगुलिके मूल स्थान तथा हाथके अग्रभागमे क्रमश प्रजापतितीर्थ, पितृतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ और देवतीर्थका अधिष्ठान होता है।

कूप एव तडागादिके शुद्ध जलसे तीन बार आचमन करक अगुष्ठमूलसे दो बार ओठोका मार्जन करना चाहिये। द्विजातियाको चाहिये कि वे फेन और बुद्बुदासे रहित प्रकृतिद्वारा प्रदत्त शुद्ध-स्वाभाविक जलसे अपनी इन्द्रियाका स्पर्श यथाविधि करे। हृदय, कण्ठ एव तालुतक पहुँचनेवाले जलसे ही क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्य आचमन करके शुद्ध होते ह। स्त्री एव शूद्रकी तालुतक पहुँचनेवाले शुद्ध

१-स्त्रियाका वह काल-विशेष ऋतुकाल है जो गर्भ धारणके योग्य अवस्थाविशेषसे युक्त है। यह विशेष काल रजोदर्शनके दिनसे सोलह अहोरात्रका होता है। इन सोलह अहोरात्रोम प्रथम चार रात्रियाँ गर्भाधानक लिय वर्जित हैं अत इन चार रात्रियाके बादकी बारह रात्रियाँ ही गर्भाधानके लिये विहित हैं।

२-कूप आदिसे बाहर निकाले गये जलक द्वारा शुद्धिका विधान है। जलके मध्य शौच आदि क्रिया निषिद्ध है।

जलसे एक बार आचमन करनेसे ही शुद्धि हो जाती है। जिनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, उनके लिये भी इसी प्रकार आचमनकी व्यवस्था है।

प्रात स्नान, जलदैवत 'ॐ आपो हि ष्ठा०' आदि मन्त्रासे मार्जन, प्राणायाम, सूर्योपस्थान एव गायत्रीमन्त्रका जप प्रतिदिन अपने अधिकारके अनुसार यथाविधि करना चाहिये।

'ॐ आपो ज्योती०' आदि मन्त्र ही गायत्रीमन्त्रका शिरोभाग हैं। इस शिरोभागसे युक्त प्रतिमहाव्याहृति एक-एक बार प्रणव जोडकर तीनों महाव्याहृतियोंके साथ गायत्रीमन्त्रका मानस-जप करते हुए मुख एव नासिकामे सचरणशील वायुका नियमन करना ही प्राणायाम है।

प्राणायाम करनेके पश्चात् तीन बार जल देवताके मन्त्रसे प्रोक्षणकर प्रतिदिन सायकाल नक्षत्रदर्शनतक पश्चिममुख बैठकर गायत्रीमन्त्रका जप करे। इसी प्रकार प्रात कालकी सध्या करके पूर्वमुख होकर गायत्रीमन्त्रका जप करते हुए सूर्यदर्शनके समयतक स्थिर रहे। उन दोनो सध्याओमे अपने गृह्यसूत्रके अनुसार अग्निहोत्र करे।

तदनन्तर 'मैं अमुक हूँ' इस प्रकार कहते हुए वृद्धजनो (गुरु आदि बडे लोगो)-को प्रणाम करे। इसके बाद सयमी ब्रह्मचारी स्वाध्यायके लिये एकाग्रचित्त होकर गुरुकी सेवामे उनके अधीन सदा रहे। तत्पश्चात् गुरुके द्वारा बुलानेपर उनके पास जाकर अध्ययन करे (गुरुको स्वय अध्यापनके लिये प्रेरित न करे) और भिक्षामे जो कुछ प्राप्त हो, उसे गुरुके चरणोमे समर्पित करे। मन, वाणी और शरीरके द्वारा गुरुके हितकारी कार्योमे सदा सलग्न रहे।

ब्रह्मचारीको दण्ड मृगचर्म, यज्ञोपवीत और मूँजमेखलाका धारण यथाशीघ्र करना चाहिये तथा अपनी जीविकाके लिये अनिन्दित श्रेष्ठ ब्राह्मणोके घरसे भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। भिक्षा ग्रहण करते समय ब्राह्मण क्षत्रिय एव वैश्य-वर्णके ब्रह्मचारीको क्रमश आदिमे मध्यम तथा अन्तम 'भवति' शब्दका प्रयोग करना चाहिये। इसके अनुसार 'भवति भिक्षा देहि', 'भिक्षा भवति देहि' और 'भिक्षा देहि भवति'— इस प्रकार वाक्यप्रयोग यथाक्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्य ब्रह्मचारीको करना विहित है। इस वाक्यका अर्थ है—आप भिक्षा दे। 'भवति' यह माताओके लिये सम्बोधन है।

अग्निकार्य (अग्निहोत्र) करके गुरुकी आज्ञासे विनयपूर्वक आपोऽशान[१]-क्रिया करके सम्मानके सहित उस भिक्षासे प्राप्त भोज्यान्नको बिना निन्दा किये ही मौन होकर ग्रहण करना चाहिये। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए आपत्तिरहित कालमे, रोग आदिके अभावमे अनेकका अन्न ग्रहण करे (एक घरका अन्न न ग्रहण करे)। अपने व्रतका सयमपूर्वक पालन करता हुआ ब्राह्मण ब्रह्मचारी श्राद्धमे आदरपूर्वक आहूत होनेपर इच्छानुसार भोजन कर सकता है, किंतु उसे श्राद्धकाल या अन्य अवसरोमे मधु, मद्य, मास अथवा उच्छिष्ट अन्न भोजनके रूपमे ग्रहण नहीं करना चाहिये।

जो विधि-विहित क्रियाओको सम्पन्न कराके ब्रह्मचारीको वेदकी शिक्षा प्रदान करता है, वही 'गुरु' है। जो केवल यज्ञोपवीत-सस्कार कराके ब्रह्मचारीको वेदकी शिक्षा देता है, वह 'आचार्य' कहा गया है। जो वेदके एक देशका[२] अध्ययन कराता है, वह '*उपाध्याय*' है। जो वरण लेकर यजमानके यज्ञको सम्पन्न करता है, उसे 'ऋत्विक्' कहा जाता है। यथाक्रम ये सभी—गुरु, आचार्य, उपाध्याय और ऋत्विक् ब्रह्मचारीके लिये मान्य हैं, किंतु इन सभीसे माता श्रेष्ठ है।

प्रत्येक वेदके अध्ययनके लिये बारह-बारह वर्षतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना चाहिये। अशक्तावस्थामे प्रत्येक वेदके अध्ययनके लिये पाँच-पाँच वर्षतक भी ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया जा सकता है। कुछ लोगोका यह भी मत है कि वेदाध्ययन पूर्ण होनेतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन होना चाहिये। केशान्त[३]-सस्कार गर्भसे सोलहवे वर्षमे ब्राह्मणका, गर्भसे बाईसवे वर्षमे क्षत्रियका तथा गर्भसे चौबीसवे वर्षमे वैश्यका होना चाहिये।

१-भोजनके पूर्व तथा अन्तमे एक बार जलसे आचमन करना आपोऽशान-क्रिया है। इसमे 'अमृतोपस्तरणमसि' इस वाक्यका प्रयोग विहित है।

२-मन्त्र एव ब्राह्मणरूपमे वेदके दो भाग हैं। इनमेसे केवल एक भागका अध्यापन अथवा वेदके अङ्गमात्रका अध्यापन वेदके एक देशका अध्यापन है।

३-केशान्त-सस्कारसे ही श्मश्रु (दाढी) बनवानेका आरम्भ होता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्यवर्णके लिये क्रमश सोलह, बाईस और चौबीस वर्षतक उपनयनकाल रहता है। इस कालतक उपनयन न होनेपर ये सभी पतित हो जाते हैं, सर्वधर्मच्युत हो जाते हैं। उनका किसी भी धर्मकार्यमे अधिकार नहीं रहता। व्रात्यस्तोम नामके क्रतुका अनुष्ठान करके ही ये यज्ञोपवीत-सस्कारके लिये योग्य होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्य सबसे पहले माताके उदरसे उत्पन्न होते हैं, उसके बाद पुन मौंजीबन्धन अर्थात् यज्ञोपवीत-सस्कारसे उनका द्वितीय जन्म होता हे। अत ये द्विजाति कहलाते हैं।

श्रौत-स्मार्त यज्ञ, तपस्या (चान्द्रायण आदि व्रत) ओर शुभकर्मों (उपनयन आदि सस्कारा)-का बोधक एकमात्र वेद है। अत द्विजातियाके लिये वेद ही परम कल्याणका साधन है। इससे वेदमूलक स्मृतियाका भी उपयोग स्पष्ट है।

जो द्विज प्रतिदिन ऋग्वेदका अध्ययन करता है, वह देवताआको मधु एव दुग्धसे तथा पितरोको मधु एव घृतसे प्रतिदिन तृप्त करता है। जो द्विज प्रतिदिन यजुर्वेद, सामवेद अथवा अथर्ववेदका अध्ययन करता ह, वह घृत एव अमृतसे पितरा तथा देवताआको प्रतिदिन तृप्त करता हे। ऐसे ही जो द्विज प्रतिदिन वाकोवाक्य[1], पुराण, नाराशसी[2], गाथिका[3], इतिहास[4] तथा विद्याका[5] अध्ययन करता हे, वह पितरो एव देवताआको मास (फल), दूध आर ओदन (भात)-से प्रतिदिन तृप्त करता हे। सतृप्त ये देवता और पितृजन भी इस स्वाध्यायशील द्विजको समस्त अभीष्ट शुभ फलासे सतुष्ट करते हैं। द्विज जिस-जिस यज्ञके प्रतिपादक वेद-भागका अध्ययन करता हे, उस-उस यज्ञके फलको प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त भूमिदान, तपस्या आर स्वाध्यायके फलका भी भागी होता हे।

नैष्ठिक ब्रह्मचारीको अपने आचार्यके सानिध्यम रहना चाहिये। आचार्यके अभावमे आचार्यपुत्र और उसक अभावमे आचार्य-पत्नी तथा उसके भी अभावम वैश्वानर-अग्निके आश्रयम (अपनेद्वारा उपास्य अग्निकी शरणमे) रहना चाहिये। इस प्रकार अपने देहको क्षीण करता हुआ जितेन्द्रिय द्विज ब्रह्मचारी ब्रह्मलोकको प्राप्त करता हे। उसका पुन जन्म नहीं होता। (अध्याय ९४)

गृहस्थधर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे यतव्रत मुनियो! आप सभी अब गृहस्थाश्रमके धर्मोंका वर्णन सुने।

(विद्याध्ययनकी समाप्तिके पश्चात्) गुरुको दक्षिणा प्रदान करके उन्हींकी अनुज्ञासे स्नानकर शिष्यको ब्रह्मचर्यव्रतकी समाप्ति करनी चाहिये। तदनन्तर वह सुलक्षणा, अत्यन्त सुन्दर मनोरमा, असपिण्डा, अवस्थाम छोटी अरोगा भ्रातृमती भिन्न प्रवर एव गोत्रवाली कन्यासे विवाह करे।

सभी असपिण्डा कन्याको विवाहयाग्य बताया गया हे। इससे यह स्पष्ट हो रहा हे कि सपिण्डा कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। महर्षि याज्ञवल्क्यने यहाँ सपिण्डाके बारेम यह बताया है—मातासे लेकर उनके पिता, पितामह आदिकी गणनाम पाँचवीं परम्परातक तथा पितासे लेकर उनके पिता, पितामह आदिकी गणनाम सातवीं परम्परातक सपिण्ड्य समझना चाहिये। इसके मध्यमे आनेवाली कन्या सपिण्ड्य तथा इसके मध्यम न आनवाली कन्या असपिण्डा होगी। इसके अनुसार विवाहके लिये असपिण्डा कन्याका चयन होना चाहिये। ऐसे ही उसी कन्यासे विवाह उचित है, जिसका मातृकुल तथा पितृकुलम पाँच-पाँच परम्परातक सदाचार, अध्ययन एव पुत्र-पौत्रादिकी समृद्धिकी दृष्टिसे विख्यात हो। ऐसे ही कन्याके लिये समानवर्णम उत्पन्न श्रोत्रिय एव विद्वान् पुरुप श्रेष्ठ होता है। अन्य विद्वानोने जो यह कहा हे कि द्विजातियाके लिय शूद्रकुलम उत्पन्न हुई कन्या भी ग्रहण करने योग्य होती है, यह मेरा अभिमत नहीं है, क्याकि उस कन्याम उसस विवाह करनेवाला उसका पति ही स्वय उत्पन्न होता ह[6]। तीनो वर्ण तीन, दो, एक इस क्रमसे वर्णोमे विवाह कर सकते ह। शूद्र-वर्णको

१-वाकोवाक्य—प्रश्नोत्तररूप वेद-वाक्य। २-नाराशसी—रुद्रदैवत्य मन्त्र। ३-गाथिका—यज्ञ-सम्बन्धी इन्द्र आदिकी गाथाएँ। ४-इतिहास—महाभारत आदि। ५-विद्या—वारुणी आदि विभिन्न विद्याएँ। ६-'आत्मा वै जायते पुत्र ' के अनुसार पिता ही पुत्रक रूपम जन्म लेता है।

अपने ही वर्णसे कन्या प्राप्त करनी चाहिये।

अपने घरपर वरका बुलाकर उसे यथाशक्ति अलकृत अपनी कन्या प्रदान करना 'ब्राह्मविवाह' हे। इस विधिसे विवाहित स्त्री-पुरुपसे उत्पन्न हानेवाली सतान दोना कुलाके इक्कीस पीढियाको पवित्र करती है। यज्ञदीक्षित ऋत्विक् ब्राह्मणको अपनी कन्या देना 'दैवविवाह' हे तथा वरसे एक जोडा गो[1] (स्त्री गौ एव पुरुप गौ) लेकर उसको कन्या प्रदान करना 'आर्षविवाह' कहा जाता हे। इस प्रथम (ब्राह्मविवाह) विधिसे विवाहित स्त्री-पुरुपसे उत्पन्न पुत्र अपनी प्रथमकी सात तथा बादकी सात—इस तरह चोदह पीढियाको पवित्र करता हे। आर्षविधिके विवाहसे उत्पन्न पुत्र तीन पूर्व तथा तीन बादकी--इस तरह छ पीढियाको पवित्र करता है।

'तुम इस कन्याके साथ धर्मका आचरण करो'--यह कहकर विवाहकी इच्छा रखनेवाले वरको पिताके द्वारा जब कन्या प्रदान की जाती है, तब ऐसे विवाहको 'काय (प्राजापत्य)-विवाह' कहते हैं। इस विवाह-विधिसे उत्पन्न पुत्र अपनेसहित पूर्वकी छ तथा बादकी छ पीढियो—इस तरह कुल तेरह पीढियाको पवित्र करता हें। कन्याके पिता या बन्धु-बान्धव अथवा कन्याको ही यथाशक्ति धन देकर यदि कोई वर उससे विवाह करता हे तो इस विवाहको 'असुरविवाह' और वर एव कन्याक बीच पहले ही पारस्परिक सहमति हो जानेके बाद जो विवाह होता हे उसको 'गान्धर्वविवाह' कहते ह। कन्याकी इच्छा नही हे, तब भी बलात् युद्ध आदिके द्वारा अपहृत उस कन्याके साथ विवाह करना 'राक्षसविवाह' है। स्वाप (शयन) आदि अवस्थाम अपहरणकर उसके साथ जो विवाह किया जाता ह उसको 'पैशाचविवाह' कहत ह।

इन उपर्युक्त आठ विवाहाम प्रथम चार प्रकारके विवाह अर्थात् ब्राह्म दव आर्ष आर प्राजापत्यविवाह ब्राह्मणवर्णके लिये उपयुक्त ह। गान्धर्वविवाह तथा राक्षसविवाह क्षत्रिय-वणके लिय उचित है। असुरविवाह वेश्यवर्ण आर अन्तिम गर्हित पैशाच नामक विवाह शूद्रवर्णके लिये (उचित) माना गया है।

समान वर्णवाले वर-कन्याके विवाहमे कन्याओके द्वारा गृह्यसूत्रकी विधिके अनुसार वरका पाणिग्रहण अर्थात् हाथ पकडना चाहिये। क्षत्रियकन्या ब्राह्मणवरसे विवाह करते समय ब्राह्मणवरके दाहिने हाथम विद्यमान शर (बाण)-के एकदेशको ग्रहण करे। वैश्यकन्या ब्राह्मण अथवा क्षत्रियवरसे विवाह करते समय वरके हाथम विद्यमान चाबुकके एकदेशको ग्रहण करे। ऐसे ही शूद्रकन्या ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वेश्यवरसे विवाह करते समय वरके उत्तरीय वस्त्र (ऊपर ओढे हुए चादर)-के किनारेको ग्रहण करे[2]।

पिता, पितामह, भ्राता, सकुल्य[3] (बन्धु-बान्धव) अथवा माता कन्यादान करनेके अधिकारी हैं। पूर्वके अभावमे उत्तरोत्तर कन्यादानके अधिकारी हैं, यदि उन्माद आदि दोपसे ग्रस्त नहीं हें। यदि कन्यादानका अधिकारी समयपर कन्यादान न करे तो कन्याके ऋतुमती हो जानेपर कन्यादानके अधिकारीको कन्याके प्रति ऋतुकालमे एक-एक भ्रूणहत्याका पाप लगता है। कन्यादानके दाताके अभावमे कन्याको स्वय उपयुक्त वरका वरण कर लेना चाहिये।

कन्या एक बार दी जाती है, इसलिये कन्या एक बार देकर पुन उसका अपहरण करनेवाला चौरकर्मके समान दण्डका भागी होता है। निर्दुष्ट अर्थात् सौम्य सुशीला पत्नीका परित्याग करनेपर पति दण्डनीय हे, किंतु अत्यन्त दुष्ट (महापातक आदिसे दुष्ट) पत्नीका उपायान्तरके अभावम परित्याग किया जा सकता हे।

यदि कन्याका किसी वरके साथ विवाह करनेके लिये वाग्दानमात्र किया गया हो अनन्तर विवाहके पूर्व हो वरका मरण हो गया तो कलियुगसे अन्य युगाम ऐसी कन्याका पुत्र प्राप्त करनका उपाय यह है—एसी कन्या पुत्र चाहती है तो उसका दवर अथवा काई सपिण्ड या काई सगात्र बडाकी आज्ञा प्राप्त हानपर अपने सभी अङ्गाम घृतलप कर

१-कन्याका पिता वरसे गौका जाड़ा मूल्यक रूपमें नहीं लेता। आवश्यकतावश धर्मकार्य (याग आदि) सम्पन्न करनक लिय होता है। इसलिय मनुस्मृति (३। २९)-के अनुसार जितनास धर्मकार्य हा सके उतना हो (एक ही गौ या गौका जाडा) कन्या पिताको वरस लना चाहिय।

२-दूसर वर्णसे विवाह करनेको यह व्यवस्था कलियुगक लिय नहीं है।

३-सकुल्य—आठवीं पीढ़ीसे दसवीं पीढ़ीतक सकुल्य कहा जाता है।

ऋतुकालमात्रमे उस कन्याके पास तबतक जा सकता है, जबतक गर्भ-धारण न हो। गर्भ-धारणके बाद यदि वह ऐसी कन्याके पास जाता है तो पतित हो जाता है। इस विधिसे इस कन्यासे उत्पन्न पुत्र जिस वरको कन्याका वाग्दान किया गया था, उसका क्षेत्रज पुत्र माना जाता है।

जो स्त्री व्यभिचारिणी है, बहुत प्रयत्न करनेपर भी व्यभिचारसे विरत नहीं हो रही है, उसको अपने गर्हित जीवनके प्रति वैराग्य उत्पन्न करनेके लिये अपने घरमे ही रखते हुए समस्त अधिकारोसे अलग कर देना चाहिये तथा उसे मलिनदशामे ही रखकर उतना ही भोजन देना चाहिये, जितनासे उसकी प्राणरक्षामात्र हो सके। साथ ही उसके निन्दनीय कर्मके लिये उसकी भर्त्सना करनी चाहिये और भूमिपर ही उसके शयनकी व्यवस्था करनी चाहिये।

स्त्रियाको विवाहसे पूर्व चन्द्रने शुचिता, गन्धर्वने सुन्दर मधुर वाणी एव अग्निने सब प्रकारकी पवित्रता प्रदान की है। इसीलिये स्त्रियाँ पवित्र ही होती हैं। अतएव उनके लिये अतप प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है। पर इतनसे यह नहीं समझना चाहिये कि स्त्रियोमे दोपका सक्रमण नहीं होता है। यदि कोई स्त्री केवल मनसे पर पुरुषकी इच्छा करती है तो यह भी एक तरहका व्यभिचार ही है। ऐसे ही अन्य पुरुषसे सम्पर्क करनेका सकल्पमात्र कोई स्त्री कर लेती है तो यह भी किसी रूपमे व्यभिचार ही है। ऐसा व्यभिचार यदि प्रकाशमे नहीं आया है तो इससे उत्पन्न दोषका मार्जन उस स्त्रीके ऋतुकालमे रजोदर्शनसे हो जाता है। यदि पर पुरुष शूद्रके साथ सम्पर्क कर कोई स्त्री गर्भधारण कर लेती है तो इस पापका प्रायश्चित्त उस स्त्रीका त्याग ही है। ऐसे ही गर्भवध, पतिका वध, ब्रह्महत्या आदि महापातकसे ग्रस्त होनेपर तथा शिष्य आदिके साथ गमन करनेवाली स्त्रीका त्याग ही कर देना चाहिये।

मदिरापान करनेवाली दीर्घ रोगिणी, द्वेष रखनेवाली, वन्ध्या, अर्थका नाश करनेवाली, अप्रियवादिनी (निष्ठुरभाषिणी), कन्याको ही उत्पन्न करनेवाली एव पतिका अहित ही करनेवाली भार्याका परित्याग कर दूसरा विवाह किया जा सकता है। प्रथम विवाहिता (परित्यक्ता) स्त्रीका भी दान, मान, सत्कार आदिके द्वारा भरण करना चाहिये, अन्यथा उस स्त्रीके पतिको महापाप होता है। इसक अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि जिस घरमे पति-पत्नीके मध्य किसी भी प्रकारका विरोध नहीं होता, उस घरमे धर्म-अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी अभिवृद्धि होती है। अत प्रथम विवाहिता एव वर्तमान भार्यामे, अस्वीकृत स्त्री भी पूर्वमे भार्या रही है। इस दृष्टिसे उससे विरोध नहीं ही करना चाहिये। उसे पूर्ण प्रसन्न रखना चाहिये। जो स्त्री पतिकी मृत्युके पश्चात् अथवा उसके जीवित रहते हुए अन्य पुरुषका आश्रय नहीं लेती, वह इस लोकमे यश प्राप्त करती है और अपने पातिव्रत्य-पुण्यके प्रभावसे परलोकमे जाकर पार्वतीके साहचर्यमे आनन्द प्राप्त करती है।

यदि पति अपनी स्त्रीका परित्याग करता है तो उस स्त्रीको भरण-पोषणके लिये अपनी सम्पत्तिका तृतीयाश दे देना चाहिये।

स्त्रियाको अपने पतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिये— यही उनका परम धर्म है। स्त्रियामे ऋतु अर्थात् रजोदर्शनके प्रथम दिनसे सोलह रात्रितक उनका ऋतुकाल होता है। अत पुरुषको उक्त सोलह रात्रियोकी युग्म रात्रियामे अपनी पत्नीके साथ पुत्र-प्राप्तिके लिये ससर्ग करना चाहिये[1]। पर्वोकी तिथियोमे[2] तथा ऋतुकालकी प्रारम्भिक चार तिथियामे सहवास नहीं करना चाहिये। अपनी अपेक्षा क्षाम (दुर्बल) स्त्रीका सहवास पुत्र-प्राप्तिमे सहायक होता है। मघा और मूल नक्षत्रमे सहवास वर्जित है।

इन नियमाका पालन करके ही अपनी स्त्रीसे सुन्दर सबल उत्तम लक्षणावाले नीरोग पुत्रको उत्पन्न किया जा सकता है। स्त्रियाको इन्द्रने जो वर[3] दिया है, उसे ध्यानमे रखते हुए पुरुष यथाकामी (पत्नीकी इच्छानुसार ऋतुकालकी

१-इन नियमोका पालन करनेवालेको 'ब्रह्मचारी' कहा गया है।

२-पर्व-तिथि चार हैं—अष्टमी चतुर्दशी अमावास्या और पूर्णिमा (मनु० ४। १५६)।

३-एक बार स्त्रियाने पुरुषकी अपेक्षा आठगुनी अपनी कामभावनासे बाध्य होकर इन्द्रदेवकी शरणमे जाकर अपने मनोभावको उनसे स्पष्ट किया। इन्द्रदेवने स्त्रियोंके भावको जानकर उन्हे वर दिया—'भवतीना कामविहन्ता पातका स्यात्' ('आप लोगाकी कामभावनाका हनन करनेवाला पुरुष पातकी होगा')। इसी वरके अनुसार पत्नीकी इच्छाके अनुसार ऋतुकालसे अन्य कालकी अनिषिद्ध रात्रियामे भी पत्नीगमन अनुज्ञात है।

रात्रियासे अतिरिक्त अनिषिद्ध रात्रियाम भी अपनी पत्नीके साथ सहवास करनेवाला) भी हो सकता हे। पुरुपके यथाकामी होनेमे दो कारण ह—(१) पुरुपको अपनी पत्नीमे ही रति रखनी चाहिये ओर (२) स्त्रियाकी रक्षा करना पुरुपका धर्म ह। पति, भ्राता, पिता, पितृव्य, सास, श्वशुर, देवर तथा अन्य बन्धु-बान्धवाको स्त्रियाका आभूषण-वस्त्र एव भोजनादिके द्वारा पर्याप्त आदर करना चाहिये।

स्त्रीको घरकी सामग्री सयमित रूपम रखनी चाहिये कार्यकुशल होना चाहिये, प्रसन्न रहना चाहिये, मितव्ययी (अधिक खर्चीली नहीं) होना चाहिये तथा सर्वदा अपने सास-श्वशुरके चरणाका वन्दन करना चाहिये।

जो स्त्री प्रापितपतिका ह अर्थात् जिसका पति परदेश चला गया हे, उसके लिये किसी प्रकारकी क्रीडा (खेल-तमाशा), शरीरकी सजावट सामाजिक उत्सवाका दर्शन, हास-परिहास तथा दूसरेक घरम गमन करना वर्जित है।

वाल्यावस्थामे पिता, यौवनकालमे पति, वृद्धावस्थामे पुत्र, पुत्रके अभावम अन्य सम्बन्धियाको नारीकी रक्षा करनी चाहिये। दिन हो अथवा रात्रि हो, कभी भी स्त्री अपने पतिके बिना एकान्तम निवास न करे। पतिको सदेव धर्म-कार्यमे अपनी ज्येष्ठा पत्नीको ही सलग्न करना चाहिये। कनिष्ठा भार्या धर्म-कार्यके लिये उपयुक्त नहीं मानी गयी है। सदाचारिणी स्त्रीक मृत्यु होनेपर पतिको चाहिय कि वह अग्निहोत्रम प्रयुक्त अग्निसे उसका दाह-सस्कार करे। तदनन्तर अविलम्ब अन्य स्त्रीके साथ पाणिग्रहण करके पुन अग्निका सचयन कर। पतिहितैषिणी पत्नी इस लोकम यश अर्जित करके अन्तमे स्वर्गलोकको प्राप्त करती है। (अध्याय ९५)

वर्णसकर जातियोका प्रादुर्भाव, गृहस्थधर्म, वर्णधर्म तथा सतीस प्रकारके अनध्याय

याज्ञवल्क्यजीने कहा—अब म सकर जातियाकी उत्पत्ति एव गृहस्थादिके श्रेष्ठ धर्मोका वर्णन करता हूँ।

ब्राह्मण पुरुपसे विवाहिता क्षत्रिय कन्याम मूर्धावसिक्त, विवाहिता वैश्य कन्याम अम्बष्ठ और विवाहिता शूद्राम पारशव निपाद नामक सकरका जन्म होता हे[1]। क्षत्रिय पुरुपसे वैश्य कन्याम माहिष्य तथा शूद्राम म्लेच्छकी[2] उत्पत्ति हाती है। वेश्य पुरुपसे शूद्रवर्णा स्त्रीम करण नामक सकर जातिकी सतानका जन्म होता हे[3]। क्षत्रिय पुरुपसे ब्राह्मण स्त्रीम सूत वश्य पुरुपसे ब्राह्मणीम वेदेहक तथा शूद्र पुरुपस ब्राह्मणीम सववर्णनिन्दनीय चाण्डालकी उत्पत्ति हाती है। क्षत्रिय स्त्रीम वेश्यसे मागध और शूद्रसे क्षत्ता नामक सकर सतानका जन्म होता ह। इसी प्रकार वेश्य स्त्री शूद्र पुरुपके ससगसे आयागव[4] नामक वर्णसकर पुत्रका जन्म दती हे। क्षत्रिय पुरुपसे वेश्य कन्याम उत्पन्न हुए माहिष्य सकरक द्वारा करणी (वश्यस शूद्राम उत्पन्न) स्त्रीके साथ ससर्ग हानेपर रथकारका जन्म होता हे।

जो उच्चवर्णीय पुरुपसे निम्नवर्णा स्त्रीम सतान उत्पन्न होती है, वह अप्रतिलोमज अथवा अनुलोमज सतान है और जो निम्नवर्गीय पुरुपसे उच्चवर्णा स्त्रीमे सतान जन्म ग्रहण करती है, वह प्रतिलोमज सतान है। प्रतिलोमज असत् हैं और अनुलोमज सत् हें।

जातिका उत्कर्ष सातव, पाँचव अथवा छठ जन्ममे होता है। यहाँ जाति शब्दसे अभी वर्णित मूर्धावसिक्त आदि जातियाँ ली गयी हैं। प्रकृतम सक्षेपसे यह समझना चाहिये—ब्राह्मणसे शूद्राम उत्पन्न सतान निपाद कही जाती है। यह सतान यदि कन्या हे तो इसे निपादी कहा जाता हे। इसका यदि ब्राह्मणसे विवाह हो ओर उससे उत्पन्न कन्याका पुन ब्राह्मणसे विवाह हो आगे उससे भी उत्पन्न कन्याका पुन ब्राह्मणसे ही विवाह हो—इसी क्रमसे उत्पन्न छठी कन्यासे विवाहित ब्राह्मणक द्वारा उत्पादित सातवीं सतान शुद्ध ब्राह्मणवर्णकी हागी। एसे

१-य अनुलाम सकर कह जाते हैं।

२-याज्ञवल्क्यस्मृति (४। ९२)-के अनुसार क्षत्रियसे शूद्रामें उग्र नामकी सकर जातिकी सतान उत्पन्न हाती है।

३-मूर्धावसिक्त अम्बष्ठ निपाद, माहिष्य उग्र एव करण—य छ अनुलामज पुत्र हैं।

४ सूत वैदहक चण्डाल मागध क्षत्ता एव आयागव—य छ प्रतिलामज पुत्र हैं।

ही ब्राह्मणसे वैश्य जातीय कन्यामे उत्पन्न अम्बष्ठ जातिकी पाँचवीं कन्याकी छठी सतान शुद्ध ब्राह्मण होगी। मूर्धावसिक्ता कन्याकी भी इसी क्रमसे उत्पन्न चौथी कन्याकी पाँचवीं सतान शुद्ध ब्राह्मण ही होगी। ठीक यही स्थिति उग्रा ओर माहिष्याकी है। ये दोना उग्र एव माहिष्य जातिकी कन्याएँ यदि क्षत्रियसे ही विवाहित होती गयीं तो इनकी छठी और पाँचवीं सतति शुद्ध क्षत्रिय ही होगी। एसे ही करण जातिकी कन्या और वैश्यवर्णके पुरुषसे विवाहित होकर यथाक्रम पाँचव सतानको शुद्ध वैश्यरूपम ही उत्पन्न करगी।

इसके अतिरिक्त यह भी जानने योग्य है कि कर्मका व्यत्यय होनेसे भी जिस वर्णका कर्म किया जा रहा है, वही वर्ण सातवे, छठे तथा पाँचव जन्मकी सतानका हो जाता है। स्पष्टरूपम इस प्रकार समझा जा सकता है—धर्मशास्त्रके अनुसार ब्राह्मणको अपनी मुख्यवृत्ति याजन तथा अध्यापन आदिसे जीविका चलानी चाहिये। आपात्कालम अपनी मुख्यवृत्तिसे जीविका न चल पानेपर क्षत्रियवृत्ति, वैश्यवृत्ति या शूद्रवृत्ति भी ब्राह्मण स्वीकार कर सकता है। यही क्षत्रिय एव वैश्यके बारेम भी व्यवस्था है। जब कोई वर्ण अपनी मुख्यवृत्तिका परित्याग कर अन्य द्वितीय, तृतीय वर्णकी वृत्ति स्वीकार करता है तो यह हीनवर्णकी वृत्ति मानी जाती हे और यह हीनवर्णकी वृत्ति स्वीकार करना ही 'कर्म-व्यत्यय' है। इस प्रकारके कर्म-व्यत्यय होनेपर आपत्तिकालके अभावम भी यदि कोई हीनवर्णकी वृत्तिका परित्याग नहा करता हे तो उसकी सातवीं छठी, पाँचवा कुल-परम्पराम उत्पन्न सतति उस हीनवर्णकी ही होगी। जिस हीनवर्णकी वृत्ति स्वीकार कर जीविका निर्वाह किया जा रहा है। दृष्टान्तके रूपम यह कहा जा सकता है—यदि कोई ब्राह्मण शूद्रवृत्तिसे जीविका चला रहा हे ओर उसका परित्याग विना किये पुत्र उत्पन्न कर रहा है तथा यह पुत्र भी शूद्रवृत्तिसे अपना जीवन चलाता हुआ अपना पुत्र उत्पन्न कर रहा हे एव यह तीसरा पुत्र भी शूद्र-वृत्तिम रहकर ही अपना पुत्र उत्पन्न कर रहा है तो एसी परम्पराम सातव जन्मम शूद्र हा उत्पन्न होगा। वैश्यवृत्तिसे जाविका निर्वाहकी दशाम छठे जन्मम वेश्य हा उत्पन्न होगा। क्षत्रियवृत्तिसे जीविका निर्वाहका स्थितिमे पाँचवे जन्ममे क्षत्रिय ही उत्पन्न होगा। क्षत्रिय भी शूद्रवृत्तिसे जीविका निर्वाह करनेपर छठ वशम शूद्रवर्णकी एव वेश्यवृत्तिसे जीविका निर्वाह करनेपर पाँचव वशमे वैश्यवर्णकी सतान उत्पन्न करेगा। ऐसे ही वेश्य भी शूद्रवृत्तिसे जीविका निर्वाह करते हुए अपनी पुत्र-परम्पराके पाँचव जन्मम शूद्रको ही उत्पन्न करेगा।

इसी प्रसगसे यह भी ज्ञातव्य हे—तीन प्रकारकी जातियाँ हैं—१-सकर जाति, २-सकीर्ण सकर जाति तथा ३-वर्ण सकीर्ण सकर जाति। सकर जातिके मूर्धावसिक्त अम्बष्ठ आदि छ भेद ऊपर बताये गये हैं। इन्हे अनुलोमज कहा जाता हे। एसे ही सूत, वैदेहक आदि भी छ सकर जातिके भेद पहले हा कहे जा चुके ह। ये प्रतिलोमज हे। सकीर्ण सकर जातिके जो लाग होते ह, उनका निर्देश पहले रथकारकी उत्पत्ति बताकर किया गया है। अब वर्ण सकीर्ण सकर जातिके लागाको इस प्रकार समझनी चाहिये—मूर्धावसिक्ता स्त्रीम क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रसे जो उत्पादित ह ऐसे ही अम्बष्ठ जातिकी स्त्रीम वेश्य अथवा शूद्रके द्वारा जो उत्पादित ह और पारशव निषाद जातिकी स्त्रामें शूद्रके द्वारा जा उत्पादित हैं वे वर्ण सकीर्ण सकर जातिके होते ह। इन्हे, अधर प्रतिलोमज कहते ह। इसी प्रकार मूर्धावसिक्त अम्बष्ठ एव पारशव निषाद जातिकी स्त्रियाम ब्राह्मणके द्वारा जा उत्पादित ह, माहिष्य एव उग्रजातिकी स्त्रियामे ब्राह्मण अथवा क्षत्रियसे जो उत्पादित हें ओर करणजातिकी स्त्रीम ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वेश्यस जा उत्पादित हैं उन्हे उत्तर अनुलामज कहते ह। उनम अधर प्रतिलोमज असत् तथा उत्तर प्रतिलामज सत् माने जाते ह।

गृहस्थाश्रमीको प्रतिदिन विवाहाग्निम अथवा सम्पत्ति विभागके समय स्वय लायी गयी सस्कृत-अग्निम स्मार्तकर्म वेश्वदेव आदि सम्पन्न करना चाहिये। श्रौतकर्मानुष्ठान अग्निहोत्र आदि वैतानाग्नि (आहवनीय आदि अग्नियो)-मे करना चाहिये। शरीर चिता (प्रात -साय अवश्य करणीय मल-मूत्र विसजन)-का शास्त्रीय विधिसे सम्पन्न कर, गन्ध-लेपनिवृत्तिपर्यन्त शुद्धि प्राप्तकर दन्तधावन एव स्नानकर द्विजको प्रात काल सध्योपासन करना चाहिये तथा अनन्तर

अग्निमें हवन (अग्निहोत्र) करके समाहितचित्तसे सूर्यदेवताके मन्त्रोंका[१] जप करना चाहिये। उसके बाद गृहस्थाश्रमी वेदार्थ (निरुक्त व्याकरण आदि) तथा अन्य विविध प्रकारके शास्त्रोंका अध्ययन करे। योगक्षेम आदिकी सिद्धिके लिये उसको ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये।

वह स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण तथा पूजन करे। तदनन्तर उसको वेद, पुराण तथा इतिहासका यथाशक्ति अध्ययन एवं अध्यात्मिकी विद्याका जप (चिन्तन) करना चाहिये। तत्पश्चात् भूत, पितर, देव, ब्रह्म और मनुष्य जातिके लिये गृहस्थ बलिकर्म[२], स्वधा, होम, स्वाध्याय तथा अतिथि-सत्कार करे। देवताओंके लिये अग्निमें हवन करना चाहिये। भूतबलि श्वान (कुत्ता), चाण्डाल एवं काक आदिके लिये पका हुआ अन्न भूमिपर दे। पितृगण एवं मनुष्योंको अन्नके सहित जल भी प्रतिदिन प्रदान करना चाहिये। प्रतिदिन स्वाध्याय करे, केवल अपने लिये अन्नपाक न करे। स्ववासिनी (अपने पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता स्त्री), वृद्ध गर्भिणी, व्याधिपीडित, कन्या, अतिथि तथा भृत्योंको भोजन प्रदानकर गृहस्वामिनी और उसका पति शेष बचे हुए अन्नका भोजन करे। अग्निमें पञ्चप्राणाहुति देकर अन्नकी निन्दा न करते हुए भोजन करना चाहिये।

भोजनके आदि और अन्तमें आपोऽशान-विधिसे आचमन करे तथा सम्यक् प्रकारसे पका हुआ, हितकारी, स्वल्प भोजन बालकोंके साथ करना चाहिये।

पात्रादिसे आच्छादित अमृततुल्य भोजन द्विजको कराना चाहिये। यथाशक्ति अतिथि एवं अन्य वर्णोंको क्रमशः भोजन देना चाहिये। सायंकाल भी आये हुए अतिथिको लौटाना नहीं चाहिये। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। सुव्रत। (ब्रह्मचारी एवं संन्यासी) भिक्षुकको सत्कारपूर्वक भिक्षा प्रदान करनी चाहिये। द्वारपर पधारे सभीको भोजन कराना चाहिये। प्रतिवर्ष स्नातक, आचार्य एवं राजाकी पूजा करनी चाहिये। ऐसे ही मित्र जामाता एवं ऋत्विक् प्रतिवर्ष पूजनीय हैं। पथिकको अतिथि तथा वेदपारगतको श्रोत्रिय कहा जाता है। ब्रह्मलोककी कामना करनेवाले गृहस्थजनोंके लिये ये दोनों मान्य हैं।

ससम्मान आमन्त्रणके बिना ब्राह्मणको दूसरेके यहाँ बने हुए पक्वान्नको प्राप्त करनेकी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। गृहस्थको वाणी, हाथ, पैरकी चञ्चलता एवं अतिभोजन करनेसे बचना चाहिये। संतुष्ट श्रोत्रिय तथा अतिथिको विदा करते समय ग्रामकी सीमातक उनका अनुगमन करना चाहिये।

गृहस्थ अपने इष्ट-मित्र एवं बन्धुओंके साथ दिनका शेष भाग व्यतीत करे। तदनन्तर सायंकालीन संध्योपासना करके वह पुनः अग्निहोत्रकर भोजन ग्रहण करे। इसके बाद उसको अपने सुबुद्ध भृत्योंके साथ बैठकर अपने हितका विचार करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्ममुहूर्तमें निद्राका परित्यागकर वह धनादिसे ब्राह्मणको संतुष्ट करे तथा वृद्ध, दुःखी एवं भार ढोनेवाले पथिकोंको भलीभाँति मार्ग दिखाकर प्रसन्न करे।

यज्ञानुष्ठान, अध्ययन और दान वैश्य तथा क्षत्रियका कर्म माना गया है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणके लिये याजन, अध्यापन तथा प्रतिग्रह—ये तीन कर्म अधिक बताये गये हैं।

क्षत्रियका प्रधान कर्म प्रजापालन है। वैश्यवर्णके लिये कुसीद (सूद), कृषि, वाणिज्य और पशुपालन मुख्य कर्म कहा गया है। शूद्रवर्णका प्रधान कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यकी सेवा करना है। द्विजोंको यज्ञादि कर्तव्योंसे प्रमाद नहीं करना चाहिये। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियसंयम, दम, क्षमा, सरलता और दान सभीके लिये धर्मके साधन हैं। अपने वर्णधर्मानुसार जीविकाका आश्रयणकर कुटिल और दुष्टवृत्तिका परित्याग करना चाहिये—

प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम्॥
कुसीदकृषिवाणिज्यं पशुपाल्यं विशः स्मृतम्।
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजो यज्ञान् न हापयेत्॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयमः।
दमः क्षमार्जवं दानं सर्वेषां धर्मसाधनम्॥
आचरेत् सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा।
(९६। २७—३०)

जो मनुष्य तीन वर्षसे अधिक कालतकके लिये अन्नका भण्डारण करता है, वह सोमरस पान करनेकी

१- उदु त्यं जातवेदसं० आदि।
२-बलिकर्म—भूतयज्ञ स्वधा—पितृयज्ञ होम—देवयज्ञ स्वाध्याय—ब्रह्मयज्ञ अतिथि-सत्कार—मनुष्य-यज्ञ।

योग्यता रखता है। जिसके पास मात्र एक वर्षभरके लिये ही अन्न रहता है, उसे मुख्यतः सोमयागकी प्राक्क्रिया[1] करनी चाहिये। द्विजको प्रतिवर्ष सोमयाग, पशुयाग, आग्रायणेष्टि[2] तथा चातुर्मास्ययाग यत्नपूर्वक करना चाहिये। यदि इन यागोंको करना प्रतिवर्ष असम्भव हो तो इन यागोंके कालमें वैश्वानरी इष्टि ही कर लेनी चाहिये।

मुख्य कल्पके सम्पादनमें असमर्थके लिये जो द्वितीय कल्प विहित है, वह हीन कल्प है। सोमयाग, आग्रायणेष्टि आदि मुख्य कल्प हैं। वैश्वानरी इष्टि हीनकल्प है। यदि मुख्यकल्पके सम्पादनयोग्य द्रव्य है तो हीनकल्पका सम्पादन नहीं करना चाहिये। जितने भी फलप्रद (काम्य) अनुष्ठान हैं। फलकी कामना रहनेपर उन्हींका सम्पादन करना होगा। उनको न कर हीनकल्पका सम्पादन करनेपर फल नहीं प्राप्त हो सकता।

ब्राह्मणको अपनी जीविकाके लिये उस अप्रतिषिद्ध अर्थकी भी इच्छा नहीं करनी चाहिये जो स्वाध्याय-विरोधी हो। ऐसे जिस-किसी भी व्यक्तिसे अर्थ पानेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये, जिसका आचरण संदिग्ध हो। विरुद्धवृत्ति (अयाज्य याजन आदि)-से भी अर्थ-अर्जन नहीं करना चाहिये। ऐसे ही नृत्य, गीत आदि (प्रसंग)-से भी अर्थ-अर्जन नहीं करना चाहिये। जो द्विज यज्ञके लिये शूद्रसे धनकी याचना करता है, वह मृत्युके पश्चात् चाण्डाल-योनिमें जन्म लेता है। यज्ञके लिये लाये हुए अन्नको जो सम्पूर्णरूपसे यज्ञमें नहीं लगाता, वह कुक्कुर, गृध्र अथवा काकयोनिमें जन्म ग्रहण करता है।

ब्राह्मणको एक कुसूल[3] (कोष्ठक)-भर, एक मटका-भर, तीन दिनतकके लिये या एक दिनतकके लिये अन्न संग्रह करना चाहिये। अथवा वह शिलोञ्छवृत्तिसे[4] अपना जीवन-निर्वाह करे। इन वृत्तियोंमें उत्तरोत्तर वृत्ति श्रेष्ठ हैं।

यदि वह भूखसे पीड़ित है तो उसको राजा, अपने छात्र या यज्ञ करनेवाले यजमानसे ही अन्न-धनकी याचना करनी चाहिये और दाम्भिक[5], हैतुक[6], पाखण्डिक[7] एवं वकवृत्तिवालेका[8] सभी लौकिक-शास्त्रीय कर्मोंमें सर्वथा परित्याग करना चाहिये। वह स्वच्छ श्वेत वस्त्र धारण करे। सिर, दाढ़ी आदिके केश एवं नखोंको यथा-विधान कटवाये रहे। भार्याके साथ भोजन नहीं करना चाहिये। एक वस्त्र धारण कर तथा खड़े होकर भोजन नहीं करना चाहिये।

कभी भी अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये। यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मणको विनीत होना चाहिये। दण्ड और कमण्डलु धारण करना चाहिये। देव आदिको अपने दाहिने करके चलना चाहिये। वह नदी, वृक्षच्छाया, भस्म, गोष्ठ, जल तथा मार्गके मध्यमें मूत्रका परित्याग न करे। अग्नि, सूर्य, गौ, चन्द्र, संध्या, जल, स्त्री और द्विजोंके सम्मुख भी मूत्रका त्याग करना वर्जित है। वह अग्नि एवं उदय तथा अस्त हो रहे सूर्यका दर्शन न करे। उसके लिये नग्न तथा मैथुनासक्त स्त्री, मूत्र और विष्ठाका दर्शन भी त्याज्य है। पश्चिम सिर करके नहीं सोना चाहिये। थूक, रक्त, विष्ठा, मूत्र और विषको जलमें छोड़ना अनुचित है। आगपर पैरोंका सेंकना तथा उसे लाँघना निषिद्ध है।

अञ्जलिद्वारा जल नहीं पीना चाहिये और निद्रा-निमग्न व्यक्तिको जगाना नहीं चाहिये। धूर्त-वञ्चकका साथ नहीं

१-प्राक्क्रिया—सोमयागके पूर्व करणीय अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रायण, चातुर्मास्य आदि।

२-नया सस्य उत्पन्न होनेपर आग्रायणेष्टिका विधान है।

३-कुसूलधान्य बारह दिनके लिये अन्न, कुम्भीधान्य छः दिनके लिये अन्न।

४- शिलोञ्छवृत्ति भरण-पोषणकी एक ब्राह्मण-वृत्ति (साधन) है। 'शिलवृत्ति' उसे कहते हैं, जिसमें ब्राह्मण फसल कट जानेके बाद खेतमें गिरे हुए अन्नकी वल्लरी (बाल)-को एकत्र करके अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करता है। 'उञ्छवृत्ति' उसे कहते हैं, जिसमें अन्नकी वल्लरी छोड़कर एक-एक कणमात्र एकत्र कर उसीसे अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करता है। 'शिल' और 'उञ्छ'—यही 'शिलोञ्छवृत्ति' है।

५-दाम्भिक—केवल किसीको प्रसन्न करनेके लिये ही धर्मानुष्ठान।

६-हैतुक—निराधार तर्कोंसे धार्मिक कृत्योंमें संशयकर्ता।

७-पाखण्डिक—वेदशास्त्रोंके विरुद्ध अनेक प्रकारके लुभावने वेशोंका धारक।

८-वकवृत्ति—वकके समान वर्तन (व्यवहार) करनेवाला।

करना चाहिये। रोगी जनाके साथ शयन नहीं करना चाहिये। धर्म-विरुद्ध कर्मोका परित्याग कर दना चाहिय। चिताग्निका धुआँ तथा नदीम तरना वर्जित है। कशपर, भस्मपर, भूसीपर, प्रज्वलित अग्निके अगारपर और कपालपर स्थित नहीं हाना चाहिये। किसीसे यछडको दूध पिलाती हुई गायको यताना नहीं चाहिय आर किसीक घरम द्वारक अतिरिक्त अन्य गवाक्षादि मार्गोसे प्रवेश नहीं करना चाहिये। लोभी तथा शास्त्र-विरुद्ध कर्म करनेवाले राजासे प्रतिग्रह नहीं लना चाहिये।

वेद तथा धर्म-शास्त्रादिका अध्ययन करनेवालाका उपाकर्म-सस्कार श्रवणनक्षत्रस युक्त श्रावणी पूर्णिमाका होना चाहिये। सस्कार-विहित आपधिया—सामग्रियाके उपलब्ध रहनेपर यह कार्य श्रावणमासकी हस्तनक्षत्रस युक्त पञ्चमी-तिथिम भी सम्पन्न हो सकता है। पौषमासके राहिणीनक्षत्रम अथवा अष्टकाके दिन ग्रामसे याहर जलाशयक पास वदाका उत्सर्ग-कर्म गृह्यसूत्रके अनुसार करना चाहिये।

शिष्य, ऋत्विक्, गुरु तथा बन्धु-बान्धवाकी मृत्यु होनपर तीन दिनका अनध्याय उपाकर्म तथा उत्सर्ग-कर्म करनेपर हाता है। ऐसे ही अपनी शाखाके श्रोत्रिय ब्राह्मणकी मृत्यु होनेपर तीन दिनका अनध्याय हाता है। सध्याके समय मेघ-गर्जन होनेपर आकाशम उत्पातकी ध्वनि होनेपर, भूकम्प होनेपर तथा उल्कापात होनेपर अनध्याय रखना चाहिये। वेद और आरण्यकका अध्ययन पूर्ण होनेपर एक दिन एव एक रात्रि (अहोरात्र)-का अनध्याय होता है।

अष्टमी चतुर्दशी अमावास्या पूर्णिमा, चन्द्र-सूर्यग्रहण, ऋतुसधिकी प्रतिपदम तथा श्राद्ध-भोजन अथवा श्राद्धका प्रतिग्रह लनेपर एक दिन और एक रात्रि (अहोरात्र)-का अनध्यायकाल मानना चाहिये[1]। पशु, मेढक नेवला कुत्ता सर्प विडाल ओर सूअरके बीचमे आनेपर तथा शक्रध्वजक अवरापणका दिन आनेपर एव उत्सवका दिन होनेपर भी एक ही दिन-रात्रिका अनध्यायकाल होता है।

कुत्ता सियार गर्दभ उलूक सामवेद तथा बच्चाके कोलाहल और पीडितजनाकी दु खभरी ध्वनि होनेपर, अपवित्र वस्तु, शव, शूद्र, अन्त्यज, श्मशान और पतित व्यक्तिका सामीप्य हानपर तत्काल अनध्याय हाता है। अपवित्र दशाम, अपवित्रावस्थाम, यार-यार विजली चमकनेपर, दा प्रहरतक यार-यार मेघ-गर्जन होनेपर, भाजन करनेके बाद हाथ गीला रहनपर, जलक मध्यम, अर्धरात्रिम तथा मध्यके दा प्रहरम और आँधी-तूफानके बीच भी उतने कालतक अध्ययन नहीं होना चाहिये। दिग्दाह[2] होनेपर, उत्पात-जैसी धूलिकी वर्षा हानेपर, सध्याकालीन कोहरा होनेपर अथवा चोर, राजा आदिके कारण हानेवाले उपद्रवाके समयमे तत्काल अनध्याय हाता है। स्वय दौडते हुए, अपवित्र मदिरा आदिका गन्ध आनेपर तथा शिष्ट व्यक्तिके घर आ जानेपर अध्ययन करना वर्जित है। गधा, ऊँट, वाहन (रथ), हाथी, घाडा, नौका, वृक्ष और पर्वतारोहणका काल अनध्यायका ही काल होता है। उपर्युक्त सैंतीस अनध्यायोको तात्कालिक अनध्याय माना गया है अर्थात् ये निमित्त जिस समय हों, उस समय अनध्याय समझना चाहिये।

देवताकी मूर्ति, ऋत्विक्, स्नातक, आचार्य एव राजाकी छाया, पर-स्त्रीकी छाया, रक्त, विष्ठा, मूत्र, थूक और उबटनकी सामग्रीका अतिक्रमण नहीं करना चाहिये। बहुश्रुत ब्राह्मण, सर्प, क्षत्रिय (नृपति)-की अवमानना कदापि न करे। ऐसे ही अपनी भी अवमानना न करे। उच्छिष्ट (जूठन), विष्ठा, मूत्र और चरण-प्रक्षालित जल दूरसे ही त्यागने योग्य हैं। श्रुति और स्मृतिम कहे गये सदाचारका पालन करना चाहिये। किसीके गोपनीय रहस्यको प्रकाशित कर उसे कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये। किसीकी निन्दा या ताडना नहीं करनी चाहिये किंतु पुत्र अथवा शिष्यको दण्ड देना चाहिये। मनुष्यको सर्वदा धर्मका ही आचरण करना चाहिये। धर्मविरुद्ध आचरण उसके लिये त्याज्य है। गृहस्थ व्यक्तिको माता-पिता, अतिथि और धनी पुरुपक साथ विवाद नहीं करना चाहिये।

दूसरेके सरोवरमसे पाँच पिण्ड मिट्टी बिना निकाले

१-यह व्यवस्था एकोदिष्ट श्राद्धसे अतिरिक्त श्राद्धक लिये है। एकोदिष्ट श्राद्धका भाजन अथवा प्रतिग्रहम तीन रात्रिका अनध्याय होता है। (याज्ञवल्क्य मिताक्षरा आचाराध्याय श्लोक १४६)

२-दिग्दाह—दिशाएँ यदि जलती हुई प्रतीत हाती हा।

उसमे स्नान नहीं करना चाहिये। नदी, झरना, देव-सरोवर और पोखर—तालाबमे स्नान करना चाहिये।

दूसरेकी शय्यापर शयन नहीं करना चाहिये। अनापत्तिकालमे परान्न भोजन नहीं करना चाहिये। कृपण, बन्दी, चोर, अग्निहोत्र न करनेवाले ब्राह्मण, बाँसका काम करनेवाले, न्यायालयमे जिसका दोष सिद्ध हो चुका है, सूदखोर, वेश्या, सामूहिक दीक्षा देनेवाला, चिकित्सक, रोगी, क्रोधी, नपुसक, रगमचसे जीविका चलानेवाला, उग्र, निर्दय, पतित, व्रात्य, दम्भी, उच्छिष्टभोजी, शस्त्र-विक्रेता, स्त्रीके वशमे रहनेवाला, ग्राम्य-याजक (ग्रामके देवताओकी शान्तिके लिये अनुष्ठान करनेवाला), निर्दयी राजा, धोबी, कृतघ्न, कसाई चुगलखोर, झूठ बोलनेवाला, सोम-विक्रेता, वन्दी तथा स्वर्णकार—इनका अन्न कदापि नहीं खाना चाहिये। बाल तथा कृमि (कीडे) आदिसे युक्त भोजन एव मास नहीं खाना चाहिये।

बासी, उच्छिष्ट, शुक्त (पका हुआ वह अन्न जो अधिक काल बीतनेके कारण विकृत हो गया है), कुत्तेद्वारा स्पृष्ट, पतितद्वारा देखा हुआ, रजस्वलासे स्पृष्ट, सघुष्ट[1] तथा पर्यायान्न[2]-भोजन त्याज्य है। गायसे सूँघा गया, पक्षियोके द्वारा उच्छिष्ट और जानकर पैरसे छुआ गया अन्न भी त्यागने योग्य होता है। यद्यपि शूद्रका अन्न नहीं लेना चाहिये, तथापि जो शूद्र परम्परासे ही अपने यहाँ सेवक है, गोपालन करनेवाला है, कुल-परम्परासे ही जो मित्रके समान व्यवहार करनेवाला है, परम्परासे अपने यहाँ हलवाहेका काम करनेवाला है, कुल-परम्परासे जो निर्धारित नाई है—इनके अतिरिक्त वह शूद्र जिसने मन, वाणी, शरीर एव कर्मसे सर्वथा अपनेको समर्पित कर रखा है—ऐसे शूद्रोका अन्न स्वीकार किया जा सकता है। घी आदि स्निग्ध पदार्थोंसे युक्त अन्न यदि बासी है या बहुत कालसे रखा हुआ है तो भी ग्रहण करने योग्य होता है। किंतु घृत या तेल आदिसे समिश्रित न होनेपर भी गेहूँ, जौ और गोरससे तैयार किये गये पदार्थ यदि बहुत देरतक रखे गये हैं, तब भी ग्रहण किये जा सकते हैं, यदि विकृत न हुए हो।

देव और अतिथिको बिना समर्पित किया हुआ तिल-तण्डुलमिश्रित पदार्थ, यवागू, खीर, पुआ तथा पूडीका भोजन व्यर्थ हो जाता है।

पलाण्डु (प्याज) और लहसुन आदि उग्र पदार्थोंका सेवन करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। जो पुरुष पशु-हत्या करता है, वह पशुके रोम-परिमित कालतक घोर यातनाओको सहन करते हुए नरकमे वास करता है। अभोज्य पदार्थोंका परित्याग करके अपनी सद्गतिकी भावनासे प्रभुसे क्षमा-याचना और प्रार्थना करता हुआ व्यक्ति भगवान्‌को प्राप्त करता है। (अध्याय ९६)

द्रव्यशुद्धि

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे श्रेष्ठ मुनिजनो! अब मैं द्रव्य-शुद्धिका वर्णन कर रहा हूँ। आप सब उसका ज्ञान प्राप्त करें।

सोने, चाँदी, अब्ज (मुक्ताफल, शख, शुक्ति आदि), शाक, रस्सी तथा बकरे आदिके चमडेसे बनाये गये पात्र, होतृ चमस आदि यदि किसी चिकने पदार्थके लेपसे रहित हैं और उच्छिष्ट हाथ आदिसे ही केवल स्पृष्ट हैं तो इनकी शुद्धि जलसे प्रक्षालनमात्र करनेपर हो जाती है। यज्ञमे प्रयुक्त स्रुक् एव स्रुवाकी शुद्धि उष्ण जलसे तथा धान्यादिका शुद्धीकरण जलके प्रोक्षणसे होता है।

काष्ठ और सींग आदिसे विनिर्मित पात्रादिकी शुद्धि छिलनेसे होती है। मार्जन करनेसे यज्ञका पात्र पवित्र हो जाता है। उष्ण जल और उष्ण गोमूत्रसे धोनेपर ऊनी और रेशमी वस्त्र शुद्ध हो जाते हैं। ब्रह्मचारीके हाथमे विद्यमान भिक्षा-प्राप्त अन्न, बाजारमे विक्रयके लिये रखा अन्न तथा स्त्रीका मुख पवित्र होता है। मिट्टीका पात्र अग्निमे पुन पकानेपर शुद्ध होता है, यदि चाण्डाल आदिसे स्पृष्ट नहीं है। गौके द्वारा सूँघे जानेपर और केश, मक्षिका एव कीटादिसे दूषित होनेपर अन्नकी शुद्धि यथायोग्य जल, भस्म

१-सघुष्ट—'भोजन बचा हुआ है जो भोजन करना चाहे वह आकर ले ले'। इस प्रकारकी घोषणा करके जो भोजन दिया जाता है, वह 'सघुष्ट' कहा जाता है।

२-पर्यायान्न—किसी दूसरेके उद्देश्यसे रखा भोजन यदि बिना उसकी स्वीकृतिके दूसरेको दिया जाय तो उस अन्नको 'पर्यायान्न' कहा जाता है।

तथा मिट्टी डालनेसे हो जाती है। भूमिका पवित्रीकरण मार्जनादि करनेपर होता है। राँगा, सीसा तथा ताम्रपात्रकी शुद्धि क्षार और अम्लमिश्रित जलसे होती है। कास्य और लौहपात्रोंकी शुद्धि भस्म तथा जलसे मार्जन करनेपर होती है। अज्ञात वस्तुएँ तो सदैव पवित्र ही रहती हैं।

अमेध्य (शरीरसे निकलनेवाले मल, वसा, शुक्र और श्लेष्मा आदि)-से लिप्त पात्रकी शुद्धि मिट्टी और जलके द्वारा परिमार्जित कर उसमें व्याप्त गन्ध एवं लेपको दूर करनेसे होती है। प्रकृतिद्वारा भूमिमें एकत्र जल, जो गौको संतृप्त करनेमें पर्याप्त हो, सदैव शुद्ध होता है।

सूर्य-रश्मि, अग्नि, धूलि, वृक्ष-छाया, गौ, अश्व, पृथ्वी, वायु तथा ओसकी बूँदें पवित्र ही होती हैं।

मनुष्यको स्नान करनेके बाद, जल पीनेके बाद, छींक आनेके बाद, शयनोपरान्त, भोजन करनेपर, मार्गमें चलनेपर तथा वस्त्र बदलनेपर पुनः आचमन करना चाहिये।

जम्हाई लेनेपर, निष्ठीवन (थूकनेपर), शयन करनेपर, वस्त्र-धारण करनेपर और अश्रुपात होनेपर—इन पाँच अवस्थाओंमें आचमन नहीं करे, अपितु दक्षिण कानका स्पर्श कर ले। ब्राह्मणके दक्षिण कानपर अग्नि आदि देवता सदैव विराजमान रहते हैं। (अध्याय ९७)

दान-धर्मकी महिमा

याज्ञवल्क्यजीने पुनः कहा—हे ऋषियो! अब मैं दान-धर्मकी महिमाका वर्णन करता हूँ, उसे सुनें।

अन्य वर्णोंकी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी जो सत्क्रियावान् (कर्मनिष्ठ) ब्राह्मण हैं वे श्रेष्ठ हैं। उन कर्मनिष्ठोंमें भी विद्या तथा तपस्यासे युक्त ब्रह्म-तत्त्ववेत्ता श्रेष्ठ तथा सत्पात्र हैं। गृहस्थके द्वारा गौ, भूमि, धान्य तथा सुवर्ण आदिका दान सत्पात्रको उसका पूजन करके दिया जाना चाहिये।

विद्या एवं तपस्यासे हीन ब्राह्मणको प्रतिग्रह (दान) स्वीकार नहीं करना चाहिये। इस प्रकार दान लेनेपर वह प्रदाता और स्वयंको अधोगामी बना देता है। प्रतिदिन उपयुक्त पात्रको दान देना चाहिये। निमित्त (सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि विशेष अवसर) उपस्थित होनेपर विशेष रूपसे अधिक दान देना चाहिये। किसीके याचना करनेपर भी यथाशक्ति अपनी श्रद्धाके अनुसार दान देना चाहिये। सुवर्णसे अलंकृत सींगोंवाली चाँदीसे मढ़े हुए खुरोंवाली सुन्दर वस्त्राच्छादित, अधिक दूध देनेवाली सुशील गौका यथाशक्ति दक्षिणाके साथ दान करना चाहिये और दान देते समय साथमें कांस्यपात्र भी देना चाहिये।

सींगमें दस सावर्णिक (एक सौ साठ माशा) सोना तथा खुरमें सात पल चाँदी लगाना चाहिये एवं दोहन-पात्र पचास पल काँसेका होना चाहिये।

गौका बछड़ा भी अलंकृत होना चाहिये। गौ रोगरहित तथा सवत्सा होनी चाहिये। यदि बछड़ा न हो तो स्वर्ण या पिप्पलकाष्ठका बाछा या बाछी बनाकर देना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रदाता बछड़ेके शरीरमें स्थित रोम-संख्याके अनुसार उतने ही वर्षपर्यन्त स्वर्गका उपभोग करता है। यदि गौ कपिला (भूरे रंगकी) होती है तो वह दाताके सात कुलोंका उद्धार कर देती है।

जबतक प्रसव कर रही गौकी योनिमें बछड़ेके दोनों पैरोंसहित मुख दिखायी देता है और जबतक वह गर्भका प्रसव नहीं कर देती है, तबतक गौको पृथ्वीके समान ही मानना चाहिये।

सामर्थ्यके अभावमें स्वर्णमय सींग आदिसे युक्त गौका दान यदि न किया जा सके तो भी रोगरहित, हृष्ट-पुष्ट, दूध देनेवाली धेनु अथवा दूध न देनेवाली गर्भिणी गौका जो दान करता है, वह स्वर्गलोकमें महिमामण्डित होकर निवास करता है।

थके हुए प्राणीकी आसनादिके दानके द्वारा थकान दूर करना रोगीकी सेवा करना, देवपूजन करना ब्राह्मणका पाद-प्रक्षालन करना तथा ब्राह्मणद्वारा उच्छिष्ट किये गये स्थान और पात्रका मार्जन-कृत्य विधिवत् दिये गये गोदानके समान फलदायक होता है। ब्राह्मणके लिये जो अभीष्ट हो, उसे वह वस्तु प्रदानकर प्रदाताको स्वर्ग-लाभ लेना चाहिये।

भूमि, दीप, अन्न वस्त्र और घृतके दानसे प्रदाता लक्ष्मी प्राप्त कर सकता है। घर, धान्य छाता माला, उपयोगी वृक्ष,

यान (सवारी), घृत, जल, शय्या, कुंकुम, चन्दन आदि प्रदान करनसे स्वर्गलोकमे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

सत्पात्रको विद्या प्रदान करनेवाला देवदुर्लभ ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। मूल्य लेकर भी वेदोके अर्थ, यज्ञोकी विभिन्न विधियोंको सम्पादित करनेवाले तथा शास्त्र और धर्म-शास्त्रोंको लिखनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। वेद-शास्त्र ही संसारके मूल (व्यवस्थापक) हैं। इसी कारण ईश्वरने सबसे पहले इन्हींकी सृष्टि की। अत सब प्रकारका सत्प्रयत्न करके वेदोका अर्थ-संग्रह करना चाहिये अर्थात् वेदोके तात्पर्यको समझनेके लिये भलीभाँति प्रयास करना चाहिये। जो अधिकारी इतिहास अथवा पुराण लिखकर दान देता है, वह ब्रह्मदानके समान प्राप्त पुण्यका द्विगुणित पुण्य प्राप्त करता है।

द्विजको नास्तिकोंके वचन, कुतर्क तथा प्राकृत और म्लेच्छ-भाषा-भाषित वचन नहीं सुनने चाहिये, क्योंकि ये शब्द द्विजको अधोगतिमे ले जाते है।

दान ग्रहण करनेका सामर्थ्य रहनेपर भी जो लोग दान ग्रहण नहीं करते, वे लोग उन्हीं लोकोको प्राप्त करते हैं, जो दान-दाताको प्राप्त होते हैं।

कुश, शाक, दूध, गन्ध तथा जल—ये वस्तुएँ बिना माँगे यदि कुलटा, पतित, नपुंसक एवं शत्रुके अतिरिक्त किसी दुष्कृतीके द्वारा भी दी जा रही हैं तो भी इनका प्रत्याख्यान नहीं करना चाहिये। यदि कोई सुकृती इन्हें बिना याचनाके दे रहा है, तब तो इनके प्रत्याख्यानका कोई प्रसंग ही नहीं है। देवता तथा अतिथिकी पूजा करनेके लिये, अपने माता-पिता आदिके भरण-पोषणके लिये तथा अपने जीवनकी रक्षाके लिये पतित आदि अत्यन्त कुत्सितको छोडकर अन्य सभीसे जितना अत्यावश्यक है, उतना प्रतिग्रह लिया जा सकता है। (अध्याय ९८)

श्राद्धके अवसर तथा अधिकारी, श्राद्धकी संक्षिप्त विधि, महिमा और फल

याज्ञवल्क्यजीने कहा—ऋषिगणो! अब मैं सर्वपाप-विनाशिनी श्राद्ध-विधिका वर्णन करता हूँ।

अमावास्या, अष्टका[1], वृद्धि (पुत्रजन्म आदि), कृष्णपक्ष, उत्तरायण, दक्षिणायन, द्रव्य (अन्नादि)-लाभ होना, श्राद्ध-योग्य ब्राह्मणकी प्राप्ति होना, विषुवत्-संक्रान्ति (सूर्यके तुला और मेषराशिपर संक्रमण करनेका समय), मकर-संक्रान्ति, व्यतीपात, गजच्छाया-योग, चन्द्र-सूर्यग्रहण तथा कर्ताकी श्राद्धके प्रति अभिरुचि होना—ये सब श्राद्धके काल (अवसर) कहे गये हैं।

जो ब्राह्मण युवा (मध्यम वयस्क) होते हुए सभी वेदोमे अग्र्य (सतत अस्खलित अध्ययनमें समर्थ), श्रोत्रिय, ब्रह्मवित्, मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदके तात्पर्यके वेत्ता, ज्येष्ठ साम नामक साम-विशेषके अध्ययनके लिये विहित व्रतके आचरणके साथ ज्येष्ठ सामके अध्येता, त्रिमधु नामके ऋग्वेदके एकदेशके अध्ययनके लिये विहित व्रतके आचरणके साथ त्रिमधुके अध्येता तथा ऋक् और यजुके एकदेश त्रिसुपर्णके अध्ययनके लिये विहित व्रतके आचरणके साथ त्रिसुपर्णके अध्येता ब्राह्मण हैं, ये श्राद्धकी सम्पत्ति माने जाते हैं, अर्थात् इन्हें भोजन कराने या दान देनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। ऐसे ही भानजा, श्राद्ध-योग्य ब्राह्मणोंके लक्षणोसे विशिष्ट ऋत्विक्, यजुर्वेदके [illegible] अध्ययनके अङ्ग व्रतके आचरणके साथ [illegible] अध्येता, दौहित्र, शिष्य तथा [illegible] एवं कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ पञ्चाग्नि-[2][illegible], मातृ-पितृभक्त एवं [illegible] भोजनीय एवं दान देने [illegible]

जो [illegible] काण, पौनर्भव[3] [illegible]

१-हेमन्त-ऋतु एवं शिशिर-ऋतुके महीनोमें आनेवाली कृष्णपक्षकी [illegible]

२-पञ्चाग्नि—सभ्य आवसथ्य आहवनीय गार्हपत्य और दक्षि[illegible]

३-पौनर्भव—पुनर्भूसे उत्पन्न। पुनर्भू उस स्त्रीको कहते हैं [illegible] दूसरे पुरुषके संसर्गसे दूषित हो चुकी है।

अवकीर्णी[१] आदि[२] आचारभ्रष्ट तथा अवैष्णव हैं, वे श्राद्धके योग्य नहीं ह।

श्राद्धके एक दिन पूर्व ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये। निमन्त्रित ब्राह्मणाको उस दिन सयम रखना चाहिये। श्राद्ध-दिवसके पूर्वाह्णकालमे उपस्थित उन ब्राह्मणाको आचमन कराकर आसनापर बेठा दे। विश्वेदेव अथवा आभ्युदयिक श्राद्धके लिये दो ब्राह्मण तथा पितृपात्रके स्थानपर यथाशक्ति ब्राह्मणको बेठाना चाहिये अथवा इनम दो ब्राह्मणाको विश्वेदेवपात्रके आसनपर पूर्वाभिमुख तथा तीन ब्राह्मणाको पितृपात्रके आसनपर उत्तराभिमुख अथवा दोनो (दव-पितर)-के लिये एक-एक ब्राह्मण आसनपर बैठाना चाहिये। इसी प्रकार मातामहादिके श्राद्धम व्यवस्था करनी चाहिये और मातामह-श्राद्धम विश्वेदेव-सम्बन्धी कृत्य अलग-अलग या एक साथ किया जा सकता है।

इसके बाद ब्राह्मणोंको हस्त-प्रक्षालनके लिये जल (हस्तार्घ्य) और आसनके लिये कुश प्रदानकर उन्हींकी अनुज्ञासे 'विश्वे देवास०' इस मन्त्रसे विश्वेदेवका आवाहन करके भोजन-पात्रम यव विकीर्ण करे। तदनन्तर पवित्रकयुक्त अर्घ्यपात्रम 'श नो दवी०' इस मन्त्रसे उसमे जल तथा 'यवोऽसि०' मन्त्रद्वारा यव डालकर 'या दिव्या०' मन्त्रसे ब्राह्मणके हाथम अर्घ्योदक प्रदानकर गन्ध, दीपक, माला, हार आदि आभूषण तथा वस्त्र दान करे।

तत्पश्चात् अपसव्य होकर पितरोको अप्रदक्षिण (वाम)-क्रमसे स्थान (कुशरूपी आसन) प्रदान करे और (आसनके लिये मोटकरूप) द्विगुणित कुश देकर 'उशन्तस्त्वा०' मन्त्रसे उन पितराका आवाहन करे। उसके बाद पितृ-स्थानपर विराजमान ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर 'आयन्तु न पितर ०' इस मन्त्रका जप करे।

पितृकार्यम यवके स्थानपर तिलाका प्रयोग करना चाहिये और तिलके साथ उन पितृगणाको पूर्ववत् अर्घ्यादि प्रदान करे। उन अर्घ्यों (अर्घ्यपात्रा)-क सस्रव (ब्राह्मणक हाथम दिये गये अर्घ्योदकका नीचे गिरा हुआ जल)-को पितृपात्रमे रखकर आर दक्षिणाग्र कुशस्तम्बको भूमिपर रखकर उसक ऊपर 'पितृभ्य स्थानमसि०' इस मन्त्रके द्वारा उक्त अर्घ्यपात्र (पितराके वामभागम) भूमिपर उलटकर रख दे। उसके बाद घृत-सम्मिश्रित अन्नको अग्निमे प्रदान करनेके लिये आचार्यसे श्राद्धकर्ता अग्नौकरणकी आज्ञा प्राप्त करे। जब आचार्य 'ऐसा ही करो' यह कह दें तो उन्ह पितृयज्ञके समान ही उस अग्निमे युक्त घृताक्त हव्यका हवन करके आहुति करनेसे शप बचे हुए अन्नको समाहित मनसे पितराके भोजन-पात्रोंम रख दे। पितरोके भोजन-पात्राके रूपमे यथाशक्ति चाँदीके पात्राका प्रयोग करना चाहिये।

'पृथिवी ते पात्र०' मन्त्रसे पात्रको अभिमन्त्रित करे। 'इद विष्णु ' मन्त्रका पाठ करे और ब्राह्मणके अगुष्ठको पितराके लिये परिवेशित अन्नम प्रवशित करे। व्याहृतियाके सहित 'गायत्री' एव 'मधुवाता०' मन्त्रका जप करके सुखपूर्वक भोजन कर, इस प्रकार ब्राह्मणासे निवेदन करे और ब्राह्मण मौन होकर भोजन कर। श्राद्धकर्ता क्रोधादिसे रहित होकर बडे ही श्रद्धा-भावसे उन ब्राह्मणोको बिना शीघ्रता किये उनका अभीष्ट अन्न तथा हविष्यान्न उन्ह प्रदान करे और ब्राह्मणाकी तृप्तितक 'पुरुपसूक्त' तथा 'पवमानसूक्त' आदिका जप करता रहे। उसके बाद पुन पहलेके समान 'मधुवाता०' मन्त्रका पाठ करे और शेषान्नको लेकर उन सतृप्त ब्राह्मणोके द्वारा 'हम तृप्त हो गये', इस प्रकार कहनेपर उन ब्राह्मणाकी अनुज्ञासे श्राद्धकर्ता दक्षिणाभिमुख होकर तिलसहित उस शेषान्नको ब्राह्मणोके उच्छिष्ट पात्राके समीपमे ही भूमिपर जलके साथ रख दे और प्रत्येक ब्राह्मणको मुख-प्रक्षालनके लिये अलग-अलग जल प्रदान कर।

उच्छिष्टके समीपम पितर आदिके लिये पिण्डदान करके उसी प्रकार मातामहादिके लिये भी पिण्डदान करे। उसके बाद ब्राह्मणाको आचमन कराये। तदनन्तर ब्राह्मणाके 'स्वस्ति' ऐसा कहनेपर श्राद्धकर्ता 'अक्षय्यमस्तु' कहकर ब्राह्मणाके हाथमे जल प्रदानकर यथासामर्थ्य दक्षिणा दे और 'स्वधा वाचयिष्ये' ऐसा कहे। 'वाच्यताम्' क द्वारा ब्राह्मण श्राद्धकर्ताको आज्ञा प्रदान कर। उनकी अनुज्ञा प्राप्तकर श्राद्धकर्ता पितृजनोके लिये 'स्वधा' इस वाक्यका प्रयोग करे। पुन उन ब्राह्मणोंके द्वारा 'स्वधा' ऐसा कह दनेके पश्चात् श्राद्धकर्ता पृथ्वीपर जलसिञ्चन कर।

१-अवकीर्णी—ब्रह्मचर्याश्रमर्म रहते हुए जिसका वीर्य स्खलित हो गया है।

२-आदिसे कुण्ड गालक कुनखी एव काले दातवाले ब्राह्मण समझ जाने चाहिय। पति जावित रहते हुए दूसर पुरुपसे उत्पन्न कुण्ड एवं पतिके निधनक बाद दूसरे पुरुपसे उत्पन्न गालक होता है।

'विश्वेदेवा प्रीयन्ताम्' यह कहकर श्राद्धकर्ता विश्वेदेवाको जल अर्पितकर उन्हे विसर्जित करे। तदनन्तर पितरासे इस प्रकारकी प्रार्थना करे—

दातारो नोऽभिवर्धन्ता वेदा सततिरेव च॥
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु देय च नोऽस्त्विति।
(९९। २६-२७)

पितृगण। हमारे यहाँ दाताओ, वेदा और सतानोकी वृद्धि हो, हमारी श्रद्धा कभी न घटे, देनेके लिये हमारे पास बहुत सम्पत्ति हो। तदनन्तर 'वाजे वाजे०' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए श्राद्धकर्ता प्रसन्नताके साथ यथाक्रम पितरोका विसर्जन करे। जिस अर्घ्यपात्रमें पहले सस्रव-जल रखा गया था, उस पितृपात्र (अर्घ्यपात्र)-को सीधा कर दे तथा श्राद्धकर्ता उन आमन्त्रित ब्राह्मणाका प्रदक्षिणाके साथ अनुगमन करते हुए उन्हे विदा करे। इसके पश्चात् श्राद्धसे अवशिष्ट अन्नका भोजन करके उस रात्रिमे सपत्नीक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे।

विवाहादिक माङ्गलिक अवसरोपर पितरोका नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिये। उनके लिये दधि, कर्कन्धू (बदरी फल)-मिश्रित यवान्नका पिण्डदान करना चाहिये।

एकोद्दिष्ट[1] श्राद्ध विश्वेदेवसे रहित एकान्न और एक पवित्रकसे युक्त होता है। इस श्राद्धमें आवाहन और अग्नौकरण नहीं किया जाता। इस श्राद्धका सम्पूर्ण कृत्य अपसव्य अर्थात् दक्षिण कन्धेपर यज्ञोपवीत धारण करके करना चाहिये। श्राद्धकर्ता इस श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणाको पवित्र भूमिपर रखे हुए आसनपर 'उपतिष्ठताम्' कहकर बैठनेके लिये निवेदन करे। उसी प्रकार 'अभिरम्यताम्' कहकर विसर्जन करे। ब्राह्मणाको भी 'अभिरता स्म' यह वचन कहना चाहिये।

सपिण्डीकरण श्राद्धमें श्राद्धकर्ता तिल एव गन्धमिश्रित जलसे चार पात्रो[2]को परिपूर्ण करे। उन पितृपात्रोमेसे एक पात्रको अर्घ्य प्रदान करनेके लिये प्रेतपात्रके रूपमे कल्पित करे। तदनन्तर श्राद्धकर्ता प्रतपात्रमे रखे हुए अर्घ्य-जलके कुछ भागको पिता आदिके तीन पात्रामें मिलाकर पूर्ववत् अर्घ्यादि क्रियाका सम्पादन करे। 'ये समाना०' इन दो मन्त्राक द्वारा प्रेतपिण्डको तीन भागोमे विभक्तकर पितराके पिण्डोंम मिला दे। इसके अनन्तर विहित एकोदिष्ट[3] श्राद्ध स्त्री (माता)-का भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरण एक वर्षसे पूर्व होता है, उसके उद्देश्यसे भी एक वर्षपर्यन्त सान्नोदक कुम्भ प्रतिदिन, प्रतिमाह यथाशक्ति ब्राह्मणको देना चाहिये। पितराको समर्पित पिण्डाको गौ, अज, ब्राह्मण, अग्नि अथवा जलको अर्पित कर दे।

हविष्यान्न (तिल, व्रीहि, यव आदि)-से श्राद्ध करनेपर पितृगणाको एक मास तथा पायससे श्राद्ध करनेपर उन्हे एक वर्षपर्यन्त सतुष्टि प्राप्त होती है।

मृत व्यक्तियाके लिये कृष्ण चतुर्दशी तिथिम श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा करनेपर श्राद्धकर्ताको मृत्युके पश्चात् स्वर्ग तो प्राप्त होता ही है, जीवनकालमें भी उन (श्राद्धकर्ता)-को उत्साह, शौर्य, क्षेत्र तथा शक्तिकी प्राप्ति होती है।

जो विधिवत् अपने पितृजनाके लिये श्राद्ध करता है, वह पुत्र, सर्वजनश्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रमुखता, माङ्गलिक दक्षता, अभीष्ट कामना-पूर्ति, वाणिज्यम लाभ, निरोगता, यश, शोकराहित्य, परम गति, धन, विद्या, वाक्-सिद्धि, पात्र, गौ, अज, आविक (भेड), अश्व ओर दीर्घायु प्राप्तकर अन्तकालमे मोक्ष-लाभ प्राप्त करता है। कृत्तिकादिसे भरणीपर्यन्त प्रत्येक नक्षत्रमे श्राद्ध करनेवाले व्यक्तिको भी इन [illegible] सुखाकी प्राप्ति होती हे। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा [illegible] सुख-साधन स्वय ही श्राद्धकर्ताका सुलभ होते हैं [illegible] इस प्रकारका श्राद्धकर्ता भोजन वस्त्र तथा [illegible] परिपूर्ण रहता है।

पिता-पितामहादि पितर मनुष्य [illegible] आयु, सतति, धन, विद्या राज्य [illegible] और मोक्ष प्रदान करते हैं। [illegible]

विनायकशान्ति-स्नान

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे ऋषियो! अब आप सभी विनायककी अप्रसन्नतासे ग्रस्त (आविष्ट) पुरुषके लक्षणाका श्रवण करे। विनायकने [illegible] स्नान करता है [illegible] होता है, [illegible]

1-एक व्यक्ति (पिता)-के उद्देश्यसे किया जानेवाला श्राद्ध एकोद्दिष्ट है

2-ये चार पात्र पितरोके लिये अलग-अलग विहित हैं। इनके [illegible] हैं

3-इस एकोद्दिष्टका तात्पर्य यह है कि पार्वण श्राद्धमें [illegible]

रहते हैं। बिना कारण उसे पीडा होती है। विनायकको अप्रसन्नतासे युक्त हानेपर राजा राज्यसे वञ्चित रहता है, कुमारी पतिसे वञ्चित रहती हे तथा गर्भिणी स्त्री पुत्र-लाभसे वञ्चित रहती है। अतएव विनायककी शान्तिके लिये किसी पवित्र दिन एव शुभ मुहूतम उसे विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। स्नानकी विधि सक्षेपम इस प्रकार है— भद्रासनपर बिठाकर ब्राह्मणाद्वारा स्वस्तिवाचनपूवक स्नान कराना चाहिये। पीली सरसों पीसकर उसे घृत-मिश्रित करके उबटन बनाये और उस व्यक्तिक सम्पूर्ण शरीरम मले। फिर उसके मस्तकपर सर्वोपधिसहित सब प्रकारके सुगन्धित द्रव्यका लेप करे। सर्वोपधियुक्त चार कलशोंक जलसे स्नान कराना चाहिये। सरोवर आदि पाँच स्थानाकी मिट्टी, गोराचन, गन्ध ओर गुग्गुल—ये वस्तुएँ भी उन कलशाके जलम छोड।

प्रथम कलशको लेकर आचार्य निम्नलिखित मन्त्रसे उसे स्नान कराये—

सहस्राक्ष शतधारमृपिभि पावन स्मृतम्॥
तेन त्वामभिपिञ्चामि पावमान्य पुनन्तु ते।
(१००।६-७)

जो सहस्रा नेत्र (अनेक प्रकारकी शक्तिया)-से युक्त हैं, जिनकी सैकडा धाराएँ (प्रवाह) हैं आर जिसे महर्पियाने पवित्र करनवाला बताया है, उस पवित्र जलसे मैं (विनायकग्रस्त) तुम्हारा (उपद्रवकी शान्तिक लिये) अभिपेक करता हूँ। यह पावन जल तुम्हे पवित्र करे।

द्वितीय कलशके जलसे निम्नलिखित मन्त्र पढते हुए अभिषेक करे—

भग ते वरुणो राजा भग सूर्यो बृहस्पति ॥
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भग सप्तर्पयो ददु ।
(१००।७-८)

राजा वरुण तथा भगवान् सूर्य एव देवगुरु बृहस्पति आपके सौभाग्यकी अभिवृद्धि करे इसी प्रकार देवराज इन्द्र वायुदेव तथा सप्तर्पिगण भी आपके सोभाग्यकी अभिवृद्धि करते रह।

तृतीय कलशके जलसे निम्नलिखित मन्त्र पढते हुए अभिपेक करे—

यत्ते केशेपु दौर्भाग्य सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि॥
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु ते सदा।
(१००।८-९)

तुम्हारे केशामें, सीमन्तम, मस्तकपर, ललाटमे, कानामें और नेत्राम भी जो दुर्भाग्य है, उसे जलदेवता सदाके लिये शान्त कर।

तदनन्तर पहले कहे गये तीना मन्त्रासे चतुर्थ कलशके जलसे स्नान कराये। इसक बाद बाँय हाथमे कुशा लेकर स्नान किये हुए प्राणीक सिरको कुशसे स्पर्श करते हुए ब्राह्मणको सयमित होकर गूलरकी लकडीसे निर्मित स्रुवाके द्वारा सार्पपतैल (सरसाका तेल)-से अग्निमे आहुति प्रदान करनी चाहिये। आहुति देनके लिये ये मन्त्र विहित हैं— 'मिताय स्वाहा', 'सम्मिताय स्वाहा', 'शालाय स्वाहा', 'कटङ्कटाय स्वाहा', 'कूष्माण्डाय स्वाहा', 'राजपुत्राय स्वाहा' ('स्वाहा' के पूर्व प्रयुक्त सभी नाम विनायकके हैं। या० मि० ग० प्र० अ० श्लाक २८५)।

इसके अनन्तर लौकिक अग्निमे स्थालीपाक-विधिसे चरु पकाकर उससे सभी निर्दिष्ट विनायक नामवाले 'स्वाहा' युक्त छ मन्त्रोसे उसी लौकिक अग्निमे ही हवनकर अवशिष्ट हविशेपके द्वारा इन्द्र, अग्नि, यम आदिको बलि देनी चाहिये। तत्पश्चात् किसी चतुष्पथ (चौराहे)-पर कुशोका आसन बिछाकर उसमे पुष्प, गन्ध, उण्डरककी माला कच्चे-पक्के चावल, घृतमिश्रित पुलाव, मूली, पूडी, पुआ, दही, पायस, घृत, गुडपिष्ट, लड्डू तथा इक्षु—इन सभी सामग्रियोको एकत्र करके रख दे। तदनन्तर विनायकजननी भगवती अम्बिकाका उपस्थान करे और हाथ जोडकर अर्घ्य प्रदान करे।

पुत्रजन्मकी कामना करनेवाली स्त्रोको दूर्वा और सरसाके पुष्पोसे भगवती दुर्गाकी अर्चना करके स्वस्ति-वाचनके साथ इस प्रकार उनकी प्रार्थना करनी चाहिये—

रूप देहि यशो देहि भग भगवति देहि मे।
पुत्रान्देहि श्रिय देहि सर्वान्कामाश्च देहि मे॥
(१००।१६)

हे भगवति! आप मुझे रूप यश और ऐश्वर्य प्रदान करे। हे देवि! आप मेरे लिये पुत्र दे लक्ष्मी दे और मेरी सभी कामनाओको परिपूर्ण करे।

तत्पश्चात् ब्राह्मणाको भाजन प्रदानकर सतुष्ट करे। अपने गुरुको दो वस्त्र प्रदानकर अन्य ग्रहाकी पूजा करके सूर्यार्चनम निरत रहे। इस प्रकार विनायक और ग्रहोका पूजन करके मनुष्य अपने सभी कार्योंम सफलता प्राप्त करता है। (अध्याय १००)

ग्रहशान्ति-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे मुनियो! लक्ष्मी एवं सुख-शान्तिके इच्छुक तथा ग्रहोंकी दृष्टिसे दुःखित जनोंको ग्रहशान्तिके लिये तत्सम्बन्धित यज्ञ करना चाहिये। विद्वानोंके द्वारा सूर्य, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये नौ ग्रह बताये गये हैं। इनकी अर्चाके लिये इनकी मूर्ति क्रमशः इन द्रव्योंसे बनानी चाहिये—ताम्र, स्फटिक, रक्तचन्दन, स्वर्ण, सुवर्ण, रजत, अयस् (लोहा), सीसा तथा कांस्य। अर्थात् सूर्यग्रहके लिये ताम्र धातु, चन्द्रके लिये स्फटिक, मंगलके लिये रक्तचन्दन, बुध एवं बृहस्पतिके लिये स्वर्ण, शुक्रके लिये रजत, शनिके लिये लोहा, राहुके लिये सीसा तथा केतुके लिये कांस्य धातु प्रशस्त है।

सूर्यका वर्ण लाल, चन्द्रमाका सफेद, मंगलका लाल, बुध तथा बृहस्पतिका पीला, शुक्रका श्वेत, शनि, राहु और केतुका काला वर्ण होता है। इसी वर्णके इनके द्रव्य भी होते हैं। एक पाटेपर वस्त्र बिछाकर ग्रहवर्णोंके अनुसार निर्दिष्ट द्रव्योंके द्वारा विधिपूर्वक उनकी स्थापना तथा पूजा-होम करे। उन्हें सुवर्ण, वस्त्र तथा पुष्प समर्पित करे। उनके लिये गन्ध, बलि, धूप, गुगुल भी देना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रोंके द्वारा प्रत्येक ग्रह-देवताके निमित्त चरु पदार्थ अर्पित करना चाहिये।

उसके बाद यथाक्रम '*ॐ आकृष्णेन रजसा०*' इस मन्त्रके द्वारा सूर्य, '*ॐ इमं देवा०*' मन्त्रसे चन्द्र, '*ॐ अग्निर्मूर्धादिवः ककुत्०*' मन्त्रके द्वारा मंगल, '*ॐ उद्बुध्यस्व०*' मन्त्रसे बुध, '*ॐ बृहस्पते०*' इस मन्त्रके द्वारा बृहस्पति, '*ॐ अन्नात्परिस्रुतम्०*' मन्त्रसे शुक्र, '*ॐ शं नो देवी०*' मन्त्रके द्वारा शनि, '*ॐ कयानश्चि०*' मन्त्रसे राहु तथा '*ॐ केतुं कृण्वन्०*' मन्त्रके द्वारा केतु ग्रहके लिये आहुति देनी चाहिये।

इन ग्रहोंके लिये इसी क्रमसे मन्दार, पलाश, खैर, अपामार्ग (चिचड़ा), पिप्पल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशकी समिधाएँ विहित हैं। इन समिधाओंको घृत, दधि तथा मधुसे मिश्रितकर हवन करना चाहिये। तदनन्तर क्रमानुसार उपर्युक्त मन्त्रोंके द्वारा पदार्थोंकी आहुति प्रदान करे। यथा—सूर्यके लिये गुड़, चन्द्रके लिये भात, मंगलके लिये पायस, बुधके लिये साठी चावलकी खीर, बृहस्पतिके लिये दही-भात, शुक्रके लिये घृत, शनिके लिये अपूप (पुआ), राहुके लिये फलका गूदा और केतुके लिये अनेक वर्णके पकाये हुए धान्यकी आहुति देनी चाहिये।

द्विजको चाहिये कि इसी क्रमसे प्रत्येक ग्रहके लिये अन्न भी दानरूपमें दे। तदनन्तर प्रत्येक ग्रहके निमित्त यथाक्रम—धेनु, शंख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, कृष्णा गौ, अयस् (शस्त्र आदि) तथा छागकी दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार ग्रहोंकी सदैव पूजा करनेसे मनुष्यको राज्यादि फल प्राप्त होते हैं। (अध्याय १०१)

वानप्रस्थ-धर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे महर्षियो! अब मैं वानप्रस्थाश्रमके धर्मका वर्णन कर रहा हूँ, आप सभी इसका श्रवण करें।

वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट पुरुषको अपनी पत्नीके संरक्षणका भार पुत्रोंके ऊपर छोड़कर अथवा पत्नीके सहित वनमें जाना चाहिये।

वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाला ब्रह्मचर्य-व्रतका निर्वाह करते हुए अपनी श्रौत-अग्नि एवं गृह-अग्निके साथ वनमें जाय। शान्त एवं क्षमावान् रहकर वह अहर्निश देवोपासनामें निमग्न रहे। वह बिना जोती हुई भूमिसे उत्पन्न अन्नके द्वारा अग्निदेव पितरों, देवताओं, अतिथियों तथा भृत्योंको तृप्त (संतुष्ट) करे। आत्मज्ञानमें तत्पर रहनेवाला वह वानप्रस्थी दाढ़ी, जटा तथा लोमराशिको धारण करे, इन्द्रियोंका दमन करे, त्रिकाल स्नान करे एवं अपनेको प्रतिग्रह अर्थात् दान-ग्रहणसे दूर रखे।

ऐसे व्यक्तिको स्वाध्यायवान्, भगवद्ध्यानपरायण तथा सभी लोगोंके हितसाधनमें लगे रहना चाहिये। उसको जीवनयापनके लिये सीमित अर्थ-संग्रह करना चाहिये।

उसके पास जो कुछ शेष सामग्री हो, उसका आश्विन-मासमें परित्यागकर वह व्रतादिके द्वारा ही समय व्यतीत करे। यदि शक्ति हो तो एक मास या एक पक्षका व्रतकर

माता-पिता तथा मित्रका परित्याग, तालाब-उद्यानका विक्रय, कन्याको दूषित करना, बडे भाईकी उपेक्षा करके अग्न्याधान तथा विवाह करनेवालेको यजन कराना तथा ऐसे व्यक्तिको कन्यादान करना, गुरुसे अतिरिक्तके साथ कुटिलता करना, व्रतका लोप, केवल अपने लिये भोजन बनानेवाला, मद्यपान करनेवाली स्त्रीका सम्पर्क, स्वाध्याय, अग्नि, पुत्र तथा बन्धुका परित्याग, असत्-शास्त्रका अध्ययन, भार्या एव अपना विक्रय—ये सभी निन्दित कर्म उपपातक कहे गये हैं। हे मुनियो! आप अब इनके प्रायश्चित्तका ज्ञान प्राप्त करें—

ब्रह्महत्या करनेपर पापी व्यक्ति शिर कपाल (खर्पर-खापडी)-को हाथमे लेकर तथा दूसरा एक शिर कपाल ध्वजके समान दण्डमे लगाकर चले और भिक्षामात्रसे जीविका-निर्वाह करता हुआ अपने पापकर्मका उद्घोष करते हुए बारह वर्षतक अल्प भोजन कर आत्मशुद्धि करे अथवा जानते हुए इच्छापूर्वक ब्रह्महत्या करनेपर '**लोमभ्य स्वाहा**' इत्यादि मन्त्रके अनुसार लोमसे शरीरके अवयवोके प्रतिनिधिरूप यथाविहित विभिन्न द्रव्योकी आहुति देकर अन्तमे अपने शरीरका भी प्रायश्चित्त-विधानमे निर्दिष्ट विधानके अनुसार अग्निम प्रक्षेप करे। अपने प्राणोका त्याग करके ब्राह्मणकी रक्षा करनेसे भी ब्रह्महत्याकी शुद्धि हो जाती है।

अत्यधिक कष्ट देनेवाले दु सह बहुकालव्यापी रोग या अन्य किसी प्रकारके भयरूप आतकसे ग्रस्त ब्राह्मणको अथवा मार्गमे पडी हुई ऐसी ही गायको निरोग या निरान्तक करके भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति पायी जा सकती है। यदि कदाचित् प्रमादवश ऐसे ब्राह्मणकी हत्या किसीके द्वारा होती है जो ब्राह्मणके लिये अपेक्षित गुणासे युक्त नहीं है तो इस हत्यासे होनेवाले पापसे मुक्तिके लिये यह प्रायश्चित्त है—वनमे रहकर मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदका तीन बार पारायणकर अथवा सरस्वती (वेदविद्या)-की सेवामे अपना पूर्ण समर्पण करनेके साथ अपना सब कुछ धन (सर्वस्व) योग्य पात्रमे समर्पित करके अपनेको शुद्ध किया जाय। सोमयाग प्रयोगमे वर्तमान क्षत्रिय और वैश्यका वध करनेपर ब्रह्महत्याके लिये जो प्रायश्चित्त है उसे करे। गर्भहत्या करनेवाले पापीने जिस वर्णका गर्भ नष्ट किया हो उसी वर्णके अनुसार उसको उस पापका प्रायश्चित्त करना चाहिये। रजस्वला होनेके बाद ऋतुस्नान की हुई स्त्रीकी हत्या करनेवाला जिस वर्णकी स्त्रीकी हत्या की है, उस वर्णके अनुसार प्रायश्चित्त करे। हत्या करनेके लिये उद्यत होनेपर यदि हत्यारेको उस कृत्यमे सफलता नहीं प्राप्त होती है तो भी वह हत्याके पापसे मुक्त नहीं है, उसको उस पापका प्रायश्चित्त करना चाहिये।

सोमयागके लिये दीक्षित ब्राह्मणकी हत्या करनेपर ब्रह्महत्याके लिये विहित प्रायश्चित्तका दुगुना प्रायश्चित्त-व्रत करे। मदिरापान करनेवालेका प्रायश्चित्त, अग्निके समान प्रतप्त मदिरा एव गोमूत्रका अथवा अग्निके समान लाल-लाल खौलता हुआ गोघृतपान एव गोदुग्धपान करनेसे होता है और जल समझकर भूलसे मदिरा पी लेनेपर जटाधारण करके मलिन वस्त्र धारणकर अग्निके समान तप्त घृत पीते हुए ब्रह्महत्याके लिये विहित व्रत करे तथा पुन सवर्णोचित सस्कार करे तब शुद्धि होती है।

वीर्य, विष्ठा, मूत्रका पान करनेवाली ब्राह्मणी एव सुरा पीनेवाली ब्राह्मणी पातकी हो जाती है। पतिलोकसे परिभ्रष्ट होकर वह क्रमश गृध्री, सूकरी तथा कुतियाकी योनिमे जन्म लेती है।

ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी करनेवाले द्विजको चाहिये कि वह राजाको मूसल समर्पित करके अपने चौर्य-कर्मका उद्घोष करे। तत्पश्चात् उस मूसलके आघातसे वह मृत्युको प्राप्त हो या जीवित दोनो दशामे पवित्र हो जाता है। ऐसा द्विज अपनी तौलके बराबर सुवर्ण देकर भी आत्मशुद्धि कर सकता है।

जो गुरु-पत्नीके साथ सहवास करता है, उसको दहकती हुई लौहमयी स्त्री-प्रतिमाके साथ शयन करके अपने शरीरका परित्याग करना चाहिये अथवा अपना लिग और अण्डकोश काटकर नैर्ऋत्य दिशामे फक देना चाहिये और शरीरपर्यन्त पीछे मुँह करके चलता रहे अथवा वह दुरात्मा तीन वर्ष प्राजापत्य तथा कृच्छ्रव्रतका पालन करे या तीन मासतक चान्द्रायणव्रत एव वेद-सहिताका पाठ करके भी वह उस पापसे विमुक्त हो सकता है।

गो-वध करनेवाले पापीको पञ्चगव्य पानकर एक मासतक सयमित जीवन व्यतीत करना चाहिये। यह गोष्ठमे निवास करते हुए गौआका अनुगमन तथा गौका दान करे।

चान्द्रायणव्रत करनेसे उपपातकोकी शुद्धि होती है। एक मासतक दुग्ध-पान अथवा पराक नामक व्रत करके

उन उपपातकोसे शुद्धि प्राप्त की जा सकती है।

क्षत्रिय-वध करनेपर मनुष्यको एक बैल और एक हजार गायोका दान देना चाहिये अथवा वह तीन वर्षतक ब्रह्महत्याके लिये विहित व्रतका पालन करे। वैश्यका वध करनेवाले मनुष्यको एक वर्षतक ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त-व्रत अथवा एक सौ गायोका दान करना चाहिये। शूद्रकी हत्या करनेपर छ मासतक ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त अथवा दस सवत्सा दूध देनेवाली गायोका दान दे।[1] अदुष्ट अर्थात् सुशीला सच्चरित्र स्त्रीका वध करनेपर मनुष्यको शूद्र-वध-विहित प्रायश्चित्तव्रतका पालन करना चाहिये।

मार्जार (बिल्ली), गोह, नेवला, साधारण पशु तथा मेढककी हत्या करनेपर पापी व्यक्ति तीन रात्रितक दुग्धपानके साथ ही पाद कृच्छ्रव्रतका पालन करे। हाथीका वध करनेपर मनुष्यको पाँच नील[2] बैलोका दान देना चाहिये। शुक पक्षीकी हत्या करनेपर दो वर्षका बछडा तथा क्रौंच पक्षीका वध करनेपर तीन वर्षका बछडा दान देना चाहिये। गधा, बकरा और भेडकी हत्या करनेपर भी एक बैलका दान दे। वृक्ष, गुल्म, लता तथा झाडीको काटनेपर सौ बार गायत्री-जप करे।

मधु और मासका भक्षण करनपर कृच्छ्रव्रत तथा अन्य शेप व्रताका पालन करना चाहिये। यदि गुरुके द्वारा प्रेषित शिष्यकी मृत्यु मार्गमें हो जाती है तो गुरु तीन कृच्छ्र-व्रतका पालन करे, किंतु गुरुके प्रतिकूल कार्य करनेपर शिष्यके द्वारा उन्हे प्रसन्न करनेसे ही शुद्धि हो जाती है।

शत्रुओको धान्य आदि तथा प्रीति आदिके द्वारा प्रसन्न करे। यदि किये जा रहे उपकारके बीच ही ब्राह्मणकी मृत्यु हो जाती है तो उपकारी व्यक्तिको पाप नहीं लगता।

जो मनुष्य दूसरेको महापापी तथा उपपातकीका मिथ्या दोष लगाता है, ऐसा मनुष्य जितेन्द्रिय रहकर एक मासतक केवल जल पीकर रहे और पापमोचनमन्त्रका जप करे।

असत्-प्रतिग्रह लेनेसे जो पाप होता है, उससे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये एक मासपर्यन्त ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पयोव्रत करे। गोष्ठमे निवासकर गायत्री-मन्त्रके जपमे परायण रहे। ऐसा करनेसे मनुष्य पापविमुक्त हो जाता है।

(यथासमय यज्ञोपवीत-सस्कारादिसे वञ्चित) व्रात्यका यजन करानेवाला तीन कृच्छ्रव्रतका आचरण करके अपने उस पापसे मुक्त हो सकता है। ऐसे ही अभिचारक क्रिया करनेवालेके लिये भी यही प्रायश्चित्त है। वेदप्लावी[3] वर्षपर्यन्त जौका भक्षण करे। शरणमे आये हुएका परित्याग करनेवाला भी वर्षपर्यन्त जौका भक्षण करे।

गर्दभयान तथा उष्ट्रयानसे गमन करनेवाला तीन प्राणायाम करे। इसी प्रकार नग्नस्नान, नग्न-शयन और दिनमे स्त्रीगमन करनेपर भी तीन प्राणायामसे शुद्धि होती है।

गुरुजनोको 'तू' कहने तथा 'हूँ' इस प्रकार कहनेसे तथा वाद-प्रतिवादमे ब्राह्मणपर विजय प्राप्त करनेसे मनुष्यको जो पाप लगता है, उससे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये पापी मनुष्यको उस गुरु या ब्राह्मणको प्रसन्नकर एक दिनका उपवास करना चाहिये। ब्राह्मणपर प्रहार करनेके लिये उद्यत होनेपर कृच्छ्रव्रत तथा प्रहार कर देनेपर अतिकृच्छ्रव्रतका पालन करना चाहिये।

जिस निन्दित आचरणके लिये प्रायश्चित्त-विधान निर्दिष्ट नहीं है, उसके लिये देश, काल, आयु, शक्ति और पापपर सम्यक् विचार करके ही प्रायश्चित्तका निणय करना चाहिये। शास्त्रकारोंने पाप-विमुक्तिका यही समुचित नियम कहा है।

गर्भपात तथा पतिनिन्दा करना स्त्रियोंके पतनके कारण हैं। ऐसी स्त्रियाँ अपने दोषके अनुसार शास्त्रविहित प्रायश्चित्त नहीं करती हैं तो उनका परित्याग ही उचित है अन्यथा उन्हे अपने घरमे जीवनयापनके लिये आवश्यक सामान देकर रखना चाहिये।

जो पाप विख्यात हो चुका है, उसका प्रायश्चित्त गुरुजनोंके (परिषद्के)[4] अभिमतके अनुसार ही करना

१-ये सभी प्रायश्चित्त अज्ञानपूर्वक वधके लिये विहित हैं।

२-नील-वृष एक विशिष्ट लक्षणवाले बैलको कहते हैं।

३-या० स्मृति श्लोक २८८ की मिताक्षरा व्याख्याके अनुसार प्रकृतमें विप्लव शब्दके तीन अर्थ हैं—१-जो व्यक्ति वेदकी रक्षा कर सकता है यदि वह वेदरक्षा नहीं करता तो यह वेदका विप्लव है। २-अनध्यायकालमें वेदका अध्ययन विप्लव है। ३-वेदाध्ययनमे समर्थ अथवा वेदाध्ययन करके उत्कर्ष प्राप्त करनेवाले अधिकारीको वेदाध्ययनके प्रति अनुत्साहित करना विप्लव है। इनमसे किसी एक दोपसे युक्त व्यक्ति भी वेदप्लावी कहा जाता है।

४-वेद एव धर्मके विज्ञाता चार ब्राह्मणों अथवा तीन ब्राह्मणों या ब्रह्मवेत्ता धर्मशास्त्रज्ञ एक ब्राह्मणकी भी परिषद् हो सकती है।
(या० स्मृति आचाराध्याय श्लोक ९)

चाहिये, किंतु जो पाप विख्यात नहीं है, उसका प्रायश्चित्त गुप्तरूपसे करना चाहिये।

गुप्तरूपसे किये जानेवाले कुछ प्रायश्चित्त इस प्रकार समझना चाहिये—ब्रह्महत्या करनेवाला पापी तीन रात्रियोंतक उपवास रखकर विशुद्ध जल (नदी आदिके जलमें निमग्न होकर)-के मध्य अघमर्षण-मन्त्रका[1] जप कर और दूध देनेवाली गायका दान दे तो वह शुद्ध हो जाता है। किंतु यह प्रायश्चित्त अज्ञानमें होनेवाली ब्रह्महत्याके लिये विहित है। अज्ञानमें होनेवाली ब्रह्महत्याके निमित्त यह प्रायश्चित्त भी किया जा सकता है कि ब्रह्महत्याकर्ता अहोरात्रपर्यन्त वायुपान करते हुए जलमें रहनेके बाद प्रातःकाल जलसे बाहर आकर 'लोमभ्य स्वाहा[2]०' इत्यादि आठ मन्त्रोंसे पाँच-पाँच आहुतियाँ यथाविधान अग्निमें दे।

मद्यपी एवं सुवर्णकी चोरी करनेवाले पापीको जलके मध्य स्थित होकर रुद्रदेवके मन्त्रका जप करते हुए तीन दिनका उपवास और कुष्माण्डी ऋचासे घृतकी आहुतियाँ देकर आत्मशुद्धि करनी चाहिये। गुरु-पत्नीके साथ सम्पर्क करनेवाला पापी 'सहस्रशीर्षा०' मन्त्रका जप करके पापसे विमुक्त हो जाता है।

सौ बार प्राणायाम करनेपर मनुष्य सर्वविध पापोंसे मुक्त हो जाता है। अज्ञानवश किये गये पापकी शान्ति त्रैकालिक सन्ध्योपासनासे हो जाती है। ब्राह्मणोंके द्वारा एकादश आवृत्ति रुद्रानुवाकोंका जप करवानेसे भी पापका शमन होता है। वेदाभ्यास करनेवाले, शान्तिपरायण और पञ्चयज्ञके अनुष्ठाताको पापका स्पर्श तक नहीं होता। वायुमात्रका भक्षण करते हुए पूरे दिन सूर्यदर्शनके साथ एवं पूरी रात्रि जलमें रहकर एक सहस्र गायत्री-मन्त्रका जप करनेसे ब्रह्महत्यासे होनेवाले पापके अतिरिक्त अन्य समस्त पापोंसे मुक्ति हो जाती है।

ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, भगवद्ध्यान, सत्य, निष्कपटता, अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करना), माधुर्य और दम—ये दस यम माने गये हैं। स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, स्वाध्याय, इन्द्रियनिग्रह, तपस्या, अक्रोध, गुरुभक्ति और पवित्रता—ये दस नियम कहे जाते हैं।

गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र तथा गोमयको 'पञ्चगव्य' कहते हैं। इस पञ्चगव्यका कुशोदकके साथ पान कर व्रती दूसरे दिन उपवास करे। इस तरह दो रात्रिका कृच्छ्र-सान्तपनव्रत होता है। पहले दिन गोदुग्ध, दूसरे दिन गोदधि, तीसरे दिन गोघृत, चौथे दिन गोमूत्र, पाँचवें दिन गोमय, छठे दिन कुशोदक मात्र और सातवें दिन कुछ भी न लेकर शुद्ध उपवास कर जो व्रत पूर्ण किया जाता है, वही महासान्तपन नामक व्रत कहा जाता है।

पलाश, गूलर, कमल, बिल्वपत्र इनमेंसे एक-एकको एक-एक दिन जलमें पकाकर उसी जलको क्रमशः एक-एक दिन पीकर चार दिन रहे एवं पाँचवें दिन कुशोदकमात्र पीकर जिस व्रतका पालन किया जाता है, उसको पर्णकृच्छ्रव्रत कहते हैं। तप्तकृच्छ्रव्रतमें व्रतीको पहले दिन गरम गोदुग्ध, दूसरे दिन गरम घृत, तीसरे दिन गरम जलका प्राशन चौथे दिन उपवास करना चाहिये। यह पवित्र (शुद्ध) करनेवाला महातप्तकृच्छ्रव्रत है।

पहले दिन एकभक्तव्रत (चौबीस घण्टेमें मध्याह्नमें केवल एक बार भोजन करना), दूसरे दिन नक्तव्रत अर्थात् चौबीस घण्टेमें एक बार (रात्रिमें), तीसरे दिन अयाचित (बिना याचनासे प्राप्त) अन्नका भोजन करना, चौथे दिन पूर्ण उपवास करनेपर पादकृच्छ्रव्रत होता है। इसी पादकृच्छ्रव्रतको तीन बार करनेसे प्राजापत्यकृच्छ्रव्रत होता है। प्राजापत्यव्रतके अनुसार भोजन और उपवासका नियम किया जाय परंतु भोजनके रूपमें उतना ही अन्न ग्रहण किया जाय, जितना एक हाथमें आता हो। इस तरह चार दिनका उपवास करनेसे अतिकृच्छ्रव्रत हो जाता है। इक्कीस दिनतक जल या दूधमात्र लेकर अतिकृच्छ्रव्रतका पालन करनेसे वह कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत होता है। बारह दिन पूर्ण उपवास करनेपर एक पराकव्रत होता है।

पहले दिन जिनसे तेल निकाल लिया गया है ऐसे तिल, दूसरे दिन माँड, तीसरे दिन मट्ठा, चौथे दिन जल तथा पाँचवें दिन सत्तूका आहारकर छठे दिन उपवास करना सौम्यकृच्छ्रव्रत कहलाता है। इस सौम्यकृच्छ्रव्रतमें बताये गये पदार्थोंका एक दिनके स्थानपर तीन-तीन दिनतक क्रमशः पंद्रह दिनतक चलनेवाला तुलापुरुषसंज्ञक कृच्छ्रव्रत होता है अर्थात् इस व्रतमें (प्रथम) तीन रात्रियोंतक नि:सृत

१- ऋतं च सत्य० आदि मन्त्र अघमर्षण है।

२-या० स्मृतिमें श्लोक २८७ में इन मन्त्रोंको दिया गया है।

अनुसार अपसव्य आदिके रूपमे तीन दिनतक पिण्डरूप अन्न पृथ्वीपर मौन धारण करते हुए दे। श्राद्धके लिये अधिकृत व्यक्ति खुले हुए आकाशके नीचे एक शिक्य आदिके मिट्टीके पात्रमे जल और दूसरे मिट्टीके पात्रमे दूध उस प्रेतात्माको समर्पित करे। श्राद्धकताको अशुचि होनेपर भी श्रौत अग्नि एव स्मार्त अग्निमे किये जानेवाले नित्यकर्म (अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमास, स्मार्त अग्निमे विहित साय-प्रात होम)-का अनुष्ठान श्रुतिकी आज्ञाके अनुसार करना ही चाहिये।

यदि जन्मके पश्चात् और दाँत निकलनेके पूर्व बालककी मृत्यु हो जाती है तो उनके सम्बन्धियोकी सद्य शुद्धि हो जाती है। दाँत निकलनेके पश्चात् चूडाकरणतक एक अहारात्रका अशौच होता है और उपनयन-सस्कारके पहले और चूडाकरणके बाद बालककी मृत्यु होनेपर तीन रात्रिके बाद अशौच समाप्त हाता है। उपनयन-सस्कारके पश्चात् मृत्यु होनेपर दस रात्रियाका अशौच होता है। सपिण्डोंके लिये दस रात्रिका एव समानोदक लोगोंके लिये तीन रात्रिका अशौच होता है।

दो वर्षसे कम आयुवाले पुत्र एव पुत्रीकी मृत्युपर माता-पिता दोनोको दस रात्रिका अशौच होता है। यदि इस मरणाशौचके मध्य परिवारमे किसी बालकका जन्म या किसीकी मृत्यु होती है तो प्रथम अशौचके शेष दिनाके पश्चात् ही शुद्धि हो जाती है।

सपिण्डकी मृत्यु होनेपर ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके लिये क्रमश — दस बारह, पद्रह तथा तीस दिनोका अशौच माना गया है। पाणिग्रहण-सस्कारके पूर्व और वाग्दानके पूर्व तथा चूडाकरणके बाद कन्याकी मृत्यु होनेपर एक अहोरात्रमे ही शुद्धि हो जाती है। या० स्मृति २४व श्लोककी मिताक्षराके अनुसार दाँत निकलनेके पूर्व यदि बालकका मरण हुआ और उसका अग्नि-सस्कार किया गया तो एक दिनमें शुद्धि हो जाती है। गुरु[१] और अन्तेवासी (शिष्य) वेदाङ्गोका प्रवक्ता मामा[२] श्रोत्रिय[३] एव अनौरस[४] पुत्र अपनी वह भार्या जो प्रतिलोम सकरसे अतिरिक्त किसी अन्यक आश्रयमे रह रही है उसके तथा अपने देशके राजाकी मृत्युपर एक दिनका अशौच होता है। राजा (अभिसिक्त क्षत्रिय आदि राजा), गौ (पशुमात्र), ब्राह्मण (मनुष्यमात्र)-के द्वारा जो आहत होता है, उसके सम्बन्धियोंकी स्नानमात्रसे तत्काल शुद्धि हो जाती है। ऐसे ही जिसने विष या बन्धन आदिके द्वारा बुद्धिपूर्वक आत्मघात कर लिया है, उसक सम्बन्धियोकी भी तत्काल स्नानमात्रसे शुद्धि हो जाती है और समस्त पृथ्वी या पृथ्वीके एक देशके अभिषिक्त अधिपति क्षत्रिय आदिको मरण या उत्पत्तिनिमित्तिक अशौच नहीं होता। सत्री (लगातार अन्नसत्र चलानेवाले), व्रती (कृच्छ्, चान्द्रायण आदि व्रतमे प्रवृत्त), ब्रह्मचर्यव्रतमें प्रवृत्त, दाता (वह वानप्रस्थाश्रमी जो केवल दान ही देता है प्रतिग्रह कभी भी नहीं करता), ब्रह्मविद् (सन्यासी) किसी भी प्रकारके अशौचसे ग्रस्त नहीं होते। दान (किसीको देनेके लिये पूर्वमे सकल्पित द्रव्य), विवाह (विवाहके निमित्त एकत्रित सामग्री), यज्ञ आदि विशेष कृत्योके लिये एकत्रित सामग्री, सग्राम (युद्धकाल)-में, दशमे अतिभयकर या राजभयसे उत्पन्न विप्लवकी दशामें, अतिकष्टकर आपत्तिमे किसी भी पकारके अशौचकी निवृत्ति तत्काल ही हो जाती है अर्थात् अशौच नहीं होता।

जो अकार्यकारी अर्थात् निषिद्ध कार्य करनेवाले हैं उनकी शुद्धि दान देनेसे होती है। ग्रीष्म-ऋतु आदिके प्रभावसे जो नदी अत्यल्प जलवाली हो जाती है और उसके किनारे आदि अपवित्र वस्तुओसे उपहत हो जाते हैं वह नदी जलके वेगपूर्ण उस प्रवाहसे शुद्ध हो जाती है जो प्रवाह नदीको जलमय बना दे और उसके किनारोको काट देनेमे समर्थ हो।

आपत्कालमें ब्राह्मणको क्षत्रिय एव वैश्यवर्णकी वृत्तिसे जीविकाका निर्वाह करना चाहिये किंतु वैश्यवृत्ति करनेवाले ब्राह्मणके लिये फल सोमलता क्षौमवस्त्र (सभी वस्त्र), वेत्र आदिकी लताएँ, औषधि लता दधि दुग्ध, घृत जल तिल, ओदन रस क्षार, मधु, लाक्षा पकाया हुआ हविष्यान्न वस्त्र मणि आदि प्रस्तरमात्र आसव पुष्प शाक मिट्टी, चर्म पादुका, मृगचर्म कौशेय (वस्त्र), लवण मास तिलकुट (पिण्याक), मूल और सुगन्धित द्रव्य-पदार्थोका विक्रय वर्जित है।

१-पिता ही यदि गुरु होते हैं तो उनकी मृत्युपर पिताकी मृत्युपर होनेवाला अशौच होगा।

२-यहाँ मामा मात्रको नहीं लेना है अपितु मातृ-पक्ष एव पितृ-पक्षके जितने भी बन्धु हैं उन सबको लेना है।

३-वेदकी एक शाखामात्रका अध्येता।

४-औरसके अतिरिक्त क्षेत्रज दत्तक आदि पुत्र।

ब्राह्मणके द्वारा अपने श्रौत-स्मार्त-यज्ञकी पूर्णताके लिये अपेक्षित धान्य या अन्य किसी अत्यावश्यक औषधि आदिकी व्यवस्थाके लिये अपेक्षित धान्यके बराबर तिलका विक्रय करके धान्यका सग्रह किया जा सकता है। किंतु आपत्कालमे भी लवणादिका व्यापार ब्राह्मणके लिये अवश्य वर्जित है। (आपत्तियोंके कारण नमकादिके अतिरिक्त) ब्राह्मण अन्य जो कुछ हीन आवैश्यवृत्ति करता है, उसमें वह उसी प्रकार निष्कलुष रहता है जैसे सूर्य। आपत्कालम ब्राह्मण कृषि एव पशुपालनादि कार्य कर सकता है, किंतु उसके द्वारा अश्वोंका विक्रय त्याज्य है।

यदि किसी कारण ब्राह्मण कृषि आदिसे भी अपने जीवनकी रक्षा न कर सके तो तीन दिन बुभुक्षित ही रहे। तदनन्तर ब्राह्मणके अतिरिक्त और किसीके यहाँसे केवल एक दिनके लिये धान्य प्राप्त करे तथा अब्राह्मणसे प्राप्त इस धान्यका उपभोग करते समय वह प्रकाशित भी करे कि मैंने अब्राह्मणसे धान्य लेकर आज जीवन-निर्वाह किया है। ऐसे वृत्तिसकरसे ग्रस्त ब्राह्मणके वृत्त, कुल, रीति, शास्त्राध्ययन, वेदाध्ययन और तप आदि विशेषताओंको जानकर राजाका यह कर्तव्य होता है कि वह उस ब्राह्मणके लिये धर्मानुकूल जीवन-यापनकी व्यवस्था करे। (अध्याय १०६)

महर्षि पराशरप्रोक्त वर्ण तथा आश्रम-धर्म एव प्रायश्चित्त-धर्मका निरूपण

सूतजीने कहा—महर्षि पराशरने वेदव्यासजीसे वर्णाश्रमादिके धर्मका वर्णन किया था। [उनका यही कहना है कि] कल्प-कल्पम उत्पत्ति और विनाशके कारण प्रजाएँ आदि क्षीण होती रहती हैं। कल्पके प्रारम्भमे मन्वादि ऋषि वेदाका स्मरण करके ब्राह्मणादि वर्णोंके धर्मोंका पुन निरूपण करते हैं।

कलियुगमे दान ही धर्म है। कलियुगम केवल पाप करनेवालेका परित्याग करना चाहिये[१]। कलियुगमे पाप तथा शाप—ये दोनो एक वर्षमे फलीभूत हो जाते हैं।

मनुष्य आचार (सदाचार तथा शौचाचार)-से ही सब कुछ प्राप्त करे। सध्या स्नान, जप, होम, देव और अतिथिपूजन—इन षट्कर्मोंको प्रतिदिन करना चाहिये। आचारवान् ब्राह्मण तथा सन्यासी इस कलियुगम दुर्लभ हैं। क्षत्रियको चाहिये कि वह शत्रुसेनाओंको जीतकर पृथिवीका भलीभाँति पालन करे। वैश्य कृषि एव पशुपालन तथा व्यापारादि करे और शूद्र इन तीन द्विजवर्णोंकी सेवामे अनुरक्त रहे।

व्यक्तिका पतन अभक्ष्य-भक्षण (शास्त्र-निषिद्ध भोजन), चोरी और अगम्यागमन करनेसे हो जाता है। यदि द्विज कृषिकार्य करता है तो वह थके हुए बैलसे हल न खींचे तथा उसे भार ढोनेके कार्यमे नियोजित न करे। स्नान और योगादि कार्योंसे निवृत्त होकर पञ्चयज्ञ करे। मध्याह्नकालमे ब्राह्मणाको भोजन कराये और क्रूरकर्मोंकी निन्दा करे।

तिल तथा घृतका विक्रय नहीं करना चाहिये। पञ्चसूनाजनित दोषके निवारणार्थ [बलिवैश्वदेव] होम करे। कृषिकर्ता द्विजद्वारा अपनी उपजका क्रमश छठा भाग राजा, बीसवाँ भाग देवता और तैंतीसवाँ भाग ब्राह्मणाको देता है, इससे (कृषिजनित) पाप नहीं लगता। कृषिकार्य करनेवाले क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र यदि खलिहानमे उक्त निर्धारित भाग राजा आदिको प्रदान नहीं करते हैं तो वे चोरके समान पापके भागी होते हैं।

मृत्युका अशौच होनेपर [सामान्यत] ब्राह्मण तीन दिनके पश्चात् शुद्ध हो जाता है[३]। इसी प्रकार क्षत्रिय दस दिन, वैश्य बारह दिन और शूद्र एक मासके पश्चात् शुद्ध होता है। ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य पद्रह दिन तथा शूद्र एक मासमे शुद्ध होते हैं। जो सपिण्ड-कुल-परम्परासे प्राप्त होनेवाली भू-सम्पत्ति आदिके हिस्सेदार हैं। और पृथक् आवास बनाकर रहनेवाले बन्धु-बान्धव हैं, उन्हे

१-त्यजेद्देश कृतयुगे त्रेताया ग्राममुत्सृजेत्। द्वापरे कुलमेक तु कर्तार तु कलौ युगे॥

सत्ययुगमें जिस देशमें पाप होता हो उस देशका त्रेतामे जिस ग्राममें पाप होता हो उस ग्रामका द्वापरम जिस कुलमे पाप होता हो उस कुलका और कलियुगमे केवल पाप करनेवालेका त्याग कर देना चाहिये।

२-सूनाका अर्थ है—पशुके वधका स्थान। यहाँ सूनाका अर्थ है—हिंसाका स्थान। गृहस्थके घरमे हिंसाके पाँच स्थान होते हैं—चूल्हा पेषणी (कूटने-पीसनेका साधन खल-बट्टा सिल आदि) मार्जनी (झाड़ू आदि) ऊखल मूसल और जलका कलश—ये ही पाँचसूना हैं।

३-यहाँपर ब्राह्मण आदिकी अशौच-निवृत्तिके लिये दो प्रकारके वचन दिये गये हैं। पहलेके अनुसार तीन दिनम तथा दूसरेके अनुसार दस दिनमें शुद्धि लिखी है। कलियुगमे दूसरा वचन ही मानकर अशौच-निवृत्तिकी व्यवस्था समझनी चाहिये।

जन्म तथा मृत्यु आदिकी विपत्तिमें अशौच होता है। चौथी पीढ़ीतक दस दिन, पाँचवीं पीढ़ीमें छः दिन, छठीं पीढ़ीमें चार दिन, सातवीं पीढ़ीमें तीन दिन मरणाशौच होता है। देशान्तरमें बालककी मृत्यु होनेपर सद्यः स्नानमात्रसे शुद्धि होती है।

जो बालक जन्म होनेके पश्चात् दाँत निकलनेके पूर्व ही मर जाते हैं या जिनकी मृत्यु गर्भसे बाहर होनेके समय हो जाती है, उन सबका अग्नि-संस्कार, पिण्डदान तथा जल-संतर्पण-कार्य नहीं होता है। यदि स्त्रीका गर्भस्राव हो जाता है अथवा गर्भपात हो जाता है तो जितने मासका वह गर्भ होता है, उतने दिनतक सूतक मानना चाहिये। जन्मसे लेकर नामकरणतक बालककी मृत्यु होनेपर सद्यः स्नानमात्रसे शुद्धि होती है। यदि नामकरणके पश्चात् चूडाकरण-संस्कारके मध्य बालककी मृत्यु होती है तो एक दिन और एक रात्रिका अशौच होता है। यदि उपनयन-संस्कारके पूर्व बालककी मृत्यु हो जाती है तो तीन रात्रियोंतक और तत्पश्चात् उसकी मृत्यु होनेपर दस रात्रियोंका अशौच होता है।

चार मासतकके गर्भके नष्ट होनेपर गर्भस्राव तथा पाँच और छः मासके गर्भके गिरनेको गर्भपात कहा जाता है।

जो ब्रह्मचर्यव्रतके अग्निहोत्रकी दीक्षामें हैं अथवा अनासक्त-भावसे जीवन व्यतीत करनेवाले हैं, उनके लिये जन्म एवं मृत्युका अशौच नहीं होता। शिल्पकार, कारुकर्म करनेवाला (चटाई बनानेवाला), वैद्य, दास-दासी-भृत्य-अग्निहोत्री तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण और राजा—ये सद्यः शौचवाले कहे गये हैं।

जन्मका अशौच होनेपर माता दस दिनमें तथा पिता स्नान करनेके बाद शुद्ध हो जाता है। सूतिका-गृहमें प्रसूता स्त्रीके स्पर्शसे पिताको अशौच हो जाता है। आचमनसे पिता इस अशौचसे शुद्ध हो जाता है।

यदि विवाहोत्सव तथा यज्ञादिक कार्योंके सम्पादन-कालमें ही मृत्यु या जन्मका अशौच हो जाता है तो पूर्वसंकल्पित कार्यसे अन्य कार्यके निषेधका विधान है। अर्थात् पूर्वसंकल्पित कार्यके लिये अशौच नहीं होता। बादके कार्यमें अशौच होगा।

अनाथ व्यक्तिके शवको वहन करनेपर प्राणायाममात्रसे ही मनुष्यकी शुद्धि हो जाती है, किंतु शूद्रका शव उठानेपर तीन रात्रियोंके पश्चात् शुद्धि होती है।

आत्मघात, विषपान, फाँसी तथा कृमिदंशसे मृत्यु होनेपर उसका संस्कार यथाविधान विशेष प्रायश्चित्तके बिना नहीं होता है। गौके द्वारा आहत होनेसे अथवा कृमिदंशके कारण मरे हुए व्यक्तिका स्पर्श करनेपर कृच्छ्रव्रतसे शुद्धि होती है, यह शुद्धि अशौच-निमित्तक है।

जो पत्नी यौवनावस्थामें अपने निर्दुष्ट एवं सच्चरित्रवान् पतिका परित्याग कर देती है, वह सात जन्मोंतक स्त्रीयोनिको प्राप्त कर बार-बार विधवा होती है। ऋतुकालमें पत्नीके साथ संसर्ग न करनेके कारण पुरुषको बालहत्याका पाप लगता है। जो स्त्री अन्न-पानादिकी दृष्टिसे भ्रष्ट होती है, वह अगम्या होती है तथा जन्मान्तरमें सूकरयोनि प्राप्त करती है।

औरस और क्षेत्रज पुत्र एक ही पिताके पुत्र होते हैं। अतः ये दोनों पुत्र अपने पिताके लिये पिण्डदान कर सकते हैं।

परिवेत्ता[1] एवं परिवित्ति (बड़े भाईद्वारा अपने विवाहकी अस्वीकृति देनेवाला)-को अपनी शुद्धिके लिये कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। इसी प्रकार कन्या[2]को भी कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। ऐसी कन्याके दान देनेवालेको अतिकृच्छ्रव्रत तथा विवाह-विधि सम्पन्न करानेवालेको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये।

यदि बड़ा भाई कुबड़ा, बौना, नपुंसक, हकलानेवाला, मूर्ख, जन्मान्ध, बहरा तथा गूँगा हो तो छोटे भाईके द्वारा विवाह कर लेनेमें कोई दोष नहीं होता।

जिसे वाग्दानमात्र किया गया है ऐसा भावी पति यदि परदेश चला जाय, मर जाय, संन्यास-धर्मका अवलम्बन कर ले, नपुंसक हो अथवा पतित हो गया हो तो इन पाँच आपदाओंमें वाग्दत्ता कन्या दूसरे पतिका वरण कर सकती है। अपने पतिके साथ सतीधर्मके अनुसार अग्निमें प्रवेश करनेवाली स्त्री शरीरमें स्थित रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करती है।

कुत्ता आदिके काटनेपर मनुष्यको गायत्री-मन्त्रके

१-ज्येष्ठ भ्राताके अविवाहित रहते हुए अपना विवाह कर लेनेवाला छोटा भाई 'परिवेत्ता' कहा जाता है और परिवेत्ताका अविवाहित बड़ा भाई 'परिवित्ति' कहा जाता है।

२-यहाँ उस कन्याको समझना चाहिये, जिसका परिवेत्तासे विवाह हुआ है।

जपसे शुद्धि करनी चाहिये। जिसे स्वय गायत्री-जपका अधिकार नहीं है, उसे ब्राह्मणद्वारा गायत्री-जप कराना चाहिये। चाण्डाल आदिके द्वारा मारा गया अग्निहोत्री ब्राह्मण लौकिक अग्निसे जलाने योग्य होता है। [उस अग्निसे जलाये गये] ब्राह्मणकी अस्थियोको दूधमे प्रक्षालित करके पुन विधिवत् मन्त्रपूर्वक अपने अग्निहोत्रशालाकी अग्निसे प्रदग्ध करना चाहिये। यदि मृत्यु प्रवासकालमें होती है तो परिजनको अपने घरपर उस मृत व्यक्तिका कुशसे शरीर बनाकर पुन अग्निदाह करना चाहिये।

कृष्णमृगचर्मपर छ सौ पलाशपत्राको (मृतककी आकृतिके समान) बिछाकर अथवा कुशमय शरीरका निर्माण करके शिश्न-भागपर शमी तथा वृषण-भागपर अरणिके काष्ठको स्थापित करे। उसके दाये हाथके स्थानपर कुण्ड (स्थाली) और बाये हाथके स्थानपर उपभृत [यज्ञियपात्र], पार्श्वभागमें उलूखल तथा पीठकी ओर मूसल रखे। तत्पश्चात् उस शवके वक्ष स्थलपर [सोमरस तैयार करनेके लिये प्रयोगमें आनेवाले] पत्थरको रखकर उसके मुखभागमे घृत-तण्डुल और तिल डालना चाहिये। कानके पास प्रोक्षणीपात्र और नेत्रोंके सनिकट आज्यस्थाली रखे। कान, नेत्र, मुख तथा नासिका-भागम स्वर्ण-खण्ड रखनेका विधान है। इस प्रकार अग्निहोत्रके समस्त उपकरणाक सहित उस अग्निहोत्रीका शवदाह करनेसे वह (मृत अग्निहोत्री) ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। 'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' इस मन्त्रसे घृतकी एक आहुति देनी चाहिये।

हस, सारस, क्रौंच, चक्रवाक, कुक्कुट, मयूर और मेषका वध करनेवाला मनुष्य एक दिन तथा एक रात्रिके उपवासके पश्चात् पापसे शुद्ध हो जाता है। अन्य सभी पक्षियोका वध करनेपर एक अहोरात्रमे शुद्धि होती है।

सभी प्रकारके चतुष्पद पशुओका वध करनेपर जो पाप मनुष्यको लगता है, उसका अवमोचन खडे होकर एक अहोरात्र उपवास कर [गायत्री] मन्त्रका जप करनेसे होता है।

शूद्रका वध करनेपर कृच्छ्रव्रत, वैश्यकी हत्या करनेपर अतिकृच्छ्रव्रत, क्षत्रियका वध करनेपर बाईस चान्द्रायणव्रत एव ब्राह्मणकी हत्या करनेपर तीस चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। (अध्याय १०७)

बृहस्पतिप्रोक्त नीतिसार

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! अब मैं 'अर्थशास्त्र' आदिपर आश्रित नीतिसार कह रहा हूँ, जो राजाओंके साथ ही अन्य सभीके लिये भी हितकर तथा पुण्य, आयु और स्वर्गादिको प्रदान करनेवाला है।

जो मनुष्य [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ-चतुष्टयको] सिद्धि चाहता है, उसको सदैव सज्जनाकी ही सगति करनी चाहिये। दुर्जनोके साथ रहनेसे इस लोक अथवा परलोकमें हित सम्भव नहीं है—

सद्भि सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकाम सदा नर ।
नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम्॥
(१०८।२)

क्षुद्रके साथ वार्तालाप और दुष्ट व्यक्तिका दर्शन नहीं करना चाहिये। शत्रुसे सेवित व्यक्तिके साथ प्रेम न करे और मित्रके साथ विरोध न करे। मूर्ख शिष्यको उपदेश देनेसे, दुष्ट स्त्रीका भरण[1]-पोषण करनेसे तथा दुष्टोका किसी कार्यमे सहयोग लेनेसे विद्वान् पुरुष भी अन्तमे दु खी हो जाता है। मूर्ख ब्राह्मण, युद्ध-पराङ्मुख क्षत्रिय, विवेकरहित वैश्य और अक्षरसयुक्त शूद्रका परित्याग तो दूरसे ही कर देना चाहिये। कालकी प्रबलतासे शत्रुके साथ सधि और मित्रसे विग्रह (शत्रुता) हो जाता है। अत कार्य-कारण-भावका विचार करके ही पण्डितजन अपना समय व्यतीत करते हैं।

समय प्राणियाका पालन करता है। समय ही उनका सहार करता है। उन सभीके सोनेपर समय (काल) जागता रहता है। अत समय बडा ही दुरतिक्रम है (अर्थात् समयको जीतना बडा ही कष्टसाध्य है)। समयपर ही प्राणीके पराक्रमका क्षरण होता है। समय आनेपर ही प्राणी गर्भमे आता है। समयके आधारपर उसकी सृष्टि होती है और पुन समय ही उसका सहार भी करता है। काल निश्चित ही नियमसे नित्य सूक्ष्म गतिवाला ही होता है तब भी हमारे अनुभवमे उसकी गति दो प्रकारसे होती है, जिसका अन्तिम परिणाम जगत्का सग्रह ही होता है। यह

१-यथाशक्ति भरण-पोषणका प्रयास करना चाहिये और यदि स्त्रीके दुष्ट स्वभाववश भरण-पोषण कदाचित् अशक्य हो रहा है या पारिवारिक-सामाजिक व्यवस्था उच्छिन्न हो रही है तब इस व्यवस्थाको ध्यानमें रखना चाहिये।

गति स्थूल एव सूक्ष्म-रूपमे दो प्रकारकी होती है।

ऋषियो! बृहस्पतिने इन्द्रसे इस नीतिसारका वर्णन किया था, जिसके कारण सर्वज्ञ होकर इन्द्रने दैत्योका विनाश करके दवलोकका आधिपत्य प्राप्त किया था।

ब्राह्मणकल्प राजर्षियोको नित्य देवता एव ब्राह्मण आदिका पूजन करना चाहिये तथा महान् पातकोको नष्ट करनेवाले अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये।

उत्तम प्रकृतिवाले सज्जनोकी सगति, विद्वानोके साथ सत्कथाका श्रवण और लोभरहित मनुष्यके साथ मैत्रीसम्बन्ध स्थापित करनेवाला पुरुष दु खी नहीं होता[1]।

[दूसरेकी] निन्दा, दूसरेका धन-ग्रहण, परायी स्त्रीके साथ परिहास तथा पराये घरम निवास कभी नहीं करना चाहिये। हितकारी अन्य व्यक्ति भी अपने बन्धु हैं और यदि बन्धु अहितकर है तो वह भी अपने लिये अन्य है। शरीरसे ही उत्पन्न हुई व्याधि अहितकर होती है, किंतु वनमे उत्पन्न हुई औषधि उस व्याधिका निराकरण करके मनुष्यका हित-साधन करती है। जो मनुष्य सदैव हितमे तत्पर रहता है, वही बन्धु है। जो भरण-पोषण करता है, वही पिता है। जिस व्यक्तिमे विश्वास रहता है, वही मित्र है और जहाँपर मनुष्यका जीवन-निर्वाह होता है, वही उसका देश है[2]।

जो आज्ञापालक है, वही वास्तविक भृत्य (सेवक) है, जो बीज अकुरित होता है, वही बीज है जो पतिके साथ प्रिय सम्भाषण करती है, वही वास्तविक भार्या है। पिताके जीवनपर्यन्त पिताके भरण-पोषणमे जो पुत्र लगा रहता है, वही वास्तवमे पुत्र है। जो गुणवान् है, उसीका जीवन वास्तवमे सार्थक है। जो धर्ममे प्रवृत्त है वही जीवित है जो गुण-धर्मविहीन है, उसका जीवन निष्फल है।

जो भार्या गृहकार्यमे दक्ष है जो प्रियवादिनी है, जिसके पति ही प्राण हैं और जो पतिपरायणा है वास्तवमे वही भार्या है[3]। जो नित्य स्नान करके अपने शरीरको सुगन्धित द्रव्य-पदार्थोसे सुवासित करनेवाली है प्रियवादिनी है, अल्पाहारी है, मितभाषिणी है, सदा सब प्रकारके मङ्गलोसे युक्त है, जो निरन्तर धर्मपरायण है निरन्तर पतिकी प्रिय है सदा सुन्दर मुखवाली है तथा जो ऋतुकालमे ही पतिसे सहगमनकी इच्छा रखती है, वही भार्या है।

—इन लक्षणोसे समन्वित स्त्री समस्त सौभाग्योकी अभिवृद्धिकारिणी होती है। जिस मनुष्यकी ऐसी भार्या है वह मनुष्य नहीं देवराज इन्द्र है।

जिस मनुष्यकी भार्या विरूप नेत्रोवाली, पापिनी, कलहप्रिय और विवादमे बढ-चढकर बोलनेवाली है, वह पतिके लिये वास्तवमे वृद्धावस्था ही है, वास्तविक वृद्धावस्था वृद्धावस्था नहीं है। जिसकी भार्या परपुरुषका आश्रय ग्रहण करनेवाली है, दूसरेके घरम रहनेकी आकाक्षा रखती है, कुकर्ममे सलग्न है तथा निर्लज्ज है, वह (पतिके लिये) साक्षात् वृद्धावस्था-स्वरूप है।

जिस पुरुषकी भार्या गुणाका महत्त्व समझनेवाली, पतिका अनुगमन करनेवाली और स्वल्पसे भी स्वल्प वस्तुसे सतुष्ट रहनेवाली है, पतिके लिये वही सच्ची प्रियतमा है, सामान्य प्रिया नहीं है।

दुष्ट पत्नी, दुष्ट मित्र तथा प्रत्युतर देनेवाला भृत्य और सर्पयुक्त घरमे निवास साक्षात् मृत्यु ही है।

मनुष्यको दुर्जनाकी सगतिका परित्याग करके साधुजनोकी सगति करनी चाहिये और दिन-रात्रि पुण्यका सचय करते हुए नित्य अपनी अनित्यताका स्मरण रखना चाहिये—

त्यज दुर्जनससर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्र स्मर नित्यमनित्यताम्॥
(१०८।२६)

जो स्त्री सर्पके कण्ठमें रहनेवाले विषके समान है, जो सर्पके फणोके सदृश भयकर है, जो रौद्ररसकी साक्षात् मूर्ति है, जो शरीरसे कृष्णवर्णकी है, जो रक्तके सदृश लाल-लाल नेत्रोंके द्वारा दूसरेके हृदयको भयभीत कर देनेवाली है, जो व्याघ्रके समान भयानक है, जो क्रोधवदना एव प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाकी भाँति धधकनेवाली और काकके समान जिह्वालोलुप है, अपने पतिसे प्रेम न रखनेवाली है भ्रमितचित्तवाली तथा दूसरेके पुर (घर-नगर) आदिमें जानेवाली अर्थात् परपुरुषकी इच्छा रखनेवाली है वह स्त्री

१-उत्तमै सह साङ्गत्यं पण्डितै सह सत्कथाम्। अलुब्धै सह मित्रत्व कुर्वाणो नावसीदति॥ (१०८।१२)

२-परोऽपि हितवान् बन्धुर्बन्धुरप्यहित पर। अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम्॥
स बन्धुर्यो हिते युक्त स पिता यस्तु पोषक। तन्मित्रं यत्र विश्वास स देशो यत्र जीव्यते॥ (१०८।१४-१५)

३-सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रियंवदा। सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता॥ (१०८।१८)

कदापि सेव्य नहीं है।

जैसे दैववश कभी अल्प सामर्थ्यवान् व्यक्ति भी शक्तिशाली हो सकता है, कृतघ्न व्यक्ति भी कभी सुकृत कर सकता है, अग्निमे कभी शीतलता भी आ सकती है, हिममें उष्णता भी आ सकती है, किंतु वेश्यामें [पुरुषविषयक] अनुराग नहीं हो सकता।

घरके अदर भयकर सर्प देख लिये जानेपर, चिकित्सा होनेपर भी रोग बने ही रहनेपर, बाल्य-युवा आदि अवस्थासे युक्त यह शरीर कालसे आवृत है। यह समझनेपर भी कौन ऐसा व्यक्ति है, जो धैर्य धारण कर सकता है? (अध्याय १०८)

नीतिसार-निरूपण

सूतजीने कहा—आपत्तिकालके लिये धनका सरक्षण करना चाहिये, स्त्रियोंकी रक्षाके लिये धनका उपयोग करना चाहिये एव अपनी रक्षामे स्त्री एव धन दोनाका उपयोग करना चाहिये।

कुलकी रक्षाके लिये एक व्यक्तिका, ग्रामकी रक्षाके लिये कुलका, जनपदके हितके लिये ग्रामका और अपने वास्तविक कल्याणके लिये पृथिवीका भी परित्याग कर देना चाहिये—

त्यजेदेक कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुल त्यजेत्।
ग्राम जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

(१०९।२)

नरकमे निवास करना अच्छा है, किंतु दुश्चरित्र व्यक्तिके घरमे निवास करना उचित नहीं है। नरकवासके कारण पाप विनष्ट हो जाता है, किंतु दुश्चरित्र व्यक्तिके घरमें निवास करनेसे पापकी निवृत्ति नहीं होती। बुद्धिमान् पुरुष एक पाँवको स्थिर करके ही दूसरे पाँवको आगे बढाता है। इसीलिये अगले स्थानकी परीक्षाके बिना पूर्वस्थानका परित्याग नहीं करना चाहिये[1]।

दुष्टजनासे व्याप्त देश उपद्रवग्रस्त निवासभूमि, कृपण राजा तथा मायावी मित्रका परित्याग कर देना चाहिये।

कजूसके हाथमे पहुँचे हुए धन, अत्यन्त दुष्ट और आग्रही व्यक्तिके पास सचित ज्ञान, गुण एव पराक्रमसे रहित रूप तथा आपत्तिकालमे पराङ्मुख मित्रसे मनुष्यको क्या लाभ हो सकता है? जो पदासीन (अधिकारयुक्त) व्यक्ति है, उसके कभी न देखे गये बहुत-से व्यक्ति भी सहायक हो जाते हैं और सभी व्यक्ति मित्र हो जाते हैं। परतु जब वही व्यक्ति पदच्युत और अर्थहीन हो जाता है तो उसके असमयमें स्वजन भी शत्रु हो जाते हैं[2]।

आपत्कालमें मित्र, युद्धमे वीर, एकान्त स्थानमें शुचिता, विभवके क्षीण हो जानेपर पत्नी तथा दुर्भिक्षके समय अतिथिप्रियताकी पहचान होती है—

आपत्सु मित्रं जानीयाद्रणे शूर रह शुचिम्।
भार्यां च विभवे क्षीणे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम्॥

(१०९।८)

पक्षीगण फलरहित वृक्षोका परित्याग कर देते हैं। सारस पक्षी सूखे हुए सरोवरको छोडकर अन्यत्र चले जाते हैं। वेश्याएँ धनसे रहित होनेपर पुरुषको छोड देती हैं। मन्त्री भ्रष्ट राजाका त्याग कर देते हैं। भौंरे बासी पुष्पको त्यागकर नवविकसित कुसुमपर चले जाते हैं और मृग जले हुए वनका परित्याग कर अन्यत्र आश्रय लेते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वार्थवश ही सभी प्राणी एक-दूसरेसे प्रेम करते हैं। वास्तवमे कौन किसका प्रिय है[3]?

अर्थप्रदानके द्वारा लोभी मनुष्यको, करबद्ध-प्रणाम निवेदनसे उदारचेता व्यक्तिको, प्रशसा करनेसे मूर्ख व्यक्तिको और तात्त्विक चर्चासे विद्वान् पुरुषको सतुष्ट किया जा सकता है। सद्भाव रखनेसे देवगण, सज्जनवृन्द एव द्विजाति सतुष्ट होते हैं। इनके अतिरिक्त साधारण लोग खान-पान

१-वर हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे । नरकात् क्षीयते पाप कुगृहान्न निवर्तते॥
चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्। न परीक्ष्य पर स्थान पूर्वमायतन त्यजेत्॥ (१०९।३-४)

२-अर्थेन किं कृपणहस्तगतेन केन ज्ञानेन किं बहुशठाग्रहसकुलेन।
रूपेण किं गुणपराक्रमवर्जितेन मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन॥
अदृष्टपूर्वा बहव सहाया सर्वे पदस्थस्य भवन्ति मित्रा ।
अर्थैर्विहीनस्य पदच्युतस्य भवत्यकाले स्वजनोऽपि शत्रु ॥ (१०९।६-७)

३-वृक्षं क्षीणफल त्यजन्ति विहगा शुष्क सर सारसा निर्द्रव्य पुरुष त्यजन्ति गणिका भ्रष्ट नृप मन्त्रिण ।
पुष्पं पर्युषित त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनान्त मृगा सर्व कार्यवशाज्जनो हि रमते कस्यास्ति को वल्लभ ॥ (१०९।९)

तथा पण्डितजन मान-सम्मानसे संतुष्ट हो जाते हैं—

> लुब्धमर्थप्रदानेन श्लाघ्यमञ्जलिकर्मणा।
> मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च याथातथ्येन पण्डितम्॥
> सद्भावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषा द्विजाः।
> इतरे खाद्यपानेन मानदानेन पण्डिताः॥
> (१०९।१०-११)

प्रणिपात-निवेदनसे उत्तम प्रकृतिवाले सज्जन पुरुषको भेद-नीतिसे धूर्त तथा अपनी अपेक्षा कम पराक्रमवाले व्यक्तिको थोड़ा-बहुत देकर और अपने समान पराक्रमवालेको अपनी अपेक्षाके अनुकूल धन देकर वशमें किया जा सकता है। जिसका जैसा स्वभाव हो, उसके अनुरूप वैसा ही प्रिय वचन बोलते हुए उसके हृदयमें प्रवेशकर चतुर व्यक्तिको यथाशीघ्र उसे अपना बना लेना चाहिये।

नदी, नख तथा शृंग धारण करनेवाले पशु, हाथमें शस्त्रधारण किये हुए पुरुष, स्त्री और राजपरिवार विश्वास करनेयोग्य नहीं होते। जो मनुष्य बुद्धिमान् है, उसको अपनी धनक्षति, मनस्ताप, घरमें हुए दुश्चरित्र, वञ्चना तथा अपमानकी घटनाको दूसरेके समक्ष प्रकाशित नहीं करना चाहिये—

> नदीनां च नखीनां च शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम्।
> विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च॥
> अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
> वञ्चनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत्॥
> (१०९।१४-१५)

नीच और दुर्जन व्यक्तिका सांनिध्य, अत्यन्त विरह तथा सम्मान, दूसरेके प्रति स्नेह एवं दूसरेके घरमें निवास—ये सभी नारीके उत्तम शीलको नष्ट करनेवाले हैं।

किसके कुलमें दोष नहीं है, रोगसे कौन पीड़ित नहीं है, कौन दुःखी नहीं है और किसकी धन-सम्पत्तियाँ सदैव विद्यमान रही हैं? इस पृथिवीपर धन प्राप्त कर कौन अहंकारसे भरा नहीं है, किसपर विपत्तियाँ आयी नहीं हैं, स्त्रियोंके द्वारा किसका मन क्षुब्ध नहीं किया गया है और राजाओंका कौन प्रिय रहा है, कौन कालकवलित नहीं हुआ है, किस याचकका स्वाभिमान नष्ट नहीं हुआ है, कौन दुर्जनके जालमें फँसकर कुशलपूर्वक जीवनयापन कर सकता है[1]? (अर्थात् कोई नहीं कर सकता।)

जिस मनुष्यके मित्र, स्वजन, बन्धु-बान्धव नहीं हैं, जिसके पास अपनी बुद्धि नहीं है, वह कैसे अपने जीवनमें सफल हो सकता है और जिस कर्मके सम्पन्न होनेपर भी फलका उदय नहीं दीख रहा है, उस कर्मके अनुष्ठानसे क्या लाभ? ऐसे ही जो सम्पत्ति परिणाममें बहुत बड़ा दुःख देनेवाली है, उसका संग्रह कौन बुद्धिमान् व्यक्ति करेगा?

जिस देशमें व्यक्तिको सम्मान न मिले, आदर भी न मिले, अपने बन्धु-बान्धव भी सुलभ न हों और विद्या लाभकी भी सम्भावना न बनती हो, उस देशका परित्याग कर देना चाहिये।

जिस धनके लिये राजा और चोरसे भय नहीं है, जो धन मरनेपर भी मनुष्यका साथ नहीं छोड़ता, उस धनका उपार्जन करना चाहिये। प्राणोंको भी संकटमें डाल देनेवाले परिश्रमसे जिस धनका अर्जन किया जाता है, उस धनको तो उत्तराधिकारी लोग यथोचित विभागके साथ अपने काममें ले लेते हैं, परंतु प्राणोंको संकटमें डालकर धनार्जनके लिये परिश्रम करनेवाला व्यक्ति धनके लोभमें जिन पापोंको करता है, वे पाप ही उसकी धरोहर बनकर उसकी नरक-यातनाके अथवा कुत्सित योनिके कारण बनते हैं।

संचित किया हुआ तथा बार-बार विचार करके सुरक्षित रखा हुआ, कदर्य (कृपण)-का धन चूहेके द्वारा एकत्रित किये गये धनके तुल्य है। ऐसा धन दुःख देनेके लिये ही होता है। उपार्जनकर्ताको उससे कोई भी सुख प्राप्त नहीं होता। ऐसा व्यक्ति मात्र धनार्जनका कष्ट ही भोगता है।

ऐसे ही व्यक्ति जन्मान्तरमें दरिद्र होनेके कारण नग्न होकर अनेक प्रकारके व्यसनसे त्रस्त हो रूखे स्वभाववाले हो जाते हैं तथा हाथमें खप्पर लेकर घर-घर भीख माँगते हैं और यह लोगोंको बताते हैं कि दान न देनेवालेको ऐसा ही फल मिलता है। ऐसे भिक्षुक कुछ दीजिये कुछ दीजिये—ऐसी बार-बार याचना करते हुए संसारको यह शिक्षा प्रदान करते हैं कि दान न देनेवाले मनुष्यकी यही दशा होती है। आपकी भी मेरी-जैसी दुर्दशा न हो इसलिये आपको दान देना चाहिये[2]।

१-कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः। केन न व्यसनं प्राप्तं श्रियः कस्य निरन्तराः॥
कोऽर्थं प्राप्य न गर्वितो भुवि नरः कस्यापदो नागताः स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवं को वा दुर्जनवागुरानिपतितः क्षेमेण यातः पुमान्॥ (१०९।१७-१८)

२-शिक्षयन्ति च याचन्ते देहीति कृपणा जनाः। अवस्थेयमदानस्य मा भूदेवं भवन्विति॥ (१०९।२५)

कृपण अपने द्वारा संचित धन यज्ञोंमें नहीं लगा पाता है और अपने द्वारा माँगकर इकट्ठे किये धनको गुणवानोंको भी नहीं देता है। इस प्रकारका कृपणके द्वारा सुरक्षित धन चोर और राजाके काममें ही आता है। कृपणका धन देवता, ब्राह्मण, बन्धु तथा आत्महितके लिये नहीं होता, वह तो अग्नि, चोर अथवा राजाके लिये होता है। अत्यन्त कष्टसे अर्जित किया गया धन, धर्मका अतिक्रमण करके अर्जित किया गया धन अथवा शत्रुको साष्टाङ्ग प्रणाम करके और उसकी अधीनता स्वीकार करके प्राप्त किया गया धन— इस प्रकारका धन तुझे कभी प्राप्त न हो।

विद्याका अभ्यास न करनेसे वह विनष्ट हो जाती है। शक्ति रहते हुए फटे-पुराने, मैले-कुचैले वस्त्रोंको धारण करनेवाली स्त्रियाँ सौभाग्यकी रक्षा नहीं कर पातीं, सुपाच्य भोजनसे रोग नष्ट हो जाता है और चातुर्यपूर्ण नीतिसे शत्रुका विनाश हो जाता है।

चोरका वध ही उसका दण्ड है। दुष्ट मित्रके लिये समुचित दण्ड उसके साथ अल्प वार्तालाप करना है। स्त्रियोंका दण्ड उनसे पृथक् शय्यापर शयन करना तथा ब्राह्मणके लिये दण्ड निमन्त्रण न देना है।

दुर्जन, शिल्पकार, दास तथा दुष्ट एवं ढोलक आदि वाद्य और स्त्री आदि सम्यक् अनुशासनसे ही मृदु-स्वभावको प्राप्त करते हैं। ये सत्कारमात्रसे मृदु स्वभाववाले नहीं हो पाते।

कार्यमें संलग्न करनेसे भृत्य, दुःख होनेपर बन्धु-बान्धव, विपत्तिकालमें मित्र तथा ऐश्वर्यके नष्ट होनेपर स्त्रीके स्वभावकी परीक्षा करनी चाहिये—

जानीयात्प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनागमे।
मित्रमापदि काले च भार्यां च विभवक्षये॥

(१०९।३२)

पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका आहार दुगुना, बुद्धि चौगुनी, कार्यकी क्षमता छः गुनी और कामवासना आठगुनी अधिक मानी गयी है। स्वप्नसे निद्राको नहीं जीता जा सकता, कामवासनासे स्त्रीपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती, ईंधनसे अग्निको तृप्त नहीं किया जा सकता तथा मद्यसे प्यास नहीं बुझायी जा सकती। मांसयुक्त स्निग्ध भोजन, नाना प्रकारकी मदिराओंका पान, सुगन्धित द्रव्य पदार्थोंका विलेपन, सुन्दर वस्त्र और सुवासित माल्याभरण—ये स्त्रियोंकी कामवासनाकी अभिवृद्धि करते हैं। जैसे लकड़ियोंके अधिक-से-अधिक ढेरको प्राप्त करके भी अग्नि संतुष्ट नहीं होती, नदीसमूहके मिलनेपर भी समुद्र तृष्णारहित होकर संतृप्त नहीं होता, यमराज सभी प्राणियोंका संहार करके भी आत्मसंतुष्टि प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं, ऐसे ही नारी असंख्य पुरुषोंके साथ सम्पर्क करके भी संतृप्त नहीं होती।

शिष्ट व्यक्ति (सुशील), अभीष्ट-सिद्धि, प्रियवचन, सुख, पुत्र, जीवन और देवगुरुसे प्राप्त आशीर्वचनसे मनुष्यकी इच्छाएँ परिपूर्ण नहीं होतीं, इनके लिये अभिलाषा बढ़ती ही रहती है। धनके संग्रहसे राजा, नदियोंकी जलराशिसे समुद्र, सम्भाषणसे विद्वान् एवं राजदर्शनसे प्रजाके नेत्र संतुष्ट नहीं हो पाते।

अपने विहित कर्म तथा धर्माचरणका पालन करते हुए जीविकोपार्जनमें तत्पर, सदैव शास्त्र-चिन्तनमें रत तथा अपनी स्त्रीमें अनुरक्त, जितेन्द्रिय और अतिथिसेवामें निरत श्रेष्ठ पुरुषोंको तो घरमें भी मोक्ष प्राप्त हो जाता है[1]।

जिस सत्कर्मनिरत पुरुषके पास मनोऽनुकूल, सुन्दर वस्त्राभूषणसे अलंकृत स्त्री है, यदि वह व्यक्ति उसके साथ अपने भवनकी अटारीपर सुखपूर्वक निवास करता है तो उसके लिये यहींपर स्वर्गका सुख है।

जो स्त्रियाँ स्वभावसे ही धर्म-विरुद्ध आचरण करनेवाली एवं पतिके प्रतिकूल व्यवहार रखनेवाली हैं, वे स्त्रियाँ न धन आदिके दान, न सम्मान, न सरल व्यवहार, न सेवाभाव न शस्त्र-भय और न शास्त्रोपदेशसे ही अनुकूल की जा सकती हैं, वे तो सदा प्रतिकूल ही रहती हैं[2]।

विद्यार्जन, अर्थ-संग्रह, पर्वतारोहण, अभीष्ट-सिद्धि तथा धर्माचरण—इन पाँचोंको धीरे-धीरे प्राप्त करना चाहिये।

देवपूजनादिक कर्म, ब्राह्मणको दान, गुणवती विद्याका संग्रहण तथा सन्मित्र—ये सदा सहायक होते हैं। जिन्होंने बाल्यकालसे विद्यार्जन नहीं किया है, जिनके द्वारा युवावस्थामें

१-स्वकर्मधर्मार्जितजीविताना शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणा गृहेऽपि मोक्ष पुरुषोत्तमानाम्॥ (१०९।४३)

२-न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया। न शस्त्रेण न शास्त्रेण सर्वथा विषमा स्त्रिय ॥ (१०९।४५)

धन और स्त्रीकी प्राप्ति नहीं की जा सकी है, वे इस ससारमे शोकके पात्र हैं और मनुष्यरूप धारण करके पशुवत् विचरण करते हुए दु खसे परिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

विद्याके उपासकको अध्ययन-कालमे भोजनकी चिंता नहीं करनी चाहिये। विद्यार्थीको विद्यार्जनके लिये गरुडके समान सुदूर देशको यथाशीघ्र पार कर लेना चाहिय।

जो बाल्यावस्थामे विद्याध्ययन नहीं करते हैं और फिर युवावस्थामे कामातुर होकर यौवन तथा धनको नष्ट कर देते हैं, वे वृद्धावस्थामे चितासे जलते हुए शिशिरकालमे कुहरेसे झुलसनेवाले कमलके समान सतप्त जीवन व्यतीत करते हैं।

शुष्क तर्क स्वयमे अप्रतिष्ठित है, अत किसी सिद्धान्तकी स्थापना केवल तर्कके द्वारा नहीं हो सकती। श्रुतियाँ भी अनेक प्रकारकी हैं। ऐसा कोई भी ऋषि नहीं है जो भिन्न-भिन्न प्रसगोमे विभिन्न सिद्धान्तोका निर्देश न करे। इसीलिये धर्मका तत्त्व न तर्कोंमे निहित है, न श्रुतियामे निहित है, अपितु आप्ताकी प्रज्ञामे निहित है। फलत शिष्ट लोग जिस *मार्गका अनुसरण* करते हैं, उसी *मार्गको अपना धर्म* समझना चाहिये[1]।

आकार, सकेत, गति, चेष्टा, वाणी, नेत्र और मुखकी भावभगिमासे प्राणीके अन्त करणमे छिपा हुआ भाव प्रकट होता रहता है[2]। विद्वान् वह है जो दूसरेके द्वारा अकथित विषयको भी जान लेता है। बुद्धि वह है जो दूसरोंके सकेतमात्रसे भी वास्तविकताको समझ ले। कथित शब्दका अर्थ तो पशु भी जान लेते हैं। मनुष्यके दिखाये गये मार्गका अनुसरण तो हाथी और घोडे भी करते हैं।

(अध्याय १०९)

नीतिसार

श्रीसूतजीने कहा—जो व्यक्ति सुनिश्चित अर्थका परित्याग कर अनिश्चित पदार्थोंका सेवन करता है, उसका सुनिश्चित अर्थ विनष्ट हो जाता है और अनिश्चित पदार्थ तो नष्ट होता ही है—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति ह्यध्रुव नष्टमेव च॥
(११०।१)

वाग्वैभवसे रहित व्यक्तिकी विद्या और कायर पुरुषके हाथमे विद्यमान अस्त्र वैसे ही उन्हे सतुष्टि नहीं प्रदान करते, जैसे अपने अधे पतिके साथ रहती हुई उसकी स्त्री अपने रूप-लावण्यसे पतिको सतृप्त नहीं कर पाती।

सुन्दर भोज्य पदार्थ भी उपलब्ध हो और भोजनकी शक्ति भी हो रूपवती स्त्री भी हो और सहवास करनेकी क्षमता भी हो तथा धन-वैभव भी हो और दान करनेकी सामर्थ्य भी हो—ये अल्प तपके फल नहीं हैं।

वेदाका फल अग्निहोत्र है विद्याका फल शील और सदाचार है स्त्रीका फल रति और पुत्रवान् होना है तथा धनका फल है दान और भोग।

विद्वान् व्यक्तिको श्रेष्ठ कुलमे उत्पन्न कुरूप कन्याके साथ भी विवाह कर लेना चाहिये, किंतु रूपवती एवअच्छे लक्षणावाली उत्तम कुलसे हीन कन्या उसके लिये कभी भी ग्राह्य नहीं है।

मनुष्यको उस अर्थसे क्या लाभ है, जिस अर्थका साथ अनर्थसे होता है? क्योंकि कोई व्यक्ति सर्पके फणपर विद्यमान मणिको प्राप्त करना नहीं चाहता।

अग्निहोत्रके लिये हविष्यान्न दुष्ट कुलसे भी ग्राह्य है। बालकसे भी सुभाषित ग्रहण करना उचित है। अमेध्य अर्थात् अपवित्र स्थानसे स्वर्ण और हीन कुलसे स्त्रीरूपी रत्न भी मनुष्यके लिये सग्राह्य है। विषसे अमृत ग्राह्य है अपवित्र स्थलसे भी स्वर्ण ग्राह्य है तथा नीच व्यक्तिसे श्रेष्ठ विद्या भी ग्रहण करने योग्य है और दुष्कुलसे भी स्त्री-रत्न ग्राह्य है।

राजाके साथ मित्रभाव और सर्पका विषहीन होना सम्भव नहीं है। वह कुल पवित्र नहीं रहता जिस कुलमें स्त्रियाँ ही उत्पन्न होती हैं। अपने कुलके साथ भगवद्भक्तका सम्पर्क कर देना चाहिये पुत्रको विद्याध्ययनमें लगाना

१-तर्केऽप्रतिष्ठा श्रुतयो विभिन्ना नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गत स पन्था ॥ (१०९।५१)

२-अकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च। नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मन ॥ (१०९।५२)

चाहिये, शत्रुको व्यसनमे जोड देना चाहिये तथा जो अपने इष्टपुरुष हैं, उन्हे धर्ममे नियोजित करना चाहिये।

विद्वान् मनुष्यको नौकर और आभूषणाको यथोचित स्थानपर नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि चूडामणि कभी चरणमे सुशोभित नहीं होती है। चूडामणि, समुद्र, अग्नि, घण्टा, अखण्ड अम्बर और राजा—ये सिरपर धारण करने योग्य होते हैं अर्थात् आदरणीय हैं। प्रमादवश भी इन्हे चरणमे स्थान नहीं देना चाहिये। मनस्वी व्यक्तिकी पुष्प-स्तबकके समान दो ही स्थितियाँ होती हैं—या तो वह सबके सिरपर ही रहता है अथवा वनमे ही चला जाता है। मणि स्वर्णाभूषणमे सनिविष्ट करनेके योग्य होती है। यदि वह मणि लाखसे निर्मित आभूषणमे सनिहित की जाती है तो उस कुसगतिके कारण वह न स्वय सक्षुब्ध होकर विलाप करती है और न सुशोभित ही होती है। अश्व, गज, लौह काष्ठ पाषाण वस्त्र, नारी, पुरुष तथा जल—इनमे परस्पर बहुत बडा अन्तर है।

तिरस्कृत होनेपर भी धैर्यसम्पन्न सज्जन व्यक्तिके गुण कभी भी आन्दोलित नहीं होते। दुष्टके द्वारा नीचे कर दी गयी अग्निकी भी शिखा कभी नीचे नहीं जाती।

उत्तम जातिका अश्व अपने स्वामीका चाबुक-प्रहार, सिह हाथीकी गर्जना और वीर पुरुष शत्रुपक्षकी भयकर गर्जना सहन नहीं कर सकता।

यदि सज्जन मनुष्य दुर्भाग्यवश कदाचित् वैभवरहित हो जाता है तो भी वह न तो दुष्ट जनाकी सेवा करनेकी अभिलाषा रखता है और न नीच जनाका सहारा लेता है। भूखसे अत्यन्त पीडित होनेपर भी सिह घास नहीं खाता अपितु हाथियाके गर्म रक्तका ही पान करता है।

जिस मित्रमे एक बार भी दुष्ट भाव परिलक्षित हो जाता है और पुन उसीसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करनेकी जो इच्छा करता है, वह मानो अश्वतरी (खच्चरी)-के द्वारा धारण किये गये गर्भके सदृश मृत्युको ही प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखता है।

शत्रुकी मृदुभाषी सतानोकी उपेक्षा करना बुद्धिमान् जनोके लिये उचित नहीं है, अर्थात् प्रिय बोलनेवाले शत्रुपुत्रासे भी सावधान रहना चाहिये, क्योंकि समय आनेपर वे ही असह्य दु ख-प्रदाता एव विषपात्रके समान भयकर विपत्ति उत्पन्न करनेवाले हो जाते हैं।

उपकारके द्वारा वशीभूत हुए शत्रुसे अन्य शत्रुको समूल उखाड फकना चाहिये, क्योकि पैरमे गडे हुए काँटेको मनुष्य हाथमे लिये हुए काँटेसे ही निकालता है।

सज्जन व्यक्तिको अपकारपरायण मनुष्यके नाशकी चिंता कभी नहीं करनी चाहिये, क्याकि वह नदीके तटपर अवस्थित वृक्षोकी भाँति स्वय ही नष्ट हो जाता है।

अर्थका रूप धारण करनेवाले अनर्थ और अनर्थका रूप धारण करनेवाले अर्थ—ये दैवाधीन पुरुषके विनाशक लिये होते हैं। कभी-कभी कार्यकालके भेदसे निष्पाप बुद्धि उत्पन्न हा जाती है, क्योकि दैवके अनुकूल रहनेपर पुरुपका सर्वत्र कल्याण ही होता है। धनार्जन करते समय, किसी भी प्रकारका प्रयोग करते समय, अपने कार्यको सिद्ध करते समय, भोजनके समय और सासारिक व्यवहारके समय मनुष्यको लज्जाका परित्याग कर देना चाहिये।

जिस देश, प्रान्त, नगर एव ग्रामम धनवान्, श्रोत्रिय, राजा, नदी तथा वैद्य—ये पाँच नहीं रहते हैं, वहाँ बुद्धिमान् व्यक्तिका रहना उचित नहीं है[1]। जहाँ आना-जाना न हो, जहाँ अनुचित आचरणको रोकनेके लिये भयकी सम्भावना न हो, लज्जा न हो तथा दानकी प्रवृत्ति न हो, वहाँ तो एक भी दिन निवास नहीं करना चाहिये। जिस देश-प्रान्तादिमे दैवज्ञ वेदज्ञ, राजा नदी एव सज्जन व्यक्ति—इन पाँचका निवास नहीं है, वहाँपर निवास नहीं करना चाहिये।

हे शौनक! एक ही व्यक्तिमे सभी ज्ञान प्रतिष्ठित रूपमे नहीं रहते हैं। इसलिये यह सर्वमान्य है कि सभी व्यक्ति सब कुछ नहीं जानते हैं और कहींपर भी सभी सर्वज्ञ नहीं हैं। इस ससारमे न तो कोई सर्वविद् है और न कोई अत्यन्त मूर्ख ही है। उत्तम, मध्यम तथा निम्नस्तरीय ज्ञानसे जो व्यक्ति जितना जानता है, उसे उतनेमे विद्वान् समझा जाना चाहिये। (अध्याय ११०)

१-धनिन श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चम । पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात् तत्र सस्थितिम्॥ (११०। २६)

राजनीति-निरूपण

सूतजीने कहा—राजाको चाहिये कि वह सदैव सबकी भलीभाँति परीक्षा करता रहे। सत्यपरायण तथा धर्मपरायण राजा ही नित्य राज्यका पालन करनेमें समर्थ होता है, उसे चाहिये कि वह शत्रुसेनाओको जीतकर धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन करे।

राजाको जगलमे मालीके समान पुष्पवृक्षसे पुष्प ग्रहण करना चाहिये, किंतु कोयला बनानेवालेके समान वृक्षका मूलोच्छेद नहीं करना चाहिये। अर्थात् राज्यरूपी वनमे राजाको अपनी प्रजासे कर ग्रहण करते समय मालीके सदृश आचरण करना चाहिये, वृक्ष काटकर कोयला बनानेवाले अगारकका आचरण उसके लिये सर्वथा त्याज्य है।

जिस प्रकार दूध दुहनेवाले दुग्धका पान करते हैं, किंतु विकृत हो जानेपर उसका उपभोग नहीं करते, उसी प्रकार राजाओको चाहिये कि वे परराष्ट्रका उपभोग तो करे, किंतु उसको दूषित न करे।[१] जिस प्रकार दुग्ध-प्राप्तिके इच्छुक मनुष्य गौके स्तनसे दुग्ध तो निकाल लेते हैं, परतु उसके स्तनको काटते नहीं, इसी प्रकार राजाके द्वारा प्रयुक्त इस नीतिसे अर्थात् कर-रूपमे सम्पूर्ण धन ग्रहण करनेसे पीडित राष्ट्र अभ्युदयको प्राप्त नहीं करता है। अतएव राजाको सब प्रकारसे पृथिवीका पालन करना चाहिये, क्योकि ऐसे राजाके पास ही भूमि, कीर्ति, आयु, प्रतिष्ठा और पराक्रम विद्यमान रहते हैं।

नित्य भगवान् विष्णुकी पूजा करके जो धार्मिक राजा गौ-ब्राह्मणके हितमे रत रहता है, वही जितेन्द्रिय राजा प्रजाके पालनमे समर्थ हो सकता है।

ऐश्वर्य अस्थायी होता है। अत प्राप्त हुए अस्थिर ऐश्वर्यमे आसक्त न होकर राजाको धर्माचरणम अपनी बुद्धिको लगाना चाहिये। धन-सम्पत्ति आदि तो क्षणभरमें ही नष्ट हो जाता है, क्योकि धन आदि अपने अधीन नहीं हैं।[२] मनको रमणीय लगनेवाली स्त्रियाँ सत्य हो सकती हैं, विभूतियाँ (धन-सम्पत्ति) भी सत्य हो सकती हैं, किंतु यह जीवन तो स्त्रीके कटाक्षपातकी भाँति चचल (असत्य) है। शरीरम स्थित वृद्धावस्था सिहनीके समान भयभीत करती रहती है, रोग शत्रुको भाँति शरीरमे उत्पन्न होते रहते हैं। आयु फूटे हुए घडेसे निकलते हुए जलके सदृश क्षीण होती जाती है, फिर भी इस ससारमें कोई भी मनुष्य आत्महित-चिन्तनमे प्रवृत्त नहीं होता।[३]

हे मनुष्यो। इस क्षणभगुर जीवनमें आप सब निश्चिन्त क्यो हैं? दूसरेका हित करना ही उचित है, जो बादमें कल्याणकारी है। इस परोपकार-धर्मसे विपरीत कामिनियोंके मन्द-मन्द कटाक्षपातसे कामपीडित आप सबके द्वारा जे आनन्द प्राप्त किया जाता है, क्या उसीम आप सभीका हित सनिहित है? ऐसे आचरणमे तो कभी भी हित सम्भव नहीं है। अत इस प्रकारका पाप न करे। आप सभीको सदैव ब्राह्मण, विष्णु और उस परात्पर ब्रह्मका विधिवत् निरन्तर भजन करना चाहिये, क्योंकि जलमें डूबे हुए घटके समान आयु मृत्युके बहाने एक दिनम ही समाप्त हो सकती है, अथवा वह धीरे-धीरे नष्ट होती जाती है।

जो मनुष्य परायी स्त्रियोमें मातृभाव रखता है, जो दूसरेके द्रव्योको मिट्टी-पत्थरके ढेलेके समान नगण्य समझता है और सभी प्राणियामें अपने ही स्वरूपका दर्शन (आत्मदर्शन) करता है, वही विद्वान् है—

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित ॥ (१११।१२)

हे ब्राह्मणो। सत्य तो यही है कि राजागण अपनी आत्माके लिये ही राज्यप्राप्तिकी कामना करते हैं और इसीलिये सभी कार्योंम अपनी वाणीका उल्लघन भी सहन नहीं करते हैं तथा धनका सचय भी इसीके लिये करते हैं, किंतु राजाको भी अपनी रक्षा करके शेष बचे हुए धनका उपयोग द्विजातियोके भरण-पोषणमें करना चाहिये।

ब्राह्मणोका मूल मन्त्र ॐकार है। इस ॐकारकी उपासनासे राष्ट्रकी अभिवृद्धि होती है और योगसे राजा वृद्धिको प्राप्त करते हैं और किसी भी प्रकारकी व्याधियाँ उसे बाँध नहीं सकतीं।

१-दोग्धार क्षीरभुञ्जाना विकृत तन्न भुञ्जते। परराष्ट्र महीपालैर्भोक्तव्य न च दूषयेत्॥ (१११।४)

२-ऐश्वर्यमध्रुव प्राप्य राजा धर्मे मति चरेत्। क्षणेन विभवो नश्येन्नात्मायत्त धनादिकम्॥ (१११।८)

३-सत्य मनोरमा कामा सत्य रम्या विभूतय। किंतु वै वनितापाङ्गभङ्गिलोल हि जीवितम्॥
व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रभवन्ति गात्रे।
आयु परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो लोको न चात्महितमाचरतीह कश्चित्॥ (१११।९-१०)

सब प्रकारसे असमर्थ मुनिजन भी द्रव्योपार्जन करते हैं, फिर पुत्रवत् प्रजाका पालन करते हुए अर्थका सग्रह करनेवाले राजाके विषयमे क्या कहा जा सकता है? धनसचय करना तो उसके लिये आवश्यक ही है।

जिसके पास धन है, उसीके मित्र एव बन्धु-बान्धव हैं। वही इस ससारमे पुरुष है और वही धन-सम्पन्न व्यक्ति विद्वान् है। धनरहित होनेपर मनुष्यको मित्र, पुत्र, स्त्री तथा परिजन छोड देत हैं। धनवान् होनेपर पुन व सभी उसीका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, क्योंकि इस ससारमे धन ही पुरुषका बन्धु है—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा ।
यस्यार्था स पुमाँल्लोके यस्यार्था स च पण्डित ॥
त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीन पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च।
ते चार्थवन्त पुनराश्रयन्ति ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धु ॥
(१११।१७-१८)

जो राजा शास्त्रोके ज्ञानसे शून्य है, वह नेत्रोके रहते हुए भी अन्धेके समान है, क्योंकि अन्धा व्यक्ति तो अपने गुप्तचरके द्वारा देख सकता है, किंतु शास्त्र-ज्ञानसे रहित राजा देखनेम असफल ही रहता है—

अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जित ।
अन्ध पश्यति चारेण शास्त्रहीनो न पश्यति॥
(१११।१९)

जिस राजाके पुत्र, भृत्य, मन्त्री एव पुरोहित तथा इन्द्रियाँ प्रसुप्त रहती हैं अर्थात् अपने-अपने कर्तव्यके पालनमे सावधान नहीं रहती हैं, उसका राज्य निश्चित ही चिरस्थायी नहीं होता। जिस [ज्ञान-सम्पन्न] व्यक्तिने [बुद्धिमान् तथा आलस्यरहित] पुत्र भृत्य एव परिजन—इन तीनोको योग्यरूपमे प्राप्त किया है वह राजाओके सहित चारा समुद्रसे सयुक्त पृथिवीपर विजय प्राप्त कर लेता है।

जो राजा शास्त्रसम्मत और युक्तियुक्त सिद्धान्तोका उल्लघन करता है, वह निश्चित ही इस लोक एव परलोक—दोनोंमे नष्ट हो जाता है[१]।

आपत्कालके आनेपर राजाको दु खी नहीं होना चाहिये उसे समबुद्धि, प्रसन्नात्मा तथा सुख-दु खमे समान रहना चाहिये। धैर्यवान् मनुष्य कष्ट प्राप्त करके भी दु खी नहीं होते हैं, क्योंकि राहुके मुखमे प्रविष्ट होकर चन्द्र क्या पुन उदित नहीं होता?[२] शरीरके लालन-पालनमें अनुरक्त जनोंके प्रति धिक्कार है! धिक्कार है!! मनुष्यको धनहीन होनेसे क्षीण हुए शरीरके प्रति भी खेद नहीं करना चाहिये। यह तो सुना ही गया है कि [पतिव्रता] पत्नीसहित पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर आदिने आपत्कालके दु खसे मुक्त होकर पुन सुख प्राप्त किया था। अत अनुकूल समयकी प्रतीक्षा धैर्यके साथ करनी चाहिये।

गन्धर्व-विद्या, वाद्य, गणिकागण, धनुर्वेद और अर्थशास्त्रकी रक्षा राजाको करनी चाहिये, क्योंकि ये सभी अपनी-अपनी जगह राष्ट्रके लिये उपयोगी हैं। जो राजा भृत्यपर अकारण क्रोध करता है, वह काले भयकर नागसे छोडे गये विषसे ग्रस्त उन्मादको प्राप्त करता है।

राजाको कभी भी श्रोत्रियके प्रति, भृत्यके प्रति किंबहुना मानवमात्रके प्रति न कभी चपलदृष्टि रखनी चाहिये और न कभी भी मिथ्या वाक्यका प्रयोग करना चाहिये। जो राजा अपने योग्य भृत्य एव योग्य स्वजनके बलपर गर्वित होकर शासनकी उपेक्षा करता है और मदान्ध होकर विलासी जीवन व्यतीत करता है, वह अति शीघ्र शत्रुओसे पराजित हो जाता है।

राजाको क्रोधातुर होकर अहकारमे भृकुटि टेढी नहीं करनी चाहिये। जो राजा दोषरहित भृत्यापर अधर्मपूर्वक शासन करता है, इस लोकम उसके सभी विलासपूर्ण सुखोपभोग नष्ट हो जाते हैं। राजाको विलासी वस्तुओका परित्याग कर देना चाहिये, परतु धार्मिक राजाके सुखम प्रवृत्त होनेपर भी उसके शत्रु युद्धमे पराजित हो जाते हैं।

उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम—ये छ प्रकारके जो साहस कहे गये हैं इनसे समन्वित राजासे देवता भी सशकित रहते हैं। उद्योग करनेपर यदि व्यक्तिको कार्यमें सफलता प्राप्त नहीं होती है तो उसम भाग्य ही कारण है, तथापि मनुष्यको सदा पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। प्रयत्नसे विरत नहीं होना चाहिये, क्योंकि इस जन्मका ही पौरुष अगले जन्ममे भाग्य बनता है।[३] (अध्याय १११)

१-लघयेच्छास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च। स हि नश्यति वै राजा इह लोके परत्र च॥ (१११।२२)
२-धीरा कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिन । प्रविश्य वदन राहो किं नोदेति पुन शशी॥ (१११।२४)
३-उद्योग साहस धैर्यं बुद्धि शक्ति पराक्रम । षड्विधो यस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शकते॥
उद्योगेन कृते कार्ये सिद्धिर्यस्य न विद्यते । दैव तस्य प्रमाण हि कर्तव्य पौरुष सदा॥ (१११।३२-३३)

राजाद्वारा सेवकोके लिये अपनायी जाने योग्य भृत्यनीतिका निरूपण

श्रीसूतजीने कहा—उत्तम, मध्यम और अधम-भेदसे भृत्योके तीन प्रकार जानना चाहिये। अत उनकी योग्यताके अनुसार ही उन्हे विभिन्न कार्योंमें लगाना चाहिये।

सर्वप्रथम भृत्योकी परीक्षण-विधिको कहा जा रहा है, साथ ही जिस-जिस भृत्यका जो गुण है, उसका भी वर्णन किया जा रहा है।

घर्षण, छेदन, तापन और ताडन—इन चार विधियोसे जिस प्रकार सुवर्णकी परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार राजाको व्रत, शील, कुल तथा कर्म—इन चार प्रकारोसे भृत्यकी परीक्षा करनी चाहिये।

कुल, शील तथा सद्गुणसे सम्पन्न, सत्य-धर्मपरायण, रूपवान् तथा प्रसन्नचित्त मनुष्यको कोपाध्यक्षके पदपर नियुक्त करना चाहिये। द्रव्योके मूल्य और रूपकी परीक्षा करनेमे कुशल व्यक्तिको रत्न-परीक्षकके पदपर नियुक्त करना चाहिये। जो सैन्य-शक्तिके बलाबलका परिज्ञान प्राप्त करनेमे निपुण हो, उसीको सेनाध्यक्ष बनाना चाहिये।

जो व्यक्ति सकेतमात्रसे स्वामीके अभिप्रायको समझनेमे समर्थ है, बलवान् तथा सुन्दर शरीरवाला है, प्रमादहीन एव जितेन्द्रिय है, उसको प्रतीहारके पदपर नियुक्त करनेके लिये कहा गया है। जो मेधावी, वाक्पटु, विद्वान्, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और सभी शास्त्रोकी सम्यक् आलोचना करनेवाला हो, वही सज्जन व्यक्ति लेखकके पदका अधिकारी है। जो बुद्धिमान्, विवेकशील, दूसरेके चित्तका परिज्ञाता, शूर तथा यथोक्तवादी हे, उसे दूतके पदपर नियुक्त करना चाहिये। जो मनुष्य समस्त स्मृतियो और शास्त्रोका पण्डित है, जितेन्द्रिय, शौर्य एव पराक्रमादि गुणोसे सम्पन्न है, उसे धर्माध्यक्षके पदपर नियुक्त करना चाहिये।

जिसके पितृ-पितामह आदिकी परम्परामे रसोइयेका ही काम होता रहा हो और जो विशेषरूपसे पाकशास्त्रका जाननेवाला, सत्यवादी, पवित्र एव दक्ष हो, ऐसा पुरुष रसोइयेके लिये उचित होता है।

जो आयुर्वेदशास्त्रका सम्यक् ज्ञान रखनेवाला सौम्य स्वरूपसे सम्पन्न सभीके लिये देखनेमें प्रिय लगनेवाला, आयु, शील और गुणोंसे सम्पन्न हो वह वैद्यके पदका अधिकारी होता है। वेद-वेदाङ्गके तत्त्वाको जाननेम समर्थ जप-हामपरायण नित्य आशीर्वाद देनेम तत्पर (अर्थात् राजाकी मङ्गलकामनाम अहर्निश दत्तचित्त) विद्वान् राजपुरोहितके योग्य होता है।

यदि लेखक, पाठक, गणक, प्रतिरोधक (प्रतीहार) आदि पदाधिकारी कार्य करनेमे आलस्य करते हो तो राजा सदैव उनको उस कार्यसे पृथक् कर दे।

जो दो प्रकारकी बात करता है, उद्वेगकर वाणी बोलता है, क्रूरकर्मा है तथा अत्यन्त दारुण है, ऐसे दुष्ट व्यक्ति और सर्पका मुख—ये मात्र दूसरेके अपकारके लिये ही होते हैं। विद्यासे सुशोभित होनेपर भी दुर्जन व्यक्तिका परित्याग कर देना चाहिये, मणिसे अलकृत सर्प क्या भयकर नहीं होता?[1]

अकारण क्रोध करनेवाले दुष्टसे किस व्यक्तिको भय नहीं रहता? अर्थात् ऐसे दुष्टसे सभी भयभीत रहते हैं, क्योकि महाभयकर नागराजका विष तथा दुष्टका कुत्सित वचन दूसरेके लिये असहनीय होता ही है।

राजाको अपने समान धन-वैभवसे सम्पन्न, पौरुष और ज्ञानमे समकक्ष एव अपने रहस्यको जाननेवाले और उद्योगशील भृत्यको पूर्णरूपसे निष्प्रभावी बना देना चाहिये, अन्यथा राजा निश्चित ही अपने राज्यसे भ्रष्ट हो जाता है, क्याकि ऐसा भृत्य राज्यका अपहारक ही होता है।

आरम्भम जो भृत्य शूरता दिखाये, मधुर और धीमे वाक्य बोले, जितेन्द्रियके रूपमे स्वयको प्रदर्शित करे और साथ ही पराक्रमशीलता भी प्रदर्शित करे पर बादमें इसके विपरीत आचरण करे, ऐसे भृत्य हितैषी नहीं होते। आलस्यरहित, अच्छी तरहसे सतुष्ट, अनिद्रारोगसे रहित, सदा सजग रहनेवाले, सुख-दु खमे स्थिर-मतिवाले तथा धैर्यसम्पन्न भृत्य इस जगत्मे दुर्लभ हैं।[2] क्षमासे रहित, सत्यविहीन, क्रूरबुद्धि निन्दक, अहकारी, कपटी, शठ लोभी पौरुषहीन और भयभीत होनेवाला भृत्य राजाके लिये त्याज्य है। ऐसे व्यक्तिको किसी भी राज्य-कार्य नियुक्त नहीं करना चाहिये।

राजाको दुर्ग (किले)-म सधान किये जाने वाले अस्त्र तथा विविध प्रकारके शस्त्राका अच्छी प्रकारसे सग्रह करना चाहिये। ऐसा करनेसे राजा शत्रुको पराजित कर सकता है। परिस्थितिके अनुसार सधिकी अनिवार्यता होनेपर राजाको शत्रुके साथ छ मास अथवा एक वर्षपर्यन्त ही सधि करनी चाहिये। उसके बाद अपनी सचित

१-दुर्जन परिहर्तव्यो विद्ययाऽलकृतोऽपि सन्। मणिना भूषित सर्प किमसौ न भयङ्कर ॥ (११२।१५)

२-निरालस्या सुसतुष्टा सुस्वप्ना प्रतिबोधका । सुखदु खसमा धीरा भृत्या लोकेषु दुर्लभा ॥ (११२।१९)

सामर्थ्यको देखते हुए शत्रुको पराजित करना चाहिये। जो राजा राज्यकार्यमे मूर्ख व्यक्तिको नियोजित करता है, उस राजाको अपयश, धन-विनाश तथा नरकभोग—ये तीन प्राप्त होते हैं।

जो राजा भृत्योंकी सूक्ष्म कार्यप्रणालीके द्वारा जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म करता है, उसीके अनुसार ही वह भविष्यमें अभिवृद्धि या ह्रासको प्राप्त करता है। अत राजाको धर्म-अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गकी साधना एव गौ-ब्राह्मणकी अभिरक्षाके लिये राज्यकार्यमें सर्वगुणसम्पन्न विद्वान् व्यक्तिको ही नियुक्त करना चाहिये। (अध्याय ११२)

नीतिसार

श्रीसूतजीने कहा—राजाको राज्यकार्यम गुणवान् पुरुषकी नियुक्ति और गुणहीनका परित्याग करना चाहिये। विद्वान् व्यक्तिमें सभी गुण विद्यमान रहते हैं, किंतु मूर्ख व्यक्तिमे तो केवल दोष ही रहते हैं।

निरन्तर सज्जनोंके साथ रहना चाहिये और सज्जनाकी ही सगति करनी चाहिये। विवाद एव मैत्री भी सज्जनोके साथ ही करनी चाहिये। दुर्जनोके साथ कुछ भी नहीं करना चाहिये। पण्डित विनीत, धर्मज्ञ एव सत्यवादी जनाके साथ बन्धनम भी रहना श्रेयस्कर है, किंतु दुष्टाके साथ राज्यका भी उपभोग करना उचित नहीं है—

सद्भिरासीत सतत सद्भि कुर्वीत संगतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भि किंचिदाचरेत्॥
पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञै सत्यवादिभि ।
बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेच्च न तु राज्ये खलै सह॥
(११३।२-३)

सभी कार्योंको पूर्ण कर लेना चाहिये। कोई काम अधूरा नहीं छोडना चाहिये। इससे सभी प्रकारके अर्थोंकी प्राप्ति हो जाती है।

जिस प्रकार भ्रमर पुष्पके परागको ग्रहण कर लेता है, किंतु पुष्पको नष्ट नहीं करता, जैसे दूध दुहनेवाला व्यक्ति बछडेके हितको ध्यानमे रखते हुए दूधको दुहता है, वैसे ही राजाको प्रजाहितका ध्यान रखते हुए प्रजासे करका दोहन करना चाहिये। जिस प्रकार मधुमक्खी एक-एक पुष्पसे मधुको ग्रहण कर उसे एकत्र करती है, उसी प्रकार राजाको भी प्रजासे धन-सग्रह करना चाहिये।[1] जैसे वल्मीक (बाँबी), मधुमक्खीका छत्ता तथा शुक्लपक्षका चन्द्रमा प्रतिदिन थोडा-थोडा बढता रहता है, वैसे ही राजाका द्रव्य तथा भिक्षा भी धीरे-धीरे थोडा-थोडा धर्मपूर्वक सग्रह करनेसे बढते रहते हैं।

समुचित रीतिसे अर्जित किये गये धनका भी क्षय होता ही है और श्रद्धापूर्वक दीयमान दान कादिगुणित होकर यथासमय मिलता ही है—इस वास्तविकताका ध्यानमे रखते हुए अपना कोई भी दिन दान, अध्ययन या सत्कर्मसे विहीन नहीं होने देना चाहिये।[2] रागी व्यक्तिसे वनमें भी दोष हो जाते हैं। अत घरम मनुष्यके द्वारा किया गया पञ्चेन्द्रियाका निग्रह तप ही है। जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर अनिन्दित कर्मोंमें प्रवृत्त हो सन्मार्गकी आर बढता जाता है, उस विषयवासनाओसे दूर निवृत्तमार्गवालेके लिये उसका घर ही तपोवन है।[3]

सत्यके पालनसे धर्मकी रक्षा होती है। सदा अभ्यास करनेसे विद्याकी रक्षा होती है। मार्जनके द्वारा पात्रकी रक्षा होती है और शीलसे कुलकी रक्षा होती है—

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते पात्रं कुलं शीलेन रक्ष्यते॥
(११३।१०)

विन्ध्याटवीमे निवास करना मनुष्यके लिये अच्छा है, बिना भोजन किये ही मर जाना श्रेयस्कर है, सर्पसे परिव्याप्त भूमिपर सोना तथा कुएँमें गिरकर मृत्युको प्राप्त करना उचित है, जलके आवर्तयुक्त भयकर भँवरम डूब मरना श्रेष्ठ है, किंतु अपने ही पक्षक आत्मीय जनसे 'थोडा धन मुझे दे दे' इस प्रकार याचना करना अच्छा नहीं है।[4] भाग्यका ह्रास होनेसे मनुष्यकी सम्पदाओका विनाश होता है, न कि उपभोग

१-मधुहेव दुहेत् सार कुसुम च न घातयेत्। वत्सापेक्षी दुहेत् क्षीर भूमि गावैव पार्थिव ॥
यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनुते मधु षट्पद । तथा वित्तमुपादाय राजा कुर्वीत सचयम्॥ (११३।५-६)
२-अर्जितस्य क्षय दृष्ट्वा सम्प्रदत्तस्य सचयम्। अवन्ध्य दिवस कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु॥ (११३।८)
३-वनेऽपि दोषा प्रभवन्ति रागिणा गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तप ।
अकुत्सिते कर्मणि य प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृह तपोवनम्॥ (११३।९)
४-वर विन्ध्याटव्या निवसनमभुक्तस्य मरण वर सर्पाकीर्णे शयनमथ कूपे निपतनम्।
वर भ्रान्तावर्ते सभयजलमध्ये प्रविशन न तु स्वीये पक्षे हि धनमणु देहीति कथनम्॥ (११३।११)

करनेमे। पूर्वजन्मम यदि पुण्य अर्जित है तो सम्पत्तिका नाश कभी नहीं हो सकता।

ब्राह्मणोका आभूपण विद्या, पृथिवीका आभूपण राजा, आकाशका आभूपण चन्द्र एव समस्त चराचरका आभूपण शील है—

विप्राणा भूपण विद्या पृथिव्या भूपण नृप ।
नभसो भूपण चन्द्र शील सर्वस्य भूपणम्॥
(११३।१३)

इतिहासप्रसिद्ध ये जो भीमसन, अर्जुन आदि राजपुत्र हैं—ये सभी चन्द्रके समान कान्तिसम्पन्न, पराक्रमशील, सत्यप्रतिज्ञ, सूर्यक सदृश प्रतापशाली और स्वय विष्णुक अवतारस्वरूप भगवान् कृष्णसे अभिरक्षित थे, फिर भी इन लोगाको कृपण धृतराष्ट्रकी परवशताक कारण भिक्षाटन करना पडा। इस ससारमे कौन ऐसा है, किसमे ऐसी सामर्थ्य है, जिसको भाग्यक वशीभूत होनेके कारण कर्मरेखा नहीं घुमाती?[१]

जिम पूर्वसचित कर्मक अधीन होकर ब्रह्मा कुम्भकारके समान ब्रह्माण्डरूपी इस महाभाण्डके उदरमें चराचर प्राणियोकी सृष्टिम नियमत लगे रहते हैं, जिस कर्मसे अभिभूत होकर विष्णु दशावतारके कालम परिव्याप्त असीमित महासकटम अपनेको डाल दते हैं, जिस कर्मके अनुसार ही सदाशिव रुद्र हाथम कपाल धारणकर भिक्षाटन करत हैं और जिस कर्मसे सूर्य नित्य आकाशम ही चक्कर काटते हैं—उस कर्मको म नमस्कार करता हूँ।[२]

राजा बलि उत्कृष्ट कोटिके दाता थे और याचक स्वय भगवान् विष्णु थे। विशिष्ट ब्राह्मणाके समक्ष पृथ्वीका दान दिया गया फिर भी दानका फल बन्धन प्राप्त हुआ। यह सब देवका खल हे, ऐसे इच्छानुसार फल देनेवाले दैवको नमस्कार ह।

यदि प्राणीकी माता स्वय लक्ष्मी हा पिता साक्षात् भगवान् जनार्दन विष्णु हो उमके बाद भी प्राणीको यदि कुबुद्धिम ही विश्वास है ता उसको दण्ड भोगना ही पडेगा।

पूर्वजन्मम प्राणीने जैसा कर्म किया है, उसी कर्मके अनुसार वह दूसरे जन्मम फल भोगता है। अत स्वयमेव प्राणी अपन भोग्य फलका निर्माण करता है, अर्थात् वह कर्मफलका स्वय ही विधाता है।

हम अपने सुख या दु खके स्वय ही हेतु हैं। माताके गर्भाशयम आकर अपने पूर्वदहम किये गये कर्मोंके फल हो हम भोगने पडते हैं। आकाश, समुद्र, पर्वतीय गुफा तथा माताके सिरपर और माताकी गोदम अवस्थित रहते हुए भी मनुष्य निश्चित ही उन अपने पूर्वसचित कर्मफलका परित्याग करनेम समर्थ नहीं होता।

जिसका दुर्ग ही त्रिकूट पर्वत था, जिसकी परिखा समुद्र ही था, राक्षसगणसे जो अभिरक्षित था, स्वय जो परम विशुद्ध आचरण करनेवाला था, जिसका नीतिशास्त्रका शिक्षा शुक्राचार्यसे प्राप्त हुई थी वह रावण भी काल-वश नष्ट हो गया।

जिस अवस्था, जिस समय जिस दिन, जिस रात्रि, जिस मुहूर्त अथवा जिस क्षण जैसा होना निश्चित है, वह वैसा ही होगा, अन्यथा नहीं हो सकता—

यस्मिन् वयसि यत्काले यद्दिवा यच्च वा निशि।
यन्मुहूर्ते क्षणे वापि तत्तथा न तदन्यथा॥
(११३।२२)

सभी अन्तरिक्षमे जा सकते हैं या भूगर्भम प्रवेश कर सकते हैं अथवा दसो दिशाआको अपने ऊपर धारण कर सकते हैं। सकते हैं, किंतु अप्रदत्त वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

पूर्वजन्मम अर्जित की गयी विद्या दिया गया धन तथा सम्पादित कर्म ही दूसरे जन्ममे आगे-आगे मिलते जाते हैं। अर्थात् प्राणीन पूर्वजन्ममे जैसा कर्म किया हैं, उसको इस जन्ममे वैसा ही प्राप्त होता है।[४] इस ससारमे कर्म ही प्रधान है। सुन्दर नक्षत्र था, ग्रहोका योग था, स्वय वसिष्ठ मुनिके द्वारा निर्धारित लग्नमे विवाह-सस्कार कराये जानेपर भी

१-एते ते चन्द्रतुल्या क्षितिपतितनया भीमसेनार्जुनाद्या शूरा सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुप केशवेनोपगूढा ।
ते वै दुष्टग्रहस्था कृपणवशगता भैक्ष्यचर्यां प्रयाता को वा कस्मिन् समर्थो भवति विधिवशाद्भ्रामयेत् कर्मरेखा ॥ (११३।१४)

२-ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटन कारित सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नम कर्मणे॥ (११३।१५)

३-दाता बलिर्याचककोमुरारि दान मही विप्रमुखस्य मध्ये। दत्वा फल बन्धनमेव लब्ध नमोऽस्तु ते दैव यथेष्टकारिणे॥ (११३।१६)

४-पुराधीता च या विद्या पुरा दत्तञ्च यद्धनम्। पुरा कृतानि कर्माणि ह्यग्रे धावति धावति॥ (११३।२४)

जानकी—सीताको [पूर्वजन्ममे सचित कर्मके अनुसार] दु ख भोगना पडा। विशाल जघाओवाले श्रीराम, शब्दकी गतिसे चलनेवाले श्रीलक्ष्मण तथा सघन केशवाली शुभलक्षणा श्रीसीताजी—ये भी तीना जब अपने कर्मके अनुसार दु खके भाजन हो गये तो सामान्य जनके विषयमे कुछ कहना ही व्यर्थ है। न पिताके कर्मसे पुत्रको सद्गति मिल सकती है और न पुत्रके कर्मसे पिताको सद्गति मिल सकती है। सभी लोग अपने-अपने कर्मसे ही अच्छी गति प्राप्त करते हैं।[१]

पूर्वजन्ममे अर्जित कर्मफलके अनुसार प्राप्त शरीरमे शारीरिक और मानसिक रोग उसी प्रकार आकर अपना दुष्प्रभाव प्रकट करते हैं, जिस प्रकार कुशल वीर धनुर्धराके द्वारा छोडे गये बाण लक्ष्यको बेधकर कष्ट पहुँचाते हैं। बाल-युवा तथा वृद्ध जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, वह जन्म-जन्मान्तरम उसी अवस्थाके अनुसार उस फलका भोग करता है। उस पूर्वार्जित फलको न देखनेवाला एव विदेशमे रहता हुआ भी मनुष्य अपने कर्मरूपी जहाजके सयमित पवन-वेगके द्वारा उस फलतक पहुँचा दिया जाता है।[२]

मनुष्य अपने प्रारब्धका फल प्राप्त करता है। देवता भी उस फलभोगको रोकनेम समर्थ नहीं हैं। इसीलिये मैं कर्मफलके विषयमे चिन्ता नहीं करता हूँ और न मुझे आश्चर्य ही है, क्योंकि जो मेरा है, उसे दूसरा कोई नहीं ले सकता—

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो
देवोऽपि त वारयितु न शक्त ।
अतो न शोचामि न विस्मयो मे
यदस्मदीय न तु तत्परेषाम्॥
(११३।३२)

जैसे साँप हाथी और चूहा—ये शीघ्रतावश क्रमश कुआँ अपने वासस्थान तथा बिलतक ही भाग सकते हैं, इससे आगे कहाँतक जा सकते हैं? इसी तरह अपने कर्म अथवा भाग्यसे कौन भाग सकता है? सब तो उसीके अधीन हैं।

सद्विद्या देनेसे उसी प्रकार बढती रहती है कम नहीं होती, जिस प्रकार कुएँसे जल ग्रहण कर लेनेपर भी कुएँका जल बढता ही रहता है [घटता नहीं]। जो धन धर्मानुसार अर्जित किया जाता है वही [वास्तविक] धन है। अधर्मसे प्राप्त हुआ धन तो मनुष्यके ऐश्वर्यका नाशक होता है। इस ससारम धर्मार्थी ही महान् होता है। धनकी अपेक्षा करनेवाले मनुष्यको निश्चित ही श्रेष्ठजनोके दृष्टान्तोको स्मरण करके धनोपार्जनमे तत्पर होना चाहिये। अन्नार्थी कृपण व्यक्ति जिन दु खोको भोगता है, यदि धर्मार्थी होकर वह उन दु खोका चिन्तन करे तो पुन उसको दु खका पात्र होना ही न पडे। सभी प्रकारकी शुचिताम अन्नकी शुचिता ही प्रधान है। जो मनुष्य अन्न और अर्थसे पवित्र है [वही शुचि है]। केवल मिट्टी और जलसे शुचिता नहीं आती।[३]

सत्यपालनम शुचिता, मन शुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, सभी प्राणियोमे दया और जलसे प्रक्षालन—ये पाँच प्रकारके शौच माने गये हैं। जिसम सत्यपालनकी शुचिता है, उसके लिये स्वर्गकी प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। जो मनुष्य सत्य ही सम्भाषण करता है, वह अश्वमेधयज्ञ करनेवाले व्यक्तिसे भी बढकर है—

सत्य शौच मन शौच शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
सर्वभूते दया शौच जलशौच च पञ्चमम्॥
यस्य सत्य हि शौच च तस्य स्वर्गो न दुर्लभ ।
सत्य हि वचन यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते॥
(११३।३८-३९)

दुष्ट स्वभावसे अपनी आत्माको दबाकर रखनेवाला

१-कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभग्रहे । वसिष्ठकृतलग्नाऽपि जानकी दु खभाजनम्॥
स्थूलजघो यदा राम शब्दगामी च लक्ष्मण । घनकेशी यदा सीता त्रयस्ते दु खभाजनम्॥
न पितु कर्मणा पुत्र पिता वा पुत्रकर्मणा । स्वय कृतेन गच्छन्ति स्वय बद्धा स्वकर्मणा॥ (११३।२५—२७)

२-बाला युवा च वृद्धश्च य करोति शुभाशुभम् । तस्या तस्यामवस्थाया भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि॥
अनीक्षमाणोऽपि नरो विदेशस्थोऽपि मानव । स्वकर्मपोतवातेन नीयते यत्र तत्फलम्॥ (११३।३०-३१)

३-येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण गता श्रिय । धर्मार्थी च महाँल्लोके तत् स्मृत्वा ह्यर्थकारणात्॥
अन्नार्थी यानि दु खानि करोति कृपणो जन । तान्येव यदि धर्मार्थी न भूय क्लेशभाजनम्॥
सर्वेषामेव शौचानामन्नशौच विशिष्यते । योऽन्नार्थे शुचि शौचान्न मृदा वारिणा शुचि ॥ (११३।३५—३७)

दुराचारी पुरुष हजारों बार मिट्टीके लेप तथा सैकड़ों बार जलके प्रक्षालनसे पवित्र नहीं हो सकता। जिसके हाथ-पैर एवं मन सुसंयत हैं, जिसे अध्यात्म-विद्या प्राप्त है, जो धर्मपालनके लिये कष्ट सहन करता है तथा जिसने सत्कीर्ति अर्जित की है, वही तीर्थोंका यथार्थ फल भी भोगता है—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
(११३।४१)

जो मनुष्य सम्मानमें प्रसन्न नहीं होता, अपमानसे क्रुद्ध नहीं होता एवं क्रोधके आनेपर मुँहसे कठोर वाक्य नहीं निकालता, ऐसे ही मनुष्यको साधुपुरुष समझना चाहिये—

न प्रहृष्यति सम्मानैर्नावमानैः प्रकुप्यति।
न क्रुद्धः परुषं ब्रूयादेतत्साधोस्तु लक्षणम्॥
(११३।४२)

विद्वान्, मधुरभाषी भी कोई व्यक्ति यदि दरिद्र है तो उसके समयोचित हितकारी वचनको सुनकर भी कोई संतुष्ट नहीं होता है। यदि कोई मनुष्य मन्त्र या बलके प्रभावसे अथवा बुद्धि और पौरुषके बलपर अलभ्य-अदृष्ट वस्तुको प्राप्त नहीं कर पा रहा है तो उस विषयमें मनुष्यको किसी प्रकारका खेद नहीं करना चाहिये।

अयाचित कोई वस्तु मुझे प्राप्त हो और पुनः वह मेरे पाससे चली जाय तो कष्ट होता है, किंतु जो जहाँसे आयी थी वह पुनः वहीं चली गयी तो उसमें कैसा दुःख? दुःख करनेका कोई औचित्य ही नहीं है। रात्रिमें सदैव एक ही वृक्षपर नाना प्रकारके पक्षियोंका समूह शरण लेता है, किंतु प्रातःकाल होते ही वे सभी भिन्न-भिन्न दिशाओंमें चले जाते हैं। उस आश्रयके विषयमें उन लोगोंको कौन-सा दुःख होता है? इसी दृष्टान्तको ध्यानमें रखकर मनुष्योंको वियोगजन्य दुःखमें खिन्न नहीं होना चाहिये। एक साथ सामूहिक रूपमें चलनेवालोंमें यदि कोई एक त्वरित गतिसे चल रहा है तो उससे ईर्ष्या क्यों की जाय?

हे शौनक! सभी प्राणियों या पदार्थोंकी उत्पत्तिके पूर्वमें स्थिति नहीं थी और निधनके अन्तमें भी उनकी स्थिति नहीं रहेगी। सभी पदार्थ मध्यम ही विद्यमान रहते हैं। इसमें दुःख करनेकी क्या बात है—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि शौनक।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥
(११३।४८)

समय प्राप्त न होनेसे पहले प्राणी सैकड़ों बाण लगनेपर भी नहीं मरता और समयके आ जानेपर कुशकी नोक लग जानेसे भी वह जीवित नहीं रहता।[1] प्राप्त होने योग्य वस्तु ही प्राप्त होती है, गन्तव्य स्थानपर ही व्यक्ति जाता है। अतः प्राणीको जो दुःख-सुख प्राप्त होने योग्य है वही उसको प्राप्त होता है।

मनुष्य प्राप्त होने योग्य अमुक-अमुक वस्तुको ही प्राप्त करता है तो वह अभिलषित वस्तुके लिये नाना प्रकारसे प्रयास करके क्या प्राप्त कर लेगा? उसका तो अपनेको अभावग्रस्त समझकर प्रलाप करना व्यर्थ ही है।

जिस प्रकार प्रार्थना आदिके बिना ही यथासमय वृक्षके द्वारा प्राणीको अपने समयपर ही फल-फूलकी प्राप्ति हो जाती है, उसी प्रकार पूर्वजन्मकृत कर्म भी अपने समयके अनुसार यथोचित फल देता है। व्यक्तिमें अवस्थित शील, कुल, विद्या, ज्ञान, गुण तथा कुल-शुद्धि उसको कुछ देनेमें समर्थ नहीं हैं। पूर्वजन्मकृत तपसे प्राप्त हुआ उसका भाग्य ही समयके अनुसार वृक्षकी भाँति उसे फल देता है।[2]

प्राणीकी मृत्यु वहाँ होती है, जहाँ उसका हन्ता विद्यमान रहता है। लक्ष्मी वहीं निवास करती है, जहाँ सम्पत्तियाँ रहती हैं। ऐसे ही अपने कर्मसे प्रेरित होकर प्राणी स्वयं ही उन-उन स्थानोंपर पहुँच जाता है। पूर्वजन्ममें किया गया कर्म कर्ताके पीछे-पीछे वैसे ही रहता है, जैसे गोष्ठमें

१-नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि। कुशाग्रेण तु संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति॥ (११३।४९)

२-अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च। स्वकालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम्॥
शीलं कुलं नैव च चैव विद्या ज्ञानं गुणा नैव न बीजशुद्धिः।
भाग्यानि पूर्वं तपसार्जितानि काले फलन्त्यस्य यथैव वृक्षाः॥ (११३।५१-५२)

हजार गायोके रहनेपर भी बछडा अपनी माताको प्राप्त कर लेता है—

तत्र मृत्युर्यत्र हन्ता तत्र श्रीर्यत्र सम्पद ।
तत्र तत्र स्वय याति प्रेर्यमाण स्वकर्मभि ॥
भूतपूर्वं कृत कर्म कर्तारमनुतिष्ठति।
यथा धेनुसहस्रेपु वत्सो विन्दति मातरम्॥
(११३।५३-५४)

हे मूर्ख प्राणी। इस प्रकार जब पूर्वजन्मकृत कर्म कर्तामे ही अवस्थित रहता है तो अपने पुण्यका फल भोगो। तुम क्यो सतप्त हो रहे हो? जैसा पूर्वजन्ममे शुभ अथवा अशुभ कर्म किया गया है, वैसा ही फल जन्मान्तरमे कर्ताका अनुसरण करता है, उसके पीछे-पीछे चलता है।

नीच व्यक्ति दूसरेमे सरसोके बराबर भी स्थित दोष-छिद्रोको देखता है, किंतु अपनेम बेल (फल)-के समान अवस्थित दोपाको देखते हुए भी नहीं देखता।[1] हे द्विज। राग-द्वेपादिक दोपोसे युक्त प्राणियोको कहींपर भी सुख नहीं है। मैं भली प्रकारसे विचार करके यह देखता हूँ कि जहाँ सतोष है, वहाँ सुख है। जहाँ स्नेह है, वहीं भय है। अत स्नेह ही दु खका कारण है। प्राणियोमे स्नेह उत्पन्न करनेके जो मूल हैं, वे ही दु खके कारण हैं। अत उनका परित्याग कर देनेपर अर्थात् उनके प्रति अपनी आसक्तिको समाप्त कर देनेसे प्राणीको महान् सुखकी प्राप्ति होती है।[2] यह शरीर ही दु ख और सुखका घर है। उत्पन्न हुए शरीरके साथ ही वह दु ख-सुख भी उत्पन्न होता है।

पराधीनता ही दु ख है और स्वाधीनता ही सुख है। सक्षेपम यही सुख-दु खका लक्षण समझना चाहिये। प्राणीको सुखभोगके पश्चात् दु ख और दु खके बाद सुखका भोग प्राप्त होता है। इस तरह मनुष्योके सुख-दु ख चक्रके समान परिवर्तित होते रहते हैं। जो मनुष्य भूतकालिक विषयवस्तुको समाप्त हुआ मान लेता है और भविष्यमे होनेवालेको बहुत दूर समझता है एव वर्तमानमे अनासक्त-भावसे रहता है, वह किसी भी प्रकारके शोकसे दु खी नहीं होता।[3] (अध्याय ११३)

नीतिसार

श्रीसूतजीने पुन कहा—न कोई किसीका मित्र है और न कोई किसीका शत्रु। कारणविशेपसे ही लोग एक-दूसरेके मित्र और शत्रु होते हैं। यह दो अक्षरोवाला रत्नरूपी 'मित्र' शब्द किसने बनाया? यह दु ख एव भयसे प्राणियाका अभिरक्षक है तथा प्राणिमात्रमे प्रेम और विश्वासको उत्पन्न करनेवाला है।

जिस व्यक्तिने एक बार भी 'हरि' इस दो अक्षरसे युक्त शब्दका उच्चारण कर लिया है, वह अपने कटिप्रदेशमे परिकर (फेंटा) बाँधकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये तैयार रहता है। अर्थात् ऐसा मनुष्य मोक्षका अधिकारी हो जाता है—

सकृदुच्चरित येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्ध परिकरस्तेन मोक्षाय गमन प्रति॥
(११४।३)

माता, पत्नी, सहोदर बन्धु तथा पुत्रमे पुरुपाको वैसा विश्वास नहीं होता है, जैसा विश्वास उन्हे स्वाभाविक मित्रमे होता है। यदि मनुष्य किसीके साथ शाश्वत प्रेम करना चाहता है तो उस उसके साथ द्यूत, अर्थ-व्यवहार (धनका लेन-देन) एव परोक्षरूपमे उसकी स्त्रीका दर्शन—इन तीन दोपाका परित्याग कर देना चाहिये। माता, भगिनी अथवा पुत्रीके साथ एकान्तम एक साथ नहीं बैठना चाहिये, क्योकि

१-नीच सर्पपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति । आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति॥ (११३।५७)
२-रागद्वेषादियुक्ताना न सुख कुत्रचिद्द्विज। विचार्य खलु पश्यामि तत्सुख यत्र निर्वृति ॥
यत्र स्नेहो भय तत्र स्नेहो दुःखस्य भाजनम्। स्नेहमूलानि दु खानि तस्मिस्त्यक्ते महत्सुखम्॥ (११३।५८-५९)
३-सर्वं परवशं दु ख सर्वमात्मवश सुखम्। एतद्विद्यात् समानेन लक्षण सुखदु खयो ॥
सुखस्यानन्तर दु ख दु खस्यानन्तर सुखम्। सुख दु ख मनुष्याणा चक्रवत् परिवर्तते॥
यद्गतं तदतिक्रान्त यदि स्यात् तच्च दूरत । वर्तमानेन वर्तेत न स शोकेन बाध्यते॥ (११३।६१—६३)

इन्द्रियोंका समूह बलवान् होता है, वह विद्वान्को भी [दुराचरणकी ओर] खींच लेता है—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो वसेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वासमपि कर्षति॥
(११४।६)

हे शौनक! उपयुक्त अवसर न होनेसे, एकान्त स्थान न होनेसे तथा प्रार्थयिता व्यक्तिके सुलभ न होनेसे ही स्त्रियोंमें सतीत्व पाया जाता है।

जो मधुर पदार्थोंसे बालकको, विनम्रभावसे सज्जन पुरुषको, धनसे स्त्रीको, तपस्यासे देवताको और सद्व्यवहारसे समस्त लोकको अपने वशमें कर लेता है, वही पण्डित है। जो लोग कपटसे मित्र बनाना चाहते हैं, पापसे धर्म कमाना चाहते हैं, दूसरेको संतप्त करके धन-संग्रह करना चाहते हैं, बिना परिश्रमके ही सुखपूर्वक विद्या-अर्जन करना चाहते हैं और कठोर व्यवहारके द्वारा स्त्रियोंको वशमें रखनेकी अभिलाषा रखते हैं, वे पण्डित (कुशल) नहीं हैं।

फलकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य यदि फल-समन्वित वृक्षका ही मूलोच्छेद कर डालता है तो वह दुर्बुद्धि है। उसे फल कभी नहीं प्राप्त हो सकता। अविश्वसनीय व्यक्तिका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। मित्रका भी [अधिक] विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि कदाचित् क्रुद्ध होनेपर मित्र भी समस्त गोपनीयताको प्रकट कर सकता है—

न विश्वसेदविश्वस्ते मित्रस्यापि न विश्वसेत्।
कदाचित् कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्॥
(११४।२२)

सभी प्राणियोंमें विश्वास करना, सभी प्राणियोंके प्रति सात्त्विक भाव रखना एवं अपने सत्-स्वभावकी रक्षा करना—ये सज्जन पुरुषके लक्षण हैं।

दरिद्रके लिये गोष्ठी[1] विषके समान है और वृद्ध व्यक्तिके लिये युवती विषके समान है। भलीभाँति आत्मसात् न की गयी विद्या विष है तथा अजीर्ण-दशामें किया गया भोजन विषके समान (अनिष्टकारी) है। अकुण्ठित व्यक्तिको गायन, नीच व्यक्तिको उच्च आसनकी प्राप्ति, दरिद्रको दान तथा युवकको तरुणी प्रिय होती है।

अधिक मात्रामें जलका पीना, गरिष्ठ भोजन, धातुकी क्षीणता, मल-मूत्रका वेग रोकना, दिनमें सोना एवं रात्रिमें जागरण करना—इन छः कारणोंसे मनुष्योंके शरीरमें रोग निवास करने लगते हैं—

अत्यम्बुपानं कठिनाशनं च
धातुक्षयो वेगविधारणं च।
दिवाशयो जागरणं च रात्रौ
षड्भिर्नराणां निवसन्ति रोगाः॥
(११४।२८)

प्रातःकालीन धूप, अतिशय मैथुन, श्मशान-धूमका सेवन, अग्निमें हाथ सेंकना और रजस्वला स्त्रीका मुख-दर्शन—ये दीर्घ आयुका विनाश करनेवाले हैं। शुष्क मांस, वृद्धा स्त्री, बालसूर्य, रात्रिमें दहीका प्रयोग, प्रभातकालमें मैथुन एवं [प्रभातकालीन] निद्रा—ये छः सद्यः प्राणविनाशक होते हैं।

तत्काल पकाया गया घृत (ताजा घी), द्राक्षाफल, बाला स्त्री, दुग्ध-सेवन, गरम जल तथा वृक्षकी छाया—ये शीघ्र ही प्राण (शक्ति) प्रदान करनेवाले हैं। कुएँका जल और वटवृक्षकी छाया शीतकालमें गरम तथा गर्मीमें शीतल होते हैं। तैलमर्दन और सुन्दर भोजनकी प्राप्ति—ये सद्यः शरीरमें शक्तिका संचार करते हैं, किंतु मार्ग-गमन और मैथुन तथा ज्वर—ये सद्यः पुरुषका बल हर लेते हैं।

जो मलिन वस्त्र धारण करता है, दाँतोंको स्वच्छ नहीं रखता, अधिक भोजन करनेवाला है, कठोर वचन बोलता है, सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय भी सोता है, वह यदि साक्षात् चक्रपाणि विष्णु हो तो उसे भी लक्ष्मी छोड़ देती हैं।[2]

जो मनुष्य नखसे तृणका छेदन करता है, पृथिवीपर लिखता है, चरणोंका प्रक्षालन नहीं करता, दाँत स्वच्छ नहीं

१-मित्रोंको आमन्त्रितकर उनके साथ भोजन-जलपानादिकी व्यवस्था करकर मनोरंजन करना आदि।
२-कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम्।
सूर्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥ (११४।३५)

रखता, मलिन वस्त्र धारण करता है, केश सस्कारविहीन रखता है, प्रात एव सायकालकी सध्याओमे सोता है, नग्न शयन करता है, भोजन और परिहास अधिक करता है, अपने अङ्ग और आसनपर बाजा बजाता है तो भगवान् विष्णुके समान होनेपर भी उसे लक्ष्मी त्याग देती हैं। जो पुरुष अपने सिरको जलसे धोकर स्वच्छ रखता है, चरणोको प्रक्षालित करके मलरहित करता है, वेश्यागमनसे दूर रहता है, अल्पभोजन करता है, नग्न शयन नहीं करता तथा पर्वरहित दिवसोमे स्त्री-सहवास करता है तो उसके ये षट्कर्म चिरकालसे विनष्ट हुई उसकी लक्ष्मीको पुन उसके सानिध्यमे ले आते हैं।

बालसूर्यके तेज, जलती हुई चिताका धुआँ, वृद्ध स्त्री, बासी दही और झाड़ूकी धूलिका सेवन दीर्घ आयुकी कामना करनेवाले पुरुषको नहीं करना चाहिये।

हाथी, अश्व, रथ, धान्य तथा गौकी धूलि शुभ होती है। किंतु गधा, ऊँट, बकरी एव भेडकी धूलिको अशुभ मानना चाहिये। गौकी धूलि, धान्यकी धूलि और पुत्रके अङ्गमे लगी हुई जो धूलि है, वह महान् कल्याणकारी एव महापातकोका विनाशक है।[1]

सूप फटकनेसे निकली हुई वायु, नखाग्र (नाखून)-का जल, स्नान किये हुए वस्त्रसे निचोडा हुआ जल, केशसे गिरता हुआ जल तथा झाड़ूकी धूलि मनुष्यके पूर्वजन्मके अर्जित पुण्यको भी नष्ट कर देती है। ब्राह्मण तथा अग्निके बीचसे, दो ब्राह्मणके बीचसे, पति-पत्नीके बीचसे, स्वामि-स्वामिनीके बीचसे तथा घोडा और साँडके बीचसे नहीं जाना चाहिये।

स्त्री, राजा, अग्नि, सर्प, स्वाध्याय शत्रुकी सेवा, भोग और आस्वादमे कौन ऐसा बुद्धिमान् होगा जो विश्वास करेगा?[2] अविश्वसनीयपर विश्वास तथा विश्वस्त प्राणीपर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि विश्वास करनेसे जो भय उत्पन्न होता है, वह मनुष्यको समूल नष्ट कर देता है। जो मनुष्य शत्रुके साथ सधि करके आश्वस्त रहता है, वह निश्चित ही वृक्षकी शाखाके अग्रभागपर सोये हुए मनुष्यके समान गिरनेके पश्चात् ही जागता है।[3]

प्राणीको अत्यन्त सरल अथवा अत्यन्त कठोर नहीं होना चाहिये, क्योंकि सरल स्वभावसे सरल और कठोर स्वभावसे कठोर शत्रुको नष्ट किया जा सकता है। अत्यन्त सरल तथा अत्यन्त कोमल नहीं होना चाहिये। सरल अर्थात् सीधे वृक्ष ही काटे जाते हैं, टेढे तो यथास्थितिमे खडे रहते हैं। फलसे परिपूर्ण वृक्ष एव गुणवान् व्यक्ति विनम्र हो जाते हैं, किंतु सूखे हुए वृक्ष और मूर्ख मनुष्य टूट सकते हैं पर झुक नहीं सकते, अर्थात् वे विनयावनत नहीं हो सकते।[4]

जिस प्रकार बिना याचना किये ही दु ख जीवनमे आते हैं और स्वत चले भी जाते हैं [उसी प्रकार सुखकी भी यही स्थिति है], कामना करनेवाला मनुष्य तो मार्जार (बिल्ली)-की तरह दु खोको ही प्राप्त करता है। सज्जन पुरुषके आगे-पीछे सम्पदाएँ सर्वदा घूमती रहती हैं, दुर्जनके लिये इससे विपरीत स्थिति होती है। अत जैसा अच्छा लगे वैसा करे। सज्जनता और दुर्जनताका आचरण करना मनुष्यपर निर्भर है।

छ कानातक पहुँची हुई गुप्त मन्त्रणा नष्ट हो जाती है। अत मन्त्रणाका चार कानोतक ही सीमित रखना चाहिये। दो कानोतक स्थित मन्त्रणाको तो ब्रह्मा भी जाननेमे समर्थ नहीं हैं।[5]

उस गायसे क्या लाभ है, जो न दूध देनेवाली है और

१-गवा रजो धान्यरज पुत्रस्याङ्गभव रज। एतद्रजो महाशस्त महापातकनाशनम्॥ (११४।४२)

२-स्त्रीषु राजाग्निसर्पेषु स्वाध्याये शत्रुसेवने। भोगास्वादेषु विश्वास क प्राज्ञ कर्तुमर्हति॥ (११४।४६)

३-न विश्वसेदविश्वस्त विश्वस्त नातिविश्वसेत्। विश्वासाद्भयमुत्पन्न मूलादपि निकृन्तति॥
वैरिणा सह सधाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति। स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतित प्रतिबुध्यते॥ (११४।४७-४८)

४-नात्यन्त मृदुना भाव्य नात्यन्त क्रूरकर्मणा। मृदुनैव मृदु हन्ति दारुणेनैव दारुणम्॥
नात्यन्त सरलैर्भाव्य नात्यन्त मृदुना तथा। सरलास्तत्र छिद्यन्ते कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपा॥
नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जना। शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च॥ (११४।४९—५१)

५-षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतु कर्णश्च धार्यते। द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्यन्त न बुध्यते॥ (११४।५४)

न गर्भिणी है? उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे भी क्या लाभ है, जो न तो विद्वान् है और न धार्मिक? विद्यासम्पन्न एव बुद्धिमान् तथा पुरुषोमे श्रेष्ठ एकमात्र सुपुत्रसे भी मनुष्यका कुल वैसे ही सुशोभित हो जाता है, जैसे एक ही चन्द्रमासे आकाश-मण्डल चमकने लगता है। जिस प्रकार एक ही सुपुष्पित और सुगन्धित वृक्षसे सम्पूर्ण वन सुवासित हो जाता है, उसी प्रकार एक ही सुपुत्रसे सम्पूर्ण कुल पवित्र हो जाता है। मनुष्यके लिये गुणवान् एक ही पुत्र अच्छा है, गुणहीन सो पुत्रासे क्या लाभ? चन्द्रमा अकेले ही अन्धकारको नष्ट कर देता है, किंतु हजारो ज्योतिष्पुञ्ज उस अन्धकारको दूर करनेमे असफल रहते हैं।[1]

मनुष्यको पाँच वर्षतक पुत्रका प्यारसे पालन करना चाहिये दस वर्षतक उसे अनुशासित रखना चाहिये तथा सोलह वर्षकी अवस्था प्राप्त होनेपर उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करना चाहिये।[2]

कुछ व्याघ्र हरिणके समान मुखवाले होते हैं, कुछ हरिण व्याघ्रमुखवाले होते हैं। उनके वास्तविक स्वरूपके परिज्ञानमे पद-पदपर अविश्वास बना ही रहता है। इसलिये बाह्य आकृतिसे प्राणीकी अन्त प्रवृत्तिको नहीं जानना चाहिये।[3]

क्षमाशील व्यक्तियोंमे एक ही दोष है दूसरा दोष नहीं है। दोष यह है कि जो क्षमाशील होते हैं, मनुष्य उनको अशक्त (असमर्थ) मानता है—

एक क्षमावता दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेन क्षमया युक्तमशक्त मन्यते जन ॥
(११४।६२)

प्राणीको यह शास्त्रमत स्वीकार कर लेना चाहिये कि ससारके समस्त भोग क्षणभगुर ही हैं इसीलिये अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले स्निग्ध-सुन्दर सुखोपभोगोके प्रति विद्वान् पुरुषके विचार स्थिर एव तटस्थ रहते हैं। उनके मनमे उन विषय-वासनाओके लिये आकर्षण नहीं होता।

हे शौनक! बडा भाई पिताके समान है। पिताकी मृत्युके पश्चात् वह सभी छोटे भाइयोका पिता हो है, क्योंकि वह सभीका पालन-पोषण करता है। वह समस्त छोटोके प्रति एक-समान भाव रखता है। वह समान उपभोग करनेवाले परिजनोके विषयमे वैसा ही व्यवहार करता है, जैसा अपने पुत्रोके प्रति उसका व्यवहार होता है। अत छोटे भाइयोको बडे भाईके प्रति पिताके समान आदर-भाव रखना चाहिये।[4]

कम शक्तिशाली वस्तुओका समुदाय (सगठन) भी अत्यधिक शक्तिसम्पन्न हो जाता है, जैसे तृणको बटकर बनायी गयी रस्सीसे हाथी भी बाँध लिया जाता है।

जो दूसरेका धन चुराकर दान देता है, वह नरकमें जाता है। जिसका धन है उसीको उस दानका फल प्राप्त होता है। देव-द्रव्य (देवताओके पूजन आदिमें समर्पित किये जाने योग्य द्रव्यो)-के विनाश करनेसे ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेसे एव ब्राह्मणका तिरस्कार करनेसे मनुष्योके वश नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्महन्ता मद्यपी, चोर तथा व्रतभग करनेवाले पापियोके पापका शमन[5] हो सकता है किंतु सज्जनोके द्वारा किये गये उपकारके प्रति कृतघ्नता करनेवाले कृतघ्न व्यक्तिका निस्तार सम्भव नहीं है।

मनुष्यको भूलवश भी दुष्ट एव छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि भली प्रकारसे न बुझायी गयी अग्नि भी ससारको भस्म कर सकती है।

जो नयी अवस्थामे अर्थात् युवावस्थामें शान्त रहता है वही शान्त-स्वभाव है ऐसा मेरा विचार है, क्योंकि धातुक्षय आदि सब प्रकारकी शक्तियोके समाप्त हो जानेपर किसमें शान्ति नहीं आ जाती? अर्थात् उस अवस्थामें तो सभी शान्त हो जाते हैं—

१ एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन धीमता। कुलं पुरुषसिंहेन चन्द्रेण गगनं यथा॥
एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना। वनं सुवासितं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा॥
एको हि गुणवान् पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम्। चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिःसहस्रकम्॥ (११४।५६—५८)
२ लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥ (११४।५९)
३-केचिन्मृगमुखा व्याघ्राः केचिद् व्याघ्रमुखा मृगाः। तत्स्वरूपपरिज्ञाने ह्यविश्वासः पदे पदे॥ (११४।६१)
४ [illegible] (११४।६४-६५)
५ [illegible]

नवे वयसि य शान्त स शान्त इति मे मति ।
धातुषु क्षीयमाणेषु शम कस्य न जायते॥
(११४।७३)

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! सार्वजनिक मार्गके समान सभी सम्पदाएँ सर्वमान्य हैं। अतएव 'यह सम्पदा मेरी है', ऐसा मानकर मनुष्यको प्रसन्न नहीं होना चाहिये। (अध्याय ११४)

नीतिसार

सूतजीने कहा—मनुष्यको गुणहीन पत्नी, दुष्ट मित्र, दुराचारी राजा, कुपुत्र, गुणहीन कन्या और कुत्सित देशका परित्याग दूरसे ही कर देना चाहिये।

कलियुगम धर्म समाजसे निकल जाता है, तपमें स्थिरता नहीं रहती, सत्य प्राणियोके हृदयसे दूर हो जाता है, पृथिवी वन्ध्या होकर फलहीन हो जाती है, मनुष्य कपट-व्यवहार करने लगते हैं, ब्राह्मणामे लालच आ जाता है, पुरुषजन स्त्रीके वशीभूत हो जाते हैं, स्त्रियाँ चचल हो उठती हैं और नीच प्रवृत्तिके लोग ऊँचे पदोपर आरूढ हो जाते हैं। अत इस कलिकालम जीवित रहना निश्चित ही बहुत कष्टसाध्य है। जो प्राणी मर गये हैं, वे ही धन्य हैं। वे लाग धन्य हैं जा राज्यानुशासनसे टूट रहे देश, विनष्ट होते हुए कुल, परासक्त पत्नी तथा दुराचरणम आसक्त पुत्रको नहीं दखते हैं।

कुपुत्रके होनेपर मनुष्यको सुख-शान्ति नहीं मिलती है। दुराचारिणी पत्नीमे प्रेम कहाँ है? दुर्जन मित्र विश्वासके योग्य नहीं होता है और राज्यके कुशासनमे जीवित रहना सम्भव नहीं है। दूसरेका अन्न दूसरेका धन, दूसरेकी शय्या, दूसरेकी स्त्रीका सेवन और दूसरेके घरम निवास करना—ये सब कृत्य इन्द्रके भी ऐश्वर्यको समाप्त कर देते हैं।[1]

पापी पुरुषसे वार्तालाप करनेसे, उसके शरीरको स्पर्श करनेसे, ससर्गसे सहभोजनसे, एक आसनपर बैठनेसे, एक शय्यापर शयन करनेसे एव एक यानसे गमन करनेपर पापीका पाप दूसरे पुरुषमे सक्रमण कर जाता है। स्त्रियाँ रूपसे नष्ट हो जाती हैं। क्रोधसे तपस्या विनष्ट हो जाती है। दूरतक भ्रमण करनेसे गाय नष्ट हो जाती हैं और शूद्रान्नसे श्रेष्ठ ब्राह्मण नष्ट हो जाता है।[2]

पापीके साथ एक आसनपर बैठनेसे, एक शय्यापर शयन करनेसे, पक्तिमे एक साथ भोजन करनेसे मनुष्यमें पापका सक्रमण वैसे ही होता है जैसे एक घडेका जल दूसरे घडेमें प्रविष्ट हो जाता है।

दुलारमे बहुत-से दोष हैं और ताडनामे बहुत-से गुण हैं। अत शिष्य एव पुत्रको अनुशासित रखना चाहिये, उन्हे केवल दुलार देना उचित नहीं है।

अधिक पैदल चलना प्राणियाके लिये बुढापा है। पर्वतोका जल उसकी वृद्धावस्था है। सम्भोगकी अप्राप्ति स्त्रियाके लिये वृद्धावस्था है और सदैव धूपम रहना वस्त्राकी जीर्णता है।

नीच व्यक्ति दूसरेसे कलहकी इच्छा करते हैं। मध्यमार्गी दूसरेसे सधि चाहते हैं तथा उत्तम प्रकृतिके व्यक्ति दूसरेसे सम्मानकी अभिलाषा रखते हैं, क्योकि महापुरुषोका धन मान ही है। मान ही अर्थका मूल है। यदि सम्मान है तो धनकी क्या आवश्यकता है? मान और दर्पके नष्ट हो जानेपर धनसे और जीवनसे मनुष्यको क्या लाभ? मान तथा स्वाभिमानके विनष्ट हो जानेके पश्चात् प्राणीको धन एव आयुसे क्या लेना-देना रह जाता है?

नीच प्रकृतिवाले पुरुष धन चाहते हैं। मध्यम प्रकृतिवाले धन और मानकी अभिरुचि रखते हैं तथा उत्तम प्रकृतिवाले मात्र सम्मानकी इच्छा करते हैं, क्योकि श्रेष्ठजनोका मान ही धन है—

अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ हि मध्यमा ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महता धनम्॥
(११५।१३)

वनमें भूखे सिह किसी दूसरेके द्वारा प्राप्त किये गये मासको देखनेके लिये भी नहीं झुकते हैं। उत्तम कुलमे

१-परान्न च परस्व च परशय्या परस्त्रिय । परवेश्मनि वासश्च शक्रादपि हरेच्छ्रियम्॥ (११५।५)
२-स्त्रियो नश्यन्ति रूपेण तप क्रोधेन नश्यति। गावो दूरप्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तम ॥ (११५।७)

उत्पन्न व्यक्ति धनहीन होनेपर भी नीच कर्म नहीं करते। वनमे सिहका अभिषेक नहीं होता है और न तो उसका कोई सस्कार ही होता ह, किंतु नित्य सम्यक् पुरुषार्थको करनेसे प्राणीमे स्वय ही सिहत्वका भाव आ जाता है—

नाभिषेको न सस्कार सिहस्य क्रियते वने।
नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता॥
(११५।१५)

प्रमादी वणिक्, अभिमानी भृत्य विलासी भिक्षु, निर्धन कामी तथा कटुभाषिणी वेश्या अपने कार्यमे असफल रहते हैं। दरिद्र होकर दाता होना, धनवान् होनेपर कृपण रहना, पुत्रका आज्ञाकारी न होना और दुष्टजनाकी सेवामे सलग्न होना तथा दूसरेका अहित करते हुए मृत्युको प्राप्त हो जाना—ये पाँच कर्म मानवके दुश्चरित हैं। पत्नी-वियोग, स्वजनोके द्वारा अपमान, शेष ऋण, दुर्जनसेवा तथा दरिद्रताके कारण मित्राकी विमुखता—ये पाँच बाते मनुष्यको बिना अग्निके ही जलाती हैं।[1]

मनुष्यको हजारा चिन्ताएँ होती हैं, किंतु उन चिन्ताआके मध्य चार चिन्ताएँ ऐसी हैं जो तलवारकी धारके समान अत्यन्त तीक्ष्ण हैं, यथा—नीच व्यक्तिसे प्राप्त अपमानकी चिन्ता, भूखसे पीडित पत्नीकी चिन्ता अनुरागहीन भार्याकी चिन्ता तथा कार्यम स्वाभाविक रूपमे उत्पन्न अवरोधकी चिन्ता। य मनुष्यके मर्मस्थलपर तलवारकी धारके समान कष्ट पहुँचाती हैं।

अनुकूल पुत्र अर्थकरी विद्या, आरोग्य शरीर सत्सगति तथा मनोऽनुकूल वशवर्तिनी पत्नी—ये पाँच पुरुषके दु खको समूल नष्ट करनेमे समर्थ हैं।[2]

मृग हाथी कीट भ्रमर और मत्स्य—ये पाँच क्रमश शब्द स्पर्श, रूप, गन्ध और रस—इन पाँचो प्रमाथी विषयोंम एक-एकका सेवन करनेपर ही नष्ट हो जाते हैं परतु मनुष्य तो पाँचो विषयाका पाँचा इन्द्रियासे सेवन करता है, तो वह क्या नहीं मारा जायगा—

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग-
मीना हता पञ्चभिरेव पञ्च।
एक प्रमाथी स कथ न घात्यो
य सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥
(११५।२१)

धैर्यरहित, रूक्ष स्वभाववाले, गतिहीन, मलिन वस्त्राच्छादित और अनाहूत (बिना बुलाये सभा-उत्सवादिम उपस्थित होनेवाले)—ये पाँच प्रकारके ब्राह्मण बृहस्पतिके समान होनपर भी पूजे नहीं जाते हैं। आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँच जन्मसे ही सुनिश्चित रहते हैं—

आयु कर्म च वित्त च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि विविच्यन्ते जायमानस्य देहिन॥
(११५।२३)

मेघकी छाया, दुष्टका प्रेम, परनारीका साथ, यौवन और धन—ये पाँच अस्थिर हैं। ससारम प्राणीका जीवित रहना अस्थिर है, उसका धन और यौवन अस्थिर हे तथा उसके स्त्री-पुत्र आदि अस्थिर हैं, किंतु उसका धर्म, कीर्ति और यश चिरस्थायी होता है—

अभ्रच्छाया खले प्रीति परनारीषु सगति।
पञ्चैते ह्यस्थिरा भावा यौवनानि धनानि च॥
अस्थिर जीवित लोके अस्थिर धनयौवनम्।
अस्थिर पुत्रदाराद्य धर्म कीर्तिर्यश स्थिरम्॥
(११५।२५-२६)

सो वर्षका जीवन भी बहुत कम है, क्योंकि परिमित आयुका आधा भाग रात्रियोमे ही व्यतीत हा जाता है। शेष बचे हुए समयका आधा भाग व्याधि दु ख तथा वृद्धावस्थाम निष्क्रियताके कारण व्यतीत हा जाता है। मनुष्यकी आयु सौ वर्ष मानी गयी है। आयुका आधा भाग रात्रियाम ही समाप्त हो जाता है। उसकी शेष आधी ही आयु बचती है जिसमेसे आधेसे कुछ अधिक भाग बाल्यावस्थाम बात जाता है, कुछ भाग परिजनोके वियाग उनकी दु खदायी मृत्युसे प्राप्त कष्ट तथा राजसेवाम चला जाता है। इसके बाद जो आयुका शेष भाग बचता भी है वह जलतरगके समान चचल होनेके कारण बीचमे ही विनष्ट हो जाता है। अत लागाका मानसे क्या लाभ हा सकता है?

१-दाता दरिद्र कृपणोऽर्थयुक्त पुत्रोऽविधेय कुजनस्य सेवा। परापकारेषु नरस्य मृत्यु प्रजायते दुश्चरितानि पञ्च॥
कान्तावियोग स्वजनापमान ऋणस्य शेष कुजनस्य सेवा। दारिद्र्यभावाद्विमुखाश्च मित्रा विनाग्निना पञ्च दहन्ति तीव्रा॥(११५।१७ १८)

२-वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या अरोगिता सज्जनसङ्गतिश्च। इष्टा च भार्या वशवर्तिनी च दु खस्य मूलोद्धरणानि पञ्च॥(११५।२०)

मृत्यु दिन-रात वृद्धावस्थाके रूपमे लोकमे विचरण करती रहती है। वह प्राणियोको वैसे ही अपना ग्रास बनाती है, जैसे सर्प वायुका ग्रास करता है।

चलते हुए, रुकते हुए, जागते हुए और सोते हुए भी व्यक्ति यदि सभी प्राणियोके हितके लिये चेष्टा नहीं करता है तो उसकी समस्त चष्टा पशुवत् ही है।[1] हित और अहितके विचारसे शून्य बुद्धिवाले, वेद-पुराण तथा शास्त्रोकी चर्चाके समय अत्यधिक तर्क-वितर्क करनेवाले एव उदरपूर्तिमात्रमे सतुष्ट-बुद्धिवाले पुरुष और पशुके बीच कौन ऐसा वैशिष्ट्य है जिसके अनुसार उन दोनोमे अन्तर स्पष्ट किया जा सके?

पराक्रम, तप, दान, विद्या तथा अर्थ-लाभमे जिस मनुष्यकी कीर्ति ससारम प्रसिद्ध नहीं हुई, वह माताके द्वारा परित्याग किये गये मलके समान ही है। विज्ञान, पराक्रम, यश और अक्षुण्ण सम्मानसे युक्त होकर क्षणमात्र भी जो मनुष्य जीवन धारण करता है, विज्ञ लोग उसीके जीवनको जीवन मानते हैं। वैसे तो कौआ भी बहुत समयतक बलि-भक्षण करते हुए जीवित रहता ही है। धन-मानसे रहित जीवनसे क्या लाभ? भयसे सशकित मित्रसे क्या हो सकता है? [इसलिये] विषादका परित्यागकर सिहव्रत अर्थात् पराक्रमका आचरण करना चाहिये। अन्यथा कौआ भी तो बलिका भक्षण करते हुए बहुत समयतक जीवित रहता ही है। जो मनुष्य इस ससारमे अपने प्रति तथा गुरु, नौकर-चाकर और दीन-दुखीके प्रति दयाभाव नहीं रखता है और मित्रके कार्यमे सहयोग नहीं करता है, मनुष्यलोकम उसके जीवित रहनेसे क्या लाभ? अरे, कौआ भी बहुत समयतक जीवित रहता है और मनुष्योके द्वारा दिये गये बलिभागके अन्नको ही जीवनभर खाता है[2]।

धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी क्रियासे रहित जिस मनुष्यके दिन आते हैं और चले जाते हैं, ऐसा व्यक्ति लुहारकी धौंकनीके समान ही है जो कि श्वास लेते हुए भी जीवित नहीं है।

स्वाधीन रहकर आचरण करनेवाले मनुष्यका जीवन सफल है। पराधीन रहकर जीवन व्यतीत करनेवालेका जीवन तो व्यर्थ है। जो परतन्त्र रहकर जीवन-यापन करते हैं, वे तो जीवित रहते हुए भी मरेके समान हैं।[3]

आकाशमे घिरे हुए बादलोकी छाया, तिनकेसे आग, नीचकी सेवा, मार्गमे दृष्टिगोचर हुआ जल, वेश्याका प्रेम और दुष्टके अन्त करणमे उत्पन्न हुई प्रीति—ये छ जलमे उठने और तत्काल विलुप्त होनेवाले बुलबुलेके सदृश ही क्षणभगुर होते हैं—

अभ्रच्छाया तृणादग्निर्नीचसेवा पथो जलम्।
वेश्याराग खले प्रीति षडेते बुद्बुदोपमा ॥
(११५।३९)

केवल वाणीके द्वारा किये गये हित-सम्पादनसे मनुष्यको सुख नहीं प्राप्त होता। जीवनका मूल तो मान हे। मानके नष्ट हो जानेपर मनुष्यके लिये सुख कहाँ होता है?

निर्बलका बल राजा है, बालकका बल रोना है, मूर्खका बल मौन धारण कर लेना है और चोरका बल असत्य है।[4] मनुष्य जैसे-जैसे शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करता जाता है, वैसे-वैसे उसकी बुद्धि बढती रहती है और विज्ञान प्राप्त करनेमे रुचि होती जाती है। मनुष्य जैसे-जैसे जनकल्याणमे अपनी बुद्धिको सयुक्त करता है, वैसे-वैसे ही वह सर्वत्र सभीका प्रिय पात्र बन जाता है—

यथा यथा हि पुरुष शास्त्र समधिगच्छति।
तथा तथास्य मेधा स्याद्विज्ञान चास्य रोचते॥
यथा यथा हि पुरुष कल्याणे कुरुते मतिम्।
तथा तथा हि सर्वत्र श्लिष्यते लोकसुप्रिय ॥
(११५।४२-४३)

लोभ, प्रमाद और विश्वास—इन तीनके कारण व्यक्तिका विनाश होता है। अतएव प्राणीको लोभ, प्रमाद और विश्वास नहीं करना चाहिये। मनुष्यको भयसे उसी समयतक भयभीत रहना चाहिये, जिस समयतक उसका आगमन नहीं हो जाता। तीव्र भयके उपस्थित हो जानेपर तो उसे

१-गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रत स्वपतो न चेत्। सर्वसत्त्वहितार्थाय पशोरिव विचेष्टितम्॥ (११५।३०)

२-यो वात्मनीह न गुरौ न च भृत्यवर्गे दाने दया न कुरुते न च मित्रकार्ये।
कि तस्य जीवितफलेन मनुष्यलोके काकोऽपि जीवति चिर च बलि च भुङ्क्ते॥ (११५।३५)

३-स्वाधीनवृत्ते साफल्य न पराधीनवर्तिता। ये पराधानकर्माणो जीवन्तोऽपि च ते मृता ॥ (११५।३७)

४-अबलस्य बल राजा बालस्य रुदित बलम्। बल मूर्खस्य मौन हि तस्करस्यानृत बलम्॥ (११५।४१)

निर्भीक होकर उसका सामना करना चाहिये।[1]

ऋण, अग्नि तथा व्याधिके शेष रहनेपर वे बार-बार बढते जाते हैं। अत उनका शेष रखना उचित नहीं है—

ऋणशेष चाग्निशेष व्याधिशेष तथैव च।
पुन पुन प्रवर्धन्ते तस्माच्छेष न कारयेत्॥
(११५।४६)

परोक्ष-रूपमे कार्यको नष्ट करनेवाले तथा सामने मधुर बोलनेवाले मित्रका, मायावी शत्रुकी भाँति परित्याग कर देना चाहिये—

परोक्षे कार्यहन्तार प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृश मित्र मायामयमरिं तथा॥
(११५।४८)

दुष्टका साथ करनेसे सज्जन मनुष्य भी विनष्ट हो जाता हे, क्याकि सुन्दर-स्वच्छ पेय जल कीचडके मिल जानेसे दूषित हो जाता है—

दुर्जनस्य हि सगेन सुजनोऽपि विनश्यति।
प्रसन्नमपि पानीय कर्दमै कलुषीकृतम्॥
(११५।४९)

जिस व्यक्तिका धन ब्राह्मणके लिये [समर्पित] होता हे वही [धनका] सम्यक् उपभोग करता है। इसलिये सभी प्रकारमे प्रयत्नपूर्वक द्विजकी पूजा करनी चाहिये। जो द्विजके उपभागसे बचे हुए पदार्थोंका उपभोग करता है, वही उत्तम भोजन है। जो पाप नहीं करता, वही बुद्धिमान् है। जो पीठ-पीछे हित-सम्पादन किया जाता है, वही मित्र-भाव है और जो दिखावेके बिना (दम्भरहित) धर्म किया जाता है वही वास्तविक धर्माचरण है।[2]

वह सभा सभा नहीं होती, जिसमे वृद्ध जन नहीं होते। वे [वृद्ध] वृद्ध नहीं माने जात जो धर्मका उपदेश नहीं देते। वह [धर्म] धर्म नहीं है, जिसमे सत्यका वास नहीं हाता। वह [सत्य] सत्य नहीं है जो कपटसे अनुप्राणित रहता है—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्म स नो यत्र न सत्यमस्ति
नैतत् सत्य यच्छलेनानुविद्धम्॥
(११५।५२)

मनुष्योमे ब्राह्मण, तेजमे आदित्य, शरीरम सिर और व्रतोंमें सत्य ही श्रेष्ठतम व्रत है।

जहाँ मनको प्रसन्नताकी प्राप्ति हो, वहीं प्राणीका मङ्गल है। दूसरेकी सेवामे समर्पित जीवन ही यथार्थ जीवन है। जो उपार्जित धन स्वजनाके द्वारा उपभोग्य है, वही धन सार्थक है। युद्धभूमिमे शत्रुके सामने की गयी गर्जना ही वास्तविक गर्जना है। स्त्री वही श्रेष्ठ है, जो मदोन्मत्त नहीं हो। तृष्णारहित व्यक्ति ही सुखी होता है। जिसपर विश्वास किया जाय, वही मित्र है और जो जितेन्द्रिय होता है, वही वास्तविक पुरुष है।

राज्यका ऐश्वर्य क्रुद्ध ब्राह्मणके शापमे विनष्ट हो जाता है, ब्राह्मणका तेज पापाचार करनेसे नष्ट हो जाता है, अशिक्षित गाँवम निवास करनेसे ब्राह्मणका सदाचार समाप्त हो जाता है और दुष्ट स्त्रियाके साहचर्यसे कुलका विनाश हो जाता है। सभी सग्रहोका अन्त क्षय है और सभी उत्कर्षोंका अन्त पतन है। सयोगका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है।

मनुष्यको राजासे रहित राज्यम और बहुत राजाओवाले राज्यमे निवास नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार जहाँ स्त्रीका नेतृत्व हो या बालनेतृत्व हो वहाँ भी निवास करना अच्छा नहीं होता।

कौमार्य-अवस्थामें स्त्रीकी रक्षा पिता करता है, युवावस्थामें उसकी रक्षाका भार पतिपर होता है, वृद्धावस्थामें उसकी रक्षाका भार पुत्र उठाता है। स्त्री स्वतन्त्र रहन योग्य नहीं है।[3]

अर्थके लिये आतुर मनुष्यका न कोई मित्र है और न कोई बन्धु। कामातुर व्यक्तिके लिये न भय है और न लज्जा ही। चिन्तासे ग्रस्त प्राणीके लिये न सुख है और न नींद ही तथा भूखसे पीडित मनुष्यके शरीरमे न बल ही रहता है और न तेज ही रह जाता है—

अर्थातुराणा न सुहृन्न बन्धु
कामातुराणा न भय न लज्जा।
चिन्तातुराणा न सुख न निद्रा
क्षुधातुराणा न बल न तेज ॥
(११५।६७)

दरिद्र तथा दूसरेके द्वारा प्रेषित दूत पर-नारीमें आसक्त तथा दूसरेके धन-अपहरणमें लगे हुए व्यक्तिको नींद कहाँ

१-तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्। उत्पन्ने तु भये तीव्रे स्थातव्यं वै ह्यभीतवत्॥ (११५।४५)
२-तद्भुज्यते यद्द्विजभुक्तशेष स बुद्धिमान् यो न करोति पापम्। तत्सौहृदं यत्क्रियते परोक्षे दम्भैर्विना य क्रियते स धर्म ॥ (११५।५१)
३ पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रस्तु स्थविरे काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ (११५।६३)

आती है?[1] जो मनुष्य ऋणरहित और रोगमुक्त होता है, वही सुखपूर्वक निद्राका उपभोग करता है। इनके अतिरिक्त वह व्यक्ति भी निद्राका सुख प्राप्त करनेमे सफल हाता है, जो स्त्रियाके ससर्गसे दूर रहता है।

जलके परिमाणके अनुसार ही कमलनाल भी ऊपरको ओर उठता जाता है और अपने स्वामीके बलके अनुसार भृत्य भी गर्वोन्नत हो जाता है। अपने स्थान जलाशयमे स्थित रहनेपर वरुणदेव एव सूर्यनारायण कमलके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं, किंतु उस स्थानसे च्युत होनेपर उसी कमलके साथ वे जलासक्त और शोषणका व्यवहार करके कष्ट पहुँचाते हैं। पदासीन रहनेपर जो जिसके मित्र होते हैं, वे पदसे विमुक्त होनेपर वैसे ही शत्रु हो जाते हैं जैसे जलमें कमलके विद्यमान रहनेपर सूर्यकी प्रीति उसके साथ रहती है, किंतु उस जलसे उसको तोडकर स्थलभागम लानेपर वही सूर्य उसका शोषण करने लगता है।

अपने स्थान या पदपर अवस्थित रहनेपर ही मनुष्यकी पूजा होती है। स्थान और पदसे च्युत होनेपर उसकी उसी प्रकार पूजा नहीं होती, जिस प्रकार शरीरसे पृथक् होनेपर केश, दाँत और नख शोभित नहीं होते—

स्थानस्थितानि पूज्यन्ते पूज्यन्ते च पदे स्थिता ।
स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केशा दन्ता नखा नरा ॥

(११५।७३)

आचारको देखकर कुलका ज्ञान होता है। भाषाको सुनकर देशका ज्ञान होता है। सम्भ्रमसे स्नेह प्रकट होता है और शरीरको देखकर भोजनका ज्ञान (अनुमान) होता है।[2]

समुद्रम वर्षा होना व्यर्थ है। तृप्त हुए प्राणीके लिये भोजनका आग्रह व्यर्थ है। समृद्धको दान देना व्यर्थ है तथा नीचके लिये किया गया सुकृत व्यर्थ है। जो प्राणी जिसके हृदयम अवस्थित है, वह दूरदेशमे रहते हुए भी उसके सनिकट ही विद्यमान रहता है और जो प्राणी हृदयसे ही निकल चुका है, वह समीपम ही रहते हुए भी दूरदेशमे निवास करनेवालेके समान है।[3]

मुखकी विकृति, स्वरभग, दैन्यभाव, पसीनेसे लथपथ शरीर तथा अत्यन्त भयके चिह्न प्राणीमे मृत्युके समय उपस्थित होते हैं किंतु ये ही चिह्न याचकके जीवित शरीरपर भी दिखायी देते रहते हैं।

कुब्ज होना, कृमिदोषसे पीडित रहना, वायुविकारसे ग्रस्त हाना, देश, राज्य या गृहसे निष्कासित हो जाना तथा पर्वतके शिखर-भागमे रहना अच्छा है, किंतु याचनाकी वृत्तिको स्वीकार करना उचित नहीं है। ससारके स्वामी होनेपर भी भगवान् विष्णु बलिके यहाँ याचना करक वामन (बौने) हो गये थे। उनसे बढकर और कौन ऐसा है, जो याचक होकर लघुताको प्राप्त नहीं होगा?[4]

वे माता-पिता उस बालकके शत्रु होते हैं, जिन्होने उसे विद्याध्ययन नहीं कराया है। सभाके मध्य मूर्ख वैसे ही शोभा प्राप्त करनेमे सफल नहीं होता, जैसे हस-समुदायके मध्य बगुला सुशोभित नहीं होता।

विद्या कुरूप व्यक्तिके लिये भी रूप है। विद्या अत्यधिक गुप्त धन है। विद्या प्राणीको साधुवृत्तिवाला तथा सभी लोगोका प्रियपात्र बना दती है। वह गुरुओकी भी गुरु है। विद्या बन्धु-बान्धवोके कष्टोका दूर करनेवाली है। विद्या परम देवता है। विद्या राजाओके मध्य पूजनीय है। अत विद्यासे विहीन मनुष्य पशुके समान है—

विद्या नाम कुरूपरूपमधिक विद्यातिगुप्त धन
विद्या साधुकरी जनप्रियकरी विद्या गुरूणा गुरु ।
विद्या बन्धुजनार्तिनाशनकरी विद्या पर दैवत
विद्या राजसु पूजिता हि मनुजो विद्याविहीन पशु ॥

(११५।८१)

घर या उसके गुह्य स्थानोपर सुरक्षित रखा हुआ द्रव्य देखा जा सकता है और वह समस्त धन-वैभव चोरोके द्वारा चुराया भी जा सकता है। किंतु विद्या एक ऐसा धन है, जो दूसरेके द्वारा किसी भी प्रकार अपहृत नहीं किया जा सकता।[5] (अध्याय ११५)

१-कुतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यवरस्य च।परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च॥ (११५।६८)
२-आचार कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषितम्।सम्भ्रम स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्॥ (११५।७४)
३-दूरस्थोऽपि समापस्थो यो यस्य हृदये स्थित ।हृदयादपि निष्क्रान्त समीपस्थोऽपि दूरत ॥ (११५।७६)
४-जगत्पतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वामनता यत ।कोऽन्योऽधिकतरस्तस्य योऽर्थी याति न लाघवम्॥ (११५।७९)
५-गृहे चाभ्यन्तरे द्रव्य लग्न चैव तु दृश्यते।अशेष हरणीय च विद्या न ह्रियते परै ॥ (११५।८२)

तिथि आदि व्रतोका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! अब मैं व्रतोका वर्णन करूँगा, जिनको करनेसे प्राणीको भगवान् हरि सब कुछ प्रदान करते हैं। सभी मास, सभी नक्षत्र, सभी तिथि और सभी दिनामे हरिका पूजन होता है। एकभक्त[1], नक्त[2], उपवास अथवा फलाहारव्रत करनेसे व्रतीको भगवान् हरि धन, धान्य, पुत्र, राज्य और विजय आदि प्रदान करते हैं।

प्रतिपदा तिथिमे वैश्वानर तथा कुबेर पूज्य हैं, वे साधकको अर्थलाभ कराते हैं। प्रतिपदा तिथिमे तथा अश्विनी नक्षत्रमे उपवास करनेवाले साधकके द्वारा पूजित ब्रह्मा उमे लक्ष्मी प्रदान करते हैं।

द्वितीया तिथिमे यमराज एव भगवान् लक्ष्मीनारायण उस व्रतीको अर्थलाभ कराते हैं। तृतीया तिथिमे गौरी, विघ्नविनाशक गणेश तथा शिव—ये तीन देव पूज्य हैं। चतुर्थीको चतुर्व्यूह भगवान् विष्णु, पञ्चमीको हरि, षष्ठीको कार्तिकेय और रवि तथा सप्तमीको भगवान् भास्करकी पूजा करनी चाहिये। ये उपासकको अर्थलाभ कराते हैं।

अष्टमी तिथिमे दुर्गा और नवमी तिथिमे मातृका तथा दिशाएँ पूजित हानेपर अर्थ प्रदान करती हैं। दशमी तिथिमें यमराज और चन्द्र तथा एकादशी तिथिमें ऋषिगणाकी पूजा करनी चाहिये। द्वादशीको हरि और कामदेव तथा त्रयोदशीको भगवान् शिव पूज्य हैं। चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथियाम ब्रह्मा तथा अमावास्याम पितृगणोकी पूजा करनेसे वे धन-सम्पत्ति प्रदान करते हैं।

रवि, चन्द्र, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—ये साता वार, अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र तथा योगोकी पूजा करनेसे ये सब कुछ प्रदान करत हैं। (अध्याय ११६)

अनगत्रयोदशीव्रत

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमे अनगत्रयोदशीव्रत होता है। इस तिथिमे मल्लिका-वृक्षकी दतुअन निवेदितकर धतूरके पुष्प एव फलोंसे शिवकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर 'अनङ्गायेति०' इस मन्त्रसे भगवान् शिवको मधुका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। पौषमासमे भगवान् योगेश्वरका बिल्वपत्र, कदम्बके दतुअन, चन्दन तथा कृसर आदि नैवेद्यमे पूजन करना चाहिये।

हे मुने! माघमासमे भगवान् नटनागर शिवकी कुन्द-पुष्प तथा मौक्तिक मालासे पूजा करके उन्हे पाकडवृक्षकी दतुअन और पूरिका (पूडी)-का नैवेद्य निवदित करना चाहिये। फाल्गुनमासमे मरुबक (मडक) नामक पुष्पोसे भगवान् वीरेश्वरकी पूजा करनी चाहिये तथा उन्हे शर्करा, शाक, माँड और आम्र-वृक्षकी दतुअन निवेदित करे।

चैत्रमासमे भगवान् सुरूपकी पूजा करनी चाहिये और रात्रिमे उन्हे कर्पूरका प्राशन देना चाहिये। दन्तधावनके लिये वटवृक्षकी दतुअन तथा नैवेद्यके निमित्त शष्कुली (पूडी) प्रदान करे। वैशाखमासमे अशोकवृक्षके पुष्पोंसे भगवान् शिवका दमनक (सहारकारक) स्वरूप पूजनीय हाता है। इन महास्वरूपधारी देवको नैवेद्यमे गुड और भात, दन्तधावनके लिये गूलर-वृक्षकी दतुअन और प्राशनके लिये जातिफल अर्पित करना चाहिये।

ज्येष्ठमासमे भगवान् प्रद्युम्नका पूजन चम्पक-पुष्पमे करे और बिल्व-वृक्षकी दतुअन एव लवङ्गाश (लौंग फलके टुकडे)-के नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। आषाढमासमें उमाभद्रकी पूजा करनी चाहिये। इसमें अगुरुकी गन्ध,

---

१-दिनार्ध समयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत्। एकभक्त इति प्रोक्त रात्रौ तन्न कदाचन॥
दिनका आधा समय बीत जानेपर २४ घटेमें केवल एक बार दिनमें किया गया भोजन एकभक्त होता है।

२-दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे। नक्त तत्त्व विजानीयान्न नक्त निशिभोजनम्॥
नक्षत्रदर्शनान्नक्त गृहस्थेन विधीयते। यतर्दिनाष्टमे भागे रात्रौ तस्य निषेधनम्॥
दिनके आठवें भागमें सूर्यप्रभाके मन्द होनपर किया गया २४ घटेमें एक बारका भोजन नक्तव्रत है। गृहस्थके लिये सूर्यास्तके अनन्तर नक्षत्र-दर्शन करके भाजन करना नक्तव्रत है और यति (सन्यासी)-के लिये सूर्यास्तके पूर्व दिनके आठवें भागमें भिक्षा ग्रहण करना नक्तव्रत है।

श्री शुक्ला नागरी भण्डार

अपामार्गकी दतुअन उन्हे प्रदान की जाती है।

श्रावणमासम भगवान् शूलपाणि शिवकी पूजा होती है। उन्ह करवीर-पुष्प, गन्ध, घृतादिसे युक्त भोजन तथा करवीर-वृक्षकी दतुअन निवेदित की जाती है। भाद्रपदमासम सद्योजात शिवका पूजन बकुल-पुष्प और अपूप (पूए)-के नैवेद्यसे करना चाहिये। आश्विनमासमे चम्पक-पुष्प, स्वर्णकलशके जल और सुवासित मोदकके नैवेद्यसे तथा दमनककी दतुअनसे सुराधिप शिवक पूजनका विधान है। कार्तिकमासम खदिर (कत्थे)-की दतुअनसे तथा बेरकी दतुअन, मदन-पुष्प, दूध और शाक प्रदान करते हुए वर्षपर्यन्त कमल-पुष्पसे शिवकी पूजा करनी चाहिये।

उपर्युक्त विधिसे पूजन करनेके पश्चात् रतिसहित अनङ्ग-कामदेवको स्वर्णसे निर्मित मण्डलके अन्तर्गत स्थापित करके उनकी गन्धादिसे पुन पूजा कर तिल और चावल आदिसे सयुक्त हवन-सामग्रीसे उन्ह दस हजार आहुतियाँ प्रदान करनका विधान है। उस दिन रात्रिम जागरण कर तथा गीत-वाद्यादिस आमोद-प्रमाद करते हुए प्रभातकालम उन देवकी फिरसे पूजा करके ब्राह्मणको शय्या, पात्र, छत्र, वस्त्र, तथा पदत्राणके लिये जूतेका दान देकर भक्तिपूर्वक गौ और ब्राह्मणको भोजन देकर मनुष्यको कृतकृत्य होना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर उद्यापन करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रती लक्ष्मी, पुत्र, आरोग्य, सौभाग्य तथा स्वर्ग प्राप्त करता है।

(अध्याय ११७)

अखण्डद्वादशीव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं मोक्ष तथा शान्तिप्रद अखण्डद्वादशीव्रतका वर्णन करता हूँ। मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें गौके दूध-दही आदिको भोजनरूपमे स्वीकार करके व्रत करनेवाले उपासकको जगत्के स्वामी भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। चार मासपर्यन्त अर्थात् फाल्गुनमासतक वह व्रती पाँच प्रकारके धान्यसे पूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान दे और भगवान् विष्णुकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

सप्तजन्मनि ह विष्णो यन्मया हि व्रत कृतम्।
भगवस्त्वत्प्रसादन तदखण्डमिहास्तु मे॥
यथाखण्ड जगत्सर्व त्वमेव पुरुषोत्तम।
तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्ति वै॥

(११८।३-४)

हे विष्णो! सात जन्मोमे मैंने जो व्रत किये है, हे भगवन्! वे आपकी कृपासे इस जन्मम पूर्ण हो। हे पुरुषोत्तम! जिस प्रकार आप ही इस सम्पूर्ण अखण्ड ब्रह्माण्डक रूपमे अवस्थित हैं, उसी प्रकार मेरे द्वारा किये गये ये सभी व्रत भी अखण्ड हो जायँ।

चैत्रादि (चार) मासमे सत्तूसे पूर्ण पात्र और श्रावण आदि चार महीनोमे घृतपूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान देना चाहिये।

इस विधिसे वर्षपर्यन्त द्वादशीव्रतका सकल्प लेकर जो व्रती अपने व्रतको पूर्ण करता है, वह स्त्री-पुत्रादिसे सम्पन्न हाकर अन्तमे स्वर्गलोकका सुखोपभोग करता है।

(अध्याय ११८)

अगस्त्यार्घ्यव्रत-निरूपण

ब्रह्माजीने पुन कहा—हे मुने! भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले अगस्त्यार्घ्यव्रतका कहता हूँ। कन्याराशिपर सूर्यकी सक्रान्तिके तीन दिन पहलेसे काश-पुष्पकी बनी हुई अगस्त्यकी मूर्तिका प्रदोषकालमे पूजन करके कुम्भमे अर्घ्य देना चाहिये। (रात्रि) जागरण और उपवास करके दधि-अक्षत और फल-पुष्पसे पूजा करके पाँच वर्णसे युक्त साने-चाँदीसे समन्वित सप्तधान्यसे भरे पात्रको दही और चन्दनसे रजित कर 'अगस्त्य खनमान०'[1] इस मन्त्रसे अगस्त्यको अर्घ्य प्रदान करे।

इसके बाद इस मन्त्रसे उन्ह नमस्कार करना चाहिये—

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयो पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥

(११९।५)

अर्थात् काश-पुष्पके समान उज्ज्वल, अग्नि और

१-ऋग्वेद (१।१७९।६)।

वायुसे उत्पन्न मित्रावरुणके पुत्र हे कुम्भयोनि अगस्त्यजी। आपको नमस्कार है।

शूद्र, स्त्री आदि इसी विधिसे अगस्त्यके लिये धान, फल और रस प्रदान करे तथा ब्राह्मणको स्वर्ण और दक्षिणासे युक्त घट प्रदान करे। सात ब्राह्मणोको भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार वर्षभर अगस्त्यार्घ्य-व्रत करनेवाला सभी प्रकारके श्रेय-प्राप्तिका अधिकारी हो जाता है। (अध्याय ११९)

रम्भातृतीयाव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं सौभाग्य, लक्ष्मी तथा पुत्रादिसे सम्पन्न करनेवाले 'रम्भातृतीयाव्रत'को कहूँगा। यह व्रत मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको किया जाता है। इस तिथिको उपवास रखकर व्रती कुशोदक हाथमे लेकर विल्वपत्रसे महागौरीकी पूजा करे। इस पूजनमे कदम्ब (वृक्ष)-की दतुअनका प्रयोग करना चाहिये, किंतु पापमासमे मरुबकके पुष्पासे पार्वतीके पूजनका विधान है। व्रती इस मासके व्रतमे मात्र कर्पूरका सेवनकर उपवास करता हुआ उन गौरीको कृसर (तिल-चावलका सिद्धान्न)-का नैवेद्य एव मल्लिकाओकी दतुअन अर्पित करे।

माघमासमे व्रतके दिन घृतपानकर उपवास करते हुए व्रतीको कल्हार-पुष्प (श्वेतकमल)-से सुभद्रादेवीकी पूजा करके उन्हे मण्ड[1]का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये।

फाल्गुनमासमे गोमतीकी पूजाका विधान है। कुन्द-पुष्पसे उनकी पूजा करके उसीकी नालको दतुअनरूपमे उन्हे निवेदित करे और स्वय जीवा[2] (जीवन्ती)-का भक्षणकर शष्कुली[3] (पूडी)-का नैवेद्य लगाये।

चैत्रमासमे भगवती विशालाक्षीको दमनक-पुष्प, तगर[4] काष्ठकी दतुअन और कृसरान्नका नैवेद्य अर्पित करके स्वय दहीका प्राशन करे। वैशाखमासम श्रीमुखीदेवीकी पूजा कर्णिकार (कनैल)-के पुष्प, वटवृक्षकी दतुअनसे करनी चाहिये और व्रतीको अशोककलिकाका प्राशन करना चाहिये।

ज्येष्ठमासमे नारायणीदेवीका पूजन शतपर्णी (छितवन)-के पुष्प एव दतुअनसे होता है। इस पूजामे देवीको खाँडका नैवेद्य प्रदानकर स्वय उपासक लौंगका भक्षण करे। आषाढमासम माधवीकी पूजा करनी चाहिये। इस मासमें व्रती तिलका प्राशन करे और भगवती माधवीकी बिल्वपत्रसे पूजाकर खीर और वटक (घृतपक्व मधुर पिष्टक)-का नैवेद्य अर्पित करे। इस पूजनमे देवीके लिये गूलरकी दतुअन प्रदान करनी चाहिये। श्रावणमासमे क्षीरान्न तथा मल्लिकाकी दतुअन देकर तगरके फूलसे श्रीदेवीकी पूजा करनी चाहिये।

भाद्रपदमासमे सिंघाडेका आहारकर व्रतीको उत्तमा-देवीके लिये गुडका नैवेद्य अर्पित करके पद्मपुष्पोसे पूजा करनी चाहिये।

आश्विनमासम राजपुत्रीका पूजन जपा-पुष्पसे करके उन्हे जीरसे सुवासित अन्नका नैवेद्य अर्पितकर रात्रिम प्राशन करना चाहिये। कार्तिकमासमे पद्मजादेवीका जाति नामक पुष्प एव कृसरान्नके नैवेद्यसे पूजन होता है और उपासकको पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये।

इस प्रकार मार्गशीर्षसे कार्तिकमासतक वर्षकी समाप्तिपर सपत्नीक ब्राह्मणोको घृतोदन (घृतम पका तण्डुल) देकर उनका पूजन करना चाहिये। उसके बाद पार्वती और शिवकी गुड आदिसे बने नैवेद्य, वस्त्र, छत्र और सुवर्ण आदिसे पूजा करके गीत-वाद्यादिसे रात्रि-जागरण करते हुए प्रात गौ आदिका दान देना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रतीको सब कुछ प्राप्त हो जाता है। (अध्याय १२०)

१-मण्ड—अन्न दधि आदिका सार।
२-जीवा—शाकविशेष शर्कराके समान मधुर पुष्पवाली लता।
३-तिल तण्डुल उडदके चूर्णसे बना यवागू भी शष्कुलीका अर्थ है।
४-तगर—पुष्पवृक्ष सितपुष्प मदनवृक्ष (टगर)।

चातुर्मास्यव्रतका निरूपण

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं चातुर्मास्यव्रतका कहता हूँ। इस व्रतका आरम्भ आपाढमासकी एकादशी या पूर्णिमा तिथिमे सब प्रकारसे भगवान् हरिका पूजन करक कर। व्रतारम्भके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव।
निर्विघ्नं सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्वयि केशव॥
गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे म्रियाम्यहम्।
तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥
(१२१।२-३)

ह देव! आपके समक्ष मैंने इस व्रतको ग्रहण किया है। ह केशव! आपके प्रसन्न होनेपर मुझ निर्विघ्न सिद्धि प्राप्त हो। हे देव! ग्रहण किये गये इस व्रतकी अपूर्णताम ही यदि मैं मृत्युको प्राप्त हो जाता हूँ ता भी हे जनार्दन! आपकी कृपासे यह मेरा व्रत पूर्ण हो।

इस प्रकार हरिका पूजन करके व्रत पूजन और जपादिका नियम ग्रहण करना चाहिये। जो हरिके व्रतको करनेकी इच्छा करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। साधक स्नान करके भगवान् हरिका पूजन कर इस पूजा तथा जपादिकी विहित क्रियाओकी पूर्तिका सकल्प ले तथा आपाढ आदि चार मासोतक एकभक्तव्रत करता हुआ विष्णुकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला विष्णुके परम पवित्र निर्मल लाकम चला जाता है।

मधु, मास, सुरा और तेलका परित्याग करनेवाला जो वेदपारगत, कृच्छ्रपाद[1]व्रती विष्णुभक्त हरिका पूजन करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त हो जाता है। एक रात्रिका उपवास करनेसे वैमानिक (विमानपर चढकर भ्रमण करनेवाला) देवता हो जाता है। तीन रात्रिपर्यन्त उपवास कर पश्चाश भोजन करनसे साधकको श्वेतद्वीपकी प्राप्ति होती है। चान्द्रायण[2]व्रत करनेसे तो भगवान् हरिका लोक और मुक्ति बिना माँगे ही मिल जाती है। प्राजापत्य[3]व्रत करनेसे विष्णुलाक तथा पराक[4]व्रत करनेसे हरिकी प्राप्ति होती है।

इस व्रतमे सत्तू, यवान्नकी भिक्षा कर, दूध, दही तथा घृतका प्राशन कर, गोमूत्रयावकका आहार कर, पञ्चगव्यका पान कर अथवा सभी प्रकारके रसाका परित्याग कर शाक-मूल-फलादिका भक्षण करते हुए जो साधक विष्णुकी भक्ति करता है, वह विष्णुलाकको प्राप्त करता है। (अध्याय १२१)

मासोपवासव्रतका निरूपण

ब्रह्माजीने पुन कहा—अब मैं आपसे मासोपवास नामक उस सर्वोत्तम व्रतका वर्णन करूँगा जिसका पालन वानप्रस्थ सन्यासी और नारीको करना चाहिये।

आश्विनमासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमे उपवास रखकर तीस दिनपर्यन्त इस व्रतको धारण करनेका विधान है। व्रतारम्भके समय सर्वप्रथम भगवान् विष्णुस इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

अद्यप्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव।
अर्चये त्वामनश्नस्तु दिनानि त्रिंशदेव तु॥
कार्तिकाश्विनयोर्विष्णो द्वादश्यो शुक्लयोरहम्।
म्रिये यद्यन्तराले तु व्रतभङ्गो न मे भवेत्॥
(१२२।३-४)

हे विष्णो! आजसे लकर जबतक आपका शयनात्थान नहीं हो जाता है, तबतक तीस दिनपर्यन्त बिना भोजन किये

१- कृच्छ्रपादव्रत—यह तीन दिनका व्रत है। पहले दिन दिनमे एक बार हविष्यान्न ग्रहण दूसरे दिन अयाचितरूपमे हविष्यान्नका एक बार ग्रहण और तीसरे दिन अहोरात्र उपवास। (याज्ञ०स्मृति० प्राय० श्लोक ३१८)

२- चान्द्रायणव्रत—यह व्रत अनेक प्रकारका है। मनु० ११। २१६ के अनुसार यह है—प्रतिदिन तीना काल स्नान। पूर्णिमासे व्रतका आरम्भ। इस दिन पद्रह ग्रास हविष्यान्नमात्र ग्रहण। पूर्णिमाके बाद कृष्णपक्षकी प्रतिपदास एक-एक ग्रास कम करते हुए अर्थात् १४ १३ १२ इस सख्यामें ग्रास ग्रहण करते हुए कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको एक ग्रास ग्रहण। तदनन्तर अमावास्याको पूर्ण उपवास। पुन अमावास्याके बाद शुक्ल प्रतिपन्से एक-एक ग्रास बढाकर १ २ ३ इस क्रमम दूसरी पूर्णिमाको पद्रह ग्रास ग्रहण। इस प्रकार एक मासमे यह व्रत पूर्ण होता है।

३- प्राजापत्यव्रत—यह व्रत बारह दिनका होता है। प्रथम तीन दिन कवल दिनम हविष्यान्न-ग्रहण। तत्पश्चात् तान दिन केवल रातम हविष्यान्न-ग्रहण। तदनन्तर तीन दिन बिना माँगे जो मिल जाय उतनामात्र एक बार ग्रहण। अन्तिम तान दिन पूर्णरूपम उपवास। (मनु० ११। २११)

४- पराकव्रत—इस व्रतम बारह दिनतक केवल जल-ग्रहण करक रहा जाता है। (याज्ञ०स्मृति० प्राय० श्लाक ३२० मनु० ११। २१५)

ही मैं आपका पूजन करता रहूँगा। हे विष्णो! यदि मैं आश्विन और कार्तिकमासके शुक्लपक्षमें द्वादशीसे लेकर दूसरी द्वादशी तिथिके मध्य मर जाता हूँ तो मेरा यह व्रत भंग न हो।

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् प्रातः मध्याह्न तथा संध्याकालमें स्नान करके उपासक गन्धादिसे भगवान् हरिका देवालयमें पूजन करे, किंतु व्रतीको शरीरमें उबटन तथा सुगन्धित गन्धलेप आदि नहीं करना चाहिये।

द्वादशी तिथिमें भगवान् हरिकी पूजा करके व्रती ब्राह्मणोंको भोजन कराये। एक मासतक हरिका व्रत करनेके पश्चात् व्रती पारणा करे। यदि व्रतधारी इस अवधिके मध्य मूर्च्छित हो जाता है तो उसे दुग्धादिका प्राशन कर लेना चाहिये, क्योंकि दुग्धादिका पान करनेसे व्रत विनष्ट नहीं होता। इस प्रकार मासव्रत करनेसे भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं। (अध्याय १२२)

भीष्मपञ्चकव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं कार्तिकमासमें होनेवाले व्रतोंको कहूँगा। इस मासमें स्नान करके व्रतीको भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। व्रती एक मासतक एकभक्त-व्रत करे, नक्तव्रत करे, अयाचितव्रत करे, दुग्ध, फल, शाक आदिका आहार करे अथवा उपवास करके भगवान् विष्णुकी पूजा करे। ऐसा करनेसे वह व्रती सभी पापोंसे मुक्त होकर समस्त कामनाओंके साथ-साथ भगवान् हरिको प्राप्त कर लेता है।

भगवान् हरिका व्रत करना सदैव श्रेष्ठ है, किंतु सूर्यके दक्षिणायनमें चले जानेपर यह व्रत अधिक प्रशस्त होता है। उसके बाद इस व्रतका काल चातुर्मासमें श्रेयस्कर है। तदनन्तर इस व्रतका उचित काल कार्तिकमास है। इसके बाद भीष्मपञ्चक इस व्रतके लिये श्रेष्ठ समय है किंतु कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथि इस व्रतके शुभारम्भके लिये सर्वश्रेष्ठ काल होता है। अतः इसी तिथिसे इस व्रतका शुभारम्भ करना चाहिये। उपासक इस दिन प्रातः मध्याह्न एवं सायंकालीन—इन तीनों सन्ध्याओंमें स्नान कर यवादि पदार्थोंसे पितृगण आदिकी नैत्यिक पूजा करनेके पश्चात् भगवान् हरिका पूजन करे। वह मौन होकर घृत, मधु, शर्करादि तथा पञ्चगव्य एवं जलसे हरिकी मूर्तिको स्नान कराये और कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्यसे श्रीहरिके शरीरका अनुलेपन करे।

तदनन्तर व्रतीको घृतसमन्वित गुग्गुलसे पूर्णिमापर्यन्त पाँच दिनोंतक श्रीहरिको धूप देना चाहिये और सुन्दर-सुन्दर पक्वान्न तथा मिष्टान्नका नैवेद्य अर्पितकर 'ॐ नमो वासुदेवाय' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वाहायुक्त अष्टाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो वासुदेवाय)-से घृतसहित चावल तथा तिलकी आहुति प्रदान करनी चाहिये।

व्रती पहले दिन कमलपुष्पसे भगवान् हरिके दोनों चरणोंका पूजन करे। दूसरे दिन बिल्वपत्रसे उनके जानु (जंघा)-प्रदेशकी पूजाकर तीसरे दिन गन्धसे नाभिदेशकी पूजा करे। चौथे दिन बिल्वपत्र तथा जवापुष्पसे उनके स्कन्ध-भागका पूजन करके पाँचवें दिन मालतीके पुष्पोंसे उनके शिरोभागका पूजन करना चाहिये। व्रती भूमिपर ही शयन करे और उक्त पाँच दिनोंतक क्रमशः पहले दिन गोमय, दूसरे दिन गोमूत्र, तीसरे दिन दही, चौथे दिन दुग्ध और पाँचवें दिन घृत—इन चारों पदार्थोंसे निर्मित पञ्चगव्यका प्राशन रात्रिमें करे। ऐसा व्रत करनेवाला व्रती भोग और मोक्ष दोनोंका अधिकारी हो जाता है।

कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षोंकी एकादशीका व्रत हमेशा करना चाहिये। यह व्रत उस समस्त पापसमूहका विनाश करता है, जो प्राणीको नरक देनेवाला है। यह व्रतीको सभी अभीष्ट फल प्रदान करता है और अन्त समयमें उसे विष्णुलोक भी दे देता है।

पहले दिन शुद्ध एकादशी दूसरे दिन शुद्ध द्वादशी तथा द्वादशीकी निशा (रात्रि)-के अन्तमें अर्थात् तीसरे दिन त्रयोदशी हो तो ऐसी एकादशी तिथिमें सदा श्रीहरिका संनिधान रहता है। यदि दशमी और एकादशी तिथि एक ही दिन होती है तो इसमें असुरोंका निवास रहता है। अतः यह एकादशी व्रतके लिये उपयुक्त नहीं मानी जाती। एकादशीको उपवासकर द्वादशीमें पारणा करनी चाहिये। सूतक (वंशमें किसीकी उत्पत्ति) और मृतक (वंशमें किसीके मरण)-की स्थितिसे होनेवाले अशौचकालमें भी यह व्रत करना चाहिये।

हे मुने! यदि चतुर्दशी और प्रतिपदा तिथि पूर्व तिथिसे

विद्ध है तो इन तिथियोंमे भी उपवास करना चाहिये।

पौर्णमासी और अमावास्या तिथि प्रतिपदासे मिश्रित हो, तृतीयासे मिश्रित द्वितीया तिथि, चतुर्थीसे सगत तृतीया तिथि, तृतीयासे युक्त चतुर्थी तिथिको उपवास करे। षष्ठीसे असयुक्त पञ्चमी तिथि और षष्ठीसे युक्त सप्तमी तिथिको उपवास किया जाना चाहिये। (अध्याय १२३)

शिवरात्रिव्रतकथा तथा व्रत-विधान

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं शिवरात्रिव्रत और उस कथाका वर्णन करूँगा, जो व्रत करनेवालोकी समस्त अभीष्ट कामनाआको पूर्ण करनेमें समर्थ है। जैसे पूर्वकालमे पार्वतीन भगवान् महेश्वर शिवसे इस परमश्रेष्ठ व्रतको सुननेकी इच्छा की थी और सुना था, वैसे ही आप भी सुन।

भगवान् महेश्वरने कहा—हे गोरि! माघ और फाल्गुन-मासके मध्यमे जो कृष्णा चतुर्दशी होती है, उस चतुर्दशी तिथिमे उपवास तथा जागरण करनेसे और भगवान् रुद्रकी पूजा करनेसे पूजित रुद्र भुक्ति और मुक्ति दोना प्रदान करते हैं। जिस प्रकार द्वादशी तिथिको विष्णुकी पूजा होती है, उसी प्रकार कामनासे युक्त होकर इस चतुर्दशी तिथिमे महादेव हरकी पूजा करनी चाहिय। उपवाससहित विधि-विधानसे पूजित शिव विष्णुके समान भक्तको नरक-भोगसे बचाते हैं। शिवरात्रिव्रतकी कथा इस प्रकार है—

बहुत पहले अर्बुद देशमे एक सुन्दरसेन नामक पापात्मा निषाद राजा रहता था। वह एक बार अपने कुत्तोको साथ लेकर आखेट करनके लिये वनम गया, किंतु दैववशात् उस पर्वतीय वनप्रान्तमे उसको कोई भी मृगादि जीव आखेटरूपम प्राप्त नहीं हो सका। भूख-प्याससे पीडित वह रात्रिमे जलाशय और तडागाके तटपर अवस्थित वृक्ष-लताओके झुरमुटामे भटकता हुआ जागता ही रह गया। वहींपर उसे एक शिवलिगका दर्शन हुआ। अत उसने अपने शरीरकी रक्षाके लिये एक वृक्षकी शरण ली और निढाल होकर वहीं गिर गया, किंतु उसकी जानकारीके बिना शिवलिगपर वृक्षके पत्ते गिर पडे। उसने उन पत्ताको हटाकर जलसे उस शिवलिगके ऊपर स्थित धूलिको दूर करनेके लिये शिवलिगको प्रक्षालित किया। प्रमादवश उसी समय शिवलिगके पास ही उसके हाथसे एक बाण छूटकर भूमिपर गिर गया। अत घुटनोको भूमिपर टेककर एक हाथसे शिवलिगको स्पर्श करते हुए उसने उस बाणको उठा लिया। इस प्रकार उस व्याधके द्वारा रात्रि-जागरण शिवलिगका स्नान, स्पर्श और पूजन भी हो गया।

प्रात काल होनेपर वह व्याध अपने घर चला गया और पत्नीके द्वारा दिये गये भोजनको ग्रहणकर क्षुधासे निवृत्त हुआ। यथोचित समयपर उसकी मृत्यु हुई तो यमराजके दूत उसको पाशमे बाँधकर जब यमलोक ले जाने लगे, तब मेरे गणोने उन यमदूताको युद्धमे जीतकर व्याधको उसके पाशसे मुक्त करा दिया। अत अपने कुत्ताके साथ निष्पाप होकर वह व्याध मेरा पार्षद बन गया।

इस प्रकार प्राणीके द्वारा अज्ञानवश अथवा ज्ञानपूर्वक किये गये पुण्य अक्षय ही होते हैं। उपासकको चाहिये कि त्रयोदशी तिथिम शिवका पूजन करे तथा व्रतका नियम ग्रहण करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करे—

प्रातर्देव चतुर्दश्या जागरिष्याम्यह निशि।
पूजा दान तपो होम करिष्याम्यात्मशक्तित ॥
चतुर्दश्या निराहारो भूत्वा शम्भो परेऽहनि।
भोक्ष्येऽह भुक्तिमुक्त्यर्थं शरण मे भवेश्वर॥
(१२४।१२-१३)

हे देव! मैं रात्रिभर जागरण करूँगा। प्रात चतुर्दशी तिथिमें यथासामर्थ्य आपकी पूजा, दान और हवन भी करूँगा। हे शम्भो! चतुर्दशी तिथिमे निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। हे महादेव! भुक्ति और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये मैं आपकी शरणमे हूँ।

व्रतीको पञ्चामृतस महादेवको स्नान कराकर '**ॐ नमो नम शिवाय**' इस मन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर घृतसमन्वित तिल, तण्डुल एव व्रीहिसे निर्मित चरुकी आहुति अग्निम देकर पूर्णाहुति करे। व्रती गीतवाद्यके साथ सत्कथाआका श्रवण करे। उसके बाद वह अर्धरात्रि, तीसरे प्रहर ओर चौथे प्रहरमे पुन उनकी पूजाकर मूलमन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् प्रात काल आ जानेपर उनके सामने इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—

अविघ्नेन व्रत देव त्वत्प्रसादान्मयार्चितम्।
क्षमस्व जगता नाथ त्रैलाक्याधिपते हर॥
यन्मयाद्य कृत पुण्य यद्रुद्रस्य निवेदितम्।

त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समापितम्॥
प्रसन्नो भव मे श्रीमन् गृह प्रति च गम्यताम्।
त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न सशय ॥
(१२४।१७–१९)

हे दव। हे नाथ। हे त्रैलोक्याधिपति स्वामिन् शिव। आपकी कृपासे मैं व्रतको निर्विघ्न सम्पन्न कर सका हूँ आर आपकी यह पूजा भी पूर्ण हा सकी है। आप मुझे क्षमा कर। हे दव। मैंने जो कुछ आज पुण्य किया है, भगवान् रुद्रको जो कुछ निवदित किया ह, वह सब आपकी कृपासे ही हुआ है। आपकी ही कृपास यह व्रत भी आज समाप्त किया जा रहा है। श्रीमन्। आप मरे ऊपर प्रसन्न हा। आप अपने लोकको अब प्रस्थान कर। आपका दर्शनमात्र प्राप्तकर म निस्सदेह पवित्र हो गया हूँ।

व्रती ध्याननिष्ठ ब्राह्मणको भोजनसे सतृप्त कर वस्त्र-छत्रादि दे। तदनन्तर वह पुन इस प्रकार प्रार्थना करे—

देवादिदेव भूतेश लोकानुग्रहकारक॥
यन्मया श्रद्धया दत्त प्रीयता तेन मे प्रभु।
(२०-२१)

हे देवादिदेव। समस्त प्राणिजगत्के स्वामिन्, ससारपर कृपा रखनेवाले प्रभो। श्रद्धापूर्वक मैंने जो कुछ आपको समर्पित किया है, उससे आप प्रसन्न हा।

इस प्रकार क्षमापन-स्तुति करनेके पश्चात व्रतीको द्वादश-वार्षिक व्रतका सकल्प लेना चाहिये। ऐसा करके व्रती कीर्ति, लक्ष्मी, पुत्र तथा राज्यादिके सुख-वैभव प्राप्तकर अन्तम शिवलोकको प्राप्त करता है। व्रत बारहा मासम भी इस व्रतके जागरणको पूर्ण करके और दीपदान व द्वादश ब्राह्मणोको भोजन प्रदान करे उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। (अध्याय १२४)

एकादशीमाहात्म्य

पितामहने कहा—मान्धाता नामके एक राजा थे, जिन्होन एकादशीव्रत करके उसके पुण्यसे चक्रवर्ती सम्राट्की उपाधि धारण की थी। अत कृष्ण एव शुक्ल दोना पक्षकी एकादशी तिथिमे मनुष्यको भोजन नहीं करना चाहिये।

गान्धारीने दशमीविद्धा एकादशीका व्रत किया था, जिसके फलस्वरूप उसके सौ पुत्रोका विनाश उसके जीवनकालम ही हो गया था। इसलिये दशमीसे युक्त एकादशीका व्रत नहीं करना चाहिये। द्वादशीके साथ एकादशी होनपर उस एकादशीम भगवान् हरिका सनिधान रहता ह। जिस मास दशमीवेधसे युक्त एकादशी होती है उसम असुराका सनिधान हाता हे। जब विभिन्न शास्त्राम कहे गये वाक्योकी बहुलतासे अज्ञतावश सदेह बढ जाता है ता उस परिस्थितिम द्वादशी तिथिका व्रत करके त्रयोदशी तिथिम पारणा कर लेनी चाहिये।[१] यदि एकादशी एक कलामात्र भी कालगणनाम रहती है तो द्वादशी (युक्त एकादशी) तिथिको यह व्रत उपास्य है। यदि एकादशी, द्वादशी और विशेष रूपसे त्रयोदशी तिथि भी एक ही दिन आ जाती हे तो इन तीन तिथियोसे मिश्रित वह तिथि व्रत करने योग्य होती है, क्याकि वह तिथि माङ्गलिक एव सभी पापोका विनाश करनेम समर्थ होती है।

हे द्विजराज। एकादशी अथवा द्वादशीका व्रत करके तीन तिथियासे मिश्रित अर्थात् एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी तिथिसे समन्वित तिथिपर व्रत कर लेना उचित है, किंतु दशमीवेधसे युक्त एकादशीका व्रत कभी नहीं करना चाहिये।

रातम जागरण तथा पुराणका श्रवण एव गदाधर विष्णुकी पूजा करते हुए दोनो पक्षाकी एकादशीका व्रत कर महाराज रुक्माङ्गदने मोक्ष प्राप्त किया था। अन्य एकादशी व्रतकर्ताओने भी मोक्ष प्राप्त किया है। (अध्याय १२५)

विष्णुमण्डल-पूजाविधि

ब्रह्माजीने कहा—जिस पूजाको करनेसे लोग परमगतिको प्राप्त हा गये हैं मैं उसी भुक्ति एव मुक्ति देनेम समर्थ श्रेष्ठ पूजाका विधिवत् वर्णन करूँगा।

व्रतीको सर्वप्रथम एक सामान्य पूजामण्डलका निर्माण

१-यहाँ कवल वैष्णव एकादशीकी चचा की गयी है।

कर द्वारदेशसे उसम पूजा प्रारम्भ करनी चाहिये। मण्डलके द्वारदेशम धाता, विधाता और महानदी गङ्गा, यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर द्वारदेशपर ही श्री, दण्ड, प्रचण्ड और वास्तुपुरुषकी पूजाकर मध्यभागमे आधारशक्ति, कूर्मदेव एव अनन्तका पूजन करे। इसके बाद पूजक पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, एश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्यकी पूजा कन्द, नाल, पद्म, कर्णिका तथा केसरादि भागोपर करे। तदनन्तर सत्त्व, रजस् और तमस् गुणोकी पूजा करके उस व्रतीको यथाविहित स्थानपर सूर्यादि ग्रहमण्डलोकी और विमलादि शक्तियोकी भी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद मण्डलके कोण-भागमे दुर्गा, गणेश, सरस्वती और क्षेत्रपाल देवाकी तथा आसन और मूर्तिकी पूजा कर व्रती भगवान् वासुदेव और बलभद्रका स्मरण करता हुआ महात्मा अनिरुद्ध तथा नारायणकी पूजा करे। वह उनके हृदयादि सम्पूर्ण अङ्ग, शख, चक्र तथा गदादि आयुधकी पूजाकर श्री, पुष्टि, गरुड, गुरु और परम गुरुकी पूजा करे। तदनन्तर उसे इन्द्रादि आठो दिक्पालकी पूजा उनकी ही दिशाआम करके अधोभागम नाग तथा ऊर्ध्वभागम ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये। आगमशास्त्रमे निर्दिष्ट विधिके अनुसार विष्वक्सेन देवकी पूजा ईशानकोणमे करके उस मण्डलकी पूजाको पूर्ण करना चाहिये।

जो मनुष्य इस विधिके अनुसार एक बार भी भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, उस महात्माका पुनर्जन्म इस ससारमे नहीं होता। पुण्डरीकाक्ष गदाधर भगवान् विष्णु एव ब्रह्माकी पूजा करनेसे पुन जन्म नहीं हाता। (अध्याय १२६)

भीमा-एकादशीव्रत एव माहात्म्य तथा पूजन-विधि

ब्रह्माजीने कहा—प्राचीनकालमे माघमासके शुक्लपक्षम हस्तनक्षत्रसे युक्त एक एकादशीका व्रत भीमने किया था। इसलिये इस एकादशीको भीमा-एकादशी कहा जाता हे। यह आश्चर्य है कि मात्र इसी एकादशीका व्रत करनेसे भीमसेन पितृऋणसे मुक्त हो गये थे।

प्राणियाके पुण्योकी अभिवृद्धि करनेवाली भीमा-द्वादशी तिथि भीमसेनके नामसे ही प्रसिद्ध भी है। यह तिथि तो बिना हस्तनक्षत्रक सयोगसे ही ब्रह्महत्यादि पापाका विनाश कर देती है।

यह द्वादशी तिथि महापापाका तो वैसे ही नष्ट कर देती है, जैसे कुमार्गगामी राजासे राज्य, कुपुत्रसे कुल दुष्टपत्नीसे पति, अधर्मसे धर्म, कुमन्त्रीसे राजा अज्ञानस ज्ञान, अशौचसे शौच, अश्रद्धास श्राद्ध असत्यसे सत्य, उष्णतासे शीतलता, अनाचारसे सम्पत्ति कहनेमात्रसे दान, विस्मय करनेसे तप अशिक्षासे पुत्र दूर चली जानेसे गौ क्रोधसे शान्ति नहीं बढानेसे धन, ज्ञानसे अविद्या ओर निष्कामतास फल विनष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार पाप नाशके लिय द्वादशी तिथि शुभ कही गयी है।

ब्रह्महत्या सुरापान, सुवर्ण-चारी तथा गुरुपत्नीगमन—ये महापातक मनुष्यम यदि एक साथ उत्पन्न हो जायँ तो इनको त्रिपुष्कर तीर्थ भी नष्ट नहीं कर सकत हैं (किंतु यह द्वादशी उस समस्त पापसमूहका नष्ट कर दती है) नैमिषक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र, कालिन्दी (यमुना), गङ्गा तथा सभी तीर्थ भी एकादशीके समान नहीं हैं। कोई भी दान जप, होम या अन्य पुण्य इसके तुल्य नहीं है। यदि एक ओर पृथिवीके दानका सत्कर्म रखकर दूसरी ओर भगवान् हरिकी इस पवित्र एकादशी तिथिकी तुलना की जाय तो भी यही एक महापुण्यशालिनी एकादशी तिथि सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होगी।

इस व्रतम भगवान् वराहदवकी स्वर्णप्रतिमा बनाकर नये ताम्रपात्रमे घटके ऊपर स्थापित करना चाहिय। तदनन्तर ब्राह्मणजन समस्त विश्वक बीजभूत विष्णुदवकी उस प्रतिमाको श्वेत वस्त्रसे आच्छादितकर स्वर्णनिर्मित दीपादिक उपचारास प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजा करे।

'ॐ वराहाय नम 'इस मन्त्रसे उन विष्णुक चरणकमलाकी पूजाकर 'ॐ क्रोडाकृतये नम 'इस मन्त्रस उनके कटिप्रदेशका पूजन करे। तदनन्तर 'ॐ गम्भीरघोषाय नम ' इस मन्त्रसे उनकी नाभिकी पूजा कर 'ॐ श्रीवत्सधारिणे नम ' इस मन्त्रसे उनके वक्ष स्थलका पूजन करे। उसक वाद 'ॐ सहस्रशिरसे नम ' इस मन्त्रसे उन विष्णुभगवान्‌की भुजाआकी पूजा करक भक्तको 'ॐ सर्वेश्वराय नम ' इस मन्त्रस उन दवक ग्रीवाभागकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर व्रती 'ॐ सर्वात्मने नम 'इस मन्त्रस मुखकी और 'ॐ प्रभवाय नम ' इस मन्त्रसे हरिके ललाटभागकी

पूजाकर 'ॐ शतमयूखाय नम ' इस मन्त्रसे उन चक्रधारी हरिकी केशराशिकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजाको समाप्तकर व्रती रात्रिम जागरण करते हुए भगवान् हरिके माहात्म्यको प्रतिपादित करनेवाल पुराणकी कथाका श्रवण करे। तदनन्तर प्रात काल स्वर्णनिर्मित वराहसहित सपरिवार भगवान्‌की उस मूर्तिको अपेक्षा रखनेवाल ब्राह्मणको दे करके पारणा करे।

इस विधि-विधानसे व्रत करनेसे मनुष्य पुन माताके गर्भसे उत्पन्न हाकर स्तनका दूध नहीं पान करता है अर्थात् वह पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है। इस पुण्यशालिनी एकादशीका व्रत करनेसे प्राणीको पितृ, गुरु एव देव—इन तीना ऋणोसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यह व्रत सभी व्रतोका आदि स्थान है। इस व्रतको करके मनुष्य अपने समस्त मनोवाञ्छित फलोको प्राप्त करनेम सफल रहता है। (अध्याय १२७)

व्रतपरिभाषा तथा व्रतमे पालन करनेयोग्य नियम ओर अन्य ज्ञातव्य बाते

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! जिन व्रताको करनेसे नारायण सतुष्ट होकर सव कुछ प्रदान करते हैं, उन व्रतोका में कहूँगा। शास्त्रके द्वारा वर्णित नियम-पालन व्रत कहलाता है ओर वही तप है। व्रतीके कुछ सामान्य नियम इस प्रकार है—

व्रतीको नित्य तीना सध्याआम स्नान करना चाहिये। उसे जितेन्द्रिय होकर भूमिपर शयन करना चाहिये। स्त्री, शूद्र ओर पतितजनाके साथ बातचोत करना उसक लिये वर्जित है। वह पवित्र बना रह ओर प्रतिदिन हवन करे।

सुकृत करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह नियमाका पालन करे। (व्रताचरणके पूर्व) क्षौर न कराना चाहे ता दुगुना व्रत करना चाहिये।

व्रतीके लिये कास्यपात्र, उडद मसूर, चना, कादो, दूसरेका अन्न शाक और मधुका सेवन वर्जित है। पुष्प, अलकार, नवीन वस्त्र धूप-गन्धादि लेप दन्तधावन और अञ्जनका प्रयोग त्याज्य है। पञ्चगव्य पान कर व्रतका आचरण करना चाहिये। एकसे अधिक बार जलपान, ताम्बूल-भक्षण दिनमे शयन तथा मैथुन करनेसे व्रतभग हो जाता है।

क्षमा सत्य दया दान शोच इन्द्रियनिग्रह देवपूजा अग्निमें हवन सताप और चोरी न करना—ये दस सभी व्रताके सामान्य धर्म हैं।

क्षमा सत्य दया दान शौचमिन्द्रियनिग्रह ॥
देवपूजाग्निहवने सतोषोऽस्तेयमेव च।
सर्वव्रतेष्वय धर्म सामान्यो दशधा स्मृत ॥
(१२८।८-९)

(चौबीस घण्टेम केवल एक बार) नभत्रदर्शनके समय किया जानेवाला भाजन नक्तव्रत कहा जाता है और जा रात्रिम भोजन किया जाता है, वह नक्तव्रत नहीं है। एक पल गोमूत्र, आधे अँगूठेके बराबर गोमय, सात पल गोदुग्ध, तीन पल गोदधि, एक पल गोघृत और एक पल कुशोदक—यह पञ्चगव्यका परिमाण है। गायत्रीमन्त्रसे गोमूत्र, 'गन्धद्वारा०' इस मन्त्रसे गोमय 'आप्यायस्व०' मन्त्रसे दूध, 'दधि०' मन्त्रसे दही, 'तेजोऽसि०' मन्त्रसे घृत और 'देवस्य०' इस मन्त्रसे कुशोदकको अभिमन्त्रितकर पञ्चगव्यका निर्माण करना चाहिये।

अग्न्याधान, प्रतिष्ठा यज्ञ, दान, व्रत, वेदव्रत, वृषात्सर्ग, चूडाकरण, उपनयन, विवाहादिक माङ्गलिक कृत्य और राज्याभिषेक आदि कर्म मलमासम नहीं करना चाहिये।

अमावास्यास अमावास्यातक चान्द्रमास होता है। सूर्योदयसे लकर दूसरे सूर्योदयतक एक दिन इस प्रकार तीस दिनका सावनमास होता है। एक राशिसे दूसरे राशिपर सूर्यके सक्रमणकालको सौरमास कहते हैं। नक्षत्र सत्ताईस होते हैं। उनके अनुरोधसे जो मास होता है, उसे नाक्षत्र मास कहते हैं। विवाहकार्यमे सोरमास, यज्ञादिमे सावनमास ग्रहण किया जाता है।

द्वितीयाके साथ तृतीया, चतुर्थीके साथ पञ्चमी षष्ठीके साथ सप्तमी, अष्टमीके साथ नवमी एकादशीके साथ द्वादशी चतुर्दशीके साथ पूर्णिमा तथा प्रतिपदाके साथ अमावास्याका युग्म हो तो ऐसी युग्म-तिथि महाफलदायक हाती है। इसक विपरीत यदि युग्म-तिथियाँ हो तो वह महाघोर काल है। वह पूर्वजन्मके किये हुए पुण्यको भी नष्ट कर देता है।

यदि व्रत प्रारम्भ करनेके पश्चात् व्रतकालमें ही स्त्रियामें रजोदर्शन हो जाता है तो उससे उनका व्रत नष्ट नहीं हाता है। एसी स्थितिम उन्ह चाहिये कि व दान-पूजा आदि कार्य

किसी अन्यसे सम्पन्न कराय और स्नान, उपवासादि कायिक कार्य स्वय कर।

यदि क्रोध, प्रमाद अथवा लोभवश किसीका व्रत भग हो जाता है तो उसको तीन दिनतक उपवास करके शिरोमुण्डन करा देना चाहिये। शरीरके असमर्थ हो जानेपर व्रतीको अपने पुत्रादिसे व्रत कराना चाहिये। यदि व्रतकालम व्रती मूर्च्छित हो जाता है तो उसे जल आदि पिला देना चाहिये। इससे व्रतभग नहीं होता। (अध्याय १२८)

प्रतिपदा, तृतीया, चतुर्थी तथा पञ्चमीमे किये जानेवाले विविध तिथिव्रत

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास। अब मैं प्रतिपदादि तिथियोके व्रतोकी विधियाका वर्णन करूँगा। आप उनका श्रवण कर। प्रतिपदा तिथिके एक विशेष व्रतका नाम शिखिव्रत है। इस व्रतको करनेसे व्रती वैश्वानर-पद प्राप्त करता है। प्रतिपदा तिथिम एकभक्तव्रत करक दिनमे एक बार भोजन करना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर कपिला गौका दान करे। चैत्रमासके प्रारम्भम विधिपूर्वक सुन्दर गन्ध, पुष्प, माला आदिसे ब्रह्माकी पूजा और हवन करनेस सभी अभीष्ट फलोकी प्राप्ति होती है। कार्तिकमासमे शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको व्रती पुष्प और उनसे बनी हुई मालाका दान करे। यह क्रम वर्षपर्यन्त चलना चाहिये। ऐसा करनेसे रूपकी इच्छा करनेवाले व्रतीको रूप-सौन्दर्यकी प्राप्ति होती है।

श्रावणमासके कृष्णपक्षकी तृतीया तिथिम लक्ष्मीके साथ भगवान् श्रीधरविष्णुको सुसज्जित शय्यापर स्थापित कर उनकी पूजा करे और फलकी भेट चढाये। इसके बाद उस शय्यादिका दान ब्राह्मणको करके व्रती 'श्रीधराय नम , श्रियै नम ' यह प्रार्थना करे। इसी तृतीया तिथिको उमा-शिव और अग्निकी पूजा करनी चाहिये। व्रती इन सभीको हविष्यान्न, नैवेद्य और दमनक (श्वेत कमल)-का निवेदन करे।

फाल्गुनादिमे तृतीयाका व्रत करनेवाले मनुष्यको नमक नहीं खाना चाहिये। व्रतके समाप्त होनेपर सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके अन्न, शय्या पात्रादि उपस्करासे युक्त घरका दान 'भवानी प्रीयताम्' 'भवानी प्रसन्न हो' ऐसा कहकर करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रतीको अन्त समयम भवानीका लोक प्राप्त होता हे और इस लोकम श्रेष्ठ सुख तथा सौभाग्यकी प्राप्ति हाती है।

मार्गशीर्षमासकी तृतीया तिथिम गौरी तथा चतुर्थी आदि तिथियामे क्रमश—काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती मगला वैष्णवी, लक्ष्मी शिवा तथा नारायणादेवीकी पूजा करनी चाहिये। इनकी पूजा करनेसे व्रती प्रियजनासे होनेवाल वियागादि कष्टोस मुक्त हो जाता है।

माघमासके शुक्लपक्षम चतुर्थी तिथिको निराहार रहकर व्रत करते हुए व्रती ब्राह्मणको तिलका दानकर स्वय तिल एव जलका आहार करे। इस प्रकार प्रतिमास व्रत करते हुए दा वर्ष बीतनेपर इस व्रतका समाप्त कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे जीवनम किसी प्रकारका विघ्न आदि प्राप्त नहीं होता। चतुर्थी तिथिम गणाके अधिनायक गणपतिदेवकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये—पूजाम 'ॐ ग स्वाहा' यह प्रणवसे युक्त मूल मन्त्र है। पूजाम अङ्गन्यास इस प्रकारसे करना चाहिये—

ॐ ग्लौ ग्ला हृदयाय नम (दाहिने हाथकी पाँचा अँगुलियासे हृदयका स्पर्श)। *ॐ गा गीं गू शिरसे स्वाहा* (सिरका स्पर्श)। ॐ हू ह्रीं ह्रीं शिखायै वषट् (शिखाका स्पर्श)। ॐ गू कवचाय वर्मणे हुम् (दाहिने हाथकी अँगुलियोसे बाय कधेका और बाय हाथकी अँगुलियासे दाहिने कधेका साथ ही स्पर्श)। ॐ गौ नेत्रत्रयाय वौषट् (दाहिने हाथकी अँगुलियोके अग्रभागसे दोना नेत्रा और ललाटक मध्यभागका स्पर्श)। ॐ गो अस्त्राय फट् (यह वाक्य पढकर दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आय और *तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियासे* बाये हाथकी हथेलीपर ताली बजाये)।

आवाहनादिम निम्नाङ्कित मन्त्रोका प्रयोग करना चाहिये। यथा—

आगच्छोल्काय गन्धोल्क पुष्पोल्को धूपकोल्कक ।
दीपोल्काय महोल्काय बलिश्चाथ विस (मा) र्जनम्॥

हे गन्धोल्क, हे पुष्पोल्क, ह धूपकोल्क अर्थात् हे गन्ध पुष्प तथा धूपम तेज स्वरूप विद्यमान रहनेवाले देव। आप इस रचित पूजामण्डलम स्थित दीपकमे तेज प्रदान करनेके लिये, महातेज देनेके लिये बलि और विसर्जनतक विद्यमान रहनेके लिये यहाँ उपस्थित हा।

आवाहनके पश्चात् गायत्रीमन्त्रस अगुष्ठादिका न्यास

करना चाहिये। वह गायत्रीमन्त्र इस प्रकार है—

ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ति प्रचोदयात्।

करन्यासके पश्चात् इसी मन्त्रसे उनका ध्यान करके व्रतीको तिलादिसे उनकी पूजा करके आहुति देनी चाहिये। गणपतिके साथ रहनेवाले गणोंकी पूजा भी करनी चाहिये। व्रतीको '**ॐ गणाय नमः**', '**ॐ गणपतये नमः**' तथा '**ॐ कूष्माण्डकाय नमः**' इस प्रकार कहकर उनकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद स्वाहान्त शब्दका प्रयोग कर इन्हीं मन्त्रोंसे आहुति दे। इसी प्रकार *अमोघोल्क, एकदन्त, त्रिपुरान्तकरूप, श्यामदन्त,* विकरालास्य, आहवेष और पद्मदंष्ट्र गणोंको भी 'नमः' और अन्तमें 'स्वाहा' शब्दसे यथापेक्षित नमन और आहुति प्रदान करनी चाहिये। उसके बाद व्रती गणदेवके लिये मुद्रा-प्रदर्शन, नृत्य, हस्तताल तथा हास्यभाव प्रदर्शित करे। ऐसा करनेसे उसे सौभाग्यादि फलोंकी प्राप्ति होती है।

मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थी तिथिमें गणकी पूजा करनी चाहिये। वर्षपर्यन्त ऐसा करनेसे विद्या, लक्ष्मी, कीर्ति, आयु और संतानकी प्राप्ति होती है। सोमवार, चतुर्थी तिथिको उपवास रखकर व्रतीको विधि-विधानसे गणपतिदेवकी पूजा कर उनका जप, हवन और स्मरण करना चाहिये। इस व्रतको करनेसे उसे विद्या, स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त होता है।

शुक्लपक्षकी चतुर्थीको खाँडके लड्डू और मोदकसे विघ्नेश्वरकी पूजा करनेपर व्रतीकी समस्त कामनाओंकी सिद्धि तथा सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। यदि दमनक (श्वेतकमल)-से इनकी पूजा होती है तो साधकको पुत्रादिकका फल प्राप्त होता है, इसीलिये इस चतुर्थीका नाम दमना है।

'ॐ गणपतये नमः' इस मन्त्रसे गणपतिकी पूजा करनी चाहिये। जिस किसी भी मासमें इन गणपतिदेवकी पूजा करने तथा होम जप और स्मरण करनेसे व्रतीकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा समस्त विघ्नोंका विनाश हो जाता है। मनुष्यको विभिन्न नामोंका उच्चारण करके भी भगवान् आद्यदेव विनायककी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे उसको भी सद्गतिकी प्राप्ति होती है। जबतक वह इस लोकमें रहता है, तबतक समस्त सुखोंका उपभोग करता है और अन्त समयमें उसे स्वर्ग और मोक्षकी भी प्राप्ति होती है। विनायकके निम्नलिखित ये बारह नाम हैं—

गणपूज्यो वक्रतुण्ड एकदंष्ट्री त्रियम्बकः।
नीलग्रीवो लम्बोदरो विकटो विघ्नराजकः॥
धूम्रवर्णो भालचन्द्रो दशमस्तु विनायकः।
गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादशारे यजेद्गणम्॥

(१२९।२५-२६)

गणपूज्य, वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र त्रियम्बक (त्र्यम्बक), नीलग्रीव, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण, भालचन्द्र, विनायक और हस्तिमुख—इन बारह नामोंसे गणदेवकी पूजा करनी चाहिये।

पृथक्-पृथक् इन नामोंसे जो बुद्धिमान् प्राणी इनकी पूजा करता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिकमासके शुक्ल-पक्षकी पञ्चमी तिथिमें वासुकि, तक्षक, कालीय मणिभद्रक, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक तथा धनञ्जय—इन आठ नागोंको घृतादिसे स्नान कराकर पूजा करनी चाहिये। ये नाग अपने भक्तको आयु-आरोग्य और स्वर्ग प्रदान करते हैं। अनन्त, वासुकि, शंख, पद्म कम्बल, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, शंखक, कालीय, *तक्षक और पिंगल*—इन नागोंकी पूजा प्रत्येक मासमें करनी चाहिये। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें आठों नागोंकी पूजा करनेसे साधकको मृत्युके पश्चात् स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

श्रावणमासके शुक्लपक्षमें पञ्चमीको द्वारके दोनों ओर इन नागोंका चित्र बनाकर पूजन करना चाहिये। इसी दिन अनन्त आदि महानागोंकी पूजा करके नैवेद्यमें दूध तथा घी देना चाहिये इससे सभी विषदोष दूर हो जाते हैं। नाग अभय वरदान देनेवाले होते हैं और यह पञ्चमी सर्पदंशी प्राणीको मुक्ति देनेवाली होती है। इसलिये दष्टोद्धार पञ्चमी कहलाती है। (अध्याय १२९)

षष्ठी तथा सप्तमीके विविध व्रत

ब्रह्माजीने कहा—भाद्रपदमासमें भगवान् कार्तिकेयकी पूजा करनी चाहिये[1]। इसमें स्नानादि जो कृत्य किये जाते हैं वे सभी अक्षय फल प्रदान करनेवाले हो जाते हैं। व्रती (षष्ठी तिथिका उपवासकर) सप्तमी तिथिको ब्राह्मणभोजन कराकर '**ॐ खखोल्काय नमः**' इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी पूजा करे और अष्टमी तिथिको मरिचका

१-कार्तिकेयकी तिथि षष्ठी कही गयी है।

भोजनकर पारणा करे। इससे व्रती अन्तमे स्वर्ग प्राप्त करता है। मरिच-प्राशनके कारण इस व्रतका नाम मरिचसप्तमी है। इस व्रतको करनेसे प्रियजनोसे मिलन होता है, उनसे वियोग नहीं होता। सप्तमी तिथिको सयमपूर्वक स्नानादि करके सूर्यकी पूजा करे। 'मार्तण्ड प्रीयताम्'—'सूर्यदेव मुझपर प्रसन्न हो' यह कहते हुए ब्राह्मणोके लिये फलोका दान करे और खजूर, नारियल, बिजौरा नीबू आदि फलोको प्रदान करे। यह प्रार्थना करे कि हे देव! मेरे सभी अभीष्ट चारा ओरसे सफल हो। फलदान एव प्राशनके कारण इस सप्तमीका नाम 'फलसप्तमीव्रत' है।

सप्तमीको सूर्यदेवकी पूजा कर यदि ब्राह्मणाको दक्षिणासहित पायसका भोजन कराया जाय, तदनन्तर व्रती स्वय पयका पानकर व्रत समाप्त करे तो पुण्य-लाभ होता है। ओदन, भक्ष्य, चोष्य और लेह्य पदार्थ इस व्रतमे ग्राह्य नहीं है। धन-पुत्रकी कामना करनेवाला ओदनका परित्याग कर इस व्रतको करे। इसी वैशिष्ट्यके कारण इसे अनौदक सप्तमी कहा गया है।

विजयकी कामना करनेवालेको वायुमात्र पान कर विजयसप्तमीव्रत करना चाहिये। जो कामेच्छुक हैं, वे मात्र अर्कका प्राशनकर इस व्रतको करे। इस प्रकार व्रतकर वे कामपर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

इस सप्तमीव्रतमे गेहूँ, उडद यव, साठी धान, तिल, कास्यपात्र, पाषाणपात्र, पिसी हुई वस्तु, मधु, मैथुन, मद्य, मास, तैल-मर्दन और अञ्जन त्याज्य है। जो मनुष्य इनका परित्याग कर व्रत करता है, उसकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इसीलिये इसे विजयसप्तमी कहा गया है।

(अध्याय १३०)

दूर्वाष्टमी तथा श्रीकृष्णाष्टमी-व्रत

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्रह्मन्! भाद्रपदमासमे शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको दूर्वाष्टमीव्रत होता है। इस दिन उपवास रहकर दूर्वासे गौरी-गणेशकी और शिवकी फल-पुष्प आदिसे पूजा करनी चाहिये। फल, धान्य आदि सभी प्रयोज्य वस्तुओसे 'शम्भवे नम, शिवाय नम' कहकर शिवका पूजन करे। तदनन्तर 'त्व दूर्वेऽमृतजन्मासि'[१] इस मन्त्रसे दूर्वाकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे यह अष्टमीव्रत निश्चित ही साधकको सर्वस्व प्रदान कर देता है। इस व्रतमे जो अग्निमे न पकाये गये पदार्थोंका भोजन करता है, वह ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है।

इसी भाद्रपदकी कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको अर्द्धरात्रिमे रोहिणी नक्षत्रमे भगवान् हरिकी पूजाका विधान है। यह श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत कहलाता है। सप्तमी तिथिसे विद्ध अष्टमी तिथि भी व्रतके योग्य होती है। इस प्रकारके अष्टमीका व्रत करनेसे प्राणीके तीन जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। अत उपवास रखकर मन्त्रसे भगवान् हरिकी पूजा करके तिथि और नक्षत्रके अन्तमे पारणा करनी चाहिये।

'ॐ योगाय योगपतये योगेश्वराय योगसम्भवाय गोविन्दाय नमो नम ।' इस मन्त्रसे योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान कर 'ॐ यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नम ।' इस मन्त्रसे उन्हे स्नान कराना चाहिये।

उसके बाद 'ॐ विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वपतये विश्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नम' इस मन्त्रसे श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात्—'ॐ सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपतये सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नम ।' इस मन्त्रसे उन्हे शयन कराना चाहिये।

स्थण्डिल (वेदी)-मे चन्द्रमा और रोहिणीके साथ भगवान् कृष्णकी पूजा करे। पुष्प, फल और चन्दनसे युक्त जलको शखमे लेकर अपने दोनो घुटनोको पृथिवीसे लगाते हुए चन्द्रमाको निम्न मन्त्रद्वारा अर्घ्य प्रदान करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव॥
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केश रोहिण्या सहितो मम।

(१३१।८-९)

हे क्षीरसागरसे उत्पन्न देव! हे अत्रिमुनिके नेत्रसे समुद्भूत! हे चन्द्रदेव! रोहिणीदेवीके साथ मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यको आप स्वीकार करे।

तदनन्तर व्रतीको महालक्ष्मी, वसुदेव, नन्द, बलराम

१-त्व दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दिता च सुरासुरै । सौभाग्य सतति कृत्वा सर्वकार्यकरी भव॥
यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले। तथा ममापि सतान देहि त्वमजरामरे॥

तथा यशादाको फलयुक्त अर्घ्य प्रदानकर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

अनन्त वामन शौरिं वैकुण्ठ पुरुपोत्तमम्॥
वासुदेव हपीकेश माधव मधुसूदनम्।
वराह पुण्डरीकाक्ष नृसिह दैत्यसूदनम्॥
दामादर पद्मनाभ केशव गरुडध्वजम्।
गोविन्दमच्युत देवमनन्तमपराजितम्॥
अधोक्षज जगद्बीज सर्गस्थित्यन्तकारणम्।
अनादिनिधन विष्णु त्रिलोकेश त्रिविक्रमम्॥
नारायण चतुर्बाहु शङ्खचक्रगदाधरम्।
पीताम्बरधर दिव्य वनमालाविभूपितम्॥
श्रीवत्साङ्क जगद्धाम श्रीपति श्रीधर हरिम्।
य देव देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्॥
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नम ।

(१३१।१०—१६)

व दव जो अनन्त वामन शौरि, वैकुण्ठनाथ, पुरुपोत्तम, वासुदेव, हपीकेश, माधव, मधुसूदन, वराह, पुण्डरीकाक्ष, नृसिह, दैत्यसूदन दामादर, पद्मनाभ, केशव, गरुडध्वज, गोविन्द अच्युत, अनन्तदेव, अपराजित अधोक्षज जगद्बीज सर्गस्थित्यन्तकारण अनादिनिधन विष्णु, त्रिलाकेश त्रिविक्रम नारायण, चतुर्भुज, शङ्खचक्रगदाधर, पीताम्बरधारी, दिव्य वनमालासे विभूपित श्रीवत्साङ्क, जगद्धाम, श्रीपति और श्रीधरादि नामसे प्रसिद्ध हैं, जिनको देवकीसे वसुदेवने उत्पन्न किया है जो पृथिवीपर निवास करनेवाले ब्राह्मणोकी रक्षाक लिये ससारम अवतरित होते हैं, उन ब्रह्मरूप भगवान् श्रीकृष्णको मैं नमन करता हूँ।

इस प्रकार भगवान्‌के नामाका सकीर्तन करके अपनी सद्गतिके लिय पुन यह प्रार्थना करनी चाहिये—

त्राहि मा देवदेवेश हरे ससारसागरात्।
त्राहि मा सर्वपापघ्न दु खशोकार्णवात् प्रभो॥
देवकीनन्दन श्रीश हरे ससारसागरात्।
दुर्वृत्तास्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत्॥
सोऽह देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मा शोकसागरात्।
पुष्कराक्ष निमग्नोऽह महत्यज्ञानसागरे॥
त्राहि मा देवदवेश त्वामृतेऽन्यो न रक्षिता।
स्वजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च॥
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नम ।
शान्तिरस्तु शिव चास्तु धनविख्यातिराज्यभाक्॥

(१३१।१७—२१)

ह दवदेवेश्वर! हे हरे! इस ससारसागरसे मेरी रक्षा कर। हे सर्वपापहन्ता प्रभो! दु ख तथा शोकसे परिपूर्ण इस ससारसागरसे मरी रक्षा कर। हे देवकीनन्दन! ह श्रीपते! हे हरे! इस ससारसागरसे मेरी रक्षा कर। हे विष्णो! जो एक बार भा आपका स्मरण करते हैं, उन सभाको आप दुराचरणके दु खसे उबार लेते हैं। हे देव! मैं भी वेसा ही इस ससारके अत्यन्त दुराचरणमे फँसा हुआ हूँ, आप मेरा भी इस शोकरूपी सागरसे उद्धार करे। हे राजीवलाचन! मैं इस गहन अज्ञानरूपी ससारसागरमे डूबा हुआ हूँ। आप मेरी रक्षा कर। हे देवदेवेश! आपके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई रक्षक नहीं है। हे स्वजन्मा! वासुदेव! गोद्विजहितकारी! जगत्त्राता! कृष्ण! गोविन्द! आपको बारम्बार नमस्कार हे। आपकी कृपास मुझे शान्ति प्राप्त हो, मेरा कल्याण हो और धन, यश तथा राज्यवैभवका मैं अधिकारी बनूँ। (अध्याय १३१)

बुधाष्टमीव्रत-कथा

ब्रह्माजीने कहा—जो मनुष्य अष्टमी तिथिको दिनभर व्रत रखकर नक्तव्रतकी विधिसे एक बार भोजन करता है और इस व्रतक्रमको वर्षपर्यन्त चलाकर व्रतकी समाप्तिपर गोदान करता है उसे इन्द्रपदकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको सद्गतिव्रत कहा गया है। पोपमासकी शुक्लाष्टमी तिथिके व्रतका नाम महारुद्रव्रत है। जब दोना पक्षकी अष्टमी तिथि बुधवारसे युक्त हो तो नियमपूर्वक बुधाष्टमीव्रत करनेवालकी सम्पत्ति कभी भी खण्डित नहीं होती। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला जा मनुष्य दो अगुलियोको हटाकर शेष तीन अगुलियासे बाँधी गयी मुट्ठीके द्वारा आठ मुट्ठी चावल लेकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भात बनाता है और कुशासे वेष्टित आम्रपत्रके दोनेम करेमूके साग और इमलीके साथ उस भातको इस व्रतकी समाप्तिके बाद ग्रहण करता है और बुधाष्टमीकी कथा सुनता है उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

बुधाष्टमीका जलाशयमे पञ्चापचार-विधिस बुधदेवकी

पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर यथाशक्ति दक्षिणासे युक्त ककडी और चावलका दान देना चाहिये। इस देवके पूजनका बीजमन्त्र '**ॐ बु बुधाय नम** 'है। इस देवपूजाके पश्चात् कमलगट्टे आदिकी आहुति देनेके लिये इसी बीजमन्त्रके अन्तमे 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग करना चाहिये। जलाशयके मध्य जिस पूजा-मण्डलकी कल्पना करे, उस मण्डलके मध्य कल्पित पद्मदलके ऊपर धनुष-बाणसे युक्त श्यामवर्णवाले इन देवकी भावना कर उनके अङ्गोकी पूजा करे।

इस बुधाष्टमीकी कथा बडी ही पुण्यदायिनी है। इस व्रतकी कथा व्रत करनेवाले जनाको अवश्य सुननी चाहिये। वह कथा इस प्रकार है—

प्राचीनकालमे पाटलिपुत्र नामक नगरमें वीर नामका एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम रम्भा और पुत्रका नाम कौशिक था। उसके विजया नामकी एक पुत्री थी तथा धनपाल नामका एक बैल था। ग्रीष्म-ऋतुमे एक बार कौशिक उस बैलको लेकर गङ्गामे स्नान करते समय जलक्रीडा करने लगा और उसी समय चोर गोपालकाने आकर बलात् उस धनपाल नामक बैलका अपहरण कर लिया। कौशिक दु खी होकर वनमे भ्रमण करने लगा। उसी समय सयोगवश अपनी माताके साथ गङ्गाजल लेनेके लिये विजया वहींपर आ गयी। कौशिक भूख-प्याससे व्याकुल हो कमलनालको भक्षण करनेकी इच्छासे एक जलाशयके पास जा पहुँचा। जहाँपर दिव्यलोककी कुछ स्त्रियाँ पूजा कर रही थीं। उन्हे देखकर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। अत विस्मयाभूत कौशिकने उन सबके पास जाकर कुछ अन्नके लिय याचना करते हुए कहा— मैं अपनी छोटी बहनके साथ भूखा हूँ, किंतु स्त्रियोने कहा कि तुमको इस पूजन-सामग्रीमेसे व्रत करनेके लिये ही कुछ द्रव्य मिल सकता है। तुम भी यहींपर व्रत करो। तत्पश्चात् कौशिकने वहींपर धनपाल बैलकी प्राप्तिके लिये और विजयाने पति-प्राप्तिके लिये बुधदेवकी व्रत-पूजा की। व्रत-पूजन करनेके पश्चात् स्त्रियाके द्वारा दानेम दिये गये प्रसादको उन दोनोने ग्रहण किया। उसके बाद वे स्त्रियाँ वहाँसे चली गयीं। कुछ समयके बाद चोरोके साथ वहींपर धनपाल बैल भी दिखायी पड गया। चोरोके द्वारा दिये हुए धनपाल बैलको लेकर प्रदोषकालमे वे दोनो घर वापस चले आये। घरमे दु खित पिता वीरको प्रणामकर रात्रिमे कौशिक सुखपूर्वक सो गया।

इधर युवा हुई पुत्री विजयाको देखकर वीरको यह चिता हो गयी कि मैं इस पुत्रीको किसे दूँ। दु खित पिताने यमराजको पुत्री देनेका निश्चय किया। दैवयोगसे इसी बीच वीरकी मृत्यु हो गयी। पिताके स्वर्ग चले जानेके बाद कौशिकने राज्य-प्राप्तिके लिये पुन बुधाष्टमीका व्रत किया, जिसके फलस्वरूप कौशिकको अयोध्याका विशाल राज्य प्राप्त हुआ। उसने अपनी उस बहन विजयाका विवाह भी पिताके द्वारा कहे गये वचनके अनुसार यमराजके साथ ही करनेकी बात मनमे ठान ली थी। व्रतके प्रभावसे यमराजने वहाँ स्वय आकर विजयाको पत्नीके रूपम स्वीकार किया और विजयासे कहा—'तुम चलकर मेरे घरमे गृहस्वामिनी बनकर रहो।' उसने भी वैसा ही स्वीकार कर लिया और पतिके घर जाकर रहने लगी। एक दिन यमने उसे सावधान करते हुए कहा—देवि! ये जो बद कमरे हैं, इन्हे कभी खोलना नहीं। विजयाने कभी भी बद कमरेका किवाडतक नहीं खोला और न तो अपने पतिके विरुद्ध कोई आचरण ही किया। वह एक सद्गृहिणीके समान ही उनके साथ रही किंतु एक दिन जिज्ञासावश उसने पतिके न रहनेपर कमरा खोलनेपर वहाँ अपनी माताको पति यमके ही कष्टकारी पाशम बँधा हुआ देखा, जिससे वह अत्यन्त दु खित हो उठी। उसी समय कौशिकके द्वारा बताये गये मुक्ति प्रदान करनेवाले बुधाष्टमी-व्रतकी याद उसे हो आयी। अत उसने पुन उस व्रतको किया, जिसके फलस्वरूप माता उस यमपाशसे मुक्त हो गयी। तदनन्तर उसने भी उस व्रतका पालन किया और अन्तमे व्रतके पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोक प्राप्तकर वहाँ सुखपूर्वक निवास करने लगी। (अध्याय १३२)

अशोकाष्टमी, महानवमी तथा नवमीके अन्य व्रत और ऋष्येकादशी व्रत-माहात्म्य

ब्रह्माजीने कहा—चैत्रमासमे पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त शुक्लाष्टमीको 'अशोकाष्टमी'व्रत होता है, इस दिन जो अशोकमञ्जरीकी आठ कलियोका पान करते हैं, वे शोकको नहीं प्राप्त होते। अशोककलिकाओका पान करते

समय यह प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु॥
(१३३।२)

हे शिवप्रिय! वसंतोद्भव! शोकसंतप्त मैं आपका सेवन कर रहा हूँ। हे अशोक! आप मुझे सदैव शोक-विमुक्त रखें।

ब्रह्माजीने पुनः कहा—आश्विनमासमें उत्तराषाढ नक्षत्र तथा शुक्लपक्षकी अष्टमीसे युक्त जो नवमी होती है, उसे महानवमी कहा जाता है। इस तिथिको स्नान-दानादि करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। यदि केवल नवमी हो तो भी दुर्गाकी पूजा करनी चाहिये। भगवान् शिव आदिने इस व्रतको किया था। यह महाव्रत अत्यधिक पुण्यलाभ देनेवाला है। शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये राजाको यह व्रत करना चाहिये। उसे जप-होमके बाद कुमारियोंको भोजन कराना चाहिये।

इस व्रतमें देवीके पूजनादिक कृत्योंमें प्रयुक्त होनेवाला **'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा'** यह मन्त्र है।

व्रतीको चाहिये कि वह अष्टमी तिथिको लकड़ियोंसे देवीके लिये नौ अथवा एक भवन (मण्डप)-का निर्माण करे। उसमें देवीकी सुवर्ण या रजतमूर्ति स्थापित करे। देवीकी पूजा शूल, खड्ग, पुस्तक, पट अथवा मण्डलमें करनी चाहिये। अठारह हाथोंवाली दुर्गादेवी अपनी बायीं ओरके हाथोंमें कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी, धनुष, ध्वज, डमरू और पाश धारण करती हैं। उनके दाहिनी ओरके हाथोंमें शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, शर, चक्र और शलाका नामक आयुध रहते हैं। दुर्गादेवीके अतिरिक्त अन्य देवियोंकी जो प्रतिमाएँ होती हैं, उनके सोलह हाथ माने गये हैं। अञ्जन और डमरू उनके हाथोंमें नहीं रहता है।

रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा तथा अतिचण्डिका—इन आठ देवियोंके अतिरिक्त नवीं देवी उग्रचण्डा है। ये उग्रचण्डादेवी अन्य आठ देवियोंके बीच प्रज्वलित अग्निकी प्रभाके समान सुशोभित होती हैं। रुद्रचण्डाका वर्ण रोचनाके समान, प्रचण्डाका अरुण, चण्डोग्राका कृष्ण, चण्डनायिकाका नील, चण्डाका धूम्र, चण्डवतीका शुक्ल, चण्डरूपाका पीत, अतिचण्डिकाका वर्ण पाण्डुर और उग्रचण्डाका वर्ण अग्निकी ज्वालाके समान है। देवी उग्रचण्डा सिंहपर स्थित रहती हैं। इनके आगे हाथमें खड्ग लिये हुए महिषासुर स्थित रहता है। देवी अपने एक हाथसे उस महिषासुरका (मुण्डयुक्त) कच (केश) पकड़े हुई स्थित रहती हैं।

इन भगवती उग्रचण्डाके दशाक्षरी विद्या-मन्त्र (**'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा'**)-का जप करके मनुष्य किसी भी बाधासे बाधित नहीं होता। पंद्रह अंगुलवाले खड्ग तथा त्रिशूलके साथ ही देवीकी उग्र शक्तियाँ—पूतना, पापराक्षसी, चरकी तथा विदारिकाकी भी नैर्ऋत्य आदि कोणोंमें यथाविधि पूजा करनी चाहिये।

राजाओंको शत्रु आदिपर विजय प्राप्त करनेके लिये विविध मन्त्रोंसे इस महानवमीको देवीकी विशेष पूजा करनी चाहिये। ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही आदि मातृकाओंको दूधसे स्नपन आदि कराकर देवीकी रथयात्रा निकालनी चाहिये, इससे उन्हें विजय तथा राज्य आदिकी प्राप्ति होती है।

आश्विनमासकी शुक्ला नवमीको एकभक्तव्रत करते हुए देवी और ब्राह्मणोंकी पूजा करके एक लाख बीजमन्त्रका जप करना चाहिये। इसे वीरनवमीव्रत कहा गया है। चैत्रशुक्ला नवमीको देवीकी पूजा दमनक नामक पुष्पसे करनी चाहिये। ऐसा करनेसे आयु, आरोग्य और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है तथा व्रती शत्रुसे अपराजित रहता है। इसे दमनकनवमीव्रत कहा जाता है। इसी मासकी शुक्ला दशमीको एकभक्तव्रत करके वर्षके अन्तमें दस गौओंका दान तथा दिक्पालोंको स्वर्णमेखलाका निवेदन करनेवाला समस्त ब्रह्माण्डका स्वामी हो जाता है। इसका नाम दिग्दशमीव्रत है। एकादशी तिथिको ऋषिपूजा करनेका विधान है। इससे व्रतीका सब प्रकारसे उपकार होता है। वह इस लोकमें धनवान् और पुत्रवान् होकर रहता है और अन्तमें उसे ऋषिलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। चैत्रमासमें दमनक-पुष्प तथा इन्हीं पुष्पोंसे बनी मालाद्वारा मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद—इन ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १३३—१३५)

श्रवणद्वादशीव्रत

ब्रह्माजीन कहा—अब मैं प्राणियाको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले श्रवणद्वादशीव्रतका वर्णन करूँगा। श्रवण नक्षत्रस युक्त एकादशी और द्वादशी तिथि जब एक ही दिन पडती है तो उसे विजया तिथि कहा जाता है। इस दिन हरिकी पूजा आदि करनेस प्राप्त पुण्यका फल अक्षय होता है। एकभुक्तव्रत करनेस अथवा नक्तव्रत करनसे या अयाचितव्रत करनेस अथवा उपवास या भिक्षाचार करनसे इस द्वादशीव्रतका पुण्य क्षीण नहीं हाता है। व्रतीको इस द्वादशीके दिन कास्यपात्र, मास, शहद, लोभ, असत्यभापण, व्यायाम, मैथुन, दिनम साना, अञ्जन, पत्थरपर पिसे हुए द्रव्य तथा मसूरका प्रयोग नहीं करना चाहिय।

यदि भाद्रपदमासम शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हा तो वह द्वादशी बहुत ही महत्त्वपूर्ण हाती है। उस दिन उपवास करनसे महान् फलाकी प्राप्ति होती है। यदि यह तिथि बुधवारसे भी युक्त हा ता इस दिन नदियाके सगमम स्नान करनेसे महनीय फल प्राप्त होते हैं। इस दिन रत्न एव जलसे परिपूर्ण कुम्भम दो श्वेतवस्त्रासे आच्छादित भगवान् वामनकी स्वर्णमयी प्रतिमाका छत्र और जूता-समन्वित पूजन करना चाहिये।

विद्वान्‌को चाहिये कि 'ॐ नमो वासुदेवाय' इस मन्त्रसे भगवान् वामनके सिरकी पूजा करके, 'ॐ श्रीधराय नम' मन्त्रसे उनके मुखमण्डलकी, 'ॐ कृष्णाय नम' मन्त्रसे उनके कण्ठकी, 'ॐ श्रीपतये नम' मन्त्रस उनके वक्ष स्थलकी 'ॐ सर्वास्त्रधारिणे नम' मन्त्रस उनकी भुजाआकी, 'ॐ व्यापकाय नम' मन्त्रस उनके कुक्षिप्रदेशकी, 'ॐ केशवाय नम' मन्त्रस उनके उदरकी, 'ॐ त्रैलोक्यपतये नम' मन्त्रस उनके मढ्र (गुह्य)-भागकी तथा 'ॐ सर्वभृते नम' मन्त्रस उनकी जघाआकी और 'ॐ सर्वात्मने नम' मन्त्रसे उनके पैराकी पूजा करनी चाहिये। उन्हें घृत और पायसका नैवेद्य समर्पित करे। कुम्भ और मादक दे करके रात्रिमे जागरण करना चाहिये। तदनन्तर प्रात काल होनेपर स्नान और आचमन करे और उनकी पुन पूजा करके पुष्पाञ्जलिसहित इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसज्ञक॥
अघौघसक्षय कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।
(१३६।११-१२)

हे गोविन्द! ज्ञानस्वरूप! श्रवण नामवाले देव! आपको बारम्बार नमस्कार है। आप मरे समस्त पापसमूहोका विनाश करके मेरे लिय सभी सुखाको प्रदान करनेवाले होव।

प्रार्थनाके बाद 'प्रीयतां देवदेवेश'—ऐसा कहते हुए ब्राह्मणाका कलशोका दान दे। इस व्रत-पूजाको नदीतट अथवा अन्य किसी पवित्र स्थानपर करनेसे सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय १३६)

तिथिव्रत, वारव्रत एव नक्षत्रादिव्रत-निरूपण और प्रतिपदादि तिथियोमे पूजनीय देवता

ब्रह्माजीन कहा—कामदेवत्रयादशी तिथिको श्वेतकमल आदिके पुष्पासे रति और प्रीतिस युक्त मणिविभूषित शाकरहित कामदेवकी पूजा करनी चाहिये, इस व्रतका नाम मदनत्रयोदशी है। जो वर्पपर्यन्त प्रत्येक मासक शुक्ल और कृष्णपक्षकी चतुर्दशी एव अष्टमी तिथिम उपवास करके शिवपूजन करता हे, वह मुक्ति प्राप्त करता है। इसे शिवचतुर्दशी तथा शिवाष्टमीव्रत कहा गया है। तीन रात्रियातक उपवास रखकर व्रतीको कार्तिकमासमे एक शुभ भवनका दान देना चाहिय। एसा करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है यह कल्याणकारी धामव्रत है। अमावास्या तिथिम पितराको दिया गया जल आदि अक्षय होता है। नक्तव्रत करके वाराके नामसे सूर्यादिकी पूजा करके व्रती सभी फलाको प्राप्त करनेका अधिकारी हो जाता है। ये वारव्रत कहलाते हैं।

हे ब्रह्मर्षि! प्रत्येक मासके नामकरणके प्रयोजक बारहो नक्षत्रसे युक्त उन-उन महीनाकी पूर्णिमा तिथि हो तो उन नक्षत्राके नामस मनुष्यको सम्यक्-रूपसे भगवान् अच्युतकी पूजा करनी चाहिये। इस व्रतको कार्तिकमाससे प्रारम्भ करना चाहिये। कृत्तिका नक्षत्रयुक्त कार्तिकमासमे केशवकी पूजा करनी चाहिये। क्रमश चार महीनो (कार्तिक, मार्गशीर्ष, पोष तथा माघ)-मे घृतका हवनकर तिल-चावल (कृसरान्न)-की खिचडीका भोग निवेदित करना चाहिये।

आषाढ आदि चार महीनामें पायस निवेदन करके ब्राह्मणोंको पायसका ही भोजन निवेदित करना चाहिये। पञ्चगव्य, जलस्नान और नैवेद्यसे पूजन करना चाहिये। इस प्रकार संवत्सरके अन्तमें विशेषरूपसे भगवान्‌की पूजा करके निम्नलिखित मन्त्रोंसे प्रार्थना करनी चाहिये—

नमो नमस्तेऽच्युत संक्षयोऽस्तु
पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम्।
ऐश्वर्यवित्तादिसदाऽक्षयं मे
तथास्तु मे सन्ततिरक्षयैव॥
यथाच्युत त्वं परतः परस्मात्
स ब्रह्मभूतः परतः परस्मात्।
तथाच्युत मे कुरु वाञ्छितं सदा
मया कृतं पापहराप्रमेय॥
अच्युतानन्त गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम्।
तदक्षयममेयात्मन्कुरुष्व पुरुषोत्तम॥
(ग०पु० १३७। १०—१२)

हे अच्युत! आपको बार-बार प्रणाम है। हे देव! मेरे पापोंका विनाश हो और पुण्यकी वृद्धि हो। मेरे ऐश्वर्य और धनादि सदैव अक्षय रहें। मेरी सन्तान-परम्परा अक्षुण्ण हो। हे अच्युत! जिस प्रकार आप परात्पर ब्रह्म हैं, वैसे ही मेरे मनोऽभिलषित फलको अविनाशी बना दें। हे अप्रमेय! सदैव मेरे द्वारा किये जानेवाले पापका विनाश करते रहें। हे अच्युत! हे अनन्त! हे गोविन्द! आप मुझपर प्रसन्न हों। हे अमेयात्मन्! हे पुरुषोत्तम! जो मेरे लिये अभीष्ट है, आप उसको भी अक्षय बना दें।

यह मास-नक्षत्रव्रत सात वर्षतक करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यको आयु, लक्ष्मी तथा सद्गति प्राप्त होती है। यदि स्वच्छ हृदयसे उपवाससहित एक वर्षपर्यन्त यथाक्रम एकादशी अष्टमी, चतुर्दशी और सप्तमी तिथियोंमें विष्णु, दुर्गा, शिव और सूर्यकी पूजा हो तो प्राणीको उन देवोंके लोक तो प्राप्त होते ही हैं, सभी निर्मल अभिलाषाएँ भी पूर्ण हो जाती हैं। व्रतकालमें एकभुक्त, नक्त अथवा अयाचित एवं उपवास करते हुए शाकादिके द्वारा इन सभी तिथियोंमें सभी देवताओंकी पूजा करनेसे भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति हो जाती है। प्रतिपदा तिथिमें कुबेर, अग्नि, नासत्य और दस्र नामक देव पूज्य हैं। द्वितीया तिथिमें लक्ष्मी तथा यमराज, पञ्चमीमें श्रीसमन्वित पार्वती और नागगणोंकी पूजा करनी चाहिये। षष्ठी तिथिमें कार्तिकेय तथा सप्तमीमें अर्थदाता सूर्यदेवकी पूजा विहित है। अष्टमी तिथिमें दुर्गा नवमीमें मातृकाओं एवं तक्षककी पूजाका विधान है। दशमीमें इन्द्र और कुबेर तथा एकादशीमें सप्तर्षियोंकी पूजा करनी चाहिये। द्वादशी तिथिमें हरि, त्रयोदशीमें कामदेव, चतुर्दशीमें महेश्वर शिव, पूर्णिमामें ब्रह्मा तथा अमावास्यामें पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १३७)

सूर्यवंशवर्णन

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं राजाओंके वंश और उनके चरितका वर्णन करता हूँ। सर्वप्रथम सूर्यवंशका वर्णन सुनें।

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्माके अङ्गुष्ठभागसे दक्षका जन्म हुआ। दक्षसे उनकी पुत्री अदितिका प्रादुर्भाव हुआ, जो देवमाता कहलाती हैं। उन्हीं अदितिसे विवस्वान् (सूर्य) विवस्वान्‌से वैवस्वत मनु हुए और उन मनुसे इक्ष्वाकु शर्याति नृग धृष्ट पृषध्र नरिष्यन्त नभग दिष्ट तथा शशक (करूष) नामक नौ पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। हे रुद्र! मनुकी इला नामकी कन्या थी और सुद्युम्न नामक पुत्र था। इलाके बुधसे राजा पुरूरवा उत्पन्न हुए। सुद्युम्नसे उत्कल, विनत तथा गय नामक तीन पुत्रोंका जन्म हुआ।

गोवध करनेके कारण मनुका पुत्र पृषध्र शूद्र हो गया था। करुष (शशक)-से क्षत्रिय लोगोंकी उत्पत्ति हुई जो कारुष नामसे विख्यात हुए। मनुके पुत्र दिष्टसे जो नाभाग नामका पुत्र हुआ वह वैश्य हो गया था। उससे एक भलन्दन नामक पुत्र हुआ। भलन्दनसे वत्सप्रीति नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। वत्सप्रीतिसे पांशु और खनित्र—दो पुत्रोंका जन्म हुआ। खनित्रसे भूप भूपसे क्षुप क्षुपसे विंश और विंशसे विविंशकने जन्म लिया।

विविंशकसे खनिनेत्र और खनिनेत्रसे विभूति नामक

पुत्रका जन्म हुआ। विभूतिसे करन्धम नामक पुत्र हुआ। करन्धमसे अविक्षित, अविक्षितसे मरुत् और मरुत्से नरिष्यन्तकी उत्पत्ति मानी जाती है। नरिष्यन्तसे तम, तमसे राजवर्धन, राजवर्धनसे सुधृति, सुधृतिसे नर नरसे केवल तथा केवलसे धुन्धमान हुआ।

धन्धुमानके वेगवान्, वेगवान्के बुध और बुधके तृणबिन्दु नामक पुत्र हुआ। तृणविन्दुने अलम्बुषा नामकी अप्सरासे इलविला नामकी कन्या तथा विशाल नामक पुत्र उत्पन्न किया। विशालके हेमचन्द्र नामक पुत्र हुआ। हेमचन्द्रसे चन्द्रक, चन्द्रकसे धूम्राश्व, धूमाश्वसे सृञ्जय, सृञ्जयसे सहदेवकी उत्पत्ति हुई। सहदेवके कृशाश्व नामक पुत्र हुआ। कृशाश्वस सोमदत्त और सोमदत्तसे जनमेजय हुआ। जनमेजयसे सुमन्ति नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। इन सभी (राजाओ)-को वैशालक कहा गया है।

वैवस्वत मनुक पुत्र शर्यातिके सुकन्या नामकी पुत्री हुई, जो च्यवन ऋषिकी भार्या बनी। शर्यातिके अनन्त नामक पुत्र भी था। उससे रेवत नामका पुत्र हुआ। रेवतके भी रैवत नामक पुत्र हुआ। उससे रेवती नामकी कन्या हुई।

वैवस्वत मनुके पुत्र धृष्टके धार्ष्ट हुआ जो वैष्णव हो गया था। उन्हीं मनुके पुत्र नभगके नेदिष्ठ नामक एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे अम्बरीप हुआ। अम्वरीपके विरूप विरूपके पृषदश्व और उसके रथीनर हुआ, जा वासुदेवका भक्त था।

मनुपुत्र इक्ष्वाकुके विकुक्षि, निमि और दण्डक तीन पुत्र हुए। विकुक्षि यज्ञीय शशक (खरगोश)-का भक्षण करनेके कारण शशाद नामसे विख्यात हुआ। शशादसे पुरञ्जय और ककुत्स्थ नामक दो पुत्र हुए। इसी ककुत्स्थसे अनेनस् (वेण) तथा अनेनस्से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथुके विश्वरात नामक पुत्र हुआ। विश्वरातसे आर्द्रकी उत्पत्ति हुई। आर्द्रसे युवनाश्व, युवनाश्वके श्रीवत्स श्रीवत्सके बृहदश्व, बृहदश्वके कुवलाश्व और कुवलाश्वके दृढाश्व हुआ जिसकी प्रसिद्धि धुन्धुमारके नामसे हुई थी।

दृढाश्वके चन्द्राश्व, कपिलाश्व और हर्यश्व नामक तीन पुत्र थे। हर्यश्वके निकुम्भ, निकुम्भके हिताश्व, हिताश्वके पूजाश्व और उसके युवनाश्व हुआ। युवनाश्वके मान्धाता हुए। मान्धाता एव उनकी पत्नी विन्दुमतीसे मुचुकुन्द, अम्बरीप तथा पुरुकुत्स नामक तीन पुत्राका जन्म हुआ। उनकी पचास कन्याएँ भी थीं। जिनका विवाह सौभरि मुनिके साथ हुआ था।

अम्वरीपके युवनाश्व तथा युवनाश्वके हरित हुआ। पुरुकुत्सके नर्मदा नामक पत्नीसे त्रसदस्यु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे अनरण्य, अनरण्यसे हर्यश्व, हर्यश्वसे वसुमना हुआ। उसीका पुत्र त्रिधन्वा था। उसके त्रय्यारुण नामक पुत्र हुआ। त्रय्यारुणके सत्यरत हुआ, जा त्रिशकु नामसे प्रसिद्ध है। हरिश्चन्द्र इसीसे उत्पन्न हुए थे। हरिश्चन्द्रके रोहिताश्व और रोहिताश्वके हारीत हुआ। हारीतके चचु, चचुके विजय, विजयके रुरुक, रुरुकके वृक, वृकके राजा बाहु और बाहुके पुत्र राजा सगर माने जाते हैं।

हे शिव! सगरसे सुमति नामक पत्नीके साठ हजार पुत्र हुए। उनकी दूसरी पत्नी केशिनीसे असमजस नामक एक पुत्र हुआ। उस असमजससे अशुमान् तथा अशुमान्से दिलीप नामक एक विद्वान् पुत्रने जन्म लिया। दिलीपसे भगीरथ हुए, जिनके द्वारा पृथिवीपर गङ्गा लायी गयी हैं।

भगीरथका पुत्र श्रुत था। श्रुतसे नाभाग हुआ। नाभागसे अम्वरीप, अम्बरीपसे सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु हुआ। अयुतायुका पुत्र ऋतुपर्ण था, ऋतुपर्णसे सर्वकाम और सर्वकामसे सुदास, सुदाससे सौदास हुआ। जिसका नाम मित्रसह भी माना जाता है। कल्मापपाद उसीका पुत्र है, जो दमयन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। कल्मापपादके अश्वक, अश्वकके मूलक, मूलकके दशरथ हुआ। दशरथके ऐलविल, ऐलविलके विश्वसह, विश्वसहके खट्वाङ्ग, खट्वाङ्गके दीर्घबाहु, दीर्घबाहुके अज तथा अजके दशरथ हुए। इनके महापराक्रमी चार पुत्र हुए, जो राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामसे प्रसिद्ध हैं।

रामसे कुश और लव, भरतसे तार्क्ष तथा पुष्कर, लक्ष्मणसे चित्राङ्गद एव चन्द्रकेतु और शत्रुघ्नसे सुबाहु तथा शूरसेन नामक पुत्र हुए। कुशक अतिथि, अतिथिके निषध नामक पुत्र हुआ। निषधके नल तथा नलके नभस नामका पुत्र माना गया है। नभसके पुण्डरीक और पुण्डरीकसे क्षेमधन्वा नामक पुत्रने जन्म लिया। उसका पुत्र देवानीक

था, उससे अहीनक, अहीनकसे रुरु तथा रुरुसे पारियात्र नामक पुत्रका जन्म हुआ। पारियात्रसे दलकी उत्पत्ति हुई और दलस छल, छलसे उक्थ, उक्थसे वज्रनाभ और वज्रनाभसे गण, गणसे उपिताश्व, उपिताश्वसे विश्वसहकी उत्पत्ति हुई। हिरण्यनाभ उसीका पुत्र था। उसका पुत्र पुष्पक माना गया है।

पुष्पकसे ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिसे सुदर्शन, सुदर्शनसे अग्निवर्ण, अग्निवर्णसे पद्मवर्ण हुआ। पद्मवर्णसे शीघ्र और शीघ्रस मरु हुए। मरुसे सुश्रुत और उससे उदावसु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उदावसुसे नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धनसे सुकेतु, सुकेतुसे देवरातकी उत्पत्ति हुई। देवरातका पुत्र बृहदुक्थ था। बृहदुक्थके महावीर्य, महावीर्यके सुधृति, सुधृतिके धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके हर्यश्व हर्यश्वके मरु, मरुके प्रतीन्धक हुआ। प्रतीन्धकसे कृतिरथ ओर कृतिरथके देवमीढ नामक पुत्र हुआ। दवमीढसे विबुध, विबुधसे महाधृति, महाधृतिसे कीर्तिरात तथा कीर्तिरातसे महारोमा नामक पुत्र हुआ।

महारामाके स्वर्णरोमा हुए। स्वर्णरोमाके ह्स्वरोमा नामका पुत्र था। ह्स्वरोमाके सीरध्वज हुआ। उसके सीता नामकी एक पुत्री हुई। सीरध्वजके कुशध्वज नामका एक भाई भी था। सीताके अतिरिक्त सीरध्वजके भानुमान् नामका एक पुत्र भी हुआ। उस भानुमान्से शतद्युम्न, शतद्युम्नसे शुचि नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। शुचिके ऊर्ज नामक पुत्र था। उस ऊर्जसे सनद्वाज उत्पन्न हुआ। सनद्वाजसे कुलिने जन्म लिया। उस कुलिसे अनञ्जन नामक पुत्र हुआ। अनञ्जनसे कुलजित्की उत्पत्ति हुई। उसके भी आधिनेमिक नामका पुत्र था। उसका पुत्र श्रुतायु हुआ और उस श्रुतायुसे सुपार्श्व नामक पुत्रने जन्म ग्रहण किया। सुपार्श्वसे सृञ्जय, सृञ्जयसे क्षेमारि, क्षेमारिसे अनेना और उस अनेनाका पुत्र रामरथ माना गया है।

रामरथका पुत्र सत्यरथ, सत्यरथका पुत्र उपगुरु, उपगुरुका उपगुप्त तथा उपगुप्तका पुत्र स्वागत था। स्वागतसे स्ववरकी उत्पत्ति हुई। सुवर्चा उसीका पुत्र था। सुवर्चासे सुपार्श्व और सुपार्श्वसे सुश्रुत, सुश्रुतसे जयकी उत्पत्ति हुई। जयसे विजय, विजयसे ऋत, ऋतसे सुनय, सुनयसे वीतहव्य, वीतहव्यसे धृतिकी उत्पत्ति मानी गयी है। धृतिके बहुलाश्व और बहुलाश्वके कृति नामक पुत्र था। उस कृतिके जनक हुए। जनकके दा वश कहे गये हैं, जिन्हाने योगमार्गका अनुसरण किया था। (अध्याय १३८)

चन्द्रवशवर्णन

श्रीहरिने कहा—ह रुद्र! सूर्यके वशका वर्णन तो मैंने कर दिया। अब मुझसे चन्द्रवशका वर्णन आप सुन।

नारायण (विष्णु)-से ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। ब्रह्मासे अत्रिकी उत्पत्ति हुई। अत्रिसे सोम हुए। उनकी पत्नी तारा थी जो पहले बृहस्पतिकी भी प्रियतमा थी। तारान चन्द्र (सोम)-स बुधको उत्पन्न किया। उसी बुधका पुत्र पुरूरवा हुआ। बुधपुत्र पुरूरवासे उर्वशीके छ पुत्र हुए, जिनक नाम श्रुतात्मक विश्वावसु, शतायु, आयु, धीमान् और अमावसु थे।

अमावसुक भीम भीमके काञ्चन काञ्चनस सुहात्र ओर सुहोत्रक जह्नु हुए। जह्नुसे सुमन्तु, सुमन्तुसे उपजापक हुआ। उसका पुत्र बलाकाश्व था। बलाकाश्वसे कुश कुशसे कुशाश्व कुशनाभ अमूर्त्तरय और वसु नामक चार पुत्र हुए। कुशाश्वसे गाधिका जन्म हुआ। विश्वामित्र उसीके पुत्र थे। गाधिकी सत्यवती नामकी एक कन्या थी। उसको उन्होने ब्राह्मण ऋचीकको सौंप दिया। ऋचीकके जमदग्नि नामक पुत्र हुआ। जमदग्निके परशुराम हुए। विश्वामित्रसे देवरात तथा मधुच्छन्दा आदि अनेक पुत्रोका जन्म हुआ।

बुधके पुत्र आयुसे नहुपकी उत्पत्ति हुई। नहुषके अनेना, राजि रम्भक तथा क्षत्रवृद्ध नामक चार पुत्र हुए। क्षत्रवृद्धका सुहोत्र नामक पुत्र राजा हुआ। सुहोत्रके काश्य, काश और गृत्समद नामक तीन पुत्र हुए। गृत्समदसे शौनक तथा काश्यसे दीर्घतमा हुआ। दीर्घतमासे वैद्य धन्वन्तरिका जन्म हुआ। कतुमान् उन्हींका पुत्र था। केतुमान्से भामरथ भीमरथसे दिवोदास दिवोदाससे प्रतर्दन हुआ, जो शत्रुजित् नामसे विख्यात हुआ।

ऋतध्वज उसी शत्रुजित्का पुत्र था। ऋतध्वजसे

अलर्क, अलर्कसे सन्नति, सन्नतिसे सुनीत, सुनीतसे सत्यकेतु, सत्यकेतुसे विभु नामक पुत्र हुआ। विभुसे सुविभु, सुविभुसे सुकुमार, सुकुमारसे धृष्टकेतुकी उत्पत्ति हुई। उस धृष्टकेतुका पुत्र वीतिहोत्र था। वीतिहोत्रके भर्ग और भर्गके भूमिक नामका पुत्र हुआ। ये सभी विष्णुधर्मपरायण राजा थे।

नहुषपुत्र राजि या रजिके पाँच सौ पुत्र थे जिनका संहार इन्द्रने किया था। नहुषके पुत्र क्षत्रवृद्धसे प्रतिक्षत्र हुए। उसका पुत्र संजय था। संजयके भी विजय हुआ। विजयका पुत्र कृत था। कृतके वृषधन, वृषधनसे सहदेव, सहदेवसे अदीन और अदीनके जयत्सेन हुआ। जयत्सेनसे संकृति और संकृतिसे क्षत्रधर्माकी उत्पत्ति हुई।

नहुषके क्रमशः यति, ययाति, संयाति, अयाति तथा विकृति नामक अन्य पाँच पुत्र थे। ययातिसे देवयानीने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। राजा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने ययातिसे द्रुह्यु, अनु और पूरु नामक तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया।

यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टुमना और रघु नामक तीन पुत्र थे। सहस्रजित्से शतजित्, शतजित्से हय तथा हैहय नामक दो पुत्र हुए। हयसे अनरण्य तथा हैहयसे धर्म हुआ। धर्मका पुत्र धर्मनेत्र हुआ। उस धर्मनेत्रका पुत्र कुन्ति था। कुन्तिसे साहंजि हुआ। साहंजिसे महिष्मान्, महिष्मान्से भद्रश्रेण्य, भद्रश्रेण्यसे दुर्दमकी उत्पत्ति हुई। दुर्दमसे धनक, कृतवीर्य, जानकि, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा नामक छः बलवान् पुत्र हुए। कृतवीर्यसे अर्जुन तथा अर्जुनसे शूरसेन नामक पुत्र हुआ। उस पुत्रके अतिरिक्त कृतवीर्यके जयध्वज, मधु, शूर और वृषण नामक चार पुत्र हुए। शूरसेनसहित ये पाँचों पुत्र बड़े ही सुव्रती थे। जयध्वजसे तालजंघ, तालजंघसे भरत हुआ। कृतवीर्य वृषणका पुत्र मधु था। मधुसे वृष्णि हुआ, जिससे वृष्णिवंशियोंकी उत्पत्ति हुई।

क्रोष्टुके विजज्ञिवान् हुआ। उस विजज्ञिवान्का पुत्र आहि था। आहिसे उशंकु हुआ। उसका पुत्र चित्ररथ था। चित्ररथसे शशबिन्दु हुआ जिसके एक लाख पत्नियाँ तथा पृथुकीर्ति, पृथुजय पृथुदान, पृथुश्रवा आदि श्रेष्ठ दस लाख पुत्र थे। पृथुश्रवासे तम, तमसे उशना हुआ। उसका पुत्र शितगु था। तत्पश्चात् उसके श्रीरुक्मकवच हुआ। श्रीरुक्मकवचसे रुक्म, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित और हरि—ये चार पुत्र हुए। ज्यामघसे विदर्भका जन्म हुआ।

विदर्भकी शैब्या नामकी एक पत्नी थी, उससे विदर्भने क्रथ, कौशिक तथा रोमपाद नामक तीन पुत्रोंको जन्म दिया। रोमपादसे बभ्रु और बभ्रुसे धृति हुआ।

कौशिकके ऋचि नामक पुत्र था। उसीसे चेदि नामका राजा हुआ। इसका पुत्र कुन्ति था। कुन्तिसे वृष्णि नामक पुत्र हुआ। वृष्णिसे निवृत्ति, निवृत्तिसे दशार्ह, दशार्हसे व्योम और व्योमसे जीमूत नामका पुत्र हुआ। जीमूतसे विकृतिका जन्म हुआ। उस विकृतिका पुत्र भीमरथ था। भीमरथसे मधुरथ और मधुरथसे शकुनि उत्पन्न हुआ। शकुनिका पुत्र करम्भि था। उस करम्भिका पुत्र देवमान् माना जाता है। देवमान् या देवनतसे देवक्षत्र तथा देवक्षत्रसे मधु नामक पुत्र हुआ। मधुसे कुरुवंश, कुरुवंशसे अनु, अनुसे पुरुहोत्र, पुरुहोत्रसे अंशु, अंशुसे सत्त्वश्रुत और उससे सात्वत नामका राजा हुआ।

सात्वतके भजिन्, भजमान्, अन्धक, महाभोज, वृष्णि, दिव्यावन्य तथा देवावृध नामक सात पुत्र हुए। भजमान्से निमि, वृष्णि, अयुताजित्, शतजित्, सहस्राजित्, बभ्रु, देव और बृहस्पति नामके पुत्र हुए। महाभोजसे भोज और उस वृष्णिसे सुमित्र नामक पुत्र हुआ। सुमित्रसे स्वधाजित्, अनमित्र तथा अशिनि हुए। अनमित्रका पुत्र निघ्न और निघ्नका पुत्र सत्राजित् हुआ। अनमित्रसे प्रसेन तथा शिबि नामक दो अन्य पुत्र भी हुए थे। शिबिसे सत्यक, सत्यकसे सात्यकि हुआ। सात्यकिके संजय और उस संजयके कुलि हुए। उस कुलिका पुत्र युगन्धर था। इन सभीको शिबिवंशी शैबेय कहा गया है।

अनमित्रके ही वंशमें वृष्णि, श्वफल्क तथा चित्रक नामक अन्य तीन पुत्र हुए थे। श्वफल्कने गान्दिनीके गर्भसे अक्रूरको जन्म दिया, जो परम वैष्णव थे। अक्रूरसे उपमद्गु हुआ, जिसका पुत्र देवद्योत था। उपमद्गुके अतिरिक्त अक्रूरके देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र माने गये हैं।

अनमित्र-पुत्र चित्रकके पृथु तथा विपृथु नामक दो पुत्र थे। सात्वतनन्दन अन्धकका पुत्र शुचि माना जाता है। भजमानके कुकुर और कम्बलबर्हिष दो पुत्र हुए। कुकुरसे

धृष्टका जन्म हुआ। उसका पुत्र कापोतरोमक था। उस कापोतरोमकका विलोमा और विलोमासे तुम्बुरुका जन्म हुआ। तुम्बुरुसे दुन्दुभि तथा दुन्दुभिका पुनर्वसु माना जाता है। उस पुनर्वसुका पुत्र आहुक था। आहुकके एक पुत्री हुई, जिसका नाम आहुकी था। आहुकके दो पुत्र हुए जिनका नाम देवक और उग्रसेन था। देवकसे देवकीका जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त देवकके वृकदेवा, उपदेवा, सहदेवा, सुरक्षिता, श्रीदेवी और शान्तिदेवी नामकी छः कन्याएँ और भी थीं। इन सातों कन्याओंका विवाह वसुदेवके साथ हुआ था। सहदेवाके देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र थे।

आहुकपुत्र उग्रसेनके कंस, सुनामा तथा वट आदि नामक अनेक पुत्र हुए। अन्धकपुत्र भजमान्से विदूरथ नामका पुत्र हुआ था। विदूरथसे शूर और शूरके शमी नामका पुत्र हुआ। शमीसे प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रसे स्वयंभोज, स्वयंभोजसे हृदिक तथा हृदिकसे कृतवर्मा हुए। शूरसे ही देव, शतधनु और देवामीढुषका भी जन्म हुआ था। मारिषाके गर्भसे शूरके वसुदेव आदि अन्य दस पुत्र थे। शूरसे पृथा, श्रुतदेवी, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेव (राजाधिदेवी) नामवाली पाँच पुत्रियाँ भी थीं। शूरने पुत्री पृथाको कुन्तिराजको दे दिया था। कुन्तिराजने शूरसे प्राप्त उस कन्याका विवाह पाण्डुसे कर दिया। पाण्डुकी उस पृथा नामकी पत्नीमें धर्म, वायु और इन्द्रादि देवोंके अंशसे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा पाण्डुकी पत्नी माद्रीमें अश्विनीकुमारके अंशसे नकुल तथा सहदेव नामक पुत्र हुए। विवाहके पूर्व ही पृथासे कर्णका जन्म हुआ था।

शूरकी पुत्री श्रुतदेवीके गर्भसे दन्तवक्त्र हुआ, जो अत्यन्त वीर योद्धा था। श्रुतकीर्ति कैकयराजको ब्याही गयी थी। कैकयराजसे उसके सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र हुए। राजाधिदेवीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनका नाम विन्दु और अनुविन्दु था। चेदिराज दमघोषको श्रुतश्रवा ब्याही थी। उससे शिशुपालका जन्म हुआ।

वसुदेवके पौरव, रोहिणी, मदिरा, देवकी, भद्रा आदि जो अन्य स्त्रियाँ हैं, उनमें रोहिणीके गर्भसे बलभद्र हुए। बलभद्रकी पत्नी रेवतीके गर्भसे सारण और शठ आदिका जन्म हुआ। देवकीके गर्भसे पहले छः पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम कीर्तिमान्, सुषेण, उदार्य, भद्रसेन, ऋजुदास और भद्रदेव हैं। कंसने इन सभी पुत्रोंको मार डाला था। देवकीके सातवें पुत्रके रूपमें बलराम और आठवें कृष्ण थे। कृष्णकी सोलह हजार रानियाँ थीं। रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, चारुहासिनी तथा जाम्बवती आदि आठ प्रधान पत्नियाँ थीं। इनसे उनके बहुत-से पुत्र हुए।

प्रद्युम्न, चारुदेष्ण तथा साम्ब कृष्णके प्रधान पुत्र हैं। प्रद्युम्नकी पत्नी ककुद्मिनीके गर्भसे महापराक्रमशाली अनिरुद्धका जन्म हुआ। अनिरुद्धके सुभद्रा नामक पत्नीके गर्भसे वज्र नामके राजा हुए। उनका पुत्र प्रतिबाहु था। प्रतिबाहुका पुत्र चारु हुआ।

ययाति-पुत्र तुर्वसुके वंशमें वह्नि नामक पुत्रका जन्म हुआ। वह्निसे भर्ग हुआ। भर्गसे भानु, भानुसे करन्धम तथा करन्धमसे मरुत्की उत्पत्ति हुई।

हे रुद्र! अब मुझसे द्रुह्युवंशका वर्णन सुनें—

ययातिपुत्र द्रुह्युका पुत्र सेतु, सेतुका पुत्र आरद्ध था। आरद्धके गान्धार, गान्धारके धर्म, धर्मके घृत, घृतके दुर्गम, दुर्गमके प्रचेता हुए।

अब आप अनुवंशको सुनें—अनुका पुत्र सभानर हुआ। सभानरका कालञ्जय, कालञ्जयका सृञ्जय, सृञ्जयका पुरञ्जय, पुरञ्जयका जनमेजय, जनमेजयका पुत्र महाशाल था। इसी महात्मा महाशालका पुत्र उशीनर माना गया है। उशीनरसे राजा शिवि उत्पन्न हुए। शिविके पुत्र वृषदर्भ हुए। वृषदर्भसे महामनाज और महामनाजसे तितिक्षु और तितिक्षुसे रुषद्रथका जन्म हुआ। रुषद्रथसे हेम तथा हेमसे सुतप हुए। सुतपसे बलि और बलिसे अंग, बंग, कलिंग, आन्ध्र तथा पौण्ड्र नामके पुत्र हुए। अंगसे अनपान, अनपानसे दिविरथ, दिविरथसे धर्मरथ हुआ। धर्मरथसे रामपाद तथा रोमपादसे चतुरंग, चतुरंगसे पृथुलाक्ष, पृथुलाक्षसे चम्प, चम्पसे हर्यङ्ग, हर्यङ्गसे भद्ररथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

भद्ररथका पुत्र बृहत्कर्मा था। उसके बृहद्भानु नामक पुत्र हुआ। बृहद्भानुका पुत्र बृहद्मना और बृहद्मनाका पुत्र जयद्रथ था। जयद्रथसे विजय और विजयसे धृति हुआ।

धृतिका पुत्र धृतव्रत था। धृतव्रतसे सत्यधर्मा हुआ। सत्यधर्माका पुत्र अधिरथ था। अधिरथके कर्ण और कर्णके वृषसेन नामक पुत्र हुआ।

हरिने पुनः कहा—हे रुद्र! इसके बाद आप पुरुवंशका वर्णन सुनें।

पुरुका पुत्र जनमेजय, जनमेजयका पुत्र नमस्यु था। नमस्युका अभय तथा अभयका सुद्यु हुआ। सुद्युके बहुगति नामक पुत्रका जन्म हुआ। उसका पुत्र सजाति था। सजातिके वत्सजाति और उसके रौद्राश्व हुआ। रौद्राश्वके ऋतेयु, स्थण्डिलेयु, कक्षेयु, कृतेयु, जलेयु और सन्ततेयु नामक श्रेष्ठ पुत्र हुए।

ऋतेयुके रतिनार नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र प्रतिरथ था। प्रतिरथका मेधातिथि, मेधातिथिका ऐनिल नामक पुत्र माना जाता है। ऐनिलका पुत्र दुष्यन्त था। शकुन्तलाके गर्भसे दुष्यन्तके भरत नामक पुत्र हुआ। भरतसे वितथ, वितथसे मन्यु, मन्युसे नरका जन्म माना गया है। नरके सकृति और सकृतिके गर्ग हुआ। गर्गसे अमन्यु, अमन्युसे शिनि नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई।

मन्युपुत्र महावीरसे उरुक्षय, उरुक्षयसे त्र्य्यारुणि त्र्य्यारुणिसे व्यूहक्षत्र व्यूहक्षत्रसे सुहोत्र, सुहोत्रसे हस्ती, अजमीढ तथा द्विमीढ नामक तीन पुत्र हुए। हस्तीका पुत्र पुरुमीढ और अजमीढका कण्व था। कण्वके मेधातिथि हुए। इन्हींसे काण्वायन नामक गोत्र ब्राह्मणोंके हुए और वे काण्वायन कहलाये।

अजमीढसे बृहदिषु नामक एक अन्य पुत्र भी हुआ था। उस पुत्रके बृहद्धनु हुआ। बृहद्धनुके बृहत्कर्मा तथा बृहत्कर्माके जयद्रथ नामका पुत्र था। जयद्रथसे विश्वजित् और विश्वजित्से सेनजित्, सेनजित्से रुचिराश्व रुचिराश्वसे पृथुसेन, पृथुसेनसे पार तथा पारसे द्वीप और नृप हुए। नृपका पुत्र सृमर हुआ। पृथुसेनका एक अन्य पुत्र था जिसका नाम सुकृति कहा गया है। सुकृतिके विभ्राज और विभ्राजके अश्वह नामक पुत्र हुआ। कृतिके गर्भसे उत्पन्न उस अश्वहके ब्रह्मदत्त नामका पुत्र था। उस पुत्रसे विष्वक्सेनने जन्म लिया।

द्विमीढके यवीनर, यवीनरके धृतिमान्, धृतिमान्के सत्यधृति नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र दृढनेमि था। दृढनेमिसे सुपार्श्व और सुपार्श्वसे सन्नतिका जन्म हुआ। सन्नतिका पुत्र कृत तथा कृतका पुत्र उग्रायुध था। उग्रायुधसे क्षेम्य नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र सुधीर था। सुधीरसे पुरञ्जय, पुरञ्जयसे विदूरथ नामके पुत्रने जन्म लिया।

अजमीढकी नलिनी नामकी एक पत्नी थी। उसके गर्भसे राजा नीलकी उत्पत्ति हुई। नीलसे शान्ति नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र सुशान्ति था। सुशान्तिके पुरु हुआ। पुरुका पुत्र अर्क, अर्कका हर्यश्व, हर्यश्वका मुकुल और मुकुलके यवीर, बृहद्भानु, कम्पिल्ल, सृञ्जय एवं शरद्वान् नामक पाँच पुत्र हुए। इनमें शरद्वान् परम वैष्णव था। इस शरद्वान्के अहल्या नामकी पत्नीसे दिवोदास नामक पुत्र हुआ। उसके शतानन्द हुए। शतानन्दके सत्यधृति हुआ। सत्यधृतिके उर्वशीसे कृप तथा कृपी नामक दो सतानें हुईं। कृपीका विवाह द्रोणाचार्यसे हुआ था। उसी कृपीसे द्रोणाचार्यके अश्वत्थामा नामक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए।

दिवोदासके मित्रयु और मित्रयुके च्यवन नामका पुत्र था। च्यवनसे सुदास, सुदाससे सौदास नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र सहदेव था। सहदेवसे सोमक, सोमकसे जन्तु (जह्नु) और पृषत नामक महान् पुत्र उत्पन्न हुआ। पृषतसे द्रुपद, द्रुपदसे धृष्टद्युम्नकी उत्पत्ति हुई। धृष्टद्युम्नसे धृष्टकेतु हुआ।

अजमीढके एक ऋक्ष नामका पुत्र था। उस ऋक्षसे संवरण, संवरणसे कुरुका जन्म हुआ। कुरुके सुधनु, परीक्षित् और जह्नु नामके तीन पुत्र थे। सुधनुसे सुहोत्र तथा सुहोत्रसे च्यवन च्यवनसे कृतक तथा उपरिचर वसु हुए। वसुके बृहद्रथ प्रत्यग्र और सत्य आदि अनेक पुत्र थे। बृहद्रथसे कुशाग्र, कुशाग्रसे ऋषभ, ऋषभसे पुष्पवान् तथा उस पुष्पवान्से सत्यहित नामका राजा हुआ। सत्यहितसे सुधन्वा, सुधन्वासे जह्नुकी उत्पत्ति हुई।

बृहद्रथका एक अन्य पुत्र था जिसका नाम जरासन्ध था। उस जरासन्धसे सहदेव, सहदेवसे सोमापि, सोमापिसे श्रुतवान्, भीमसेन, उग्रसेन श्रुतसेन तथा जनमेजय हुए। जह्नुके सुरथ नामक पुत्र था। सुरथके विदूरथ विदूरथके सार्वभौम, सार्वभौमके जयसेन तथा उस जयसेनसे

अवधीत हुआ। उस अवधीतसे अयुतायु, अयुतायुसे अक्रोधन, अक्रोधनसे अतिथि, अतिथिसे ऋक्ष, ऋक्षसे भीमसेन, भीमसेनसे दिलीप, दिलीपसे प्रतीप, प्रतीपसे देवापि, शन्तनु और बाह्लीक नामके राजा तीन सहोदर भ्राता हुए।

बाह्लीकसे सोमदत्त हुआ। सोमदत्तसे भूरि और भूरिसे भूरिश्रवाकी उत्पत्ति हुई। इस भूरिश्रवाका पुत्र शल था। गङ्गाके गर्भसे शन्तनुके महाप्रतापी धर्मपरायण पुत्र भीष्म हुए। उस शन्तनुकी दूसरी पत्नी सत्यवतीसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक अन्य दो पुत्राका जन्म हुआ। विचित्रवीर्यकी दो पत्नियाँ थीं, जिनका अम्बिका तथा अम्बालिका नाम था। व्यासजीने अम्बिकासे धृतराष्ट्रको, अम्बालिकासे पाण्डुको तथा उनकी दासीसे विदुरजीको पैदा किया।

धृतराष्ट्रने गान्धारीसे दुर्योधनादि सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया। पाण्डुसे युधिष्ठिर आदि पाँच पुत्र हुए। द्रौपदीसे क्रमश प्रतिविन्ध्य, श्रुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतकर्मा नामक पाँच पुत्रोंका जन्म हुआ। यौधेयी, हिडिम्बा, कौशी, सुभद्रिका (सुभद्रा), विजया तथा रेणुमती नामकी पत्नियाँ भी थीं। इनके गर्भसे देवक, घटोत्कच, अभिमन्यु, सर्वग, सुहोत्र और निरमित्र नामक पुत्र हुए। अभिमन्युके परीक्षित् तथा परीक्षित्के जनमेजय नामका पुत्र हुआ। (अध्याय १३९-१४०)

भविष्यके राजवशका वर्णन

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र। परीक्षित्के पुत्र जनमेजयके पश्चात् इस चन्द्रवशमे शतानीक, अश्वमेधदत्त, अधिसोमक, कृष्ण, अनिरुद्ध, उष्ण, चित्ररथ, शुचिद्रथ, वृष्णिमान्, सुषेण, सुनीथक, नृचक्षु, मुखाबाण, मेधावी, नृपञ्जय, पारिप्लव सुनय, मेधावी, नृपञ्जय, बृहद्रथ, हरि, तिग्म, शतानीक सुदानक, उदान, अह्निनर, दण्डपाणि, निमित्तक, क्षेमक तथा शूद्रक नामक राजा हुए। ये सभी यथाक्रम अपने पूर्ववर्ती राजाके पुत्र थे।

हे रुद्र। अब मैं इक्ष्वाकुवशीय बृहद्बलके उस वशका वर्णन करता हूँ, जिसे बृहद्बलवशीय कहा गया है। यथा—बृहद्बलसे उरुक्षय उसके बाद वत्सव्यूह हुआ। वत्सव्यूहसे सूर्य और उसके पुत्र सहदेव हुए। इसके बाद बृहदश्व, भानुरथ प्रतीच्य, प्रतीतक मनुदेव सुनक्षत्र, किन्नर और अन्तरिक्षक हुए। तत्पश्चात् सुवर्ण कृतजित् और धार्मिक वृहद्भ्राज हुए। तदनन्तर कृतजय धनजय सजय शाक्य शुद्धोदन बाहुल सेनजित्, क्षुद्रक समित्र कुडव और सुमित्र हुए।

अब मगधवशीय राजाओका सुन—

मगध वशमे जरासन्ध सहदेव सोमापि श्रुतश्रवा अयुतायु, निरमित्र सुक्षत्र वहुकर्मक श्रुतञ्जय सेनजित्, भूरि, शुचि, क्षेम्य, सुव्रत, धर्म, श्मश्रुल तथा दृढसेन आदि राजा हुए।

इसी प्रकार आगे सुमति, सुबल नीत, सत्यजित्, विश्वजित् तथा इपुजय—ये सभी बृहद्रथवशमे उत्पन्न होनेसे बार्हद्रथ नामसे जाने जाते हैं। इसके बाद जितने भी राजा हागे, वे सभी अधार्मिक और शूद्र होगे।

स्वर्गादि समस्त लोकोके रचयिता साक्षात् अव्यय भगवान् नारायण हैं। वे ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्ता हैं। नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक भेदसे प्रलय तीन प्रकारका होता है। प्रलयकाल आनेपर पृथिवी जलमे, जल तेजमे, तेज वायुमे, वायु आकाशमे, आकाश अहकारमे, अहकार बुद्धिमे, बुद्धि जीवमे और वह जीवात्मा अव्यक्त परब्रह्म परमात्मामे विलीन हो जाता है। आत्मा ही परमेश्वर है, वही विष्णु है और वही नारायण है। वही देव एकमात्र नित्य है अविनाशी है, उसके अतिरिक्त स्वर्गादि समस्त ससार नाशवान् है। इसी नश्वरताके कारण ये सभी राजा मृत्युको प्राप्त हुए हैं। अत मनुष्यको पापकर्म छोडकर अविनाशी धर्माचरणमे अनुरक्त रहना चाहिये जिससे निष्पाप होकर वह भगवान् हरिको प्राप्त कर सके। (अध्याय १४१)

भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंकी कथा तथा पतिव्रता-माहात्म्यमे ब्राह्मणपत्नी, अनसूया एव भगवती सीताके पातिव्रतका आख्यान

ब्रह्माजीने कहा—वेद आदि धर्मोंकी रक्षाके लिये और आसुरी धर्मके विनाशके लिये सर्वशक्तिमान् भगवान् हरिने अवतार धारण किया और इन सूर्य-चन्द्रादिके वशोका पालन-पोषण किया। ये अजन्मा हरि ही मत्स्य, कूर्म आदि रूपामे अवतरित होते हैं।

मत्स्यका अवतार लेकर भगवान् विष्णुने युद्धकण्टक हयग्रीव नामक दैत्यका विनाश किया और वेदाको पुन पृथिवीपर लाकर मनु आदिकी रक्षा की। समुद्र-मन्थनके समय देवोका हितसाधन करनेके लिये कूर्म (कच्छप)-का अवतार ग्रहण करके उन्हाने मन्दराचलको धारण किया। क्षीरसागरके मन्थनके समय अमृतसे परिपूर्ण कमण्डलुको लिये हुए धन्वन्तरि वैद्यके रूपमे समुद्रसे वे ही प्रकट हुए। उन्हींके द्वारा सुश्रुतको अष्टाङ्ग आयुर्वेदकी शिक्षा दी गयी थी। उन श्रीहरिने स्त्री (मोहिनी)-का रूप धारण करक देवोको अमृतका पान कराया।

वराहका अवतार लेकर उन्होने हिरण्याक्षको मारा। उसके अधिकारसे पृथिवीको छीनकर पुन स्थापित किया और देवताआकी रक्षा की। तदनन्तर नरसिहरूपम इन्होने हिरण्यकशिपु तथा अन्य दैत्याका विनाशकर वैदिकधर्मका पालन किया। तत्पश्चात् इस सम्पूर्ण ससारके स्वामी उन विष्णुने जमदग्निसे परशुरामका अवतार लेकर इक्कीस बार पृथिवीको क्षत्रियजातिसे रहित किया था।[१] कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य सहस्रार्जुनको युद्धमे मार करके इन्हीं भगवान् परशुरामने यज्ञानुष्ठानमे उसके सम्पूर्ण राज्यका आधिपत्य महर्षि कश्यपको सौंप दिया और स्वय महाबाहु (परशुराम) महेन्द्रगिरिपर जाकर तपमें स्थित हो गये।

इसके बाद दुष्टोका मर्दन करनेवाले भगवान् विष्णु राम आदि चार स्वरूपामे राजा दशरथके पुत्रके रूपमे अवतीर्ण हुए। जिनके नाम राम भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं। रामकी पत्नी जानकी हुईं। पिताके वचनका सत्य करनेके लिये तथा माता (कैकेयी)-के हितकी रक्षा करते हुए रामने अयोध्याका राजवैभव त्यागकर शृगवेरपुर, चित्रकूट तथा दण्डकारण्यमे निवास किया। तदनन्तर वहींपर शूर्पणखाकी नाक कटवाकर उसके भाई खर तथा दूषण नामक दो राक्षसाको मारा। तत्पश्चात् जानकीका अपहरण करनेवाले दैत्याधिपति रावणका वधकर उसके छोटे भाई विभीषणको लङ्कापुरीम राक्षसाके राजाके रूपम अभिषिक्त किया। उसके बाद अपने मुख्य सहयोगी सुग्रीव तथा हनुमानादिके साथ पुष्पक विमानपर आरूढ होकर पतिपरायणा सीता एव लक्ष्मणके साथ वे अपनी पुरी अयोध्या आ गये। यहाँ उन्हाने राज्यसिहासन प्राप्तकर देवताआ, ऋषियो, ब्राह्मणा तथा प्रजाका पालन किया।

उन्होने धर्मकी भलीभाँति रक्षा की। अश्वमधादि अनेक यज्ञोका अनुष्ठान किया। भगवती सीताने राजा रामके साथ सुखपूर्वक रमण किया। यद्यपि सीता रावणके घरम रहीं, फिर भी उन्होने रावणको अगीकार नहीं किया और सर्वदा मन, वचन तथा कर्मसे राममे ही अनुरक्त रहीं। वे सीता ता अनसूयाके समान पतिव्रता थीं।

ब्रह्माजीने पुन कहा—अब मैं पतिव्रता स्त्रीका माहात्म्य कह रहा हूँ, आप सुने।

पुराने समयम प्रतिष्ठानपुरमे कौशिक नामका एक कुष्ठरोगी ब्राह्मण रहता था। उस ब्राह्मणकी पत्नी अपने पति-की देवताके समान ही सेवा-शुश्रूषा करती थी। पतिके द्वारा तिरस्कार मिलनेपर भी वह पतिव्रता पतिको देवता-रूप ही मानती थी। एक बार पतिके द्वारा कहे जानेपर वश्याको शुल्क दनेके लिये अधिकतम धन साथ लेकर वह उन्ह कन्धेपर बैठाकर वेश्याके घर पहुँचाने निकल पडी।

मार्गम माण्डव्य ऋषि थे। यद्यपि वे ऋषि परम तपस्वी महात्मा थे, तथापि उन्ह चोर समझकर राजदण्डके रूपमे लोहेके लम्बे शङ्कुपर बिठा दिया गया था। अत शरीरके नीचके छिद्रसे ऊपर सिरके छिद्र ब्रह्मरन्ध्रतक शरीरके भीतर-ही-भीतर लौह शङ्कुके प्रवेशके कारण माण्डव्य ऋषिका असह्य तीव्र वेदनासे ग्रस्त होना स्वाभाविक था। इसीलिय माण्डव्य ऋषि वेदनाके अनुभवसे स्वयको बचानेकी दृष्टिसे समाधिस्थ हो गये थे।

कुष्ठ-व्याधियुक्त ब्राह्मण कोशिकको पतिव्रता पत्नी

१ यहाँ क्षत्रिय जातिसे रहित करनेका तात्पर्य इतना ही है कि श्रीपरशुरामने क्षत्रियाक दर्पका मर्दन किया और उनको कर्तव्यविमुखताको नष्ट किया।

रातमे ही अपने पतिकी इच्छाके अनुसार वेश्याके यहाँ जा रही थी, इसलिये अन्धकार रहनेके कारण अपनी पत्नीके कन्धेपर बैठे कौशिकने माण्डव्य ऋषिको नहीं देखा और अपना पाँव स्वभावत हिलाया-डुलाया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कौशिकके पाँवासे माण्डव्य ऋषि आहत हो गय और उनकी समाधि टूट गयी। समाधि-भग होनसे उन्ह असह्य वेदना होने लगी। इससे माण्डव्य ऋषिका क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। अत क्रोधवश उन्होने शाप देते हुए

कहा—जिसने मेरे ऊपर यह अपना पैर चलाया है, उसकी सूर्योदय होते ही मृत्यु हो जायगी। यह सुनकर उस ब्राह्मण-पत्नीने कहा कि (यदि एसी बात है तो) अब सूर्योदय ही नहीं होगा। इसके बाद सूर्योदय न होनेसे बहुत वर्षोतक निरन्तर रात्रि ही छायी रही। जिससे देवता भी भयभीत हो गये।

देवताओंने ब्रह्माकी शरण ली। ब्रह्मान उन दवासे कहा कि पतिव्रताके इस तेजसे तो तपस्वियाके तजका भी ह्रास हो रहा हे। पातिव्रत-धर्मके माहात्म्यसे सूर्यदेव उदित नहीं हो रहे हैं। उनके उदय न होनेसे मानवो और आप सभीको यह हानि उठानी पड रही है। अत सूर्योदयकी कामनासे आप सब अत्रिमुनिकी धर्म-पत्नी तपस्विना पतिपरायणा अनसूयाको प्रसन्न करे। वे ही सूर्योदय कराक पतिव्रता ब्राह्मणीके पतिको भी जीवित कर सकती हैं। ब्रह्माजीके कथनानुसार अनसूयाकी शरणमे जाकर देवताओने उनकी प्रार्थना की। देवताओकी प्रार्थनासे अनसूया प्रसन्न हो गयीं। अपने तप प्रभावसे सूर्योदय कराके उन्होने ब्राह्मणीके पति कौशिकको जीवित कर दिया। इन महातपस्विनी पतिव्रताकी अपेक्षा सीता और अधिक पतिपरायणा थीं। (अध्याय १४२)

रामचरितवर्णन (रामायणकी कथा)

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं रामायणका वर्णन करता हूँ जिसके श्रवणमात्रसे समस्त पापोका विनाश हो जाता है।

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मासे मरीचि मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य सूर्यमे वैवस्वत मनु हुए। वैवस्वत मनुसे इक्ष्वाकु हुए। इन्हीं इक्ष्वाकुके वशमे रघुका जन्म हुआ। रघुके पुत्र अजसे दशरथ नामक महाप्रतापी राजाने जन्म लिया। उनके महान् बल और पराक्रमवाले चार पुत्र हुए। कौसल्यासे राम कैकेयीसे भरत और सुमित्रासे लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नका जन्म हुआ।

माता-पिताके भक्त श्रीरामने महामुनि विश्वामित्रसे अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षा प्राप्तकर ताडका नामक यक्षिणीका विनाश किया। विश्वामित्रके यज्ञमे बलशाली रामके द्वारा ही सुबाहु नामक राक्षस मारा गया। जनकराजके यज्ञस्थलमे पहुँचकर उन्होने जानकीका पाणिग्रहण किया। वीर लक्ष्मणने ऊर्मिला, भरतने कुशध्वजकी पुत्री माण्डवी तथा शत्रुघ्नने कीर्तिमालाका पाणिग्रहण किया ये महाराज कुशध्वजकी पुत्री थीं।

विवाहके पश्चात् अयोध्यामे जाकर चारो भाई पिताके साथ रहने लगे। भरत और शत्रुघ्न अपने मामा युधाजित्के यहाँ चले गये। उन दोनोके ननिहाल जानेके बाद नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथ रामको राज्य देनेके लिये उद्यत हुए। उसी समय कैकेयीने रामको चौदह वर्ष वनमे रहनेका दशरथजीसे वर माँग लिया। अत लक्ष्मण और सीतासहित मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम पिताके हितकी रक्षाके लिये राज्यको तृणवत् त्यागकर शृगवेरपुर चले गये। वहाँपर रथका भी परित्यागकर वे सभी प्रयाग गये और वहाँसे चित्रकूटमे जाकर रहने लगे।

इधर रामके वियोगसे दु खित महाराज दशरथ शरीरका

परित्याग कर स्वर्ग पधार गये। मामाके घरसे आकर भरतने पिताका अन्तिम सस्कार किया। तदनन्तर वे दल-बलके साथ रामके पास पहुँच। उन्होने विनमतापूर्वक अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामसे कहा—'हे महामते। आप अयोध्या लौट चल और वहाँका राज्य कर।' रामने राज्यके प्रति अनिच्छा प्रकट कर दी और भरतको अपनी पादुका दकर राज्यकी रक्षाके लिये वापस अयोध्या भेज दिया। भरत वहाँसे लौटकर रामके प्रतिनिधिरूपम राज्यकार्य देखने लगे। तपस्वी भरतने नन्दिग्रामम ही रहकर राज्यका सचालन किया, वे अयोध्याम नहीं गये।

राम भी चित्रकूट छोडकर अत्रिमुनिके आश्रमम चले आये। तदनन्तर वहाँ उन्होने सुतीक्ष्ण और अगस्त्यमुनिके आश्रममें जाकर उन्हं प्रणाम किया और उसके बाद वे दण्डकारण्य चले गये। वहाँ उन सभीका भक्षण करनेके लिये शूर्पणखा नामकी एक राक्षसी आ धमकी। अत रामचन्द्रने नाक-कान कटवाकर उस राक्षसीको वहाँसे भगा दिया। उसने जाकर खर-दूषण तथा त्रिशिरा नामके राक्षसाको युद्धके लिये प्रेरित किया। चौदह हजार राक्षसाका सेना लेकर उन लोगोने रामपर आक्रमण कर दिया। रामने अपने बाणासे उन राक्षसाको यमपुर भेज दिया। राक्षसी शूर्पणखासे प्रेरित रावण सीताका हरण करनेके लिये वहाँ त्रिदण्डी सन्यासीका वेश धारणकर मृगरूपधारी मारीचका अगुवाईमे आ पहुँचा। मृगका चर्म प्राप्त करनेके लिये सीतासे प्ररित रामने मारीचको मार डाला। मरते समय उसन 'हा सीते। हा लक्ष्मण।' ऐसा कहा।

इसके बाद सीताकी सुरक्षामे लग लक्ष्मण भी सीताके कहनेपर वहाँ जा पहुँचे। लक्ष्मणको देखकर रामने कहा—यह निश्चित ही राक्षसी माया हे। सीताका हरण अवश्य हो गया होगा। इसी बीच बली रावण अवसर पाकर अङ्कमे सीताको लेकर जटायुको क्षत-विक्षतकर लङ्का चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने राक्षसियोकी निगरानीमे सीताका अशोक-वृक्षकी छायाम ठहरा दिया।

रामने आकर पर्णशालाको सूनी देखा। वे अत्यन्त दु खित हो उठे। उसके बाद वे सीताकी खोजम निकल पडे। मार्गमे उन्होने जटायुका अन्तिम सस्कार किया और उसीके कहनेम वे दक्षिण दिशाको ओर चल पड। उस दिशाम आग बढनेपर सुग्रीवक साथ रामकी मित्रता हुई। उन्होन अपन तीक्ष्ण बाणसे सात तालवृक्षाका भेदन किया तथा वालीको मारकर किष्किन्धाम रहनेवाले वानराक राजाक रूपम सुग्रीवका अभिषिक्त किया और स्वय जाकर ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करने लगे।

सुग्रीवने पर्वताकार शरीरवाल उत्साहस भर हुए वानराको सीताकी खोजम पूर्वादि दिशाओम भेजा। वे सभी वानर जो पूर्व, पश्चिम और उत्तरको दिशाआम गय थ, खाली हाथ वापस लौट आय, किंतु जा लोग दक्षिण दिशाम गये थे उन्होन वन पर्वत, द्वीप तथा नदियाक तटाको खोज डाला, पर जानकीका कुछ भी पता न चल सका। अन्तम हताश होकर उन सबने मरनेका निश्चय कर लिया। सम्पातिके वचनस सीताकी जानकारी प्राप्त करके कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने शतयोजन (चौर सौ कोस) विस्तृत समुद्रको लाँघकर लङ्काम अशोकवाटिकाके अन्दर रह रही सीताका दर्शन किया, जिनका तिरस्कार राक्षसियाँ और रावण स्वय करता था। इन सबके द्वारा बराबर यह कहा जा रहा था कि तुम रावणकी पत्नी बन जाओ, किंतु व हृदयम सदैव रामका ही चिन्तन करती थीं।

हनुमान्‌ने (ऐसी दयनीय स्थितिम रह रही) सीताको कौसल्यानन्दन रामके द्वारा दी गयी अगूठी देकर अपना परिचय देते हुए कहा कि 'ह मैथिले। मैं श्रीरामका दूत हूँ। आप अब दु ख न करे। आप मुझे कोई अपना चिह्नविशेष द, जिससे भगवान् श्रीराम आपको समझ सक।' हनुमान्‌का यह वचन सुनकर सीताने अपना चूडामणि उतारकर दे दिया और कहा कि 'हे कपिराज। राम जितना ही शीघ्र हो सके उतना ही शीघ्र मुझको यहाँसे ले चले।' ऐसा आप उनसे कहियेगा। हनुमान्‌ने कहा कि ऐसा ही होगा। तदनन्तर वे उस दिव्य अशोक वनको विध्वस करने लगे। उसे विनष्टकर उन्होने रावणक पुत्र अक्ष तथा अन्य राक्षसोको मार डाला और स्वय मेघनादके पाशमे बन्दी भी बन गये। रावणको देखकर हनुमान्‌ने कहा कि ह रावण। मैं श्रीरामका दूत हनुमान् हूँ। आप रामको सीता लौटा दे। यह सुनकर रावण क्रुद्ध हो उठा। उसन उनकी पूँछम आग लगवा दी।

महाबली हनुमान्‌ने उस जलती हुई पूँछसे लंकाको जला डाला। वे पुनः रामके पास लौट आये और बताया कि मैंने सीता माताको देखा। तदनन्तर हनुमान्‌जीने सीताद्वारा दिया गया चूडामणि उन्हें दे दिया। इसके बाद सुग्रीव, हनुमान्, अंगद तथा लक्ष्मणके साथ राम लङ्कापुरीमें जा पहुँचे। रावणका भाई विभीषण भी रामकी शरणमें आ गया। श्रीरामने उसे लङ्काके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। रामने नलके द्वारा सेतुका निर्माण कराकर समुद्रको पार किया था। (समुद्रके तटपर) सुवेल पर्वतपर उपस्थित होकर उन्होंने लङ्कापुरीको देखा।

तदनन्तर नील, अंगद, नलादि मुख्य वानरों तथा धूम्राक्ष, वीरेन्द्र तथा ऋक्षपति जाम्बवान्, मैन्द, द्विविद आदि मुख्य वीरोंने लङ्कापुरीको नष्ट कर डाला। विशाल शरीरवाले काले-काले पहाड़के समान राक्षसोंको अपनी वानरी सेनाके साथ राम-लक्ष्मणने मार गिराया। विद्युज्जिह्व, धूम्राक्ष, देवान्तक, नरान्तक, महोदर, महापार्श्व, महाबल, अतिकाय, कुम्भ, निकुम्भ, मत्त, मकराक्ष, अकम्पन, प्रहस्त, उन्मत्त, कुम्भकर्ण तथा मेघनादको अस्त्रादिसे राम-लक्ष्मणने काट डाला। तदनन्तर उन महापराक्रमी श्रीरामने बीस भुजाओंके समूहको छिन्न-भिन्न करके रावणको भी धराशायी कर दिया।

उसके बाद अग्निमें प्रविष्ट होकर अपनी शुद्धताको प्रमाणित की हुई सीताके साथ लक्ष्मण एवं वानरोंसे युक्त राम पुष्पक विमानमें बैठकर अपनी श्रेष्ठतम नगरी अयोध्या लौट आये। वहाँपर राज्य-सिंहासन प्राप्तकर उन्होंने प्रजाका पुत्रवत् पालन करते हुए राज्य किया। दस अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान करके रामने गयातीर्थमें पितरोंको विधिवत् पिण्डदान दिया और ब्राह्मणोंको विभिन्न प्रकारका दान देकर कुश और लवको राज्यसिंहासन सौंप दिया।

रामने ग्यारह हजार वर्षतक राज्य किया।[1] शत्रुघ्नने लवण नामक दैत्यका विनाश किया। भरतके द्वारा शैलूष नामक गन्धर्व मारे गये। इसके पश्चात् उन सभीने अगस्त्यादि मुनियोंको प्रणाम करके उनसे राक्षसोंकी उत्पत्तिकी कथा सुनी। तदनन्तर अपने अवतारका प्रयोजन पूर्ण करके भगवान् श्रीराम अयोध्यामें रहनेवाली प्रजाके साथ स्वर्गलोकको चले गये। (अध्याय १४३)

हरिवंशवर्णन (श्रीकृष्णकथा)

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं हरिवंशका वर्णन करूँगा, जो भगवान् कृष्णके माहात्म्यसे परिपूर्ण होनेके कारण श्रेष्ठतम है।

पृथिवीपर धर्म आदिकी रक्षा और अधर्मादिके विनाशके लिये वसुदेव तथा देवकीसे कृष्ण और बलरामका प्रादुर्भाव हुआ। जन्मके कुछ ही दिन बाद कृष्णने पूतनाके स्तनोंको दृढतापूर्वक पीकर उसे मृत्युके पास पहुँचा दिया था। तदनन्तर शकट (छकड़े)-को बालक्रीडामें उलटकर सभीको विस्मित करते हुए इन्होंने यमलार्जुन-उद्धार, कालियनाग-दमन, धेनुकासुर-वध, गोवर्धन-धारण आदि अनेक लीलाएँ कीं और इन्द्रद्वारा पूजित होकर पृथिवीको भारसे विमुक्त किया तथा अर्जुनकी रक्षाके लिये प्रतिज्ञा की।

इनके द्वारा अरिष्टासुर आदि अनेक बलवान् शत्रु मारे गये। इन्होंने केशी नामक दैत्यका वध किया तथा गोपोंको संतुष्ट किया। उसके बाद चाणूर और मुष्टिक नामक मल्ल इनके द्वारा ही पराजित हुए। ऊँचे मंचपर अवस्थित कंसको वहाँसे नीचे पटककर इन्होंने ही मारा था।

श्रीकृष्णकी रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आठ प्रधान पत्नियाँ थीं। इनके अतिरिक्त महात्मा श्रीकृष्णकी सोलह हजार अन्य स्त्रियाँ थीं। उन स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंकी संख्या सैकड़ों-हजारोंमें थी। रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्न उत्पन्न हुए, जिन्होंने शम्बरासुरका वध किया था। इनके पुत्र अनिरुद्ध हुए, जो बाणासुरकी पुत्री उषाके पति थे। अनिरुद्धके विवाहमें कृष्ण और शङ्करका महाभयंकर युद्ध हुआ और इसी युद्धमें हजार भुजाओंवाले बाणासुरकी दो भुजाओंको छोड़कर शेष सभी भुजाएँ कृष्णके द्वारा काट डाली गयीं।

नरकासुरका वध इन्हीं महात्मा श्रीकृष्णने किया था।

---

१. एकादशसहस्राणि रामो राज्यमकारयत्। (ग० पु० १४३।५०)

नन्दनवनसे बलात् पारिजात-वृक्ष सत्यभामाके लिये य ही उखाडकर लाय थे। वल नामक दत्य, शिशुपाल नामक राजा तथा द्विविद नामक बन्दरका वध इन्हींक द्वारा हुआ था।

अनिरुद्धसे वज्र नामका पुत्र हुआ। कृष्णके स्वर्गारोहणके पश्चात् वही इस वशका राजा बना था। सान्दीपनि नामक मुनि कृष्णक गुरु थे। कृष्णने ही गुरु सान्दीपनिका पुत्रप्राप्तिकी अभिलाषाको पूर्ण किया था। मथुराम उग्रसन और देवताओकी रक्षा इन्हाने ही की थी। (अध्याय १४४)

महाभारतकी कथा एव बुद्ध आदि अवतारोकी कथाका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—अब म महाभारतके युद्धकी कथाका वर्णन करूँगा, जा पृथिवीपर वढ हुए अत्याचारक भारका उतारनेके लिये हुआ था, जिसका याजना युधिष्ठिरादि पाण्डवाकी रक्षाके लिय तत्पर कृष्णन स्वय का थी।

भगवान् विष्णुक नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मासे अत्रि अत्रिस साम, सामसे बुध हुए। बुधने इला नामक अपनी पत्नीसे पुरूरवाको उत्पन्न किया। पुरूरवासे आयु, आयुसे ययाति और ययातिके वशम भरत, कुरु तथा शन्तनु हुए। राजा शन्तनुकी पत्नी गङ्गासे भीष्म हुए। भीष्म सर्वगुणसम्पन्न तथा ब्रह्मविद्याक पारङ्गत विद्वान् थे।

शन्तनुकी सत्यवती नामक एक दूसरी पत्नी थी। उस पत्नीके दो पुत्र हुए, जिनका नाम चित्रागद तथा विचित्रवीर्य था। चित्रागद नामवाल गन्धर्वके द्वारा युद्धमे चित्रागद मार डाला गया। विचित्रवीर्यका विवाह काशिराजकी पुत्री अम्बिका और अम्बालिकाक साथ हुआ। विचित्रवीर्य भी नि सतान ही मर गये थे। अत व्याससे उनक दो क्षेत्रज पुत्रो—अम्बिकाके गर्भसे धृतराष्ट्र तथा अम्बालिकाके गर्भसे पाण्डुका जन्म हुआ। उन्हीं व्यासके द्वारा दासीक गर्भसे विदुरका जन्म हुआ। धृतराष्ट्रके गान्धारासे सौ पराक्रमी पुत्र हुए, जिनम दुर्योधन सबस बडा था। पाण्डुपत्नी कुन्ती और माद्रीसे पाँच पुत्राका जन्म हुआ। युधिष्ठिर भीमसन अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—ये पाँचा पुत्र बडे ही बलवान् आर पराक्रमशाली थे।

दैववशात् कौरव और पाण्डवाम वैरभाव उत्पन्न हा गया। उद्धत स्वभाववाल दुर्योधनद्वारा पाण्डवजन बहुत हा सताये गय। लाक्षागृहम उन्ह विश्वासघातसे जलाया गया किंतु वे अपनी बुद्धिमत्तासे वच गय। उसक बाद उन लोगाने एकचक्रा नामक पुरीम जाकर एक ब्राह्मणक घरम शरण ली। वहाँ रहते हुए उन सभीने वक नामक राक्षसका सहार किया। तदनन्तर पाञ्चाल नगरम हो रहे द्रापदीक स्वयवरका जानकर व सभी वहाँ पहुँच। वहाँ अपन पराक्रमका परिचय देकर उन पाण्डवोने द्रौपदीको पत्नीक रूपम प्राप्त किया।

इसक बाद द्रोणाचार्य और भीष्मकी अनुमतिस धृतराष्ट्रने पाण्डवाको अपने पास बुला लिया और आधा राज्य उन्ह द दिया। आधा राज्य प्राप्त करनेके पश्चात् इन्द्रप्रस्थ नामक एक सुन्दर नगरीमे रहकर वे राज्य करने लगे। उन तपस्वी पाण्डवाने वहाँपर एक सभामण्डपका निर्माण करके राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान किया।

तत्पश्चात् मुरारि भगवान् वासुदेवकी अनुमतिसे ही द्वारकापुरीम जाकर अर्जुनने उनकी बहन सुभद्राका पाणिग्रहण किया। उन्ह अग्निदवसे नन्दिघोष नामक दिव्य रथ, तीनो लोकामे प्रसिद्ध गाण्डीव नामका श्रेष्ठतम दिव्य धनुप, अविनाशी बाण तथा अभेद्य कवच प्राप्त हुआ। उसी धनुपसे कृष्णके सहचर वीर अर्जुनने अग्निको खाण्डव-वनम सतुष्ट किया था। दिग्विजयम दश-देशान्तरके राजाआको जीतकर उनस प्राप्त रत्नराशि लाकर उन्हाने अपन नीति-परायण ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरको सौंप दी।

भाइयाक साथ धमराज युधिष्ठिर कर्ण दु शासन आर शकुनिके मतम स्थित पापी दुर्योधनक द्वारा द्यूतक्राडाक मायाजालम जीत लिये गये। उसके बाद बारह वर्षोतक उन्ह वनम महान् कष्ट उठाना पडा। तदनन्तर धौम्य ऋपि तथा अन्य मुनियाक साथ द्रोपदीसहित वे पाँचो पाण्डव विराट्-नगर गय और गुप्तरूपस वहाँ रहने लग। एक वर्पतक वहाँ रहकर दुर्योधनद्वारा हरण की जाती हुइ गायाका प्रत्याहरण करक अर्थात् वापस लाटाकर व अपन

राज्यमें जा पहुँचे। सम्मानपूर्वक दुर्योधनसे उन्होंने अपने आधे राज्यके हिस्सेके रूपमें पाँच गाँव माँगे, किंतु दुर्योधनसे वे भी प्राप्त न हो सके। अतः कुरुक्षेत्रके मैदानमें उन वीरोंको युद्ध करना पड़ा। उसमें पाण्डवोंकी ओर सात दिव्य अक्षौहिणी सेना थी और दुर्योधनादि ग्यारह अक्षौहिणी सेनासे युक्त थे। यह युद्ध देवासुर-संग्रामके समान महाभयंकर हुआ था।

सबसे पहले दुर्योधनकी सेनाके सेनापति भीष्म हुए और पाण्डवोंका सेनापति शिखण्डी बना। उन दोनोंके बीचमें शस्त्र-से-शस्त्र तथा बाण-से-बाण भिड़ गये। दस दिनोंतक महाभयंकर युद्ध होता रहा। शिखण्डी और अर्जुनके सैकड़ों बाणोंसे विधकर भीष्म धराशायी हो गये, किंतु इच्छामृत्युका वरदान होनेसे भीष्मकी उस समय मृत्यु नहीं हुई। जब सूर्य उत्तरायणमें आ गये तब धर्म-सम्बन्धित विभिन्न उपदेश देकर उन्होंने अपने पितरोंका तर्पण किया और भगवान् गदाधरका ध्यान करते हुए अन्तमें वे उस परमपदको प्राप्त हुए, जहाँपर आनन्द-ही-आनन्द है और जो निर्मल आत्माओंके लिये मुक्तिका स्थान है।

तदनन्तर सेनापतिके पदपर द्रोणाचार्य आसीन हुए। उनका युद्ध पाण्डव-सेनापति धृष्टद्युम्नके साथ हुआ। यह परम दारुण युद्ध पाँच दिनोंतक चलता रहा। जितने भी राजा इस युद्धमें सम्मिलित हुए, वे सभी अर्जुनके द्वारा मारे गये। पुत्रशोकका समाचार सुनकर द्रोणाचार्य उस शोकके सागरमें डूबकर मर गये।

इसके बाद वीर अर्जुनसे लड़नेके लिये कर्ण युद्धभूमिमें आया। दो दिनोंतक महाभयानक युद्ध करके वह भी उनके द्वारा प्रयुक्त अस्त्रोंसे न बच सका। तत्पश्चात् शल्य धर्मराजसे युद्ध करनेके लिये गया। अपराह्णकाल होनेके पूर्व ही धर्मराजके तीक्ष्ण बाणोंसे वह भी चल बसा।

तदनन्तर कालान्तक यमराजके समान क्रुद्ध दुर्योधन गदा लेकर भीमसेनको मारनेके लिये दौड़ा, किंतु वीर भीमसेनने अपनी गदासे उसे गिरा दिया। उसके बाद द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रात्रिमें सोयी हुई पाण्डवोंकी सेनापर आक्रमण कर दिया। अपने पिताके वधका स्मरण करके उसने बड़ी ही बहादुरीसे बहुतोंको मौतके घाट उतार दिया। धृष्टद्युम्नका वध करके उसने द्रौपदीके पुत्रोंको भी मार डाला। इस प्रकार पुत्रोंका वध होनेसे दुःखित एवं रोती हुई द्रौपदीको देखकर अर्जुनने अश्वत्थामाको परास्तकर ऐषिक नामक अस्त्रसे उसकी शिरोमणिको निकाल लिया।

उसके बाद अत्यन्त शोकसन्तप्त स्त्रीजनोंको आश्वस्त करके धर्मराज युधिष्ठिरने स्नान करके देवता और पितृजनोंका तर्पण किया। तत्पश्चात् भीष्मके द्वारा दिये गये सदुपदेशोंसे आश्वस्त महात्मा युधिष्ठिर पुनः राज्यकार्यमें लग गये। अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करके उन्होंने भगवान् विष्णुका पूजन किया तथा विधिवत् ब्राह्मणोंको दक्षिणादि देकर संतुष्ट किया। साम्बके पेटसे निकले हुए मूसलके द्वारा यदुवंशियोंके विनाशका समाचार सुनकर उन्होंने राज्यसिंहासनपर अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्‌को बैठाकर भीमादि अपने सभी भाइयोंसहित विष्णुसहस्रनामका जप करते हुए स्वयं भी स्वर्गके मार्गका अनुगमन किया।

वासुदेव कृष्ण असुरोंको व्यामोहित करनेके लिये बुद्धरूपमें अवतरित हुए। अब वे कल्कि होकर फिर सम्भल ग्राममें अवतार लेंगे और घोड़ेपर सवार होकर वे संसारके सभी विधर्मियोंका विनाश करेंगे।

अधर्मको दूर करनेके लिये सत्त्वगुण-प्रधान देवता आदिकी रक्षा और दुष्टोंका संहार करनेके निमित्त भगवान् विष्णुका समय-समयपर वैसे ही अवतार होता है, जैसे समुद्रमन्थनके समय धन्वन्तरि होकर उन्होंने देवता आदिकी रक्षाके लिये विश्वामित्रके पुत्र महात्मा सुश्रुतको आयुर्वेदका उपदेश किया।

इस तरह महाभारतकी कथा एवं भगवान्‌के अवतारोंकी कथाका मैंने वर्णन किया, इसे सुनकर मनुष्य स्वर्गको प्राप्त करता है। (अध्याय १४५)

आयुर्वेद-प्रकरण

[गरुडपुराणका आयुर्वेद-प्रकरण अत्यन्त महत्त्वका है। इस प्रकरणके प्रथम बीस अध्यायोमे निदान-स्थानके विषय वर्णित हैं। किस कारणसे रोग उत्पन्न हुआ है और रोगके लक्षण क्या हैं जिससे रोगका निर्णय हो सके इत्यादि विषय 'निदान' शब्दसे अभिप्रेत हैं। इसके बाद लगभग चालीस अध्यायोमे रोगोकी चिकित्सा-हेतु औषधियोका निरूपण हुआ है तथा उन औषधियोके निर्माणकी विधि बतायी गयी है। इस औषधिका यह अनुपान है, किस प्रकार इसका सेवन करना चाहिये आदि बताया गया है। एक ही रोगके लिये अनेक औषधिक योगोको भी बताया गया है, पर यह सब किसी सुयोग्य वैद्यके परामर्शसे ही करना उचित है।

उपलब्ध गरुडपुराणका पाठ कहीं-कहीं अस्पष्ट तथा खण्डित भी प्रतीत होता है। आयुर्वेदके आर्षग्रन्थोका आश्रय करके यथासम्भव अर्थ ठीक करनेकी चेष्टा की गयी है, पाठकोको इससे लाभ उठाना चाहिये— सम्पादक]

निदानका अर्थ तथा रोगोका सामान्य निदान-निरूपण

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! प्राचीन कालमे आत्रेय आदि श्रेष्ठ मुनियोने जिस प्रकार सभी रोगोका निदान बताया है, वैसे ही मैं तुम्हे सुनाऊँगा। पाप्मा ज्वर, व्याधि, विकार, दु ख, आमय, यक्ष्मा, आतङ्क, गद और आबाध—ये पर्यायवाची शब्द हैं।

रोगके ज्ञानके पाँच उपाय हैं—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति। निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान तथा कारण—इन पर्यायोसे निदान कहा जाता है अर्थात् निमित्त आदि शब्दोसे जिस वस्तुका निश्चय होता है वही निदान है। दोष-विशेषके ज्ञानके बिना ही उत्पन्न होनेवाला रोग जिन लक्षणोसे जाना जाता है, उसे पूर्वरूप कहते हैं। यह पूर्वरूप सामान्य और विशिष्ट-भेदसे दो प्रकारका होता है। यह उत्पद्यमान रोग जिन लक्षणोसे जाना जाता है, उन लक्षणोको अल्पताके कारण थोडा व्यक्त होनेसे पूर्वरूप कहा जाता है। वही पूर्वरूप व्यक्त हो जानेपर रूप कहलाता है। सस्थान व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण चिह्न और आकृति—ये रूपके पर्यायवाची शब्द हैं। हेतु-विपरीत व्याधि-विपरीत हेतु-व्याधि-उभय-विपरीत तथा हेतु-विपरीत अर्थकारी (हेतुके समान प्रतीत होनेपर भी विपरीत क्रिया करनेवाला), व्याधि-विपरीत अर्थकारी और हेतु-व्याधि-उभय-विपरीत अर्थकारी औषध, अन्न तथा विहारके परिणाममे सुखदायक उपयोगको उपशय कहते हैं, इसीका नाम सात्म्य भी है। उपशयके विपरीत अनुपशय होता है। इसका दूसरा नाम व्याध्यसात्म्य भी है। दोष जिस प्रकार (प्राकृत आदि विविध) निदानोसे दूषित होकर (ऊर्ध्व आदि भिन्न गतियोके द्वारा शरीरमे) विसर्पण करते हुए (धातु आदिको दूषित कर) रोगको उत्पन्न करता है, उसे सम्प्राप्ति कहा जाता है। उसके पर्यायवाची शब्द हैं—जाति तथा आगति।

सख्या विकल्प प्राधान्य बल और व्याधि कालकी विशेषताओके आधारपर उस सम्प्राप्तिके भेद किये जाते हैं। जैसे इसी शास्त्रमे बताया जायगा कि ज्वरके आठ भेद होते हैं (यह सख्यासम्प्राप्ति हुई)। रोगोत्पत्तिमे कारणभूत दोषोकी अशाशकल्पना (न्यूनाधिक्य आदि)-का विवेचन विकल्पसम्प्राप्ति, स्वतन्त्रता और परतन्त्रताद्वारा दोषोका प्राधान्य या अप्राधान्य-विवेचन प्राधान्यसम्प्राप्ति, हेतु-पूर्वरूप और रूपकी सम्पूर्णता अथवा अल्पताके द्वारा बल या अबलका विवेचन बलसम्प्राप्ति और दोषानुसार रात्रि, दिन ऋतु एव भोजन (-के परिपाक)-के अश (आदि, मध्य और अन्त)-द्वारा रोगकालके ज्ञानको कालसम्प्राप्ति समझना चाहिये।

इस प्रकार निदानके सामान्य अभिधेयो (निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति)-का निरूपण किया गया। सम्प्रति उनका विस्तारसे वर्णन किया जायगा। सभी रोगोके मूल कारण [शरीरमे स्थित] कुपित दोष ही हैं। किंतु दोष-प्रकोपका भी कारण अनेक प्रकारके अहितकर पदार्थोका सेवन है। यह अहितसेवन तीन प्रकार (असात्म्येन्द्रियार्थसयोग, प्रज्ञापराध तथा परिणाम)-का होता है इन तीनो योगोको पहले बताया जा चुका है।

वात-प्रकोपका निदान

तिक्त, उष्ण, कटु कषाय, अम्ल और रुक्ष खाद्यान्नका असयमित आहार दौडना, जोरसे बोलना रात्रि-जागरण तथा उच्च भाषण, कार्योमे विशेष अनुरक्ति, भय, शोक, चिन्ता, व्यायाम एव मैथुन करनेसे शरीरके अन्तर्गत विद्यमान वायु प्रकुपित हो जाती है। विशेषत यह वायु-विकार ग्रीष्म-ऋतुके दिन तथा रात्रिमे भोजन करनेके पश्चात् पाकके अन्तमे होता है।

पित्त-प्रकोपका निदान

कटु, अम्ल तीक्ष्ण उष्ण, लवण तथा क्रोधोत्पादक एव दाहोत्पादक आहार करनेसे पित्त प्रकुपित होता है। पित्तका यह प्रकोप शरद्-ऋतुके मध्याह्न अर्धरात्रि तथा अन्य दाह उत्पन्न करनेवाले क्षणोमे विशेषरूपसे होता है।

कफ-प्रकोपका निदान

मधुर[1], अम्ल, लवण स्निग्ध गुरु अभिष्यन्दी तथा शीतल भोजनाके प्रयोगसे, बेठ रहनेस, निद्रासे, सुख-भागस, अजीर्णस, दिवा-शयनसे, अत्यन्त बलकारक पदार्थोके प्रयोगसे, वमन आदि न करनेस, भाजनके परिपाकक प्रारम्भकालम, दिनक प्रथम भागम तथा रात्रिके प्रथम भागम कफ कुपित होता है और दो-दो दापाके प्रकोपक आहार-विहारका सवन करनसे दो-दो दाप प्रकुपित हात ह।

त्रिदोष-प्रकोपका निदान एव सब रोगोकी सामान्य सम्प्राप्ति

त्रिदोषके (वात-पित्त[2] तथा श्लेष्मा—इन सभीके) प्रकुपित तथा मिश्रित स्वभावसे सन्निपातकी उत्पत्ति होती ह। सकीर्ण भोजन अजीर्णताम भाजन, विपम तथा विरुद्ध भाजन, मद्यपान सूख शाक, कच्ची मूली पिण्याक (खली), मृत्युवत्सर पूति (मत्तृ) शुष्क, कृशा मास तथा मत्स्यादिका भक्षण करनस, वात-पित्त एव श्लेष्मोत्पादक विभिन्न पदार्थोक उपभागसे, आहाय अन्नका परिवतन धातुजन्य-दाप, वात पित्त, श्लप्माका परस्पर मिलकर उपद्रव करनसे शारम यह विकार (सन्निपात) उत्पन्न हाता हे। दूपित कच्चे अन्नका प्रयाग करनस श्लप्माजनित विकारसे तथा ग्रहोंके प्रभावसे, मिथ्या आहार-व्यवहारक यागस, पूर्वजन्मम सचित विभिन्न पापाक प्रभाववश किय गय दुराचरणस, स्त्रियाम प्रसव-कालकी विपमता तथा मिथ्यापचारस शरीरम सन्निपातकी विकृति उत्पन्न हाती ह। इस प्रकार प्रकुपित वात आदि दाप रोगाक अधिष्ठानाम जानवाली रसवाहिनियाक द्वारा शरीरम पहुँचकर अनेक प्रकारके विकाराको उत्पन्न करते हैं। (अध्याय १४६)

ज्वर-निदान

धन्वन्तरिजीन कहा—हे सुश्रुत। अब समस्त ज्वरोकी[3] विशप जानकारीके लिये मैं ज्वर-निदानका बताऊँगा।

ज्वर रोगपति, पाप्मा मृत्युराज आजोऽशन (आजको खा जानेवाला), अन्तक (आयुका समाप्त कर दनवाला) क्रुद्ध होकर दक्षके यज्ञको विध्वस करनेवाले रुद्रक तीसर नयनस उत्पन्न सताप, मोहमय, सतापात्मा तथा अपचारज (मिथ्या आहार-विहारस उत्पन्न)—इन विभिन्न नामास नाना प्रकारकी योनियाम विद्यमान रहता है।

यह हाथियोम पाकल अश्वाम अभिताप कुत्ताम अलर्क मघाम इन्द्रमद जलम नीलिका औपधियाम ज्योति और भूखण्डाम ऊपर नामसे रहता है।

कफ-ज्वरके लक्षण

कॅफस उत्पन्न हानवाले ज्वरम हृदयम घवराहट वमन खाँसी शरीरम ठडक तथा अङ्गाम सूजन हा जाती हैं। दापाक प्रकाप-कालम ज्वरकी उत्पत्ति हान लगती है। (पर यह पहलम जा उत्पन्न हा चुके हैं) वढावपर आ जात हैं (ग्रन्थकारका अभिप्राय यह है कि चिकित्सक इस स्थितिस लाभ उठाय)। परल यह कालपर विचार कर कि यह वात, पित्त, कफ—इन दोषाम किस दापको प्रकुपित करनेवाला है। इस आधारपर रागको समझनेम सुविधा हा सकती है। जिस तरह विशिष्ट कालके द्वारा रोगकी उत्पत्ति या वृद्धि देखकर यह रोग—वात आदि किस दापस उत्पन्न हुआ ह, यह अनुमान कर लिया जाता है, उसी तरह उपशय (लाभ) और अनुपशय (हानि)-स भी रोगको पहचाना जा सकता है। औपध अन्न विहार, देश काल आदिसे उत्पन्न लाभका उपशय कहते हैं और इन्हीं औपध आदिका उपयाग यदि किसी रागम दु ख[4] हो ता उस अनुपशय कहते हैं।

अत किस प्रकारकी औपधि अन्न आदिक सवनस रागाका लाभ (उपशय) हा रहा है और किस प्रकारका औपधि आदिस हानि (अनुपशय) हा रहा है इसपर विचार करनस चिकित्सकका राग समझनम आसानी हाती है।

निदान-प्रकरणमें कह गये (किस औपधि और विहारक सवनस) अनुपशय (हानि) हाती है और किन पदार्थोके सवनस उपशय (लाभ) हाता है यह दखकर दापाका अनुमान किया जा सकता है। अरुचि अपरिपाक स्तम्भ आलस्य हृदयदाह विपाक तन्द्रा यम्नि विमनावनय

१-अ ह अ० २।१३ १८

२-अ०ह०नि०अ २।१९—२३ (चिकित्सा परि० पृ० ॰ वैद्य राज॰[illegible]कृत)

३-अ०ह नि०अ०२ मा[illegible] सार नि०पृ० ७३

४ कर [illegible] अ०ह०अ० २।२२

लारका गिरना, मनका भरा होना, भूखका न लगना, मुखकी चिपचिपाहट, शरीरमे श्वेतता होना, उष्णताका रहना, शरीरका भारी लगना, अधिक पेशाबका होना, शरीरकी जीर्णताका विशेष भान होना तथा शरीरकी कान्तिम मलिनताका आना—ये सभी आम ज्वरके लक्षण हैं।

भूखका न लगना, शरीरका हल्का हो जाना, यह सामान्य ज्वर है। जब ज्वरम वात-पित्त तथा कफ—तीना दोप बराबर बढते रहते हैं तो उसे परिपक्व अष्टाह[1] (निराम) ज्वरका लक्षण माना जाता है। दो दोपाके लक्षणाका ससर्ग होनेपर तीन ससर्गज-द्वन्द्वज ज्वर होते हैं।

वात-पित्त-ज्वरके लक्षण

सिरम वेदना मूर्च्छा वमन, शरीर-प्रदाह, मोह, कण्ठ और मुखकी शुष्कता, अरुचि, शरीरके पर्व-पर्वमे टूटन, अनिद्रा मनमे विभ्रम, रोमाञ्च (सिहरन), जम्हाई एव वात-प्रकोपसे त्वचाम शीतलताकी अनुभूतिका होना—ये सभी लक्षण वात और पित्तकी प्रवृत्तिके कारण उत्पन्न हुए ज्वरसे ग्रसित शरीरम दिखायी देते हैं।

ज्वर-तापकी अल्पता, अरुचि, पर्ववेदना (शरीरके प्रत्येक जोडम दर्द), सिरपीडा, बार-बार थूकनेकी इच्छा, श्वास-कष्ट और खाँसी चेहरका रग उड जाना, ठडक लगना, आँखोके सामने दिनमे भी अन्धकारका छाया रहना और अनिद्राका होना—ये सभी लक्षण कफ-वातजनित ज्वरकी पहचान कराते हैं।

शरीरम अनियत शीतलताका अनुभव स्तम्भन पसीनका आना दाहका होना प्यासका लगना और खाँसीका आना, श्लेष्म एव पित्तकी प्रवृत्ति, मूर्च्छा, तन्द्रावस्थाम तथा मुखमे कड़ुवापनका हाना—य सभी लक्षण श्लेष्म-पित्तजन्य ज्वरक रूपका निर्धारण करते हैं।[2]

वात[3]-पित्त और श्लेष्म-प्रवृत्तिजन्य सभी लक्षणाके एक साथ सर्वज (सन्निपात) ज्वरका आकलन हाता हे। ऐसी अवस्थाम बार-बार ये सभी लक्षण प्रकट होते रहत हैं। इस ज्वरकालम रागीको ठडक लगती है दिनम महानिद्राकी स्थिति बनी रहता है, रात्रिम नींद नहीं आती या सदैव निद्रा ही रहती है अथवा निद्रा ही नहीं आती। रोगीको अधिक पसीना छूटता हे अथवा पसाना ही नहीं आता। वह ऐसी अवस्थामे गीत गाता है, नाचता है या हास्यादिकी क्रियाओंको करता हे। उसकी सामान्य प्रकृति पूर्ण बदली हुई होती है। नेत्र मलिन एव आँसुआसे डबडबाये रहते हैं। आँखोकी पलकोके किनारापर लाली छायी रहती हे और आँखे खुली रहती हैं अथवा मुँदी रहती हैं। शरीरकी पिण्डुली, पार्श्वभाग, सिर, सधि-स्थान तथा हड्डी-हड्डीम वेदना होती हे और बुद्धिमे भ्रम बना रहता ह। दोना कान ध्वनि एव वेदनास व्याप्त रहते हैं। य अत्यधिक ठडे हो जाते हैं अथवा अत्यधिक गम हो जाते है। रोगीकी जिह्वा जली हुइ-सी प्रतीत होती है अर्थात् कुछ लाल और कृष्ण वर्णके मिश्रित भावोसे युक्त तथा खुरदरी हो जाती है, उसमे स्निग्धता नहीं रह जाती। सम्पूर्ण शरीर एव उसके सधि-स्थानोमे भारीपन तथा शिथिलता आ जाती है।

रोगीके मुखस रक्त-पित्तमिश्रित थूक निकलता है, सिर लुढक जाता है, अत्यन्त प्यास लगती है। शरीरके समस्त कोष्ठ-प्रदेशोका वर्ण श्याम ओर रक्त हा जाता हे। उनपर मण्डलाकार धब्ब दिखायी पडने लगते है। हृदयम व्यथा होने लगती हे। आँख, कान, नाक, गुदा आदिसे निकलनेवाले मलकी प्रवृत्ति बढ जाती हे अथवा अत्यन्त कम हा जाती है। मुखमे *स्निग्धता*, बलकी क्षीणता स्वरभग, आजक्षय तथा प्रलापकी स्थिति उत्पन्न होने लगती ह। दोपपाक अर्थात् वात-पित्त और कफकी वृद्धि शरीरके अदर-ही-अदर पक जाती है जिसस शरीरकी सामान्य-गतिम अवरोध आ जाता हैं, कण्ठ घरघराने लगता हे। शरीरमे तन्द्राकी *अवस्था* रहती है आर कण्ठसे अव्यक्त शब्द निकलने लगते हैं। ऐसे लक्षणासे युक्त रोग शरीरम अपना स्थान बना लेता है, उसको बलवीर्य-विनाशक *अभिन्यास*-सन्निपात[4] नामक ज्वर कहना चाहिये।

इस सन्निपातिक ज्वरम वायु-विकारके कारण कण्ठम अवरोध उत्पन्न हानेस पित्त आभ्यन्तर-भागम पीडा पहुँचान लगता है आर (विशप मार्ग) नाक आदिसे सुखपूर्वक बिना प्रयासके ही बाहर निकलन लगता ह। उसी पित्त-प्रभावक कारण नत्र हल्दीक समान पीले पड जाते ह। वात-पित्त तथा कफजन्य दोपके बढ जानपर जब शरारम विद्यमान अग्नि-तत्त्व विनष्ट हो जाता है तो उस समय वह अपन

१-निरामज्वरका लक्षण (च०चि०अ० ३)
२-द्वन्द्वज ज्वरका रूप अ०हृ०अ० २।२३—२६
३-त्रिदोषज्वरका रूप अ०हृ०अ० २।२७—३३
४-वेगसेन अभिन्यास ज्वर-प्रकरण दख।

सम्पूर्ण लक्षणोसे युक्त रहता है। यह सन्निपात-ज्वर असाध्य है। इसपर बडी ही कठिनतासे अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

इस सन्निपात[1]का एक अन्य भी रूप है, जिसम पित्त पृथक्-भावसे स्थित रहता है। ऐसे ज्वरम त्वचा और कोष्ठके अदर दाह होता है अथवा यह स्थिति इस ज्वरोत्पत्तिके पहले भी शरीरमे हो सकती हे। उसी प्रकार जब वात और पित्तकी प्रवृत्ति शरीरम बढने लगती हे, उस समय भी यह सन्निपात-ज्वर होता है। उस कालम शीत और दाहका प्रकोप शरीरपर हाता है। उनसे मुक्ति प्राप्त करना प्राणीके लिये अत्यन्त कठिन है। शीतका प्रभाव शरीरपर पहले होनेसे पित्तके कारण मुखस कफ निकलता ह और सूख भी जाता हे। पित्तके शान्त हानेपर मूर्च्छा, मद और तृष्णा होती है। अन्तम क्रमश रोगीको तन्द्रा ओर आलस्य आ जाता हे तथा अम्ल वमन हाता है।

आगन्तु-ज्वरका लक्षण

अभिघात[2], अभिषग शाप तथा अभिचार-कर्मसे आनेवाले चार प्रकारके ज्वरको आगन्तु-ज्वर माना गया है। दाह आदिके कारण शरीरम जब पसीना छूटता है तो उसको अभिघातज ज्वर कहा जाता है। अधिक परिश्रम करनेसे शरीरमे वायु प्राय रक्तको प्रदूषित करता हुआ पीडा, शोक तथा शरीरक सामान्य वर्णोंको परिवर्तित करनेवाले पीडायुक्त ज्वरको उत्पन्न कर देता ह।

ग्रह-प्रभाव, ओषधि-प्रयोग, विष-पान तथा क्रोध भय शोक एव कामजन्य भी सन्निपात-ज्वर होता है। ग्रहावेशसे जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसम रोगी अकस्मात् हँसने और रोने लगता है। औषधि और गन्ध-विशेषके प्रयोगस आये हुए सन्निपात-ज्वरमे मूर्च्छा सिरपीडा वमन कम्प तथा क्षय (शरीर-शैथिल्य)-का प्रभाव रोगीपर रहता है। विष-पानसे मूर्च्छा अतिसार पीलापन दाह और मस्तिष्क-भ्रान्तिके लक्षण रोगीम स्पष्ट होने लगते हैं। क्रोधजन्य सन्निपातम शरीर काँपने लगता है, मस्तिष्कम पीडा होता है। भय तथा शोकसे उत्पन्न हुए ज्वरम रोगी प्रलाप करता है। कामजन्य ज्वरम भ्रम अरुचि दाह लज्जा निद्रा बुद्धि तथा धैर्यका ह्रास हो जाता है।

सन्निपातिक ग्रहावेशादिके कारण उत्पन्न हुए ज्वर और आगन्तुकरूप आदि रूपजन्य ज्वरम वायुका प्रकोप ही प्रभावी रहता है। कोपजन्य ज्वरके कारण रोगीमे पित्त प्रकुपित हो उठता है। शाप तथा अभिचारकर्मके कारण जो ये दो सन्निपात-ज्वर प्राणीम आते हैं, ये दोना अत्यन्त भयकर होते हैं। इन दोना ज्वराको सहन करना रोगीके लिये अतिशय कठिन है। अभिचारजन्य ज्वर तान्त्रिकोंके द्वारा प्रयुक्त मन्त्रोंसे शरीरमे आता हे। इसमे मन्त्र-प्रभावके कारण उत्पन्न किये गये असह्य कष्टासे प्राणी सतप्त होता रहता है। इसी अभिचार-मन्त्रके द्वारा इसकी पूर्वावस्थाकी जानकारी करनी चाहिये, तत्पश्चात् शरीरपर विचार करना अपेक्षित है। उसके बाद रोगीमे उठे हुए सतापसे विस्फोट तथा दिग्भ्रमित दाह मूर्च्छा चेतना आदिसे ज्वरका परीक्षण करना उचित होता है। अन्यथा उस रोगीमे सर्वप्रथम प्रदाह और मूर्च्छाका प्रकाप होता है। उसके बाद ज्वर प्रतिदिन बढता रहता है।

इस प्रकार सक्षेप[3]म आठ प्रकारका ज्वर देखा गया, किंतु वह विभिन्न प्रकारका होता है—यथा—शारीरिक मानसिक, सौम्य, तीक्ष्ण, अन्तर्बाह्य प्राकृत वैकृत, साध्य असाध्य, सामज्वर और निरामज्वर इसके विविध रूप हैं।

ज्वर होनेपर प्रथम शरीरम शारीरिक, मनमे मानसिक ज्वर आनेपर पहले मनमे अनन्तर शरीरमे ताप हाता है। प्राकृतिक वायुके बाह्य-प्रभावसे नाक-कान तथा मुँह आदिके द्वारा जो वायु ग्रहण की जाती है। उसके कारण कफसे मिश्रित होता है, तब शरीरम शीत बढ जाता है। पित्त-मिश्रित शरीर होनेपर शरीरम दाह हाता है। कफ तथा पित्त दोनाकी मिश्रित-अवस्थाम शीत और दाहका मिश्रित प्रभाव पडता है। इसलिये वात-कफ-ज्वर सौम्य तथा वात-पित्त-ज्वर तीक्ष्ण होता है। अन्तराश्रयज्वरम अन्तर्विकार अधिक हाते हैं तथा तीव्र दाह और मल-मूत्रादिका विबन्ध होता है बहिराश्रयज्वरम कवल बाहरी ताप हाता है। इसमें तात्र दाह और मल आदिकी विबन्धता नहीं होती इसलिय बहिराश्रय-ज्वर सुख-साध्य और अन्तराश्रयज्वर दु साध्य हाता है।

वर्षा शरद् तथा वसन्त-ऋतुआम वात-पित्त और कफक प्रभावस जा ज्वर उत्पन्न होता है उसे प्राकृत-ज्वर

१-चरक चि०अ० ३ सु०उ०अ० ३९। २-च०चि०अ० ३ अ०हृ०नि०अ० २। ३-अ०हृ०नि०अ० २।४६

कहा जाता है (यथा वर्षाकालमें वातिक, शरत्कालमें पैत्तिक एवं वसन्तकालमें श्लैष्मिक ज्वरका प्राकृतिक प्रभाव रहता है।), वह साध्य है। इससे विकृत ज्वरका जो विपरीत रूप है, वह दुःसाध्य माना गया है। प्राकृतिक ज्वर प्रायः वायुदोषके कारण होता है, यह भी दुःसाध्य है। वायु वर्षाकालमें दोषयुक्त हो जाती है, उसके प्रभावके कारण पित्त एवं कफसे समन्वित ज्वर प्राणियोंमें होता है। शरत्कालमें पित्त-दोषजन्य ज्वरकी उत्पत्ति होती है। इस कालमें पित्त-दोषका अनुगमन कफ करता रहता है, इसलिये इस कालके ज्वरमें पित्त एवं कफ दोनों मिलकर रोगोंका कष्ट देते हैं। इस प्राकृतिक ज्वरसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये भोजन न करनेसे रोगीको किसी अन्य रोगका भय नहीं रहता है। वसन्तकालमें कफ कुपित होकर ज्वर उत्पन्न करता है। उसके पीछे ही वात एवं पित्तके दोष भी लगे रहते हैं। इस ज्वरमें उपवाससे हानि हो सकती है।

यदि रोगी बलवान् हो और ज्वर अल्प दोषसे उत्पन्न हुआ हो तथा कासादि दोष उपद्रवोंसे रहित हो तो सुख-साध्य होता है। जैसे रोगीका जैसा ज्वर असाध्य होता है वह पहले बताया गया है। इसका उपद्रव हो जानेपर रोगीमें चिडचिडापन, मन्दाग्नि, बहुमूत्रता, अरुचि, अजीर्ण तथा भूख न लगनेके लक्षण उभर आते हैं, यही आमज्वर है।

तेज ज्वर होनेपर अधिक प्यास-प्रलाप, श्वास तथा चक्कर आता है। नाक-कान, मुँह तथा गुदाभागसे मल निकलनेकी गति तेज होती है। उत्क्लेश होता है, जिससे रोगीको कष्ट होता है। यह पच्यमान-ज्वरका लक्षण है। सामज्वरसे विपरीत लक्षण होनेपर सात दिनका लंघन करना चाहिये; क्योंकि आठवें दिन ज्वर निराम हो जाता है।

मल[१], काल तथा बलाबलके कारण ज्वर पाँच प्रकारका कहा गया है। यथा—निरन्तर विद्यमान रहनेवाला सततवाही ज्वर, दूसरे दिनतक रहनेवाला ज्वर, तीसरे और चौथे—चार दिनतक रहनेवाला। विशेषतः ये ज्वर सन्निपातसे ही होते हैं। इस ज्वरमें धातु-मूत्र और विष्ठाको शरीरसे बाहर निकालनेवाले मार्ग मलव्यापी हो जाते हैं। इस समय वे सभी दूषित होकर एक समान ही सम्पूर्ण शरीरको संतप्त करते हैं तथा दूष्य पदार्थों, देश, ऋतु और प्रकृतिद्वारा बढ़कर और बलवान् भारी तथा स्तब्ध होकर रसादिके आश्रित हो जाते हैं तथा प्रतिद्वन्द्वितासे रहित होकर वातादि दोष दुःसह सतत-ज्वरको उत्पन्न करते हैं। अनल-धर्म—ज्वरकी गर्मी, कभी मल और कभी धातुओंका शीघ्र ही क्षय कर देते हैं।

मल[२] और धातुओंके क्षयके कारणसे रसादि सप्त धातु, मल, मूत्र और तीनों दोष—इन बारह पदार्थोंकी ज्वरकी ऊष्मा सर्वाकार निःशेष करके कफकी अधिकतासे उत्पन्न हुआ यह सतत-ज्वर सात, दस या बारह दिनमें या तो रोगीको छोड़ देता है या मार डालता है, यह अग्निवेशका मत है। इस विषयमें हारीतका यह मत है कि रोगीकी नीरोगता तथा मृत्युके लिये चौदह, अठारह तथा बाईस दिनतक त्रिदोषकी मर्यादा होती है।

धातुजन्य[३] शुद्धता अथवा अशुद्धताके कारण यह सतत-ज्वर प्राणीके शरीरमें अधिक समयतक भी अवस्थित रह सकता है। दुर्बल तथा व्याधिमुक्त रोगीके मिथ्याहारादि (अपथ्य)-सेवनसे शरीरमें प्रविष्ट अल्प दोष भी अन्य दूसरे दोषोंसे शक्ति ग्रहणकर महाबलवान् हो जाते हैं। जिस उपचार या पथ्यके कारण ज्वर बढ़ता और घटता है, उसे प्रत्यनीक कहते हैं। यह ज्वर विक्षेप, क्षय तथा वृद्धिसे युक्त रहता है। उपर्युक्त मिथ्याहारका सेवन करनेवाले मनुष्यके देहमें वातादि दोषोंमेंसे कोई-सा बलवान् दोष अपने प्रकोपकालमें सतत आदि ज्वर उत्पन्न करता है। परंतु यह तभी सम्भव है, जब उसे अपने पक्षके किसी रसादि दूष्य पदार्थसे सहायता मिले, सहायता न मिलनेपर वह बलहीन होकर क्षीण हो जाता है।

क्षीण हो रहे दोषसे युक्त ज्वर सूक्ष्म होता है, जो शरीरके अंदर विद्यमान रसादिक[४] सप्त धातुओंमें ही लीन रहता है। रस आदिमें सूक्ष्मभावसे विद्यमान रहनेके कारण

१-अ०हृ०नि०अ० २—५, ६—५९ सु०अ०अ० ३९। २-अ०हृ०नि०अ० २ च०चि०अ० ३ ५३—५३। ३-अ०हृ०नि०अ० २—६३—६६। च०चि०अ० ३ सु०उ०अ० ३९। ४-रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र—ये सात धातु शरीरका धारण करते हैं। स०ग०पु०अ० ८—

वह ज्वर शरीरम कृशता, विवर्णता और जडतादिको उत्पन्न कर देता है। रसवाही स्रोताके मुख खुले होनेके कारण ज्वरको उत्पन्न करनेवाले दोष उन स्रोताम प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण शरीरमे व्याप्त हो जाते हैं। इस कारण सतत-ज्वर निरन्तर रहता है और उक्त हेतुके विपरीत होनेपर सम्पूर्ण स्रोत दूरवर्ती सूक्ष्म मुखवाले होते हैं। इसलिये ज्वरको उत्पन्न करनेवाले दोष विलम्बम प्रविष्ट होते हैं अर्थात् सम्पूर्ण देहमे फैलने नहीं पाते, इसलिये विच्छिन्न कालमे सततादि ज्वरको उत्पन्न करते हैं। अत सततादि ज्वर सतत-ज्वरसे विपरीत होता है।

विषम[1] सज्ञक ज्वरका प्रारम्भ, क्रिया और काल विषम होता हे तथा यह ज्वर दीर्घ कालानुबन्धी होता है, प्राय रक्ताश्रित दोष सतत-ज्वरको उत्पन्न करता है। यह ज्वर अहोरात्रमे दो बार होता हे अर्थात् दिनमे एक बार, रातमे एक बार अथवा कभी दिनमे दो बार, रातम दो बार। जब दोष मासवाही नाडीमे आश्रित होकर अन्येद्यु नामक विषम ज्वरको उत्पन्न करता है, तब यह दिन-रातमे एक बार होता है। उसी ज्वरके प्रभावम जब मासवाही एव मेदावाही नाडियाँ भी प्रकुपित दोषके ससर्गमे आ जाती हें वह लक्षण तृतीयक (तिजरिया) ज्वरके अन्तर्गत मान लिया जाता है।

तृतीयक ज्वर तीन प्रकारका होता है—वात-पित्ताधिक्य, कफ-पित्ताधिक्य और वात-कफाधिक्य। प्रथम दिन पित्त और वायुके प्रकुपित हानेसे ज्वर मस्तकका ग्राही हा जाता है। दूसरे दिन कफ तथा पित्तके प्रकोपसे वह रीढकी हड्डीम प्रविष्ट हो जाता है और तीसरे दिन वायु एव कफसे दूषित होनेस वह ज्वर सम्पूर्ण पीठपर अधिकार कर लेता है। अर्थात् पित्त और वायुके प्रकुपित होनेसे ज्वर-प्रभावके कारण पहले दिन रोगीका मस्तक जलने लगता है और उसम पीडा होती है। दूसरे दिन कफ तथा पित्तके प्रकुपित होनेसे रीढकी हड्डीम दर्द होता है तीसरे दिन वायु एव कफके दोषजन्य प्रभावके बढनेसे रोगीको ताप ता हाता ही है कितु उसकी समस्त पीठम पीडा होती है। यह ज्वर एक-एक दिनका अन्तराल छाडकर शरीरक तीना भागाका प्रभावित करता है इसालिये इसका 'एकाहान्तर' नामसे स्वीकार किया गया है।

वात-पित्त और कफजन्य दोषके कारण शरीरके अदर अधिक बननेवाले मलके द्वारा ज्वर जब मेदा-मज्जा-हड्डी तथा अन्य स्थितियाम पहुँच जाता है, तब उसको चतुर्थक ज्वर कहा जाता है। लौकिक भाषामे इसीको लाग 'चौथिया बुखार' कहते हैं। जब यही ज्वर मज्जाभागमे प्रविष्ट हाता है तो यह दूसरे प्रकारका हो जाता है और इसका प्रभाव भी शरीरपर दूसरी रीतिसे पडता है।

वाय्वाधिक्यसे सिरमे वेदना होती है। कफाधिक्यसे जघाम प्रारम्भ होती है। उक्त सिर एव जघामे वेदना होकर ही ज्वर चढता है।

तदनन्तर वह अस्थि एव मज्जाम जाकर अवस्थित होता है। इसी कारण इसको चतुर्थक ज्वरका विपर्यय[2] (दूसरा) रूप माना जाता है। यह ज्वर अपने सतापकालम एक दिनका अन्तराल करके रोगीपर तीन दिनतक तान प्रकारसे आक्रमण करता हे। यह अस्थि और मज्जा—इन दो धातुआमे आश्रित होनेके कारण लगातार तीन दिनतक रहकर बीचमे एक दिन छोडकर आता है और फिर तीन दिन लगातार रहता हे। बलाबलके प्रभावसे वात-पित्त तथा कफजन्य दोष अथवा अन्य विकृत चेष्टाआको जन्म देनेवाले विकाराकी परिपक्व-स्थितिके आ जानेपर रागीको सात दिनका लघन करना चाहिये।

इसी तरह जिस-जिस समय रजोगुण एव तमागुणके कारण मानस दोष और मानस कार्यका बलाबल होता है उसी-उसी समयमे यह सततादि ज्वर उत्पन्न होकर चढता-उतरता रहता है।

उस प्रत्येक कालम रोगीके कर्मका प्रभाव दिखायी देता है। सन्निपातके द्वारा सम्भूत कारणसे गम्भीर धातुआम समाहित दोषोकी प्रबलता होनपर यह चतुर्थक ज्वर अत्यन्त कठिन चिकित्साकी अपेक्षा करने लगता है अथात् ज्वरका शमन चिकित्सकक लिये दुस्साध्य हो जाता है। दूरतम दश-काल और अवस्थाके अनुसार सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपमे ज्वरका शरीरमें जा सक्रमण हाता है रक्तादिक मार्गोंम जा दोष बहुत समय पहलसे धारे-धारे अल्पमात्राम प्रभावी हाता है यह सम्पूर्ण शरीरम व्याप्त नहीं हाता (अतएव यह

१-च०चि०अ० ३ अ०ह०नि०अ० २। २-सु०उ०अ० ३९

एक दिन शरीरपर अपना पूर्ण अधिकार कर लेता है) और उसी दोषके कारण वह ज्वर प्राणीमें सतापादिक कष्टोंको उत्पन्न करता है। अत प्राणीको प्रयत्नपूर्वक यथोपचारसे उस ज्वरका विनाश कर देना चाहिये, अन्यथा वह असाध्य हो जाता है। ज्वरका सामान्य लक्षण तो यही है कि वह शरीरमे तापसे युक्त होकर अनुभूत होता है।

विषमगतिसे प्रारम्भ होनेवाला ज्वर विषम कहा जाता है। यह विषम ज्वर मध्यरात्रिकालतक अपने पूर्ण वेगमे रहता है। उसके बाद उसकी गति और शक्ति दोनो मन्द हो जाती है। उसी कालके अनुसार वह शरीरके रसादिपर अपने दोषका प्रभाव डालता है और धीरे-धीरे निष्प्रभावी होता है। ऐसा प्रकुपित दोष प्राणीको अधिकतम समयतक अस्वस्थ रखता है। जैसे भूमिमे जलसे सिंचित बीज अकुरणके लिये समयकी प्रतीक्षा नहीं करता, वैसे ही (वात-पित्त तथा कफजन्य) दोषका बीजरूप स्वयको शरीरमे प्रकट करनेके लिये समयकी प्रतीक्षा नहीं करता। जिस प्रकार विष वेगपूर्वक शरीरके आमाशयमे जाकर बलवान् होकर क्रुद्ध हो उठता है, उसी प्रकार शरीरमे स्थित दोष भी यथासमय शक्ति-सम्पन्न होकर स्वास्थ्यपर क्रोध करता है। इसी प्रकार सततादि ज्वर भी शरीरमे विषम भावको प्राप्त कर लेते हैं।

अधिक[1] कष्टका होना, शरीरका भारी लगना दीनता अङ्ग-भङ्ग (शरीरका टूटना) जँभाई, अरुचि, वमन और श्वासका फूलना आदि ये दोष सभी रसगत ज्वर होते हैं। जब ज्वर रक्तगत[2] सश्रित हो जाता है तो उस अवस्थामे रोगीको रक्तका वमन प्यास, रूक्षता, ऊष्णता, शरीरपर छोटी-छोटी पीडिकाओ (दाना)-का निकलना, दाह, लालिमा, भ्रम, मद तथा प्रलापका उपद्रव होता है। मास और मेदामें ज्वरके सश्रित होनेपर तृष्णा, ग्लानि कान्तिमन्दता, अन्तर्दाह, भ्रम, अन्धकारदर्शन दुर्गन्ध, गात्रविक्षपका दोष उत्पन्न हो जाता है। ज्वरके अस्थिगत होनेपर पसीना अधिक प्यास वमन, दुर्गन्धिकी प्रतीति, चिडचिडापन प्रलाप, ग्लानि तथा अरुचि एव हड्डियोमे तोडने-जैसी पीडा होती है। ज्वरके मज्जागत हो जानेपर उक्त दोष तो होते ही हैं, उसके अतिरिक्त श्वास अङ्गविक्षेप, अस्पष्ट-ध्वनि बाह्य शीतलता और हिचकीके दोषकी प्रवृत्ति बढ जाती है। शुक्रमे दोषके सश्रित होनेपर रोगीको दिनमे भी अन्धकार दिखायी देता है, शरीरके मर्मोंमे छेदने-जैसी पीडा होती है। जननेन्द्रियके स्तब्ध होनेपर निरन्तर उससे वीर्य बहता रहता है। प्राय ऐसी अवस्थामे शुक्रगत हो जानेपर रोगीकी मृत्यु होती है। वस्तुत रस, रक्त, मास, मेद तथा मज्जागत—ये पाँचो ज्वर उत्तरोत्तर दुस्साध्य होते हैं।

मन्द ज्वर होनेपर सम्पूर्ण शरीर कफद्वारा भारीपनके दोषसे सलिप्त रहता है। रोगी प्रलाप करता है, उसको शीतलताकी अनुभूति होती है तथा उसके सभी अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। जब शरीरमे नित्य ही मन्द ज्वर होता है तो शरीरमे सूखापन रहता है, रोगी शीतलताका अनुभव करता है और शरीरमे दुर्बलता आ जाती है तथा श्लेष्माकी अधिकता हो जाती है।

जिस ज्वरमे शरीर हल्दीके वर्णका हो जाता है और पेशाब भी पीला हो जाता है, उसका हरिद्रक ज्वर कहा जाता है, यह यमके समान मारनेवाला होता है।

जिसके शरीरमे कफ और वात समान रूपमे रहते है तथा पित्तकी कमी होती है, उसमे यह ज्वर दिनमे मन्द वेगसे एव रात्रिमे तेज हो जाता है तथा इसे रात्रिज्वर कहते हैं।

व्यायामके कारण दिवाकरके शक्ति सचय न करनेसे जब रोगीका शरीर शुष्क हो जाता है तो वातकी अधिकताके कारण रोगीके शरीरमे सदा रातमे ज्वर रहता है, उसे पौर्वरात्रिक ज्वर कहा जाता है।

इस ज्वरमे श्लेष्मा पित्तके नीचे आमाशयमे स्थित रहनेपर आत्मस्थ होकर रोगीका आधा शरीर शीतल और आधा ऊष्ण रहता है। ज्वरके समय रोगीके शरीरमे जब पित्त परिव्याप्त रहता है तथा श्लेष्मा अन्तमे स्थित रहता है। इसलिये उसका शरीर ऊष्ण और हाथ-पैर ठडे रहते हैं। रस और रक्तमे आश्रित तथा मास एव मेदामे स्थित ज्वर साध्य है। हड्डी और मज्जामे स्थित ज्वर कष्ट-साध्य है। ज्वर जिस-जिस अङ्गमे रहता है, उसे कान्तिहीन कर देता है। इस ज्वरमे रोगी सज्ञाहीन, ज्वरके वेगसे आर्त और

[1] माधव नि० ज्वर ४८—५३। [2] सु०उ०अ० ३९ च०चि०अ० ३

क्रोधयुक्त रहता ह। रोगी सदा दोष-समन्वित उष्ण मलका वेगपूर्वक परित्याग करता है।

ज्वरके[1] शान्त हानेपर शरीर लघु (हल्का) हो जाता है, थकान, मोह और सताप दूर हो जाता है, मुखम छाल पड जाते हैं, इन्द्रियाम निर्मलता आ जाती है, पीडा नहीं रहती शरीरमे उचित पसीना छूटता है, भूख लगती है, मन स्वस्थ तथा प्रसन्न हो जाता है, अन्न-ग्रहणकी इच्छा होने लगती है तथा सिरम खुजलाहट होता है। (अध्याय १४७)

रक्त-पित्त-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब इसके बाद मैं रक्त[2]-पित्तके निदानका विधिवत् वर्णन करता हूँ।

अत्यन्त उष्ण, तिक्त, कटु अम्ल, नमक आदि जो पेटम विशेष प्रकारका दाह उत्पन्न करनेवाले पदार्थ हैं और कोदा, उद्दालक आदि गरिष्ठ अन्नसे बने भोजन हैं तथा अन्य पित्तवर्धक शाक-पात हैं, उन सभीका अधिक सेवन करनसे शरीरमे पूर्वसे स्थित पित्तात्मक द्रव कुपित हो उठता है और परस्परम मिलकर वह रक्तपर दूषित प्रभाव डालता है। जिससे शरीरका रक्त दूषित हो जाता है, उन्हीं भोज्य एव पेय पदार्थोके प्रभावसे पित्त और रक्त एक-सा रूप धारण करके सम्पूर्ण शरीरपर अधिकार कर लत हैं। सम्पर्ग-दोषके कारण विकृत हुए रक्त-पित्त-गन्ध-वर्ण तथा दोष-प्रवृत्तिम एक अनुरूपता होनपर भी उसको रक्त[3] नामसे ही जाना जाता ह। वह दूषित रक्त प्लीहा तथा यकृत भागवाले कोष्ठसे उत्पन्न होता है। इस कारण उसका नाम रक्त-पित्त हे।

रक्त-पित्तका दोष निम्नलिखित उपद्रवोसे जाना जा सकता हे। मस्तिष्कम भारीपन अरुचि शीतल पदार्थके सेवनकी इच्छा, कण्ठसे धूम निकलनेका आभास तथा अम्लतायुक्त डकारोंका आना, वमन, वमनम दुर्गन्ध, खाँसी, श्वास भ्रम थकान लोहा रक्त तथा मछलीकी-सी गन्ध, स्वरम क्षीणता नयनादि अङ्गोमे लाली, हल्दीकी तरह पीलापन अथवा हरापन होना नीले लाल और पीले रगमे भेदका न मालूम होना और स्वप्नम भी लाल रग दिखायी देना—ये लक्षण रक्त-पित्तरोग हानेवालेम पाये जात हैं।

रक्त-पित तीन प्रकारका होता है—ऊर्ध्वगामी अधागामी आर उभयगामी। इनमसे ऊर्ध्वगामी रक्त-पित्त दोना नाकके छिद्रो तथा आँखो, काना और मुख—इन सात द्वारासे निकलता है अधागामी कुपित रक्त मूत्रन्द्रिय योनि और गुदासे निकलता है और उभयगामी रक्त-पित्त समस्त रोमकूपो एव पूर्वोक्त दसा द्वारोसे निकलता है। ऊर्ध्वगामी साध्य रक्त-पित्त-कफकी अधिकतासे निकलता ह। इसलिय इसका साधन विरेचन है। पित्तशान्तिकी बहुत-सी औषधिया हैं, उनम सबमे प्रधान विरेचन है तथा रक्त-पित्तका अनुबन्धी कफ होता हे और कफकी औषधि भी विरेचन ही है। फान्ट आदि कषाय मधुर रसयुक्त होनेपर भी रोग-नाशक होनेके कारण वातादिके दाषसे रहित कफवाले रोगीके लिये हितकारी होते हैं। ऐसी स्थितिमे कटु तिक्त और कषाय द्रव्य जो स्वभावसे ही कफका नाश करनेवाले हैं, ये अत्यन्त लाभप्रद हाते हैं। अधोगामी रक्त-पित्त-वातसे उत्पन्न होनेके कारण याप्य (साध्य) होता है। इसकी चिकित्सा वमन है। पित्तकी चिकित्सा अल्प होनेके कारण वमनस श्रेष्ठ औषधि नहीं है। रक्त-पित्तका अनुबन्धी वात है। इसीलिये वमन वातका शमन नहीं करता। इसलिये रक्त-पित्त दोषम मधुर कषाय ही हितकारी होता है।

शरीरम कफ तथा वायुके ससृष्ट होनेपर रक्त-पित्तजनित उभयगामी रक्त-पित्त असाध्य हो जाता है। प्रतिलाम हान और औषधिस असाध्य होनेके कारण यह रोग असह्य होता हे। प्रतिलोम होनेके कारण इस दोषका कोई प्रतिकार नहीं है। रक्त-पित्त रोगम शाध प्रतिलोम (रोगका उल्टा) उपाय ही बतलाया गया है। रोगका इसी तरहसे सशोधन और उपशमन सम्भव है।

वात[4]-पित्त तथा कफ आदि दोपाके एक-दूसरे दोषमें ससृष्ट हो जानेपर सब प्रकारसे शमन औषधि हा हितकारी हाती है। इस रोगसे रक्षा करनेमे शिरावेध परीक्षणविधि ही दिखायी देता है। वस्तुत ऐसे दोषोमें होनेवाले उपद्रव विकारको लक्ष्य करक ही शरीरपर प्रभावी होते हैं। अत रोगीके शरीरम दृष्टिगत उपद्रवासे अन्य विकार न उत्पन्न हो उसके पूर्व ही उनका शमन तथा परीक्षण करा लेना चाहिये। (अध्याय १४८)

१-अ०ह० निदान २।७९ सु०उ०अ० ३९। २-च०चि०अ० २ सु०उ० ४५—५२। ३-च०चि०अ० ४ अ०ह०अ० ३। ४-सु०उ०अ० ४५ च०चि०अ० २ सु०चि०अ० ३४

कास (खाँसी)-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—कास (खाँसी)-रोग यथाशीघ्र प्राणीपर अपना कुप्रभाव दिखाता है, इसलिये उसी रागको अब कहा जायगा।

खाँसी वातज, पित्तज, कफज, क्षतज तथा धातु-क्षयज होनेसे पाँच प्रकारकी मानी गयी है। यदि इन पाँचोके विनाशकी उपेक्षा कर दी जाती है तो ये क्षयको उत्पन्न कर देती हैं, यह उत्तरोत्तर बलवान् हो जाती हैं। इसका भावी रूप इस प्रकार होता है—

कासरोग होनेपर कण्ठमे खुजलाहट और अरुचि होती है। कान, मुख तथा कण्ठमे शुष्कता आ जाती है। शरीरमे वायु प्राय अधोगामी होता है। इस रोगम ऊर्ध्वगामी होकर वक्ष स्थलम जा पहुँचता हे, वहाँ अभिघात करते हुए वायु कण्ठम रोगकी सृष्टि करता हुआ मस्तिष्क तथा रक्तवाही आदि शरीरके तेरहो स्रोतोमें जाता है। तदनन्तर सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोमे प्रविष्ट होकर आक्षेप एव उनको कष्ट पहुँचाता हैं।

इसका प्रकोप होते ही नेत्रोम उत्क्षेप करता हुआ और पीठ तथा हृदय एव पार्श्वोंमे पीडा उत्पन्न करता हुआ मुखसे निकलता है। बालनेमे[१] भी रागीको कष्ट होता है, फूटे हुए काँसेकी ध्वनिके समान मुखसे वाणी निकलती है, हृदयके पार्श्वभाग तथा शिरोभागम पीडा उठती है, मोह और क्षोभ होता है एव स्वरभग हो जाता है।

यह रोगीको अत्यन्त तेज पीडाके साथ सूखी खाँसी खाँसनेके लिये विवश कर देता है। रोगीको रोमाञ्च हो जाता है। खाँसनेपर बडी ही कठिनतासे अदरसे सूखा हुआ कफ बाहर निकलता है जिससे खाँसी कुछ कम हा जाती है।

पित्तजन्य[२] कास होनसे नेत्र पीले पड जाते हें, मुखम तीतापन रहता है ज्वर और भ्रम होता है, रोगी पित्त तथा रक्तसश्रित वमन करता है, उसे प्यास लगती है, कण्ठसे निकलनेवाली ध्वनि टूटी रहती है, उसको सब ओर धुआँ-ही-धुआँ दिखायी देता है और धूमायित एव खट्टी डकार आती है तथा उसमे एक प्रकारका मद छाया रहता है। जब रोगीको खाँसीका वेग आता है ता उसी खाँसीके बीच आँखाके सामने चमकता हुआ छोटा-छोटा प्रकाशपुञ्ज दिखायी देता है।

कफजन्य कासरोग होनेपर वक्ष स्थलमे सामान्य वेदना होती है, सिरमे भारीपन तथा हृदयम जकडन आ जाती है। कण्ठम किसी द्रव्य पदार्थके लेपका अनुभव होता है। एक प्रकारका मद-जसा शरीरपर छाया रहता हे तथा पीनस, वमन, अरुचि, रोमाञ्च और घने स्निग्ध कफकी प्रवृत्ति होती है।

युद्धादि अत्यन्त साहसिक विभिन्न कर्मोंको करनेवाले लोगोद्वारा जब शक्तिसे अधिक कर्म किया जाता है तो उससे वक्ष स्थलमे क्षत हो जाता है। पित्तसे अनुगमित होकर वायु बलवान् हो जाता है। तदनन्तर उसके कारण रोगीको खाँसी आने लगती है, जिसके द्वारा मुखसे रक्तसश्रित कफ अधिक निकलता है। प्राय यह कफ पीला, पिगल, शुष्क, ग्रथित (लोथडेकी भाँति) और अत्यन्त दूषित होता है।

इस रोगमे रोगी रुग्ण-कण्ठसे कफरूपी मलको बाहर निकालता है, वायुदोषके कारण हृदय फटा-सा प्रतीत होता हे और शरीरम सुइयोके चुभने-जैसे कष्टकी अनुभूति होती है तथा कष्टकारी शूलके आघातसे मर्मस्थलम पीडा होती है, रोगीके पर्व-पर्वम दर्द होता है और ज्वर भी रहता है। उसकी साँस फूलती है। प्यास बढ जाती है। उसकी वाणीम स्वर-भग होने लगता है तथा शरीरम कम्पन रहता है।

रोगी[३] इस रोगम कबूतरके समान कहरने लगता है। उसके पार्श्वभागमे शूल उठने लगता है। कफादि विकारोके कारण उसको वमन हाता है। उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है और शरीरका चर्ण कान्तिहीन हो जाता है।

राजयक्ष्मारोग होनेसे रोगीका शरीर क्षीण होने लगता है। उसके पेशाबम रक्त आता है। साँस फूलनेसे पीठ और कमरम पीडा होती है। जिनको शास्त्रम आयु कहा गया है, वे आयुरूपी धातुएँ शरीरम प्रकुपित हाकर दौडने लगती हैं। यक्ष्मासे पीडित रोगी घरको खाँसी और खखारसे भर देता है। वह खखार (पीब)-के समान दुर्गन्धयुक्त तथा हर और लाल रगका होता है। ऐसे रोगीको सानेम विशेष कष्ट होता है अर्थात् सुप्तावस्थाम भी रोगीका कष्ट होता रहता हे। यह रोग रोगीके हृदयको गिरते हुएके समान कष्ट देता है। अचानक रोगीम उष्ण आर शीतल भोजन एव पेय-पदार्थ

१-अ०हृ०नि०अ० ३।२१ सु०उ० ५२। २-अ०हृ० नि०अ० ३ २४-२५ सु०उ० ५२। ३-अ०हृ०नि०अ० ३ सु०उ० ५२

ग्रहण करनकी इच्छा होने लगती है। यह बहुत खाता है। उसका बल क्षीण होन लगता है। मुखपर स्निग्धता बनी रहती है। उसक नेत्र भी शाभा-सम्पन्न रहते हैं, किंतु रोगक बलवान् हानके बाद सभी विनाशकारी राजयक्ष्माके लक्षण रागीके शरीरम जन्म लत हैं।

क्षयजन्य[1] कासका रूप ऐसा ही है। इस रागसे क्षीण हुए शरीरवाल रागियाकी मृत्यु निश्चित ही हा जाती है अथवा रोगियाके बलवान् हानपर यह राग याप्य—साध्य रहता है। क्षतजन्य कासरोग भी उसी प्रकारका हाता है। कास जब रागीपर अपना प्रथम कुप्रभाव दिखाना प्रारम्भ करे, उसी कालम इसकी चिकित्सा अपेक्षित है।

रोगीम[2] उपचारका सामर्थ्य होनेपर यह रोग साध्य भी है। अत रागीका यथासामर्थ्य इस रागका उपशमन अवश्य करना चाहिय, किंतु उपचार प्रारम्भ करनक पूर्व उसक वात आदि सभी प्रकारापर विचार करक हा पृथक्-पृथक् रूपसे प्रयोज्य औषधि तथा पथ्यापथ्य आहार ग्रहण करना हितकर होता है। वृद्ध प्राणीक शरीरम जा मिश्रित भावसे वातजादि कासरोग हात हैं, वह याप्य ह। उनकी उपक्षा करनेस खाँसी, श्वास, क्षय, वमन तथा स्वरभगादिक प्रतिश्यायका प्रकोप हाता है। इसकी उपक्षा करनसे कासराग असाध्य हा जाता है। इसलिय शीघ्र ही इसका उपचार कर लना चाहिय। (अध्याय १४९)

श्वासरोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—अब मैं श्वासरोगका निदान कह रहा हूँ।

कासरागके परिपक्व हा जानपर उसीसे शरीरम श्वासरागकी उत्पत्ति हाती है अथवा प्रारम्भकालम वात-पित्त तथा कफजन्य दापोक प्रकुपित होनेमे यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगका प्रादुर्भाव आमातिसार, वमन, विषपान और पाण्डु-रोग एव ज्वरसे भी हो जाता है। धूलि-ग्रहण, धूप तथा शीत वायुक सवन करनेसे भा इस रोगका जन्म हो सकता है। मर्मस्थलम आघात पहुँचनसे और बर्फीले जलका प्रयोग करनेसे भी शरीरम इस रोगका प्रकोप हो जाता है।

यह रोग क्षुद्र तमक, छिन्न, महान् तथा ऊर्ध्व नामसे पाँच प्रकारका माना गया है। कफक द्वारा सामान्य ढगसे शरीरम अवरोधित गतिवाला सर्वव्यापी वायु प्राणवाही, जलवाही अन्नवाही तथा रक्त-पित्तादिजन्य स्रोताको प्रकुपित करता हुआ जब हृदयम स्थित हो जाता ह तब वह आमाशयम श्वासरोगको उत्पन्न करता है।

इस रागका पूर्वरूप इस प्रकार होता है—रागीके हृदय और पार्श्व (बगल)-भागम शूल उठता है प्राणवायु शरारम प्रतिलाम-गतिसे प्रवाहित होने लगती है, रोगीक मुखसे पीडाक कारण बराबर आह-आहकी ध्वनि निकला करती है, फूटे हुए शङ्खको बजानेसे जैसी ध्वनि प्रकट होती है, वसी ही ध्वनि रोगीक शरारकी पीडाके कारण हाती है।

प्राय शरारम इन लक्षणाका उद्भव अधिक भोजन करनसे होता है। अधिक भाजन करनक दाषसे प्रेरित वायु स्वय मलस युक्त क्षुद्र श्वासका प्रेरित करता है अर्थात् अधिक भाजन करनसे रोगीकी साँस फूलने लगती है और उस मल-विसर्जन करनकी इच्छा होती है। ऐसी स्थितिमे कफके अवरोधको पार करके वायु प्रतिलाम-भावसे शिरोभागम प्रवेश करता ह, जिससे वह हृदयमे पहुँचता है और वहाँ आमाशयम जाकर श्वासरागको बल दता है।

यह वायु[4]-प्रकोप उस समय सिर, गला और हृदयभागका अपने अधिकारम लकर पार्श्वभागाम पीडा उत्पन्न करता हुआ खाँसी घुरघुराहट, मूर्च्छा अरुचि और पीनस तथा तृषाका उपद्रव शरीरम प्रकट करता ह। प्राणाका मन्थन करनेवाली साँस अत्यन्त वगस चलन लगता है। यद्यपि खाँसीके द्वारा कण्ठम आये हुए दूषित कफका थूकनसे तात्कालिक कुछ शान्ति रागीका प्राप्त हा जाती है और वह कुछ क्षणके लिये सुखका अनुभव कर सकता है।

श्वासके प्रकोपमे रागीका प्राणघातक कष्ट होता है। श्वासके प्रकोपसे अत्यन्त कष्ट हानपर रागी सा जाता है। यदि बैठ जाता है तब वह अपनेको कुछ स्वस्थ अनुभव

१-अ०हृ०नि०अ० ३ ३६-३७ सु०उ०५२। २-अ०हृ०नि०अ० ३ च०चि०अ० १८ सु०उ० ५२। ३-अ०हृ० नि०अ० ४ च०चि०अ० १७ सु०उ०अ० ५१ आयु०नि०चि०दर्श पृष्ठ ४१। ४-च०चि०अ० २१ अ०हृ०अ०४—७

करता है। इस प्रकुपित रोगके कारण रागीको कष्टाधिक्यके कारण आँखे ऊपरकी ओर निकलती हुई प्रतीत होती हैं, मस्तकसे पसीना छूटने लगता है और रागी अत्यन्त कातर हो उठता है। बार-बार श्वास आनेसे रोगीका मुँह सूख जाता है। वह काँपता है और उष्ण आहार या पेय पदार्थके सेवनकी अभिलाषा करता है। मेघ घिरनेपर, वर्षा होनेपर, शीत गिरनेपर एव पूर्वी हवा चलनेपर तथा कफकारक आहार-विहार करनेपर श्वासका वेग बढ जाता है।

यदि बलवान् मनुष्यके शरीरम तमक नामक श्वासरोग होता है ता वह याप्य—साध्य होता है। प्रथम दृष्ट्या तो ज्वर और मूर्च्छासे युक्त होनेपर रोगीके इस तमक श्वासका उपशमन शीतल द्रव्य पदार्थोंसे ही करना चाहिये। ऐसे रागके उपभेदमे रोगी खाँसी और श्वासके प्रकोपसे ग्रस्त, शरीरसे निर्बल तथा मर्मस्थलकी पीडासे अत्यन्त दु खी रहता है। उसे अधिक पसीना आता है मूर्च्छा होती है, पीडासे वह कराहता रहता है, उसके मूत्राशयम जलन एव पेशाब (मूत्र) रुक-रुककर होता है। विभ्रमका प्रकोप होता है। रोगीकी दृष्टि अधोगति रहती है, अधिक कष्ट तथा तापके कारण आँखे अपन स्थानसे निकलती-सी प्रतीत होती हैं, उनम चिकनापन तथा लालिमा छा जाती है, मुख सूख जाता है। कष्टके कारण रागी प्रलाप करता है। शरीरका तेज नष्ट होकर चेतना भी नष्ट हो जाती है तथा वह मृत्युको प्राप्त हो जाता है।

महाश्वासका[1] रोग-प्रभेद होनेपर रोगी अपने शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक महत्त्वसे रहित हो उठता है। वह दीन व्यक्तिके समान प्रतीत होता है, श्वासम पीडाके कारण आवाज तथा गलेम घडघडाहट होती ह। वह मतवाले साँडके समान रात-दिन धूलिधूसरित हाकर हुँकारके साथ श्वास छोडता है तथा ज्ञान-विज्ञानसे रहित हो जाता है। उसके नेत्र और मुखपर भ्रान्तिकी अवस्था आ जाती है। नेत्रोंसे वह किसी वस्तुको सत्यरूपम जान नहीं पाता। उसकी जिह्वाम खाये गय द्रव्य पदार्थोंके स्वादको बतानेकी शक्ति नहीं रह जाती। उसके नेत्रामे झपकी चढी रहती है। मूत्रके साथ रोगीका तेज भी निकलता ह। उसकी वाणी मुखसे टूटी-फूटी निकलती है। रोगीका कण्ठ सूख जाता है। उसकी बारम्बार साँस फूलती हे। उसके कान, गला और सिरम अत्यन्त पीडा हाती है। जिस रोगीकी लम्बी-लम्बी ऊर्ध्व गतिवाली साँस निकलती हे, वह अपने श्वासको नीचेकी ओर ले जानेमे समर्थ नहीं हो पाता।

इस महाश्वासके[2] रोगम रोगीके मुख और कान कफसे भरे रहते हैं। शरीरका प्रकुपित वायु उसे बहुत ही कष्ट देता है। अब में ऊर्ध्व श्वासके भेदकी समीक्षा कर रहा हूँ। इस रागमे रोगी चारो ओर अपनी दृष्टिको फेकता हुआ भ्रान्ति प्राप्त करता है। मर्म छेदनकी-सी वेदना होती है ओर वाणी रुक जाती है। इन तीनो प्रकारके श्वासोके लक्षण जबतक प्रकट नहीं होते हैं, तभीतक साध्य होते हैं, परतु लक्षण प्रकट हो जानेपर असाध्य हो जाते हे और निश्चित ही मृत्युकारक बन जाते हैं। (अध्याय १५०)

हिक्कारोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत। अब मैं हिक्का (हिचकी)-रोगके निदानको कहूँगा, आप उसे सुन।

श्वासरोगके जो-जा निदान—पूर्वरूप, सख्या, प्रकृति और आश्रयस्थान कहे गये हैं, वे ही हिक्कारोगके भी होते हैं। यह हिक्का पाँच प्रकारकी होती है—भक्तोद्भवा (अन्नजा), क्षुद्रा यमला महती और गम्भीरा। रूक्ष, तीक्ष्ण, खर तथा असात्म्य अन्न अथवा पेय पदार्थोंके सेवनसे प्रकुपित वायु हिक्कारोगको पैदा करती है। इस हिक्कारागम रोगी श्वास लेता हुआ क्षुधानुगामी मन्द-मन्द शब्द करता है। अन्न तथा पेय पदार्थके अयुक्तिपूर्वक सेवन करनेसे जो हिक्का (हिचकी) रोगीको आती है, उसे 'अन्नजा हिक्का' कहते हैं। यह हिचकी सात्म्य अन्नपानसे शान्त हो जाती है। अधिक परिश्रम करनेसे शरीरम प्रकुपित हुआ पवन 'क्षुद्रा हिक्का'को जन्म देता है। वह ग्रीवामूलसे निकलकर मन्द-मन्द गतिसे कण्ठके बाहर आता है। यह रोग अधिक परिश्रम करनेसे बढ जाता है, किंतु यथोचित मात्राम भोजन

१-च०चि० २१ अ०ह० नि०अ० ४। २-सु०उ० ५१ अ० ह०नि०अ० ४

कर लेनेपर कुछ शान्त हो जाता है।

जो हिचकी[1] अधिक समयसे एक या दो बार वेगपूर्वक आती है, परिणामतः वह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। अपने वेगमें जो रोगीके सिर और ग्रीवाभागको प्रकम्पित कर देती है, उसको 'यमला हिक्का'के नामसे स्वीकार करना चाहिये। इसमें रोगी प्रलाप करता है तथा उसका वमन होता है और उसे अतिसार हो जाता है, कमजोरीसे उसके नेत्र बैठ जाते हैं और जम्भाई आती है। ऐसी अवस्थावाली हिक्काको वेगवती परिणाम देनेवाली 'यमला हिक्का' कहते हैं।

जिस हिक्कारोगके वेगसे रोगीकी भौंह और कनपटियोंमें कष्ट होने लगता है, कान तथा नेत्र बंद हो जाते हैं, कानोंसे सुनायी नहीं देता है और आँखोंसे दिखायी नहीं पड़ता है। रोगीके शरीर, वाणी और स्मरणकी शक्तिको शिथिल करती हुई जो हिक्का अन्तमें उसे संज्ञाशून्य कर देती है, तथा अन्य इन्द्रियोंको दुःखित करती हुई वह उसके मर्मस्थलमें पीडा पहुँचाती है तथा रोगीको पीठभागसे झुका देती है एवं शरीरको शुष्क कर देती है, उस हिक्काको 'महती हिक्का' कहा जाता है। यह महामूला, महाशब्दा, महावेगा और महाबला होती है।

गम्भीरा नामकी हिक्का पक्वाशय, मलाशय अथवा नाभिभागसे अपने पूर्वस्वभावके अनुसार शरीरमें प्रकट होती है तो उस रोगीको जम्भाई लेनेके लिये विवश कर देती है। उसके हाथ-पैर आदि सभी अङ्ग फैलने लगते हैं। उस हिक्काके कुप्रभावसे रोगीका सम्पूर्ण शरीर शिथिल पड़ जाता है। इसमें गम्भीर शब्द होता है, इसलिये इसका नाम 'गम्भीरा हिक्का' है।

प्रारम्भमें[2] बतायी गयी भक्तोद्भवा (अन्नजा) तथा क्षुद्रा नामक जो दो हिक्काके प्रकार बताये गये हैं, वे साध्य होते हैं। उन दोनोंको छोड़कर शेष अन्य जो यमलादिक तीन हिक्काएँ हैं, वे असाध्य होती हैं। किंतु चिरकाल (पुरानी) हिचकी, वृद्ध मनुष्यकी हिचकी, अतिस्त्री-सेवीकी हिचकी, व्याधिद्वारा क्षीण देहवालेकी हिचकी, अन्नके अभावसे कृश मनुष्यकी हिचकी—ये सब असाध्य होती हैं। सभी रोग शरीरमें प्राणियोंका विनाश करनेके लिये ही आते हैं। किंतु वे वैसा शीघ्रता नहीं करते हैं, जैसा शीघ्रता इस हिक्काके यमलादिक भेद करते हैं। हिक्का और श्वास—ये दोनों रोग जैसे हैं, वैसे अन्य कोई रोग नहीं हैं। वे दोनों तो मृत्युकाल स्वरूप प्राणीके शरीरमें ही अपना डेरा डाल लेते हैं। (अध्याय १५१)

राजयक्ष्मा-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—अब मैं हिक्कारोगके पश्चात् यक्ष्मारोगके निदानको भलीभाँति कह रहा हूँ।

राजयक्ष्मारोगसे पूर्व प्राणीके शरीरमें अनेक रोग रहते हैं और बादमें अनेक रोग हो जाते हैं। इस रोगको राजयक्ष्मा, क्षय, शोष तथा रोगराट् भी कहा जाता है। प्राचीनकालमें नक्षत्र और द्विजोंके राजा चन्द्रमाको यह रोग हुआ था। एवं तो यह रोगोंका राजा है और दूसरे इसका नाम यक्ष्मा है। इसलिये इसे 'राजयक्ष्मा' कहा गया है। यह देह और औषधि दोनोंका क्षय कर देता है तथा शरीर और औषधिका विनाश करनेवाले रोगके रूपमें यह उत्पन्न होता है, इसलिये इसका क्षय नाम दिया गया है। यह रसादि धातुओंका शोषण करनेके कारण शोष नामसे भी जाना जाता है। राजाके समान रोगोंका राजा है, जिसके कारण रोगराजके नामसे अभिहित किया गया है।

साहसके कार्य, मल-मूत्रादिक वेगोंको बलात् अवरोध, शुक्र-ओज-शारीरिक स्निग्धताका विनाश तथा संयमित आहार-व्यवहारका परित्याग—ये चार इस यक्ष्मारोगकी उत्पत्तिके कारण हैं। शरीरमें उन्हीं कारणोंसे कुपित हुआ वायु पित्त एवं कफको व्यर्थमें ही कुपित कर देता है। तदनन्तर वह शरीरके संधिस्थानोंमें प्रवेश करके उनकी शिराओंको पीड़ित करता हुआ रक्त, अन्न, रसवाही आदि सभी स्रोतोंके मुखोंको बंद करता है अथवा उसी प्रकार उन सभीको छोड़कर हृदयभागमें जा पहुँचता है और उसके मध्य ऊपर, नीचे तथा तिरछे रूपमें व्यथित करता है।

इस रोगके उत्पन्न होनेसे पूर्व रोगीको प्रतिश्याय, ज्वर, प्रसार, मुखमाधुर्य, अग्निमन्दता तथा शारीरिक शिथिलताका दोष होता है। अन्न और पेय पदार्थके प्रति अनिच्छा तथा पवित्रमें अपवित्रताकी प्रतीति रोगीको होती है। ...

[1] [illegible] [2] [illegible]

उसको भोज्य एव पेय पदार्थोंमे मक्खी, तृण और बाल गिरनेका भान होता है। रोगीका हृदय कफादिसे संश्लिष्ट हो जाता है उसका वमन होता है। आहार-विहारके प्रति उसकी रुचि नहीं रह जाती है। भोजन करनेपर भी वह अपनेको शक्तिहीन समझता है। उसके हाथ-पैर, जंघा, वक्षःस्थल मुख, नेत्र तथा कुक्षिभाग सूख जाते हैं। रक्तकी कमीके कारण उसका रंग श्वेत हो जाता है। उसकी भुजाओंमें विशेष प्रकारकी पीडा होती है। उसकी जिह्वामे भी ज्वरादिके कारण उत्पन्न हुए छालोंसे कष्ट रहता है। उसको शरीरके प्रति स्वयं घृणा होती है। उसमे स्त्रीसंसर्ग, मद्य और मांसके प्रति प्रेम तथा घृणा दोनों होने लगते हैं। उसके सिरमे चक्कर आता है। इस रोगके होनेपर रोगीके नाखून केश तथा अस्थि अपेक्षाकृत पहलेसे अधिक बढते हैं। वह स्वप्नमे अपनी पराजय देखता है।

पतंग कृकल (गिरगिट) साही, बंदर, कुत्ता तथा पक्षियोंसे भयार्त होकर अपनेको पराजित या गिरता हुआ देखता है। स्वप्नमे अपने शरीरके बाल तथा अस्थिभागको भस्म होते हुए देखकर वह भयभीत होता है। वह स्वप्नमे ही वृक्षपर चढता है। उसे स्वप्नमे निर्जन ग्राम और देशका दर्शन होता है। जलरहित भूभागको देखनेके कारण उसे स्वप्नमे भय लगता है। उसको आकाशमें प्रकाशपुञ्ज तथा दावाग्निसे जलते हुए वृक्ष दिखायी पडते हैं जिससे उस रोगीका मन भयसे व्याकुल हो उठता है। ये सब लक्षण रोगप्रभावके कारण ही होते हैं। अत इसे पूर्वरूप कहते हैं।[1]

इस राजयक्ष्मारोगके कण्ठगत होनेपर रोगीको पीनस श्वास, कास स्वरभंग सिरपीडा अरुचि ऊर्ध्वनि श्वास शारीरिक शुष्कता वधजन्य कष्ट तथा वमन होता है। उसके पार्श्वभाग तथा संधिस्थानमें पीडा होती है। उसका शरीर ज्वरसे संतप्त रहता है। इस प्रकार इस राजयक्ष्माके उक्त ग्यारह लक्षण रोगीके शरीरमें पाये जाते हैं। उनके उपद्रवसे रोगीके कण्ठमे ऐसी पीडा होती है जैसी श्वासमार्गमे विकृति एवं हृदयवेदना होनेपर होती है। उसे जम्भाई आती है प्रत्येक अङ्गमे दर्द होता है मुखमें बार-बार थूक निकलता है मन्दाग्नि हो जाती है तथा मुखसे दुर्गन्ध आने लगती है।

इस राजयक्ष्माके रोगमें वायुप्रकोपके कारण रोगीके शिरोभाग तथा दोनों पार्श्वमें शूल उठता है जिसके कारण असह्य पीडा होती है। दर्दसे रोगीका अङ्ग-अङ्ग टूटता रहता है, कण्ठावरोध और स्वरभंग हो जाता है। पित्तदोष होनेसे रोगीका स्कन्ध-प्रदेश दाह तथा परम दाह, अतिसार, रक्तमिश्रित वमन मुखदुर्गन्ध ज्वर और एक प्रकारका मद रहता है। कफजन्य दोषके कारण रोगीको अरुचि, वमन, खाँसी, आधे शरीरका भारीपन, लारबाहुल्य पीनस, श्वास, स्वरभेद और अग्निमान्द्यका प्रकोप होता है। इसी अग्निमान्द्यता एवं शरीरमें शोथको उत्पन्न करनेवाले प्रदूषित कफजन्य दोषोंसे रोगीके रक्तवाही आदि स्रोतोंके मुखोंका अवरोध तथा धातुओंके क्षीण हो जानेपर हृदयमें दाह और अन्य उपद्रव होते हैं।

शरीरके अंदर पक्वाशय-भागमें उक्त दोषोंके कारण प्राय अन्न आम्लिक रसमें पकता है, जिसके कारण वह सिद्ध नहीं होता और न तो शारीरिक पुष्टतामें सहयोग करनेकी क्षमता ही अर्जित कर पाता है। रोगीके शरीरका ऐसा आम्लिक रस रक्त और मांसको पुष्ट करनेमें अक्षम होता है। सप्त धातुओंका पोषण न होनेपर रोगी केवल मलके भरोसे जीता है।

रोगीमें इन लक्षणोंके कम होनेपर भी अत्यन्त क्षीणता आ सकती है। इस रोगमें छ प्रकारका क्षय होता है। अत उन सभी प्रकारोंके क्षय होनेपर रोगीके शरीरमें होनेवाले उपद्रवोंका[2] यथोपचार रोककर यथासम्भव इस रोगको समूल दूर करनेका प्रयास करना चाहिये अन्यथा इस रोगसे प्राणीकी मृत्यु ही निश्चित होती है।

उक्त रोगके दोष पृथक्-पृथक् या समूहवत् शरीरपर प्रकट होते ही रोगीके मेदका क्षय हो जाता है, जिसके कारण उसके स्वरोंमें भेद, क्षीणता रूक्षता और चञ्चलता आ जाती है। वात-प्रकोप होनेसे रोगीका कण्ठ सफेद रंगका हो जाता है। उसके शरीरकी स्निग्धता तथा उष्णता समाप्त हो जाती है। पित्तदोषके कारण रोगीके तालु और कण्ठमें दाह होता है और निरन्तर वह सूखता जाता है। रोगीका मुँह और कण्ठ कफसे संलिप्त रहता है। उसके गलेसे घुरघुराती हुई ध्वनि निकलती है। उस कालमें रोगी स्वयं सभी विरुद्ध आचरणोंसे प्रभावित हो उठता है। अत वह उसका और उन्मुख हो जाता है, जिससे अन्य सभी लक्षणोंकी उत्पत्ति हो जाती है। इससे रोगी मृत्युको ही प्राप्त

१-सु उ० ४१ अ० हृ० नि अ० ५ २-च०चि०अ० १६ अ०हृ०नि०अ० ५

होता है। वैसी स्थितिमें रोगीको सब ओर धुएँके समान ही दिखायी देता है और सभी कफजन्य लक्षण उसमें प्रकट हो उठते हैं।

इस क्षयरोगसे बचना बड़ा ही कष्टसाध्य है। यदि सभी लक्षणोंसे युक्त होकर यह प्राणीपर आक्रमण करता है तो रोगीकी जीवनरक्षा असम्भव हो जाती है। अतः अल्प लक्षणोंके दिखायी देते ही इस रोगको शरीरसे दूर करनेहेतु विधिवत् चिकित्सा करनी चाहिये। (अध्याय १५२)

अरोचक, वमन आदि रोगोंका निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपको अरोचकरोगके निदानके विषयमें बताऊँगा। जब वात-पित्त तथा कफजन्य दोष जिह्वा और हृदय या मनका आश्रय लेते हैं, तब प्राणीके शरीरमें अरोचकरोग उत्पन्न होता है।

यह रोग वातजन्य, पित्तजन्य तथा कफजन्य—इन तीन रूपोंके अतिरिक्त सन्निपातजन्य और मनःसंतापजन्य भी होता है। इस रोगके पाँच प्रकार हैं। यथा—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और मनःसंतापज। वात आदि दोषोंसे होनेवाली अरुचिमें रोगीका मुख क्रमशः वायुमें कसैला, पित्तमें तिक्त, कफमें मीठा या माधुर्ययुक्त, सन्निपातमें विकृतरस तथा शोक-दुःखादिमें दोषानुसार स्वादवाला[२] हो जाता है। इस रोगमें रोगीको किसी द्रव्य-विशेषका आस्वाद नहीं प्राप्त होता है। शोक, क्रोधादिमें मनकी जैसी स्थिति होती है, उसी प्रकार उसकी भोजनादि ग्रहण करनेकी अभिरुचि होती है। जब मन शोकादिके कारण खिन्न रहता है तो भोजनके प्रति अरुचिके कारण उसे अन्नादि ग्रहण करनेकी अनिच्छा हो जाती है। इस रोगमें अग्निदुष्टि ही प्रधान कारण है।

छर्दि[३] अर्थात् वमनरोग पाँच प्रकारका होता है—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा अनभिप्रेत (इच्छाके विपरीत)। दुष्ट पदार्थोंके ग्रहण करनेसे पाँचवीं छर्दि होती है। सम्पूर्ण प्रकारके वमनरोगमें उदान वायु प्रकुपित होकर सभी प्रकारके अधिकृत दोषोंको उद्दीप्त करता है, जिसके फलस्वरूप क्रमशः शीघ्रातिशीघ्र रोगीको कष्ट होता है, मुख लवणयुक्त रहता है तथा उससे पानी छूटता है और धीरे-धीरे आहार-व्यवहारके प्रति अरुचि हो जाती है। इस रोगमें रोगीकी नाभि तथा पृष्ठ-प्रदेशमें वेदना होने लगती है। रोगीके पार्श्वभागमें भी पीड़ा होती है, जिसके कारण पेटमें अवस्थित अन्न ऊपरकी ओर पक्वाशयसे निकलने लगता है। अर्थात् रोगीको वमनकी इच्छा होती है। अन्ततोगत्वा रोगीके मुँहसे कषाय और फेनयुक्त थोड़ा-थोड़ा करके वमन होता है।

इस वातजन्य वमनरोगमें अत्यन्त कष्टसाध्य पीड़ाके साथ रोगीको तेज दर्द होनेके कारण चिल्लाना पड़ता है। उसको खाँसी आती है, उसके मुखमें शोथ होता है और उसकी वाणीमें स्वरभंग होने लगता है।

पित्तजन्य वमनरोग होनेपर रोगीको क्षारसे युक्त जलके समान धूम्र, हरित या पीतवर्णवाले पित्तका वमन होता है अथवा रक्तसे युक्त अम्ल, कटु, तिक्त पित्त उसके मुँहसे निकलता है। उसके शरीरमें तृष्णा, मूर्च्छा, संताप तथा अग्निके समान दाहका प्रकोप होता है।

कफजन्य वमनरोगके होनेसे रोगीमें स्निग्ध, घनीभूत पीत तथा मधु (शहद)-के समान मधुर, श्लेष्मा (कफ)-का उदय होता है। यह कफ लवण-रससे भी युक्त हो जाता है। इस कफदोषके कारण उत्पन्न वमनके कष्टसे रोगीको भयवश रोमाञ्च हो जाता है। इस रोगमें रोगीके मुखमें शोथ हो जाता है। उसके मुखमें मिठास भरी रहती है, उसके नेत्रोंमें तन्द्रा छायी रहती है, उसके हृदयमें कष्ट होता है और उसे खाँसी आती है।

सन्निपातिक वमनरोगमें सभी दोषोंके लक्षण दिखायी देते हैं। ऐसी अवस्थामें उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। ऐसे रोगीका देखना, सुनना आदि कुछ अच्छा नहीं लगता है।

वातादिके प्रकुपित होनेपर ही उदरभागमें कृमिजन्य और अन्नजन्य वमनरोग भी उत्पन्न होता है। कृमिजन्य छर्दिरोगमें शरीरमें शूल, कम्पन, मिचली तथा हल्लास (हृदयकी धड़कन)-के उपद्रवकी उत्पत्ति विशेष रूपसे ही होती है। (अध्याय १५३)

१-च०चि०अ० ८ सु०उ०त०अ० ५७
२-अ०हृ०नि०अ० ५, च०चि०अ० २६
३-च०चि०अ० २३ सु०उ० त०अ० ४९
४-च०चि०अ० २० अ०हृ०नि०अ० ५

हृदय-तृषारोगका निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपसे हृदयरोगका निदान कहूँगा।

हृदयको सामान्यत सभी रोगासे रुग्ण बनानेवाले प्रतीक दोप वात पित्त, कफ तथा सन्निपातके साथ कृमिदोप भी है। जिसके कारण हृदयम वातज, पित्तज कफज, सन्निपातज और कृमिज—ये पाँच प्रकारके रोग माने गये हैं।

वातदोपके कारण वातज हृदयरोगीको अपने हृदयमें तीव्र शूलका अनुभव होता है, सूईके चुभने और फटनेकी-सी पीडा होती है। दापके कुप्रभावसे हृदयमे उठी हुई असह्य वेदनासे व्यथित होकर रोगी रोता रहता है। यह वातज दाप हृदयको विदीर्ण कर देता है। उसके दुष्प्रभावसे शरीरपर शुष्कता छायी रहती है। रागी दु ख-सुखकी अनुभूतिम स्तब्ध (अवाक्) बना रहता है। स्वयम उस शून्यताकी अनुभूति हाती है। मनमे भ्रमकी स्थिति उत्पन्न हा जाती ह। अकस्मात् उसम दीनता शाक भय, शब्द-श्रवणम असहिष्णुता, कम्पन माह श्वासरोध तथा अल्पनिद्राके लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं।

पित्तदोपसे हृदयरोगीको तृष्णा, थकान, दाह, स्वेद, अम्ल उद्गार, क्लम (थकान), अम्लपित्तात्मक वमन धूम्रदर्शन और ज्वर हाता है। कफजन्य दाष होनेसे हृदयम स्तब्धता तथा हृदयके अदर पत्थरके समान भारीपन हो जाता है। इन दोषाक अतिरिक्त ऐसे रोगीको खाँसी अस्थि, पीडा थूक, निद्रा, आलस्य, अरुचि और ज्वरका भी उपद्रव होता है।

हृदयरोगमे जब उपर्युक्त तीना दापोके लक्षण शरारम प्रकट हो उठते हैं तो वह सन्निपातज हृदयरोग हो जाता है। कृमिजन्य हृदयरोगम रोगीके नेत्राका वर्ण काला हो जाता है। उसके नेत्राके सामने अन्धकार छाया रहता है। उसको हल्लास शोथ खुजलाहट तथा मुँहसे कफ आता है। इस रोगमे रोगीका हृदय ऐसी असह्य पीडासे व्यथित होता हे, जैसे वह आरेसे चीरा जा रहा हो। यह रोग बडा भयकर और शीघ्र प्राणघातक होता है। इसलिये इस रोगकी शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये।

वात पित्त, कफ, सन्निपात, रसक्षय तथा बलकी अल्पता और उपसर्ग—इस प्रकार तृषा (तृष्णा या तृषारोग) छ प्रकारका होता है (उनके नाम हैं—वातज, पित्तज कफज, सन्निपातज, बल (रस)-क्षयज तथा उपसर्गज)। इस प्रकारके सब तृषारोगोका मुख्य कारण तो वात-पित्तसश्रित दोपमे विद्यमान रहता है। इन दोपोके द्वारा रोगीके शरीरकी धातु (शक्ति)-का शोपण होनसे चक्कर, कम्पन, ताप हृद्दाह, मोह तथा मूर्च्छाका उपद्रव होता हे। इस रोगमे जिह्वाके मूलभाग, कण्ठ और तालुम सञ्चार करनेवाली जलवाही शिराआको शुष्क बनाकर तृष्णा (प्यास) उत्पन्न होती है।

इस तृषारोगमे मुखशोप, जलसे अतृप्ति, अन्नके प्रति घृणा, स्वरभग तथा कण्ठ-ओष्ठ, तालुकी कर्कशताके कारण जिह्वा निकालनेम रोगीको कष्ट होता ह। वह असह्य वेदनाके कारण प्रलाप करता हे, उसका चित्त स्थिर नहीं रहता तथा मनम अनेक प्रकारके उद्गार उठते हैं। वायु-प्रकापके कारण उत्पन्न तृषासे शरीरम कृशता और दीनता आ जाती है, सिरमे शखोद्भेद, असह्य पीडा और भ्रम उत्पन्न होता है। पित्तदोपक कारण तृषारोगी गन्ध-ज्ञानकी क्षमतासे रहित श्रवण-शक्तिसे निर्बल, निद्राहीन तथा अन्य शारारिक क्षमताआके ह्रासोन्मुख होनेसे बलहीन हो जाता है। उसका शीतलताका अनुभव होता है और मुखसे अम्लयुक्त फेन निकला करता है।

पित्तज तृषारोगमे रोगीके मुखम तिक्तता बनी रहती है और मूर्च्छाका भी प्रकोप होता है। रोगीके नेत्र रक्तवर्णके हो जाते हैं। उसके मुखम निरन्तर शुष्कता बनी रहती है। शरीरम दाह रहता है और मुँहसे अत्यन्त धूमायित वायु छूटती है।

कफज तृषारोगमे वायु प्रकुपित हो उठती हे। उसके कुप्रभावसे अन्त स्थ स्रोत कफयुक्त हो जाता है और उसके बाद वह उसम पकवत् सूख जाता है। उसका कण्ठभाग काँटोसे चुभते हुएके समान व्यथित होता है। रोगीम निद्रा छायी रहती है और उसका मुख सदेव मधुर (मीठा) बना रहता है। ऐसा रोगी पेट फूलने, सिरपीडा, जडता, शुष्कता वमन, अरुचि, आलस्य तथा अग्निमान्द्यके दोपसे युक्त होता है।

जिस तृषारोगम तीना दोपोके मिले हुए लक्षण पाये

१-च०चि०अ० २६ सु०उ० ४३ च०चि०अ० ४३
२-च०चि०अ०२६ सु०उ०अ० ४३
३-च०चि० २२ सु०उ०त० अ० ४८ अ०हृ०जि०अ० ५

जाते हैं, वह त्रिदोषसे उत्पन्न होती है। इस रोगमे आँवकी उत्पत्तिके कारण रक्तवाही स्रोतका अवरोध होता है। जिसके कुप्रभावसे वात-पित्तका दोष शरीरमे उत्पन्न हो जाता है। उससे रोगीके शरीरमे उष्णता बढ जाती है, जिसके कारण शीतल जल प्राप्त करनेकी अभिलाषिणी तृष्णाका प्रादुर्भाव होता है अर्थात् रोगी इस कालमे प्याससे बेचैन हो उठता है। उसी उष्णताके कारण शरीरमे प्रविष्ट हुआ जल जब ऊपरी कोष्ठमे जाता है, तब उस पित्तजा नामक तृष्णाकी उत्पत्ति होती है। अत्यधिक जल पीनेसे जो तृष्णा शान्त नहीं होती अपितु तीव्रगतिसे बढती ही जाती है, वह शरीरके स्निग्ध अंशको जला देनेवाली होती है। उसको स्नेहपाकजा अथवा पित्तजा नामकी तृष्णा कहा गया है।

स्निग्ध, कटु अम्ल तथा लवणरससंश्लिष्ट भोजन करनेसे कफोद्भव तृष्णाका जन्म होता है। जब तृष्णा शरीरके रसको विनष्ट करनेवाले उपर्युक्त लक्षणसे समन्वित हो जाती है, तब वह क्षयात्मिका तृष्णा कहलाती है। जो शोष-मोह-ज्वर आदि अन्य दीर्घकालतक रहनेवाले रोगोके कारण शरीरमे तीव्र तृष्णा उत्पन्न होती है, उसे उपसर्गात्मिका तृष्णाके नामसे स्वीकार किया गया है।

(अध्याय १५४)

मदात्यय-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं प्राचीन मुनियोके द्वारा प्रतिपादित मदाधिक्यके निदानको कहता हूँ।

मद्य, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, अम्ल व्यवायी, आशुकारी, लघु, विकाशी तथा विशद होता है। ओज इसके विपरीत होता है अर्थात् ओज मन्द, शीत मधुर, सान्द्र स्निग्ध स्थूल चिरकारी गुरु और पिच्छल होता है। तीक्ष्णादि दस गुण मद्यमे होता है और यही गुण विषमे भी होते हैं, जो प्राणियोके चित्तमे हलचल मचानेवाले तथा प्राणघातक होते हैं। प्रथम मदमे मद्य अपने तीक्ष्णादि दस गुणोंसे ओजके मन्दादि दस गुणोको सक्षुभित करके चित्तमे विकार उत्पन्न कर देता है। दूसरा मद प्रमादका स्थान है।[1] इसमे दुष्ट विकल्पोसे उपहत मनुष्य कर्तव्याकर्तव्यसे अज्ञान होकर मद्यके द्वितीय वेगको अधिक सुखकर मानता है। रजोगुणी या तमोगुणी मनुष्य मध्यम और उत्तमकी संधि अर्थात् द्वितीय और तृतीय मदकी मध्यावस्थामें पहुँचकर अंकुशरहित मदोन्मत्त निरंकुश हाथीकी तरह कुछ भी नहीं करता। यह मद्यावस्था निन्दनीय मनुष्यों तथा दुःशीलोकी भूमि अर्थात् एकमात्र मदिरा ही अनेक मुखवाली दुर्गतिकी आचार्य है। मदकी तीसरी अवस्थामे पहुँचकर मनुष्य निश्चेष्ट होता हुआ मौन होकर सोया रहता है। वह पापात्मा मरनेसे भी अधिक बुरी दशामे पहुँच जाता है। मद्यमे आसक्त मनुष्य धर्म-अधर्म सुख-दुःख मान-अपमान हित-अहित, शोक-मोहकी अनुभूतिसे रहित हो जाता है। वह शोक मोहादिसे समन्वित रहता है। ऐसा प्राणी उन्माद-भ्रम और मूर्च्छामे सदैव विद्यमान होता है और अन्ततोगत्वा मिर्गीके रोगीके समान भूमिमे गिरकर छटपटाता रहता है। जो व्यक्ति बलवान् हैं, समुचित भोजन करते हैं या यथाशक्ति प्रचुरमात्रामे भोजन करके पचा जाते हैं उनमे मद नहीं होता है। यह मदात्ययरोग वात-पित्त तथा कफके प्रकुपित होनेके कारण उत्पन्न हुए अन्य सभी दोषोसे होता है।

इस प्रकार वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सन्निपातिक नामसे यह मदात्यय चार प्रकारका होता है। मोह, हृदयवेदना पुरीषभेद, निरन्तर तृषा, कफ, पित्तज्वर, अरुचि, हृदयमे विबन्धता अन्धकार, खाँसी, श्वास, निद्रा न आना, पसीना विष्टम्भता, सूजन, चित्तविभ्रम, स्वप्नदर्शनसे घबडाहट, मना करनेपर भी बोलते रहना आदि—ये सब मदात्ययके सामान्य लक्षण हैं।

पित्तदोषके कारण मदात्यय होनेपर प्राणी दाहज्वर, स्वेद मोह, प्यास, अतिसार और विभ्रमके कारण उपद्रवमे ग्रस्त होता है। श्लेष्मज मदात्ययरोगमें रोगी वमन, हृल्लास (धडकन) निद्रा तथा अग्निमान्द्यके कारण उदरकी गुरुताके दोषसे सत्रस्त रहता है। सन्निपातिक दोषवाले मदात्ययमें पूर्वकथित सभी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह सब जानकर जिस प्राणीकी अभिरुचि सहसा मद्यपानमे हो जाती है तो उसमे ध्वंसक और शोषक—ये वातज व्याधियाँ हो जाती हैं। ये कष्टसाध्य होती हैं और विशेषकर दुर्बल मनुष्यको होती हैं।

१-च०चि०अ० २४ १२ अ०हृ०नि०अ० ६

ध्वसकमे कफकी प्रवृत्ति कण्ठशाप, अतिनिद्रा, शब्दका न सहना होते हैं, विक्षय (शापक)-रोगमे चित्तविक्षेप, अङ्गमे पीडा, हृदय तथा कण्ठम रोग, सम्माह, खाँसी, तृष्णा, वमन तथा ज्वर होते हें। अत जा व्यक्ति जितेन्द्रिय हो, वह इन सभी बातापर विधिवत् पहले विचार करे। तदनन्तर वह मद्यके दोषसे अपनेको दूर कर ले। इसीमें उसका कल्याण है। मद्यसे दूर रहनेवाला शारीरिक तथा उन्माद आदि मानसिक विकारोसे कभी कष्ट नहीं पाता है।

रजोगुण तमागुणकी प्रधानतावाले मोहजन्य दोष तथा असयमित आहार करनेवाले प्राणीका मद मूर्च्छा और सन्यास नामक तीन प्रकारक रोग होते हैं। यथा—शरीरम इनका प्रकोप होनेपर ये तीना रोग रस, रक्त और चतनाके ही स्रोतोके निरोध हो जानेस होते हैं। इनम मदसे मूर्च्छा और मूर्च्छासे सन्यास उत्तरोत्तर बलवान् होते हैं।

मदात्ययरोग मद वात, पित्त, कफ तथा सन्निपातके दोपोसे तो होता ही है, किंतु रक्त मद्य और विपके कारण भी यह शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। शरीरमें शक्तिकी अनन्तता न होनेके कारण जब शक्ति क्षीण हो जाती है तो प्राणी अपनी शक्तिका आभासमात्र करता है। उसकी चित्तवृत्तियाँ चञ्चल हो उठती हैं। वह छल-कपटके व्यवहारसे घिरा रहता है।

वातज मद्यसे मनुष्यका शरीर रूक्ष-श्याम और अरुण-वर्णका हो जाता है। पित्तज मद्यसे प्राणी क्रोधी हो उठता है। उसके शरीरका वर्ण लाल आर पीला हो जाता है। वह कलहमे अभिरुचि लेता है। कफोत्पादक मदात्ययम रोगी जब सोता हे ता उसे स्वप्न दिखाया दत हैं। स्वप्नम असम्बद्ध, अनर्गल प्रलाप करता है। उसकी चित्तवृत्तियाँ किसी विशेष ध्यानम एकाग्र होकर अनुरक्त रहती हैं। सभी दोपाके कारण उत्पन्न होनेवाले सन्निपातजनित मदमे प्राणीका वर्ण रक्त हो जाता है और उसके शरीरम स्तम्भन होने लगता है, जिसक कारण उसके अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो जाते हैं।

इस मदात्ययरोगमे तो प्राणीके शरीरम पित्तदोप सर्वप्रथम ही प्रकट हा जाता है। उसकी समस्त शारीरिक चेष्टाएँ विकृत हो जाती हैं। उसे तृष्णा स्वरभग तथा अज्ञानकी अवस्था प्राप्त हाती हे। उसका सद्-ज्ञान नहीं रह जाता है। विपज मदमे शरीरमे कम्पन होता है। वह गहन निद्रामे सोता है और उसको इस मदात्ययरोगम अत्यधिक थकानकी अनुभूति होती है।

मनुष्यको शरीरके अदर विद्यमान रक्त, मज्जादिम उभरे हुए वात-पित्त तथा कफजनित दोपोके लक्षणाको देखकर यथापेक्षित वातज, पित्तज, कफज या सन्निपातज मदात्ययका निर्धारण करना चाहिये और उसी रोगक अनुसार चिकित्सा भी करनी चाहिये। यथा—वातज मदात्यय (मूर्च्छा) होनपर सामान्यत रोगी आकाशको लाल-नीला अथवा काला रग देखता हुआ अपनेको अन्धकारम पहुँचा हुआ मूर्च्छित मानता है। शीघ्र मूर्च्छा टूटनेपर वह हृदयकी पीडा—कम्पन तथा भमसे सतप्त रहता है।

जो व्यक्ति वातिक मदात्ययदोपसे ग्रस्त होता है उसे खाँसी आती है और कान्ति पीली एव लाल रगकी हो जाती है। वह अधिकतर मूर्च्छाम ही रहता है। पित्तात्मक दोषकी सामान्यत परिणतिम रोगीको आकाश रक्त अथवा पीतवर्णका प्रतीत हाता है और अन्तम उसे अन्धकार-ही-अन्धकार दिखायी देता है। उस समय उसका विशेप प्रकारका ज्ञान प्राप्त होता है। उसके शरीरसे पसीना निकलता है। वह शरीरम उत्पन्न हुए दाह, तृष्णा तथा तापसे पीडित हो उठता है। कफस सश्लिष्ट होनपर रोगीको एक छिन्न-भिन्न हाती हुई नीली-पीली आभा दिखायी देती है। उसके लाल, पील और नीले नेत्राम व्याकुलता छायी रहती है। कफज मूर्च्छामे रोगी आकाशका मघासे आच्छन्न देखता हुआ मूर्च्छित हो जाता है। उसे गहन निद्रा आती है, इसलिये उसकी नींद बहुत देरके बाद टूटती है। होशमे आनेपर उसक हृदयमे धडकन होती ह और प्राण सूखते हुए प्रतीत होते हैं। उक्त दोषक कारण उत्पन्न हुए भारीपन और आलस्यके वशीभूत हुए अङ्गोसे उसका ऐसी अनुभूति हाता है जैसे शरीर राजधर्मसे अनुप्राणित पुरपा (सिपाहिया)-के द्वारा प्रताडित किया गया है। इन सभी दापाका प्रभाव जब एक साथ शरीरपर पडता है ता सन्निपातकी अवस्था आ जाती है। उस कालके मदात्ययम प्राणीका सम्पूर्ण शरीर (अपस्मार) मिर्गीके रोगसे ग्रस्त हुएक समान पृथ्वीपर गिर पडता है। अपस्मारमे रोगीकी चेष्टा बीभत्स हो जाती ह और इसम नहा होता हे।

१-अ०हृ०नि०अ० ६ २-सु०उ०त०अ० ४६ अ०हृ०नि०अ० ६

वातादिक दोषाके वेग समाप्त होनेके कारण उत्पन्न मदात्ययकी मूर्च्छा आर अन्य उपद्रवोमे ग्रस्त प्राणियाके कष्टाका उपशमन जिना औपधिक उपचारके ही सयमित रहनेसे स्वयमेव हो जाता है। परतु सन्यासका रोग औपधके बिना शान्त नहीं होता। इस मदात्ययकालमे वाचिक, शारीरिक तथा मानसिक चेष्टाआके दबावम निर्बल प्राणी स्वय प्राणाघात ही करते हैं। जिसस वे मर हुएके समान काष्ठवत् हा जात हैं। यदि उनकी चिकित्सा शीघ्र नहीं का जाती है तो वे अविलम्ब ही मर जाते हैं।

ग्राहादिक हिंसक जलचरास भरे हुए अथाह जलराशिवाल समुद्रके समान इस सन्यास मदात्ययरोगक सागरमें डूब रह प्राणीको शीघ्र ही रक्षा करनी चाहिये। उसमे मद, मान, रोप, सतोप आदि विभिन्न प्रवृत्तियाँ होती हैं। उन्हीं प्रवृत्तियोके द्वारा वह यहाँ-वहाँसे उचित और अनुचितका विचार करके यथापेक्षित कार्यमे सामान्य विधिका प्रयोग करता है, किंतु अयुक्तिपूवक मद्यपानसे प्रभावित दशामे ऐसा सम्भव नहीं है। उस कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान नष्ट हो जाता है। (अध्याय १५५)

अर्श (बवासीर)-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत। अब मैं अश (बवासीर) नामक रागके निदानका विषय बताऊँगा।

प्राणियाक मामम जो कीलक सदा उत्पन्न हाते हैं, वे कीलक गुदाके द्वारका अवराध करत हैं, इसलिये उन्ह अर्श कहा जाता है। वात-पित्त तथा कफजन्य दोष शरीरम स्थित त्वक् मास आर मेदाको दूषित करके अपानवायुके मागम अनक आकृतियोवाले मासाकुरोको जन्म दता है, उन अकुराका अश माना गया ह। जो अर्श शरीरके साथ हा उत्पन्न होता हे उसे 'सहज' ओर जो जन्म लेनेके बाद उत्पन्न हाता हे, उम 'जन्मान्तरोत्थान' कहते है। इस दृष्टिसे अशक दा भेद हुए। प्रकारान्तरसे इसके दो भेद और हैं—एक शुष्क (वादी बवासीर) आर दूसरा है स्रावी (खूनी बवासीर)। गुदा नामक स्थानका आश्रय लेकर अवस्थित रहनेवाली शुष्क अगभागसे युक्त परस्पर भिन्न नाडियाका स्थान है। गुदाभागका परिमाण साढे पाँच अगुलका होता है। उसीमे नीचकी आर साढे तीन अगुलके भागम य राग स्थित रहते है। उनम एक नाडी बालाको जन्म देनेवाली शक्तिका सञ्चार करती है और एक नाडी आँतके मध्यभागसे होकर नीचेका ओर आती है। यही आमाशयसे निकलनवाले मलका लाकर गुदामार्गस बाहर करती है। उसी विसर्जन कार्यके कारण उसे विसर्जनी नाडीके नामसे अभिहित किया गया है। उस विसर्जनी नाडीके बाह्यभाग अर्थात् गुदाके मुख- द्वारके बाह्यभागम एक अगुलका जा स्थान है उसीमे इन मासाकुरोका जन्म हाता है। उसके बाद डढ अगुलके परिमाणभागमे गुदौष्ठक परे रोमवती त्वचा है, जिसपर रोम नहीं उत्पन्न होते हैं। वहींपर सहोत्थ अर्शका कारण विद्यमान रहता हे, जो बाल्यकालमे उपतप्त अर्थात् सहोत्थ दोपका उत्पन्न करनेकी सामर्थ्यसे युक्त हो जाता है।

प्राणियाम इस अर्शरोगका बीज तो माता-पिताक कुपथ्यसे उत्पन्न हाता है। देवताआके प्रकुपित होनपर तो यही दूसर रूपसे सान्निपातिक दोपका भी बीज बन जाता है। प्राणियोमें इस प्रकारके जो कुल (वश)-क्रमागत रोग होते हैं, वे सभी असाध्य माने गय हैं। सहजोत्थ अर्श तो विशेपरूपसे दखनेमे दुस्साध्य, अन्तर्मुखी, पाण्डुवण सन्निहित ओर भयकर उपद्रव मचानेमे समर्थ होते हैं। शारीरके वात-पित्त तथा सन्निपातदोपके अनुसार इनको वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, ससर्गज त्रिदोपज तथा रक्तज रूपमे नियोजित किया जा सकता है। अर्थात् इन सहजोत्थ अर्श दोपके यही छ प्रकार हैं।

इनमेसे शुष्क अर्श वात और कफस होते हैं और आर्द्र अर्श रक्त एव पित्तसे होते हैं। उसके दोपके प्रकोपका कारण तो पहले ही कहा जा चुका है। इसके अतिरिक्त उदरस्थ अग्निमान्द्य तथा मलाधिक्यकी एकत्रित अवस्थामे अतिशय अत्यल्प तथा असामयिक जलपान देश-कालादिके

१-प्रवाहिणी संवरणा और विसर्जनी।
२-च०चि०अ० १४ सु०नि०अ० २ अ०ह०नि०अ० ७

विपरीत कठिन और अल्पाहार ग्रहण करनेके कारण भी यह उत्पन्न होता है। वस्ति, नेत्र, गले और ओष्ठादिक भागोंमें घट्ट—रगड (घेठा), अधिक शीतल जलके सम्पर्श तथा बैठकर लगाम आदिसे साधे जानेवाले वाहन (अश्वादि)-की सवारी करनेसे भी इस रोगकी उत्पत्ति होती है। यह रोग हठात् मल-मूत्रादिक वेगको धारण करने और निकालनेसे भी हो सकता है। ज्वरगुल्म अतिसार, ग्रहणीरोग, शोथ तथा पाण्डुरोगके प्रभाव एव दौर्बल्यकारक आहारादिके सेवनसे अन्य उपद्रव और विषम चेष्टाओंसे भी इसका जन्म होता है। स्त्रियोंमें अपक्व-गर्भपात, गर्भवृद्धि तथा तज्जन्य पीडाके कारण इस उपद्रवकी उत्पत्ति होती है।

इन्हीं सब कारणोंसे अपानवायु मलस्थानके भागमें कुपित हो जाता है। तदनन्तर वह गुदाभागका शुद्ध कार्य करनेवाली वलियोंमें अपना कुप्रभाव छोडता हुआ अर्शके उन कीलकोंके रूपोंमें जन्म लेता है।

इस रोगका पूर्व लक्षण अग्निमान्द्य, विष्टम्भ, पैरोंमें पीडा, पिण्डुलिका कष्ट, भ्रम, शरीरमें शिथिलता नेत्र, शोथ मलभेद तथा मलग्रह है। इस रोगमें शरीरके अग्रभागसे निश्चेष्ट वायु नाभिभागसे नीचेकी ओर सचरण करता हुआ पीडितकर रक्तसश्रित होकर बडी कठिनाईसे बाहर निकलता है। इस रोगमें आँतभागसे अव्यक्त गुडगुड शब्द होता है। क्षारसहित उद्गार अतिशय मूत्र अल्पविष्ठा (मल), घृणा, धूमायित डकार, सिर-पीठ, वक्ष स्थलमें पीडा आलस्य तथा धातुक्षरणका उपद्रव होता है। इसमें इन्द्रिय-सुखकी चञ्चलता एव दु ख होनेके कारण रोगीमें क्रोधकी मात्रा बढ जाती है। इस रोगके प्रभावसे रोगीमें विष्ठा-त्यागकी आशङ्का बनी रहती है। उसके पेटमें सग्रहणी, शोथ पाण्डु तथा गुल्म नामक रोगोंका भी उपद्रव होता है।

इतना ही नहीं, अर्शरोगके होनेसे प्राणियोंमें ये रोग भली प्रकारसे बढते ही जाते हैं। उन अर्शकीलकोंसे गुदामार्ग अवरुद्ध होनेके कारण अपानवायु भी क्रुद्ध हो उठता है जिसके फलस्वरूप वह शरीरकी समस्त इन्द्रियोंमें स्थित अन्य समानादिक भेदवाले वायु-प्रभेदोंको क्षुब्ध एव विचलित कर देता है। वह वायु मूत्र मल, पित्त तथा कफ रस-रक्तादिको सक्षुब्ध करता हुआ जठराग्निको मन्द बना देता है। उससे प्राय सभी प्रकारके अर्शरोग[1] उत्पन्न हो जाते हैं।

शरीरमें इन सभी अर्श-भेदोंका प्रकोप होनेपर रोगीके शरीरमें अत्यन्त दुर्बलता, उत्साहहीनता, दैन्य तथा कान्तिहीनता आ जाती है। वह रोगी साररहित वृक्षके समान सारहीन और छायारहित हो जाता है। मर्मस्थलको पीडित करनेवाले अत्यन्त कष्टसाध्य उक्त रोगोंका उपद्रव हो जानेसे रोगी एक दिन यक्ष्माके रोगसे भी ग्रस्त हो उठता है। उसके शरीरमें कास, पिपासा, मुखविकृति, श्वास, पीनस, खेद, अङ्ग-भग, वमन, हिचकी, शोथ, ज्वर, नपुसकता, बधिरता, स्तब्धता तथा शर्करा एव पथरीरोग हो जाते हैं। वह क्षीणकाय, स्वरभग, चिन्तातुर, अरुचि, बारम्बार थूकनेवाला और अनिच्छित स्वभावका हो जाता है। उसके सभी पर्व तथा अस्थिभागमें पीडा होती है। उसका हृदय नाभि, पायु और वक्षणभाग शूलसे ग्रस्त हो उठता है। उसके गुदामार्गसे चावलके धोवनके समान द्रव निकलता है जो वर्णमें बगुलेके उदरभागके समान होता है। यह मल कभी-कभी सूखा हुआ, मोतीके अग्रभागकी कान्तिसे सम्पन्न, पके हुए आमके समान पीत, हरा, लाल, पाण्डु हल्दिया तथा पिच्छिलवर्णका होता है।

वात-प्रकोपके कारण रोगीके गुदाभागमें जो मासाकुर निकलते हैं, उनके बीच भागसे अपानवायु अधिक मात्रामें निकलता है वे सूखे हुए होते हैं, उनमें चिमचिमाहट या चुनचुनाहट होती है, उनका वर्ण गाढे अगारके समान लाल होता है। वे पीडाके कारण रोगीको स्तब्ध बना देते हैं, उन सभी अकुरोंमें विषमता होती है और उनका स्वभाव बडा ही कठोर होता है। इतना ही नहीं, उनमें विशेष समानता भी प्राप्त होती है। वे वक्र और तीक्ष्ण तथा फटे हुए मुखवाले होते हैं।

वातजन्य अर्शके सभी मासाकुरोंकी आकृतियाँ बिम्ब, खजूर, बेर तथा कपासके फलोंकी भाँति होती हैं। कुछ अकुर कदम्ब-पुष्प और कुछ सरसोंके फूलके समान आभावाले होते हैं।

इस रोगके होनेपर रोगीके सिर, पार्श्व, स्कन्ध, जघा,

[1] १-च०चि०अ० ८ १४ अ०हृ०नि०अ० ७

ऊरु और वक्षणभागमे अधिक पीडा होती है। रोगीको हिचकी, उद्गार, विष्टम्भ, हृदयमे पीडा तथा अनिच्छाका प्रकोप होता है। उसको खाँसी आती है, श्वास फूलता है और अग्निमन्दता बढ़ जाती है। उसके कानोमे ध्वनि गुञ्जरित होती रहती है। उसको सदैव भ्रम बना रहता है।

इस रोगमे गाँठदार प्रवाहिकाके लक्षणोसे युक्त झागदार, पिच्छिलताविशिष्ट बहुत-सा विष्ठा थोडा-थोडा शब्दकर निकलता है। मलत्यागके समय अत्यन्त वेदना और शब्द होता है। रोगीकी त्वचा काली पड जाती है। उसके मल-मूत्रमे अवरोध बना रहता है। उसके नेत्र और मुखपर भी रोगका प्रभाव छाया रहता है। उसको गुल्म, प्लीहा, उदर अष्ठीला-सम्बन्धित विकारोके सहित हृल्लास (दिलमे धडकन)-का भी रोग हो जाता है।

जो पित्त-प्रकोपके बाद अर्श-सम्बन्धी अकुर निकलते हैं, वे नीलवर्णके समान मुखवाले तथा लाल-पीली और काली आभासे युक्त होते हैं। इन मासाकुरोके अग्रभागसे पतला रक्तस्राव होता है। इनका आकार लम्बा, कोमल और आर्द्र रहता है। इनकी लम्बी आकृतियाँ प्राय शुकजिह्वा यकृतखण्ड तथा जोंकके मुखकी तरह होती हैं। इस अर्शरोगमे रोगीके शरीरमे दाह, शुष्कता, ज्वर, स्वेद, तृष्णा मूर्च्छा, अरुचि एव मोहका प्रकोप रहता है। उसको उष्ण-द्रवयुक्त, नीलवर्ण पीत वा रक्तवर्णका मल पडता है, जो प्राय आँव और धातुसे सश्लिष्ट रहता है। रोगी यवके समान कटि-भागवाला हो जाता है। उसके शरीरकी त्वचा और नख आदिकी कान्ति हरित पीत तथा हल्दीकी-सी वर्णवाली हो जाती है।

कफजनित विकारके कारण उत्पन्न होनेवाले मासाकुर पुष्ट मूलभागसे युक्त सघन, मन्द वेदनाजन्य और श्वेत-वर्णके होते है। इनमे स्निग्धता स्तब्धता और भारीपन होता है। ये मासाकुर चिकने, नीले तथा कोमल होते हैं और इनमे खुजलाहट होती है। इन्हे छूनेसे सुख मालूम पडता है।

ये मासाकुर बाँसके निकले हुए अकुर कटहलकी गुठली तथा गायके स्तनोकी आकृतिमे पाये जाते हैं। इस अर्शसे ग्रस्त प्राणीके ऊरुभागसे ऊपर सधिस्थान मलद्वार, वस्ति और नाभि-प्रदेशमे ऐसी पीड़ा होती है, जैसे उन स्थानोको कोई काट-काटकर फेक रहा हो। रोगी खाँसी श्वास हल्लास शुष्कता अरुचि पानस मेहकृच्छ्र सिरपीडा जडता, वमन, शीतप्रकोप, क्षीणतेजस, नपुसकता अग्निमान्द्य तथा अतिसार आदिक विकारोसे युक्त हो जाता है।

ऐसे रोगीको चनाके समान प्रतीत होनेवाले कफके साथ रक्तमिश्रित मल पडता है। किंतु रक्तका स्राव नहीं होता और न कष्ट ही होता है। रोगीके चर्म आदि श्वेत तथा स्निग्ध हो जाते है।

जिन लोगोमे इस रोगका त्रिदोषजन्य प्रकोप होता है उनमे सभी ससृष्ट लक्षणोका उपद्रव होता है। रक्ताधिक्य अर्श होनेसे मासाकुरके लक्षण पित्तज अर्शके समान हो जाते हैं। इसमे रक्तसे भरे हुए वटकी बरोहके सदृश, लाल गुञ्जाफल और मूँगके समान रक्त होते हैं। उन लाल अकुरोपर जब गाढ़ मलका दबाव पडता है, तब वे अत्यधिक मात्रामे विकृत गाढ़ रक्तका प्रवाह करते हैं। उस समय रोगीको पीडा भी अधिक होती है। अधिक मात्रामें रक्तके गिर जानेसे रोगी मेढककके समान पीला पड जाता है। उस दुर्बलतामे उत्पन्न हुए अनेक कष्टोसे पीडित रहता है। वह वर्ण बल, उत्साह और ओज सभीसे रहित हो जाता है। उसकी इन्द्रियाँ कलुषित हो जाती हैं। मूँग कोदो जम्बीर (नीबू), ज्वार, करील और चनाका आहार करनेसे उसके गुदाभागमे वायु कुपित हो उठता है और बलपूर्वक वह अधोवर्ती विष्ठादिक स्रोतोको अवरुद्ध कर उनके मल-मूत्रादिको सुखाकर कष्टप्रद बना देता है। उसके कुप्रभावसे रोगीके काख, पार्श्व, पीठ और हृदयभागमे भयकर पीडा होती है। पेटमे मलके रहनेसे हृदयमे धडकन होती है, अधिक पीडा रहती है, वस्तिभागमे शूल होता है और गण्डस्थलमे शोथ आ जाता है।

शरीरमे जब वायु ऊर्ध्वगामी हो जाता है तो उसके कारण रोगीको वमन अरुचि, ज्वर हृदयरोग सग्रहणी मूत्रदोष, बहरापन सिरपीडा श्वास चक्कर, खाँसी, पीनस मनोविकार, तृष्णा श्वास (कास) पित्त, गुल्म तथा उदरादिके रोग होते है ये सभी वातज रोग है। इनका स्वभाव अत्यन्त कठोर और कष्टकारी होता है। वातदोषका यह प्रकोप ही दुर्नामा, मृत्यु तथा उदावर्त अर्थात् वायुगोलाके नामसे स्वीकार किया गया है। इस वातदोषसे पीडित कोष्ठ-भागमे यह रोग पूर्वोक्त कारणोके बिना भी उत्पन्न हो जाता है। सहज अर्श जन्म धारणके पीछे त्रिदोषसे उत्पन्न हुए अर्श और भीतरवाली वलिमे उत्पन्न अर्श असाध्य होता है।

परतु यदि अग्निबल और आयु शेप हो तथा सम्यक् चिकित्सा हो तो असाध्य रोग भी कष्टसाध्य हो जाते हैं।

गुदाभागकी दूसरी वलिमे जो अर्शाकुरोका समूह होता है वह द्वन्द्वज अर्शाकुरोका समूह माना जाता है। इसकी तत्काल वर्ष-भीतर ही चिकित्सा अपेक्षित होती है अन्यथा यह भी कष्टसाध्य हो जाता है। गुदाभागकी बाहरी वलिमे त्रिदोषजन्य जो अर्शाकुर होते हैं, उनको सामान्य औषधिक उपचारसे दूर किया जा सकता है, किंतु अधिक समय बीत जानेपर वे भी कष्टसाध्य हो जाते हैं।

मेदादि स्थानोमे इसी प्रकारके अर्श होते हैं। ऐसा ही नाभिदोषके कारण उत्पन्न हुए अर्शाकुरोका स्वभाव माना गया है। जो अर्शाकुर गण्डस्थल (गुदाके भीतर)-मे होते हैं, उनका रूप पिच्छिल (फिसलाहटस युक्त) तथा कोमल होता है। व्यानवायु कफको आभ्यन्तरभागसे निकालकर त्वचाके बाह्य प्रदेशपर अर्शके रूपमे परिवर्तित कर देता है। वह कीलकके समान स्थिर तथा खर होता है। उसको विद्वानोने चर्मकील (या मस्सा)-के नामसे स्वीकार किया है। वातज दोषके कारण उत्पन्न चर्मकील (मस्सा) अत्यन्त कठोर सूईकी नोकके समान तीक्ष्ण वेदनावाला और खुरदुरापनयुक्त होता है। पित्तदोपसे उत्पन्न हुआ कीलक कृष्ण, लाल मुखभागवाला माना गया है और जो कफजनित होता है, उसमे स्निग्धता, ग्रथिता तथा त्वचा वर्णता होती है।

बुद्धिमान्[२] व्यक्तिको अर्शरोग होनेपर यथाशीघ्र उसके उपशमनका प्रयत्नपूर्वक प्रयास करना चाहिये। क्योंकि वे शान्त नहीं होनेपर शीघ्रातिशीघ्र शरीरके गुह्य-प्रदेश तथा उदरभागमे बद्धगुदोदर आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न कर देते हैं। (अध्याय १५६)

अतिसार-ग्रहणी-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपको अतिसार तथा सग्रहणीरोगके निदानकी बात बताता हूँ।

वात-पित्त-कफ और सन्निपात दोषके कुपित होनेसे ही इन रोगोकी उत्पत्ति होती है। भय तथा शोकके कारण भी ये प्राणियोके शरीरमे उत्पन्न हो सकते हैं। अतः वातज, पित्तज, कफज सन्निपातज भयज तथा शोकजके रूपमे इनके छः भेद हो जाते हैं।

अतिसाररोग अधिक जल पीनेसे होता है। इसके अतिरिक्त सूखे अकुरित एव कच्चे अन्न, तेल पदार्थ वसा (चर्बी) और तिलकुटको अधिक खानेसे भी यह उत्पन्न हो जाता है। मद्यपान, रूक्षाहार, अधिकतम मात्रामे रस और तेलका सेवन तथा उदरजन्य कृमियोके प्रकोपसे एव वेगारोधसे शरीरका वायु प्रकुपित हो उठती है। तदनन्तर वह अपानवायुके रूपमे शरीरके अधोभागमे जाकर उस दोषका विस्तार कर जठराग्नि-शक्तिको ह्रासोन्मुखी बना देता है। उस अग्निकी मन्दताके कारण शरीरमे गया हुआ अन्न-पिण्ड और पहलेसे स्थित पुरीष (मल) भस्म अथवा सूखनेकी अपेक्षा द्रवतादिके दोषमे बदलकर अतिसाररोगके लक्षणको प्रकट करता है। उस रोगसे प्रभावित होनेवाले रोगीके हृदय, गुह्यभाग तथा आमाशयादिमे पीडा होती है, शरीरमे अवसाद होता है एव पुरीषका निरोध और अपच होता है। शरीर पसीनेसे युक्त हो जाता है और कष्टकी उत्पत्ति होती है। वातदोषके कारण शरीर शिथिल पड जाता है, पाचनशक्ति सुचारुरूपसे कार्य नहीं करती है तथा शरीरमे विशेष प्रकारका ज्वर रहता है। उस दोषके कारण उदरमे कुछ गुडगुडाहट भी बनी रहती है। गुह्य भागसे बार-बार सूखा हुआ फेनसे युक्त स्वच्छ ग्रथित, जलाइन्ध और पिच्छिल (कचडाहीन) मल कष्टके साथ होता है। इस रोगमे मलद्वार शुष्क एव विकृत होकर बाहर निकल जाता है, मल निकलनेमे कष्ट होता है। उस कष्टके कारण रोगी लम्बी-लम्बी श्वास छोडता हुआ काँखता रहता है।

पित्त[४]-दोषसे रोगीका पीत-कृष्ण-हल्दी तथा नवाकुर तृण वर्ण रक्तके सहित अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण दस्त होता है। उसको तृष्णा मूर्च्छा स्वेद और दाहका प्रकोप भी होता है। कफजनित अतिसाररोगके होनेपर गुह्यभागमे दाहपाक शूल उठता है और संतापजनित कष्ट होता है। इस रोगमे मल द्रवयुक्त न होकर कठोर, भारी एव घनीभूत रूपमे गुदाभागसे बाहर निकलता है, वह पिच्छिल (कचडाहीन) रहता है।

१-सु०नि०अ० ५६ अ०हृ०नि०अ० ७
२-च०चि०अ० १५, सु०नि०अ० २ अ०हृ०नि०अ० ७
३-च०चि०अ० १९ अ०हृ०नि०अ० ८ सु०उ०त अ० ४०
४-सु०उ०अ० ४ अ०हृ०नि०अ० ८

उसीके अनुसार वह बहुत ही कम या अधिक मात्राम उदरक अदर विद्यमान मलस्रोतम पाया जाता है। मल-निस्सारणक समय कष्टक कारण रागीको रामाञ्च, हर्ष मिचली और क्लेशकी अनुभूति हाती है। शरीरक अदर भारीपन रहता ह और इसीक कारण वस्ति-प्रदेश, गुदाभाग आर उदरम भी भारीपन बना रहता है। ऐसे रागीका दस्त हानक उपरान्त भी दस्तकी अनुभूति बनी रहती हे। जब वह वात-पित्त तथा कफजन्य सभी दोषपूर्ण लक्षणोसे युक्त हो जाता है अर्थात् रोगीके शरीरम सन्निपातजन्य अतिसारका प्रकोप जन्म ग्रहण कर लेता हे ता रागी उस समय उक्त समस्त वातादिक त्रिदोपाके लक्षणसे समन्वित बन जाता हे। भयवश चित्तके विक्षुब्ध होनेपर स्थान-विशयम पडे हुए रोगीक उदरभागका मल द्रवीभूत हा उठता है। तदनन्तर उस द्रवपूर्ण मलको यथाशीघ्र वायु गुह्यमार्गसे बाहर निकाल देता ह अर्थात् भयवशात् रोगीम मलात्सर्गकी इच्छा बलवती हो उठती हे और अन्ततागत्वा उसे पानीके समान मल हाता हे। वात तथा पित्तदापस हानेवाले अतिसाररोगके एक समान ही लक्षण बताय गय हें, वैस ही लक्षण शाकज अतिसारम भी उत्पन्न हात हे।

सक्षिप्तत अतिसाररागके दो प्रकार ह। उनम प्रथम साम ह आर द्वितीय निराम हे। साम अतिसाररोगम मल आँवके सहित हाता है किंतु निराम अतिसारम आँव दापरहित मल निकलता हे उनम एक सरक्त हाता है ओर दूसरा बिना रक्तका हाता हे। साम अतिसारम मल बडा दुर्गन्धित हाता है और जलम डालनसे डूब जाता है। रागीके पेटम गुडगुडाहट, विष्टम्भ वेदना ओर मुखप्रसेक होता है। निरामक लक्षण सामसे विपरीत होते हें कफजन्य हानके कारण पक्व हानपर भी मल जलम नहीं डूबता हे। जो अतिसारम सावधानी नहीं करता उस ग्रहणीराग हो जाता है।

अग्निमान्दताका बढानवाल अत्यधिक मात्राम किय गय दापपूर्ण आहार-विहारक सवनस अतिसाररागका प्रादुर्भाव हाता हैं। जब रागीक शरीरस साम या निराम मल अत्यधिक निकलता है तो उसे अतिसार कहते हें। मलात्सर्ग अधिक हानक कारण इसकी अतिसार सज्ञा हैं। यह स्वाभाविक आशुकारी है। यहा अतिसार जीर्ण हानपर सग्रहणीराग बन जाता है। ग्रहणीरागम भुक्त अन्नके अजीर्ण हानेपर कभी आमसहित और कभी सान मल निकलता है। अन्नके जीर्ण होनेपर कभी पक्व मल निकलता ह, कभी कुछ नहीं निकलता और कभी बार-बार बँधा या ढीला दस्त हाता है। यह रोग चिरकारी हाता है, इसलिये इसे सग्रहणी कहते हैं। सग्रहणी चिरकारी तथा अतिसार आशुकारी होता है।

इस रोगमे एकाएक मलकी प्रवृत्तिका बारम्बार सघात होता है अथवा वह एकाएक रुक-रुककर बाहर निकलता है। ऐसा यह सग्रहणीरोग वात-पित्त तथा कफजन्य दोपसे ता तीन प्रकारका है ही, किंतु सन्निपातिक दोषके कारण भी उत्पन्न हाता हे। इस प्रकार यह चार प्रकारका हो जाता है। रागीके शरीरम शिथिलता, अग्निमान्द्य, खट्टी डकार, मुखसे लालास्राव, धूमनिर्गमवत् प्रताति, तमक, ज्वर, मूर्च्छा, अरुचि तृष्णा, थकान, भ्रम, अपच, वमन, कानम भनभनाहट और अन्त्रकूजन—ये ग्रहणीके पूर्वरूप हैं। वातज ग्रहणीरोगमें तालुशाथ तिमिररोग दोनो कानामे शब्द पसली ऊरु, वक्षण आर ग्रीवाम दर्द बार-बार विसूचिका सब कुछ भोजनकी इच्छा, क्षुधा, तृषा केचीसे कतरनेकी पीडा अफरा कुछ भोजन करनस स्वस्थता फेनसहित मल—ये सब लक्षण उपस्थित होते हें। रोगी वातज, हृद्रोग, गुल्म अर्श प्लीहा ओर पाण्डुरागकी शका करन लगता है। देरम कष्टक साथ पतला या गाढा थोडा कच्चा एव फेनयुक्त बार-बार मल आता है। गुदाम दर्द और श्वास-खाँसी भी उठन लगती है।

पित्तज[२] ग्रहणीरोगमे रागी पीला पड जाता है। उस पीला, नीला और पतला दस्त होता हे। वह दुर्गन्धित खट्टी डकार हृदय ओर कण्ठम दाह, अरुचि और तृषासे पीडित रहता है।

पित्तज ग्रहणाके होनेपर रागीका मल द्रवरूप हा जाता हे ओर कफजन्य ग्रहणीरोग हानेपर रोगीका अन्न कठिनतासे पचता हैं। उसको छरछराहटभरा वमन हाता हैं। उसे भाजनम अरुचि होन लगती है। उसके मुखम दाह होता है। उसका कफयुक्त खाँसा आती है। उसक हृदयस उबकाई छूटती है और जुकाम हो जाता है। उसका हृदय पाडित आँर उदर भारी-सा प्रतीत होता है। उसपर आलस्य छा

१-च०चि०अ० १५ अ०हृ०नि०अ० ८ २-च०चि०अ० १५, १९ सु०उ०त० अ० ४०

जाता है। उसे मीठी-मीठी डकार और शरीरमे शिथिलता आने लगती है। रोगीको समान या कुछ कम-अधिक मात्राम कफसे युक्त मल होता है, जो भारी तथा अम्लताके दोपसे सश्लिष्ट रहता है। उस रूपम प्राय मैथुन अशक्ति एव रोगीकी शक्तिका अधिक ह्रास होता है। इस रोगम बलवान् व्यक्ति भी दुर्बल हो जाता है और उसम रोगके सभी लक्षण दिखायी देने लगते है।

शारीरप्रकरणके अङ्ग-विभाग नामक तीसरे अध्यायमे जो विपम, तीक्ष्ण एव मन्द नामक तीन पित्ताग्नियाँ कही गयी हैं, वे भी ग्रहणी-दोप ही हैं। केवल समाग्नि उत्तम स्वास्थ्यकी हेतु है। इस रोगमे भी प्राणीको प्यास लगती है, अधिक मल निकलनेके कारण भूख सताती है, हर क्षण शिथिल होते हुए शरीरके कारण उसके मनम विकृत चिन्ताएँ भी बढ जाती हैं। समस्त रोगाका यही—मल ही कारण है। इसी मलके शरीरम रहनेपर प्राणीम वातव्याधि (बाई), अश्मरी (पथरी), कुष्ट (काढ), मेह, जलोदर, भगदर, बवासीर और ग्रहणीराग होता है—ये आठो राग महारोग माने गये हैं, इनका निदान अत्यन्त कठिन है और ये कष्टसाध्य हैं।

(अध्याय १५७)

मूत्राघात-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब इसक बाद आप मूत्राघातका निदान सुने।

वस्ति[1] (पेड़ू अर्थात् नाभि-प्रदेशसे नीचे और मूत्र-प्रवाहिकाके ऊपरका भाग), वस्तिशिर (मूत्र-प्रवाही नली), मेढ्र (जननेन्द्रिय अर्थात् लिग), कटी (कूल्हेके भागके गड्ढे), वृपण और पायु (गुदा) नामक शरीरके ये छ अङ्ग विशेप है, जो परस्पर एक-दूसरेसे सम्बद्ध और एक ही जगह ग्रथित हैं। इन सभीका आश्रय गुदाभागमे रहनवाले अस्थि-विशपक छिद्रसे सम्बद्ध रहता है। पेड़ू (वस्ति) अधोमुखी है। इसमे चारा ओरसे सूक्ष्म शिराआके मुखभागसे होकर रिसाव होता रहता है, इसम वस्ति मूत्रमे भरी रहती है। इन्हीं शिराओसे वात-पित्तादि दोप भी वस्तिम प्रविष्ट हो जाते हैं, जिससे मूत्राशयमे बीस प्रकारके राग उत्पन्न हो जात हैं। मर्माश्रित होनेके कारण ये प्रमेहादि राग अत्यन्त कष्ट-साध्य है, अर्थात् इन रागाक हानस रागीका मर्माहत करनेवाली पीडा हाती है। रोगीक पेड़ू वक्षण और लिगभागम भी कष्ट होता है। उस कष्टसे गुप्ताङ्गाक द्वारा होता हुआ मूत्र अल्पमात्राम बार-बार निकलता है। वातजरोगम प्राणीको मूत्र कष्टके साथ होता हे। पित्तज मूत्राघात होनपर मूत्र पाला लाल तथा दाहसे युक्त हा जाता है और उसक मूत्राशयम रुके रहनेपर अत्यन्त पीडा हाती है। जब यह रोग कफज होता है तो उसक पड़ू और लिगम भारीपन तथा शाथ आ जाता है। मूत्र पिच्छल और रुक-रुककर हाता है। रोगीपर सर्व-दापजन्य मूत्राघात हानेस सभी लक्षण पाये जाते हैं। जब वायु वस्तिके मुखका आच्छादित कर कफ, मूत्र और वीर्यको शुष्क कर दता ह, उस समय रोगीके शरीरम अश्मरी (पथरी) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। यह राग बडा भयकर हाता है। जैसे गायका पित्त सूखकर गोरोचन बन जाता है, वैसे ही यह अश्मरी होती हे। प्राय सभी प्रकारकी पथरियाँ कफाश्रित ही होती हैं। इस रोगका पूर्वलक्षण इस प्रकार है—

इस रोगके होनेम वस्तिभागम अवरोध हाता है अथवा उसके सन्निकट अन्य किसी भागम भी हो सकता हे। जिस भागम होता है उस भागके चारा आर अवयवाम अत्यधिक पीडा होती हे। वस्तिभागम मूत्रका अवराध तथा उसकी कृच्छ्रता बनी रहती हे। रोगीक मूत्रम अजामूत्रके समान गन्ध ज्वर आर अरुचि होती है। इस रागका सामान्य लक्षण तो यह है कि रागीके नाभि-लिगमणि आर वस्तिके शिराभागम कष्ट रहता हे। अश्मराद्वारा मार्गावरोधके कारण वहाँ उस समय पर्याप्त भागम मूत्र फैल जाता है। वह रुक-रुककर बाहर निकलता है। मूत्र निकलनपर रागीको सुखानुभृति होती है। उस मूत्रका वर्ण गोमद या गोमूत्रके समान झलकता रहता है।

मूत्र-निर्गमनेम एसा प्रकोप हो जानपर रक्त मास तथा धातु-प्रवाहक मार्गम कष्ट होता ह। वातजरागसे व्यथित रागी अपने दाँताको किटकिटाता हुआ काँपता है। मूत्रसे

१-सु०नि०अ० ३ मा०नि०पृ० ५०५ सु०उ०त० ५८। २-वा०नि० ९ अ०ह०नि०अ० ९

भरे हुए नाभिसे नीचे स्थित वस्तिभागको पकडकर दबाता हुआ वह कराह उठता है। अपानवायुके सहित मल-पिण्ड उसके गुह्यभागसे निकलता है और बूँद-बूँद करके मूत्र टपका करता है। वातज दोषके कारण शरीरमे उत्पन्न हुई अश्मरीरोगका वर्ण श्याम है। उसमे रूक्षता रहती है। देखनेमे वह काँटोसे विधी हुई-सी प्रतीत होती है।

पित्तज दोषके कारण उत्पन्न इस अश्मरीरोगमे वस्तिभाग जलने लगता है। उसमे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे अदर-ही-अदर कुछ पक रहा हो। इस पित्त-दोषजन्य अश्मरीका स्वरूप भल्लातक (भिलावेके बीज)-के समान होता है। इसका वर्ण लाल पीला अथवा काला होता है।

कफजन्य अश्मरी होनेसे वस्तिभागमे पीडा होती है। उस स्थानमे भारीपन तथा शीतलताका अनुभव होता है। इस रोगमे उत्पन्न हुई अश्मरी आकारमे बडी, चिकनी, मधु (शहद) अथवा श्वेतवर्णा होती है। ये तीनो अश्मरी प्राय बालकोमे हुआ करती हैं। आश्रय मृदुता और उपचयकी अल्पताके कारण बालकोकी अश्मरी ग्रहण करके सुखपूर्वक निकाली जा सकती है।

शुक्रके वेगको रोकनेसे प्राणीके शरीरमे शुक्राश्मरी नामक भयकर रोगकी उत्पत्ति होती है। जब धातु-प्रवाहिका नाडीसे गिरा हुआ अथवा कुपित वीर्य दोनो अण्डकोशोके बीच रुक जाता है और लिग-मार्गसे वह बाहर नहीं निकलता तब वहाँ स्थित विकृत वायु विक्षुब्ध होकर उसको सुखा देता है उसी दोषसे इस शुक्राश्मरीका जन्म होता है। इस रोगमे भी वस्तिभागमे पीडा होती है। रोगीको मूत्र[1] निर्गत करनेमे कष्ट होता है। इसका भी वर्ण श्वेत माना गया है। इसके कारण मूत्रावरोध होनेमे तत्सम्बन्धी स्थानोमे सूजन आ जाती है। अण्डकोष और उपस्थेन्द्रियके बीचमे हाथसे दबाया जाय तो वह विलीन हो जाती है। इस रोगके हो जानेपर रोगीको पीडा होती है उसके दुष्प्रभावसे ज्वर हो जाता है रोगीको खाँसी आने लगती है। इसी अश्मरीरोगके कारण रोगीके शरीरमे शर्करारोगका विकार भी उत्पन्न हो जाता है। यदि इसकी अनुलोम गति होती है तो यह मूत्रके साथ बाहर निकल जाती है अथवा मूत्रके साथ प्रतिलोम-अवस्थामे अदर ही रुक जाती है। क्रुद्ध हुआ वायु वस्तिभागके मुखको रोककर आमाशयके जलस्रोतसे नीचे आनेवाले उस मलिन जलको एकत्र कर देता है। इस मूत्रके सचित होनेसे वस्तिभागमे विकारकी उत्पत्ति होती है रोगीको कष्ट होता है और उस भागमे खुजलाहट होने लगती है।

रोगीके शरीरमे विक्षुब्ध वह वायु वस्तिभागके मुखको विधिवत् ढककर मूत्रावरोध उत्पन्न करता है तथा वस्तिको अपने स्थानसे हटाता हुआ उल्टा या इधर-उधर करके वस्तिमे विकृति उत्पन्नकर गर्भ-जैसा स्थूल (मोटा) बना देता है एव उस स्थानको पीडित करता है। वहाँ उसके कारण जलन होती है। उसमे स्पन्दन होने लगता है और कूल्होमे भी पीडा प्रारम्भ हो जाती है। रोगीका मूत्र बिन्दुवत् टपकता है, वह अपने सही वेगसे नहीं निकलता। वस्तिभागमे पीडा बनती रहती है। दबानेपर मूत्र धारा- रूपमे निकलता है। वायुजन्य इस रोगको वातवस्तिके नामसे स्वीकार किया गया है।

वातवस्तिके दो भेद हैं—पहला वस्तिके मुखको रोकनेवाला दुस्तर कहलाता है और दूसरा दुस्तरतर। वस्तिके मुखको ऊपर करनेवाला अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य है क्योकि इसमे वायुका विशेष प्रकोप होता है। मलमार्ग तथा वस्तिभागके बीच स्थित वायु अष्ठीलाकृति अर्थात् गोलककडी या अँगुलीके समान घनीभूत शक्तिशाली, मजबूत ग्रन्थि (गाँठ) उत्पन्न करता है, जिसके कारण इसको वाताष्ठीला नामसे अभिहित किया गया है। इस रोगमे वायु रोगीके अपानवायु तथा मल-मूत्रको अवरुद्ध कर देता है। वस्तिभागमे विद्यमान कुपित वायु कुण्डली मारकर तीव्र पीडाको जन्म देता है। वहाँ मूत्रको रोककर वह उसमे अत्यधिक स्तम्भनका दोष उत्पन्न करता है। ऐसी अवस्थामें रोगीको बहुत ही अल्प मात्रामे बार-बार मूत्र होता है तथा ऐसी अवस्थामे रोगी मूत्रको अधिक देरतक रोकनेमे असमर्थ रहता है। ऐसे रोगको वातकुण्डलिका कहते हैं। जब रोगी रुके हुए मूत्रको निकालनेमे पीडाका अनुभव करता है तो वह निरुद्ध मूत्र-कृच्छ्ररोग है अथवा मूत्रको अधिक कालतक रोकनेके पश्चात् यदि उसका वेग नहीं आता है या रुक-रुककर आता है और कुछ कष्ट होता है तो उसको मूत्रातीत कहा जाता है।

मूत्रके वेगको रोकनेसे प्रतिहत हुआ मूत्र अथवा वायुसे

१ मु०नि०अ० ३ अ०हृ०नि०अ० ९। २ मा०नि० मूत्राघात प्र० ४। ३-मा०नि०मूत्राघात प्र० २ ३ श्लोक ७ ८

पीछेको घुमाया हुआ मूत्र जब नाभिके नीचे उदरमे भर जाता है, तब वह तीव्र वेदना और आध्मान पैदा करता है और मलका सग्रह करता है। इसे मूत्रजठर कहते हैं। मूत्रके दोषसे अथवा कुपित वायुके द्वारा आक्षिप्त हुआ थोडा-सा मूत्र वस्ति नाल, उपस्थकी मणिमे स्थित हाकर थोडा-थोडा दर्द करता हुआ अथवा बिना दर्दके ही निकलता है, इसे मूत्रोत्सर्ग या मूत्रजठर कहते हैं।

अबार्धगतिसे मूत्रोत्सर्ग होना प्राणीके श्रेष्ठ अण्डकोपापर निर्भर होता है। एकाएक रुका हुआ मूत्र निकल जानेपर अन्त करण और मुख शुष्क हो जाता है। अधिकाधिक या अल्प मात्रामें प्राणीको प्यास लगती है। वस्तिके आभ्यन्तर भागमे मूत्रावरोधके कारण अश्मरीके सदृश एक ग्रन्थि पड जाती है, जिसको मूत्रग्रन्थि कहते हैं। मूत्र-राग[२]-ग्रसित रागीका जव स्त्रीके साथ सहवास होता है तो उस समय वायुके द्वारा ही स्त्रीके गर्भाशयमे शुक्र पहुँच जाता है, किंतु स्थान-विशपसे निकला हुआ वह शुक्र मूत्र-क्षरण होनेसे पहल अथवा बादमे लिगसे बाहर आता है। इसका स्वरूप भस्ममिश्रित जलके समान होता है। उसको वैद्यकमे मूत्रशुक्रके नामसे जाना जाता है।

जब रूक्षता और दुर्बलताके कारण वातजन्य दोषसे उदावर्त उपद्रव होता है अर्थात् शरीरके अदर विद्यमान अपानवायु व्यानवायुसे घिर जाता है अर्थात् मलावरोध हो उठता हे तो उस कालम वह मल-मूत्र स्रोतकी ससृष्टिसे सयुक्त हो जाता हैं। इसम मूत्र बूँद-बूँद ही होता है और इस टपकनेवाल मूत्र-बिन्दुआम एक दुर्गन्ध-सी रहती है। एसे रोगको मूत्रविघातक नामसे स्वीकार किया जाता है।

पित्त[१], व्यायाम, तीक्ष्ण और अम्लाहार तथा आध्मान (पेट फूलन) अथवा अन्य विकृतियाके द्वारा शरीरके आभ्यन्तरिक भागम चढा हुआ पित्त-वायु-विकार वस्तिभागम दाह उत्पन्न कर दता है, जिसके कारण रक्तयुक्त मूत्र निकलता है अथवा उष्ण रक्त ही उसकी मूत्र-प्रवाहिकासे बार-बार कष्टपूर्वक गिरता है। इस प्रकारके कष्टको उत्पन्न करनके कारण लागाने उस रोगको उष्णवातकी सज्ञा दी है।

रूक्षाहार तथा परिश्रम करनेसे श्रान्त रागीका पित्त और वायु कुपित हा उठता हे। वह उसके वस्तिभागमे मूत्रावरोध, पीडा, क्षय ओर जलन उत्पन्न कर दता है। उस लक्षणसे युक्त मूत्राघात-कष्टको मूत्रक्षय कहा गया ह।

यदि कुपित वायुक द्वारा पित्त और कफ अथवा इन दोनाको सक्षुब्ध कर दिया जाता है तो उस समय प्राणीको जलन, कष्टसाध्य मूत्र-निर्गमन होता हे। उमके मूत्रका वर्ण पीला, रक्त तथा श्वेत हो जाता है ओर उसमे गाढापन भी आ जाता है। वस्तिभागम दाहभरी जलन होती हे। जो मूत्र निकलता है, उसका वर्ण सूखे गोरोचन तथा शख-चूर्णके समान होता हे। इस रोगको कच्छ्रमूत्रसाद कहते हैं। इस प्रकार विस्तारपूर्वक मूत्रमे हानेवाले रोगाको भी मैंने बता दिया है। (अध्याय १५८)

प्रमेहरोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपको प्रमेह-रोगाका निदान सुनाऊँगा, उसे सुने।

प्रमेह बीस प्रकारके होते हैं। उनम दस प्रमेह कफजन्य, छ प्रमेह पित्तजन्य और चार प्रमेह वातजन्य हैं। इन सभीम मेद, मूत्र और कफकी ससृष्टि होती है।

प्रमेहका सबसे पहला प्रकार हारिद्रमेह हे। इस प्रमेहक होनपर रोगीको कटु रसमिश्रित मूत्र हल्दीक समान मल-मूत्र होता है। इस प्रमेहका दूसरा प्रकार मजिष्ठामेह है। मजिष्ठामेहके होनेपर मजिष्ठ (मजीठ)-वर्णके जलके सदृश होता है। इसका तीसरा प्रकार है रक्तमेह। इस रक्तमेहके होनेपर रक्तवर्णकी आभावाला कच्चे मासकी गन्धसे समन्वित उष्ण तथा लवण-तत्त्व-मिश्रित मूत्र होता है। वसामेहम चर्बी-मिला हुआ मूत्र अथवा केवल चर्बी ही बार-बार निकलती है। वसायुक्त मज्जामेही व्यक्ति वर्ण और गन्धम समानता रखनेवाले मज्जा-तत्त्वसे सश्लिष्ट मूत्रत्याग करता हे।

जब प्राणी मतवाले हाथीके समान असयमित वेगसे अधिक समयतक मूत्र निकालता है, जिसके साथ एक चिपचिपा पदार्थ भी आता हे और यह यदा-कदा बीच-बीचमे रुक भी जाता है तो उस रोगीका हस्तिमेही मानना चाहिये। हस्तिमेह प्राय वृद्धावस्थामे होता है। जब व्यक्तिको मधुके समान मूत्र हाता है अर्थात् उस मूत्रम शरीरके अदर विद्यमान मधुर रसका तत्त्व आने लगता हे तो उसे मधुमेही

१-सु०उ० ८५ अ०हृ०नि०अ० ९। २-सु०उ०त०अ० ५८। ३-सु०उ० ५७। ४-सु०अ० ८५। ५-च०चि० ७ वा० नि० १०

कहा जाता है। यह दो प्रकारका माना गया है। एक तो धातुके क्षीण होनेपर वायुके कुपित होनेसे तथा दूसरा पित्तादि दोषसे वायुका मार्ग रुक जानेसे।

इस प्रमेहसे घिरा हुआ रोगी प्रायः अन्य सभी दोषजन्य प्रमेहोंके लक्षणोंसे संयुक्त हो जाता है। ऐसे रोगीमें अन्य दोषोंके लक्षणोंका आगमन कोई कारण नहीं रखता। यह रोग तो अपनी प्रबलताके प्रभावसे उन्हें बिना निमित्तके ही रोगीके शरीरपर प्रकट कर देता है। यह ऐसा प्रमेह है कि क्षणमात्रमें नष्ट हो सकता है और क्षणमात्रमें ही अपने पूर्ण बलके साथ उभर सकता है। अतः रोगीको चाहिये कि वह कष्ट उठाकर भी इस वर्गभेदवाले मधुमेहरोगका निदान कर ले। इसकी सामयिक उपेक्षा कर देनेपर प्राणीके शरीरका सब कुछ मधुमेहताको ही प्राप्त कर लेता है अर्थात् शरीरके समस्त स्रोतोंमें इसका विकार पहुँच जाता है और एक दिन मधुमेहके अतिरिक्त कुछ शेष ही नहीं रह जाता तथा उसकी असामयिक मृत्यु हो जाती है। इसका विस्तार हो जानेपर सभी प्रकारके मेहरोगोंमें रोगी प्रायः मधुके समान ही गाढ़ा मूत्र नलीसे निकालता है। शरीरमें जो मधुरता है वह मधुरता इन सभी प्रमेहोंमें नष्ट होती है, इसलिये इन सभी प्रमेहोंको मधुमेह ही कहा जाता है। इस प्रमेहरोगमें रोगी अपच, अरुचि, वमन, अनिद्रा, खाँसी और पीनसके उपद्रवसे ग्रस्त हो जाता है।

कफजन्य प्रमेहमें वस्ति तथा मूत्राशय-भागमें पीड़ा, हृष्ट-पुष्ट शरीरका क्षरण और ज्वरके उपद्रव जन्म लेते हैं। पित्तप्रमेह होनेपर रोगीके शरीरमें दाह, तृष्णा, खट्टी डकार, मूर्च्छा, अतिसार एवं मलभेदका विकार होता है। वातज प्रमेहमें उदावर्त, कम्पन, हृदयवेदना, बेचैनी, शूल, अनिद्रा, शुष्कता, श्वास तथा खाँसीके विकार पैदा हो जाते हैं।

शराविका, कच्छपिका, ज्वालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, सविदारिका और विद्रधि नामक दस प्रकारकी फुंसियाँ प्रमेह-रोगोंकी उपेक्षा कर देनेपर उत्पन्न होती हैं।

प्रायः कफजन्य[1] दोषमें संश्लिष्ट होनेके कारण खाया हुआ अन्न प्रमेहरोगके रूपमें परिणत हो जाता है। उसका रस मूत्रके मार्गसे निकल जाता है। मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध, भारी, चिकना और शीतल पेय, नया चावल, मदिरा, मिर्च-मसाला, मांस, इक्षुरस, गुड, गोरसके सेवन, एक स्थान और एक आसनपर शयन इस मधुमेहरोगके उत्पादक हैं। इस प्रमेहरोगके होनेसे कफ वस्तिभागमें पहुँचकर उसको दूषित कर देता है। तदनन्तर वह स्वेद, मेदा, वसा और मांससे युक्त शरीरको दूषित करके शिथिल बना देता है।

जब कफ पहले क्षीण हो जाता है तो वायु मूत्रके सहित पित्त, रक्त और धातुको वस्तिभागमें लाकर उसका वहींपर विनाश करता है। साध्य-असाध्य प्रतीत होनेवाले जो मेह हैं, वे सभी इसी वायु-विकारसे ही उत्पन्न होते हैं। जब वायु, पित्त और कफकी मात्रा निर्दुष्ट होकर समान रहती है, तब मेह भी समान-भावसे रहता है।

उक्त प्रमेह-भेदोंका सामान्य लक्षण तो प्रचुर मात्रामें विकृत मूत्रका होना है, किंतु शरीरमें उस विकारके संयुक्त होते ही विशेष परिस्थितिमें भी पड़े हुए मनुष्यके लिये अपेक्षित है कि उस दोषका निवारण कर ले। मूत्रके वर्णादिक लक्षणोंके अनुसार इन प्रमेहरोगोंमें भेदकी कल्पना की जाती है। यह मेहरोग दस प्रकारका है। सामान्यतः मूत्र स्वच्छ, अत्यन्त श्वेत, शीतल, गन्धहीन तथा जलके समान होता है, किंतु जो प्राणी उदकमेहसे ग्रसित है, वह कुछ मटमैले और चिपचिपे मूत्रका क्षरण करता है। इक्षुमेह रोगीके शरीरसे इक्षुरसके समान अत्यन्त मधुर मूत्र निकलता है। सान्द्रमेहसे प्रभावित रोगी बासी रखे हुए जलके समान मूत्र छोड़ता है। सुरामेही रोगीका मूत्रस्राव सुरा (मदिरा)-के सदृश होता है, जो ऊपरसे देखनेमें स्वच्छ तथा सान्द्र प्रतीत होता है, किंतु अंदरसे गाढ़ा रहता है। पिष्टमेहसे ग्रसित रोगीका प्रायः मूत्रस्रावके समय रोमाञ्च हो उठता है। वह तण्डुलमिश्रित जलके समान अत्यन्त श्वेत मूत्रका परित्याग करता है। जो शुक्रमेही है, उसका शुक्रमिश्रित अथवा शुक्रके समान वर्णवाला मूत्र गिरता है। सिकता अर्थात् रेतमेहसे पीडित व्यक्तिको रेतके समान ही मूत्र तथा उसके सदृश मल अथवा विकार हो जाता है। शीतमेहा

[1] च०चि०अ० ६, अ०हृ० नि०अ० १०। २-च० नि० १०, अ०हृ०नि०अ० १०।

रोगीको प्राय अधिक मात्राम मधुर और अत्यन्त शीतल मूत्र गिरता है। जो रोगी शनैर्मेही विकारस सतप्त होता है, वह धीरे-धीरे, बार-बार, मन्द-मन्द गतिसे मूत्र-क्षरण किया करता है। लालामेही रोगी लालातन्तु अर्थात् लारके समान तार बनानेवाले चिपचिप मूत्रकी धार छोडता है। क्षारमेह[1] होनेपर रोगी गन्ध वर्ण, रस तथा स्पर्शम समान क्षारयुक्त मूत्र करता है। नीलमही नीलवणके समान और मसी अर्थात् स्याहीक सदृश कृष्णवर्णवाले मूत्रका परित्याग करता है।

सधिस्थान[1], ममस्थल, मासलभाग तथा काष्ठ-प्रदशाम जा प्रमेहपिडिका होती है, वह अन्तमे उन्नत, मध्यम निम्न, आर्द्रतास रहित और सहन करनेवाली पीडास समन्वित होती है।

जो पिडिका (फुसी) किनारोपर ऊँचा, बाचम नीची, श्यामवर्ण, क्लेद और वेदनास युक्त होती है तथा जिसकी शराव (मिट्टीका कसारा)-के समान स्थिति और आकृति होती है, उसे शराविका कहते हैं। जा पिडिका कछुएक समान होती है और उसम जलन रहती है, उस पिडिकाका विद्वान् लोग कच्छपिका नामसे स्वीकार करत हैं। बहुत बडी नीलवर्णके समान दिखायी देनवाली पिडिकाको विनताके नामसे माना गया ह। शरीरम जिस पिडिकाके उभर आनेस त्वचाम जलन होती और रागी कष्टका अनुभव करता है, उस पिडिकाका ज्वालिना कहा जाता ह। रक्त-श्वेत तथा स्फोटका रूप धारण करनेवाली कठार पिडिकाका नाम अलजी है। जा पिडिकाएँ मसूरके समान आकृतिवाली हैं, उन्ह मसूरिकाके नामसे जानना चाहिय। जिह्वाम सरसाक समान छाटे-छाट उभरे हुए दानाका सर्पपिका कहा जाता हे, जो रोगीको अत्यधिक कष्ट देत हैं। पुत्रिणा नामक पिडिका बडी अथवा छाटी हाती ह। यह अत्यन्त सूक्ष्म भी हो सकती है। जो पिडिका विदारीकन्दक समान गोल तथा कठोर हाती है, उसका नाम विदारिका है। विद्रधिके लक्षणास युक्त अर्थात् पीपस युक्त पिडिकाका विद्रधिका कहा जाता है।

पुत्रिणी और विदारी नामक प्रमेहजनित पिडिकाएँ अत्यन्त कष्टकारी हाती हैं। सद्य पित्तके प्रकुपित हानसे मेदको अल्प मात्राम विकृत करनवाली अन्य पिडिकाएँ उत्पन्न हाती हैं। प्राय शरीरम जैसे-जैसे दापकी अभिवृद्धि होती है, वैस-ही-वैसे उन सभी पिडिकाआका आविभाव होता है। मेदको विकृत करनेवाली इन पिडिकाआका जन्म तो विना प्रमेहके भी हा सकता है। जबतक पिडिका वणरहित हाती है, तबतक उसक प्रधान लक्षणका निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। जो हल्दीक समान अथवा रक्तवण या प्रारम्भिक स्वरूपका परित्याग करनेवाले रक्त मूत्रका क्षरण करता है, उसको प्रमहरोगके विना रक्तपित्तराग जानना चाहिये। रक्तपित्तरागके प्रभावस ही मूत्रका रग हरिद्रा एव रक्तवर्णका हा जाता है।

प्रमेहरोगका[3] पूर्वरूपम स्वद, अङ्ग-विशषम अप्रिय गन्ध और अङ्गाम शिथिलता, शय्या भोजन, निद्रा तथा सुखकी आसक्ति, हृदय नेत्र, जिह्वा एव कानाम असाधारण या साधारण भारीपन, जलन, बाल और नाखूनाम अभिवृद्धि शीतल पदार्थोके प्रति प्रम, कण्ठ तथा तालुम शाथ, मुखपर माधुर्यभाव और हाथ-परम जलनक लक्षण दिखायी दत हैं। प्राय इन सभी प्रमहरागाक रागीक द्वारा किय गय मूत्रपर चीटियाँ दौडने लगती हैं।

प्रमेहरागम तृष्णा मधुरता तथा चिकनाहटका लक्षण ता सामान्य हे, किंतु मधुमह हानेपर अनक प्रकारक विकाराका जन्म हो जाता है। शरीरम इस रागके परिव्याप्त हानपर इसकी उत्पत्तिका कारण कफजन्य मानना चाहिये अथवा सभी दापाके क्षीण हो जानेपर यदि प्रमहका काई विकार दिखाया देता है तो वह वायुजन्य होता है। प्रमहके य सभी प्रकार ता कफ और पित्तसे युक्त होत ह, यथाक्रम जिनकी उत्पत्ति रति-प्रसगकी आसक्तिक कारण रागाके मूत्र-भागम होती है। जा प्रमेह पित्तदोपके कारण उत्पन्न हाते हे, व याप्य है। साध्य वही प्रमय हाता हे जा अपने सम्पूण लक्षणोसे समन्वित हाकर रागीके शरीरम दिखायी नहा दता। यदि वह सभी लक्षणासे पूर्ण हा जाता है ता उसका निवारण असम्भव ही ह। (अध्याय १५९)

१-मा०नि०प्र० ३३-१३ १४। २-वा०नि० १० अ०हृ०नि०अ० १० सु०नि० ६। ३-वा०नि० १०

विद्रधि एव गुल्म-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं विद्रधि और गुल्मका निदान कहता हूँ, उसे आप सुन।

बासी एव अत्यन्त उष्ण रूक्ष, शुष्क तथा विदाहकारी भोजन करनसे, टेढी-मेढी शय्यापर टढा-मेढा शयन करनस तथा रक्तको दूपित करनवाले विरुद्ध आहार-विहारम रक्त दूपित हाकर चमडा (त्वक्), मास, मेदा, अस्थि, स्नायु एव मज्जाका दूपितकर यह उदरका आश्रयण करता है। दुष्ट रक्त जब उदरका आश्रयण करता है तो अङ्ग-विशपम (बाहरकी ओर मुँहवाला अतिशय शूलके साथ और अतिशय पाडासे युक्त वृत्ताकार अथवा भीतरकी ओर मुँहवाला आयताकार) जा शोथ उत्पन्न हो जाता है, आयुर्वेदवेत्ता वैद्यगण उस विद्रधिरोग[1] कहते हैं।

दाषाक द्वारा (वायु, पित्त आदिके) भिन्न-भिन्न रूपम या मिश्रितरूपम रक्त एव स्रावके तत्तत् अङ्गम ग्रन्थिके आकारका विद्रधिरोग अतिशय दारुण, गम्भीर और गुल्मका बढानवाला होता है। वह वल्मीक अर्थात् दीमकके घरक समान सच्छिद्र होता है और सभी छिद्रोसे सदा रक्त आदि बहता रहता है इससे जठराग्नि मन्द हा जाती है। नाभिवृत्ति यकृत, प्लीहा, क्लोम (वृक्क) कुक्षि, गुद एव वक्षण आदि स्थानाम विद्रधिरोग उत्पन्न होनपर रोगीका हदय सदा काँपता रहता है और विद्रधि-स्थानम तीव्र वेदनाकी अनुभूति होती है।

विद्रधिका शाथ श्यामवर्ण अथवा रक्तवर्णका हाता है। इसका ऊपरी भाग उनत रहता ह। कालान्तरमे पाक हो जानेसे यह विपम आकारका हो जाता है। विद्रधिरोगमे सज्ञा-नाश भ्रम अनाह रक्तस्राव और अव्यक्त शब्द होता हे। पित्तज विद्रधि रक्त (लाल) ताम अथवा कृष्णवर्णका शीघ्रपाकी होता है। इसम तृपा दाह माह ज्वर बहाशी तथा जलन आदि उपद्रव होते हें। कफज विद्रधि तजीमे उभरता हे एव शीघ्र पक जाता है पाला हा जाता हे और खुजलाहटसे युक्त अरुचि स्तम्भ रहता हे। सन्निपातजन्य विद्रधिम अधिक क्लेश शीत स्तम्भ (जकडन) जृम्भण (जम्हाई) अरुचि शरीरका भारीपन आदि सभी लक्षण व्यक्त हाते हैं। सन्निपातिक (त्रिदापजन्य) विद्रधि चिरकालम उत्पन्न हाता है और उसका पाक शीघ्र नहीं होता।

बाह्य और आभ्यन्तरिक विद्रधिम मल पतला हाता है। सनिपातक विद्रधि कृष्णवर्ण स्फाटावृत और श्यामवर्णका होता है। उसम रागीका अधिक दाह विद्रधि-स्थानम पीडा आर तात्र ज्वर हा जाता हैं।

बाह्य विद्रधि प्राय पित्तज और रक्तज होती है। गभाशयगत रक्तज अन्तर-विद्रधि केवल नारियाको ही हाती हैं। शस्त्र आदिक अभिघातसे अधिक रक्तक बहनेपर यह राग उत्पन्न हा जाता है। किसी स्थानके कटनपर वायुके द्वारा परिचालित रक्त पित्तका प्ररित करता ह, जिससे रक्त-पित्त लक्षणवाला विद्रधिराग उत्पन्न हाता है। यह अत्यन्त उपद्रवकारी होता ह। स्थान-भेदसे उपद्रवाका भेद कहा जाता ह। नाभिम विद्रधिरोग होनेपर उसका धौंकनीकी तरह गति (हिचकी) होती ह। वस्ति आर मूत्राशय आदिमे विद्रधि होनेपर मूत्र-त्यागम दुर्गन्ध बहुत तथा क्लश अधिक हाता ह। प्लीहा-स्थानमें विद्रधि होनेपर श्वास-प्रश्वासका राध हो जाता है और अत्यन्त प्यास लगती है। क्लोम-स्थानम विद्रधि उत्पन्न होनेपर गलेका रोधतृषा होने लगती ह। हदयम विद्रधि होनेपर सर्वाङ्गम वेदना होती है। मोह तमक श्वास काससे हदयकी शून्यताका बाध होता है। कुक्षि और पार्श्वके आभ्यन्तरमे विद्रधि उत्पन्न हानेपर कुक्षिम अनेक प्रकारके दाप उत्पन्न हो जाते हैं तथा ऊरु सधि धड वक्षण कटि, पीठ, बगल तथा नितम्ब—इन स्थानोम विद्रधिके उत्पन्न होनेपर अपानवायु-अवराध होकर अत्यन्त वेदना हाने लगती है। विद्रधिके कच्चे होनेपर, पक जानेपर अथवा सूजनके आधारपर आगेकी स्थितिका निर्देश करना चाहिये। आन्तर विद्रधि यदि नाभिसे ऊपर ऊर्ध्वमुख है तो मवाद एव रक्तका स्राव मुखसे हाता है और नाभिके नाच हानेपर गुदामार्गसे स्राव होता है तथा नाभिमे होनेपर दोना आरसे हाता है। उच्च विद्रधिम दोप क्लदके समान जानना चाहिये। सन्निपातज विद्रधि अपन स्थानम अनक प्रकारक विवर्तको उत्पन्न कर दता है। नाभि और वस्तिमें स्थित विद्रधि अन्तगत या बाह्यगत किसा भी प्रकारका हा, वह निश्चित हा पककर फटता है। उसका परिपाक विद्रधि

[1] च मू०अ० १७ सु०नि०अ० ९।

हो जाता है। वायुके चञ्चल होनेके कारण गुल्मरोगका कोई निर्दिष्ट एक स्थान नहीं है। अत यह अनेक प्रकारकी व्यथाएँ उत्पन्न करता है। वातज गुल्मरोगम चींटीके चढने या काटने-जैसा स्फुरण होता है और चुभनेकी तरह व्यथा होती है।

पित्तज गुल्मरागम दाह, अम्लोद्गार, मूर्च्छा, मलभेद, पसीना, तृष्णा आर ज्वर—य सभी उपद्रव होते हैं। सम्पूर्ण शरीर हल्दीक वर्णका हो जाता है। इस रोगमे शोथ भी हो जाता ह और श्लेष्मा घटता-बढता रहता है। गुल्मके स्थानमे जलन-सी प्रतीत होती है।

कफज गुल्मरोगमे स्तैमित्य अरुचि, सिरम वेदना और अङ्गाम शिथिलता, शीतज्वर, पीनस, आलस्य, हृल्लास, चमडेका सफेद या काला होना आदि लक्षण होते हैं। कफज गुल्म गम्भीर, कठिन और गर्भस्थ बालकके समान भारी होता हे। अपने स्थानमे स्थित रहने तथा वहाँसे न चलनेके कारण यह मृत्युकारक होता है।

त्रिदोषजन्य गुल्मरोगमे प्राय एक-दूसरेके लक्षण घुले-मिले रहते हैं। इसम तीव्र वेदना और अतिशय दाह होता है। यह अतिशय उन्नत ओर सघन होकर शीघ्र ही पक जाता हे, तथा असाध्य है।

रक्तगुल्म स्त्रियोको ही होता है। जिस स्त्रीका ऋतुकालमें अतिशय वेदना या किमी प्रकारका योनिराग रहता है अथवा वायुकारक पदार्थोंको सेवन करनेसे वायु कुपित होकर प्रतिमाह व्यवस्थित ऋतुस्रावका योनिम ही रोक देता है तो वह रुका हुआ रक्त कुक्षिमे जाकर गर्भके चिन्नाको प्रकट करता हे। इस रोगमे हल्लास गर्भिणी-जैसी इच्छा, स्तनमें दुग्ध-दर्शन कामाचारिता आदि लक्षण प्रकाशित होने लगते हैं। क्रमश वायुके ससर्गसे पित्त योनिमे रक्तका सचय करता है। शोणित जब गर्भाशयका आश्रयण करता है, तब वात-पित्तज गुल्मके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह दुष्ट रक्तका आश्रय लेकर गर्भाशयमे अत्यन्त शूल उत्पन्न करता है। योनिमे स्राव, दुर्गन्ध, कभी-कभी स्पन्दन और वेदना होती है। कभी-कभी यह गुल्म गर्भ-जैसा हो जाता हे।

दुष्ट रक्त एव दुष्ट आश्रयके कारण यह विद्रधि गुल्म कभी देरम पकता है, कभी नहीं पकता है और कभी जल्दी पक जाता है। अत शीघ्र दाह पैदा करनेवाला होनेके कारण यह विद्रधि गुल्म कहा जाता है। अन्तराश्रय गुल्ममे वस्ति, कुक्षि, हृदय और प्लीहाम वेदना होती है। जठराग्नि और बलका नाश हो जाता है। मल-मूत्रादिका वेग रुद्ध हो जाता है। बहिराश्रय गुल्मम इसका उलटा हाता हे अर्थात् वस्ति, कुक्षि आदिमे वेदना अधिक नहीं होती, वेगका प्रवर्तन होता है। गुल्म-स्थानम विवर्णता और बाहरके भागमे अत्यधिक ऊँचापन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऊपर-नीचे वायुरोधके कारण तीव्र वेदना और उदरम आध्मान होता है। इसे अनाहरोग कहते हैं। जो ग्रन्थि ऊपर उठी होती है तथा कठोर अष्ठीलाकी तरह होती है, उसे अष्ठीला विद्रधि कहते हैं। उसकी आकृति यदि समस्त चिह्नासे युक्त एव तिरछी हो तो उसे प्रत्यष्ठीला कहते हैं। पक्वाशयमे उत्पन्न होनेवाला वायु तीव्र वदनासे युक्त होकर डकारोकी अधिकता, शौचका विबन्ध भोजनकी अनिच्छा, आँतोका सूजन अटोप आध्मान, अग्निमान्द्य—ये सब उत्पन्न होनेवाले गुल्मके पूर्व सकेत हैं।[२] (अध्याय १६०)

उदररोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं उदररोगका निदान कहूँगा सुनो! मन्दाग्नि होनेपर सभी प्रकारके रोग उत्पन्न हाते हैं और उदररोग विशषकर मन्दाग्निसे ही होते हैं।

उदरमे मल सचित होनेपर अजीर्ण आदि भिन्न-भिन्न रोग ऊर्ध्व और अधोगति वायुके अवरोध होनसे सभी प्रवाहिणी नाडियाँ अकर्मण्य हो जाती हैं। प्राणवायु अपानादि वायुको दूषितकर उनको माससधिम प्रविष्ट कर देती है। इसस कुक्षिस्थान अवरुद्ध होकर उदररोग उत्पन्न होता है। उदररोग आठ प्रकारके हैं—वातज पित्तज, कफज सन्निपातज सलिलजन्य प्लीहाजन्य बद्धोदर-वृद्धि और क्षतजन्य। उदररोग हानेपर हाथ-पैर तथा पेटमें सूजन आ जाती है। शारीरिक चेष्टा, बल और आहार कम हो जाता है। शरीर दुर्बल हो जाता है और अफरा हो जाता है।

१-सु०उ०त०अ० ४२ अ०हृ०नि०अ० १२। २-सु०नि०अ० ६१ च०नि० ३ चि०अ० ५० अ०हृ०नि०अ० ११ वाग्भट्ट नि० ११

इस रोगसे ग्रस्त व्यक्तिका आकार प्रेतके समान विकृत हो जाता है।

उदररोगका पूर्व लक्षण भूख-नाश, अरुचि, पाकके समय दाह आदि होता ह। एसा रोगी अपथ्यका सेवन करता है। उदररोगसे बलक्षय हो जाता है। अत रोगीके थोडा कार्य करनेपर श्वास-प्रश्वासकी वृद्धि हो जाती है। किसी भी विषयम उसकी बुद्धि प्रवेश नहीं कर पाती और शोक एव शोथ आदि हो जाते है। उदररोगी थोडा खानेपर भी वस्तिसधिम निरन्तर पीडाका अनुभव करता है। सभी प्रकारक उदररागम रोगी वृद्धावस्थाके समान जीर्ण हो जाता ह आर बलहीन हो जाता है। तन्द्रा, आलस्य, मलवेग, मन्दाग्नि दाह, सूजन ओर आध्मान—ये सभी जलोदरके लक्षण हें। सत्र प्रकारका जलादररोग मृत्युकारक है। इसलिये उसक लिये शोक करना व्यर्थ है। उदररोगम रोगीका उदर गवाक्षकी तरह शिराजालसे व्याप्त हो जाता है और सदा गुडगुड शब्द हान लगता है।

उदररागम[1] वायु नाभि और आँतमे विष्टब्धता उत्पन्न करके नष्ट हो जाता है। वायुजन्य उदररोगम हृदय नाभि, कटि, पायु, वक्षण—इन सभी स्थानोम पीडा करक स्वय वायु शान्त हो जाता है। शब्दके साथ वायु निकलने लगता है एव अल्प परिमाणमे ही मूत्र होता है। उसकी किसी भी विषयम चञ्चलता नहीं रहता और मुख सदा उदास रहता है। वातोदरम हाथ-पैर, मुख और कुक्षिम शोथ हो जाता है। उदर-पार्श्व तथा कटि और पृष्ठ आदि स्थानामे पीडाका अनुभव होता है और जाडाम दर्द रहता है। शुष्क कास शरीरम पीडा अधाभागम गुरुता मलसग्रह शरीरमे श्यामवर्णता या अरुणवर्णता आ जाती ह एव मुँहमे बार-बार पानी आता है। पेटम नीली आर काली शिराएँ उभर जाती हैं और व्यथा हाती है तथा थपथपानपर मशक-जैसा शब्द करता है। उदरम वदनाक साथ सशब्द वायु चारा तरफ घूमती है। पित्तजनित उदर-रोगम ज्वर, मूर्च्छा दाह प्यास मुखम कटुता, अतिसार, त्वचा नख आदिपर पीलापन उदरपर हरापन एव पीली और ताम्रवर्णकी शिराएँ अधिकतासे दीखती हैं तथा ऊष्मा ओर दाह बना रहता ह।

कफजनित उदररोगम शरीरम अवसाद, शोथ, भारीपन, निद्राधिक्य, अरुचि, श्वास-कास, त्वचा आदिम श्वेतता, श्वेत शिराआसे व्याप्त उदर, बडा एव धीरेसे वृद्धिको प्राप्त करता है। त्रिदायका कुपित करनेवाले आहार-विहारस, अधिक भाजन करनेसे, शरीरको क्षुब्ध करनसे, गाडी आदिपर यात्रा करनसे, दौडन, कूदने, मैथुन करने, भार उठाने, चलन तथा ज्वरादिस दुर्वल व्यक्तियाके वामपार्श्वम स्थित प्लीहा अपन स्थानसे च्युत होकर वृद्धिको प्राप्त होने लगता ह। प्लीहा पहले कठार तथा पुन उन्नत या उठा हुआ होकर उदरराग उत्पन्न करता है और श्वास-कास, मुख-विरसता, अफरा, शूल, पाण्डु, वमन, मूर्च्छा, शरीरवेदना, दाह, विभ्रम आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उदरका रग काला, लाल, विकृत नीला एव पीला हो जाता है। प्लीहोदरम भी वात, पित्त और कफका सम्बन्ध रहता है। प्लीहाके समान ही उदरके दक्षिण भागमे स्थित यकृत विकृत होकर भी उदररोग उत्पन्न करता है।

कुपित अपानवायु मल (पुरीष), पित्त एव कफका अवरुद्ध करके उदरम बद्ध गुदोदर नामक राग उत्पन्न करता ह और ज्वर, कास, श्वास एव सिर, नाभि, पार्श्व और गुदामे पीडा उत्पन्न करता हे। उदर स्थिर एव अचल बना रहता है। उसपर नीली एव लाल शिराआका जाल दीखता है ओर उदरक ऊपरका हिस्सा गायकी पूँछक समान होकर मल सचय हाता रहता ह।

भाजनमे हड्डी और पाषाण आदि उदरम जानेसे तथा अत्यधिक खानसे आँताक फटनेपर पककर मवाद एव मलक साथ जल निकलकर गुदामार्गसे जव बाहर आता है, वह पाला, लाल पुरीप गन्धयुक्त रहता हे। अवशिष्ट भाग पटम रुककर उदर-वृद्धि करके जलोदररोग होकर बादम वातादि दापासे पुन विकृत हा परिस्रावीछिद्रोदर राग हा जाता हे।

स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन करत समय एकाएक

[1] च०चि०अ० १३

ठडा जल अधिक पान करनेसे मन्दाग्नि रहनेपर या दुर्बलताम अधिक आम जल पीनेपर वायु एव कफ कुपित होकर जलवाही स्रोतोको अवरुद्ध कर उस दूषित जलका बढा देता है और क्लोम, नलिकासे आकर अवरुद्ध हो उदररोग उत्पन्न कर देता है। तदनन्तर प्यास, गुदासे जलस्राव होता हुआ उदरमें वेदना होती रहती है। पुन कास-श्वास एव अरुचि हो जाती है। उदरपर अनेक रगकी शिराएँ उभर आती हैं। उदर जलपूर्ण-सा हो जाता है तथा उसमें कम्पन आदि अनेक उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं, इस स्थितिमें उसे ढकोदर, उदकोदर या जलोदररोग कहते हैं। उदर-रोगोकी उपेक्षा करनसे वातादि दोप अपने स्थानसे विमुख होकर जलको बढाकर उस जलसे शरीरके जोडोके स्रोताके मुखाको गीला या आर्द्र कर देते हैं। अत शरीरके[1] पसीनेके रुकनेपर सभी स्रोत अवरुद्ध हो जाते हैं। इससे उदर परिपूर्ण होकर उदररोग उत्पन्न होता है। किसी-किसी रोगीके उदरम अधिक जलके सञ्चित हो जानेपर वह वर्तुलाकार हो जाता है, उसको ताडन करनेपर शब्द नहीं होता। इस रोगमें रोगी क्रमश दुर्बल हो जाता है। यह रोग भयकर होता है और नाडीको दबानेपर जल आगे बढ जाता है। उदररोगमें जब उदरगत शिराएँ अन्तर्हित हो जाती हैं, तब उस रोगको सभी लक्षणोंसे आक्रान्त कहा जाता है। वातोदर, पीतोदर, कफोदर, श्लेष्मोदर, प्लीहोदर, सन्निपातोदर और जलोदर—ये क्रमश कष्टसाध्य होते जाते हैं। एक पक्षके भीतर ही इस रोगम जल एकत्र होने लगता है। ये सभी उदररोग जन्मसे ही कष्टसाध्य होते हैं। (अध्याय १६१)

पाण्डु-शोथ-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं पाण्डु और शोथरोगका निदान कहता हूँ, सुनो। पित्त-प्रधान द्रव्योसे सम्पूर्ण वातादि दोप कुपित करनेवाले हेतुआसे पित्त एव मल कुपित होकर पाण्डुरोग उत्पन्न करते हैं। इन तीना कुपित दोपोमेसे बलवान् वायु पित्त हृदयस्थ दस धमनियोका आश्रय लेकर सम्पूर्ण शरीरम फैल जाता है। वह पित्तका आश्रयणकर श्लेष्मा, चर्म रक्त मास आदिको दूषित कर देता है। इससे दूषित रक्त चमडे और मासके बीचमे जाकर चमडेको भिन्न-भिन्न रगका कर देता है। इस रोगमे चमडा हरिद्रादि अनेक रगका हो जाता है, परतु इसमे पीले रगकी अधिकता रहती है। इसीसे इसे पाण्डुरोग कहते हैं। इस रोगम धातुका गुरुत्व और स्पर्शम शिथिलता होती है। अम्लजन्य पाण्डुरोगमे शरीरके सभी प्रकारके गुण नष्ट हो जाते हैं। इससे शरीरका रक्त क्रमश कम हो जाता है मेदा और अस्थि निस्सार हो जाते हैं। इस रोगमे सभी अङ्ग निर्बल हो जाते हैं हृदयमे द्रवता आ जाती है एव नेत्रोम सूजन हो जाती है। मुँहमे लालायुक्त लारकी अधिकता हो जाती है। रोगीको प्यास कम लगती है ठडक अच्छी नहीं लगती रोमाञ्च और मन्दाग्नि हा जाती है एव शरीरकी शक्ति घट जाती है तथा ज्वर, श्वास, कर्णशूल, चक्कर—ये सभी उपद्रव होने लगते हैं।

पाण्डुरोग[2] पाँच प्रकारके हैं—वातज पित्तज, कफज, सन्निपातज एव मृत्तिका-भक्षणजन्य। हृदयमें स्पन्दन, चमडेकी रूक्षता, अरुचि मूत्रकी पीतवर्णता, पसीना और मूत्रका कम होना—ये सभी पाण्डुरोगके पूर्वरूप हैं। वायुजन्य पाण्डुरोगमें तीव्र वेदना, शरीरमे चिपचिपाहट आदि लक्षण दिखायी दते हैं।

इस रोगमे शिरा नख विष्ठा, मूत्र और नेत्र कृष्णवर्ण तथा अरुणवर्णके हो जाते हैं। इससे शोथ नासिका और मुखमे विरसता मलशोष, पार्श्वमे वेदना—ये सभी उपद्रव हाने लगते हैं। पित्तज पाण्डुरोगमे शिराएँ आदि हरित पित्त-जैसी हा जाती हैं एव ज्वर, आँखाके आगे अँधेरा प्यास शाष मूर्च्छा, दुर्गन्ध शैत्य-सेवनकी इच्छा, मुखमें कडवाहट—ये सभी लक्षण व्यक्त होने लगते हैं। कफज पाण्डुरोगमें हृदयमे आर्द्रता मलभेद खट्टी डकार और दाह होता है। तन्द्रा मुखमे लवण-रसका स्वाद, श्वास रोमाञ्च, स्वरभग कास वमन दु सहता—ये सभी लक्षण व्यक्त होन लगते हैं। त्रिदोपज होनेपर इसके लक्षणाको पहचानना कठिन हो

१-च०चि०अ० १३ सु०नि०अ० ७ अ०ह०नि०अ० १३। २-च०चि० १६ सु०उ०त०अ० ४३ अ०ह०सू० २।

जाता है और अतिशय असह्य हो जाता है। मिट्टी खानेसे उत्पन्न पाण्डुरोगमे कसैली मिट्टी वायु, खारी मिट्टी पित्त और मीठी मिट्टी कफको दूपित करके तथा रस आदिको सुखा करके शिराआका रक्तसे भर दती है तथा उसे वहीं रोक देती है और पाण्डुरोग पैदा हो जाता है। पाण्डुरोगक बढ जानेपर नाभि, पैर, मुख और मूत्रमार्गम शोथ हो जाता है। कृमियुक्त तथा रक्तमिश्रित और कफसमन्वित मल निकलने लगता है।

जो पाण्डुरोगी पित्त उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंका सेवन करता है, उसका पित्त-रक्त और मासका दाह करके काष्ठ शाखामें मिलकर कामलारोग उत्पन्न करता है। कामला-रोगमे रोगीका मूत्र, नेत्र त्वक्, मुख और विष्ठा हल्दीके रगका हो जाता है। रोगी दाह, अविपाक और तृषासे पीडित होकर मेढकके समान पीला और दुर्बल हो जाता है। पाण्डुरागीको पित्तज शाथ होने लगता है। इसकी उपेक्षा करनेपर जो अतिशय शोथ बढ जाता है, वह बहुत क्लेशप्रद होता है। इस रोगको कुम्भकामला कहा जाता है। पित्त यदि हरित और श्यामवर्णका है तो उससे पाण्डुरोग होता है, उस स्थितिम वात-पित्तक प्रभावसे चक्कर आना, तृष्णा, स्त्रियाके प्रति अरुचि, थोडा-थोडा ज्वर, तन्द्रा, अग्निमान्द्य और अतिशय आलस्य—ये सभी रोगक लक्षण व्यक्त हो जाते है। इस रोगको हलीमक नामसे जाना जाता है।

पाण्डुरोगसे उत्पन सभी उपद्रवोम शोथ प्रधान है। इसलिये शोथका वर्णन किया जाता है। वायु कुपित होकर रक्त, पित्त और कफका दूपित करनेके कारण वह त्वक् शिरा और मासका आश्रय लेकर ऊँचाई पैदा करता है। सभी शोथ त्रिदोपज होते हैं, क्याकि सूजन वात, पित्त और कफ—इन तीनोसे होती है। इसलिये जैसे वातिक, पैत्तिक श्लेष्मिक कारण-भेदसे शोथ नौ प्रकारका होता है—वातपैत्तिक, वातश्लेष्मिक, पित्तकफज, सन्निपातिक, अविघातक विपज और एकाङ्गज। निज और आगन्तुक-भेदसे यह दो प्रकारका होता है—सर्वाङ्गज और एकाङ्गज। विस्तृत, उन्नत, अग्रभाग गाँठदार होनेसे इसके अवान्तर तीन भेद हैं।

पित्तज शोथ पीतवर्ण, कृष्णवर्ण या रक्तवर्णका होता है एव यह शोपणकारी होता है। यह बहुत जल्दी शान्त नहीं होता। इस शोथके उत्पन्न होनेसे पूर्व शरीरम दाह उत्पन हाता है। तृष्णा, दाह, ज्वर, पसीना, भ्रम, क्लेद, मद—ये सभी उपद्रव इसम होने लगते हैं। इस रोगमें रोगीको शीत वस्तुकी इच्छा होती है, मलभेद हा जाता है, दुर्गन्धि हाती है, स्पर्श नहीं सहा जाता और कोमलता होती है। कफज शोथम खुजली होती है। रोम और चमडेम पीलापन, कठोरता शीतलता, गुरुता, स्निग्धता, कोमलता, स्थिरता और पीडा होती है। इस रोगम निद्रा, मन्दाग्नि, वमन—ये सभी उपद्रव हो जात हैं।

आघात—अस्त्र-शस्त्रादिकृत छदन-भेदनसे क्षत होनेपर अभिघातज शोथ होता है। शातल वायु तथा समुद्रीवायु और भल्लातक-रसके लग जान एव कवाच इत्यादिक लग जानेसे जो सूजन होती है, वह फैल जाती है। यह अत्यन्त गरम लाल रगका और पित्तज शोथके लक्षणोसे युक्त होती है।

विपधर[१] प्राणीक किसी अङ्गके ऊपरसे चलनेपर अथवा किसी अङ्गम मूत्र करनेपर और विपहीन प्राणीके भी दाढ दाँत एव नखके द्वारा घात करनेपर उस स्थानमे जो शाथ उत्पन्न होता है, वही विपज शोथ है। इसके अतिरिक्त विपधर प्राणीके विष्ठा, मूत्र, शुक्र आदिसे सने हुए वस्तुके सम्पर्कसे, विपवृक्षके वायुक सेवनसे, विपयुक्त वस्तु शरीरपर मलनेसे विपशोथरोग उत्पन्न होता है। विपज शोथ कोमल, गतिशील, अवलम्बी, शीघ्र दाह और शूलको उत्पन्न करनेवाला होता है। नये और उपद्रवरहित शोथ साध्य हाते हैं और पहले कहे हुए असाध्य होते ह। (अध्याय १६२)

१-सु०उ०त०अ० ४४ मा०नि०पाण्डुप्र० २२ २३। २-च०चि०अ० १२ च०सू०अ० १८ सु०चि०अ० २३।

विसर्परोगका निदान

धन्वन्तरिने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं विसर्पादि रोगाके मूल कारणाका वणन कर रहा हूँ, उसे आप सुने।

वात पित्त कफ एव अभिघात नामक दोषासे तथा पित्त, रक्त एव कफके दूषित होनेसे शोथ-सदृश विसर्परोग होता है। बाह्य, अन्त, उभय—ये उसके तीन अधिष्ठान हैं। इनमे अपने-अपने प्रकोपक तथा विदाहकारी कारणासे शरीरम शीघ्र विसर्पण कर बाहर एव अदर विकृत करके विसर्परोग शरीरके बाहर तथा अदर उत्पन्न करते हैं।

आन्तरिक विसर्पसे हृदय आदिम उपताप होनेके कारण अत्यन्त मोह तथा कर्ण-नासा आदिम विघटन होता है। प्यासकी अधिकता और मलमूत्रादिमे विषमता होती है। कफजन्य[1] विसर्परोगम अत्यधिक खुजलाहट होता है। उसमे स्निग्धता बनी रहती है और कफजन्य ज्वरके समान इस रोगमे भी रोगीको कष्ट भोगना पडता है।

सनिपातज विसर्प होनेपर रक्त-वातादि सभी दोषाके लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इन सभी प्रकारके विसर्प-भेदोकी उपेक्षा कर देनेपर वे यथाक्रम अपने-अपने दोषाके लक्षणोंसे समन्वित होकर फुसियाके रूपमे उभर आते हैं। ये जब पककर फूट जाते हैं तब अपने-अपने लक्षणोमे उक्त व्रणका रूप धारण कर लेते हैं।

वात-पित्तज विसर्परोगमे रोगीका ज्वर वमन, मूर्च्छा, अतिसार प्यास, भ्रम, हड्डी टूटना, अग्निमान्द्य, तमक श्वास और अरुचिका उपद्रव ग्रस्त कर लेता है। यह रोग प्रज्वलित अग्निके अगारेके समान रोगीके सम्पूर्ण अङ्गको सतप्त कर देता है। यह विसर्प शरीरके जिन-जिन स्थानापर फैलता है, वे स्थान बुझे हुए अगारेके समान काले नीले तथा रक्तवर्णके हो जाते हैं। अपने स्फुटित व्रणाके द्वारा यथाशीघ्र ही अग्निसे दग्ध हुए स्थानके सदृश विस्तृत क्षेत्रम यह फैल जाता है। शीघ्रगामी होनेके कारण विसर्प मर्मस्थलतक पहुँच जाता है। इस रोगमे वायु प्रबल हो जाता है और वह प्रकुपित होकर सम्पूर्ण अङ्गाको पीडित करता है तथा रोगीको चेतनाशून्य कर देता है। उसके प्रभावसे रोगीकी निद्रा भी समाप्त हो जाती है। उसकी श्वसन-क्रियाम विकार आ जाता है। ऐसे रोगीको हिचकी भी आने लगती है। इस प्रकारके रोगम रोगीकी ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह पीडासे ग्रस्त हो उठता है तो उसको अत्यन्त व्याकुलताकी अनुभूति होती है। भूमि, शय्या तथा आसन आदिपर उठने बैठने और लेटनेसे उसको तनिक भी शान्ति प्राप्त नहीं होती। इस रोगसे ग्रस्त रोगी उसमे विमुक्त होनेके लिये विभिन्न प्रकारकी चेष्टा करता है, किंतु उस कष्टसे विमुक्त नहीं हो पाता। ऐसा रोगी मन और शरीर दोनोसे शिथिल होकर ऐसी गम्भीर मूर्च्छाको प्राप्त कर लेता है, जिससे पुन चेतनाम उसका लौटना बडा ही दुस्साध्य होता है। इन लक्षणासे युक्त विसर्पको अग्निविसर्प कहा जाता है।

कफमे अवरुद्ध वायु उस अवरोधक कफको बहुत प्रकारसे भेदन कर देता है, तब ग्रन्थिमाला तैयार हो जाती है अथवा जिस रोगीका रक्त बढ जाता है उसके त्वचा शिरा, स्नायु तथा मासगत रक्तको दूषित करके वह वायु लम्बी, छल्लेदार स्थूल और खुरदरी ग्रन्थियाकी रक्तभरी मालाकी सृष्टि करती है। इसके कारण रोगीको तीव्र पीडादायक ज्वर होता है। यह रोग होनेपर रोगी श्वास खाँसी, अतिसार, मुखशोष हिचकी वमन, भ्रम, मोह वर्णभेद, मूर्च्छा, अङ्गभेद और अग्निमान्द्यके दोषसे भी घिर जाता है। इस प्रकार कफ और वायुके सक्षोभसे उत्पन्न इस रोगको ग्रन्थिविसर्प कहते हैं।

कफ और पित्तके प्रकुपित होनेसे रोगाम ज्वर, स्तम्भन, निद्रा तन्द्रा, शिरोवेदना विक्षेप, प्रलाप अरुचि भ्रम मूर्च्छा अग्निमान्द्य, अस्थिभेद प्यास इन्द्रियजनित जडता आँवनिर्गमन तथा रसादिक स्रोताका लेप—ये लक्षण दिखायी देते हैं। प्राय यह दोष आमाशयके एक देशम होता है और धीरे-धीरे अन्य भागामे फैलता जाता है, परतु इसम दर्द नहीं होता। यह अत्यन्त पीला लोहित और पाण्डु रगकी पिडिकाओसे भर जाता है। इसके स्वरूपकी क्रान्ति कृष्ण और मलिन मानी गयी है। यह रोग शोथसे युक्त और भारी होता है। यह स्पर्श करनेम अधिक ऊष्मासे समन्वित अनुभूत होता है। इसम पसीने-जैसी चिपचिपाहट होती है।

[1] १-च०चि०२१ सु०नि०अ० १० अ०हृ०नि०अ० १३।

जब यह पककर फूटता है तो इसमे मास गल-गलकर नये रूपमें निकलने लगता है। शरीरकी स्नायु तथा शिराएँ स्पष्ट रूपसे दिखायी देने लगती हैं। इस प्रकार सभी लक्षणोंस युक्त हुआ यह विसर्पराग अन्ततोगत्वा शरीरकी त्वचासे सम्पृक्त हो जाता है, जिसके कारण यह बाह्य भागम दिखायी देने लगता है। इस रोग-स्थानसे शवके समान दुर्गन्ध निकलती है। विद्वानोने इसको कर्दम विसर्परोगके नामसे अभिहित किया है।

बाह्य आघात आदिके कारण क्षत हुए शरीरसे क्रुद्धवायु पित्तको रक्तसमन्वित करता हुआ कुल्थीके दानोके समान स्फोटजनित विसर्पको जन्म देता है। इसमें शोथ, ज्वर, पीडा, दाहाधिक्य, श्याम और रक्तवर्णताका लक्षण भी दिखायी पडता ह। पृथक्-पृथक् वात, पित्त तथा कफजनित दोपसे उत्पन्न उक्त तीना प्रकारका विसर्परोग साध्य है। इतना ही नहीं, वात-पित्त आदि द्वन्द्वजनित दोपसे समन्वित विसर्प यदि उपद्रवस रहित हें तो वे भी यथापक्षित चिकित्सासे दूर किये जा सकते हैं, किंतु जो विसर्प समस्त दोपासे युक्त हा जाते हैं और जिनका आक्रमण रोगीके मर्मस्थलको आहत करनेमें सफल हो जाता है, जिसके दुष्प्रभावसे रोगीके शरीरका स्नायु, शिरा और मास गल जाता है ओर जिनसे शवके समान दुर्गन्ध आने लगती हे—वे विसर्परोग असाध्य हो जाते हैं, उनकी चिकित्सा सम्भव नहीं है। (अध्याय १६३)

कुष्ठरोगका निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! मिथ्या एव विरोधी आहार-विहार करनेसे तथा सज्जनोकी निन्दा एव अपमान और वध या हत्या करनेसे, दूसरोकी धन-सम्पत्तिके हरण एव पाप-कृत्यसे पूर्वजन्मकृत पापका उदय हानेसे वातादि दोष कुपित होकर शिराओम जाकर त्वचा लसीका, रक्त एव मासको दूषित और अङ्गोकी क्रिया-हानि करक वे दोष बाहर आकर त्वचापर विविध प्रकारके कुष्ठको उत्पन्न करते हैं।

सामयिक उपेक्षा करनेपर यह रोग आभ्यन्तरिक समस्त कोष्ठकाके सहित शरीरमे व्याप्त होकर बाहर और भीतर रहनेवाली सभी धातुआको गलाकर अपना अधिकार कर लेता है। इस रोगम पसीनके जलबिन्दुआसे युक्त प्राणीके शरीरपर कुछ आर्द्रता होती है। इसम अत्यन्त कष्टदायक बहुत ही छोटे-छोट कीड होते हैं। इन सभी लक्षणासे युक्त यह रोग क्रमश रोगीके राम त्वचा, स्नायु तथा धमनियापर आक्रमण करता है।

बाह्य भागमे फैला हुआ कुष्ठरोग प्राणीके उस आक्रान्तित शरीरको भस्मसे आच्छादित हुएके समान रूक्ष बना देता है। वात पित्त श्लेष्म वातपित्त वातश्लेष्म, पित्तश्लेष्म ओर सनिपात-दोषजन्य प्रभावसे यह रोग सात प्रकारका हाता ह। इन सभी प्रकारके कुष्ठ-भेदोम वात-पित्त तथा कफज दोषक अन्तर्गत प्राप्त होनेवाली विकृति अधिक रहती है।

वात-दोषसे कापाल, पित्त-दोपसे उदुम्बर, कफ-दोपसे मण्डल तथा विचर्चिका नामक कुष्ठ उत्पन्न होता है। वातपित्तज दोपसे ऋक्ष, वातश्लेष्मजन्य दापसे चर्म, एककुष्ठ, किटिम, सिध्म, अलसक तथा विपादिका नामक कुष्ठ होते हैं। श्लेष्मपित्तजन्य दोपसे दद्रु, शतारुषी, पुण्डरीक, विस्फोट पामा और चर्मदल नामक कुष्ठाकी उत्पत्ति होती है। इन सभी दोषाकी सनिपात-अवस्था आनेपर १८ प्रकारक कुष्ठ-रोग उत्पन्न होते हैं।

इनम पूर्वमे कहे—कापाल, उदुम्बर तथा मण्डल—ये तीन ओर दद्रु, काकण पुण्डरीक तथा अरिजिह्वा नामक इन सात कुष्ठाको महा कुष्ठ माना गया है। शेष ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ कहलाते हैं।

कुष्ठरोग होनके पूर्व रोगीकी त्वचाम अत्यन्त चिकनाहट, रूक्षता स्पर्शता, स्वेद, अस्वेद, वर्णभेद, दाह, खुजली स्पर्शानुभूतिकी कमी, सुई चुभानेसे होनेवाली पीडाक समान कष्ट पित्तीका उछलना और अनायास श्रमकी अनुभूति, रागीक घावोम अत्यधिक पाडा व्रणोका यथाशीघ्र उद्भव, अधिक समयतक उन व्रणाका रहना व्रण-भरावके समय

१-सु०नि०अ० १० च०चि० ७० २१।
२-च०चि० २१ अ०हृ०नि०अ० १४।
३-सु०नि०अ० ५।
४-सु०नि०अ० ५ च०चि०अ० ५ ७ अ०हृ०नि०अ० १४ वा०नि० ७।

रूक्षता सामान्य तथा थाडस कारणपर रागाका अत्यधिक क्रोध, रामाञ्च तथा रक्तका काला होना—य दापपूर्ण कुलक्षण दिखायी दत हैं।

कापाल कुष्ठका वर्ण काला और लाल होता है अथवा आँवम पकाये गये मिट्टीके खप्परक सदृश वह दखनेमे लगता है। उसम रूक्षता और कठोरता हाती है। इस कुष्ठ-रागकी आकृति शरीरक अधिक भागमे फैली रहती ह। उन स्थानाम रहनवाल रामसमूह भी दूषित हा जात हैं। उन दूषित स्थानोपर सूचिकाभदनस हानेवाला पीडाक समान अत्यधिक पीडा भी होती ह। वह कुष्ठ विषम अर्थात् दु साध्य माना गया है।

जा कुष्ठराग उदुम्बर अथात् गूलर-फलके समान दिखायी देता हो, उसको आदुम्बर कुष्ठराग कहना चाहिय। इसकी आकृति वर्तुलाकार हाती है। इसम अत्यधिक गीलापन दाह और पीडा होती है। जिस प्रकार बिना छानी गयी मदिराका वर्ण होता ह जिसम छाटे-छोटे कोडे भरे रहत हैं, वैस ही सामान्य पक हुए उदुम्बरका फल पात और लाल होता हे, उसी रूपमे इस कुष्ठरागका वण स्वीकार करना चाहिय। इसम रोगजन्य कृमि रहत ह जिसक कारण उस व्रणम खुजली भी हाती है।

जो कुष्ठ स्थिर, गोल, भारी, चिक्कण, श्वेत या रक्त-वर्णवाला और मलसमन्वित हो, उसके वर्ण परस्पर मिले हो, उसम अत्यधिक खुजलाहट उत्पन्न करनवाले कृमि हा उनसे पीब निकलता रहे तथा वह चिकन पीत वर्णकी आभासे युक्त मण्डलके समान दिखायी देता हो तो उसको मण्डल कुष्ठरोग कहा गया है।

खुजलाहटसे भरी हुई फुसियावाले धूसर वर्णसे युक्त और स्राव-समन्वित कुष्ठका नाम विचर्चिका कुष्ठ है। जा कुष्ठ कर्कश होता है जिसके किनारेपर लाल वर्ण और बीचम काला वर्ण विद्यमान रहता है जिसकी आकृति ऊँची और रीछ अर्थात् भालूका जिह्वाके समान हाती है जिसम बहुतस कृमि भी होते हैं उसको आयुर्वेदम ऋष्यजिह्वा या ऋक्षजिह्वा कुष्ठके नामसे अभिहित किया गया है।

हाथाक चमडक समान रागीका खरखराहट-भरा चमडा हानपर गजचमकुष्ठ कहा जाता है। जो कुष्ठ पसीनेस रहित मछलाक शल्क (अभ्रकवत् चर्म)-के सदृश होता है, उसे एककुष्ठ कहत हैं। जो कुष्ठ रूखा, अग्निके समान वर्णवाला या काला स्पर्श करनेमे कष्टकारी, खुजलाहटसे युक्त तथा कठोर हाता है, वह किटिभ कुष्ठ माना गया है। सिध्म कुष्ठ अन्तर्भागसे रूक्ष और बाह्यरूपम स्निग्ध होता है। इसके आभ्यन्तरिक भागको रगडनेसे बालूके कणके समान रज गिरता ह। इस रोगक हानपर शरीरका स्पर्श करनेसे चिकनाहटका अनुभव हाता ह। इसम स्वच्छता हाती है। इसका वर्णाकृति काल पुष्पक समान दिखायी देती है, यह कुष्ठ प्राय शरीरके ऊपरी भागमे हाता है।

अलशुका (अलसक) कुष्ठम खुजली और लाल रगकी पिडिका हाती हे। विपादिका कुष्ठम हाथ और पाँव फट जात हैं, अत्यन्त वदना और खुजली हाती है तथा लाल वर्णकी फुसियाँ हो जाती ह। जिस कुष्ठम दद्रु या दाद दूवाक समान बहुत जगहम फल जाता हो तथा अलसीक फूलके सदृश कान्ति दिखायी दती हो और ऊँच-ऊँच गाल चकत्त हा एसा खुजलाहटस परिव्याप्त कुष्ठ दद्रु या दाद कुष्ठ कहलाता है।

अपन मूलभागम स्थूल दाह और वदनासे समन्वित रक्तस्राववाल प्रचुर व्रणासे युक्त कुष्ठरोगका नाम शतारुषा है। इस प्रकारक कुष्ठरागम दाह क्लेद और वदना होती है। यह प्राय अस्थिक जाडाम होता है। जिस कुष्ठमे कुष्ठ स्थानका मण्डल रक्तस भरा हुआ तथा पाण्डु वर्णका हाता हे उसम दाह और खुजलाहट-भरी पीडा भा हाती है, खिले हुए रक्तवण और जलसे ससिक्त पुण्डरीक-दल अर्थात् श्वेत कमलकी पखुडियाक समान शरीरपर उभरा हुआ ओर व्रणके किनारे पद्मपत्रकी जल-बिन्दुआसे युक्त मासवाले दिखायी देते हैं उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं। विस्फोटक कुष्ठ पतले चमडेस ढका होता है तथा सफेद और लाल फुसियास व्याप्त होता है।

पामा नामक कुष्ठ पककर फूटनेवाली छोटी-छोटी असख्य फुसियासे भरा हाता है। इसम खुजली, मलस्राव और वदना होती है। प्राय इसका वर्ण श्याम और लाल हाता है। इसम रूक्षता होती है। यह रागीक कूल्हे, चूतड और हाथक राम-छिद्राम हाता है। चर्मदल नामक कुष्ठ

फोडा-फुसीके रूपमे उभरकर फफोले पडकर फूटता है, यह किये गये स्पर्शका सहन करनेमे समर्थ नहीं होता। इसम खुजलाहट होती है, रक्तस्राव होता है, जलन भी होती है और मास गलकर गिरता हे।

काकण नामक कुष्ठम अत्यन्त दाह और तीव्र वेदना हाती है। गुजाफलके समान यह पहले लाल और काले अनेक रगका होता है। अपने-अपने कारणासे सब कुष्ठाके लक्षण इसम पाये जाते हैं।

दोष[1]-भेदके अनुसार त्रिदोषाम जो दोष कुष्ठमें अधिक विहित हो उसीके लक्षण और कर्मके अनुसार त्रिदोषज कुष्ठका स्वरूप समझना चाहिये। जो कुष्ठ-भेद अपने ही दोषका अनुगमन करता है अर्थात् वह द्वन्द्वज दोष या सनिपातज दोषसे सम्पृक्त नहीं होता तो उसकी चिकित्सा सम्भव है। किंतु जब वह सभी दोषासे परिव्याप्त हो जाता है तो उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिय, वह असाध्य हो जाता है।

उपर्युक्त जितने भी कुष्ठ हैं, उनमेसे जो कुष्ठ अस्थि, मज्जा और शुक्राणुओमे प्रविष्ट हो गया है, वह कुष्ठ भी असाध्य है। जो कुष्ठ मेदागत है और जो स्नायु, अस्थि एव मासमे पहुँच गया है, वह अधिक कष्टसाध्य नहीं है। जिस कुष्ठका जन्म कफ और वातके कारण त्वचापर ही होता है, जिसम विशेष दोष नहीं रहता, वह कष्टसाध्य नहीं हाता। सामान्य चिकित्सासे ही उसकी शान्ति हो सकती है।

त्वचाभागपर ऐस कुष्ठके उभर आनेसे शरीरका वर्ण बदल जाता हे, उसमे रूक्षता आ जाती है। तदनन्तर जब वह कुष्ठ रक्त और मासम प्रविष्ट हो जाता है तो रागीके शरीरमे स्वेद ताप तथा शोथके लक्षण उभर आते हैं। रोगीके हाथ और पैरोम फोडे हो जाते हैं। शरीरके सधि-भागोम अधिक पीडा होती है। दाषाधिक्य होनेपर वह मेदामे पहुँच जाता है, जिसके कारण उसमे उपद्रव हाने लगता है। रोगीकी इन्द्रियाम सज्ञाशून्यता बढ जाती है अर्थात् वह चलने-फिरनेमे अशक्त हो जाता है। रोगीके शरीरकी मज्जा और अस्थिम जब वह कुष्ठ पहुँच जाता है तो उसके नत्राकी ज्योति तथा वाणीके स्वरोम भेद उत्पन्न हो जाता है।

कुष्ठरोगके कृमियोके द्वारा रोगीके वीर्यमे विकार उत्पन्न हो जानेपर वह दोष स्त्री और सतानके लिये बाधायुक्त हा जाता है। रस-रक्तादि धातुगत कुष्ठामे अपने-अपने लक्षणाके अतिरिक्त यथापूर्व धातुगत कुष्ठाके लक्षण भी हा जात हैं।

श्वित्र और कुष्ठ इन दोना रोगाकी उत्पत्तिका कारण एक ही है और इनकी चिकित्सा भी एक ही है। इसीको किलास तथा दारुण भी कहते है। इनम अन्तर यही है कि कुष्ठ सनिपातिक है और श्वित्र अलग-अलग दोषोसे उत्पन्न होता है। कुष्ठ स्रावी है और श्वित्र अपरिस्रावी। कुष्ठ रसादि सातो धातुओपर आक्रमण करता है और श्वित्र रक्त, मास तथा मेद—इन तीन धातुओका आश्रय ग्रहण करता है।

वातज और आभ्यन्तरिक रूक्षताके कारण उत्पन्न हुआ श्वित्र कुष्ठरोग अरुण वर्णका होता है। जब वह पित्तज दोषके कारण जन्म लेता है तो उसका वर्ण पद्मपत्रके समान या ताम्रवत् होता है। यह दाहयुक्त और रोमविनाशक होता है। कफज दोषके कारण उभरा हुआ श्वित्र श्वेतवर्ण, सघन, भारी और खुजलीसे युक्त होता है।

ये श्वित्र क्रमश रक्त, मास और मेदामे पहुँचकर आश्रय ग्रहण करते हैं अर्थात् वातज श्वित्र रक्तमे पित्तज श्वित्र मासमे तथा कफज श्वित्र मेदमे होता है। अरुण आदि वर्णके आधारपर ही श्वित्रके वातादिक दोष तथा रक्तादि आश्रय—दानो ही जाने जात हैं। उत्तरोत्तर इनकी चिकित्सा कष्ट-साध्य हाती है अर्थात् यह श्वित्ररोग जबतक रक्ताश्रित होता है, तबतक उसकी चिकित्सा सम्भव है। मासगत होते ही यह कष्टसाध्य हो जाता है और उसके बाद तो जब यह मेदामे पहुँच जाता है, तब अत्यन्त कष्टसाध्य हो जाता है।

जा श्वित्र कृष्ण वर्णवाले रोमोसे भरा हुआ होता है, उसके दाग एक-दूसरेसे सश्लिष्ट नहीं होते। वह अधिक समयका न होकर नया ही होता है और उसका जन्म अग्निसे जलनेके कारण नहीं हो तो उसे चिकित्सा-साध्य समझना चाहिये। इन लक्षणाके विपरीत होनेपर इसका उपचार करना चिकित्सकके लिये त्याज्य है, क्योकि यह असाध्य हो जाता है। रोगीके गुह्यभाग करतल और ओष्ठ-

१-सु०सू०अ० १२ स०ग०पु०अ० ९—

प्रदेशम तो यथाशीघ्र भी उत्पन्न हुआ यह रोग असाध्य बन जाता हे। यश प्राप्त करनके इच्छुक वैद्यको तो किलास नामक श्वित्र-भेदकी चिकित्साको सर्वथा त्याग देना चाहिये, क्याकि उसका उपचार सम्भव नहीं है।

प्राय सभी रोग सक्रामक होते हैं। रोगीका स्पर्श करनेसे, उसके साथ वैठकर भाजन करनेसे, उसके साथ रहनेसे, एक शय्या और आसनपर उसक साथ सोने और वैठनेसे तथा उस रोगीके द्वारा प्रयुक्त वस्त्र, माला एव अनुलेप-पदार्थका प्रयोग करनेसे दूसरे प्राणीमे रोगोका प्रादुर्भाव हो जाता है। (अध्याय १६४)

कृमि-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत। बाह्य ओर आभ्यन्तर भेदके कारण कृमियाके दो प्रकार हें। उनमे बाह्यगत जो कृमि (कीडे) होते हैं, उनका जन्म बाहरी मल, कफ, रक्त और विष्ठासे होता है। जन्मगत भेदके कारण उनके चार भेद हो जाते हैं, किंतु नाम-भेदसे कृमियोके बीस प्रकार माने गये हैं। बाह्य कृमि बाह्य मलसे उत्पन्न होते हैं। इनका परिमाण आकार और वर्ण तिलके समान होता है। इनका निवास प्राणियाकी केशराशि तथा उनके वस्त्रोम होता हे। अनेक पैरावाले उन कृमियाकी आकृति सूक्ष्म होती है। नामत उन्हे जूँ और लीख कहा जाता है। इन दाना प्रकारवाले कृमियोके द्वारा प्राणियोके बाह्य शरीरपर कोष्ठ (चकत्ते), पिडिका (फुन्सी), कण्डू (खुजली) तथा गण्ड (गाँठ) नामक रोग कहे जाते हैं।

कुष्ठरोगका एक मात्र कारण शरीरके आभ्यन्तरिक भागम उत्पन्न होनेवाला श्लेष्मज कृमि है। यह प्राणीके बाह्य श्लेष्मम भी उत्पन्न हा सकता है। मधुर अन्न गुड दूध दही, मछली और नये चावलका भात खानेसे प्राणीके आभ्यन्तरिक भागम कफ उत्पन्न होता है उसी कफसे उत्पन्न होकर कृमिवर्ग आमाशयमे पहुँच जाता है। उसीम इस कृमिवर्गकी अभिवृद्धि होती है और उसीसे निकलकर शरीरम यह सब आर फैल जाता है। उनम कुछ चमडेकी माटी ताँतके समान कुछ कचुएके सदृश, कुछ धान्याङ्कुरक समान छोटे-वड और कुछ अणुकी भाँति होते हैं। इनका वर्ण श्वेत तथा ताँबे-जैसा होता है। नामत इन कृमियाके सात प्रकार हैं—अन्त्राद, उदरावेष्ट, हृदयाद, महागुद, च्युरव दर्भकुसुम और सुगन्ध।

इन कृमियोके उत्पन्न होनेसे प्राणीके हृल्लास मुखस्राव (लार), अपच, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, आनाह कृशता, शोथ तथा पीनस नामक रोगाकी उत्पत्ति होती है।

रक्तवाही शिराआमे स्थित रक्तसे उत्पन्न होनेवाले कृमि अणुरूप, पादविहीन, वृत्ताकार और ताम्रवर्णके होते हैं। अपनी सूक्ष्मताके कारण उनमसे कुछ कृमि ता दृष्टिगोचर ही नहीं होते। इनके केशाद, रोमविध्वस, रोमद्वीप उदुम्बर सोरस तथा मातर—ये छ भेद हैं। इन सभी कृमियोका एकमात्र कार्य कुष्ठरोग उत्पन्न करना है।

पक्वाशयम गुदा-भागस बाहर निकलनेवाल विष्ठाजन्य कृमियाका उद्भव होता है। वहाँपर बढकर जब ये आमाशयकी ओर उन्मुख होते हैं, तब प्राणियाके डकार और श्वासमें विष्ठा-सदृश दुर्गन्ध आती है। वे कृमि लम्बे गोल, छाट और माटे होते हैं। उनका वर्ण श्याम, पीत श्वेत और कृष्ण हाता है। उन कृमियोके ककेरुक मकेरक सौसुराद शूलाख्य तथा ललिह—ये पाँच नामभेद हैं। जब ये प्रकुपित हो उठते हैं तो प्राणाके शरीरमे मलभेद शूल विष्टम्भ कृशता कर्कशता पाण्डुता रोमाञ्च मन्दाग्नि और पाण्डु तथा गुदाम खुजलाहटका दोष उत्पन्न हो जाता है।

(अध्याय १६५)

वातव्याधि-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपको वातव्याधिका निदान सुना रहा हूँ, उसे आप सुने।

शरीरमे विशेष रूपसे सर्वथा अनर्थ और विघ्नोका एकमात्र कारण न दिखायी देनेवाला दुष्ट (प्रकुपित) पवन ही है। वह वायु ही विश्वकर्मा, विश्वात्मा, विश्वरूप, प्रजापति, स्रष्टा, धाता, विभु, विष्णु, संहर्ता, मृत्यु और अन्तक-रूप है। इसलिये उस वायुको सम रखनेके लिये विशेष रूपसे प्रयत्न करना चाहिये।

उस वातबाधित शरीरसे सम्बद्ध, कहे गये दोष-विज्ञानमे कर्म दो प्रकारका माना गया है। उनमे एक है प्राकृत कर्म और दूसरा है वैकृत कर्म। सक्षेपम प्रतिपादित दोष-भेदोका विचार करके प्रत्येक कर्मके पाँच-पाँच दोष सिद्ध किये गये हैं। इनमे वैकृत कर्म-दोष प्राकृतकी अपेक्षा शक्तिशाली और गतिमान् होता है। अब यहाँ यथाविभाग लक्षणसहित उसके निदानको कहा जा रहा है।

शरीरकी धातुओको क्षीण करनेवाले द्रव्य-पदार्थोंके उपभोग तथा आचार-विचारसे क्रुद्ध वायु अत्यधिक समरूपमें प्रवहमान नहीं रहता। वह रस आदिके चारा स्रोतोसे प्रवाहित होकर पुन उनमे तज्जनित दोषोको परिपूर्ण कर देता है। उसके बाद उन दोषपूर्ण स्रोतोसे निकलकर वह सक्षुब्ध वायु उसके मुखको विधिवत् आच्छादित करके रोगीके शरीरमे शूल, आनाह, आन्त्रकूजन मलावरोध, स्वरभग, दृष्टिभेद, पीठ तथा कटि-प्रदेशमें पीडादायक उपद्रवोंको जन्म देता है। उसीके प्रभावसे रोगीके शरीरमें अन्य ऐसे उपद्रवोका जन्म हाता है जो कष्टसाध्य हैं।

आमाशयम वात-दोष होनेपर वमन, श्वास, खाँसी विषूचिका, कण्ठावरोध तथा नाभिके ऊपरके भागमे अनेक व्याधियाका जन्म होता है। कुपित वायु नेत्र-कान आदि इन्द्रियोमे विघ्न तथा त्वचा-भागमे प्रविष्ट होकर पककर फूटनेवाले फोडे और रूक्षताका कारण बन जाती है। रक्तमे वायुके प्रविष्ट होनेसे रोगीको अत्यन्त कष्टदायक पीडा होती है, श्वास तथा गलेमे जलन और स्वरभेदका रोग होता है। आँतके मध्य प्रदूषित वायुके पहुँचनेपर विष्टम्भ, अरुचि कृशता और भ्रमके रोगाकी उत्पत्ति होती है। मास और मेदामें प्रकुपित हुआ वायु शरीरमे ग्रन्थि, कर्कशता, भारीपन, लाठी एव मुष्टि-प्रहारसे होनेवाली पीडाके समान पीडा उत्पन्नकर रोगीको अत्यधिक कष्ट देता है। अस्थियोमे प्रविष्ट हुए सक्षुब्ध वायुसे सक्थि तथा सधि-स्थानोमे रहनेवाली अस्थियोके अन्तर्गत तीव्र शूल उठनेसे रोगीको कष्ट होता है।

मज्जागत कुपित वायु रोगीकी अस्थियोमे क्षरण एव अनिद्रा उत्पन्न करता है, जिससे रोगीको पीडा होती है। शुक्रगत कुपित वायु वीर्य और गर्भका शीघ्र पतन करता है अथवा वह विकृत हो जाता है। शिरागत वायु सिरमे पीडा और रिक्तताका अनुभव कराता है। स्नायु-स्थित क्रुद्ध वायु रोगीके शरीरमे शोथ उत्पन्न कर देता है, जिसके कारण उसको अधिक कष्ट होता है।

शरीरके सधि-स्थानामे प्रवहमान प्रकुपित वायुके कारण रोगी जलसे परिपूर्ण दृति (गलगण्ड), स्पर्श तथा शुष्कताके उपद्रवसे ग्रस्त हो जाता है। शरीरके समस्त अङ्गामे कुपित वायुके प्रविष्ट हो जानेपर पीडा, टूटन और स्फुरणका दोष होता है। स्वप्नावस्थामे विकार होनेसे वायु-स्तम्भन, आक्षेपण, सधिभग तथा कम्पनका दोष प्राणीके शरीरमे उत्पन्न कर देता है। जब क्रुद्ध वायु शरीरकी सम्पूर्ण धमनियोमे बारम्बार प्रवाहित होने लगता है तो उस समय शरीरके अङ्ग विक्षिप्त हो उठत हैं। इस व्याधिको आक्षेपण नामसे कहा गया है।

जब नीचेसे ताडित वायु कुपित होकर ऊपर चढता है और फिर ऊर्ध्वभागकी ओर प्रवाहित होने लगता है, तब वह रोगीके हृदयको पीडितकर सिर और मस्तककी अस्थिमे पीडा उत्पन्न कर देता है। वह चारो ओरसे शरीरपर प्रहार करता है, जिससे शरीर विक्षिप्त हो उठता है। वह हनु और मुखकी शक्तिको भी क्षीण करके रोगीको व्यथित करनेका प्रयास करता है। रोगी बडे ही कष्टसे श्वास लेता और उसका परित्याग करता है। उसके दोनो नेत्र बद होने लगते हैं। कण्ठसे कबूतरके समान ध्वनि होने लगती है और रोगी ज्ञानशून्य होने लगता है। चिकित्सा-क्षेत्रमे इसका नाम उपतन्त्रक रोग है। हृदयमे स्थित दोषपूर्ण वायुके द्वारा प्रेरित वह रोग जब रोगीकी वाम नासिकाके छिद्रम जाकर आश्रय लेता है, तब उसके कारण रोगी बार-बार स्वस्थता और बार-बार अस्वस्थताका अनुभव करता है।

अभिघातजन्य वातव्याधि (अपतानक राग) अत्यन्त दुश्चिकित्स्य है।

जब कुपित वायु ग्रीवा और पार्श्वमें स्थित मन्या नामवाली दोनों शिराओंको जकडकर और सम्पूर्ण धमनियोंका आश्रय लेकर सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाती है, जिससे गर्दन तथा कक्षकी संधियाँ टेढी पड जाती हैं और शरीर भीतरकी ओर धनुषकी तरह झुक जाता है, रोगीके नेत्र स्तम्भित हो जाते हैं, वह जँभाई लेने लगता है, दाँतोंको चबाने लगता है, कफयुक्त वमन करता है, दोनों पसलियोंमें वेदना होती है, वाणी रुक जाती है तथा हनु, पृष्ठ और मस्तक जकड जाते हैं, तब इसको अन्तरायाम वातरोग कहते हैं।

बहिरायाम रोगमें शरीर बाहरकी ओर धनुषके सदृश झुक जाता है। वक्षःस्थल ऊँचा हो जाता है और सिर तथा कंधा पीछेकी ओर झुक जाता है। दाँतों तथा मुखका रंग बदल जाता है, पसीना अधिक आता है, शरीर शिथिल हो जाता है। इस वातव्याधिको बाह्यायाम या धनुस्तम्भ कहा जाता है।

रोगीके मल, मूत्र और रक्तमें प्रविष्ट हुआ वात-दोष सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर शरीरमें अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न करता है। इस रोगको व्रणायाम कहते हैं। जिस व्रणायाम रोगमें रोगीको अत्यन्त तृषा हो और उसका शरीर पीला पड गया हो, वह असाध्य होनेसे वर्जित है। सभी प्रकारके आक्षेपक रोगोंमें वायुका वेग शान्त हो जानेपर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

जिह्वाको अत्यधिक रगडने और उष्ण भोजन करनेसे हनु अर्थात् ठोडीमें स्थित वायु कुपित होकर हनुभागमें स्तम्भन-दोष उत्पन्न करके मुखको खोल देता है अथवा बंद कर देता है। इसीको वातव्याधिमें हनुस्तम्भ-व्याधि कहते हैं। इसके कारण रोगीको खाने-चबाने तथा बोलनेमें अधिक कठिनाई होती है।

कुपित वायु वाग्वाहिनी शिरामें स्थित होकर जिह्वाको स्तम्भित कर देता है। यह जिह्वास्तम्भ नामक वातव्याधिका भेद माना गया है। इसके दुष्प्रभावसे रोगीके मुखमें खान-पान तथा बोलन-चालनकी सामर्थ्य नहीं रह जाती। सिरके द्वारा भार ढोने, अत्यन्त हँसने और बोलने, ऊबड-खाबड स्थानपर सोने तथा कठोर पदार्थोंके चबानेसे वायु विकारयुक्त होकर शरीरमें चढता है और ऊर्ध्वभागमें पहुँचकर आश्रित हो जाता है। इससे रोगीका मुख टेढा हो जाता है। वह ऊँचे स्वरमें अट्टहास करता है तथा किसी ओर अपने नेत्रोंको एकटक लगाकर ध्यानमग्न होकर देखता है। उसके बाद उसी दोषसे रोगीकी वाक्शक्ति शिथिल पड जाती है, नेत्रोंमें स्तब्धता छा जाती है, दाँत किटकिटाते हैं, स्वरभंग हो जाता है, बहरापन तथा अन्धत्वका दोष आ जाता है। इन दोषोंके अतिरिक्त गन्धकी अज्ञानता, स्मृतिध्वंस, भय, श्वास, थूक, पार्श्वभेद, एक नेत्रकी शक्तिका ह्रास, दाढके ऊर्ध्वभागमें, शरीरके आधे भागमें या नीचेके भागमें प्रबल वेदना होती है। कुछ लोग इसे अर्दित और कुछ एकाङ्गदोष कहते हैं।

जब प्रकुपित वायु रक्तका आश्रय लेकर मूर्धामें स्थित शिराओंको रूक्ष, शूलयुक्त और कृष्णवर्णका कर देता है, तब उसे शिरोग्रह दोष कहते हैं और यह असाध्य है।

जब प्रकुपित वायु शरीरको अपने अधिकारमें करके उसमें निहित शिराओं तथा स्नायु-तन्त्रिकाओंको अपने अधिकारमें कर लेता है और उनमें अवरोध उत्पन्न करके वह रोगीके शरीरके एक पक्ष अथवा अन्य किसी विशेष भागपर प्रहार करता है, जिससे वह भाग चेतना-शून्य अथवा अकर्मण्य हो जाता है, तब उस दोषको लोग पक्षाघात कहते हैं। कुछ लोगोंने तो उसको एकाङ्ग या अर्धाङ्ग रोग और कुछ अन्य लोगोंने कक्षव्याधिके नामसे स्वीकार किया है। परंतु सम्पूर्ण शरीरमें प्रकुपित वायुका आश्रय होनेपर सर्वाङ्गरोध (सर्वाङ्ग-पक्षाघात) और जकडन नामक रोग होता है।

जो पक्षाघातरोग केवल वातके कारण होता है, वह अत्यन्त कष्ट-साध्य है। जब वह वातरोग पित्तादि अन्य दोषोंके संयोगसे होता है, तब कष्ट-साध्य तथा जो वातरोग धातुओंके क्षय हो जानेसे होता है, वह असाध्य होनेसे वर्ज्य है।

कफसे युक्त वात जब आमाशयमें अवरुद्ध हो जाता है, तब उस समय रोगीके शरीरको वह जकड देता है। उसके कारण रोगीका शरीर डंडेके समान सीधा हो जाता है। इसीलिये इसको दण्डापतानक कहा जाता है। यह सम्पूर्ण दोषोंसे समन्वित होनेपर निश्चित ही असाध्य बन जाता है।

स्कन्ध-प्रदेशके मूलभागसे उठा हुआ प्रकुपित वायु

१ मु०ग०अ० १।

उसकी शिराओको सकुचित करके बाहुओकी स्पन्दन-शक्तिको नष्ट कर देता है, उसे अवबाहुक रोग कहते हैं। भुजाओके पृष्ठभागसे होकर प्रत्येक अँगुलीके तलप्रदेशतक जो एक मोटी नाडी जाती है, उसका नाम कण्डरा है। उसमे कुपित हुआ वात उसके कर्म-सामर्थ्यको समाप्त कर देता है, उसको विपूची कहा जाता है। रोगीके कटिप्रदेशमे रहनेवाला वायु जब जघाप्रदेशतक जाता है, तो अपनी उस मोटी कण्डरा नाडीको आक्षिप्त कर देता है अर्थात् उसे जकड लेता है, इससे रोगी खञ्ज (लँगडा) हो जाता है। जब दोनो जघाओकी नसोको जकडकर दोनो पैरोकी कण्डराएँ आक्षिप्त हो उठती हैं, तब उस रोगको पङ्गु कहा जाता है। जब रोगी चलनेमे काँपने लगता है और खञ्जन पक्षीकी भाँति लँगडाते हुए चलता है, उसके सधि-बन्धन शिथिल पड जाते हैं तो उस दोषको कलायखञ्ज नामक रोग मानना चाहिये।

जीर्ण या अजीर्ण-अवस्थामे शीतल, उष्ण, द्रव-पदार्थ, शुष्क, गुरु स्निग्ध भोज्य-पदार्थका सेवन, अधिक परिश्रम, सक्षोभ, शैथिल्य तथा अधिक जागरण करनेसे वात-कफयुक्त मेद अत्यधिक मात्रामे सचित होकर पित्तका पराभव करके शरीरको परिव्याप्त कर लेता है।

अन्त श्लेष्मके द्वारा जघाप्रदेशकी हड्डियोंके दोष-समन्वित होनेपर स्तम्भन-रोग उन्हे ग्रसित करता है। उस समय शीत-वात-दोषके प्रभावसे जघाओकी हड्डी शिथिल पड जाती है। उस दोषके प्रभावके कारण रोगीका वह अङ्ग श्यामवर्णका हो जाता है। उसमे जडता आ जाती है। रोगी तन्द्रा, मूर्च्छा, अरुचि और ज्वरके उपद्रवोसे ग्रस्त हो उठता है। इस रोगको ऊरुस्तम्भ कहते हैं। दूसरे लोग इसको बाह्यवात भी कहते हैं।

वायु और रक्त दोनोके कुपित होनेसे जानुमे (घुटनोके मध्य) जो शोथ उत्पन्न होता है, वह महाभयकर पीडादायक रोग है। इसमे शोथ सियारके सिरके समान स्थूल माना गया है, इसलिये इसको क्रोष्टुकशीर्षक नामसे कहा जाता है। जब ऊँचे-नीचे पीडादायक विषम स्थानपर पैर रखनेसे अथवा अत्यन्त परिश्रमसे वायु कुपित होकर गुल्फ (टखने)-मे आश्रित हो जाता है तो उसे वातकण्टक रोग कहा जाता है।

जब पार्ष्णि-भागके सम्मुख अँगुलीकी शिराओको प्रकुपित वायु पीडा उत्पन्न करते हुए पाँवोकी गमनशक्ति नष्ट कर देती है, तब उसे गृध्रसी रोग कहते हैं। कफ और वायुके प्रकुपित होनेसे जब दोनो पैर झुनझुनाने लगते हैं और सुन्न भी हो जाते हैं, तब उस दोषको पादहर्ष कहा गया है। पित्त तथा रक्तसे सश्रित वात प्राणीके दोनो पैरोमे दाह उत्पन्न कर देता है, विशेष रूपसे वैसी अवस्था अधिक चलनेसे ही आती है। वात-दोषमे इस दोषभेदको पाददाह नामसे सम्बोधित किया गया है। (अध्याय १६६)

वातरक्त-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपसे वातरक्त-निदान बतलाऊँगा उसे सुनें।

प्राय स्वास्थ्य-विरुद्ध भोजन तथा क्रोध करनेवाले दिनमें सोने और रात्रिमें जागरण करनेवाले तथा सुकुमार एव मिथ्या आहार-विहार करनेवाले, स्थूल शरीरवाले और सुखीजनोका रक्त वृद्धवातसे प्रकुपित हो जाता है। चोट लगनेसे अथवा वमन एव विरेचन आदिद्वारा शुद्ध न होनेवाले मनुष्योका रक्त दूपित हो जाता है। वात-दोष पैदा करनेवाले एव शीतल पदार्थोके सेवनसे वायु-वृद्धि होता है वह क्रुद्ध होकर विमार्गगामी हो जाता है। इस प्रकारसे प्रवहमान वह वायु रक्त-स्रोतोसे अवरुद्ध होकर पहले रक्तको ही दूपित करता है। तदनन्तर मासादिक अन्य धातुओको भी दूपित करता है। पहले गुदाभागको पीडितकर बादमें यह सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है। इस वात-दूपित रक्तको वातरक्त कहा जाता है। विशेष रूपसे यह दोष वमनादि उपद्रवो तथा पाँव लटकाकर बैठनेवाली सवारी आदिसे होता है।

कुष्ठरोगके जो पूर्वरूप होते हैं, प्राय वे ही वातरक्त-रोगके भी होते हैं। इस रोगके होनेपर घुटना, जघा, ऊरु, कटि, स्कन्ध, हाथ, पैर और सधि-स्थानोमे खुजली स्फुरण, सूचिकाभेद, गुरुता और इन्द्रियसुन्नताके दोष होते हैं। ये दोप बार-बार उत्पन्न होकर शान्त हो जाते हैं और पुन उभर भी जाते हैं।

१-सु०नि०अ० १ वा० नि० १५ च०चि० २८। २-च०चि० २९ सु० चि० १ अ०स० नि०अ० १६।

कभी दोनो पैराके मूलभागमे आश्रय लेकर अथवा कभी दोनो हाथाके मूलमे स्थित होकर, यह कुपित वातरक्त-दोप प्राणीके सम्पूर्ण शरीरको वैस ही परिव्याप्त कर लेता है, जैसे चूहेका विप कुपित होकर धारे-धीरे पूरे शरीरम व्याप्त हो जाता है। वह वातरक्त सर्वप्रथम रोगीके चर्म-भागपर उत्पन्न होकर मास-भागम आश्रय ग्रहण करता है। उसके बाद सभी धातुआको आश्रय बना लेता है। इसे गम्भीर नामक वातरक्त कहते हैं। उत्तान वातरोगम रोगीके कटि आदि स्थानोका चर्म, ताम्र या श्यामवर्णका हो जाता है। वहाँपर शोथ तथा ग्रथित पाक उत्पन्न होता है। वह प्रकुपित वायु रोगीकी हड्डिया और मज्जा-भागम जाकर वहाँ आश्रय लेकर छेदनेके समान पीडा करता हुआ चक्रके समान घूमता हुआ शरीरके अङ्गोको टेढा-मेढा कर देता है। तदनन्तर सब ओरसे शरीरमे प्रवहमान वह वायु अन्तमे रोगीको खञ्ज अथवा लँगडा बना देता है।

शरीरमे वाताधिक्य वातरक्त-रोग होनेपर अत्यधिक शूल, फडकन तथा टूटन-भरी पीडाकी अनुभूति होती है। उभरे हुए शोथमे रूक्षता, कृष्ण या श्यामवर्णता आ जाती है। इसम शोथ कभी बढ जाता है और कभी घट जाता है। रोगीकी धमनियो और अँगुलियाक सधि-स्थानोम सकुचन, अङ्गग्रह तथा अत्यन्त वेदनाजन्य कष्ट होता है। इसमे शीतल पदार्थोसे अरुचि एव उसके सेवनसे वृद्धि, स्तम्भन, कम्पन और इन्द्रियशून्यताके दोप भी आ जाते हैं।

रक्ताधिक वातरक्त-रोगमे शोथ अत्यन्त पीडासे युक्त होता है। इसमे सूचिका-भेदजन्य पीडा भी होती है। इसका वर्ण ताँबेके समान होता है। यह चुनचुनाता भी रहता है। इसमे ललाई रहती है तथा खुजली और क्लेद होता है। स्निग्ध पदार्थ लगानेसे या उसे रूक्ष रखनेसे शान्ति नहीं मिलती।

पित्ताधिक वातरक्तमे अत्यन्त दाह सम्मोह, स्वेद मूर्च्छा, मद तृष्णा स्पर्श, असहत्व अत्यधिक पीडा, शोथ, पककर फूटनेवाला फोडा तथा अत्यन्त ऊष्माके लक्षण दिखायी देते हैं।

कफाधिक वातरक्तमें कठोरता भारीपन शून्यता स्निग्धता शीतलता खुजली और मन्द पीडा होती है। द्वन्द्वज दोपमे दो तथा त्रिदोपजम तीना दोपोके लक्षण उभरते हैं। इनमे एक दापजन्य रोग अपेक्षित चिकित्सासे साध्य है। द्वन्द्वज दोप नामक वातरक्त-रोग अथक चिकित्सोपचारके द्वारा रोका जा सकता है। कितु जो रोग त्रिदोपजन्य है, उसे तो छोड देना चाहिये। उसकी शान्तिके लिये प्रयास करना व्यर्थ है, वह असाध्य होता है। इनमे रक्तपित्तजन्य वातरोग तो बडा ही कठिन माना गया है।

प्रकुपित वायु रोगीके शरीरस्थ अङ्ग-विशेपके रक्तको नष्ट करके उसके सधि-स्थानोम प्रविष्ट हो जाता है। तदनन्तर परस्पर एक-दूसरेको भली प्रकारसे अवरुद्ध करके तज्जनित वेदनासे वह रोगीके प्राणोका अपहरण करता है।

प्राण, व्यान, समान, अपान और उदान—इस पञ्चात्मक वायु-समूहके बीच प्राणवायु जब रूक्षता, चञ्चलता, लघन, अतिशय आहार, अभिघात, मलमूत्रादिक वेगावरोध तथा कृत्रिम वेग-सचालनके प्रयासमे कुपित होकर नेत्रादिक इन्द्रियोमे उपघात करता है तो उसके कारण पीनस, दाह, तृष्णा, खाँसी और श्वासादिके रोग उत्पन्न होते हैं।

कुपित उदानवायु जत्रु (ठोढी) और मूर्द्धामे आश्रय लेकर कण्ठावरोध, मलभेद, वमन, अरुचि, पीनस तथा गलगण्डादिक दोपाको जन्म देता है।

अत्यधिक दूरकी यात्रा, स्नान, अतिशय क्रीडा, अत्यन्त विपय-भोगकी चेष्टा, स्वास्थ्य-विरुद्ध व्यवहार, रूक्षता भय हर्प तथा विषादके कारण प्राणीके शरीरमें स्थित व्यान नामक वायु दूपित हो उठता है। तदनन्तर वह रोगीके पुस्त्व (पुरुपत्व), उत्साह और शक्तिका ह्रास कर देता है। उसके चित्तमें शोक तथा विभ्रमकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसे ज्वर, सम्पूर्ण शरीरमें सूचिका-भेदके समान वेदना रोमाञ्च, स्पर्श-शून्यता, कुष्ठ विसर्प और सभी अङ्गामे पीडा होती है।

स्वास्थ्य-विरुद्ध अजीर्णकर, शीतल तथा सकीर्ण दोपसे पूर्ण भोजन असामयिक शयन और जागरण आदिसे समान नामक वायु दूपित हो जाता है। इसके प्रकुपित होनेसे शूल गुल्म ग्रहणी आदि सामान्य यकृत्जन्य तथा कामाश्रित रोगोकी उत्पत्ति होती है।

अत्यन्त रूक्ष तथा भारी अन्नके सेवन मल-मूत्रका वेग रोकने अतिशय भार ढोने वाहनकी अधिक सवारी करने,

मदिरापान, अत्यधिक देरतक खडे होने तथा अधिक घूमने-फिरनेसे अपानवायु कुपित हो जाता है। वह प्रकुपित वायु प्राणीके शरीरम पक्वाशयसे आश्रित समस्त रोगोको उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त रोगीके शरीरम मूत्र वीर्य, अर्श तथा मलावरोध आदिसे सम्बन्धित बहुतसे रोग प्रकट हो जाते हैं।

तन्द्रा, स्तिमिता, गुरुता, स्निग्धता, अरुचि, आलस्य, शैत्य, शोथ, अग्निमान्द्य, कटु और रूक्ष पदार्थोंकी अभिलाषा आदि लक्षणोसे युक्त वायुको साम अर्थात् आम-सदृश कहते हैं, जिसमे तन्द्रा आदिके विपरीत लक्षण होते हैं, वह वायु-निराम कहलाता है।

साम-निरामके लक्षण बताकर अब वायुके आवरण और भेदोका वर्णन किया जाता है। पित्तदोषसे आवृत वात-विकार होनेपर दाह तृष्णा, शूल, भ्रम और आँखाके आगे अन्धकार छा जाता है। कटु, उष्ण, अम्ल तथा लवणके प्रयोगसे रोगीमे विदाह और शीतकी अभिलाषा बढ जाती है। कफावृत वात-विकारमे रोगी शीतल रूक्ष और उष्ण भोजन करनेका इच्छुक होता है। उसको शीतलता, भारीपन, शूल लघन अग्निदाह, कटु घृतयुक्तमुख तथा अधिक तृष्णाके दोष घेर लेते हैं। इस कफावृत रोगमे अङ्ग-दर्द उबकाई और अरुचि भी होती है।

रक्तावृत वातरोग होनेपर रोगीके चर्म तथा मासम दाह और पीडा अधिक होती है। रोगीके शरीरमे लाल वर्णका शोथ हो जाता है और मण्डलाकार चकत्ते पड जाते हैं। वायुके मासाश्रित होनेपर शोथ बडा कठोर लगता है। उस रोगीको उबकाई आती है और शरीरमे छोटी-छोटी फुसियाँ निकलने लगती हैं। ऐसे शाथमे रोमाञ्च भी होता है और शरीर चींटियोसे व्याप्त हुएके समान प्रतीत हाता है। मेदसे आवृत वायु-विकारम यह शोथ शरीरमे चलायमान मृदु तथा शीतल होता है और अरुचिकर भी होता है। मेदासे आवृत वात अन्य वातरोगाकी अपेक्षा अत्यन्त कष्टसाध्य है। इसको आढ्यवातके समान समझना चाहिये। इस रोगके होनेपर उत्पन्न हुआ शोथ स्पर्श तथा आच्छादन करनेसे उष्ण तथा आवरण हटा देनेपर शीतल लगने लगता है।

वायुके मज्जावृत शोथ होनेपर उक्त लक्षणके विपरीत लक्षण दिखायी देते हैं। उसमे फैलाव और कसाव होता है, शूलजनित पीडा होती है तथा दोना हाथासे मर्दन करनेपर रोगीको सुख प्राप्त होता ह।

शुक्रावृत वात-शोथ होनेपर शुक्रम अधिक वेग नहीं रह जाता। वायुके अन्नसे आवृत होनेपर भाजन करनेपर रोगीके कुक्षिभागम पीडा होती हे और भोजनके पच जानपर पीडा शान्त हो जाती है। मूत्रसे वायुके आवृत हो जानेपर मूत्रका निकलना बद हो जाता है और वस्ति-स्थानमे वेदना हाने लगती है। वायुके द्वारा पुरीषके आवृत होनेपर गुह्यभागमे विशेष प्रकारका विबन्ध हो जाता है। आरेसे काटनेपर हानेवाली पीडाके समान रोगीको पीडा होती है। ऐसे वातरक्त-दोषके आवरण-रोगमे ज्वरसे पीडित रोगी यथाशीघ्र धराशायी होकर मूर्च्छित हो जाता ह। विबन्धद्वारा मल पीडित होकर सूखा हुआ बडी कठिनतासे और बहुत देरम निकलता है।

वायुद्वारा सभी धातुओके आवृत होनेपर रोगीके कटि-प्रदेश वक्षण और पीठमे पीडा होती है। विलोम भावको प्राप्त हुआ वायु रोगीके हृदयको पीडित करता हे। पित्तज दोषसे प्राणवायुके आवृत होनेपर भ्रम, मूर्च्छा, पीडा तथा दाहका उपद्रव रोगीके शरीरम होता है।

पित्तसे व्यानवायुक आक्रान्त हानेपर पीडा, तन्द्रा, स्वरभ्रश और सम्पूर्ण शरीरमे दाहकी उत्पत्ति होती है। समानवायुके आवृत होनेपर क्रमश अङ्गचेष्टा, अङ्गभङ्ग, वेदनासहित सताप, तापविनाश, पसीना, रूक्षता और तृष्णाका उपद्रव होता है। अपानवायुके आवृत होनेसे रोगीके शरीरमे दाह होता है और उसके मलका वर्ण हल्दीके समान पीला हो जाता है। स्त्रियाम रजवृद्धि (या रोगवृद्धि), ताप, आनाह तथा प्रमेह नामक रोग भी उसके शरीरमे जन्म ग्रहण कर लेते हैं।

श्लेष्मके द्वारा प्राणवायुक आवृत हानेपर नादस्रोतमे अवरोध, खखार, स्वेद, श्वास तथा नि श्वास—इनमे विविधता होती है। उदानवायुके कफसे आवृत होनपर शरीरम भारीपन, अरुचि वाक्रोध स्वरक्षय बल और वर्णका नाश होता है। व्यानवायुके कफसे आवृत होनेपर पर्व और अस्थियोमे जकडन, सम्पूर्ण शरीरम भारीपन, अत्यधिक

स्थूलता आ जाती है। समानवायुके कफसे आवृत हानेपर कर्मेन्द्रियाम अज्ञानता, शरीरम पसीनेकी कमी, अग्निमन्दता तथा अपानवायुके कफस आवृत होनपर मल-मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति हाती है।

इस प्रकार वातरक्त-राग बाईस प्रकारका माना गया हे। क्रमश प्राणादि वायु परस्पर आक्रान्त होनेसे बीस प्रकारक आवरण होते हैं। प्राणवायु जब अपानवायुको आवृत कर लेता है, तब उबकाई, श्वासरोध, प्रतिश्याय, शिरोग्रह, हृदयरोग और मुखशोष—ये उपद्रव होते हैं। उदानवायुके द्वारा प्राणवायुके आवृत हानेपर रोगीकी शक्तिका विनाश होता है। वैद्यको यथोचित विचार करके ही सभी प्रकारके वात-आवरणाके भेदोको जानना चाहिये। सभी वात-दायोके स्थानाकी विवेचना करके उसके दुष्ट कर्मोकी वृद्धि और हानिपर चिन्तन करके भी आवरणाका विभाग समझना चाहिये।

प्राणादिक पॉचा वायु-समूहोके (पृथक्-पृथक्) पित्त-दापजन्य आवरण होते हैं। वातमिश्रित पित्तादिके जिन निवास-स्थानोकी चर्चा ऊपर की गयी हे, वे उन्हीं अपन दोपासे मिश्रित हे। मिश्रित पित्तादिक दोपाके कारण व भी अनेक प्रकारके आवरण राग माने गये हें। अत विद्वान् चिकित्सक सचेत होकर अपने लक्षण-ज्ञानके अनुसार उन दोपाका चिन्तन करे। चिकित्सकके लिये अपक्षित है कि धीर-धारे अपने लक्षणोके अभ्युदयसे निश्चित एव दृढ हुए उन रोगाका बार-बार परीक्षण करके ही उपचार करे।

प्राणवायु प्राणीक जीवनका आधार तथा उदानवायु बलका आधार कहा गया है। शरीरम उन दानाके पीडित हानसे प्राणीके आयु और बल दानाकी हानि होती हे।

आवृत हुए सभी वायु-दोप अपने-अपने लक्ष[illegible] शरीरपर स्पष्ट हो गये हा अथवा स्पष्ट न हुए हो य[illegible] स्थानच्युत होनेके कारण समझसे परे हो रहे हो अ[illegible] उपद्रवविहीन हो गय हा, वे असाध्य ही होते हैं। चिकित्स[illegible] द्वारा किये जानेवाले प्रयाससे भी वे कष्ट-साध्य ही होते[illegible]

उपर्युक्त उन आवृत वायु-दोपाकी उपेक्षा कर[illegible] प्राणियोके शरीरम विद्रधि प्लीहा, हृद्रोग, गुल्म त[illegible] अग्निमन्दता आदिके उपद्रवाका आविर्भाव होता है।

हे सुश्रुत! सभी रोगाके ज्ञान एव मनुष्यादि सम[illegible] प्राणियाकी आयुवृद्धिके लिये मैंने आत्रेय मुनिद्वारा कथि[illegible] उनके निदानको भली प्रकारसे बतला दिया है। अत उ[illegible] प्रकारसे सभी रोगाका विचार करके चिकित्सक[illegible] तत्सम्बन्धित रोगकी चिकित्सा करनी चाहिये।

मधु, घृत और गुडसे सयुक्त त्रिफला (हरीतकी आमलकी और बहेडा)-चूर्ण सभी रोगोका विनाशक है त्रिफला-चूर्णको यदि केवल जलके साथ नित्य-प्रात प्रयोगम लाया जाय, तब भी वह सभी रोगाका नाश करनवाला होता है। शतावरी, गुडूची चित्रक और विडगके साथ भी प्रयुक्त त्रिफला सभी रोगाको विनष्ट कर देती है शतावरी, गुडूची, अग्निमन्था चित्रा साठ, मूसली, बला पुनर्नवा, बृहती निर्गुण्डी, निम्बपत्र भृगराज आँवला तथा वासक अथवा उसक ही रससे सात बार या एक बार भावित त्रिफला सभी रोगाका निवारक है। पूर्वोक्त कही गयी औषधियाकी जैसी प्राप्ति हो, उसी प्रकारसे उनके द्वारा तैयार चूर्ण मोदक, वटी, घृत, तेल अथवा क्वाथ भी सर्वरोगहर्ता है। उनकी आनुपातिक मात्रा एक पल, आधा पल, एक कर्ष अथवा आधा कर्ष रोगीक लिये उपादेय मानी गयी है। (अध्याय १६७)

वैद्यकशास्त्रकी परिभाषा

धन्वन्तरिजीन कहा—हे सुश्रुत! प्राणियाक जीवनकी रक्षाके कारणस्वरूप समस्त राग-विनाशक सिद्ध औपधाय योगसारका सक्षेपम वणन कर रहा हूँ, उस आप सुन।

वर्षा-ऋतुम कसैल कटु तिक्त और रूक्षादि गुणावाले खाद्य-पदार्थोक सवनमे चिता मैथुन व्यायाम भय शाक रात्रि-जागरण करने तथा उच्च स्वरम बालनस अधिक भार-वहन तथा सामर्थ्यसे अधिक शारीरिक शक्तिका प्रयोग करनेसे एव भोजनके पाचनकालम और सध्यासमयमें प्राणियाके शरीरकी वायु कुपित हा जाती है।

ग्रीष्म और वर्षा-ऋतुके मध्याह्नकालम उष्ण अम्ल लवण क्षार कटु एव अजीर्ण भाजन तज धूप अग्नि-सताप मद्यपान तथा क्रोधावेगका अवरोध करनस प्राणियोंका

पित्त प्रकुपित होता है। यह दोष ग्रीष्मकालकी अर्द्ध रात्रियाम भी हो सकता है।

वसन्त-ऋतुमें स्वादिष्ट, अम्ल, लवण, स्निग्ध भारी और शीतल भोजनका अधिक प्रयोग नवात, चिकन पदार्थ तथा दलदलवाल स्थानामें विचरण, मासादि सवन, सहसा व्यायामसे विरक्ति, दिनम शयन शय्या और आसनादिक सुखोपभाग प्राप्त करनेसे और भोजनके अन्तम प्राणियाका कफ सक्षुब्ध हो उठता है।

शारीरिक कर्कशता सकाच, सूचिकाभद पीडा विष्टम्भ, अनिद्रा रोमाञ्च, स्तम्भ शुष्कता श्यामत्व, अङ्ग-विभ्रश, बलहानि और परिश्रमजन्य थकान आदिके उपद्रव वात-दोपके लक्षण हैं। अत उन सभी उपद्रवासे समन्वित रोगको वातात्मक रोग कहना चाहिय।

दाह, पैरम जलन पसीना, क्राध, परिश्रम, क्टु, अम्ल, शव-समान दुर्गन्ध स्वेदराहित्य, मूर्च्छा, अत्यन्त तृष्णा, भ्रम, हल्दीके समान पीला और हरा रग होना—ऐस लक्षणावाला मनुष्य पित्त-दोपसे समन्वित्त माना जाता है।

शरीरमे स्निग्धता, माधुर्य, बन्धनके समान पीडा होना, निश्चेष्टता, तृप्ति, सघात, शोथ, शीतलताकी अनुभूति भारीपन मलाधिक्य खुजली और अधिक निद्रा—ये सब लक्षण कफसे उत्पन्न होते हैं।

कारण लक्षण और ससर्गस रोगका पहचानना चाहिये। जो राग वात पित्तादि दापोमसे किन्हीं दा दापासे उत्पन्न हा, वह द्विदोपज रोग कहलाता है और जिस रोगम सभी वात, पित्त तथा कफजन्य दोपाके लक्षण व्यक्त हा, उसे त्रिलिग या सनिपातिक रोग कहा जाता है।

प्राणियाका यह शरीर दोष, धातु तथा मलका आधार कहा जाता है। उन सभीका शरीरम समत्व भावसे रहना आरोग्य या निरोगता है। उनम कमी और वृद्धि रोगका कारण है। वसा, रक्त, मास, मेदा अस्थि मज्जा तथा शुक्र—ये सात धातुएँ हैं। वात पित्त तथा कफ—ये तीन दोप हैं और विष्ठा तथा मूत्र आदि मल कहे जाते हैं।

वायु शीतल, रूक्ष लघु, सूक्ष्म, स्वरविहीन, स्थिर तथा बली होता है। पित्त अम्ल (खट्टा), कटु (तीक्ष्ण) उष्ण और पङ्किल रोगोका कारण है। कफ मधुर, लवण, स्निग्ध, भारी तथा अधिक चिकना हाता है।

वायु शरीरम गुदाभाग और कटिप्रदशका आश्रय लता है। पित पक्वाशयम स्थित रहता है और कफका आश्रय-स्थान आमाशय कण्ठ तथा मस्तकका सधि-भाग है।

कटु तिक्त और कसैले पदार्थोका सेवन करनसे वायु प्रकुपित होता है। कटु अम्ल तथा लवण पित्तका स्वादिष्ट, उष्ण और लवण पदार्थ कफको प्रकुपित करते हैं। अत इन सभीका विपर्यय शरीरमें उन दापाकी शान्तिक लिय ही प्रयुक्त हाना चाहिये। यथापेक्षित अपने-अपन स्थानपर प्रयुक्त सुखके कारणभूत पदार्थ रोगियांके रागका उपशमन करते हैं।

मधुर भाज्य पदार्थ नेत्रशक्ति, रस और धातुके अभिवर्धक हैं। अम्लमिश्रित हानपर य ही मन और हृदयकी सतृप्ति, जठराग्निका उद्दीपन तथा पाचनशक्तिको प्रबल बनात हैं। तिक्त पदार्थ अग्निके उद्दीपक ज्वर तृष्णा-विनाशक, शाधन और शोपण करनेवाले हैं। कपाय पदार्थ पित्तवर्धक, स्तम्भक, कण्ठग्रहादि दाप-विनाशक तथा शरीर-शोपक होते हैं।

जो द्रव्य-पदार्थ प्राणियाक शरीरम स्थित रस और वीर्यको विशप रूपसे परिपक्व करनका आधार हाता है, वह उत्तम माना गया है। रस-परिपाकके मध्य स्थायी रूपसे स्थित वह पदार्थ यथाशीघ्र ही अन्य सभी द्रव्योंका भी आश्रय बन जाता है। शातलता उष्णता और लवणताके गुणाको धारण करनेवाला पदार्थ वीर्य अथवा शक्ति ही है।

रस-परिपाक दो प्रकारका हाता है। एक है मधुर और दूसरा है कटु।

वैद्य, औपधि, रोगी तथा परिचारक (रोगीकी सेवा करनेवाला)-की सम्पत्ति—य चार चिकित्साके अङ्ग हैं। इन चाराकी उत्तमता हानपर राग यथाशीघ्र दूर हो जाता है और इनके विपरीत हो जानेपर तो रोगकी असिद्धि ही होती है।

देश, काल रागीकी आयु, शरीरमे अग्निका बलाबल, प्रकृति, त्रिदोपा (कफ-पित्त और वायु)-का साम्य-वैपम्य, रोगीका स्वभाव औपधि, रोगीके शरीरका सत्त्व सहनशक्ति तथा रोगका भलीभाँति विवेचन करके ही विद्वान् चिकित्सकाको चिकित्सा-कार्यम प्रवृत्त हाना चाहिये।

अधिक जलाशय तथा पर्वतोवाला देश अनूप कहलाता है। यह देश कफ तथा वायुको प्रकुपित करता है। वनाच्छादित अथवा अन्यान्य शिखर तथा शाखाओवाला देश रक्त-पित्तज दोपाका जनक है। इन सभी लक्षणासे जो देश समन्वित होता है, वह सामान्य देश कहा गया है। मनुष्य सोलह वर्षपर्यन्त बालक, सत्तर वर्षतक मध्यम (युवा एव प्रौढ) और सत्तर वर्षके पश्चात् वृद्ध कहा जाता है।

प्राय कफ, पित्त और वायु जैसा क्रम दिया गया है, वैसे ही शरीरम ये उद्दीप्त होते हैं। शरीरके शक्तिहीन होनेपर अथवा विशेष वृद्धावस्थाके आ जानेपर रोगी क्षारक्रिया, अग्निचिकित्सा और शल्यकर्म-रहित होता है। कृशकाय रोगीका बृहण, स्थूल शरीरवाले रोगीका कर्पण और मध्य शरीरवाले रोगीका रक्षण-कार्य करना चाहिये। शरीरके ये ही तीन भेद माने गये हैं। चिकित्सा-कार्यम इस त्रिविध क्षमताका विवेचन भी अपेक्षित होता है।

स्थिरता, व्यायाम और सतोष-धारण करनेकी प्रवृत्तिसे रोगीके बलको समझना चाहिये। जो मनुष्य विकार-रहित, उत्साह-सम्पन्न तथा महासाहसिक होता है, वह बलवान् माना गया है। जिस प्राणीके खान-पान भी प्रकृतिके विरुद्ध हैं, यदि वे रोगीके शरीरमे आनेवाले कलके सुखकी कल्पनाको साकार करते हैं तो उसको प्रकृतिकी साम्यावस्था कहा जाता है।

कफजन्य पदार्थोंका भक्षण करनेसे गर्भिणी स्त्रीके गर्भसे कफ-रोगसे युक्त सतान ही उत्पन्न होती है। इसी प्रकार वातजनक तथा पित्तोत्पादक पदार्थोंसे भी होता है किंतु हितैपी भोजन करनेसे समान धातुवाली सतानका जन्म होता है।

कृशकाय रूक्ष अल्पकेश चञ्चलचित्त तथा स्वप्नमे बहुत बालनेवाला व्यक्ति वात-प्रकृतिवाला होता है। असमयमे ही जिसका बाल सफेद हा गया हो गौर वर्णवाला स्वेद एव क्रोधयुक्त बुद्धिमान् और स्वप्नम भी तेज देखनेवाला मनुष्य पित्त-प्रकृतिसे समन्वित कहा गया है। स्थिरचित्त सूक्ष्मस्वर प्रसन्न स्निग्धकेश तथा स्वप्नम जल और पत्थर देखनेवाला पुरुप कफ-प्रकृतिस सम्बन्धित होता है। मिश्रित लक्षणाके हानेपर प्राणीको द्विदोपज तथा त्रिदोपज मानना चाहिये। प्राणीमे उक्त दोपोका इतर भाव होनेपर जिस दोपके अधिक लक्षण दिखायी देते हो, उसीके अनुसार उसकी प्रकृतिका निर्धारण होता है।

मन्द, तीक्ष्ण, विपम और सम—ये वात-पित्त आदिकी चार अवस्थाएँ हैं। कफ, पित्त तथा वायुकी अधिकता और समतासे जठराग्नि भी भिन्न प्रकारकी हो जाती है। शरीरमें सदैव जठराग्निकी समताकी रक्षा करनी चाहिये। विषम स्थिति आनेपर वातनिग्रह करना चाहिये। तीक्ष्णावस्था हानेपर पित्त-दोपका प्रतीकार और मन्दावस्थामे कफका शोधन आवश्यक माना गया है।

सभी रोगाकी उत्पत्तिके कारण अजीर्ण और मन्दाग्नि-दोप हैं। आम, अम्ल, रस तथा विष्टम्भ—ये चार उसके लक्षण हैं। आम-दोप होनेपर विपूचिका हृदयरोग और आलस्यादिके उपद्रव होते हैं। ऐसा विकार होनेपर वच कटुफल और लवणमिश्रित जलपान कराकर रोगीको वमन कराना चाहिये। अम्ल-दोप होनेपर प्राणाम शुक्रका अभाव, भ्रम, मूर्च्छा और तृष्णा आदिक दोप जन्म लेते हैं। इस अवस्थामे अग्निपर बिना पकाया हुआ शीतल जल, वायुका सेवन रोगीके लिये अपेक्षित है। रस-दोप होनेपर शरीरभग, शिरोजाड्य तथा भोजनकी अनिच्छा आदिसे सम्बन्धित उपद्रव होते हैं। इस दोपक होनेपर दिनमे निद्रा और उपवासका परित्याग करना चाहिये। विष्टम्भ-दोप होनेपर शूल, गुल्म अरुचि और मलमूत्रजनित उपद्रव होते हैं। इस दोपकी वृद्धि होनेपर स्वेदन-क्रिया तथा लवणमिश्रित जलपान करनेका विधान है।

आम अम्ल और विष्टब्धके लक्षणाका जन्म क्रमश — कफ पित्त तथा वायु-दोपके कारण होता है। विद्वान् व्यक्तिको इन दोपोके होनेपर हींग त्रिकटु (शुण्ठी पिप्पली और मरिच) एव सेधा नमकका लप उदरभागपर करके उसका निवारण करना चाहिय। दिनमे सोनेसे सभी प्रकारके अजीर्ण रागाका विनाश होता है। अहितकर अन्नाका प्रयोग करनेसे शरीरम उनके रोग-समूहोंकी उत्पत्ति होती है अतएव अहितकर अन्नका सदैव परित्याग करना चाहिये।

कवल उष्ण जल अथवा मधु (माक्षिकभस्म)-के साथ

उष्ण जलका पान करनेसे रोगीकी पाचन-क्रिया शुद्ध रहती है। बसाकुर, दही और मछलीसे प्राय दूधका विरोध होता है। बिल्व, शोणा (श्योनाक), गम्भारी (श्रीपर्णी), पाटला (पाढर) और अग्निमान्थ—इन पाँच वृक्षोंके मूल सग्रहको आयुर्वेदमें 'पञ्चमूल' कहा गया है। ये पञ्चमूल मन्दाग्निको तीव्र करनेवाले, कफ और वातके दोषका विनाश करनेवाले हैं। शालपर्णी (एकाङ्गी नामक औषधि), पृश्निपर्णी (पेठवन), दो प्रकारकी बृहती (भटकटैया) तथा गोक्षुर (गोखरू)—इन पाँचोको 'लघुपञ्चमूल' कहा जाता है। यह औषधि वात-पित्त-विनाशक तथा ओजवर्धक है। इन दोनो पञ्चमूलाका सग्रह होनेपर दशमूल औषधिका निर्माण होता है। यह औषधि सनिपातिक ज्वरका विनाश करनेमे समर्थ होती है। खाँसी, श्वास, तन्द्रा और पार्श्वशूल-रोगमें यह अधिक लाभकारी होती है। इन सभी औषधियोको तेल और घृतमें परिपक्व करके केशरोगका निवारण किया जा सकता है।

क्वाथसे चौगुना पानी पात्रमे भरकर उसको आगपर पकाना चाहिये। जब वह चतुर्थांश पानी रह जाय, तब उस क्वाथके समान मात्रामे स्नेहिल द्रव्य—पदार्थका पाक तैयार करे। यह स्नेहपाक[1] दूधसे भी तैयार किया जाता है। अत उस क्वाथम दूधकी मात्रा समान होनी चाहिये। कल्क बनानेके लिये स्नेहकी मात्रासे औषधिकी मात्रा चतुर्थांश ही होती है। पाक समान मात्रामे औषधियाको लेकर तैयार होता है। वस्ति-पाक और पाय-पाकमें भी जलकी मात्रा और विधि समान ही होती है। अभ्यङ्ग अर्थात् शरीरमें मालिश करनेके लिये तैयार किया गया पाक खर तथा नस्यके लिये मृदु होना अपेक्षित है।

अन्यान्य दोपोसे सदैव सुरक्षित रखनेके लिये चिन्तनीय स्थूल कर्मेन्द्रियोंके बीच प्राणीकी जो प्रकृति अपनी बलवत्ताके साथ विद्यमान रहती है, उसीको आरोग्य कहते हैं। अत प्राणीको आयुष्मान् बने रहनेके लिये तत्सम्बन्धित आचरण करना चाहिये। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियोके द्वारा स्वास्थ्य-विपरीत पदार्थोंको ग्रहण करता है, वह मृत्युका पात्र बन जाता है। जो चिकित्सक, मित्र और गुरुके साथ द्वेप करनेवाला तथा शत्रुस्नेही होता है, जिसके गुल्फ, जानु, ललाट, हनु (ठोढी) और गण्डस्थल भ्रष्ट तथा स्थानच्युत हो जाते हैं, वह व्यक्ति कुछ ही कालमें अपने प्राणोका परित्याग कर देता है।

जिस रोगी मनुष्यकी बायीं आँख बैठ गयी हो, जिह्वाका वर्ण श्याम पड गया हो, नासिका-भाग विकारयुक्त हो गया हो, दोनो ओष्ठ स्थानच्युत और कृष्णवर्णके हो गये हो तथा मुख भी कृष्णवर्णका हो गया हो तो चिकित्सकको चाहिये कि उसका परित्याग कर दे, क्योकि उसकी मृत्यु सनिकट ही होती है। (अध्याय १६८)

पदार्थोंके गुण-दोष और औषधि-सेवनमे अनुपानका महत्त्व

धन्वन्तरिजीने कहा—[हे सुश्रुत!] अब मैं शरीरके लिये हितकारी एव अहितकारी ज्ञान प्रदान करनेके निमित्त अनुपान-विधिका वर्णन करता हूँ, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनिये।

लाल साठी चावल[2] वात-पित्त एव कफजन्य त्रिदोषोका विनाशक तथा तृष्णा और मेदाको दूर करनेवाला है। महाशालि अत्यन्त शक्तिशाली होता है। कलम अर्थात् अधिक पानीमे होनेवाला जडहनी चावल कफ तथा पित्तके दोषका शमन करता है। सफेद साठी चावल प्राय शीतल,

---

१-आयुर्वेदम स्नेहपाकके तीन प्रकार बताये गये हैं—मृदु, मध्यम और खर।

तत्र स्नेहौपधिविवेकमात्र यत्र भेपज मृदु । मधूच्छिष्टमिव विशदमविलेपि यत्र भेपज स मध्यम ।

वृष्णमवसन्नमीपद्विशद चिक्कण च पत्र भेपज स खर ॥

स्नेहपाकोऽथ कल्के स्यान्मृदुरङ्गुलिलेपिनि । न गृह्णात्यङ्गुलि मध्य शीर्यमाण खर स्मृत ॥

जब स्नेहकार्तमे प्रयुक्त औषधि पकाते-पकाते यह सिद्ध हो जाय कि यह पक गयी है अर्थात् औषधि कलछीसे लगने लगे तो उसको मृदु-पाक कहते हैं। जब वह कल्क मोमके समान कडाहीमे फैल जाय और कलछीमें चिपके नहीं तब वह मध्यम-पाक कहा जाता है। जब कल्क कठिन और कुछ चिकना हो जाता है तो उसको खर-पाक कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य लोगोका विचार है कि जब कल्क अँगुलीपर चिपके और उसम नरमी हो तो वह मृदु-पाक है। जो कल्क अँगुलीपर न चिपके और नरम हो वह मध्यम तथा जो कल्क पककर कठिन हो जाय वह खर होता है।

२-च०सू०अ० २७ सु०सू०अ० ४६ अ०स० सू०अ० ७। १२ च०सू०अ०२५

भारी आर वात, पित्त एव कफ—इन तीना दोषोको दूर करता है।

श्यामाक अर्थात् साँवाँ शरीरशोषक, रूक्ष, वातदोषोत्पादक, कफ तथा पित्तजनित दोषका निवारक है। उसी प्रकार प्रियगु, नीवार और कोदो नामक अन्न भी शरीरके दोषोको दूर करते हैं। यव (जौ) शीतल, कफ और पित्तज दोषका अपहारक होता हे। गेहूँ शक्तिशाली, शीतल भारी, मधुर और वातनाशक होता हे। मूँग कफ, पित्त तथा रक्तको जीतनेवाला, कषाय, मधुर और लघु होता है। उडद अत्यन्त शक्तिशाली, ओज-वृद्धि करनेवाला, पित्त-कफ-विनाशक तथा भारी होता है। राजमाष अर्थात् राजमा शुक्रनाशक, पित्तश्लेष्मकारक और वायुरोगका अपहारक है।

कुलथी[1] प्राणीके श्वास, हिचकी, शुक्राश्मरी, हृदयस्थ कफ, गुल्म एव वात-दोषको दूर करनेमे समर्थ होती हे। मकुष्ठक अर्थात् मकुनी रक्त, पित्त तथा ज्वरको दूर करनेवाला, शीतल और ग्राह्य है। चना पुरुषत्व, रक्त, कफ और पित्तका अपहर्ता तथा वात-दाषका वर्धक माना जाता है। मसूर मधुर शीतल, सग्राही और कफ तथा पित्तका निवारक है। मसूर-जैसे ही सभी गुणोकी अधिकता कलाय (मटर)-मे भी होती है—यह अधिक वायुवर्धक होता है। अरहर कफ तथा पित्त-विनाशक और शुक्रवर्धक हे। अलसी पित्त-वृद्धिकारक और सरसा कफ तथा वायुके दोषका निवारक है।

तिल[2] क्षार मधुर और स्निग्ध-गुणसे युक्त होता हे। यह बलवर्धक, उष्ण तथा पित्तकारक भी है। अन्य विभिन्न प्रकारके अन्नोकी जो प्रजातियाँ हैं, वे बलनाशक रूक्ष और शीतल होती हैं।

चित्रक इगुदी (हिंगोट) कमलनाल पिप्पली मधु, सहिजन चव्याचरण (गजपिप्पली) निर्गुण्डी तर्कारी (जयन्ती) कासमर्दक और बिल्व—ये कफ-पित्त तथा कृमिनाशक लघु और जठराग्निको उद्दीप्त करते हैं। वर्षाभू (पुनर्नवा) तथा मार्कर (मकरा) वात और कफ-दोषका विनाश करते हैं। एरण्ड तिक्त और रसयुक्त एव काकमाची (मकाय) त्रिदोषनाशक होता है। चागरा कफ और वातविनाशक है। सरसा सभा दोषास युक्त हाता है। सरसाके समान कुसुम्भ (बर्रे) भी होता है। राजिका (काला सरसा) वात और पित्तको बढानेवाला है। नाडीच कफ-पित्त-विनाशक तथा चुचु (पालककी जातिका एक शाक) मधुर और शीतल होता है। कमल-पत्र सभी दोषाका हन्ता आर त्रिपुट (मटरकी एक जाति) अत्यन्त वातकारक है। वास्तुक अर्थात् बथुआ क्षारयुक्त, अतिशय रुचिकारक और कृमिनाशक होता हे। इसम सभी दोषाको विनष्ट करनेकी क्षमता होती है।

तण्डुलीय (चोलाई)-का शाक विषनाशक होता है। पालक तथा अन्य इसी प्रकारके शाकोमे भी यह गुण रहता है। मूलक (मूली) आम-दोषका उत्पादक तथा वात-कफनाशक है। जब यह शाक अग्निपर पक जाता है तो सभी दोषाको दूर करनेम समर्थ तथा हृदय और कण्ठको प्रिय होता है। कर्कोटक (ककडी) बैगन, परवल और करैला कुष्ठ, मेह, ज्वर, श्वास कास, पित्त तथा कफके नाशक हैं। कुम्हडा सर्वदोषविनाशक वस्तिशोधक और स्वादयुक्त होता है। कलिगा (तरबूज) और अलाबुनी (लौकी) पित्तविनाशिनी और वातकारिणी होती है। त्रपुष (खीरा) तथा उर्वारुक (ककडा-फूट) वात और कफ बढानेवाली तथा पित्त-दोषका दूर करनवाला है।

वृक्षाम्ल (अमलवत) और जम्बार (नीबू) कफ तथा वात-दोष-निवारक हैं। दाडिम वात-दोषका नाशक तथा स्वादिष्ट होता है। नारगीके फलम भारीपनका दोष रहता है। केशर और मातुलुग (बिजौरा नीबू) कफ-वात-विनाशक एव जठराग्निको प्रदीप्त करते हैं। माष (उडद) वात और पित्तका नाशक होता है। इसके सेवनसे त्वचाभागमे स्निग्धता आती है और शरीरके अदर विद्यमान उष्णता तथा वात-दोष विनष्ट हो जाता है। आँवला बलकारी मधुर, रुचकर और अम्लरससे युक्त होता है। हरीतकी (हर्रे) भोजनको भली प्रकारसे पचानेवाली पुण्यदायिनी अमृतके समान तथा कफ और वात-दोषको दूर करनेमे समर्थ एव विरेचक है। बहेडा भी उसी प्रकारका होता है। इसम वात पित्त और कफ—इन तीनो दोषोपर विजय प्राप्त करनेकी क्षमता होती है। तिन्तिडी[3] (इमली)-फल वात तथा कफका विनाशक अम्लरससे युक्त और विरेचक होता है।

लकुच अर्थात् बडहल दोषोत्पादक तथा स्वादयुक्त

१-अ० इ० मू० अ० ६। १८। २-अ० इ० मू० अ० ६। २१। ३ सु० मू० ४६ च० मू० २७।

बकुल कफ-वात-विनाशक, बीजपूरक (बिजौरा नीबू) गुल्म, वात कफ, श्वास और कासरोगोका नाशक है। कपित्थ (कैथ) ग्राह्य तथा सभी दोषाका हरण करनवाला होता है। पकनेपर यह भारी एव विषका दूर करनेवाला होता है। पकनेके पूर्व अपने बाल्यकालम यह कफ और पित्तको उत्पन्न करता है। उसके बाद प्रौढावस्थाम यह पित्तवर्धक है।

पका हुआ आम[१] वात-दोषको उत्पन्न करनेवाला तथा मास वीर्य, वर्ण ओर शक्तिको बढानेवाला होता है। जामुन वात, पित्त और कफका विनाशक तथा विष्टम्भ-दोषका उत्पादक होता है। तिन्दुक कफ-वातका नाशक और बेर वात तथा पित्तदोषको दूर करता हे। बिल्व विष्टम्भ-दोषम वात-दोषको बढानेवाला हे। पियाल (चिरौंजी) वातज दोपका नाशक है। राजादन (खिरनी), मोच (केला), कटहल ओर नारियल स्वादयुक्त, स्निग्ध तथा भारी होते हैं। ये सभी वीर्य और मासके अभिवर्धक कहे जाते हैं।

द्राक्षा (अगूर), मधूक (महुआ), खर्जूर (खजूर) तथा कुकुम वात और रक्त-दोषको जीतनेवाले होते हैं। मागधी (पिप्पली) माधुर्य-गुणसे युक्त होती है। यह पकनेपर श्वास तथा पित्त-दोपको दूर करनेम श्रेष्ठ है। आर्द्रक (अदरक) रोचक, पुष्टिकारक, अग्निदीपक तथा कफ और वात-विनाशक होता है। सोठ, पिप्पली और काली मिर्च कफ तथा वात-दोपको जीतनेवाले माने गये हैं। लाल मिर्च शरीरको पौष्टिक तत्त्व देनेमे असमर्थ होता है, ऐसा वैद्यक-शास्त्रका मत है। हींग गुल्म, शूल तथा मलावरोधको दूर करनेवाली और वात तथा कफकी विनाशिनी है।

यमानी, धनिया और अजाघृत वात तथा कफज दापको दूर करनेम विशेप रूपसे गुणकारी हैं। सेधा[१] नमक नेत्रज्योतिवर्धक, पुष्टिकारक और वात-पित्त तथा कफ—इन तीनो दोपोका शमन करनेवाला माना गया है। सौवर्चल अर्थात् काला नमक वायु-अवरोधका विनाशक उष्ण और हृदयशूलका शामक है। विडग उष्ण, तीक्ष्ण, शूलनाशक तथा वात-दोपका अपहारक है। रोमक लवण वातवर्धक स्वादिष्ठ राचक, गलानेवाला और भारी हाता है। इसके द्वारा हृदय-रोग, पाण्डु और गलेका दोष दूर हो जाता है। यवक्षार अग्निदीपक है। सर्जिक्षार (रेह) पाचक, अग्निदीपक, तीक्ष्ण और विदारक होता है।

वर्षाका जल तीनो दापोका नाशक, लघु, स्वादिष्ठ विपापहारक है। नदीका जल वातवर्धक, रूक्ष, सरस, मधुर और लघु होता है। वापीका जल वात-कफ-विनाशक तथा पाखरका जल वातवर्धक माना गया है। झरनेका जल रुचिकर, अग्निदीपक, रूक्ष, कफनाशक और लघु होता है। कुएँका जल अग्निदीपक, पित्तवर्धक तथा उद्भिज (पातालतोड कुआँ)-का जल पित्तविनाशक है। यह जल दिनम सूर्य-किरण और रात्रिमे चन्द्र-किरणसे सम्पृक्त होकर सभी दोषासे विमुक्त हो जाता है। इसकी तुलना तो आकाशसे गिरनेवाले जलसे ही की जा सकती है।

गरम जल ज्वर, श्वास, मेदा-दोप तथा वात और कफ-विनाशक है। जलको गर्म करके ठडा करनेके पश्चात् वह प्राणीके वात-पित्त तथा कफ—इन तीनो दोपाका विनाश करता है, किंतु बासी हो जानेपर वही जल दोपयुक्त हो जाता है।

गोदुग्ध वात और पित्तका विनाशक, स्निग्ध और गुरुपाकी रसायन है। भैंसका दूध गोदुग्धकी अपेक्षा अत्यधिक भारी स्निग्ध तथा मन्दाग्नि-दोषका उत्पादक होता है। बकरीका दूध रक्तातिसार, कास, श्वास तथा कफका अपहारक है। स्त्रियाका दूध नेत्राकी ज्योतिको तीव्र करनेवाला, जीवनस्वरूप और रक्त-पित्त-विनाशक है।

दही परम गुणकारी होता है। यह वात-दोपको दूर करनेवाला पौष्टिक तथा पित्त एव कफका वर्धक है। मट्ठा तीना दोषाका नाशक और उसकी मही (छाछ) रक्तादिक स्रोतोका शोधक होता है। नया निकाला गया नवनीत (मक्खन) ग्रहणी-बवासीर और अर्दित रोगजन्य पीडाका अपहारक हे। दूधके किलाट (दुग्धविकार विशप) आदि विकार भारी तथा कुष्ठरागके कारण हैं। प्राचीन विद्वान् तक्रको ग्रहणी शोथ बवासीर, पाण्डुरोग, अतिसार और गुल्मरोगका विनाशक तथा वात-पित्त एव कफजन्य त्रिदोषका उत्तम शामक मानते हैं।

१-सु०सू० ४६ च०सू० २७ भा०प्र०।

घृत पौष्टिक, मधुर और वात-पित्त तथा कफका अपहारक होता है। गोघृत बुद्धिवर्धक और नेत्रज्योति-प्रदायक है। अग्निपर तप्त करनेके बाद तो यह तीनों दोषोंको दूर करनेमें पूर्ण समर्थ हो जाता है। संस्कृत घृतसे अपस्मार-रोगमें होनेवाले उन्माद तथा मूर्च्छाजनित दोष दूर हो जाते हैं। बकरी और भेड़ आदिसे प्राप्त होनेवाला घृत भी गोदुग्धसे तैयार होनेवाले घृतके समान ही गुणकारी होता है। ये घृत कफ तथा वात-विनाशक और मूत्रदोषके अपहर्ता तथा सभी प्रकारके कृमि और विषजनित दोषोंके निवारक हैं।

तिलका तेल बलशाली, केशमें लगाने लायक, वात और कफका विनाशक, पाण्डुत्व, उदररोग, कुष्ठ, अर्श, शोथ, गुल्म तथा प्रमेह-रोगका नाशक होता है। सरसोंका तेल कृमि और पाण्डुरोगको दूर करनेवाला तथा कफ, मेदा और वात-दोषका भी नाशक है। अलसीका तेल नेत्रशक्तिको हानि पहुँचानेवाला तथा वात और पित्तका विनाशक है। बहेड़ेका तेल कफ-पित्तको दूर करनेवाला, केशवर्धक, त्वक् और कर्णदोषका निवारक होता है। इसे त्रिदोषका शमन करनेवाला, मधुर और वातवर्धक कहा जाता है। इसके प्रयोगसे हिचकी, श्वास, कृमि छर्दि, मेह, तृष्णा और विष-दोष भी दूर हो जाते हैं।

'इक्षुरस' रक्त और पित्त-दोषनाशक, बलप्रद, पौष्टिक तथा कफवर्धक होता है। इस रसका दूध-मिश्रित बना हुआ सिखरन पित्तवर्धक, उसकी मदिरा तीव्र (उत्तेजक) तथा शर्करा मछलीके अंडेके समान श्वेत और हल्की होती है। इसकी खाँड पौष्टिक, स्निग्ध, स्वादिष्ठ तथा रक्त-पित्त और वात-दोषपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होती है। गुड वात-पित्तहर्ता रूक्ष तथा कफवर्धक होता है। यह पित्त-विनाशक तो है ही जो गुड पुराना हो गया है वह अधिक प्रशस्त और पथ्य है। इसके सेवनसे रक्तकी शुद्धि हो जाती है। गुड और शर्करा दोनों रक्त एवं पित्त-दोषके अपहर्ता पौष्टिक तथा स्नेहयुक्त होते हैं। इसकी मदिरा सब प्रकारसे पित्त-दोषको उत्पन्न करनेवाली तथा अपनी अम्लताके कारण कफ और वात-दोषको दूर करनेवाली है। सौवीर प्रान्तमें प्राप्त होनेवाली सभी प्रकारकी मदिराएँ रक्त-पित्तकारक तथा तीक्ष्ण गुणवाली होती हैं।

माँड और भूना हुआ चावल पथ्य है, यह अग्निदीपक और पाचक होता है। तक्रके साथ दाडिम, त्रिकटु, गुड, मधु तथा पिप्पलीके मिश्रणसे तैयार किया गया पेय पदार्थ वात-दोष-विनाशक, लघु और वस्तिभागका शोधक है, किंतु मनुष्यको इस सुन्दर पेयका परित्याग कर देना चाहिये, जो कास, श्वास और नाडी-रोगको बल प्रदान करनेवाला है।

पायस अर्थात् खीर कफोत्पादक तथा बलवर्धक होता है। खिचडी वातनाशक है। सुधौत अर्थात् दालका सूप स्निग्ध, उष्ण, लघु और रुचिकर होता है। कन्द, मूल और फलसे तैयार किया गया सूप भारी और पाचक माना गया है। कुछ उष्ण सेवन करनेसे वह सूप हल्का हो जाता है और यथाशीघ्र पच जाता है। शाकको उबालकर उसे निचोड़ना चाहिये। तदनन्तर उसको घृत या तेलसे संस्कारित करके प्रयोग करना हितकारी होता है।

दाडिम तथा आँवलेसे तैयार किया गया सूप हृदयको प्रिय अग्निवर्धक और वात-पित्त-विनाशक होता है। मूलीसे बनाये गये सूपके द्वारा श्वास, कास, प्रतिश्याय तथा कफज दोष दूर हो जाते हैं। यव, कोल और कुलथीका रस सुस्वादु तथा वात-विनाशक होता है। मूँग तथा आँवलेसे तैयार हुआ सूप ग्राह्य है। यह कफ और पित्तका विनाश करनेवाला है।

गुडमिश्रित दही वातनाशक होता है। सभी प्रकारके सत्तू रूक्ष एवं वातवर्धक होते हैं। पूडी पौष्टिक और पाचनमें भारी होती है। मांसयुक्त भोजन बृंहण और भक्ष्यपिष्टक (चावल एवं दाल आदिको पीसकर बनाया पीठा) भारी माना जाता है। तेलमें तलकर तैयार किये गये पिष्टक दृष्टिनाशक हैं। अत्यन्त उष्ण मण्डक पथ्य है। शीतल होनेपर इसे भारी माना जाता है।

उक्त द्रव्य—पदार्थोंके गुणावगुणका विवेचन करके ही मनुष्यको अनुपानकी व्यवस्था करनी चाहिये। अनुपानके साथ औषधका सेवन करनेसे श्रम और तृष्णाका नाश स्वतः ही हो जाता है। यथोचित अन्नपान आदि करनेसे प्राणीमें कोई रोग नहीं होता। वह सभी रोगोंसे विमुक्त हो जाता है।

विष उष्णतारहित तथा मोरके कण्ठके समान नीले

वर्णका होता है। वह प्राणीके नैसर्गिक वर्णको परिवर्तित कर देता है। इसका गन्ध, स्पर्श और रस तीव्र होता है। यह खानेवाल व्यक्तिके मनको व्यथित कर देता है। इसे सूँघनेपर नेत्ररोग उत्पन्न हो जाता है। श्रेष्ठ वैद्योके द्वारा भी इसका शमन अत्यन्त कठिन है। कम्पन तथा जँभाई आदि इसके लक्षण हैं। (अध्याय १६९)

ज्वर, अतिसार आदि रोगोका उपचार

धन्वन्तरिजीने पुन कहा—वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सनिपातज और आगन्तुज-रूपमे आठ प्रकारका ज्वर माना गया है। मुस्त (मोथा), पर्पटक (पित्तपापडा), उशीर (खस), चन्दन तथा उदीच्यनागर (साठ)-के सहित जलको पकाकर तैयार किया गया शीतल क्वाथ ज्वर-जनित प्यासकी शान्तिके लिये देना चाहिये।

नागर, देवदारु, धान्यक, बृहतीद्वय और कण्टकारीका क्वाथ ज्वर-रोगीको सबसे पहले देना चाहिये। आरग्वध (अमलतास), अभया (पिप्पलीमूल), मुस्त (मोथा), अतितिक्ता (कुटकी) तथा ग्रन्थिक (हरीतकी)-द्वारा जलमे पकाकर तैयार किया गया क्वाथ उद्वेग, शूल और ज्वरमे हितकारी है। मधुकसार (मधु), सेधा नमक, वच, काली मिर्च और पिप्पली—इन सभीको समान मात्रामे जलके साथ महीन पीसकर कपडछान कर लेना चाहिये। इसका नस्य दनेमे ज्वरके प्रभावसे मूर्च्छित हुआ रोगी होशमे आ जाता है। त्रिवृद्धिशाला (निसोत-इन्द्रायण), त्रिफला, कटुकी और अमलतासेसे बने हुए क्वाथमे सेधा नमक डालकर उसको पीनेसे सभी प्रकारका ज्वर विनष्ट होता है। सोठ, मोथा, रक्तचन्दन, खस तथा धान्यक (धनिया)-से बने क्वाथमे शर्करा और मधु मिलाना चाहिये। इसका पान करनेस तृतीयक (तिजरिया)-ज्वर विनष्ट हो जाता हे।

रविवारको अपामार्ग (चिचडे)-की जड लाल सूत्रसे बाँधकर कमरमे सात बार घुमाकर बाँधनेसे निश्चित ही इस तिजरिया-ज्वरका नाश होता है। 'गङ्गाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसा मृत '—(गङ्गाके उत्तरी तटपर पुत्रविहीन तपस्वी ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी है।) कहकर उसे तिलोदक देना चाहिये। ऐसा करनसे एक आह्निक ज्वर रोगीको छोड देता है।

गुडूची (गिलोय)-का क्वाथ और कल्क[1], त्रिफला तथा वासक (अडूसा)-का क्वाथ एव कल्क, द्राक्षा और बला (वरियारा)-का क्वाथ और कल्कसे सिद्ध घृत सभी प्रकारके ज्वरोका विनाशक है। आँवला, हरीतकी और पिप्पली-चिताका क्वाथ सभी प्रकारके ज्वरोको विनष्ट करनेवाला है।

इसके बाद अब मैं ज्वरातिसारनाशक औषधिका वर्णन करता हूँ।

पृश्निपर्णी (पिठवन लता), बला, बिल्व, सोठ, कमल, धान्यक, पाठा, इन्द्रयव, भूनिम्ब (चिरायता), मुस्त तथा पर्पटकसे बना हुआ क्वाथ आमातिसार तथा ज्वरको विनष्ट करता है। नागर, अतिविपा (अतसी या अलसी), मुस्त, भूनिम्ब (चिरायता) और अमृतवत्सकसे बना क्वाथ सभी ज्वर तथा सभी अतिसार-रोगोका नाशक है। मुस्त, पित्तपापडा और साठ-मिश्रित दूध भी अतिसार-रागका विनाश करता है। शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी, बला, गोखरू, बिल्व, पाठा, सोठ तथा धनियाका क्वाथ सभी प्रकारके अतिसार-रोगोमे हितकारी होता है। बिल्व और आमकी गुठलीके क्वाथका मिश्री तथा मधुके साथ सेवन अतिसारका नाशक है। अतिसारमे कुटज-वृक्षका छाल भी हितकारी होता है। इन्द्रयव, अलसी, सोठ और पिप्पलीमूलका क्वाथ प्रयोग करनेसे आमशूलसे युक्त खूनी अतिसारमे लाभ होता है।

अब मैं ग्रहणी-रोगकी चिकित्सा कह रहा हूँ। ग्रहणी जठराग्निको विनष्ट कर देती है। चित्रक अर्थात् चित्ताके द्वारा बन हुए क्वाथ और कल्कके साथ पका हुआ घृत ग्रहणी-रोगका विनाशक है। यह गुल्म, शोथ, उदर, प्लीहा,

१-कूटकर लुगदी बनानेको कल्क कहा जाता है।

शूल तथा अर्शरोगको भी नष्ट कर देता है। इसके सेवनसे पेटकी अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। सौवर्च (काला नमक), सैन्धव (सेंधा नमक), विडग (लवण-विशेष), उद्भिद (रेह) और समुद्र-फेन—इन पाँचो लवणोंके समान भागम मिश्रित चूर्णका प्रयोग करनेसे लाभ होता है।

शस्त्र, क्षार तथा अग्नि इस त्रिविध चिकित्साके द्वारा अर्श-रोगका विनाश होता है। यदि नया तैयार किया हुआ तक्र हो तो उसको भी अर्श-विनाशक ही मानना चाहिये। घीम भूनी गुडूची, पिप्पली और हरीतकीका चूर्ण अम्ल तथा लवणके साथ रसोतका चूर्ण खानेसे भी यह रोग दूर हो जाता है। तिल और ईखके रसका प्रयोग करनेसे अर्श तथा कुष्ठ-रोगका विनाश होता है। पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता तथा साठ)-के साथ काली मिर्च और त्र्यूपण (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च)-का चूर्ण अग्निवर्धक है। साठ, गुड अथवा सेधा नमकके साथ हरीतकीका चूर्ण निरन्तर खाना चाहिये, क्योंकि यह अग्निवर्धक होती है। त्रिफला, गिलोय, वासक, चिरैता, नीमकी छाल और नीमकी गिरीका क्वाथ मधुके साथ पान करनेसे कामला तथा पाण्डु-रोग समाप्त हो जाता है। त्रिवृत त्रिफला, श्यामा, पिप्पली, शर्करा और मधुमिश्रित बना मोदक सनिपात-ज्वरका विनाशक तथा रक्त-पित्तज ज्वरको भी नष्ट करता है।

वासक (अडूसा[1])-का रस उदरभागमे पहुँचनपर जीवनकी आशा बनी रहती है। एसी स्थितिम रक्त और पित्तका क्षय होता है, तब खाँसीके रोगसे व्यथित प्राणी किसलिये दुखित होता है (अर्थात् वासकक रहते खाँसीके रोगीको जीवनसे निराश नहीं हाना चाहिय।) शर्करास युक्त जगली अडूसा और मृद्वीक[2] रसका बना क्वाथ पथ्य है। इसको मिश्रीके साथ पान करनेसे कास नि श्वास और रक्तपित्तज दोप विनष्ट हो जाता है। मिश्री अथवा मधुके साथ अडूसेका रस पान करनेसे रोगी रक्तज दापपर सफलता प्राप्त कर लेता है। शल्लकी (सलई) बर जामुन प्रियाक आम अर्जुन और धव नामक वृक्षकी छालका क्वाथ दूध और मधुके साथ पान करनस रक्त-सम्बन्धित राग दूर हो जाता है। अपने ही रसमे भावित, मूल, फल और पत्रसहित निर्गुण्डाका सिद्ध घृत पान करके क्षय-रागसे क्षीण हुआ रागी व्याधिरहित हाकर देवताआके समान कान्तिमान् हो उठता है।

हरीतकी, साठ, पिप्पली, काली मिर्च और गुड मिलाकर बनाय गये मादकका कासनाशक कहा गया है। इसको खानसे तृष्णा एव अरुचिका भी नाश होता है। कण्टकारी तथा गुडूचीसे पृथक्-पृथक् निकाले गये तीस-तीस पल रसम सिद्ध किया गया एक प्रस्थ घृत कासरोगका नाश और अग्निका दीपन करता है। कृष्णा (काली पत्तियोवाली तुलसी), धात्री (आँवला), श्वेत साठका चूर्ण मधुके साथ मिलाकर खाना हिक्का (हिचकी)-रोगका विनाशक बन जाता है। जो प्राणी हिचका और श्वास-रोगके रोगी हैं उनको विश्वा अर्थात् साठके साथ भार्गी (भारगी)-का रस गरम जलसे पीना चाहिये।

स्वरभेद हानपर मुखम तिलके तेलम सिद्ध खदिर (कत्थे)-का रस रखना लाभप्रद होता है अथवा साठके साथ हरीतकी और पिप्पलीका चूण इस रोगमे लाभकारी है। मधुके साथ विडग तथा त्रिफलाका चूर्ण वमन-रोगको दूर करता है। आम आर जामुनकी छालका क्वाथ मधुके साथ पान करनसे सभी प्रकारके वमन नष्ट हो जाते हैं। यह तृष्णाको भी समाप्त कर देता है अथवा इस रोगमे मधुके साथ त्रिफलाचूर्णका ही सवन करना चाहिये। यह औषधि तो भ्रम और मूर्च्छाको भी दूर कर देती है। गायके दूध दही, घृत, मूत्र और गोमयसे बना पञ्चगव्य हितकारी होता है। इसका अनुपान अपस्मार (मिरगी) और मलग्रहादि रागाको नष्ट करता है। कूष्माण्ड (कुम्हडा)-का रस ब्रह्मयष्टी तथा घृतके साथ पान करनेसे भी उक्त अपस्मार और मलग्रहादिके रोग दूर होते हैं। ब्राह्मी रस वचकुष्ठ और शखपुष्पीके साथ प्रयुक्त पुराना घृत प्राणियाक लिये सव्य है क्याकि यह उन्माद ग्रहणी और अपस्मार-रागाका विनाशक है।

अश्वगन्ध क्वाथका कल्क बनाकर उसम चौगुना दूध डालकर पकाना चाहिये। तदनन्तर उस यागम घृतपाक तैयार करके उसका सेवन करे। यह घृत वातनाशक बल-

१-वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च। रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति॥

२-मृद्वीक—मुनक्का

मास-वर्धक और पुत्रोत्पादक होता है। नीली[१] और मुण्डीका चूर्ण मधु एव घृतक साथ मिलाकर सेवन करनेसे अथवा छिन्ना (गिलोय)-का क्वाथ पान करनेसे वह अत्यन्त असाध्य वात-रक्तको दूर कर दता ह। गुडके सहित हरीतिकी आदि पाँच औषधियाका सवन कुष्ठ, अर्श तथा वातरोगका विनाशक है। गुडूचीका रस, कल्क, चूर्ण अथवा क्वाथ वात-रक्तरोगका हन्ता है। गुडूची लताक क्वाथसे बन कल्कका उपयाग करनसे कुष्ठ और व्रणरोगका उपशमन होता है। इस कल्कका प्रयोग गोघृत या गादुग्धके साथ करना चाहिये।

त्रिफला तथा गुग्गुल वात-रक्त और मूर्च्छाका नाशक है। गोमूत्रक साथ प्रयुक्त गुग्गुल ऊरुस्तम्भ नामक रोगका शमन करता है। सोठ और गाखरूका क्वाथ सामवात तथा शूलरोगका विनाशक है। दशमूल[२], हरीतकी, एरण्ड रास्ना, साठ और देवदारु नामक औषधियासे बना हुआ क्वाथ काली मिर्च एव गुडके साथ सेवन करनेपर महाशोथको दूर करता है। कण्टकारी और गुडूचीके पृथक्-पृथक् तीस-तीस पल रसको निकालकर उसमे एक प्रस्थ सिद्ध किया गया घृत कासरोग-विनाशक तथा जठराग्नि-दीपक होता है। काली तुलसी, आँवला, सफेद साठ, काली मिर्च और सधा नमकसे बना हुआ क्वाथ एरण्ड-तेलके साथ पान करनेपर वह आमदोष तथा प्रबल वायु-विकारको दूर करता है।

बला, पुनर्नवा एरण्ड बृहतीद्वय कण्टकारी और गोखरूका क्वाथ हींग और सधा नमक मिलाकर पान करनेसे वातशूल विनष्ट हा जाता है। दाह ओर शूलरोगका शान्तिके लिये त्रिफला, निम्ब मुलेठी कटुकी तथा अमलतासस बने क्वाथको मधु मिलाकर पान करना चाहिय। जेठी मधुके साथ त्रिफलाका क्वाथ पीनेपर शूलसे होनेवाला दु ख दूर होता है। त्रिफलाचूर्ण गोमूत्र और शुद्ध मण्डूर मधु तथा घृतके साथ चाटनेपर त्रिदोषजन्य शूलको विनष्ट करता है।

त्रिवृत काला तुलसी और हरीतकीक चूर्णका क्रमश दा भाग चार भाग तथा पाँच भाग गुड-समन्वित करक उसकी समान गालियाँ बनाकर सेवन करनसे मलकाठिन्य-दाष दूर हो जाता है। हरातकी यवक्षार पिप्पली आर त्रिवृत अर्थात् निसोथका चूर्ण घृतके साथ पान करनेके योग्य है, क्योकि यह उदावर्त-रोगका विनाश करता है। त्रिवृत, हरीतकी आर काली तुलसीकी पत्तीका मिश्रित चूर्ण स्नुहीक्षीर अर्थात् सेहुँडके दूधसे भावित करके उससे बनायी गयी वटीका गोमूत्रक साथ पान करनेसे अनाह-रोग नष्ट हो जाता है। त्र्यूषण (सोठ, पिप्पली और काली मिर्च), त्रिफला (हरीतकी आँवला तथा बहेडा), धनिया, विडग, चव्य (गजपिप्पली) तथा चित्रक (चित्ता) नामक औषधियोके चूर्णको कल्कसे सिद्ध घृत वातगुल्म-रोगका विनाशक है।

दुग्धमे प्रयुक्त साठके चूर्णका अनुपान हृदयगत पीडाका नाश करता ह। काला नमक तथा उसका आधा भाग हरीतकी-चूर्ण घृतमे मिलाकर पान करनेसे भी यह रोग दूर हा जाता ह। कणा (पिप्पली), पाषाणभेदी (पथरचट्टा)-के रसम शिलाजीतका चूर्ण मिलाकर उसको चावलके जल और गुडके साथ पान करनसे मूत्रकृच्छ्ररोगी रोग-विमुक्त हो जाता है। गिलोय, सोठ, आँवला, अश्वगन्धा और त्रिकण्टक (गोखरू)-का अनुपान वातरोगी, शूलग्रस्त तथा मूत्रकृच्छ्रके रागीको करना चाहिये। शर्करा अथवा मिश्रीक साथ समान भागम प्रयुक्त यवक्षार सभी प्रकारके कृच्छ्ररोगाका विनाशक है अथवा मधुके साथ निदिग्धिका (इलायची)-का रस पान करनेसे भी सब प्रकारक कृच्छ्ररोग विनष्ट हो जाते हैं।

त्रिफला-कल्कके साथ प्रयोगम लाये गये सधा नमकको भी मूत्राघातका विनाशक माना गया है। मूत्रम अवरोध होनेपर कर्पूरका चूर्ण लिगम प्रविष्ट करना चाहिये। मधुके साथ प्रयुक्त आँवलका रस सभी प्रकारके महरोगाका विनष्ट करनवाला है। त्रिफला, दवदारु दारुहल्दी और कमलमूलका क्वाथ भी मधुके साथ पान करनेसे वह प्रमहरागको दूर करता है।

शरीरकी पुष्टि चाहनेवाले व्यक्तिको अनिद्रा, मैथुन, व्यायाम तथा चिताका परित्याग कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे शरीर धीरे-धीरे पुष्ट हान लगता हे। यव और साँवाँ खानेवाला प्राणी स्थूल हा जाता है। मधुके साथ जल पीनेसे भी प्राणीके शरीरम स्थूलता आ जाती ह। उष्ण अन्न अथवा माँडयुक्त चावलका भाजन करनसे शरीर कृश हो जाता है। गजपिप्पली, जीरा त्रिकटु हींग, काला नमक तथा

१-नाली (नील) २-बिल्व श्याणाक गम्भारा पाटला गणकारिका शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वय कण्टकारी तथा गोखरू—इन दस वृक्षाके मूल दशमूल कहलाते हैं।

आँवलाचूर्ण-समन्वित सत्तूको मधुके साथ पान करनेसे मदा-विकारका नाश और अग्निका उद्दीपन हाता है।

चोगुने जल आर दोगुन गामूत्रम चित्रक नामक औपधिका कल्क पाक करके उसके द्वारा उदररोगीको एक प्रस्थ घृत सिद्ध करना चाहिये। तदनन्तर वह दूधके साथ उस घृतका पान कर। ऐसा करनेसे उसकी जठराग्नि उद्दीप्त हो उठती है। अनुपानम दूधके साथ क्रमश एक-एक पिप्पलीकी अभिवृद्धि करते हुए रोगी दस दिनतक उसका सेवन करे, पुन उसी क्रमसे एक-एक पिप्पलीको घटाते हुए बीसव दिन मात्र एक पिप्पलीका सेवन कर ता उससे भी उस रोगीकी जठराग्नि प्रबल हो जाती है। पुनर्नवाके क्वाथ एव कल्कसे सिद्ध किया गया घृत शोथ-रोगका विनाश करनेम समर्थ होता है। शोथ-रोगीको गोमूत्र या गादुग्धके साथ पिप्पली अथवा गुडके साथ समान भागमे हरीतकी या साठका सवन करना चाहिये।

मनुष्य बला नामक औपधिके रसम सिद्ध दूधके साथ एरण्ड-तेलका पान करके आध्मान तथा शूलजनित पीडासे युक्त अन्त्रवृद्धिके रोगपर विजय प्राप्त कर सकता है। अग्निशोधित अरुचक अर्थात् एरण्ड-तेलसे सिद्ध पथ्या (हरीतकी)-का कल्क, काला नमक एव सेधा नमकसे समन्वित होकर अन्त्रवृद्धिरागका विनाशक श्रेष्ठतम योग है।

निर्गुण्डीकी[1] जडका नस्य लेनेसे गण्डमालाका रोग नष्ट हो जाता है। स्नुही (सेहुँड) तथा गण्डारी (कचनार)-वृक्षकी छालका स्वद अर्बुद-रागके सभी भेदाको विनष्ट करनेम समर्थ हाता है। हस्तिकर्ण अर्थात् एरण्ड तथा पलाशपत्रके रसका लेप करनेसे गलगण्ड-रोग नष्ट होता है।

धतूर, एरण्ड, निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सहिजन तथा सरसाका मिश्रित लेप पुराने एव अत्यन्त दु खदायी श्लीपद (पीलपाँव)-रोगको दूर करता है। शाभा (हल्दी), अञ्जनक (सहिजना)-वृक्षकी छाल समुद्रफेन तथा हींगका योग विद्रधि नामक रोगका विनाशक है।

मधुके साथ शरपुखा (शरफाका) नामक औपधि सभी प्रकारके व्रणामे लेप करनके योग्य होती है अथवा नीमकी पत्तीका लेप भी शोथ तथा व्रणाको सुखा देता है। त्रिफला, खदिर, दारुहल्दी तथा वटवृक्षकी छाल या फलके योगसे बना लेप व्रणशोधक है। यष्टि, मधु (मुलेठी) और घीको गरमकर मधुके साथ व्रणम लेप करनेसे आगन्तु-व्रण नष्ट हो जाता है।

प्राणीम पित्त-रक्त-दोपजन्य गरमी होनेपर वैद्यको शीत-क्रिया करनी चाहिये। शरीरके कोष्ठमे रक्त-सञ्चार बाधित होनेपर बाँसके अकुरकी छाल, एरण्ड-बीज तथा गोखरूका क्वाथ मधु, सेधा नमक तथा हींग मिलाकर पान करनेसे ठीक हो जाता है। ऐसी विकृति होनेपर उससे मुक्त होनेके लिये यव, काली मिर्च तथा कुलथीके रसका पान अथवा सधा नमकके साथ भूना हुआ अन्न या यवागूका पान करना चाहिये।

करञ्ज अरिष्ट (रीठा) तथा निर्गुण्डीका रस व्रणाके कीटाणुआको नष्ट कर देता है। त्रिफलाचूर्णसे युक्त गुग्गुलवटी विबन्ध-रोगको दूर करती है। यह व्रणशोपक और शोधक है। दूर्वारस या कम्पिलक (कपीला) अथवा दारुहल्दीके कल्कसे सिद्ध तेल व्रणमे लगानेकी श्रेष्ठ औपधि है।

(अध्याय १७०)

नाडीव्रण, कुष्ठ आदि रोगोकी चिकित्सा

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत। अब आप नाडीव्रण आदि दापोकी चिकित्साका श्रवण करे।

नाडी (नाडी)-को शस्त्रसे भलीभाँति काटकर व्रण-चिकित्साके समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। गुग्गुल त्रिफला तथा त्रिकटुको समान भागम लेकर सिद्ध किये गये घृतस नाडीम हुए विकृत व्रण शूल और भगन्दर नामक रोगपर विजय प्राप्त की जा सकती है। निर्गुण्डीके रसस सिद्ध तेल नाडी-दोप तथा व्रणको दूर करता है। पामा नामक रागके उपभेदामे यह औपधि पान अञ्जन और नस्य-विधिसे प्रयोगम लानेपर गुणकारी होती है। तीन भाग गुग्गुल पाँच भाग त्रिफला तथा एक भाग काली तुलसीकी पत्तीसे बनायी गयी गुटिकाएँ शाथ गुल्म अर्श और भगन्दर-रोगस ग्रसित रोगियाके लिये हितकारिणी होती हैं।

उपदश-रागमे शिश्नके मध्यम रक्तकी शुद्धि-हेतु शिरावेध

[1] निर्गुण्डी (मउडी या मेढकी)

करे तथा शिश्न नष्ट न होवे, अत उसे पकनेसे प्रयत्नपूर्वक रक्षा करे। गुग्गुल, खदिर, परवल, नीमका फल और गिलोयका क्वाथ पीनेसे उपदश-दोष समाप्त हो जाता है। एक कडाहेम त्रिफलाको जलाकर स्याही-जैसी राख बनाकर मधुसे प्रयोग करनेपर लाभ होता है। त्रिफला, चिरायता, नीम कजा तथा खदिर आदिसे बने कल्क अथवा क्वाथके द्वारा सिद्ध किया गया घृतपाक उपदशको दूर करता हे।

प्राणीको [भग्नसे] हताश हुआ जानकर सबसे पहले उसे शीतल जलसे सिचित करे। तदनन्तर पाकका लेपन तथा कुशकी रस्सीसे भग्न-भागपर बन्धन लगाये। ऐसे भग्न-रोगीको उडद, मास, मटरकी दाल उगा हुआ अन्न, घृत, दूध तथा सूप देना चाहिये।

रसोन (लहसुन), मधु, नासा (अडूसा) तथा घृतका कल्क बनाकर उसको स्थानसे च्युत अथवा टूटी हड्डियोके जोडपर लगानेसे बहुत ही शीघ्र सफलता प्राप्त होती हे। त्रिफला, त्रिकटु (साठ, पिप्पली और काली मिर्च)-को समान भागमे पीसकर उनके साथ बराबर मात्राम मिलाया गया गुग्गुल टूट हुए हड्डीके सधि-स्थानको भी जोड देता है।

सभी प्रकारके कुष्ठरोगामे रोगीके लिये वमन, रेचन तथा रक्तमोक्षणकी क्रिया लाभकारी है। वच, अडूसा, परवल नीम तथा बहेडेका छालका क्वाथ मधुके साथ पीनेसे वातरोग नष्ट हो जाता है। इस रोगम निसोत दन्तीफल (एरण्ड-बीज) तथा त्रिफलाक योगसे विरेचन-क्रिया भी करनी चाहिये।

काली मिर्चके साथ मन शिल (मेनसिल)-का सिद्ध तेल कुष्ठरोगका विनाशक है। सभी प्रकारक कुष्ठरोगाम इस तलका लेप किया जा सकता है। इस रोगमे पथ्याहार शिव (हरीतकी), पञ्चाम्ल, गुड और भात हे। कजा-एल (सुगन्धित बालुका नामक लता) गजपिप्पली तथा कुष्ठ (कूट)-के रसको गोमूत्रके साथ कुष्ठरोगम प्रलप करनेसे लाभ हाता हैं। तलमे करवीर (कनर)-के मूलका पाकसिद्ध उबटन भी कुष्ठनाशक है। हल्दी चन्दन रास्ना गुडूची एडगज (तगर) अमलतास और करञ्जका लप कुष्ठविनाशक श्रेष्ठतम औषधि है। मैनसिल, विडग, वागुजी (वाकुची), सरसो तथा कजाको गोमूत्रमे पीसकर तैयार किया गया लेप सूर्यदेवके समान कुष्ठरोगका विनाशी है।

विडग, एडगज, वच, कुटकी, निशा (दारुहल्दी), समुद्रफेन ओर सरसोको गोमूत्र तथा अम्लमे पीसकर तैयार किया गया यह लेप दद्रु नामक कुष्ठरोगको विनष्ट करता है। प्रपुन्नाड (चकवड)-का बीज, आँवला, सर्जरस (विरोजा या लाख), स्नुही (सेहुँड) और सौवीर (बेर)-का पिसा हुआ लेप सभी प्रकारके दद्रुरोगोको दूर करनेवाला श्रेष्ठ औषध है। काजीके साथ अमलतासकी पत्तियाका तैयार लेप दद्रु, किट्टिम तथा सिध्म (सेहुवाँ) नामक कुष्ठोका विनाश करता है। वकुचीका उष्ण क्वाथ सेवन करके दूध पीनेसे भी कुष्ठरोगपर विजय प्राप्त की जा सकती है। तिल, घृत, त्रिफला, क्षौद्र, व्योष (त्रिकटु), भिलावा तथा शर्करा—ये सभी सात ओषधियाँ समान भागम मिलाकर सेवन करनेसे पुरुषत्वम वृद्धि होती है। ये पवित्र-और कुष्ठरोग-नाशक हैं।

मधुके सहित विडग, त्रिफला और काली तुलसीके चूर्णका अवलेह कुष्ठ, कृमि, मेह, नाडीव्रण एव भगन्दर नामक रोगोका विनाश करता है। जो मनुष्य कुष्ठरोगी हो, उसे हरीतकी, नीम, कुटकी, आँवला तथा दारुहल्दीका सेवन करना चाहिये। ओषधि लेनेके बाद प्राय एक मासपर्यन्त ऐसा व्यक्ति शीघ्र कुष्ठरोगसे विमुक्त हो जाता है, इसम कोई सदेह नहीं। उष्ण मक्खन, कुम्भ (गुग्गुल), मूलक (अदरक), खदिर (कत्था), अक्ष (बहेडा), आँवला तथा चम्पा नामक योगसे भी कुष्ठका विनाश होता है। यह औषधियोका एक रसायन है।

आँवला, खदिर और वकुचीके क्वाथका पान करके मनुष्य शख एव चन्द्रमाके समान श्वेत श्वित्ररोगको शीघ्र ही नष्ट कर दता है, इसमे सदेह नहीं है। भल्लातक (भिलावे)-के सिद्ध तेलको एक मासपर्यन्त पानकर प्राणी इस कुष्ठ-रागपर विजय प्राप्त कर लेता है। जो खदिरमिश्रित जलका यथाविधि सेवन करता है, उसे कुष्ठरोगपर विजय प्राप्त हो जाती हे। मलपू अर्थात् कठूमर नामक वृक्षकी छालसे बने

१-सु० रा० अ० ८

क्वाथके द्वारा छौंके गये सामराजी (बकुची)-के फलोंका चूर्ण प्रतिदिन एक कर्ष मात्र बहेड और अर्जुन नामक वृक्षसे बने क्वाथके साथ लेना चाहिये। किंतु नमक खाना इस कालमें निषिद्ध है। इस औषधिक उपचारसे श्वित्ररोग विनष्ट हो जाता है। रोगीको इस औषधिका पान करते हुए शरीरपर स्थित सफेद चकत्तोंपर अपराजिता (शेफालिका)-की लताका लेप लगाना चाहिये। अडूसा, गुडूची त्रिफला, परवल, कंजा, नीम, अशन तथा कृष्णवर्णकी वज्रलताका क्वाथ एवं कल्क-रूपमें पकाकर उससे जो घृतपाक सिद्ध होता है, उसको 'वज्रक घृत' कहते हैं। इसके सेवनसे रोगी रोग-विमुक्त होकर सौ वर्षोंकी आयु प्राप्त करता है।

दूर्वाके रसमें उससे चौगुना तेल पकाकर औषधिरूपमें उसको शरीरमें लगाना चाहिये। इसके मालिशसे कच्छू, विचर्चिका[1] और पामा नामक कुष्ठरोग विनष्ट हो जाते हैं। द्रुम (पारिजात)-की छाल मन्दार, कुष्ठ लवण, गोमूत्र, गम्भारी (श्रीपर्णी) तथा चित्रक (एरण्ड) नामक औषधियोंका सिद्ध तेल कुष्ठरोगके व्रण-विकारोंका विनष्ट कर देता है।

आँवला, निमकौरी, गोमूत्र, अडूसा गुडूची पित्तपापडा चिरायता, नीम भृंगराज, त्रिफला कुलथी और मधुका क्वाथ अम्लपित्त-रोगका विनाशक है। त्रिफला, पटोल और कटुकीका क्वाथ शर्करा तथा जेठी मधुके साथ पान करनेपर ज्वर छर्दि एवं अम्ल-पित्तजनित अन्य विकार नष्ट हो जाते हैं। वासाघृत तिक्तघृत और पिप्पलीघृतका प्रयोग अम्लपित्त- विकारमें करना चाहिये। गुड और कुम्हडा खानेसे भी लाभ होता है।

मधुके साथ पिप्पली अम्लपित्तका विनाश करती है। हरीतकी पिप्पली तथा गुडका बना हुआ मोदक श्लेष्म एवं अग्निमन्दताके दोषको दूर करता है। जीरा और धनियाको समान भागमें पीसकर एक प्रस्थ घृतमें उन दोनोंका विपाक बनाना चाहिये। यह पाक कफ पित्त अरुचि मन्दाग्नि तथा वमन नामक दोषोंको दूर करता है।

पिप्पली गुडूची चिरायता अडूसा कटुकी पित्तपापडा खैर और लहसुनसे बना क्वाथ विस्फोट (फोडा-फुंसी) तथा ज्वररोगका विनाशक है। निसोतके साथ त्रिफलाके रस-मिश्रित घृतका अनुपान आँतोंकी सफाई और विसर्प नामक रोगकी शान्ति कर देता है। खदिर, त्रिफला (हरड आँवला बहेडा), कटुकी, परवल गूडूची और अडूसाके द्वारा बना क्वाथ 'अष्टक क्वाथ'के नामसे प्रसिद्ध है। इसके सेवनसे रोमान्तिक तथा मसूरिका रोग दूर हो जाते हैं।

लहसुनके चूर्णको घिसनेसे कुष्ठ, विसर्प फोडा तथा खुजली आदि चर्मरोगोंका विनाश होता है। इसके द्वारा घिसनेसे शरीरका मस्सा भी नष्ट हो जाता है। चर्मकील, पुराने एवं बढे हुए मस्से, तिल तथा अनुपयुक्त बालोंको शस्त्रसे काटकर निकालनेके पश्चात् क्षार अथवा अग्निके द्वारा उक्त रोगके शरीरस्थ भागको दग्ध कर देनेका भी विधान है।

परवल और नीलका लेप जालगर्दभ-रोगको विनष्ट करता है। गुञ्जाफल तथा भृंगराजके रससे सिद्ध तेलके द्वारा कण्ठ-विकार, खुजली अत्यन्त कष्टदायक कुष्ठ और वातरोगोंका विनाश होता है। धतूर या आमकी गुठली, त्रिफला, नील तथा भृंगराज—इन औषधियोंके योगसे सिद्ध काजीयुक्त लौहचूर्ण प्राणियोंके पकनेवाले श्वेत बालोंको काला करनेमें समर्थ है। क्षीरी (खिरनी) और शार्कपर्ण (लोध्र)-का रस दो प्रस्थ तथा मधुका (मुलेठी) एक पल लेकर उसमें एक कुडव अर्थात् बारह पसर सिद्ध किया गया तेलका नस्य भी बालोंको पकने नहीं देता।

मुखमें रोग होनेपर त्रिफला-चूर्णका गण्डूष अर्थात् कुल्ला करना चाहिये। घरका धुआँ, घृत या तिलादिके तेलका दीपक जलानेसे एकत्र धुएँमें यवक्षार पाढा व्योष (सोठ पिप्पली तथा काला मिर्च)-के रसको मिलाकर अञ्जन बनानेका विधान है। इस अञ्जनको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रदोष नहीं होता। यदि तेजोद त्रिफला लोध्र और चित्ताका चूर्ण मधुके साथ मुँहमें रखा जाय तो कण्ठ दाँत और मुँहका रोग दूर हो जाता है। पटोल नीम जामुन मालती तथा आमके नवीन पल्लवोंका क्वाथ मुख धोनेका श्रेष्ठतम औषधि है।

लहसुन अदरक सहिजन भृंगराज मूला रुदन्ती (महामासा)-का गुनगुना रस कर्ण-रोगको दूर करनेका

[1] -विचर्चिका (एक्जिमा)।

उत्तम उपचार है। कानमें अत्यन्त तीव्र पीडा, शब्द और मैल निकलनेपर सेंधा नमकके सहित वस्त अर्थात् बकरेका मूत्र गरम करके उसमें डालना चाहिये। जातिपत्र अर्थात् जावित्रीके रससे सिद्ध तैलपाक पूतिक (दुर्गन्धयुक्त) कानमें डालना चाहिये। सोंठके चूर्णसे सिद्ध गुनगुना सरसोंका तेल कानमें उठनेवाले शूलका विनाशक है।

पञ्चमूलसिद्ध दूध, चित्ता और हरीतकी, घृत तथा गुड एवं षडङ्ग जूसका योग पानस-रोगकी शान्तिके लिये है। इस रोगमें इन योगोंमेंसे किसी एक योगसिद्ध औषधिका प्रयोग करना चाहिये।

नेत्र-दोष कुक्षि-विकार प्रतिश्याय (जुकाम या सर्दी), व्रण तथा ज्वर होनेपर पाँच दिनोंतक लंघन करनेका विधान है। ऐसा करनेसे ये पाँचों रोग शान्त हो जाते हैं। आँवलेका रस नेत्रमें डालनेसे विकार दूर हो जाता है अथवा मधु और सेंधा नमकके सहित शोभाञ्जन नामक सहिजन तथा दारुहल्दीका अञ्जन लगानेसे भी लाभ होता है। हल्दी, देवदारु, सेंधा नमक हरीतकी तथा गैरिक[1] पीसकर उसका लेप नेत्रोंके बाह्य भागमें लगाना चाहिये। यह नेत्ररोग-विनाशक है। घृतमें भुनी हरीतकी त्रिफला दूधके साथ लेप करनेके पश्चात् गुनगुनी एवं पिसी सोंठ नीमकी पत्ती, थोडा-सा सेंधा नमक दूध और त्रिफलाचूर्णको नेत्रोंपर लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे नेत्रोंकी सूजन, खुजलाहट और पीडा समाप्त हो जाती है। हरीतकी बहेडा तथा गुडूची नामक औषधियोंको क्रमश —मात्रामें एक भाग, दो भाग और चार भाग लेकर मधु एवं घृतके साथ सिद्ध किया गया लेह या क्वाथ सभी प्रकारके नेत्र-रोगोंका विनाशक है।

चन्दन त्रिफला, सुपारी तथा पलाशकी जडको जलमें पीसकर बनायी गयी बत्तीका प्रयोग आँखोंके समस्त तिमिर-रोगोंको दूर करता है। दहीके साथ अत्यधिक घिसी गयी काली मिर्चका अञ्जन रतौंधी नामक रोगको दूर करता है। त्रिफलाके क्वाथ एवं कल्कसे सिद्ध घृतपाकका गुनगुने दूधके साथ सायंकाल पान करनेसे अन्धदर्शन तथा रतौंधीका विकार यथाशीघ्र विनष्ट हो जाता है। पिप्पली, त्रिफला, द्राक्षा, लौहचूर्ण और सेंधा नमकको भृगराजके रसमें घिसकर बनाया गया घुटिकाञ्जन अन्धता, त्रिदोषजन्य तिमिरता धुँधलाहट तथा अन्य सभी प्रकारके नेत्र-सम्बन्धित रोगोंका विनाशक है।

त्रिकटु, त्रिफला, सेंधा नमक, मैनसिल, रुचक[2], शखनाभि (कचूर), जातीपुष्प (मालती), नीम, रसाञ्जन (रसौत) और भृगराजका घृत मधु तथा दुग्धमें पीसकर बनायी गयी वटी समस्त नेत्रविकारोंकी विनाशकारिणी औषधि है।

एरण्डकी जडको जलाकर काजीके साथ सिरमें लेप करने अथवा मुचुकुन्द-पुष्पके प्रयोगसे शीघ्र ही सिर-पीडा दूर हो जाती है।

शतमूली[3], एरण्डमूल, चक्रा (कुटकी) तथा व्याघ्री (कण्टकारी)-को एक-एक पल एकत्र करके उनसे सिद्ध क्वाथ तैलपाकका नस्य वात और श्लेष्मजन्य तिमिर तथा ऊर्ध्वरोगका विनाश करता है अथवा नमक, गुड और सोंठ या पिप्पली एवं सेंधा नमकका योग भुजस्तम्भ आदि सभी शरीरके ऊर्ध्वभागवाले रोगोंमें लाभकारी होता है। सूर्यावर्त-रोगमें नस्यकर्मका उपचार प्रशस्त माना गया है। ऐसेमें घृत एवं सेंधा नमकसे युक्त दशमूलके क्वाथका नस्य लेना चाहिये। यह अङ्गभेद सूर्यावर्त तथा शिरोव्याधिके दु खोंको दूर करता है।

वातरक्त-दोषसे पीडित स्त्रीको दही एवं मधुके साथ काला नमक, जीरा, महुआ और नीलकमल पीसकर पान करना चाहिये। पित्त-विकार होनेपर अड़ूसा अथवा गुडूचीका रस लाभकारी है। मधुके साथ जलमें पकाये गये आँवलेके बीजोंका कल्क, अड़ूसा तथा श्वेत दूर्वाका रस अथवा आँवलेके साथ मधु और कपासकी जडका रस चावलके धोवनमें पीनेसे पाण्डु एवं प्रदर-रोग शान्त हो जाता है।

तण्डुलीयक मूल अर्थात् चौराई तथा रसौतको पीसकर मधु एवं चावलके धोवनमें पीनेसे सभी प्रकारका रक्तप्रदर-रोग विनष्ट हो जाता है। चावलके जलके साथ पान किया गया कुशका मूल भी रक्तप्रदर-रोगका विनाशक है। (अध्याय १७१)

~~~

१-गैरिक (गेरु)। २-रुचक (बिजौरा नीबू)। ३-शतमूली (शतावरी)
~~~

स्त्रियोके रोगोकी चिकित्सा, ग्रहदोषके उपाय, ऋतुचर्या तथा पथ्यकारक सर्वौषधियाँ

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं स्त्रियोके रोगाकी चिकित्साका वर्णन करूँगा। उसे आप सुन। स्त्रियोके योनिभागम होनेवाले रोगोको दूर करनेके लिये बहुत-से कर्म हैं, किंतु जो कर्म वातदोष-नाशक हैं, उन्हींको प्रशस्त माना जाता है।

वच, उपकुञ्चिका (काला जीरा), जातीफल (जायफल), कृष्णा (काली तुलसी), वासक (अडूसा), सैन्धव (सेधा नमक) अजमोदा (अजवाइन), यवक्षार, चित्रक तथा शर्कराको पीसकर सभीको मिश्रित करके घीमे भूनकर जल या दूधके साथ सेवन किया जाय तो स्त्रियाकी योनिके पार्श्वभागमे होनेवाला शूल, हृदयरोग, गुल्म और अर्श-विकार दूर हो जाता है। बेरकी पत्तियाको पीसकर योनिभागमे लेप करनेसे उसकी वेदना शान्त हो जाती है। लोध्र और तुम्बीफलका प्रलेप योनिको दृढ एव सकुचित बनाता है।

पीपल, वट, पाकड, गूलर और आम—इन पाँचोके पल्लव और मधुयष्टि तथा मालतीपुष्पका अग्नि या सूर्यकी गर्मीम सिद्ध घृतपाक रक्तप्रदर एव योनि-दुर्गन्धका विनाशक है। काजीमे जपापुष्प (अडहुलके फूल), ज्योतिष्मती-दल, मालकँगनीकी पत्ती (दूर्वा) और चित्रकको पीसकर शर्कराके साथ पान करनेसे भी योनिरोग दूर हो जाता है।

आँवला रसौत तथा हरीतकीका चूर्ण जलके साथ पान करनेपर वह स्त्रीके रजोदोषको दूर करता है। ऋतुकालमे लक्ष्मणा (श्वेत कण्टकारी)-की जडको दुग्धके साथ पान करने या नस्य लेनेसे स्त्रीको पुत्र उत्पन्न होता है। ढाई सेर दुग्ध और सवा सेर घृतम सिद्ध अश्वगन्धाका रस सेवन करनेसे भी स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। घृतके साथ व्योष (सोठ पिप्पली और काली मिर्च) तथा केसरके चूर्णका सेवन करके तो वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती बन जाती है।

कुश काश एरण्ड और गोखरूकी जडको पीसकर उनक ही द्वारा सिद्ध गोदुग्ध एव शर्कराका पान करनेसे गर्भिणी स्त्रीके उदरभागमे होनेवाला शूल शान्त हो जाता है। पाठा (पाढा) लाङ्गलि (कलियारी) सिंहास्य (कचनार) मयूर (चिचडा) और कुटज (गिरिमल्लिका या कुरैया)-को अलग-अलग पीसकर नाभि, पेडू तथा योनिभागमें लेप करनेसे स्त्रीको सुखपूर्वक प्रसव होता है। मदार या वकुलकी जडका लेप प्रसूता स्त्रीके हृदय, मस्तक और वस्ति (पेडू)-भागमे होनेवाली पीडाका हरण करता है। ऐसी स्थितिमें स्त्रीको दही अथवा गुनगुने जलमें यवक्षारको मिलाकर पीना चाहिये। दशमूलके क्वाथसे सिद्ध घृतपाक भी प्रसूता स्त्रीकी पीडाका विनाशक है। दुग्धके साथ साठी चावलका चूर्ण सेवन करनेसे प्रसूता स्त्रीको दूध होने लगता है। विदारी, कन्द, सतावर तथा कपासके बीजोका योग भी प्रसूताके दुग्धवृद्धिमे सहायक है। स्तनशोधनके लिये प्रसूता स्त्रियोको मूँगका जूस पीना चाहिये।

कूट, वच, हरीतकी, ब्राह्मी, द्राक्षाफल, मधु और घृतका योग रग, आयु तथा सौन्दर्यवर्धक होता है। इन सभी औषधियोका लेह बालकको चटाना चाहिये। स्तनजन्य दूधका अभाव होनेपर बकरी अथवा गायका दुग्ध बालकके लिये उचित होता है। बच्चेकी नाभिमे सूजन आ जानेपर उसको अग्निमे गरम की गयी मिट्टीसे सेकना चाहिये। वमन, खाँसी और ज्वर होनेपर मुस्त (नागरमोथा) तथा विषा (सोठ)-के चूर्णको मधु आदिके साथ चाटना या क्वाथ बनाकर पीना चाहिये। नागरमोथा, सोठ, गूलर, बिल्व और कुटज (कुरैया) नामक औषधियोका रस अतिसाररोगका विनाश करता है।

व्योष (सोठ, पिप्पली और काली मिर्च), बिजौरा नीबू तथा मधुके योगसे हिचकी और वमनरोग दूर होते हैं। कुष्ठ (कूट), इन्द्रयव, सरसो, हल्दी तथा दूर्वारससे कुष्ठरोगपर सफलता प्राप्त की जा सकती है।

महामुण्डिनिका (महाश्रावणिका) तथा उदीच्य (ह्रीवेर या चोपचीनी)-के क्वाथसे स्नान करनेपर ग्रहका दोष दूर हो जाता है। ग्रहदोष होनेपर शरीरमे सप्तपर्णी, हल्दी और चन्दनका लेप करना चाहिये। शख कमलगट्टा रुद्राक्ष वच तथा लौह आदि धारण करनेसे भी ग्रह-दोष दूर होता है।

बालकापर ग्रह-दोषका प्रभाव होनेपर निम्न मन्त्रसे उसकी शान्तिका प्रयास करना चाहिये—'ॐ क ट ग गं

वैनतेयाय नम ', 'ॐ हा हा ह '—इस मन्त्रसे मार्जन करने तथा बलि प्रदान करनेसे अरिष्ट ग्रह शान्त हो जाता है। बलि प्रदान करते समय निम्न मन्त्रका उच्चारण करे—

'ॐ ह्रीं बालग्रहाद् बलि गृहीत बाल मुञ्चत स्वाहा।'

चावलके धोवनम शिरीष[1]-वृक्षकी जड पीसकर पीनेसे विष-दोष दूर हो जाता है। चावलके ही पानीम मिलाकर पीसे हुए श्वेत फूलवाले वर्षाभू[2] (पुनर्नवा)-का रस सर्पदशके विपको दूर कर देता है।

दही, घृत, चौराई गृह-धूम, हल्दी, मधु तथा सेधा नमकको पीसकर पीना विपनाशक है। घृत-मिश्रित सिहोरकी जडका क्वाथ पीनेसे भी विप-दोप दूर हो जाता है।

जो औपधि वृद्धावस्थाको दूर करनेका सामर्थ्य रखती है, उसको रसायन[3] कहा जाता है। रसायनकी अभिलापा करनेवाले लोगोको वर्षा आदि ऋतुओमे यथाक्रम सेधा नमक, शर्करा, सोंठ, पिप्पली, मधु तथा गुडके साथ हरीतकी नामक औपधिका प्रयोग करना चाहिये। अर्थात् वर्षाकालमें सेधा नमक, शरत्कालमे शर्करा हेमन्तकालमे सोठ, शिशिरकालमे पिप्पली, वसन्तकालमे मधु तथा ग्रीष्मकालमे गुडके साथ हरीतकीका सेवन प्राणियोके लिये रसायनका कार्य करता है।

ज्वरकी समाप्तिपर व्यक्ति एक हरीतकी, दो बहेडा, चार आँवला मधु और घृतका सेवन करके सौ वर्पतक जीवित रहता है। दूध तथा घृतके साथ अश्वगन्धा नामक औपधि तो प्राणियोके शरीरम होनेवाले सभी रोगोका विनाश करती है। मण्डूकपर्णी और विदारीकन्दका रस अमृतके समान है। मनुष्य तिल, आँवले और भृगराजके सेवनसे शतायु बन जाता है। त्रिकटु त्रिफला चित्रक, गुडूची, शतावरी, विडग और लौहचूर्ण मधुके साथ मिलाकर खाना सभी रोगोका विनाशक बन जाता है। त्रिफला, पिप्पली, साठ, गुडूची, शतावरी, विडग तथा भृगराज आदिका सिद्ध रस भी सभी रोगाको विनष्ट करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होता है। एक भाग शतावरी तथा दस भाग दुग्धसे कल्क बनाकर शर्करा, पिप्पली और मधुस युक्त घृतपाक अत्यन्त पौष्टिक होता है।

चिकित्साम प्रतिमर्ष, अवपीड, नस्य, प्रवपन तथा शिरोविरेचन—ये पाँच कर्म कहे जाते हैं। क्रमश माघ आदि प्रत्येक दो मासकी एक ऋतु होती है। इस प्रकार एक वर्षमे छ ऋतुएँ[5] होती हैं। इन सभी ऋतुआमे अग्निसेवन, मधु, दूध और दहीके विवर्त्त आदिका सेवन करना चाहिये। मनुष्यको शिशिर-ऋतुम स्त्रीके साथ रहना चाहिये। वसन्त-ऋतुम दिनम सोना उचित नहीं है। वर्षा-ऋतुम दिवा-निद्रा तथा शरत्कालम चन्द्रकिरणोका सेवन मनुष्यके लिये त्याज्य है।

साठी चावल, मूँगकी दाल, वर्षाका जल, क्वाथ और दूध पथ्य हैं। नीम, अलसी, कुसुम्भ[6], सहिजन, सरसो, ज्योतिष्मती तथा मूलीका तेल भी प्राणीके लिये पथ्य माना गया है। ये कृमि, कुष्ठ, प्रमेह, वात, श्लेष्मज दोष और सिरम होनेवाली पीडाका नाश करते हैं।

अनार, आँवला, बेर करौंदा, चिरौंजी, नीबू, नारगी, आमडा और कपित्थ नामक फल भी पथ्य हैं। किंतु ये पित्तवर्धक और अग्निविनाशक हैं तथा इनसे कफजनित दोप होता है। जल, नागरमोथा, इक्षुरस और कुटज मल-मूत्रके अवरोधको दूर करनेमे समर्थ होते हैं।

धामार्गव अर्थात् घिया तरोईको सदैव वमनके रोगम सेवन करना चाहिये। पूर्वाह्णकालमे वमन करनेके लिये वचके साथ खैर और इन्द्रयवका सेवन लाभप्रद है। पित्तदोप होनेसे प्राणियाका अन्नादिक कोष्ठ सबल नहीं रह पाता। उनम एक प्रकारकी मधुरता रहती है। वात और

१-शिरीषोविषघ्नानाम् (चरक सू०)।

२-वर्षाभू या पुनर्नवाका तात्पर्य धमरवरुआ नामकी प्रसिद्ध औपधिसे है। इसका फूल श्वेत होता है। इसकी पत्तियाकी आकृति पुनर्नवाके समान होती है। इन दोनोंकी पत्तियोमे अन्तर इतना है कि पुनर्नवाको पत्तियाँ छोटी और धमरवरुआकी पत्तियाँ बडी होती हैं। वर्षाकालम पुनर्नवाके समान ही यह औपधि भी अधिक पायी जाती है। मूलत तो यह पुनर्नवाका एक उपभेद ही है।

३-लाभो पाथो हि शस्ताना रसादीना रसायनम्। (सु० स० सू० अ० १)।

४-च० चि० १। ५-शिशिर वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद् और हेमन्त। ६-कुसुम्भ (बर्रे)।

कफदोषका आश्रय मिलनेसे उसमें दोष अधिक ही आ जाते हैं। वात, पित्त और कफ—इन त्रिदोषोंकी समान स्थिति रहनेपर उन कोष्ठोंकी क्षमता मध्यम रह जाती है। (उस स्थितिमें न तो उनकी कार्य-क्षमतामें शिथिलता रहती है और न उनमें दोषोंकी क्षमताकी अभिवृद्धि। शरीरके अंदर स्थित कोष्ठका कार्य चलता रहता है।) पित्तदोष होनेपर निसोतका सेवन करके विरेचन करना चाहिये। सेंधा नमक, सोंठ, निसोत, हरीतकी तथा विडंगको गोमूत्रसे सिद्धकर शर्करा और मधुके साथ सेवन करनेपर विरेचनमें अधिक लाभ होता है। वातदोषके प्रबल होनेपर उत्पन्न हुए दोषोंमें रोगीको एक भाग एरण्ड तेल और दो भाग त्रिफलाका क्वाथ पान कराकर वमन कराना चाहिये।

छः अंगुल, आठ अंगुल या बारह अंगुल लम्बी बाँस आदिकी नेत्रि अर्थात् पिचकारी बनाकर और उस पिचकारीमें कर्कन्धू (बेर)-फलके समान छिद्र करके रोगीको उत्तान सुलाकर वस्ति-क्रिया करनी चाहिये। निरूहदान या निरूढवस्तिके प्रयोगमें भी यही विधि कही गयी है। इन दोनों विधियोंमें औषधियोंकी मात्रा आधा पल, तीन पल तथा छः पल होनी चाहिये। इसी मात्राको क्रमशः लघु, मध्यम तथा उत्तम कहा जाता है। इस वस्ति-विधिमें शतावरी, गुडूची, भृंगराज तथा सिन्धुवार आदिक रसमें भावित हरीतकी एक भाग, बहेडा दो भाग और आँवला चार भाग होना चाहिये। ये औषधियाँ उदररोगकी पीडाको समाप्त कर देती हैं। (अध्याय १७२)

मधुर, अम्ल और तिक्त आदि द्रव्योंका वर्ग तथा उनका औषधीय उपयोग

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं रोग-विनाशक मधुर आदि गुणोंसे युक्त द्रव्योंका वर्णन करूँगा।

साठी चावल, गेहूँ, दूध, घृत, रस, मधु, सिंघाडेकी गूदी, जौ, कशेरु, फूटनेवाली ककडी, गोखरू, गम्भारी, कमलगट्टा, द्राक्षाफल, खजूर, बला, नारियल, इक्षु, सतावर, विदारीकन्द, चिरौंजी, मुलेठी, तालफल और कुम्हडा—यह मधुर द्रव्योंका मुख्य वर्ग है।

इन द्रव्योंका यह वर्ग मूर्च्छा और प्रदाह नामक रोगोंका विनाशक तथा जिह्वादि सभी छः इन्द्रियोंका आह्लादक है। इस वर्गके एक भी पदार्थका अत्यधिक सेवन करनेसे प्राणीके शरीरमें कृमि तथा कफजनित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जब श्वास, खाँसी, मुखव्याधि, माधुर्य-दोष, स्वरघात, अर्बुद, गलगण्ड और श्लीपदका रोग हो तो गुडसे बने लेपादिका प्रयोग करना चाहिये।

अनार, आँवला, आम, कपित्थ, करौंद, बिजौरा नीबू, आमडा, बेर, इमली, दही, मट्ठा, कांजी, बडहल, अम्लवेत, अम्ल, सेंधा नमक, सोंठ तथा जीराका वर्ग जठराग्निका उद्दीपक और पाचक होता है। यह वर्ग स्वेदकारक, वातवर्धक, कामोद्दीपक, विदाहकारक और अनुलोमी है। इस वर्गमें सन्निहित रहनेवाले अम्ल-पदार्थका अत्यधिक सेवन करनेसे दाँत सिहरने लगते हैं, शरीरमें शिथिलता आ जाती है तथा कण्ठ, मुख और हृदयमें दाह होता है।

सैंधव, सुवर्चल, यवक्षार तथा छज्जी आदि लवण हैं। लवणकी अधिकतासे यह द्रव्य-वर्ग लावण कहलाता है। यह शरीर-शोधक, पाचक, स्वेदकारक, हाथ-पैरमें बेवाई तथा खुजली आदिका विकारोत्पादक है। इनमेंसे एक नमकका सेवन भी मल-मूत्रादिक मार्गोंमें अवरोध तथा अस्थि-मज्जादिकी शक्तियोंको कोमल कर देता है। लवणजन्य रस शरीरमें खुजलाहट, कोष्ठकामें शोथ तथा विवर्णता- जनक है। उसके दुष्प्रभावसे रक्तवातज, पित्तरक्तज, कामोद्दीपन और इन्द्रियजनित पीडाके उपद्रवकी उत्पत्ति भी होती है।

व्योष (सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च), सहिजन, मूली, देवदारु, कुष्ठ (कूट), लहसुन, बकुची, नागरमोथा, गुग्गुल, लांगुली आदि औषधियोंका वर्ग कडुआ, अग्निदीपक, शरीर-शोधक, कुष्ठ, खुजली, कफ, स्थूलता, आलस्य तथा कृमिदायकका विनाशक एवं शुक्र और मेदका विरोधी है। इस वर्गकी एक भी औषधिका अधिक सेवन करनेसे वह भ्रम एवं विदाह उत्पन्न करता है।

कृतमाल (केवडा—सामातिका), करीर (वंशांकुर), हल्दी, इन्द्रयव, स्वादुकण्टक (भुइँकुम्हडा), वेतलता, बृहतीद्वय, शंखिनी (चारपुष्पी), गुडूची, द्रवन्ती (मूसाकर्णी), त्रिवृत् (निशोत), मण्डूकपर्णी (मजीठ), कारवेल्ल (करैला), वार्ताकु (बैंगन), करवीर (कनेर), वासा (अडूसा), रोहि॰

(कजा), शखचूर्ण (शखपुष्पी), कर्कोट (खेखसी), जयन्तिका (वैजयन्ती), जाती (चमेली), वारुणक (वरुण), निम्ब (नीम), ज्योतिष्मती (मालकँगनी) और पुनर्नवा नामक य सभी औषधियाँ तिक्त रसवाली हैं। इनका रस छदक, रोचक तथा जठराग्निदीपक है। यह शरीरका अन्तर एव बाह्य-शोधन करती है। इस रसक सेवनसे ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा तथा कण्ठके रोग विनष्ट हो जाते हैं। इस औषधिवर्गमसे किसी एक औषधिका अधिक सेवन करनेपर प्राणीम विष्ठा मूत्र स्वेद तथा शरीर-शुष्कताके विकार जन्म लेते हैं। यथोचित सेवन न करनेसे यह रस हनुस्तम्भ, आक्षेपक, पीडा, मस्तिष्क-शूल और व्रण आदिके भी उपद्रवोका कारण बन जाता है।

त्रिफला, सल्लकी (चीड), जामुन आमडा, बरगद तिन्दुक (तेंदू), वकुल (मौलसिरी) शाल पालङ्की (पालकी), मुद्ग (मूँग) और चिल्लक (बथुआ)-का रस कषाय, ग्राही, रोपी, स्तम्भन स्वेदन तथा शरीर-शोषक होता है। इनमसे किसी एकका अत्यधिक सवन करनपर वह हृदयमे पीडा, मुखशोष-ज्वर आध्मान तथा स्तम्भादिक रोगोका कारण भी हो जाता है।

हल्दी कुष्ठ सेंधा नमक, मपशृगि (मढासिगी), बला, अतिबला कच्छुरा (शूकशिम्बी), सल्लकी (चीड), पाठा (पाढा), पुनर्नवा, शतावरी, अग्निमन्थ (गनियारी), ब्रह्मदण्डी, श्वदंष्ट्रा (गोखरू), एरण्ड, यव (जौ), कोल (बेर) और कुलत्थ (कुलथी) आदि विशेष औषधियोका पृथक्-पृथक् रस एव दशमूलका क्वाथ पान करनेवाला मनुष्य अपने शरीरम उत्पन्न होनेवाले वातज एव पित्तज विकाराको विनष्ट करनेमे सफल रहता है।

शतावरी, विदारी, बालक (मोथा), उशीर (खस), चन्दन दूर्वा, वट, पिप्पली, बेर, सल्लकी केला, नीलकमल लालकमल, गूलर, पटोल (परवल), हल्दी, गुड तथा कुष्ठ—इन औषधियोका वर्ग कफ-विनाशक है।

शतपुष्पी (सोआ), जाती (चमेली), व्योष (सोठ पिप्पली, काली मिर्च), आरग्वध (अमलतास) लाङ्गली (कलियारी) और घृत-तेलादिसे सिद्ध होनेवाले अन्य स्नेहपाकोमे प्रशस्त माना गया है। बुद्धि स्मृति, मेद तथा अग्निवृद्धिके अभिलाषी जनोक लिये घृत लाभप्रद है। पैत्तिक विकार होनेपर मात्र घृत और वात-विकार होनेपर उसको सधादि नमकके साथ सेवन करना चाहिये। कफकी अत्यधिक विकृति होनपर रोगीको पिप्पली, सोठ, काली मिर्च और यवक्षार मिलाकर दिया गया घृत श्रेयस्कर होता है। यह घृत ग्रन्थिदोष, नाडी-विकार, कृमि, श्लेष्म, मेदा तथा वात-रोगस युक्त रोगियोको भी देना चाहिय।

तैल-पदार्थोंका सेवन शरीरको हल्का और कठोर बनानेक लिये करना चाहिये। यह कठोर कोष्ठकावाले प्राणियोके लिये लाभकारी होता है तथा वायु, धूप, जल, भार, मैथुन और व्यायामके कारण क्षीण हुई धातुओसे युक्त जनोके लिये उचित है। शरीरकी रूक्षता, कष्ट, वृद्धावस्था, जठराग्निदीपन तथा वातदोपसे घिरे हुए प्राणियोंको स्नेहयुक्त औषधि एव क्वाथोका प्रयोग करना चाहिय।

इसके बाद जब प्राणीके सिरम रोग हो गया हो तो चिकित्सा-शास्त्रके नियमानुसार सिरकी अपेक्षित शिराओके समूहको गर्म करके प्राणीको धीरे-धीरे सिरका मर्दन करना चाहिये। स्नेह, क्वाथ और वटिका आदिके रूपम प्रयुक्त औषधियोकी उत्तम, मध्यम तथा अधम—ये तीन मात्राएँ मानी गयी हैं, जिनमे उत्तम मात्रा एक पल अर्थात् आठ तोला (९६ ग्राम), मध्यम मात्रा तीन अक्ष अर्थात् छ तोला (७२ ग्राम) और अधम मात्रा अर्ध पल अर्थात् चार तोला (४८ ग्राम) होती है। घृतपाक-सेवनम गुनगुना तथा तैलपाक-सेवनम शीतल जलका प्रयोग होना चाहिये। स्नेह (सहरई) पित्तविकार तथा तृष्णाजन्य दोषम मनुष्यको गुनगुना जल पीना चाहिय।

शरीरम जठराग्निके प्रबल होनपर प्राणीको वातानुलोम, स्निग्धभाव होनेपर जठराग्निका दीपन, रूक्षभाववाली स्थितिके होनपर स्नेहन तथा अत्यधिक स्निग्धताके होनेपर रूक्षता उत्पन्न करनेका प्रयास करना चाहिये। साँवाँ, कोदो आदि रूक्ष अन्न तक्र, तिलकुट तथा सत्तूक अनपेक्षित प्रयोगसे वात तथा कफ-रोगम अथवा वात-रोगमे स्वेदन-क्रिया करनी चाहिये। किंतु अत्यन्त स्थूल, रूक्ष, दुर्बल और मूर्च्छित व्यक्तिम यह स्वेदन-क्रिया नहीं करनी चाहिये।

(अध्याय १७३)

ब्राह्मीघृत आदि स्नेहपाकोंकी निर्माण-विधि तथा विविध रोगोंमें उनका उपचार

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं रोगोंको दूर करनेवाले घृत और तैलादि पदार्थोंके विषयमें बताऊँगा, उसे आप सुनें।

शंखपुष्पी, वच, सोमा, ब्राह्मी, ब्रह्मसुवर्चला, अभया (हरीतकी), गुडूची (गिलोय), अटरूपक (अड़ूसा) तथा वागुजी (वकुची) नामक इन औषधियोंके रसको एक-एक अक्ष अर्थात् दो-दो तोला लेकर उनसे एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर घृतका पाक सिद्ध करना चाहिये। उसमें एक प्रस्थ कण्टकारीका रस, एक ही प्रस्थ दूधका मिश्रण भी करना चाहिये। इस घृतपाकका नाम ब्राह्मीघृत है। यह स्मरण और मेधा-शक्तिका अभिवर्धक होता है।

त्रिफला, चित्रक, बला, निर्गुण्डी (सिन्धुवार), नीम, वासक (अड़ूसा), पुनर्नवा, गुडूची, बृहती और शतावरी नामक इन औषधियोंके रससे सिद्ध घृतपाक सभी रोगोंका विनाशक है।

बलाके रससे बने हुए क्वाथमें आधा आढक अर्थात् दो सेर तिलका तेल पकाना चाहिये। इस क्वाथपाकके साथ मुलेठी, मजीठ, चन्दन, नीलकमल, लालकमल, छोटी इलायची, पिप्पली, कुष्ठ, दारचीनी, बड़ी एला (कपित्थकी छाल), अगरु, केसर, अश्वगन्धा तथा जीवन्तीका कल्क और एक आढक अर्थात् चार सेर दूध मिलाना चाहिये। इस पाकको अग्निकी धीमी आँचमें सिद्ध करके एक रजत-पात्रमें रखना चाहिये। यह तैलपाक समस्त वात तथा धातुरोगोंका नाशक है। इस तेलपाकके सेवनसे कफजन्य क्षयरोग भी विनष्ट हो जाता है। इसका नाम राजवल्लभ है।

एक प्रस्थ शतावरीका रस, एक प्रस्थ दूध, एक-एक कर्ष शतपुष्पी, देवदारु, जटामासी, शिलाजीत, बला, चन्दन, तगर, कुष्ठ, मैनसिल और मालकँगनी नामक औषधियोंका रस लेकर एक प्रस्थ घृतको अग्निपर सिद्ध करना चाहिये। इस घृतपाकके प्रयोगसे प्राणियोंका लँगड़ापन, बौनापन, लुंजता, बधिरता, व्यंगदोष और कुष्ठरोग विनष्ट हो जाता है। वायुदोषके कारण जिनका शरीर दुर्बल हो गया है, जो मैथुनमें अशक्त हैं, वृद्धावस्थाके कारण जो जर्जर शरीरवाले हो गये हैं, आध्मान नामक रोगके कुप्रभावसे जिनके मुख शुष्क हो गये हैं, उनके उन सभी विकारोंका यह घृत-पदार्थ विनाशक है। जिन प्राणियोंके चर्म, शिरा और स्नायु-तन्त्रिकाओंमें विकृत वायु-समूह प्रविष्ट होकर रोगका रूप धारण कर चुका है, वह सब इस सिद्ध तेलके सेवनसे नष्ट हो जाता है। इस तेलका नाम नारायणतेल है। इस रोगविनाशक तेलकी सिद्धिका विधान स्वयं भगवान् विष्णुने बताया था, इसीलिये इस सिद्ध तेलका नाम उन्हींके नामपर पड़ा है। इन्हीं औषधियोंसे पृथक्-पृथक् अथवा मिश्रण-रूपमें घृत एवं तैलपाक बनाना चाहिये।

शतावरी, गुडूची, चित्रक, बिजौरा नीबूका रस अथवा कण्टकारीके रसादिसे समन्वित निर्गुण्डीका रस या पुनर्नवा और चमेली अथवा त्रिफलाके साथ अड़ूसा या ब्राह्मी, एरण्ड, भृंगराज, कुष्ठ, मूसली, दशमूल और खदिरको घिसकर बनायी गयी वटी, वटिका, मोदक या चूर्ण सभी रोगोंको दूर करनेवाला है। घृत, मधु, जल, शर्करा, गुड, नमक तथा सोंठ, काली मिर्च अथवा पिप्पलीके साथ सेवन करनेसे सभी रोगोंमें यथोचित लाभ होता है। इन औषधियोंका योग सर्व-रोगविनाशक है।

चित्रक, मन्दार और निसोत अथवा अजवाइन तथा कनेर या सुधा (गुडूचा), बाला (चमेली), गणिका (गनियारी), सप्तपर्णी (छितवन), सुवर्चिका (पित्तपापड़ा) और ज्योतिष्मती (मालकँगनी) नामकी औषधियोंको एकत्र करके विद्वान्‌को उनका तैल पाक सिद्ध करना चाहिये। इस योगसे सिद्ध तेलका प्रयोग भगंदर-रोगमें करना चाहिये। शोधन, रोपण तथा सवर्णकारक चित्रकादिक जो महातेल हैं, वे सभी प्रकारके रोगोंका निवारण करते हैं।

अजमोदा, सिन्दूर, हरताल, हल्दी, दारुहल्दी, यवक्षार, छज्जी, समुद्रफेन, अदरक, सरलद्रव, इन्द्रायण, अपामार्ग, केला तथा तिन्दुकको समान भागमें लेकर सरसोंका तेल बकरीके मूत्र तथा गोदुग्धको मिलाकर मन्द-मन्द अग्निकी आँचपर पाक करना चाहिये। इस सिद्ध तैल पाकका नाम अजमोदादि-तेल है। यह गण्डमाला नामक रोगको दूर करता है। विद्वान् व्यक्तिको सबसे पहले इस गण्डमाला नामक रोगमें होनेवाली फुंसियोंको पकाना चाहिये। तदनन्तर उनका शोधन करके इसी अजमोदादि-तेलसे घावोंको भरते हुए उसमें कोमलता लानेका प्रयास करें। (अध्याय १७४)

ज्वर-चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे शंकर! सभी ज्वरोंमें सबसे पहला कार्य लंघन है। उसके बाद क्वाथ, उदकपान तथा वातशून्य स्थानका सेवन करना चाहिये।

हे ईश्वर! अग्निसे तथा स्वेदनकी क्रियाओंको करनेसे सभी ज्वर विनष्ट हो जाते हैं। गुडूची और मोथेका क्वाथ वातज्वर-विनाशक है। दुरालभा[1] अर्थात् धमासा नामक औषधिके घृतका पान करनेसे पित्त-ज्वर दूर होता है। सोंठ, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, बालक (होवेर) खस और चन्दनके क्वाथसे सिद्ध, पित्त-ज्वरका विनाश करता है। दुरालभा तथा सोंठसे सिद्ध घृत-मिश्रित क्वाथ कफ-ज्वरका नाशक है। बालक, सोंठ और पित्तपापड़ासे सभी ज्वर विनष्ट हो जाते हैं। चिरायता, एरण्ड, गुडूची, सोंठ, नागरमोथाके क्वाथसे पित्त-ज्वर दूर होता है। होवेर, खस, पाठा, कण्टकारी और नागरमोथाका क्वाथ ज्वरका विनाश करता है। देवदारुकी छालका क्वाथ भी लाभदायक है।

हे शंकर! मधुसहित धनिया, नीम, नागरमोथा, परवलकी पत्ती, गुडूची और त्रिफलाका क्वाथ समस्त ज्वरोंका विनाशक है। इसके सेवनसे रोगीकी क्षुधा बढ़ने लगती है एवं वायु-विकार दूर हो जाता है।

हरीतकी, पिप्पली, आँवला, चित्रक, धनिया, खस तथा पित्तपापड़ाका चूर्ण और क्वाथ दोनों ज्वरनाशक हैं। मधुके साथ आँवला, गुडूची तथा चन्दनका सेवन सभी ज्वर-रोगोंको दूर करनेवाला है।

अब आप संनिपातज ज्वरके विनाशक औषधियोंको सुनें।

हल्दी, नीम, त्रिफला, नागरमोथा, देवदारु, अदरक, चन्दन, परवलकी पत्तीका क्वाथ पीनेसे त्रिदोषजन्य अर्थात् संनिपातज ज्वर दूर हो जाता है।

कण्टकारी, सोंठ, गुडूची, कमल तथा नागबला नामक औषधियोंके योगसे बने चूर्णका सेवन करके रोगी श्वास और खाँसी आदिसे विमुक्त हो जाता है। कफ-वातज ज्वरसे ग्रसित रोगीको प्यास लगनेपर गर्म जल देना चाहिये। सोंठ, पित्तपापड़ा, खस, नागरमोथा तथा चन्दनसे सिद्ध क्वाथ शीतल जलके साथ देना चाहिये। यह तृष्णा, वमन, (पित्त) ज्वर और दाहसे ग्रस्त रोगीके लिये हितकारी है। बिल्व आदि पञ्चमूलका क्वाथ वातज ज्वरमें लाभ करता है। पिप्पलीमूल, गुडूची और सोंठका योग पाचक है। वात-ज्वर होनेपर इसका क्वाथ देना चाहिये। यह परम शान्ति देनेवाला है। मधुके सहित पित्तपापड़ा एवं नीमका क्वाथ पित्तज ज्वरका विनाश करता है।

समुचित उपचार करनेपर भी यदि रोगीकी चेतना नहीं लौटती तो उस रोगीके दोनों पैरके तलुओंमें अथवा मस्तक-भागमें लोहेके गर्म शलाकासे दाग(गर्म) करना चाहिये। चिरायता, पाढा, पित्तपापड़ा, विशाला (इन्द्रायण), त्रिफला तथा निसोतका क्वाथ दूधके साथ ग्राह्य है। यह मलावरोधका भेदन करनेवाला एवं समस्त ज्वरोंका विनाशक है। (अध्याय १७५)

पलितकेश तथा कर्णशूलके उपचार

श्रीभगवान्‌ने कहा—हाथी-दाँतका भस्म एवं बकरीके दूधमें मिश्रित रसाञ्जन (रसौत)-का लेप सिरपर करनेसे खल्वाट अर्थात् गंजे प्राणीके सिरमें सात रात्रियोंके बीतते-ही-बीतते सुन्दर बाल उग आते हैं। चार भाग भृंगराजरससे सिद्ध गुंजाफलके चूर्णयुक्त तिलका तेल केशराशिका अभिवृद्धिकारक होता है।

इलायची, जटामांसी, मुरा (शल्लकी), शिव (काला धतूरा), गुंजा (घुँघची)-को समभागमें लेकर उनसे बनाया गया लेप सिरमें लगानेसे इन्द्रलुप्त नामक रोग दूर हो जाता है। आमकी गुठलियोंके चूर्णका लेप करनेसे केश सूक्ष्म अर्थात् पतले हो जाते हैं। करंज, आँवला, इलायची और लोहका लेप बालोंकी लालिमाका विनाशक है।

१-च०सू० २५ भा०प्र० च०द०

आमके गुठलीकी मज्जा तथा आँवलाक चूर्णका सिरम लप करनेसे केशराशि जडसे मजबूत सघन लम्बी चिकनी तथा टूट-टूटकर न झरनेवाली हा जाती ह।

विडग और गन्धक अथवा चार गुन गामूत्रसे युक्त मेनसिलके चूर्णसे सिद्ध तेलपाक उत्तम माना गया हे। सिरम इन तेलोका लेप करनेसे जूँ और लीख समाप्त हो जाते हैं।

हे वृषभध्वज! शखभस्म आर सीसक घिसकर सिरम लगानेसे केश चिकने ओर अत्यन्त काले हो जाते हैं। भृगराज, लौहचूर्ण, त्रिफला, बिजौरा नीबू, नीली, कनेर और गुडको समान भागम लकर अग्निपर सिद्ध किया गया पाक एक महौपधि है। इसके लेपसे पक रहे बालोको पुन काला किया जा सकता है। आमकी गुठलियाकी गूदी, त्रिफला, नीली, भृगराज, शोधित पुराना लौहचूर्ण तथा काजीका सिद्ध योग भी बालाका काला करता है।

चक्रमर्दक (चकवड)-का बीज एव कुष्ठ एरण्डमूल तथा अत्यन्त खट्टे काजीके साथ पीसकर लप करनेसे मस्तकका राग दूर हा जाता है।

सधा नमक, वच, हींग, कुष्ठ, नागकेशर, शतपुष्पा (साफ) तथा देवदारु नामक औषधियासे शाधित चार गुने गायक गोबरसे निकाले गये रससे युक्त तिलके तेलको एक कण मात्र भी कानम डालकर अत्यन्त प्रबल कर्णशूलको विनष्ट किया जा सकता है। हे शिव! भेडका मूत्र और सेंधा नमक कानमे डालनेसे पूतिका-दोष अर्थात् बहनेवाला दुर्गन्धपूर्ण पानी आर कृमिस्रावादिका विकार विनष्ट हो जाता है। मालती नामक पुष्पकी पत्तियाका रस या गोमूत्र कानाम डालनेसे उनमसे बहनेवाला मवाद नष्ट हो जाता है।

कुष्ठ उडद काली मिर्च, तगर, मधु, पिप्पली, अपामार्ग, अश्वगन्धा बृहती, श्वेत सरसा, यव तिल और सेधा नमकका उबटन कल्याणकारी होता है। भल्लातक, बृहता एव अनारका छिलका तथा कटु तैलके लेपसे या इस उबटनके प्रयागसे लिग, बाहु, स्तन और श्रवणशक्तिकी वृद्धि होती है। (अध्याय १७६)

नेत्र, नाक, मुख, गला, अनिद्रा तथा पादरोग और शस्त्राघातादिजनित रोगोकी चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे शकर! मधुके सहित शोभनक वृक्षकी पत्तियाका रस आँखोम डालनेसे निश्चित हा नत्रका रोग नष्ट हो जाता है। तिल और चमेलीके अस्सी-अस्सी फूल नीम आँवला, सोठ पीपल तथा चौलाईके शाकको चावलके जलमे पीसकर उनकी वटी बनानी चाहिये। तदनन्तर छायाम सुखाकर मधुके साथ उसका नेत्राम अजन करना लाभकारी है। ऐसा करनेसे तिमिरादिक राग नष्ट हो जाते हैं। बहेडेके गुठलीकी गूदी शखनाभि मैनसिल नीमकी पत्ती एव काली मिर्चको बकरीक मूत्रम घिसकर अजन बनाना चाहिये। इस प्रकारका सिद्ध अजन नेत्राम हानेवाले पुष्प-दाप अर्थात् फुल्ला रतौंधी तिमिर-विकार तथा पटलरागको नष्ट कर देता है।

शखभस्म चार भाग मैनसिल दो भाग एव सधा नमक एक भाग जलम पीसकर बनायी और छायाम सुखायी गया वटीका नेत्राम अजन करनेसे तिमिर पटल तथा सूजन नष्ट हा जाता है। यह नेत्रारोगाकी महौषधि है। त्रिकटु त्रिफला कजाके फल सेधा नमक और दोनो रजनी हल्दी दारहल्दीको भृगराजके रसम पीसकर उसका नेत्रोमें अजन देनेसे तिमिरादिक सभी राग दूर हो जाते हैं। जगली अडूसाकी जडको काजीम पीसकर नेत्रामे लगानेसे नेत्रशूल नष्ट होता है। तक्र अथात् मट्ठेके साथ बेरकी जडको पीसकर पीनसे भी नेत्राकी पीडा दूर होती है। सधा नमक, कडुआ तल अपामार्गकी जड, दूध और काजीको ताम्रपात्रमें घिसकर उसका नेत्राम अजन करनेसे पिजट अर्थात् कीचड निकलना बद हो जाता है।

बिल्व और नील-वृक्षकी जड पीसकर बनाये गये अजनका नेत्राम लगाने मात्रसे तिमिरादिक रोग निश्चित हो नष्ट हो जाते हैं। पिप्पली तगर हल्दी आँवला वच और खदिरद्वारा बनायी गयी वत्तीका अजन लगानेसे नेत्ररोग नष्ट हाता है। जा मनुष्य नित्य प्रात मुँहर्म जल भरकर जलका

ही छींटा देकर नेत्रोंको धोता है, वह नेत्राके सभी रोगोस मुक्त हो जाता है।

श्वेत एरण्डकी जड एव पत्तियोके रससे सिद्ध बकरीके दूधके उष्णपाकक सकसे आँखाका वात-विकार दूर हो जाता है। चन्दन, सेधा नमक, पुराने पलाशका पत्र और हरीतकी पटल, कुसुम, नीलीका अजन चक्रिका (चकाचौंधी) नामक नेत्ररोगोका विनाशक है।

बकरीके मूत्रमे घिसी गयी गुजाकी जडका अजन तिमिररोगको दूर करता है। हे रुद्र! चाँदी, ताँबे तथा सोनकी शलाकाको हाथपर घिसकर नेत्रोमे उसका लगाया गया उबटन कामला नामक रोगका निवारक है। घोषाफल अर्थात् सौंफको सूँघने और सेवन करनेसे पीलिया नामक रोगका विनाश होता है।

दूवा, अनारपुष्प, लोध्र और हरीतकीका रस नासार्श तथा वातरक्तके दोषको दूर करता है। हे वृषध्वज! हे नीललोहित! जाङ्गलिक-मूल अर्थात् केवाँचकी जडको भली प्रकारस पीसकर उसका नस्य लनसे नासार्श-रोग नष्ट हो जाता है। हे रुद्र! गोघृत, सर्जरस (राल), धनिया, सेधा नमक, धतूर तथा गैरिकसे सिद्ध सिक्थ अर्थात् मोम तेलम मिलाकर ओठोपर लगानस आठोक घाव तथा ओठ फटनेका रोग दूर हो जाता है। चबाकर सेवन की जानेवाली चमेलीकी पत्तियाका रस भी मुखरोग-विनाशक है।

केसरके बीजाको खानस हिलनेवाले दाँत दृढ हो जाते हैं। मुस्तक (मोथा), कुष्ठ, इलायची मुलेठी, वालक और धनियाको चबानेसे मुखकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। कषाय द्रव्य या त्रिकटु अथवा तलयुक्त तिक्त शाकके नित्य भक्षणस भी मुखकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। इससे सभी प्रकारके दाँतोसे सम्बन्धित घाव भी नष्ट हो जात हैं। हे शिव! तेलमे सिद्ध काजीका कुल्ला करनसे अथवा उसको मुखम रखनस ताम्बूलके साथ खाये गये चूनेक प्रभावसे हुए घाव या अन्य व्याधियाका विनाश हा जाता है।

साठको चबानसे जिस प्रकार प्राणी कफक रोगसे मुक्ति प्राप्त कर लता है, उसी प्रकार बिजौरा नीबूके बीज, इलायची मुलेठी, पिप्पली और चमेलीकी पत्तियाका चूर्ण (शहदम) चाटनस भी कफ-विकारसे मुक्ति मिल जाती है। शेफालिका (सिन्धुवार) तथा जटामासीका चूर्ण चबानेसे गलशुण्डि अर्थात् तालुभागकी शोथका विनाश होता है।

गुजा अर्थात् घुँघचीकी जडको चबानेसे दाँतम लगे हुए कीडाका विनाश होता है। हे शिव! मधुसहित काकजघा (घुँघची), स्नुही (सेहुड) और नीलका क्वाथ, दन्ताक्रान्त (दन्ताघात) तथा दाँतके कीट-रोगाका विनाशक है।

कर्कटपाद (कमलकी जड)-से सिद्ध घृतपाकका मजन करनेसे दाँतोकी कटकटाहट दूर हो जाती है। हे शिव! कर्कटपादका दूधके साथ लेप करनेसे भी इस रोगका विनाश हो जाता है। ज्यातिष्मती (मालकँगनी)-के फलोको जलमे पीसकर उसके द्वारा तीन सप्ताहतक कुल्ला करनस भी इस रोगमे लाभ होता है। विदारीकन्द और हरीतकीके चूर्णका मजन करनेसे दाँतोका कालापन विनष्ट होता है।

लोध्र, कुकुम, मजीठ, अगर, लालचन्दन, यव, चावल तथा मुलेठीको जलम पीसकर तैयार किया गया मुखलेप स्त्रियोके मुखको शोभा-सम्पन्न बनाता है। दो प्रस्थ बकरीका दूध, एक प्रस्थ तिलका तेल, एक-एक कर्ष रक्तचन्दन, मजिष्ठ, लाक्षा-रस, मधुयष्टी और कुकुमसे सिद्ध लेपपाक एक सप्ताहके अन्तगत ही मुखकी शोभाको बढा देता है।

साठ, पिप्पली-चूर्ण, गुडूची और कण्टकारीके क्वाथका पान करनेसे जठराग्नि तीव्र हो जाती है। हे महादेव! कजा, पित्तपापडा, बृहती (भटकटैया), अदरक, हरीतकी तथा गोखरूके द्वारा सिद्ध क्वाथ पीनेसे थकान दूर हा जाती है एव दाह पित्त-ज्वर, शारीरिक शुष्कता और मूर्च्छा-दोष भी विनष्ट हो जाते हैं।

मधु, घृत पिप्पली-चूर्ण एव दूधमे युक्त क्वाथका पान हृदयरोग, खाँसी तथा विषमज्वरका विनाशक होता है।

हे वृषध्वज! सामान्यत क्वाथ तथा औषधियोकी अनुपान-मात्रा आधा कर्ष अर्थात् एक तोला है। विशेष रूपसे रोगीकी आयुके अनुसार उसके परिमाणपर विचार करना चाहिय।

गौके गाबरसे रस निकालकर दूधक साथ पान करनेसे विषमज्वर दूर हो जाता है। काकजघा (घुँघची)-का रस

भी इस ज्वरका नाशक है। साठके चूर्णसे युक्त बकरीके दूधका क्वाथ विषम ज्वरको दूर कर देता है।

मुलेठी, खस, सेधा नमक तथा भटकटैयाका फल पीसकर उसका नस्य देनेसे पुरुषको नींद आने लगती है। हे शिव! काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर मधुका नस्य लेनेसे भी प्राणीको नींद आ जाती है। काकजघा (कालाहिस्रा)-की जड मस्तकपर लेप करके भी निद्राको लाया जा सकता है। काजी तथा धूना नामक वृक्षके गादसे सिद्ध तैलपाकको शीतल जलमे मिलाकर सिरपर लेप करनेसे सिर-सताप दूर हो जाता है। यह रक्तदोषज ज्वर और दाहसे उत्पन्न होनेवाले सतापको भी दूर करता है।

शिलाजीत, शैवाल, मन्था (मेथी), साठ, पाषाणभेदी (पथरचट्टा), सहिजन, गोखरू, वरुण और सौभञ्जनकी जड—इन सबको एकत्र करके बनाया गया जल या क्वाथ हींग तथा यवक्षारके सहित पान करनेसे वातरोगका विनाश होता है।

हे शिव! पिप्पली, पिप्पलीमूल तथा भिलावेका जल या क्वाथ भली प्रकारसे शूलरोगको दूर करनेका श्रेष्ठतम योग है।

अश्वगन्धा तथा मूलीके रससे शोधित वामीकी जो मिट्टी हाती है, उसको रगडनेसे दाद और ऊरुस्तम्भ नामक रोग शान्त हो जाते हैं।

बृहतीमूल अर्थात् भटकटैयाकी जडको पानीमे पीसकर पीनेसे सघातवात नष्ट होता है। अदरक और तगरकी जडको पीसकर मट्ठेके साथ पीनेसे झिझिनी अर्थात् झुझबाईका रोग वैसे ही नष्ट होता है, जैसे वज्रके प्रभावसे वृक्ष धराशायी हो जाता है।

अस्थिसहारक हरजोड अर्थात् ग्रन्थिमान् नामक लताकी जडको भातके साथ खानेसे अथवा जटामासीके रसके साथ पान करनेसे वातरोग तथा अस्थिभगके दोष विनष्ट हा जाते हैं। बकरीके दूध और घृत-मिश्रित सत्तूका लेप दोनो पैरके तलुआमे करनेसे जलन समाप्त हो जाती है। मधु, घृत मोम गुड गैरिक गुग्गुल और रालका रस पैरामे लेप करनेसे उनका फटना तथा जलना बद हो जाता है।

हे वृषध्वज! सरसोके तेलको पैराम लेपकर निर्धूम अग्निमे जो मनुष्य सेकता है, उसका पकिल—मिट्टी खाया हुआ अर्थात् कीचडमे अधिक देरतक रहनेसे दूषित हुआ या उसके समान अन्य किसी कारणसे विकृत हुआ पैर खुजलाहट आदि विकारासे रहित हो जाता है।

सर्जरस, मोम, जीरा और हरीतिकीसे शोधित घृतपाकका अभ्यङ्ग करनेसे अग्निमे जलनेसे उत्पन्न हुई पीडा शान्त हो जाती है। तिलका तेल अग्निम जलाकर भस्म किये गये यवको प्रचुर मात्राम बार-बार मिलाकर लेप करनेसे अग्निमे जलनेके कारण उत्पन्न हुए घाव ठीक हो जाते हैं। भैंसके दूधका मक्खन, अग्निमे भूने गये तिलका चूर्ण और भिलावाका रस मिलाकर तैयार किया गया लेप घावको ठीक करता है। इसका नस्य एव लेप करनेसे हृदय-शूल भी शान्त हो जाता है।

हे हर! दण्ड-प्रहार आदिके कारण शरीरमे उत्पन्न घाव कर्पूर और गोघृत परस्पर मिलाकर भरनेसे ठीक हो जाता है। हे शिव! शस्त्रोके प्रहारसे होनेवाले घावपर इस औषधिका प्रयोग करके उसे स्वच्छ सफेद कपडेसे बाँध देना चाहिये। हे वृषध्वज! इस प्रकारके घाव जब पक रहे हो या उनमे पीडा होती हो तो उन्हे हाथका स्पर्श देना (सहलाना) चाहिये। आम्रकी जडका रस और घृत भरनेसे भी शस्त्राघातका घाव भर जाता है। शरपुखा (शरफोका), लज्जालुका (लाजवन्ती) और पाठा (पाढा) नामक औषधियाकी जडको जलमे पीसकर उसका लेप लगानेसे भी शस्त्राघातजनित व्रण ठीक हो जाता है। काकजघाकी जडको पीसकर शस्त्राघातके घावमे भरनेसे वह घाव तीन रात्रियोके बीतते ही सूख जाता है। रोहितक नामक या रोहडाकी जडका लेप भी व्रणको नष्ट कर देता है।

लाठी आदिके प्रहारसे उत्पन्न होनेवाली पीडा जल एव तिलके तेलमे सिद्ध अपामार्गकी जडका लेप लगानेसे तथा आगपर सकनेसे शान्त हो जाती है।

हे शकर! हरीतकी साठ और सेधा नमक पीसकर जलके साथ खानेसे अजीर्ण रोगका विनाश होता है।

निम्बमूल अर्थात् नीमकी जडको कमरम बाँधनेपर नेत्रोकी पीडा दूर हो जाती है। शण (पटसन)-की जड

और पानका भस्म इन्द्रियजन्य विकारका विनाशक है। यवादिक अन्न, हल्दी, सफेद सरसोकी जड और बिजौरा नीबूके बीज समान भागमे पीसकर इनका उबटन बनाना चाहिये। सात दिनोतक शरीरमे इसका प्रयोग करनेसे रग गोरा हो जाता है।

श्वेत अपराजिताकी पत्ती तथा नीमकी पत्तीका रस निकालकर उसका नस्य देनेसे डाकिनी आदि माताओ और ब्रह्मराक्षसाकी छायासे मुक्ति हो जाती है। हे वृषध्वज! मधुसार अर्थात् मुलेठीकी जडका नस्य देनेसे भी उनकी छाया दूर हो जाती है।

हे रुद्र! पिप्पली, लौहचूर्ण, साठ, आँवला, सेधा नमक, मधु तथा शर्कराका समान योग गूलरके फलके बराबरकी मात्राम एक सप्ताहपर्यन्त सेवन करनेसे पुरुप बलवान् हो जाता है। यदि वह सदैव इसका सवन करे तो दो सौ वर्षतक जीवित रहता है।

भल्लूकीके दूधसे भावित रोहित मछलीके मासद्वारा सिद्ध तेलपाकका अभ्यङ्ग करनेसे शरीरमे स्थित समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

चन्दनके जलका नस्य लनेसे शरीरके गिरे हुए रोम पुन निकल आते हैं।

हस्त नक्षत्रम लाङ्गलिकाकन्द अर्थात् कलियारी या जलपिप्पलीकी जडको लेकर जो व्यक्ति उसका लेप शरीरमे लगाता है, वह बुढोतीके दर्पको नष्ट कर देता है अर्थात् शरीरमे वृद्धावस्थाका प्रभाव नहीं पडता।

पुष्य नक्षत्रम सुदर्शना (चक्रागी या वृषकर्णी) नामक लताकी जडको लाकर घरके मध्य डाल देनेसे सर्प घरसे भाग जाते हैं। हे शिव! रविवारको लायी गयी मन्दारवृक्ष तथा अग्निज्वलिता (जलपिप्पली)-की जडको पीसकर बनायी गयी बत्ती, सरसोके तेलसे जलानेपर मार्गमे दश-प्रहार करनेवाले सर्पका विनाश करती है।

विफला (केतकी) और अर्जुनके पुष्प, भिलावा, शिरीप, लाक्षारस, राल, विड और गुग्गुल—इन सभीके द्वारा बना धूप मक्खियो तथा मच्छरोका नाश करता ह।

(अध्याय १७७)

गर्भ-सम्बन्धी रोग, दन्त तथा कर्णशूल एव रोमशमन आदिका उपचार

श्रीहरिने कहा—हे शिव! मुलेठी तथा कण्टकारी नामक औषधियोको समभागमे लेकर गोदुग्धमे पाक तैयार करके दूधका चौथा भाग शेप रहनेपर उस पाकको गरम जलके साथ पान करनेपर स्त्रीको गर्भ रुक जाता है। बिजौरा नीबूके बीजोको दूधके साथ भावित करके उसका पान करनेसे स्त्रीको गर्भ रुकता है। पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छुक स्त्रियाको बिजौरा नीबूके बीज तथा एरण्ड-वृक्षकी जडको घीके साथ सयोजित करके उसका सेवन करना चाहिये। अश्वगन्धाके क्वाथका दूध एव घीके साथ सेवन पुत्रकारक है। पलाशके बीजाको मधुके साथ पीसकर पान करनेसे रजस्वला स्त्री मासिक धर्म तथा गर्भधारणसे रहित हो जाती है।

हरिताल, यवक्षार, पत्राङ्ग (तेजपत्ता), लाल चन्दन, जातिफल (जायफल) हींग तथा लाक्षारसका पाक तैयार करके उसे दाँतोम भलीभाँति लगाना चाहिये। किंतु उससे पहले हरीतकीके क्वाथसे दाँताको साफ कर ले। ऐसा करनेसे मनुष्यके लाल पड गय दाँत भी सफद हो जाते हैं।

मन्द-मन्द आँचपर मूलीके रसको पकाकर उसको कानमे डालनेसे कर्णस्राव अर्थात् कानका बहना बद हो जाता है। अर्कके पत्तोको लकर मन्द-मन्द आँचपर गरम कर ले। तदनन्तर उसका रस निचोडकर कानाम डाले तो कर्णशूल विनष्ट हो जाता है।

प्रियगु, मुलेठी, आँवला, कमल, मजीठ, लोध्र, लाक्षारस और कपित्थ-रससे बने तैलपाकस स्त्रियोका योनि-दोप दूर हो जाता है। सूखी मूली तथा सोठका क्षार और हींग ता इस रोगके लिये महोपधि है। सोया (वनसौंफ), वचा (वच), कूट, हल्दी, महिजन, रसाञ्जन, काला नमक, यवक्षार, सर्जक (तालवृक्षका रस), सेंधा नमक पिप्पली, विडग तथा मोथा—इन सभी औषधियाका समान भागम लकर उनसे चार गुना मधु, बिजौरा नीबू और केलाका रस एकत्र करे। तदनन्तर इन सभी औषधियाको एकम मिलाकर उनसे तिलके तेलकी सिद्धि करे। इस प्रकार तैयार किये गये पाकके प्रयोगसे निश्चित ही स्त्रियाका स्रावादिक रोग दूर हो जाता है, इसमे सदह नहीं।

सरसाका तेल कानम डालनेसे उसके अदर उत्पन्न हुए

कृमि नष्ट हो जाते हैं। हे रुद्र! हल्दी, नीमकी पत्तियाँ, पिप्पली, काली मिर्च, विडगभद्र, माथा और साठ—इन सात औपधियाको गामूत्रके साथ पीसकर वटी बना लना चाहिये। इसकी एक वटी अजीर्ण और दो वटी विपूचिका (हैजा) नामक रोगको दूर करती है। मधुक साथ इसको घिसकर नेत्रोम लगानेसे पटोल अर्थात् परवलके समान आयी हुई सूजन दूर हा जाती है। गोमूत्रके साथ प्रयुक्त होनेपर अर्बुद (कैंसर) नामक रोगका नाश करती है। यह शकरी वटी नेत्राके सभी रोग दूर करती है।

वच, जटामासी, बिल्व, तगर, पद्मकेसर, नागकेसर और प्रियगुको समान भागम लेकर उनका चूर्ण बना लेना चाहिये। इस चूर्णका धूप लेनेसे मनुष्य रूप-सौन्दर्यसे समन्वित हो जाता है।

अर्जुन-वृक्षके फूल, भिलावा विडग, बला, राल, सौवीर और मरसाके योगसे तैयार धूप सर्प, जुएँ, मक्खी तथा मच्छराको विनष्ट करता है।

श्रीहरिने पुन कहा—हे शिव! ताम्बूल, घृत मधु तथा नमकको गोदुग्धके साथ ताम्रपात्रमे घिसकर सिद्ध किया गया अञ्जन नेत्रपीडाको दूर करनेका उत्तम याग है। खाँसी श्वास तथा हिचकीका विकार हानेपर हरीतकी, वच, कूट, त्रिकटु अर्थात् विश्वा उपकल्या मरिच हींग और मैनसिल-चूर्णको मधु तथा घृतमे मिलाकर चाटना चाहिये।

पिप्पली और त्रिफलाके चूर्णका मधुके साथ चाटनेसे भयकर पीनस, खाँसी और श्वासके विकार नष्ट हो जाते हैं। ह वृषध्वज! मूलसहित चित्रक तथा पिप्पलाक चूर्णको मधुम मिलाकर चाटना चाहिये। यह श्वास, खाँसी और हिचकीका नष्ट कर देता है।

चावलक जलम समान भागमे पिसा हुआ नीलकमल, शर्करा, मधु तथा रक्तकमलका याग रक्तविकारको शान्त करता है।

साठ, शर्करा और मधु मिलाकर बनायी गयी गुटिका खानमात्रसे मनुष्यका स्वर कोयलक समान हो जाता है।

हरिताल, शखचूर्ण, केलेके पत्तेका भस्म—इनका उबटन लगानेसे बाल गिर जाते हैं। लवण, हरिताल, लौकी और लाक्षारसस युक्त उबटन भी रोम गिरानेका उत्तम योग है। सुधा, हरिताल शखभस्म तथा मैनसिलको सेधा नमक एव बकरक मूत्रम मिलाकर पीसकर और उसी क्षण उसमे उबटन करनेसे रोम गिर जाते हैं। यह उत्तम औषधि है।

शख, आँवलेकी पत्तियाँ और धातकीक पुष्पाको दूधके साथ पीसकर उसे डेढ सप्ताहतक मुखमे रखनेसे दाँत चिकने, सफेद तथा स्वच्छ और कान्तिस युक्त हो जाते हैं। (अध्याय १७८—१८१)

भोज्य पदार्थोका विहित सेवनकाल, बल-बुद्धिवर्धक औषधियाँ तथा विषदोषशमनके उपाय

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! प्राय शरद, ग्रीष्म और वसन्त-ऋतुमे दहीका उपभोग निन्दनीय है तथा हेमन्त, शिशिर एव वर्षा-ऋतुम दही प्रशस्त होता है—

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम्।
हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते॥
(१८२।१)

भोजन करनेके पश्चात् नवनीत (मक्खन)-के साथ शर्कराका पान करना बुद्धिकारक होता है। हे शिव! यदि पुरुष एक पल पुराना गुड प्रतिदिन (भोजन करनेके पश्चात्) खाता रहे ता वह बलवान् होकर अनक स्त्रियासे सम्पर्क करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेता है।

कुष्ठ (कूट)-को भलीभाँति चूर्ण करके घृत और मधुके साथ सोनेके समय खानसे बलीपलित दूर हो जाता है। अलसी उडद गेहूँ तथा पिप्पलीका चूर्ण घृतके साथ शरीरम लगानेसे मनुष्य कामदवक सदृश सौन्दर्यसम्पन्न हो जाता है।

यव, तिल अश्वगन्धा मूसली सरला (काली तुलसी) और गुडको परस्पर मिलाकर बनायी गयी वटी खानेसे मनुष्य तरुण तथा बलवान् हो जाता है। हींग काला नमक और साठका काढा बनाकर पीनेसे परिणाम नामक शूल और अजीर्ण रोग विनष्ट हो जाता है। धातकी (धवका फूल) तथा सोमराजी (औपधि) गोदुग्धके साथ पीसकर पान करनेसे दुर्बल मनुष्य भी मोटा हो जाता है। शक्ति चाहनेवाल प्राणीको शर्करा तथा मधुके साथ मक्खन खाना चाहिये। क्षयरोगसे पीडित व्यक्तिका दुग्धपान पुष्ट तथा बुद्धिको अत्यधिक प्रखर बना सकता है। गादुग्धके

साथ पान किया गया कुलीरका चूर्ण क्षयरोगको विनष्ट करता है।

भिलावा, विडग, यवक्षार, सेधा नमक, मैनसिल तथा शखचूर्णको तेलम पकाकर अनपेक्षित रोमसमूहाको हटानेके लिये उसका प्रयोग करना चाहिये।

मुण्डीत्वक् (गोरखमुण्डी), वच, मोथा, काली मिर्च तथा तगरको एक साथ चबाकर मनुष्य तत्काल ही जिह्वासे अग्निको चाट सकता है। गोरोचन, भृगराजका चूर्ण एव घृत समान मात्राम मिलाकर जलस्तम्भन किया जा सकता है।

हे महेश्वर! यष्टि-मधु (मुलेठी) एक पल, उष्ण जलके साथ पान करनेसे विष्टम्भिका तथा हृदयशूल नामक रोग नष्ट हो जाता है।

हे रुद्र! 'ॐ हू ज 'यह मन्त्र सभी प्रकारके बिच्छुआका विष नष्ट करता है। पिप्पली, मक्खन शृगवेर, सधा नमक, कालीमिर्च, दही और कूटका नस्य लेने तथा उसका पान करनेपर विषदोषको दूर करता है। हे शिव! त्रिफला, अदरक, कूट और चन्दनको घृतमे मिलाकर पान करने और लेप करनेसे बिच्छूका विष विनष्ट होता है। हे वृषभध्वज! सधा नमक और त्रिकटुके चूर्णको दही, मधु तथा घृतम मिलाकर लेप करनेसे यह बिच्छूके विषको दूर कर देता है।

हे रुद्र! ब्रह्मदण्डी और तिलका क्वाथ बनाकर उसके साथ त्रिकटु (सोठ, पिप्पली तथा काली मिर्च) का चूर्ण पान करना चाहिये। यह सभी प्रकारके गुल्म एव ऋतुकालीन अवरुद्ध रक्त-विकारका विनाशक है। मधु मिलाकर दूधका पान करनेसे रक्तस्रावके विकारको दूर किया जा सकता है। जगली अडूसेकी जडको पीसकर प्रसवकालमे स्त्रीके नाभि एव गुह्यभागम लेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है।

हे वृषध्वज! चावलके पानीम शर्करा और मधु मिलाकर पान करनेसे रक्तातिसार नामक रोग शान्त हो जाता है। (अध्याय १८२)

ग्रहणी, अतिसार, अग्निमान्द्य, छर्दि तथा अर्श आदि रोगोका उपचार

श्रीहरिने कहा—हे चन्द्रचूड! काली मिर्च, शृगवेर और कुटजकी छालका पान करनेसे ग्रहणीरोग नष्ट होता है। पिप्पली, पिप्पलीमूल, काली मिर्च, तगर, वच, देवदारुका रस और पाठाको दूधके साथ पीसकर सेवन करनेसे निश्चित ही अतिसाररोग विनष्ट हो जाता है।

काली मिर्च तथा तिलके पुष्पाका अञ्जन कामलारोगका विनाशक है। हरीतकी और गुडको बराबर मात्रामे मधुके साथ मिलाकर खाना चाहिये। हे रुद्र! निस्सदेह यह विरेचनकारी होता है। त्रिफला, चित्रक, चित्र, कटुकरोहिणीका योग ऊरुस्तम्भ रोगका अपहारक है और यह विरेचनकी भी उत्तम औषधि है। हरीतकी, शृगवेर, देवदारु, चन्दन, अपामार्ग (चिचडा)-की जडको बकरीके दूधम पकाकर पान करके ऊरुस्तम्भका विनाश किया जा सकता है अथवा जयन्ती (विष्णुक्रान्ता)-की जडका क्वाथ पीनेसे भी यह रोग सात दिनम दूर हो जाता है।

अनन्ता (धमासा) और शृगवेरका समान भागमे चूर्ण बनाकर बराबर मात्रामे ही गुग्गुल और गुड मिला ले, तदनन्तर उसकी गोलियाँ बनाकर सेवन करनेसे स्नायुगत वायुविकार तथा अग्निमान्द्य रोग विनष्ट हो जाता है।

पुष्य नक्षत्रमे डठल एव पत्तियो-सहित शखपुष्पीको उखाडकर बकरीके दूधके साथ पीनेसे अपस्मार (मिर्गी)-का रोग दूर होता है। समभागमे अश्वगन्धा तथा हरीतकीके चूर्णको जलके साथ पीनेसे निश्चित ही रक्त-पित्त-विकारका विनाश होता है। हरीतकी और कूटका चूर्ण बनाकर उसको मुखम रखना चाहिये। पश्चात् शीतल जल पीनेसे सभी प्रकारके छर्दि रोग अर्थात् वमन दूर हो जाते हैं। गुडूची, पद्मकारिष्ट और नीम, धनिया तथा रक्तचन्दन नामक औषधियोका योग पित्तश्लेष्मक ज्वर, छर्दि, दाह और तृष्णाके विकारका विनाशक एव अग्निवर्धक है, किंतु इन औषधियोका प्रयोग 'ॐ हु नम ' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रण करनेके पश्चात् करना चाहिये—

ॐ जम्भिनी स्तम्भिनी मोहय सर्वव्याधीन् मे वज्रेण ठ ठ सर्वव्याधीन् मे वज्रेण फट्॥ (१८३। १२)

उपर्युक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित शखपुष्पीको कानम बाँधनेसे ज्वरको दूर किया जा सकता है। हे रुद्र! इसी मन्त्रसे १०८ बार जप करके अभिमन्त्रित शखपुष्पीको रोगीके हाथमे रखकर वैद्य उसके नाखूनोका स्पर्श करे तो चौथिया ज्वर अथवा अन्य सभी प्रकारके ज्वर विनष्ट हो जाते हैं।

जामुनका फल, हल्दी तथा साँपकी कचुलका धूप

सभी प्रकारके ज्वरोका विनाशक है। यह धूप तो चौथिया ज्वरका भी विनाश कर देता है।

करवीर (कनेर), भृगराज, नमक, कूट और कर्कट (काकडा सींगी) नामक औषधियाको समान भागमे लेकर चौगुने गोमूत्रके साथ तैलपाक सिद्ध करना चाहिये। इस तेलका अभ्यङ्ग पामा, विचर्चिका तथा कुष्ठरोगके व्रणाको दूर कर देता है।

हे रुद्र! पिप्पली और मधुका सेवन करने एव मधुर भोजन करने तथा सूरणके सेवनसे प्लीहा रोग विनष्ट हो जाता है।

गोमूत्रके साथ पिप्पली और हल्दीका चूर्ण मिलाक उसको गुदाद्वारमे डालनेसे अर्श रोग दूर किया ज सकता है।

बकरीका दूध और अदरकका चूर्ण मिलाकर पा करनेसे प्लीहा आदि रोग विनष्ट हो जाते हैं। सेधा नमक, विडग, सोमलता, सरसा, हल्दी, दारुहल्दी, विष औ नीमकी पत्तीको गोमूत्रके साथ पीस लेना चाहिये। इसका लेप करनेसे कुष्ठरोगका विनाश होता है। (अध्याय १८३)

सिध्म, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, अजीर्ण तथा गण्डमाला आदि रोगोकी औषधियाँ

श्रीहरिने कहा—[हे चन्द्रचूड] हल्दी और केलेक क्षारका लेप सिध्मरोगका विनाशक है। एक भाग कूट तथा दो भाग हरीतकीका चूर्ण उष्ण जलके साथ पान करनेसे कमरका शूल रोग दूर हो जाता है। हरीतकी, शर्करा और पिप्पलीका चूर्ण नवनीतके साथ सेवन करनेसे वह अर्श-रोगका विनाश करता है। जगली अड़ूसेके पत्ताको घीमे मन्द-मन्द आँचपर पकाकर उसका लेप करना अर्शरोग दूर करनेकी श्रेष्ठतम औषधि है।

गुग्गुल और त्रिफलाका चूर्ण पानकर भगदर रोगको विनष्ट किया जा सकता है। जीरा, अदरक, दही तथा चावलके माँडको अग्निम पकाकर नमकके साथ सेवन करना चाहिये। इससे मूत्रकृच्छ्र नामक रोग दूर हाता है। यवक्षार तथा शर्करा भी मूत्रकृच्छ्र-रोगको दूर करता है।

तिलके तेलम यवको जलाकर उसकी कज्जली बनानी चाहिये। उसके बाद तिलके ही तेलमे उसको मिलाकर अग्निसे जले हुए स्थानपर लेप करनेसे लाभ होता है। घीके सहित लाजवन्ती तथा शरपुखाकी पत्तियाका तैयार किया गया लेप भी अग्निजन्य पीडाको दूर करता है। निम्न मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके इस लेपका प्रयोग करना चाहिये—

ॐ नमो भगवते ठ ठ छिन्धि छिन्धि ज्वलन प्रज्वलित नाशय नाशय हु फट्॥ (१८४। ८)

हाथम निर्गुण्डीकी जड बाँधनेसे ज्वर बहुत ही शीघ्र दूर हो जाता है। श्वेत गुञ्जाफलको सात खण्ड बनाकर उसको हाथमे बाँध लेनेसे अर्श रोग निश्चित ही विनष्ट हो जाता है। विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) तथा बकरीके मूत्रका प्रयोग करके चार और व्याघ्रादि हिसक जीवोके प्रहारसे प्राणी अपनी रक्षा कर सकता है। ब्रह्मदण्डीकी जड तो सभी कर्मोमे सिद्धि प्रदान करनेवाली है।

घृतके साथ सिद्ध त्रिफलाका चूर्ण कुष्ठविनाशक है। पुनर्नवा, बिल्व और पिप्पलीके चूर्णसे सिद्ध घृतके द्वारा हिचकी, श्वास तथा खाँसीको दूर किया जा सकता है। इस घृतका पान स्त्रियोके लिये गर्भकारक होता है।

दूध और घीके साथ वानरी बीज (केवाँच)-को पकाकर घी तथा शर्करामे मिलाकर सेवन करनेसे वीर्य कभी नष्ट नहीं होता।

मधु, घृत तथा दुग्धका पान बलीपलित नामक रोगको दूर करता है।

हे शिव! मधु, घृत, गुड, करेलेका रस और ताँबेको एक साथ अग्निमे पकानेपर चाँदी बन जाता है। अब आप सोना बनानेकी विधि सुने।

पीले धतूरका पुष्प और सीसा एक पल तथा लाङ्गलिका (करियारी)-की शाखाको एक साथ मिलाकर अग्निमे पकानेपर सोना बन जाता है।

हे हर! धतूरके बीजोसे निकाले गये तेलद्वारा प्रज्वलित दीपकके प्रकाशमे समाधिस्थ व्यक्तिको देवता भी नहीं दख पाते।

हे शिव! मनुष्यको मदमस्त हाथीके दोना नेत्रोंमें अपने हाथसे काजल लगाना चाहिये। ऐसा करनेपर वह व्यक्ति युद्धमे विजय प्राप्त करता है और महाबलवान् भी बन जाता है।

डुण्डुभ नामक सर्पके दाँतको मुखमें रखकर मनुष्य

जलके बीच भी पृथ्वीके समान ही किसी अन्य विकल्पका आश्रय लिये बिना रह सकता है।

लौहचूर्ण और मट्ठा पान करनेसे पाण्डुरोगका शमन हो जाता है। तण्डुलीयक (चौराई) तथा गोखरूकी जडको दूधमे मिलाकर पान करनेसे कामला एव मुखरोगका विनाश होता है। चमेली और बेरकी जडको मट्ठेके साथ पीनेसे अजीर्ण रोग दूर होता है।

कुशकी जड, वानरीमूल, वकुची तथा काजीका मिश्रित योग दाँतोके रोगका विनाशक है। इन्द्रवारुणीकी जडको जलके साथ पीनेसे विषादि-दोष नष्ट होते हैं। हे शिव! चम्पाकी जडको पान करनेसे भी उक्त दोष दूर हो सकते हैं। काजीके साथ गुञ्जा (घुँघची)-का चूर्ण मस्तकपर लेप करनेसे सिरका रोग विनष्ट हो जाता है।

बला, अतिबला, मधुयष्टि, शर्करा तथा मधुका पान करके वध्या स्त्री गर्भ-धारण करनेमे समर्थ हो जाती है। इसमे विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

श्वेत अपराजिताकी जड, पिप्पली और सोठका पिसा हुआ लेप सिरमे लगानेसे शूल नष्ट हो जाता है। निर्गुण्डीकी फुनगीको पीसकर पान करनेसे गण्डमाला नामक रोग दूर हो जाता है।

केतकीके पत्तोका क्षार गुडके साथ अथवा मट्ठेके साथ शरपुखाका सेवन करनेसे प्लीहा रोग विनष्ट हो जाता है।

बिजौरा नीबूका निर्यास (गोद), गुड और घीके साथ मिलाकर पान करनेसे वात-पित्तजनित शूल दूर होता है। सोठ, काला नमक तथा हींगका पान हृदयरोगका विनाशक है। (अध्याय १८४)

गणपतिमन्त्रका औषधिक योग तथा शोथ, अजीर्ण, विषूचिका और पीनस आदि विविध रोगोके उपचार

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! 'ॐ ग गणपतये नम' भगवान् गणेशका यह मन्त्र धन और विद्या प्रदान करनेवाला है। इस मन्त्रका एक हजार आठ बार जप करनेके बाद अपनी शिखाको बाँधनेवाला व्यक्ति वाद-विवादके व्यवहारमे विजय प्राप्त करता है। एक सौ बार इस मन्त्रका जप करनेवाला प्राणी अन्य लोगोका प्रिय बन जाता है।

काले तिलोको घृतमें मिलाकर इस मन्त्रसे एक हजार आठ आहुतियाँ देनेसे मात्र तीन दिनम राजा वशमे हो जाता है। अष्टमी और चतुर्दशी तिथिको उपवास रखकर मनुष्य यदि विधिवत् विघ्नराज गणेशका पूजन करे और तिल तथा अक्षतको मिलाकर एक हजार आठ बार उन्हे आहुति प्रदान करे तो वह युद्धमे अपराजित होता है और सभी लोग उसकी सेवा करते हैं। उपर्युक्त मन्त्रका एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार जप करके अपनी शिखा बाँधनेवाला प्राणी राजकुल तथा वाद-विवादके व्यवहारमे विजय प्राप्त करता है।

भृगराज सहदेवी (सहदेई), वचा (वंच) और श्वेत अपराजिता नामक औषधियोके रसका तिलक करके मनुष्य तीनो लोक वशम कर सकता है।

काकजघाका मूल और दूधका मिश्रित पान शोथ रोगका विनाशक है।

अश्वगन्धा, नागबला, गुड तथा उडद मिलाकर खानेवाला पुरुष वैसे ही रूप-सौन्दर्यसे युक्त हो जाता है, जैसे नवयुवकोका सौन्दर्य होता है।

हे रुद्र! लौहचूर्ण और त्रिफलाचूर्णका मधुके साथ प्रयोग करनेसे परिणाम नामक शूलका विनाश होता है। हे वृषध्वज! हींग, काला नमक और साठ—इन औषधियोके क्वाथका पान सभी प्रकारके शूलोका अपहारक है। सामुद्रलवणसे युक्त अपामार्गकी जडका सेवन करनेसे अजीर्ण-शूल नष्ट हो जाता है।

हे रुद्र! बरगदकी जटाओका अकुर चावलके जलमे घिसकर मट्ठेके साथ पीनेसे अतिसार रोग दूर होता है। अकोट (अकोल)-की जडको आधा कर्ष लेकर चावलके जलमे पीसकर पान करनेसे सभी प्रकारके अतिसार तथा ग्रहणी नामक रोगोका विनाश होता है। काली मिर्च एक भाग, साठ दो भाग तथा कुटजकी छालका चूर्ण चार भाग गुडम मिलाकर काढा बनाकर पीनेसे ग्रहणी नामक रोग दूर होता है। हे शिव! श्वेत अपराजिताकी जड, हल्दी, सिक्थ, चावल, अपामार्ग (चिचडा) और त्रिकटु (काली मिर्च, सोठ एव पिप्पली) नामक इन औषधियाको पीसकर वटी बना लेना चाहिये। यह वटी निस्सदेह विषूचिका नामक रोगका विनाश करती है।

हे भूतेश। त्रिफला, अगरु, शिलाजीत और हरीतकीको समान भागम लेकर इनके मिश्रित चूर्णको मधुके साथ मिलाकर सेवन करनेसे सभी प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं।

मदारका दूध एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर, तिलका तेल एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर, मैनसिल, काली मिर्च तथा सिन्दूर एक-एक पल अर्थात् आठ-आठ तोलेका चूर्ण बनाकर ताँबेके पात्रम रखकर उसको धूपम सुखा ले। स्नुही (थूहड—सेहुँड)-का दूध और सेधा नमक मिलाकर इसका सेवन करे तो शूल रोग दूर हो जाता है।

त्रिकटु (काली मिर्च, साठ तथा पिप्पली), त्रिफला, नक्त (कजा), तिलका तेल, मैनसिल, नीमकी पत्ती, चमेलीका पुष्प, बकरीका दूध, बकरीका मूत्र, शखनाभि और चन्दनको एकमे ही घिसकर बनायी गयी बत्तीसे नेत्रामे अञ्जन लगानेसे पटल, काच, पुष्प तथा तिमिर आदि रोग दूर हो जाते हैं।

मधुसे युक्त बहेडेका चूर्ण श्वास रोगका विनाशक होता है। मधु तथा सेधा नमकसे मिश्रित पिप्पली और त्रिफलाका चूर्ण सभी प्रकारके रोगासे उत्पन्न होनेवाले ज्वर, श्वास शोथ तथा पीनसके विकारको दूर करता है।

देवदारु-वृक्षकी छालके चूर्णको इक्कीस बार बकरीके मूत्रसे भावना देकर सिद्ध करना चाहिये। इसका अञ्जन करनेसे रतौंधी, पटलता और रोमपतन नामक रोग दूर हो जाते हैं।

हे रुद्र! पिप्पली, केतकी, हल्दी, आँवला तथा वचा (वच)-को दूधके साथ पीसकर अञ्जन बनाना चाहिये। इस अञ्जनके प्रयोगसे नेत्रोके सभी रोग विनष्ट हो जाते हैं।

हे शिव। काकजघा तथा सहिजनकी जडको मुखमें रखने या चबानेसे दाँतामे लगे हुए कीडोका निश्चित ही विनाश होता है। (अध्याय १८५)

प्रमेह, मूत्रनिरोध, शर्करा, गण्डमाला, भगदर तथा अर्श आदि रोगोका निदान

श्रीहरिने कहा—हे शिव। मधुके साथ गुडूचीका रस पीनेसे प्रमेह रोग विनष्ट हो जाता है। गोहालिका (जलपिप्पली)-की जडको तिल, दही तथा घीके साथ पान करनेसे यह वस्तिभागमे अवरुद्ध मूत्रको बाहर करता है। काले नमकके साथ इस जडका पान करनेसे हिचकी रोग भी दूर हो जाता है। गोरक्ष अर्थात् गोरखमुण्डी तथा कर्कटी (ककडी)-की जडको शीतल जलके साथ पीसकर तीन दिन पीनेसे ही शर्करा नामक रोग नष्ट हो जाता है। ग्रीष्मकालमे मालतीकी जडको भलीभाँति पीसकर शर्करा और बकरीके दूधमे पीनेसे मूत्रनिरोध शर्करा-विकार और पाण्डु रोग विनष्ट हो जाता है।

ब्रह्मयष्टी अर्थात् ब्राह्मीकी जडको चावलके पानीमे घिसकर तैयार किया गया लेप असाध्य गण्डमाला तथा गलगण्डक रोगको दूर करता है। हे रुद्र। करवीर (कनेर)-की जडका लेप तथा सुपारीका लेप भी पुरुपत्वसे सम्बन्धित विकारको नष्ट करता है। अब मैं अन्य औषधिक योगोको कहता हूँ।

दन्तीमूल हल्दी और चित्रकके लेपसे भगदर रोग विनष्ट होता है। हे उमापते! हे वृषभध्वज। स्नुही (थूहड—सेहुँड)-के दूधसे अनेक बार भावित हल्दीकी वटीका लेप अर्श रोगको दूर करता है। घोषाफल और सेधा नमकको पीसकर बनाया गया लेप अर्श रोगको नष्ट करनेका श्रेष्ठतम योग है। हे शिव। पलाश और क्षारसे बने क्वाथके द्वारा शोधित घृतपाकमे तिगुना मिला हुआ त्रिकटु (काली मिर्च सोठ और पिप्पली)-का चूर्ण अर्श रोगको विनष्ट करता है। बेलके फलको भूनकर खानेसे खूनी अर्श विनष्ट होता है। मक्खनके साथ काला तिल खानेसे भी खूनी अर्श रोग नष्ट होता है।

हे वृषभध्वज। प्रात काल यवक्षार-मिश्रित सोठके चूर्णको समान मात्रामे गुड मिलाकर खानेसे वह जठराग्निकी वृद्धि करता है। साठके चूर्णको काढा बनाकर पान करनेसे भी जठराग्निकी वृद्धि होती है। हे रुद्र। हरीतकी, सेधा नमक पिप्पली—इन औषधियोके चूर्णको गरम जलके साथ मिलाकर पान करनेसे भूख बढती है तथा शूकरकन्दका रस घृतके साथ पान करनेसे अति क्षुधा बढती है। (अध्याय १८६)

आयुवृद्धिकरी औषधिके सेवनकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे शिव! हे वृषभध्वज! ह रुद्र! यदि मनुष्य हस्तिकर्ण पलाशके पत्तोका चूर्ण करके सौ पलकी मात्रामे इस चूर्णको दूधके साथ मिलाकर लगातार सात दिनोतक प्रयोग करे तो वह वेदविद्याविशारद, सिहके समान पराक्रमी, पद्मरागके समान कान्तियुक्त तथा सौ वर्षकी आयुमे भी सोलह वर्षका नवयुवक बन सकता है, किंतु सतत दुग्धपान करना अत्यावश्यक है।

हे शिव! मधु और घृतसे युक्त दूधका सेवन आयुवर्धक होता है। उक्त हस्तिकर्ण पलाशके चूर्णको मधुके साथ लेनेसे प्राणी दस हजार वर्षकी आयु प्राप्त कर सकता है। यह योग मनुष्यको वेदवेदाङ्गका ज्ञाता और प्रमदा- जनोका प्रिय बनानेमे समर्थ है। इस चूर्णका सेवन दहीके साथ करनेसे शरीर वज्रके समान शक्तिसम्पन्न हो जाता है। केशरसे युक्त इस चूर्णका प्रयोग करनेसे मनुष्य हजार वर्षकी आयु प्राप्त करता है। यदि मनुष्य इस चूर्णको काजीके साथ मिलाकर खाता है तो केशोकी सफेदी और त्वचाकी झुर्रियोसे रहित होकर सौ वर्षतक वृद्धावस्थासे रहित दिव्य शरीर प्राप्त करता है।

हे वृषभध्वज! त्रिफला चूर्णके साथ मधुका सेवन नेत्रज्योतिको बढाता है। घीके साथ इस चूर्णको खानेस अधा व्यक्ति भी देख सकता है। भैंसके दूधमे मिलाकर तैयार किया गया इस चूर्णका लेप प्राणीके श्वेत बालोको काला बना देता है। खल्वाटके बाल भी इस लेपके प्रयोगसे निकल आते हैं। इस चूर्णको तेलमे मिलाकर शरीरमे लगानेसे बाल पकनेका प्रभाव तथा त्वचाकी झुर्रियोका प्रकोप समाप्त हो जाता है।

इस चूर्णका मात्र उबटन लगानेसे सभी रोग दूर हो जाते हैं। बकरीके दूधमे मिलाकर इस चूर्णका अञ्जन एक मास-पर्यन्त नेत्रोमे लगानेसे निर्बल दृष्टि सबल हो जाती है।

श्रावणमासमे छिलकेसे रहित पलाशके बीजोको लेकर उनका चूर्ण मक्खनके साथ आधे कर्षकी मात्रामे खाना चाहिये। भगवान् हरिको नित्य प्रणाम करके इस चूर्णका सेवन करना चाहिये। हे हर! इसके सेवनके पश्चात् जल पीते हुए पुराने साठी चावलका भात पथ्य है। इस योगका पालन करनेवाला व्यक्ति वृद्धावस्थासे रहित होकर एक हजार वर्षतक जीवित रह सकता है।

पुष्यनक्षत्रमे भृगराजकी जडको लाकर उसका चूर्ण बनाना चाहिये। यदि प्राणी काजीके साथ उस चूर्णका सेवन करे तो मात्र एक मासमे वह बलीपलित रोगसे रहित हो जाता है। इसका बराबर प्रयोग करनेसे मनुष्य पाँच सौ वर्षतक जीवित रह सकता है और वह हाथीके समान शक्तिसम्पन्न हो जाता है। हे रुद्र! पुष्यनक्षत्रमे ही इस औषधिका प्रयोग करनेपर प्राणी श्रुतिधर अर्थात् वेद-वेदाङ्गका ज्ञाता बन जाता है। (अध्याय १८७)

व्रण आदि रोगोकी चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! प्रहारसे हुआ घाव और मवादयुक्त फोडा घीके प्रयोगसे ठीक हो जाता है। दोना हाथोसे अपामार्गकी जड मलकर उसके रससे चोटके घावको भरनेपर रक्तस्राव रुक जाता है। हे शकर! लाङ्गलिकका मूल तथा इक्षुदर्भ नामक औषधिको पीसकर उसके लेपसे शल्य-काँटायुक्त व्रणका मुख सलिप्त करनेपर काँटा निकल जाता है तथा बहुत दिनोका गडा हुआ भी काँटा घावसे बाहर हो जाता है।

नाडीके घावमे बालमूल (मोथा)-की जडको अथवा मेषशृङ्गी (मेढासिगी)-की जड जलमे घिसकर उसका लेप लगानेसे पुराना घाव भी सूख जाता है। भैंसके दहीमे कोदोका भात मिलाकर खानेसे और हीगकी जडका चूर्ण घावमे भरनेसे भी नाडीका व्रण सूख जाता है।

ब्राह्मीके फलको जलके साथ पीसकर और रगडकर लेप करनेसे रक्तदोष शान्त हो जाता है, इसमे सदेह नहीं।

हे शकर! सहिजनका बीज, अलसी और सफेद सरसोको अम्लरहित मट्ठेमे पीसकर उसका लेप ग्रन्थिक रोगपर लगानेसे वह रोग निश्चित ही नष्ट हो जाता है। श्वेत अपराजिताकी जड चावलकी धोवनमे पीसकर उसका नस्य लेनेसे भूत भाग जाते हैं।

हे शिव! काली मिर्चके साथ अगस्त्य-पुष्पके रसका नस्य शूल रोगका विनाशक है। साँपकी केचुल, हींग, नीमकी पत्ती यव तथा सफेद सरसो लेकर इनका लेप करनेसे भूत-प्रेतकी बाधा दूर हो जाती है। हे शिव! गोरोचन, मरिच,

पिप्पली, सेंधा नमक और मधु—इन सभीका अञ्जन बनाकर आँखमें आँजनेसे प्रेतबाधा दूर हो जाती है। गुग्गुलकी धूप ग्रह-बाधाका नाशक है। काले वस्त्रको ओढ़नेसे चौथिया ज्वर दूर हो जाता है। (अध्याय १८८)

पटल आदि नेत्ररोग, गुल्म, दन्तकृमि, विविध ज्वर तथा विषदोष-शमनके उपाय

श्रीहरिने कहा—हे नीललोहित! श्वेत अपराजिता-पुष्पके रसको नेत्रोंमें डालनेसे पटल नामक नेत्ररोग नष्ट हो जाता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हे सुरासुरविमर्दन शिव! गोखरूकी जड़ चबाकर दाँतोंमें लगे हुए कीटोंकी व्यथाको दूर किया जा सकता है।

यदि ऋतुकालमें उपवासपूर्वक स्त्री गोदुग्धके साथ मन्दारवृक्षकी जड़को पीसकर पान करती है तो उसके शरीरमें होनेवाला गुल्म और शूलविकार विनष्ट हो जाता है।

हे हर! पलाश अथवा अपामार्गकी जड़ हाथमें बाँधनेपर सभी प्रकारके ज्वरोंका विनाश होता है तथा भूत-प्रेत आदिके द्वारा उत्पन्न होनेवाला कष्ट भी नहीं होता। हे परमेश्वर! वृश्चिकमूल अर्थात् बिछिया-वृक्षकी जड़को बासी जलके साथ पीसकर प्रातःकाल सेवन करनेसे दाहज्वर दूर किया जा सकता है। इसकी जड़को शिखामें बाँधनेसे एकाहिक आदि जो ज्वर हैं, वे भी विनष्ट हो जाते हैं। उस जड़को बासी जलके साथ पीसकर पीनेसे सभी प्रकारका विषदोष विनष्ट हो जाता है।

जो मनुष्य पाढ़ा (पाठा)-की जड़को पीसकर गोघृतके साथ पान करता है, उसका सभी प्रकारका विष दूर हो जाता है। रक्तवर्णवाले चित्रक वृक्षकी जड़को पीसकर कानमें डालनेसे कामला रोग विनष्ट हो जाता है, इसमें शंका नहीं है।

श्वेत कोकिलाक्ष (श्वेत तालमखाना)-की जड़को पीसकर बकरीके दूधमें तीन सप्ताहतक पान करनेसे क्षय रोग विनष्ट हो जाता है। नारियल-वृक्षके पुष्पको बकरीके दूधमें मिलाकर पान करनेसे तीनों प्रकारका रक्तवात-विकार नष्ट हो जाता है।

सुदर्शन-वृक्षकी जड़को मालाके मध्य पिरोकर कण्ठमें धारण करनेसे त्र्याहिक (तिजरिया) आदि ज्वर तथा ग्रह एवं भूतादिक व्याधियाँ विनष्ट हो जाती हैं।

हे रुद्र! श्वेत गुञ्जा-वृक्षके पुष्प तथा मूलको लेकर अपने मुखमें रखनेसे नाना प्रकारके विषोंका विनाश हो जाता है। इस औषधिकी जड़को हाथ और कण्ठमें धारण करनेपर ग्रहादिक दोष दूर होता है। हे नीललोहित! कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको लायी गयी इस औषधिकी जड़को कटिप्रदेशमें बाँधकर सिंह आदि हिंसक पशुओंके भयको दूर किया जा सकता है।

हे ईश! विष्णुक्रान्ता (अपराजिता)-की जड़को रेशमी सूतमें बाँधकर कानमें धारण करनेसे मगरमच्छादिक जन्तुओंका भय नहीं रहता। (अध्याय १८९)

गण्डमाला, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ, दद्रु, सिध्म, पीनस तथा छर्दि आदि विविध रोगोंका उपचार और सुगन्धित द्रव्योंके निर्माणकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे ईश्वर! गोमूत्रके साथ अपराजिताकी जड़ पीनेसे गण्डमाला रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। इन्द्रवारुणीकी भी जड़ पीनेसे इस रोगका विनाश होता है। जिङ्गणी (मजीठ) एरण्ड तथा शूकशिम्बी (केवाँच)-को मिलाकर शीतल जलयुक्त लेप लगानेसे भुजाओंमें होनेवाली व्यथा और गर्दनकी व्यथा दूर हो जाती है।

भैंसका मक्खन अश्वगन्धा पिप्पली, वचा (वच) और दोनों प्रकारका कूट एकमें मिलाकर बनाया गया लेप लिङ्गस्रोत तथा स्तनगत दुःखोंका विनाशक है।

कूट और नागबलाके चूर्णको मक्खनमें मिलाकर सिद्ध किया गया लेप युवतियोंके वक्षःस्थलको सुडौल, ओजगुणसे सम्पन्न तथा सुन्दर बनाता है।

इन्द्रवारुणीकी जड़ उखाड़कर रोगीका नाम लेकर दूरसे ही उसके प्रति फेंक दिया जाय तो रोगीका प्लीहा रोग दूर हो जाता है।

चावलके धोवनमें श्वेत पुनर्नवाकी जड़ पीसकर पीनेसे निश्चित ही विद्रधि रोग नष्ट हो जाता है। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। केलेका पत्ता और यवक्षार जलमें सिद्ध करके तैयार किया गया पेय पीनेसे उदरजनित समस्त विकार दूर हो जाते हैं। केलेकी जड़ गुड़ और घीमें

मिलाकर, अग्निपर पकाकर खाया जाय तो वह उदरजनित कृमियोंको विनष्ट कर देता है।

प्रतिदिन प्रातःकाल आँवले और नीमकी पत्तियोंका चूर्ण भक्षण करनेसे कुष्ठ रोग दूर हो जाता है। हरीतकी, विडंग, हल्दी, श्वेत सरसों, सोमलताकी जड, कजेकी जड और सेंधा नमकको गोमूत्रमें पीसकर एक सिद्ध-योग बनाना चाहिये। ये सभी औषधियाँ कुष्ठ रोगको दूर करनेवाली हैं।

एक भाग त्रिफला, दो भाग हरीतकी और सोमलताके बीजोंको खाना चाहिये। इस पथ्यसे दद्रु रोग नष्ट हो जाता है। गोमूत्र और नमकसे युक्त खट्टे मट्ठेका क्वाथ बनाकर उसको काँसेके पात्रमें घिसकर लेप करनेसे कुष्ठ और दद्रु दोनोंका विनाश होता है। हल्दी, हरिताल, दूर्वा, गोमूत्र तथा सेंधा नमक मिलाकर तैयार किया गया लेप दद्रु, पामा और गर नामक रोगको दूर करता है।

हे रुद्र! सोमलताके बीजोंका चूर्ण और मक्खनका मधुके साथ सेवन करना चाहिये। ये औषधियाँ श्वेत कुष्ठ रोगका विनाश करनेवाली हैं। इनके प्रयोगमें मट्ठेके साथ चावल आदिका भोजन पथ्य है। हे हर! श्वेत अपराजिताकी जडको उसीके रसके साथ पीसकर किया गया उसका लेप एक मासमें श्वेत कुष्ठको विनष्ट कर देता है।

हे वृषभध्वज! पामा और दुर्नामा नामक कुष्ठका विनाश काली मिर्च और सिन्दूरसे युक्त भैंसके मक्खनका लेप लगानेसे होता है।

हे ईश्वर! श्वेत गम्भारी (शतावरी)-की जडका गोदुग्धके साथ पाक सिद्ध करके उसको खाना चाहिये। यह पाक शुक्लपित्त रोगका विनाशक है। हे रुद्र! मूलीके बीजोंको अपामार्गकी जडके रसमें मिलाकर लगाये गये लेपसे सिध्म रोग विनष्ट होता है। केलेका क्षार और हल्दीका लेप भी सिध्म रोगका विनाशक है। हे महादेव! केला और अपामार्गका क्षार एरण्ड तेलमें मिलाकर उस लेपका अभ्यङ्ग (मालिश) करनेसे तत्काल सिध्म रोग नष्ट हो जाता है।

हे वृषभध्वज! गोमूत्रसे युक्त कूष्माण्ड (कुम्हडा)-के नालका क्षार और जलमें पीसी गयी हल्दीको भैंसके गोबरमें मिलाकर मन्द-मन्द आँचपर सिद्ध करना चाहिये, उसका उबटन लगानेसे शरीरका सौन्दर्य बढ जाता है। तिल, सरसों, दारुहल्दी, हल्दी और कूट नामक जो औषधियाँ हैं, उनका उबटन बनाकर जो पुरुष अपने शरीरमें लगाता है, वह दुर्गन्धसे रहित होकर सुगन्धित हो उठता है। दूर्वा, काकजघा, अर्जुनके पुष्प, जामुनकी पत्तियाँ तथा लोध्र-पुष्प—इन सभीको एकमें मिलाकर पीस लेना चाहिये। इसका प्रतिदिन प्रयोग करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है और वह मनोहर हो जाता है। लोध्र-पुष्प तथा जलमें पीसकर तैयार किया गया धतूरके चूर्णके लेपका उबटन लगानेसे मनुष्यके शरीरमें स्थित ग्रीष्मबाधा दूर हो जाती है। प्रातःकाल गरम दूधकी भापसे शरीर-सेंक करनेपर घर्मदोष (स्वेदाधिक्य) नष्ट हो जाता है। काकजघाका उबटन शरीरके लिये सुन्दर अनुलेपन द्रव्य है।

मुलेठी, शर्करा, अडूसका रस और मधुका सेवन करनेसे रक्त-पित्त, कामला और पाण्डु रोगका विनाश होता है। अडूसका रस और मधु पीनेसे रक्त-पित्त-विकार दूर हो जाता है।

प्रातःकाल मात्र जल पीकर भयकर पीनस रोगको दूर करना चाहिये। हे महेश्वर! बहेडा, पिप्पली और सेंधा नमकका चूर्ण, काजीके साथ पान करनेसे मनुष्यका स्वरभेद दूर हो जाता है। इस दोषके होनेपर मैनसिल, बलामूल, बेरकी पत्ती, गुग्गुल तथा आँवलेका चूर्ण गोदुग्धमें मिलाकर पान करना चाहिये।

हे परमेश्वर! चमेलीकी पत्ती, बेरकी पत्ती और मैनसिल—इनकी बत्ती बनाकर उसे बेरकी अग्निमें सेककर धूम्रपान करनेसे कास रोग दूर हो जाता है। त्रिफला और पिप्पलीका चूर्ण मधुके साथ खाना चाहिये। भोजन करनेके पूर्व मधुके साथ प्रयुक्त यह औषधिक योग प्यास और ज्वरके दोषको शान्त करता है। बिल्वकी जड तथा गुडूचीका क्वाथ मधुके साथ पान करनेसे तीनों प्रकारके छर्दि रोग विनष्ट हो जाते हैं। चावलके धोवनमें दूर्वारसको मिलाकर पीनेसे भी छर्दि रोग दूर हो जाता है। (अध्याय १९०)

सर्प, बिच्छू तथा अन्य विषैले जीव-जन्तुओंके विषकी चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे वृषध्वज! पुष्यनक्षत्रमें पुनर्नवाकी श्वेत जड लाकर जलके साथ पीनेसे पीनेवालेके आस-पास और घरोंमें सर्प नहीं आ सकते। जो मनुष्य भालूके दाँतमें तार्क्ष्य (गरुड)-की मूर्ति बनाकर धारण करता है, वह सर्पोंके लिये जीवनपर्यन्त अदृश्य हो जाता है। हे रुद्र! जो मनुष्य पुष्यनक्षत्रमें सेमरकी जडको जलमें पीसकर पी

लेता है, उसके ऊपर किया गया विषैले सर्पोंके दाँतोका प्रहार व्यर्थ हो जाता है, इसमे सदेह नहीं है। पुष्यनक्षत्रम लाजवन्तीकी जड हाथमे बाँधनेसे अथवा उसके लेपको लगाकर भी सर्पोंको पकडा जा सकता है। इसमे कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। पुष्यनक्षत्रम लायी गयी सफेद मन्दारकी जडको शीतल जलम पीसकर पान करनेसे सर्पदश तथा करवीर आदिका विष नष्ट हो जाता है। काजीके साथ महाकालकी जड पीसकर उसका लेप दश-भागपर लगानेसे बोड्र (गोनस) तथा डुडुभ (पनिहा) सर्पोंका विष दूर होता है।

चौलाईके मूलको चावलके धोवनम पीसकर घीके साथ पान करनेपर सभी प्रकारके विष नष्ट हो जाते हैं। नीली तथा लाजवन्तीकी जड पृथक्-पृथक् अथवा सयुक्त-रूपसे चावलके धोवनम पीसकर पान करनेपर सभी प्रकारके सर्पोंके दशका विष नष्ट हो जाता है। गुड, शर्करा तथा दुग्धमिश्रित कूष्माण्डके रसका पान सर्पदशके विषको दूर कर देता है। कोदोकी जड पीसकर पान करनेसे विषकी मूर्च्छा दूर हो जाती है। मुलेठीके चूर्णसे युक्त शर्करा और दूध तीन राततक पीकर चूहेके विषको दूर किया जा सकता है। तीन चुल्लू शीतल जल पीनस ताम्बूल खानेके कारण जलनयुक्त मुँहसे बहनेवाली लार बद हो जाती है। शर्करासे युक्त घृतका पान करनेसे मद्यका मद नहीं होता।

हे महेश्वर! कृष्णा (काली तुलसी) और अकोलकी जडके क्वाथको तीन राततक पीनेसे सामान्य अथवा कृत्रिम विषका प्रभाव नष्ट हो जाता है। सेधा नमकके साथ गरम गोघृतका पान बिच्छूके डक मारनेसे शरीरमे उत्पन्न विषकी वेदनाको दूर करता है। हे शिव! कुसुम्भ (कुसुम), कुकुम, हरिताल, मैनसिल, कजा और मन्दार-वृक्षकी जड पीसकर पान करनेसे मनुष्याम चढा हुआ सर्प या बिच्छूका विष नष्ट हो जाता है। हे हर! दीपकका तेल लगानेसे सामान्य ततैया आदि कीटाका विष दूर हो जाता है। इससे कनखजूरेका भी विष नष्ट हो जाता है, इसमे सदेह नहीं है। बिच्छूके डक लगे हुए स्थानपर साठ तथा तगरका लेप लगानेसे विष नष्ट हो जाता है। इसी लेपसे मधुमक्खीके डकका भी विष दूर किया जा सकता है तथा सोया, सेधा नमक और घृतक मिश्रित लेप लगानेसे भी वह विष दूर हो जाता है। हे महादेव! शिरीषके बीजोको गरम दूधमे घिसकर उसका लेप लगानेसे कुत्तेका विष नष्ट हो जाता है। प्रज्वलित अग्नि और उष्ण जलसे सकनेपर मेढकका विष दूर हो जाता है। हे चन्द्रचूड! धत्तूरके रससे मिश्रित दूध, घी और गुडका पान कुत्तेके विषको नष्ट कर देता है।

बरगद, नीम और शमी वृक्षकी छालके क्वाथसे सेक करनेपर मुख और दाँतकी विष-वेदना नष्ट हो जाती है। देवदारु और गैरिकक चूर्णका लेप करनेसे भी इस विषको शान्त किया जा सकता है। हे हर! नागेश्वर, दारुहल्दी, हल्दी तथा मजीठके मिश्रित लेपसे लूता (मकडी)-के काटनेका विष दूर होता है। कजेके बीज, वरुण-वृक्षके पत्ते, तिल और सरसोका पिसा हुआ लेप भी विषको दूर कर देता है, इसम सदेह नहीं है।

हे हर! नमक और घृतसे युक्त घृतकुमारीके पत्तेका लेप करनेसे घोडेके शरीरकी खुजली दस दिनमे दूर हो जाती है। (अध्याय १९१)

विविध स्नेह-पाकोद्वारा रोगोका उपचार, स्मरण तथा मेधाशक्तिवर्धक ब्राह्मी-घृतादिके निर्माणकी विधि

श्रीहरिने कहा—[हे हर!] चित्रक आठ भाग शूरण (सूरन) सोलह भाग सोठ चार भाग, काली मिर्च दो भाग, पिप्पलीमूल तीन भाग विडग चार भाग मुशली आठ भाग और त्रिफला चार भाग लेकर इनके दुगुने गुडके साथ मोदक बनाना चाहिये। इसके सेवनसे अजीर्ण पाण्डु कामला अतिसार मन्दाग्नि और प्लीहा नामक रागोको दूर किया जा सकता है।

बिल्व (बेल) अग्निमन्थ (गनियारी) श्योनाक (सोना पाढा) पाटला (पाढर) पारिभद्रक (नीम), प्रसारिणी (गन्धप्रसारिणी), अश्वगन्धा, बृहती कण्टकारी, बला, अतिबला रास्ना (सर्पसुगन्धा), श्वदष्ट्रा (गोखरू), पुनर्नवा एरण्ड शारिवा (अनन्तमूल), पर्णी (शालपर्णी), गुडूची कपिकच्छुका (केवाँच) नामक इन औषधियोंको दस-दस पलकी मात्राम एकत्र करके शुद्ध जलमें पकाना चाहिये। जब उस जलका चौथाई भाग शेष रह जाय तो उससे तेलको सिद्ध करे। यदि बकरीका दूध अथवा गौका दूध हो तो उसको उस तैलपाकमे चौगुना मिलाकर तेलकी मात्राके समान शतावरी और सेंधा नमक भी मिलाये। इस

प्रकार तैलपाकको सिद्ध करनेके पश्चात् उस तेलमे शतपुष्पा (सोया), देवदारु, बला, पर्णी, वचा (वच), अगुरु, कुष्ठ (कूट), जटामासी, सेधा नमक और पुनर्नवा एक-एक पल पीसकर मिलाना चाहिये। इस तेलका प्रयोग पीने, नस्य लेने तथा शरीरमे मर्दनके काममे करना चाहिये। इसके प्रयोगसे हृदयगत शूल, पार्श्वशूल, गण्डमाला अपस्मार और वातरक्त नामक रोग दूर हो जाते हैं तथा शरीर शोभा-सम्पन्न हो जाता है। हे हर! इस तेलके प्रयोगसे खच्चरी भी गर्भ-धारण कर सकती है, स्त्रीके विषयमें तो कहना ही क्या? घोडा, हाथी और मनुष्यामे वात-दोष होनेपर इस तेलका प्रयोग करना चाहिये। इतना ही नहीं सभी वात-विकारसे ग्रस्त प्राणियोके लिये इसका प्रयोग लाभप्रद है।

हिगु (हींग), तुम्बुरु (धनिया) और शुण्ठी (सोठ)-के द्वारा सरसाका तेल सिद्ध करना चाहिये। इस तेलको कानम डालनेसे कर्णशूल शान्त हो जाता है। सूखी मूली तथा सोठका क्षार, हींग और हल्दीका चूर्ण समभागमे लेकर उसके चौगुने मट्ठेके साथ पूर्ववर्णित सरसोके तेलमे पकाना चाहिये। इस तेलको कानोम डालनेसे उनके अदर उत्पन्न बहरापन, शूल, मवादका स्राव और कृमिदोष विनष्ट हो जाता है।

सूखी मूली और साठका क्षार तथा हींग, हल्दी, सोया, वच, कूट दारुहल्दी सहिजन, रसाञ्जन, काला नमक, यवक्षार समुद्रफेन सधा नमक, ग्रन्थिक विडग, नागरमोथा, मधु, चार गुना शुक्तिभस्म बिजौरा नीबूका रस और केलेका रस लेकर इन्हींसे सरसोका तेल सिद्ध करना चाहिये। यह सिद्ध तेल कर्णशूल दूर करनेका अत्युत्तम उपाय है। हे हर! कानमे इसको डालनेसे बहरापन कर्णनाद, पीबस्राव तथा कृमिदोष सद्य विनष्ट हो जाता है। इसका नाम क्षारतैल है। इस तेलसे मुख तथा दाँतोकी गदगी भी दूर हा जाती है।

चन्दन, कुकुम जटामासी, कर्पूर, चमेलीकी पत्ती, चमेलीका फूल ककोल सुपारी, लौंग, अगरु कस्तूरी कुष्ठ तगर, गोरोचन, प्रियगु, बला मेहदी सरल, सप्तपर्णी लाक्षा आँवला और रक्त कमल—इन औषधियाको एकत्रकर इनसे तेल सिद्ध करना चाहिये। यह पसीनेक कारण शरीरम उत्पन्न होनेवाले मल दुर्गन्ध तथा खुजली और कुष्ठको दूर करनेवाला श्रेष्ठतम औषध है। हे रुद्र! इस तेलका प्रयोग करनेसे पुरुष अधिक पुरुषत्व-सम्पन्न हो जाता है और वध्या स्त्री भी पुत्र प्राप्त कर सकती है।

यदि यवानी (अजवायन), चित्रक, धनिया, त्रिकटु, जीरा, काला नमक, विडग, पिप्पलीमूल तथा राजिक (राई सरसो) नामक औषधियोद्वारा आठ प्रस्थ जलसे युक्त एक प्रस्थ घृतका शोधन किया जाय तो यह सिद्ध घृत अर्श, गुल्म तथा शोथ रोगोका विनाश करता है और जठराग्निको उद्दीप्त करता है।

काली मिर्च, निशोत, कूट, हरिताल, मैनसिल, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, जटामासी, रक्तचन्दन, विशाला (इन्द्रवारुणी), कनेर, मन्दारदुग्ध और गोबरका रस एकत्रकर—इन औषधियोकी मात्रा एक-एक कर्ष अर्थात् दो-दो तोला हो, किंतु जो औषधियाँ विषैली हैं, उनकी मात्रा आधा पल अपेक्षित है—इन सभी औषधियाके द्वारा आठ प्रस्थ गोमूत्रके साथ एक प्रस्थ सरसोका तेल मिट्टीके पात्र अथवा लौहपात्रमे भरकर मन्द-मन्द आँचपर पकाये। जब यह सिद्ध हो जाय तो इस तेलके अभ्यङ्गसे पामा, विचर्चिका, दद्रु, विस्फोटक आदि रोग नष्ट हो जाते हैं और रुग्ण स्थानोपर शुद्ध एव कोमल त्वचा आ जाती है। अत्यधिक मात्रामे पहलेसे फैले हुए पुराने श्वेत कुष्ठको भी इस तेलके प्रयोगसे नष्ट किया जा सकता है।

हे शिव! परवलकी पत्ती, कटुकी, मजीठ, अनन्तमूल, हल्दी, चमेलीकी पत्ती, शमीकी पत्ती, नीमकी पत्ती और मुलेठीके क्वाथसे सिद्ध घृतका लेप करनेसे व्रण पीडारहित हो जाता है और उसका बहना भी बद हो जाता है।

शखपुष्पी, वचा, सोमलता, ब्राह्मी, काला नमक हरीतकी, गुडूची, जगली अडूसा और वकुची नामक औषधियोको समानरूपसे एक-एक अक्ष (पल)-की मात्रामे एकत्र करके उनसे एक प्रस्थ घृतको यथाविधि सिद्ध करना चाहिये, साथ ही कण्टकारीका रस एक प्रस्थ तथा गोदुग्ध भी एक प्रस्थ मिलाना चाहिये। इस घृतपाकका नाम ब्राह्मीघृत है। यह स्मृति और मेधाशक्तिको बढानेवाला है।

अग्निमन्थ (गनियारी), वचा वासा (अडूसा), पिप्पली, मधु तथा सेधा नमक सात रात सेवन करनेसे मनुष्य किन्नरोके समान मधुर गीत गानेवाला हो जाता है।

समान भागम गृहीत अपामार्ग, गुडूची वचा, कूट, शतावरी, शखपुष्पी, हरीतकी और विडगके चूर्णको समान भाग घृतके साथ सेवन करनेसे मात्र तीन दिनमे यह मनुष्यको एक सौ आठ ग्रन्थाको कण्ठस्थ करनेकी क्षमतावाला बना देता है। जल दूध या घृतके साथ एक

मासपर्यन्त सेवन की गयी वचा तो मनुष्यको श्रुतिधारक विद्वान् बना देती है। चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहणके अवसरपर दूधके साथ एक पल सेवन की गयी वचा मनुष्यको उसी समय श्रेष्ठतम प्रज्ञावान् बना देती है।

चिरायता, नीमकी पत्ती, त्रिफला, पित्तपापडा, परवल, मोथा और अडूसासे बने हुए क्वाथका पान विस्फोटक व्रणो और रक्तस्रावको विनष्ट कर सकता है। इसमे विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

केतकीका फल, शखभस्म, सेधा नमक, त्रिकटु (काली मिर्च, सोठ तथा पिप्पली), वचा, समुद्रफेन, रसाञ्जन, मधु, विडग और मैनसिल नामक औषधियाको एकमे मिलाकर बनायी गयी बत्तीका नेत्रामे प्रयोग करनेसे काच, तिमिर तथा पटलदोष नष्ट हो जाते हैं।

दो प्रस्थ अर्थात् आठ सेर उडद लेकर उससे एक द्रोण अर्थात् सोलह सेर जलमे क्वाथ बनाना चाहिये। चौथाई भाग शेष रहनेपर उस क्वाथके द्वारा एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर तेलका पाक करे। तदनन्तर उसमे एक आढक अर्थात् आठ सेर काजी मिलाकर पिसे हुए पुनर्नवा, गोखरू, सेधा नमक, त्रिकटु वचा, काला नमक, देवदारु, मजीठ और कण्टकारी ओषधियोका चूर्ण मिश्रित करना चाहिये। हे महेश्वर! इस औषधका नस्य लेनेसे और पान करनेसे भयकर कर्णशूल नष्ट हो जाता है। इसके अभ्यङ्गसे अर्थात् मालिश करनेसे कानोका बहरापन एव अन्य सभी प्रकारके शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं।

दो पल सेधा नमक, पाँच पल सोठ और चित्रक, पाँच प्रस्थ काजी[1] तथा एक प्रस्थ तेलको एकमे पकाना चाहिये। जब यह पाक सिद्ध हो जाय तो इसके नस्य, पान एव अभ्यङ्गसे असृग्दर (प्रदर), स्वरभग, प्लीहा और सभी प्रकारके वात रोग विनष्ट हो जाते हैं।

गूलर, बरगद, पाकड, दोना प्रकारके जामुन, दोनों प्रकारके अर्जुन, पिप्पली, कदम्ब, पलाश, लोध्र, तिन्दुक, महुआ, आम, राल, बेर, कमल, नागकेशर, शिरीष और बीजकृतक—इनको एकमे मिलाकर क्वाथ बनाना चाहिये। तदनन्तर उस क्वाथसे तैलपाक सिद्ध करे। इस सिद्ध तेलका लेप करनेसे अत्यन्त पुराने व्रण नष्ट हो जाते हैं। (अध्याय १९२)

बुद्धि-शुद्धकर ओषधि, विविध अभ्यङ्गो एव उपयोगी चूर्णोके निर्माणकी विधि, विरेचक द्रव्य तथा औषध-सेवनमे भगवान् विष्णुके स्मरणकी महिमा

श्रीहरिने कहा—[हे हर!] प्याज, जीरा, कूट, अश्वगन्धा, अजवायन, वचा, त्रिकटु और सेधा नमकसे निर्मित श्रेष्ठ चूर्णको ब्राह्मीरससे भावित करके घृत तथा मधुके साथ मात्र एक सप्ताह प्रयुक्त करनेपर यह मनुष्यकी बुद्धिको अत्यन्त निर्मल बना देता है।

सरसो, वचा हींग करज, देवदारु, मजीठ, त्रिफला सोठ, शिरीष, हल्दी दारुहल्दी, प्रियगु, नीम और त्रिकटुको गोमूत्रमे घिसकर नस्य आलेपन तथा उबटनके रूपमे प्रयुक्त करना हितकारी होता है। यह अपस्मार विषोन्माद शोथ तथा ज्वरका विनाशक है। इसके सेवनसे भूत-प्रेतादि-जन्य तथा राजद्वारीय भय विनष्ट हो जाता है।

नीम कूट हल्दी दारुहल्दी, सहिजन सरसोका तेल देवदारु परवल और धनियाको मट्ठेमे घिसकर उबटन बना लेना चाहिये। तदनन्तर शरीरमे तेल लगाकर इस उबटनका प्रयोग करे तो निश्चित ही पामा, कुष्ठ, खुजली ठीक हो जाती है।

सामुद्र लवण, समुद्रफेन, यवक्षार राजिका (गौरसर्षप), नमक, विडग, कटुकी लौहचूर्ण, निशोथ और सूरन—इन्हे समान भागमे लेकर दही, गोमूत्र तथा दूधके साथ मन्द-मन्द आँचपर पका करके जलसे पान करना चाहिये। यह चूर्ण अग्नि और बलवर्धक है। पुराना अजीर्ण रोग होनेपर इस चूर्णका सेवन जटामासी आदिसे युक्त घृतके साथ करना चाहिये। यह इस रोगकी उत्तम ओषधि है। यह चूर्ण नाभिशूल मूत्रशूल गुल्म और प्लीहाजन्य जो भी शूल हैं उन सभी शूलोको विनष्ट करनेवाला है। यह जठराग्निको उद्दीप्त कर देता है। परिणाम नामक शूलमे तो यह परम हितकारी है।

हरीतकी आँवला द्राक्षा, पिप्पली कण्टकारी

१-एक सेर चावलको हँडियामे अच्छी तरह पकाकर ठडा करे। उसमे चार किलो पानी डालकर मोटे कपडेसे मुख बन्दकर जमीनमे दबाकर रखे। सात दिन बाद पानी छानकर निकाल ले शेषको फेक दे उसीको काँजी कहते हैं।

काकडासिगी, पुनर्नवा और सोठके चूर्णको खानेसे कास रोग विनष्ट हो जाता है।

समान भागमें हरीतकी, आँवला, द्राक्षा, पाढा, बहेडा तथा शर्कराका चूर्ण खानेसे ज्वर रोग दूर हो जाता है। त्रिफला, बेर, द्राक्षा और पिप्पलीका चूर्ण विरेचक होता है। हरीतकी, गरम जल और नमकका सेवन करनेसे भी विरेचन होता है।

श्रीहरि बोले—हे उमापते! मेरे द्वारा कही गयी ये जितनी भी ओषधियाँ हैं, वे समस्त रोगोंको वैसे ही नष्ट कर देती हैं, जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षको नष्ट कर देता है। भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए ओषधिका सेवन करनेसे रोग नष्ट हो जाता है। उनका ध्यान, पूजन और स्तवन करते हुए ओषधिसेवन करना निश्चित ही लाभदायक होता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। (अध्याय १९३)

~~~~

व्याधिहर वैष्णव कवच

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं समस्त व्याधियोके विनाशक, कल्याणकारी उस वैष्णव कवचको बताऊँगा, जिसके द्वारा प्राचीन कालमें दैत्योको विनष्ट करते हुए भगवान् शिवकी रक्षा हुई थी।

अजन्मा, नित्य, अनामय, ईशान, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, जनार्दन, देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके मैं रक्षाके निमित्त अमोघ अप्रतिम वैष्णव कवचको धारण करता हूँ। जो सभी दु खोका निवारण करनेवाला और सर्वस्व है, वह कवच इस प्रकार है[1]—

भगवान् विष्णु मेरी आगेसे रक्षा करे। कृष्ण मेरी पीछेसे रक्षा करे। हरि मेरे सिरकी रक्षा करे। जनार्दन हृदयकी रक्षा करे। मेरे मनकी रक्षा हृषीकेश और जिह्वाकी रक्षा केशव करे। वासुदेव दोनो नेत्रोकी तथा सकर्षण (बलराम) दोना कानोकी रक्षा करे। प्रद्युम्न मेरे नाककी, अनिरुद्ध शरीरके चर्मभागकी रक्षा करें। भगवान्‌की वनमाला मेरे कण्ठप्रदेशके नीचे अन्त करणतक और उनका श्रीवत्स मेरे अधोभागकी रक्षा करे। दैत्योका निवारण करनेवाला चक्र मेरे वामपार्श्वकी रक्षा करे। समस्त असुरोका निवारण करनेवाली गदा मेरे दक्षिण पार्श्वकी रक्षा करे। मेरे उदरभागकी रक्षा मुसल और पृष्ठभागकी रक्षा लाङ्गल (हल) करे। मेरे ऊर्ध्वभागकी रक्षा शार्ङ्ग नामक धनुष तथा मेरे दोनो जघा-प्रदेशोकी रक्षा नन्दक नामक तलवार करे। मेरे पार्ष्णिभागकी रक्षा शख और दोनो पैरोकी रक्षा पद्म करे। गरुड सदैव मेरे सभी कार्योंके अभीष्ट अर्थकी सिद्धिके लिये रक्षा करते रहे। भगवान् वराह जलमे, भगवान् वामन विषम परिस्थितिम, भगवान् नरसिह वनमे और भगवान् केशव सब ओरसे मेरी

१-विष्णुर्मामग्रत पातु कृष्णो रक्षतु पृष्ठत । हरिर्मे रक्षतु शिरो हृदयं च जनार्दन ॥
मनो मम हृषीकेशो जिह्वा रक्षतु केशव । पातु नेत्रे वासुदेव श्रोत्रे सङ्कर्षणो विभु ॥
प्रद्युम्न पातु मे घ्राणमनिरुद्धस्तु चर्म च । वनमाला गलस्यान्त श्रीवत्सो रक्षतादध ॥
पार्श्वं रक्षतु मे चक्र वाम दैत्यनिवारणम्। दक्षिण तु गदा देवी सर्वासुरनिवारिणी॥
उदर मुसल पातु पृष्ठ मे पातु लाङ्गलम्। ऊर्ध्वं रक्षतु मे शार्ङ्ग जङ्घे रक्षतु नन्दक ॥
पार्ष्णी रक्षतु शङ्खश्च पद्म मे चरणावुभौ। सर्वकार्यार्थसिद्ध्यर्थं पातु मा गरुड सदा॥
वराहो रक्षतु जले विषमेषु च वामन । अटव्या नरसिहश्च सर्वत पातु केशव ॥
हिरण्यगर्भो भगवान् हिरण्य मे प्रयच्छतु। साख्याचार्यस्तु कपिलो धातुसाम्य करोतु मे॥
श्वेतद्वीपनिवासी च श्वेतद्वीप नयत्वज। सर्वान् सूदयता शत्रून् मधुकैटभमर्दन ॥
सदाकर्षतु विष्णुश्च किल्बिष मम विग्रहात्। हसो मत्स्यस्तथा कूर्म पातु मा सर्वतो दिशम्॥
त्रिविक्रमस्तु मे देव सर्वपापानि कृन्ततु। तथा नारायणो देवो बुद्धि पालयता मम॥
शेषो मे निर्मल ज्ञान करोत्वज्ञाननाशनम्। वडवामुखो नाशयता कल्मष यत्कृत मया॥
पद्भ्या ददातु परम सुख मूर्ध्नि मम प्रभु । दत्तात्रेय प्रकुरुता सपुत्रपशुबान्धवम्॥
सर्वानरीन् नाशयतु राम परशुना मम। रक्षोघ्नस्तु दाशरथि पातु नित्यं महाभुज ॥
शत्रून् हलेन मे हन्याद्रामो यादवनन्दन । प्रलम्बकेशिचाणूरपूतनाकसनाशन ।
कृष्णस्य यो बालभाव स मे कामान् प्रयच्छतु॥
~~~~

रक्षा करते रहे।

हिरण्यगर्भ भगवान् मुझे हिरण्य अर्थात् स्वर्णकी राशि प्रदान करे। साख्यदर्शनके आचार्य भगवान् कपिल मुनि मेरे शरीरम स्थित सभी प्रकारके धातुओम समानता बनाये रखे। श्वेतद्वीपमे निवास करनेवाले भगवान् अजन्मा विष्णु मुझको भी श्वेतद्वीपम ले चले। मधुकैटभका मर्दन करनेवाले विष्णु मेरे सभी शत्रुआका विनाश कर। मेरे शरीरमे विद्यमान समस्त पापोको खींच-खींचकर सदैव भगवान् विष्णु विनष्ट करते रहे। हसावतार, मत्स्यावतार तथा कूर्मावतार धारण करनेवाले विष्णु सभी दिशाआमे मेरी रक्षा करे। भगवान् त्रिविक्रमदेव मेरे समस्त पापाका काट डाले। भगवान् नारायणदेव मेरी बुद्धिका विकास करे। शेषनारायण मेरे ज्ञानको निर्मल बनाये तथा अज्ञानका विनाश करे। मैंने जो कुछ भी पाप किया है, उस समस्त पापको भगवान् वडवामुख हयग्रीव विनष्ट करे।

भगवान् विष्णु मेरे दोना पैरोको और सिरको सुख प्रदान करे। भगवान् दत्तात्रेय मुझे पुत्र और बन्धु-बान्धव तथा पशुओसे सम्पन्न रखे। भगवान् जामदग्न्य—परशुराम अपने परशुसे मेरे सभी शत्रुओका विनाश कर। राक्षसाके निहन्ता दशरथसुत आजानुभुज भगवान् श्रीराम मेरी नित्य रक्षा करे। यादवनन्दन बलराम अपने हलसे मेरे शत्रुआका विनाश कर। प्रलम्ब केशी चाणूर पूतना तथा कसका सहार करनेवाला जो बालभाव भगवान् कृष्णका है, वही मेरे समस्त मनोरथोको पूर्ण करे।

हे देव। मैं अन्धकारके समान तमागुणसे सम्पन्न, हाथमे पाश धारण करनेवाले यमराजके सदृश काले-पीले वर्णवाले भयकर पुरुषको देख रहा हूँ, उसके भयसे मैं सत्रस्त हो गया हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष भगवान् अच्युत! मैं आपकी शरणमे आया हूँ। आपके इस आश्रयसे मैं धन्य हो उठा हूँ। आपकी शरण ग्रहण करनेसे अब मुझे कोई भय नहीं रह गया है, अत मैं नित्य निर्भय हो गया हूँ।

समस्त सासारिक उपद्रवोको विनष्ट करनेवाले भगवान् नारायणदेवका ध्यान करके वैष्णव कवचसे आबद्ध मैं पृथ्वीतलपर विचरण करता हूँ। इसीके प्रभावसे मैं सभी प्राणियाके लिये अजेय हो गया हूँ। इतना ही नहीं, सर्वदेवमय भी हो गया हूँ। अपरिमित तेजसे सम्पन्न देवाधिदेव भगवान् विष्णुका स्मरण करनेसे मेरा समस्त मनोरथ नित्य सिद्ध होता रहे।

भगवान् वासुदेवके चक्रम जो अरे लगे हैं, वे यथाशीघ्र मेरे समस्त पापाका विनाश करे और मेरी हिसा करनेवाले शत्रुआका सहार करे।

राक्षस एव पिशाचोसे तथा गहन वन, प्रान्त विवाद, राजमार्ग, द्यूतक्रीडा, लडाई, झगडा, नदी पार करनेकी स्थिति, आपत्काल प्राणाका सकट-काल, अग्निभय, चोरभय ग्रहबाधा विद्युत्-उत्पीडन सर्पविषका उद्वेग, रोग, विघ्न, सकट आनेपर तथा भयविह्वल होनेपर इसका जप तो करना ही चाहिये किंतु नित्य इसका जप करना विशेष लाभप्रद है। यह भगवान् विष्णुका मन्त्ररूपी कवच परम श्रेष्ठ तथा सभी पापाका विनाशक है। (अध्याय १९४)

सर्वकामप्रदा विद्या

श्रीहरिने कहा—हे शिव। अब मैं 'सर्वकामप्रदा विद्या' का वर्णन करता हूँ, उसे सुन। इसकी उपासना मात्र सात रात करनेसे ही सभी कामनाएँ सफल हो जाती हैं। सर्वकामप्रदा विद्या इस प्रकार है[1]—

हे भगवान् वासुदेव। आपका मैं ध्यान करता हूँ, आपको नमस्कार है। हे प्रद्युम्न। हे अनिरुद्ध। हे सकर्षण। आपको नमस्कार है। हे परमानन्दस्वरूप। आप मात्र अनुभवजन्य हैं आपको मेरा नमस्कार है। आप आत्माराम एवं शान्तमूर्ति हैं तथा द्वैत-दृष्टिसे परे हैं आपको मेरा नमस्कार है। यह समस्त चराचर जगत् आपका ही रूप है आपको बारबार

अन्धकारतमोघार पुरुष कृष्णपिङ्गलम्। पश्यामि भयसत्रस्त पाशहस्तमिवान्तकम्॥
ततोऽह पुण्डरीकाक्षमच्युतं शरण गत। धन्योऽह निर्भया नित्य यस्य मे भगवान् हरि॥
ध्यात्वा नारायणं देव सर्वोपद्रवनाशनम्। वैष्णव कवच बद्ध्वा विचरामि महीतले॥
अप्रधृष्यो स्मि भूतानां सर्वदेवमयो ह्यहम्। स्मरणाद्देवदेवस्य विष्णोरमिततेजस॥ (१९४।४—२२)

१-सर्वकामप्रदा विद्यां सप्तरात्रा ता शृणु। नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नम संकर्षणाय च। नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये॥

प्रणाम है। हे अनन्तमूर्ति भगवान् हृषीकेश! आप महत्स्वरूपको नमस्कार है। प्रलयकालमे यह सारा जगत् जिस मूर्तिम प्रविष्ट होकर स्थित रहता है और पुन प्रलयकालके पश्चात् सृष्टिके प्रारम्भमे सबसे पहले उत्पन्न भी होता है तथा जो इस मृण्मयी पृथ्वीको धारण करता है, उस ब्रह्मदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। जिस देवको स्पर्श करने और पहचाननेमे न मन-बुद्धि समर्थ हैं, न ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राण समर्थ हैं तथा आकाशके समान जो देव समस्त चराचर प्राणियोके अदर और बाहर विचरण करते हैं, ऐसे व्योमस्वरूप आप (देव)-को मैं नमस्कार करता हूँ। हे पञ्चभूताके स्वामी ऐश्वर्यमूर्ति महापुरुष भगवान् वासुदेव! आपको नमस्कार है। हे परमेष्ठिन्! आपसे सकल सत्त्वोकी उत्पत्ति होती है तथा आपके चरणारविन्दयुगल मानो शील-समूहरूपी कमलोकी धर्माख्यविद्यारूप रेणूत्पल हैं, आपको नमस्कार है। चित्रकेतुने इस विद्याके द्वारा विद्याधरत्वको प्राप्त किया था। (अध्याय १९५)

विष्णुधर्माख्यविद्या

श्रीहरिने कहा—हे महेश्वर! जिस 'विष्णुधर्म' नामक विद्याका जप करके देवराज इन्द्रने समस्त शत्रुआपर विजय प्राप्तकर इन्द्रत्व-पद प्राप्त किया था, उस विद्याको कहता हूँ।

इस विद्याके जपसे पूर्व दोना पैर, दोनो जानु, दोनो जघा-प्रदेश उदर हृदय, वक्ष स्थल, मुख और शिरोभागमे ॐकारादि वर्णोंसे यथाक्रम न्यास करना चाहिये। 'नमो नारायणाय' इस मन्त्रद्वारा विपरीत-क्रमसे भी न्यास करे। तदनन्तर द्वादशाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)-के आदि वर्ण ॐकारसे करन्यास करे। अन्तिम यकारसे अगुष्ठ आदि अँगुलियोकी पर्वसधियोमे न्यास करके हृदयमे ॐकारका न्यास करना चाहिये। सम्पूर्ण मन्त्रसे मस्तक-भागमे न्यास करे। मूर्धासे प्रारम्भ करके भ्रुवाके मध्य-भागमे ॐकार-मन्त्रसे न्यास करके शिखा तथा नेत्रादिमे 'ॐ विष्णवे नम 'इस मन्त्रसे न्यास करना चाहिये। अनन्तर अन्तरात्मामें उन परम शक्तियोसे सम्पन्न परमात्मा शेषनारायणका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

मम रक्षा हरि कुर्यान्मत्स्यमूर्तिर्जलऽवतु॥
त्रिविक्रमस्तथाकाशे स्थले रक्षतु वामन।
अटव्या नरसिहस्तु रामो रक्षतु पर्वते॥
भूमौ रक्षतु वराहो व्योम्नि नारायणोऽवतु।
कर्मबन्धाच्च कपिलो दत्तो रोगाच्च रक्षतु॥
हयग्रीवो देवताभ्य कुमारो मकरध्वजात्।
नारदोऽन्यार्चनाद्देव कूर्मो वै नैर्ऋते सदा॥
धन्वन्तरिश्चापथ्याच्च नाग क्रोधवशात् किल।
यज्ञो रोगात् समस्ताच्च व्यासोऽज्ञानाच्च रक्षतु॥
बुद्ध पाषण्डसघातात् कल्की रक्षतु कल्मषात्।
पायान्मध्यन्दिने विष्णु प्रातर्नारायणोऽवतु॥
मधुहा चापराह्ने च साय रक्षतु माधव।
हृषीकेश प्रदोषेऽव्यात् प्रत्यूषेऽव्याजनार्दन॥
श्रीधरोऽव्यादर्धरात्रे पद्मनाभो निशीथके।
चक्रकौमोदकीबाणा घ्नन्तु शत्रूंश्च राक्षसान्॥
शख पद्म च शत्रुभ्य शार्ङ्गं वै गरुडस्तथा।
बुद्धीन्द्रियमन प्राणान् पान्तु पार्श्वविभूषण॥
शेष सर्पस्वरूपश्च सदा सर्वत्र पातु माम्।
विदिक्षु दिक्षु च सदा नरसिहश्च रक्षतु॥
एतद्धारयमाणश्च य य पश्यति चक्षुषा।
स वशी स्याद्विपाप्मा च रोगमुक्तो दिव व्रजेत्॥
(१९६।६—१६)

भगवान् हरि मेरी रक्षा कर। मत्स्यमूर्ति भगवान् जलम मेरी रक्षा कर। भगवान् त्रिविक्रम आकाशमे और भगवान् वामन स्थलम मेरी रक्षा कर। वन-प्रान्तम भगवान्

आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये। त्वद्रूपाणि च सर्वाणि तस्मात् तुभ्य नमो नम ॥
हृषीकेशाय महते नमस्तेऽनन्तमूर्तये। यस्मिन्निदं यतश्चैतत् तिष्ठत्यग्रेऽपि जायते॥
मृण्मयीं वहसि क्षोणीं तस्मै त ब्रह्मणे नम । यत्र स्पृशन्ति न विदु मनाबुद्धीन्द्रियासव ।
अन्तर्बहिस्त्व चरसि व्योमतुल्य नमाम्यहम्॥
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाभूतपतये सकलसत्वभाविव्रीडनिकरकमलरेणूत्पलनिभधर्माख्यविद्यया चरणारविन्दयुगल परमेष्ठिन् नमस्ते। अवाप विद्याधरता चित्रकेतुश्च विद्यया॥ (१९५।१—६)

नरसिह, पर्वतभागमे जामदग्न्य—परशुराम मेरी रक्षा करे। भूमिपर भगवान् वराह, व्योममे भगवान् नारायण मेरी रक्षा करे। कर्मोंके बन्धनसे भगवान् कपिल तथा रोगोके प्रकोपसे भगवान् दत्तात्रेय मेरी रक्षा करे। भगवान् हयग्रीव देवताओसे, कुमार कामदेवसे मेरी रक्षा करे। भगवान् नारद अन्य देवोकी उपासनासे और भगवान् कूर्मदेव नैर्ऋतम सदैव मेरी रक्षा करे। भगवान् धन्वन्तरि अपथ्य-सेवनसे, भगवान् शेषनाग क्रोधसे, भगवान् यज्ञदेव समस्त रोग-समुदायसे और भगवान् व्यास अज्ञानसे मेरी रक्षा कर। भगवान् बुद्ध पाखण्ड-समूहसे एव भगवान् कल्किदेव पापसे मेरी रक्षा करे। भगवान् विष्णु मध्याह्नकालमे मेरी रक्षा करे। भगवान् नारायण प्रात कालमे मेरी रक्षा करे। भगवान् मधुसूदन अपराह्नकाल और भगवान् माधव सायकालमे मेरी रक्षा करे। भगवान् हृषीकेश प्रदोपकालम तथा भगवान् जनार्दन प्रत्यूषकालमे मेरी रक्षा करे। भगवान् श्रीधर अर्धरात्रि तथा भगवान् पद्मनाभ निशीथकालमे मेरी रक्षा करे। हे भगवन्! आपका सुदर्शन, कौमोदकी गदा और बाण मेरे शत्रुओ तथा राक्षसादिका सहार करे। आपका शख, पद्म, शार्ङ्ग धनुष तथा वाहन गरुड भी शत्रुओसे मेरी रक्षा करे। भगवान् वासुदेवके संनिकट स्थित अलकारस्वरूप सभी पार्षद मेरे बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी रक्षा करें। सर्पका रूप धारण करनेवाले भगवान् शेषनारायण सदैव सर्वत्र मेरी रक्षा करे। भगवान् नरसिह सदैव सभी दिशाओ और विदिशाओमें मेरी रक्षा करे।

इस प्रकार जो व्यक्ति इस विष्णुधर्माख्यविद्याको धारण करता है, वह अपने नेत्रोसे जिस-जिसको देखता है वह उसीके वशमे हो जाता है और सभी पापोसे मुक्त तथा रोगरहित होकर वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १९६)

विषहरी गारुडी विद्या तथा भगवान् गरुडके विराट् स्वरूपका वर्णन

धन्वन्तरिने कहा—अब मैं गरुडके द्वारा कही गयी गारुडी विद्याका वर्णन करता हूँ। इस विद्याको सुमित्रने कश्यपमुनिसे कहा था। यह विद्या सभी प्रकारके विषोका अपहारक है।

पृथ्वी, जल तेज वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व हैं। इन पाँचो तत्त्वोके पृथक्-पृथक् मण्डल होते हैं तथा उन-उन मण्डलोंके अधिष्ठाता ये पृथ्वी आदि देवता ही माने गये हैं। अन्य देवता भी इन मण्डलोमे स्थित रहते हैं। इनके पृथक्-पृथक् मन्त्र भी हैं। इन मण्डलाधिपति देवताओके मन्त्रोका यथाविधि न्यासपूर्वक जप करनेसे अभीष्ट-सिद्धि होती है और विष-बाधा दूर हो जाती है।

साधकको चाहिये कि वह पृथक्-पृथक् पाँचो मण्डलोंके स्वरूप तथा उनके अधिष्ठातृ देवोका ध्यान कर। मण्डलोका स्वरूप इस प्रकार है—पृथ्वीमण्डल चौकोर फैला हुआ चारा ओर मुखवाला तथा पीले वर्णका कहा गया है तथा यह मण्डल इन्द्रदेवतापरक है। वरुणमण्डल (जलमण्डल) पद्माकार तथा अर्धचन्द्रयुक्त है। इन्द्रनीलमणिके समान कान्तिवाले, सौम्यस्वरूप, स्वस्तिकसे युक्त, त्रिकोण आकारवाले अग्निमण्डलमे ज्वालामालाओसे समन्वित अग्निका ध्यान करना चाहिये। विभिन्न ओषधियाको पीसकर तैयार किये गये सुरमेके समान कान्तिवाले वृत्ताकार बिन्दुयुक्त वायुमण्डलम वायुका ध्यान करे। आकाशमण्डलका चिन्तन क्षीरसागरमे उठती हुई लहरोंके समान आकारवाले शुद्ध स्फटिकके सदृश आभावाले तथा सम्पूर्ण ससारको अपनी अमृतमयी रश्मियोसे आप्लावित करनेवालेके रूपमे करे।

जो अष्ट महानाग कहे गये हैं, उनमेसे वासुकि और शखपाल नामक नाग पृथ्वीमण्डलमें स्थित रहते हैं। कर्कोटक तथा पद्मनाभ नामक दो नागोका वास वरुणमण्डल (जलमण्डल)-मे है। कुलिक और तक्षक नामक ना अग्निमण्डलमे निवास करते हैं। महापद्म तथा पद्म नामक नाग वायुमण्डलमें रहते हैं। साधकको इन नागोका ध्यान करके पृथ्वी आदि पञ्चभूत-तत्त्वोका न्यास करना चाहिये। अगुष्ठसे लेकर कनिष्ठापर्यन्त अगुलियामें अनुलोम और

श्री कुबलो नागरी

विलोम-रीतिसे न्यास करना चाहिये। अगुलियोकी पर्वसधियोमे जया तथा विजया नामक दो शक्तियोका न्यास करना चाहिये।

पुन अपने शरीरम शिवषडङ्गन्यास, पञ्चतत्त्वन्यास तथा व्यापक-न्यास करे। देवताके नामके आदिम 'प्रणव' तथा अन्तमे 'नम' प्रयुक्त करे, यह विधि स्थापन एव पूजनादिक-मन्त्रके रूपमे बतलायी गयी है। देवताके नामके आद्य अक्षर भी मन्त्ररूप होते हैं। आठो नागोके जो मन्त्र हैं, वे उसके सनिधानको प्राप्त करानेवाले हैं। पञ्चतत्त्वोके साथ आदिमे 'ॐ' और अन्तमे 'स्वाहा' लगानेसे मन्त्र बन जाते हैं। ऐसा करनेसे ये मन्त्र साक्षात् गरुडके समान साधकके सभी अभीष्ट कर्मोंको सिद्ध करनेवाले हा जाते हैं।

स्वर-वर्णोंसे करन्यास करके पुन उन्हींसे शरीरके अन्य अङ्गोमे भी न्यास करना चाहिये। तदनन्तर आत्मशुद्धिकारक उद्दीप्त प्राणशक्तिका चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद साधकको अमृतकी वर्षा करनेवाले बीजका ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार आप्यायन करके साधकको अपने मस्तिष्कमे आत्मतत्त्वका चिन्तन करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वर्णके समान कान्तिवाली, समस्त लोकामे फैली हुई तथा लोकपालोसे समन्वित पृथ्वीका दोनो पैरोंमे न्यास करना चाहिये।

बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि वह भगवती पृथ्वीदेवीका अपने सम्पूर्ण देहमे न्यास करे। इसी प्रकार अपने देहके अङ्गोमे शेष चार मण्डलो तथा उनम स्थित देवोका न्यास करे। इस प्रकार पञ्चभूत-तत्त्वाका न्यास करके यथाक्रम आठ नागोका न्यास-ध्यान करना चाहिये।

इसके बाद स्थावर और जगम प्राणियाके विष-दोषका विनाश करनेके लिये पक्षिराज गरुडका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—गरुडदेव अपने दोना पैरो पखो तथा चोचद्वारा पकडे हुए कृष्णवर्णवाले नागोसे विभूषित हैं। ग्रह, भूत पिशाच, डाकिनी यक्ष, राक्षसका उपद्रव होनेपर विषधर नागोसे घिरे हुए भगवान् शिवका अपने शरीरमे न्यास करना चाहिये।

यथाविधि ध्यान-पूजन आदि कृत्याको करके साधकको सभी कर्मोंमे सिद्धि प्राप्त करनेके लिये अभीष्ट रूप धारण करनेवाले, मनपर विजय प्राप्त करनेम समर्थ, सम्पूर्ण ससारको अपने रसमे आप्लावित करनेवाले एव सृष्टि तथा सहारके कारण, अपने प्रकाशपुञ्जसे उद्दीप्त और समस्त ब्रह्माण्डमे व्याप्त, दस भुजाओ और चार मुखोवाले, पिङ्गलवर्णके नेत्रवाले, हाथमे शूल धारण करनेवाले, भयकर दाँतवाले, अत्यन्त उग्र, त्रिनेत्र तथा चन्द्रचूडसे विभूषित और गरुडस्वरूप भैरवका चिन्तन करना चाहिये।

नागोका विनाश करनेके लिये उन परमतत्त्वने महाभयकर गरुडका रूप धारण किया है। विराट्-रूप भगवान् गरुडके दोनो पैर पाताललोकमे स्थित हैं और उनके सभी पख समस्त दिशाओमे फैले हुए हैं। सातो स्वर्ग उनके वक्ष स्थलपर विद्यमान हैं। ब्रह्माण्ड उनके कण्ठका आश्रय लेकर अवस्थित है, पूर्वसे लेकर ईशानपर्यन्त आठा दिशाओको उनका शिरोभाग समझना चाहिये। अपनी तीनो शक्तियोसे समन्वित सदाशिव इनके शिखामूलमे स्थित हैं। ये तार्क्ष्य (गरुड) साक्षात् परात्पर शिव और समस्त भुवनोके नायक हैं। त्रिनेत्रधारी, उग्र स्वरूपवाले, नागाके विषाके विनाशक, सबको ग्रास बनानेवाले भीषण मुखवाले, गरुडमन्त्रके मूर्तरूप, कालाग्निके सदृश देदीप्यमान गरुडदेवका अपने समस्त अभीष्ट कर्मोंकी सिद्धिके लिये चिन्तन करना चाहिये। जो मनुष्य न्यास-ध्यानकी विधि सम्पन्न करके इन देवकी पूजा करता है, उसका सब कुछ सिद्ध हो जाता है तथा वह स्वय गरुडदेवकी शक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। भूत, प्रेत, यक्ष, नाग गन्धर्व तथा राक्षस आदि तो उसके दर्शनमात्रसे ही भाग जाते हैं। चौथिया आदि ज्वर भी विनष्ट हो जाते हैं। (अध्याय १९७)

त्रिपुराभैरवी तथा ज्वालामुखी आदि देवियोके पूजनकी विधि

भैरवने कहा—इसके बाद मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली त्रिपुरादेवीकी पूजा आदिका वर्णन करूँगा। उसे आप सुने।

देवीका यथाविधि '**ॐ ह्रीं आगच्छ देवि**'—इस मन्त्रसे आवाहन करके '**ऐ ह्रीं ह्रीं**'—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए रेखा करके '**ॐ ह्री क्लेदिनी भ नम**'—इस मन्त्रसे उन्हे प्रणाम करे तथा उनकी शक्तियोके साथ महाप्रेतासनपर विराजमान रहनेवाली देवी त्रिपुराभैरवीका पूजन करे। '**ऐ ह्रीं त्रिपुरायै नम**'—इस मन्त्रसे उन्हे नमस्कार करे। देवीके पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व आदि मुखोको भी नमस्कार करे। '**ॐ ह्री पाशाय नम**', '**क्री अङ्कुशाय नम**' '**ऐ कपालाय नम**' इत्यादि मन्त्रोसे उनके पाश अकुश, कपाल आदि आयुधाको नमस्कार करे। त्रिपुराभैरवीदेवीकी पूजामे आठ भैरवो तथा उनके साथ मातृकाआकी भी पूजा करनी चाहिये। असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, चण्डभैरव, क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालिभैरव, भीपणभैरव तथा सहारभैरव—ये आठ भैरव है। ब्रह्माणी, माहेश्वरी कौमारी वेष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा तथा अपराजिता (दुर्गा)—ये आठ मातृकाएँ हैं। पूजकको चाहिये कि वह '**ॐ कामरूपाय असिताङ्गाय भैरवाय नमो ब्रह्माण्यै**'—इस मन्त्रस पूर्व दिशामे कामरूप असिताङ्गभैरव और देवी ब्रह्माणीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। उसके बाद '**ॐ स्कन्दाय नम, रुरुभैरवाय नम, माहेश्वर्यै नम**' मन्त्राद्वारा दक्षिण दिशामे स्कन्ददेव रुरुभैरव और देवी माहेश्वरीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। '**ॐ चण्डाय नम, कौमार्यै नम**' इन मन्त्रासे पश्चिम दिशामे चण्डभैरव तथा दवी कौमारीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। तत्पश्चात् **ॐ उल्काय नम ॐ क्रोधाय नम, ॐ वैष्णव्यै नम**—इन मन्त्रासे उत्तर दिशाम उल्कादेव क्रोधभैरव और देवी वैष्णवीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। '**ॐ अघोराय नम, ॐ उन्मत्तभैरवाय नम, ॐ वाराह्यै नम**'—इन मन्त्रोंसे अग्निकोणम अघोरदेव, उन्मत्तभैरव और देवी वाराहीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर '**ॐ साराय कपालिभैरवाय नम, ॐ माहेन्द्र्यै नम**'—इन मन्त्रोद्वारा नैर्ऋत्यकोणमें समस्त ससारके सारभूत स्वरूप कपालिभैरव और देवी माहेन्द्रीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। उसके बाद साधकको '**ॐ जालन्धराय नम, ॐ भीषणाय भैरवाय नम, ॐ चामुण्डायै नम**'—इन मन्त्रोसे वायुकोणमे जालन्धर, भीपणभैरव और देवी चामुण्डाका आवाहनपूर्वक पूजन करना चाहिये। तदनन्तर '**ॐ वटुकाय नम, ॐ सहाराय नम, ॐ चण्डिकायै नम**'—इन मन्त्रोसे ईशानकोणमें वटुकभैरव, सहारभैरव तथा देवी चण्डिकाका आवाहन करके उनकी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद साधकको रतिदेवी, प्रीतिदेवी कामदेव और उनके पञ्चबाणोकी पूजा भी करनी चाहिये। इस प्रकार सदैव ध्यान, पूजा, जप तथा होम करनेसे देवी सिद्ध हो जाती हैं। नित्यक्लिन्ना, त्रिपुराभैरवी और ज्वालामुखी नामक देवियाँ समस्त व्याधियाकी विनाशिका हैं। अब मैं ज्वालामुखीदेवीके पूजनका क्रम कहूँगा। पद्मके मध्य देवी ज्वालामुखीकी पूजा करनी चाहिये तथा पद्मके बाह्य दलामे क्रमश—नित्या, अरुणा, मदनातुरा, महामोहा प्रकृति, महेन्द्राणी, कलनाकर्षिणी, भारती, ब्रह्माणी माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री चामुण्डा, अपराजिता विजया अजिता मोहिनी, त्वरिता स्तम्भिनी जृम्भिणी तथा देवी कालिकाकी पूजा करनी चाहिये। देवी ज्वालामुखीकी यथाविधि पूजा करनेसे विष आदि दोप दूर हा जाते हैं।

भैरवने पुन कहा—चूडामणि-यन्त्रके द्वारा प्रश्नकर्ताको शुभ एव अशुभ समयका परिज्ञान हो जाता है।

(अध्याय १९८-१९९)

वायुजय-निरूपण

भैरवने कहा—हे देवि! अब मैं जय-पराजय तथा विदेश-यात्राके शुभाशुभ मुहूर्तका सकेत देनेवाले 'वायुजय' नामक विद्याका वर्णन करूँगा।

वायु, अग्नि, जल और इन्द्रको माङ्गलिक चतुष्टयके नामसे जाना जाता है। प्राय प्राणीके शरीरमे वायु अधिकतर वाम और दक्षिणभागकी नाडियोसे प्रवाहित होता है। अग्नि शरीरमें ऊर्ध्वगामी होता है और जल अधोगामी। महेन्द्र तत्त्व शरीरके मध्यभागमे स्थित रहता है, किंतु शुक्लपक्षमे वह वामभाग तथा कृष्णपक्षमे दक्षिण-भागकी नाडियोंसे होकर शरीरमे प्रवाहित होता है। प्रत्येक पक्षका प्रारम्भिक तीन-तीन दिन इसका उदयकाल है। अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तृतीया तिथितक जो वायु नासिकाके वाम छिद्रसे होकर प्रवहमान रहता है और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे लेकर तृतीया तिथिपर्यन्त जो वायु नासिकाके दक्षिण छिद्रसे होकर प्रवहमान रहता है, वह उदयकालका वायु माना जाता है। यदि इस नियमके अनुसार वायुका प्रवाह होता है तो अच्छा होता है, किंतु विपरीत होनेपर पतन होता है। यदि प्राणोके शरीरमे वायु सूर्यमार्गमे उदित होकर चन्द्रमार्गमे अस्त हो तो गुणोमे वृद्धि होती है। इसके विपरीत होनेपर शरीरमे विघ्न होता है।

हे वरानने! दिन और रातमे सोलह सक्रान्तियाँ मानी गयी हैं। आधे-आधे प्रहरके बाद एक-एक सक्रान्तिका परिमाण है। इसी गतिसे शरीरमे प्रवहमान वायुका सक्रमण-काल आता है। जब वायु शरीरके अन्तर्गत आधे प्रहरके बाद ही सक्रान्त होने लगता है, अर्थात् आधे-आधे प्रहरमे वायुका भ्रमण होता है, तो स्वास्थ्यकी हानि अवश्यम्भावी है। भोजन और मैथुनकालमे दाहिने नासापुटसे वायु भ्रमण करे तो हितकर होता है। इस स्थितिमे हाथमे तलवार लेकर योद्धा युद्धमें यथेच्छ शत्रुओको जीत सकता है। समस्त कार्योंमे यदि वाम नासापुटसे वायुका भ्रमण हो तो प्रश्नकर्ताका प्रश्न शुभकर तथा श्रेष्ठ माना गया है। वायुके महेन्द्र तथा वरुण (जल-तत्त्व)-में प्रवाहित होनेपर कोई भी दोष नहीं होता। दाहिनेसे प्रवाहित होनेपर अनावृष्टिका योग तथा बायेंसे प्रवाहित हानेपर वृष्टिका योग होता है। (अध्याय २००)

उत्तम तथा अधम अश्वोंके लक्षण, अश्वोंके आगन्तुज और त्रिदोषज रोगोकी चिकित्सा तथा अश्वशान्ति, गजायुर्वेद, गजचिकित्सा और गजशान्ति

धन्वन्तरिने कहा—अब मैं अश्वायुर्वेद और अश्वोके शुभ-अशुभ लक्षणोंका वर्णन करता हूँ।

जो अश्व कौएके समान नुकीले मुँहवाला काली जीभवाला, वृक्षके समान फैले मुँहवाला, गरम तालुप्रदेशवाला, दोसे अधिक दन्तपङ्क्तियासे युक्त, दाँतरहित, सींगवाला, दाँताके मध्य रिक्त स्थानवाला, एक अण्डकोशसे युक्त अण्डकोशसे रहित, कचुकी (वक्ष स्थलपर कचुकक लक्षणसे समन्वित), दो खुरोसे सम्पन्न स्तनयुक्त, बिलौटेके समान पैरोवाला, व्याघ्रके सदृश रूप एव वर्णसे समन्वित, कुष्ठ तथा विद्रधि रोगके सदृश पुरुषके समान रोगी, जुडवाँ उत्पन्न होनेवाला, बौना, बिलौटे और बदरसदृश नेत्रोवाला हो, वह दोषयुक्त होनेसे त्याज्य है।

उत्तम जातिका घोडा तो वह होता है, जो तुरुष्क प्रदेश (तुर्किस्तानसिन्धु या अरब देश)-मे जन्म लेता है। इसकी ऊँचाई सात हाथ होती है। मध्यम कोटिका घोडा पाँच हाथ और तृतीय कोटिका घोडा तीन हाथ ऊँचा माना गया है। स्वस्थ घोडे छोटे-छोटे कानवाले चितकबरे, प्रभावशाली, उत्साहसम्पन्न और दीर्घजीवी होते हैं।

रेवन्त सूर्यदेवके पुत्र हैं। इनकी पूजा, होम तथा 'ब्राह्मण-भोजन' आदिके द्वारा अश्वोकी रक्षा करनी चाहिये। चीड-वृक्षका काष्ठ, नीमकी पत्ती, गुग्गुल, सरसो, घृत, तिल वचा (वच) और हींगकी पोटली आदिमे रखकर घोडेके गलेमे बाँधनेसे घोडेका सदैव कल्याण होता है।

घोडेके शरीरमे उत्पन्न होनेवाला मुख्य दोष व्रण (घाव

होना) है। यह दो प्रकारका होता है—एक है आगन्तुज व्रणदोष और दूसरा है वात-पित्त आदि त्रिदोषासे उत्पन्न व्रणदोष। वातविकारके कारण उत्पन्न व्रणदोष चिरपाक (देरसे पकनेवाला) होता है और श्लेष्मविकारके कारण उत्पन्न व्रणदोष क्षिप्रपाक (शीघ्र पकनेवाला) होता है। पित्तज दोषके कारण उत्पन्न व्रणदोष घोडेके कण्ठ-भागमे दाह और रक्तविकारके कारण उत्पन्न व्रणमे मन्द-मन्द वेदना होती है। आगन्तुज अर्थात् बाहरसे चोट, गिरने या आघात आदिसे उत्पन्न व्रणदोषका शोधन शल्य-चिकित्साके द्वारा करना चाहिये। व्रणकी यह चिकित्सा करके उसमे एरण्डमूल, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक, सोठ और लहसुन मट्ठे अथवा काँजीमे पीसकर भर देना चाहिये। तिल, सत्तू, दही, सेधानमक और नीमकी पत्ती एक साथ पीसकर उस व्रणपर रखनेसे भी घोडेको लाभ होता है।

परवल, नीमकी पत्ती, वचा (वच), चित्रक, पिप्पली और अदरकका चूर्ण बनाकर घोडेको पिलाना चाहिये। इसके सेवनसे घोडेका कृमिदोष, श्लेष्मविकार तथा वायुप्रकोप नष्ट हो जाता है। नीमकी पत्ती, परवल, त्रिफला और खैरका काढा बनाकर यदि घोडेको पिलाया जाय तो उसका रक्तस्राव बद हो जाता हे। घोडेमे कुष्ठविकार होनेपर तो उसके उपशमनके लिये इसी काढेको तीन दिन देना चाहिये। व्रणयुक्त कुष्ठरोग होनेपर सरसोका तैल बहुत ही लाभप्रद है। लहसुन आदिका काढा देनेसे उसके खाने-पीनेके दोष दूर हो जाते हैं। बिजौरा नीबूका रस जटामासीके रसमे मिलाकर नस्य देनेसे तत्काल घोडेके वातजनित दोषोका विनाश होता है।

घोडेको प्रथम दिन एक पल औषधीय नस्य देना चाहिये। उसके बाद एक-एक पल प्रतिदिन अधिक बढाते हुए अठारह दिनतक उसका उपयोग करना चाहिये। यह मात्रा उत्तम प्रकारके घोडेकी है। मध्यम प्रकारके घोडोकी औषधिकी मात्रा चौदह पल तथा अधम जातिके घोडोकी आठ पल होती है। शरत् और ग्रीष्म ऋतुमे घोडोको ऐसे विकारासे मुक्त करनेके लिये किसी भी प्रकारकी औषधिका नस्य-प्रयोग करना उचित नहीं है। घोडेके वातजन्य रोगमे शर्करा घृत तथा दुग्धसे युक्त तैल श्लैष्मिक रोगमे त्रिकटुसे युक्त कडुवा तैल और पित्तविकारमे त्रिफलाचूर्ण-समन्वित जलसे नस्य देना चाहिये। साठी चावल और दुग्ध खाने-पीनेवाला घोडा अत्यन्त बलशाली होता है। पके हुए जामुनके समान तथा सोनेके सदृश चमकते हुए वर्णवाला अश्व श्रेष्ठ होता है।

भारवाही घोडेको आधे-आधे प्रहरपर गुग्गुलका सेवन कराना चाहिये। जो घोडा बहुत ही जल्दी थक जानेके कारण रुक जाता हो, उसको खीर या दूध पिलाना चाहिये। वातजनित विकार होनेपर घोडेको भोजनमे साठी चावलका भात और दूध देना चाहिये। पित्तविकार होनेपर उसको एक कर्ष अर्थात् दो तोला जटामासीका रस, मधु, मूँगका रस और घृतका मिश्रण देनेसे लाभ होता है। कफ-विकार होनेपर मूँग और कुलथी या कडुवा तथा तिक्त भोज्य-पदार्थ देना चाहिये। बधिरता या ग्रासजन्य रोगसे ग्रस्त होनेपर अथवा त्रिदोषजन्य विकारोके उत्पन्न हो जानेसे दुखित घोडेको गुग्गुलकी औषधि देनी चाहिये। सभी प्रकारके रोगोमें घोडेको पहले दिन अन्य प्रकारकी घासोके साथ एक पल दूर्वा घास देना ही अपेक्षित है। उसके बाद इस मात्राको धीरे-धीरे बढाना चाहिये। एक दिनमे एक कर्ष अर्थात् दो तोला और अधिकतम पाँच पल दिया जा सकता है। सामान्य स्थितिमे घोडेके लिये खाने-पीनेके निमित्त अस्सी पल दूर्वाकी मात्रा श्रेष्ठतम मानी गयी है। उसकी मध्य मात्रा साठ पल और अधम चालीस पल है।

घोडेको व्रण-कुष्ठ तथा खञ्ज-विकार (लँगडानेका विकार) होनेपर त्रिफलाके क्काथमे भोजन मिलाकर देना चाहिये। मन्दाग्नि और शोथ-रोग होनेपर उसको गोमूत्रके साथ भोजन देना चाहिये। वात-पित्तजन्य व्रणविकार अथवा अन्य व्याधि होनेपर गोदुग्ध और घृत मिलाकर घोडेको भोजन देना लाभकारी है। दुर्बल घोडेको मासी नामक औषधिके साथ भोजन देना पुष्टिकारक होता है। शरत् और ग्रीष्म ऋतुमे घोडेको पाँच पल गुडूचीका रस घीमे मिलाकर अथवा दूधमे मिलाकर प्रातःकाल पिलाना चाहिये। यह घोडेके रोगोका विनाश करनेवाली, उनको शक्तिसम्पन्न बनानेवाली और उनके तेजको बढानेवाली है। गुडूची-कल्पके साथ शतावरी और अश्वगन्धा नामक औषधियोंके

रसकी मात्रा क्रमश उत्तम, मध्यम और अधमरूपमे चार पल, तीन पल तथा एक पल निश्चित की गयी है।

यदि घोडोम अकस्मात् एक ही प्रकारका रोग उत्पन्न हो जाय और उपचार होनेपर भी घोडेकी मृत्यु हो जाय तो उसे उपसर्ग (कोई दैवीप्रकोप या महामारी) समझना चाहिये। उसकी शान्तिके लिये हवन, पूजन, ब्राह्मण-भोजन आदि कराना चाहिये। हरीतकी-कल्पके सेवनसे भी उपसर्गकी शान्ति होती है। गोमूत्र, सरसाके तैल और सेधानमकसे युक्त हरीतकीकी मात्रा प्रारम्भमे पाँच मानी गयी है। तत्पश्चात् प्रतिदिन उसकी पाँच-पाँच मात्रा बढाते हुए सौतक की जा सकती है। घोडेके लिये एक सौ हरीतकीकी मात्रा उत्तम है। अस्सी तथा साठ मात्राओका भी परिमाण है जो मध्यम और अधम मात्राएँ मानी गयी हैं।

धन्वन्तरिजीने पुन कहा—हे सुश्रुत! अब मैं (अश्वायुर्वेदकी भाँति) गजायुर्वेदका वर्णन करने जा रहा हूँ, आप उसे सुनें। अश्वचिकित्सामे बताये गये औषधिक कल्प हाथियोके लिये भी हितकारी हैं। हाथीके निमित्त उक्त मात्रा चौगुनी होती है। पूर्ववर्णित औषधियोके द्वारा भी हाथियोमे पाये जानेवाले रोगोको दूर किया जा सकता है। हाथियोकी उपसर्गजनित व्याधिया (दैवीप्रकोप या महामारी आदि)-के उपशमनके लिये गजशान्तिकर्म करना चाहिये। देवताओ और ब्राह्मणाकी रत्न आदिके द्वारा पूजा करके उन्हे कपिला गौका दान दे। रक्षा-मन्त्रासे अभिमन्त्रित वचा (वच) और सरसोको मालामे पिरोकर हाथीके दोनो दाँतोमे बाँधना चाहिये। सूर्य आदि नवग्रहोके तथा शिव, दुर्गा, लक्ष्मी और विष्णुके पूजन आदिसे हाथीकी रक्षा होती है। देवादिकी पूजा करनेके पश्चात् प्राणियोके लिये अन्नादिकी बलि देकर हाथीको चार घडाके जलसे स्नान कराना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रोद्वारा अभिमन्त्रित भोजन हाथीको देना चाहिये। हाथीके पूरे शरीरपर भस्म लगाना चाहिये। त्रिफला, पञ्चकोल (पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रकमूल, साठ), दशमूल, विडङ्ग, शतावरी, गुडूची, नीम, अडूसा और पलाशके चूर्ण अथवा क्काथ हाथीके रोगाको विनष्ट करनेमे समर्थ हैं। (अध्याय २०१)

स्त्रियोके विविध रोगोकी चिकित्सा, बालकोकी रक्षाके उपाय तथा बलवर्धक औषधियाँ

श्रीहरिने कहा—हे शिव! पुनर्नवा अथवा अपामार्ग नामक औषधिकी जडका गुण अद्वितीय है। इसका यथाविधि प्रयोग करनेसे प्रसव-वेदनाका कष्ट दूर हो जाता है। भुइँकुम्हडाकी जड अथवा साठी चावलको पीसकर एक सप्ताहपर्यन्त दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्रियाके दूधकी वृद्धि होती है। हे रुद्र! इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण)-की जडका लेप करनेसे स्त्रियोके स्तनोकी पीडा विनष्ट हो जाती है। नीली, परवलकी जड तथा तिलको जलमे पीसकर घीके साथ तैयार किया गया लेप ज्वालागर्दभ नामक रोगका नाश करता है। पाढाकी जडको चावलके जलके साथ पीनेसे पाप-रोग विनष्ट हो जाता है। ऐसे रोगका विनाश कुष्ठ नामक औषधिके पीनेसे भी सम्भव है। हे शिव! बासी जलमें मधु मिलाकर पीनेसे वह पाप-रोगको दूर कर देता है। गोघृत और लाक्षारसको समभागमे लेकर दूधके साथ उसे पीनेसे प्रदररोग दूर हो जाता है। हे हर! द्विजयष्टी (ब्रह्मदण्डी), त्रिकटु (साठ, काली मिर्च, पीपली)-का चूर्ण तिलके काढेमें मिलाकर पीनेसे स्त्रियोका रक्तगुल्म रोग दूर हो जाता है। हे महेश! लाल कमलका कन्द, तिल तथा शर्कराका औषधिक योग, स्त्रियोमे गर्भधारणकी क्षमता उत्पन्न कर देता है। शर्कराके साथ इन औषधियोको पीनेसे स्त्रियोका गर्भपात रुक जाता है तथा शीतल जलके साथ सेवन करनेसे रक्तस्राव भी बद हो जाता है। हे रुद्र! शरपोङ्खाकी जडका क्काथ और काँजी, हींग तथा सेधानमक मिलाकर पीनेसे स्त्रियोको शीघ्र ही प्रसव हो जाता है। बिजौरा नींबूकी जडको कटिप्रदेशमे बाँधनेसे भी प्रसव यथाशीघ्र हो जाता है। अपामार्गकी जड सिरपर धारण करनेपर स्त्रीको गर्भजनित पीडा नहीं होती।

हे हर! जिस बालकके मस्तकपर गोरोचनका तिलक रहता है और जो बालक शर्करा तथा कुष्ठ नामक

औपधिका पान करता है वह विप, भूत, ग्रह तथा व्याधिजनित विकारोसे दूर रहता है। हे रुद्र! शखनाभि (सुगधित द्रव्यविशेष), वच, कुष्ठ और लोहा (लाहेकी ताबीज या कडुला) बच्चेको सदैव धारण कराना चाहिये। इससे उपसर्गजन्य विपदाओसे बच्चोकी रक्षा होती है।

मधुके सहित पलाश, आँवला और विडङ्गका चूर्ण तथा गोघृतका पान करनेसे प्राणी महामति (कुशाग्रबुद्धिवाला) बन जाता है। हे महादेव! एक मासतक इस औपधिका सेवन करनेसे मनुष्य वृद्धावस्थाजन्य मृत्युक भयस रहित हो जाता है। हे रुद्र! पलाशबीज तिल, मधु और घृत समान भागम लेकर एक सप्ताहतक सेवन करनेसे वृद्धावस्था दूर हो जाती है। आँवलेका चूर्ण, मधु, तैल (तिलका) तथा गोघृतके साथ एक मासपर्यन्त सेवन करनेसे मनुष्य युवा हो उठता है और विद्वान् बन जाता है। हे शिव! आँवलेका चूर्ण मधु अथवा जलके साथ प्रात काल सेवन करनेपर नासिकाकी शक्ति बढ जाती है। जो मनुष्य घी और मधुके साथ कुष्ठचूर्णका सेवन करता है, वह सुन्दर गन्धसे समन्वित देहवाला हो जाता है और एक हजार वर्पतक जीवित रहता है।

(अध्याय २०२)

गो एव अश्व चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे शिव! जो गौ अपने बछडेसे द्वेष करती है, उसे नमकसे युक्त उसीका दूध पिला देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह अपने बछडेसे प्रेम करने लगेगी। कुत्तेकी हड्डीको भैंस और गायके गलेमे बाँधनेसे उनके शरीरमे पडे हुए कीडे गिर जाते हैं, इसम सदेह नहीं है। घुँघुचीकी जडको खिलानेसे भी गायोके शरीरम पडे हुए कीडे विनष्ट हो जाते हैं। हे शिव! वरुणफलके रसको हाथसे मथकर उसे घावमे भरनेसे उसके अदर पडे हुए चार पैरवाले तथा दो पैरवाले कीडे नष्ट हो जाते हैं। हे रुद्र! जया नामक औपधिको घावमे भरनेसे वह सूख जाता है। हाथीका मूत्र पिलानेसे गाय और भैंसोम फैलनेवाला उपसर्ग रोग (दैवी आपदाजन्य महामारी आदि) नष्ट हो जाता है। मट्ठेम मसूर और साठी चावलको घिसकर पिलानेसे भी लाभ होता है।

गाय और भैंसके दूधम तुलनात्मक दृष्टिसे गायका दूध ही पुरुपके लिये विशेष हितकारी होता है। हे शिव! शरपोखाके पत्तेको नमकके साथ खिलानेसे घोडे तथा हाथियोका वारिस्फोट नामक रोग नष्ट हो जाता है। हे हर! घृतकुमारीके पत्तेका नमकके साथ सेवन करानेसे घोडे आदिकी खुजली दूर हो जाती है। (अध्याय २०३)

ओषधियोके पर्यायवाची नाम

सूतजीने कहा—हे ऋपियो! भगवान् धन्वन्तरिने इस प्रकार महर्षि सुश्रुतको वैद्यकशास्त्र सुनाया था। अब मैं औपधियाके पर्यायवाची नाम सक्षिप्त रूपम आप सभीको सुनाऊँगा।

स्थिरा—विदारीगन्धा शालपर्णी तथा अशुमती एक ही औपधिके नाम हैं। लाङ्गली नामक औपधि ही कलसी क्रोष्टापुच्छा तथा गुहा नामसे कही जाती है। पुनर्नवाको वर्पाभू, कठिल्या और करुणा कहा जाता है। उरुवूक आम तथा वर्द्धमानक—ये एरण्डके नाम हैं। झपा और नागबलाको एक ही औपधि माना चाहिये। गोक्षुर अर्थात् गाखुरुको श्वदष्ट्रा कहा गया है। शतावरी नामक औपधि वरा भार पीवरी, इन्दीवरी तथा वरीके नामसे प्रसिद्ध है।

व्याघ्री कृष्णा हसपादी और मधुस्रवा वृहती नामक औपधिके पर्याय हैं। कण्टकारी या कटेरीको क्षुद्रा, सिही तथा निदिग्धिका कहा जाता है। वृश्चिका त्र्यमृता काली और विपघ्नी सर्पदन्ता नामक औपधिके नाम हैं। मर्कटी आत्मगुप्ता आर्पेयी तथा कपिकच्छुका—ये शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं। मुद्गपर्णी और क्षुद्रसहा मूँगके तथा मापपर्णी एव महासहा उडदके पर्याय हैं। दण्डयोन्यङ्क (दण्डिनी)-को त्यजा परा और महा नामसे स्वीकार किया गया है।

न्यगाध वट वरगदका तथा अश्वत्थ और कपिल

पीपलका वाचक है। प्लक्षको गर्दभाण्ड, पर्कटी तथा कपीतन कहा जाता है। अर्जुन वृक्षका नाम पार्थ, ककुभ और धन्वी है। नन्दीवृक्षको प्ररोही तथा पुष्टिकारी कहते हैं। वञ्जुल और वेतस एक ही औषधिके वाचक हैं। भल्लातक तथा अरुष्कर भिलावाको कहा जाता है। लोध्र सारवक धृष्ट और तिरीट नामसे अभिहित है तथा बृहत्फला महाजम्बु और बालफला एक अर्थके वाचक हैं। जलजम्बु नादेयीका नाम है।

कणा, कृष्णा, उपकुची, शौण्डी और मागधिका—ये नाम पिप्पलीके हैं। उसके जाननेवाले लोग उस औषधिकी मूलको ग्रन्थिक कहते हैं। ऊषण नामक औषधिको मरिच तथा विश्वा नामक महौषधिको शुण्ठी या सोठ कहा जाता है। व्योष, कटुत्रय तथा त्र्यूषण इसी औषधिका नाम है। लागलीको हलिनी और शेयसीको गजपिप्पली कहते हैं। त्रायन्तीका त्रायमाणा तथा उत्साका नाम सुवहा है।

चित्रकका नाम शिखी है। इसका वह्नि तथा अग्नि नामसे भी कहा जाता है। षड्ग्रन्था, उग्रा, श्वेता और हैमवती—ये नाम वचाके हैं। कुटजको शक्र, वत्सक तथा गिरिमल्लिका कहा जाता है। उसके बीजोका नाम कलिङ्ग, इन्द्रयव और अरिष्ट है। मुस्तक और मेघ नाम मोथाके वाचक हैं। कौन्ती नामक औषधि हरेणुका नामसे कही जाती है। एला और बहुला शब्द बडी इलायची तथा सूक्ष्मैला एव त्रुटि शब्द छोटी इलायचीके वाचक हैं। भार्ङ्गीका नाम पद्मा तथा काँजीका नाम ब्राह्मणयष्टिका है। मूर्वा नामक औषधि मधुरसा और तेजनीका नाम तिक्तवल्लिका है। महानिम्बको बृहन्निम्ब तथा दीप्यकको यवानिका (अजवाइन) कहा जाता है। विडङ्गका नाम क्रिमिशत्रु है। हिंगु अर्थात् हींगको रामठ भी कहते हैं। अजाजी जीरक अर्थात् जीरेका पर्यायवाची शब्द है। उपकुचिकाको कारवी कहा जाता है। कटुला, तिक्ता तथा कटुराहिणी—ये तीन कटुकी नामक औषधिके वाचक हैं। तगरका नाम नत और वक्र है। चोच त्वच तथा वराङ्गक दारुचानी नामक औषधि कहलाती है। उदीच्यको बालक (माथा) तथा ह्रीबेरको अम्बुबालकके नामस अभिहित किया गया है। पत्रक और दल नाम तेजपत्ताके हैं। आरकको तस्कर कहा जाता है। हेमाभ नामक औषधिका नाम नाग भी है। इसलिये इसको लोग नागकेशर कहते हैं। असृक् तथा काश्मीरबाह्लीक शब्द कुंकुमके वाचक हैं।

पुर, कुटनट, महिषाक्ष तथा पलङ्कषा शब्द गुग्गुलके वाचक हैं। काश्मीरी और कट्फला श्रीपर्णीको कहा जाता है। शल्लकी, गजभक्ष्या, पत्री, सुरभी तथा श्रवा नाम गजारी औषधिके हैं। आँवलाको धात्री और आमलकी तथा अक्ष एव विभीतक बहेडाको कहा जाता है। पथ्या, अभया, पूतना और हरीतकी शब्द हर्रेके पर्यायवाची हैं। इन तीना फलोको एकम मिलाकर त्रिफला कहा जाता है। करज या कजा उदकीर्य्य तथा दीर्घवृत्तके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। यष्टी, यष्ट्याह्वय, मधुक और मधुयष्टी—ये जेठी मधुके वाचक हैं। धातकी, ताम्रपर्णी, समङ्गा तथा कुजरा धातीफूलके नाम माने गये हैं। सित, मलयज, शीत और गोशीर्षको श्वेतचन्दन कहा जाता है। जो चन्दन रक्तके सदृश लाल होता है उसका नाम रक्तचन्दन है। काकोली नामकी औषधिको वीरा, वयस्या और अर्कपुष्पिकाके नामसे भी कहा जाता है। शृगी नामक औषधि कर्कटशृगी तथा महाघोपाके नामसे प्रसिद्ध है। वशलोचनको तुगाक्षीरी, शुभा और वाशीके नामसे भी जाना जाता है। द्राक्षाका नाम मृद्वीका तथा गोस्तनिका है।

उशीर अर्थात् खस नामक औषधिका नाम मृणाल ओर लामज्जक है। सारको गोपवल्ली, गोपी और भद्रा कहा जाता है। दन्ती नामक औषधिका नाम कटङ्कटेरी भी है। हल्दीको दारु, निशा, हरिद्रा, रजनी, पीतिका और रात्रि कहा गया है। वृक्षादनी, छिन्नरुहा, नीलवल्ली तथा अमृतरसा नामवाली औषधि ही गुडूची है। वसुकोट, वाशिर और काम्पिल्ल नामक औषधि एक ही हैं। पाषाणभेदक, अरिष्ट, अश्मभित् तथा कुट्टभेदक—ये सभी नाम पथरचट्टा या पत्थरचूनाके वाचक हैं। घण्टाकको शुष्कक और सूचकको वचा (वच) नामसे अभिहित किया गया हे। पीतशालको सुरस तथा बीजक नामसे कहा जाता हे। वज्रवृक्षको महावृक्ष स्नुहीको स्नुक् (थृहड) ओर सुधाको गुडा माना गया है। तुलसीको सुरसा तथा उपस्था कहा जाता है। लाग इसीको कुठेरक,

अर्जुनक, पर्णी और सौगन्धिपर्णी भी कहते हैं। नील नामक औषधि सिन्धुवार है और निर्गुण्डीको सुगन्धिका कहा जाता है। सुगन्धिपर्णी नामकी औषधि वासन्ती और कुलजा नामसे जानी जाती है। कालीयक नामक औषधिके पर्यायवाची शब्द हैं—पीतकाष्ठ तथा कतक। गायत्री नामकी औषधिका नाम खादिर है। कन्दर अर्थात् कत्था उसीका भेद माना गया है। नीलकमलके वाचक इन्दीवर, कुवलय, पद्म तथा नीलोत्पल माने गये हैं। सौगन्धिक, शतदल और अब्ज कमलको कहा जाता है। अजवर्ण, ऊर्ज, वाजिकर्ण तथा अश्वकर्ण एक ही औषधिके नाम हैं। श्लेष्मान्तक, शेलु और बहुवार एक ही अर्थके वाचक हैं।

सुनन्दक, ककुद्भद्र, छत्राकी तथा छत्र रास्ना नामकी औषधिके वाचक हैं। कबरी, कुम्भक, धृष्ट, क्षुद्विधा और धनकृत् एक ही औषधिके नाम हैं। कृष्णार्जक तथा कराल नामक औषधि कालमान या काममान नामसे प्रसिद्ध हैं। वरियारा नामक औषधिको प्राची, बला और नदीक्रान्ता कहा जाता है। काकजघा नामकी औषधिका पर्यायवाची शब्द वायसी है। मूषिकपर्णी नामक औषधि भ्रमन्ती और आखुपर्णीके नामसे जानी जाती है। विषमुष्टि, द्रावण और केशमुष्टि—ये तीनो एक ही औषधिके वाचक हैं। किलिही या किणिहीको कटुकी तथा अन्तकको अम्लवेतस कहा जाता है। अश्वत्था और बहुपत्रा एक ही औषधि है इसीको लोग आमलकी भी कहते हैं। अरूपक्रका नाम पत्रशूक है। क्षीरीको राजादन नामसे स्वीकार किया गया है। महापत्रका नाम दाडिम है, इसीको करक भी कहा जाता है। मसूरी, विदली शष्पा तथा कालिन्दी नाम एक ही अर्थके वाचक हैं। कटेरी वृक्षको कण्टका महाश्यामा और वृक्षपादा कहा जाता है। विद्या कुन्ती, त्रिभगी, त्रिपुटी और त्रिवृत्—ये सभी शब्द एक औषधिके वाचक हैं। सप्तला, यवतिक्ता चर्मा और चर्मकसा—ये सभी नाम समान औषधिके माने गये हैं। अक्षिपीलुको शखिनी सुकुमारी और तिक्ताक्षी कहा जाता है। अपराजिता नामक औषधिके पर्यायवाची शब्द हैं गवाक्षी, अमृता श्वेता गिरिकर्णी तथा गवादिनी। काम्पिल्लको रक्ताङ्ग, गुण्डा और रोचनिका कहा जाता है। हेमक्षीरी या स्वर्णक्षीरी नामकी औषधिको पीता, गौरी तथा कालदुग्धिका नामसे स्वीकार किया गया है। गाङ्गेरुकी, नागबला, विशाला और इन्द्रवारुणी अर्थात् इन्द्रायण एक ही औषधिके वाचक हैं। रसाजन नामक औषधिके पर्याय हैं तार्क्ष्य, शैल, नीलवर्ण तथा अजन। शाल्मली या सेमरवृक्षके निर्यासको मोचरस[1]के नामसे अभिहित किया जाता है। प्रत्यक्पुष्पीको खरी और अपामार्गको मयूरक कहा गया है। जगली अडूपाका नाम है सिहास्य वृषवासाक तथा आटरूष। जीवशाक नामक औषधिको जीवक और कर्बुरको शटी नामसे भी कहा गया है। कट्फलका नाम सोमवृक्ष तथा अग्निगन्धाका नाम सुगन्धिका भी है। सोंफको[2] शताङ्ग और शतपुष्पा कहा जाता है। मिसिको मधुरिका माना गया है। पुष्करमूलको पुष्कर तथा पुष्कराह्वय नामसे भी स्वीकार करना चाहिये। यास नामक औषधिके पर्यायवाची शब्द हैं धन्वयास, दुष्पर्श और दुरालभा। वाकुची अर्थात् वकुची, सोमराजी और सोमवल्ली एक ही औषधिके नाम हैं। भँगरइयाको मार्कव, केशराज तथा भृगराज कहा जाता है।

एडगज नामक औषधिको आयुर्वेद एव वनस्पतियोके विद्वान् चक्रमर्दक या चकवड कहते हैं। काकतुण्डी नामक औषधिके वाचक हैं सुरगी तगर, स्नायु, कलनाशा और वायसी। महाकालको बेल तथा तण्डुलीयको घनस्तन कहा जाता है। इक्ष्वाकुको तिक्ततुम्बी और तिक्तालापु कहा जाता है। धामार्गवको कोषातकी तथा यामिनी कहा जाता है। कृतभेद नामक इस कोषातकी औषधिका एक अन्य भेद है। देवताडक नामक वृक्षक पर्याय हैं जीमूतक तथा खुड्डाक। गृध्रादना, गृध्रनखी, हिङ्गु और काकादनी शब्द हींगके वाचक माने जाते हैं। करवीर (कनेर)-का पर्यायवाची शब्द है अश्वारि तथा अश्वमारक।

सेधानमकको सिन्धु, सैन्धव सिन्धूत्थ तथा मणिमन्थ कहा जाता है। यवक्षार लवणका नाम है क्षार और यवाग्रज। सज्जी या छज्जी मिट्टीका नाम है सर्जिका एव सर्जिकाक्षार। काशीशके नाम हैं पुष्पकाशीश नेत्रभेषज, धातुकाशीश और काशी। यह पुष्प एव धातुभेदसे दो प्रकारका है। पङ्कपर्पटी

१ सेमलके गोदको मोचरस कहते हैं।

२ सोयाको सस्कृतमें मिश्रेया कहते हैं (भाग २ द्रव्यगुण-प्रियव्र० पृ० ३८०)

(गुजराती मिट्टी)-को सौराष्ट्री, मृत्तिकाक्षार तथा काक्षी कहा जाता है। स्वर्णमाक्षिका नामक मिट्टीके पर्याय हैं माक्षिक, ताप्य, ताप्युत्थ और ताप्यसम्भवा। मन शिला या मैनसिलका नाम है शिला। नेपाली मन शिलाको कुलटी कहा जाता है। हरितालके लिये आल अथवा मनस्ताल नाम प्रयुक्त होता है। गन्धक, गन्धपाषाण तथा रस पारद या पारा कहलाता है। ताँबेके वाचक हैं ताम्र औदुम्बर, शुल्व और म्लेच्छमुख। लोहेको अद्रिसार, अयस्, लोहक तथा तीक्ष्ण भी कहा जाता है।

मधु शब्दके पर्यायवाचा हैं माक्षिक, मधु, क्षौद्र और पुष्परस। इसके दो उपभेद हैं—ज्येष्ठा मधु तथा ठदकी मधु। काँजीको सुवीरक नामसे अभिहित किया गया है। शर्कराको सिता सितोपला और मत्स्याण्डीके नामसे कहा जाता है।

त्रिसुगन्धि नामक औषधिका निर्माण दारुचीनी नामक वृक्षकी छाल, इलायची तथा तेजपत्ताका समान मात्रामें मिलानेपर होता है, इसे त्रिजातक कहा जाता है, उसमे नागकेशरका मिश्रण कर देनेपर वह चतुर्जातक कहलाता है। पिप्पली, पिप्पलीमूल चव्य, चित्रक और नागरके मिश्रित स्वरूपको पञ्चकोल और कोल कहा जाता है।

प्रियगुको कगुका (काकुन) तथा कोद्रव या कोदोको कोरदूषके नामसे जानना चाहिये। त्रिपुटका नाम पुट है और कलापका लङ्कक नाम स्वीकार किया गया है। वेणु अर्थात् बाँसको सतीन तथा वर्तुल भी कहा जाता है।

पिचुक, पित्तल, अक्ष और विडालपदक शब्द तौल-परिमाणमे एक कर्ष (सोलह मासा)-के वाचक हैं। सुवर्ण तथा कवलग्रहका बराबर मान है। पलार्ध अर्थात् आधा पल एक शुकित तथा आठ मापक भारम समान है। पल बिल्व और मुट्ठीका परिमाण समान होता है। दो पलकी मात्राको प्रसृति अर्थात् एक पसर कहा गया है। अजलि और कुडवका मान चार पलके बराबर होता है। आठ पलको अष्टमान कहा जाता है, उसे मान भी कहा गया है। चार कुडवका एक प्रस्थ (एक सेर) और चार प्रस्थका एक आढक अर्थात् एक अढैया होता है। इसीको एक कासपात्र कहा गया है। चार आढकका एक द्रोण होता है। एक सौ पलका एक तुला और बीस पलका एक भाग माना गया है। विद्वानाने प्रस्थ आदिकी मात्राम प्राप्त होनेवाले द्रव्याका मान तो इस प्रकारसे कहा है, किंतु द्रव-पदार्थोंकी मात्राको उसका दुगुना स्वीकार किया गया है।

भद्रदारु, दवकाष्ठ तथा दारु देवदारके वाचक हैं। कुष्ठको आमय और मासीको नलदश कहा गया है। शख नामक औषधिका नाम शुक्तिनख है तथा व्याघ्र नामकी औषधि व्याघ्रनखी या व्याघ्रनख शब्दस कही गयी है। गुग्गुल नामकी औषधिके वाचक पुर पलङ्कष तथा महिषाक्ष शब्द हैं। रस गन्ध-रसका पर्यायवाची है इसीको बोल भी कहा जाता है। सर्ज अर्थात् राल सर्जरसका बोधक है। प्रियङ्गु फलिनी, श्यामा, गौरी और कान्ता—इन नामास अभिहित किया जाता है। करज या कजका नाम नक्तमाल पूतिक तथा चिरबिल्वक है। शिग्रु शाभाञ्जन तथा रोनमान नामसे प्रसिद्ध है। इसे सहिजन भी कहा जाता है। सिन्धुवार नामक औषधिके वाचक हैं—जया, जयन्ती, शरणी और निर्गुण्डी। मोरटा नामक औषधि पीलुपर्णी (मूर्वा) है तथा तुण्डीका नाम तुण्डिकरी है।

मदन-वृक्षको गालव चोधा, घाटा और घोटी कहा जाता है। चतुरङ्गुल नामक औषधि सम्पाक तथा व्याधिघातक नामसे भी प्रसिद्ध है। आरग्वधका नाम राजवृक्ष और रैवत है। दन्तीको लोग काकेन्दु, तिक्ता, कण्टकी और विकङ्कत कहते हैं। निम्बको अरिष्ट कहा गया है तथा पटोलका एक नाम कोलक (परवल) है। वयस्थाका नाम विशल्या छिन्ना और छिन्नरहा है। गुडूचीक पर्यायवाची हैं—वशा, दन्ती तथा अमृता। किराततिक्तका नाम भूनिम्ब और काण्डतिक्त है।

सूतजीने कहा—हे शौनक! ये सभी नाम वनम उत्पन्न होनेवाली औषधियाके हैं। इन्हीं वनस्पतियाका वर्णन भगवान् श्रीहरिने शिवजीसे किया था। अब मैं कुमार अर्थात् भगवान् स्कन्दके द्वारा कह गये व्याकरणशास्त्रका बतलाऊँगा उसे आप ध्यानपूर्वक सुने। (अध्याय २०४)

व्याकरण-निरूपण

कुमारने कहा—हे कात्यायन! अब मैं संक्षेपमें व्याकरणके विषयमें बतला रहा हूँ। यह व्याकरणसे सिद्ध शब्दोंके ज्ञानके लिये तथा बालकोंकी व्युत्पत्ति-प्रक्रिया बढ़ानेके लिये है।

सुबन्त और तिङन्त—ये दो प्रकारके पद होते हैं। सुप् प्रत्यय सात विभक्तियोंमें बँटे हैं। सु, औ, जस्—यह प्रथमा विभक्ति है। प्रथमा विभक्ति प्रातिपदिकार्थमें, सम्बोधन-अर्थमें, लिङ्गादि-बोधक-अर्थमें तथा कर्मके उक्त होनेपर कर्मवाचक-पदसे और कर्ताके उक्त होनेपर कर्तृवाचक-पदसे होती है। धातु और प्रत्ययसे भिन्न अर्थवान् शब्दस्वरूपकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है। अम्, औट्, शस्—यह द्वितीया विभक्ति है। द्वितीया विभक्ति कर्म-अर्थमें होती है। अन्तरा, अन्तरेण पदोंके योगमें भी द्वितीया विभक्ति होती है। टा, भ्याम्, भिस्—यह तृतीया विभक्ति है। तृतीया विभक्ति करण और कर्ता-अर्थमें होती है। क्रिया (फल)-की सिद्धिमें अत्यन्त उपकारक कारककी करण संज्ञा होती है। क्रियाके प्रधान आश्रयको कर्ता कहते हैं। ङे, भ्याम्, भ्यस्—यह चतुर्थी विभक्ति है। चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान कारकके अर्थमें होती है। रुच्यर्थक धातुके योगमें तृप्त होनेवालेकी ण्यन्त धृ धातुके प्रयोगमें उत्तमर्णकी एवं दानके उद्देश्यकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। ङसि, भ्याम्, भ्यस्—यह पञ्चमी विभक्ति है। पञ्चमी विभक्ति अपादान कारकके अर्थमें होती है। जिससे पृथक् हुआ जाता है, जिससे लिया जाता है, जिसके समीपमें लिया जाता है या जो भयका हेतु होता है उसकी अपादान संज्ञा होती है। ङस्, ओस् और आम्—यह षष्ठी विभक्ति है। यह विभक्ति मुख्यरूपसे स्व-स्वामिभाव-सम्बन्धमें होती है। वस्तुतः सम्बन्ध सामान्य षष्ठीका अर्थ है। [इस सम्बन्धमें 'एकशतं षष्ठ्यर्थाः' (षष्ठी विभक्तिके सौ अर्थ होते हैं) यह भाष्य अनुसंधेय है।] ङि ओस्, सुप्—यह सप्तमी विभक्ति है। सप्तमी विभक्ति अधिकरण-अर्थमें हुआ करती है। आधारकी अधिकरण संज्ञा होती है। आधार औपश्लेषिक वैषयिक और अभिव्यापक-भेदसे तीन प्रकारका होता है। वारणार्थक धातुके योगमें ईप्सित और अनीप्सितकी भी अपादान संज्ञा होती है। वारणार्थक धातुके प्रयोगमें जो ईप्सित अभीष्ट हो उसकी अपादान संज्ञा होती है तथा अनीप्सित (अनीच्छित)-की कर्म संज्ञा होती है। कर्मप्रवचनीयसंज्ञक परि, अप, आङ् के योगमें तथा इतर, ऋते (बिना) अन्य-दिक् (दिशा)-वाचक शब्दका योग होनेपर पञ्चमी विभक्ति होती है। प्रत्ययान्तके एन योगमें द्वितीया विभक्ति होती है कर्मप्रवचनीय-संज्ञक पदोंके योगमें भी द्वितीया विभक्ति होती है। लक्षण-अर्थमें, इत्थम्भूत तथा आख्यान-अर्थमें और वीप्सा-अर्थमें प्रति, परि, अनुकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। हीन-अर्थमें अनुकी अधिक अर्थमें उप उपसर्गकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। अध्ववाचक-शब्दके कर्ममें और गत्यर्थक धातुके कर्ममें द्वितीया तथा चेष्टा-अर्थमें चतुर्थी विभक्ति होती है। दिवादिगणमें पठित मन् धातुके कर्ममें अनादरके तात्पर्यसे अप्राणिवाचक पदमें द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति होती है।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट्का योग होनेपर तथा तादर्थ्यके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है। भाववाची तदर्थसे विहित तुमुन् प्रत्ययान्तसे चतुर्थी होती है।

सह शब्दसे युक्त और विकृत-अङ्गवाचक शब्दमें तृतीया विभक्ति होती है। कालार्थक तथा भावार्थक शब्दोंमें सप्तमी विभक्तिके प्रयोगका विधान है, किंतु षष्ठी विभक्तिका भी प्रयोग इन अर्थोंमें किया जाता है। स्वामी ईश्वर, अधिपति, साक्षी, दायाद, प्रतिभू और प्रसूत—इन शब्दोंके योगमें षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति होती है। निर्धारण-अर्थमें षष्ठी तथा सप्तमी दोनों विभक्ति होती हैं। हेतुवाचक शब्दके प्रयोगमें हेतुद्योत्य होनेपर मात्र षष्ठी विभक्ति होती है।

स्मरणार्थक धातुके कर्ममें और प्रतियत्नार्थक कृ धातुके कर्ममें तथा शेषत्वकी विवक्षामें षष्ठी विभक्ति ही होती है। हिंसार्थक जास् नि पूर्वक और प्र पूर्वक हन् अपि और नाट् क्राथ् एवं पिष् धातुओंके कर्ममें शेषत्वकी विवक्षामें षष्ठी होती है तथा कृदन्त पदोंके योगमें कर्तृकर्मवाचक-पदसे षष्ठी होती है। निष्ठाप्रत्ययान्तके योगमें

कर्तृकर्मवाचक-पदसे षष्ठी विभक्ति नहीं होती।

प्रातिपदिक नाम और नामधातु—इन दो भागोमे विभक्त हो जाता है। भू आदि धातुओसे लट् आदि दस लकार होते हैं, जिनके स्थानपर तिङ् प्रत्यय हुआ करते हैं। तिप्, तस्, झि प्रथमपुरुष है। सिप्, थस्, थ मध्यमपुरुष-सञ्ज्ञक प्रत्यय हैं और मिप्, वस्, मस् उत्तमपुरुष-सञ्ज्ञक प्रत्यय हैं। इन प्रत्ययाकी परस्मैपद सञ्ज्ञा होती है। आत्मनेपदसञ्ज्ञक प्रत्यय त, आताम्, झ की प्रथमपुरुष सञ्ज्ञा तथा थास् आथाम्, ध्वम् की मध्यमपुरुष सञ्ज्ञा और इट्, वहिङ्, महिङ् की उत्तमपुरुष सञ्ज्ञा होती है। ये परस्मैपद एव आत्मनेपद प्रत्यय णिच् आदि प्रत्ययाकी भाँति धातुसे विहित होते हैं।

युष्मद् और अस्मद्से अतिरिक्त क्रियाका कर्ता होनेपर धातुसे प्रथमपुरुष-सञ्ज्ञक प्रत्यय हाते हैं। कर्ताके रूपम युष्मद् शब्दका प्रयोग होनेपर मध्यमपुरुष और कर्ताके रूपमें अस्मद् शब्दका प्रयोग होनेपर उत्तमपुरुष होता है। भू आदिकी धातु सञ्ज्ञा होती है। सन्, क्यच्, काम्यच् आदि प्रत्यय जिसके अन्तम हो उनकी भी धातु सञ्ज्ञा होती है। लट् लकारका प्रयोग वर्तमान कालके लिये होता है तथा 'स्म'का योग हो जानेपर वही क्रिया भूतकालिक हो जाती है। लिट् भूतकाल (परोक्ष)-के लिये प्रयोज्य है। अनद्यतन भूतके अर्थमे लङ् लकार होता है। आज्ञा तथा आशीर्वादकी क्रियाक निमित्त लोट् आदि लकाराका प्रयोग होता है। विधि आदि अर्थमे भी लाट्का प्रयोग हो सकता है। विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न तथा प्रार्थनाके अर्थमे जो लिङ् होता है, उसे विधिलिङ् तथा आशीर्वादके अर्थम जो लिङ् होता है उसे आशिष्लिङ् कहते हे। भविष्य (सामान्य)-मे लृट् लकार हाता है और अनद्यतन भविष्यम लुट् लकार होता है। हेतुहेतुमद्भावके विषयमे क्रियाकी अनिष्पत्ति गम्यमान हो तो भविष्य और भूत-अर्थोम लृङ् लकार होता है। लिङ् के अर्थमे लेट् लकार होता है, किंतु इसका प्रयोग केवल वेदमे होता हे।

लकार सकर्मक धातुसे कर्ता या कर्म-अर्थमे तथा अकर्मक धातुसे भाव या कर्ता-अर्थमे होते हैं। कृतसञ्ज्ञक प्रत्यय कर्ता अथवा कर्म अथवा भाव-अर्थम होते हैं। इसी प्रकार तव्यत् आदि कृत्-सञ्ज्ञक प्रत्यय तथा अनीयर, तृच् आदि प्रत्यय होते हैं। (अध्याय २०५)

व्याकरणसार

सूतजीने कहा—हे विप्रो! अब मैं संहिता आदिसे युक्त सिद्ध शब्दोको बतलाने जा रहा हूँ। आप उसे सुन— सागता, वीद सूतमम्, पितृर्षभ, लृकार—इन पदामे दीर्घ सन्धि है। लागलीषा, मनीषा—यहाँ पररूप सन्धि है। इसी प्रकार गगोदकम् (यहाँ गुण हुआ है।) तवल्कार (यहाँ गुण), ऋणार्णम्, प्रार्णम्में (वृद्धि), शीतार्त म (दीर्घ), सैन्द्री-सौकरमें (वृद्धि), बध्वासन, पित्रर्थ, लनुबन्धमे (यण्), नायक, लवणम्, गाव म (अयादि), एते (गुण) त ईश्वरा म (अय् और यलोप्) (ये शब्द स्वरसन्धिके उदाहरण हैं।) देवी गृहमथो अत्र अ अवेहि पटू इमौ (इनम प्रकृति भाव है।) अश्वा षडस्य (जश्त्वा) तन्न (अनुनासिक), वाक् (चर्त्व), षड्दलानि (जश्त्वा), तच्चरेत् (श्चुत्व-चर्त्व), तल्लुनाति (परसवर्ण) तज्जलम् (श्चुत्व), तच्छ्मशानकम् (छत्व-श्चुत्व), सुगण्णत्र, पचन्नत्र (नुट् आगम), भवाश्छादयति (अनुस्वार सुट्-श्चुत्व), भवाञ्ज्ञनकर (परसवर्ण), भवास्तरति (अनुस्वार-सुट्), भवाँल्लिखति (परसवर्ण), ताञ्चक्रे (श्चुत्व), भवाञ्शेते (श्चुत्व) भवाण्डीन त्वन्तरसि त्वङ्करोषि (परसवर्ण) (ये व्यञ्जनसंधिके उदाहरण हैं), सदार्चनम् (दीर्घ), कश्चरेत् (श्चुत्व) कृष्टकारेण (ष्टुत्व), कᳵकुर्यात् कᳶफले (जिह्वामूलीण विसर्ग) कश्शेते (श्चुत्व), कष्पण्ड (ष्टुत्व), कस्क (सत्त्व), क इहात्र क एवाहु— देवा आहु भो व्रज (रुत्व, यत्व यलोप्), स्वयम्भूर्विष्णुर्व्रजति (रुत्व) गीष्पति (षत्व), धूर्पति (रुत्व), कुटीच्छाया (तुक्-श्चुत्व), तथाच्छाया (तुक्-विकल्प)—ये विसर्गसन्धिके उदाहरण है।

समास छ प्रकारके होते हैं (द्वन्द्व, द्विगु, तत्पुरुष,

कर्मधारय, बहुव्रीहि, अव्ययीभाव)। स द्विज = सद्विज (कर्मधारय), त्रिवेद (त्रयाणा वेदाना समाहार द्विगु) तत्कृत तदर्थ वृकभीति , यद्धनम् ज्ञानदक्ष (इनम क्रमश तेन कृत , तस्मै अर्थ , वृकाद् भीति , यस्य धनम्, ज्ञानेदक्ष इस व्युत्पत्तिसे तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी तथा सप्तमी तत्पुरुष समास हे।) तत्त्वज्ञम बहुव्रीहि तथा अधिमानमे अव्ययीभाव समास हैं। देवर्षिमानवा मे देवश्च ऋषिश्च मानवश्च इस व्युत्पत्तिसे द्वन्द्व समास है।

'पाण्डव (पाण्डो अपत्यमिति पाण्डव इत्यर्थे अण्)', शैव (शिवो देवताऽस्य इत्यर्थे अण्)[१], ब्राह्म्यम् (ब्रह्मण भाव कर्म इत्यर्थे ष्यञ्)[२], तथा ब्रह्मता (ब्रह्मण भाव इत्यर्थे तल्)[३], आदि तद्धित प्रत्ययान्त शब्द हैं।

देव, अग्नि, सखि, पति, अश, क्रोष्टा (सियार), स्वायम्भुव, पितृ, नृ, प्रशस्ता (प्रशसक), रै (धन), गौ और ग्लौ (चन्द्रमा)—ये अत्यन्त पुँल्लिङ्गके सिद्ध शब्द हैं। अश्वयुक् (घोडेसे युक्त), क्ष्माभुक्, (पृथ्वीका उपभोग करनेवाला राजा), मरुत् (पवन), क्रव्याद, मृगव्यध, (मृगका पीछा करनवाला शिकारी), आत्मन्, राजन् (राजा), यव, पन्था (मार्ग), पूषन् (सूर्य), ब्रह्महन् (ब्राह्मणको मारनेवाला ब्रह्मघाती), हलिन् (हल धारण करनेवाला मनुष्य), विट् (जार पुरुष), वेधस् (विधाता), उशनम् (उशना-शुक्राचार्य), अनड्वान् (गाडी खींचनेवाला बैल), मधुलिट् (शहद चाटनेवाला भौंरा) तथा काष्ठतट् (कठफोर पक्षी या बढई)—ये हलन्त् पुँल्लिङ्गके अन्तर्गत आनेवाले सिद्ध शब्द हैं।

वन (जगल), वारि (जल), अस्थि (हड्डी), वस्तु (सामग्री), जगत् (ससार) साम्, अह , कर्म सर्पिष् (घी) वपुष् (शरीर), तेजस् (ऊर्जा)—ये आदिके चार शब्द अजन्त और शष हल् प्रत्ययान्त नपुसकलिङ्गके सिद्ध रूप हैं।

जाया (पत्नी) जरा (वृद्धावस्था) नदी लक्ष्मी, श्री, स्त्री भूमि वधू, भ्रू (भौंह) पुनर्भू (पुनर्जन्म) धेनु (गौ) स्वसा (बहन) मातृ (माता) तथा नौ (नौका)—य अजन्त स्त्रीलिङ्गमे सिद्ध रूप हैं।

वाक् (वाणी), स्रक् (माला), दिक् (दिशा), मुद (मुदा-प्रसन्नता), क्रुध् (क्रोध), युवति, ककुभ्, द्यौ (आकाश), दिव् (स्वर्ग), प्रावृट् (वर्षा), सुमना और उष्णिक्—ये हलन्त स्त्रीलिङ्ग सिद्ध रूप हैं।

अब मैं आपको गुण, द्रव्य और क्रियाके यागसे बननेवाले स्त्रीलिङ्गके शब्दोको भी बता रहा हूँ।

शुक्ल (श्वेत), कीलालक (अमृतके समान पेय पदार्थ), शुचि (पवित्रता), ग्रामणी (गाँवका अधिकारी), सुधी (विद्वान्), पटु (चतुर), कमलभू (कमलसे उत्पन्न ब्रह्मा या पराग), कर्तृ (कर्ता), सुमत (सुन्दर विचारोवाला पुरुष), सूनु (पुत्र), सत्या, अभक्ष (न खाने योग्य), दीर्घपा, सर्वविश्वा उभय (दो), उभौ, एक, अन्या (दूसरा) और अन्यतरा (दूसरेमे प्रमुख)—ये सब गुणप्रधान शब्द हैं। जो स्त्रीलिङ्गमे बनते हैं।

इसक बाद डतर (उच्चतर), डतम (उच्चतम), नेम, तु (तो), सम (समान), अथ (तदनन्तर), सिम (प्रत्येक), इतर (अतिरिक्त), पूर्व (प्राचीन), अध (नीचे), च (और), दक्षिण (दक्षिण दिशा), उत्तर (उत्तर दिशा), अवर (अधम) पर (दूसर), अन्तर, एतद् (यह), यद्यत् (जो-जो), कि (क्या) अदस् (यह) इदम् (यह), युष्मत् (तुम), अस्मत् (मैं-हम), तत् (वह), प्रथम (पहला), चरम (अन्तिम), अल्पतया (सक्षेप), अर्ध (आधा), तथा (और), कतिपय (कुछ) द्वौ (दो), चेति (और ऐसा), एव (इस प्रकार)—ये सभी शब्द सर्वनाम हैं। इनको सर्वादिगणम परिगृहीत किया गया है।

शृणाति (सुनता है), जुहाति (हवन करता है) जहाति (परित्याग करता है), दधाति (धारण करता है), दीप्यति (तजस्वी बन रहा है), स्तूयति (स्तुति करता है) पुत्रीयति (पुत्रके समान व्यवहार करता है), धनीयति (धनवान् बन रहा है), न्युद्यति म्रियते (मर रहा है) चिचीषति (सग्रहकी इच्छा कर रहा है) तथा निनीषति (ले जानेकी इच्छा कर रहा है)—ये कतिपय तिडन्तके सिद्ध रूप शब्द हैं।

१ शिवादिभ्योऽण् (पा०सू० ४।१।११२)
२ गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च (पा०सू० ५।१।१२४)
३ तस्य भावस्त्वतलौ (पा०सू० ५।१।११९)

'पूर्वस्मात्' और सप्तमी विभक्तिके एकवचनमे 'पूर्वस्मिन्' रूप बनता है।

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! सुबन्त और तिडन्त पदोके सिद्धरूपका वर्णन नाममात्र ही किया गया है। कुमारसे इस व्याकरणको सुनकर कात्यायनने इसको विस्तारपूर्वक कहा था। (अध्याय २०६)

-विधान

'तगण'—इस प्रकार तीन-तीन वर्णका एक-एक गण होता है। आर्या छन्द चतुष्कला है, इसके आदि, अन्त तथा मध्य सभी जगह चार-चार गण रहते हैं। व्यञ्जनान्त, विसर्गान्त, अनुस्वारयुक्त, दीर्घ एव सयुक्त वर्णका पहला वर्ण गुरु होता है। पदके अन्तम स्थित वर्ण विकल्पसे गुरु होता है। गुरुवर्ण दीर्घ मात्रावाला होता है। श्लोकको श्रवणकी मधुरता आदिके लिये कभी-कभी गुरुवर्ण भी लघुके रूपमें व्यवहृत होता है। छन्दोको श्लोक तथा आर्यादिके नामोसे अभिहित किया जाता है। विच्छेद स्थानको यति (विराम) कहा जाता है। इसका नाम विच्छेदन भी है। निर्दिष्ट स्थानमे यति न होनेपर यतिच्छेद या यतिभङ्ग होता है। श्लोकके चतुर्थांशको पाद कहा जाता है। समान अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ पादको युक् कहा जाता है। विषम अर्थात् प्रथम और तृतीय पादको अयुक् कहा जाता है, वृत्त अर्थात् जिसकी अक्षर-सख्या निर्दिष्ट होती है, वे छन्द तीन प्रकारके हैं—समवृत्त, अर्धसमवृत्त और विषमवृत्त। (अध्याय २०७)

आदि वृत्तोके लक्षण)

पाँचवे गणमे सभी वर्ण लघु (।।।) हो तो उसके प्रथम अक्षरसे ही पदका आरम्भ होता है। जिस आर्याके पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमे तीन-तीन गणोके बाद पहले पादका विराम होता है, उसको पथ्या नामकी आर्या कहते हैं। जिस आर्याके पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध या दोनोमे अथवा तीन गणोपर पादविराम होता है, उसका नाम विपुला है। इन तीन विशेषताओके कारण इसके तीन भेद हो जाते हैं, जिन्हे—१-आदिविपुला, २-अन्त्यविपुला और ३-उभयविपुला कहा गया है। जिस आर्या छन्दके द्वितीय तथा चतुर्थ गण गुरु

अक्षरोके बीचम होनेके साथ ही जगण अर्थात् मध्य गुरु (।ऽ।)-से युक्त हा तो उसे मुखपूर्वादिचपला नामकी आर्या कहते हैं। जिस आर्याके दूसरे उत्तरार्द्धम चपलाका ही लक्षण हो तो उसे सजघना आर्या कहा जाता है। जहाँ आर्याका 'उत्तरार्द्ध' पूर्वार्द्धके समान ही होता है अर्थात् पूर्वार्द्धकी भाँति ही उसके उत्तरार्द्धम भी छठा गण मध्य गुरु (।ऽ।) अथवा सर्व लघु (।।।) होता है तो उसे गीति की सज्ञासे अभिहित करते हैं। यदि आर्याम उत्तरार्द्धकी भाँति पूर्वार्द्ध भी हो तो उसको उपगीति आर्या कहा जाता है। आर्यामे जब यही क्रम विपरीत हो जाता है तो वह गीति न होकर उद्गीति छन्द बन जाता है। यदि गीति-जातिवाले छन्दका अन्तिम वर्ण गुरु हो तो वही आर्या गीति नामक छन्द हो जाता है।

यदि विषम (प्रथम और तृतीय) पादमे ६-६, सम (द्वितीय तथा चतुर्थ) पादम ८-८ मात्राएँ हा और उन सभीका प्रत्येक पाद एक रगण, एक लघु तथा एक गुरुसे सयुक्त हो तो वहाँपर वैतालीय छन्द होता है। किंतु इसीके प्रत्येक चरणमे एक-एक गुरु और बढ जाय तो उसको औपच्छन्दसिक छन्द माना गया है।

उपर्युक्त वैतालीय छन्दके प्रत्येक चरणके अन्तम जो रगण लघु तथा गुरुकी व्यवस्था मानी गयी है, यदि उनके स्थानपर भगण (ऽ।।) एव दा गुरुआ (ऽऽ)-को रख दिया जाय तो उसे आपातलिका छन्दके नामसे जानना चाहिये। यदि इसी छन्दके प्रत्येक पादम द्वितीय मात्रा पराश्रित हो तो वह दक्षिणान्तिका छन्द होता है।

वैतालीय विषमपादम उदीच्य और समपादम प्राच्य वृत्तिका प्रयाग होता है। जब समपाद (द्वितीय तथा चतुर्थ चरण)-म पञ्चम मात्राक साथ चतुर्थ मात्रा सयुक्त हाती है तो उसे प्राच्यवृत्ति एव पादसयोगके कारण जब प्रथम और तृतीय चरणम दूसरी मात्रा तीसरी मात्राके साथ सम्मिलित हो तो उसे उदीच्यवृत्ति नामक वैतालीय छन्द कहते हैं। जब दोना छन्दाके लक्षण एक ही छन्दम प्रयुक्त हा अर्थात् उस छन्दके प्रथम तथा तृतीय चरणम तृतीय मात्राके साथ द्वितीय मात्रा सयुक्त हा जाय और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणम पञ्चम मात्राके साथ चतुर्थ मात्रा सयुक्त हा जाय तो वह प्रवृत्तक नामक वैतालीय छन्द हा जाता है। जब वैतालीय छन्दमे प्रथम और तृतीय, द्वितीय तथा चतुर्थ चरण विषम-पादाके ही अनुसार हा अर्थात् प्रत्येक पाद चौदह लकारो (मात्राओ)-से युक्त हो और उनम द्वितीय मात्रा तृतीयसे सलग्न होती हो तो उसे चारुहासिनी वैतालीय छन्द कहते हैं।

वक्त्र जातिके छन्दमे पादके प्रथम वर्णके पश्चात् सगण (।।ऽ) और नगण (।।।)-का प्रयोग नहीं करना चाहिये। इनके अतिरिक्त उनम अन्य किसी भी गणका प्रयोग हो सकता है, किंतु पादके चतुर्थ अक्षरके बाद भगण (ऽ।।) का प्रयाग उचित है।

जिस वक्त्र जातिके छन्दमे सम (द्वितीय एव चतुर्थ)-पादके चौथे अक्षरके बाद जगण (।ऽ।)-का प्रयोग हो तो वह पथ्यावक्त्र छन्द है, किंतु कुछ लोग इसके विपरीत प्रथम और तृतीय पादमे चौथे अक्षरके बाद जगण (।ऽ।)-का प्रयोग करते हैं। जब विषमपादामे चतुर्थ वर्णके बाद नगण (।।।) हो और समपादाम चतुर्थ वर्णके बाद यगण (।ऽऽ)-का प्रयोग किया जाय तो वह विपुला नामक वक्त्र छन्द है। जब समपादामे सातवाँ अक्षर लघु (।) होता है अर्थात् चौथे वर्णके बाद जगण (।ऽ।) हो तो उसको विपुलावक्त्र छन्द कहते हैं। आचार्य सैतवका मत है कि विपुलावक्त्रके सम और विषम सभी पादोंमें लघु (।) होना चाहिये। जब प्रथम और तृतीय पादमे चतुर्थ अक्षरके बाद यगण (।ऽऽ)-को बाधित करके विकल्परूपसे भगण (ऽ।।) रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।) एव तगण (ऽऽ।) आदि हा तो वहाँ विपुलावक्त्र छन्द होता है।

जिस छन्दके प्रत्येक पादम सोलह लकार हों तथा पादके अन्तिम अक्षर गुरु हा, उसे मात्रासमक छन्द कहा गया है। इस छन्दम नवम लकार किसीसे मिला नहीं रहता। जिस मात्रासमकके चारो चरणामे पाँचवाँ तथा आठवाँ मात्रा (लकार) लघु होती है उसका नाम विश्लोक है। जिस मात्रासमकक चरणम बारहवाँ लकार अपन स्वरूपमें ही स्थित रहता है किसीसे मिलता नहीं उसका नाम वानवासिका है। जिसक चारा चरणाम पाँचवाँ आठवाँ तथा नवाँ मात्रा (लकार) लघु होती है तो उसे चित्रा कहा जाता है।

उपर्युक्त सममात्रिक विश्लोक वानवासिका चित्रा तथा उपचित्रा[1] नामक छन्दाम जिस किसी भी छन्दक एक-एक

[1] जहाँ नवाँ लकार दसवेंके साथ मिलकर गुरु हो जाता है वहाँ उपचित्रा नामक छन्द होता है।

चरणको लेकर उससे चार चरणोवाले अन्य छन्दकी रचना की जाय, उसे पादाकुलक छन्द कहते हैं।

यदि इसी सोलह मात्राओवाले छन्दके प्रत्येक पादमे लघु मात्राओका प्रयोग हो और वे किसीसे मिलकर दीर्घ न हो गयी हो तो उसे **वृत्तमात्रा** छन्द कहते हैं। जब इन्हीं छन्दोंके अनुसार पूर्वार्द्ध भागम लघु-ही-लघु और उत्तरार्द्ध भागम गुरु-ही-गुरु वर्ण या मात्राएँ होती हैं तो उसे ज्योति छन्द कहते हैं। जब इस छन्दके विपरीत पूर्वार्द्ध भागम सब वर्ण या मात्राएँ गुरु हो और उसके उत्तरार्द्ध भागमे सब लघु हो तो उसे **सौम्या** छन्द कहा जाता है।

जिस छन्दके पूर्वार्द्धम अट्ठाईस लघु तथा एक गुरु और उत्तरार्द्धम तीस लघु एव एक गुरु मात्रा हो, उसे **शिखा** कहते हैं। यदि छन्दमे यही क्रम विपरीत होता है, अर्थात् पूर्वार्द्धमे तीस लघु, एक गुरु और उत्तरार्द्धमे अट्ठाईस लघु, एक गुरुकी मात्रा होती है तो उसे **खञ्जा** कहा जाता है। जिस मात्रासमक छन्दके पूर्वार्द्ध एव उत्तरार्द्धमे क्रमश सत्ताईस-सत्ताईस लघु मात्राएँ और एक-एक गुरु मात्रा होती है, उसे रुचिरा कहते हैं। (अध्याय २०८)

छन्द-विधान (समवृत्तलक्षण)

श्रीसूतजीने कहा—हे विप्रो! एक गुरु (ऽ) तथा दो गुरु (ऽऽ)-से पृथक्-पृथक् बने हुए छन्दाको क्रमश श्री या उक्था स्त्री या अत्युक्था के नामसे अभिहित किया गया है। एक मात्र मगण (ऽऽऽ)-से बने हुए छन्दको 'नारी' एक रगण (ऽ।ऽ)-से बने हुए छन्दको **मध्या** और एक मगण (ऽऽऽ) तथा एक गुरु (ऽ)-से बने हुए छन्दको **कन्या** कहते हैं। ये प्रतिष्ठा छन्दके भेद हैं। भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ)-से युक्त छन्दका नाम पङ्क्ति है। यह सुप्रतिष्ठाका भेद है। तगण (ऽऽ।) एव यगण (।ऽऽ)-से सयुक्त छन्दका नाम तनुमध्या है। नगण (।।।) और यगण (।ऽऽ)-से बने हुए छन्दको बालललिता कहा जाता है। ये छ वर्णवाले गायत्री छन्दके भेद हैं।

मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ)-से बने हुए छन्दको मदलेखा कहते हैं। विद्वानोने इसे उष्णिक् का भेद स्वीकार किया है। जिस छन्दके चारो पादमे दो भगण (ऽ।।, ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) हा वह **चित्रपदा** के नामसे प्रसिद्ध है। जिस छन्दके चारा चरण दो मगण (ऽऽऽ, ऽऽऽ) एव दो गुरु (ऽऽ)-से सयुक्त होते हैं, वह विद्युन्माला नामक छन्द है। जिस छन्दके प्रत्येक पादमे भगण (ऽ।।), तगण (ऽऽ।), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ) हो उसे माणवक कहते हैं। जिसके चारा चरणामें समान रूपसे मगण (ऽऽऽ) ,नगण (।।।) तथा दो गुरु (ऽऽ) होते हैं उसे हसरुत नामक छन्द माना गया है। जिसके चारा चरण एक रगण (ऽ।ऽ) एक जगण (।ऽ।) एक गुरु (ऽ) तथा एक लघु (।)-स सयुक्त होते हैं, वह **समानिका** नामका छन्द है और जिसके प्रत्येक चरणमे एक जगण (।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है, उसका नाम **प्रमाणिका** है। इन दोनोसे भिन्न जो छन्द होता है, उसको **वितान** के नामसे जानना चाहिये। ये सब आठ वर्णोके चरणवाले अनुष्टुप् छन्दके भेद हैं।

रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।) और सगण (।।ऽ)-से जिस छन्दका प्रत्येक चरण समन्वित होता है, उसका नाम हलमुखी है। जा छन्द प्रत्येक पादमे दो नगण (।।।) और एक मगण (ऽऽऽ)-से सयुक्त रहता है, उसे **शिशुभृता** कहते हैं। ये नो वर्णोके चरणवाले बृहती छन्दके भेद हैं। जो अपने चारा चरणामे समान रूपसे सगण (।।ऽ), मगण (ऽऽऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ)-से युक्त है, उस छन्दको विराजिता कहते हैं। प्रत्येक पादमे मगण (ऽऽऽ) नगण (।।।), यगण (।ऽऽ) और एक गुरु (ऽ)-से पूर्ण छन्दका नाम **पणव** है। मयूरसारिणी नामक छन्दके चारा चरणामे समान रूपसे एक रगण (ऽ।ऽ), एक जगण (।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ) एव एक गुरु (ऽ) होता है। रुक्मवती छन्दके प्रत्येक पादमे एक भगण (ऽ।।), एक मगण (ऽऽऽ) , एक सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ)-का विधान है। जिस छन्दके सभी चरणामे मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होता है, उसका नाम मत्ता है। जिसके प्रत्येक चरणम नगण (।।।) रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।) तथा एक गुरु (ऽ) है, उस मनारमा कहा गया है। ये सभी

दस वर्णोंवाले पङ्क्ति छन्दके भेद हैं।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमे दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।), दो गुरु (ऽऽ) होते हैं, उसे इन्द्रवज्रा कहते हैं और जिस छन्दमे क्रमश एक जगण (।ऽ।), एक तगण (ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।) एव दो गुरु (ऽऽ) हो, उसका नाम उपेन्द्रवज्रा है। जब एक ही छन्दमे ये दोनो इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा छन्द सम्मिलित रहते हैं, तो उसे उपजाति कहा जाता है। इनके अनेक भेद हैं। यथा—

सुमुखी नामक छन्दके प्रत्येक चरणम एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ) होता है। दोधक मे तीन भगण (ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) होते हैं। शालिनी नामक जो छन्द है उसके सभी चरणोमे एक मगण (ऽऽऽ), दो तगण (ऽऽ। ऽऽ।) एव दो गुरुआ (ऽऽ) की युति होती है। इसके प्रत्येक चरणम चौथे तथा सातवे अक्षरपर विराम होता है। वातोर्मी छन्दके प्रत्येक चरणमे दो मगण (ऽऽऽ), एक तगण (ऽऽ।) होता है और उसके बाद दो गुरु (ऽऽ) होते हैं। इसमे भी चार, सातपर विराम होता है।

जो छन्द प्रत्येक चरणमे मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), नगण (।।।), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ)-से युक्त हो, उसे भ्रमरविलासिता नामक छन्द कहा गया है। रथोद्धता छन्द अपने सभी चरणामे एक रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ) एक लघु (।) एव एक गुरु (ऽ)-से सयुक्त हाता है। स्वागता के प्रत्येक पादम एक रगण (ऽ।ऽ), एक नगण (।।।), एक भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) होते हैं। वृत्ता नामक छन्दके प्रत्येक पादमे दो नगण (।।। ।।।), एक सगण (।ऽऽ) और दो गुरु (ऽऽ) सन्निहित होते हैं। समद्रिका छन्दमे दो नगण (।।। ।।।) एक रगण (ऽ।ऽ) एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है। जिस छन्दके प्रत्येक चरण रगण (ऽ।ऽ) जगण (।ऽ।) एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ)-से युक्त हो वह श्येनिका नामक छन्द है। जहाँ सभी चारो चरणाम एक जगण (।ऽ।) एक सगण (।।ऽ) एक तगण (ऽऽ।) दो गुरु (ऽऽ) हों तो वहाँ शिखण्डित छन्द हाता है। महात्मा पिङ्गलने इन्हे त्रिष्टुप्-छन्दका भेद बताया है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणम एक रगण (ऽ।ऽ), एक नगण (।।।), एक भगण (ऽ।।), एक सगण (।।ऽ) हो, उसका नाम चन्द्रवर्त्म और जिसमे एक जगण (।ऽ।), एक तगण (ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ) हो, उसका नाम वशस्थ छन्द है। जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें दो तगण (ऽऽ। ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।) हो, उसे इन्द्रवशा और जिसमे चार सगण-ही-सगण (।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ) होते हैं, उसे तोटक छन्द माना गया है। जिसके प्रत्येक पादम नगण (।।।), दो भगण (ऽ।।, ऽ।।) और रगण (ऽ।ऽ) हो, उसका नाम द्रुतविलम्बित है।

जो छन्द अपने सभी चारा चरणमें दो नगण (।।।, ।।।), एक मगण (ऽऽऽ), एक यगण (।ऽऽ)-से सयुक्त रहता है, उसका नाम पुट है। इस छन्दमे आठ और चार वर्णो पर यति होती है। दो नगण (।।।, ।।।) और दो रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ)-से समन्वित प्रत्येक चरणवाला जो छन्द है, उसका नाम मुदितवदना है। इसमे सात और पाँच वर्णोंपर यति होती है। जिस छन्दके प्रत्येक चरणमे नगण (।।।), यगण (।ऽऽ), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ) हो उस छन्दको कुसुमविचित्रा कहते हैं। जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ)-से युक्त प्रत्यक पादवाले छन्दका नाम जलोद्धतगति है। प्रत्येक पादमें चार रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ)-से युक्त छन्द स्रग्विणी माना गया है। चार-चार यगणो (।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ)-से जिसके सभी चरण सयुक्त हैं, उसको भुजङ्गप्रयात छन्दकी सज्ञा दी गयी है। प्रियवदा छन्द नगण (।।।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ)—इन चार गणोसे युक्त होता है।

मणिमाला नामक जो छन्द है, उसक प्रत्येक पादमें तगण (ऽऽ।), यगण (।ऽऽ), तगण (ऽऽ।) तथा यगण (।ऽऽ) होता है। जिस छन्दके प्रत्येक पादमे तगण (ऽऽ।) भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ) हो तो उसका नाम ललिता है। इस छन्दमें छठे वर्णपर यति होती है। प्रमिताक्षरा वृत्त सगण (।।ऽ) जगण (।ऽ।) सगण (।।ऽ) सगण (।।ऽ)-से युक्त होता है। उज्ज्वला

छन्दमे नगण (।।।), नगण (।।।), भगण (ऽ।।) तथा रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। जो छन्द मगण (ऽऽऽ), मगण (ऽऽऽ), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ)-से सयुक्त है, उसका नाम वैश्वदेवी है। इसमे पाँच और सात वर्णोंपर यति होती है। जब छन्दके प्रत्येक चरणमे मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), सगण (।।ऽ) और मगण (ऽऽऽ) हो तो उसे जलधरमाला कहते हैं। चन्द्रवर्त्म छन्दसे यहाँतक बारह वर्णवाले जगती छन्दके भेद हैं।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें नगण (।।।), नगण (।।।), तगण (ऽऽ।), तगण (ऽऽ।) और एक गुरु (ऽ) हो, तो उसका नाम क्षमावृत्त है। इसमे सात और छ वर्णोंपर यति होती है। प्रहर्षिणी नामक छन्द मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) एव एक गुरु (ऽ)-से युक्त होता है। इसके प्रत्येक चरणमे तीन और दस वर्णपर यतिका विधान है। जो छन्द जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ)-से सन्निहित होता है, उसको रुचिरा कहा गया है। इसमे यति चार तथा नौ वर्णोंपर होती है। मत्तमयूर नामक छन्दको मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), यगण (।ऽऽ), सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ)-से युक्त माना गया है। इसके प्रत्येक पादमे चार तथा नौ वर्णोंपर यति होती है।

मञ्जुभाषिणी छन्दके प्रत्येक चरणमे सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ) जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ) होता है। सुनन्दिनी नामक छन्दके प्रत्येक चरणम सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ) होते ही हैं, किंतु अन्तिम जगणके स्थानपर इसमे मगण (ऽऽऽ) होता है। अन्तमे एक गुरु (ऽ) रहता है और जो छन्द नगण (।।।), नगण (।।।), तगण (ऽऽ।), तगण (ऽऽ।) तथा एक गुरु (ऽ)-से युक्त है, उसका नाम चन्द्रिका है। इसम सात और छ वर्णोंपर यति होती है। ये तेरह वर्णवाले अतिजगती छन्दके अवान्तर भेद हैं।

मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), सगण (।।ऽ) और दो गुरु (ऽ ऽ)-से युक्त छन्दका असम्बाधा कहते हैं, इसमें पाँच और नौ वर्णोंपर यति होती है। जिस छन्दमे नगण (।।।), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), सगण (।।ऽ), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ) हो, उसे अपराजिता छन्द कहा गया है। इसम सात-सात वर्णोंपर यति होती है। यदि प्रत्येक चरणमे नगण (।।।), नगण (।।।), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) हो, तो उसे प्रहरणकलिका के नामसे जाना जाता है। इसमे भी सात-सात वर्णपर ही यति होती है। वसन्ततिलका छन्दमे सभी चरण क्रमश तगण (ऽऽ।), भगण (ऽ।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।), दो गुरु (ऽऽ)-से युक्त होते हैं। इसीको सिंहोन्नता और उद्धर्षिणी भी कहते हैं। जिस छन्दके प्रत्येक पादमे भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), नगण (।।।) तथा दो गुरु (ऽऽ) हो उसका नाम इन्दुवदना होता है। जिसका प्रत्येक चरण नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ)-से सयुक्त होता है, उसीको सुकेशी छन्द कहते हैं। यहाँतक चौदह वर्णोंके चरणवाले शर्करी छन्दके अवान्तर भेदोका वर्णन प्रतिपादित किया गया।

जिस छन्दक प्रत्येक चरणमे चौदह लघु (चार नगण फिर दो लघु वर्ण) और अन्तम एक गुरु हो, वह शशिकला छन्द है। इसी छन्दम जब यति छ और नौ वर्णोंपर हो तो वह स्रक् अर्थात् माला नामक छन्द हो जाता है। जब वह यति आठ एव सात वर्णोंपर हो तो वह मणिगुणनिकर नामक छन्द बन जाता है। मालिनी छन्द अपने प्रत्येक चरणम नगण (।।।), नगण (।।।), मगण (ऽऽऽ), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ)-से सन्निहित होता है। इसमे आठ और सात वर्णोंपर यति होती हे। प्रभद्रक नामक छन्दके प्रत्येक चरणम नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ) होता है। इसमे सात और आठ वर्णोंपर यति हाती है। एला नामका छन्द सगण (।।ऽ), यगण (।ऽऽ), नगण (।।।), नगण (।।।) और यगण (।ऽऽ)-से सयुक्त हाता है। चित्रलेखा छन्दके प्रत्यक चरणम मगण (ऽऽऽ), रगण (ऽ।ऽ), मगण (ऽऽऽ), यगण (।ऽऽ) तथा यगण (।ऽऽ) होता हैं, यति सात और आठ वर्णोंपर होती है।

यहाँतक पद्रह वर्णोके चरणवाले अतिशर्करी छन्दके अवान्तर भेदोका वर्णन बताया गया है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणम भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है और जिसम सात तथा नौ वर्णोपर यति हो तो उसे **वृषभगजजृम्भित** छन्द कहते हैं। जिसके सभी चरणोमे नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) और एक गुरु (ऽ) हो, उसका नाम **वाणिनी** छन्द है। यति चरणकी समाप्तिपर होती है। पिङ्गलद्वारा इन दोना छन्दोको अष्टि श्रेणीके छन्दके अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।

यगण (।ऽऽ), मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), सगण (।।ऽ), भगण (ऽ।।), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ)-से सयुक्त चरणवाले छन्दका नाम **शिखरिणी** है। इसम यति छ तथा ग्यारह वर्णोपर होती है। पृथ्वी छन्दके प्रत्येक चरणम जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), यगण (।ऽऽ), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है। इसकी यति आठ और नौ वर्णोपर होती है। जिस छन्दके चरण भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), नगण (।।।), भगण (ऽ।।), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ)-से सयुक्त होते हैं और जिनम दस एव सात वर्णोपर यति होती है, उसे **वशपत्रपतित** कहा गया है।

हरिणी छन्द नगण (।।।), सगण (।।ऽ), मगण (ऽऽऽ), रगण (ऽ।ऽ), सगण (।।ऽ), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ)-से ससृष्ट होता है। इसम यति क्रमश छ , चार तथा सात वर्णोपर होती है। मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।) तगण (ऽऽ।), तगण (ऽऽ।), दा गुरु (ऽऽ)-से युक्त चरणावाले छन्दको **मन्दाक्रान्ता** कहते हैं। इसम चार छ और सात वर्णोपर यति होती है। **नर्दटक** छन्द नगण (।।।) जगण (।ऽ।) भगण (ऽ।।) जगण (।ऽ।) जगण (।ऽ।), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ)-से सयुक्त होता है। इसमें यति सात और दस वर्णोपर होती है। यदि यही यति सात छ और चार वर्णोपर हो तो छन्दका नाम **कोकिलक** हो जाता है। शिखरिणीसे कोकिलकतक इन छन्दोंको सत्रह वर्णोंवाले अत्यष्टि छन्द-वर्गमे समझना चाहिये।

जिस छन्दमे मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ) होता है और पाँच, छ तथा सात वर्णोपर यति होती है उसको **कुसुमितलता** छन्द कहते हैं। इसे अठारह अक्षरोंके चरणवाले धृति छन्दका अवान्तर भेद कहा गया है।

यगण (।ऽऽ), मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), सगण (।।ऽ), रगण (ऽ।ऽ), रगण (ऽ।ऽ) और एक गुरु (ऽ)-से युक्त छन्दका नाम **मेघविस्फूर्जिता** है। इसमे छ, छ और सात वर्णोपर यति होती है। **शार्दूलविक्रीडित** नामक जो छन्द है, उसके प्रत्येक चरणमे मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है। इसमें बारह और सात वर्णोपर यतिका विधान है। ये दोनो उन्नीस वर्णोके चरणवाले अतिधृति छन्द-वर्गके भेद कहे गये हैं।

इसके बाद बीस वर्णोंके चरणवाले कृति नामवाले छन्दोका निरूपण किया जा रहा है—

जिसके प्रत्येक चरणमे भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ), भगण (ऽ।।), एक लघु (।), एक गुरु (ऽ) होता है और क्रमश सात, सात तथा छ वर्णोपर यति होती है, उसे **सुवदना** छन्द कहते हैं। जिसके प्रत्येक पादमें रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।) रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), एक लघु (।), एक गुरु (ऽ) हो और पादान्तमें यति होती हो उसे **वृत्त** छन्द कहते हैं।

जिस छन्दम मगण (ऽऽऽ), रगण (ऽ।ऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।) यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ) हो और प्रत्येक चरणमें सात-सात वर्णोपर यति होती हो वह **स्रग्धरा** छन्द है। प्रत्येक चरणमें इक्कीस वर्णोंवाले इस छन्दको प्रकृति वर्गका छन्द माना गया है।

जिसके सभी पाद क्रमश भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ) नगण (।।।) रगण (ऽ।ऽ) नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ) नगण (।।।) तथा एक गुरु (ऽ)-से संयुक्त हों और उनमें दस तथा बारह वर्णोपर यति हो उसे

सुभद्रक छन्द कहते हैं। यह बाईस वर्णोंवाले आकृति छन्दके अन्तर्गत है।

जा नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ)-स युक्त छन्द हो और उसम ग्यारह तथा बारह वर्णोपर यति हो, उसका नाम अश्वललित है। इसे अन्य ग्रन्थोमे अद्रितनया भी कहा गया है। जिस छन्दमे मगण (ऽऽऽ), मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है और जिसमे आठ पाँच तथा दस वर्णोपर यति होती है, उसको मत्ताक्रीड कहा जाता है। ये दोनो छन्द तेईस वर्णोवाले विकृति छन्द-वर्गके अन्तर्गत हैं।

जिस छन्दका प्रत्येक पाद भगण (ऽ।।), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), सगण (।।ऽ), भगण (ऽ।।), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ)-से सयुक्त होता है और उसम पाँच सात तथा बारह वर्णोपर यति होती है, उसको तन्वी छन्द कहते हैं। यह तन्वी छन्द चौबीस वर्णोके चरणवाले सकृति छन्द-वर्गका अवान्तर भेद है।

क्रौञ्चपदा नामका जो छन्द है, उस छन्दमे भगण (ऽ।।), मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), भगण (ऽ।।) एव नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।), एक गुरु (ऽ) होता है और पाँच-पाँच, आठ तथा सात वर्णोपर यति होती है। यह पच्चीस वर्णोवाले अतिकृति छन्दके अन्तर्गत है।

अब छब्बीस वर्णोवाले उत्कृति वर्गके छन्दको कहा जा रहा है, आप उसे सुन—

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें मगण (ऽऽऽ), मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ) तथा सगण (।।ऽ) हो और आठ, ग्यारह एव सात वर्णोपर यति होती है, उसे भुजङ्गविजृम्भित कहते हैं। यह छब्बीस वर्णवाले उत्कृति छन्द-वर्गका एक भेद है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमे एक मगण (ऽऽऽ), छ नगण (।।।, ।।।, ।।।, ।।।, ।।।, ।।।,), एक सगण (।।ऽ) और दो गुरु (ऽऽ) हो, साथ ही नौ, छ -छ तथा पाँच वर्णोपर यति हो ता उसको अपहाव कहते हे। यह उत्कृति वर्गका ही दूसरा भेद है।

जिसके प्रत्येक चरणमें दो नगण (।।।, ।।।) और सात रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) हों तो उसका नाम चण्डवृत्तिप्रपात छन्द है। उसे दण्डक[1] भी कहा जाता है। यदि इस छन्दमे दो नगणको छोडकर शेष रगण वर्णोके साथ क्रमश एक और दो अन्य रगण पदोकी वृद्धि हो तो उसीसे व्याल और जीमूत आदि नामवाले दण्डक छन्द बनते हैं। (अध्याय २०९)

छन्द-विधान (अर्द्धसमवृत्त)

श्रीसूतजीने कहा—यदि छन्दके विषमपादमे तीन सगण (।।ऽ) एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ) वर्ण—इस प्रकार ग्यारह अक्षर हो एव समपादम तीन भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) हा तो उसे उपचित्रक कहते हैं। जिस छन्दके विषमपादम तीन भगण (ऽ।।), दो गुरु (ऽऽ) हा और उसके समपादम एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।) और एक यगण (।ऽऽ) हो उसे द्रुतमध्या नामक छन्द माना गया है। जिस छन्दक विषम-पादम तीन सगण (।।ऽ), एक गुरु और समपादम तीन भगण (ऽ।।) एव दा गुर (ऽऽ) होते हैं उसका नाम वगवती है। जिस छन्दके विषमपादमे एक तगण (ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक गुरु (ऽ), हा और समपादमे एक मगण (ऽऽऽ), एक सगण (।।ऽ), एक जगण (।ऽ।) तथा दो गुरु (ऽऽ)हों, वह भद्रविराट् नामक छन्द होता है।

यदि विषमपादम सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), एक गुरु (ऽ) तथा समपादम भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ) नगण (।।।) और दो गुरु (ऽऽ) हा तो उस छन्दको केतुमती कहा जाता है। जिस छन्दके विषमपादम दो तगण (ऽऽ। ऽऽ।) एक जगण (।ऽ।)

[1] जिन वृत्तोंके प्रत्यक चरणमें सत्ताईस या इससे अधिक वर्ण हाते हैं उनका सामान्य नाम दण्डक है। चण्डवृत्तिप्रपात आदि इसीक भेद हैं।

और दो गुरु (ऽऽ) तथा समपादमें जगण (।ऽ।), तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) एवं दो गुरु (ऽऽ) होते हैं, उसको आख्यानिकी कहते हैं। यदि विषमपादमें जगण (।ऽ।), तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) और दो गुरु (ऽऽ) तथा समपादमें दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।) एवं दो गुरु (ऽऽ) हों तो उसे विपरीताख्यानकी छन्द कहा जाता है। ऐसा पिङ्गल मुनिका अभिमत है।

जब छन्दके विषमपादमें दो नगण (।।।, ।।।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक यगण (।ऽऽ) और समपादमें एक नगण (।।।) दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ) तथा एक गुरु (ऽ) होता है तो उसे पुष्पिताग्रा कहते हैं। यदि विषमपादमें रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ), यगण (।ऽऽ) हों और समपादमें जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) तथा एक गुरु (ऽ) हो तो उस छन्दका नाम वाङ्मती है। (अध्याय २१०)

छन्द-विधान (विषमवृत्तलक्षण)

सूतजीने कहा—जिस छन्दके प्रथम पादमें आठ अक्षर, द्वितीय पादमें बारह अक्षर, तृतीय पादमें सोलह अक्षर तथा चतुर्थ पादमें बीस अक्षर होते हैं, वह पदचतुरूर्ध्व नामक छन्द है, यह इस छन्दका सामान्य लक्षण है। तात्पर्य यह है कि इस छन्दमें अनुष्टुप् छन्दके प्रथम पादके बाद प्रत्येक पादमें क्रमशः चार-चार अक्षर बढ़ते जाते हैं। इसी छन्दके चारों चरणोंमें जब दो अक्षर गुरु (ऽऽ) हों तो उसे आपीड छन्द कहते हैं। अन्तिम अक्षरोंको छोड़कर शेष अक्षर लघु (।) ही होते हैं। पदचतुरूर्ध्व नामक छन्दके प्रथम पादका द्वितीय आदि पादोंके साथ परिवर्तन होनेपर अनेक छन्द बनते हैं, यथा— प्रथम पादमें बारह और द्वितीय पादमें अठारह अक्षर होनेसे जो छन्द बनता है, वह कलिका (मञ्जरी) कहलाता है। इसमें प्रथम पादके स्थानमें द्वितीय पाद और द्वितीय पादके स्थानमें प्रथम पाद हो जाता है। जब प्रथम पाद (आठ अक्षर)-के स्थानमें तृतीय पाद (सोलह अक्षर) और तृतीय पादके स्थानमें प्रथम पाद हो तो लवली नामक छन्द होता है। इसी प्रकार जब प्रथम पाद (आठ अक्षर)-के स्थानपर चतुर्थपाद (बीस अक्षर) और चतुर्थपादके स्थानपर प्रथम पाद हो तो उसे अमृतधारा नामक छन्द कहते हैं। यहाँतक पदचतुरूर्ध्व छन्दके अवान्तर भेदोंको बतलाया गया है।

जब प्रथम पादमें सगण (।।ऽ) जगण (।ऽ।) सगण (।।ऽ) और एक लघु (।)—इस प्रकार दस अक्षर होते हैं द्वितीय पादमें नगण (।।।) सगण (।।ऽ) जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ)—इस प्रकार दस अक्षर होते हैं तृतीय पादमें भगण (ऽ।।) नगण (।।।) जगण (।ऽ।) एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ)—ये ग्यारह अक्षर होते हैं और चतुर्थ पादमें सगण (।।ऽ) जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) तथा एक गुरु (ऽ)—इस प्रकार तेरह अक्षर होते हैं तो वह उद्गता नामक छन्द कहलाता है। इसी उद्गता छन्दके तीसरे चरणमें जब रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।) यगण (ऽ।।) और एक गुरु (ऽ)—इस प्रकार तेरह अक्षर हों और शेष तीन पाद पूर्ववत् अर्थात् उद्गता छन्दके समान ही हों तो सौरभक नामक छन्द होता है। इसी उद्गता छन्दके तीसरे चरणमें जब दो नगण (।।।, ।।।), दो सगण (।।ऽ, ।।ऽ) हों तथा शेष तीनों चरण उद्गताके ही समान हों तो ललित नामक छन्द होता है। ये सब उद्गता छन्दके अवान्तर भेद हैं।

जिसके प्रथम पादमें मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ)—इस प्रकार चौदह अक्षर होते हैं, द्वितीय चरणमें सगण (।।ऽ), नगण (।।।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) तथा एक गुरु (ऽ)—इस प्रकार तेरह अक्षर होते हैं, तीसरे चरणमें दो नगण (।।। ।।।) और एक सगण (।।ऽ)—इस प्रकार नौ अक्षर होते हैं तथा चौथे चरणमें तीन नगण (।।। ।।। ।।।) एक जगण (।ऽ।) तथा एक यगण (।ऽऽ)—इस प्रकार पन्द्रह अक्षर होते हैं तो ऐसा छन्द उपस्थितप्रचुपित नामवाला छन्द कहलाता है। इसी उपस्थितप्रचुपित छन्दके जब तीन चरण वैसे ही हों केवल तृतीय चरणमें परिवर्तन हो अर्थात् उसमें दो नगण (।।। ।।।) एक सगण (।।ऽ), पुनः दो नगण

(।।।,।।।) तथा एक सगण (।।ऽ)—इस प्रकार अठारह अक्षर हो तो वह वर्धमान नामक छन्द होता है। उसी उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दके जब तीन पाद (प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ) समान हो, किंतु तृतीय पादमे तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ)—इस प्रकार नौ अक्षर हों तो वह आर्षभ नामक छन्द होता है। इसी प्रकार उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दका जब पहला पाद वही हो और शेष तीन पादाम तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।), तथा रगण (ऽ।ऽ)—इस प्रकार नौ अक्षर हों तो ऐसा छन्द शुद्धविराट् कहलाता है। ये छन्द उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दके अवान्तर भेदोमे आते हैं। (अध्याय २११)

छन्द-विधान (प्रस्तार-निरूपण)

सूतजीने कहा—अब प्रस्तारके[१] विषयम बतला रहा हूँ। ऊपरके पादमे आदि अक्षर गुरु हो तथा उसके नीचेके पादम लघु अक्षर हो, वह एकाक्षर प्रस्तार है। उसके बाद इसी क्रमसे वर्णोंकी स्थापना करे अर्थात् पहले गुरु और उसके नीचे लघु अक्षरकी स्थापना करे, यह द्व्यक्षर-प्रस्तार है। प्रस्तारके अनन्तर नष्टका निरूपण इस प्रकार है—नष्ट सख्याको आधी करनेपर जब वह दो भागोमे बराबर बँट जाय तब एक लघु लिखना चाहिये, यदि आधा करनेपर विषम सख्या प्राप्त हो तो उसमे एक जोडकर सम बना ले और इस प्रकार पुन आधा करे। एसी अवस्थामे एक गुरु अक्षरकी प्राप्ति होती है, उसे भी अन्यत्र लिख ले। जितन अक्षरवाले छन्दके भेदको जानना हो, उतने अक्षराकी पूर्ति होनेतक पूर्वोक्त प्रणालीसे गुरु-लघुका उल्लेख करता रहे।

अब उद्दिष्टके विषयम बतलाया जा रहा है—उद्दिष्टकी प्रक्रिया जाननेके लिये छन्दके गुरु-लघु क्रमश एक पक्तिम लिखकर उनके ऊपर क्रमश एकसे लेकर दूने-दूने अङ्क रखता जाय अर्थात् प्रथम अक्षरपर एक, द्वितीयपर दो, तृतीयपर तीन—इस क्रमसे सख्या होगी। बिना प्रस्तारके ही वृत्त-सख्या जाननेके उपायको सख्या कहते हैं। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार है—जितने अक्षरक छन्दकी सख्या जाननी हो, उसका आधा भाग निकालनेस दोकी उपलब्धि होगी। उसे अलग रख ले। विषम सख्याम एक घटाकर शून्यकी प्राप्ति होगी, उसे दोके नीचे रखकर शून्यक स्थानमे दुगुना करे, इससे प्राप्त हुए अङ्कको ऊपरक अर्धस्थानमे रखे और उतनेस ही गुणा करे।

एकद्व्यादिलगक्रियाकी सिद्धिके लिये मेरुप्रस्तारको बतलाया जा रहा है। किसी छन्दमें कितने लघु, कितने गुरु तथा एकाक्षरादि छन्दोके कितने वृत्त होते हैं, इसका ज्ञान मेरुप्रस्तारसे होता है। मेरुप्रस्तारमे नीचेसे ऊपरकी ओर आधा-आधा अगुल विस्तार कम होता जाता है। छन्दकी सख्याको दूनी करके एक-एक घटा दिया जाय तो उतने ही अगुलका उसका अध्वा (प्रस्तारदेश) होता है। इस प्रकार छन्द शास्त्रका सार बतलाया गया। (अध्याय २१२)

सदाचार एवं शौचाचारका निरूपण

सूतजीने कहा—हे शौनक! श्रीहरिसे सुनकर ब्रह्माजीने व्याससे सब कुछ देनेवाले ब्राह्मणादि वर्णोके सदाचारका जैसे कहा है, उसी प्रकार मैं कहता हूँ।

श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र)-का भली प्रकारसे अध्ययन करके श्रुतिप्रतिपादित कर्मका पालन करना चाहिये। (क्योकि श्रुति ही सब कर्मोका मूल है।) यदि (उपलब्ध) श्रुतियामे कोई कर्म ज्ञात नहीं हो रहा है तो उसको स्मृतिशास्त्रके अनुसार जानकर करना चाहिये (क्याकि स्मृतिशास्त्र भी श्रुतिमूलक होनेके कारण ही कर्मके बोधम प्रमाण माने जाते हैं) और स्मार्तधर्मके पालनमे असमर्थ होनेपर विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि वह सदाचारका पालन करे। कर्ममार्गका दर्शन करानेके लिये श्रुति तथा स्मृति—ये नेत्रस्वरूप हैं।

श्रुतिम कहा गया धर्म परम धर्म है। स्मृति और शास्त्रसे प्रतिपादित धर्म अपर धर्म है। इस प्रकार श्रुति, स्मृति और शिष्टाचारसे प्राप्त धर्म—ये तीन प्रकारके सनातनधर्म हैं।

१- किस छन्दके कितने भेद हो सकते हैं सामान्यरूपसे इसका ज्ञान करानेवाला प्रणालीको 'प्रस्तार कहा जाता है। प्रस्तार नष्ट उद्दिष्ट, एकद्व्यादिलगक्रिया सख्या तथा अध्वयाग — ये छ प्रणालियाँ हैं।

सत्य, दान, दया, निर्लोभता, विद्या, यज्ञ, पूजा और इन्द्रियदमन—ये शिष्टाचारके आठ पवित्र लक्षण कहे गये हैं। पूर्व कालमें लोगोंके शरीर और इन्द्रिय सत्त्वगुणप्रधान एवं तेजोमय होते थे, अतः जिस प्रकार कमलपत्रपर जल नहीं रुकता उसी प्रकारसे उनके शरीर तथा इन्द्रियोंमें पाप नहीं टिक पाते थे।

सत्त्वगुणके विकासके लिये सनातनधर्म (वर्णाश्रम-धर्म, सदाचार आदि)-के पालनका सर्वाधिक महत्त्व है और इनकी प्रमुखता युगविशेष, स्थानविशेष (भारतवर्ष आदि)-की दृष्टिसे निर्धारित होती है, इसी दृष्टिसे यहाँ इतना निरूपण किया जा रहा है। सत्य, यज्ञ, तप तथा दान—ये धर्मके लक्षण हैं। बिना दिये गये द्रव्यका ग्रहण न करना, दान अध्ययन, जप, विद्या धन, तपस्या, पवित्रता श्रेष्ठ कुलमें जन्म, निरोगता और संसारके बन्धनसे मुक्ति आदिके मूलमें धर्मका आचरण ही प्रधान है। धर्मसे सुख तथा तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है और इस तत्त्वज्ञानसे ही मोक्ष प्राप्त होता है।

शास्त्रोंके अनुसार पालन किये जाने योग्य तथा सनातन कालसे चले आ रहे यज्ञ अध्ययन और दान—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके सामान्य धर्म हैं। यज्ञ कराना, अध्यापन तथा सदाचारवान् विशुद्ध अधिकृत व्यक्तिसे प्रतिग्रह (दान) लेना—ये तीन प्रकारकी वृत्ति (जीविका) मुनियोंने श्रेष्ठ (ब्राह्मण) वर्णके लिये कही है। शस्त्रोपजीवी होना तथा प्राणियोंकी रक्षा करना क्षत्रियवर्णका धर्म है। पशुपालन, कृषिकर्म तथा व्यापार वैश्यवर्णकी वृत्ति कही गयी है। द्विजातिमें भी आनुपूर्वी क्रमसे सेवा करनेका विधान[1] है। शूद्रका तो एकमात्र कर्तव्य है द्विजातिकी सेवा करना।

गुरुके सान्निध्यमें रहना अग्निकी शुश्रूषा (अग्निहोत्र) करना तथा स्वाध्याय करना—यह ब्रह्मचारीका धर्म है। वह तीनों संध्याओंमें स्नानकर संध्याकालीन व्रतका पालन करे। स्नानकर्मसे निवृत्त होकर भिक्षाचरण करे। तदनन्तर गुरुके प्रति दत्तचित्त रहकर उनकी ही सेवामें आजीवन लगा रहे। वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कटिप्रदेशमें मूँजकी मेखला, सिरपर जटा, हाथमें दण्ड धारण करे। वह जटाओंको धारण न करके सिरका मुण्डन भी करा सकता है, किंतु उसको गुरुके आश्रयमें तो रहना ही चाहिये।

अग्निहोत्र-धर्मका पालन तथा कहे गये अपने विहित कर्मोंके अनुसार जीविकाका पालन, पर्वकी रात्रिको छोड़कर अन्य रात्रियोंमें धर्मपत्नीके साथ रति, (यथाशास्त्र) देवता पितर तथा अतिथिगणोंकी विधिवत् पूजामें अहर्निश संलग्न रहना और श्रुतियों एवं स्मृतियोंमें कहे गये धर्मोंके अनुसार अर्थोपार्जन करना—यह गृहस्थोंका धर्म है।

जटाधारण, अग्निहोत्रका पालन, पृथ्वीपर शयन, मृगचर्मका धारण, वनमें निवास, दूध मूल, फल तथा नीवारका भक्षण, निषिद्ध कर्मका परित्याग तीनों संध्याओंमें स्नान, ब्रह्मचर्यका पालन और देवता तथा अतिथिकी पूजा—यह वानप्रस्थीका धर्म है।

सभी प्रकारके आरम्भोंका परित्याग भिक्षासे प्राप्त अन्नका भोजन, वृक्षकी छायामें निवास, अपरिग्रह, अद्रोह सभी प्राणियोंमें समानभाव, प्रिय तथा अप्रियकी प्राप्तिमें एवं सुख और दुःखमें समान स्थिति, शरीरकी बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धता वाणीमें संयम, परमात्माका ध्यान सभी इन्द्रियोंका निग्रह धारणा तथा ध्यानमें तत्परता और भावशुद्धि—ये सभी परिव्राजक अर्थात् संन्यासीके धर्म कहे गये हैं।

अहिंसा प्रिय और सत्यवचन पवित्रता क्षमा तथा दया सभी आश्रमों और वर्णोंका सामान्य धर्म है।[2] जैसा पूर्वमें कहा गया है उसीके अनुसार शास्त्रविहित अपने अपने धर्मोंका पालन करनेवाले सभी लोग परमगति अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं।

हे शौनक! अब मैं प्रातःकाल जागनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक पालन करनेयोग्य गृहस्थके धर्मका वर्णन करता हूँ। गृहस्थको ब्राह्ममुहूर्तमें निद्राका परित्याग करके धर्म और अर्थका भली प्रकार चिन्तन करना चाहिये तथा

१ इसका आशय यह है—क्षत्रिय ब्राह्मणकी सेवा करे तथा वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रियकी सेवा करे। (वैश्यके द्वारा क्षत्रियकी सेवाकी मर्यादा शास्त्रोंमें निर्धारित है।)

२-अहिंसा सूनृता वाणी सत्यशौचे क्षमा दया। वर्णिनां लिङ्गिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते॥ (२१३। २२)

शारीरिक कष्ट, उसकी उत्पत्तिके कारण और वदाम कहे गये तत्त्वार्थका भी विचार करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तम उठकर शौचादिक क्रियाओसे निवृत्त होकर, स्नान करना चाहिये और निरलस भावसे समाहितचित्त हाकर सध्यापासन करना चाहिये। दन्तधावन एव स्नानके अनन्तर ही प्रात कालिक सध्योपासन करना चाहिये। 'दिनम मूत्र और मलका परित्याग उत्तराभिमुख होकर करे। रात्रिमे दक्षिणाभिमुख होकर करे। दोना सध्याकालमे दिनके समान ही उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। रात्रि और दिनम छाया अथवा अन्धकारके कारण यदि दिशाविशषका ज्ञान नहीं हो पा रहा है, अथवा कोई ऐसा भय उपस्थित है, जिसके कारण मरणकी सम्भावना है तो अपनी सुविधाके अनुसार जिस किसी भी दिशामे मुख करके मल-मूत्रका त्याग किया जा सकता है। गोमय अग्निके दहकते अगार, दीमककी बाँबी, जुते हुए खेत, जल, पवित्र स्थान, मार्ग और मार्गमे विद्यमान विधानयोग्य वृक्षकी छायामे न ता मूत्रका परित्याग करना चाहिये और न तो मलविसर्जन ही।

शौचके पश्चात् मिट्टीसे हाथ-पैर आदि साफ करनक लिये जलके अन्दरसे, देवगृह, बाँबी, चूहेके बिल, दूसरेके उपयोगम आयी हुई मिट्टीसे अवशिष्ट तथा श्मशान भूमिकी मिट्टी ग्रहण न करे। लघुशका करनेपर लिगम एक बार, बाये हाथम दो बार और दोना हाथाम दो बार मिट्टी लगाकर जलसे प्रक्षालन करनेपर ही शुद्धि होती है। मलका परित्याग करनेपर लिगम एक बार, गुदामें तीन बार, बाय हाथम दस बार तथा दोनो हाथामे सात बार पैरामे पाँच बार और दाये हाथम दस बार मिट्टीका लेप करके उन्ह जलसे स्वच्छ करे। प्रथम बार उपयोगमे लायी जानवाली मिट्टीकी मात्रा आधा पसर होनी चाहिये। दूसरे और तीसरे बार जो मिट्टी उपयोगमे आती है उसकी मात्रा आधे पसरकी आधी हो जाती है। जो मनुष्य अस्वस्थताक कारण विष्ठा और मूत्रका परित्याग बैठकर नहीं कर सकता है वह अभी बतायी गयी शास्त्रीय शुद्धिका आधा भागमात्र अपना सकता है। दिनम विहित शुद्धिका आधा या चोथाई भाग रात्रिम शुद्धिके लिय धर्मसम्मत है।

यह शुद्धिकी प्रक्रिया स्वस्थ व्यक्तिका लक्ष्य करके कही गयी है। जो व्यक्ति अस्वस्थताके कारण आर्त है, उसको यथासामर्थ्य ही शुद्धिकी प्रक्रिया अपनानी चाहिये। वसा शुक्र, रक्त, मज्जा, लार, विष्ठा, मूत्र, कानका मैल, कफ, आँसू, आँखका मैल (कीचड) और पसीना—ये मनुष्यके शरीरके बारह मल हैं। जबतक मनम शुद्धताकी अवधारणा न हो जाय, तबतक इनके कारण अनुभवमे आनेवाली अशुद्धिक निराकरणमे लगे रहना चाहिये। यहाँपर शुद्धिकी सख्याका जो प्रमाण दिया गया है, वह श्रुतिया और स्मृतियाके आदेशानुसार ह।

शुद्धि दो प्रकारकी है—एक बाह्य और दूसरी आभ्यन्तरिक। मिट्टी तथा जलस की जानवाली शुद्धि बाह्य और भावाकी शुद्धि ही आभ्यन्तरिक शुद्धि मानी गयी है। शुद्धिका प्रमुख अङ्ग आचमन है, यह तीन बार करना चाहिये। इसके बाद दो बार जलसे मुखका मार्जन, तदनन्तर अगुष्ठके मूलसे मुखको धोकर तीन बार मुखका स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद अगुष्ठ और तर्जनीसे नासिकाका स्पर्शकर अगुष्ठ तथा अनामिकासे नेत्र और कानका स्पर्श करना चाहिये। तत्पश्चात् कनिष्ठा और अगुष्ठके द्वारा नाभिका स्पर्शकर हथेलीसे हृदयका स्पर्श करना चाहिये। इसक बाद अपनी सभी अगुलियासे सिर और उनके (अगुलियोके) अग्रभागसे दोना बाहुआका स्पर्श करना चाहिये।

(अब आचमन तथा अगाके स्पर्शका फल बताया जाता है।) तीन बार जलका आचमन करके ऋग्वेद यजुर्वेद तथा सामवद—इन तीना वेदोको प्रसन्न करना चाहिये। पहले दो बार मुखका प्रक्षालन करनेसे अथर्वा (वेदविद् ब्राह्मण) और आङ्गिरस (बृहस्पति)-का मुखम सन्निधान होता है। मुखभागका स्पर्श करनेपर आकाश, नासिका-भागका स्पर्श करनेपर वायु, नत्रभागका स्पर्श करनेपर सूर्य, कानाका स्पर्श करनेपर सभी दिशाओका स्पर्श समझना चाहिये।[१] मुख तथा नासिका आदिका यथाविधि स्पर्श करनेसे इन अङ्गाम यथाक्रम इतिहास, पुराण एव वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त छन्द ज्यातिष) प्रतिष्ठित होते हैं। नाभिप्रदशका स्पर्शकर प्राणग्रन्थिका और हृदयभागका

१-मुख और नासिका आदिम यथाक्रम आकाश तथा वायु आदिके अधिष्ठाता देवता सन्निहित हैं।

स्पर्शकर ब्रह्माका स्पर्श समझना चाहिये। मूर्धाके स्पर्शसे रुद्र और शिखाके स्पर्शसे ऋषियोको प्रसन्न किया जाता है। दोनो बाहुओको स्पर्श करके यम, इन्द्र, वरुण, कुबेर, पृथिवी तथा अग्निदेवके सान्निध्यका लाभ प्राप्त होता है। अपने दोनो चरणामे जलका अभ्युक्षण भगवान् विष्णु और इन्द्र तथा दोनो हाथोका प्रोक्षण करनेसे भगवान् विष्णुदेवका सानिध्य प्राप्त होता है।

धार्मिक विधिके अनुसार पृथ्वीका जलसे प्रोक्षण करनेसे वासुकि आदि नाग प्रसन्न होते हैं। धार्मिक विधिके मध्यमे जलका शास्त्रीय उपयोग करते समय उसके बिन्दुआके गिरनेसे भूतोके समूह तृप्ति प्राप्तकर प्रसन्न होते हैं। अगुलियाके पर्वोपर अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और पर्वतसमूह निवास करते हैं। द्विजके हाथोम जो रेखाएँ होती हैं, उनम गङ्गा आदि पवित्र नदियाँ स्थित रहती हैं। हाथके तलभागमे सभी तीर्थोके साथ सोमका निवास है। इसीलिये हाथको पवित्र माना जाता है।

उषाकाल (सूर्योदयसे पूर्व रात्रिशेष) होनेपर यथाविधि शौच-क्रिया करनी चाहिय। तदनन्तर दन्तधावन (दतुअन) करके स्नान करे। मुखके पर्युषित (बासी) रहनेपर मनुष्य निश्चित ही अपवित्र रहता है। अत मनुष्यको प्रात काल अवश्य ही दन्तधावन करना चाहिये। दन्तधावनके लिये कदम्ब बिल्व खैर कनर, बरगद अर्जुन यूपी, वृहती, जाती, करज, अर्क, अतिमुक्तक जामुन, महुआ अपामार्ग (चिचिडी-लटजीरा), शिरीष, गूलर, बाण तथा दूधवाले और कँटीले अन्य वृक्ष प्रशस्त होत हैं। कड़वे तीते तथा कषैल काष्ठके जो वृक्ष हैं, उनकी दतुअन धन-धान्य, आरोग्य और सुखसे सम्पन्न करनेवाली होती हे। पवित्र स्थानमें मनुष्य ऐसे वृक्षाकी दतुअनको लेकर सबसे पहले उसको जलस धो डाले। उसको दाँतोसे चबा-चबाकर मुख साफ करे और अवशिष्ट दतुअनको किसी एकान्त स्थानम छोड दे। तदनन्तर भली प्रकारसे आचमनकर मुखशोधन करे। अमावास्या षष्ठी नवमी प्रतिपदा तिथि तथा रविवारक दिन दतुवन नहीं करनी चाहिये क्योकि ये सभी दिन इस कार्यके लिये निषिद्ध माने गये हैं। दतुअनके न होनेपर तथा निषिद्ध तिथिके आ जानेपर मनुष्यको बारह कुल्ला-जलके द्वारा मुखको पवित्र कर लेना चाहिये।

दृष्ट और अदृष्ट दोनो प्रकारका हित-सम्पादन होनेके कारण प्रात कालके स्नानकी प्रशसा की गयी है। जो व्यक्ति शुद्धात्मा है, जो प्रात काल स्नान करता है, वह जपादिक समस्त (ऐहिक और पारलौकिक सुख प्रदान करनेवाली) क्रियाओको सम्पन्न करनेका अधिकारी है। शरीर अत्यन्त मलिन है। उसम स्थित नवछिद्रासे सदैव मल निकलता ही रहता है। अत प्रात कालका स्नान शरीरकी शुद्धिका हेतु, मनको प्रसन्न रखनेवाला तथा रूप और सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला है। यह शोक और दु खका विनाशक है। अत मनुष्य प्रात काल गङ्गास्नानके समान ही स्नानकी क्रिया सम्पन्न करे। ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी हस्त नक्षत्रसे युक्त दशमी तिथिमे दस पापोको हरण करनेकी सामर्थ्य है। इस पुण्यतिथिम स्नान करनेसे 'दान न देनेका पाप विरुद्ध आचरण, हिसा, परदारोपसवन, कटु और झूठ भाषण चुगुलखोरी, असम्बद्ध प्रलाप, परद्रव्यापहरण और मनसे अनिष्टचिन्तन करनेसे होनेवाला पाप—इन पापोके विनाशके लिये आज मैं गङ्गा-स्नान कर रहा हूँ'—यह सकल्प लेकर मनुष्य प्रात काल स्नान करे। वानप्रस्थी तथा गृहस्थको प्रात काल सक्षिप्त स्नान करना चाहिये। सन्यासीके लिये दिनकी तीना (प्रात , मध्याह्न, साय) सध्याओमें स्नान करना अपेक्षित है। ब्रह्मचारीको सकृत्[१] स्नान करना चाहिये। आचमन करके तीर्थोका आवाहन करके, अव्यय भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये।

शास्त्रामे तीन करोड मन्देह नामक राक्षस माने गये हैं। वे दुरात्मा राक्षस सदैव प्रात काल उदित हो रहे सूर्यदेवको खा जानेकी इच्छा करते हैं। अत (सूर्योदयसे पूर्व) स्नान करके सध्योपासनकर्म नहीं करना सूर्यदेवका ही घातक है। जो लोग यथाविधि स्नानकर यथाधिकार सध्यापासन करते हैं वे मन्त्रसे पवित्र किये गये अनलरूपी अर्घ्य (जल)-से उन मन्देह राक्षसाको जला देते हैं।

१-सकृत् स्नानका तात्पर्य है—दण्डवत् स्नान। अर्थात् जैसे दण्ड जलमें डालकर निकाल लिया जाता है वैसे ही स्नान करना चाहिये। गृहस्थकी तरह सुखपूर्वक स्नान नहीं करना चाहिये। साय प्रात अवश्य करणीय अग्निहोत्र आदिके लिये दोनों समय (साय-प्रात) स्नानका विधान ब्रह्मचारीके लिय है। (मनु० २। १७६ कुल्लूक भट्टकी टीका)

दिन और रात्रिका जो सधिकाल हैं, वही सध्याकाल (४५ मिनट) होता है। यह सध्याकाल सूर्योदयसे पूर्व दा घडीपर्यन्त रहता है। सध्या-कर्मके समाप्त हो जानेपर यथाधिकार स्वय हवन-कार्य करना चाहिय। स्वय हवन करनेसे जितना फल प्राप्त होता है, उतना अन्य किसीके द्वारा करानेसे नहीं हाता। ऋत्विक्, पुत्र, गुरु, भाई, भाँजा और दामादके द्वारा यह कार्य हा सकता है। क्योकि उन लोगोके द्वारा किया गया हवन, स्वयका ही माना गया है।

गार्हपत्य-अग्निको ब्रह्मा, दक्षिणाग्निको शिव और आहवनीय-अग्निको विष्णु तथा कुमार[1]को सत्यस्वरूप कहा जाता है। यथोचित समयपर हवन करके सूर्यमन्त्रका जप करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर सावित्री और प्रणव (ॐकार)-मन्त्रका जप करना चाहिये। प्रणव, सप्त व्याहृति और त्रिपदा सावित्री मन्त्रका निरन्तर यथासमय नियतरूपसे जप करनेसे ससारमें किसी भी प्रकारका भय नहीं रहता है। जो उपासक प्रात काल उठकर नित्य गायत्री-मन्त्रका जप करता है, वह कमलपत्रकी भाँति पापसे सलिप्त नहीं होता। (देवी गायत्रीका स्वरूप इस प्रकार है—)

श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा॥
(२१३।७०)

अर्थात् गायत्रीदेवी श्वेतवर्णवाली हैं, कौशेय (रेशमी)-वस्त्र तथा अक्ष (माला) एव सूत्र (यज्ञसूत्र-यज्ञोपवीत)-से विभूषित होकर सुन्दर पद्मासनपर विराजमान रहती हैं। इसी रूपम विधिवत् ध्यान करके 'तेजोसि०'[2] इस यजुर्वेदके मन्त्रसे आवाहनकर गायत्रीदेवीकी उपासना करनी चाहिये। प्राचीनकालमे देववर्ग तथा मन्त्राका साक्षात्कार करनेकी इच्छा रखनेवाले ऋषिगण यजुर्वेदके इसी मन्त्रका प्रयोग करते थे। अत सूर्यमण्डलके मध्य विराजमान तथा ब्रह्मलोकमे भी निवास करनेवाली देवीका आवाहन करके गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। तत्पश्चात् नमस्कार करके उनका (गायत्रीदेवीका) विसर्जन करना चाहिये। पूर्वाह्णकालमे देवताओका पूजन करना चाहिये। भगवान् विष्णुसे बढकर अन्य कोई देव नहीं है। अतएव साधकको सदैव उनकी पूजा करनी चाहिये। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन देवाके प्रति पृथक्-भाव (भेदबुद्धि) न रखे।

इस ससारम आठ मङ्गल हैं—ब्राह्मण, गौ, अग्नि, हिरण्य (सोना), घृत, सूर्य, जल और राजा। सदैव इनका दर्शन एव पूजन करना चाहिये और यथासम्भव इन्हे अपने दाहिने करके ही चलना चाहिये। ब्राह्मण पहले वेदका अध्ययन करे, उसके बाद चिन्तन अभ्यास तथा जप करके उसका दान शिष्याको दे, अर्थात् अपने शिष्याको वेदाध्ययन कराये। वेदाभ्यासका यही पाँच प्रकार है।

वेदार्थ, यज्ञकर्मप्रतिपादक शास्त्र और धर्मशास्त्रकी पुस्तकोका पारिश्रमिक देकर जो लेखनकार्य कराता है और उसे योग्य अधिकारीको प्रदान करता है, वह वैदिक (वदमे उक्त) लोकको प्राप्त करता है। जो इतिहास-पुराणके ग्रन्थाको लिखकर दान देता है, वह ब्रह्म (वेद)-दानसे होनेवाले पुण्यका दुगुना पुण्य प्राप्त करता हे।

दिनके तीसरे भागम अपने पाष्य वर्गके प्रयोजनको पूर्ण करना चाहिये। माता पिता, गुरु, भ्राता, प्रजा, दीन, दु खी, आश्रितजन, अभ्यागत[3], अतिथि[4] आर अग्नि—य पोष्य वर्ग कहे गये हैं। पोष्य वर्गका भरण-पोषण करना स्वर्गका प्रशस्त साधन है। अत मनुष्यका पोष्य वर्गका पालन-पापण प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। इस ससारम उसी व्यक्तिका जीवन श्रेष्ठ है, जा बहुताक जीवनका साधक बनता हे। अर्थात् बहुतोका पालन-पोपण करता है। जो मात्र अपने भरण-पोषणम लग रहते हैं, वे जीवित रहते हुए भी मरे हुएके समान हैं, क्याकि अपना पटपालन तो कुत्ता भी

१-यहाँ कुमारका अर्थ हवनकर्ता (ब्रह्मचारी)-को समझना चाहिये।

२-तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वार्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बल मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्यु मयि धेहि सहाऽसि सहो मयि धेहि॥ (शु०यजु० १९।९)

३-जो अकस्मात् अपने घर आ जाय वह अभ्यागत है।

४-अतिथि उस सन्तको कहते हैं जो तिथि पर्व उत्सव आदिका विवेक नहीं करता है और सदा चलता ही रहता है। यहाँ यमका वचन द्रष्टव्य है—तिथि पर्वोत्सवा सर्वे त्यक्ता येन महात्मना। साऽतिथि सर्वभूताना शेषानभ्यागतान् विदु ॥

करता है।[1]

व्यवहारमे अर्थका महत्त्व हे। जेसे नदियाके मूल पर्वत हैं, वैसे ही समस्त कार्योंका मूल अर्थ है, इसीलिये अर्थको उत्पन्न करना एव बढाना आवश्यक होता है। अर्थ उसे ही कहते हैं, जो हमारे सभी कार्योकी सम्पन्नताम अनिवार्यरूपसे उपयोगी हो। इसी दृष्टिसे सभी रत्नाकी निधि पृथ्वी, धान्य, पशु, स्त्रियाँ आदि अर्थ माने जाते हैं। इस तरह अर्थका महत्त्व होनेपर भी इसके अर्जनम सयम आवश्यक है, अतएव विशेपकर ब्राह्मणको अपनी जीविकाके लिये अर्थार्जिन करते समय यह ध्यानम रखना चाहिये कि यदि आपत्तिकाल नहीं है तो किसी भी प्राणीके साथ द्रोह न करना पडे अथवा कम-से-कम द्रोह करना पड।

धन तीन प्रकारका माना गया है—शुक्ल, शबल (मिश्रित) और कृष्ण। उस धनके सात विभाग हैं। सभी वर्णोको प्राप्त होनेवाला धन तीन प्रकारका होता है—१-दायभागके अनुसार वशपरम्परासे यथाधिकार प्राप्त धन २-प्रेमके कारण किसीके द्वारा दिया गया धन और ३-यथाविधि विवाहित पत्नीके साथ प्राप्त धन। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणके लिये तीन प्रकारके विशेष धन हैं—याजन (यज्ञ करानेसे प्राप्त), अध्यापनसे प्राप्त तथा विशुद्ध प्रतिग्रह (सत्पात्रसे लिया गया दान)। क्षत्रिय वर्णका विशेष धन भी तीन प्रकारका कहा गया है—करसे प्राप्त धन उसका पहला धन है, दूसरा धन दण्डद्वारा प्राप्त तथा तीसरा धन वह है जो विजयद्वारा प्राप्त हो। वैश्यका भी तीन प्रकारका विशेष धन हे—खेतीसे प्राप्त गापालनसे प्राप्त तथा व्यापारस प्राप्त। शूद्रका विशेष धन एक ही प्रकारका हे, जो उपर्युक्त वर्णोकी कृपासे उसको प्राप्त होता है। आपत्तिकालम ब्राह्मण एव क्षत्रिय स्वय ब्याजसे खेतीसे तथा व्यापारसे धन अर्जित कर सकते हैं, आपत्तिकालम ऐसा करनेपर पाप नहीं होता है।

ऋषियाके द्वारा जीवनयापनके लिये बहुत-से उपाय बताये गये हैं उनम कुसीद (ब्याज) सभी वर्णोंके लिये बताय गये विशेष उपायाकी अपेक्षा अधिक है। अनावृष्टि राजभय तथा चूहा आदि जीव-जन्तुओके उपद्रवास कृषि आदिम बाधा आ जाती है, किंतु कुसीद-वृत्तिमे यह बाधा नहीं आती। शुक्लपक्ष हो, कृष्णपक्ष हो, रात्रि हो, दिन हो, गर्मी हो, वर्षा अथवा शीत हो—सभी दशाओमें कुसीदसे होनेवाली धनवृद्धि रुकती नहीं है। अर्थात् सूदपर दिया गया धन बढता ही रहता है। नाना प्रकारके व्यापारिक कार्योमें सलग्न वणिक्-जनोकी जा धनकी अभिवृद्धि दूसरे देशमें जानेस होती है, वही अभिवृद्धि कुसीद-वृत्ति करनेसे घरमें बैठे-ही-बैठे प्राप्त हो जाती है।

शास्त्रसम्मत विधिसे अर्जित धनके लाभाशसे सभी लोगाको पितृगण, देवगण तथा ब्राह्मणाकी पूजा करनी चाहिये। ये सतुष्ट होकर धन-अर्जनमें अज्ञानवश हुए दोपको नि सदेह शान्त कर देते हैं। जो वणिक् ब्याजके द्वारा (धनार्जनके लिये) वस्त्र, गौ तथा स्वर्णादि देता है और जा किसान अन्न, पय पदार्थ, सवारी, शय्या तथा आसन आदि (ब्याज-वृत्तिम) देता है, वह (उपार्जित धनका) बीसवाँ भाग ओर पशु-स्वर्णादिका १००वाँ भाग राजाको देकर शेप बचे हुए धनके चतुर्थांशसे जौ (यव) आदि विभिन्न वस्तुआका सञ्चय करे। दा-चौथाई अर्थात् आधे धनका उपयोग अपने भरण-पोपण तथा नित्य-नैमित्तिक कार्यके लिये होना चाहिये। जो एक-चौथाई धन शेष बचे, उसका उपयोग मूलधनकी वृद्धिमे करना चाहिये।

विद्या, शिल्प वेतन, सेवा, गोरक्षा, व्यापार, कृषि, वृत्ति[2], भिक्षा और ब्याज—ये दस जीवनयापनके साधन हैं। ब्राह्मणको सत्पात्र व्यक्तिसे दानरूपम प्राप्त धनसे अपना निर्वाह करना चाहिये। क्षत्रिय वर्ण अपने शस्त्रास्त्रासे धनार्जन करे। वैश्य वर्ण न्यायोचित ढगसे धनसग्रह कर अपना कार्य पूर्ण करे ओर शूद्र सवा-भावसे धन अर्जितकर अपने सभी कार्योंको सम्पन्न करे। प्रचुर जलराशिसे परिपूर्ण नदी शाक, मृत्तिका समिधा कुश, पलाश केला आदिके पत्र अग्निदेवकी आराधनाके उपकरण और ब्रह्मयाग (स्वाध्याय)—ये ब्राह्मणाके श्रेष्ठतम धन हैं। यदि अयाचित (स्वत प्राप्त) धनको ब्राह्मण स्वाकार करे तो दोप नहीं है।

१-माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीना समाश्रिता ॥
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्नि पाप्यवर्गा उदाहता । भरण पोष्यवर्गस्य प्रशस्त स्वर्गसाधनम् ॥
भरण पोष्यवर्गस्य तस्माद्यत्नेन कारयेत् । स जीवति यश्चैको बहुभिर्योपजीव्यति ॥
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुपा स्वादरम्भरा । स्वकीयादरपूर्तिश्च कुक्कुरस्यापि विद्यते ॥ (२१३ । ७९—८२)

२-वृत्ति—सहायताके रूपमें प्रतिमास दी जानेवाली धनराशि।

देवताओने ऐसे धनको अमृतके समान कहा है। अत बिना याचना किये ही आये धनका परित्याग ब्राह्मणको नहीं करना चाहिये।

गुरुके धनका उद्धार करनेकी इच्छासे देवता और अतिथिकी पूजा करते हुए सभीसे प्रतिग्रह लेना चाहिये, पर उसका उपयोग अपनी तुष्टिके लिये नहीं करना चाहिये। साधुसे अथवा असाधुसे भी केवल उसके कल्याणक लिये प्रतिग्रह लेना चाहिये। यदि प्रतिग्रहीता ब्राह्मण (आचारहीन) कर्मनिष्ठ है तो अल्प दोष होगा। यदि निर्गुण है तो दोषमे डूब जायगा। इस प्रकार तस्करवृत्ति (अपने पुण्यको क्षीण करनेवाली वृत्ति)-से अपना भरण करनेके बाद उत्तम द्विजको अपनी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। दिनके चौथे भागम मिट्टी, तिल, पुष्प तथा कुशादि सामग्री लाकर प्रकृतिप्रदत्त जलमे स्नान करना चाहिये।

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलापकर्षण मार्जन, आचमन और अवगाहन—ये आठ प्रकारके स्नान बताये गये हैं। बिना स्नान किया पुरुप जप, अग्नि और हवन आदि करनेका अधिकारी नहीं है। प्रात स्नान पूजा-पाठ आदि धार्मिक कृत्यके लिये करना चाहिये। इसीको नित्य-स्नान कहा गया है। चाण्डाल, शव, विष्ठा तथा रजस्वला आदिका स्पर्श करनेके पश्चात् जो स्नान किया जाता है, वह नैमित्तिक-स्नान कहलाता है। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार पुष्य आदि नक्षत्रोम जो स्नानादिक कृत्य किया जाता है, उसे काम्य-स्नान कहते हैं। निष्काम व्यक्तिको इस प्रकारका स्नान नहीं करना चाहिये। जप-होमादिक कृत्योको सम्पन्न करनेकी इच्छासे प्ररित होकर अथवा अन्य अनेक पवित्र कृत्य देवता तथा अतिथि आदिका पूजन करनेकी इच्छासे जो स्नान किया जाता है उसको क्रियाङ्ग-स्नानक नामसे अभिहित किया गया है। शारीरिक मलको दूर करनेके लिये सरोवर, देवकुण्ड, तीर्थ और नदियोमे जो स्नान किया जाता है, वह मलापकर्षण-स्नान है। सामान्य जलसे स्नान करनेपर केवल शरीरकी शुद्धि होती है। तीर्थमे स्नान करनेपर विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। मज्जन (स्नान)-के लिये विहित मन्त्रासे मार्जन करनेसे मनुष्यका पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाता है। नित्य नैमित्तिक, क्रियाङ्ग तथा मलापकर्षण नामक जो स्नान बताये गये हैं, उन स्नानाको तीर्थका अभाव हानेपर उष्ण जल अथवा अन्य किसी प्रकारसे प्राप्त कृत्रिम जलसे सम्पन्न कर लेना चाहिये।

भूमिसे निकला हुआ जल पवित्र होता है। इस जलकी अपेक्षा पर्वतसे निकलनेवाले झरनेका जल पवित्र होता है। इससे भी बढकर पवित्र जल सरोवरका है और उसकी अपेक्षा नदीका जल पवित्र है। नदीके जलकी अपेक्षा भी तीर्थका जल पवित्र है। इन सभी जलोकी अपेक्षा गङ्गाका जल परम पवित्र है। गङ्गाका श्रेष्ठतम जल तो जीवनपर्यन्त किये गये प्राणीके सभी पापोका विनाश अतिशीघ्र ही कर देता है। गया तथा कुरुक्षेत्र नामक तीर्थोके जलसे भी बढकर पवित्र एव पुण्यदायक जल गङ्गाजीका है—

भूमिष्ठादुद्धृत पुण्य तत प्रस्रवणोदकम्॥
ततोऽपि सारस पुण्य तस्मान्नादेयमुच्यते।
तीर्थतोय तत पुण्य गाङ्ग पुण्य तु सर्वत ॥
गाङ्ग पय पुनात्याशु पापमामरणान्तिकम्।
गयाया च कुरुक्षेत्रे यत्तोय समुपस्थितम्॥
तस्मात्तु गाङ्गमपर जानीयात्तोयमुत्तमम्॥

(२१३। ११६—११९)

पुत्रजन्म, कतिपय विशिष्ट योग, मकर आदि राशियापर सूर्यकी सक्रान्ति तथा चन्द्र और सूर्यग्रहण होनेपर ही रात्रिम स्नान करना प्रशस्त है। अन्यथा रात्रिमे स्नान नहीं करना चाहिये। प्रतिदिन उप कालमे, सध्याकालम और सूर्यका उदय होते ही जो स्नान किया जाता है, वह स्नान प्राजापत्य यज्ञकी भाँति महापातकका नाश करनेवाला है। बारह वर्षतक प्राजापत्य यज्ञ करनेपर जा फल प्राप्त होता है, वह फल श्रद्धापूर्वक एक वर्पतक प्रात काल स्नान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति सूर्य ओर चन्द्र नामक श्रेष्ठ ग्रहाके समान प्रचुर भोगोको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, वह माघ तथा फाल्गुन—इन दो मासोम नित्य प्रात काल स्नान करे। जो श्रद्धालु माघमास आनेपर प्रात काल स्नान करके हविष्यान्न ग्रहण करता है, वह एक ही मासमे अपने महाघोर और अतिपापोका विनाश कर देता है। माता, पिता, भ्राता, मित्र अथवा गुरु आदिको उद्देश्य बनाकर जो प्रात काल स्नान करता है, उसे शास्त्रनिर्दिष्ट पुण्यका द्वादश गुणित अधिक पुण्य प्राप्त होता है। भगवान् विष्णु एकादशी तिथिका आमलक (आँवला)-के समर्पण एव दानसे विशेपरूपसे तुष्ट होते हैं। लक्ष्मीकी कामना करनेवाले मनुष्यको सर्वदा आमलकसे स्नान करना चाहिये।

सन्ताप कीर्ति अल्पायु, धन मृत्यु, आरोग्य तथा सभी कामनाआकी पूर्ति क्रमश रविवार आदिको तेलका अभ्यङ्ग

करनेस प्राप्त होती है। अर्थात् रविवारको शरीरम तैलका अभ्यङ्ग करनेपर सन्ताप, सोमवारको तैल-अभ्यगसे कीर्ति, मगलवारको तैल-अभ्यङ्गसे अल्पायु, बुधवारको तैल-अभ्यङ्गसे धन, बृहस्पतिवारको ऐसा करनेसे मृत्यु, शुक्रवारको तैल-अभ्यङ्गसे आरोग्य और शनिवारको तैल- अभ्यङ्ग करनेपर मनुष्यका सम्पूर्ण अभीष्ट पूर्ण होता है। उपवास करनेवाले व्रती तथा नाईके द्वारा क्षौरकर्म करानेके पश्चात् मनुष्यसे तबतक ही लक्ष्मी प्रसन्न रहती हैं, जबतक वह तैलका स्पर्श नहीं करता है। अत तैलस्पर्श करनेके पश्चात् मनुष्यको तत्काल स्नान कर लेना चाहिये। व्रतके दिन तो तैलस्पर्श नहीं ही करना चाहिये।

स्नान करनेके बाद मनुष्यको यथाविधान पितृगण, देवगण और मनुष्योंका तर्पण करना चाहिये। नाभिपर्यन्त जलमे स्थित होकर एकाग्र मनसे पितरोंका आवाहन करना चाहिये—

आगच्छन्तु मे पितर इम गृह्णन्त्वपोऽञ्जलिम्॥

हे मेरे पितृगण! आप सब इस तीर्थस्थानपर आकर विराजमान हों और मेरे द्वारा दी जा रही जलाञ्जलिको स्वीकार करें।

इस प्रकार आवाहन करके आकाश और दक्षिण दिशाम स्थित पितृगणोंको तीन-तीन जलाञ्जलि प्रदान करे। यदि जलसे बाहर निकलकर तर्पण करना हो तो तर्पणकी विधि जाननेवाले लोगोंको सूखे और स्वच्छ वस्त्र पहनकर समूल कुशाओंपर तर्पण करना चाहिये। पात्र (बर्तन)-मे तर्पण नहीं करना चाहिये।

तर्पण-कृत्यमे रक्षोगण प्रतिबन्ध न कर सकें, इसके लिये तर्पण आरम्भ करते समय बाये हाथमे जल लेकर नैर्ऋत्य कोणमे उसे छोड़ना चाहिये और जल छोड़ते समय निम्नलिखित मन्त्र बोलना चाहिये—

यदपा क्रूरमासात्तु यदमध्य तु किञ्चन॥
अशान्त मलिन यच्च तत्सर्वमपगच्छतु।

(२१३। १३१-१३२)

(क्रूरमासके कारण अपवित्रताके कारण अथवा तर्पणके जलमे अज्ञानवश विद्यमान अशान्तिजनक किसी तत्त्व या मलिनताके कारण जो कुछ भी प्रतिबन्ध है वह दूर हो जाय।)

अन्तमे तर्पणका सक्षेप (उपसहार) करते समय तीन जलाञ्जलि निम्नलिखित मन्त्रोंसे देनी चाहिये—

निषिद्धभक्षणाद्यत्तु पापाद्यच्च प्रतिग्रहात्॥
दुष्कृत यच्च मे किञ्चिद्वाङ्मन कायकर्मभि।
पुनातु मे तदिन्द्रस्तु वरुण सबृहस्पति॥
सविता च भगश्चैव मुनय सनकादय।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त जगत् तृप्यत्विति ब्रुवन्॥

(२१३। १३३—१३५)

निषिद्ध भक्षणसे, जन्मान्तरीय दुष्कर्मोंसे, प्रतिग्रह (दान) लेनेसे और इस जन्ममे शरीर, वाणी एव कर्मसे जो निषिद्ध आचरण हो गये हैं, उनसे उत्पन्न पापोंके कारण मुझमें जो अपवित्रता है, उसे दूर करके बृहस्पति, इन्द्र तथा वरुण मुझे पवित्र करें। सूर्य, यम (देवताविशेष), सनकादि ऋषि और ब्रह्मसे लेकर स्तम्ब (अति लघु कीट या तृण) समस्त ससार—ये सभी मेरे तर्पणसे तृप्त हों।

इस प्रकार पितृतर्पण करके सयमी व्यक्तिको ईर्ष्या, द्वेष आदिसे रहित होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि अभीष्ट देवोंकी पूजा करनी चाहिये। विभिन्न देवतालिङ्गक ब्राह्म, वैष्णव, रौद्र, सावित्र एव मैत्रावरुण-मन्त्रोंसे सभी देवताओंकी नमस्कारपूर्वक अर्चा करनी चाहिये। तदनन्तर पुन नमस्कारपूर्वक अर्चित देवोंको पृथक्-पृथक् पुष्पाञ्जलियाँ देनी चाहिये। पुन सर्वदेवमय भगवान् विष्णु और सूर्यकी पूजा करनेका विधान है। इस पूजामे जो अधिकारी मनुष्य पुरुषसूक्तसे भगवान् विष्णुको पुष्प तथा जल समर्पित करता है वह सम्पूर्ण चराचर विश्वकी पूजाको सम्पन्न कर लेता है। इन देवोंकी पूजा अन्य तान्त्रिक मन्त्रोंसे भी की जा सकती है। पूजामे सबसे पहले आराध्यदेव जनार्दनको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये और सुगन्धित पदार्थसे उनके विग्रहका विलेपन करना चाहिये। तत्पश्चात् उन्हें पुष्पाञ्जलि, धूप उपहार और फलका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये।

जलके मध्य स्नान, जलके द्वारा मार्जन आचमन जलमे तीर्थका अभिमन्त्रण तथा अघमर्षण-सूक्तके द्वारा मार्जन नित्य तीन बार करना चाहिये। महात्माओंको स्नानविधिके विषयमे यही अभीष्ट है। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको मन्त्रसहित स्नान करना चाहिये। शूद्र वर्णको मौन होकर नमस्कारपूर्वक स्नान करना चाहिये। अध्यापन

ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, होम देवयज्ञ, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ तथा अतिथिका पूजन मनुष्ययज्ञ है। गौओके गोष्ठमे दस गुना, अग्निशालामे सौगुना, सिद्धक्षेत्र-तीर्थ तथा देवालयोमे क्रमश एक हजार गुना, एक लाख गुना और एक करोड गुना फल इन कर्मोंको करनेसे प्राप्त होता है। जब ये ही कर्म भगवान् विष्णुके सान्निध्यमे किये जाते हैं तो इनसे अनन्त गुना फलोकी प्राप्ति होती है।

दिनका यथायोग्य पाँच विभाग करके पितृगण, देवगणकी अर्चा और मानवके कार्य करने चाहिये। जो मनुष्य अन्नदान करके सर्वप्रथम ब्राह्मणको भोजन कराकर अपने मित्रजनोके साथ स्वय भोजन करता है, वह देहत्यागके बाद स्वर्गलोकके सुखका अधिकारी बन जाता है।

मनुष्यको सर्वप्रथम मधुर, मध्यभागम नमकीन और अम्लसे युक्त पदार्थ, उसके बाद कड़ुवा, तीता तथा कषैला भोजन करना चाहिये। भोजनके अनन्तर दुग्धपान करना चाहिये। रातमे शाक तथा कन्दादिक पदार्थोंको अधिक नहीं खाना चाहिये। एक ही प्रकारके रसमे आसक्ति अच्छी नहीं होती है।

ब्राह्मणका अन्न अमृतके समान, क्षत्रियका अन्न दुग्धके तुल्य, वैश्यका अन्न अन्नके समान और शूद्रका अन्न रक्तके समान होता है। जो अमावास्याका व्रत एक वर्षतक करता है, उसके यहाँ ऐश्वर्य और लक्ष्मीका (अविचलरूपसे) निवास होता है। द्विजातिके उदरभागमें गार्हपत्याग्नि पृष्ठभागम दक्षिणाग्नि मुखमे आहवनीयाग्नि, पूर्वमे सत्याग्नि और मस्तकमे सर्वाग्निका वास रहता है। जो इन पञ्चाग्नियोको जान लेता है उसको आहिताग्नि कहा जाता है। शरीरको जल, चन्द्र तथा विविध प्रकारके अन्नके द्वारा साध्य माना गया है। इस शरीरका उपभोग करनेवाले प्राण अग्नि और सूर्य हैं। ये तीना पृथक्-पृथक् तीन रूपोमे भी अवस्थित रहकर एक ही हैं।

(भोजनके समय यह भावना करनी चाहिये कि) पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायुतत्त्वसे युक्त इस मेरे स्थूल शरीरकी पुष्टिके लिये प्रयुक्त अन्न शक्ति-सञ्चयके लिये होता है। शरीरम पहुँचकर जब यह अन्न भूमि, जल, अग्नि और वायुतत्त्वके रूपमे परिणत हो जाता है तो अप्रतिहत—असीम सुखकी अनुभूति होती है।

इसके (भोजनके) बाद मनुष्यको अपने हाथसे मुख आदि स्वच्छकर ताम्बूल अर्थात् पानका भक्षण करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर इतिहासका श्रवण करना चाहिये। इतिहास और पुराणादिकी कथाओके द्वारा मनुष्यको दिनके छठे और सातव भागका समय व्यतीत करना चाहिये। तत्पश्चात् स्नान करके पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके सायकालीन सध्योपासन करना चाहिये।

हे ब्राह्मणदेव! मरे द्वारा कहे गये इस विधानके अनुसार अपने कर्तव्याका पालन करना चाहिये। जो मनुष्य इस सदाचारके अध्यायका पाठ करता है अथवा अपने पुरोहित आदिके द्वारा इसका श्रवण करता है, वह निश्चित ही अपनी मृत्युके पश्चात् स्वर्गलोकको जाता है। हे द्विज! इन सभी सदाचार एव धर्मका पालन करनेवाला अधिकारी मनुष्य केशव (साक्षात् विष्णु) ही माना गया है।

(अध्याय २१३)

स्नान तथा सक्षेपमे सध्या-तर्पणकी विधि[१]

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं स्नानकी विधि कहता हूँ, क्योकि सभी क्रियाएँ स्नानमूलक हैं, अर्थात् स्नानके बिना कोई भी क्रिया सफल नहीं हो सकती। स्नानार्थी व्यक्तिको स्नानके पूर्व मिट्टी, गोमय, तिल, कुश, सुगन्धित पुष्प—ये सभी द्रव्य एकत्र कर लेना चाहिये। गन्ध आदि स्नानोपयोगी पदार्थोंको जलके समीप स्वच्छ स्थानपर भूमिपर रखना चाहिये।

तदनन्तर विद्वान् व्यक्ति एकत्र किये हुए मिट्टी और गोमयको तीन भागामे विभक्त करके मिट्टी और जलके द्वारा दोनो पैर तथा दोना हाथका प्रक्षालन करे। बाये कधेपर यज्ञोपवीत रखकर शिखाबन्धनपूर्वक मौन होकर आचमन करे। 'ॐ उरु हि राजा[२]०' इत्यादि मन्त्रासे दक्षिणभागमे

१-इस अध्यायमें मन्त्रोके प्रतीकमात्र दिये गये है। जिज्ञासु विभिन्न मन्त्रसहिताओसे मन्त्रोका जान ले।

२-ॐ उरु हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थानमन्वेत वाउ। प्रतिधाता च वक्तारस्ताहृदयाविपश्चित्। नमोऽग्न्यरुणाया भिष्टुतोवरुणस्य पाश ॥ वरुणाय नम ॥ (२१४। ६)

जलको स्थापित करे। फिर 'ॐ ये ते शत[१]०' इत्यादि मन्त्राका पाठ करक उस जलका अभिमन्त्रण करे। 'ॐ सुमित्रिया न आप[२]०' इस मन्त्रसे अञ्जलिमे जल लेकर पहले मार्जन करे, फिर शेप जलको बाहर फके। तदनन्तर दाना चरण जघा आर कटिप्रदेशम तीन-तीन बार मिट्टी लगाये। इसक पश्चात् दाना हाथ धोकर आचमन करके जलको नमस्कार कर। इसके बाद '**ॐ इद विष्णुर्विचक्रम०**' का पाठ करके '**ॐ भू स्वाहा, ॐ भुव स्वाहा, ॐ स्व स्वाहा**' इत्यादि महाव्याहतिमन्त्रसे आचमन और '**ॐ इद विष्णु०**' आदि मन्त्रसे मिट्टीद्वारा अङ्गाका मार्जन करे। फिर सूयाभिमुख होकर '**ॐ आपो अस्मान्**' इत्यादि मन्त्रसे जलम डुबकी लगाय। तदनन्तर शरीरका मल-मलकर स्वच्छ कर और धीरे-धीरे डुबकी लगात हुए स्नान करे।

इसक बाद '**ॐ मा नस्तोके तनये मा न०**' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करक गोमयके द्वारा अङ्गका लेपन करे। फिर '**ॐ इम मे वरुण०**' इत्यादि *वारुणमन्त्रसे* यथाक्रम अपने मस्तक आदिका अभिपक करे। पूर्वोक्त मन्त्रास विधिवत् आत्माभिपक करक जलम डुबकी लगाकर पुन आचमन करे। '**ॐ आपो हि ष्ठा०**', '**ॐ इद आपो हविष्मती०**' '**ॐ देवी राप०**', '**ॐ द्रुपदादिव०**' तथा '**ॐ शन्नो देवी०**' इत्यादि पावमानी मन्त्रासे समाहित हाकर मार्जन करे। '**ॐ हिरण्यवर्णा०**' '**ॐ पवमानसूक्तम्०**', '**ॐ तरत्सामा ०**' तथा '**ॐ शुद्धवत्य ०**' आदि पवित्र करनेवाले मन्त्रा एव वारुणमन्त्रासे यथाशक्ति जलाभिपक कर।

आकार ओर व्याहतिसमन्वित गायत्री-मन्त्रका पाठ करते हुए स्नानक आदि और अन्तम जलाभिपक कर। जलके मध्यम रहकर ही मार्जन करनेका विधान है। जलम डूबकर अघमर्पण-मन्त्रको तीन बार पढना चाहिये। इसक बाद ॐ द्रुपदा०' इत्यादि मन्त्रका तान बार पाठ करके '**ॐ आय गौ ०** इत्यादि तीन ऋचाआका पाठ कर। तदनन्तर स्मृतियाम निर्दिष्ट स्नानाङ्ग-मन्त्राका समाहितचित्तस पाठ करे अथवा महाव्याहृति और प्रणवस युक्त गायत्राका जप कर या प्रणवका आवृत्ति कर अथवा अव्यय विष्णुका स्मरण कर। जल ही विष्णुका आयतन है। विष्णु हा जलक अधिपति कहे गये हैं। जलम विष्णुका स्मरण करे। '**ॐ तद् विष्णो परम पदम्०**' इत्यादि कहकर बार-बार स्नान करे। यह वैष्णवी गायत्री विष्णुके सर्वाङ्ग-स्मरणम निमित्त है। '**ॐ इदमाप प्रवहत ०**' इत्यादि पवित्र मन्त्रासे अपने मलका निवारण करते हुए मार्जन करे और अपनेको निर्मल शरीरवाला बना ले। फिर '**ॐ तद्विष्णो परम पदम्०**' इत्यादि मन्त्राका पाठ करे।

यथाविधि स्नानक्रियाको सम्पन्नकर धोये हुए अखण्डित पवित्र दो वस्त्राको पहनकर मिट्टी और जलके द्वारा हाथ तथा पैरका प्रक्षालन करके सध्या एव तर्पण करना चाहिये। स्नान और भोजनके आरम्भमे आचमनकर पुन मन्त्रक द्वारा अन्तम आचमन करना चाहिय। आचमनके बाद तीन बार '**ॐ द्रुपदादिव०**' इत्यादि मन्त्रका पाठकर जलद्वारा मूर्धाभिषेक तथा अघमर्पण कर। पुन आचमन और मार्जन तथा तीन बार आचमनकर धीरे-धीरे प्राणायाम करे। इसक बाद *अञ्जलिम जल एव पुष्प धारण करके* सूर्यार्घ्य दे और ऊर्ध्ववाहु हाकर समाहितचित्त हा सूर्यका निरीक्षण करते हुए '**ॐ उदुत्य०**' '**ॐ चित्र देवाना०**' *तथा* '**ॐ तच्चक्षुर्देवहित०**' एव '**ॐ हस शुचिषद्०**' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करते हुए सूर्योपस्थापन कर। इस प्रकार सूर्योपस्थापन करक यथाशक्ति गायत्राका जप करना चाहिये। इसक पश्चात् '**ॐ विभ्राद्०** अनुवाक, पुरुपसूक्त, शिवसकल्पसूक्त मण्डलब्राह्मण इत्यादि सूर्यके मन्त्रोका सभी देवताओंकी प्रसन्नताक लिये यथाशक्ति जप करे अथवा जपकी सङ्गोपाङ्ग पूर्णताके लिय विधिवत् *अध्यात्मविद्याका* जप करे। तदनन्तर सव्य होकर तीन बार आचमनकर श्री मधा, धृति भिति वाक् वागाश्वरी पुष्टि तुष्टि उमा अरुन्धता शची मातृगण जया विजया सावित्री शान्ति स्वाहा स्वधा, धृति श्रद्ध अदिति ऋपिपत्निया ऋपिकन्याआ और अन्य काम्य दवताआका तर्पण कर। इसक बाद समाहितचित्त हाकर सभाका मङ्गलकामनास सर्वमङ्गलादवाका तृप्त कर और '**ॐ आब्रह्मस्तम्यपर्यन्त जगत् तृप्यत्विति** इस मन्त्रस तान अञ्जलि जल दत हुए तपण-क्रियाका सम्पन्नताकी कामना कर। (अध्याय २१८)

१-ॐ ये ते शत वरुण ये सहस्र यज्ञिया पाशा वितता महान्त। तभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुत स्वर्का स्वाहा॥ (२१४।२)

२ ॐ सुमित्रिया न आप ओषधय सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो स्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म॥ (२१४।७)

तर्पण[१]-विधिका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—इसके बाद तर्पणविधिका वर्णन करता हूँ। इस विधिके अनुसार तर्पण करनेसे देवगण और पितृगण तुष्ट होते हैं। सर्वप्रथम 'ॐ मोदास्तृप्यन्ताम्' इत्यादि मन्त्रोसे एक-एक अञ्जलि जल प्रदान करे। तर्पणके मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ मोदास्तृप्यन्ताम्। ॐ प्रमोदास्तृप्यन्ताम्। ॐ सुमुखास्तृप्यन्ताम्। ॐ दुर्मुखास्तृप्यन्ताम्। ॐ विघ्नास्तृप्यन्ताम्। ॐ विघ्नकर्तारस्तृप्यन्ताम्। ॐ छन्दासि तृप्यन्ताम्। ॐ वेदास्तृप्यन्ताम्। ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम्। ॐ सनातनस्तृप्यताम्। ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ सवत्सरस्सावयवस्तृप्यताम्। ॐ देवास्तृप्यन्ताम्। ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम्। ॐ देवान्धकास्तृप्यन्ताम्। ॐ सागरास्तृप्यन्ताम्। ॐ नागास्तृप्यन्ताम्। ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्। ॐ सरिन्मनुष्या यक्षास्तृप्यन्ताम्। ॐ रक्षासि तृप्यन्ताम्। ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम्। ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतानि तृप्यन्ताम्। ॐ भूतग्रामाश्चतुर्विधास्तृप्यन्ताम्। ॐ दक्षस्तृप्यताम्। ॐ प्रचेतास्तृप्यताम्। ॐ मरीचिस्तृप्यताम्। ॐ अत्रिस्तृप्यताम्। ॐ अङ्गिरास्तृप्यताम्। ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम्। ॐ पुलहस्तृप्यताम्। ॐ क्रतुस्तृप्यताम्। ॐ नारदस्तृप्यताम्। ॐ भृगुस्तृप्यताम्। ॐ विश्वामित्रस्तृप्यताम्। ॐ कश्यपस्तृप्यताम्। ॐ जमदग्निस्तृप्यताम्। ॐ वसिष्ठस्तृप्यताम्। ॐ स्वायम्भुवस्तृप्यताम्। ॐ स्वारोचिषस्तृप्यताम्। ॐ तामसस्तृप्यताम्। ॐ रैवतस्तृप्यताम्। ॐ चाक्षुषस्तृप्यताम्। ॐ महातेजास्तृप्यताम्। ॐ वैवस्वतस्तृप्यताम्। ॐ ध्रुवस्तृप्यताम्। ॐ धवस्तृप्यताम्। ॐ अनिलस्तृप्यताम्। ॐ प्रभासस्तृप्यताम्।

इसके बाद निवीती होकर अर्थात् यज्ञापवीतको मालाक रूपम गलेमे धारणकर 'ॐ सनकस्तृप्यताम्' इत्यादि निम्न मन्त्रोसे तर्पण करे—

ॐ सनकस्तृप्यताम्। ॐ सनन्दनस्तृप्यताम्। ॐ सनातनस्तृप्यताम्। ॐ कपिलस्तृप्यताम्। ॐ आसुरिस्तृप्यताम्। ॐ वोढुस्तृप्यताम्। ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम्। ॐ मनुष्याणा कव्यवाहस्तृप्यताम्। ॐ अनलस्तृप्यताम्। ॐ सोमस्तृप्यताम्। ॐ यमस्तृप्यताम्। ॐ अर्यमा तृप्यताम्।

तदनन्तर प्राचीनावीती होकर अर्थात् दाहिने कधेपर यज्ञोपवीत धारणकर अधालिखित मन्त्रासे तर्पण कर—

ॐ अग्निष्वात्ता पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ सोमपा पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ बर्हिषद पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ यमाय नम । ॐ धर्मराजाय नम । ॐ मृत्यव नम । ॐ अन्तकाय नम । ॐ वैवस्वताय नम । ॐ कालाय नम । ॐ सर्वभूतक्षयाय नम । ॐ औदुम्बराय नम । ॐ दध्नाय नम । ॐ नीलाय नम । ॐ परमेष्ठिने नम । ॐ वृकोदराय नम । ॐ चित्राय नम । ॐ चित्रगुप्ताय नम । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त जगत्तृप्यतु। ॐ पितृभ्य स्वधा नम । ॐ पितामहभ्य स्वधा नम । ॐ प्रपितामहभ्य स्वधा नम । ॐ मातृभ्य स्वधा नम । ॐ पितामहीभ्य स्वधा नम । ॐ प्रपितामहीभ्य स्वधा नम । ॐ मातामहेभ्य स्वधा नम । ॐ प्रमातामहेभ्य स्वधा नम । ॐ वृद्धप्रमातामहेभ्य स्वधा नम । तृप्यतामिति।

अधोलिखित मन्त्राका पारायण पितराका ध्यान करते हुए करे—

'ॐ उदीरतामवर०','ॐ अगिनरसा न ०', 'ॐ आयन्तु न ०', 'ॐ ऊर्जं०', 'ॐ पितृभ्य०', 'ॐ ये चेह०' तत्पश्चात् 'ॐ मधुवाता०' इसके बाद 'ॐ नमो व पितरो०' इत्यादि मन्त्रसे ध्यान करते हुए अधालिखित मन्त्रसे जल दे—

ॐ पितृभ्य स्वधायिभ्य नम । ॐ पितामहेभ्य स्वधायिभ्य स्वधा नम । ॐ प्रपितामहेभ्य स्वधायिभ्य स्वधा नम । ॐ मातामहेभ्य स्वधा नम । ॐ प्रमातामहेभ्य स्वधा नम । ॐ वृद्धप्रमातामहभ्य स्वधा नम । आदि ।

ये चास्माक कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृता ।
ते तृप्यन्तु मया दत्त वस्त्रनिष्पीडनोदकम्॥

इस मन्त्रका पाठकर वस्त्रनिष्पीडित जलसे अपने कुलम उत्पन्न पुत्र-हीनजनाक लिय तर्पण करे।

(अध्याय २१५)

१-इस अध्यायम तर्पणकी अवश्यकर्तव्यता एव उसकी दिशाका सकेतमात्र किया गया है। तर्पणक्रम एव विधिका ज्ञान अपनी शाखाके ग्रन्थोसे करना चहिये। माध्यन्दिन शाखाके लोगाको 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' (प्रकाशित गीताप्रस)-स सरलतम प्रामाणिक तर्पणविधि जान लेनी चहिये।

बलिवैश्वदेवनिरूपण

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं वैश्वदेव-बलिविधिका विधान बतलाता हूँ। यह होमका एक प्रारम्भिक उत्तम स्वरूप है। पहले अग्निको जलाकर अग्निका पर्युक्षण करे तदनन्तर 'ॐ क्रव्यादमग्निं०' इत्यादि मन्त्रसे अग्निके लिये कुछ हव्यांशका परित्याग करे। इसके बाद 'ॐ पावक वैश्वानर०' मन्त्रको पढ़कर अग्निका आवाहन करे और ॐ प्रजापतये स्वाहा। ॐ सोमाय स्वाहा। ॐ बृहस्पतये स्वाहा। ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहा। ॐ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। ॐ द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। ॐ इन्द्राय स्वाहा। ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा। ॐ अद्भ्यः स्वाहा। ॐ ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा। ॐ गृहाय स्वाहा। ॐ देवदेवताभ्यः स्वाहा। ॐ इन्द्राय स्वाहा। ॐ इन्द्रपुरुषेभ्यः स्वाहा। ॐ यमाय स्वाहा। ॐ यमपुरुषाय स्वाहा। ॐ सर्वेभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्यः स्वाहा। ॐ वसुधापितृभ्यः स्वाहा—इन मन्त्रोंसे अग्निमें आहुति दे। तदनन्तर 'ॐ ये भूता' प्रचरन्ति०' का पाठ करते हुए बलि और पुष्टि प्रदान करनेकी प्रार्थना करे। अन्तमें 'ॐ आचाण्डालपतितवायसेभ्यो नमः' इस मन्त्रसे भी काक आदिको बलि प्रदान करे[1]। (अध्याय २१६)

संध्याविधि[2]

श्रीब्रह्माजीने कहा—अब द्विजातियोंके लिये संध्या-विधिका वर्णन करता हूँ। सर्वप्रथम इस मन्त्रसे बाह्य तथा आभ्यन्तर शुद्धि करे—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

अर्थात् पवित्र हो या अपवित्र किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णुका स्मरण करनेसे बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारकी शुद्धि हो जाती है।

उपनयन-संस्कारके समय जिस गायत्रीमन्त्रका उपदेश प्राप्त होता है, उसीका जप संध्योपासनमें होता है। उपनयनकालमें गायत्रीमन्त्रका विनियोग इस प्रकार होता है—'ॐ गायत्री छन्दः, विश्वामित्र ऋषिस्त्रिपात्, समुद्रा कुक्षिः, चन्द्रादित्यौ लोचनौ, अग्निर्मुखम्, विष्णुर्हृदयम्, ब्रह्मरुद्रौ शिरः, रुद्रः शिखा उपनयने विनियोगः'।

संध्योपासनके समय गायत्रीमन्त्रके जपसे पहले 'ॐ भूः' से पैरमें 'ॐ भुवः' से जानुओंमें 'ॐ स्वः' से हृदयमें 'ॐ महः' से सिरमें 'ॐ जनः' से शिखामें 'ॐ तपः' से कण्ठमें और 'ॐ सत्यम्' से ललाटमें न्यास करना चाहिये। आगेके मन्त्रोंसे हृदय, सिर, शिखा, कवच, अस्त्र आदिमें न्यास करे— ॐ हृदयाय नमः, ॐ भूः शिरसे स्वाहा, ॐ भुवः शिखायै वौषट्, ॐ स्वः कवचाय हुम्, ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्। इसके बाद ॐ भूः, ॐ भुवः इत्यादि सप्तव्याहृतियोंके साथ गायत्रीके तृतीय पाद 'ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतम् भूर्भुवः स्वरोम्' का जप करते हुए प्राणायाम करे। प्राणायामके बाद 'ॐ सूर्यश्च०' इस मन्त्रसे प्रातःकालकी 'ॐ आपः पुनन्तु०' इस मन्त्रसे मध्याह्नकालकी तथा 'ॐ अग्निश्च०' इस मन्त्रसे सायंकालीन संध्यामें आचमन करे। तत्पश्चात् आवाहनपूर्वक भगवती गायत्रीके प्रातः मध्याह्न तथा साय-स्वरूपोंका ध्यान करे। फिर 'ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः०' और 'ॐ सुमित्रिया न आपः०' एवं 'ॐ द्रुपदादिव०' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा जलसे मार्जन करे और 'ॐ ऋतं च सत्यं०' इस मन्त्रसे अघमर्षण करे। तदनन्तर गायत्रीजपसे पूर्व गायत्रीमन्त्रका विनियोग इस प्रकार करे—'ॐ गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः'। 'ॐ उदुत्यं जातवेदसं०' 'ॐ चित्रं देवाना०', 'ॐ तच्चक्षुः०'—ये सूर्योपस्थानके मन्त्र हैं। गायत्रीका जप करनेके अनन्तर 'ॐ विश्वतश्चक्षु०' 'ॐ देवागातु०' तथा 'ॐ उत्तरे शिखरे०' इन मन्त्रोंसे जपसमर्पणपूर्वक गायत्रीदेवीका विसर्जन करे। (अध्याय २१७)

१-ये भूता प्रचरन्ति दीना च निमिहन्तो भुवनस्य मध्ये। तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो ददामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्ददातु॥ (२१६।२)

२-इस अध्यायमें बलिवैश्वदेवकी विधि अन्य शाखाके अनुसार है। माध्यन्दिन शाखाके लोगोंके लिये 'पारस्करगृह्यसूत्र' के अनुसार संक्षिप्त एवं प्रामाणिक बलिवैश्वदेवविधि गीताप्रेससे प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' में द्रष्टव्य है।

३-इस अध्यायमें संध्याकी विधि अत्यन्त संक्षिप्त दी गयी है। अतः सविधि विस्तारपूर्वक 'संध्योपासनविधि' जाननेके लिये गीताप्रेससे प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' पुस्तक देखना चाहिये।

पार्वणश्राद्धविधि[1]

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! अब मैं श्राद्धविधिका वर्णन करता हूँ। इस विधिके अनुसार पितराका श्राद्ध करनेसे भोग एव मोक्षकी प्राप्ति होती है। श्राद्धकर्ता श्राद्धके एक दिन पहले ब्राह्मणोको निमन्त्रित करे। ब्रह्मचारीको निमन्त्रित करनेसे विशेष फल होता है।

सव्य होकर देवताओ (विश्वेदेवो)-को एव अपसव्य होकर पितराको निमन्त्रित (आवाहित) करे। श्राद्धकर्ता '**ॐ स्वागत भवद्भि**' (**भवद्भि स्वागत स्वीक्रियताम्**) आपलोग मेरा स्वागत स्वीकार करे—यह निवेदन विश्वेदेवो एव पितरासे करे। तदनन्तर '**ॐ सुस्वागतम्**' इस प्रकार विश्वेदेवो एव पितराके प्रतिनिधि ब्राह्मण बोल। श्राद्धकर्ता '**ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य एतत्पादोदकमर्घ्यं स्वाहा**' कहकर दव-ब्राह्मणाके चरणोपर देवतीर्थसे समूल कुशाके सहित जल प्रदान करे। यह कुश द्विगुणभुग्न (पितरोके कार्यके लिये विहित मोटक)-रूपमे नहीं होना चाहिये। इसके बाद दक्षिणाभिमुख होकर दाहिने कधेपर यज्ञोपवीत रखकर (अपसव्य होकर) पिता पितामहके नाम, गोत्रका उल्लेख करते हुए '**ॐ एतत्पादोदकमर्घ्यं स्वधा**' इस मन्त्रसे पितरोके प्रतिनिधि ब्राह्मणोके चरणोम पितृतीर्थसे द्विगुण-भुग्न कुश (मोटक) एव पुष्पसहित जल प्रदान करे।

इसी प्रकार मातामह आदिके लिये उद्दिष्ट ब्राह्मणाके चरणोम पादोदक और अर्घ्य समर्पित करे। इसके बाद '**ॐ एतदाचमनीय स्वाहा**' कहकर ब्राह्मणके हाथम जल एव '**ॐ एष वोऽर्घ्य**' मन्त्रसे अर्घ्य तथा पुष्प दे। तत्पश्चात् '**ॐ सिद्धमिदमासनम्**' से (**सिद्धमिदमासन गृह्यताम्**)—आसन सम्पन्न है, कृपया ग्रहण कर—ऐसा निवेदन करे। '**इह सिद्धमिदमासनम्।**' (यहाँ हम लोगोके लिये आसन सम्पन्न है) ऐसा कहकर प्रतिनिधि ब्राह्मण प्रतिवचन द।

इसक बाद '**ॐ भू**', '**ॐ भुव**' इत्यादि सप्तव्याहतियोंका पाठकर देव-ब्राह्मणको पूर्वमुख और पितृब्राह्मणको उत्तरमुख बैठाकर निम्नलिखित मन्त्रका तीन बार जप करे—

ॐ देवताभ्य पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नम स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु ते॥ (२१८।६)

तदनन्तर मास, पक्ष, तिथि, देश तथा पिता, पितामहका नाम एव गोत्रका उच्चारण कर '**विश्वेदेवपूर्वक श्राद्ध करिष्ये**' यह सकल्प करे तथा '**ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य स्वाहा**'का उच्चारण करे। इसके बाद '**ॐ विश्वेदेवानावाहयिष्ये**' से प्रार्थना करके '**ॐ आवाहय**' के द्वारा ब्राह्मणकी आज्ञा प्राप्त होनेपर '**ॐ विश्वेदेवा०**', '**ॐ ओषधय ०**' एव—

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबला।
ये अत्र विहिता श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते॥ (२१८।७)

—इत्यादि मन्त्रोसे श्राद्धकर्ता विश्वेदेवोका आवाहन करे तथा '**ॐ अपहतासुरा रक्षाꣳसि वेदिषद**'—मन्त्रका तीन बार उच्चारणकर यव बिखेरे। श्राद्धकर्ता '**ॐ पात्रमह करिष्ये**' इस वाक्यसे अनुज्ञा प्राप्त करे तथा '**ॐ कुरुष्व**' इससे ब्राह्मणाके द्वारा अनुज्ञात होकर अग्रभागसे युक्त दो कुश ग्रहण करे। एक प्रादेश[2] (लम्बे) कुशके दो पत्राको लेकर '**ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ०**' आदि मन्त्रसे दूसरे कुशपत्रके द्वारा उसका छेदन करे। इसके बाद '**ॐ विष्णुर्मनसा पूतेस्थ**', से उन दो कुशपत्राका अभ्युक्षण कर दूसरे कुशपत्रके द्वारा त्रिवेष्टनपूर्वक उसे अर्घ्यपात्रमे स्थापित कर। तत्पश्चात् '**ॐ शन्नो देवीरभिष्टय०**'स उस पात्रमे जल तथा '**ॐ यवोऽसि०**' इत्यादि मन्त्रसे जौ एव '**ॐ गन्धद्वारा दुराधर्षां०**' से उसी पात्रम चन्दन प्रदान कर। फिर '**ॐ या दिव्या आप पयसा०**' इस मन्त्रक पाठके साथ '**ॐ एषोऽर्घो नम**' से ब्राह्मणाके हाथमे अर्घ्यपात्रसे जल दे।

तदनन्तर श्राद्धकर्ता अर्घ्यपात्रस्थ अवशिष्ट सस्रवजल और पवित्रकको ग्रहणकर (अर्घ्यपात्रमे रखकर) ब्राह्मणके

१-श्राद्ध दो प्रकारका हाता है—सपात्रकश्राद्ध तथा अपात्रकश्राद्ध। सपात्रकश्राद्धमे विश्वेदेव एव पितराके रूपमे साक्षात् ब्राह्मणोको ही आसनपर बिठाकर समस्त श्राद्धविधि सम्पन्न की जाती है। यहाँ इसी सपात्रकश्राद्धकी विधिका निर्देश किया गया है। एस श्राद्धक लिय पूर्ण सात्त्विक जाति विद्या तप आदिका दृष्टिसे अति पवित्र एव उत्कृष्ट ब्राह्मण ही उपादय है। कलियुगम ऐसे ब्राह्मण दुर्लभ हैं। इसीलिय अपात्रक-श्राद्ध ही वर्तमानमे किया जाता है। अपात्रकश्राद्धम साक्षात् ब्राह्मण आसनपर नहीं बिठाय जाते हैं। विश्वदव एव पितराके आसनोंपर उनके प्रतिनिधिरूपमें कुश (दण्ड-विधान त्रिकुश, पटवेल एव मोटक) ही रखा जाता है।

२-अँगूठे और तर्जनीको पूरा फैलानेपर बीचकी दूरीको प्रादेश कहत हैं।

दक्षिणपार्श्वमे रखे और अर्घ्यपात्रको ऊर्ध्वमुख कुशाके ऊपर स्थापित करके उसमे जल तथा पवित्रक भी (जो ब्राह्मणके दक्षिणपार्श्वमे रखा था) रख दे।

तत्पश्चात् 'ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य एतानि गन्धपुष्पधूपदीप-वासोयुग्मयज्ञोपवीतानि नम ' से विश्वेदेवाको गन्धादि प्रदानकर समर्पित गन्ध आदिकी पूर्णताकी कामना 'गन्धादि-दानमच्छिद्रमस्तु'—कहकर करे। विश्वेदेवाके प्रतिनिधि ब्राह्मण 'ॐ अस्तु' से समर्पित चन्दनादिकी परिपूर्णता स्वीकार करे। ऋत्विक् ब्राह्मण 'ॐ अस्तु' से प्रत्युत्तर दे। श्राद्धकर्ता 'पितृपितामहप्रपितामहानां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाना सपत्नीकाना श्राद्धमह करिष्ये' ऐसा कहकर पिताके श्राद्धकी अनुज्ञा माँगे। ब्राह्मणाके द्वारा 'कुरुष्व' इस वाक्यसे अनुज्ञात होनेपर 'ॐ देवताभ्य पितृभ्यश्च०' मन्त्रका तीन बार जप करे।

तदनन्तर पित्रादि एव मातामहादिका नाम, गोत्रका उल्लेख करते हुए 'इदमासन स्वधा' पदसे ब्राह्मणाके वामपार्श्वमे आसन दानकर 'ॐ पितृन् आवाहयिष्ये' से ब्राह्मणासे अनुज्ञाकी प्रार्थना करे और 'ॐ आवाहय' इस वाक्यसे ब्राह्मणाके द्वारा अनुज्ञात होकर 'ॐ उशन्तस्त्वा०' एव 'ॐ आयान्तु न पितर ०' इत्यादि मन्त्रासे पितराका आवाहन करे। 'ॐ अपहतासुरा रक्षांसि वेदिषद ' मन्त्रसे तिलका विकरण कर। पूर्वकी भाँति क्रमसे स्थापित अर्घ्यपात्रमे उदक दे तथा 'ॐ तिलोऽसि सोमदेवत्यो०' आदि मन्त्रासे तिल-दान करे।

इसके बाद दोनो हाथसे गन्ध, पुष्प प्रदानकर पितृपात्रको उठाकर 'ॐ या दिव्या०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करके अन्तम पित्रादिका गोत्र, नामका उल्लेख कर 'एष तेऽर्घ्य स्वधा' से पवित्रीके साथ अर्घ्यपात्रको ग्रहण करनेके बाद वामपार्श्वमे कुशाके ऊपर 'ॐ पितृभ्य स्थानमसि' मन्त्रसे अधोमुख अर्घ्यपात्रको स्थापित करे फिर 'ॐ शुन्धन्ता लोका पितृसदना ०' का पाठकर उस अधोमुख पात्रका स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद पितृतीर्थसे पित्रादिके आसनपर गन्ध पुष्प धूप दीप वस्त्रयुग्म एव यज्ञोपवीतादि देकर गोत्रनामाच्चारणपूर्वक सपत्नीक पितृ पितामह एव प्रपितामहको 'एतानि गन्धपुष्पधूपदीपवासोयुग्मसोत्तरीययज्ञोपवीतानि व स्वधा' इस वाक्यको पढकर पितृतीर्थसे जल छोडे। गन्धादिदानम् अक्षय्यम् अस्तु ऐसा श्राद्धकर्ताके कहनेपर 'सकल्पसिद्धिरस्तु इस प्रकार ब्राह्मण कहे। इसी प्रकार मातामहादिके लिये भी अनुज्ञापनादि कर्म करे। 'ॐ या दिव्या०' इस मन्त्रसे भूमिका सम्मार्जन करे। तदनन्तर घृतमिश्रित अन्न ग्रहणकर सव्य होकर 'ॐ अग्नौ करणमह करिष्ये' द्वारा पितृब्राह्मणकी सवाम अनुज्ञाकी प्रार्थना करे। 'ॐ कुरुष्व' इस वाक्यसे ब्राह्मणके द्वारा अनुज्ञात हो, 'ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' मन्त्रसे पितराके प्रतिनिधि ब्राह्मणके हाथमे दो आहुति प्रदान करे। अवशिष्ट अन्न पिण्डार्थ स्थापित करके अन्नका आधाभाग पित्रादिके पात्रम और मातामहादिके पात्रमें समर्पित करे।

इसके बाद जलपात्र मुद्रादि दक्षिणास्थापनपूर्वक भोजनपात्रके ऊपर कुशदान कर अधोमुख दोनो हाथोके द्वारा भोजनपात्र स्पर्श करे। 'ॐ पृथिवी ते पात्र०' इत्यादि मन्त्रपाठपूर्वक उस पात्रको अभिमन्त्रितकर उसपर अन्न परोसते हुए 'ॐ इद विष्णुर्विचक्रमे०' मन्त्रका पाठ करे। 'विष्णो हव्य रक्षस्व' से अन्नके मध्यमें अधोमुख अगुष्ठसे स्पर्श करके 'ॐ अपहतासुरा रक्षांसि वेदिषद 'मन्त्रसे तीन चार जौ एव 'ॐ निहन्मि सर्वं०' से पीली सरसोका विकरण करना चाहिये। तदनन्तर 'धूरिलोचनसज्ञकेभ्यो देवेभ्य एतदन्न सघृत सपानीय सव्यञ्जन स्वाहा' कहकर विश्वेदेवाको अन्न निवेदन करते हुए उसके ऊपर सजल कुशपत्र रखकर श्राद्धकर्ता 'ॐ अन्नमिदम् अक्षय्यम् अस्तु' ऐसा उच्चारण करे एव निमन्त्रित ब्राह्मण 'ॐ सङ्कल्पसिद्धिरस्तु' इस प्रकार कहे।

तत्पश्चात् अपसव्य होकर पित्रादि-पात्रमे व्यञ्जनसहित घी मिले हुए अन्नको परोसकर उसके ऊपर भूमि सलग्न कुशका स्थापन कर दोनो उत्तान हाथोसे भोजनपात्र स्पर्श करते हुए 'ॐ पृथिवी ते पात्र०' मन्त्रका पाठ करे।'ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे०' एव 'ॐ विष्णो कव्य रक्षस्व' इन मन्त्रोसे समर्पित अन्नम अगुष्ठका स्पर्श करे। 'ॐ अपहतासुरा रक्षांसि वेदिषद ' से अन्नके ऊपर तिल फैलाकर पृथ्वीपर बायाँ घुटना टिकाकर 'अमुकगोत्रेभ्य अस्मत् पितृपितामहेभ्य सपत्नीकेभ्य एतदन्न सघृत सपानीय सव्यञ्जन प्रतिषिद्धवर्जितं स्वधा' इत्यादि वाक्यसे सपत्नीक पिता-पितामहादिको नाम-गोत्र-उच्चारणपूर्वक अन्नका निवेदन करे। अन्नका सकल्प करके 'ॐ ऊर्जं वहन्तीरमृत०' मन्त्रसे दक्षिणमुख होकर जलकी धारा प्रदान करे। 'ॐ श्राद्धमिदमच्छिद्रमस्तु एव

ॐ सङ्कल्पसिद्धिरस्तु'—इन दोना मन्त्राका पाठकर 'ॐ भूर्भुव स्व ०'—इस व्याहृति-मन्त्रसे युक्त गायत्रीका उच्चारण कर विसर्जन करे। तदनन्तर 'ॐ मधुवाता०' मन्त्रका पाठकर तीन बार 'मधु' शब्दका उच्चारण करना चाहिये।

इसके साथ 'यथासुख वाग्यता जुषध्यम्' का पाठकर ब्राह्मणाके भोजन करते समय भक्तिपूर्वक 'सप्तव्याधा०' इत्यादि पितृस्तोत्रका पाठ कर[1]। इसके बाद 'तृप्यस्व' इस वाक्यका उच्चारण कर दक्षिणाभिमुख अपसव्य होकर 'ॐ अग्निदग्धाश्च०[2]' मन्त्रको पढकर भूमिमें कुशके ऊपर घीके साथ जलयुक्त अन्नको विकरित करे।

तत्पश्चात् ब्राह्मणाको मुखप्रक्षालनके लिये जल देकर प्रणवपूर्वक व्याहृतिके साथ गायत्री तथा 'ॐ मधुवाता०' इत्यादि मन्त्रोका पाठकर मधु शब्दका तीन बार उच्चारण करे। 'ॐ रुचित भवद्भि' यह कहकर देव-ब्राह्मणामे विनमभावपूर्वक भोजनके रुचिपूर्ण (स्वादिष्ट) होनेका प्रश्न करे। देव-ब्राह्मणोके द्वारा 'सुरुचितम्' यह उत्तर देनपर 'ॐ शेषमन्नम्' यह विनम्रतासे प्रश्न करनेपर ब्राह्मण 'ॐ इष्टै सह भोजनम्' अर्थात् इष्टजनोके साथ आप भी भाजन करे—यह प्रत्युत्तर दें। तदनन्तर वामोपवीती (अपसव्य) होकर पित्रादि ब्राह्मणोसे 'ॐ तृप्ता स्थ' यह जिज्ञासा करे और उनके द्वारा 'ॐ तृप्ता स्म' इस वाक्यसे अनुज्ञात होकर भूमिका अभ्युक्षण और चतुष्कोण मण्डल बनाकर उसमे तिल विकरित करे। 'ॐ अमुकगोत्र! अस्मत्पित! अमुकदेवशर्मन्! सपत्नीक एतत्ते पिण्डासन स्वधा' ऐसा कहकर पिण्डके लिये आसन दे और रेखाकरण करे। सप्रणव तथा व्याहृतिके साथ गायत्रीमन्त्र और 'ॐ मधुवाता०' आदि मन्त्रका पाठकर तीन बार 'मधु' शब्दका उच्चारण करते हुए घृतयुक्त अन्नसे पिण्डका निर्माण कर 'ॐ अमुकगोत्र! अस्मत्पित ०' इत्यादि वाक्यसे कुशाक ऊपर पिता आदिके लिये पिण्ड प्रदान करे। पुन रेखामध्यम पहलेके समान पितामहको पिण्डदान तथा व्याहृतिपूर्वक गायत्री और 'मधुवाता०' का तीन बार जप करक पिण्डके समीपम शेषान्नका विकरण करके 'ॐ लेपभुज पितर प्रीयन्ताम्' इस वाक्यसे (पिण्डाधार कुशमे) हाथका मार्जन करे। प्रक्षालित पिण्डजलसे 'ॐ अमुकगोत्र! अस्मत्पित ०' इत्यादि वाक्यस जलद्वारा पिण्डसचन कर पिण्डपात्रका अधोमुख करके कृताञ्जलिपूर्वक 'ॐ पितरो मादयध्व०' मन्त्रका जप कर। तत्पश्चात् जलस्पर्श करत हुए वामावर्तस उत्तरमुख होकर प्राणवायुका तीन बार सयम करके 'ॐ षड्भ्य ऋतुभ्यो नम' इस मन्त्रका पाठ कर।

इसके बाद वामावर्तस दक्षिणमुख होकर भाजनपात्रम पुष्प तथा 'अक्षत चारिष्ट चास्तु०' से अक्षत दे। 'अमी मदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत' इस मन्त्रका पाठ करत हुए वस्त्रका शिथिलकर अञ्जलि बनाकर 'ॐ नमो व पितरो नमो व ०' इस मन्त्रका पाठ करे। तत्पश्चात् 'गृहान्न पितरो दत्त' इस मन्त्रसे गृहका निरीक्षण करे। 'सदा व पितरो द्वेष्म' इस मन्त्रसे निरीक्षणकर 'एतद्व पितरो वास' यह मन्त्र पढकर 'अमुकगोत्र पित एतत्ते वास स्वधा' वाक्यसे पिण्डपर सूत्रदान करे।

तदनन्तर बाय हाथसे उदकपात्र ग्रहणकर 'ऊर्जं वहन्ती०' मन्त्रसे पिण्डक ऊपर जलधारा देकर पूर्वम स्थापित अर्घ्यपात्रके बच हुए जलसे प्रत्येक पिण्डका सेचन करे। फिर पिण्डावाहनपूर्वक पिण्डोक ऊपर गन्ध और कुशादानकर 'अक्षन्नमीमदन्त०' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करे। मातामहादिक प्रतिनिधि ब्राह्मणाको आचमन कराये। 'ॐ सुप्रोक्षितमस्तु' इस वाक्यसे श्राद्धभूमिका भलीभाँति अभ्युक्षणकर 'अपा मध्ये स्थिता देवा सर्वमप्सु०' का उच्चारण करके 'शिवा आप सन्तु' कहकर ब्राह्मणाके हाथम जल दे। 'लक्ष्मीर्वसति०' आदिका पाठकर 'ॐ सौमनस्यमस्तु' यह मन्त्र पढकर ब्राह्मणोके हाथमे पुष्प समर्पित करे। इसके बाद 'अक्षतं चास्तु०' इत्यादि मन्त्रका पाठकर 'अक्षत चारिष्ट चास्तु' यह कहते हुए यव और तण्डुल भी ब्राह्मणाके हाथम दे। तदनन्तर 'अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहाना सपत्नीकाना-मिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्तु' इस वाक्यस पित्रादि ब्राह्मणके हाथम तिल और जलका दान कर। ब्राह्मण 'अस्तु' कहकर प्रतिवचन बाल। इसी क्रमम मातामह आदिका अक्षत आदि दानकर उनसे आशीर्वादकी प्रार्थना करे। तत्पश्चात्

१-सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगा कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाका शरद्वीपे हसा सरसि मानसे॥
तेऽभिजाता कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगा। प्रस्थिता दूरमध्वान यूय किमवसीदथ॥ (२१८। २०-२१)

२-अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धा कुले मम। भूमौ दत्तन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु पराङ्गतिम्॥ (२१८। २२)

'ॐ अघोरा पितर सन्तु', 'गोत्र नो वर्द्धता०', 'दातारो नाऽभिवर्द्धन्ता०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे।

श्राद्धकर्ता 'सौमनस्यमस्तु' इस वाक्यका उच्चारण करे। ब्राह्मण 'अस्तु' यह कहे। तदनन्तर दिये गये पिण्डोके स्थानमें अर्घ्यपात्रोंमें पवित्रकोको छोड दे। बादमे कुशनिर्मित पवित्रक लेकर उससे पितरोके प्रतिनिधि ब्राह्मणोका स्पर्शकर 'ॐ स्वधा वाचयिष्ये' इस वाक्यसे स्वधावाचनकी आज्ञा प्राप्त करे। ब्राह्मणोंके द्वारा 'ॐ वाच्यताम्' इस वचनसे अनुज्ञात हो श्राद्धकर्ता 'ॐ पितृपितामहेभ्यो यथानामशर्मभ्य सपत्नीकभ्य स्वधा उच्यताम्' ऐसा कहे। तदनन्तर ब्राह्मण 'अस्तु स्वधा' का उच्चारण करे।

श्राद्धकर्ता 'अस्तु स्वधा' इस वाक्यसे अनुज्ञात हो 'ऊर्जं वहन्तीरमृत०' इस मन्त्रसे पिण्डके ऊपर जलधारा दे। फिर 'ॐ विश्वेदेवा अस्मिन् यज्ञे प्रीयन्ताम्' से देव-ब्राह्मणोके हाथमे यव और जल प्रदान करे। 'ॐ प्रीयन्ताम्' इस वाक्यसे ब्राह्मणद्वारा अनुज्ञात होकर 'ॐ देवताभ्य ०' मन्त्रका तीन बार जप करे।

अधोमुख होकर पिण्डपात्रको हिलाकर आचमनपूर्वक दक्षिणापवीती (सव्य) होकर पूर्वाभिमुख 'ॐ अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे०' इत्यादि मन्त्रसे देव-ब्राह्मणको दक्षिणा दे। तत्पश्चात् पितृ-ब्राह्मणोका सेवामे 'ॐ पिण्डा सम्पन्ना' यह निवेदन करनेपर 'ॐ सुसम्पन्ना' इस प्रकार ब्राह्मणसे अनुज्ञात हो पिण्डके ऊपर श्राद्धकर्ता दुग्धधारा प्रदान करे। फिर पिण्डको हिलाकर पिण्डके समीप रखे अर्घ्यपात्रको सीधा स्थापित कर दे। इसके बाद 'ॐ वाजे वाजे०' मन्त्रसे पिण्डके अधिष्ठाता पितरोका विसर्जन करे। 'आमा वाजस्य०' आदि मन्त्रसे देव तथा 'अभिरम्यताम्' से पितृ-ब्राह्मणका विसर्जन करके ब्राह्मणसे अनुज्ञा प्राप्तकर गौ आदिको पिण्ड प्रदान करे। इस प्रकार यहाँ श्राद्धविधि बतलायी गयी। इसका पाठ करनेमात्रसे भी पापका नाश होता है। किसी भी स्थानमे उक्त विधिके अनुसार श्राद्ध करनेपर पितरोको अक्षय स्वर्ग एव ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है[1]। (अध्याय २१८)

नित्यश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध एव एकोद्दिष्टश्राद्धका वर्णन

श्रीब्रह्माजीने कहा—अब मैं नित्यश्राद्धका वर्णन करता हूँ। पूर्वमें जिस तरह श्राद्धविधि कही गयी है, उस विधिके अनुसार ही नित्यश्राद्ध करे। विशेषता यह है कि नित्यश्राद्धमे 'ॐ अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहानाम् अमुकशर्मणा सपत्नीकाना श्राद्ध सिद्धान्नेन युष्मास्वह करिष्ये' ऐसा कहकर श्राद्धका सकल्प करना चाहिये। आसन-दानादि सभी कार्य पूर्ववत् करे। इस श्राद्धमे विश्वेदेव वर्जित हैं।

अब मै वृद्धिश्राद्धका विधान बतलाता हूँ। वृद्धिश्राद्धमे[2] भी श्राद्धकी ही भाँति प्राय सभी कार्य करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जो विशेष है उसे कहता हूँ। पैदा हुए पुत्रके मुखको देखनेके पहले वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये। यह श्राद्ध पूर्वाभिमुख ओर दक्षिणापवीती (सव्य) होकर यव बेर, कुश, देवतीर्थके द्वारा नमस्कार तथा दक्षिणा आदि उपचारपूर्वक करे।

दक्षिण जानुँको[3] ग्रहण कर विश्वेदेवोका ब्राह्मणोंमें आवाहन करे। आमन्त्रणसे पूर्व ब्राह्मणोसे अनुज्ञा प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार ब्राह्मणोसे निवेदन करे—अपने कुलके अमुककी उत्पत्तिके शुभ अवसरपर अपने पितृपक्ष एव मातृपक्षके पितरोका श्राद्ध करनेके लिये वसु, सत्य नामक विश्वेदेवोका आप लोगोमे आवाहन कर सिद्ध अन्नसे उनका श्राद्ध करना चाहता हूँ। ब्राह्मणोंके द्वारा अपनेमें विश्वेदेवोके आवाहनकी आज्ञा मिलनेपर उन ब्राह्मणोमे वसु, सत्य नामके विश्वेदेवोका आवाहन करना चाहिये। (यहाँ मूल ग्रन्थके अनुसार सस्कृतवाक्योका ही प्रयोग होना चाहिये।) इसी प्रकार अन्य ब्राह्मणोमे पितरोका

१-इस अध्यायसे पार्वणश्राद्ध करनेकी प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिये। श्राद्धकी विधि सम्पूर्ण मन्त्र एव क्रमका ज्ञान श्राद्धकी पद्धतियोसे करना चाहिये।

२-इस श्राद्धको माङ्गलिक आभ्युदयिक तथा नान्दीमुखश्राद्ध भी कहते हैं।

३-जानु जङ्घाको कहते हैं। बाये जङ्घेको मोडकर और दाहिने जङ्घेको ऊपरकर बैठनेसे दाहिने जङ्घेपर दाहिना हाथ होता है। यहा इसी आसनमे तात्पर्य है।

भी आवाहन करना चाहिये। बादमे 'ॐ विश्वेदेवा स आगत०' इत्यादि मन्त्रसे वसु तथा सत्य नामवाले विश्वेदेवाका आवाहन कर उन्हे आसन तथा गन्धादि दानकर 'अच्छिद्रावधारण[1]' का वाचन करे। इसके बाद प्रपितामही आदिका अनुज्ञापन, आसनदान गन्धादि-दान और अच्छिद्रावधारण-वाचन करना चाहिये।

इसी प्रकार पितामही, माता और प्रपितामहको अनुज्ञा ग्रहणकर आसन, आवाहन और गन्धादि-दान तथा अच्छिद्रावधारण करके प्रपितामह एव वृद्धप्रमातामह आदिकी अनुज्ञा ग्रहण कर आसन, आवाहन एव गन्धादिका दान करे। तदनन्तर 'ॐ वसुसत्यसज्ञकेभ्य ०' इत्यादि मन्त्र पढकर इसी प्रकार पितामही और मातामह प्रमातामहके लिये अन्नसकल्पनादि क्रिया करनी चाहिये।

एकोद्दिष्टश्राद्धमे[2] पूर्वके समान सभी कार्य करना चाहिये। इसम विशेष यह है कि प्रथम ब्राह्मण-निमन्त्रण, पादप्रक्षालन, आसनदान करके 'अद्य अमुकगोत्रस्य मत्पितुरमुकदेवशर्मण प्रतिसावत्सरिकमेकोद्दिष्टश्राद्ध सिद्धान्नेन युष्मास्वह करिष्ये' इस सकल्प-वाक्यस अनुज्ञाग्रहणपूर्वक आसनदान और गन्धादि तथा पक्वान्न प्रदान करना चाहिये।

इसके बाद रुचिर-स्तवादिका पाठकर तथा यज्ञसूत्र (यज्ञोपवीत) कण्ठम धारणकर उत्तराभिमुख होकर अतिथिश्राद्ध करे। पितराकी तृप्ति जानकर दक्षिणाभिमुख हो वामोपवीती (अपसव्य) होकर कर्मसे उच्छिष्ट अन्नके समीपमें 'अग्निदग्धाश्च०' इत्यादि मन्त्रसे अन्न विकरण करे। तदनन्तर 'अमुकगोत्र मत्पित ०' से मण्डलरेखाके ऊपर जलधारा दे। अन्य कार्य पूर्वके समान ही समझना चाहिये। (अध्याय २१९)

सपिण्डीकरणश्राद्धकी विधि

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी! अब मैं सपिण्डीकरण-श्राद्धका वर्णन करता हूँ। मृत्युके सालभर बाद मृत्यु-तिथिपर यह श्राद्ध करना चाहिये। इस श्राद्धको यथासमय विधिवत् करनेसे प्रेतको पितृलोकको प्राप्ति होती है। सपिण्डीकरणश्राद्ध अपराह्णमे करना चाहिये, सभी अनुष्ठान प्राय अन्य श्राद्धाके समान करे। (इसम जो विशेष है वही कहा जा रहा है।) पितामहादिके प्रतिनिधि ब्राह्मणोको निमन्त्रित कर 'ॐ पुरूरवोमाद्रवसज्ञकेभ्यो०' से वामपार्श्वमे आसन रखकर पुरूरवा और माद्रव नामके विश्वेदेवोका आवाहन करना चाहिये। 'पितामहप्रपितामहाना०' इत्यादि वाक्यसे श्राद्धको पितामह आदिके प्रतिनिधि ब्राह्मणासे अनुज्ञा ग्रहणकर तीन पात्र स्थापित करे। उन पात्राके ऊपर कुश रखकर दूसरे पात्रसे उन्हे ढक दे और आवाहन करे। इसके बाद अन्य श्राद्धोक समान अच्छिद्रावधारणतकको क्रिया करके सपत्नीक पिताको प्रेतपद अन्तम प्रयुक्तकर उनका नाम उच्चारण करे। श्राद्धकी अनुज्ञा ले ले। तदनन्तर दवपात्राच्छिद्रावधारण करे। यथाविधान कार्योका सम्पन्नकर पितामह, प्रपितामह, वृद्धप्रपितामहके पात्राका क्रमसे सचालन और उद्घाटनकर 'ॐ ये समाना समनसो०' इत्यादि मन्त्रोस पितृपात्रका जल पितामह और प्रपितामहके पात्रमे छोडे। वृद्धप्रमितामहके पात्रको छाडकर पितामह, प्रपितामहके पात्रका जल और पवित्र पितृ-पात्रमे निक्षिप्त करे। तदनन्तर पितृ-ब्राह्मणके हाथम अर्घ्यपात्रस्थ पवित्रक देकर उसमे स्थित पुष्प ब्राह्मणाके सिर, हाथ और चरणोम समर्पित करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणाके हाथमे जल देकर दाना हाथासे अर्घ्यपात्र उठाकर 'ॐ या दिव्या०' इत्यादि मन्त्रका पाठकर 'अमुक गोत्र मत्पितामह०' इस वाक्यसे पितृ-पात्रसे कुछ अर्घ्योदक पितामहके प्रतिनिधि ब्राह्मणके हाथम प्रदान करे तथा पवित्रकके सहित अवशिष्ट कुछ जल पिण्डसेचनक लिय रखकर अन्य पात्रसे आच्छादितकर

१-श्राद्धम समर्पित वस्तुकी पूर्णताका वचन ब्राह्मणासे लेना ही अच्छिद्रावधारणवचन' है।

२-इस श्राद्धका भी यथोचित क्रम एव विस्तृत विवरण श्राद्धपद्धतियाम देखना चाहिये।

३-पितरोके उद्देश्यसे की गयी विधिकी पूर्णताकी प्रार्थना ही 'अच्छिद्रावधारण है।

४-अर्घ्यपात्रके छिद्ररहित होनेका निश्चय करना ही देवपात्राच्छिद्रावधारण है।

पितृ-ब्राह्मणके वामपार्श्वमे दक्षिणाग्रकुशके ऊपर 'पितृभ्य स्थानमसि' यह पढकर अधोमुख स्थापित करे।

इसके बाद पितामह-प्रपितामह आदिको गन्धादि देकर 'अग्नौकरण'[1] करे तथा अवशिष्ट अन्नको प्रपितामह आदिके पात्रम डाल दे। इसी प्रकार पितामहादिका पात्राभिमन्त्रणपर्यन्त कर्म सम्पन्नकर ब्राह्मणपात्राभिमन्त्रण, अगुष्ठनिवेशन, तिल-विकरणपूर्वक 'अमुक गोत्र०' इत्यादि वाक्य कहकर घृताक्त अन्न आदिका निवेदन कर।

तत्पश्चात् दवादिक्रमसे ब्राह्मणके हाथम जल प्रदान करे, यही 'अपोशन' विधि है। अतिथिके आनेपर अतिथिश्राद्ध करते हुए इस समय भी विकरणक लिये अन्न प्रदान करना चाहिये। पितामहादि ब्राह्मणसे 'ॐ स्वदित भवद्भि' से सुतृप्तिकी जिज्ञासा कर सतुष्टिका आश्वासन प्राप्त करे। 'अमुक गोत्र०' इत्यादि वाक्यसे पिण्डदान और 'पिण्डपात्रमच्छिद्रमस्तु' कहकर सभी कार्योंकी समाप्तिके बाद पिण्डके दो हिस्से कर 'ये समाना समनस ०' आदि मन्त्रोका पाठ करे और पितामह वृद्धप्रपितामह-पिण्डके साथ पिताका पिण्ड मिला दे। पिण्डके ऊपर गन्धादि रखकर पिण्डचालन करना चाहिये। अतिथि और ब्राह्मणसे स्वदितादि (सुतृप्ति)-का प्रश्न करके ब्राह्मणाको आचमन एव ताम्बूल प्रदान कर।

तदनन्तर यजमान 'सुप्राक्षितमस्तु' 'शिवा आप सन्तु'— इन दो मन्त्राका उच्चारण करके वृद्धप्रपितामहादि-क्रमसे ब्राह्मणक हाथम जल प्रदान कर और 'गोत्रस्याक्षय्यमस्तु' से पितृ-ब्राह्मणके हाथमे अक्षय्यदान करके 'उपतिष्ठताम्' आदि वाक्यसे सतिल जल देना चाहिये।

तत्पश्चात् 'अघोरा पितर सन्तु' इस वाक्यका उच्चारण करनेपर ब्राह्मण 'अस्तु' इस वाक्यसे प्रतिवचन प्रदान करें एव 'स्वधा वाचयिष्ये' इस पदका उच्चारण करनेपर ब्राह्मण 'ॐ वाच्यताम्' इस अनुज्ञा-वाक्यसे प्रत्युत्तर दें। 'पितामहादिभ्य स्वधा उच्यताम्' इस प्रकार यजमानके कहनेपर 'अस्तु स्वधा' एसा ब्राह्मण बोले। फिर 'पितृभ्य स्वधा उच्यताम्' ऐसा कहकर आज्ञा प्राप्त करे।

तदनन्तर 'ॐ ऊर्जं वहन्ती०' इत्यादि मन्त्रसे दक्षिणाभिमुख होकर जलधारा दे, पुन 'ॐ विश्वेदेवा अस्मिन् यज्ञे प्रीयन्ताम्' यह मन्त्र पढकर देवब्राह्मणके हाथम यव और जल देकर 'ॐ देवताभ्य ०' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करे। पिण्डपात्राको परिचालितकर आचमनपूर्वक पितामहादि-क्रमसे दक्षिणा दे। पितृ-ब्राह्मणसे 'आशिषो मे प्रदीयन्ताम्' इस वचनसे आशीर्वादकी प्रार्थना करे। ब्राह्मण 'प्रतिगृह्यताम्' इस वाक्यसे प्रत्युत्तर प्रदान करें। पुन 'दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्०' आदि मन्त्रका पाठकर अर्घ्यपात्रको ऊर्ध्वमुख कर 'वाजे वाजे०' इत्यादि मन्त्रसे देवब्राह्मण एव 'अभिरम्यताम्' इस मन्त्रसे पितृब्राह्मणका विसर्जन करना चाहिये।

ह व्यास! मैंने आपको सपिण्डीकरणश्राद्धका विधान बताया। श्राद्ध श्राद्धकर्ता और श्राद्धफल—इन तीनोंको विष्णुरूप जानना चाहिये[2]। (अध्याय २२०)

धर्मसारका कथन

श्रीब्रह्माजीन कहा—ह शकर! अव में सभी पापाका विनाश करनवाल तथा भाग और माक्ष प्रदान करनवाल अतिशय सूक्ष्म धर्मसारका सक्षेपमे कहता हूँ, आप सुन।

शाक शास्त्रीय ज्ञान धर्म बल धैर्य सुख और उत्साह—इन सबका हरण कर लेता है। अर्थात् शोकके प्रभावम सभी सात्त्विक वृत्तियाँ विनष्ट हा जाती हैं। इसीलिय सर्वताभावसे शाकका परित्याग करना चाहिय।

कर्म ही दारा (स्त्री) हैं कर्म ही लाक हैं कर्म ही सम्बन्धी है कर्म ही बान्धव है। (अर्थात् स्त्री लोक सम्बन्धी एव बान्धव आदि कर्मके अनुसार हो मिलते हैं।) कर्म ही सुख-दु खका मूल कारण है। (अत उत्तम कर्म करनेके लिय सदा सावधान रहना चाहिये।) दान ही परमधर्म है। दानसे ही पुरुषको सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं। दान ही पुरुषको स्वर्ग और राज्य प्रदान करता है। इसलिय मनुष्यका दान अवश्य करना चाहिय।

दानमेव परो धर्मो दानात्सर्वमवाप्यते।

१-अग्नौकरण—एक विशेष विधि है। इसमें अग्निमें होम करके [illegible] आहुति दी जाती है।

२-सपिण्डीकरण[illegible] विस्तृत विधि [illegible] चाहिये। [illegible] है।

दानात्स्वर्गश्च राज्य च दद्याद्दान ततो नर ॥

(२२१।४)

विधिपूर्वक प्रशस्त दक्षिणाके साथ दान तथा भयभीत प्राणीकी प्राणरक्षा—ये दोनो समान हैं। यथाविधि तपस्या, ब्रह्मचर्य, विविध यज्ञ एव स्नानमे जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य भयभीत प्राणीके प्राणोकी रक्षासे प्राप्त होता है। जो लोग धर्मका नाश करते हैं, वे नरकम जाते हैं।

जो होम, जप, स्नान, देवतार्चन आदि सत्कार्यम तत्पर रहकर सत्य, क्षमा दया आदि सद्गुणोसे सम्पन्न रहते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं[1]। कोई भी किसीको सुख या दु ख नहीं देता है और न किसीका सुख-दु ख हरण कर सकता है। सभी अपने किये हुए कर्मके अनुसार सुख-दु खका भोग करते हैं—

न दाता सुखदु खाना न च हर्तास्ति कश्चन।
भुञ्जते स्वकृतान्येव दु खानि च सुखानि च॥

(२२१।८)

जो धर्मकी रक्षाके लिये जीवनदान करता है, वह सभी विपम परिस्थितिया (कठिनाइया)-को पार कर जाता है। जिनका चित्त सदा सतुष्ट रहता है वे फल मूल, शाक आदिक द्वारा जीवनधारण करके भी सुखकी अनुभूति करते हैं—

धर्मार्थं जीवित येपा दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
सन्तुष्ट को न शक्नोति फलमूलैश्च वर्तितुम्॥

(२२१।९)

सुखकी लालसामें सभी मनुष्य सकटकी स्थितिमे पडते हैं। यह लोभका ही परिणाम है, जो अत्यन्त दुष्कर है।

मनुष्यके चित्तमे लाभ उपस्थित होनेसे ही क्रोध उत्पन्न होता है। लोभके कारण ही मनुष्य हिसा आदि गर्हित कार्योंम प्रवृत्त होता है। मोह, माया अभिमान, मात्सर्य, राग द्वेष, असत्यभापण एव मिथ्याचरण—ये सभी लोभस उत्पन्न होते हैं। लोभसे ही मनुष्य मोह और मदसे उन्मत्त हो जाता है। (इसलिय लोभका परित्याग करना चाहिये) जो शान्त व्यक्ति लोभका परित्याग करता है, वह सभी प्रकारके पापोसे रहित होकर परमलाकको प्राप्त करता है[2]।

हे महादव! देवता, मुनि, नाग, गन्धर्व गुह्यकगण—ये सभी धार्मिकाकी पूजा करत हैं, धनाढ्य आर कामी व्यक्तिकी अर्चना कोई भी नहीं करता है—

देवता मुनयो नागा गन्धर्वा गुह्यका हर।
धार्मिक पूजयन्तीह न धनाढ्य न कामिनम्॥

(२२१।१३)

अनन्त बल वीर्य प्रज्ञा और पौरुषक द्वारा किसी दुर्लभ वस्तुको यदि मनुष्य प्राप्त कर लेता है ता इसके कारण किसीको ईर्ष्यावश शाकाकुल या दु खी नहीं होना चाहिय।

सभी प्राणियाक प्रति दयाका भाव रखना, सभी इन्द्रियोका निग्रह करना आर सर्वत्र अनित्यबुद्धि रखना यह प्राणियोके लिये परम श्रयस्कर है। मृत्यु सामन वर्तमान ह, यह समझकर जो व्यक्ति धर्माचरण नहीं करता, उसका जीवन बकरीक गलेम स्थित स्तनके समान निरर्थक है—

सर्वसत्त्वदयालुत्व सर्वेन्द्रियविनिग्रह ।
सर्वत्रानित्यबुद्धित्व श्रेय परमिद स्मृतम्॥
पश्यन्निवाग्रतो मृत्यु यो धर्मं नाचरेन्नर ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

(२२१।१५-१६)

ह वृषध्वज! इस लाकम गादानसे बढकर कोई दान नहीं है। जा न्यायापार्जित धनसे प्राप्त गौका दान करते हैं व अपने सम्पूर्ण कुलका तार देते हैं।

ह वृषध्वज! अन्न-दानसे श्रष्ठ और कुछ भी दान नहीं है क्याकि सम्पूर्ण चराचर जगत् अन्नक द्वारा ही प्रतिष्ठित है[3]। कन्यादान वृषोत्सर्ग जप, तीर्थ सेवा वेदाध्ययन, हाथी, घोडा रथ आदिका दान, मणिरत्न और पृथ्वीदान—ये सभी दान अन्नदानके सोलहव अशकी भी बराबरी नहीं कर सकत हैं। अन्नसे ही प्राणियाके प्राण, बल, तेज, वीर्य, धृति और स्मृति—ये सभी प्रतिष्ठित रहते हैं। जो कूप वापी तडाग और उपवनका निर्माणकर लागाकी सतुष्टिक लिय प्रदान करत ह, व अपनी इक्कीस पीढियाका उद्धारकर विष्णुलोकम प्रतिष्ठा प्राप्त करत हैं[4]।

साधुआका दर्शन करना अतिशय पुण्यदायक ह। यह

१-ये च हामजपस्नानदेवनार्चनतत्परा । सत्यक्षमादयायुक्तास्ते नरा स्वर्गगामिन ॥ (२२१।७)

२-लोभात्क्रोध प्रभवति लोभाद् द्राह प्रवर्तते । लाभान्मोहश्च माया च मानो मत्सर-एव च॥
रागद्वेषानृतक्रोधलोभमोहमदोज्झित । य स शान्त पर लोक याति पापविवर्जित ॥ (२२१।११-१२)

३-न गादानात्पर दान किञ्चिदस्तीति मे मति । या गौर्न्यायार्जिता दत्ता कृत्स्न तारयते कुलम्॥
नान्नदानात्पर दान किञ्चिन्नस्ति वृपध्वज! । अन्नन धार्यते सर्वं चराचरमिद जगत्॥ (२२१।१८-१९)

४-कूपवापीतडागानीनारामाश्चैव कारयेत् । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलाके महीयत ॥ (२२१।२२)

सभी प्रकारके तीर्थोंसे भी उत्तम है। तीर्थ तो समय आनेपर फल प्रदान करता है, किंतु सज्जनोंका संग उसी क्षण फल प्रदान कर देता है—

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थादपि विशिष्यते।
कालेन तीर्थं फलति सद्यः साधुसमागमः॥

(२२१। २३)

सत्य, दम, तपस्या, शौच, संतोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, शम, दया और दान—इनको सनातनधर्म माना गया है—

सत्यं दमस्तपः शौचं सन्तोषश्च क्षमार्जवम्।
ज्ञानं शमो दया दानमेष धर्मः सनातनः॥

(२२१। २४)

(अध्याय २२१)

प्रायश्चित्तनिरूपण, चान्द्रायणादि विभिन्न व्रतोंके[1] लक्षण तथा पञ्चगव्य-विधान

श्रीब्रह्माजीने कहा—अब मैं नारकीय पापोंको विनष्ट करनेवाले प्रायश्चित्त आदि कर्मोंका वर्णन करूँगा।

मक्खी, जलकण, स्त्री, पृथ्वीपर प्राकृतिकरूपसे एकत्र जल, अग्नि, बिल्ली और नेवला—ये सदैव पवित्र माने गये हैं। जो द्विज प्रमादवश शूद्रद्वारा उच्छिष्ट[2] (जूँठ) तथा छुआ हुआ भोजन ग्रहण करता है, वह एक दिन-रात्रिका उपवास करके पञ्चगव्यप्राशनसे शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण अन्य किसी ब्राह्मणके द्वारा उच्छिष्ट तथा स्पर्श किया हुआ भोजन करता है तो उसे प्रायश्चित्तके रूपमें स्नान, जप तथा पूरे दिन उपवास करके रात्रिमें भोजन करना चाहिये। मक्खी और केशयुक्त भोजन करनेपर तत्काल 'वमन-क्रिया' करनेसे शुद्धि हो जाती है। जो मनुष्य किसी भोज्य पदार्थको एक हथेलीमें रखकर दूसरे हाथकी एक अंगुली या पूरे हाथसे खाता है और उसके बाद जल नहीं पीता है तो उसे एक दिन और एक रात्रिका उपवास करना चाहिये। एक हथेलीमें रखकर दूसरे हाथसे भोजन कर जल भी पी लिया जाय तो और कठिन प्रायश्चित्त विहित है, क्योंकि ऐसे भोजनमें बिना संकोच पूर्ण संतुष्ट होनेका भाव स्पष्ट है। पीनेसे बचे हुए तथा बायें हाथसे ग्रहण किये गये जलका पान करना मदिरापानके समान होता है।

चमड़ेके पात्रमें रखा गया जल अपवित्र होता है, उसे नहीं पीना चाहिये। यदि किसी द्विजके घर अज्ञानवश ही कोई अन्त्यज निवास कर ले तो उस द्विजकी शुद्धिके लिये चान्द्रायण अथवा पराकव्रत करना आवश्यक है। ब्राह्मणके घरमें शूद्रका प्रवेश होनेपर तथा बादमें जानकारी होनेपर ब्राह्मणको प्राजापत्यव्रत करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो ब्राह्मण घरमें शूद्रके प्रविष्ट होनेपर पक्वान्नका भोजन करता है, उसे अर्द्धकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। अर्धकृच्छ्रव्रतके योग्य जो अशुचि है उसके घरमें अन्य कोई ब्राह्मण यदि भोजन करता है तो उसको भी एक चौथाई कृच्छ्रव्रतका पालन करना चाहिये।

जो द्विज धोबी, नट एवं बाँस और चमड़ेसे जीविकोपार्जन करनेवालोंके द्वारा अर्जित अन्नका भोजन करता है, उसे चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। चाण्डालके कुँए अथवा पात्रमें स्थित जलका पान अज्ञानवश भी जो ब्राह्मण कर लेता है, उसे 'सान्तपनव्रत' करना चाहिये। वैश्यके लिये यह प्रायश्चित्त आधा ही माना गया है। यदि कोई शूद्र उक्त निषिद्ध जलका पान करता है तो उसको तत्सम्बन्धित व्रतका एक चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये। अज्ञानवश ब्राह्मणके घर अन्त्यजके प्रवेश हो जानेपर उस ब्राह्मणको तीन कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। अन्त्यजके घरमें आ जानेमात्रसे उत्पन्न अपवित्रताका निराकरण पराकव्रतके अनुष्ठानसे होता है। अन्त्यजके द्वारा उच्छिष्ट भोजन करनेपर द्विज 'चान्द्रायणव्रत' करनेसे शुद्ध हो जाता है। जब कभी प्रमादवश कोई ब्राह्मण चाण्डालद्वारा दिये गये अन्नका भोजन कर लेता है तो उसे चान्द्रायण (ऐन्दव)-व्रत करना चाहिये। ऐसी ही अपवित्रतामें क्षत्रियको छः दिन और वैश्यको दो दिनका सान्तपनव्रत करना चाहिये। यदि प्रमादवश ब्राह्मण और चाण्डाल एक ही वृक्षके नीचे एक साथ फल खा लेते हैं तो वह ब्राह्मण एक दिन-रातके उपवाससे शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण

१-इस अध्यायमें जिन व्रतोंकी चर्चा है संक्षेपमें उनका स्वरूप अध्यायके अन्तमें वर्णित है।

२-उच्छिष्टका अर्थ है—सिद्ध अन्नमेंसे निकालकर शूद्रने पहले भोजन कर लिया है उसके बादका शेष अन्न। यहाँ घृणाका भाव नहीं है। पवित्रताकी दृष्टिसे यह एक नियम व्यवस्था है।

भोजनोपरान्त बिना आचमन इत्यादि किये चाण्डालका स्पर्श कर लेता है तो उसे आठ हजार गायत्री अथवा एक सौ 'द्रुपदादिव०' मन्त्रका जप करना चाहिये। चाण्डाल अथवा श्वपचके द्वारा किये गये विष्ठा और मूत्रके स्पर्श हो जानेपर ब्राह्मणको तीन रातका उपवास करना चाहिये। द्विजको अन्त्यजकी स्त्रीके साथ गमन करनेपर पराकव्रत करना चाहिये। परस्त्रीके साथ बिना कामनाके गमन करनेपर पराकव्रत करना चाहिये।

जो द्विज मद्यादिसे अशुद्ध पात्रमे रखे हुए जलका पान करता है, वह कृच्छ्रपादव्रत तथा पुन संस्कारसे शुद्ध होता है। जो ब्राह्मण वज्र (विद्युत्)-पात अथवा अग्नि, वायुके कारण अकस्मात् उत्पन्न उपद्रवसे ग्रस्त होनेके कारण अपना घर छोडने तथा अन्नपानादिको लेकर किसी अन्त्यजके घरमे रहनेके लिये विवश होते हैं तो उन्हे तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। मुनि वसिष्ठने तो उक्त निषिद्ध कर्म करनेपर ब्राह्मणके लिये पुन जातकर्मादि संस्कारोके द्वारा शुद्ध होनेका विधान बताया है। कोई स्वय उच्छिष्ट (भोजनके बाद मुख एव हाथका प्रक्षालन नहीं किया) है, उसके उच्छिष्ट (भोजन करनेके बाद शेष अन्न)-का भक्षण करनेपर अथवा कुत्ते या शूद्रसे स्पृष्ट सिद्ध अन्नका भक्षण करनेपर द्विज एक दिन रात्रिपर्यन्त उपवास तथा पञ्चगव्यप्राशनस शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण किसी वर्णबहिष्कृत व्यक्तिके द्वारा छू लिया जाता है तो उसे पाँच रात्रियोका उपवास करना चाहिये। अविच्छिन्नगतिसे गिरनवाली जलधारा वायुके झाकासे उडायी गयी धूलिके कण स्त्री, बालक और वृद्ध कभी दूषित नहीं होते। स्त्रियाका मुख पक्षियोके द्वारा गिराया गया फल, प्रसवकालम बछडा तथा हरिणका शिकार करते समय कुत्ता सदैव पवित्र रहता है। जलमे रहनेवाली वस्तु जलम और स्थलमे पायी जानेवाली वस्तु स्थलमे अपवित्र नहीं होती है। धार्मिक कृत्य करते समय पैरका स्पर्श हो जानेपर द्विज आचमनद्वारा शुद्ध हो जाता है।

जिस कास्यपात्रमे मदिरा नहीं लगी है यदि वह अन्य किसी कारणसे अपवित्र हो गया हो तो पवित्र भस्मके द्वारा माँजे जानेपर शुद्ध हो जाता है। मूत्र या मदिराके द्वारा अशुद्ध पात्रको अग्निम डालकर शुद्ध किया जा सकता है। गौके द्वारा सूँघे गये, शूद्रके द्वारा छुए गये तथा कौए और कुत्तेके द्वारा जूँठे किये गये कास्यपात्र दस बार शुद्ध भस्मसे माँजनेपर शुद्ध होते हैं। जो ब्राह्मण शूद्रके पात्रम भोजन कर लेता है, वह तीन दिनतक उपवास रखकर पञ्चगव्य-पान करनेसे शुद्ध होता है। जो ब्राह्मण उच्छिष्ट पदार्थ या उच्छिष्ट प्राणीका स्पर्श करता है अथवा कुत्ते या शूद्रका स्पर्श करनेसे अपवित्र हा गया हो, वह भी तीन दिनके उपवास और पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध हो जाता है। रजस्वला स्त्रीका स्पर्श करनेपर उपवास करके पञ्चगव्य-पान करनेसे शुद्धि हाती है। जलरहित प्रदेश, चोर और हिंसक व्याघ्रादि जीवोसे परिव्याप्त मार्गमे किसी अशुद्ध होनेयोग्य द्रव्यको हाथमे लिये हुए यदि मल, मूत्रका परित्याग किया जाता है तो वह द्रव्य अशुद्ध नहीं होता है। भूमिपर उस द्रव्यको रखकर शौच कर्म करना चाहिये।

काँजी, दही, दूध, मट्ठा, कृसरान्न शूद्रसे भी ग्राह्य है। मधु अन्त्यजसे भी ग्रहण किया जा सकता है। जो ब्राह्मणादि गुडकी बनी हुई, पीठीकी बनी हुई या महुआकी बनी हुई मदिरा पान करते हैं, उन्हे अग्निके समान सतप्त सुराका पान करके शुद्ध होना चाहिये। जो ब्राह्मण और क्षत्रिय सूतकयुक्त घरके पात्रमे जल अथवा भोजन ग्रहण कर लते हैं, उन्हे क्रमश पाँच सौ और एक सौ गायत्री-मन्त्रोका जप करना चाहिये। (जब घरम सूतक पड जाता है ता उस समय) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमश —दस दिन, बारह दिन, पद्रह दिन तथा एक मासके बाद शुद्ध हा जाते हैं। युद्धरत राजाओकी, यज्ञदीक्षितकी तथा परदेशम गये हुए लोगोकी सूतक होनेपर तत्काल स्नानसे शुद्धि हो जाती है। एक मासके बालककी मृत्यु होनेपर भी स्नानसे सद्य शुद्धिका विधान है। अविवाहित कन्या यज्ञोपवीत-संस्काररहित द्विज, दाँत निकल आये हुए बालक तथा तीन वर्षीया कन्याकी मृत्यु होनेपर तीन रात्रियाका अशौच होता है। जननाशौचम गर्भस्राव होनेपर भी तीन रात्रियाका अशौच माताके लिये माना गया है। प्रसूता स्त्रियाँ एक मासतक अशुद्ध रहती हैं। रजस्वला स्त्री चौथे दिन शुद्ध हो जाती है।

दशम दुर्भिक्ष एव किसी आकस्मिक कारणवश विप्लव होनकी स्थितिम जन्म अथवा मृत्युका अशौच होनेपर भी देशहितके लिये दान आदि धर्म यथानियम किये जा सकते

हैं। दीक्षाकालमे, विवाहादिमे, देव-पितृनिमन्त्रणमे, देवताओ तथा ब्राह्मणाके निमन्त्रित हो जानेपर या पूर्व सकल्पित कार्योके बीच भी यदि घरके किसी व्यक्तिकी मृत्यु हो जाती हे अथवा कोई बच्चा जन्म लेता है तो उस समय अशौच नहीं होता है। द्विज, प्रसूता पत्नीका स्पर्श करनेसे अशौचयुक्त हो जाता है। जहाँ अग्नियाका आवाहन होता है, जहाँ वेदाका पठन-पाठन होता है अथवा जहाँ वैश्वदेव यज्ञ आदि धार्मिक कृत्योका सम्पादन होता है, वहाँ सूतक-दोष नहीं होता।

अशुद्ध घरमे भोजन करनेपर ब्राह्मण तीन रात्रि उपवासके पश्चात् शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी स्त्री रजस्वला हो जाय और परस्पर एक-दूसरेका स्पर्श करे तो ब्राह्मणी तीन रातमे, क्षत्रियकी स्त्री दो रातमे, वैश्यकी स्त्री एक दिनम उपवास करनेके पश्चात् शुद्ध होती है। शूद्रकी स्त्री तो सद्य स्नान करनेके बाद ही शुद्ध हो जाती हे।

कुत्ते, सियार और बन्दरको कुएँमे गिरा हुआ देखकर उस कूपका जल पीनेसे ब्राह्मण तीन दिन क्षत्रिय दो दिन तथा वैश्य एक दिनके उपवासके पश्चात् शुद्ध होता है। यदि कुएँमे हड्डी चमडा, किसी प्रकारका मल या चूहा आदि गिर जाय तो उसे कुएँसे बाहर निकाल कर कुएँका कुछ जल निकाल देना चाहिय तथा पञ्चगव्य डालकर कुएँको शुद्ध करना चाहिये। यदि तडाग या पुष्करिणी आदिका जल दूषित हो गया हो ता उसमे शुद्ध भस्मादि डाल देना चाहिये और छ घडा जल उसमेसे निकालकर पञ्चगव्य डाल देना चाहिय। ऐसा करनेसे वह शुद्ध हो जाता है। यदि रजस्वला स्त्रीका रज स्राव कूपजलके मध्य हो जाता है तो उसमस तीस घडा जल निकाल देना चाहिये।

अगम्या स्त्रीका गमन मद्य तथा गोमासका भक्षण करके ब्राह्मण चान्द्रायणव्रत क्षत्रिय प्राजापत्यव्रत वैश्य सान्तपनव्रत करनेसे और शूद्र पाँच दिन उपवासके बाद शुद्ध हो जाता है किंतु प्रायश्चित करनेके बाद ऐसे सभी व्यक्तियाक लिय अपेक्षित हे कि वे गोदान कर और ब्राह्मणभोजन भी कराये। क्रीडा तथा शयनादिके समय नील लगा हुआ वस्त्र दूषित नहीं होता। (अन्य कार्योंमें तो) नील लगे हुए वस्त्राका स्पर्श नहीं करना चाहिये। ऐसे वस्त्राको धारण करनेवाले नरकम जाते हैं।

जो मनुष्य अवरोध उत्पन्न करनेके लिये पशुके दो पैरामे बन्धन लगानेका पाप करता है और उस पशुकी मृत्यु जलाशयके समीप, वनमे अथवा घरमे जलनेसे या कण्ठमे रस्सी बाँधने, घण्टी, घुँघरू आदि आभूषणोंके पहनानेसे हो जाती है तो उस मनुष्यको कृच्छ्रपादव्रत करना चाहिये।

गायके शरीरकी हड्डी तोडनेपर सींग तोडनेपर, चमडा भेदन करनेपर तथा पूँछ काटनेपर लगे हुए पापका प्रायश्चित आधे मासतक 'यावक पान' करनेसे होता है। हाथी घोडे और शस्त्र आदिसे गौकी ऐसी क्षति होनेपर कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। यदि अनजानम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मल, मूत्र मदिरासे सस्पृष्ट पदार्थका भोजन कर लें तो उन्हें पुन 'द्विजातीय सस्कार' करना चाहिये। पुन द्विजातीय सस्कारके समय केशमुण्डन मेखलाधारण, दण्डग्रहण और भिक्षाचरणादिकी आवश्यकता नहीं है।

अन्त्यजके पात्रमे रखा हुआ कच्चा मास घृत, मधु तथा यथासमय उत्पन्न स्निग्ध पदार्थ तैल आदि उसके पात्रसे निकाले जानेके बाद शुद्ध हो जाते हैं।

क्रमश प्रथम दिन एकभक्तव्रत[1], दूसर दिन नक्तव्रत[2], तीसरे दिन अयाचितव्रत[3] करते हुए जो उपवास किया जाता है वह पादकृच्छ्रव्रत है। कृच्छ्रार्धका द्विगुण प्राजापत्यव्रत कहा जाता है। यह सभी पापाका विनाशक है। सात उपवास करनेसे कृच्छ्रव्रत पूर्ण होता है। इसीको महासान्तपनव्रतके नामसे स्वीकार किया गया है। तीन दिन गरम जलमात्र उसके बाद तीन दिन गरम दूधमात्र और उसके बाद तीन दिन गरम घृतमात्र पान करत हुए जो व्रत किया जाता है वह तप्तकृच्छ्रव्रत है। यह समस्त पापाको विनष्ट करनेवाला है। बारह दिनोतक जलमात्र ग्रहण कर उपवास करनेसे एक पराकव्रत सम्पन्न हाता है। यह व्रत सभी पापाका विनाशक है। जिस व्रतमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिको एक ग्रासमात्र भोजन करके क्रमश पूर्णिमापर्यन्त

१-एक समय मात्र हविष्यान्न ग्रहण। २-रात्रिम उपवास। ३-बिना याचनाके जो प्राप्त हो उसीका ग्रहण।

प्रत्येक तिथिको एक-एक ग्रास भोजनकी वृद्धि की जाती है और उसके बाद कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिस प्रतिदिन अमावास्या तिथितक एक-एक ग्रास भोजनकी मात्रा कम की जाती है, उसे चान्द्रायणव्रत कहते हैं।

सोनेके समान वर्णवाली गायका दूध, श्वेतवर्णवाली गायका गोबर, ताम्रवर्णवाली गायका मूत्र, नीलवर्णवाली गायका घृत तथा कृष्णवर्णवाली गायकी दही प्रशस्त है। इन चारोके साथ कुशोदक मिलाकर जो पदार्थ तैयार किया जाता है, उसको पञ्चगव्य कहत हैं। इस मिश्रणमे गोमूत्रकी मात्रा आठ माशा, गोबरकी मात्रा चार माशा, दूधकी मात्रा बारह माशा, दहीकी मात्रा दस माशा और घृतकी मात्रा पाँच माशा कही गयी है। इस विधिसे तैयार किया गया पञ्चगव्य सभी मलाका विनाशक होता है।

(अध्याय २२२)

भगवान् विष्णुकी महिमा, चतुष्पाद-धर्मनिरूपण, पुराणो तथा उपपुराणो और अठारह विद्याओका परिगणन, चारो युगोके धर्मोका कथन एव कलियुगमे नामसकीर्तनका माहात्म्य

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! मुनियोद्वारा भक्तिपूर्वक आचरण किये गये उन धर्मोको मैंने कहा, जिनसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। सूर्यादि दवोकी पूजा, पितृतर्पण, होम तथा सध्यावन्दनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुपार्थचतुष्टयकी सिद्धि प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णु स्वय भक्तोको प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् विष्णु धर्मस्वरूप ही हैं। पूजा, तर्पण, हवन, सध्या ध्यान, धारणा आदि जो भी सत्कर्म हैं, वे सब हरि ही हैं।

सूतजीने कहा—ह शौनक! मैं चारो युगाके धर्मोंका वर्णन करता हूँ, आप सुन।

चार हजार युगाका एक कल्प होता है, इसका ब्रह्माका एक दिन माना गया है। कृतयुग त्रेता, द्वापर तथा कलि—ये चार युग होते हैं। कृतयुगम सत्य दान, तप तथा दया—इन चार पादासे धर्म अवस्थित रहता है। धर्मका सरक्षण करनेवाले हरि ही हैं। इस रहस्यका जानकर जो लाग सतुष्ट रहते हैं, वे ही ज्ञानी हैं। सत्ययुग (कृतयुग)-में मनुष्य चार हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। सत्ययुगक अन्तमें धर्मपालनकी दृष्टिसे क्षत्रिय उत्कर्पकी स्थितिम रहत हैं। शूद्राकी अपक्षा ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य धर्मपालनम उच्च आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सर्वाधिक बलशाली एव शूर भगवान् विष्णु ही राक्षसोका विनाश करते हैं।

त्रेतायुगमें धर्म सत्य, दान और दया—इन तान पादापर ही अवस्थित रह जाता है। इस कालके मनुष्य यनपरायण होते हैं। सम्पूर्ण ससार क्षत्रियास सुरक्षित रहता है। रक्तवर्णक भगवान् हरि मनुष्याद्वारा इस युगम पूजित हात हैं। मनुष्याकी आयु एक हजार वर्पकी होती है। इस युगम विष्णु भीमरथ कहलाते हैं और क्षत्रियाके द्वारा राक्षसाका सहार होता है।

द्वापरम धर्मकी मूर्ति दो पादापर अवस्थित रहती है। इस युगम अच्युत भगवान् विष्णु पीतवर्ण धारण करते हैं। लोगाकी आयु चार सौ वर्पकी होती है। ब्राह्मण और क्षत्रिय-वर्णसे उत्पन्न प्रजास पृथिवी व्याप्त रहती है। इस युगके लोगाकी अल्प बुद्धिका दखकर वदव्यासका रूप धारण कर भगवान् विष्णुने एक ही रूपम विद्यमान वेदको चार भागोम विभक्त किया और अपन समस्त शिष्याको उन चारो वेदाका अध्ययन कराया। भगवान् वेदव्यासने ऋग्वेदकी शिक्षा 'पैल' नामक शिष्यको, सामवेदकी शिक्षा 'जैमिनि' नामक शिष्यका, अथर्ववेदकी शिक्षा 'सुमन्तु' [illegible] शिष्यका और यजुर्वेदकी शिक्षा 'महामुनि वै[illegible]' नामक शिष्यका प्रदान की तथा वेदाङ्गों और [illegible] अध्ययन सूतजीको कराया। इन पुराणाके [illegible] ही हैं। ये अठारह पुराणाके रूपमें [illegible] हैं।

सर्ग, प्रतिसर्ग, वश मन्वन्तर [illegible]—ये पुराणक पाँच लक्षण हैं। ब्रह्म [illegible] भविष्यत्, नारदीय स्कन्द [illegible] ब्रह्मवैवत कूर्म [illegible] अठारह पुरा[illegible] प्रसिद्ध हैं। [illegible] अनेक [illegible] बात बतायी है। [illegible] उपपु[illegible] द्वारा कथित हैं। [illegible] द्वारा [illegible] उपपुराण हैं [illegible] हैं।

उपपुराण स्कन्द है, इसको भगवान् शिवके पुत्र कुमार कार्तिकेयजीने कहा है। चौथा उपपुराण शिवधर्म (शिवधर्मोत्तर) नामक है, जिसे भगवान् नन्दीश्वरने कहा है। महर्षि दुर्वासाद्वारा प्रोक्त आश्चर्य (अद्भुत) पुराण तथा देवर्षि नारदजीद्वारा कथित नारद उपपुराण है। इसी प्रकार कपिल, वामन तथा उशनस् उपपुराण महर्षि कपिल, वामन तथा उशनसद्वारा उपदिष्ट हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड, वारुण, कालिका, माहेश्वर, साम्ब, पराशर, मारीच तथा भार्गव नामक उपपुराण भी हैं। पुराण, धर्मशास्त्र, चारो वेद, शिक्षा कल्पादि, छ वेदाङ्ग, न्याय, मीमासा, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, गन्धर्वशास्त्र तथा धनुर्वेदशास्त्र—ये अठारह विद्याएँ हैं—

पुराण धर्मशास्त्र च वेदास्त्वगानि यन्मुने।
न्याय शौनक मीमासा आयुर्वेदार्थशास्त्रकम्।
(२२३। २१)

द्वापरयुगक अन्तमे भगवान् श्रीहरि, पृथ्वीके भारका हरण करते हैं।

कलियुगम धर्म एक पादपर अवस्थित रह जाता है। भगवान् अच्युत कृष्णवर्णके होते हैं। उस कालमे लोग दुराचारी और निर्दय होने लगते हैं। मनुष्याम सत्त्व, रज तथा तम—ये तीनो गुण दिखायी देत हैं। कालकी प्रेरणासे ये सभी गुण मनम उत्पन्न होते हैं और परिवर्तित होते रहते हैं।

हे शौनक। जब प्रवृद्ध सत्त्वगुणसे मन बुद्धि और इन्द्रियाँ व्याप्त हो जाती हैं और लोगाकी अनुरक्ति ज्ञानार्जन तथा तपश्चरणमे बढ जाती है तब सत्ययुग जानना चाहिये। जब मनुष्याकी आसक्ति काम्यकर्म और यशमे होती है, उस समय रजागुणकी प्रवृद्धिसे त्रेतायुग जानना चाहिये और तमागुणकी प्रबलताके साथ रजोगुणकी वृद्धिके कारण जब लागाम लोभ असताप मान, दम्भ और मत्सरके भाव प्रबल होत हैं और काम्य कर्मोम आसक्ति बढ जाती है तब द्वापरयुग समझना चाहिये। जब सदा असत्य बोलने आलस्य नींद आर हिसा आदि साधनोमे ही प्रवृत्ति हो जाती है शाक माह भय और दीनताका भाव जब बढ जाता है, तब तमोगुणको सर्वाधिक प्रबल मानना चाहिये। यही काल कलियुग है[१]।

इसी प्रकार जब लाग कामी हो जाते हैं, सदैव कटुवाणी बोलते हैं, जनपद चोर, डाकुओसे भर जाते हैं, वेद पाखण्डियासे दूषित हो जाते हैं, राजा प्रजाओका सर्वस्व हरण करते हैं, लोग मैथुन और पेट पालनके कर्मसे स्वत पराजित होने लगते हैं, ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यव्रतका परित्याग करके अशुचि हो जाते हैं, कुटुम्बी अर्थात् गृहस्थ भिक्षाटन करने लगते हैं, तपस्वी गाँवामें रहना प्रारम्भ कर देते हैं, सन्यासी अर्थलोभम फँस जाते हैं, लोग लघु शरार होनेपर भी अत्यधिक भोजन करते हैं और जा चोर हैं उन्हे साधुके रूपम लोग स्वीकार करने लगते हैं, तब कलियुग ही मानना चाहिये।

इस कलिकालम भृत्यगण अपने स्वामीका तिरस्कार करते हैं, तपस्वी अपने व्रतोका परित्याग कर देते हैं, शूद्र प्रतिग्रह लेने लगते हैं, वैश्य ब्राह्मणाकी सेवाकी उपेक्षा कर स्वय व्रत-परायण हो जाते हैं, धार्मिक भाव कम होनेसे सभी लोग बेचैन रहते हैं, सताने धार्मिक शिक्षाका अभाव होनेसे पिशाचके समान बन जाती हैं, अन्यायस अर्जित भोजनके द्वारा अग्निदेवको आहुति, देवताआको नैवेद्य तथा द्वारपर आये हुए अतिथि देवकी पूजा होती है तब कलियुग समझना चाहिये।

ह शौनक। कलियुगके आ जानेपर लोग अपने पितरोको जलतक नहीं देगे। सभी प्राणी स्त्रीक वशमें हो जायँगे। सबके कर्म शूद्रवत् हागे। इस कलिकालमें स्त्रिय अत्यधिक सतानोत्पत्ति करनेवाली और दुर्बल भाग्यवाली होंगी तथा बडोकी आज्ञाका उल्लङ्घन उनका स्वभाव होगा। ऐसा स्वभाव हो जानेपर यदि उनकी निन्दा की जायगी तो वे उसक प्रति गम्भीर न होकर उपेक्षाभाव अपनायगी। वे इस उपेक्षाभावको अपना सिर खुजलाकर व्यक्त करेंगी।

कलियुगक मनुष्य भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करगे। उन सभीका विश्वास पाखण्डमे बढ जायगा। ह ब्राह्मणो।

१-प्रभूतश्च यदा सत्त्व मनो बुद्धान्द्रियाणि च। तत्त कृतयुग विद्यात्ज्ञाने तपसि यद्रति ॥
यदा कर्मसु काम्यपु शक्तिर्यशसि दहिनाम्। तदा त्रेता रजोभूतिरिति जानाहि शौनक॥
यदा लाभस्त्वसन्तापो माना दम्भश्च मत्सर। कर्मणा चापि काम्याना द्वापर तद्रजस्तम ॥
यदा सदानृत तन्द्रा निद्रा हिसादिसाधनम्। शाकमोहौ भय दैन्य स कलिस्तमसि स्मृत ॥ (२२३। २४—२७)

यह कलिकाल दोषोसे भरा हुआ है, किंतु इस दोषपूर्ण युगमे एक महान् गुण भी है। वह गुण है भगवान् श्रीकृष्णका संकीर्तन। उनका संकीर्तन करनेसे ही मनुष्य ससारके महाबन्धन अर्थात् आवागमनके जालसे मुक्त हो जाता है। हे शौनक! कृतयुगमे प्राणीको जो फल भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे प्राप्त होता है, त्रेतायुगमे जो फल उनका जप करनेसे प्राप्त होता है और द्वापरयुगमे जो फल उन विष्णुदेवकी सेवा करनेसे प्राप्त होता है, वही फल कलिकालमे भगवान्के गुण, लीला और नाम-संकीर्तनसे ही प्राप्त हो जाता है। इसलिये नित्य ही भगवान् श्रीहरिका ध्यान, पूजन और संकीर्तन करना चाहिये—

कलेर्दोषनिधेर्विप्रा अस्ति ह्येको महागुणः ॥
कीर्तनादेव कृष्णस्य महाबन्धं परित्यजेत्।
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां जपतः फलम्॥
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।
तस्माद्ध्येयो हरिर्नित्यं गेयः पूज्यश्च शौनक॥

(२२३।३५—३७)

(अध्याय २२३)

नैमित्तिक तथा प्राकृतिक प्रलय और भगवान् विष्णुसे पुनः सृष्टिका प्रादुर्भाव

सूतजीने कहा—चार हजार युगोके बीतनेपर ब्रह्माका नैमित्तिक प्रलयकाल आता है। कल्पके अन्तमे सौ वर्षतक अनावृष्टि होती है। आकाशमण्डलमे प्रचण्ड रूपसे संतप्त करनेवाले भयंकर सात सूर्य उदित हो जाते हैं। वे अपनी प्रखर रश्मियोसे सम्पूर्ण जलराशिका पानकर तीनो लोकोको सुखा देते हैं।

भगवान् विष्णु रुद्रस्वरूप धारण करके भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक महर्लोक, जनलोक तथा पाताललोककी समस्त चराचर सृष्टिको जला देते हैं। भगवान् विष्णु तीनो लोकोको जलानेके बाद संवर्तक नामके मेघोकी सृष्टि करते हैं। नाना प्रकारके महामेघ सौ वर्षोतक बरसते हैं। विष्णुरूपमे स्थित वायु अत्यन्त तेजगतिसे सौ वर्षोतक चलती है। उस जलवृष्टिसे समुद्रके समान उत्ताल तरंगोवाले संसारके इस प्रलयकालमे स्थावर-जंगमके नष्ट होनेपर ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णु अनन्तशय्यापर शयन करते हैं। एक हजार वर्षतक सोनेके पश्चात् जब वे जागते हैं तो पुनः उन्हींके द्वारा इस जगत्‌की सृष्टि होती है।

हे शौनक! इसके बाद मैं प्राकृतिक प्रलयका वर्णन करता हूँ, उसको आप सुने। ब्रह्माके एक सौ वर्ष बीत जानेपर भगवान् हरि अपने योगबलसे समस्त सृष्टिको अपनेमे लीन करके ब्रह्माको धारण कर लेते हैं। इस कालमे जो प्राणी ब्रह्मलोकमे स्थित रहते हैं, वे भी भगवान् विष्णुमे लीन हो जाते हैं।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! उस कालमे अनावृष्टि करनेवाले सूर्योंसे सम्पन्न मेघ थे। मेघोके लगातार सौ वर्षतक बरसते रहनेसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलसे भर उठता है। अंदर प्रविष्ट हुई उस जलराशिसे ब्रह्माण्ड फट जाता है। ब्रह्माकी आयु पूर्ण होते ही सब कुछ जलमे ही लय हो जाता है। संसारमे कुछ भी शेष नहीं रहता। संसारको आधार प्रदान करनेवाली यह पृथ्वी भी उस जलराशिमे डूब जाती है। उस समय जल तेजमे, तेज वायुमे, वायु आकाशमे और आकाश भूतादि महत्तत्त्वमे प्रविष्ट हो जाता है और वह महत्तत्त्व प्रकृतिमे तथा प्रकृति अव्यक्त परमपुरुषमे लीन हो जाती है। वे हरि (अव्यक्त पुरुष) सौ वर्षतक सोते हैं। तदनन्तर (ब्रह्माका-) दिन आनेपर अव्यक्तादि क्रमसे पुनः व्यक्तिभूत चराचर जगत्‌की सृष्टि करते हैं। (अध्याय २२४)

कर्मविपाकका कथन

सूतजीने कहा—जगत्सृष्टि और प्रलय आदिकी चक्रगतिको जाननेवाले जो विद्वान् हैं वे यदि आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीन सांसारिक तापोको जानकर ज्ञान और वैराग्यका मार्ग स्वीकार कर लेते हैं तो आत्यन्तिक लय (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं। अब मैं उस संसारचक्रका वर्णन करूँगा, जिसको जाने बिना पुरुषार्थी परमात्मामे लीन नहीं होते।

प्राणके उत्क्रमण कालमे इस शरीरका परित्याग करके मनुष्य दूसरे सूक्ष्म शरीरमे प्रविष्ट हो जाता है। इस मृत्युलोकसे मृत्युके पश्चात् जीवको यमराजके दूत बारह

दिनकी अवधिमे यमलोकको ले जाते है। वहाँपर उस मरे हुए व्यक्तिके बन्धु-बान्धव जो उसके लिये तिलोदक और पिण्डदान देते है वही सब यमलोकके मार्गमे वह खाता-पीता है। पापकर्म करनेके कारण वह नरकलोकमे जाता है और पुण्यकर्म करनेके कारण स्वर्ग। अपने उन पाप- पुण्योके प्रभावसे नरक तथा स्वर्गमे गया हुआ प्राणी पुन नरक और स्वर्गसे लौटकर स्त्रियोके गर्भमे आता है। वहाँ विनष्ट न होकर वह दो बीजोके आकारको धारण कर लेता है। उसके बाद वह कलल फिर बुद्बुदाकार बन जाता है। तत्पश्चात् उस बुद्बुदाकार रक्तसे मांसपेशीका निर्माण होता है। मांसपेशीसे मांस अण्डाकार बन जाता है। वह एक पल (परिमाण-विशेष)-के समान होता है। उसी अण्डेसे अंकुर बनता है। उस अंकुरसे अंगुली, नेत्र नाक मुख और कान आदि अङ्ग-उपाङ्ग पैदा होते हैं। उसके बाद उस विकसित अंकुरमे उत्पादक-शक्तिका सञ्चार होने लगता है। जिससे हाथ-पैरकी अंगुलियोमे नख आदि निकल आते हैं। शरीरमे त्वचा और रोम तथा बाल निकलने लगते हैं। इस प्रकार गर्भमे विकसित होता हुआ यह जीव नौ मासतक अधोमुख स्थित रहकर दसवे मासमे जन्म लेता है। तदनन्तर संसारको अत्यन्त मोहित करनेवाली भगवान् विष्णुकी वैष्णवी माया उसे आवृत कर लेती है। यह जीव बाल्यावस्था कौमारावस्था युवावस्था तथा वृद्धावस्थाको प्राप्त करता है। इसके बाद यह पुन मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह जीव इस संसारचक्रमे घटीयन्त्रके समान घूमता रहता है।

जीव नरकभोग करनेके पश्चात् पापयोनिमे जन्म लेता है। पतितसे प्रतिग्रह स्वीकार करनेके कारण विद्वान् भी अधोयोनिमे जन्म ग्रहण करता है। याचक नरकभोग करनेके बाद कृमियोनिको प्राप्त होता है। गुरुकी पत्नी अथवा गुरुके धनकी मनसे भी कामना करनेवाला व्यक्ति कुत्ता होता है। मित्रका अपमान करनेवाला गधेकी योनिमे जन्म लेता है। माता-पिताको कष्ट पहुँचानेवाले प्राणीको कछुएकी योनिमे जाना पडता है। जो मनुष्य अपने स्वामीका विश्वसनीय बन कर उसको छलकर जीवनयापन करता है, वह मृत्युके बाद व्यामोहमे फँसे हुए वानरकी योनिमे जाता है।

धरोहररूपमे अपने पास रखे हुए पराये धनका अपहरण करनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है। नरकसे निकलनेके पश्चात् वह कृमियोनिमे जन्म लेता है। नरकसे मुक्त होनेपर उस ईर्ष्यालु मनुष्यको राक्षसयोनिमे जाना पडता है। जो मनुष्य विश्वासघाती होता है, वह मत्स्ययोनिमे उत्पन्न होता है। यव और धान्यादि अनाजोकी चोरी करनेवाले व्यक्ति मरनेके पश्चात् चूहेकी योनिमे जन्म लेते हैं। दूसरेकी स्त्रीका अपहरण करनेवाला मनुष्य खूँखार भेडियेकी योनिमे जाता है। जो मनुष्य अपने भाईकी स्त्रीके साथ सहवास करता है वह कोकिलयोनिमे जन्म लेता है। गुरु आदिकी स्त्रियोके साथ सहवास करनेपर मनुष्य सूअर योनिको प्राप्त होता है।

यज्ञ, दान तथा विवाह आदिमे विघ्न डालनेवाले मनुष्यको कृमियोनि प्राप्त होती है। देवता पितर और ब्राह्मणोको बिना भोजन आदि दिये जो मनुष्य अन्न ग्रहण कर लेता है, वह नरकको जाता है। वहाँसे मुक्त होकर वह पापी काकयोनिको प्राप्त करता है। बडे भाईका अपमान करनेसे मनुष्यको क्रौञ्च (पक्षिविशेष)-योनिकी प्राप्ति होती है। यदि शूद्र ब्राह्मण-स्त्रीके साथ रमण करता है तो वह कृमियोनिमे जन्म लेता है। उस ब्राह्मणीसे यदि वह संतानोत्पत्ति करता है तो वह लकडीमे लगनेवाले घुन नामक कृमिकी योनिको प्राप्त होता है। कृतघ्न व्यक्ति कृमि, कीट, पतङ्ग तथा बिच्छूकी योनियोमे भ्रमण करता है। जो मनुष्य शस्त्रहीन पुरुषको मारता है, वह दूसरे जन्ममें गधा होता है। स्त्री और बच्चेका वध करनेवालेको कृमियोनि प्राप्त होती है। भोजनकी चोरी करनेवाला मक्खीकी योनिमे जाता है। अन्नकी चोरी करनेवाला बिल्लीकी योनि तथा तिलकी चोरी करनेवाला चूहेकी योनिमे जन्म लेता है। घीकी चोरी करनेवाला मनुष्य नेवला और मद्गुर (मत्स्यविशेष)-के मांसकी चोरी करनेवाला काकयोनिमे जाता है। मधुकी चोरी करनेपर मनुष्य दंशकयोनि[1] तथा अपूप (पुआ)-की चोरी करनेपर चींटीकी

१ [illegible]—जलमक्षिका ([illegible])।

योनिमे जन्म लेता है। जलका अपहरण करनेपर पापी व्यक्ति काकयोनिमे उत्पन्न होता है। लकडीकी चोरी करनेपर मनुष्य हारीत (हारिल नामक पक्षी) अथवा कबूतरकी यानिमे जन्म लेता है। जा प्राणी स्वण-पात्रकी चोरी करता है, उसको कृमियोनिमे जन्म लेना पडता है। कपासस बने वस्त्राकी चोरी करनेपर क्रौञ्च पक्षी, अग्निकी चोरी करनेपर बगुला, अगराग आदि रजकद्रव्य (शरीर-सस्कारकद्रव्य) और शाक-पातकी चोरी करनेपर मनुष्य मयूर होता है। लाल रगकी वस्तुकी चोरी करनेस मनुष्य जीवक (पक्षिविशेष), अच्छी गन्धवाली वस्तुओकी चोरी करनेसे छुछुन्दर तथा खरगाशकी चोरी करनेस वह खरगोशयोनिको प्राप्त होता है। कलाकी चोरी करनेपर मनुष्य नपुसक, लकडीकी चोरी करनेपर घास-फूसमे रहनेवाला कीट फूलकी चारी करनेपर दरिद्र तथा यावक (जौका सत्तू, धान लाख आदि) चुरानेपर पगु हाता है।

शाक-पातकी चोरी करनेपर हारीत आर जलकी चोरी करनेपर चातक पक्षी हाता है। जा मनुष्य किसाके घरका अपहरण करता है, वह मृत्युके पश्चात् महाभयानक रौरव आदि नरकलोकामे जाकर कष्ट भोगता हे। तृण, गुल्म, लता वल्लरी और वृक्षाकी छाल चुरानेवाला व्यक्ति वृक्ष-योनिको प्राप्त होता है। यही स्थिति गो, सुवर्ण आदिकी चोरी करनेवाले मनुष्याकी भी है। विद्याकी चोरी करनेवाला मनुष्य विभिन्न प्रकारके नरकलोकाका भाग करनेक पश्चात् गूँगेकी योनिमे जन्म लेता हे। समिधारहित अग्निम आहुति देनेवाला मन्दाग्नि-रोगस ग्रस्त होता हे।

दूसरेकी निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरेकी मर्यादाको नष्ट करना, निष्ठुरता, अत्यन्त घृणित व्यवहारम अभिरुचि, परस्त्रीके साथ सहवास करना, पराये धनका अपहरण करना, अपवित्र रहना देवाकी निन्दा तथा मर्यादाके बन्धनको तोडकर अशिष्ट व्यवहार करना कृपणता करना तथा मनुष्याका हनन करना— नरकभाग करके जन्म लिये हुए मनुष्याके ये लक्षण हैं— एसा सभीको जान लेना चाहिये।

प्राणियाके प्रति दया सद्भावपूर्ण वार्तालाप परलाकके लिये सात्त्विक अनुष्ठान सत्कार्योका निष्पादन, सत्यधर्मका पालन, दूसरेका हितचिन्तन, मुक्तिकी साधना, वदोमे प्रामाण्यबुद्धि गुरु देवर्षि और सिद्धर्षियोकी सवा, साधुजनोद्वारा बताये गय नियमाका पालन, सत्क्रियाओका अनुष्ठान तथा प्राणियोक साथ मैत्रीभाव—ये स्वर्गस आये हुए मनुष्याके लक्षण हैं। जो मनुष्य योगशास्त्रद्वारा बताये यम, नियमादिक अष्टाङ्गयोगके साधनसे सद्-ज्ञानको प्राप्त करता है, वह आत्यन्तिक फल अर्थात् मोक्षका अधिकारी बन जाता है।

(अध्याय २२५)

अष्टाङ्गयोग एव एकाक्षर ब्रह्मका स्वरूप तथा प्रणवजपका माहात्म्य

सूतजीने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! अब मैं समस्त अङ्गोसहित महायोगका वर्णन करूँगा। यह महायाग मनुष्याको भोग और माक्ष प्रदान करनका श्रेष्ठतम साधन हे। भक्तिपूर्वक इस महायोगकी विधिका पाठ करनेमात्रसे मनुष्यके सभी पापाका विनाश हा जाता हे, इसे अब आप सुने।

महामति भगवान् दत्तात्रयने राजा अलर्कसे कहा था कि हे राजन्! ममता ही दु खका मूल हे और ममताका परित्याग ही दु खसे निवृत्तिका उपाय है। अहकार अज्ञानरूपी महातरका अकुर है। ममता उसका तना है। घर और क्षत्र आदि उसकी शाखाएँ हैं। पत्नी उसका पल्लव है तथा धन-धान्य महान् पत्र हैं और पाप ही उसका अत्यन्त दुगम मूल है। इस प्रकार पापमूलक आपातरमणाय सुख-शान्तिक लिये यह अज्ञानरूपी महातरु पेदा हुआ है। जा लोग ज्ञानरूपी कुल्हाडीस अज्ञानरूप महावृक्षको काट गिराते हैं वे ही परमब्रह्मभे लीन हा जाते हैं। तदनन्तर ब्रह्मरसको प्राप्तकर उसका भलीभाँति निष्कण्टक पान करके प्राज्ञ पुरुष नित्य-सुख एव परम शान्तिका प्राप्त करते हैं।

समस्त दृश्य-प्रपञ्च एव इन्द्रियाँ भी उसी (परब्रह्म)-म लीन हा जाता हे। ह राजन्! वहाँपर न तो 'तुम' रहते हो ओर न 'मैं' ही रहता हूँ, न शब्दादि तन्मात्राएँ रहती हैं और न अन्त करण ही रहता ह। हे राजन्द्र! हम दानाक बीच कोन-सा तत्त्व प्रधान है? वास्तवम हम दाना नि सार हैं।

हे राजन्! जीव और आत्माम एक्य होनपर भी पृथक्-भावका बोध हाता ह। यह पृथक्-भावका बाध ज्ञान (स्वरूपज्ञान)-के तिरोधानसे होता है। यद्यपि ज्ञानका तिरोधान योगी (ब्रह्माभिन्न जीव)-मे नहीं हाना चाहिये पर भेदबुद्धि एव भेदबुद्धिमूलक समस्त प्रपञ्च सबके अनुभवम आ रहा है, अत इसकी उपपत्तिके लिये यह मानना पडता ह कि ज्ञानका तिरोधान अनादिकालसे चला आ रहा है। यह ज्ञानका तिरोधान अज्ञानमूलक है। इसीलिये अज्ञानको ज्ञाननाशकी दशा कहा जाता है। यह ज्ञाननाशकी दशा ज्ञानक वियोगकी दशा है और यह ज्ञानका बियाग ही जावात्मा एव आत्मा (ब्रह्म)-का पृथक्-भाव है तथा इस पृथक्-भावके ज्ञानका नाश जीव एव आत्मा (ब्रह्म)-के ऐक्यज्ञानसे ही होता है। यह ऐक्यज्ञान (ऐक्यका प्रत्यक्षात्मक अनुभव) ही मुक्ति है। अनैक्यका अनुभव तो प्राकृतगुणा (मायिक विस्तार)-के कारण होता है।

प्राणीका जिसमे निवास हाता है, वह घर है। जिसके द्वारा उसके जीवनकी रक्षा होती है, वह भोज्य पदार्थ है। जो मुक्तिका हेतु है, वह ज्ञान है ओर जो बन्धनका हतु है, वह अज्ञान है। हे राजन्! प्राणियाके पुण्य और पापका विनाश उसके द्वारा किये जानेवाले (सुख-दु खात्मक) भोगोसे होता है और अवश्यकरणीय जो कर्तव्य हैं, उनको न करनेसे पुण्यका क्षय हो जाता है।

अहिसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। शौच दो प्रकारका बताया गया है—बाह्यशौच और अन्त शौच। सताप, तपस्या, शान्ति नारायणका पूजन और इन्द्रियदमन—ये योगके साधन हैं। आसनाके पद्म आदि भेद हैं।

शरीरके अन्तर्गत प्रवाहित होनवाली वायुपर विजय प्राप्त करना 'प्राणायाम' है। प्रत्येक प्राणायाम पूरक, कुम्भक और रेचकके भेदसे तीन प्रकारका हाता है। यही तीन प्राणायाम जब दस मात्राआका हाता है ता इस लघु प्राणायाम तथा इससे दुगुनी मात्राका मध्यम प्राणायाम और तीन गुनी मात्राआका उत्तम प्राणायाम कहा गया है। जिस प्राणायामम यागिजन जप और ध्यानसे युक्त हात हैं उस 'सगर्भ' प्राणायाम और उसके अतिरिक्त प्राणायाम (अर्थात् जप तथा ध्यानसे रहित होनेपर) 'अगर्भ' नामक प्राणायाम कहलाता है। प्रथम प्राणायामस योगी स्वप्नपर जय प्राप्त करता है, द्वितीय प्राणायामसे योगी कम्पपर और तृतीय प्राणायामसे विपाकपर जय प्राप्त करता है। इस प्रकार इन तीनो दोषाको योगी प्राणायामसे जीत लेता ह।

योगीका आसन लगाकर 'प्रणव' मे चित्त एकाग्र करके ध्यान और जप करना चाहिये। इस स्थितिम वह अपना दोना एडियोसे लिंग और अण्डकोशाका दबाकर एकाग्र मनस स्थित रहे। जो यागमार्गस भलीभाँति परिचित है, उस अपनी रजावृत्तिसे तमोवृत्तिको तथा सत्त्ववृत्तिसे रजोवृत्तिको निरुद्ध करके निश्छल-भावसे प्रणवका जप करते हुए ध्यान करना चाहिये। इन्द्रिया, प्राण और मन आदिका उनके विषयासे निगृहीत करना चाहिये। इस तरह एक साथ ही प्रत्याहार (विषयासे इन्द्रियाको हटाकर अन्तर्मुख करना) का उपक्रम करना चाहिये।

विधिवत् अठारह बार किया गया जो प्राणायाम है, उसे योगमे 'धारणा' के नामसे स्वीकार किया जाता है। योगके तत्त्वको जाननेवाले योगिजन ऐसी धारणाकी दो आवृत्तियो ही योग कहते हैं। योगियाकी पहली धारणा नाडीमें दूसरी हृदयमे, तीसरी वक्ष स्थलम चौथी उदरमें, पाँचवीं कण्ठमें छठी मुखमे, सातवीं नासाग्रपर आठवीं नेत्रम, नवीं दोनों भौंहाक मध्य और दसवीं मूर्धास्थानमे होती है। इस प्रकार योगमे इस धारणाको दस प्रकारका माना गया है। इन दसों धारणाआम सफलता प्राप्त करके योगी अक्षररूपता (ब्रह्मत्व) को प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार अग्निम छोडी गयी अग्नि एकाकार हो जाती है, उसी प्रकार परमात्माके ध्यानम लगायी गयी आत्मा तदाकार हो जाती है। एसी स्थितिम योगीको ब्रह्मस्वरूप महापुण्यदायक 'ॐ' इस महामन्त्रका जप करना चाहिये। इस प्रणव-महामन्त्रम 'अकार-उकार और मकार'—ये तीन अक्षर हैं। इन तीन अक्षराक अतिरिक्त इस महामन्त्रमें सत्त्व रजस् तथा तमस्—इन तीन मात्राआका याग भी है जो क्रमश सात्त्विक तथा राजसिक और तामसिक मनोवृत्तिका परिचायक है। ॐकारम जा चतुर्थ आद्य अर्धमात्रा स्थित है वह निर्गुण है तथा कवल योगियाद्वारा हा जानने योग्य

१-विपाक—कर्मफल।

है। गान्धारस्वर (ग)-के आश्रित रहनेवाली इस अर्धमात्राको गान्धारी नामसे जानना चाहिये। यह अक्षर परम ब्रह्म ॐकारके नामसे योगमार्गमे स्वीकृत है। अत इस महामन्त्रका जप और ध्यान करते हुए अपनी मुक्तिके लिये इस प्रकार अपनेमें ब्रह्मभावनाका निश्चय करना चाहिये—

'मैं स्थूलदेहसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं जरा-मरणसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं इस पृथ्वीके सभी मलासे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं वायु और आकाशसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं सूक्ष्मदेहसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं समस्त स्थान या अस्थानस रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म[1] हूँ। मैं गन्धतन्मात्रासे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं श्रोत्रेन्द्रिय और त्वचा नामक इन्द्रियसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं जिह्वा तथा घ्राणेन्द्रियसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं प्राण तथा अपान वायुसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं व्यान और उदान वायुसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं अज्ञानसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहकारसे रहित तुरीयावस्थामे विद्यमान परमपदस्वरूप, ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं नित्य-शुद्ध-बुद्ध मुक्त, आनन्दमय, अद्वैत, ज्ञानस्वरूप, ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ।'

सूतजीने कहा—हे शौनक! इस प्रकार मैंन मुक्ति देनेवाले अष्टाङ्गयोगका वर्णन कर दिया है। जो लाग मायापाशसे आबद्ध हैं, वे सभी नित्य-नैमित्तिक ही कार्य करते हैं और उसीम अन्ततक लगे रहते हैं। इस कारण उन्ह परमात्माका ऐक्य प्राप्त नहीं होता, व पुन इस ससारम जन्म लेते हैं। जो अज्ञानसे माहित हैं, वे ज्ञानयोग प्राप्त करके अज्ञानसे मुक्त हा जाते हैं। उसके बाद वह जीवन्मुक्त यागी न कभी मरता है, न दु खी होता है, न रोगी होता हे और न ससारके किसी बन्धनस आवद्ध होता है। न वह पापासे युक्त होता है, न तो उसे नरकयातनाका ही दु ख भागना पडता है ओर न वह गर्भवासमे दु खी ही होता है। वह स्वय अव्यय नारायणस्वरूप हो जाता है। इस प्रकारकी अनन्य भक्तिसे वह योगी भोग और माक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् नारायणको प्राप्त कर लेता हे।

ध्यान पूजा, जप, स्तात्र, व्रत, यज्ञ और दानके नियमाका पालन करनेसे मनुष्यक चित्तका शुद्धि हाती ह। चित्तशुद्धिसे ज्ञान प्राप्त होता है। प्रणवादि मन्त्राका जप करके द्विजाने मुक्ति प्राप्त की है। इन्द्रन भी इन्द्रासन प्राप्त किया। श्रेष्ठ गन्धर्वों और अप्सराओने उच्च पद प्राप्त किया। देवताओने देवत्व और मुनियान मुनित्व प्राप्त किया। गन्धर्वोने गन्धर्वत्व तथा राजाआ आदिने राजत्वको प्राप्त किया। (अध्याय २२६)

भगवद्भक्तिनिरूपण तथा भक्तोकी महिमा

सूतजीने कहा — अब मैं विष्णुभक्तिका वर्णन करूँगा, जिससे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। भगवान् विष्णु भक्तिसे जितना सतुष्ट होते हैं, उतना अन्य किसी साधनसे नहीं। भगवान् हरिका निरन्तर स्मरण करना मनुष्योके लिये महान् श्रेयका मूल है। यह पुण्याकी उत्पत्तिका साधन है और जीवनका मधुर फल है—

यथा भक्त्या हरिस्तुष्येत् तथा नान्येन केनचित्॥
महत श्रेयसो मूल प्रसव पुण्यसतते ।
जीवितस्य फल स्वादु नियत स्मरण हरे ॥
(२२७।१-२)

इसलिये विद्वानाने विष्णुकी सवाका भक्तिका बहुत बडा साधन कहा है। भगवान् त्रिलोकीनाथ विष्णुक नाम तथा कमादिक कीर्तनमे तन्मय हाकर जा लोग प्रसन्नताके आँसू बहाते हैं और रोमाञ्चित हाकर गद्गद हो उठते हैं, वे ही उनक भक्त हैं—

ते भक्ता लोकनाथस्य नामकर्मादिकीर्तने॥
मुञ्चन्त्यश्रूणि सहर्षाद्ये प्रहृष्टतनूरुहा ।
(२२७।३-४)

अत हम सभीको जगत्स्रष्टा दवदेवेश्वर भगवान् विष्णुके दिव्य उपदेशाका अनुसरण करना चाहिये। वे ही वैष्णव हैं, जो वेद-शास्त्राके अनुसार अवश्यकरणीय नित्य-कर्मोका पालन करते हुए श्रीविष्णुक प्रति अति स्निग्ध रहते हैं तथा भक्तिप्रवणताक कारण अद्वैतभावसे स्वयका पृथक्कर जिन नामोका स्मरण स्वय भगवान् भी करते ह,

१-परम व्यापक ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है उसका कोई आश्रय नहीं है इसलिये उसके स्थान या स्थानाभावकी कल्पना सर्वथा असम्भव है।

उन मङ्गलमय नामोका श्रवण-कीर्तन करनेके साथ स्वामि-सेवकभावस सदा भगवान् श्रीविष्णुको प्रणाम किया करते हैं। वे ही महाभागवत हैं, जो श्रीविष्णुके भक्तजनोके प्रति वात्सल्यभाव रखते हैं तथा श्रीविष्णुके पूजन एव उनकी आज्ञाका अनुसरण करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुकी मङ्गलमयी कथाआके श्रवणमे ही अतिशय प्रीतिपूर्वक सदा लीन रहते हैं तथा अपने नेत्र आदि समस्त अङ्गोकी समस्त चेष्टाएँ भगवान्‌की सेवाके लिये ही समर्पित किये रहते हैं। सक्षेपमे यह समझना चाहिये कि जो लोग पूर्ण समर्पणभावसे श्रीविष्णुकी भक्तिमे ही अपने मनको निरन्तर एकाग्र रखते हैं, वे ही परम भागवत हैं। इन परम महाभागवत लोगोका मुख्य लक्षण यह है कि ये लोग ब्राह्मणामे ही श्रीविष्णुका सदा निवास मानकर उनकी सेवामे सदा लगे रहते हैं। ये लोग अपने समस्त साधनोको भी श्रीविष्णुके चरणामे ही समर्पित किये रहते हैं। श्रीविष्णुकी सेवाके लिये ही सासारिक सगासे दूर रहते हैं। श्रीविष्णुको ही अपना एकमात्र आश्रय मानकर उन्हींकी अर्चामे सदा तत्पर रहते हैं।[१]

वैष्णव या महाभागवत जिस श्रीविष्णुभक्तिको अपना सर्वस्व मानते हैं, वह (श्रवण कीर्तन, स्मरण पादसेवन अर्चन वन्दन, दास्य तथा सख्य-भेदसे) आठ प्रकारकी होती है। इसमे म्लेच्छ व्यक्ति भी अधिकारी माना गया है। इस ससारमे तो वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है वही मुनि है, वही ऐश्वर्यसे सम्पन्न है और वही मोक्षको प्राप्त करता है, जो भगवान् हरिकी भक्तिमे तन्मय रहता है। जो भगवद्भक्त है उसीको दान देना चाहिये, उसीसे दान लेना चाहिये, उसीकी हरिकी भाँति पूजा करनी चाहिये। भगवद्भक्त द्विजोत्तमका स्मरण कर, उनके साथ भाषण कर उनका पूजन कर हम अपनेको पवित्र कर लेते हैं। यदि कोई भगवद्भक्त चाण्डालजातिका है तो वह भी अपनी पवित्र भक्तिकी महिमासे हम सबको पवित्र कर देता है।[२]

'हे नाथ! आप मुझपर दया करे, मैं आपकी शरणमे हूँ' ऐसा जो प्राणी कहता है, उसको भगवान् हरि सम्पूर्ण प्राणियासे अभय कर देते हैं, किसीसे भी उसको भय नहीं होता, यह भगवान्‌की प्रतिज्ञा है—

दया कुरु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत्।
अभय सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतद् व्रत हरे॥
(२२७।११)

मन्त्रका जप करनेवाले हजार जपकर्ताओकी अपेक्षा सभी वेदान्तदर्शनो, शास्त्रोमे पारगत विद्वान् श्रेष्ठ है। सर्ववेदान्तनिष्णात करोडो विद्वानोकी अपेक्षा विष्णुभक्त श्रेष्ठ है। जो लोग भगवान् विष्णुमे एकान्तिक भक्ति रखते हैं वे सशरीर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त करनेमे सफल हो जाते हैं। श्रीविष्णुभक्तिको ही परम पुरुषार्थ माननेवाले एकान्ती भक्त हैं। इनका चित्त सर्वात्मना भागवत होता है। ऐसे परम भागवत श्रीविष्णुके ही समान हो जाते हैं किंबहुना, श्रीविष्णु ऐसे परम भागवत भक्तोंके परायण (सर्वथा अभिन्न) रहते हैं। ये परम भागवत भक्त देवदेव श्रीविष्णुके परम प्रिय लोगोसे भी अधिक सुप्रिय होते हैं। इनकी भक्ति अव्यभिचारिणी (नितान्त सुदृढ) होती है। इसीलिये कठिन-से-कठिन आपत्कालमे भी यह भक्ति सुस्थिर रहती है। ये परम भागवत भक्त सदा यही प्रार्थना करते रहते हैं—'प्रभो! विष्णो! विषयामे जो अधिकाधिक स्थिर प्रीति होती है, वही आपका स्मरण करते हुए मुझमें सदा अविचल-भावसे बनी रहे।' यह विशेष रूपमें ध्यातव्य है कि प्रभु श्रीविष्णुकी ही भक्ति करनी चाहिये। यदि कोई अन्य किसीके प्रति दृढ भक्त है, सर्वेश्वर प्रभुका भक्त नहीं है तो वेदादि समस्त शास्त्रोके अर्थका पारङ्गत होनेपर भी वह वास्तवमे पुरुषाधम ही है। जिसने वेद या अन्य शास्त्रोका अध्ययन नहीं किया है जो यज्ञादिक पुण्यकर्मोंको अपने जीवनमे सम्पन्न करनेसे वञ्चित रह गया है, वह भी यदि भगवान् विष्णुमे भक्ति रखता है तो (समझना चाहिये कि) उसने सब कुछ कर लिया है। जो लोग याज्ञिक हैं और अश्वमेध, राजसूयादिक मुख्य यज्ञोको करनेवाले हैं और

१-प्रणामपूर्वक भक्त्या यो वदेद्वैष्णवो हि स। तद्भक्तजनवात्सल्य पूजन चानुमोदनम्॥
तत्कथाश्रवणे प्रीतिरश्रुनेत्राङ्गविक्रिया। येन सर्वात्मना विष्णौ भक्त्या भावो निवेशित॥
विप्रेभ्यश्च कृतात्मत्वान्महाभागवतो हि स। विष्णूपकरण नित्य तदर्थं सङ्गवर्जनम्।
स्वयमभ्यर्चनं चैव यो विष्णु चोपजीवति॥ (२२७।६—८)

२-भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छोऽपि वर्तते। स विप्रेन्द्रो मुनि श्रीमान् स याति परमा गतिम्॥
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरि। स्मृत सम्भाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम।
पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदृच्छया॥ (२२७।९-१०)

वेदोके पारगत हैं, वे मुनिसत्तम (मुनिश्रेष्ठ) भी उस परम गतिको प्राप्त नहीं कर पाते, जिस परमगतिको विष्णुभक्त अपनी भक्तिसे प्राप्त कर लेते हैं। इस ससारमे जो मनुष्य निर्दयी हैं, दुष्टात्मा हैं तथा दुराचारमे लगे रहते हैं, वे भी यदि भगवान् विष्णु नारायणकी भक्तिमे सलग्न हो तो उन्हे परम गतिकी प्राप्ति होती है। जब मनुष्यकी भक्ति भगवान् जनार्दनके प्रति अचल और दृढ हो जाती है, तब उसके लिये स्वर्गका सुख कितना महत्त्व रखता है! वह भक्ति ही उसके लिये मुक्ति है। हे शौनक! इस ससारके दुर्गम कर्ममार्गमें भ्रमण करते हुए मनुष्योके लिये भक्ति ही एकमात्र अवलम्ब है, जिसके करनेसे जनार्दन सतुष्ट होते हैं। जो मनुष्य देवाधिदेव विष्णुके दिव्य गुणोको नहीं सुनता, वह बहरा है और सभी धर्मोसे बहिष्कृत है। हरिनाम-सकीर्तनसे जिस व्यक्तिका शरीर रोमाञ्चित नहीं हुआ, उसका वह शरीर मृतकके समान है। हे द्विजश्रेष्ठ! जिसके अन्त करणमे विष्णुभक्ति विद्यमान रहती है, उसे यथाशीघ्र ही इस ससारके आवागमन-चक्रसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जिन मनुष्याका मन हरिभक्तिमे रमा हुआ है, उनके सभी पापोका विनाश सब प्रकारसे निश्चित है।

हाथमे पाश लेकर खडे हुए अपने दूतको देखकर यमराज उसके कानमे कहते हैं कि हे दूत! तुम उन लोगाको छोड देना जो मधुसूदन विष्णुके भक्त हैं। मैं तो अन्य दुराचारी और पापियाका स्वामी हूँ, वैष्णवोके स्वामी स्वय हरि हैं। श्रीविष्णुने स्वय कहा है कि यदि दुराचारी व्यक्ति भी मुझमे अनन्य भक्ति रखता है तो वह साधु ही है, क्योकि उसने भक्तिका निश्चय कर लिया है कि श्रीविष्णुकी भक्तिके समान अन्य कुछ भी नहीं है। निश्चयपूर्वक भगवान्‌की भक्तिम अनन्य भावसे लगा हुआ व्यक्ति तुरत धर्मात्मा हो जाता है और उसको शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है। हे द्विजश्रेष्ठ! आप ऐसा निश्चित ही जान ल कि विष्णुभक्तका कभी विनाश नहीं होता। समस्त ससारके मूल कारण भगवान् हरिमे जिस मनुष्यकी भक्ति स्थिर रहती है उसके लिये धर्म अर्थ और काम—इस त्रिवर्गका कोई महत्त्व नहीं है, क्याकि परम सुखरूप मुक्ति ही उसके हाथमे सदा रहती है। यह जो हरिकी त्रिगुणात्मिका दैवी माया है उसको वे लोग पार करते हैं जो हरिकी शरणमे जाते हैं। जिनकी बुद्धिमे भगवान् हरि निवास करते हैं, उनके लिये 'यज्ञाराधन आदिसे क्या लाभ? भक्तिसे ही

नारायणकी आराधना होती है। भक्तिके अतिरिक्त उनकी आराधनाके लिये अन्य कोई साधन नहीं है। विभिन्न प्रकारके दान देनेसे, भलीभाँति पुष्प-समर्पणसे अथवा अनेक प्रकारके दिव्य अनुलेपनसे भी परमात्मा जनार्दन विष्णु उतना सतुष्ट नहीं होते जितना भक्तिसे।

इस ससाररूपी विपवृक्षके अमृतके समान दो फल हैं—पहला फल है—भगवान् केशवकी भक्ति और दूसरा फल है, उनके भक्तोका सत्सग—

ससारविपवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे।
कदाचित्केशवे भक्तिस्तद्भक्तैर्वा समागम ॥
(२२७।३२)

सनातन पुरुप श्रीविष्णु एकमात्र भक्तिसे सुलभ हैं और यह भक्ति अनायास पत्र, पुष्प फल अथवा जलका श्रद्धाके साथ श्रीविष्णुके चरणाम समर्पणमात्रसे प्राप्य है। ऐसी स्थितिमे अतिकष्टसाध्य मुक्तिके लिये क्यो प्रयत्न किया जाय?

'हमारे कुलम एक विष्णुभक्तने जन्म लिया है, यह हमारा इस ससार-सागरसे उद्धार करेगा।' यह सोचकर पितृगण ताल ठोकते हैं और पितामह ताली बजा-बजाकर नृत्य करते हैं। अज्ञानी और पापात्मा शिशुपाल तथा सुयोधन आदि भी सुरश्रेष्ठ भगवान्‌की निन्दा-अपमानके ब्याजसे, भगवान्‌का स्मरणमात्र करके निष्पाप हो गये और मुक्तिको प्राप्त कर लिये। ऐसी स्थितिमे भगवान्‌मे परमभक्ति रखनेवालोके मुक्तिलाभम कौन-सा सशय है? वह तो निस्सदेह प्राप्त होगी ही—

अज्ञानिन सुरवरे समधिक्षिपन्तो
यत्पापिनोऽपि शिशुपालसुयोधनाद्या ।
मुक्ति गता स्मरणमात्रविधूतपापा
क सशय परमभक्तिमता जनानाम्॥
(२२७।३५)

ध्यानयोगसे रहित होकर भी जो लोग श्रीविष्णुकी शरणमे आ जाते हैं, वे मृत्युका अतिक्रमण करके परम वैष्णवगतिको प्राप्त हो जाते हैं।

हे माधव! इस ससारमे प्राप्त होनेवाले सैकडो कष्टोसे व्यथित और शरीरमे विद्यमान अनेक इन्द्रिय-छिद्ररूप अश्वोके साथ विषयवासनाआम भटकते हुए इस मेरे मनरूपी घोडेको आप रोक ले और अपने चरणरूपी खूँटेमे सुदृढ भक्तिरूपी बन्धनसे बाँध दे, जिससे यह मेरा मन

आपके चरणकमलका परित्याग कर अन्यत्र न जा सके—

भवोद्भवक्लेशशतैर्हतस्तथा
परिभ्रमन्निन्द्रियरन्ध्रकैर्हयै ।
नियम्यता माधव मे मनोहय-
स्त्वदङ्घ्रिशङ्कौ दृढभक्तियन्धने॥[1]
(२२७। ३७)

विष्णु ही परमब्रह्म हैं, वे ही तीन भिन्न रूपोंमें वेद शास्त्रादिके प्रतिपाद्य हैं। इस तथ्यको उनकी मायामे मोहितजन नहीं जानते और जो लोग इस मायासे परे रहते हैं तथा श्रीविष्णुमे अपनी अचल भक्ति रखते हैं, उन्हें यह भेद नहीं दिखायी देता। उनके लिये तो सब विष्णुमय ही होता है। (अध्याय २२७)

नामसकीर्तनकी महिमा

सूतजीने कहा—मुक्तिके कारणभूत, अनादि, अनन्त, अज नित्य, अव्यय और अक्षय भगवान् विष्णुको जो मनुष्य नमन करता है, वह समस्त ससारके लिये नमस्कारके योग्य हो जाता है। मैं आनन्दस्वरूप, अद्वैत, विज्ञानमय, सर्वव्यापक एव सभीके हृदयमे निवास करनेवाले भगवान् विष्णुको भक्तिभावसे भरे हुए एकाग्र-मनसे सदा प्रणाम करता हूँ। जो ईश्वर अन्त करणमे विराजमान रहकर सभीके शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं, उन सर्वसाक्षी परमेश्वर विष्णुको मेरा नमन है।

शरीरमे शक्ति रहते हुए जो मनुष्य भगवान् चक्रपाणि विष्णुको प्रणाम नहीं करता, उससे इस ससारके अति तुच्छ तृण भी उद्विग्न रहते हैं। जलसे परिपूर्ण नूतन-श्यामल मेघा-जैसी सुन्दर कान्तिवाले, लोकनाथ, परमपुरुष तथा अप्रमेय भगवान् कृष्णको भाव-विभोर होकर दृढ भक्तिके साथ मात्र एक बार किया गया प्रणाम श्वपच (चाण्डाल)-को भी तत्काल उत्तम गति देनेमे सक्षम है। जो व्यक्ति पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करते हुए भगवान् हरिकी पूजा करता है, उसको वह गति प्राप्त होती है, जो सैकडो यज्ञोका अनुष्ठान करनेसे भी सम्भव नहीं है। जगल एव समुद्रकी भाँति दुर्गम ससारमे दौडते हुए पुरुषोको कृष्णके लिये उनके द्वारा किया गया एक ही प्रणाम उन्हे मुक्ति प्रदान करके तार देगा। बैठा हो, शयन कर रहा हो अथवा जहाँ कहीं भी रह रहा हो—हर स्थितिमे कल्याणकामी पुरुषको 'नमो नारायणाय' मन्त्रका स्मरण करना चाहिये। 'नारायण' यह शब्द सुलभ है और वागिन्द्रिय मनुष्यके वशमे है, फिर भी मूर्ख मनुष्य नरकमें गिरता है, इससे बढकर आश्चर्य क्या होगा। यदि कोई चार मुखोसे युक्त हो जाय अथवा उसके करोडो मुख हो जायँ, चाहे कोई विशुद्ध चित्तवाला मनुष्य हो, फिर भी वह देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णुके गुणोसे सम्बन्धित दस हजारवे भागका भी वर्णन नहीं कर सकता। मधुसूदन (श्रीविष्णु)-की स्तुति करनेवाले व्यास आदि मुनि अपनी बुद्धिकी क्षीणताके कारण श्रीविष्णुके गुण-वर्णनसे विरत होते हैं न कि श्रीविष्णुके गुणोंकी इयत्ताके कारण। सिहसे डरकर मृग जैसे तत्काल भाग जाते हैं वैसे ही श्रीविष्णुके नामोका कीर्तन करनेसे अशक्त व्यक्तिके भी सभी पातक तत्काल नष्ट हो जाते हैं और निष्पाप होनेके कारण वह व्यक्ति अपने पूरे परिवारके साथ मोक्षके लिये सनद्ध हो जाता है।

स्वप्नमे भी भगवान् नारायणका नाम लेनेवाला मनुष्य अपनी अक्षय पापराशिको विनष्ट कर देता है। यदि कोई मनुष्य प्रबोध-दशामे परात्पर विष्णुका नाम लेता है तो फिर उसके विषयमें कहना ही क्या? 'हे कृष्ण। हे अच्युत! हे

१ यह श्लोक प्राचीन आप्तपरम्परामे इस प्रकार प्रसिद्ध है—
भवोद्भवक्लेशकशाहताहत परिभ्रमन्नैन्द्रियकापथान्तरे। निगृह्यता माधव मे मनोहय त्वदङ्घ्रिशङ्कौ दृढभक्तिबन्धनै ॥
इसका अर्थ है—'हे माधव! मेरा मनरूपी अश्व ससारमें उत्पन्न क्लेशरूपी सैकडों कोड़ोसे आहत होकर ऐन्द्रिय (इन्द्रियसम्बन्धी) अनेक कापथ (कुत्सित मार्गों)-में भटक रहा है। कृपया आप अपने भक्तिरूप दृढ बन्धनोंसे अपने चरणरूपी शङ्कुमें इसे बाँधकर निगृहीत कर ले।'
[काशीके प्रसिद्ध परम आस्तिक प्रौढ विद्वान् श्रीरामयशजी त्रिपाठी (महाशयजी) इसी रूपमें इस श्लोकका प्रतिदिन प्रात पाठ करते थे और कहा करते थे कि यह गरुडपुराणका श्लोक है। विशेषकर वर्तमान कलिकालमें इस श्लोकका पाठ भगवान्‌की भक्ति प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह तथ्य महाशयजीके शिष्य स्व० श्री प० बालचन्द्र दीक्षितजीसे ज्ञात हुआ है।]

अनन्त! हे वासुदेव! आपको नमस्कार है।' ऐसा कहकर जा भक्तिभावस श्रीविष्णुको प्रणाम करते हैं, वे यमपुरी नहीं जाते। अग्निके प्रज्वलित होनेपर अथवा सूर्यके उदित हो जानेपर जैस अन्धकार विनष्ट हो जाता है, वैस ही हरिका नामसकीर्तन करनेसे प्राणियाक पाप-समूहका विनाश हो जाता है। नामसकीर्तनसे जिस नित्य सर्वोत्तम अक्षय सुखका अनुभव हाता हे उसके सम्मुख अनित्य क्षयशील स्वर्गसुख सर्वथा नगण्य है। जिनका चित्त श्रीकृष्णचिन्तनम ही प्रतिक्षण रम रहा ह उनक लिये श्रीकृष्णधामतक पहुँचनके लत्रे मार्गम श्रीकृष्णनामसकीर्तन सर्वोत्तम पाथेय (अनुपम अवलम्ब) है। ससाररूपी सर्पके दशस व्याप्त विपके भयकर उपद्रवका शान्त करनके लिय एकमात्र औपध 'श्रीकृष्ण' नाम है। इस वैष्णव मन्त्रका जप करक मनुष्य ससारबन्धनसे मुक्त हो जाता है—

पाथेय पुण्डरीकाक्ष नामसकीर्तन हरे।
ससारसर्पसदष्टविपचेष्टैकभेषजम् ॥
(२२८।१७)

कृतयुगम भगवान् हरिका ध्यान करते हुए, त्रेतायुगमे इन्हीं भगवान् हरिके मन्त्राका जप करते हुए, द्वापरम इन्हींकी पूजा करत हुए, जो फल प्राणियोको प्राप्त होता हे वही फल कलियुगम मनुष्य उन्हीं भगवान् 'केशव' के स्मरणमात्रसे प्राप्त कर लेता है—

ध्यायन् कृत जपन् मन्त्रस्त्रेतायां द्वापरऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सस्मृत्य केशवम्॥
(२२८।१८)

जिस व्यक्तिकी जिह्वाके अग्रभागम 'हरि' ये दो अक्षर विद्यमान हात हैं, वह इस ससारसागरको पार कर विष्णु-पदको प्राप्त करनम सफल हो जाता है—

जिह्वाग्र वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
ससारसागर तीर्त्वा स गच्छेद्वैष्णव पदम्॥
(२२८।१९)

ज्ञानपूर्वक किये गय हजारा पापोसे परिशुद्धि प्राप्त करनकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिके लिये भगवान्का नाम परम कल्याणकारी हे। भगवान् नारायणके स्तवन ओर गुणानुवादसे भरी हुई कथाआके श्रवणमे निमग्न रहनेवाला व्यक्ति स्वप्नम भा इस ससारको नहीं देखता—

विज्ञातदुष्कृतिसहस्त्रसमावृतोऽपि
श्रेय पर तु परिशुद्धिमभीप्समान।
स्वप्नान्तर न हि पुनश्च भव स पश्ये-
न्नारायणस्तुतिकथापरमो मनुष्य॥
(२२८।२०)

(अध्याय २२८)

विष्णुपूजामे श्रद्धा-भक्तिकी महिमा

सूतजीने पुन कहा—हे शौनक! समस्त लोकाके स्वामी भगवान् हरिकी आराधना ही सार है। पुरुषसूक्तके[१] द्वारा जो मनुष्य पुष्प और जल आदि उस परात्पर देवको समर्पित करता हे, वह सम्पूर्ण चराचर जगत्की पूजा कर लेता ह। जो विष्णुकी पूजा नहीं करत, उन्ह ब्रह्मघाती समझना चाहिये। जिन भगवान्स समस्त प्राणियाकी उत्पत्ति हुई है और यह समस्त चराचर जगत् जिनस व्याप्त है, उन विष्णुका जा ध्यान नहीं करता, वह विष्ठाका कृमि हाता है। नरकलाकम होनेवाल कष्टासे सतप्त हो रहे पापी जावसे यमराज स्वय पूछत हैं कि क्या तुमने कष्टविनाशक भगवान् विष्णुदेवका पूजन नहीं किया था? द्रव्याका अभाव होनपर मात्र जलसे ही पूजा करनेपर जो देव प्रसन हाकर स्वय अपने ही लोकका द देते हें क्या तुमने उनकी पूजा नहीं की थी?

श्रद्धापूर्वक की गयी पूजासे सतुष्ट भगवान् हृषीकेश मनुष्यका जा उपकार करते हैं, वह न माता करती है, न पिता करता है और न तो उसका भाई ही करता है। वर्णाश्रम-धर्मका आचरण करनेवाले मनुष्यके द्वारा यदि भगवान् विष्णुकी पूजा होती है, तो वे (श्रीविष्णु) उस पूजास सतुष्ट हो जात हैं। इसके अतिरिक्त अन्य काई मार्ग नहीं है, जो उनको सतुष्ट कर सके। न ता वे प्राणियाके द्वारा दिय गये विभिन्न प्रकारके दानसे उतना सतृप्त होते हैं, न तो पुष्पोपहार और भाँति-भाँतिके सुगन्धित पदार्थोंके अनुलपनसे उतना सतुष्ट होते

१- सहस्रशीर्षा पुरुष ' आदि १६ मन्त्र 'पुरुपसूक्त'-रूपम प्रसिद्ध हैं। य मन्त्र सभी वदाकी सहिताम उपलब्ध हैं।

हैं, जितना भक्तिसे। सम्पत्ति, ऐश्वर्य, माहात्म्य पुत्र-पौत्रादिक संतान तथा अन्यान्य कर्मसम्पादनसे भी भगवान् हरि संतुष्ट नहीं होते। विमुक्तजनोंके लिये भी हरिका ऐक्य श्रीहरिकी आराधनासे ही प्राप्त होता है क्योंकि श्रीहरिकी आराधना ही ऐक्यभावका मूल है।

(अध्याय २२९)

विष्णुभक्तिका माहात्म्य

सूतजीने कहा—सभी शास्त्रोंका अवलोकन करके तथा पुनः-पुनः विचार करके यह एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यको सदैव भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये—

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥
(२३०।१)

जो व्यक्ति एकनिष्ठ होकर नित्य उस नारायणका ध्यान करता है, उसके लिये नाना प्रकारके दान, विभिन्न तीर्थोंका परिभ्रमण, तपस्या और यज्ञोंका सम्पादन करनेसे क्या प्रयोजन? अर्थात् श्रीमन्नारायणका ध्यान सर्वोत्कृष्ट है।

छियासठ हजार तीर्थ भगवान् नारायणके प्रणामकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते। समस्त प्रायश्चित्त और जितने भी तप-कर्म हैं, इन सभीमें भगवान् कृष्णका स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा समझना चाहिये। जिस पुरुषकी अनुरक्ति सदैव पापकर्ममें रहती है, उसके लिये एकमात्र श्रेष्ठतम प्रायश्चित्त भगवान् हरिका स्मरण है।

जो प्राणी एक मुहूर्तभर भी निरालस्य होकर नारायणका ध्यान कर लेता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है, फिर नारायणमें अनन्य-परायण भक्तके विषयमें क्या कहा जाय—

मुहूर्तमपि यो ध्यायेन्नारायणमतन्द्रितः।
सोऽपि स्वर्गतिमाप्नोति किं पुनस्तत्परायणः॥
(२३०।६)

जो मनुष्य योगपरायण है अथवा योगसिद्ध है, उसकी चित्तवृत्ति जागते, स्वप्न देखते तथा सुषुप्तावस्थामें भगवान् अच्युतके ही आश्रित होती है। उठते, गिरते, रोते, बैठते, खाते, जागते भगवान् गोविन्द माधव विष्णुका स्मरण करना चाहिये।

अपने-अपने कर्ममें संलग्न रहते हुए भगवान् जनार्दन हरिमें ही चित्तको अनुरक्त रखना चाहिये, ऐसा शास्त्रका कथन है। अन्य बहुत-सी बातोंको कहनेसे क्या लाभ—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः कुर्याच्चित्तं जनार्दने।
एषा शास्त्रानुसारोक्तिः किमन्यैर्बहुभाषितैः॥
(२३०।१)

ध्यान ही परम धर्म है, ध्यान ही परम तप है, ध्यान ही परम शुद्धि है, अतः मनुष्यको (भगवद्) ध्यानपरायण होना चाहिये। विष्णुके ध्यानसे बढ़कर अन्य कोई ध्यान नहीं है, उपवाससे बढ़कर अन्य कोई तपस्या नहीं है, अतः भगवान् वासुदेवके चिन्तनको ही अपना प्रधान कर्म मानना चाहिये। इस लोक और परलोकमें प्राणीके लिये जो कुछ दुर्लभ है, जो अपने मनसे भी सोचा नहीं जा सकता, वह सब बिना माँगे ही ध्यानमात्र करनेसे मधुसूदन प्रदान कर देते हैं।

यज्ञ आदि उत्तम कर्म करते समय प्रमादवश स्खलनसे जो न्यूनता होती है, वह विष्णुके स्मरणमात्रसे सम्पूर्णतामें परिवर्तित हो जाती है, ऐसा श्रुतिवचन है—

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥
(२३०।१३)

पापकर्म करनेवालोंकी शुद्धिका ध्यानके समान अन्य कोई साधन नहीं है। यह ध्यान पुनर्जन्म देनेवाले कारणोंको भस्म करनेवाली योगाग्नि है। समाधि (ध्यानयोग) से सम्पन्न योगी योगाग्निसे तत्काल अपने समस्त कर्मोंको भस्म करके इसी जन्ममें मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वायुके सहयोगसे ऊँचे उठनेवाली ज्वालासे युक्त अग्नि जैसे अपने आश्रय कक्ष (कमरे)-को जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही योगी (ध्यानयोगी)-के चित्तमें स्थित श्रीविष्णु योगीके समस्त पापोंको भस्म कर देते हैं। जैसे अग्निके संयोगसे सोना मलरहित हो जाता है, वैसे ही मनुष्योंका मल भगवान् वासुदेवके सांनिध्यसे विनष्ट हो जाता है।

हजारों बार गङ्गास्नान तथा करोड़ों बार पुष्कर नामक तीर्थमें स्नान करनेसे जो पाप नष्ट होता है, वह हरिका मात्र स्मरण करनेसे नष्ट हो जाता है। हजारों प्राणायाम करनेसे जो पाप नष्ट होता है, वही पाप क्षणमात्र भगवान् हरिका ध्यान करनेसे निश्चित ही नष्ट हो जाता है। जिस मनुष्य

हृदयमें भगवान् केशव विराजमान है, उसके मानसपर उन दुष्ट उक्तियों तथा पाखण्डका प्रभाव नहीं पडता, जो कलिके प्रभावसे प्रवृत्त हैं। जिस समय हरिका स्मरण किया जाता है, वही तिथि, वही दिन, वही रात्रि वही योग, वही चन्द्रबल और वही लग्न सर्वश्रेष्ठ है। जिस मुहूर्त या क्षणमें वासुदेवका चिन्तन नहीं होता, वह मुहूर्त या क्षण हानिका समय है। वह अत्यन्त व्यर्थ है। वह किसी भी प्रकारके लाभसे रहित होनेके कारण मूर्खता एवं मूकता (गूँगेपन)-का समय है।

जिसके हृदयमें भगवान् गोविन्द विद्यमान हैं, उसके लिये कलियुग भी सत्ययुग ही है। इसके विपरीत जिसके हृदयमें अच्युत भगवान् गोविन्दका वास नहीं है, उसके लिये तो सत्ययुग भी कलियुग ही है। जिसका चित्त आगे और पीछे, चलते तथा बैठते, सदैव भगवान् गोविन्दमें रमा हुआ है, वह व्यक्ति सदा ही कृतकृत्य है—

कलौ कृतयुगं तस्य कलिस्तस्य कृते युगे।
हृदये यस्य गोविन्दो यस्य चेतसि नाच्युतः॥
यस्याग्रतस्तथा पृष्ठे गच्छतस्तिष्ठतोऽपि वा।
गोविन्दे नियतं चेतः कृतकृत्यः सदैव सः॥
(२३०।२३-२४)

हे मैत्रेय! जप, होम एवं पूजा आदिके द्वारा जिसका मन वासुदेव श्रीकृष्णकी आराधनामें अनुरक्त है, उसके लिये इन्द्र आदिका पद विघ्नके समान है।

जिन्होंने श्रीकेशवके चरणोंमें अपने मनको अर्पित कर दिया है वे गृहस्थाश्रमका परित्याग बिना किये ही कठिन तपश्चर्या बिना किये ही पौरुषी (पुरुषोत्तम परब्रह्मकी शक्ति) मायाके जालको काट डालते हैं।

गोविन्द दामोदरका हृदयमें वास रहनेपर मनुष्य क्रोधियोंके प्रति क्षमा, मूर्खोंके प्रति दया और धर्ममें संलग्न प्राणियोंके प्रति प्रसन्नता प्रकट करते हैं—

क्षमां कुर्वन्ति क्रुद्धेषु दयां मूर्खेषु मानवाः।
मुदं च धर्मशीलेषु गोविन्दे हृदयस्थिते॥
(२३०।२७)

स्नान-दान आदि कर्मोंमें तथा विशेष रूपसे सभी प्रकारके दुष्कर्मोंका प्रायश्चित्त करते समय भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये।

जिनके हृदयमें नीलकमलके समान सुन्दर श्यामवर्ण भगवान् हरि विराजमान रहते हैं, उन्हींको वास्तविक लाभ और जय प्राप्त होते हैं। उनका पराभव कैसे हो सकता है—

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥
(२३०।२९)

हरिमें समर्पित चित्तवाले कीडे-मकोडे, पक्षी आदि जीव-जन्तुओंकी भी ऊर्ध्व (उत्तम) गति होती है। फिर ज्ञानसम्पन्न मनुष्योंकी गतिके विषयमें कहना ही क्या—

कीटपक्षिगणानां च हरौ सन्न्यस्तचेतसाम्।
ऊर्ध्वा ह्येव गतिश्चास्ति किं पुनर्ज्ञानिनां नृणाम्॥
(२३०।३०)

भगवान् वासुदेवरूपी वृक्षकी छाया न तो अधिक शीतल होती है और न अधिक तापकारक होती है। नरकके द्वारका शमन करनेवाली (नरकमें जानेसे रोकनेवाली) इस छायाका सेवन क्यों नहीं किया जाय—

वासुदेवतरुच्छाया नातिशीतातितापदा।
नरकद्वारशमनी सा किमर्थं न सेव्यते॥
(२३०।३१)

हे मित्र! भगवान् मधुसूदनको अपने हृदयमें अहर्निश प्रतिष्ठित रखनेवाले प्राणीका विनाश करनेमें न तो महाक्रोधी दुर्वासाका शाप समर्थ है और न तो देवराज इन्द्रका शासन ही समर्थ है—

न च दुर्वाससः शापो राज्यं चापि शचीपतेः।
हन्तुं समर्थं हि सखे हृत्कृते मधुसूदने॥
(२३०।३२)

बोलते हुए, रुकते हुए अथवा इच्छानुसार अन्य कार्य करते हुए भी यदि भगवद्विषयक चिन्तन निरन्तर बना रहे तो धारणा (ध्येयपर चित्तकी स्थिरता)-को सिद्ध हुआ मानना चाहिये—

वदतस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।
नापयाति यदा चिन्ता सिद्धां मन्येत धारणाम्॥
(२३०।३३)

सूर्यमण्डलके मध्य विराजमान रहनेवाले, कमलासनपर सुशोभित, केयूर[1], मकराकृतकुण्डल और मुकुटसे अलंकृत, दिव्य हारसे युक्त, मनोहारिणी सुन्दर स्वर्णिम आभासे युक्त शरीरवाले, शंख-चक्रधारी भगवान् विष्णुका सदैव ध्यान करना चाहिये—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥
(२३०।३४)

इस संसारमें भगवान्के ध्यानके समान अन्य कोई पवित्र कार्य नहीं है। श्रीविष्णुके ध्यानमें ही सदा निरत रहनेवाला मनुष्य चाण्डालका भी अन्न खाते हुए इस संसारके पापसे संलिप्त नहीं होता, क्योंकि ऐसा मनुष्य अपने स्वत्वको भगवान्में लीन कर देनेसे भगवन्मय हो जाता है, अतएव उसकी भेददृष्टि पूरी तरह निर्मूल हो जाती है।

प्राणीका चित्त सदा सांसारिक विषयवासनाओंके भोगमें जिस प्रकार अनुरक्त रहता है, यदि उसी प्रकार नारायणमें ही अनुरक्त हो तो इस संसारके बन्धनसे क्यों नहीं विमुक्त हो सकता—

सदा चित्तं समासक्तं जन्तोर्विषयगोचरे।
यदि नारायणेऽप्येवं को न मुच्येत बन्धनात्॥
(२३०।३६)

सूतजीने फिर कहा—हे शौनक! सर्वदा जिसके चित्तमें भगवान् विष्णुकी भक्ति विद्यमान रहता है, वह प्रतिक्षण श्रीविष्णुको ही नमन करता रहता है। इस स्थितिमें वह हरिकृपासे अपनेको पापके समुद्रसे तार लेता है।

वही ज्ञान है जिस ज्ञानका विषय गोविन्द हों, वही कथा है जिस कथामें केशवकी लीला हो, वही कर्म है जो प्रभुके निमित्त किया जाय, अन्य बहुत-सी बातोंका कहनेसे क्या लाभ? जो जिह्वा हरिकी स्तुति करती है वही जिह्वा है, जो चित्त श्रीहरिको समर्पित है वही चित्त है तथा भगवान्की पूजा करनेमें जो हाथ लगे हुए हैं वे ही वास्तविक हाथ हैं—

तज्ज्ञानं यत्र गोविन्दः सा कथा यत्र केशवः।
तत्कर्म यत् तदर्थाय किमन्यैर्बहुभाषितैः॥
सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत् तदर्पितम्।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ॥
(२३०।३८-३९)

मस्तकका फल है भगवान्को नतमस्तक होकर प्रणाम करना, हाथका फल है भगवान्की पूजा करना, मनका फल है उनके गुण और कर्मका चिन्तन करना तथा वाणीका फल है गोविन्दके गुणोंका कीर्तन करना—

प्रणाममीशस्य शिरःफलं विदु-
स्तदर्चनं प्राणिफलं दिवौकसः।
मनःफलं तद्गुणकर्मचिन्तनं
वचस्तु गोविन्दगुणस्तुतिं फलम्॥
(२३०।४०)

मनुष्यके पापकर्मकी जो राशि सुमेरु और मन्दराचलके समान विशाल हो गयी हो, वह सम्पूर्ण पापराशि भी भगवान् केशवका स्मरणमात्र करनेसे ही विनष्ट हो जाती है—

मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः।
केशवस्मरणादेव तस्य सर्वं विनश्यति॥
(२३०।४१)

श्रीविष्णुपरायण भक्त अनासक्त-भावसे यदि अपने सभी कर्मोंको श्रीविष्णुके चरणोंमें समर्पित करता है तो उसके कर्म साधु हों या असाधु बन्धनकारक नहीं होते। हे प्रभो! सुर असुर, मनुष्य तिर्यक् स्थावर आदि भेदोंमें विभक्त तृणसे लेकर ब्रह्मापर्यन्त समस्त जगत् आपकी ही मायामें मोहित है।

जिनमें मन लगा देनेसे प्राणी नरकमें नहीं जाता और जिनके चिन्तन-सुखकी तुलनामें स्वर्गकी प्राप्ति विघ्नके समान है तथा ब्रह्मलोककी कामना भी अत्यल्प होनेके कारण किसी भी प्रकार मनमें प्रवेश नहीं पाती, जो अव्यय भगवान् जड बुद्धिवाले मनुष्योंके चित्तमें स्थित होकर उन्हें मुक्ति प्रदान कर देते हैं, उन अच्युतका कीर्तन करनेपर यदि उनमें प्राणोंका विलय हो जाता है तो इसमें आश्चर्यका क्या

१-बाँहके मूलमें पहना जानेवाला आभूषण, इसे अङ्गद, बिजायट, बाजूबंद आदि भी कहते हैं।

बात है[१]?

दु ख-सागरको पार करनेके लिये यज्ञ जप, स्नान और विष्णुका ध्यान तथा पूजन करना चाहिये।

राष्ट्रका आश्रय राजा, बालकका आश्रय पिता और समस्त प्राणियाका आश्रय धर्म है किंतु सभीके आश्रय श्रीहरि ही हैं—

राष्ट्रस्य शरण राजा पितरो बालकस्य च।
धर्मश्च सर्वमर्त्याना सर्वस्य शरण हरि ॥
(२३०।४६)

हे मुनिवर! जो लोग जगत्‌के कारणस्वरूप सनातन भगवान् वासुदेवको नमन करते हैं, उनसे अधिक श्रेष्ठ पुण्यवान् कोई तीर्थ नहीं है। निरालस्य होकर गोविन्दका ध्यान करते हुए उन्हींको समर्पित स्वाध्याय आदि कर्म करना चाहिये। भगवद्भक्त व्यक्ति चाहे शूद्र हो अथवा निषाद हो या चाण्डाल हो, उसे द्विजातियाके समान ही माननेवाला व्यक्ति नरकमे नहीं जाता। जैसे धनप्राप्तिकी अभिलाषासे धनवान् व्यक्तिकी सदैव सम्मानपूर्वक स्तुति की जाती है, वैसे ही जगत्स्रष्टा श्रीविष्णुकी स्तुति-पूजा आदि की जाय तो क्यो नहीं इस ससारके बन्धनसे मुक्ति हो सकती है?

जिस प्रकार वनम लगी हुई अग्नि गीले ईंधनको जलाकर राख कर देती है, उसी प्रकार योगियोके हृदयमे स्थित भगवान् विष्णु उनके समस्त पापोको विनष्ट कर देते हैं। जैसे चारो ओरसे लगी हुई अग्निकी ज्वालासे घिरे हुए पर्वतका आश्रय मृग आदि पशु एव पक्षी नहीं लेते, वैसे ही सभी पाप योगाभ्यासम लगे हुए मनुष्यका आश्रय नहीं ग्रहण करते। उन विष्णुके प्रति जिसका विश्वास जितना अधिक दृढ होता है, उसको उतनी ही अधिक सिद्धि प्राप्त होती है।

भगवान् कृष्णके ऐसे प्रभावका आकलन कर शत्रुभावसे उन गोविन्दका स्मरण करता हुआ दमघोषका पुत्र शिशुपाल भगवान्‌मे लीन हो गया। यदि कोई मनुष्य भक्तिभावसे विष्णुपरायण है तो उसके विषयमे क्या कहना? उसकी मुक्ति तो पहलेसे ही सुनिश्चित हो जाती है—

विद्वेषादपि गोविन्द दमघोषात्मज स्मरन्।
शिशुपालो गतस्तत्त्व किं पुनस्तत्परायण ॥
(२३०।५४)

(अध्याय २३०)

नृसिहस्तोत्र तथा उसकी महिमा

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं भगवान् शिवद्वारा कहा गयी नारसिहस्तुति (नृसिहस्तोत्र)-का वर्णन करूँगा।

प्राचीन कालकी बात है, एक बार सभी मातृगणोने भगवान् शकरसे कहा कि हे भगवन्! हम सब आपकी कृपासे देव, असुर और मनुष्य आदि जो इस ससारम प्राणी हैं उन सबको खायगे। हम सभीको आप इसके लिये आज्ञा प्रदान कर।

शकरजीने कहा—हे मातृकाओ! आप सबके द्वारा ससारकी समस्त प्रजाकी रक्षा होनी चाहिये। इसलिये इस महाभयकर पापसे आप लोग अपने-अपने मनको शीघ्र वापस कर ल।

भगवान् शकरके द्वारा एसा कहे जानेपर भी मातृकाएँ उनके वचनका अनादर करते हुए त्रिभुवनके समस्त चराचर प्राणियाको खानेके लिये जुट गयीं। मातृकाओंके द्वारा त्रैलोक्यका भक्षण करते देखकर भगवान् शिवने नृसिहरूप उन श्रीविष्णुदेवका इस रूपमे ध्यान किया—जा आदि-अन्तसे रहित एव समस्त चराचर जगत्‌के कारण हैं, विद्युत्‌के समान लपलपाती हुई जिनकी जिह्वा है, जिनके बडे-बडे महाभयकर दाँत हैं, जिनकी ग्रीवा देदीप्यमान केसरसे[२] सुशोभित है, जो रत्नजटित अङ्गद एव मुकुटसे सुशोभित हैं। जिनका शिरोभाग सोनेके समान दिखायी देनेवाली जटाआसे युक्त है, जिनके कटिप्रदेशमे सोनेकी करधनी है, जो नीलकमलके समान श्यामवर्णके हैं जो रत्नखचित पायल धारण किये हुए हैं। जिनके तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त है। जिनका शरीर आवर्ताकार रोमसमूहसे युक्त है और जो देव श्रेष्ठतम पुष्पोसे गूँथी गयी एक विशाल मालाको धारण किये हुए हैं। इस तरह भगवान् रुद्रने

१-यस्मिन् न्यस्तमतिर्न याति नरक स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने विघ्नो यत्र न वा विशत् कथमपि ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पक ।
मुक्ति चेतसि सस्थितो जडधिया पुमा ददात्यव्यय किं चित्र यदय प्रयाति विलय तत्राच्युते कीर्तिते ॥ (२३०।४४)

२ सिहकी ग्रीवाके ऊपरी भागके केशसमूहको केसर कहते हैं।

भक्तिपूर्वक जिस रूपमे नारायणका ध्यान किया था, उसी रूपमे ध्यान करनेमात्रसे नृसिहदेव श्रीविष्णुने उन्हे अपना दर्शन दिया। यह रूप देवताओके द्वारा भी दुर्निरीक्ष्य था।

शिवने देवेश नृसिहको प्रणाम करके उन्हे तुष्ट किया और वे इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे। शकरजीने कहा—

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिहवपुर्धर।
दैत्येश्वरेन्द्रसहारिन् नखशुक्तिविराजित ॥
नखमण्डलसभिन्नहेमपिङ्गलविग्रह ।
नमोऽस्तु पद्मनाभाय शोभनाय जगद्गुरो।
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष सूर्यकोटिसमप्रभ॥
सहस्रयमसत्रास सहस्रेन्द्रपराक्रम।
सहस्रधनदस्फीत सहस्रचरणात्मक॥
सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रांशुहरिक्रम।
सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रब्रह्मसस्तुत॥
सहस्ररुद्रसजप्त सहस्राक्षनिरीक्षण।
सहस्रजन्ममथन सहस्रबन्धमोचन॥
सहस्रवायुवेगाक्ष सहस्राज्ञकृपाकर।
(२३१।१२—१६१/२)

हे समस्त ससारके स्वामी! हे नृसिहरूपधारिन्! हे दैत्यराज हिरण्यकशिपुके वक्ष स्थलको विदीर्ण करनेवाले! शुक्तियोके समान चमकीले नाखूनोसे सुशोभित देव! आपको नमस्कार है। हे नखमण्डलकी कान्तिसे मिश्रित सुवर्णके समान देदीप्यमान शरीरवाले! हे जगद्वन्द्य! हे शोभासम्पन्न भगवान् पद्मनाभ! प्रलय कालीन मेघके सदृश गर्जना करनेवाले, करोडो सूर्यके समान प्रभासम्पन्न देव! आपको नमन है। दुष्ट पापियोको हजारो यमराजके समान भयभीत करनेवाले! हजारो इन्द्रकी शक्ति अपनेमे सनिहित रखनेवाले! हजारो कुबेरके सदृश धनसम्पन्न! हजारो चरणसे युक्त हे देव! आपको नमस्कार है। हजारो चन्द्रके समान शीतल कान्तिवाले! हजारो सूर्यके सदृश पराक्रमशाली! हजारो रुद्रकी भाँति तेजस्वी! हजारो ब्रह्मासे स्तुत्य हे देव! आपको मेरा नमन है। हजारो रुद्र देवताओके द्वारा मन्त्ररूपमे जप करने योग्य महामहिम! इन्द्रके हजारो नेत्रोसे देखे जानेवाले! हजारो जन्मके पाप-पुण्योका मन्थन करनेवाले! ससारके हजारो जीवोका बन्धन काटकर उन्हे मुक्त करनेवाले! हजारो वायुदेवोके समान वेगवान् और हजारो मूर्ख प्राणियोपर कृपा करनेवाले हे दयानिधान! आपको मेरा नमस्कार है।

इस प्रकार नृसिहरूपधारी देवदेवेश्वर भगवान् हरिकी स्तुति करके विनम्रतापूर्वक शिवने पुन उनसे कहा—

हे देवदेवेश्वर! अन्धकासुरका विनाश करनेके लिये जिन मातृकाओकी सृष्टि मैंने की थी वे तो मेरे ही वचनकी अवहेलना करके ससारकी विविध प्रजाओका भक्षण कर रही हैं। मातृकाओकी सृष्टि करके तो अब स्वय मैं इनका सहार करनेमे असमर्थ हूँ। पहले इनकी सृष्टि की, अब कैसे इनका विनाश करूँ? यह मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।

रुद्रके ऐसा कहनेपर नृसिहरूपधारी भगवान् हरिने उसी समय अपनी जिह्वाके अग्रभागमे हजारो देवियोको उत्पन्न करके उन्हींके द्वारा देवता, असुर और मनुष्य आदिका सहार करनेवाली क्रुद्ध मातृकाओका विनाश कर ससारका कल्याण किया। तदनन्तर वे हरि अन्तर्धान हो गये।

जो मनुष्य नियमपूर्वक इस नारसिहस्तोत्रका जितेन्द्रिय होकर पाठ करता है, निश्चित ही भगवान् हरि उसके समस्त मनोरथको वैसे ही पूर्ण करते हैं जैसे उन्होने शिवके मनोरथको पूर्ण किया था।

मध्याह्नकालीन प्रचण्ड सूर्यके समान तेजस्वी नेत्रोवाले, श्वेत वर्णके कमलमे स्थित प्रज्वलित अग्निके सदृश भयकर, अनादि, मध्य और अन्तसे रहित पुराणपुरुष परात्पर, जगदाधार भगवान् नृसिहका ध्यान करना चाहिये—

ध्यायेन्नृसिह तरुणार्कनेत्र
सिताम्बुजात ज्वलिताग्निवक्त्रम्।
अनादिमध्यान्तमज पुराण
परात्परेश जगता निधानम्॥
(२३१।१७)

जो मनुष्य इस स्तोत्रका निरन्तर जप करता है उसके दु खसमूहको श्रीनृसिह उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं जिस प्रकार अशुमाली सूर्य कुहरेकी राशिको अपने सामनेसे हटा देते हैं। जब साधक कल्याणकारी मातृवर्गसे युक्त नृसिहदेवकी मूर्तिका निर्माण करके उनकी पूजा करता है तब वह सदैव उन परात्परदेवके समीपमे ही रहता है। त्रिपुरारि शिवने भी तो उन्हीं देवदेवेश्वर नृसिहमूर्ति भगवान् हरिकी पूजा की थी। उन्हीं देवको प्रसन्न करके श्रीशिवजीने वर प्राप्त किया और मातृकाओसे ससारकी रक्षा की। (अध्याय २३१)

कुलामृतस्तोत्र

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं उस कुलामृत नामक स्तोत्रका वर्णन करूँगा, जिसका वर्णन देवर्षि नारदके पूछनेपर शिवने किया था। उसे आप सुनें।

नारदजीने कहा—हे त्रिपुरान्तक भगवन्! जो दुर्मतिपूर्ण मनुष्य ससारमे काम-क्रोध और शुभाशुभ द्वन्द्वोसे तथा शब्दादि विषयोसे बँधकर सदासे पीडित हो रहे हैं, उनकी जन्म-मृत्युरूपी ससार-सागरसे जिस उपायद्वारा क्षणमात्रमे विमुक्ति हो जाय, उसको हम आपसे सुनना चाहते हैं।

इसपर भगवान् शकर बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! भव-बन्धनका नष्ट करनेवाले और दु खका विनाश करनेवाले परम गोपनीय रहस्यको मैं कहता हूँ, सुनो—तिनकेसे लेकर ब्रह्मातक चार प्रकारकी चराचर सृष्टि इस जगत्म जिन प्रभुकी मायासे अज्ञानके वशीभूत हाकर सदैव सोती रहती है उन विष्णुकी कृपासे यदि कोई जग जाता है तो वही ससारसे पार होता है। यह ससार देवताआके लिये भी अत्यन्त दुस्तर है। भोग और ऐश्वर्यके मदमे उन्मत्त तथा तत्त्वज्ञानसे पराङ्मुख, स्त्री, पुत्र और कुटुम्बियाके व्यामोहम भ्रमित होकर सभा प्राणी नाना प्रकारके दु ख झेलते हैं। इस व्यामोहमे फँसे हुए सभी जीवाकी वैसी ही गति हाती है, जैसी गति समुद्रमे स्नान करनके लिये आये हुए वृद्ध जगली हाथियोकी होती है। जो मनुष्य हरिकीर्तन करनेके समय अपने मुखको बद रखता है अर्थात् हरिकीर्तनस पराङ्मुख रहता ह, वह काशम स्थित कीडक समान हाता है। उसका मुक्ति ता करोडा जन्म लेनेपर भा सम्भव नहा है। अत ह नारद! प्रसन्न-चित्त होकर सदैव देवदेवेश अव्यय भगवान् विष्णुकी प्रसन्नतापूर्वक सम्यक् आराधना करनी चाहिये।

जो विश्वरूप, अनादि, अनन्त, अजन्मा तथा हृदयमे स्थित, अविचल, सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करता हे, वह मुक्त हो जाता है। शरीररहित, विधाता, सर्वज्ञानसम्पन्न, मनके रमणके अनन्य आश्रय, अचल, सर्वत्र व्याप्त भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मुक्त हो जाता है। निर्विकल्प (निर्विशेष), निराभास, निष्प्रपञ्च तथा निर्दोष, वासुदेव, परम गुरु भगवान् विष्णुका ध्यान करनेस मनुष्य मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। सर्वात्मक एव प्राणिमात्रके ज्ञानके एकमात्र प्रतिनिधि, शुभ, एकाक्षर (एक अक्षर 'अ' मात्रसे बाध्य) विष्णुका ध्यान करनेसे मुक्ति हो जाती है। वाक्यातीत (किसी भी वाक्यसे अवर्णनीय), तीनो कालोका जाननेवाले, लोकसाक्षी, विश्वेश्वर तथा सभीसे श्रेष्ठ विष्णुका सदा ध्यान करनेसे मुक्ति हो जाती है। ब्रह्मा आदि देव, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण एव यागियोके द्वारा सदा सेवित श्रीविष्णुका ध्यान करनेसे मुक्ति प्राप्त हाती है। ससार-बन्धनसे मुक्ति चाहनेवाले सभी लोगाको वरद श्रीविष्णुकी इसी प्रकार सदा स्तुति करनी चाहिये। यदि कोई भी ससार-बन्धनसे मुक्ति चाहता है तो उसे समाहितचित्त होकर अनन्त, अव्यय, देवाधिदेव, अनन्त ब्रह्माण्डमे सर्वोच्च देवके रूपमे सुप्रतिष्ठित, समस्त जगत्के नियन्ता, अज श्रीविष्णुका सदा ध्यान करना चाहिये।[1]

सूतजीने कहा—प्राचीन कालमे देवर्षि नारदके द्वारा पूछनेपर वृषभध्वज शिवने नारदसे श्रीविष्णुका जैसा वर्णन

१-यस्तु विश्वमनाद्यन्तमजमात्मनि सस्थितम्। सर्वज्ञमचल विष्णु सदा ध्यायेत् स मुच्यते॥
देव गर्भोचित विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते। अशरीर विधातार सर्वज्ञानमनोरतिम्।
अचल सर्वग विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
निर्विकल्प निराभास निष्प्रपञ्च निरामयम्। वासुदेव गुरु विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
सर्वात्मक च वै यावदात्मचैतन्यरूपकम्। शुभमेकाक्षर विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
वाक्यातीत त्रिकालज्ञ विश्वेश लोकसाक्षिणम्। सर्वस्मादुत्तम विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
ब्रह्मादिदेवगन्धर्वैर्मुनिभि सिद्धचारणै। योगिभि सेवित विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
ससारबन्धनान्मुक्तिमिच्छँल्लोका ह्यशेषत। स्तुत्वैव वरद विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
ससारबन्धनात् कोऽपि मुक्तिमिच्छन् समाहित। अनन्तमव्यय देव विष्णु विश्वप्रतिष्ठितम्।
विश्वेश्वरमज विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते॥ (२३२। ११—१८)

किया था वैसा मैंने आपसे कर दिया है। हे तात! निरन्तर उन अक्षय, निष्कल, सनातन, अव्यय, ब्रह्मस्वरूप विष्णुका ध्यान करते हुए आप निश्चित ही उनके शाश्वत पदको प्राप्त करेंगे। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, वह एकाग्रचित्त होकर विष्णुका क्षणमात्र ध्यान करनेसे प्राप्त होनेवाले फलके सोलहवें भागकी भी समानता करनेमें समर्थ नहीं है।

भगवान् शिवसे विष्णुके इस माहात्म्यको सुनकर सिद्ध देवर्षि नारदने उनकी सम्यक् आराधना करते हुए परम पदको प्राप्त किया। जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक नित्य इस स्तुतिका पाठ करता है, उसके करोड़ों जन्ममें किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं। महादेवके द्वारा कही गयी यह स्तुति बड़ी दिव्य है। जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक इस स्तुतिका नित्य पाठ करता है, वह अमृतत्व अर्थात् परम वैष्णव पदको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २३२)

मृत्यष्टकस्तोत्र[1]

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं मार्कण्डेयमुनिके द्वारा कहे गये स्तोत्रको बतलाता हूँ जो इस प्रकार है—

दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
शङ्खचक्रधरं देवं व्यक्तरूपिणमव्ययम्।
अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम्।
माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
पुरुषं पुष्करक्षेत्रबीजं पुण्यं जगत्पतिम्।
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
सहस्रशिरसं देवं व्यक्providers्ताव्यक्तं सनातनम्।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
भूतात्मानं महात्मानं यज्ञयोनिमयोनिजम्।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तोत्रं तस्य महात्मनः।
अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैः प्रपीडितः॥
इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति वै दुर्लभम्॥
(२३३।१—८)

मैं भगवान् दामोदरकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं शङ्खचक्रधारी व्यक्त अव्यय अधोक्षजकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं वराह, वामन, विष्णु, नृसिंह, जनार्दन, माधवके शरणागत हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं पुराणपुरुष, पुष्करक्षेत्रके (मूलतत्त्व) बीजभूत, (मूल पुरुष) महापुण्य, जगत्पति, लोकनाथकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं सहस्र सिरवाले, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन महायोगेश्वरकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैंने प्राणियोंमें 'आत्मा' स्वरूपसे विद्यमान रहनेवाले, महात्मा यज्ञयोनि अयोनिज, विश्वरूप भगवान्‌की शरण ग्रहण कर ली है, अब मृत्यु मेरा क्या करेगी? इस प्रकार उन महात्मा मार्कण्डेयमुनिके द्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर विष्णु-दूतोंसे संत्रस्त मृत्यु भाग जाती है। इस स्तोत्रका पाठकर बुद्धिमान् श्रीमार्कण्डेयने मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली। पुण्डरीकाक्ष श्रीनृसिंह महाविष्णुके प्रसन्न होनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

यह मृत्यष्टकस्तोत्र महापुण्यशाली है, मृत्युका विनाश करनेवाला और मङ्गलदायक है। मार्कण्डेयमुनिका कल्याण करनेके लिये भगवान् विष्णुने स्वयं इस स्तोत्रको कहा था। जो मनुष्य नित्य तीनों कालोंमें पवित्रतासे भक्तिपूर्वक इस स्तुतिका नियमपूर्वक पाठ करता है, वह विष्णुभक्त अकालमृत्युसे ग्रस्त नहीं होता। जो योगी अपने हृदयकमलमें पुराणपुरुष सनातन, अप्रमेय तथा सूर्यसे भी अत्यधिक तेजस्वी नारायणका ध्यान करता है वह मृत्युपर विजय प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २३३)

[1] मृत्युका निवारक आठ श्लोकोंका स्तोत्र।

अच्युतस्तोत्र

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं अच्युतस्तोत्रका वर्णन करूँगा जो प्राणियोंको सब कुछ प्रदान करनेवाला है। देवर्षि नारदके पूछनेपर ब्रह्माजीने उस सर्वश्रेष्ठ स्तोत्रका जैसा वर्णन किया था वैसा ही आप मुझसे सुनें।

नारदजीने पूछा—हे ब्रह्मन्! प्रतिदिन पूजाके समय जिस प्रकार अक्षय अव्यय, वर प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुकी स्तुति मुझे करनी चाहिये वह बतानेकी कृपा करें। वे सभी प्राणी धन्य हैं, उन सबका जन्म लेना सफल है, वे ही सब प्रकारका सुख प्राप्त करनेवाले हैं, उन्हीं सज्जनोंका जीवन साधक है, जो भगवान् अच्युत विष्णुकी सदैव स्तुति करते हैं।

ब्रह्माजीने कहा—हे मुने! मैं भगवान् वासुदेवका वह स्तोत्र जो प्राणियोंको मोक्ष देनेवाला है और जिस स्तोत्रके द्वारा पूजाकालमें सम्यक् स्तुति किये जानेपर भगवान् नारायण प्रसन्न होते हैं उसे आपको सुनाता हूँ, सुनें। वह स्तोत्र इस प्रकार है—

ॐ नमो [भगवते] वासुदेवाय नमः सर्वाघहारिणे।
नमो विशुद्धदेहाय नमो ज्ञानस्वरूपिणे॥
नमः सर्वसुरेशाय नमः श्रीवत्सधारिणे।
नमश्चर्मासिहस्ताय नमः पङ्कजमालिने॥
नमो विश्वप्रतिष्ठाय नमः पीताम्बराय च।
नमो नृसिंहरूपाय वैकुण्ठाय नमो नमः॥
नमः पङ्कजनाभाय नमः क्षीरोदशायिने।
नमः सहस्रशीर्षाय नमो नागाङ्गशायिने॥
नमः परशुहस्ताय नमः क्षत्रान्तकारिणे।
नमः सत्यप्रतिज्ञाय ह्यजिताय नमो नमः॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय नमश्चक्रधराय च।
नमः शिवाय सूक्ष्माय पुराणाय नमो नमः॥
नमो वामनरूपाय बलिराज्यापहारिणे।
नमो यज्ञवराहाय गोविन्दाय नमो नमः॥
नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर।
नमस्ते ज्ञानसद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक॥
नमस्ते परमाद्वैत नमस्ते पुरुषोत्तम।
नमस्ते विश्वकृद्देव नमस्ते विश्वभावन॥
नमस्ते स्ताद् विश्वनाथ नमस्ते विश्वकारण।
नमस्ते मधुदैत्यघ्न नमस्ते रावणान्तक॥
नमस्ते कंसकेशिघ्न नमस्ते कैटभार्दन।
नमस्ते शतपत्राक्ष नमस्ते गरुडध्वज॥
नमस्ते कालनेमिघ्न नमस्ते गरुडासन।
नमस्ते देवकीपुत्र नमस्ते वृष्णिनन्दन॥
नमस्ते रुक्मिणीकान्त नमस्तेऽदितिनन्दन।
नमस्ते गोकुलावास नमस्ते गोकुलप्रिय॥
जय गोपवपुः कृष्ण जय गोपीजनप्रिय।
जय गोवर्धनाधार जय गोकुलवर्धन॥
जय रावणवीरघ्न जय चाणूरनाशन।
जय वृष्णिकुलोद्योत जय कालीयमर्दन॥
जय सत्य जगत्साक्षिन् जय सर्वार्थसाधक।
जय वेदान्तविद्वेद्य जय सर्वद माधव॥
जय सर्वाश्रयाव्यक्त जय सर्वग माधव।
जय सूक्ष्म चिदानन्द जय चित्तनिरञ्जन॥
जयस्तेऽस्तु निरालम्ब जय शान्त सनातन।
जय नाथ जगत्पुष्ट (पूज्य) जय विष्णो नमोऽस्तु ते॥
त्वं गुरुस्त्वं हरे शिष्यस्त्वं दीक्षामन्त्रमण्डलम्।
त्वं न्यासमुद्रासमयास्त्वं च पुष्पादिसाधनम्॥
त्वमाधारस्त्वं ह्यनन्तस्त्वं कूर्मस्त्वं धराम्बुजम्।
धर्मज्ञानादयस्त्वं हि वेदिमण्डलशक्तयः॥
त्वं प्रभो छलभिद्रामस्त्वं पुनः स खरान्तकः।
त्वं ब्रह्मर्षिश्च देवस्त्वं विष्णुः सत्यपराक्रमः॥
त्वं नृसिंहः परानन्दो वराहस्त्वं धराधरः।
त्वं सुपर्णस्तथा चक्रं त्वं गदा शङ्ख एव च॥
त्वं श्रीः प्रभो त्वं पुष्टिस्त्वं त्वं माला देव शाश्वती।
श्रीवत्सः कौस्तुभस्त्वं हि शार्ङ्गी त्वं च तथेषुधिः॥
त्वं खड्गचर्मणा सार्धं त्वं दिक्पालास्तथा प्रभो।
त्वं वेधास्त्वं विधाता च त्वं यमस्त्वं हुताशनः॥
त्वं धनेशस्त्वमीशानस्त्वमिन्द्रस्त्वमपाम्पतिः।
त्वं रक्षोऽधिपतिः साध्यस्त्वं वायुस्त्वं निशाकरः॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ त्वं मरुद्गणाः।
त्वं दैत्या दानवा नागास्त्वं यक्षा राक्षसाः खगाः॥

गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा पितरस्त्वं महामराः ।
भूतानि विषयस्त्वं हि त्वमव्यक्तेन्द्रियाणि च॥
मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञस्त्वं हृदीश्वरः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः समित्कुशाः ॥
त्वं वेदी त्वं हरे दीक्षा त्वं यूपस्त्वं हुताशनः ।
त्वं पत्नी त्वं पुरोडाशस्त्वं शाला स्रुक् च त्वं स्रुवः ॥
ग्रावाणः सकलं त्वं हि सदस्यस्त्वं सदक्षिणः ।
त्वं शूर्पादिस्त्वं च ब्रह्मा मुसलोलूखले ध्रुवम्॥
त्वं होता यजमानस्त्वं त्वं धान्यं पशुयाजकः ।
त्वमध्वर्युस्त्वमुद्गाता त्वं यज्ञः पुरुषोत्तम ॥
दिक्पातालमहिव्योमद्यौस्त्वं नक्षत्रकारकः ।
देवतिर्यङ्मनुष्येषु जगदेतच्चराचरम्॥
यत्किंचिद् दृश्यते देव ब्रह्माण्डमखिलं जगत्।
तव रूपमिदं सर्वं सृष्ट्यर्थं सम्प्रकाशितम्॥
नाथयन्ते परं ब्रह्म देवैरपि दुरासदम्।
कस्त्वां जानाति विमलं योगगम्यमतीन्द्रियम्॥
अक्षयं पुरुषं नित्यमव्यक्तमजमव्ययम्।
प्रलयोत्पत्तिरहितं सर्वव्यापिनमीश्वरम्॥
सर्वज्ञं निर्गुणं शुद्धमानन्दमजरं परम्।
बोधरूपं ध्रुवं शान्तं पूर्णमद्वैतमक्षरम्॥
अवतारेषु या मूर्तिर्विदूरं देव दृश्यते।
परं भावमजानन्तस्त्वां भजन्ति दिवौकसः ॥
कथं त्वामीदृशं सूक्ष्मं शक्नोमि पुरुषोत्तम।
आराधयितुमीशानं मनोऽगम्यमगोचरम्॥
इह यन्मण्डले नाथ पूज्यते विधिवत् क्रमैः ।
पुष्पधूपादिभिर्यत्र तत्र सर्वा विभूतयः ॥
सङ्कर्षणादिभेदेन तव यत्पूजितं मया।
क्षन्तुमर्हसि तत्सर्वं यत्कृतं न कृतं मया॥
न शक्नोमि विभो सम्यक् कर्तुं पूजां यथोदिताम्।
यत्कृतं जपहोमादि असाध्यं पुरुषोत्तम॥
विनिष्पादयितुं भक्त्या अतस्त्वां क्षमयाम्यहम्।
दिवा रात्रौ च सन्ध्यायां सर्वावस्थासु चेष्टतः ॥
अचला तु हरे भक्तिस्तवाङ्घ्रियुगले मम।
शरीरे न (ण) तथा प्रीतिर्न च धर्मादिकेषु च॥
यथा त्वयि जगन्नाथ प्रीतिरात्यन्तिकी मम।
किं तेन न कृतं कर्म स्वर्गमोक्षादिसाधनम्॥
यस्य विष्णौ दृढा भक्तिः सर्वकामफलप्रदे।
पूजां कर्तुं तथा स्तोत्रं कः शक्नोति तवाच्युत॥
स्तुतं च पूजितं मेऽद्य तत् क्षमस्व नमोऽस्तु ते।

(२३४।५—४१ १/२)

मैं उन भगवान् वासुदेवको नमस्कार करता हूँ, जो सभी पापोंको हरण करनेवाले हैं। मैं विशुद्ध देहवाले ज्ञानस्वरूप, सभी देवताओंके स्वामी, श्रीवत्सधारी[1], ढाल और तलवार धारण करनेवाले, कमलकी माला धारण करनेवाले, जगत्में प्रतिष्ठित, पीताम्बरसे अलंकृत नृसिंहरूप और वैकुण्ठमूर्ति श्रीविष्णुको बारम्बार नमन करता हूँ।

मेरा उन देवको प्रणाम है, जिनकी नाभिमें कमल है, जो क्षीरसागरमें शयन करनेवाले हैं, जिनके हजारों सिर हैं, जो शेषशय्यापर शयन कर रहे हैं, जिनके हाथमें परशु है जो क्षत्रियोंके गर्वका अन्त करनेवाले हैं, जो सत्यप्रतिज्ञ हैं, जो अजित हैं जो त्रिभुवनके एकमात्र स्वामी और चक्रधारी हैं, उन कल्याणमूर्ति सूक्ष्मस्वरूप और पुराणपुरुषको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। दैत्यराज बलिके राज्यको दानमें ग्रहण करनेके लिये भगवान् वामन तथा पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये यज्ञवराहका अवतार ग्रहण करनेवाले गोविन्द श्रीहरिको मेरा बार-बार प्रणाम है।

हे परमानन्दस्वरूप! हे ज्ञान देनेवाले परम अक्षर ज्ञानस्वरूप! देव! परमाद्वैत! पुरुषोत्तम! विश्वकर्ता! विश्वभावन! विश्वनाथ! विश्वके कारणभूत! मधुदैत्यविनाशक! रावणहन्ता! कंस तथा केशीको मारनेवाले! कैटभ दैत्यको मारनेवाले! आपको नमस्कार है। हे पद्मलोचन! हे गरुडध्वज! कालनेमिके हन्ता! गरुडासन! देवकीपुत्र! वृष्णिनन्दन! रुक्मिणीकान्त! अदितिनन्दन! गोकुलवासी! हे गुरुकुलप्रिय आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है।

हे गोपवपु श्रीकृष्ण गोपीजनप्रिय गोवर्धनधारी! हे गोकुलवर्धन! आपकी जय हो। हे दैत्यराज रावणके संहारक! चाणूरदैत्य-विनाशक वृष्णिवंशके प्रकाशक! कालीयमर्दन! सत्यस्वरूप! संसारके साक्षी! सर्वार्थसाधक!

[1] १-भगवान् विष्णुके वक्ष स्थलपर विद्यमान चिह्नविशेष।

हे वेदान्तविदोंके वेद्य! सब कुछ देनेवाले! माधव! सबके आश्रय! अव्यक्त, सर्वत्र व्याप्त! लक्ष्मीकान्त (माधव), सूक्ष्म, चिदानन्द! चित्त निरञ्जन, निरालम्ब! हे शान्त! हे सनातन! हे नाथ! हे जगत्पूज्य भगवान् विष्णु! आपकी जय हो, जय हो, जय हो! आपको मेरा नमस्कार है।

हे हरे! आप ही गुरु हैं, आप ही शिष्य हैं। आप ही दीक्षामे प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र तथा मण्डल हैं। आप ही न्यास, मुद्रा ओर दीक्षा हैं। आप ही पूजामे प्रयुक्त होनेवाले पुष्पादिक साधन हैं। आप ही आधारशक्ति, अनन्त, कूर्म पृथिवी, पद्म, धर्म, ज्ञान, वेदी और पूजामण्डलकी शक्तियोंके स्वरूप हैं।

हे प्रभो! आप ही छलका भेदन करनेवाले हैं। आप ही खर-दूषणका संहार करनेवाले राम हैं। आप ही ब्रह्मर्षि देव, विष्णु, सत्यपराक्रम, नृसिंह, परानन्द, धराको धारण करनेवाले महावराह हैं।

हे प्रभो! आप ही सुपर्ण, शंख, चक्र, गदा हैं। हे देव! आप ही लक्ष्मी पुष्टि, शाश्वती माला, श्रीवत्स कौस्तुभ, शार्ङ्गी[1] तथा तूणीर (तरकस)-रूप हैं।

हे प्रभो! ढाल और खड्गसे युक्त आप इन्द्रादिक दिक्पाल देवता हैं। आप ही विधाता और आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही यम अग्नि कुबेर, ईशान, इन्द्र, वरुण, राक्षसोंके स्वामी, साध्य, वायु, चन्द्र, सूर्य, वसु, रुद्रगण, अश्विनीकुमार तथा मरुद्गण हैं। आप ही दैत्य दानव, नाग, यक्ष, राक्षस, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा सिद्ध पितृजन तथा देवगण हैं। आप ही पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत, शब्दादि विषयस्वरूप और अव्यक्त इन्द्रिय हैं। आप ही मन, बुद्धि एवं अहंकारतत्त्व हैं। आप ही क्षेत्रज्ञ तथा हृदयेश्वर हैं। आपकी जय हो, आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

हे हरे! आप ही यज्ञ वषट्कार, ॐकार (प्रणव), समिधा और कुश हैं। आप ही यज्ञवेदी, यज्ञीय दीक्षा यज्ञयूप अग्नि यजमानपत्नी पुरोडाश, यज्ञशाला स्रुक् स्रुव तथा सोमरस निकालनेके लिये प्रयुक्त पाषाणविशेष हैं। आप सब कुछ हैं। आप ही यज्ञकी सम्पन्नताके लिये दक्षिणायुक्त सदस्य और आप ही यज्ञके सम्पादनके लिये उपयोगी शूर्पादिक उपकरण ब्रह्मा (विशेष ऋत्विक्), मूसल तथा ओखली हैं। आप ही निश्चितरूपमें होता, यजमान, धान्य, पशु, याजक, अध्वर्यु, उद्गाता, यज्ञ और आप ही पुरुषोत्तम यज्ञभगवान् हैं। आपको मेरा नमस्कार है।

हे देव! आप ही दिशा, पाताल, पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग एवं नक्षत्रोंके जन्मदाता हैं। आप ही देव, तिर्यक् तथा मनुष्य आदि हैं। यह चराचर जगत् भी आप ही हैं। यह अखिल ब्रह्माण्ड और जगत् आपका ही स्वरूप है। इन सबको सृष्टिके लिये आपने स्वतः प्रकट किया है। हे परमब्रह्म! यह आपका स्वरूप उन देवताओंके भी ज्ञानसे परे है। इस संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जो निष्कलुष, योगगम्य, इन्द्रियातीत, अक्षय, पुराणपुरुष, नित्य, अव्यक्त, अजन्मा, अव्यय, प्रलय और उत्पत्तिसे रहित, सर्वव्यापक, ईश्वर, सर्वज्ञ, निर्गुण शुद्ध, परमानन्द अजर, बोधरूप अटल, शान्त, पूर्ण, अद्वैत तथा अक्षर ब्रह्म आपको जान सकता है। हे देव! अवतारोंमें आपके जिस स्वरूपका दर्शन होता है, उसके परम भावको बिना जाने हुए ही देवता लोग आपका भजन करते हैं। वे भी आपके मूलस्वरूपके दर्शनसे वञ्चित रह जाते हैं। हे पुरुषोत्तम! इस प्रकार आपका मनसे भी अगम्य जो अगोचर सूक्ष्मस्वरूप है, उसकी आराधना करनेमें क्या मैं समर्थ हो सकता हूँ?

हे नाथ! यहाँपर इस पूजामण्डलमें यथाविधि पुष्प-धूप आदिके द्वारा संकर्षण आदि नामभेदोंसे आपकी ही मैंने पूजा की है, ये सभी विभूतियाँ आपकी ही हैं। मैंने आपकी इस पूजामें जो कुछ किया है और जो कुछ नहीं किया है, वह सब आप क्षमा करें। हे विभो! यथोक्त रूपसे मैं आपकी सम्यक् पूजा नहीं कर सकता। जो मैंने जप-होमादि किया है भक्तिपूर्वक उस कार्यका निष्पादन करना मेरे लिये असाध्य है। इसलिये मैं आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। हे प्रभो! दिन, रात और संध्यामें तथा सभी अवस्थाओंमें मेरी चेष्टा-निष्ठा आपकी सेवाके अनुरूप रहे। हे हरे! आपके चरणयुगलमें मेरी एकनिष्ठ अचल भक्ति हो। हे नाथ! मेरी जैसी प्रीति अपने शरीरसे है, वैसी धर्मादि कार्योंमें नहीं। इसलिये हे जगन्नाथ! आप ऐसी कृपा करें कि आपमें मेरी आत्यन्तिकी प्रीति हो जाय। सभी फल देनेवाले भगवान् विष्णुकी जिसने दृढ भक्ति कर ली, उसने स्वर्ग और मोक्ष आदिक साधन किन कर्मोंका नहीं किया है? हे अच्युत! आपके पूजन और स्तुति करनेमें कौन

[1] 'शार्ङ्ग' नामका धनुष धारण करनेवाले।

समर्थ है? आज मैंने यथासामर्थ्य आपकी जा पूजा और स्तुति की है, उसकी अपूर्णताके लिये मुझे क्षमा प्रदान कर। मरा आपको प्रणाम है।

हे मुने! मैंने भली प्रकारसे आपको यह चक्रधर (अच्युत)-स्तोत्र सुना दिया हे। यदि आप परम वैष्णव पदकी इच्छा करते हैं तो परात्पर विष्णुकी भक्तिपूर्वक यह स्तुति कर।

पूजाके समय जो मनुष्य इस स्तोत्रके द्वारा जगद्गुरु भगवान् विष्णुकी स्तुति करता हे, वह शीघ्र ही ससारके बन्धनको काटकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। हे मुने! अन्य जो कोई भी पवित्र हाकर भक्तिपूर्वक प्रतिदिन तीना सध्याआमे श्रीविष्णुदेवका इस स्तोत्रके अनुसार भजन करता हे, वह अपने समस्त अभीष्टोकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्रका पाठ करनेसे पुत्र चाहनेवाला व्यक्ति पुत्र प्राप्त करता हे, सासारिक बन्धनमे मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवाला उससे मुक्त हो जाता है। इस स्तोत्रक पाठस रोगी रोगस छुटकारा प्राप्त कर लेता हे, निर्धन व्यक्ति धनवान् बन जाता हे और विद्यार्थी विद्या, भाग्य तथा कीर्ति प्राप्त करता है। जातिस्मरत्व (पूर्वजन्मके वृत्तान्तकी स्मृति) तथा और जो कुछ चित्तम इच्छा रखता है, भक्त उसे प्राप्त कर लेता है।

वह प्राणी धन्य है, सब कुछ जाननेवाला है, बुद्धिमान् है, साधु है, सभी सत्कर्मोका कर्ता हे, सत्यवादी है, पवित्र है और दाता है जो भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करता है। इस ससारम वे प्राणी सम्भाषण करने योग्य नहीं हैं और समस्त धर्मोसे बहिष्कृत हैं, जिनका कोई भी सत्कार्य भगवान् हरिके उद्देश्यस सम्पन्न नहीं हाता। वह व्यक्ति दुरात्मा है उसका मन और वचन शुद्ध नहीं है, जिसकी सब कुछ प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुम अचल भक्ति नहीं है।

मनुष्य सब सुख प्रदान करनवाले भगवान् हरिकी विधिवत् पूजा कर जो कुछ भी कामना करता है उसे प्राप्त कर लेता है। श्रद्धापूर्वक आराधना करनेपर पुरुषात्तम भगवान् सब कुछ प्रदान करते हैं। समस्त मुनि जिन देवका चिन्तन करते हैं वे ही शुद्ध ब्रह्म परमब्रह्म हैं। जो सभीके हृदयम विराजमान रहत हैं जो सब कुछ जानते हैं और जो सभी कृत्याके साक्षी हैं जा भय-मरण-विहान हैं नित्य-आनन्दस्वरूप हैं एसे अज अमृत ईश यासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं समस्त समारक स्वामी सुप्रसन्न शाश्वत, अति विमल, विशुद्ध, निर्गुण, आत्मस्वरूप और समस्त सुखाके मूल भगवान् नारायणकी भावपुष्पस पूजा करता हूँ। मरे हृदयकमलम सर्वसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् विष्णु सदा विराजमान रह—

सकलमुनिभिराद्यश्चिन्त्यते यो हि शुद्धो
निखिलहृदि निविष्टो वेत्ति य सर्वसाक्षी।
तमजममृतमीश वासुदेव नतोऽस्मि
भयमरणविहीन नित्यमानन्दरूपम्॥
निखिलभुवननाथ शाश्वत सुप्रसन्न-
मतिविमलविशुद्ध निर्गुण भावपुष्पै।
सुखमुदितसमस्त पूजयाम्यात्मभाव
विशतु हृदयपद्मे सर्वसाक्षी चिदात्मा॥
(२३४।६०-६१)

इस प्रकार मैंने आदि-अन्तसे रहित, परात्पर ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुके महा प्रभावका वर्णन किया। इसलिये मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको चाहिय कि वह भलीभाँति परमेश्वरका चिन्तन करे। इस ससारमें कौन ऐसा योगी है जो उन बोधगम्य पुराणपुरुष सूर्यके समान तेजस्वी विमल, विशुद्धात्मा श्रेष्ठ, अद्वितीय विष्णुका चिन्तन करके उनमें तदाकार नहीं हो जाता? जो मनुष्य इस स्तुतिका सर्वदा पाठ करता है वह श्रीविष्णुके समान ही प्रशान्तचित्त तथा पापसे रहित हो जाता है। जो व्यक्ति अर्थ धर्म काम और मोक्षरूप पुरुषार्थकी कामना करता है अथवा सम्पूर्ण सौख्य चाहता है, वह सब कुछ छोडकर सर्वश्रेष्ठ पुराणपुरुष वरण करने योग्य विष्णुकी शरणमें जाता है इसीलिये उसका प्रभाव सत्र फैल जाता है और वह विष्णुलोकको चला जाता है।

जो प्राणी विभु, सबके स्वामी विश्वको धारण करनेवाले विशुद्धात्मा, समस्त ससारके विनाशक हेतु, विमल भगवान् वासुदेवकी शरणमे अनासक्त-भावसे जाता है वह मोक्षपद प्राप्त करता है—

विभुं प्रभुं विश्वधर विशुद्ध-
मशेषससारविनाशहेतुम्।
यो वासुदेव विमलं प्रपन्न
स मोक्षमाप्नोति विमुक्तसङ्ग॥
(२३४।६५)

(अध्याय २३४)

ब्रह्मज्ञाननिरूपण तथा षडङ्गयोग

सूतजीने कहा—[हे शौनक!] अब मैं वेदान्त और साख्यसिद्धान्तके अनुसार ब्रह्मज्ञानका वर्णन करता हूँ।

'मैं ही ज्योतिर्मय परब्रह्मस्वरूप विष्णु हूँ'—ऐसा चिन्तन करते हुए 'सूर्य, हृदयाकाश और वह्निमे एक ही ज्योति तीन रूपमे स्थित है', ऐसा निश्चय करना चाहिये। जैसे गायोंके शरीरमे घृत रहनेपर भी घृत गायका बल प्रदान नहीं करता, परतु उसी घृतको निकालकर विधिके अनुसार गायोके निमित्त प्रयोग करनेपर वह घृत महाबलप्रद हो जाता है वैसे ही विष्णु सभी जीवोके शरीरमे विद्यमान रहनेपर भी बिना आराधनाके कल्याणकारी नहीं हो सकते। जो योगरूप वृक्षपर चढनेके इच्छुक हैं, उनके लिये कर्मज्ञान आवश्यक है, किंतु जो योगरूपी वृक्षपर आरूढ हो चुके हैं, उनके लिये त्याग (वैराग्य) एव ज्ञान ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जो शब्दादि विषयोको जाननेकी इच्छा करता है, उसमे राग-द्वेषादि प्रादुर्भूत हो जाते हैं, इसी कारण मनुष्य लोभ-मोह तथा क्रोधके वशीभूत होकर पापाचार करता है।

जिसके हाथ उपस्थ[१], उदर और वाक्य—ये चार सुसयत रहते हैं, वही बुद्धिमानोके द्वारा विप्र कहा जाता है। जो दूसरेके द्रव्यको ग्रहण नहीं करते हिंसा नहीं करते, जुएमे अनुरक्त नहीं रहते, वास्तवमे उन्हींके दोनो हाथ सुसयत रहते हैं। जो दूसरेकी स्त्रीके प्रति कामका भाव नहीं रखता उसीकी उपस्थेन्द्रिय सुसयत है। जो लोभरहित होकर परिमित भोजन करते हैं, उन्हींके उदरको सयत कहा जाता है। जो हित-परिमित और सत्य वाक्य बोलता है, उसीकी वाणी सयत कही जाती है।

जिसके हाथ आदि सयत रहते हैं उसके लिये तपस्या या यज्ञादिका कोई प्रयोजन नहीं है अर्थात् तपस्या यज्ञ आदि तभी सफल होते हैं, जब हाथ उपस्थ, उदर एव वाक्य सयत हो।

मन बुद्धि और इन्द्रियोका आत्यन्तिक ऐक्य अर्थात् सदा ध्येयतत्त्वमे लगा रहना ध्यान कहलाता है। वह ध्यान दो प्रकारका होता है—सबीज[२] तथा निर्बीज[३]।

चिन्तनकी मूल आधार-शक्ति 'बुद्धि' भौंहोके मध्यमे रहती है। इसे यदि जीव विषयोमे लगाये रहता है तो यही जाग्रत्-अवस्था होती है। जब जीवकी इन्द्रियाँ शान्त हो, केवल मन चञ्चल हो और इसी कारण बाहरी एव भीतरी विषयोको केवल स्वप्नमे जीव देखता रहे तो यही स्वप्नावस्था है। जब मन हृदयमे स्थित हो तथा तमोगुणसे मोहित होनेके कारण कुछ भी स्मरण न कर सके, तब सुषुप्ति-अवस्था समझनी चाहिये।

जो जितेन्द्रिय होता है उसको जाग्रत्-अवस्थामे तन्द्रा, मोह और भ्रम नहीं उत्पन्न होते। वह शब्दार्थादि विषयोमे आसक्त नहीं होता।

ज्ञानी इन्द्रियो और मनको विषयोसे खींचकर बुद्धिके द्वारा अहकारको एव प्रकृतिके द्वारा बुद्धिका सयत कर और चित्-शक्तिके द्वारा प्रकृतिको भी सयत कर केवल आत्मरूपमे अवस्थित रहता है। इस स्थितिमे ज्ञानी मनसे स्वप्रकाश आत्मा (परमात्मा)-को देख सकता है। आत्मा स्वप्रकाश है, ज्ञेय है, ज्ञाता है और ज्ञानाधिकरण है। चिद्रूप अमृत शुद्ध निष्क्रिय सर्वव्यापी शिवप्रद आत्माको जानकर मनुष्य तुरीय[४]-अवस्थामे आ जाता है इसमे सशय नहीं है।

जीवका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है। यह मुक्ति जीवको तभी प्राप्त होती है, जब वह पुर्यष्टक एव त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका परित्याग कर देता है। यह पुर्यष्टक एक 'कमल' के रूपमे माना गया है। ससारावस्थामे जीव इसी कमलरूपी पुर्यष्टक की कर्णिकामे स्थित रहता है। तीनो गुणो (सत्त्व, रज एव तम)-की साम्यावस्थारूप प्रकृति ही पुर्यष्टकरूपी कमलकी कर्णिका है। इस पुर्यष्टकरूप कमलके आठ पत्र (दल) हैं। ये हैं—शब्द स्पर्श, रूप रस, गन्ध सत्त्व, रज तथा तम। इस प्रतीकात्मक वर्णनका निष्कर्ष यह है कि जीवका मुक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रकृतिसे स्वयको अलग करना अनिवार्य है इसके हेतु शब्द आदि विषयोके प्रति अनासक्त होना होगा।

प्राणायाम जप प्रत्याहार, धारणा, समाधि और ध्यान—ये छ योगके साधन हैं।

इन्द्रियसयमसे पापक्षय और पापक्षयसे देवप्रीति सुलभ होती है। देवप्रीति मुक्ति एव मुक्तिसाधनकी ओर उन्मुख

१-मूत्रेन्द्रिय। २-अविद्या आदि क्लेश ही बीज हैं। इनका अनुभव होते रहनेपर सबीज ध्यान कहा जाता है। ३-क्लेश रूप बीजका अनुभव न हो तो निर्बीज ध्यान कहा जाता है। ४-परम शान्त शिवस्वरूप अद्वैतावस्था।

होनेके लिये भी प्रथम एव अनिवार्य साधन है। योगका मुख्यतम साधन हे प्राणायाम। यह दा प्रकारका है—गर्भ ओर अगर्भ। जप एव ध्यानयुक्त जा प्राणायाम है, वही गर्भ प्राणायाम हे और इससे अतिरिक्त होनेपर अगर्भ प्राणायाम कहा जाता है। जो प्राणायाम छत्तीस मात्रासे युक्त रहता है वही श्रेष्ठ हे, जा चाबीस मात्रासे युक्त रहता है वह मध्यम हे ओर जो प्राणायाम बारह[1] मात्रासे युक्त रहता ह वह निम्न है। सदा ॐकारका जप कर प्राणायाम करे। ॐकार परब्रह्मका वाचक ह। इस ब्रह्मवाचक ॐकारका परिज्ञान होनेपर वाच्य ब्रह्म प्रसन्न हो जाता है।

'ॐ नमो विष्णवे'—इस षडक्षर और द्वादशाक्षर गायत्रीका जप करना चाहिये। सभी इन्द्रियाकी प्रवृत्ति सासारिक विषयाकी ओर रहती है। मनके द्वारा इन प्रवृत्तियोकी निवृत्तिको ही प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियाको अपने विषयासे समाहरण कर मनको बुद्धिके साथ प्रत्याहारमे स्थित रखते हुए बारह बार प्राणायाम करनेम जितना समय लगता है, उतने समयतक ब्रह्मम मनको निविष्ट करना ही द्वादशधारणात्मक ध्यान है—ऐसा ब्रह्माने कहा है। नियतरूपसे ब्रह्माकारवृत्तिम जो सतुष्टिका अनुभव होता है, उसीको समाधि कहा जाता है। ध्यान करते-करते यदि मन चञ्चल नहीं होता है सदा ध्यानम ही प्रवृत्ति रहती है अर्थात् अभीष्ट प्राप्तितक ध्यानसे निवृत्ति नहीं होती तो इसीका नाम धारणा है। मन यदि ध्येयतत्त्वम ही आसक्त रहता है अर्थात् ध्येयतत्त्वका हा चिन्तन सदा हाता रहता है अन्य किसी भी पदार्थका भान नहीं होता तो इसीको ध्यान कहा जाता है।

ध्यानपरायण मुनिगण ध्यय पदार्थका चिन्तन करत-करत जब मन उसी ध्ययम निश्चल हो जाता है तो इसे हो परम ध्यान कहते हैं। ध्यान करते-करते जब सर्वत्र ध्ययपदार्थ ही दिखायी दन लग ध्याता भी ध्येयमय प्रतीत हो और किसी प्रकारका द्वैतज्ञान नहीं रह ता इस अवस्थाको समाधि कहा जाता है। जिसका मन सकल्परहित हाकर इन्द्रियाके विषयचिन्तनस विरत हो जाता है तथा ब्रह्मम लान हा जाता है यही समाधिम स्थित कहा जाता है। जिन योगाका मन आत्माम अवस्थित परमात्माका ध्यान करते-करते तन्मय हा जाता है वह योगी समाधिस्थ कहा जाता है। चित्तकी अस्थिरता, भ्रान्ति, दौर्मनस्य और प्रमाद—ये सभी योगियोके दोष कहे गय हैं, ये योगमें विघ्नकारक हैं।

मनके स्थिर होनेक लिये प्रथम ध्येयके स्थूलस्वरूपका चिन्तन करे, इसके बाद मनके निश्चल होनेपर तेज स्वरूप परमात्माके अनुरक्त होकर स्थिर हो जाना चाहिये। जगत्में परमात्माके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है वह परमात्मा ही विश्वरूप है—इस प्रकारका निश्चय कर परमात्मासे अतिरिक्त सभी पदार्थोको असत् मानकर उनका परित्याग कर देना चाहिये। हृदय-पद्मम स्थित ॐकाररूपी व्यापक परमब्रह्मका ध्यान करना चाहिये। क्षेत्र ओर क्षेत्रज्ञस रहित तीन मात्रासे युक्त ॐकारका जप करना चाहिये। प्रथम अपने हृदयमें ॐकारस्वरूप प्रधान पुरुषका ध्यान करे। इसके बाद उसके ऊपर कृष्णवर्ण, रक्तवर्ण तथा श्वेतवर्णवाले तमोगुण रजागुण और सत्त्वगुणक तीन मण्डलोका ध्यान कर उनमें जीवात्मा पुरुषका ध्यान करे। मण्डलके ऊपर ऐश्वर्य आदि आठ गुणासे युक्त अष्टदल कमलकी भावना की जाती है।

इस कमलकी कर्णिका ज्ञान है, केसर विज्ञान है, नाल वैराग्य है एव इसका कन्द वैष्णव धर्म है। मुक्तिसाधक व्यक्ति इस हृत्पद्मकी कर्णिकाम स्थित प्रणवरूप ब्रह्मका ध्यान, चतन निश्चल तथा व्यापक रूपम करे। इस ॐकारस्वरूप ब्रह्मका ध्यान करते-करते यदि कोई प्राणोंका परित्याग कर देता है ता वह ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करता है। योगी देहगत पद्मके मध्यम हरिको बैठाकर भक्तिभावने उनका ध्यान करे। कुछ लोग ध्यान-रूपी चक्षुसे अन्तमें आत्मा (परमात्मा)-को देखत हैं। साङ्ख्यदर्शन वाले प्रकृति- पुरुषक विवकसे तथा योगवेत्ता योगके प्रभावसे आत्मदर्शन करते हैं। आत्मा ज्ञानरूप है। वास्तवमें ज्ञानका ही माहात्म्य है। ज्ञान ही ब्रह्मका प्रकाशक है और ज्ञान ही भवबन्धनको काटनवाला है। इसलिये ध्यान-साधनमें एकचित्तता हा प्रधान योग है। यही योग योगियोको मुक्ति प्रदान करता है इसम सशय नहीं है। यह एकचित्तता योग आत्मदर्शनम ही पर्यवसित है।

जा इन्द्रियादिका जीत कर ज्ञानम प्रदीप्त हो जाता है परमात्माम अवस्थित इसा योगीको मुक्त कहा जाता है। आसन ध्यान आदिकी विधियाँ योगकी साधक नहीं होती

[1] इसका विशेष [illegible] समझनेमें स्पष्ट होगा।

प्रत्युत ये तो योगसिद्धिमे विलम्ब करनेवाली हैं। ये सब विधियाँ साधनके विस्तार मात्र हैं। शिशुपालने स्मरणाभ्यासके प्रभावसे सिद्धि-लाभ किया था। योगाभ्यास करनेवाले योगीजन आत्मासे आत्माको देखते हैं। योगीजन सभी प्राणियोमे करुणाभाव, विषयोके प्रति विद्वेष एव शिश्न और उदरकी परायणताका परित्याग करते हुए मुक्ति प्राप्त करते हैं। जब योगी मनुष्य इन्द्रियोसे इन्द्रियोके विषयका अनुभव नहीं करता, तब काष्ठकी भाँति सुख, दु खके अनुभवसे अतीत होकर ब्रह्मम लीन हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

मेधावी साधक सभी प्रकारके वर्णभेद, सभी प्रकारके ऐश्वर्यभेद एव सभी अशुभ तथा पापोको ध्यानाग्निके द्वारा भस्मसात् कर परमगतिको प्राप्त करता है। जैसे काष्ठसे काष्ठमे घर्षण करनेसे अग्निका दर्शन होता है, वैसे ही ध्यानसे परमात्मस्वरूप हरिका दर्शन किया जा सकता है। जब ब्रह्म और परमात्मस्वरूप हरिका दर्शन किया जाता है, जब ब्रह्म और आत्माके एकत्वका ज्ञान होता है तभी योगका उत्कर्ष जानना चाहिये। किसी भी बाह्य उपायसे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती, मुक्तिकी प्राप्ति आभ्यन्तरिक यम-नियम आदि उपायोके द्वारा ही होती है। साख्यज्ञान, योगाभ्यास और वेदान्तादिके श्रवणमे जो आत्माका प्रत्यक्ष होता है, उसे मुक्ति कहा जाता है। मुक्ति होनेपर अनात्मामे आत्माका और असत्-पदार्थमे सत्-तत्त्वका दर्शन होता है। (अध्याय २३५)

आत्मज्ञाननिरूपण

श्रीभगवान् बोले—हे नारद! अब मैं आत्मज्ञानका तात्त्विक वर्णन करूँगा, सुनिये।

अद्वैत तत्त्व ही साख्य है और उसमे एकचित्तता ही योग है। जो अद्वैत तत्त्व-योगसे सम्पन्न हैं, वे भवबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। अद्वैत तत्त्वका ज्ञान होनेपर अतीत वर्तमान और भविष्यके सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। ज्ञानी व्यक्ति सद्विचाररूपी कुल्हाडीके द्वारा ससाररूपी वृक्षको काटकर ज्ञान-वैराग्यरूपी तीर्थके द्वारा वैष्णव पद प्राप्त करता है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—यह तीन प्रकारकी अवस्था ही माया है जो ससारका मूल है। यह माया जबतक रहती है, तबतक ससार ही सत्यमे अवगत होता है। वास्तवमे शाश्वत अद्वैत तत्त्वमे ही सब कुछ प्रविष्ट है। अद्वैत तत्त्व ही परब्रह्म है। यह परब्रह्म नाम-रूप तथा क्रियासे रहित है। यह ब्रह्म ही इस जगत्की सृष्टि कर स्वय उसीमें प्रविष्ट हो जाता है।

मैं मायातीत चित्पुरुषको जानता हूँ और मैं भी आत्मस्वरूप हूँ। इस प्रकारका ज्ञान ही मुक्तिका मार्ग है। मोक्ष-लाभके लिये इससे अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं है।[1] श्रवण मनन और ध्यान—ये सभी ज्ञानके साधन हैं। यज्ञ दान तपस्या वेदाध्ययन और तीर्थसेवामात्रसे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है। मुक्ति किसी मतसे दान ध्यानसे तथा किसीके मतसे पूजादि कर्मोंसे होती है। 'कर्म करो' और 'कर्मका त्याग करो'—ये दोनो वचन वेदमे मिलते हैं। निष्कामभावसे यज्ञादि कर्म मुक्तिके लिये होते हैं, क्योकि निष्कामभावसे अनुष्ठित यज्ञादि अन्त करणकी शुद्धिके साधन हैं। ज्ञान प्राप्त होनेपर एक ही जन्ममे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। द्वैत (भेद)-भाव रखनेपर तो मुक्ति सम्भव ही नहीं है। कुयोगी भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। किसी कारण योगभ्रष्ट होनेपर योगियोके कुलमे उत्पत्ति हो सकती है। ऐसी स्थितिमे मुक्ति सम्भव है।

कर्मोंसे भवबन्धन और ज्ञान होनेसे जीवकी ससारसे मुक्ति हो जाती है, इसलिये आत्मज्ञानका आश्रय करना चाहिये। जो आत्मज्ञानसे भिन्न ज्ञान हैं, उनको भी अज्ञान कहा जाता है। जब हृदयमे स्थित सभी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब जीव जीवनकालमे ही अमरत्वकी प्राप्ति कर लेता है, इसमे सशय नहीं है—

> यदा सर्वे विमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिता ।
> तदाऽमृतत्वमाप्नोति जीवन्नेव न सशय ॥
>
> (२३६। १२)

व्यापक होनेसे ब्रह्म कैसे जाता है, कौन जाता है और कहाँ जाता है? ऐसे प्रश्नोके लिये कोई अवसर ही नहीं है। अनन्त होनेके कारण उसका कोई देश नहीं है, अत किसी भी रूपमे उसकी गति नहीं हो सकती। परब्रह्म अद्वय है, अत उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। वह

[1] वेदाहमेत पुरुष चिद्रूप तमस परम्। सोऽहमस्मीति मोक्षाय नान्य पन्था विमुक्तये॥ (२३६। ६)

ज्ञानस्वरूप ह, अत उसम जडता कैसे हा सकती है? वस्तुत ब्रह्म आकाशके समान ह, इसलिये उसकी गति, अगति और स्थिति आदिका विचार कैस हो सकता है? जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्था मायाके द्वारा कल्पित हैं अर्थात् मिथ्या हे।

वस्तुमात्रका सार ब्रह्म ही ह। तेजोरूप ब्रह्मको एक अखण्ड परम पुण्यरूप समझना चाहिये। जस अपनी आत्मा सबको प्रिय ह, वैसे ही ब्रह्म सबको प्रिय है क्योकि आत्मा ही ब्रह्म ह। हे महामुने! सभी तत्त्वज्ञ ज्ञानको सर्वोच्च मानते हैं, इसलिये चित्तका आलम्बन बोधस्वरूप आत्मा ही है। यह आत्मविज्ञान है। यह पूर्ण है। शाश्वत है। जागते, सोते तथा सुषुप्तावस्थाम प्राप्त होनेवाला सुख पूर्ण सुखरूप ब्रह्मका ही एक क्षुद्र अश समझना चाहिये। जैसे एक मृण्मय वस्तुका (ज्ञान होनेपर) समस्त मृण्मय पदार्थ जान लिया जाता ह,

सर्वत्र व्याप्त शाश्वत तत्त्व ज्ञानस्वरूप ब्रह्म यदि सदा सर्वत्र सभीके हृदयम विद्यमान नहीं है तो विस्मृत अर्थका स्मरण नहीं होना चाहिय पर हाता है। एसी स्थितिमे यह स्मरण किसको हाता हे निश्चित ही चेतन तत्त्वको ही होता है। इसे ही आत्मा ब्रह्म परमात्मा आदिके रूपम स्वीकार किया गया है। चेतनतत्त्वकी सत्ता—अणु अशरीरी अथवा परम व्यापक तत्त्व—किसी भी रूपम स्वीकार किया जाय, पर स्वीकार करना ही है, अन्यथा प्राणीको सुख-दु खका अनुभव नहा हा सकगा। चेतनतत्त्व प्राणिमात्रके हृदयम साक्षीरूपस सदा विद्यमान ह, इसीलिय यह उसकी प्रत्यक चेष्टाका जानता रहता है और इस जानकारीका फल यह है कि प्राणीके शुभाशुभ कर्मका फल यथासमय मिलता रहता ह। यह ब्रह्मतत्त्व सत्य ज्ञान एव आनन्दरूप है तथा अनन्त ह। सत्य ज्ञानसे पृथक् नहीं होता अनन्ततासे पृथक् आनन्द नहीं है। वास्तवम प्रत्यक जीव सत्य आनन्द एव ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही है। स्वयको ब्रह्मरूपम जानकर जीव अपने वास्तविक स्वरूप सर्वज्ञताको प्राप्त कर लेता है। जैस एक हेममणि (पारस)-स अनन्त लौहराशि हेममय हा जाता है उसी प्रकार ईश (ब्रह्म)-का ज्ञान हानपर ज्ञानीके द्वारा सकल विश्व जान लिया जाता है जैस अन्धकारदायक कारण रम्भा अपने सत्यस्वरूपम नहीं दिखायी देती वैस ही स्थामहम ग्रस्त जावको आत्माका दर्शन नहीं होता। जिस प्रकार प्रत्यक्ष होनेपर भी द्रव्य दृष्टि-दोषके कारण सही नहीं दिखायी देता है, अपितु वह कुरूप प्रतीत होता है। उसी प्रकार आकाशकी सरूपताके कारण वह आत्मतत्त्व असत्य एव पृथक् प्रतीत होता है। जैसे रज्जुम सर्पका और सीपमें रजतका आभास होता है और मृगमरीचिकाम जलका आभास होता है। उसी प्रकार विष्णुमे जगत्की प्रतीति होती है।

जैसे कोई द्विज ग्रहाविष्ट होनेके कारण 'मैं शूद्र हूँ' ऐसा मानता है और ग्रह-बाधा नष्ट होनेके पश्चात् वही व्यक्ति पुन ध्यान करता हुआ अपनको ब्राह्मण मानता है, वैसे ही मायासे आच्छन्न जीव यह 'मैं ही हूँ' ऐसा स्वीकार करता है। मायारूपी अज्ञानके समाप्त हो जानेपर पुन वह अपने स्वरूपमे 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसा मान लेता है। जैसे ग्रहके नाश हो जानेपर उसको माननेवाला प्राणी उसे क्रूर ग्रहके रूपम देखता है, वैसे ही अपने स्वरूपका दर्शन होनेपर मायाके अभावमे उसकी मायिक पदार्थोंसे विरक्ति हो जाती है।

जैसे ससार-चक्र अनादि है, वैसे ही उसके मूल भगवान्‌की माया भी अनादि है। इस मायाके सत् और असत् दो रूप हैं। व्यवहार-कालम वह सत् और परमार्थत असत् है। मायाके कारण ही अज परमात्मा भी अपनी मायाके आवेशसे जगत्के रूपमे परिणत होता है। मायाकी इच्छासे ही पति-पत्नी आदिके रूपम यह सम्पूर्ण जगत् कल्पित हे। अट्ठाईस तत्त्वोका यह त्रिगुणात्मक जगत् और चौरासी लाख योनियोंके नर और नारियोंकी आकृति मायाके द्वारा ही रचित है। त्रिगुणात्मक अट्ठाईस तत्त्वोंके रूपमे मायाके द्वारा ही खण्डश विश्वकी सृष्टि होती है। वस्तुत नाम रूप और क्रिया आदि जगत्की सत्ता मध्यमें ही है आदि और अन्तम नहीं। इसलिये व्यवहार-कालमें सत्य प्रतीत होनेपर भी परमार्थत यह मिथ्या है। जिस प्रकार स्वप्नावस्थाम रथ आदिकी सत्ता प्रतीत होती है, किंतु वहाँ उनका अस्तित्व रहता नहीं है। उसी प्रकार जाग्रत् अवस्थाम भी वे समृद्धियाँ उस प्राणीके पास नहीं रहतीं। परमार्थत जैसे जाग्रत्-अवस्था और स्वप्न-अवस्थाके पदार्थोंका भावाभाव प्रतीत होता है वैसे ही मायिक पदार्थ भी व्यवहार और परमार्थम सत्-असत् हैं। स्वप्न तथा जागृतिकी स्थितिम एसा ही इस परम ब्रह्मका अस्तित्व है किंतु सुषुप्तावस्थाम प्राणीका चित्त निश्चल होता है। सभी ज्ञानेन्द्रियाँ एव कर्मेन्द्रियोंके साथ मन उस आत्माके साथ

एकाकारकी स्थितिमें रहता है। अतः उस समय सत्-असत्का कुछ भी ज्ञान प्राणीको नहीं होता। इसी निश्चेष्टताको अचल और अद्वैत पद कहते हैं। ऐसा ही उस ब्रह्मका स्वरूप है।

मायाका अस्तित्व अविचारके कारण ही सिद्ध होता है। किंतु विचार करनेपर वह अस्तित्वहीन है। यह ब्रह्मके समान निरन्तर विद्यमान रहती है, ऐसा नहीं है। यह तो मात्र कल्पना है। इस प्रकार उस असत् मायाका आत्मसम्बन्धके कारण सत्यत्व सिद्ध होता है। जो सत्य होता है उसीका अस्तित्व माना जाता है और अस्तित्वके कारण ही पदार्थकी सत्यता स्वीकार की जाती है।

हे नारद! मैं अनन्त हूँ। मेरा ज्ञान भी अनन्त है। मैं अपनेमें पूर्ण हूँ। आत्माके द्वारा अनुभूत अन्त सुख मैं ही हूँ। सात्त्विक, राजस और तामस गुणसे सम्बन्धित भावोंसे मैं नित्य परे रहता हूँ। मेरी उत्पत्ति अशुद्धतासे नहीं हुई है। मैं शुद्ध हूँ। मैं तो अमृतस्वरूप हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। मैं प्राणियोंके हृदयमें प्रज्वलित वह ज्योति हूँ, जो दीपकके समान उनके अज्ञानरूपी अन्धकारको विनष्ट करती रहती है। यह आत्मज्ञानकी स्थिति है।

(अध्याय २३६)

गीतासार

श्रीभगवान्‌ने कहा—[हे नारद!] अब मैं गीताका सारतत्त्व कहूँगा, जिसे मैंने पूर्वमें अर्जुनको सुनाया था।

अष्टाङ्गयोगयुक्त और वेदान्तपारङ्गत मनुष्योंके लिये आत्म-कल्याण सम्भव है। आत्म-कल्याण ही परम कल्याण है, उस आत्मज्ञानसे उत्कृष्ट और कुछ भी लाभ नहीं है। आत्मा देहरहित, रूप आदिसे हीन, इन्द्रियोंसे अतीत है। मैं आत्मा हूँ, संसारादि सम्बन्धके कारण मुझे किसी प्रकारका दुःख नहीं है। धूमरहित प्रज्वलित अग्निशिखा जैसे प्रकाश प्राप्त करती है, वैसे ही आत्मा स्वयं प्रदीप्त रहता है। जैसे आकाशमें विद्युत्-अग्निका प्रकाश होता है वैसे ही हृदयमें आत्माके द्वारा आत्मा प्रकाशित होता है। श्रोत्र आदि इन्द्रियोंको किसी प्रकारका ज्ञान नहीं है। वे स्वयंको भी नहीं जान सकती हैं परंतु सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, क्षेत्रज्ञ आत्मा ही इन्द्रियोंका दर्शन करता है। जब आत्मा उज्ज्वल प्रदीपके समान हृदयपटलपर प्रकाशित होता है तब पुरुषोंका पापकर्म नष्ट हो जाता है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

जैसे दर्पणमें दृष्टि डालनेपर अपने द्वारा अपनेको देख सकते हैं, वैसे ही आत्मामें दृष्टि करनेपर इन्द्रियोंको, इन्द्रियोंके विषयोंका तथा पञ्चमहाभूतोंका दर्शन किया जा सकता है। मन, बुद्धि, अहंकार और अव्यक्त पुरुष—इन सभीके ज्ञानके द्वारा संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाना चाहिये। सभी इन्द्रियोंका मनमें अभिनिवेश कर उस मनको अहंकारमें स्थापित करना चाहिये। उस अहंकारको बुद्धिमें, बुद्धिको प्रकृतिमें, प्रकृतिको पुरुषमें एवं पुरुषको परब्रह्ममें विलीन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे ही 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकारकी ज्ञान-ज्योतिका प्रकाश होता है। इससे वह पुरुष मुक्त हो जाता है। नौ द्वारोंसे युक्त, तीनों गुणोंके आश्रय तथा आकाश आदि पञ्चभूतात्मक और आत्मासे अधिष्ठित इस शरीरको जो ज्ञानी व्यक्ति जान लेता है, वही श्रेष्ठ है और वही क्रान्तदर्शी है। सौ अश्वमेध या हजारों वाजपेय यज्ञ इस ज्ञानयज्ञके सोलहवें अंशके फलको भी प्रदान नहीं कर सकते। (अध्याय २३७)

गीतासार

श्रीभगवान्‌ने पुनः कहा—हे अर्जुन! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा तथा समाधि—यह अष्टाङ्गयोग मुक्तिके लिये कहा गया है। शरीर, मन और वाणीको सदा सभी प्राणियोंकी हिंसासे निवृत्त रखना चाहिये क्योंकि अहिंसा ही परम धर्म है और उसीसे परम सुख मिलता है—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा॥
हिंसाविरामको धर्मो ह्यहिंसा परमं सुखम्।

(२३८।२-३)

सदा सत्य और प्रिय वचन बोलना चाहिये। कभी भी अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये, प्रिय-मिथ्या वचन भी नहीं बोलना चाहिये, यही सनातनधर्म है—

सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रिय च नानृत ब्रूयादेष धर्म सनातन ॥
(२३८।४)

चोरीसे या बलपूर्वक दूसरके द्रव्यका अपहरण करना स्तेय है। इसके विपरीत आचरण करना अर्थात् कभी भी चोरी न करना अस्तेय है। स्तेय-कार्य (चोरी) कभी भी नहीं करना चाहिय, क्योकि अस्तेय (चोरी न करना) ही धर्मका साधन हैं—

यच्च द्रव्यापहरण चौर्याद्वाथ बलेन वा।
स्तय तस्यानाचरणमस्तेय धर्मसाधनम्॥
(२३८।५)

सदा और सभी अवस्थाम कर्म मन और वाणीक द्वारा मथुनका परित्याग करना चाहिय। इसीको ब्रह्मचर्य कहा जाता है। आपत्तिकालम भी इच्छापूर्वक द्रव्यका ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है। प्रयत्नपूर्वक परिग्रहका परित्याग करना चाहिये। शौच दो प्रकारके हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। मृत्तिका और जल आदिके द्वारा बाह्य एव भाव-शुद्धिक द्वारा आभ्यन्तर शौच होता है। यदृच्छालाभ अर्थात् अनायास-प्राप्तिसे सतुष्ट होना ही सतोष ह। यह सतोष ही सभी प्रकारके सुखका साधन है। मन और इन्द्रियाकी जो एकाग्रता है, वही परम तप ह। कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रताक द्वारा दहका शोषण भी तपस्या है। पुरुषाकी सत्त्वशुद्धिक लिय जो वदान्त, शतरुद्रीयका पाठ और 'ॐ'कार आदिका जप है, पण्डितजन उसे स्वाध्याय कहते हैं।

कर्म, मन और वाणीसे हरिकी स्तुति नाम-स्मरण पूजादि कार्य और हरिके प्रति अनिश्चला भक्तिका ही ईश्वरका चिन्तन कहा जाता है। स्वस्तिकासन पद्मासन और अर्धासन आदि आसन कह गये हैं। अपन शरीरगत वायुका नाम प्राण है। उस वायुके निरोधको प्राणायाम कहा जाता है। हे पाण्डव! इन्द्रियाँ असद्‌विषयाम विचरण करती हैं। उनको विषयासे निवारित करना चाहिय। साधुगण इस प्रकारके इन्द्रिय-निरोधका प्रत्याहार कहते हैं। मूर्त और अमूर्त ब्रह्म-चिन्तनको ध्यान कहा जाता है। योगारम्भक समय मूर्तिमान् और अमूर्तरूपमे हरिका ध्यान करना चाहिये।

तजोमण्डलके मध्यम शख चक्र, गदा तथा पद्मधारी चतुर्भुज—कौस्तुभचिह्नसे विभूषित वनमाली, वायुस्वरूप जो ब्रह्म अधिष्ठित है 'मैं वही हूँ'। इस प्रकार मनको लय करके श्रीहरिको धारण करना ही धारणा है। 'मैं ही ब्रह्म हूँ' और 'ब्रह्म ही मैं हूँ' इस प्रकार देशालम्बन-रहित अहं और ब्रह्म पदार्थका तादात्म्य रूप ही समाधि है।
(अध्याय २३८)

ब्रह्मगीतासार

ब्रह्माजीने कहा—[हे नारद!] अब मैं ब्रह्मगीतासारका वर्णन करूँगा जिसे जानकर ससारसे मुक्ति हो जाती हे।

'में ब्रह्म हूँ' इस वाक्यार्थका ज्ञान होनेसे मनुष्याको मोक्षकी प्राप्ति होती है। मैं और ब्रह्म—इन दो पदाके अर्थका ज्ञान होनेपर वाक्यका ज्ञान होता ह। विद्वानोने इन पदाके अर्थका वाच्य तथा लक्ष्य-रूपमे दो प्रकारका स्वाकार किया है। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थस मिला-जुला वाक्यार्थ ही शुद्ध वाक्यार्थ ह। वेदाक द्वारा अह शब्दसे एक प्राणपिण्डात्मक और दूसरा प्रत्यग्-रूप आत्मा गृहीत होता ह। अव्ययानन्द चैतन्य परोक्षज्ञानक सहित है और प्राण-पिण्डात्मक चैतन्य उसका दूसरा पक्ष ह। अह पदकी लक्षणासे आत्माका अल्पज्ञत्वादि दोषरहित शुद्ध आत्मा अर्थ होता है।

जो प्राणपिण्डात्मक अर्थ है वह उसका दूसरा भाग है। इसम परोक्ष अर्थात् लक्ष्यार्थका देखनेक पश्चात् जैसे उस अर्थकी स्थिति आती है। वैसे ही लक्ष्यार्थको देखनेके पश्चात् उस अर्थकी स्थिति आती हे। वैसे ही ब्रह्म पदसे प्राणपिण्डात्मक अर्थकी प्रतीति होती हे। निष्ठा तथा परोक्षता आदि अर्थ-प्रतीतिके जो गुण हैं, उनका परित्याग करके ऐसा अर्थ किया जाता है। अद्वयानन्द चैतन्य इस अर्थकी प्राप्ति तो लक्ष्यार्थ ब्रह्मपदसे ही हो जाती है। अद्वयानन्द चैतन्यको लक्ष्यार्थ रूपम देखकर 'मैं ब्रह्म हूँ'—इन दोनो पदार्थोंकी सिद्धि 'ब्रह्म मे हूँ' और 'मै ब्रह्म हूँ'—इन दो स्थितियोम होती ह। 'मै ब्रह्म हूँ' इस वाक्यसे स्वानुभूतिका फलार्थ प्राणीको प्राप्त होता है। ऐक्यज्ञान तो निश्चित ही वेदान्तसे होता है। उससे यह अर्थ पर ह। ज्ञानसे अज्ञानकी जो निवृत्ति होती ह उस निवृत्तिक बाद प्राणीके चित्तकी लक्ष्यसे जो एक्यकी स्थिति उत्पन्न होता है, वही मुक्ति है।
(अध्याय २३९)

ब्रह्मगीता सार

श्रीभगवान्ने कहा—[हे पाण्डव!] यह सिद्ध है कि परमात्मा है । उसी परमात्मासे आकाश, आकाशस वायु, वायुसे अग्नि अग्निसे जल तथा जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है, जा इस जगत्-प्रपञ्चकी जन्मदात्री हे। तदनन्तर सत्रह तत्त्व उत्पन्न हुए। वाक् हाथ, पेर, पायु और उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। कान, त्वचा नेत्र, जिह्वा तथा नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। प्राण अपान, समान, व्यान और उदान नामक पाँच प्रकारकी वायु हे। मन और बुद्धिरूप अन्त करण है। मन सदेही होता है और बुद्धि निश्चयात्मिका होती है। इसका स्वरूप सूक्ष्म होता है। आत्माके रूपम भगवान् हिरण्यगर्भ अन्त करणम विद्यमान रहते हें, वही जीवात्मा है। इस प्रकार प्रपञ्चसे परे उस महाप्राण परमात्माके द्वारा पञ्चमहाभूतासे बने शरीरकी उत्पत्ति होती है। उन्हीं पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतासे ब्रह्माण्ड अर्थात् इस जगत्की सृष्टि हुई थी।

पैर आदिसे युक्त शरीर स्थूल शरीर हे, यह तो मसारम प्रसिद्ध ही है। उसके बाद उनम पञ्चभूत तत्त्व और उनके कार्योकी जो स्थिति है, वह स्थूल शरीरसे पूर्वका शरीर है। किंतु उसके शरीरसे जा कुछ उत्पन्न होता है, उसको स्थूल ही कहा जाता है। विद्वान् इस प्रकार परमात्मासे स्थित शरीरको तीन प्रकार मानते हैं। स्वतत्त्वके भेदको बतानेवाले भेदवाक्य 'अह ब्रह्मास्मि'के अनुमार उन दोना पूर्वस्थूल और स्थूल शरीरमे वह ब्रह्म ही प्रविष्ट रहता है। जलम सूर्यकी छाया और बेरके समान उस समय उसकी आकृति होती है, जीवस्वरूप वह ब्रह्म उसम प्राणादि इन शारीरिक तत्त्वाको धारण करता है। जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्तिकी अवस्थाम किये जानेवाले कार्योंका जा साक्षी है वही जीव माना गया है।

जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्तिकी अवस्थाआमे परे वह ब्रह्म अपने निर्गुण स्वभावम ही रहता हे। उस क्रियाशील शरीरके साथ रहन एव न रहनकी स्थितिम भा वह नित्य शुद्ध स्वभाववाला ही है। उसम काई विकृति नहीं आती। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिकी जो तीन अवस्थाएँ ह, इन अवस्थाआके कारण वह परमात्मा ही तीन प्रकारका मान लिया जाता है। वह अन्त करणम स्थित रहता है ओर जाग्रत्, स्वप्न ओर सुषुप्तिकी स्थितिमे इन्द्रियोकी क्रियाशीलताको देखता हुआ वह विकारयुक्त हो जाता है।

हे अर्जुन! अब मैं फलयुक्त क्रिया ओर कारककी जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति-अवस्थाका वर्णन करता हूँ, उसको सुन। इन्द्रियाके द्वारा शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध—इन तन्मात्राओका जब मनुष्यको सत्य-रूपम ज्ञान होता है, तव उसको मनुष्यकी जाग्रत् अवस्था कहते हैं। उसको विपयासक्त प्राणीके अन्त करणम जागते हुए सस्काराका विश्वास भी कहा जा सकता है। स्वप्न एव सुषुप्तिकी स्थिति तब होती हे, जब विपयापेक्षित कार्यम लगाय जानेवाले साधनकी चिन्ताम बुद्धि एकाग्र हो जाती ह। कारण-अवस्थाम ब्रह्मकी स्थिति है। अत कालके वशम हानेके कारण वह जीवात्मा बनकर स्वरूप शरीर स्थित रहता हे।

यम-नियमादि अष्टाङ्ग मार्गको यथाक्रम पार करते हुए जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थाम विद्यमान वह जीव साक्षी-रूपम सब कुछ देखता है। अत मनुष्यको समाधि आरम्भ करनेक पूर्व ही उस परम लक्ष्यकी अवधारणा अपने चित्तम बना लेनी चाहिये।

इसके बाद मुमुक्षुके अन्त करणमे कवल्य अर्थात् उस परमात्माके साक्षात्कारकी अवस्था आ जाती है। अत माक्षार्थीको उस स्थितिम पाञ्चभौतिक शरीरके अदर फँस हुए क्षेत्रज्ञ जीवात्माके विपयम विचारकर उसका शरारसे पृथक् समझना चाहिय क्याकि आत्मतत्त्वको शरीरसे अतिरिक्त न माननेपर ब्रह्मतत्त्वस साक्षात्कार करनेम अनेक बाधाएँ होती हें अत उन बाधाआका दूर करना अपेक्षित है, जो सासारिक विपय-वासनाआक क्षेत्रसे उत्पन्न हें। उस स्थितिम तो समस्त क्षेत्रको ही शून्य कर देना आवश्यक होता है। यह पाञ्चभौतिक शरीर घट आदिके समान है, जैसे घटके अदर

आकाश है, उस समय वह घटाकाश कहा जाता है। किंतु उस भ्रमको दूर कर दिया जाय तो अपने उस समग्र रूपमें वह दिखायी देता है। वैसी ही स्थिति जीवात्माकी है। अतः पाञ्चभौतिक शरीरसे उस मोक्षकी साधनामें जीवात्माको पृथक् समझना चाहिये। जिसमें वह आबद्ध है। उस क्षेत्रको ही भली प्रकारसे शेष करना अनिवार्य है। जिस प्रकार घट मिट्टीसे पृथक् नहीं है, उसमें समवाय सम्बन्ध होता है। उसी प्रकार कुम्भकारके द्वारा प्रयुक्त चक्र, चीवर आदिके कार्योंसे भी वह पृथक् नहीं है, किंतु पञ्चीकृत इन भौतिक तत्त्वोंकी उत्पत्ति अपञ्चीकृत महाभूत परमात्मासे हुई है। अतः कारण अन्तमें वही परमात्मा ही सिद्ध होगा, जो निर्गुण-निराकार अद्वय पञ्चीकृत देहतत्त्वसे परे है। कार्य तो कारणसे पृथक् होता नहीं है। इसलिये कार्य-कारण-सम्बन्धके द्वारा वह बात सिद्ध हो जायगी, जो मुमुक्षुके लिये अपेक्षित है। विद्वज्जन इसी क्रिया-व्यतिरेकके द्वारा सूक्ष्म शरीरकी अवधारणाकी बातको पुष्ट करते हैं।

अपञ्चीकृत महाभूतोंसे सूक्ष्मशरीर पृथक् नहीं है। जैसे आधार पृथ्वीके बिना नहीं होता है, वैसे ही वह पृथ्वी उसके आधारके बिना नहीं रहती है। यह आधार तो तेज अर्थात् अग्नि है, जो वायुके बिना रहता है। वह वायु आकाशके बिना, आकाश उस सद्मायाच्छिन्न ब्रह्मके बिना और वह मायारहित शुद्ध ब्रह्म आकाशके बिना नहीं रहता है। ध्यानकी ऐसी अवस्थामें पहुँचनेपर ही प्राणीके हृदयमें वह शुद्ध भाव आता है, जो जाग्रत् और स्वप्न आदिकी स्थितिमें उद्भूत नहीं होता, जो प्राप्त हुए आत्मज्ञानके अनुरूप जीवत्वके प्रभावसे मुक्त होता है।

ब्रह्मको नित्य शुद्ध, बुद्ध, सत्य तथा अद्वैत कहा जाता है। वह तत्त्व दो शिष्ट पदोंके बीच स्थित है। उसको ब्रह्मवाचक शब्द 'ॐ'कार कहते हैं। इसमें उकार और अकार दो स्वर एवं मकार एक अनुनासिक व्यञ्जनवर्ण है। इनसे बना हुआ वह पद सामान्य नहीं, अपितु महामन्त्र है जो अद्वितीय है। 'ब्रह्म मैं हूँ' या 'मैं ब्रह्म हूँ'—ये दोनों वाक्य मनमें ज्ञान और अज्ञान दोनोंको बढ़ानेवाले हैं।

यह आत्मतत्त्व परमज्योति स्वरूप है। यह चिदानन्द है। यह सत्य ज्ञान और अनन्त है। यही तत्त्वमसि है। ऐसा वेदोंका भी कथन है। 'मैं ब्रह्म हूँ।' सांसारिक विषयोंसे जो परे रहता है वही मैं निर्लिप्त देव हूँ। जो सर्वत्रगामी परमात्मा है वही मैं हूँ। जो आदित्यस्वरूप देवदेवेश हैं वही मैं हूँ। अरे! मैं तो वही अनादि देवदेवेश्वर परब्रह्म हो हूँ, जिसके आदि और अन्तका ज्ञान किसीको भी नहीं है। यही गीताका सार है। इसीका वर्णन मैंने अर्जुनसे किया था। इसको सुनकर मनुष्य ब्रह्ममें लीन हो सकता है अर्थात् उसको जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

(अध्याय २४०)

गरुडपुराणका माहात्म्य

भगवान् हरिने कहा—हे रुद्र! मैंने 'गरुडपुराण'का वह सारभाग आपको सुना दिया, जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यह विद्या, यश, सौन्दर्य, लक्ष्मी, विजय और आरोग्यादिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है, वह सब कुछ जान जाता है और अन्तमें उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! मैंने मुक्तिप्रदायक ऐसे महापुराणको भगवान् विष्णुसे सुना था।

व्यासजीने कहा—सूतजी! भगवान् विष्णुसे इस महापुण्यदायक गरुडपुराणको सुनकर ब्रह्माजीने दक्षप्रजापति, नारद तथा हम सभीको सुनाया और स्वयं उस परात्पर ब्रह्मका ध्यान करते हुए वे वैष्णव पदको प्राप्त हुए। मैंने भी तुम्हें और तुमने शौनकादिको इस सर्वश्रेष्ठ पुराणको सुनाया, जिसे सुनकर सर्वज्ञ बना व्यक्ति अपने अभीष्टको प्राप्त करके अन्तमें ब्रह्मपदको लाभ लेता है। भगवान् विष्णुने गरुडको सारतमभाग सुनाया था, इसलिये यह गरुडके लिये कथित सारतत्त्व 'गरुडमहापुराण'के नामसे प्रसिद्ध हो गया। यह महासारतत्त्व है। यह प्राणीको धर्म, काम, धन और मोक्षादि सभी फलोंको देनेवाला है।

सूतजीने कहा—हे शौनक! आपको मैंने उस श्रेष्ठतम

गरुडमहापुराणको सुना दिया है, जिस शुभ पुराणको भगवान् व्यासने ब्रह्मासे सुनकर बहुत समय पहले मुझको सुनाया था। व्यासरूप भगवान् हरिने प्रारम्भमे जो मात्र एक वेद था, उसे चार भागाम विभाजित किया और अष्टादश महापुराणाकी रचना की। उन पुराणाको महाराज शुकदेवजीने मुझे सुनाया। हे शौनक! आपके पूछनेपर इस श्रेष्ठ गरुड-पुराणको मैंने मुनियाक सहित आपको सुनाया।

जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस महापुराणका पाठ करता है सुनता है अथवा सुनाता है, इसको लिखता है, लिखाता है, ग्रन्थके ही रूपमे इसे अपने पास रखता है तो वह यदि धर्मार्थी है तो उसे धर्मकी प्राप्ति होता है, यदि वह अर्थका अभिलाषी है तो अर्थ प्राप्त करता है। यदि वह कामी है तो उसकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और यदि वह मोक्ष प्राप्त करनेका इच्छुक है तो उसे मोक्षप्राप्त होता है। मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, वह सब इस गरुड महापुराणको सुननसे प्राप्त हो जाता है।

जो मनुष्य इस महापुराणका पाठ करता है, वह अपने समस्त अभीष्टको सिद्ध करके अन्तम मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस पुराणके एक श्लोकका एक चरण भी पढकर मनुष्य पापरहित हो जाता है। जिस व्यक्तिके घरम यह महापुराण रहता है, उसको इसी जन्मम सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जिस मनुष्यके हाथमे यह गरुडमहापुराण विद्यमान है, उसके हाथम ही नीतियाका कोश है। जो प्राणी इस पुराणका पाठ करता है या इसका सुनता है वह भोग ओर मोक्ष दोनोको प्राप्त कर लेता है।

इस महापुराणको पढने एव सुननेसे मनुष्यक धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—इन चारो पुरुषार्थोंकी सिद्धि हो जाती है। इस महापुराणका पाठ करके या इसे सुन करके पुत्रार्थी पुत्र, कामार्थी काम, विद्यार्थी विद्या, विजिगीषु विजय प्राप्त कर लेता है तथा ब्रह्महत्यादिसे युक्त पापीका पाप नष्ट हो जाता है, वन्ध्या स्त्री पुत्र, कन्या सज्जन पति, क्षेमार्थी क्षेम तथा भोग चाहनेवाला भोग प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार मङ्गलकी कामनासे प्रेरित व्यक्ति अपना मङ्गल, गुणोका इच्छुक व्यक्ति उत्तम गुण काव्य करनेका अभिलाषी मनुष्य कवित्वशक्ति सारतत्त्व चाहनेवाला सार, ज्ञानार्थी ज्ञान प्राप्त करता है।

पक्षिश्रेष्ठ गरुडके द्वारा कहा गया यह गरुडमहापुराण धन्य है। यह सबका कल्याण करनवाला है। जा मनुष्य इस महापुराणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसकी अकालमृत्यु नहीं होती। इसके मात्र आधे श्लाकका पाठ करनेसे निश्चित ही दुष्ट शत्रुका क्षय हाता है। नैमिषारण्यम ऋषियोके द्वारा आयोजित यज्ञम सूतजी महाराजसे इस महापुराणको सुन करक स्वय शौनक मुनिने उन्हीं गरुडध्वज भगवान् विष्णुकी कृपासे मुक्तिका लाभ प्राप्त किया था।

(अध्याय २४१)

[गरुडपुराणान्तर्गत आचारकाण्ड समाप्त]

धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

वैकुण्ठलोकका वर्णन, मरणकालमे और मरणके अनन्तर जीवके कल्याणके लिये विहित विभिन्न कर्तव्योके बारेमे गरुडजीके द्वारा किये गये प्रश्न, प्रेतकल्पका उपक्रम

श्रीगणेशजीको नमस्कार है। 'ॐ'कारसे युक्त भगवान् वासुदेव हरिको प्रणाम है।

नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

भगवान् श्रीनारायण नरोत्तम नर एव भगवती श्रीसरस्वती देवीको नमस्कार करके पुराणका वाचन करना चाहिये। जिन भगवान्का धर्म ही मूल है, वेद जिनका स्कन्ध है, पुराणरूपी शाखासे जो समृद्ध हैं यज्ञ जिनके पुष्प हैं, मोक्ष जिनका फल है—ऐसे भगवान् मधुसूदनरूपी कल्पवृक्षकी जय हो।

देवक्षेत्र नैमिषारण्यम शौनकादिक श्रेष्ठ मुनियोने सुखपूर्वक विराजमान श्रीसूतजी महाराजसे कहा—

हे श्रीसूतजी! आप श्रीवेदव्यासजीकी कृपासे सब कुछ जानते हैं। अत आप हम सभीके सदेहका निवारण कर। कुछ लोगोका कहना है कि जिस प्रकार कोई जोक तिनकेसे तिनकेका सहारा लेकर आगे बढती है उसी प्रकार शरीरधारी जीव एक शरीरके बाद दूसरे शरीरका आश्रय ग्रहण करता है। दूसरे विद्वानोका कहना है कि प्राणी मृत्युके पश्चात् यमराजकी यातनाओका भोग करता है तदनन्तर उसको दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है—इन दोनामे क्या सत्य है? यह हमे बतानेकी कृपा करे।

सूतजीने कहा—हे महाभाग! आप लोगोने अच्छा प्रश्न किया है। आप लोगाको सदेह हो यह असम्भव है। आप लोगोने तो लोकहितसे प्रेरित होकर ही ऐसा प्रश्न किया है। हे विप्रगणो! मैं आप सबके हृदयमें अवस्थित उस सदेहको भगवान् श्रीकृष्ण और गरुडके बीच हुए सवादके द्वारा दूर करूँगा। सर्वप्रथम मैं उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ, जिनका आश्रय लेकर मनुष्य इस भवसागरको एक क्षुद्र नदीकी भाँति अनायास ही पार कर जाते हैं।

हे मुनियो। एक बार विनतापुत्र गरुडके हृदयमें इस ब्रह्माण्डके सभी लोकोको देखनेकी इच्छा हुई। अत हरिनामका उच्चारण करते हुए उन्होने सभी लोकोका भ्रमण किया। पाताल, पृथ्वीलोक तथा स्वर्गलोकका भ्रमण करते हुए वे पृथ्वीलोकके दु खसे अत्यन्त दु खित एव अशान्तचित होकर पुन वैकुण्ठ लोक वापस आ गये।

वैकुण्ठ लोकमे न रजोगुणकी प्रवृत्ति है, न तमोगुणकी ही प्रवृत्ति है [मृत्युलोकके समान] रजोगुण तथा तमोगुणसे मिश्रित सत्त्वगुणकी भी प्रवृत्ति वहाँ नहीं है। वहाँ केवल शुद्ध सत्त्वगुण ही अवस्थित रहता है। वहाँ माया भी नहीं है, वहाँ किसीका विनाश नहीं होता। वहाँ राग-द्वेष आदि षड्विकार भी नहीं हैं। वहाँ देव और असुर-वर्गद्वारा पूजित श्यामवर्णकी सुन्दर कान्तिसे सुशोभित राजीवलोचन भगवान् विष्णुके पार्षद विराजमान रहते हैं जिनके शरीर पीतवसन और मनोहारी आभूषणोसे विभूषित हैं और मणियुक्त स्वर्णके अलङ्करणासे सुशोभित हैं। भगवान्के वे सभी पार्षद चार-चार भुजाओसे युक्त हैं। उनके कानामें कुण्डल और सिरपर मुकुट है। उनका वक्ष स्थल सुन्दर पुष्पोंको

मालासे सुशोभित है। मनको मोहित करनेवाली अप्सराआसे युक्त, महात्माआके चमकते हुए विमानाकी पक्तिकी कान्तिसे वे सभी सदा भास्वरित होते रहते हैं। वहाँ नाना प्रकारक वैभवासे समन्वित लक्ष्मी प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीहरिके चरणोकी पूजा करती रहती हैं।

गरुडजीने वहाँ देखा कि श्रीहरि झूलेपर विराजमान हैं। सखियाद्वारा स्तुत्य लक्ष्मीजी झूलेम स्थित भगवान्‌की स्तुति कर रही हैं। अपन लाल-लाल बडे-बडे नेत्रासे युक्त प्रसन्नमुख दवाके अधिपति श्रीपति, जगत्पति और यज्ञपति भगवान् श्रीहरि अपने नन्द सुनन्द आदि प्रधान पार्षदाको दख रहे थे। उनके सिरपर मुकुट, कानोमे कुण्डल ओर वक्ष स्थल श्रीसे सुशाभित था। वे पीताम्बरसे विभूषित थे। उनकी चार भुजाएँ थीं। प्रसन्नमुद्राम हँसता हुआ उनका मुख था। बहुमूल्य आसनपर विराजमान वे हरि उस समय अपनी अन्यान्य शक्तियोसे आवृत थे। प्रकृति, पुरुप, महत्, अहकार, पञ्चकर्मेन्द्रिय पञ्चज्ञानेन्द्रिय, मन, पञ्चमहाभूत तथा पचतन्मात्राआसे निर्मित शरीरवाल अपने ही स्वरूपमे रमण करत हुए उन भगवान् हरिका दर्शन करनेसे विनतासुत गरुडका अन्त करण आनन्दविभोर हा उठा। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। उनके नेत्रोसे प्रेमाश्रुआकी धारा बहने लगी। आनन्दमग्न होकर उन्हाने प्रभुको प्रणाम किया। प्रणाम करते हुए अपने वाहन गरुडका देखकर भगवान् विष्णुन कहा—हे पक्षिन्! आपने इतने दिनाम इस जगत्‌की किस भूमिका परिभ्रमण किया है?

गरुडने कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मैंन समस्त त्रिलाकीका परिभ्रमण किया है। उनम स्थित जगत्के सभी स्थावर और जङ्गम प्राणियाको भी दखा। हे प्रभो! यमलोकका छाडकर पृथ्वालाकसे सत्यलोकतक सब कुछ मर द्वारा देखा जा चुका है। सभी लोकाकी अपेक्षा भूर्लोक प्राणियास अधिक परिपूर्ण है। सभी यानियाम मानवयोनि ही भोग और मोक्षका शुभ आश्रय है। अत सुकृतियाके लिय ऐसा लाक न ता अभीतक बना है और न भविष्यम बनगा। दवता लाग भी इस लोकको प्रशसामे गीत गात हुए कहत हैं—'जो लाग पवित्र भारतकी भूमिम जन्म लेकर निवास करते हैं वे धन्य हैं। देवता लाग भा स्वर्ग एव अपवगरूप फलकी प्राप्तिके लिये पुन भारतभूमिम मनुष्यरूपम जन्म लेते हैं'—

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूय पुरुपा सुरत्वात्॥
(१।२७)

हे प्रभो! आप यह बतानेकी कृपा करे कि मृत्युको प्राप्त हुआ प्रेत किस कारण पृथ्वीपर डाल दिया जाता हे?

उसके मुखम पञ्चरत्न[1] क्या डाला जाता है? मरे हुए प्राणीके नीच लोग कुश किसलिये बिछा देते हैं? उसके दोनो पैर दक्षिण दिशाकी ओर क्या कर दिये जाते हैं? मरनेके समय मनुष्यके आगे पुत्र-पोत्रादि क्यो खडे रहते हैं? हे कशव! मृत्युके समय विविध वस्तुआका दान एव गोदान किसलिये दिया जाता है? बन्धु-बान्धव, मित्र और शत्रु आदि सभी मिलकर क्या क्षमा-याचना करते हैं? किसस प्रेरित होकर लाग मृत्युकालम तिल लोहा, स्वर्ण, कपास, नमक, सप्तधान्य[2] भूमि ओर गौका दान देते हैं? प्राणी कैसे मरता ह ओर मरनेक बाद कहाँ जाता हे? उस समय वह आतिवाहिक शरीर (निराधार-रूपम आत्माको वहन करनेवाले शरार)-को कैस प्राप्त करता है? अग्नि देनेवाले पुत्र और पौत्र उसे कन्धेपर क्या ले जाते हैं? शवमे घृतका लेप क्या किया जाता हे? उस समय एक आहुति दनेकी परम्परा कहाँसे चली हे? शवको भूमिस्पर्श किसलिये करवाया जाता हे? स्त्रियाँ उस मर हुए व्यक्तिके लिये क्या विलाप करती हैं? शवक उत्तर दिशाम 'यमसूक्त'का पाठ क्या

१-साना चाँदी मोती लाजवर्त तथा मूँगा—ये पाँच पञ्चरत्न कहलाते हैं।
२-जौ धान तिल कँगनी मूँग चना तथा साँवा—ये सप्तधान्य कहलाते हैं।

किया जाता है? मरे हुए व्यक्तिको पीनेके लिये जल एक ही वस्त्र धारण करके क्या दिया जाता है? उस समय सूर्य-बिम्ब-निरीक्षण, पत्थरपर स्थापित यव, सरसो, दूर्वा और नीमकी पत्तियोका स्पर्श करनेका विधान क्यो है? उस समय स्त्री एव पुरुष दोनो नीचे-ऊपर एक ही वस्त्र क्या धारण करते हैं? शवका दाह-सस्कार करनेके पश्चात् उस व्यक्तिको अपने परिजनोके साथ बैठकर भोजनादि क्या नहीं करना चाहिये? मरे हुए व्यक्तिके पुत्र दस दिनके पूर्व किसलिये पिण्डाका दान देते हैं? चबूतरे (वेदी)-पर पके हुए मिट्टीके पात्रम दूध, क्यो रखा जाता है? रस्सीसे बँधे हुए तीन काष्ठ (तिगोडिया)-के ऊपर रात्रिम गाँवके चौराहेपर एकान्तम वर्पपर्यन्त प्रतिदिन दीपक क्या दिया जाता हे? शवका दाह-सस्कार तथा अन्य लोगाके साथ जल-तर्पणकी क्रिया क्यो की जाती हैं? हे भगवन्! मृत्युके बाद प्राणी आतिवाहिक शरीरमे चला जाता है, उसके लिये नौ पिण्ड देने चाहिये, इसका क्या प्रयोजन है? किस विधानमे पितरोको पिण्ड प्रदान करना चाहिये और उस पिण्डको स्वीकार करनेके लिये उनका आवाहन कैसे किया जाय?

हे देव! यदि य सभी कार्य मरनेक तुरत बाद सम्पन्न हो जाते हैं तो फिर बादमे पिण्डदान क्यो किया जाता है? पूर्व किये गये पिण्डदानके बाद पुन पिण्डदान या अन्य क्रियाआको करनेकी क्या आवश्यकता है? दाह-सस्कारके बाद अस्थि-सचयन और घट फोडनेका विधान क्या है? दूसर दिन और चौथे दिन साग्निक द्विजके स्नानका विधान क्या है? दसव दिन सभी परिजनाक साथ शुद्धिके लिये स्नान क्यो किया जाता है? दसवे दिन तेल एव उबटनका प्रयोग क्यो किया जाता है। उस तेल और उबटनका प्रयोग भी एक विशाल जलाशयके तटपर हाना अपेक्षित है इसका क्या कारण है? दसव दिन पिण्डदान क्या करना चाहिये? एकादशाहके दिन वृषोत्सर्ग आदिके सहित पिण्डदान करनेका क्या प्रयोजन है? पात्र पादुका छत्र वस्त्र तथा अगूठी आदि वस्तुआका दान क्या दिया जाता है? तरहव दिन पददान क्यो दिया जाता है। वर्षपर्यन्त सोलह श्राद्ध क्यो किये जाते हैं तथा तान सौ साठ सान्नोदक घट क्या दिये जाते हैं। प्रेततृप्तिके लिये प्रतिदिन अन्नसे भरे हुए एक घटका दान क्या करना चाहिये।

हे प्रभो! मनुष्य अनित्य है ओर समय आनेपर हा वह मरता है, किंतु में उस छिद्रको नहीं देख पाता हूँ, जिससे जीव निकल जाता है? प्राणीके शरीरम स्थित किस छिद्रसे पृथ्वी, जल, मन, तेज, वायु ओर आकाश निकल जाते हैं? हे जनार्दन! इसी शरीरमे स्थित जो पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच वायु हैं, वे कहाँसे निकल जाते हैं। लोभ, मोह, तृष्णा, काम और अहकाररूपी जो पाँच चोर शरीरम छिपे रहते हें, वे कहाँसे निकल जाते हैं।

हे माधव! प्राणी अपने जीवनकालम पुण्य अथवा पाप जो कुछ भी कर्म करता है, नाना प्रकारके दान देता है, वे सब शरीरके नष्ट हो जानेपर उसके साथ कैसे चले जाते हैं। वर्षके समाप्त हो जानेपर भी मरे हुए प्राणीके लिये सपिण्डीकरण क्या होता है? उस प्रेतकृत्यमे (सपिण्डन) प्रतपिण्डका मिलन किसके साथ किस विधिसे होना चाहिये, इसे आप बतानेकी कृपा करे।

हे हरे! मूर्च्छासे अथवा पतनस जिनकी मृत्यु होती है, उनके लिये क्या होना चाहिये। जो पतित मनुष्य जलाये गये अथवा नहीं जलाये गये तथा इस पृथ्वीपर जो अन्य प्राणी हैं, उनके मरनेपर अन्तम क्या होना चाहिये। जो मनुष्य पापी, दुराचारी अथवा हतबुद्धि हैं, मरनेके बाद वे किस स्थितिको प्राप्त करते हैं? जो पुरुष आत्मघाती ब्रह्महत्यारा, स्वर्णादिकी चोरी करनवाला मित्रोंके साथ विश्वासघात करनेवाला है, उस महापातकीका क्या होता है? हे माधव! जा शूद्र कपिला गौका दूध पीता है अथवा प्रणव महामन्त्रका जप करता है या ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीतको धारण करता है ता मृत्युके बाद उसकी क्या गति होती है? ह ससारके स्वामी! जब काई शूद्र किसी ब्राह्मणीका पति बना लेता है तो उस पापीसे मैं भी डरता हूँ। आप बतायें कि उस पापीको क्या दशा हाती है? साथ हा उस पापकर्मके फलको बतानेकी भी कृपा करे।

हे विधात्मन्! आप मेरी दूसरी बातपर भी ध्यान दें। मैं कौतूहलवश यत्नपूर्वक लोकाको देखता हुआ सम्पूर्ण जगत्में जा चुका हूँ, उसमें रत्नजाल लोगोको मैंने देख

हे कि वे सभी दु खम ही डूब रहे हैं। उनके अत्यन्त कष्टाको दखकर मेरा अन्त करण पीडास भर गया हे। स्वर्गमे दैत्याकी शत्रुतासे भय है। पृथ्वीलोकमे मृत्यु और रोगादिसे तथा अभीष्ट वस्तुओके वियोगसे लोग दु खित हैं। पातालLोकम रहनेवाले प्राणियोंको मेरे भयसे दु ख बना रहता है[1]। हे ईश्वर! आपके इस वैष्णव पद (वैकुण्ठ)-के अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी लोकम ऐसी निर्भयता नहीं दिखायी दती। कालके वशीभूत इस जगत्‌की स्थिति स्वप्नकी मायाके समान असत्य है। उसमे भी इस भारतवर्षम रहनेवाले लोग बहुत-से दु खाका भोग रहे हैं। मेंने वहाँ देखा ह कि उस देशके मनुष्य राग-द्वेष तथा माह आदिम आकण्ठ डूबे हुए हें। उस देशम कुछ लोग अन्धे हैं, कुछ टेढी दृष्टिवाले हैं, कुछ दुष्ट वाणीवाले हैं कुछ लूले हें, कुछ लँगडे हैं कुछ काने हें कुछ बहरे हैं, कुछ गूँग हैं, कुछ कोढा हैं, कुछ लामश (अधिक रोमवाले) हैं, कुछ नाना रोगसे घिर हैं और कुछ आकाश-कुसुमकी तरह नितान्त मिथ्या अभिमानसे चूर हैं। उनके विचित्र दोषाको देखकर तथा उनकी मृत्युको देखकर मर मनमे जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी हे कि यह मृत्यु क्या है? इस भारतवर्षम यह कैसी विचित्रता है? ऋषियासे मैंने पहल ही इस विषयम सामान्यत यह सुन रखा है कि जिसकी विधिपूर्वक वार्षिक क्रियाएँ नहीं होती हैं, उसकी दुर्गति होती है। फिर भी हे प्रभो! इसकी विशेष जानकारीके लिये मैं आपसे पूछ रहा हूँ।

हे उपेन्द्र! मनुष्यकी मृत्युके समय उसके कल्याणके लिय क्या करना चाहिये? कैसा दान देना चाहिये। मृत्यु और श्मशान-भूमितक पहुँचनेके बीच कौन-सी विधि अपेक्षित है। चितामे शवको जलानेकी क्या विधि है? तत्काल अथवा विलम्बसे उस जीवको कैसे दूसरी देह प्राप्त हाती है, यमलोक (सयमनी नगरी)-को जानेवालेक लिय वर्षपर्यन्त कौन-सी क्रियाएँ करनी चाहिये। दुर्बुद्धि अर्थात् दुराचारी व्यक्तिकी मृत्यु हानेपर उसका प्रायश्चित्त क्या है? पञ्चक आदिमे मृत्यु होनेपर पञ्चकशान्तिके लिये क्या करना चाहिये। ह देव! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो। आप मेरे इस सम्पूर्ण भ्रमको विनष्ट करनेम समर्थ हैं। मैंने आपस यह सब लोकमङ्गलकी कामनासे पूछा है, मुझे बतानेकी कृपा करे। (अध्याय १)

मरणासन्न व्यक्तिके कल्याणके लिये किये जानेवाले कर्म, मृत्युसे पूर्वकी स्थिति तथा कर्मविपाकका वर्णन

श्रीकृष्णने कहा—ह भद्र! आपने मनुष्योके हितम बहुत ही अच्छी बात पूछी है। सावधान हाकर इस समस्त और्ध्वदहिक क्रियाका भलीभाँति सुन।

ह गरुड! जा सम्यक् रूपसे भेदरहित है, जिसका वर्णन श्रुतिया और स्मृतियाम हुआ है, जिसको इन्द्रादि दवता, योगीजन और योगमार्गका चिन्तन करनेवाले विद्वान् नहीं देख सक हैं, जा गुह्यातिगुह्य है, ऐसे उस प्रधान तत्त्वको जिसे मैंने अभीतक किसी अन्यसे नहीं कहा है तुम मेरे भक्त हा इसलिये में तुम्हे बता रहा हूँ।

हे वैनतय! इस ससारम पुत्रहीन व्यक्तिकी गति नहीं है उसको स्वर्ग प्राप्त नहीं होता है। अत शास्त्रानुसार यथायोग्य उपायसे पुत्र उत्पन्न करना ही चाहिय। यदि मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता ह तो पुत्र नरकसे उसका उद्धार कर देता है। पुत्र और पौत्रका मरे हुए प्राणीको कन्धा दना चाहिये तथा उसका यथाविधान अग्निदाह करना चाहिय। शवके नीचे पृथ्वीपर तिलके सहित कुश बिछानेसे शवकी आधारभूत भूमि उस ऋतुमती नारीके समान हो जाती है, जा प्रसवकी योग्यता रखती है। मृतकके मुखम पञ्चरत्न डालना बीजवपनके समान है, जिससे आगे जीवकी शुभगतिका निश्चय होता हे। जैसे पुष्प (ऋतुकालमें स्त्रियाका रजोदर्शन) न होनेपर गर्भधारण सम्भव नहीं है, वैसे ही शवभूमि भी तिल-कुश आदिके बिना जीवकी शुभ योनिमे कारण नहीं बन पाती। इसीलिये श्रद्धापूर्वक तिल, कुश, पञ्चरत्न आदिका यथाविधान विनियोग आवश्यक है।

[1] पातालLोकम नागाको गरुडका भय रहता है।

गोबरसे भूमिको सबसे पहले लीपना चाहिये, तदनन्तर उसके ऊपर तिल और कुश बिछाना चाहिये। उसके बाद आतुर व्यक्तिको भूमिपर कुशासनके ऊपर सुला देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह प्राणी अपने समस्त पापोंको जला कर पापमुक्त हो जाता है। शवके नीचे बिछाये गये कुशसमूह निश्चित ही मृत्युग्रस्त प्राणीको स्वर्ग ले जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। जहाँ पृथ्वीपर मल-मूत्रादिका लेप (सम्बन्ध) नहीं है वहाँ वह सदा पवित्र है और जहाँ (मल-मूत्रादिका) लेप (सम्बन्ध) है, वहाँ (मल-मूत्रादिका अपसारण करके) गोमयसे लेप करनेपर वह शुद्ध होती है। गोबरसे बिना लिपी हुई भूमिपर सुलाये गये मरणासन्न व्यक्तिमें यक्ष, पिशाच एवं राक्षस कोटिके क्रूरकर्मी दुष्ट लोग प्रविष्ट हो जाते हैं। मरणासन्नकी मुक्तिके लिये उसे जलसे बनाये गये मण्डलवाली भूमिपर ही सुलाना चाहिये[1] क्योंकि नित्य होम, श्राद्ध, पादप्रक्षालन, ब्राह्मणोंकी अर्चा एवं भूमिका मण्डलीकरण मुक्तिके हेतु माने गये हैं। बिना लिपी-पुती मण्डलहीन भूमिपर मरणासन्न व्यक्तिको नहीं सुलाना चाहिये। भूमिपर बनाये गये ऐसे मण्डलमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी तथा अग्नि आदि देवता विराजमान हो जाते हैं, अतः मण्डलका निर्माण अवश्य करना चाहिये। मण्डलविहीन भूमिपर प्राण-त्याग करनेपर वह चाहे बालक हो, चाहे वृद्ध हो और चाहे जवान हो, उसको अन्य योनि नहीं प्राप्त होती है। हे तार्क्ष्य! उसकी जीवात्मा वायुके साथ भटकती रहती है। उस प्रकारकी वायुभूत जीवात्माके लिये न तो श्राद्धका विधान है और न तो जलतर्पणकी क्रिया ही बतायी गयी है।

हे गरुड! तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हुए हैं। अतः तिल बहुत ही पवित्र हैं। तिलका प्रयोग करनेपर असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं। तिल श्वेत, कृष्ण और गोमूत्रवर्णके समान होते हैं। 'वे मेरे शरीरके द्वारा किये गये समस्त पापोंको नष्ट करें।' ऐसी भावना करनी चाहिये। एक ही तिलका दान स्वर्णके बत्तीस सेर तिलके दानके समान है। तर्पण, दान एवं होममें दिया गया तिलका दान अक्षय होता है। कुश मेरे शरीरके रोमोंसे उत्पन्न हुए हैं और तिलकी उत्पत्ति मेरे पसीनेसे हुई है। इसीलिये देवताओंकी तृप्तिके लिये मुख्यरूपसे कुशकी और पितरोंकी तृप्तिके लिये तिलकी आवश्यकता होती है। देवताओं और पितरोंकी तृप्ति विश्वके लिये उपजीव्य (रक्षक) होनेके कारण विश्वकी तृप्तिमें हेतु है। अतः अपसव्य आदि श्राद्धकी जो विधियाँ बतायी गयी हैं, उन्हीं विधियोंके अनुसार मनुष्यको ब्रह्मा, देवदेवेश्वर तथा पितृजनोंको संतृप्त करना चाहिये। अपसव्य आदि होकर [तिलका उपयोग करनेसे] ब्रह्मा, पितर और देवेश्वर तृप्त होते हैं। अपसव्य होकर कर्म करनेसे पितरोंकी संतृप्ति होती है[2]।

कुशके मूलभागमें ब्रह्मा, मध्यभागमें विष्णु तथा अग्रभागमें शिवको जानना चाहिये, ये तीनों देव कुशमें प्रतिष्ठित माने गये हैं। हे पक्षिराज! ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी—ये बार-बार समर्पित होनेपर भी पर्युषित नहीं माने जाते, कभी निर्माल्य अर्थात् बासी नहीं होते। इनका पूजामें बारम्बार प्रयोग किया जा सकता है। हे खगेन्द्र! तुलसी, ब्राह्मण, गौ, विष्णु तथा एकादशीव्रत—ये पाँचों संसारसागरमें डूबते हुए लोगोंको नौकाके समान पार कराते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! विष्णु, एकादशीव्रत, गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गौ—ये छः इस असार-संसारमें लोगोंको मुक्ति प्रदान करनेके साधन हैं यह षट्पदी कहलाती है—

दर्भमूले स्थितो ब्रह्मा मध्ये देवो जनार्दनः ॥
दर्भाग्रे शंकरं विद्यात् त्रयो देवाः कुशे स्मृताः ।
विप्रा मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर॥

१-यहाँ मण्डलका तात्पर्य है—जलसे प्रोक्षण के बाद जलसे गोलाकार रेखा बना देना और चौक आदि पूरना।

२-मम स्वेदसमुद्भूतास्तिलास्तार्क्ष्य पवित्रकाः । असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैस्तथा ॥
तिलाः श्वेतास्तिलाः कृष्णास्तिला गोमूत्रसंनिभाः । दहन्तु ते मे पापानि शरीरेण कृतानि वै ॥
एक एव तिलो दत्तो हेमद्रोणतिलैः समः । तर्पणे दानहोमेषु दत्तो भवति चाक्षयः ॥
दर्भा रोमसमुद्भूतास्तिलाः स्वेदेषु नान्यथा । देवता दानवास्तृप्ताः श्राद्धेन पितरस्तथा ॥
[illegible] ब्रह्मा विष्णुः [illegible] । [illegible] ब्रह्मा [illegible] देवेश्वराः ॥
तेन ते [illegible] अपसव्ये कृते सति । (२।१९—२१)

नैते निर्माल्यता यान्ति क्रियमाणा पुन पुन ।
तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग॥
पञ्च प्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जता नृणाम्।
विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनव ॥
असारे दुर्गससारे षट्पदी मुक्तिदायिनी।
(२।२१—२५)

जैसे तिलकी पवित्रता अतुलनीय होती है, उसी प्रकार कुश और तुलसी भी अत्यन्त पवित्र होते हैं। ये तीना पदार्थ मरणासन्न व्यक्तिको दुर्गतिसे उबार लेते हैं[१]। दाना हाथोसे कुश उखाडना चाहिये और उसे पृथ्वीपर रखकर जलसे प्रोक्षित करना चाहिये तथा मृत्युकालम मरणासन्नके दोनो हाथोमे रखना चाहिये। जिसके हाथोम कुशाएँ हैं और जो कुशसे परिवेष्टित कर दिया जाता है, वह मन्त्रहीन होनेपर (उसकी समन्त्रक क्रियाएँ न हो पायी हो, तब) भी विष्णुलोकको प्राप्त करता है। इस असार ससारसागरमे भूमिको गोबरसे लीपकर उसपर मृत मनुष्यको सुलानेसे और कुशासनपर स्थित करनेस तथा विशुद्ध अग्निम दाह करनेसे उसके समस्त पापाका नाश हो जाता हे।

लवण और उसका रस दिव्य (उत्तम लोकका प्रापक) है, वह प्राणियोकी समस्त कामनाओको सिद्ध करनेवाला है। लवणके बिना अन्न-रस उत्कट अर्थात् न अभिव्यक्त हाते हैं और न सुस्वादु होते हैं। इसीलिये लवण-रस पितरोको प्रिय होता है और स्वर्गको प्रदान करनेवाला है। यह लवण-रस भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। इस बातको जाननेवाले योगीजन लवणके साथ दान करनेको कहते हैं। इस पृथ्वीपर यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, स्त्री तथा शूद्र वर्णके आतुर व्यक्तिके प्राण न निकलते हा तो उसके लिये स्वर्गका द्वार खोलनेके लिये लवणका दान देना चाहिये।

हे पक्षीन्द्र! अब मृत्युके स्वरूपको विस्तारपूर्वक सुन। मृत्यु ही काल है, उसका समय आ जानेपर जीवात्मासे प्राण और देहका वियोग हो जाता है। मृत्यु अपने समयपर आती है। मृत्युकष्टके प्रभावसे प्राणी अपने किये कर्मोको एकदम भूल जाता है। हे गरुड! जिस प्रकार वायु मेघमण्डलाको इधर-उधर खींचता है, उसी प्रकार प्राणी कालके वशमे रहता है। सात्त्विक, राजस और तामस—ये सभी भाव कालके वशमे हैं। प्राणियामे वे कालके अनुसार अपने-अपने प्रभावका विस्तार करते हैं। हे सर्पहन्ता गरुड! सूर्य, चन्द्र, शिव, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मित्र, औषधि, आठो वसु, नदी, सागर और भाव-अभाव—ये सभी कालके अनुसार यथासमय उद्भूत होते हैं, बढते हैं, घटत हैं और मृत्युके उपस्थित होनेपर कालके प्रभावसे विनष्ट हो जाते हैं।

हे पक्षिन्! जब मृत्यु आ जाती है तो उसके कुछ समय पूर्व दैवयोगसे कोई रोग प्राणीके शरीरम उत्पन्न हो जाता है। इन्द्रियाँ विकल हा जाती हैं और बल, ओज तथा वेग शिथिल हो जाता है। हे खग! प्राणियोको करोडो बिच्छुआके एक साथ काटनेका जो अनुभव हाता है, उससे मृत्युजनित पीडाका अनुमान करना चाहिये। उसके बाद ही चेतनता समाप्त हो जाती है, जडता आ जाती है। तदनन्तर यमदूत उसके समीप आकर खडे हा जाते हैं और उसके प्राणाको बलात् अपनी ओर खींचना शुरू कर दते हैं। उस समय प्राण कण्ठमे आ जाते हैं। मृत्युके पूर्व मृतकका रूप बीभत्स हो उठता है। वह फन उगलने लगता है। उसका मुँह लारसे भर जाता है। उसके बाद शरीरके भीतर विद्यमान रहनवाला वह अङ्गुष्ठ-परिमाणका पुरुष हाहाकार करता हुआ तथा अपने घरको देखता हुआ यमदूताके द्वारा यमलोक ले जाया जाता है।

मृत्युके समय शरीरमे प्रवाहित वायु प्रकुपित होकर तीव्र गतिको प्राप्त करता है और उसीकी शक्तिसे अग्नितत्त्व भी प्रकुपित हा उठता है। बिना ईधनके प्रदीप्त ऊष्मा प्राणीके मर्मस्थानाका भेदन करने लगती है, जिसके कारण प्राणीका अत्यन्त कष्टकी अनुभूति हाती है। परतु भक्तजना एव भागमे अनासक्त जनोकी अधागतिका निरोध करनेवाला उदान नामक वायु ऊर्ध्वगतिवाला हो जाता है।

जो लाग झूठ नहीं बालते, जो प्रीतिका भेदन नहीं करत, आस्तिक और श्रद्धावान् है, उन्ह सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त होती है। जो काम, ईर्ष्या ओर द्वेपके कारण स्वधर्मका

१-तिला पवित्रमतुल दर्भाश्चापि तुलस्यथ॥
निवारयन्ति चैतानि दुर्गति यान्तमातुरम्॥ (२।२५-२६)

परित्याग न करे, सदाचारी ओर सोम्य हो, वे सब निश्चित ही सुखपूर्वक मरते हैं।

जो लोग माह और अज्ञानका उपदेश देते हैं, वे मृत्युके समय महान्धकारम फॅस जाते हैं। जो झूठी गवाही देनेवाले, असत्यभाषी, विश्वासघाती ओर वेदनिन्दक हैं, वे मूर्च्छारूपी मृत्युको प्राप्त करते हैं। उनका ले जानेके लिये लाठी एव मुद्गरसे युक्त दुर्गन्धसे भरपूर एव भयभीत करनेवाले दुरात्मा यमदूत आते हैं। ऐसी भयकर परिस्थिति

देखकर प्राणीके शरीरम भयवश कम्पन होने लगता हे। उस समय वह अपनी रक्षाके लिये अनवरत माता-पिता और पुत्रको यादकर करुण-क्रन्दन करता है। उस क्षण प्रयास करनेपर भी ऐसे जीवके कण्ठसे एक शब्द भी स्पष्ट नहीं निकलता। भयवश प्राणीकी आँख नाचने लगती हैं। उसकी साँस बढ जाती हे और मुँह सूखने लगता है। उसके बाद वेदनासे आविष्ट होकर वह अपने शरीरका परित्याग करता है और उसके बाद ही वह सबक लिये अस्पृश्य एव घृणायोग्य हो जाता है।

हे गरुड। इस प्रकार मैंन यथाप्रसग मृत्युका स्वरूप सुना दिया। अब आपके उस दूसरे प्रश्नका उत्तर जो बडा ही विचित्र है उसे सुना रहा हूँ। हे पक्षिराज। पूर्वजन्मम किये गय भाँति-भाँतिके भागाका भोगता हुआ प्राणी यहाँ भ्रमण करता रहता है। दव असुर और यक्ष आदि योनियाँ भी प्राणीके लिय सुखप्रदायिना हैं। मनुष्य पशु-पक्षी आदि योनियाँ अत्यन्त दु खदायिनी हैं। हे खगेश्वर। प्राणीको कर्मका फल तारतम्यसे इन यानियाम प्राप्त होता है। अब में इसी प्रसगम आपका कर्मविपाकका वर्णन भी करूँगा।

हे गरुड। प्राणी अपने सत्कर्म एव दुष्कर्मके फलाकी विविधताका अनुभव करनेके लिये इस ससारम जन्म लेता है। जो महापातकी ब्रह्महत्यादि महापातकजन्य अत्यन्त कष्टकारी रोरवादि नरकलोकाका भाग भागकर कर्मक्षयके बाद पुन इस पृथ्वीपर जिन लक्षणासे युक्त होकर जन्म लेते हैं, उन लक्षणाको आप मुझसे सुन।

हे खगेन्द्र। ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले महापातकीको मृग, अश्व, सूकर और ऊँटकी योनि प्राप्त होती है। स्वर्णकी चारी करनेवाला कृमि, कीट और पतग-योनिमें जाता है, गुरुपत्नीके साथ सहवास करनेवालेका जन्म क्रमश—तृण, लता और गुल्म-योनिमे होता है। ब्रह्मघाती क्षयरोगका रोगी मद्यपी विकृतदन्त, स्वर्णचोर कुनखी और गुरुपत्नीगामी चर्मरोगी हाता है। जो मनुष्य जिस प्रकारसे महापातकियोका साथ करता है, उसे भी उसी प्रकारका रोग होता है। प्राणी एक वर्षपर्यन्त पतित व्यक्तिका साथ करनेसे स्वय पतित हो जाता है। परस्पर वार्तालाप करने तथा स्पर्श नि श्वास सहयान, सहभोज, सहआसन, याजन, अध्यापन तथा योनि-सम्बन्धसे मनुष्याके शरीरमे पाप सक्रमित हो जाते हैं[1]। दूसरेकी स्त्रीके साथ सहवास करने और ब्राह्मणका धन चुरानेसे मनुष्यको दूसरे जन्मम अरण्य तथा निर्जन देशम रहनेवाले ब्रह्मराक्षसकी योनि प्राप्त होती है। रत्नकी चारी करनेवाला निकृष्ट यानिमे जन्म लेता है। जो मनुष्य वृक्षके पत्ताकी और गन्धकी चोरी करता है, उसे छछुदरकी यानिमे जाना पडता है। धान्यकी चोरी करनेवाला चूहा यान चुरानवाला ऊँट तथा फलकी चोरी करनेवाला बदरकी योनिम जाता है। बिना मन्त्रोच्चारके भोजन करनेपर कौआ घरका सामान चुरानेवाला गिद्ध मधुकी चोरी करनेपर मधुमक्खी, फलकी चोरी करनेपर गिद्ध गायका चोरी करनेपर गाह और अग्निकी चारी करनेपर बगुलेकी यानि प्राप्त होती है। स्त्रियाका वस्त्र चुरानेपर श्वेत कुष्ठ और रसका अपहरण करनपर भोजन आदिम अरुचि हो जाती

१-सम्पस्पर्शनि श्वाससहयानसहासनात्। याजनाध्यापनाद्यौनात् पाप संक्रमते नृणाम्॥ (२।६५)

किये हुए अशुभ कर्मोंका फल

प्रयास करते हैं। उनके दाँतोंमें कटकटाहट होने लगती है। हे पक्षिराज! उनका शरीर वहाँकी उस ठंडकसे काँपने लगता है। वहाँ भूख-प्यास बहुत अधिक लगती है। इसके अतिरिक्त भी अनेक कष्टोंका सामना उन्हें वहाँ करना पड़ता है। वहाँ हिमखण्डका वहन करनेवाली वायु चलती है, जो शरीरकी हड्डियोंको तोड़ देता है। वहाँके

प्राणी भूखसे त्रस्त होकर मज्जा, रक्त और गल रही हड्डियोंको खाते हैं। परस्पर भेंट होनेपर वे सभी पापी एक-दूसरेका आलिंगन कर भ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार उस तमसावृत्त नरकमें मनुष्यको बहुत-से कष्ट झेलने पड़ते हैं।

हे पक्षिश्रेष्ठ! जो व्यक्ति अन्यान्य असंख्य पाप करता है, वह इस नरकके अतिरिक्त 'निकृन्तन' नामसे प्रसिद्ध
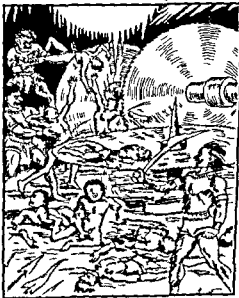
दूसरे नरकमें जाता है। हे खगेन्द्र! वहाँ अनवरत कुम्भकारके चक्रके समान चक्र चलते रहते हैं, जिनके ऊपर पापीजनोंको खड़ा करके यमके अनुचरोंके द्वारा अँगुलियोंमें स्थित कालसूत्रसे उनके शरीरको पैरसे लेकर शिरोभागतक छेदा जाता है। फिर भी उनका प्राणान्त नहीं होता। इसमें शरीरके सैकड़ों भाग टूट-टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और पुनः इकट्ठे हो जाते हैं। इस प्रकार यमदूत पापकर्मियोंको वहाँ हजारों वर्षतक चक्कर लगवाते रहते हैं। जब सभी पापोंका विनाश हो जाता है, तब कहीं जाकर उन्हें उस नरकसे मुक्ति प्राप्त होती है।

'अप्रतिष्ठ' नामका एक अन्य नरक है। वहाँ जानेवाले प्राणी असह्य दुःखका भोग भोगते हैं। वहाँ पापकर्मियोंके दुःखके हेतुभूत चक्र और रहट लगे रहते हैं। जबतक हजारों वर्ष पूरे नहीं हो जाते, तबतक वह रुकता नहीं। जो लोग उस चक्रपर बाँधे जाते हैं, वे जलके घटकी भाँति

उसपर घूमते रहते हैं। पुनः रक्तका वमन करते हुए उनकी आँतें मुखकी ओरसे बाहर आ जाती हैं और नेत्र आँतोंमें घुस जाते हैं। प्राणियोंको वहाँ जो दुःख प्राप्त होते हैं, वे बड़े ही कष्टकारी हैं।

हे गरुड! अब 'असिपत्रवन' नामक दूसरे नरकके विषयमें सुनो। यह नरक एक हजार योजनमें फैला हुआ है। इसकी सम्पूर्ण भूमि अग्निसे व्याप्त होनेके कारण अहर्निश जलती रहती है। इस भयंकर नरकमें सात-सात सूर्य अपनी सहस्र-सहस्र रश्मियोंके साथ सदैव तपते रहते हैं, जिनके संतापसे वहाँके पापी हर क्षण जलते ही रहते हैं। इसी नरकके मध्य एक

चौथाई भागमे 'शीतस्निग्धपत्र' नामका वन है। हे पक्षिश्रेष्ठ! उसमे वृक्षासे टूटकर गिरे फल और पत्ताके ढेर लगे रहते हैं। मासाहारी बलवान् कुत्ते उसमे विचरण करते रहते हैं। वे बडे-बडे मुखवाले, बडे-बडे दाँतावाले तथा व्याघ्रकी तरह महाबलवान् हैं। अत्यन्त शीत एव छायासे व्याप्त उस नरकको देखकर भूख-प्याससे पीडित प्राणी दु खी होकर करुण क्रन्दन करते हुए वहाँ

जाते हैं। तापसे तपती हुई पृथ्वीकी अग्निसे पापियोके दोनो पैर जल जाते हैं, अत्यन्त शीतल वायु बहने लगती है, जिसके कारण उन पापियोके ऊपर तलवारके समान तीक्ष्ण धारवाले पत्ते गिरते हैं। जलते हुए अग्नि-समूहसे युक्त भूमिमे पापीजन छिन्न-भिन्न होकर गिरते हैं। उसी समय वहाँके रहनेवाले कुत्तोका आक्रमण भी उन पापियोपर होने लगता है। शीघ्र ही वे कुत्ते रोते हुए उन पापियोके शरीरके मासको खण्ड-खण्ड करके खा जाते हैं।

हे तात! असिपत्रवन नामक नरकके विषयको मैंने बता दिया। अब तुम महाभयानक 'तप्तकुम्भ' नामवाले नरकका वर्णन मुझसे सुनो—इस नरकमे चारो ओर फैले हुए अत्यन्त गरम-गरम घडे हैं। उनके चारा ओर अग्नि प्रज्वलित रहती है, वे उबलते हुए तेल और लौहके चूर्णसे भरे रहते हैं। पापियाको ले जाकर उन्हींम औंधे मुख डाल दिया जाता है। गलती हुई मज्जारूपी जलसे युक्त उसीम फूटते हुए अङ्गावाले पापी काढाके समान बना दिये जाते हैं। तदनन्तर

भयकर यमदूत नुकीले हथियारासे उन पापियोकी खोपडी, आँखा तथा हड्डियाको छेद-छेदकर नष्ट करते हैं। गिद्ध बडी तेजीसे वहाँ आकर उनपर झपट्टा मारते हैं। उन उबलते हुए पापियाको अपनी चोचसे खींचते हैं और फिर उसीम छोड देते हैं। उसके बाद यमदूत उन पापियोके सिर, स्नायु, द्रवीभूत मास, त्वचा आदिको जल्दी-जल्दी करछुलसे उसी तेलमे घूमाते हुए उन महापापियोको काढा बना डालते हैं।

हे पक्षिन्! यह तप्तकुम्भ-जैसा है, उस बातको विस्तारपूर्वक मैंने तुम्हे बता दिया। सबसे पहले नरकको रौरव और दूसरे उसक बादवालेको महारौरव नरक कहा जाता है। तीसरे नरकका नाम अतिशीत एव चौथेका नाम निकृन्तन है। पाँचवाँ नरक अप्रतिष्ठ, छठा असिपत्रवन एव सातवाँ तप्तकुम्भ है। इस प्रकार ये सात प्रधान नरक हैं। अन्य भी बहुत-से नरक सुने जाते हैं, जिनमे पापी अपने कर्मोंके अनुसार जाते हैं। यथा—रोध, सूकर, ताल, तप्तकुम्भ, महाज्वाल, शबल, विमोहन, कृमि, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, विषञ्जन, अध शिर, पूयवह, रुधिरान्ध, विड्भुज, वैतरणी असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाघोर, सदश अभोजन, तमस्, कालसूत्र, लौहतापी, अभिद, अप्रतिष्ठ तथा अवीचि आदि।

सन्दंश, तप्तसूर्मि, वैतरणी अन्धकूप प्राणरोध और वज्रकण्टक-शाल्मली नरक

—ये सभी नरक यमके राज्यमे स्थित हैं। पापीजन पृथक्-पृथक् रूपसे उनम जाकर गिरते हैं। रौरव आदि सभी नरकोकी अवस्थिति इस पृथ्वीलोकसे नीचे मानी गयी है। जो मनुष्य गौकी हत्या, भ्रूणहत्या और आग लगानेका दुष्कर्म करता है, वह 'रोध' नामक नरकमे गिरता है। जो ब्रह्मघाती, मद्यपी तथा सोनेकी चोरी करता है, वह 'सूकर' नामके नरकमे गिरता है। क्षत्रिय और वैश्यकी हत्या करनेवाला 'ताल' नामक नरकम जाता है।

जो मनुष्य ब्रह्महत्या एव गुरुपत्नी तथा बहनके साथ सहवास करनेकी दुश्चेष्टा करता है, वह 'तप्तकुम्भ' नामक नरकमे जाता है। जो असत्य-सम्भापण करनेवाले राजपुरुष हैं, उनको भी उक्त नरककी ही प्राप्ति होती है। जो प्राणी निषिद्ध पदार्थोंका विक्रेता, मदिराका व्यापारी है तथा स्वामिभक्त सेवकका परित्याग करता है, वह 'तप्तलौह' नामक नरकको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति कन्या या पुत्रवधूके साथ सहवास करनेवाला है, जो वेद-विक्रेता और वेदनिन्दक है, वह अन्तमे 'महाज्वाल' नामक नरकका वासी होता है। जो गुरुका अपमान करता है, शब्दबाणसे उनपर प्रहार करता है तथा अगम्या स्त्रीके साथ मैथुन करता है, वह 'शबल' नामक नरकमे जाता है।

शौर्य-प्रदर्शनम जो वीर मर्यादाका परित्याग करता है, वह 'विमोहन' नामक नरकमे गिरता है। जो दूसरेका अनिष्ट करता है, उसे 'कृमिभक्ष' नामक नरककी प्राप्ति होती है। देवता और ब्राह्मणसे द्वेप रखनेवाला प्राणी 'लालाभक्ष' नरकमे जाता है। जो परायी धरोहरका अपहर्ता है तथा जो बाग-बगीचोमे आग लगाता है, उसे 'विपञ्जन' नामक नरककी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य असत्-पात्रसे दान लेता है तथा असत् प्रतिग्रह लेनेवाला, अयाज्ययाजक और जो नक्षत्रसे जीविकोपार्जन करता है, वह मनुष्य 'अध शिर' नरकमे जाता है। जो मदिरा मास आदि पदार्थोंका विक्रेता है, वह 'पूयवह' नामक घोर नरकमे गिरता है। जो कुक्कुट, बिल्ली सुअर, पक्षी, मृग, भेडको बाँधता है, वह भी उसी प्रकारके नरकमे जाता है। जो गृहदाही है, जो विपदाता है, जो कुण्डाशी है जो सोमविक्रेता है, जो मद्यपी है, जो मासभोजी है तथा जो पशुहन्ता है, वह व्यक्ति 'रुधिरान्ध' नामक नरकमे जाता है, ऐसा विद्वानोका अभिमत है। एक ही पक्तिम बैठे हुए किसी प्राणीको धोखा देकर जो लोग विष खिला देते हैं, उन सभीको 'विड्भुज' नामक घोर नरक प्राप्त होता है। मधु निकालनेवाला मनुष्य 'वैतरणी' और क्रोधी 'मूत्रसज्ञक' नामक नरकमे जाता है। अपवित्र और क्रोधी व्यक्ति 'असिपत्रवन' नामक नरकम जाता है। मृगोका शिकार करनेवाला व्याध 'अग्निज्वाल' नामक नरकम् जाता है, जहाँ उसके शरीरको नोच-नोचकर कौवे खाते हैं।

यज्ञकर्ममे दीक्षित हानेपर जो व्रतका पालन नहीं करता, उसे उस पापसे 'सदश' नरकमे जाना पडता है। यदि स्वप्नमे भी सन्यासी या ब्रह्मचारी स्खलित हो जाते हैं तो वे 'अभोजन' नामक नरकम जाते हैं। जो लोग क्रोध और हर्षसे भरकर वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध कर्म करते हैं, उन सबको नरकलोककी प्राप्ति होती है।

सबसे ऊपर भयकर गर्मीसे सतप्त रौरव नामक नरक है। उसके नीचे अत्यन्त दु खदायी महारौरव है। उस नरकसे नीचे शीतल और उस नरकके बाद नीचे 'तामस' नरक माना गया है। इसी प्रकार बताये गये क्रमसे अन्य नरक भी नीचे ही हैं।

इन नरकलोकोके अतिरिक्त भी सैकडो नरक हैं, जिनमे पहुँचकर पापी प्रतिदिन पकता है, जलता है, गलता है, विदीर्ण होता है, चूर्ण किया जाता है, गीला होता है, क्वाथ बनाया जाता है, जलाया जाता है और कहीं वायुसे प्रताडित किया जाता है—ऐसे नरकोमे एक दिन सौ वर्षके समान होता है। सभी नरकोसे भोग भोगनेके बाद पापी तिर्यक्-योनिमे जाता है। तत्पश्चात् उसको कृमि, कीट, पतग स्थावर तथा एक खुरवाले गधेकी योनि प्राप्त होती है। तदनन्तर मनुष्य जगली हाथी आदिकी योनियोमे जाकर गौकी योनिम पहुँचता है। हे गरुड। गधा, घोडा, खच्चर, गौर मृग, शरभ और चमरी—ये छ योनियाँ एक खुरवाली होती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-सी पापाचार-योनियाँ भी हैं, जिनम जीवात्माको कष्ट भोगना पडता है। उन सभी योनियोको पाकर प्राणी मनुष्य-योनिम आता है और कुबडा कुत्सित, वामन, चाण्डाल और पुल्कश आदि नर-

योनियोंमें जाता है। अवशिष्ट पाप-पुण्यसे समन्वित जीव बार-बार गर्भमें जाते हैं और मृत्युको प्राप्त होता है। उन सभी पापोंके समाप्त हो जानेके बाद प्राणीको शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय आदिकी आरोहिणी-योनि प्राप्त होती है। कभी-कभी वह सत्कर्मसे ब्राह्मण, देव और इन्द्रत्वके पदपर भी पहुँच जाता है।

हे गरुड! यमद्वारा निर्दिष्ट योनिमें पुण्यगति प्राप्त करनेमें जो प्राणी सफल हो जाते हैं, वे सुन्दर-सुन्दर गीत गाते, वाद्य बजाते और नृत्यादि करते हुए प्रसन्नचित्त गन्धर्वोंके साथ, अच्छे-से-अच्छे हार, नूपुर आदि नाना प्रकारके आभूषणोंसे युक्त, चन्दन आदिकी दिव्य सुगन्ध

और पुष्पोंके हारसे सुवासित एवं अलंकृत चमचमाते हुए विमानमें स्वर्गलोकको जाते हैं। पुण्य-समाप्तिके पश्चात् जब वे वहाँसे पुनः पृथ्वीपर आते हैं तो राजा अथवा महात्माओंके घरमें जन्म लेकर सदाचारका पालन करते हैं। समस्त भोगोंको प्राप्त करके पुनः स्वर्गको प्राप्त करते हैं अन्यथा पहलेके समान आरोहिणी-योनिमें जन्म लेकर दुःख भोगते हैं।

मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाले प्राणीका मरना तो निश्चित है। पापियोंका जीव अधोमार्गसे निकलता है। तदनन्तर पृथ्वीतत्त्वमें पृथ्वी, जलतत्त्वमें जल, तेजतत्त्वमें तेज, वायुतत्त्वमें वायु, आकाशतत्त्वमें आकाश तथा सर्वव्यापी मन चन्द्रमें जाकर विलीन हो जाता है। हे गरुड! शरीरमें काम, क्रोध एवं पञ्चेन्द्रियाँ हैं। इन सभीको शरीरमें रहनेवाले चोरकी संज्ञा दी गयी है। काम, क्रोध और अहंकार नामक विकार भी उसीमें रहनेवाले चोर हैं। उन सभीका नायक मन है। इस शरीरका संहार करनेवाला काल है, जो पाप और पुण्यसे जुड़ा रहता है। जिस प्रकार घरके जल जानेपर व्यक्ति अन्य घरकी शरण लेता है, उसी प्रकार पञ्चेन्द्रियोंसे युक्त जीव इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओंके साथ शरीरका परित्याग कर नये शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। शरीरमें रक्त-मज्जादि सात धातुओंसे युक्त यह षाट्कौशिक शरीर है। सभी प्राण, अपान आदि पञ्च वायु, मल-मूत्र, व्याधियाँ, पित्त, श्लेष्म, मज्जा, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र और स्नायु—ये सभी शरीरके साथ ही अग्निमें जलकर भस्म हो जाते हैं।

हे तार्क्ष्य! प्राणियोंके विनाशको मैंने तुम्हें बता दिया। अब उनके इस शरीरका जन्म पुनः कैसे होता है, उसको मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

यह शरीर नसोंसे आबद्ध, श्रोत्रादिक इन्द्रियोंसे युक्त और नवद्वारोंसे समन्वित है। यह सांसारिक विषय-वासनाओंके प्रभावसे व्याप्त काम-क्रोधादि विकारसे समन्वित, राग-द्वेषसे परिपूर्ण तथा तृष्णा नामक भयंकर चोरसे युक्त है। यह लोभरूपी जालमें फँसा हुआ और मोहरूपी वस्त्रसे ढका हुआ है। यह मायासे भलीभाँति आबद्ध एवं लोभसे अधिष्ठित पुरके समान है। सभी प्राणियोंका शरीर इनसे व्याप्त है। जो लोग अपनी आत्माको नहीं जानते हैं, वे पशुओंके समान हैं।

हे गरुड! चौरासी लाख योनियाँ हैं और उद्भिज्ज (पृथ्वीमें अंकुरित होनेवाली वनस्पतियाँ), स्वेदज (पसीनेसे जन्म लेनेवाले जुएँ और लीख आदि कीट), अण्डज (पक्षी) तथा जरायुज (मनुष्य)-में यह सम्पूर्ण सृष्टि विभक्त है। (अध्याय ३)

~~~~~
~~~~~

आसन्नमृत्यु-व्यक्तिके निमित्त किये जानेवाले प्रायश्चित्त, दस दान आदि विविध कर्म, मृत्युके बाद किये जानेवाले कर्म, षट्पिण्डदान, दाह-संस्कारसे पूर्व किये जानेवाले कर्म, दाह-संस्कारके बाद अस्थिसंचयनादि कर्म तथा गृहप्रवेशके समयके कर्म, दुर्मृत्युकी गति, नारायण-बलिका विधान, पुत्तलदाहविधि तथा पञ्चक मृत्युके कृत्य

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! जानमे या अनजानम मनुष्य जो भी पाप करते हैं, उन पापोकी शुद्धिके लिये उन्हे प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो विद्वान् है वह पहल पवित्र करनेवाले भस्म आदि दस स्नान करे और पापाके प्रायश्चित्तके रूपमें शास्त्रोक्त कृच्छ्रादि व्रत अथवा तत्प्रतिनिधिभूत गोदानादि क्रिया करे। यदि मनुष्य उनम अक्षमताके कारण सफल न हो रहा हो तो आधा ही सही, यदि आधा भी न हो तो उसका ही आधा सही और नहीं तो उस आधेका भी आधा उसे कुछ-न-कुछ प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये। तत्पश्चात् यथासामर्थ्य दस प्रकारके दान देनेका विधान है, उसको सुनो।

गो भूमि, तिल, हिरण्य, घृत, वस्त्र, धान्य, गुड, रजत और लवण—ये दस दान हैं—

गोभूमितिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडास्तथा ।
रजत लवण चैव दानानि दश वै विदु ॥ (४।४)

यमद्वारपर पहुँचनेके लिये जो मार्ग बताये गये हैं, वे अत्यन्त दुर्गन्धदायक मवादादि तथा रक्तादिसे परिव्याप्त हैं। अत उस मार्गमे स्थित वैतरणी नदीको पार करनेके लिये वैतरणी गौका दान करना चाहिये। जा गौ सर्वाङ्गम काली हो, जिसके स्तन भी काले हो, उसे वैतरणी गौ माना गया है[१]।

तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, भूमि और गौ—ये पापसे शुद्धिके लिये पवित्रतामे एकसे बढकर एक हैं। इन आठ दानोको महादान कहा जाता है। इनका दान उत्तम प्रकृतिवाले ब्राह्मणको ही देना चाहिये—

तिला लोह हिरण्य च कर्पास लवण तथा।
सप्तधान्य क्षितिर्गाव एकैक पावन स्मृतम्॥
एतान्यष्टौ महादानान्युत्तमाय द्विजातये। (४।७-८)

अब पददानका वर्णन सुनो। छत्र, जूता, वस्त्र, अगूठी, कमण्डलु, आसन, पात्र और भोज्यपदार्थ—य आठ प्रकारके पद हैं—

छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलु ।
आसन भाजन भोज्य पद चाष्टविध स्मृतम्॥ (४।९)

तिलपात्र, घृतपात्र, शय्या, उपस्कर तथा और भी जो कुछ अपनेको इष्ट हो, वह सब देना चाहिये। अश्व, रथ, भैंस, भोजन, वस्त्रका दान ब्राह्मणाको करना चाहिये। अन्य दान भी अपनी शक्तिके अनुसार देना चाहिये।

हे पक्षिराज! इस पृथ्वीपर जिसने पापका प्रायश्चित्त कर लिया है, वह दस प्रकारके दान भी दे चुका है, वैतरणी गौ एव अष्टदान कर चुका है, तिलस भरा पूर्ण पात्र, घीसे भरा हुआ पात्र शय्यादान और विधिवत् पददान करता है तो वह नरकरूपी गर्भमे नहीं आता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता—

प्रायश्चित्त कृत येन दश दानान्यपि क्षितौ॥
दान गोर्वैतरण्याश्च दानान्यष्टौ तथापि वा।
तिलपात्र सर्पि पात्र शय्यादान तथैव च॥
पददान च विधिवन्नासौ निरयगर्भग । (४।१२—१४)

पण्डित लोग स्वतन्त्र रूपसे भी लवण दान करनेकी इच्छा रखते हैं, क्याकि यह लवण-रस विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है, इस पृथ्वीपर मरणासन्न प्राणीके प्राण जब न निकल रहे हा तो उस समय लवण-रसका दान उसके हाथसे दिलवाना चाहिये, क्याकि यह दान उसके लिये

१-नदीं वैतरणीं तर्तुं दद्याद्वैतरणीं च गाम्। कृष्णस्तनी सकृष्णाङ्गी सा वै वैतरणी स्मृता॥ (४।६)

स्वर्गलोकके द्वार खोल देता है। मनुष्य स्वयं जो कुछ दान देता है, परलोकमें वह सब उसे प्राप्त होता है। वहाँ उसके आगे रखा हुआ मिलता है। हे पक्षिन्! जिसने यथाविधि अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है, वही पुरुष है। वही अपने पापोंको भस्मसात् करके स्वर्गलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है।

हे खगराज! गौका दूध अमृत है। इसलिये जो मनुष्य दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह अमृतत्वको प्राप्त करता है। पहले कहे गये तिलादिक आठ प्रकारके दान देकर प्राणी गन्धर्वलोकमें निवास करता है। यमलोकका मार्ग अत्यधिक भीषण तापसे युक्त है, अतः छत्रदान करना चाहिये। छत्रदान करनेसे मार्गमें सुख प्रदान करनेवाली छाया प्राप्त होती है। जो मनुष्य इस जन्ममें पादुकाओंका दान देता है, वह 'असिपत्रवन'के मार्गको घोड़ेपर सवार होकर सुखपूर्वक पार करता है। भोजन और आसनका दान देनेसे प्राणीको परलोकगमनके मार्गमें सुखका उपभोग प्राप्त होता है। जलसे परिपूर्ण कमण्डलुका दान देनेवाला पुरुष सुखपूर्वक परलोकगमन करता है।

यमराजके दूत महाक्रोधी और महाभयंकर हैं। काले एवं पीले वर्णवाले उन दूतोंको देखनेमात्रसे भय लगने लगता है। उदारतापूर्वक वस्त्र-आभूषणादिका दान करनेसे वे यमदूत प्राणीको कष्ट नहीं देते हैं। तिलसे भरे हुए पात्रका जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है, वह मनुष्यके मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये त्रिविध पापोंका विनाश कर देता है। मनुष्य घृतपात्रका दान करनेसे रुद्रलोक प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सभी साधनोंसे युक्त शय्याका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें नाना प्रकारकी अप्सराओंसे युक्त विमानमें चढ़कर साठ हजार वर्षतक अमरावतीमें क्रीडा करके इन्द्रलोकके बाद गिरकर पुनः इस पृथ्वीलोकमें आकर राजाका पद प्राप्त करता है। जो मनुष्य काठी आदि उपकरणोंसे सजे-धजे दोषरहित जवान घोड़ेका दान ब्राह्मणको देता है, उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। हे खगेश! दानमें दिये गये इस घोड़ेके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्ष (कालतक) स्वर्गके लोकोंका भोग दानदाताको प्राप्त होता है। प्राणी ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त चार घोड़ोंवाले रथका दान देकरके राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति सुपात्र ब्राह्मणको दुग्धवती, नवीन मेघके समान वर्णवाली, सुन्दर जघन-प्रदेशसे युक्त और मनमोहक तिलकसे समन्वित भैंसका दान देता है तो वह परलोकमें जाकर अभ्युदयको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तालपत्रसे बने हुए पंखेका दान करनेसे मनुष्यको परलोकगमनके मार्गमें वायुका सुख प्राप्त होता है। वस्त्र दान करनेसे व्यक्ति परलोकमें शोभासम्पन्न शरीर और उस लोकके वैभवसे सम्पन्न हो जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको रस, अन्न तथा अन्य सामग्रियोंसे युक्त घरका दान देता है, उसके वंशका कभी विनाश नहीं होता है और वह स्वयं स्वर्गका सुख प्राप्त करता है। हे खगेन्द्र! इन बताये गये सभी प्रकारके दानोंमें प्राणीकी श्रद्धा तथा अश्रद्धासे आयी हुई दानकी अधिकता और कमीके कारण उसके फलमें श्रेष्ठता और लघुता आती है।

इस लोकमें जिस व्यक्तिने जल एवं रसका दान किया है, वह आपद्कालमें आह्लादका अनुभव करता है। जिस मनुष्यने श्रद्धापूर्वक इस संसारमें अन्न-दान दिया है, वह परलोकमें अन्न-भक्षणके बिना भी वही तृप्ति प्राप्त करता है, जो उत्तमोत्तम अन्नके भक्षणसे प्राप्त होती है। मृत्युके संनिकट आ जानेपर यदि मनुष्य यथाविधि संन्यासाश्रमको ग्रहण कर लेता है तो वह पुनः इस संसारमें नहीं आता अपितु उसको मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

यदि मृत्युके समीप पहुँचे हुए मनुष्यको लोग किसी पवित्र तीर्थमें ले जाते हैं और उसकी मृत्यु उसी तीर्थमें हो जाती है तो उसको मुक्ति प्राप्त होती है तथा यदि प्राणी मार्गके बीच ही मर जाता है तो भी मुक्ति प्राप्त करता है साथ ही उसको तीर्थतक ले जानेवाले लोग पग-पगपर यज्ञ करनेके समान फल प्राप्त करते हैं—

आसन्नमरणो मर्त्यश्चेत्तीर्थं प्रतिनीयते।
तीर्थप्राप्तौ भवेन्मुक्तिर्म्रियते यदि मार्गगः।
पदे पदे क्रतुसमं भवेत्तस्य न संशयः॥
(४।३८)

हे द्विज! मृत्युके निकट आ जानेपर जो मनुष्य

विधिवत् उपवास करता है, वह भी मृत्युके पश्चात् पुन इस ससारमे नहीं लौटता है।

हे खगेश! मृत्युके सनिकट होनेपर कौन-सा दान करना चाहिये। इस प्रश्नका उत्तर मैंने बता दिया है। मृत्यु और दाहके बीच मनुष्यके क्या कर्तव्य हैं? इस प्रश्नका उत्तर अब तुम सुनो।

व्यक्तिको मरा हुआ जानकर उसके पुत्रादिक परिजनाको चाहिये कि वे सभी शवको शुद्ध जलसे स्नान कराकर नवीन वस्त्रसे आच्छादित करे। तदनन्तर उसके शरीरमें चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंका अनुलेप भी करे। उसके बाद जहाँ मृत्यु हुई है, उसी स्थानपर एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। दाहकर्मके पूर्व शवको दाहके योग्य बनानेक लिये ऊपर बताये गये कर्म अनिवार्य हैं। इस एकोद्दिष्ट श्राद्धमे आसन तथा प्रोक्षण क्रिया होनी चाहिये, किंतु आवाहन, अर्चन, पात्रालम्भन और अवगाहन—ये चार क्रियाएँ नहीं करनी चाहिये। उस समय पिण्डदान अनिवार्य है, अन्नदानका सकल्प भी हो सकता है। रेखाकरण प्रत्यवनेजन नहीं होता और दिये गये पदार्थके अक्षय्यकी कामना करनी चाहिये। अक्षय्योदक दान देना चाहिये। स्वधावाचन आशीर्वाद और तिलक—ये तीन नहीं होने चाहिये। उडदसे परिपूर्ण घट और लोहेकी दक्षिणा ब्राह्मणको प्रदान करनेका विधान है। तत्पश्चात् पिण्ड हिलाना चाहिये। किंतु उस समय आच्छादन, विसर्जन तथा स्वस्तिवाचन—ये तीन वर्जित हैं। हे खगेश! मरणस्थान द्वार, चत्वर, विश्रामस्थान, काष्ठ-चयन और अस्थि-सचयन—ये छ पिण्डदानके स्थान हैं।[1]

प्राणीकी मृत्यु जिस स्थानपर होती है, वहाँपर दिये जानेवाले पिण्डका नाम 'शव' है, उससे भूमिदेवताकी तुष्टि होती है। द्वारपर जो पिण्ड दिया जाता है उसे 'पान्थ' नामक पिण्ड कहते हैं। इस कर्मको करनेसे वास्तुदेवताको प्रसन्नता होती है। चत्वर अर्थात् चौराहेपर 'खेचर' नामक पिण्डका दान करनेपर भूतादिक, गगनचारी देवतागण प्रसन्न होते हैं। शवके विश्राम भूमिम 'भूत-सज्ञक' पिण्डका दान करनेसे दसो दिशाओंको सतुष्टि प्राप्त होती है। चितामे 'साधक' नामका और अस्थि-सचयनमे 'प्रेत-सज्ञक' पिण्ड दिया जाता है।

शवयात्राके समय पुत्रादिक परिजन तिल, कुश, घृत और ईंधन लेकर 'यमगाथा' अथवा वेदके 'यमसूक्त'का पाठ करते हुए श्मशानभूमिकी ओर जाते हैं। प्रतिदिन गौ, अश्व, पुरुष और बैल आदि चराचर प्राणियोको अपनी ओर खींचते हुए यम सतुष्ट नहीं होते हैं, जिस प्रकार कि मद्य पीनेवाला सतुष्ट नहीं होता[2]।

'ॐ अपेतेति०' इस यमसूक्तका[3] अथवा 'यमगाथा' का पाठ शवयात्राके मार्गमे करना चाहिये। सभी बन्धु-बान्धवाको दक्षिण दिशाम स्थित श्मशानकी वनभूमिम शवको ले जाना चाहिये। हे पक्षिन्! पूर्वोक्त विधिसे मार्गमे दो श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद श्मशानभूमिम पहुँचकर धीरेसे शवको पृथ्वीपर उतारते हुए दक्षिण दिशाकी ओर सिर स्थापित कर चिताभूमिमे पूर्वोक्त विधिके अनुसार श्राद्ध करना चाहिये। शव-दाहकी क्रियाके लिये पुत्रादिक परिजनोंको स्वय तृण, काष्ठ, तिल और घृत आदि ले जाना चाहिये। शूद्रोके द्वारा श्मशानम पहुँचायी गयी वस्तुओसे वहाँ किया गया सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाता है। वहाँपर सभी कर्म अपसव्य और दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिये। हे पक्षिराज! शास्त्रसम्मत विधिके अनुसार एक वेदीका निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर प्रेतवस्त्र अर्थात् कफनको दो भागामे फाड कर उसके आधे भागसे उस शवको ढक दे और दूसरे भागको श्मशानमें निवास करनेवाले प्राणीके लिये भूमिपर ही छोड दे। उसके बाद पूर्वोक्त विधिके अनुसार मरे हुए व्यक्तिके हाथमे पिण्डदान करे। तदनन्तर शवके सम्पूर्ण शरीरमें घृतका लेप करना चाहिये।

हे खगेश! प्राणीकी मृत्यु और दाह-सस्कारके बीच पिण्डदानकी जो विधि है, अब उसे सुनो।

पहले बताये गये मृतस्थान, द्वार, चौराहे, विश्रामस्थान तथा काष्ठसचयनस्थानम प्रदत्त पाँच पिण्डाका दान करनेसे शवम की आहुति (अग्निदाह)-की योग्यता आ जाती है, अथवा किसी प्रकारके प्रतिबन्धके कारण उपर्युक्त पिण्ड नहीं दिये गये ता शव राक्षसाके भक्षण योग्य हो जाता है। अत स्वच्छ भूमिपर बनी हुई वेदीको भलीभाँति मार्जन,

१-यहाँ एकोद्दिष्टका तात्पर्य मरणस्थानपर यथाविधान एक पिण्डके दानसे है।

२-अहरहर्नीयमानो गामश्व पुरुष वृषम्। वैवस्वतो न तृप्येत सुरया त्विव दुर्मति ॥ (४।५३) इसीका नाम यमगाथा है।

३-यजु०अ० ३५ 'यमसूक्त' कहलाता है।

उपलेपनके द्वारा शुद्ध कर उसके ऊपर यथाविधि अग्निको स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर पुष्प-अक्षत आदिसे क्रव्याद नामवाले अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके दाह करे। दाहकार्यमे चाण्डालके घरकी अग्नि, चिताकी अग्नि और पापीके घरकी अग्निका प्रयोग नहीं करना चाहिये और निम्नलिखित मन्त्रसे अग्निकी प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वं भूतकृज्जगद्योनिस्त्वं लोकपरिपालकः ॥
उपसंहर तस्मात्त्वमेनं स्वर्गं नयामृतम्।
(४।६४-६५)

'हे देव! आप भूतकृत् हैं। हे देव! आप इस संसारके योनिस्वरूप और सभीके पालनहार हैं। इसलिये आप इस शवका अपनेमे उपसंहार करके अमृतस्वरूप स्वर्गमे ले जाइये'।

इस प्रकार क्रव्याद देवकी विधिवत् पूजा कर शवको चिताकी अग्निमे जलानेका उपक्रम करना चाहिये। जब शवके शरीरका आधा भाग उस अग्निमे जल जाय तो उस समय क्रिया करनेवाले व्यक्तिको निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ॥
'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा'[१] ॥
(४।६६-६७)

अर्थात् हे देव! आप इसीसे उत्पन्न हुए हैं। यह शरीरी पुनः आपसे उत्पन्न हो। अमुक नामवाला यह प्राणी स्वर्गलोकको प्राप्त करे—ऐसा कहकर तिलमिश्रित आज्याहुति चितामे जल रहे शवके ऊपर छोड़े। उसके बाद भावविह्वल होकर उस आत्मीयजनके लिये रोना चाहिये। इस कृत्यको करनेसे उस मृतकको अत्यधिक सुख प्राप्त होता है।

दाह-क्रिया करनेके पश्चात् अस्थि-संचयन क्रिया करनी चाहिये। हे खगराज! दाहकी पीडाकी शान्तिके लिये प्रेत-पिण्ड भी प्रदान करे। तत्पश्चात् वहाँपर गये हुए सभी लोग चिताकी प्रदक्षिणा कर कनिष्ठादि क्रमसे सूक्त जपते हुए स्नानके लिये जलाशय आदिपर जायँ। वहाँ पहुँचकर अपने वस्त्रोंका प्रक्षालनकर पुनः उन्हें ही पहनकर मृत व्यक्तिका ध्यान करते हुए उसे जल-दान देनेकी प्रतिज्ञा करें और मृत व्यक्तिने प्रेतरूपमें जल-दान देनेकी आज्ञा दी है—ऐसी भावना करते हुए पुनः जलमें मौन धारणपूर्वक प्रवेश करें और यथाधिकार एक वस्त्र होकर अपनी शिखा खोलकर तथा अपसव्य होकर स्नान करें। यह स्नान दक्षिणाभिमुख होकर 'अपनः शोशुचदघम्'[२] इस वेदमन्त्रका उच्चारण करते हुए करना चाहिये। उस समय स्नान करनेवाले लोगोंको जलका आलोडन नहीं करना चाहिये। तत्पश्चात् किनारे आ करके अपनी शिखाको बाँध ले और सीधे कुशको दक्षिणाग्र करके दोनों हाथोंमे रखकर अञ्जलिसे तिलयुक्त जल लेकर पितृतीर्थसे दक्षिण दिशामें एक बार, तीन बार अथवा दस बार भूमिपर या पत्थरपर जल-दान करें। इस समय तिलाञ्जलि देनेवाले परिजनोंको कहना चाहिये कि 'हे अमुक गोत्रमें उत्पन्न अमुक नामवाले प्रेत! तुम मेरे द्वारा दिये जा रहे इस तिलोदकसे संतृप्त हो। मैं तुम्हें तिलाञ्जलि दे रहा हूँ, अतः इसको ग्रहण करनेके लिये तुम यहाँपर उपस्थित होओ'[३]।'

हे कश्यपपुत्र गरुड! तत्पश्चात् जलसे निकलकर वस्त्र पहनकर स्नान-वस्त्रको एक बार निचोड़कर पवित्र भूमिपर बैठ जायँ। शवदाह तथा तिलाञ्जलि देकर मनुष्यको अश्रुपात नहीं करना चाहिये, क्योंकि उस समय रोते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा आँख और मुँहसे गिराये आँसू एवं कफको मरा हुआ व्यक्ति विवश होकर पान करता है। अतः रोना नहीं चाहिये, अपितु यथाशक्ति क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर कोई पुराणज्ञ संसारकी अनित्यताको बताता हुआ मृतकके परिजनोंको इस प्रकारका उपदेश देकर शोकनिवारण करनेका प्रयत्न करे—'मनुष्यका यह शरीर केलेके वृक्षके समान बड़ा ही साररहित एवं जलके बुद्बुदेके समान क्षणभंगुर है। इसमें जो सारतत्त्वको खोजता है वह महामूर्ख है। यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायुतत्त्व—इन पाँच तत्त्वोंसे बना हुआ यह शरीर पुनः अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार उन्हीं पञ्चतत्त्वोंमें जाकर विलीन हो जाता है तो उसके लिये रोना क्या? जब पृथ्वी, समुद्र तथा देवलोक विनष्ट हो जाते हैं तो फेनके समान प्रसिद्ध यह मर्त्यलोक नष्ट नहीं होगा?' इस उपदेशको सुनकर वे सभी परिवारके सदस्य अपने घरको जायँ। पहलेसे घरके

१-यजु० ३५।२२ २-यजु० ३५।६

३-तिलोदककी अञ्जलि इस प्रकार कहकर देनी चाहिये—'अद्येहामुक गोत्रामुकप्रेतचिताग्निदाहजनिततापतृषोपशमाय एष तिलतोयाञ्जलिर्मद्दत्तस्तवोपतिष्ठताम्।

द्वारपर रखी हुई नीमकी पत्तियोको चबाकर आचमन करे। तदनन्तर अग्नि, जल, गोबर, श्वेत सरसो, दूर्वा, प्रवाल, वृषभ तथा अन्य माङ्गलिक वस्तुओका हाथसे स्पर्श करके पैरसे पत्थरका भी स्पर्श करे और धीरे-धीरे घरमे प्रवेश करे।

जो व्यक्ति विद्वान् है, वह अपने अग्निहोत्री परिजनकी मृत्यु होनेपर उसका दाह-सस्कार श्रौतकी अग्निके द्वारा ही यथाविधि करे। दो वर्षसे कम आयुवाले छोटे बालककी मृत्यु होनेपर उसको श्मशानभूमिमे गड्ढा खोदकर मिट्टीसे ढक देना चाहिये। उसके लिये उदक-क्रियाका विधान नहीं है। जो स्त्री पतिव्रता है, यदि वह मरे हुए पतिका अनुगमन करना चाहती है तो धर्मविहित नियमोके अनुसार पतिको प्रणाम करके चितामे प्रवेश करे। जो स्त्री जीवनके व्यामोहसे चितापर चढकर पुन बाहर आ जाती है, उसे 'प्राजापत्यव्रत' करना चाहिये।

मनुष्यके शरीरमे साढे तीन करोड रोये होते हैं, जो स्त्री पतिका अनुगमन करती है, उतने कालतक वह स्वर्गमें वास करती है। जिस प्रकार सर्पको पकडनेवाला सपेरा बिलसे सर्पको बलात् बाहर निकाल लेता है, उसी प्रकार पतिका अनुगमन करनेवाली सती नारी अपने पतिका उद्धार कर उसके साथ स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास करती है। अप्सराएँ उसका सम्मान करती हैं तथा वह पतिव्रता नारी तबतक पतिके साथ सुखोपभोग करती है, जबतक चौदह इन्द्रोकी अवधि पूर्ण नहीं हो जाती है। यदि पति ब्रह्महत्यारा कृतघ्न या मित्रघाती हो, फिर भी सधवा स्त्री मृत्यु होनेपर पतिके साथ सती होकर उसे पवित्र कर देती है। पतिके मर जानेपर जो स्त्री उसीके साथ अग्निमे अपने शरीरको भेट कर देती है, वह अरुन्धतीके समान आचरण करती हुई स्वर्गलोकमे जाकर सम्मान प्राप्त करती है।

पतिकी मृत्यु होनेपर जबतक स्त्री अपनेको चिताकी भेट नहीं चढा देती है, तबतक वह स्त्रीके शरीरसे किसी प्रकार मुक्त नहीं हो सकती है। जो स्त्री अपने पतिके साथ सती हो जाती है वह पितृकुल, मातृकुल और पतिकुल—इन तीनो कुलोको पवित्र कर देती है। जो स्त्री पतिके दु खमे दु खी सुखमे सुखी, विदेशगमनमे मलिनवसना, कृशकाय तथा मृत्यु होनेपर चितामे उसीके साथ जलकर मृत्युका सवरण करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता मानना चाहिये। पातिव्रतधर्मका पालन करनेवाली स्त्री पतिकी मृत्यु हो जानेपर पृथक् चितामे समारूढ होकर परलोक-गमनके योग्य नहीं होती। क्षत्रियादि सभी सवर्णा स्त्रियाको अपने पतिके साथ ही चितामे आरोहणकर परलोकसुख प्राप्त करना चाहिये। ब्राह्मणवर्णकी स्त्रीसे लेकर चाण्डालवर्णकी स्त्रीके लिये पतिके साथ चितामे जलकर सती होनेका विधान एक समान ही है। पतिकी मृत्युके समय जो स्त्रियाँ गर्भसे रहित हैं और जिनके छोटे-छोटे बच्चे नहीं हैं, उन सभीको सतीधर्मका पालन करना चाहिये।

हे पक्षिन्! मनुष्यके दाह-सस्कारकी जो विधि है, उसको सामान्य रूपसे मैंने तुम्हे सुना दिया है। अब और क्या सुनना चाहते हो?

इसपर गरुडने कहा—हे ससारके स्वामिन्! यदि प्रवासकालमे पतिकी मृत्यु हो जाती है और उसकी अस्थियाँ भी स्त्रीको नहीं प्राप्त होती हैं तो उसका दाह किस प्रकारसे करना चाहिये, यह बतानेकी कृपा करे।

श्रीकृष्णने कहा—ह गरुड! यदि प्रवासी पतिकी अस्थियाँ नहीं प्राप्त होती हैं तो मैं उसकी भी सद्गतिका विधान तुम्हे सुनाता हूँ। उस परम गोपनीय तत्त्वको तुम सुनो। जो प्राणी भूखसे पीडित होनेके कारण मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो व्याघ्रादि हिसक प्राणियाके द्वारा मारे जाते हैं, जिनकी मृत्यु गलेमे फाँसीका फन्दा लगानेसे हो जाती है, शरीरकी क्षीणताके कारण जिनकी मृत्यु होती है, जो हाथीके द्वारा मारे जाते हैं, जो विष, अग्नि, बैल और ब्राह्मण-शापसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, जिनकी मृत्यु हैजासे होती है, जो आत्मघाती हैं, जा गिरकर या रस्सी आदिके द्वारा किये गये बन्धन अथवा जलमे डूबनेसे मर जाते हैं, उनकी स्थितिको तुम सुनो।

जो सर्प, व्याघ्र, शृगधारी पशु, उपसर्ग (चेचक), पत्थर, जल, ब्राह्मण, जगली हिसक पशु, वृक्षपात और विद्युत्पातसे और लोहेसे, पर्वतपरसे गिरनेसे अथवा दीवालके गिरनेसे पहाडके खडे कगारसे, खाट या मध्य कक्षमे मृत्युको प्राप्त होते हैं, ऋतुमती, चाण्डाली, शूद्रा तथा धोबिन आदि त्याज्य स्त्रियोका ससर्ग, शारीरिक स्पर्श या

अधरोका पान करते हुए जो लोग मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो शस्त्राघातसे मरते हैं, विषैले कुत्तेक मुखका स्पर्श करनेसे जिनकी मृत्यु हो जाती है, विधि-विहीन रूपमे जो मृत्यु हो जाती हे, उसको दुर्मरण समझना चाहिये। उसी पापसे नरकोको भोगकर वे पुन प्रेतत्वको प्राप्त होते हैं। ऐसे व्यक्तिका दाह, उदकक्रिया और मरणनिमित्तक अन्य कृत्य तथा और्ध्वदैहिक कर्म नहीं करना चाहिये। इस प्रकारसे अपमृत्यु होनेपर पिण्डदानका कर्म भी वर्जित है। यदि प्रमादवश कोई पिण्डदान करता है तो वह उसे प्राप्त नहीं होता और अन्तरिक्षमे विनष्ट हो जाता है। अत लोकगर्हासे डरकर उसके शुभेच्छु पुत्र-पौत्र और सगोत्री जनोको मृतकके लिये 'नारायणबलि' करनी चाहिये। ऐसा करनपर ही उन्हे शुचिता प्राप्त होती है अन्यथा नहीं, यह यमराजका वचन है।

नारायणबलि किये जानेपर और्ध्वदैहिक कर्मकी योग्यता आ जाती है। अपमृत्यु होनेपर ऐसे प्राणीका शुद्धिकरण इसी कर्म (नारायणबलि)-से सम्भव है अन्यथा नहीं।

नारायणबलि सम्यक् रूपसे तीर्थम करना चाहिये। ब्राह्मणाके द्वारा भगवान् कृष्णके समक्ष नारायणबलि करानेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। पुराण, वेदके ज्ञाता ब्राह्मण सबसे पहले तर्पण करे। सभी प्रकारकी औषधियोंको और अक्षतको जलमे मिलाकर 'पुरुषसूक्त' या 'वैष्णवसूक्त'का उच्चारण करते हुए विष्णुके उद्देश्यसे सम्पन्न करना चाहिये। उसक बाद दक्षिणाभिमुख होकर प्रेत और विष्णुका इस प्रकार स्मरण करे—

अनादिनिधना देव शङ्खचक्रगदाधर ॥
अक्षय पुण्डरीकाक्ष प्रेतमोक्षप्रदो भव।
(४।११८-११९)

'हे देव! आप अनादि अजर और अमर हैं। हे देव! आप शख चक्र एव गदासे सुशोभित विष्णु हैं। आप कभी न विनष्ट होनेवाले परमात्मा हैं। हे पुण्डरीकाक्ष! आप इस प्रेतको मोक्ष प्रदान करनकी कृपा करे।'

वीतराग, विमत्सर, जितेन्द्रिय, शुचिष्मान् और धर्मतत्पर होकर वहींपर भक्तिपूर्वक एकादश श्राद्ध करे। उसक बाद वह सावधानमनसे विधिवत् जल, अक्षत, यव, गेहूँ और कँगनीका दान दे। उस समय शुभ हविष्यान्न, सुन्दर बनी हुई सोनेकी अगूठी, छत्र और पगडीका दान देना चाहिये। इन वस्तुओके अतिरिक्त दूध-मधुसे समन्वित सभी प्रकारके अन्न देना चाहिये। वस्त्र और पादुका समन्वित आठ प्रकारका पददान सुपात्रोको समभावसे दिया जाना चाहिये। पिण्डदान करनेके बाद मन्त्रोच्चारसहित गन्ध, पुष्प और अक्षतसे पूजा करे, तत्पश्चात् ब्राह्मणाको सम्मानसहित दान दे। शख, खड्ग अथवा ताम्रपात्रमें पृथक्-पृथक् तर्पण करना चाहिये। उसके बाद ध्यान-धारणासे सयुक्त होकर दोनो घुटनाके बल पृथ्वीपर अवस्थित होकर मन्त्रोच्चारपूर्वक उद्दिष्ट देवोके लिये पृथक्-पृथक् अर्घ्य प्रदान करे। पञ्चरत्नसे युक्त पृथक्-पृथक् पाँच कुम्भोमे ब्रह्मा विष्णु, रुद्र यम और प्रेत—इन पाँचोको स्थापित करना चाहिये। इसके अतिरिक्त वस्त्र, यज्ञोपवीत मूँग और पददान पृथक्-पृथक् स्थापित करे। यथाविधि उन देवोके लिये पाँच श्राद्ध करना चाहिये। शख या ताम्रपात्र न मिलनेपर मृण्मयपात्रमे सर्वोषधिसे युक्त तिलोदक लेकर प्रत्येक पिण्डपर पृथक्-पृथक् जलधारा देनी चाहिये। तिलसे पूर्ण ताम्रपात्र दक्षिणा और स्वर्णसे युक्त तथा पददान मुख्य ब्राह्मणोको देना चाहिये। यमके निमित्त दक्षिणासहित तिल और लोहेका दान देना चाहिये। विष्णुदेवके लिय यथाशक्ति विधिपूर्वक बलि प्रदान करनेपर मृत व्यक्तिका नरकलोकसे उद्धार हो जाता है इसमे तनिक भी सदेह नहीं है।

जो व्यक्ति सर्पदशसे मर जाता हे उसके विषयमें विशेष बात मुझसे सुनो—

एक भार सोनेकी नागप्रतिमा बनवाकर गौके सहित विधिवत् उसका दान ब्राह्मणको कर देना चाहिये। ऐसा करके पुत्र अपने पिताके ऋणसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार सर्पबलि देकर मनुष्य सर्पदोषके पापसे दूर हो जाता

१-अकस्मात् किसी ऐसी स्थितिमे मरण हो रहा है जब मरणासन्न व्यक्तिके लिये शास्त्रोक्त विधियाँ सम्पन्न नहीं हो पाती हैं तब ऐसा मरण विधि-विहीन मरण माना जाता है।

है। हे गरुड! उसके बाद सर्वौषधिसे समन्वित पुत्तलका निर्माण करना चाहिये। पुत्तलके निर्माणमें पलाश और वृन्तोंका विभाग सुनो—

काले मृगका चर्म बिछाकर उसके ऊपर कुशसे निर्मित एक पुरुषकी आकृति बनानी चाहिये। तीन सौ साठ वृन्तोंसे मनुष्यकी अस्थियोंका निर्माण होता है। उन वृन्तोंका विन्यास इन अङ्गोंमें पृथक्-पृथक् रूपसे करना चाहिये। चालीस वृन्त शिरोभाग, दस वृन्त ग्रीवा, बीस वृन्त वक्ष स्थल, बीस वृन्त उदर, सौ वृन्त दोनों बाहु, बीस वृन्त कटि, सौ वृन्त दोनों उरुभाग, तीस वृन्त दोनों जघा प्रदेश, चार वृन्त शिश्न, छः वृन्त दोनों अण्डकोश और दस वृन्त पैरकी अंगुली भागमें स्थापित करनेका विधान है। इसके बाद शिरोभागमें नारियल, तालु प्रदेशमें लौकी, मुखमें पञ्चरत्न, जिह्वामें कदलीफल, आँतोंके स्थानमें कमलनाल, नासिका भागमें बालू, वसाके स्थानमें मिट्टी, हरिताल और मनःशिल, वीर्यके स्थानपर पारद, पुरीषके स्थानपर पीतल, शरीरमें मनःशील, संधिभागोंमें तिलका पाक, मांसके स्थानपर पिसा हुआ यव, रक्तके स्थानपर मधु, केशराशिके स्थानपर जटाजूट, त्वचाके स्थानपर मृगचर्म, दोनों कानके स्थानपर तालपत्र, दोनों स्तनोंके स्थानपर गुञ्जाफल, नासिका भागमें शतपत्र, नाभिमण्डलमें कमल, दोनों अण्डकोशोंके स्थानपर बैंगन, लिङ्गभागमें बढ़िया सुन्दर गाजर, नाभिमें घी, कौपीनके स्थानपर त्रपु अर्थात् लाह, स्तनोंमें मोती, ललाटपर कुंकुमका लेप, कर्पूर एवं अगुरु धूप, सुगन्धित मालाका अलंकरण, पहननेके लिये हृदयमें पट्टसूत्रका विन्यास करना चाहिये। उसकी दोनों भुजाओंमें ऋद्धि एवं वृद्धि, दोनों नेत्रोंमें कौड़ी, दाँतोंमें अनारके बीज, अँगुलियोंके स्थानमें चम्पाके पुष्प और नेत्रोंके कोण भागमें सिन्दूर भरकर ताम्बूल आदि शोभादायक अन्य पदार्थ भी भेंट करना चाहिये।

इस प्रकार सर्वौषधियुक्त उस प्रेतकी विधिवत् पूजा कर यदि मृत व्यक्ति अग्निहोत्री रहा हो तो उसके अङ्गोंमें यथाक्रम यज्ञ-पात्र स्थापित करे। तदनन्तर 'स्त्रिय पुनन्तु मे शिर०' तथा 'इमं मे वरुणेन च०' इन मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित शालग्रामशिलायुक्त जलसे उक्त प्रेतको पवित्र करके भगवान् विष्णुको उद्देश्य कर सुशीला, दूध देनेवाली गौका दान देना चाहिये। तत्पश्चात् तिल, लौह, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, पृथ्वी तथा गौ, जो एक-से-एक बढ़कर पवित्र बताये गये हैं, उनका भी दान करना चाहिये। उसके बाद तिल-पात्र तथा पददान भी करना चाहिये। तदनन्तर प्रेतकी मुक्तिके लिये वैष्णव श्राद्ध करे। उसके बाद श्राद्धकर्ता हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके प्रेतमोक्षका कार्य सम्पन्न करे।

उक्त विधिसे बनाये गये पुत्तलका विधिपूर्वक दाह करना चाहिये। तत्पश्चात् उसकी शुद्धिके लिये पुत्रादि संस्कर्ता प्रायश्चित्त करे। जिसमें तीन, छः, बारह तथा पंद्रह कृच्छ्रव्रत करनेका विधान है। प्रायश्चित्त कर्ममें असमर्थ होनेपर गाय, सुवर्णादिका दान अथवा तत्प्रतिनिधिभूत द्रव्यका दान करना चाहिये। विद्वान्‌को इस प्रकार अपनी शुद्धि करनी चाहिये। अशुद्ध दाताके द्वारा अशुद्धको उद्देश्य करके जो कुछ श्राद्ध तथा दानादिक किया जाता है, वह सब कुछ अन्तरिक्षमें ही विनष्ट हो जाता है। अतः विधिवत् शुद्ध होकर मनुष्यको दाहादिक और्ध्वदैहिक कर्म करना चाहिये।

हे गरुड! जो प्राणी बिना प्रायश्चित्त किये ही दाहादिक कर्म ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक करता है, वह वहन, अग्निदान, जलदान, स्नान, स्पर्श, रज्जुछेदन तथा अश्रुपात करके तप्तकृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होता है। जो शवको ले जाता है अथवा दाह-संस्कार करता है, वह कटोदक-क्रिया करके कृच्छ्रसान्तपनव्रत करे। छोटे दोषको दूर करनेके लिये छोटा और बड़े दोषको दूर करनेके लिये बड़ा प्रायश्चित्त करना चाहिये।

गरुडने कहा—हे प्रभो! कृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र तथा सान्तपन—ये जो तीन प्रायश्चित्त व्रत आपने बताये हैं, इन तीनोंके लक्षणोंको भी मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल, तीन दिन अयाचित हविष्यान्नका आहार और तीन दिनका उपवास क्रमशः जिस व्रतमें किया जाता है, वह 'कृच्छ्रव्रत' कहलाता है[1]।

१-त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। उपवासस्त्र्यहश्चैव एष कृच्छ्र उदाहृतः॥ (४।१६३)

जिस व्रतमें क्रमशः एक दिन गरम दूध, दूसरे दिन गरम घी तथा तीसरे दिन गरम जल पानकर चौथे दिन एक रात्रिका उपवास किया जाता है, उसका नाम 'तप्तकृच्छ्र' व्रत है[1]। जब गोमूत्र, गोमय, गोदधि, गोदुग्ध और कुशोदक—इन पाँच पदार्थोंको क्रमशः एक-एक दिन पान करके पुनः कृच्छ्रव्रतका उपवास किया जाता है तो उसको 'सान्तपनव्रत' कहा जाता है[2]।

हे पक्षिन्! पापी व्यक्तिके मरनेपर कौन-सी क्रिया करनी चाहिये, यह मैंने तुम्हें बता दिया है। पुत्तलदाहमें (पुत्तलके हृदयपर रखा) जलता हुआ दीपक जब बुझ जाय तो उस समय उसकी मृत्यु समझनी चाहिये। तदनन्तर अग्निदाह करे और तीन दिनका सूतक करे। दशाह और गर्तपिण्ड करना चाहिये। इस विधिका सम्यक् पालन करनेसे प्रेत मुक्ति प्राप्त करता है। यदि किसीके मरणका भ्रम होनेसे उसकी प्रतिकृतिका दाह-संस्कार हो जाय और वह मनुष्य उसके बाद आ जाय तो उसे ले जाकर घृतकुण्डमें स्नान कराना चाहिये। तदनन्तर जातकर्मादि संस्कार पुनः किये जायँ। ऐसे पुरुषको अपनी विवाहिता पत्नीसे विधिवत् पुनर्विवाह कर लेना चाहिये। हे खग! यदि विदेशमें गये किसी व्यक्तिको पन्द्रह अथवा बारह वर्ष बीत गये हों और उसका इस अवधिके बीच कोई समाचार नहीं प्राप्त होता है तो उसकी प्रतिकृति बनाकर उसका दाह-संस्कार कर डालना चाहिये।

हे गरुड! रजस्वला और सूतिका स्त्रीके मरनेपर कौन-सा विशेष कर्म करना धर्मसम्मत है, अब उसको तुम सुनो—सूतिका स्त्रीकी मृत्यु होनेपर याज्ञिकजन कुम्भमें जल और पञ्चगव्य लाकर पुण्यजनित मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके उससे स्वयंको शुद्ध करें। उसके बाद सौ शूपजलसे विधिपूर्वक शवको स्नान कराके पुनः उसको पञ्चगव्यसे स्नान कराये। फिर कपड़ेसे बनायी गयी आकृतिके साथ यथाविधि जला देना चाहिये।

पञ्चककालमें मृत्यु होनेपर दाह-संस्कारकी विधि क्या है? उसको मैं कहता हूँ, तुम सुनो—

हे खगेश! मासके प्रारम्भमें धनिष्ठा नक्षत्रके अर्धभागसे लेकर रेवती नक्षत्रतक पञ्चककाल होता है। इसको सदैव दोषपूर्ण एवं अशुभ मानना चाहिये। इस कालमें मरे हुए व्यक्तिका दाह-संस्कार करना उचित नहीं है। यह काल सभी प्राणियोंमें दुःख उत्पन्न करनेवाला है। ऐसे दिनोंमें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोगोंको जलतक नहीं देना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे सर्वदा अशुभ होता है। अतः पञ्चककालके समाप्त होनेपर ही मृतकके सभी कर्म करने चाहिये अन्यथा पुत्र और सगोत्रके लिये कष्ट ही होता है। इन नक्षत्रोंमें मृतकका दाह-संस्कार करनेपर घरमें किसी-न-किसी प्रकारकी हानि होती है।

हे गरुड! इन नक्षत्रोंके मध्यमें मनुष्योंका दाह-संस्कार आहुति प्रदान करके विधिपूर्वक किया जा सकता है। सुयोग्य ब्राह्मणोंको वैदिक मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक उसका संस्कार करना चाहिये। अतः शवस्थानके समीपमें कुशसे चार पुत्तलक बनाकर नक्षत्र मन्त्रोंसे उनको अभिमन्त्रित करके रख दे। तदनन्तर उन्हीं पुत्तलकोंके साथ मृतकका दाह-संस्कार करे। अशौचके समाप्त हो जानेपर मृतकके पुत्रोंद्वारा शान्ति एवं पौष्टिक कर्म भी होना चाहिये।

जो मनुष्य इन पञ्चक नक्षत्रोंमें मर जाता है उसको सद्गतिकी प्राप्ति नहीं होती। अतएव मृतकके पुत्रोंको उसके कल्याणहेतु तिल, गौ, सुवर्ण और घीका दान देना चाहिये। समस्त विघ्नोंका विनाश करनेके लिये ब्राह्मणोंको भोजन, पादुका, छत्र, सुवर्णमुद्रा तथा वस्त्र देना चाहिये। यह दान मृतकके समस्त पापोंका विनाशक है और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये इससे समस्त पापोंका विनाश होता है। (अध्याय ४)

१-तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत्। एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः॥ (४।१६४)

२-गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। जग्ध्वा परेऽहन्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरन्॥ (४।१६५)

आशौचमे विहित कृत्य, आशोचकी अवधि, दशगात्रविधि, प्रथमषोडशी, मध्यमषोडशी तथा उत्तमषोडशीका विधान, नौ श्राद्धोका स्वरूप, वार्षिक कृत्य, जीवका यममार्गनिदान, मार्गमे पडनेवाले षोडश नगरोमे जीवकी यातनाका स्वरूप, यमपुरीमे पापात्माओ और पुण्यात्माओको घोर तथा सौम्यरूपमे यमराजके दर्शन

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड। इस प्रकार मृत पुरुषका दाह-सस्कार करके स्नान और तिलोदक कर्म कर स्त्रियाँ आगे-आगे तथा पुरुष उनके पीछे-पीछे घर आये। द्वारपर पहुँचकर वे सभी मृत व्यक्तिका नाम लेकर रोते हुए नीमकी पत्तियोका प्राशन कर पत्थरके ऊपर खडे होकर आचमन करे। तदनन्तर सभी पुत्र-पौत्र आदि तथा सगोत्री परिजन घरमे जाकर जो दस रात्रियोका अशौच-कर्म है, उसको पूरा करे। इस कालमे उन सभीको बाहरसे खरीदकर भोजन करना चाहिये। रात्रिम वे अलग-अलग आसनपर सोये। क्षार तथा नमकसे रहित भोजन किया जाय। वे सभी तीन दिनतक शोकम डूबे रहे। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके अमासभोजी होकर पृथ्वीपर ही सोये। उन सभीक बीच परस्पर शरीरका स्पर्श न हो। वे इस अशौचकालके अन्तरालम दान एव अध्ययन-कर्मस दूर रह। दु खसे मलिन, उत्साहहीन, अधोमुख-कातर एव भोग-विलाससे दूर होकर वे अङ्गमर्दन और सिर धोना भी छोड द। इस अशौचकी अवधिमे मिट्टीके बने पात्र या पत्तलोमे भोजन करना चाहिये। एक या तीन दिनतक उपवास करे।

गरुडने कहा—हे प्रभो! अशौचियोंके अशौचके विषयमे आपने कह दिया, पर वह अशौच कितने समयतक रहेगा? उसके लक्षण क्या हैं? उससे सलिप्त लोगोको उस कालमे कैसा जीवन व्यतीत करना चाहिये? इन सभी बाताको भी आप बतानेकी कृपा करे।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश। यह अशौच तो विधिसम्मत समय और क्रिया आदिके द्वारा शीघ्र ही समाप्त करनेके योग्य होता है, क्याकि प्राणी इस कालम पिण्डदान अध्ययन और अन्य प्रकारके दान-पुण्यादिक सत्कर्मोसे दूर हो जाता है। सपिण्डियामे मरणाशौच दस दिनका माना जाता है। जो लोग भलीभाँति शुद्धि प्राप्त करनकी इच्छा रखते हैं, उनके लिये पुत्रादिके जन्म लेनेपर भी इसी प्रकार अशौच होता है। समानोदकाके जननाशौचमे तीन रात्रिमे शुद्धि होती है। जो मृतकको जल देनेवाले हैं, वे मरणाशौचम भी तीन दिनाके पश्चात् शुद्ध हो जाते हैं। दाँत निकलनेतक मरणाशौच होनेपर वह सद्य समाप्त हो जाता है। यदि चूडाकरण-सस्कार हो जानेके बाद बालककी मृत्यु हो जाती है तो एक रात्रिका अशौच होता है। उपनयन (जनेऊ)-सस्कार हानेके पूर्वतक तीन दिन और उसके बाद दस दिनका अशौच हाता है—

> आ दन्तजननात्सद्य आ चौलान्नैशिकी स्मृता।
> त्रिरात्रमाव्रतादशाद्दशरात्रमत परम्॥ (५।१२)

हे पक्षिन्! तुम्ह मैंने अशौच बता दिया। अब मैं सक्षेपमे प्रसगप्राप्त अशौचक विषयमे तुम्ह बताता हूँ। हे काश्यप! सूत्रसे बँधे हुए तीन काष्ठोकी तिगाडियाको रात्रिम आकाशके नीचे स्थापित करके चौराहेपर खडा कर दे और 'अत्र स्नाहि०' एव 'पिबात्र०'[1] इस मन्त्रोच्चारके साथ उसके ऊपर मिट्टीके पात्रम जल और दूध रख दे। सस्कर्ता अपने सगोत्रियोके साथ पहले तीसरे, सातव अथवा नवे दिन अस्थि-सचयन कर। जो सगोत्री हैं, वे मृतकके ऊर्ध्वभागकी अस्थियाका ही स्पर्श कर सकत हैं। समानादकी भी सभी क्रियाआके योग्य हैं। प्रतको पिण्डदान बाहर ही कर। इस क्रियाको करनेके लिये सबसे पहले स्नान करके सयतमना होकर उत्तर दिशामे चरुका निमाण कर [illegible] प्राणीके लिये भूमिपर तथा सस्कार-सम्पन्न [illegible] नो दिनाम नौ पिण्ड देना चाहिय। उसके [illegible] दसवाँ पिण्डदान करे। तदनन्तर चाह [illegible] हो [illegible] असगोत्री, चाहे स्त्री हो या पुरुष [illegible] पवित्र हो जाता ह। पहले दिन [illegible]

१-श्मशानानलदग्धोऽसि परित्यक्तोऽसि बान्धवै। इद नार इद क्षीर अत्र स्नाहि इद पिब॥

करता है, उस ही दसवें दिनतक प्रेतकी अन्य समस्त क्रियाएँ करनी चाहिये। चाहे चावल हो, चाहे सत्तू हो, चाहे शाक हो, पहले दिन जिससे पिण्डदान करे, उससे ही दस दिनतक पिण्डदान करना चाहिये।

हे गरुड! जबतक यह प्रेतजन्य अशौच रहता है तबतक प्रेतका प्रतिदिन एक-एक अञ्जलि बढाते हुए जल-दान देनेका विधान है अथवा जिस दिन यह देना हो उस दिनकी सख्याके अनुसार वर्धमानक्रमसे उतनी अञ्जलि जल-दान करे। इस प्रकार दसवे दिन पचपन अञ्जलि पूर्ण करे। यदि अशौच दो दिन बढ जाता है तो पुन उसी क्रमके अनुसार सौ अञ्जलि जल और देना चाहिये। यदि वह अशौच तीन दिनका ही है तो दस अञ्जलि ही जल देना चाहिये। हे पक्षिन्! इस जलदानका क्रम यह है कि अशौचके पहले दिन तीन, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन तीन अञ्जलि जल देना चाहिये। हे गरुड! जब शताञ्जलि जल-दानकी क्रिया सम्पन्न की जाती है तो उस विधानके अनुसार पहले दिन तीस, दूसरे दिन चालीस तथा तीसरे दिन तीस अञ्जलि जल दिया जाता है।

इस प्रकार दोनो पक्षोमे जलाञ्जलियोकी सख्याका निर्धारण करना चाहिये। इन सभी पितृक्रियाओको सम्पन्न करनेका मुख्य अधिकारी पुत्र ही होता है। इस प्रेतश्राद्धमें दूध या जलसे पिण्डका सेचन तथा पुष्प-धूपादिक पदार्थस पिण्डका पूजन बिना मन्त्रोच्चार किये ही करना चाहिये। दसवे दिन केश, श्मश्रु, नख और वस्त्रका परित्याग करके गाँवके बाहर स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण जल, क्षत्रिय वाहन वैश्य प्रतोद (चाबुक) अथवा रश्मि तथा शूद्र छडीका स्पर्श करके पवित्र होता हैं। मृतसे अल्प वयवाले सपिण्डोको मुण्डन कराना चाहिये।[१]

छ और दस इस प्रकार सोलह पिण्डदान करके षोडशी कर्म सम्पन्न करनेका विधान है। यह मलिनषोडशी मृत दिनसे दस दिनम पूर्ण होती है। हे पक्षिश्रेष्ठ! पुत्रादि दस दिनतक जा पिण्डदान करते हैं, य प्रतिदिन चार भागाम विभाजित हो जाते हैं। उसम प्रथम दो भागसे आतिवाहिक शरीर, तीसरे भागसे यमदूत और चौथे भागसे वह मृतक स्वय तृप्त होता है।

नौ दिन और रात्रिमे वह शरीर अपने अगोसे युक्त हो जाता है। प्रथम पिण्डदानसे प्रेतके शिरोभागका निर्माण होता है। दूसरे पिण्डदानसे उसके कान-नेत्र और नाककी सृष्टि होती है। तीसरे पिण्डदानसे क्रमश —कण्ठ, स्कन्ध, बाहु एव वक्ष स्थल, चौथे पिण्डदानसे नाभि, लिग और गुदाभाग तथा पाँचवे पिण्डदानसे जानु, जघा और पैर बनते हैं। इसी प्रकार छठे पिण्डदानसे सभी मर्मस्थल, सातवे पिण्डदानसे नाडीसमूह, आठव पिण्डदानसे दाँत और लोम तथा नवें पिण्डदानसे वीर्य एव दसव पिण्डदानसे उस शरीरमे पूर्णता, तृप्ति और भूख-प्यासका उदय होता है—

> अहोरात्रैस्तु नवभिर्देहो निष्पत्तिमाप्नुयात्।
> शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते तथा॥
> द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिक तु समासत।
> गलासभुजवक्षश्च तृतीयेन तथा क्रमात्॥
> चतुर्थेन च पिण्डेन नाभिलिङ्गगुद तथा।
> जानुजघ तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा॥
> सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडय।
> दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यन्तु नवमेन च॥
> दशमेन तु पूर्णत्व तृप्तता क्षुद्विपर्यय।
> (५।३३—३७)

हे वैनतेय! अब मैं मध्यमषोडशी विधिका वर्णन करता हूँ। उसको सुनो।

विष्णुसे आरम्भ करके विष्णुपर्यन्त एकादश श्राद्ध तथा पाँच देवश्राद्ध इस प्रकार षोडश श्राद्ध किये जाते हैं। इन्हींका नाम मध्यमषोडशी है। यदि प्रेतकल्याणके निमित्त 'नारायणबलि' की जाय तो उसको एकादशाहके दिन करना चाहिये और उसी दिन वहींपर वृषोत्सर्ग भी करना चाहिये। जिस जीवका ग्यारहवे दिन वृषोत्सर्ग नहीं होता सैकडों श्राद्ध करनेपर भी उस जीवकी प्रेतत्वसे मुक्ति नहीं होती है। वृषोत्सर्ग बिना किये ही जो पिण्डदान किया जाता है, वह पूर्णतया निष्फल होता है। उससे प्रेतका कोई

१-अन्त्यकर्मश्राद्धप्रकाश पृष्ठ ४० की टिप्पणीके अनुसार मृत व्यक्तिसे अवस्थामें जो लोग कनिष्ठ हैं उन्हें मुण्डन कराना चाहिये—यह कुछ लोगोंका मत है। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि जितने लोग मरणके दुःखका अनुभव करते हैं उन सभीको मुण्डन कराना चाहिये। इन दोनों मतोंको अपने-अपने परम्पराके अनुसार स्वीकार किया जा सकता है।

उपकार नहीं होता।[1] इस पृथ्वीपर वृषोत्सर्गके बिना कोई अन्य उपाय नहीं है, जो प्रेतका कल्याण करनेमे समर्थ हो। अत पुत्र, पत्नी, दौहित्र (नाती), पिता अथवा पुत्रीको स्वजनकी मृत्युके पश्चात् निश्चित ही वृषोत्सर्ग करना चाहिये। चार बछियोसे युक्त, विधानपूर्वक अलकृत वृष, जिसके निमित्त छोडा जाता है उसको प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होती। यदि एकादशाहके दिन यथाविधान साँड उत्सर्ग करनेके लिये उपलब्ध नहीं है तो विद्वान् ब्राह्मण कुश या चावलके चूर्णसे साँडका निर्माण करके उसका उत्सर्ग कर सकता है। यदि बादमे भी वृषोत्सर्गके समय किसी प्रकार साँड नहीं मिल रहा है तो मिट्टी या कुशसे ही साँडका निर्माण करके उसका उत्सर्ग करना चाहिये। जीवनकालमे प्राणीको जो भी पदार्थ प्रिय रहा हो उसका भी दान इसी एकादशाह श्राद्धके दिन करना उचित है। इसी दिन मरे हुए स्वजनको उद्देश्य बनाकर शय्या, गौ आदिका दान भी करना चाहिये। इतना ही नहीं उस प्रेतकी क्षुधा-शान्तिके लिये बहुतसे ब्राह्मणोको भोजन भी कराना चाहिये।

हे विनतापुत्र गरुड! अब मैं तृतीय षोडशी (उत्तम-षोडशी)-श्राद्धका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनो।

प्रत्येक बारह मासके बारह पिण्ड, ऊनमासिक (आद्य) त्रिपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक एव ऊनाब्दिक—इन्हे मतभेदसे तृतीय अथवा उत्तमषोडशी भी कहा जाता है।

बारहवे दिन, तीन पक्षमें, छ महीनेम अथवा वर्षके अन्तमें सपिण्डीकरण करना चाहिये। जिस मृतकके निमित्त इन षोडश श्राद्धोको सम्पन्न करके ब्राह्मणोको दान नहीं दिया जाता है, उस प्रेतके लिये अन्य सौ श्राद्ध करनेपर भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। हे खगेश! मृतक व्यक्तिके एकादशाह अथवा द्वादशाह तिथिमे आद्यश्राद्ध करनेका विधान माना गया है। प्रतिमासका श्राद्ध मासके आद्यतिथिमे मृत-तिथिपर होना चाहिये। ऊनश्राद्ध (ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक तथा ऊनाब्दिक)-मास, छठ मास और वर्षमे एक, दो अथवा तीन दिन कम रहनेपर करना चाहिये[2]। सपिण्डीकरण वर्ष पूर्ण होनेके बाद अथवा छ महीने बाद करना चाहिये अथवा आभ्युदयिक (विवाहादि मङ्गल-कार्य अनिवार्य रूपसे उपस्थित होनेपर) कार्य आनेपर तीन पक्ष अथवा बारह दिनके बाद करना चाहिये। मनुष्योके कुलधर्म असख्य हैं, उनकी आयु भी क्षरणशील है और शरीर अस्थिर है। अत बारहवें दिन सपिण्डीकरण करना उत्तम है।

हे पक्षिराज! सपिण्डीकरण श्राद्धोके सम्पादकीय विधि भी मुझसे सुनो।

हे काश्यप! एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार यह कार्य करना चाहिये[3]। तिल, गन्ध और जलसे परिपूर्ण चार पात्राकी व्यवस्था करके एक पात्र प्रेतके निमित्त और शेष तीन पात्र पितृगणाके लिये निश्चित करना चाहिये। तदनन्तर उन तीन पात्रोम प्रेतपात्रके जलका सेचन करे। चार पिण्ड बनाये और प्रेत-पिण्डका उन तीन पिण्डामे मेलन कर दे। तबसे वह प्रेत पितरके रूपमे हो जाता है। हे खगेश्वर! उस प्रेतमे

१-एकादशाहे प्रेतस्य यस्योत्सृज्येत नो वृष । प्रेतत्व सुस्थिर तस्य दत्तै श्राद्धशतैरपि॥
अकृत्वा यद्वृषोत्सर्गं कृत वै पिण्डपातनम्। निष्फल सकल विद्यात्प्रमीताय न तद्भवेत्॥ (५।४०-४१)

२-(क) एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागनोन एव वा। श्राद्धान्यूनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतम ॥
नन्दाया भार्गवदिने चतुर्दश्या त्रिपुष्करे। ऊनश्राद्ध न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात्॥ (गार्ग्य)
द्विपुष्करे च नन्दाया सिनीवाल्या भृगोर्दिने। चतुर्दश्या च नो तानि कृत्तिकासु त्रिपुष्करे॥

एक दो तीन अथवा दस दिन कम रहनेपर, नन्दा तिथिको शुक्रवारको चतुर्दशा तिथि त्रिपुष्कर और द्विपुष्कर योग अमावास्या तिथि कृत्तिका रोहिणी तथा मृगशिरा तिथियामें ऊनश्राद्ध (ऊनमासिक ऊनषाण्मासिक ऊनाब्दिक) नहीं करना चाहिये।

(ख) 'सपिण्डीकरण चैव' इस वाक्यसे तृतीय षोडशीके अन्तर्गत सपिण्डीमें किये जानेवाले प्रेतश्राद्धकी गणना करनेपर 'शतार्द्धेन तु मेलयेत्' इस वाक्यसे विरोध होता है। सपिण्डीकरणमें किये जानेवाले प्रेतश्राद्धको तृतीय षोडशीके अन्तर्गत कात्यायनने माना है। इसका शतार्धेन तु मेलयेत्'से विरोध है।

श्राद्धकल्पलतामें तथा आचार्य गोभिल लौगाक्षि पैठिनसिके मतमे सपिण्डन श्राद्ध तृतीय षाडशीके बाहर है।

(ग) 'द्वादशप्रतिमास्यानि' इस पदसे प्रथम मासिकका बोध हो जानेके कारण आद्य पदके अर्थमे ऊनमासिक उपलक्षण है। इसी प्रकार 'षाण्मासिक' पदका ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक अर्थम लाक्षणिक प्रयोग है।

३-सपिण्डीकरणके अन्तर्गत किये जानेवाले केवल प्रेतश्राद्धके उद्देश्यसे एकोद्दिष्ट विधिका उल्लेख है। इस श्राद्धके अन्तर्गत किया जानेवाला प्रेतके पिता आदिका श्राद्ध सदैव पार्वण-विधिसे किया जाना चाहिये।

पितृत्वभावक आ जानेके बाद उस प्रेत तथा अन्य उसके पितृ-पितामह आदि पितरोंका समस्त श्राद्धकृत्य श्राद्धकी सामान्य विधिके अनुसार ही करना चाहिये। मृत पतिके साथ एक ही चितामें प्रवेश और एक ही दिन दोनोंकी मृत्यु होनेपर स्त्रीका सपिण्डीकरण नहीं होता है। उसके पतिके सपिण्डीकरण श्राद्धसे ही स्त्रीका सपिण्डीकरण श्राद्ध सम्पन्न हो जाता है। हे खगेश! पतिके मरनेके बाद स्त्रीकी मृत्यु होनेपर स्त्रीका सपिण्डन पतिके साथ होगा और सहमृत्युकी दशामें दोनोंके श्राद्धके लिये एक पाक, एक समय तथा एक कर्ता होगा। किंतु श्राद्ध पति-पत्नीका पृथक्-पृथक् ही किया जाना चाहिये। यदि स्त्री पतिके साथ चितामें सती न होकर अन्य किसी दिन सती होती है तो उस स्त्रीकी मृत तिथिके आनेपर उसके लिये पृथक् रूपसे पिण्डदान करना चाहिये।

हे गरुड! सहमृत्युकी दशामें प्रत्येक वर्ष नवश्राद्ध एक साथ करना चाहिये। जिस मृतकका वार्षिक श्राद्धसे पूर्व सपिण्डीकरण हो जाता है, उसके लिये भी वर्षभर मासिक श्राद्ध और जलकुम्भ दान करना चाहिये[1]। धनका बँटवारा हो जानेपर भी नव श्राद्ध, सपिण्डन श्राद्ध और षोडश श्राद्ध करनेका अधिकार एक ही व्यक्तिको है।

हे कश्यपपुत्र! अब मैं तुम्हें नवश्राद्ध करनेका काल बताऊँगा। उसको सुनो।

हे पक्षिन्! मृत्युके दिन मृतस्थानपर पहला श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद दूसरा श्राद्ध मार्गमें उस स्थानपर करना चाहिये जहाँपर शव रखा गया था। तदनन्तर तीसरा श्राद्ध अस्थिसंचयनके स्थानपर होता है। इसके बाद पाँचवें, सातवें, आठवें, नवें, दसवें और ग्यारहवें दिन श्राद्ध होता है। इसलिये इन्हें नवश्राद्ध कहा जाता है। ये नव श्राद्ध तृतीया षोडशी कहे जाते हैं। इनको एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार ही करना चाहिये। पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें और ग्यारहवें दिन होनेवाले श्राद्धोंको नवश्राद्ध कहा जाता है। दिनकी संख्या छः ही है पर छः दिनमें ही नव श्राद्ध हो जाते हैं। इस विषयमें ऋषियोंके बीच मतभेद हैं इसी कारण मैंने उनको भी तुम्हें बता दिया।

श्राद्धोंका जो योग रूढिगत रूपसे है, वही मुझे भी अभीष्ट है। किसीको नव शब्दका यौगिक अर्थ अभीष्ट है। आद्य और द्वितीय श्राद्धमें एक ही पवित्रक देना चाहिये। जब ब्राह्मण भोजन कर चुके हों तो उसके बाद प्रेतको पिण्डदान देना उचित होता है[2]। वहाँपर यजमान और ब्राह्मणके बीच प्रश्नोत्तर भी होना चाहिये। जिसमें यजमान ब्राह्मणसे यह प्रश्न करे कि आप मेरी सेवासे प्रसन्न हैं? उसका उत्तर ब्राह्मण दे कि हाँ हम आपपर प्रसन्न हैं। आपके उस मृत स्वजनको अक्षय लोककी प्राप्ति हो।

हे पक्षिराज! अब तुम मुझसे एकोद्दिष्ट श्राद्धके विषयमें भी सुनो। जिसको वर्षपर्यन्त करना चाहिये।

सपिण्डीकरणके बादमें किये जानेवाले षोडश श्राद्धोंका सम्पादन एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार ही होना चाहिये, किंतु पार्वण-श्राद्धमें उक्त नियमका प्रयोग नहीं होता है। जिस प्रकारसे प्रत्येक वर्षमें होनेवाला प्रत्यब्द श्राद्ध[3] होता है, उसी प्रकार उन षोडश श्राद्धोंको भी करना चाहिये। एकादशाह और द्वादशाहमें जो श्राद्ध किया जाता है उन दिनोंमें स्वयं प्रेत भी भोजन करता है। अतः स्त्री और पुरुषके लिये जो पिण्डदान इन दिनोंमें दिया जाय उसको अमुक प्रेतके निमित्त दिया जा रहा है, ऐसा कहकर पिण्डदान देना चाहिये। सपिण्डीकरण श्राद्ध होनेके पश्चात् प्रेत शब्दका प्रयोग नहीं होता है। एक वर्षतक घरके बाहर प्रतिदिन दीपक जलाना चाहिये। अन्न, दीप, जल, वस्त्र और अन्य जो कुछ भी वस्तुएँ दानमें दी जाती हैं वे सभी सपिण्डीकरणतक प्रेत शब्दके सम्बोधनसे संकल्पित होनेपर ही प्रेतको तृप्ति प्रदान करती हैं।

हे वैनतेय! संक्षिप्त रूपमें मैंने वार्षिक कृत्य कह दिया। अब तुम विवस्वान् पुत्र यमराजके घर जिस प्रकार जीवका गमन होता है, उसका वर्णन सुनो।

हे अरुणानुज! त्रयोदशाह अर्थात् तेरहवें दिन श्राद्धकृत्य एवं गरुडपुराणके श्रवणके अनन्तर वह जीव, तुम्हारे द्वारा पकड़े गये सर्पके समान यमदूतोंके द्वारा पकड़ लिया जाता है और पकड़े गये बन्दरके समान अकेला ही उस यमलोकके मार्गमें चलता जाता है। उसके बाद वायुके द्वारा

१-यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत्। मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम्॥ (५। ६४)

२-यह प्रायः सपाक्षिकश्राद्धकी विधि है।

३-वार्षिक तिथिपर होनेवाला श्राद्ध।

अग्रसारित वह जीव दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है, दूसरे शरीरमे जानके पूर्वका जो शरीर है वह पिण्डज (दिये गये पिण्डोसे निर्मित) है। दूसरी योनियोका शरीर तो पितृसम्भव (माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला) होता है। इन शरीरोके प्रमाण, वय, अवस्था एव सस्थान (आकृतिविशेष) आदि श्राद्ध करनेवालेकी श्रद्धा एव देह प्राप्त करनेवालेके कर्मानुसार होते हैं। प्रमाणत यम और मर्त्यलोकके बीच छियासी हजार योजनका अन्तराल है। वह जीव प्रतिदिन अधिक-से-अधिक दो सौ सैंतालिस योजन और आधा कोसका मार्ग तय करता है। इस प्रकार उस जीवकी यात्रा तीन सौ अडतालीस दिनोमे पूरी होती है। इस यमलोककी यात्रामें जीवको यमदूत खींचते हुए ले जाते हैं। जो प्राणी अपने जीवनभर पापमे अनुरक्त थे, उनको इस मार्गमे जो कष्ट भागना पडता है, उसको विस्तारपूर्वक सुनो—

मृत्युके तेरहवे दिन वह पापी यमदूतोके कठोर पाशामे बाँध लिया जाता है। हाथमे अकुश लिये हुए क्रोधावेशम तनी हुई भौंहोसे युक्त दण्डप्रहार करते हुए यमदूत उसको खींचते हुए दक्षिण दिशामे स्थित अपने लोकको ल जाते हैं। यह मार्ग कुश, काँटो, बाँबिया, कीलो और कठोर पत्थरासे परिव्याप्त रहता है। कहीं-कहीं उस मार्गमे अग्नि

जलती रहती है और कहीं-कहीं सैकडो दरारोसे दुर्गम भूमि होता है। प्रचड सूर्यकी गर्मी और मच्छरोसे परिव्याप्त उस मार्गमे प्राणी सियारोके समान बीभत्स चीत्कार करते हुए यमदूतोंके द्वारा खींचे जाते हैं। यमलोकके दारुण मार्गमे पापी जाता है और शरीरके जलनेके कारण क्षीणताको प्राप्त होता है। अपने कर्मानुसार विभिन्न ज द्वारा अङ्गाके खाये जाने, भेदन एव छेदन किये कारण जीव अत्यधिक दारुण दु ख प्राप्त करता

हे तार्क्ष्य! जीव अपने कर्मानुसार दूसरे शरीरक करक यमलोकमे नाना प्रकारका कष्ट भोगता है। यम इस मार्गमे सोलह पुर पडते हैं। उनके विषयमे भी याम्य, सौरिपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धर्वपुर, शैलागम, क्रूरपुर, विचित्रभवन, बह्वापद, दु खद, नानाक्र सुतप्तभवन, रौद्र, पयोवर्षण, शीताढ्य और बहुभी सोलह पुर हैं, भयकर होनेसे ये दुर्दर्शन हैं। या मार्गमे प्रविष्ट होकर जीव 'हे पुत्र! हे पुत्र! मेरी रक्ष ऐसा करुणक्रन्दन करता हुआ अपने द्वारा किये गये स्मरण करता है और अठारहवे दिन वह यमराज नगरम पहुँच जाता है। वहाँ पुष्पभद्रा नामक नदी हाती है। वहाँ देखनेमे अत्यन्त सुन्दर वटवृक्ष है जीव विश्राम करना चाहता है, किंतु यमदूत उसव विश्राम नहीं करने देते। उसके पुत्रोंके द्वारा स्ने अथवा अन्य किसीके द्वारा कृपापूर्वक पृथ्वीपर जो पिण्डदान दिया जाता है, उसीको वह वहाँपर खा

तदनन्तर वहाँसे उसकी यात्रा सौरिपुरके लिये हे चलता हुआ वह मार्गमे यमदूतोके द्वारा मुद्गरोसे पीट है। उस दु खसे अत्यधिक पीडित होकर वह इस विलाप करता है—

> जलाशयो नैव कृतो मया तदा
> मनुष्यतृप्त्यै पशुपक्षितृप्तये।
> गोतृप्तिहेतोर्न च गाचर कृत
> शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्।
> (५

उस जन्ममें मनुष्य और पशु-पक्षियाकी लिये मैंने जलाशय नहीं खुदवाया। गौआकी क्षुधा-श लिये गोचरभूमिका दान भी मैंने नहीं दिया। अत हे जैसा तुमने किया है, उसीके अनुसार अब तुम निस्तार करा।

उस सौरिपुरमे कामरूपधारी इच्छानुसार स्थि एव गतिशील राजा राज्य करता है। उसका दर्शनमात्र जीव भयसे काँप उठता है आर अपने अनिष्टकी शकासे होकर त्रिपक्षमे पुत्रादिक स्वजनाके द्वारा पृथ्वीपर दि

जलयुक्त पिण्डको खाकर आगे बढता है। वहाँसे वह आगे बढता हुआ मार्गमे यमदूतोके खड्गप्रहारसे अत्यन्त पीडित होकर इस प्रकार प्रलाप करता है—

न नित्यदान न गवाह्निक कृतं
पुस्त च दत्त न हि वेदशास्त्रयो।
पुराणदृष्टो न हि सेवितोऽध्वा
शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
(५।१०३)

ह शरीर! मैंने जलादिका सदा दान नहीं दिया है, न तो नियमसे प्रतिदिन गायके लिये अपेक्षित गोग्रास आदि कृत्य किया है और न तो वेदशास्त्रकी पुस्तकका ही दान किया है। पुराणम देखे हुए मार्ग (तीर्थयात्रा आदि)-का मैंने सेवन नहीं किया है, इसलिये जैसा तुमने किया है, उसीमे अपना निस्तार करा।

इसके बाद जीव 'नगेन्द्रनगर'मे जाता है। वहाँपर वह अपने बन्धु-बान्धवोके द्वारा दूसरे महीनेमे दिये गये अन्नको खाकर आगेकी ओर प्रस्थान करता है। चलते हुए उसके ऊपर यमदूतोद्वारा कृपाणकी मुठियामे प्रहार किये जानेपर वह इस प्रकार प्रलाप करता है—

पराधीनमभूत् सर्वं मम मूर्खशिरोमणे॥
महता पुण्ययागेन मानुष्य लब्धवानहम्।
(५।१०५-१०६)

बहुत बडे पुण्योको करनेके पश्चात् मुझे मनुष्य-योनि प्राप्त हुई थी, किंतु मुझ मूर्खाधिराजका सब कुछ पराधीन हो गया अर्थात् मनुष्ययोनि प्राप्त करके भी मैं कुछ सत्कर्म न कर सका।

इस प्रकार विलाप करता हुआ जीव तीसरे मासके पूरा होते ही गन्धर्वनगरमें पहुँच जाता है। तदनन्तर समर्पित किये गये तृतीय मासिक पिण्डको वहाँ खाकर वह पुन आगेकी ओर चल देता है। मार्गम यमदूत उसको कृपाणके अग्रभागसे मारते हैं, जिससे आहत हाकर वह पुन इस प्रकार विलाप करता है—

मया न दत्त न हुत हुताशने
तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे।
न सेवित गाङ्गमहो महाजल
शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
(५।१०८)

मैंने कोई दान नहीं दिया, अग्निमं आहुति नहीं डाली और न तो हिमालयकी गुफामे जाकर तप हा किया है। अरे! मैं तो इतना नीच हूँ कि गङ्गाक परम पवित्र जलका भी सेवन नहीं किया, इमलिये हे शरीर! जैसा तुमने कर्म किया है, उसीके अनुसार अपना निस्तार करो।

हे पक्षिन्! चौथे मासमें जीव शैलागमपुर पहुँच जाता है। वहाँ उसके ऊपर निरन्तर पत्थरोंकी वर्षा होती है। पुत्रके द्वारा दिये गये चतुर्थ मासिक श्राद्धको प्राप्तकर वह जीव सरकते हुए चलता है किंतु पत्थरोंके प्रहारसे अत्यन्त पीडित होकर वह गिर पडता है और रोते हुए यह कहता है—

न ज्ञानमार्गो न च यागमार्गो
न कर्ममार्गो न च भक्तिमार्ग।
न साधुसङ्गात् किमपि श्रुत मया
शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
(५।१११)

मैंने न तो ज्ञानमार्गका सेवन किया न योगमार्गका, न कर्ममार्ग और न ही भक्तिमार्गको अपनाया और न साधु-सन्ताका साथ करके उनसे कुछ हितैषी बातें ही सुनी हैं। अत हे शरीर! तब जैसा तुमने किया है, उसीके अनुसार अपना निस्तार करो। मृत्युके पाँचवे मासमे कुछ कम दिनोम वह 'क्रौंचपुर' पहुँच जाता है, उस समय पुत्रादिके द्वारा दिये गय ऊनषाण्मासिक श्राद्धके पिण्ड और जलका सेवन करक वहाँ एक घडी विश्राम करता है।

हे कश्यपपुत्र! इसके बाद छठे मासम जीव 'क्रूरपुर'की ओर चल देता है। मार्गमें वह पृथ्वीपर दिये गये पञ्चम मासिक पिण्डको खाकर जलपान करता है। तत्पश्चात् वह क्रूरपुरकी ओर फिर बढता है, किंतु यमदूत मार्गमें उसको पट्टिशों (अस्त्रविशेष)-द्वारा मारते हैं, जिससे वह गिर पडता है और इस प्रकार विलाप करता है—

हा मातर्हा पितर्भ्रात
सुता हा हा मम स्त्रिय॥
युष्माभिर्नोपदिष्टोऽहम-
वस्था प्राप्त ईदृशीम्।
(५।११३-११४)

ह मेरे माता-पिता और भाई-बन्धु! हे मेरे पुत्र! हे मेरी स्त्रियो! आप लोगाने मुझे कोई एसा उपदेश नहीं दिया

जिससे मैं उन दुष्कृत्योंसे बच सकता, जिनके कारण मेरी इस प्रकारकी अवस्था हो गयी।

इस प्रकारका विलाप करते हुए उस जीवसे यमदूत कहते हैं—अरे मूर्ख! तेरी कहाँ माता है, कहाँ पिता है, कहाँ स्त्री है, कहाँ पुत्र है और कहाँ मित्र है? तू अकेला ही चलते हुए इस मार्गमें अपने द्वारा किये गये दुष्कृत्योंके फलका उपभोग कर। हे मूर्ख! तू जान ले इस मार्गमें चलनेवाले लोगोंको दूसरेकी शक्तिका आश्रय करना व्यर्थ है। परलोकमें जानेके लिये पराये आश्रयकी आवश्यकता नहीं होती है। वहाँ (स्वकर्मार्जित) पुण्य ही साथ देता है। तुम्हारा तो उसी मार्गसे गमन निश्चित है, जिस मार्गमें किसी क्रय-विक्रयके द्वारा भी अपेक्षित सुख-साधनका संग्रह नहीं किया जा सकता।

इसके बाद वह जीव 'विचित्रनगर'के लिये चल देता है। रास्तेमें यमदूत उसको शूलके प्रहारसे आहत कर देते हैं, जिसके कारण वह दुखित होकर इस प्रकारका विलाप करता है—

कुत्र यामि न हि गामि जीवितं हा मृतस्य मरणं पुनर्न वै। (५।११९)

हाय! मैं कहाँ चल रहा हूँ, मैं तो निश्चित ही अब जीवित नहीं रहना चाहता, फिर भी जीवित हूँ। मरे हुए प्राणीकी मृत्यु पुनः नहीं होती।

इस प्रकारका विलाप करता हुआ वह जीव यातना-शरीरको धारण करके 'विचित्रनगर'में जाता है। जहाँपर विचित्र नामका राजा राज्य करता है। वहाँपर वह षाण्मासिक पिण्डसे अपनी क्षुधाको शान्त कर आगे आनेवाले नगरकी ओर चल देता है। मार्गमें यमदूत भालेसे प्रहार करते हैं, जिससे सन्त्रस्त होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

माता भ्राता पिता पुत्रः कोऽपि मे वर्तते न वा।
यो मामुद्धरते पापं पतन्तं दुःखसागरे॥ (५।१२२)

मेरे माता-पिता, भाई, पुत्र कोई है अथवा नहीं है, जो इस दुःखके सागरमें गिरे हुए मुझ पापीका उद्धार कर सके।

ऐसा विलाप करता हुआ वह जीव मार्गमें चलता रहता है। उसी मार्गमें 'वैतरणी' नामकी एक नदी पड़ती है, जो सौ योजन चौड़ी है और रक्त तथा पीबसे भरी हुई है। जैसे ही मृतक उस नदीके तटपर पहुँचता है, वैसे ही वहाँपर नाववाले—मल्लाह आदि उसको देखकर यह कहते हैं कि यदि तुमने वैतरणी गौका दान दिया है तो इस नावपर सवार हो जाओ और सुखपूर्वक इस नदीको पार कर लो। जिसने वैतरणी नामक गौका दान दिया है, वही सुखपूर्वक इस नदीको पार कर सकता है। जिस व्यक्तिने वैतरणी गौका दान नहीं दिया है, उसको नाविक हाथ पकड़कर घसीटते हुए ले जाते हैं। तेज और नुकीली चोंचसे कौआ, बगुला तथा उलूक नामक पक्षी अपने प्रहारसे उसे अत्यन्त व्यथित करते हैं। हे पक्षिन्! अन्त समय आनेपर मनुष्योंके लिये वैतरणीका दान ही हितकारी है। यदि प्राणी अपने जीवनकालमें वैतरणी नामक गौका दान देता है तो वह गौ समस्त पापोंको विनष्ट कर देती है और उसको यमलोक न ले जाकर विष्णुलोकको पहुँचा देती है।[१]

सातवाँ मास आ जानेपर मृतक 'बह्वापद' नामक पुरमें आ जाता है। वहाँपर सप्तमासिक सोदक पिण्डका सेवन करके आगे बढ़ते हुए परिघके आघातसे पीडित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

न दत्तं न हुतं तप्तं न स्नातं न कृतं हितम्।
यादृशं चरितं कर्म मूढात्मन् भुङ्क्ष्व तादृशम्॥ (५।१२९)

हे शरीर! मैंने दान, आहुति, तप, तीर्थस्नान तथा परोपकार आदि सत्कृत्य जीवनपर्यन्त नहीं किया है। हे मूर्ख! अब जैसा तुमने कर्म किया है, वैसा ही भोग करो।

हे तार्क्ष्य! इसके बाद वह जीव आठवें मासमें 'दुःखदपुर' पहुँचता है। वहाँ स्वजनोंके द्वारा दिये गये अष्टमासिक पिण्ड और जलका सेवन करके 'नानाक्रन्द' नामक पुरकी ओर प्रस्थान कर देता है। मार्गमें चलते हुए मुसलाघातसे पीडित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

क्व जायाचटुलैश्चाटुपटुभिर्वचनैर्मम॥
भोजनं भल्लभल्लीभिर्मुसलैश्च क्व मारणम्। (५।१३१-१३२)

हाय! कहाँ चंचल नेत्रावाली पत्नीके चापलूसी भरे वचनोंके द्वारा किये गये मनोविनोदोंके बीच मेरा भोजन होता था और कहाँ भाला-बर्छियों तथा मुसलोंके द्वारा मुझे मारा जा रहा है।

१-मनुजानां हितं दानमन्ते वैतरणी खग। दत्ता पापं दहेत् सर्वं मम लोकं तु सा नयेत्॥ (५।१२६-१२७)

इस प्रकार विलाप करता हुआ वह जीव नवे मासमे 'नानाक्रन्दपुर' पहुँच जाता है। तदनन्तर नवें मासम पुत्रद्वारा दिये गये पिण्डका भोजन करके वह नाना प्रकारका विलाप करता है। तत्पश्चात् यमदूत दसवे मासमे उसको 'सुतप्तभवन' ले जाते हैं। मार्गमें वे उसको हलसे मारते-पीटते हैं, जिससे आहत होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

क्व सूनुपेशलकरैः पादसंवाहनं मम॥
क्व दूतवज्रप्रतिमकरैर्मत्पदकर्पणम्।
(५।१३४-१३५)

हाय। कहाँ पुत्रोंके कोमल-कोमल हाथासे मेरे पर दाबे जाते थे और कहाँ आज इन यमदूतोंके वज्रसदृश कठोर हाथोंसे पैर पकडकर मुझे निर्दयतापूर्वक घसीटा जा रहा है।

दसवे मासम वहींपर पिण्ड और जलका उपभोग करके वह (जीव) पुन आगेकी ओर सरकने लगता है। ग्यारहवाँ मास पूर्ण होते ही वह 'रौद्रपुर' पहुँच जाता है। मार्गमे यमदूत जैसे ही उसकी पीठपर प्रहार करते हैं वह चिल्लाते हुए इस प्रकार विलाप करता है—

क्वाहं सतूलीशयने परिवर्तन् क्षणे क्षणे।
भटहस्तभ्रष्टयष्टिकृष्टपृष्ठ क्व वा पुन ॥
(५।१३७)

कहाँ मैं रूईसे बने हुए अत्यन्त कोमल गद्देपर लेटकर प्रतिक्षण करवटे बदलता था और कहाँ आज यमदूताके हाथोसे निर्दयतापूर्वक मारी जा रही लाठियोके प्रहारसे कटी पीठसे करवट बदल रहा हूँ।

हे द्विज। इसके पश्चात् वह जीव पृथ्वीपर दिय गये जलसहित पिण्डको खाकर 'पयोवर्षण' नामक नगरकी ओर प्रस्थान करता है। रास्तेमे यमदूत कुल्हाडीस उसके सिरपर प्रहार करते हैं। हताहत होकर वह इस प्रकारका विलाप करता है—

क्व भृत्यकोमलकरैर्गन्धतैलावसेचनम्॥
क्व कीनाशानुगैः क्रोधात्कुठारैः शिरसि व्यथा।
(५।१३९-१४०)

हाय। कहाँ भृत्याके कोमल-कोमल हाथासे मेरे सिरपर सुवासित तेलका मालिश होती था और कहाँ आज क्रोधसे परिपूर्ण यमदूतोंके हाथोंसे मेरे इस सिरपर कुल्हाडियाका प्रहार हो रहा है।

इस पयोवर्षण नामक नगरमे वह मृतक ऊनाब्दिक श्राद्धका दु खपूर्वक उपभोग करता है। तदनन्तर वर्ष बीतते ही वह 'शीताढ्य' नगरकी ओर चल देता है। मार्गमें बढते हुए उस मृतककी जिह्वाको यमदूत छूरीसे काट डालते हैं, जिससे दु खित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

प्रियालापैः क्व च रसमधुरत्वस्य वर्णनम्।
उक्तमात्रेऽसिपत्रादिजिह्वाच्छेद क्व चैव हि॥
(५।१४२)

अरे। कहाँ परस्पर प्रिय वार्तालापोंके द्वारा इस जिह्वाके रसमाधुर्यकी प्रशंसा की जाती थी, कहाँ आज मुँह खोलनेमात्रपर ही तलवारके समान तीक्ष्ण छूरी आदिके द्वारा मेरी उसी जिह्वाको काट दिया जा रहा है।

तदनन्तर उसी नगरम वह मृतक वार्षिक पिण्डोदक तथा श्राद्धम दिये गये अन्य पदार्थोका सेवन कर आगेकी ओर बढता है। पिण्डज शरीरम प्रविष्ट होकर वह 'बहुभीति' नामक नगरम जाता है। वह मार्गम अपने पापका प्रकाशन और स्वयंकी निन्दा करता है। यमपुराके इस मार्गम स्त्री भी इसी-इसी प्रकारका विलाप करती है।

इसके बाद वह मृतक अत्यन्त निकट ही स्थित यमपुरीम जाता है। वह याम्यलोक चौवालीस योजनमे

विस्तृत है। उसम श्रवण नामक तेरह प्रतीहार हैं। उन प्रतीहाराको श्रवणकर्म करनेसे प्रसन्नता होती है। अन्यथा वे क्रुद्ध होते हैं। ऐसे लोकमें पहुँचनेके पश्चात् प्राणी मृत्युकाल तथा अन्तक आदिके मध्यमें स्थित क्रोधसे लाल-लाल नेत्रोंवाले काले पहाडके समान भयंकर आकृतिमे

युक्त यमराजको देखता है। विशाल दाँतोसे उनका मुखमण्डल बडा ही भयानक लगता है। उनकी भ्रू-भगिमाएँ तनी रहती हैं, जिससे उनकी आकृति भयानक प्रतीत होती है। अत्यन्त विकृत मुखाकृतियोसे युक्त सैकडो व्याधियाँ उनको चारो ओरसे घेरे रहती हैं। उनके एक हाथम दण्ड और दूसरे हाथमे भैरव-पाश रहता है।

यमलोकमे पहुँचा हुआ जीव यमके द्वारा बतायी गयी शुभाशुभ गतिको प्राप्त करता है। जैसा मैंने तुमसे पहले कहा है, उसी प्रकारकी पापात्मक गति पापी जीवको प्राप्त होती है। जो लोग छत्र, पादुका और घरका दान देते हैं, जो लोग पुण्यकर्म करते हैं, वे वहाँपर पहुँचकर सौम्य स्वरूपवाले, कानोमें कुण्डल और सिरपर मुकुट धारण किये हुए शोभासम्पन्न यमराजका दर्शन करत हैं।

चूँकि वहाँ जीवको बहुत भूख लगती है, इसलिये एकादशाह, द्वादशाह, षण्मास तथा वार्षिक तिथिपर बहुत-से ब्राह्मणोको भोजन कराना चाहिये। हे खगश्रेष्ठ! जो व्यक्ति पुत्र, स्त्री तथा अन्य सगे-सम्बन्धियोके द्वारा कहे गये उनके स्वार्थको ही जीवनपर्यन्त सिद्ध करता है और अपने परलोकको बनानेके लिये पुण्यकर्म नहीं करता, वही अन्तमे कष्ट प्राप्त करता है।

हे गरुड। मृत्युके पश्चात् सयमनीपुरको जानेवाले प्राणीकी जो गति होती है और वर्षपर्यन्त जो कृत्य किये जाते हैं, उसको मैंने कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ५)

वृषोत्सर्गकी महिमामे राजा वीरवाहनकी कथा, देवर्षि नारदके पूर्वजन्मके इतिहासवर्णनमे सत्सगति और भगवद्भक्तिका माहात्म्य, वृषोत्सर्गके प्रभावसे राजा वीरवाहनको पुण्यलोककी प्राप्ति

गरुडने कहा—हे प्रभो। जो तीर्थ-सेवन और दानम निरन्तर लगा है तथा अन्य साधनोसे भी सम्पन्न है, उसे भी वृषोत्सर्ग किये बिना परलोकमे सद्गति नहीं प्राप्त होती। इसलिये मनुष्यको वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये। ऐसा मैंने आपसे सुन लिया। इस वृषोत्सर्गका फल क्या है? प्राचीन समयम इस यज्ञको किसने किया? इसम किस प्रकारका वृष होना चाहिये? विशेष रूपसे इस कार्यको किस समय करना चाहिये और इसको करनेकी कौन-सी विधि बतायी गयी है? यह सब बतानेकी कृपा करे।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर। मैं उस महापुण्यशाली इतिहासका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका वर्णन ब्रह्माके पुत्र महर्षि वसिष्ठने राजा वीरवाहनसे किया था।

प्राचीन समयकी बात है विराधनगरमे वीरवाहन नामक एक धर्मात्मा, सत्यवादी, दानशील और विप्रोको सतुष्ट करनेवाले राजा रहते थे। किसी समय वे शिकार खेलनेके लिये वनमे गये। कुछ पूछनेकी जिज्ञासासे वे वसिष्ठमुनिके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ आसन ग्रहण कर विनम्रतासे झुके हुए राजाने ऋषियोकी ससदम मुनिको नमस्कार करके पूछा।

राजाने कहा—हे मुने। मैंने यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक अनेक धार्मिक कृत्य किये हैं, फिर भी यमराजके कठोर शासनको सुनकर मैं हृदयमे बहुत ही भयभीत हूँ। हे कृपानिधान। महाभाग। ऋषिवर! मुझे यम, यमदूत और देखनेमे अतिशय भयकर लगनेवाल नरकलोकाको न देखना पडे, ऐसा कोई उपाय बतानेकी कृपा कर।

वसिष्ठने कहा—हे राजन्। शास्त्रवेत्ता अनेक प्रकारके धर्मोंका वर्णन करते हैं, किंतु कर्ममार्गसे विमोहित जन सूक्ष्मतया उनको नहीं जानते। दान, तीर्थ, तपस्या, यज्ञ, सन्यास तथा पितृक्रिया आदि सभी धर्म हैं, उन धर्मोंमे भी वृषोत्सर्गका विशेष महत्त्व है। मनुष्यको बहुत-से पुत्रोकी अभिलाषा करनी चाहिये। यदि उनमसे एक भी पुत्र गया-तीर्थमे जाय, अश्वमेधयज्ञ करे अथवा नील वृषभ यथाविधि छोडे तो जाने-अनजाने किये गय ब्रह्महत्या आदि पाप भी विनष्ट हो जाते हैं। यह शुद्धि नील वर्णके वृषभका उत्सर्ग अथवा समुद्रम स्नान करनेसे भी हो सकती है। हे राजेन्द्र। जिसके एकादशाहमे वृषोत्सर्ग नहीं होता, उसका प्रेतत्व स्थिर ही रहता है। मात्र श्राद्ध करनेसे क्या लाभ होगा? जिस-किसी भाँति नगर अथवा तीर्थम वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये।

हे खगेश। वृष-यज्ञके द्वारा प्रतत्वस मुक्ति प्राप्त हाती

है, अन्य साधनोंसे नहीं। जो वृषभ शुभ लक्षणोंसे समन्वित युवा तथा कृष्ण गल-कम्बलवाला हो और सदैव जो गायोंके झुंडमें घूमनेवाला हो, उस वृषभको विधि-विधानसे चार अथवा दो या एक बछियाके साथ पहले उसका विवाह करना चाहिये। तदनन्तर माङ्गलिक द्रव्यों एवं मन्त्रोंके साथ उन सबका उत्सर्ग किया जाय। 'इहरतीति०' इन छः मन्त्रोंसे अग्निदेवको आहुति देनी चाहिये। कार्तिक, माघ और वैशाखकी पूर्णिमा, संक्रान्ति, अन्य पुण्यकाल, व्यतिपात तथा तीर्थमें और पिताकी क्षयतिथि वृषोत्सर्गके लिये विशेष रूपसे प्रशस्त मानी जाती है। 'जो वृषभ लाल वर्णका हो और उसका मुँह-पूँछ पाण्डु (श्वेत-पीतमिश्रित) हो खुर और सींगोंका वर्ण पीत हो, वह नीलवृषभ कहा जाता है'—

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ॥
पीतः खुरविषाणेषु स नीलो वृष उच्यते।
(६।१९-२०)

जो वृषभ श्वेत वर्णका होता है वह ब्राह्मण है, जो लोहित वर्णका है वह क्षत्रिय है, जो पीत वर्णका है वह वैश्य है और जो कृष्ण वर्णका है वह शूद्र है। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णको अपने वर्णके अनुसार वृषोत्सर्ग करना चाहिये अथवा रक्तवर्णका ही वृषभ सबके लिये कल्याणप्रद है।

पिता, पितामह तथा प्रपितामह पुत्रके उत्पन्न होनेपर यही आशा करते हैं कि यह मेरे लिये वृषोत्सर्ग करेगा। वृषोत्सर्गके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्ददायकः ॥
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।
गङ्गायमुनयोः पेयमन्तर्वेदि तृणं चर॥
धर्मराजस्य पुरतो वाच्यं मे सुकृतं वृष।
(६।२३—२५)

हे धर्म! आप इस वृषभरूपमें संसारको आनन्द प्रदान करनेवाले देव हैं। आप ही अष्टमूर्ति शिवके अधिष्ठान हैं। अतः मुझे शान्ति प्रदान करें। आप गङ्गा-यमुनाका जल पियें। अन्तर्वेदीमें घास चरें और हे वृष! धर्मराजके सामने मेरे पुण्यकर्मकी चर्चा करें।

इस प्रकारका निवेदन करते हुए सत्कर्ताको चाहिये कि वृषभके दाहिने कन्धेपर त्रिशूल और बायें ऊरुभागमें चक्रका चिह्न अंकित करके गन्ध, पुष्प तथा अक्षत आदिसे बछियाके सहित उस वृषभकी पूजा करके विधिवत् बन्धनमुक्त कर दे।

वसिष्ठजीने कहा—हे राजन्! आप भी विधिवत् वृषोत्सर्ग करें, अन्यथा सभी साधनोंसे सम्पन्न होनेपर भी आपको सद्गति नहीं प्राप्त हो सकती है। राजन्! पहले त्रेतायुगमें विदेहनगरमें धर्मवत्स नामका एक ब्राह्मण था, जो अपने वर्णानुसार कर्ममें अहर्निश निरत, विद्वान्, विष्णुभक्त, अत्यन्त तेजस्वी और यथालाभसे संतुष्ट रहता था। एक बार पितृपर्वके आनेपर वह कुश लेनेके लिये वनमें गया। वहाँ इधर-उधर घूमता हुआ वह कुश और पलाशके पत्तोंको एकत्र करने लगा। एकाएक वहाँपर देखनेमें अत्यन्त सुन्दर चार पुरुष आये और उस ब्राह्मणको पकड़कर आकाशमार्गसे लेकर चले गये। वे चारों पुरुष उस दीन, व्यथित ब्राह्मणको पकड़कर बहुत-से वृक्षोंवाले घनघोर वन, पर्वतोंके दुर्गोंको पार कराते हुए एक वनसे दूसरे वनके मध्य ले गये। हे राजन्! वहाँपर उस ब्राह्मणने एक बहुत बड़ा नगर देखा। वह नगर मुख्यद्वारसे समन्वित तथा अनेक प्रासादोंसे सुशोभित हो रहा था। चबूतरा, बाजार, खरीदी-बेची जानेवाली वस्तुओं और नर-नारीसे युक्त उस नगरमें तुरहियोंकी ध्वनि हो रही थी। वीणा और नगाड़े बज रहे थे। वहाँ कुछ भूखसे पीड़ित, दीन-हीन, पुरुषार्थसे रहित लोगोंको भी उसने देखा। उसके बाद अत्यन्त मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्रोंको पहने हुए लोग दिखायी पड़े। आगे हृष्ट-पुष्ट स्वर्णाभूषणसे अलंकृत सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए कुछ ऐसे लोग थे, जो देवताओंके समान शोभासम्पन्न थे, जिनको देखकर वह विस्मयाभिभूत हो उठा। वह सोचने लगा कि क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ? अथवा यह कोई माया है? या मेरे मनका यह विभ्रम है? वह ब्राह्मण इस प्रकारकी शंका कर ही रहा था कि वे चारों पुरुष उसको लेकर राजाके पास गये। स्वर्णजटित उस राजप्रासादके बीच स्थित राजाको वह ब्राह्मण एकटक देखता ही रह गया। वहाँपर एक महादिव्य सिंहासन था जहाँ छत्र और चँवर डुलाये जा रहे थे। उसके ऊपर

१-ॐ इह रतिः स्वाहा इदमग्नये। ॐ इह रमध्वं स्वाहा इदमग्नये। ॐ इह धृतिः स्वाहा इदमग्नये। ॐ इह स्वधृतिः स्वाहा इदमग्नये। ॐ उपसृजन् धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् स्वाहा इदमग्नये। ॐ रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा इदमग्नये। (यजु० ८।५१)

स्वर्णनिर्मित मुकुट धारण किया हुआ महान् शोभा-सम्पन्न राजा बैठा हुआ था। वन्दीजन उसका गुणगान कर रहे थे।

राजा उस ब्राह्मणको देखकर खडा हो गया और उसने मधुपर्क तथा आसनादि प्रदान कर उनकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर वह राजा उन विप्रदेवसे इस प्रकार कहने लगा—ह प्रभो। आज आप जैसे धर्मपरायण विष्णुभक्तका दर्शन हुआ है, इससे मेरा जन्म सफल हो गया। मेरा यह कुल भी पवित्र हो उठा। तदनन्तर राजाने उस ब्राह्मणको प्रणाम किया और बहुत प्रकारसे उनको सतुष्ट करके अपने दूतोसे कहा—हे दूतो। ये ब्राह्मणदेव जहाँसे आये हुए हैं, पुन तुम सब इन्हे वहीं ले जाकर पहुँचा आओ। ऐसा सुनकर उन ब्राह्मणश्रेष्ठने राजासे पूछा—

हे राजन्। यह कौन-सा देश है? यहाँपर ये उत्तम, मध्यम और अधम चरित्रवाले लोग कहाँसे आये हुए हैं? आप किस पुण्यके प्रभावसे यहाँ इन सबके बीच प्रधान पदपर विराजमान हैं? मुझको यहाँ किसलिये लाया गया और फिर क्यो वापस भेजा जा रहा है? यह सब स्वप्नके समान मुझे अनोखा दिखायी दे रहा है?

इसपर राजाने कहा—हे विप्रदेव। अपने धर्मका पालन करते हुए जो मनुष्य सदैव भगवान् हरिकी भक्तिम अनुरक्त और इन्द्रियोके विषयसे परे रहता है, वह मेरे लिये निश्चित ही पूज्य है। नित्य जो प्राणी तीर्थोंकी यात्रा करनेमे ही लगा रहता है, जो वृषोत्सर्गके माहात्म्यको भलीभाँति जानता है और जो सत्य एव दान-धर्मका पालक है, वह व्यक्ति देवताओके लिये भी प्रणम्य है। हे परतप। हे पूजार्ह। आपका दर्शन हम सभी प्राप्त कर सकें, इसलिये आपको यहाँ लाया गया था। हे देव। आप मुझपर प्रसन्न हो ओर मुझे इस साहसके लिये क्षमा करे। मैं स्वय अपने सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन करनेमे समर्थ नहीं हूँ। इस वृत्तान्तका वर्णन मेरा यह विपश्चित् नामवाला मन्त्री करेगा। राजाका वह मन्त्री सब वेदोको जाननेवाला विद्वान् व्यक्ति था। अत अपने स्वामीकी हार्दिक इच्छाको जानकर वह कहने लगा—

हे विप्र! यह राजा पूर्वजन्मम द्विज ओर देवताओसे सुशोभित विराधनगरमे विश्वम्भर नामका एक वैश्य था। ऐसा मैंने सुना है। वैश्य-वृत्तिसे जीवनयापन करते हुए वह अपने परिवारका पालन करता था। नित्य गायोका सेवा तथा ब्राह्मणोंकी पूजा भी करता था। सत्पात्रका दान अतिथिसेवा तथा अग्निहोत्र करना उसका नित्य धर्म था। सत्यमेधा नामकी पत्नीके साथ उसने विधिवत् गृहस्थाश्रमका सञ्चालन किया। उसने स्मार्त कर्मके अनुष्ठानसे सभी लोको तथा श्रौत कर्मोसे देवताओको जीत लिया था।

किसी समय जब वह वैश्य अपने भाइयोके साथ बहुत-से तीर्थोंकी यात्रा कर अपने घर लौट रहा था, तब मार्गम ही उसे लोमश ऋषिका दर्शन हो गया। उसने महर्षिके चरणोमे दण्डवत् प्रणाम किया। हाथ जोडकर विनयावनत खडे उस वैश्यसे करुणाके सागर महर्षि लोमशने पूछा—

हे भद्रपुरुष। ब्राह्मणो और अपने भाई-बन्धुओके साथ आप कहाँसे आ रहे है? धर्मप्राण। आपको देखकर मेरा मन आर्द्र हो उठा है।

इसपर विश्वम्भर वैश्यने उत्तर दिया—मुनिवर। यह शरीर नश्वर है। मृत्यु प्राणीके सामने ही खडी रहती है—ऐसा जानकर अपनी धर्मपरायणा पत्नीके साथ मैं तीर्थयात्रामे गया था। तीर्थोंका विधिवत् दर्शन एव प्रचुर धन-दान कर मैं अपने घरकी ओर वापस जा रहा था कि सौभाग्यवश आपका दर्शन हो गया।

लोमशने कहा—इस भारतवर्षकी पावन भूमिमे बहुत-से तीर्थ हैं। आपने जिन तीर्थोंकी यात्रा की है, उनका वर्णन मुझसे करे।

वैश्यने कहा—हे ऋषिवर। जहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती नामक पवित्रतम नदियाँ एक साथ मिलकर प्रवाहित होती हैं, जहाँ ब्रह्मा तथा देवराज इन्द्रने दशाश्वमेध-यज्ञ किया था उस तीर्थराज प्रयाग, जहाँ करुणानिधान देवदेवेश्वर शिव प्राणियोके कानमे 'तारकमन्त्र' का उपदेश देते हैं उस मोक्षदायिनी काशी, पुलहाश्रम, फल्गुतीर्थ, गण्डकी, चक्रतीर्थ, नैमिषारण्य, शिवतीर्थ अनन्तक, गोप्रतारक नागेश्वर, बिन्दुसरोवर, मोक्षदायक राजीवलोचन भगवान् रामसे सुशोभित अयोध्या, अग्नितीर्थ, वायुतीर्थ, कुबेरतीर्थ, कुमारतीर्थ सूकरक्षेत्र, भगवान् कृष्णसे अलकृत मथुरा, पुष्कर सत्यतीर्थ ज्वालातीर्थ दिनेश्वरतीर्थ, इन्द्रतीर्थ, पश्चिमवाहिनी सरस्वती तथा कुरुक्षेत्र जाकर मैंने दर्शन किया। उसके बाद मैं ताप्ती पयोष्णी, निर्विन्ध्या, मलय कृष्णवेणा गोदावरी, दण्डकवन, ताम्रचूड, सदोदक और द्यावाभूमीश्वर तीर्थको देखकर पर्वतराज श्रीशैल पहुँचा। तदनन्तर महातेजस्वी भगवान् हरि स्वय जहाँ श्रीरङ्ग नामसे

निवास करते हैं, जहाँ महिषासुरमर्दिनी दुर्गा वेकटी नामसे पुकारी जाती हैं, उस वेकटाचलकी यात्रा मेरे द्वारा की गयी। तत्पश्चात् चन्द्रतीर्थ, भद्रवट, कावेरी, कुटिलाचल, अवटोदा, ताम्रपर्णी, त्रिकूट, कोल्लकगिरि, वसिष्ठतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, ज्ञानतीर्थ, महोदधि, हृषीकेश, विराज, विशाल और नीलाद्रि (जगन्नाथपुरी), भीमकूट, श्वेतगिरि, रुद्रतीर्थ तथा जहाँ तपस्या करके पार्वतीने भगवान् शिवका पतिरूपमे वरण किया था, उस उमावन तीर्थकी मैंने यात्रा की। साथ ही वरुणतीर्थ, सूर्यतीर्थ, हसतीर्थ तथा महोदधि तीर्थकी यात्रा हुई, जहाँ स्नान करके काकोला (पहाडी कौआ) भी राजहस बन जाता है, जहाँ स्नान मात्र करके एक राक्षसने देवत्व पद प्राप्त कर लिया था। उसके बाद विश्वरूप, वन्दितीर्थ रत्नेश तथा कुहकाचल तीर्थ गया जहाँ नरनारायणका दर्शन करके मनुष्य करोडो पापसे मुक्त हो जाता है। सरस्वती, दृषद्वती और नर्मदा नामक मनुष्याके लिय कल्याणकारिणी नदियोकी मैंने यात्रा की। भगवान् नीलकण्ठ, महाकाल, अमरकण्टक, चन्द्रभागा, वेत्रवती, वीरभद्र गणेश्वर, गोकर्ण बिल्वतीर्थ, कर्मकुण्ड और सतारक तीर्थोंमे जाकर आपकी कृपासे मैं अन्य तीर्थोंम भी गया जहाँ मात्र स्नान करके मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है।

हे मुने। साधुजनोकी जो कृपा है, वह प्राणियाम कल्याणकारिणी बुद्धिको जन्म देती है। एक ओर तो सभी तीर्थ हैं और दूसरी ओर करुणापूर्ण साधुजन प्राणियोके कल्याणका उनपर कृपा करनेका व्रत धारण कर वे इतस्तत परिभ्रमण करते रहते हैं—

उत्पद्यते शुभा बुद्धि साधूना यदनुग्रह ।
एकत सर्वतीर्थानि करुणा साधवाऽन्यत ॥
अनुग्रहाय भूताना चरन्ति चरितव्रता ।
(६।७७-७८)

हे प्रभा। आप सभी वर्णोके गुरु हैं तथा विद्या एव वयम श्रेष्ठ हैं। अत मैं आपसे उस आधिभौतिक स्वरूपके विषयमे पूछ रहा हूँ, जो चिरतन कालसे चला आ रहा है। मैं क्या करूँ? किससे पूछूँ? मेरा मन अत्यन्त चञ्चल हा उठा है। यह ब्रह्मक विषयम तो निस्पृह रहता है पर विषयोम अति लालायित है। यह रचमात्र भी उस अज्ञानरूपी अन्धकारका विछोह सहन नहीं कर सकता है। हे विप्रदव! कर्मोका जो श्रेष्ठतम क्षेत्र है वह अनक प्रकारके भावोसे व्यामोहित है। ज्ञानसम्पन्न व्यक्तिके पास जिस प्रकारसे शान्ति आ जाती है, विवेकवान् श्रेष्ठ मनुष्य जिस प्रकार अन्तर्बाह्य दोनो स्थितियोमे शुद्धताका प्राप्त कर लेता है वह सब मुझे बतानेकी कृपा करे।

ऋषिने कहा—हे वैश्यवर्य। यह मन अत्यन्त बलवान् है। यह नित्य ही विकारयुक्त स्वभाववाला है। तथापि जैसे पीलवान मतवाले हाथीको भी वशमे कर लेता है वैसे ही सत्सगतिसे, आलस्यरहित होकर साधन करके, तीव्र भक्तियोगसे तथा सद्विचारके द्वारा अपने मनको वशमे कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धम तुम्हे विश्वास हो जाय, इसलिये मैं एक इतिहास बता रहा हूँ, जो नारदके पूर्वजन्मके जीवनवृत्तसे जुडा हुआ है, जिसको स्वय उन्होने ही मुझसे कहा था।

नारदजीने मुझसे कहा—हे मुने। मैं प्राचीनकालमें किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणका दासीपुत्र था। वहींपर मुझे महान् पुण्यात्माओकी सत्सगति प्राप्त करनेका सुअवसर भी मिला। एक बार वर्षाकालमे भाग्यवश मेरे घर साधुजन ठहरे हुए थे। मेरे द्वारा विनम्रतापूर्वक बराबर की गयी सेवासे अत्यन्त सतुष्ट होकर उन लागोने मुझे उपदेश दिया था, जिसके प्रभावसे मेरी बुद्धि निर्मल और हितैषिणी बन गयी, जिससे अब मैं अपनेमे ही सबको विष्णुमय देखता हूँ।

मुनियोने नारदजीसे कहा—हे वत्स। तुम सुनो। हम सब तुम्हारे हितमे कह रहे हैं, जिसको स्वीकार कर तदनुसार जीवनयापन करनेवाला प्राणी इस लोक और परलोक दोनोम सुख प्राप्त करता है। इस ससारमें अनेक प्रकारके देवता पक्षी तथा मनुष्यादिकी योनियाँ हैं, जो कर्मपाशमें बँधी हुई हैं। वे सदैव पृथक्-पृथक् रूपसे कर्मफलाका भोग करते हुए सत्त्वगुणसे देवत्व, रजोगुणसे मनुष्यत्व और तमोगुणसे तिर्यक् योनि प्राप्त करते हैं। वासनामे आबद्ध बुद्धिहीन प्राणी माताके गर्भसे बार-बार जन्म लेकर मृत्युका वरण करता है। इस प्रकार उन असख्य योनियाम जाकर वह कभी दैवयागसे ही मनुष्यकी दुर्लभ यानिको प्राप्त कर महात्माओकी कृपासे भगवान् हरिको जानकर तथा अपार भवसागरका रोगरूपी ग्राह और माहरूपी पाशसे युक्त समझकर मुक्त हा जाता है। इस भवसागरका पार करनेके इच्छुक प्राणीक लिये राम-नाम-स्मरणक अतिरिक्त अन्य काई साधन हमे दिखायी नहीं दता है। जैसे दहीका मन्थन करनेसे नवनीत और काष्ठका

मन्थन करनेसे अग्नि प्राप्त होती है, वैसे ही आत्ममन्थन कर उस परमात्माको जो प्राणी जान लेता है, वह सुखी हो जाता है।

यह आत्मा नित्य, अव्यय, सत्य, सर्वगामी, सभी प्राणियामे अवस्थित और महान् है। यह अप्रमेय है। यह स्वयमं ज्योतिस्वरूप एव मनसे भी अग्राह्य है। यह वह तत्त्व है, जो सच्चिदानन्दरूप है और सभी प्राणियोके हृदयमे विराजमान रहता है। भावोके विनष्ट हो जानेपर भी कभी विनष्ट नहीं होता है। जिस प्रकार आकाश सभी प्राणियोमे, तेज जलमे तथा वायु सभी पार्थिव पदार्थोंमे स्थित है, उसी प्रकार आत्मा सवत्र व्याप्त और निर्लेप है। भक्तोपर कृपादृष्टि रखनेवाले भगवान् हरि साधुओकी रक्षा करनेके लिये अवतरित होत हैं। यद्यपि वे निर्गुण हैं, फिर भी अज्ञानियोको गुणवान् प्रतीत होते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकारकी ज्ञानवती बुद्धिसे अपने हृदयमे उस परमात्माका चिन्तन करता है, उसके भक्तियोगसे सतुष्ट होकर वे अजन्मा पुरुष परमात्मा उसको अपना दर्शन दत हैं। तत्पश्चात् वह भक्त कृतार्थ हो जाता है और सर्वदा सर्वत्र निष्कामभावसे बना रहता है। अत बन्धनयुक्त इस शरीरमे अहकारका परित्याग करके स्वप्नप्राय ससारमे ममता और आसक्तिसे रहित होकर सचरण करे। स्वप्नमे धैर्य कहाँ स्थिर रहता है? इन्द्रजालमे कहाँ सत्यता होती है? शरत्कालके मेघमें कहाँ नित्यता रहती है? वैस ही शरीरमे सत्यता कहाँ रहती है? यह दृश्यमान समस्त चराचर जगत् अविद्या-कर्मजनित है। ऐसा जानकर तुम्हे आचारवान् योगी बनना चाहिये। उससे तुम सिद्धि प्राप्त कर सकते हो।

इस प्रकारका उपदेश देकर वे सभी दीन-हीन प्राणियोपर वात्सल्य-भाव रखनेवाल साधु वहाँस चल गये। तदनन्तर मैं (नारद) उनके द्वारा बताये गये मार्गसे उसी प्रकारका आचरण प्रतिदिन करता रहा। कुछ ही समयके पश्चात् मैंने अपने अन्त करणम यह एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा कि शरत्कालीन चन्द्रमाके समान निर्मल, प्रतिक्षण आनन्द प्रदान करनेवाला अद्भुत प्रकाशपुञ्ज प्रज्वलित हो रहा है। वह महातेज मुझे प्रचुर सुखसे सींचकर (अपने प्रति) अधिक स्पृहायुक्त बनाकर आकाशम विद्युत्का भाँति अन्तर्हित हो गया। भक्तिपूर्वक मैं उस अनोखे ज्योतिपुञ्जका ध्यान करता हुआ समय आनेपर अपना शरीर छोडकर विष्णुलाक चला गया।

हे ब्रह्मन्! उन्हीं प्रभुकी इच्छासे पुन मेरा जन्म ब्रह्म हुआ। उन भगवान्की कृपासे ही मैं आज अनासक्त रह तीनो लोकोमे बार-बार वीणा बजाते और गीत गाते घूमता रहता हूँ।

अपना ऐसा अनुभव बताकर मुनि नारद मेरे पास मनोनुकूल दिशामे चले गये। उनकी उस बातसे मुझ बडा ही आश्चर्य हुआ और बहुत सतोष भी मिला।

अत सत्सगति तथा भगवद्भक्तिसे तुम्हारा विशु निर्मल और शान्त स्वभाववाला मन सुखी हो जायगा। धर्मज्ञ! साधुसगति होनेपर अनेक जन्मोमे किया गया प शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे शरत्काल आनपर बरसात समाप्त हो जाती है—

अतस्ते साधुसङ्गत्या भक्त्या च परमात्मन ॥
विशुद्ध निर्मल शान्त मनो निर्वृतिमेष्यति।
अनकजन्मजनित पातक साधुसङ्गमे॥
क्षिप्र नश्यति धर्मज्ञ जलाना शरदो यथा।
(६।१११—११

वैश्यने कहा—हे ऋषिराज! आपके इस वाक्यामृ रसपानसे मेरे अन्त करणको शान्ति मिल गयी। अ आपके इस दर्शनसे मेरी समस्त तीर्थयात्राका फल प्र हो उठा है।

यह सुनकर लोमशजीने कहा—हे राजन्द्र! धर्म, अ और काम—इस त्रिवर्गके फलकी इच्छा करनेवाले तुम हितमे यह मानता हूँ कि वृषोत्सर्गके बिना जो बहुत-सत्कर्म तुमने किये हैं, वे सब ओसकणोके रूपम पृथ्वी गिरे हुए जलके समान कुछ भी कल्याण करनेकी साम नहीं रखते हैं। इस पृथ्वीतलपर वृषोत्सर्गके सदृश हितक काई साधन नहीं है। इस श्रेष्ठकमको करनवाल लं अनायास पुण्यात्माओकी सद्गति प्राप्त कर लेते हैं। वृषोत्स कर्म जिसने किया है वह व्यक्ति और जो अश्वमेधयज्ञ कर्ता है, मेरी दृष्टिमें दोना समान हैं। वे दोनो दिव्य श प्राप्त करके इन्द्रदेवका सानिध्य ग्रहण करते हैं। अत तु पुष्करतीर्थम जाकर वृषोत्सर्ग-कर्मको सम्पन्न करो। साधु! उसके बाद ही तुम अपने घर जाओ, जिससे f इस तीर्थ-यात्राका समस्त कृत्य भलीभाँति पूर्ण हो जा

विपश्चित्ने कहा—इसक बाद वह वैश्य यज्ञको पू करनवाल वराहरूपी भगवान् जहाँ विद्यमान हैं, उस श्रे पुष्करतीर्थम गया और उसने कार्तिक पूर्णिमाके दिन ऋषिश्रेष्ठ

जैसा कहा था, उस वृषोत्सर्ग-कर्मको विधिवत् सम्पन्न किया। इसके बाद लोमश ऋषिकी संगतिमें वह बहुत-से तीर्थोंमें गया। अधिक पुण्य नील (वृष)-विवाहसे उसको प्राप्त हुआ था। श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर दिव्य विषयोंको भोगनेके बाद उसका वीरसेनके राजकुलमें जन्म हुआ। इस जन्ममें उसको वीरपञ्चानन नामकी ख्याति प्राप्त हुई। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ चतुष्टयका एक अद्वितीय साधक था। वृषोत्सर्ग करते समय वहाँ जो नौकर-चाकर उपस्थित थे, वे भी गायकी पूँछके तर्पणके छींटोंका स्पर्श करके दिव्य रूप हो गये। जो दूरसे ही इस कार्यको देख रहे थे, वे लोग हृष्ट-पुष्ट हो गये और उनका स्वरूप कान्तिसे चमक उठा। इसके अतिरिक्त जो लोग इस सत्कर्मके भू-भागसे बहुत दूर थे, वे मलिन दिखायी दे रहे थे। वृषोत्सर्ग न देखते हुए जो लोग उसकी निन्दा करनेवाले थे, वे अभागे, दीन-हीन और व्यवहार आदिमें रूक्ष, कृश और वस्त्रविहीन हो गये। हे द्विज! मैंने भगवान् पराशरसे पूर्वजन्मसे सम्बद्ध इस राजाका अद्भुत और धार्मिक जो वृत्तान्त सुना था उसका वर्णन आपसे कर दिया। इसलिये आप मेरे ऊपर कृपा करके अब अपने घर लौट जायँ। मन्त्रीके ऐसे वाक्योंको सुनकर वे ब्राह्मण अत्यधिक आश्चर्यचकित हो उठे। तदनन्तर राजसेवकोंके द्वारा उन्हें घरपर पहुँचा दिया गया।

वसिष्ठने कहा—हे राजन्! सभी कर्मोंमें वृषोत्सर्ग-कर्म श्रेष्ठतम है। अतः आप यदि यमराजसे भयभीत हैं तो यथाविधि वृषोत्सर्ग-कर्म ही करें।

हे राजश्रेष्ठ! वृषोत्सर्गके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा साधन नहीं है जो मनुष्यको स्वर्ग-प्राप्तिकी सिद्धि प्रदान कर सके—

वृषोत्सर्गसमं किञ्चित् साधनं न दिवः परम्।
(६।१३०)

आपको मैंने धर्मका रहस्य बता दिया है। यदि पति-पुत्रसे युक्त नारी पतिके आगे मर जाती है तो उसके निमित्त वृषोत्सर्ग नहीं करना चाहिये अपितु दूध देनेवाली गायका दान देना चाहिये[1]।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! महर्षि वसिष्ठके उक्त वचनोंको सुनकर राजा वीरवाहनने मथुरामें जाकर विधिवत् वृषोत्सर्गका अनुष्ठान किया। तदनन्तर अपने घर पहुँचकर उसने अपनेको कृतार्थ माना। समय आनेपर जब उसकी मृत्यु हुई तब यमराजके दूत उसको लेकर कालपुरीकी ओर चले, किंतु उस नगरको पार करके मार्गमें जब वह अधिक दूर निकल गया तो उसने दूतोंसे पूछा कि श्राद्धदेवका नगर कहाँ है? तब दूतोंने उसको बताया कि जहाँ पापी लोग पापशुद्धिके लिये यमदूतोंके द्वारा नरकमें ढकेले जाते हैं, जहाँ धर्माधर्मकी विवेचना करनेवाले धर्मराज विराजमान रहते हैं, वहीं वह श्राद्धदेवपुर है। आप-जैसे पुण्यात्माओंके द्वारा वह नहीं देखा जाता है। उसी समय देव-गन्धर्वोंके सहित दिव्य रूपवाले धर्मराजने उस राजाके समक्ष अपनेको प्रकट किया। अपने सामने उपस्थित धर्मराजको देखकर राजाने बड़े ही आदरके साथ हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त होकर उसने अनेक प्रकारसे गुण-कीर्तन करते हुए उन्हें संतुष्ट किया। धर्मराजने भी राजाकी प्रशंसा करके यही कहा—हे दूतो! तुम सब, इन्हें उस देवलोकमें ले जाओ, जहाँ प्रचुर भोगके साधन सुलभ हैं। राजा वीरवाहनने उस आदेशको सुनकर सामने ही स्थित धर्मराजसे पूछा—हे देव! मैं यह नहीं जानता हूँ कि आप मुझे किस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोक ले जा रहे हैं।

धर्मराजने कहा—हे राजन्! तुमने दान-यज्ञादि अनेक पुण्यकार्योंको विधिवत् सम्पन्न किया है। वसिष्ठकी आज्ञा मान करके तुमने मथुरामें वृषोत्सर्ग भी किया है।

हे नरेश! यदि मनुष्य थोड़े भी धर्मका सम्यक्‌रूपसे पालन करता है तो वह ब्राह्मण और देवताओंकी कृपासे अधिकाधिक हो जाता है—

धर्मः स्वल्पोऽपि नृपते यदि सम्यगुपासितः।
द्विजदेवप्रसादेन स याति बहुविस्तरम्॥
(६।१४२)

ऐसा कहकर यमुनाके भ्राता उसी क्षण अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वीरवाहन स्वर्गमें जाकर देवताओंके साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! मैंने वृषोत्सर्ग नामक यज्ञका माहात्म्य विस्तारपूर्वक तुम्हें सुना दिया है। प्राणियोंके पापकर्मको समाप्त करनेवाले इस आख्यानको सुननेवाला व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है। (अध्याय ६)

१-पतिपुत्रवती नारी भर्तुरग्रे मृता यदि। वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां दद्याच्च पयस्विनीम्॥ (६।१३१)

तप्तक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोकी कथा, सत्सगति तथा भगवत्कृपासे पाँच प्रेतो तथा ब्राह्मणका उद्धार

गरुडने कहा—हे प्रभो! आपने वृषोत्सर्ग नामक ने प्राप्त होनेवाले फलसे सम्बन्धित जो आख्यान कहा, को मैंने सुन लिया है। अत्र आप पुन किसी अन्य का वर्णन कर, जिसमे आपकी अद्भुत महिमा निहित हो।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! अब मैं सतप्तक नामक ण तथा पाँच प्रेतोकी कथाको बताता हूँ।

हे पक्षिन्! पूर्वकालमे सतप्तक नामक एक ब्राह्मण था। ने तपस्याके बलपर अपनेको पापरहित कर लिया था। ससार असार है, ऐसा जानकर वह वनोमे वैखानस योके द्वारा आचरित वृत्तिका पालन करते हुए अरण्यमे विचरण करता था। किसी समय उस ब्राह्मणने तीर्थ-को लक्ष्य बनाकर अपनी यात्रा प्रारम्भ की। ससारके इन्द्रियाँ स्वत आकृष्ट हो जाती हैं, इस कारणसे उसने नी बाह्य चित्तवृत्तियोको भी रोक लिया था, किंतु पूर्व कारोके प्रभावसे वह मार्ग भूल गया और चलते-चलते याह्काल हो गया, स्नानके लिये जलकी अभिलाषासे चारो ओर देखने लगा। उसे उस समय सैकडो गुल्म-ा और बाँसके वृक्षोसे घिरा हुआ, वृक्षाकी शाखाआसे प्त, घनघोर एक वन दिखायी पडा। वहाँ ताल, तमाल, पाल, कटहल, श्रीपर्णी, शाल शाखोट (सिहोरका वृक्ष), दन, तिन्दुक, राल, अर्जुन, आमडा लसोडा, बहेडा, म, इमली, बैर और कनैल तथा अन्य बहुत-से वृक्षोकी घनताके कारण पक्षियोके लिये भी मार्ग नहीं दीखता था। र मनुष्यके लिये उस वनमे कहाँ मार्ग मिल सकता था? ह वन तो सिह, व्याघ्र, तरक्षु (एक छोटी जातिका बाघ), लगाय, रीछ, महिष, हाथी, कृष्णमृग, नाग और बदर तथा न्यान्य प्रकारके हिसक जीव-जन्तु, राक्षस एव पिशाचोसे रिव्याप्त था।

सतप्तक उस प्रकारके घनघोर भयावह वनको देखकर याक्रान्त हो उठा। भयभीत वह अब किस दिशाम जाय, उका निर्णय नहीं कर सका। फिर जो होगा देखा यगा—यह सोचकर वह वहाँसे पुन चल पडा। झींगुराकी कार तथा उल्लुआकी धूतकार ध्वनियापर कान लगाये ह पाँच ही डग चला था कि सामने बरगदके वृक्षम बँधा क शव लटका हुआ उसे दिखायी दिया जिसे पाँच महाभयकर प्रेत खा रहे थे। हे खगेश! उन प्रेतोके शरीरमे मात्र शिराओसे युक्त हड्डी और चमडा ही शेष था। उनका पेट पीठमे धँसा हुआ था। नेत्ररूपी कुओमे गिरनेके भयसे नासिकाने उनका साथ छोड दिया था। वसासे भरे हुए ताजे शवके मस्तिष्क-भागका स्वाद लेकर जो नित्य अपना महोत्सव मनाते थे और हड्डीकी गाँठोको तोडनेमे लगे हुए जिनके बडे-बडे दाँत किटकिटाते थे, ऐसे प्रेतोको देखकर घबडाये हुए हृदयवाला वह ब्राह्मण वहीं ठिठक गया। उस निर्जन वनमे आ रहे ब्राह्मणको उन प्रेतोने देख लिया था। अत 'मैं उसके पास पहले जाऊँगा, मैं उसके पास पहले जाऊँगा'—इस प्रकारकी प्रतिस्पर्धामे वे सभी प्रेत दौड पडे। उनमसे दो प्रेतोने इस ब्राह्मणके दोनो हाथ पकड लिये, दो प्रेताने दोनो पैर पकड लिये। एक प्रेत शेष बचा था, उसने इसका सिर पकड लिया। तदनन्तर वे सभी कहने लगे कि 'मैं इसे डकारूँगा, मैं इसे खाऊँगा।' ऐसा कहते हुए वे पाँचो प्रेत ब्राह्मणको खींचने लगे। फिर उसे साथ लेकर वे सहसा आकाशम चले गये। किंतु उस बरगदपर शवका अभी कितना मास शेष है और कितना नहीं, इस बातको भी वे सोच रहे थे। उसी समय उन लोगाने देखा कि दाँताके द्वारा नोचे जानेके कारण वह शव तो अभी फटी हुई आँतसे युक्त है। इसलिये वे आकाशसे नीचे उतर आये और शवको अपने पैरोसे बाँधकर पुन आकाशमे ही उड गये।

आकाशम ले जाये जा रहे उस प्रेतरूपमे स्वयको ही समझकर वह भयार्त ब्राह्मण पूर्ण मनस मेरी शरणम आ गया। देवाधिदेव, चिन्मय सुदर्शनचक्रधारी मुझ हरिको प्रणाम कर वह इस प्रकार स्तुति करने लगा—

जिन भगवान्ने अपने चक्रके प्रहारसे ग्राहके मुखको विदीर्णकर उसके दु खको नष्ट किया था, जो ग्राहके मुखम फँसे हुए गजराजको मुक्त करानेवाले हैं, वे श्रीहरि मेरे कर्मपाशको काटकर मुझे मुक्त करें। मगधनरेश जरासन्धने निर्दोष राजाओको बदी बनाकर कारागारमे डाल दिया था, जिन मुरारि श्रीकृष्णने राजसूययज्ञके लिये पाण्डुपुत्र भीमसेनके द्वारा उस दुष्टका मल्लयुद्धम मरवाकर राजाओको मुक्त किया था। वे इस समय मेरे कर्मपाशको

काटकर मेरा दु ख दूर करे।

हे गरुड! उस समय दत्तचित्त होकर जब वह मेरी स्तुतिमे लग गया तो उसे सुनते ही मैं भी उठ खडा हुआ और सहसा वहाँ जा पहुँचा, जहाँ प्रेत उसको लेकर जा रहे थे। उन लोगाके द्वारा ले जाते हुए उस ब्राह्मणको देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। कुछ कालतक बिना पूछे मैं भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा। मेरी सनिधिमात्रसे उस ब्राह्मणको पालकीम सोये हुए राजाके समान सुख प्राप्त हुआ। इसके बाद मैंने मार्गम सुमेरु पर्वतपर जा रह मणिभद्र नामक यक्षराजको देखा। मैंने नेत्राके सकेतसे उन्ह अपने पास बुलाया और कहा—हे यक्षराज! तुम इस समय इन प्रेतोको विनष्ट करनेके लिये प्रतिद्वन्द्वी योद्धा बन जाओ। युद्धमे इन्हे मारकर इस शवका अपने अधिकारमे करो।

ऐसा सुनते ही उस मणिभद्रने प्रतोको दु ख पहुँचानेवाले प्रेतरूपको धारण कर लिया। दोना भुजाओको फैलाकर ओठोको जीभसे चाटते हुए और अपनी लम्बी-लम्बी नि श्वासोसे उन प्रेताको दहलाते हुए वह मणिभद्र उनके सम्मुख जाकर डट गया। उसने दोको अपनी दोनो भुजाओसे, दोको दोना पैरासे और एकको सिरसे पकड लिया। उसके बाद अपने शक्तिशाली मुक्केसे उन प्रेतापर ऐसा प्रहार किया कि वे सभी विवर्णमुख हो गये। वे उस ब्राह्मण तथा शवको एक हाथ और एक पैरस पकडकर युद्ध करने लगे। उन लोगाने अपने नख-थप्पड लात एव दाँतोसे उसपर प्रहार किये, पर मणिभद्रने उनके प्रहारको विफल कर उनसे शवको ले लिया। उस यक्षके द्वारा शवको छीन लिये जानेपर पारियात्र पर्वतपर उस ब्राह्मणको छोडकर वे सभी प्रेत अत्यन्त उत्साहसे भरे हुए पुन प्रेतरूप मणिभद्रकी ओर दौड पडे। क्षणमात्रम ही उन लोगोने वायुके समान द्रुतगामी मणिभद्रको घेर लिया, किंतु वह अदृश्य हो गया। ऐसी स्थिति देखकर हताश होकर वे प्रेत उस ब्राह्मणके पास जा पहुँचे। उस पर्वतपर पहुँचकर उन लोगोने ब्राह्मणको ज्यो-ही मारना प्रारम्भ किया त्यो-ही मेरी उपस्थिति और ब्राह्मणके प्रभावसे तत्काल उनम पूर्वजन्मकी स्मृति जाग्रत् हो उठी। इसके बाद ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करके उन प्रेताने ब्राह्मणश्रेष्ठस कहा—हे विप्रदेव! आप हमे क्षमा कर। उनके दीन वचनाको सुनकर ब्राह्मणने पूछा—आप लाग कौन हैं? यह क्या कोई माया है? अथवा यह मैं स्वप्न देख रहा हूँ या यह मर चित्तका विभ्रम है।

प्रेतोने कहा—हम सब प्रेत हैं और पूर्वजन्मके दुष्कर्मोंके प्रभावसे इस योनिको प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतो! तुम्हारे क्या नाम हैं? तुम सब क्या करते हो? तुम्हे कैसे इस दशाकी प्राप्ति हुई? पहले मरे प्रति तुम लोगाका व्यवहार कैसे अविनयी था और इस समय कैसे विनयी हो गया है।

प्रेतोने कहा—हे द्विजराज! आप यथाक्रम अपने प्रश्नाका उत्तर सुन। हे योगिराज! हम आपके दर्शनसे निष्पाप हो गये हैं। हमारे नाम क्रमश पर्युषित, सूचीमुख शीघ्रग, रोधक और लेखक हैं।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतो! पूर्वकर्मसे उत्पन्न प्रेतोका नाम कैसे निरर्थक हो सकता है? तुम सब अपने इन विचित्र नामाके विषयम विस्तारसे मुझे बताओ।

श्रीकृष्णने कहा—ब्राह्मणके द्वारा ऐसा कहे जानेपर पृथक्-पृथक् रूपस प्रेताने कहा—

पर्युषितने कहा—किसी समय मैंने श्राद्धके सुअवसरपर ब्राह्मणको निमन्त्रित किया था वह वृद्ध ब्राह्मण मेरे घर विलम्बसे पहुँचा। बिना श्राद्ध किये ही भूखके कारण मैंने उस पाकका खा लिया। कुछ पर्युषित (बासी) अन्न लाकर मैंन उस ब्राह्मणका द दिया। मरनेपर मुझे उसी पापके कारण इस दुष्टयोनिकी प्राप्ति हुई। मैंने ब्राह्मणको जो बासी भाजन दिया था उसीसे मरा नाम पर्युषित हो गया।

सूचीमुखने कहा—किसी समय कोई ब्राह्मणी तीर्थस्नानके लिये भद्रवट तीर्थमे गयी। उसके साथ उसका पाँच वर्षीय पुत्र भी था, जिसके सहारे वह जीवित थी। मैं उस समय क्षत्रिय था। मैं उसके मार्गका अवरोधक बन गया और निर्जन वनमे मैंने राहजनी की। हे विप्र! उस लडकेके सिरपर मुष्टि-प्रहार कर मैंने दोनोके वस्त्र और राहम खाने योग्य सामान छीन लिया। वह लडका प्याससे व्याकुल हो उठा था। अत वह माताके पास स्थित जल लेकर पीने लगा। उस पात्रमे उतना ही जल था। मैंने उसको डाँटकर जल पीनेसे रोक दिया और स्वय उस पात्रका सारा जल पी गया। भयसत्रस्त, प्याससे व्याकुल उस बालककी वहींपर मृत्यु हो गयी। पुत्रशोकसे व्यथित उसकी माँने भी कुएँमें कूदकर अपना प्राण त्याग दिया। इसी पापसे मुझको यह प्रेतयोनि प्राप्त हुई है।

पर्वताकार शरीर होनेपर भी इस समय मैं सुईकी नाकके समान मुखवाला हूँ। यद्यपि खाने योग्य पदार्थ मैं प्राप्त कर लेता हूँ, फिर भी यह मेरा सुईके छिद्रके समान मुख उसको खानेम असमर्थ है। मैंने क्षुधाग्निसे जलते हुए ब्राह्मणीके बालकका मुँह बद किया था, उसी पापसे मेरे मुँहका छिद्र भी सुईकी नाकके समान हा गया है। इसी कारण मैं आज सूचीमुख नामसे प्रसिद्ध हूँ।

शीघ्रगने कहा—हे विप्रवर! मैं पहले एक धनवान् वैश्य था। उस जन्ममे अपने मित्रके साथ व्यापार करनेके लिये मैं एक दूसरे देशमे जा पहुँचा। मेरे मित्रके पास बहुत धन था। अत उस धनके प्रति मेरे मनम लोभ आ गया। अदृष्टके विपरीत होनेसे वहाँ मेरा मूल धन समाप्त हो चुका था। हम दोनोने वहाँसे निकलकर मार्गम स्थित नदीको नावसे पार करना प्रारम्भ किया। उस समय आकाशमे सूर्य लाल हो गया था। राहकी थकानसे व्याकुल मेरा वह मित्र मेरी गोदम अपना सिर रखकर सो गया। उस समय लोभवश मेरी बुद्धि अत्यन्त क्रूर हो उठी। अत सूर्यास्त हो जानेपर गादमे सोये हुए अपने मित्रको मैंने जल-प्रवाहमे फेक दिया। मेरे द्वारा नावमे किये गये उस कृत्यका अन्य लोग भी न जान सके। उस व्यक्तिके पास जो कुछ बहुमूल्य हीरे-जवाहरात, मोती तथा सोनकी वस्तुएँ थीं, वह सब लेकर मैं शीघ्र ही उस देशसे अपने घर लौट आया। घरमे वह सब सामान रखकर मैंने उस मित्रकी पत्नीके पास जाकर कहा कि मार्गम डाकुआने मेरे उस मित्रको मारकर सब सामान छीन लिया और मैं भाग आया हूँ। मैंने उससे फिर कहा कि हे पुत्रवती नारी! तुम रोना नहीं। शोकसे व्यथित उस स्त्रीने तत्काल घरके बन्धु-बान्धवाकी ममताका परित्याग कर अपने प्राणोकी भेट अग्निको यथाविधि चढा दिया। उसके बाद निष्कण्टक स्थिति देखकर मैं प्रसन्नचित्त अपने घर चला आया। घर आकर जबतक मेरा जीवन रहा, तबतक उस धनका मैंने उपभोग किया। मित्रको नदीके जल-प्रवाहम फेककर मैं शीघ्र ही अपने घर लौट आया था, उसी पापके कारण मुझे प्रतयानि मिली और मेरा नाम शीघ्रग हो गया।

रोधकने कहा—हे मुनीश्वर! मैं पूर्व-जन्ममे शूद्र जातिका था। राजभवनसे मुझे जीवन-यापनके लिये उपहारमे बहुत बडे-बडे सौ गाँवाका अधिकार प्राप्त था। मरे परिवारमे बूढे माता-पिता थे और एक छोटा सगा भाई था। लोभवश मैंने शीघ्र ही अपने उस भाईको अलग कर दिया जिमके कारण अन्न-वस्त्रसे रहित उस भाईको अत्यधिक दु ख भोगना पडा। उसके दु खको देखकर मेरे माता-पिता लुक-छिपकर कुछ-न-कुछ उसको दे देते थे। जब मैंने भाईका माता-पिताके द्वारा दी जा रही उस सहायताकी बात विश्वस्त पुरुषासे सुनी तो एक सूने घरमे माता-पिताको जजीरसे रुद्ध कर दिया। कुछ दिनाके बाद दु खी उन दोनोने विष पीकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली। हे द्विज! माता-पितासे रहित होकर मेरा भाई भी इधर-उधर भटकने लगा। ग्राम तथा नगरमे भटकता हुआ एक दिन वह भी भूखसे पीडित होकर मर गया। हे ब्राह्मण! मरनेके बाद उसी पापके कारण मुझे यह प्रेतयोनि मिली। माता-पिताको मैंने बदी बनाया था, इसी कारण मेरा नाम रोधक पडा।

लेखकने कहा—हे विप्रदेव! मैं पूर्वजन्ममे उज्जैन नगरका ब्राह्मण था। वहाँके राजाने मरी नियुक्ति दवालयम पुजारीक पदपर की थी। उस मन्दिरम विभिन्न नामवाली बहुत-सी मूर्तियाँ थीं। स्वर्णनिर्मित उन प्रतिमाआके अङ्गामे बहुत-सा रत्न भी लगा हुआ था। उनकी पूजा करते हुए मेरी बुद्धि पापासक्त हो गयी। अत मैंने एक तेज धारवाले लोहेसे उन मूर्तियाके नेत्रादिस रत्नाको निकाल लिया। क्षत-विक्षत और रत्नरहित नेत्राका देखकर राजा प्रज्वलित अग्निके समान क्रोधसे तमतमा उठा। उसके बाद राजाने

यह प्रतिज्ञा की कि चोर चाहे श्रेष्ठ ब्राह्मण ही क्या न हो यदि उसने मूर्तियासे रत्न और सोना चुराया होगा तो ज्ञात होनेपर निश्चित ही मेरे द्वारा मारा जायगा। यह सब सुनकर मैंने रात्रिमे तलवार उठायी और राजाके घरमे जाकर उसका पशुकी तरह वध कर दिया। तदनन्तर चुराया गयी मणियो तथा सोनेको लेकर मैं रात्रिमे ही अन्यत्र जाने लगा, किंतु मार्गमे स्थित घनघोर जगलमें एक व्याघ्रने मुझे मार डाला। मैंने लोहेसे प्रतिमा-छेदन एव काटनेका जो कार्य किया था उस पापसे आज मैं लेखक नामका प्रेत हूँ। नरकभोग करनेके पश्चात् मुझे यही प्रेत-योनि प्राप्त हुई।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतगणो! आप लोगोने अपनी जैसी दशाएँ बतायी हैं, वैसे ही आप सबके नाम भी हैं। वर्तमान समयमे तुम लोगोका आचरण और आहार क्या है? उसको भी मुझे बताओ।

प्रेतोने कहा—हे द्विजराज! जहाँपर वेदमार्गका अनुसरण होता है, जहाँ लज्जा, धर्म, दम, क्षमा, धृति और ज्ञान—ये सब रहते हैं, वहाँ हम सब वास नहीं करते। जिसके घरमे श्राद्ध तथा तर्पणका कार्य नहीं किया जाता, उसके शरीरसे मास और रक्त बलात् अपहृत करके हम उसे पीडा पहुँचाते हैं। मास खाना और रक्त पीना यही हमारा आचरण है। हे निष्पाप! सभी लोगोके द्वारा निन्दनीय हमारे आहारको सुने। कुछ तो आपने देख लिया है और जो आपको मालूम नहीं है, उसको हम बता रहे हैं। हे विप्र! वमन विष्ठा कीचड कफ, मूत्र और आँसुओके साथ निकलनेवाला मल, हमारा भक्ष्य और पान है। इसके आगे न पूछे, क्योंकि अपने आहारको बताते हुए हम बहुत लज्जा आ रही है। हे स्वामिन्! हम सब अज्ञानी, तामसी मन्दबुद्धि और भयसे भागनेवाले हैं। हे विप्र! हममे पूर्वजन्मकी स्मृति एकाएक आ गया है। अपने विनय या अविनयके सदर्भमे हम कुछ नहीं जानते हैं।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! प्रेतोके ऐसा कहने एव ब्राह्मणके सुननेके समय मैंने उन्हे दर्शन दिया। हृदयमें निवास करनेवाले अन्तर्यामी पुरुषके स्वरूपको सामने देखकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और स्तुतियोसे मुझे सतुष्ट किया। आश्चर्यसे उत्फुल्ल नेत्रवाले उन प्रेताने तपस्या की। हे खगराज! प्रेमाधिक्य होनेसे उनकी वाणी रुक गयी। उस समय उनके मुखसे कुछ भी नहीं निकल पा रहा था। स्खलित वाणीमें वह ब्राह्मण कहने लगा—

हे प्रभो! आप कृपा करके रजोगुणके कारण घोर चित्तवाले और तमोगुणसे मूढ चित्तवाले प्राणियोका उद्धार करते हैं। आपको नमस्कार है।

ब्राह्मणने जैसे ही यह कहा, उसी समय मेरी इच्छासे अत्यन्त तेजस्वी, श्रेष्ठ आकाशचारी गन्धर्व एव अप्सराओसे युक्त छ विमान वहाँ आ पहुँचे। उन विमानोकी प्रभासे वह पर्वत चतुर्दिक् आलोकित हो गया। उन पाँचोके साथ वह ब्राह्मण विमानपर चढकर मेरे लोकको चला गया। (अध्याय ७)

और्ध्वदैहिक क्रियाके अधिकारी तथा जीवित-श्राद्धकी सक्षिप्त विधि

गरुडने कहा—हे स्वामिन्! इस सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक कार्यका सम्पन्न करनेका अधिकारी कौन है? यह क्रिया कितने प्रकारकी है? यह सब मुझे बतानेकी कृपा करे।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! [जो मनुष्य मर जाता है, उसका और्ध्वदैहिक कार्य] पुत्र पौत्र प्रपौत्र भाई भाईकी सतान अथवा सपिण्ड या जातिके लोग कर सकते हैं। इन सभीके अभावमे समानोदक सतान इस कार्यको करनेका अधिकारी है। यदि दोनो कुलो (मातृकुल एव पितृकुल)-के पुरुष समाप्त हो गये हों तो स्त्रियाँ इस कार्यको कर सकती हैं। यदि मनुष्यने इच्छापूर्वक अपने सभी सगे-सम्बन्धियोसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है तो उसका और्ध्वदैहिक कार्य राजाको कराना चाहिये।

यह क्रिया तीन प्रकारकी है, जिनको पूर्व, मध्यम एव उत्तर क्रियाओकी सज्ञा दी गयी है। हे पक्षिन्! इस क्रियाको प्रतिसवत्सर एकोद्दिष्ट-विधानसे करना अपेक्षित है। इस श्राद्ध-क्रियाके फलको तुम मुझसे सुनो।

ब्रह्मा इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार सूर्य अग्नि, वसु, मरुद्गण विश्वेदेव पितृगण पक्षी, मनुष्य पशु, सरीसृप मातृगण और इनके अतिरिक्त जो भी प्राणी इस ससारमें उत्पन्न हैं उन सभीको श्रद्धापूर्वक किये जा रहे श्राद्धसे

मनुष्य प्रसन्न कर सकता है। ऐसे श्राद्धसे तो सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हो उठता है। जो लोग अपने सगे-सम्बन्धियाके द्वारा किये गये श्राद्धसे सतृप्त हो जात हैं, वे श्राद्धकर्ताको पुत्र, स्त्री और धन आदिके द्वारा तृप्त करते हैं। हे गरुड! इस प्रकार मैंने सक्षपम अधिकार और क्रिया-भेदका निरूपण किया।

गरुडने कहा—हे देवश्रेष्ठ! यदि पहले कहे गये अधिकारियोमसे एक भी न हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये?

श्रीकृष्णने कहा—जब अधिकारी व्यक्ति न हो और न तो किसीके अधिकारका निश्चय ही हो रहा हो तो वैसी स्थितिम मनुष्यको स्वय अपने जीवनकालम ही जीवित-श्राद्ध कर लेना चाहिये। उपवासपूर्वक स्नान करके भगवान् कृष्णके प्रति आसक्त हृदय होकर मनुष्य एकाग्र मनसे उस कर्ता, भोक्ता, सर्वेश्वर विष्णुकी पूजा करे। उसके बाद वह अपने पितृगणोके लिये तिल एव दक्षिणाके सहित तीन जलधेनु[१] 'ॐ पितृभ्य स्वधा' कहकर निवेदित करे और धेनुदान करते समय 'ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम' तथा 'ॐ सोमाय त्वा पितृमते स्वधा नम' ऐसा स्मरण करता हुआ वह दक्षिणाभिमुख होकर दक्षिणासहित तीसरी जलधेनु देते समय विशेषरूपसे 'यमायाङ्गिरसे स्वधा नम' यह स्मरण करता रहे। भगवान् विष्णुके यजन एव जलधेनुदानके मध्य ही ब्राह्मणाका आवाहन करके उन्ह भोजन कराना चाहिये। वह पहली जलधेनु उत्तर दिशाम तथा दूसरी जलधेनु दक्षिण दिशाम रखे और उन दोना धेनुओंके मध्यमे तीसरी धेनु रखकर आवाहन आदि श्राद्धसम्बन्धी कार्य कर। इस आवाहनादि क्रियाके पूर्वम सर्वप्रथम आवाहनपूर्वक विश्वेदेवाके प्रतिनिधिभूत ब्राह्मणाकी भलीभाँति पूजा कर वह यह कहे—

वसुभ्यस्त्वामह विप्र रुद्रेभ्यस्त्वामह तत ।
सूर्येभ्यस्त्वामह विप्र भोजयामीति तान्वदेत्॥ (८।१७)

तदनन्तर आवाहनादिक जो शेष कार्य हैं, उन्ह पितृ-शेष कार्योंकी तरह सम्पादित करे। उसके बाद वह वसुके उद्देश्यसे ब्राह्मणका एक सुशील धेनुका दान दे। तत्पश्चात् आग्नेय कोणमें रुद्रदेव तथा दक्षिण दिशाम सूर्यदवक निमित्त स्थित ब्राह्मणाका भी एक-एक गाय दनी चाहिये तथा विश्वेदेवाके लिये तिलपूर्ण पात्रका निवदन कर। तदनन्तर ब्राह्मणाको अक्षयोदक दान करना चाहिय एव ब्राह्मण 'ॐ स्वस्ति' इस प्रतिवचनसे श्राद्धकृत्यकी सम्पूर्णताका आशीर्वाद द। इसके बाद अष्टाक्षर-मन्त्रसे भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए उनका विसर्जन करे।

इसके पश्चात् स्वस्थचित्त होकर कुलदेवी, ईशानी, शिव तथा भगवान् नारायणका स्मरण करे। तदनन्तर चतुर्दशी तिथिको सुगमतासे उपलब्ध हानवाली श्रेष्ठ नदीके तटपर जाय। वहाँ वस्त्र तथा लौहखण्डाका दान करे एव 'ॐ जित ते' इस मन्त्रका जप करता हुआ स्वय दक्षिणाभिमुख होकर अग्निको प्रज्वलित करे। तदनन्तर वह पचास कुशासे ब्राह्मीप्रतिकृति (पुत्तल) बना करके उसका दाह करे। इसके बाद श्मशानम विहित होम करके अन्तम पूर्णाहुतिकी क्रिया सम्पन्न करे। तत्पश्चात् निरग्नि भूमि, यम तथा रुद्रदेवका स्मरण करे। हवन करनेके बाद प्रधान स्थानपर उक्त देवाका आवाहन करना चाहिये। उसके बाद वह अग्निमे मूँगमिश्रित चरु पकाये। तदनन्तर तिल-तण्डुल-मिश्रित दूसरी चरु पकाय।

'ॐ पृथिव्यै नमस्तुभ्य०'—इस मन्त्रसे प्रथम चरु निवेदित करे। 'ॐ यमाय नमश्च०' इस मन्त्रसे यमको द्वितीय चरु निवेदित करे। 'ॐ नमश्चाथ रुद्राय श्मशानपतये नम'—इस मन्त्रसे श्मशानपति रुद्रको निवदित करे। उसके बाद श्राद्धकर्ता सात नामवाले यमराजके लिये निम्न मन्त्रासे सात जलाञ्जलियाँ छोडे—'ॐ यमाय स्वधा तस्मै नम', 'ॐ धर्मराजाय स्वधा तस्मै नम', 'ॐ मृत्यवे स्वधा तस्मै नम', 'ॐ अन्तकाय स्वधा तस्मै नम', 'ॐ वैवस्वताय स्वधा तस्मै नम', 'ॐ कालाय स्वधा तस्मै नम' और 'ॐ सर्वप्राणहराय स्वधा तस्मै नम।'

इसक बाद श्राद्धकर्ता तुम सब अमुक-अमुक गोत्रसे सम्बन्धित हा, 'यह तिलोदक तुम्हारे लिये होवे'। ऐसा कहते हुए अर्घ्य-पुष्पसे युक्त दस पिण्ड-दान दे। उसके

१ दानके लिये कृत्रिम धेनुका विधान है। इसे गोदानप्रसगमें वराहपुराण आदिम जलधेनुदानविधिके अन्तर्गत देखना चाहिये।

बाद उन्हें धूप दीप, बलि, गन्ध तथा अक्षय जल प्रदान करे। उक्त दस पिण्डोका दान देनेके पश्चात् भगवान् विष्णुके सुन्दर सुभग मुखका ध्यान करना चाहिये।

इस कृत्यको करनेके बाद आशौचके अन्तमे प्रतिमास मासिक श्राद्ध और सपिण्डीकरण करना चाहिये। श्राद्ध चाहे अपने लिये हो या दूसरेके लिये यही नियम है। शक्ति, आरोग्य, धन और आयु—ये चारो अस्थिर होते हैं, अत ऐसा जानकर जीवित-श्राद्ध करना चाहिये। मैंने इस जीवित-श्राद्धके विषयमे तुम्हे सब कुछ बता दिया है। (अध्याय ८)

राजा बभ्रुवाहनकी कथा, राजाद्वारा प्रेतके निमित्त की गयी और्ध्वदैहिकक्रिया एव वृषोत्सर्गसे प्रेतका उद्धार

गरुडने कहा—हे निष्पाप देव! आपने यह कहा कि जब मनुष्यकी और्ध्वदैहिक क्रियाको करनेवाला कोई न हो तो उस आद्य क्रियाका राजा सम्पन्न कर सकता है। प्राचीनकालम क्या किसी राजाने किसी ऐसे व्यक्तिकी और्ध्वदैहिक आदि क्रिया सम्पन्न की थी?

श्रीकृष्णने कहा—हे सुपर्ण! तुम सुनो! जिस राजाने इस क्रियाको किया था मैं उसके विषयम कहूँगा। कृतयुगम वग देशमे बभ्रुवाहन नामका एक राजा था। हे पक्षीन्द्र! वह समुद्रसे चारो ओर घिरी हुई अपनी पृथ्वीकी धर्मानुसार भलीभाँति रक्षा करता था। उसने अपने जीवनकालमे इस सम्पूर्ण पृथ्वीका विधिवत् भोग किया। उसके शासनकालमें कोई भी पापी नहीं था। प्रजाओको न तो चोरका भय था और न तो दुष्टजनोके द्वारा किये गये उपद्रवोका आतक था। उसके राज्यकालम किसी भी प्रकारके रोगका भी भय नहीं था। सभी अपने-अपने धर्ममे अनुरक्त थे। वह राजा तेजम सूर्यकी भाँति अक्षुब्धता (शान्ति)-म पर्वतके समान और सहिष्णुताम पृथ्वीके सदृश था। किसी समय उस राजाने एक सौ घुडसवार सैनिकोको साथ लेकर मृगयाके लिये एक घने वनकी ओर प्रस्थान किया। उस समय योद्धाओके सिहनाद शङ्ख तथा दुन्दुभियोकी ध्वनिसे मिलकर निकले किलकिलाहटभरे शब्दोसे वातावरण गूँज रहा था। वहाँ स्थान-स्थानपर चारो ओर उस राजाकी स्तुति हो रही थी। चलते-चलते उस राजाको नन्दनवनके समान एक वन दिखायी पडा। वह वन बिल्व मदार खदिर कैथ तथा बाँसके वृक्षोसे परिव्याप्त था। ऊँचे नीचे पर्वतोसे चारो ओर घिरा हुआ था। जलरहित तथा निर्जन उस वनका विस्तार कई योजनका था। मृग, सिह तथा अन्य महाभयकर हिंसक जीव-जन्तु उसम भरे हुए थे। अपने सेवक एव सैनिकोके साथ नाना प्रकारके मृगोको मारते हुए उस नरशार्दूलने खेल-ही-खेलम उस वनको विक्षुब्ध कर दिया।

इसके बाद राजाने किसी एक मृगके कुक्षिभागमें बाणका प्रहार किया। आहत होकर भी वह मृग बडी तेजीसे दौड पडा। राजाने भी उस मृगका पीछा किया। अकेला अत्यधिक दूरी तय करनेके कारण थका हुआ भूख-प्याससे पीडित वह राजा उस वनको पार कर एक दूसरे घनघोर वनमे जा पहुँचा। अत्यन्त प्याससे क्षुब्ध होकर वह उस वनमे इधर-उधर जल खोजने लगा। हस और सारस पक्षियोके शब्दसे सूचित किये गये पूरचक्र नामक सरोवरपर जा कर उसने अश्वके साथ वहाँ स्नान किया। तदनन्तर उस सरोवरके लाल एव नीले कमलोके परागसे सुगन्धित शीतल जलको पीकर वह जलसे बाहर आया। मार्गमें अत्यधिक चलनेके कारण थके हुए राजाने उसी सरोवरके किनारे एक छायादार वटवृक्षको देखकर उसमें अपने घोडेको बाँध दिया। तत्पश्चात् आस्तरणको बिछाकर तथा ढालकी तकिया लगाकर क्षणभरम ही शीतल मन्द वायुके सुखकी अनुभूति करता हुआ वह सो गया।

राजाके सोते ही वहाँ सौ प्रेतोके साथ घूमता हुआ प्रेतवाहन नामक एक प्रेत आ पहुँचा। उसके शरीरमें मात्र अस्थि चर्म और शिराएँ ही शेष थीं। वह खाने-पीनेको खोजता हुआ धैर्य नहीं धारण कर पा रहा था। आहट पाकर राजाकी नींद खुल गयी। पहले कभी न देखे गये उस दृश्यको देखकर राजाने शीघ्र ही अपने धनुषपर बाण च

लिया। अपने सामने राजाको देखकर वह प्रेत भी स्थाणुके सदृश खडा रहा। उसको अवस्थित दखकर राजाक मनम कौतूहल हो उठा। उन्होंने प्रेतसे पूछा कि तुम कौन हो? यहाँ कहाँसे आये हो? तुम्हे यह विकृत शरीर कैसे प्राप्त हुआ है?

प्रेतने कहा—हे महाबाहो! आपके इस सयोगस मैंने अपना प्रेतभाव त्याग दिया हे। मुझे अब परमगति प्राप्त हो गयी है। मेरे समान धन्य अन्य कोई नहीं है।

बभ्रुवाहनने कहा—यह वन सर्वत्र अत्यन्त भयानक है। इसमे मैं यह क्या देख रहा हूँ? हे पिशाच! यहाँ यह वन भी आँधीके झार्कोसे ग्रस्त है। यहाँ पतग, मशक, मधुमक्खी, कबन्ध, शिरी, मत्स्य, कच्छप, गिरगिट, बिच्छू, भ्रमर, सर्प, अधोमुखी हवाएँ चलती हैं, बिजलीकी आग जलती है वायुके झोंकोसे इधर-उधर तिनके हिल-डुल रहे हैं। यहाँ नाना प्रकारके जीव-जन्तु, हाथी तथा टिड्डियोके बहुत प्रकारके शब्द सुनायी पड रहे हैं, किंतु कहींपर भी कोई दिखायी नहीं दे रहा है। यह सब विकृत स्थिति देखकर मेरा हृदय काँप रहा है।

प्रेतने कहा—राजन्! जिन प्राणियाका अग्नि-सस्कार, श्राद्ध, तर्पण षट्पिण्ड, दशगात्र, सपिण्डीकरण नहीं हुआ है, जो विश्वासघाती, मद्यपी और स्वर्णचोर रहे हैं, जो लाग अपमृत्युसे मरे हैं जो ईर्ष्या करनेवाले हैं, जा अपने पापोका प्रायश्चित्त नहीं करते हैं, जो गुरु आदिकी पत्नीके साथ गमन करते हैं, वे सभी प्राणी अपने कर्मोंके कारण भटकत हुए प्रेतरूपमे यहाँपर निवास करते हैं। इनको खान-पान बडा दुर्लभ है। ये अत्यधिक पीडित रहते हैं। हे राजन्! कृपया आप इनका और्ध्वदैहिक सस्कार करे। जिनके माता-पिता, पुत्र और भाई-बन्धु नहीं हैं उनका और्ध्वदैहिक सस्कार राजाको स्वय करना चाहिये। राजा इससे अपने पारलोकिक शुभ कर्मको भी सम्पन्न कर सकता है और वह सभी दु खोसे विमुक्त हो जाता है। इस कर्मसे सम्मानित होकर राजा अपनी दुर्गति दूर कर सकता है। इस ससारम कौन किसका भाई है, कौन किसका पुत्र है और कौन किसकी स्त्री है सभी स्वार्थके वशीभूत हें। उनम मनुष्यको विश्वास नहीं करना चाहिये, क्याकि वह अपन कर्मोका स्वय ही भोग करता है। धन घरमे छूट जाता है, भाई-बन्धु श्मशानम छूट जाते हैं, शरीर काष्ठका सौंप दिया जाता हे। जीवक साथ पाप-पुण्य ही जाता हे—

गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशाने चैव बान्धवा ॥
शरीर काष्ठमादत्ते पाप पुण्य सह व्रजेत्।
(९।३६-३७)

अत राजन्! अपने कल्याणकी इच्छासे आप इस नश्वर शरीरसे अविलम्ब प्रेताका और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन्न करे।

राजाने कहा—हे प्रेतराज! कृशकाय भयकर नेत्रवाले तुम प्रेतके समान दिखायी देते हो। तुम प्रसन्न होकर अपना जैसा वृत्तान्त हो, वैसा सब कुछ मुझसे कहो। इस प्रकार पूछे जानेपर प्रेतने अपना सारा वृत्तान्त राजासे कहा।

प्रेतने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! में प्रारम्भसे लेकर आजतकका सम्पूर्ण वृत्तान्त आपसे कह रहा हूँ। हे राजन्! सभी सम्पदाआको सुखपूर्वक वहन करनेवाला, विभिन्न जनपदाम उत्पन्न नाना प्रकारके रत्नोसे परिव्याप्त, अनकानेक पुष्पासे सुशोभित वनप्रान्तवाला तथा विभिन्न पुण्यजनासे आवृत विदिशा नामक एक नगर था। सदैव देवाराधनमे अनुरक्त रहता हुआ मैं उसी नगरमे निवास करता था। मैं वश्यजातिम उत्पन्न हुआ था, उस जन्मम सुदेव मेरा नाम था। मरे द्वारा दिये गये 'हव्य'स देवता आर 'कव्य'स पितृगण सतुष्ट रहते थे। मैंने नाना प्रकारके दान देकर ब्राह्मणाको सतृप्त किया था। मेरा आहार-विहार सुनिश्चित था। दीन-हीन, अनाथ और विशिष्ट सत्पात्रोको मैंने अनेक प्रकारसे सहायता पहुँचायी थी, किंतु दैवयोगसे वह सब निष्फल हा गया। मर न ता काई सतान हुई, न कोई सगे बन्धु-बान्धव हैं और न वेसा कोई मित्र ही हे, जो मरा और्ध्वदेहिक कर्म कर सक। ह श्रेष्ठ राजन्! उसीसे मेरा यह प्रेतत्व स्थिर हा गया है।

हे भूपत! एकादशाह, त्रिपाक्षिक षाण्मासिक, वार्षिक तथा जो मासिक श्राद्ध होत हैं, इन सभी श्राद्धाकी कुल सख्या सोलह है। जिस मृतकके लिय इन श्राद्धाका अनुष्ठान नहीं किया जाता ह उसका प्रेतत्व अन्य सैकडा श्राद्ध करनेपर भी स्थिर ही रहता हे। ह महाराज! ऐसा जानकर

आप मुझे इस प्रेतत्वसे मुक्ति प्रदान कराये। इस संसारमें राजा सभी वर्णोंका बन्धु कहा गया है। इसलिये आप मेरा निस्तार करें। हे राजेन्द्र! मैं आपको यह मणिरत्न दे रहा हूँ। जिस प्रकार मेरा कल्याण हो, मुझपर कृपा करके आप वैसा ही कार्य करें। मेरे निष्ठुर सपिण्डों और सगोत्रियोंने मेरे लिये वृषोत्सर्ग नहीं किया है, उसीसे मैं इस प्रेतयोनिको प्राप्त हुआ हूँ। भूख-प्याससे आक्रान्त मैं खाने-पीनेके लिये कुछ नहीं पा रहा हूँ। उसीसे मेरे शरीरमें यह विकृति आ गयी है। शरीर कृश हो गया है। इसमें मांसतक नहीं रह गया है। भूख-प्याससे उत्पन्न इस महान् दुःखको मैं बार-बार भोग रहा हूँ। वृषोत्सर्ग न करनेके कारण यह कष्टकारी प्रेतत्व मुझे प्राप्त हुआ है। हे राजन्! हे दयासिन्धो! इसीलिये मैं प्रेतत्वनिवृत्तिके निमित्त आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। आप मेरा कल्याण करें।

राजाने कहा—हे प्रेत! मेरे कुलका कोई प्रेत हुआ है, यह मनुष्य कैसे जान सकता है। प्राणी इस प्रेतत्वसे कैसे मुक्त हो सकता है? यह सब तुम मुझे बताओ।

प्रेतने कहा—हे राजन्! लिङ्ग (चिह्नविशेष) और पीडाके कारण प्रेतयोनिका अनुमान लगाना चाहिये। इस पृथ्वीपर प्रेतद्वारा उत्पन्न की गयी जो पीडाएँ हैं, उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ। जब स्त्रियोंका ऋतुकाल निष्फल हो जाता है, वंशवृद्धि नहीं होती है। अल्पायुमें ही किसी परिजनकी मृत्यु हो जाती है तो उसे प्रेतोत्पन्न पीडा माननी चाहिये। अकस्मात् जब जीविका छिन जाती है, लोगोंके बीच अपनी प्रतिष्ठा विनष्ट हो जाती है एकाएक घर जलकर नष्ट हो जाता है तो उसे प्रेतजन्य पीडा ही मानें। जब अपने घरमें नित्य कलह हो मिथ्यापवाद हो राजयक्ष्मा आदि रोग उत्पन्न हो जायँ तो उसे प्रेतोद्भूत पीडा समझें। जब अपने प्राचीन अनिन्दित व्यापार-मार्गमें प्रयत्न करनेपर भी मनुष्यको सफलता नहीं मिलती है उसमें लाभ नहीं होता है अपितु हानि ही उठानी पड़ती है तो उस पीडाको भी प्रेतजन्य ही मानें। जब अच्छी वर्षा होनेपर भी कृषि विनष्ट हो जाती है व्यापारमें प्राणीकी जीविका भी चली जाती है अपनी स्त्री अनुकूल नहीं रह जाती है तो उस पीडाको भी प्रेतसमुद्भूत माननी चाहिये। हे राजन्! इसी प्रकारकी अन्य पीडाओंसे आप प्रेतत्वका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

हे राजेन्द्र! जब मनुष्य वृषोत्सर्ग करता है, तब जाकर वह प्रेतत्वसे मुक्त होता है। आपका इस कार्यमें अधिकार है, इसलिये कृपया आप मेरे उद्देश्यसे वृषोत्सर्ग करें। आप इस मणिरत्नको ग्रहण करें। इसके धनसे मेरे लिये वृषोत्सर्ग करें। यह कार्य कार्तिककी पूर्णिमा अथवा आश्विनमासके मध्यकालमें करना चाहिये। हे राजन्! मेरा यह संस्कार रेवती नक्षत्रसे युक्त तिथिमें भी हो सकता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके विधिवत् अग्निस्थापन तथा वेद-मन्त्रोंके द्वारा यथाविधान होम करें। बहुत-से ब्राह्मणोंको बुलाकर इस रत्नसे प्राप्त हुए धनके द्वारा उन्हें भोजन करायें। ऐसा करनेसे मुझे मुक्ति प्राप्त हो सकेगी।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! इसके बाद राजाने उस प्रेतसे 'ऐसा ही होगा' यह कहकर मणि ले ली। जो व्यक्ति धन ले लेता है, वह भी उस दाताकी क्रिया करनेका अधिकारी हो जाता है। प्रेतविषयक इस प्रकारकी वार्ता उन दोनोंके मध्य जिस समय चल रही थी, उसी समय देखते-ही-देखते वहाँ घण्टा और भेरियोंकी ध्वनि करती हुई राजाकी चतुरंगिणी सेना आ गयी। उस सेनाके आते ही प्रेत अदृश्य हो गया। उसके बाद उस वनसे निकलकर राजा अपने नगर चला आया। तदनन्तर उसने कार्तिक-मासकी पूर्णिमा तिथि आनेपर उस प्राप्त हुई मणिके धनसे प्रेतत्वनिवृत्तिके लिये विधिवत् वृषोत्सर्ग किया। हे गरुड! उस संस्कारके पूर्ण होते ही वह प्रेत भी तत्काल सुवर्ण देहसे सुशोभित हो उठा और उसने राजाको प्रणाम किया। तत्पश्चात् उस राजाकी प्रशंसा करते हुए प्रेतने कहा—हे देव! यह सब आपकी महिमा है। इस प्रकार राजाके द्वारा किये गये उपकारके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए वह स्वर्गलोकको चला गया। जिस प्रकार राजाके द्वारा किये गये संस्कारसे वह प्रेत अपने प्रेतत्वसे मुक्त हुआ था वह सब वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ९)

श्राद्धान्नका पितरोके पास पहुँचना, दृष्टान्तरूपमे देवी सीताद्वारा भोजन करते हुए ब्राह्मणके शरीरमे महाराज दशरथ आदिका दर्शन करना, मृत्युके अनन्तर दूसरे शरीरकी प्राप्ति, सत्कर्मकी महिमा तथा पिण्डदानसे शरीरका निर्माण

गरुडने कहा—हे प्रभो! सपिण्डीकरण और वार्षिक श्राद्ध करनेके पश्चात् मृत व्यक्ति स्वकर्मानुसार देवत्व, मनुष्यत्व अथवा पक्षित्वको प्राप्त करता है। फिर भिन्न-भिन्न आहारवाले उन लोगोके लिये किये गये श्राद्ध, ब्राह्मण-भोजन और होमसे उन्हे कैसे सतृप्ति होती है? अपने शुभाशुभ कर्मोके द्वारा प्राप्त हुई प्रेतयोनिमे स्थित वह प्राणी अपने सम्बन्धियोसे प्राप्त उस भोज्य पदार्थका उपभोग कैसे करता है? श्राद्धकी आवश्यकता तो मैंने अमावास्यादि तिथियोमे सुनी है। [यह बतलानेकी कृपा करे।]

श्रीभगवान्ने कहा—हे पक्षिराज! श्राद्ध प्रेतजनोको जिस प्रकारसे तृप्ति प्रदान करता है, उसे सुनो। मनुष्य अपने कर्मानुसार यदि देवता हो जाता है तो श्राद्धान्न अमृत होकर उसे प्राप्त होता है तथा वही अन्न गन्धर्व-योनिम भोगरूपसे और पशुयोनिमे तृणरूपमे प्राप्त होता है। वही श्राद्धान्न नागयोनिम वायुरूपसे, पक्षीकी योनिमे फलरूपसे और राक्षसयोनिमे आमिष बन जाता है। वही श्राद्धान्न दानव-योनिके लिये मास, प्रेतके लिये रक्त, मनुष्यके लिये अन्न-पानादि तथा बाल्यावस्थाम भोगरस हो जाता है[1]।

गरुडने कहा—हे स्वामिन्! इस लोकमे मनुष्योके द्वारा दिये गये हव्य-कव्य पदार्थ पितृलोकम कैसे जाते हैं? उनको प्राप्त करानेवाला कौन है? यदि श्राद्ध मरे हुए प्राणियोंके लिये भी तृप्ति प्रदान करनेवाला है तो बुझे हुए दीपकका तेल भी उसकी लौको बढा सकता है। मरे हुए पुरुप अपने कर्मानुसार गति प्राप्त करते हैं तो अपने पुत्रके द्वारा दिये गये पुण्य कर्मोके फल वे कैसे प्राप्त कर सकेगे?

श्रीभगवान्ने कहा—हे तार्क्ष्य! प्रत्यक्षकी अपेक्षा श्रुतिका प्रमाण बलवान् होता है। श्रुतिसे प्राप्त हुए ज्ञानका स्वरूप अमृतादिके समान होता हे। श्राद्धमे उच्चरित पितरोके नाम तथा गोत्र हव्य-कव्यके प्रापक हें। भक्तिपूर्वक पढे गये मन्त्र श्राद्धके प्रापक होते हैं। हे सुपर्ण! ये अचेतन मन्त्र कैसे उस श्राद्धको प्राप्त करा सकते हैं, इस विपयम तुम्हे सशय नहीं रखना चाहिये। अस्तु, इसे समझनके लिये मैं तुम्ह दूसरा प्रापक बता रहा हूँ। अग्निष्वात्त आदि पितृगण उन पितरोके राजपदपर नियुक्त हैं। समय आनपर विधिवत् प्रतिपादित अन्न, अभीष्ट पितृपात्रमे पहुँच जाता है। जहाँ वह जीव रहता है, वहाँ ये अग्निष्वात्त आदि पितृदेव ही अन्न लेकर जाते हें। नाम-गोत्र और मन्त्र ही उस दान दिये गये अन्नको ले जात हैं। शतश यानियाम जो जीव जिस योनिमे स्थित रहता है उस योनिमे उसे नाम-गोत्रके उच्चारणसे तृप्ति प्राप्त होती है। सस्कार करनेवाले व्यक्तिके द्वारा कुशाच्छादित पृथ्वीपर दाहिने कन्धेपर यज्ञोपवीत करके दिये गये तीन पिण्ड उन पितरोको सतुष्टि प्रदान करते हैं।

पितर जिस योनिम, जिस आहारवाले होते हैं, उन्ह श्राद्धके द्वारा वहाँ उसी प्रकारका आहार प्राप्त होता है। गायोका झुड तितर-बितर हो जानेपर भी बछडा अपनी माताको जैसे पहचान लेता है, वैसे ही वह जीव जहाँ जिस योनिमे रहता है, वहाँ पितरोके निमित्त ब्राह्मणको कराया गया श्राद्धान्न स्वय उसके पास पहुँच जाता है—

यदाहारा भवन्त्येते पितरो यत्र योनिपु।
तासु तासु तदाहार श्राद्धान्नेनोपतिष्ठति॥
यथा गापु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथान्न नयते विप्रो जन्तुर्यत्रावतिष्ठते॥

(१०।१९-२०)

पितृगण सदैव विश्वेदेवाके साथ श्राद्धान्न ग्रहण करते हैं। ये ही विश्वेदेव श्राद्धका अन्न ग्रहण कर पितरोको सतृप्त करते हैं। वसु, रुद्र दवता, पितर तथा श्राद्धदवता श्राद्धाम

[1] १-देवो यदपि जातोऽय मनुष्य कर्मयोगत ॥
तस्यान्नममृत भूत्वा देवत्वेऽप्यनुयाति च। गान्धर्व्ये भोगरूपेण पशुत्वे च तृण भवेत्॥
श्राद्ध हि वायुरूपण नागत्वेऽप्यनुगच्छति। फल भवति पक्षित्वे राक्षसेपु तथामिपम्॥
दानवत्वे तथा मास प्रेतत्वे रुधिर तथा। मनुष्यत्वेऽन्नपानादि बाल्ये भोगरसो भवेत्॥ (१०।४—७)

संतृप्त होकर श्राद्ध करनेवालाके पितरोंको प्रसन्न करते हैं। जैसे गर्भिणी स्त्री दोहद (गर्भावस्थामें विशेष भोजनकी अभिलाषा)-के द्वारा स्वयंको और अपने गर्भस्थ जीवको भी आहार पहुँचाकर प्रसन्न करती है, वैसे ही देवता श्राद्धके द्वारा स्वयं संतुष्ट होते हैं और पितरोंको भी संतुष्ट करते हैं—

आत्मानं गुर्विणी गर्भमपि प्रीणाति वै यथा।
दोहदेन तथा देवा श्राद्धैः स्वांश्च पितॄन् नृणाम्॥

(१०।२३)

'श्राद्धका समय आ गया है'—ऐसा जानकर पितरोंको प्रसन्नता होती है। वे परस्पर ऐसा विचार करके उस श्राद्धमें मनके समान तीव्रगतिसे आ पहुँचते हैं। अन्तरिक्षगामी वे पितृगण उस श्राद्धमें ब्राह्मणोंके साथ ही भोजन करते हैं। वे वायुरूपमें वहाँ आते हैं और भोजन करके परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं। हे पक्षिन्! श्राद्धके पूर्व जिन ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया जाता है, पितृगण उन्हींके शरीरमें प्रविष्ट होकर वहाँ भोजन करते हैं और उसके बाद वे पुनः वहाँसे अपने लोकको चले जाते हैं—

निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धपूर्वदिने खग।
प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्त्वा यान्ति स्वमालयम्॥

(१०।२६)

यदि श्राद्धकर्ता श्राद्धमें एक ही ब्राह्मणको निमन्त्रित करता है तो उस ब्राह्मणके उदरभागमें पिता, वामपार्श्वमें पितामह, दक्षिणपार्श्वमें प्रपितामह और पृष्ठभागमें पिण्डभक्षक पितर रहता है। श्राद्धकालमें यमराज प्रेत तथा पितरोंको यमलोकसे मृत्युलोकके लिये मुक्त कर देते हैं। हे काश्यप! नरक भोगनेवाले भूख-प्याससे पीडित पितृजन अपने पूर्वजन्मके किये गये पापका पश्चात्ताप करते हुए अपने पुत्र-पौत्रोंसे मधुमिश्रित पायसकी अभिलाषा करते हैं। अतः विधिपूर्वक पायसके द्वारा उन पितृगणोंको संतृप्त करना चाहिये।

गरुडने कहा—हे स्वामिन्! उस लोकसे आकर इस पृथ्वीपर श्राद्धमें भोजन करते हुए पितरोंको किसीने देखा भी है?

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे गरुत्मन्! सुनो—देवी सीताका उदाहरण है। जिस प्रकार सीताने पुष्करतीर्थमें अपने ससुर आदि तीन पितरोंको श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणके शरीरमें प्रविष्ट हुआ देखा था, उसको मैं कह रहा हूँ।

हे गरुड! पिताकी आज्ञा प्राप्त करके जब श्रीराम वन चले गये तो उसके बाद सीताके साथ श्रीरामने पुष्कर तीर्थकी यात्रा की। तीर्थमें पहुँचकर उन्होंने श्राद्ध करना प्रारम्भ किया। जानकीने एक पके हुए फलको सिद्ध करके रामके सामने उपस्थित किया। श्राद्धकर्ममें दीक्षित प्रियतम रामकी आज्ञासे स्वयं दीक्षित होकर सीताने उस धर्मका सम्यक् पालन किया। उस समय सूर्य आकाशमण्डलके मध्य पहुँच गये और कुतुपमुहूर्त (दिनका आठवाँ मुहूर्त) आ गया था। श्रीरामने जिन ऋषियोंको निमन्त्रित किया था, वे सभी वहाँपर आ गये थे। आये हुए उन ऋषियोंको देखकर विदेहराजकी पुत्री जानकी रामकी आज्ञासे अन्न परोसनेके लिये वहाँ आयीं, किंतु ब्राह्मणोंके बीच जाकर वे तुरंत वहाँसे दूर चली गयीं और लताओंके मध्य छिपकर बैठ गयीं। सीता एकान्तमें छिप गयी हैं, इस बातको जानकर

श्रीरामने यह विचार किया कि ब्राह्मणोंको बिना भोजन कराये साध्वी सीता लज्जाके कारण कहीं चली गयी होंगी पहले मैं इन ब्राह्मणोंको भोजन करा लूँ फिर उनका अन्वेषण करूँगा। ऐसा विचारकर श्रीरामने स्वयं उन ब्राह्मणोंको भोजन कराया। भोजनके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चले जानेपर श्रीरामने अपनी प्रियतमा सीतासे कहा कि ब्राह्मणोंको देखकर तुम लताओंकी ओटमें क्यों छिप गयी? हे तन्वङ्गी! तुम इसका समस्त कारण अविलम्ब मुझे बताओ। श्रीरामके ऐसा कहनेपर सीता मुँहको नीचे कर सामने खड़ी हो गयीं और अपने नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई राममे बोलीं—

सीताजीने कहा—हे नाथ! मैंने यहाँ जिस प्रकारका आश्चर्य देखा उसे आप सुनें। हे राघव! इस श्राद्धमें उपस्थित ब्राह्मणके अग्रभागमें मैंने आपके पिताका दर्शन किया, जो सभी आभूषणोंसे सुशोभित थे। उसी प्रकारके अन्य दो महापुरुष भी उस समय मुझे दिखायी पड़े। आपके पिताको देखकर मैं बिना बताये एकान्तमें चली आयी थी। हे प्रभो! वल्कल और मृगचर्म धारण किये हुए मैं कैसे राजा (दशरथ)-के सम्मुख जा सकती थी। हे शत्रुपक्षके वीरोंका विनाश करनेवाले प्राणनाथ! मैं आपसे यह सत्य ही कह रही हूँ, अपने हाथसे राजाको मैं वह भोजन कैसे दे सकती थी, जिसके दासोंके भी दास कभी भी वैसा भोजन नहीं करते रहे? तृणपात्रमें उस अन्नको रखकर मैं कैसे उन्हें ले जाकर देती? मैं तो वही हूँ जो पहले सभी प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित रहती थी और राजा मुझे वैसी स्थितिमें देख चुके थे। आज वही मैं कैसे राजाके सामने जा पाती? हे रघुनन्दन! उसीसे मनमें आयी हुई लज्जाके कारण मैं वापस हो गयी।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे गरुड! अपनी पत्नीके ऐसे वचनोंको सुनकर श्रीरामका मन विस्मित हो उठा। यह तो आश्चर्य है, ऐसा कहकर वे अपने स्थानपर चले आये। सीताने जिस प्रकार अपने पितरोंका दर्शन किया था, उसी प्रकार तुम्हें मैंने सुना दिया। अब मैं संक्षेपमें श्राद्धका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनो—

पितृगण अमावास्याके दिन वायुरूपमें घरके दरवाजेपर उपस्थित रहते हैं और अपने स्वजनोंसे श्राद्धकी अभिलाषा करते हैं। जबतक सूर्यास्त नहीं हो जाता, तबतक वे वहीं भूख-प्याससे व्याकुल होकर खड़े रहते हैं। सूर्यास्त हो जानेके पश्चात् वे निराश होकर दुःखित मनसे अपने वंशजोंकी निन्दा करते हैं और लम्बी-लम्बी साँस खींचते हुए अपने-अपने लोकोंको चले जाते हैं। अतः प्रयत्नपूर्वक अमावास्याके दिन श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। यदि पितृजनोंके पुत्र तथा बन्धु-बान्धव उनका श्राद्ध करते हैं और गया-तीर्थमें जाकर इस कार्यमें प्रवृत्त होते हैं तो वे उन्हीं पितरोंके साथ ब्रह्मलोकमें निवास करनेका अधिकार प्राप्त करते हैं। उन्हें भूख-प्यास कभी नहीं लगती। इसीलिये विद्वान्‌को प्रयत्नपूर्वक यथाविधि शाक-पातसे भी अपने पितरोंके लिये श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। समयानुसार श्राद्ध करनेसे कुलमें कोई दुःखी नहीं रहता। पितरोंकी पूजा करके मनुष्य आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल, श्री, पशु, सुख और धन-धान्य प्राप्त करता है। देवकार्यसे भी पितृकार्यका विशेष महत्त्व है। देवताओंसे पहले पितरोंको प्रसन्न करना अधिक कल्याणकारी है—

कुर्वीत समये श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति।
आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्॥
पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्।
देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते॥
देवताभ्यः पितॄणां हि पूर्वमाप्यायनं शुभम्।
(१०।५७—५९)

जो लोग अपने पितृगण, देवगण, ब्राह्मण तथा अग्निकी पूजा करते हैं, वे सभी प्राणियोंकी अन्तरात्मामें समाविष्ट मेरी ही पूजा करते हैं। शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य ब्रह्मपर्यन्त समस्त चराचर जगत्‌को प्रसन्न कर लेता है।

हे आकाशचारिन् गरुड! मनुष्योंके द्वारा श्राद्धमें पृथ्वीपर जो अन्न बिखेरा जाता है, उससे जो पितर पिशाच-योनिमें उत्पन्न हुए हैं, वे संतृप्त होते हैं। श्राद्धमें स्नान करनेसे भीगे हुए वस्त्रोंद्वारा जो जल पृथ्वीपर गिरता है, उससे वृक्षयोनिको प्राप्त हुए पितरोंकी संतुष्टि होती है। उस समय जो गन्ध तथा जल भूमिपर गिरता है, उससे देवत्व-योनिको प्राप्त पितरोंको सुख प्राप्त होता है। जो पितर अपने कुलसे बहिष्कृत हैं, क्रियाके योग्य नहीं हैं, संस्कारहीन और विपन्न हैं, वे सभी श्राद्धमें विकिरान्न और मार्जनके जलका भक्षण करते हैं। श्राद्धमें भोजन करके ब्राह्मणोंके द्वारा आचमन एवं जलपान करनेके लिये जो जल ग्रहण किया जाता है, उस जलसे उन पितरोंको संतृप्ति प्राप्त होती है। जिन्हें पिशाच, कृमि और कीटकी योनि मिली है तथा जिन पितरोंको मनुष्य-योनि प्राप्त हुई है, वे सभी पृथ्वीपर श्राद्धमें दिये गये पिण्डोंमें प्रयुक्त अन्नकी अभिलाषा करते हैं, उसीसे उन्हें संतृप्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्योंके द्वारा विधिपूर्वक श्राद्ध किये जानेपर जो शुद्ध या अशुद्ध अन्न तथा जल फेंका जाता है, उससे जिन्होंने अन्य जातिमें जाकर जन्म लिया है, उनकी तृप्ति होती है। जो मनुष्य अन्यायपूर्वक अर्जित किये गये पदार्थोंसे श्राद्ध करते हैं, उस श्राद्धसे नीच योनियोंमें जन्म ग्रहण करनेवाले

चाण्डाल पितरोकी तृप्ति होती है।

हे पक्षिन्! इस ससारम श्राद्धके निमित्त जो कुछ भी अन्न, धन आदिका दान अपने बन्धु-बान्धवाके द्वारा दिया जाता है, वह सब पितरोको प्राप्त होता है। अन्न, जल ओर शाक-पात आदिके द्वारा यथासामर्थ्य जो श्राद्ध किया जाता है, वह सब पितरोकी तृप्तिका हेतु है। तुमने इस विपयम जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्ह बता दिया। तुम अब जो यह पूछ रहे हो कि मृत्युके बाद प्राणीको तत्काल दूसरे शरीरकी प्राप्ति हो जाती है? अथवा विलम्बसे उसको दूसरे शरीरम जाना पडता है? वह मैं तुम्ह सक्षेपमे बता रहा हूँ।

हे गरुड! प्राणी मृत्युके पश्चात् दूसरे शरीरमे तुरत भी प्रविष्ट हो सकता है ओर विलम्बसे भी। मनुष्य जिस कारण दूसरे शरीरको प्राप्त करता है, उस वैशिष्ट्यको तुम मुझसे सुनो। शरीरके अदर जो धूमरहित ज्योतिके सदृश प्रधान पुरुप जीवात्मा विद्यमान रहता है, वह मृत्युके बाद तुरत ही वायवीय शरीर धारण कर लेता है। जिस प्रकार एक तृणका आश्रय लेकर स्थित जोक दूसरे तृणका आश्रय लेनेके बाद पहलेवाले तृणके आश्रयसे अपने पैरको आगे बढाता है, उसी प्रकार शरीरी पूर्व-शरीरको छोडकर दूसरे शरीरम जाता है। उस समय भोगके लिये वायवीय शरीर सामने ही उपस्थित रहता है। मरनेवाले शरीरके अदर विपय ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ उसके निश्चेष्ट (निर्व्यापार) हो जानेपर वायुके साथ चली जाती हैं। वह जिस शरीरको प्राप्त करता है उसको भी छोड देता है। जेसे स्त्रीके शरीरमे स्थित गर्भ उसके अन्नादिक कोशसे शक्ति ग्रहण करता है और समय आनेपर उसे छोडकर वह बाहर आ जाता हे, वैसे ही जीव अपना अधिकार लेकर दूसरे शरीरम प्रवेश करता है। उस एक शरीरम प्रविष्ट होते हुए प्राणीके कालक्रम भोजन या गुण-सक्रमणकी जा स्थिति है उसे मूर्ख नहीं अपितु ज्ञानी व्यक्ति ही देखते हैं।

विद्वान् लोग इसको आतिवाहिक वायवीय शरीर कहते हैं। हे सुपर्ण! भूत-प्रेत और पिशाचाका शरीर तथा मनुष्याका पिण्डज शरीर भी ऐसा ही हाता है।

हे पक्षीन्द्र! पुत्रादिके द्वारा जो दशगात्रके पिण्डदान दिये जाते हैं उस पिण्डज शरीरसे वायवीय शरीर एकाकार हो जाता है। यदि पिण्डज देहका साथ नहीं होता है तो वायुज शरीर कष्ट भोगता है। प्राणीके इस शरीरम जैसे कौमार्य यौवन और बुढापकी अवस्थाएँ आती हैं वैस ही दूसर शरीरके प्राप्त होनेपर भी तुम्ह समझना चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्राका परित्याग कर नये वस्त्रोको धारण कर लेता है, उसी प्रकार शरीरी पुराने शरीरका परित्याग कर नये शरीरको धारण करता है। इस शरीरीका न शस्त्र छेद सकता है, न अग्नि जला सकती है, न जल आर्द्र कर सकता है और न वायु सुखा सकती है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमार यौवन जरा।
तथा देहान्तरप्राप्ति पक्षीन्द्रेत्यवधारय॥
वासासि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि सयाति नवानि देही॥
नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोपयति मारुत॥
(१०।८३-८५)

जीव तत्काल वायवीय शरीरमे प्रवेश कर लेता है, यह ता मैंने तुम्हे बता दिया, अब जीवात्माको विलम्बसे जैसे दूसरा शरीर प्राप्त होता है, उसको तुम मुझसे सुनो।

हे गरुड! कोई-कोई जीवात्मा पिण्डज शरीर विलम्बसे प्राप्त करता है, क्योकि मृत्युके बाद वह स्वकर्मानुसार यमलोकको जाता है। चित्रगुप्तकी आज्ञासे वह वहाँ नरक भोगता है। वहाँकी यातनाआको झेलनेके पश्चात् उसे पशु-पक्षी आदिकी योनि प्राप्त होती है। मनुष्य जिस शरीरको ग्रहण करता है, उसी शरीरम मोहवश उसकी ममता हो जाती है। शुभाशुभ कर्मोके फल भोगकर मनुष्य इससे मुक्त भी हो जाता है।

गरुडने कहा—हे दयानिधे! बहुत-से पापोको करनेके बाद भी इस ससारको पार करके प्राणी आपको कैसे प्राप्त कर सकता है? उसे आप मुझे बताये। हे लक्ष्मीरमण! जिस प्रकार मनुष्यका ससर्ग पुन दु खसे न हो उस उपायको बतानेकी कृपा करे।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने कर्मम रत रहकर ससिद्धि प्राप्त कर लेता है। अपने कर्मम अनुरक्त रहकर वह उस सिद्धिको जिस प्रकार प्राप्त करता है, उसको तुम मुझसे सुनो—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरत ससिद्धि लभते नर।
स्वकर्मनिरत सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥
(१०।९२)

हे कश्यपनन्दन! सत्कर्मसे जिसने अपने कालुष्यको नष्ट कर दिया है, वह व्यक्ति वासुदेवके निरन्तर चिन्तनसे विशुद्ध हुई बुद्धिसे युक्त होकर धैर्यसे अपना नियमन करके स्थिर रहता है, जो शब्दादि विषयोंका परित्याग कर राग-द्वेषको छोडकर विरक्त, सेवी और यथाप्राप्त भोजनसे सतुष्ट रहता है, जिसका मन-वाणी-शरीर सयमित है, जो वैराग्य धारणकर नित्य ध्यान-योगम तत्पर रहता है, जो अहकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह—इन षड्विकारोका परित्याग करके निर्भय होकर शान्त हो जाता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इसके बाद मनुष्याके लिये कुछ करना शेष नहीं रह जाता—

कर्मविभ्रष्टकालुष्यो वासुदेवानुचिन्तया।
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मान नियम्य च॥
शब्दादीन् विषयास्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।
विरक्तसेवी लब्धाशी यतवाक्कायमानस ॥
ध्यानयोगपरो नित्य वैराग्य समुपाश्रित ।
अहकार बल दर्पं काम क्रोध परिग्रहम्॥
विमुच्य निर्मम शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।
अत पर नृणा कृत्य नास्ति कश्यपनन्दन॥
(१०।९३—९६)
(अध्याय १०)

जीवकी ऊर्ध्वगति एव अधोगतिका वर्णन

गरुडजीने कहा—हे देवश्रेष्ठ! मनुष्ययोनि कैसे प्राप्त होती है? मनुष्य कैसे मृत्युको प्राप्त होता है? शरीरका आश्रय लेकर कौन मरता है? उसकी इन्द्रियाँ कहाँसे कहाँ चली जाती हैं? मनुष्य कैसे अस्पृश्य हो जाता है? यहाँ किये हुए कर्मको कहाँ और कैसे भोगता है और कहाँ कैसे जाता है? यमलोक और विष्णुलोकको मनुष्य कैसे जाता है? हे प्रभो! आप मुझपर प्रसन्न हो। मेरे इस सम्पूर्ण भ्रमको विनष्ट कर।

श्रीकृष्णने कहा—हे विनतानन्दन! परायी स्त्री और ब्राह्मणके धनका अपहरण करके प्राणी अरण्य एव निर्जन स्थानमे रहनेवाले ब्रह्मराक्षसकी योनिको प्राप्त करता है। रत्नाकी चोरी करनेवाला मनुष्य नीच जातिके घर उत्पन्न होता है। मृत्युके समय उसकी जो-जो इच्छाएँ होती हैं, उन्हींके वशीभूत हो वह उन-उन योनियाम जाकर जन्म लेता है। इस जीवात्माका छेदन शस्त्र नहीं कर सकता, अग्नि इसको जलानेमे समर्थ नहीं है, जल इसे आर्द्र नहीं कर सकता और वायुके द्वारा इसका शोषण सम्भव नहीं है।

हे पक्षिन्! मुख, नेत्र, नासिका, कान, गुदा और मूत्रनली—ये सभी छिद्र अण्डजादिक जीवोके शरीरमे विद्यमान रहते हैं। नाभिसे मूर्धापर्यन्त शरीरमे आठ छिद्र हैं। जो सत्कर्म करनेवाले पुण्यात्मा हैं, उनके प्राण शरीरके ऊर्ध्व छिद्रासे निकलकर परलोक जाते हैं। मृत्युके दिनसे लेकर एक वर्षतक जैसी विधि पहले बतायी गयी है, उसीके अनुसार सभी और्ध्वदैहिक श्राद्धादि सस्कार निर्धन होनेपर भी यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक करने चाहिये। जीव जिस शरीरमे वास करता है उसी शरीरम वह अपने शुभाशुभ कर्मफलका भोग करता है। हे पक्षिराज! मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये दोषाका वह भोगता है। जो [अनासक्तभावसे] सत्कर्मम रत रहता है, वह मृत्युके बाद सुखी रहता है और सासारिकताके मायाजालमे नहीं फँसता। जो विकर्मम निरत रहता है वह मनुष्य पाशबद्ध हो जाता है। (अध्याय ११)

चौरासी लाख योनियोमे मनुष्यजन्मकी श्रेष्ठता, मनुष्यमात्रका एकमात्र कर्तव्य—धर्माचरण

श्रीकृष्णजीने कहा—हे तार्क्ष्य! मनुष्याके हित एव प्रेतत्वकी विमुक्तिके लिये जीवित प्राणीके कर्म-विधानका निर्णय मैंने तुम्हे सुना दिया। इस ससारम चौरासी लाख योनियाँ हैं। उनका विभाजन चार प्रकारके जीवोमे हुआ है। उन्हे अण्डज स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज कहा जाता है। इक्कीस लाख योनियाँ अण्डज मानी गयी हैं। इसी प्रकार क्रमश स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज योनियाके विषयम भी कहा गया है। मनुष्यादि योनियाँ जरायुज कही

जाती हैं। इन सभी प्राणियाम मनुष्ययोनि परम दुर्लभ है। पाँच इन्द्रियासे युक्त यह योनि प्राणीको बडे ही पुण्यस प्राप्त होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण हैं। रजक, चमार, नट, बसखोर, मछुआरा, मेद तथा भिल्ल—ये सात अन्त्यज जातियाँ मानी गयी हैं। म्लेच्छ और तुम्बु जातिके भेदसे अनेक प्रकारकी जातियाँ हो जाती हैं। जीवाके हजारो भेद हैं। आहार, मैथुन, निद्रा, भय और क्रोध—ये कर्म सभी प्राणियाम पाये जाते हैं, किंतु विवेक सभीमे परम दुर्लभ है। एक पाद, दो पाद आदिके भेदसे शारीरिक सरचनामे भी अनेक भेद प्राप्त होते हैं।

जिस देशमे कृष्णसार नामक मृग रहता है, वह धर्मदेश कहलाता है। सब प्रकारसे ब्रह्मा आदि देवता वहीं निवास करते हैं। पञ्चमहाभूतोम प्राणी, प्राणियोम बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियोमे मनुष्य और मनुष्योम ब्राह्मण श्रेष्ठ है। स्वर्ग और मोक्षके साधनभूत मनुष्ययोनिको प्राप्त करके जो प्राणी इन दोनोमसे एक भी लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाता, निश्चित ही उसने अपनेको ठग दिया। सौका मालिक एक हजार ओर एक हजारवाला व्यक्ति लाखकी पूर्तिम लगा रहता है। जो लक्षाधिपति है वह राज्यकी इच्छा करता है। जो राजा हे वह सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वशमे रखना चाहता है। जो चक्रवर्ती नरेश है वह देवत्वकी इच्छा करता है। देवत्व-पदके प्राप्त होनेपर उसकी अभिलाषा देवराज इन्द्रके पदके लिये हाती है आर देवराज होनेपर वह ऊर्ध्वगतिकी कामना करता है, फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती। तृष्णासे पराजित व्यक्ति नरकमे जाता है। जो लोग तृष्णामे मुक्त हैं, उन्हे उत्तम लाककी प्राप्ति होती है।[1]

इस ससारम जो प्राणी आत्माके अधीन है वह निश्चित ही सुखी है। शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध—ये पाँच विषय हैं इनकी अधीनताम रहनेवाला निश्चित ही दु खी रहता है। मृग हाथी पतग भ्रमर और मीन—य पाँचा क्रमश शब्द स्पर्श रूप गन्ध रस—ये एक-एक विषयक सेवनस मार जाते हैं फिर जा प्रमादी मनुष्य पाँचा इन्द्रियासे इन पाँचा विषयाका सवन करता है वह इनके द्वारा कैसे नहीं मारा जायगा? मनुष्य बाल्यावस्थाम अपने पिता-माताके अधीन होता है। युवावस्था आनेपर वह स्त्रीका हो जाता है आर अन्त समय आनपर पुत्र-पौत्रक व्यामोहमे फँस जाता है। वह मूर्ख कभी किसी अवस्थामें आत्माके अधीन नहीं रहता। लौह और काष्ठके बने हुए पाशसे बँधा हुआ व्यक्ति मुक्त हा जाता है, किंतु पुत्र तथा स्त्री आदिके मोहपाशम बँधा हुआ प्राणी कभी मुक्त नहीं हा पाता।

पाप एक मनुष्य करता है, किंतु उसके फलका उपभोग बहुत-से लोग करत हैं। भोक्ता तो अलग हो जाते हैं पर कर्ता दोषका भागी होता है। चाहे बालक हो चाहे वृद्ध हो और चाहे युवा हो, कोई भी मृत्युपर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। कोई अधिक सुखी हो अथवा अधिक दु खी हो, वह बारम्बार आता-जाता है। मृत प्राणी सबके देखते-देखते सब कुछ छोडकर चला जाता है। इस मर्त्यलोकम प्राणी अकेला ही पैदा होता है अकेले ही मरता है और अकेले ही पाप-पुण्यका भोग करता है। 'बन्धु-बान्धव मरे हुए स्वजनके शरीरको पृथ्वीपर लकडी और मिट्टीके ढेलेकी भाँति फकँकर पराङ्मुख हो जाते हैं धर्म ही उसका अनुसरण करता है। प्राणीका धन-वैभव घरम ही छूट जाता है। मित्र एव बन्धु-बान्धव श्मशानमें छूट जाते हैं। शरीरको अग्नि ले लेती है। पाप-पुण्य ही उस जीवात्माके साथ जाते हैं।'

मृत शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसम क्षितौ॥
बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।
गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानान्मित्रबान्धवा ॥
शरीर वह्निरादत्ते सुकृत दुष्कृत व्रजेत्।
शरीर वह्निना दग्ध पुण्य पाप सह स्थितम्॥
(१२।२४-२६)

'मनुष्यने जो भी शुभ या पाप-कर्म किया है वह सर्वत्र उसीको भोगता है। हे पक्षिराज! सूर्यास्ततक जिसने याचकाको अपना धन नहीं द दिया ता न जाने प्रात होनेपर उसका वह धन किसका हा जायगा? पूर्वजन्मके पुण्यसे

१-इच्छति शती सहस्र सहस्री लक्षमीहते कर्तुम्। लक्षाधिपती राज्य राजापि सकला धरा लब्धुम्॥
चक्रधरो पि सुरत्व सुरभावे सकलसुरपतिर्भवितुम्। सुरपतिरूर्ध्वगतित्व तथापि न निवर्तते तृष्णा॥
तृष्णया चाभिभूतस्तु नरक प्रतिपद्यते। तृष्णामुक्तास्तु ये कचित् स्वर्गवास लभन्ति ते॥ (१२।१३—१५)

जो थोडा या बहुत धन प्राप्त हुआ है, उसे यदि परोपकारके कार्यमे नहीं लगाया या श्रेष्ठ द्विजोका दानमे नहीं दिया तो उसका वह धन यह रटता रहता है कि कौन मरा भर्ता होगा? ऐसा विचार कर धर्मके कार्यमे अपना धन लगाना चाहिये। मनुष्य श्रद्धापूत शुद्ध मनसे दिये गये धनके द्वारा धर्मको धारण करता है। श्रद्धारहित धर्म इस लोक तथा परलोकम फलीभूत नहीं होता। धर्मसे ही अर्थ और कामकी भी प्राप्ति हाती है। धर्म ही मोक्षका प्रदायक है। अत मनुष्यको धर्मका सम्यक् आचरण करना चाहिये। धर्मकी सिद्धि श्रद्धासे होती है, प्रचुर धनराशिसे नहीं। अकिंचन अर्थात् धन-वैभवसे रहित श्रद्धावान् मुनियाको स्वर्गकी प्राप्ति हुई है। श्रद्धारहित होकर किया गया होम, दान तथा तप असत् कहा जाता है। हे पक्षिन्! उसका फल न तो इस लोकमे मिलता है और न परलोकम ही मिलता है'—

शुभ वा यदि वा पाप भुङ्क्ते सर्वत्र मानव।
यदनस्तमिते सूर्ये न दत्त धनमर्थिनाम्॥
न जाने तस्य तद्वित्त प्रात कस्य भविष्यति।
रारटीति धन तस्य को मे भर्ता भविष्यति॥
न दत्त द्विजमुख्येभ्य परोपकृतये तथा।
पूर्वजन्मकृतात् पुण्याद्यल्लब्ध बहु चाल्पकम्॥
तदीदृश परिज्ञाय धर्मार्थे दीयते धनम्।
धनेन धार्यते धर्म श्रद्धापूतेन चेतसा॥
श्रद्धाविरहितो धर्मो नेहामुत्र च तत्फलम्।
धर्माच्च जायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽपि जायत॥
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत्।
श्रद्धया साध्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभि॥
अकिञ्चना हि मुनय श्रद्धावन्तो दिव गता।
अश्रद्धया हुत दत्त तपस्तप्त कृत च यत्।
असदित्युच्यते पक्षिन् प्रेत्य चेह न तत्फलम्॥
(१२।२७—३३)

(अध्याय १२)

वृषोत्सर्ग तथा सत्कर्मकी महिमा

श्रीगरुडजीने कहा—हे देवेश! इस भूलोकमे किस कर्मको करनेसे प्राणियोको प्रेतयोनिकी प्राप्ति नहीं होती? उसे आप मुझे बताये।

श्रीकृष्णजीने कहा—अब मैं सक्षेपम क्षयाहसे लेकर आगे की जानेवाली ओर्ध्वदैहिक क्रियाका कह रहा हूँ, जिसे मोक्ष चाहनेवाले लोगाको अपने ही हाथोस करना चाहिये। स्त्री और विशेषरूपसे पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु हानेपर उनके प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये वृषोत्सर्ग करना चाहिये। प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये वृषोत्सर्गके अतिरिक्त इस पृथ्वीपर अन्य कोई साधन नहीं है। जो मनुष्य जीवित रहते हुए वृषोत्सर्ग करता है अथवा मृत्युके पश्चात् भी जिसकी यह क्रिया सम्पन्न हो जाती है उसे दान यज्ञ एव व्रत किये बिना भी प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होता।

गरुडने कहा—हे देवश्रेष्ठ मधुसूदन! जीवित रहते हुए अथवा मृत्युके पश्चात् भी किस कालम यह वृषोत्सर्ग-क्रिया होनी चाहिये? आप इस बातको मुझे बताये। सोलह श्राद्धोको करनेसे अन्तमे क्या फल प्राप्त हो सकता है?

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! यदि वृषोत्सर्ग किये बिना ही पिण्डदान दिया जाता है तो उसका श्रेय दाताको नहीं प्राप्त हाता। प्रत्युत वह क्रिया प्रेतके लिये निष्फल हो जाती है। जिसके एकादशाहम वृषोत्सर्ग नहीं होता, सो श्राद्ध करनेपर भी उसका प्रेतत्व सुस्थिर रहता है।[१]

गरुडने कहा—हे प्रभो! सर्पदशसे मरे हुए लोगाकी अग्निदाहादि क्रिया नहीं की जाती है। यदि जलमे, सींगवाले पशु अथवा शस्त्रादिके प्रहारसे कोई मर जाता है, तो इस प्रकार असत् मृत्युको प्राप्त हुए लोगाकी शुद्धि कैसे हो? हे देव! आप मेरे इस सशयको दूर करे।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! उक्त प्रकारसे अपमृत्युको प्राप्त हुआ ब्राह्मण छ मास, क्षत्रिय ढाई मास, वैश्य डेढ मास एव शूद्र एक मासम शुद्ध हो जाता है। यदि तीर्थमे सभी प्रकारका दान देकर कोई ब्रह्मचारी मर जाता है तो

१ एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृष। प्रेतत्व सुस्थिर तस्य दत्तै श्राद्धशतैरपि॥ (१३।८)

वह शुद्ध होकर ऐहिक दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। वृषोत्सर्ग आदि करके यति-धर्मका आचरण करना चाहिये। यदि सन्यास-धर्मका पालन करत हुए किसी प्राणीका मृत्यु हो जाती है तो वह शाश्वत ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति शिष्टाचाररहित धर्मविरुद्ध कर्म करता है, वह भी वृषोत्सर्ग आदिकी क्रिया करके यमराजके शासनमे नहीं जाता। पुत्र, सहोदर भाई, पौत्र, बन्धु-बान्धव, सगोत्री अथवा सम्पत्ति लेनेवाला उत्तराधिकारी कोई भी हो, उसको मरे हुए स्वजनके लिये वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये। पुत्रके अभावमे पत्नी, दौहित्र (नाती) और दुहिता (पुत्री) भी इस कर्मको कर सकती हैं। पुत्रके रहनेपर वृषोत्सर्ग अन्यसे नहीं कराना चाहिये।

गरुडने कहा—हे सुरेश्वर! चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष जिसके पुत्र नहीं है, उसका सस्कार किस प्रकारसे किया जाय? हे देव! इस विषयमे उत्पन्न हुई मेरी शकाका आप भली प्रकारसे दूर करे।

श्रीकृष्णने कहा—पुत्रहीन व्यक्तिकी गति नहीं है उसके लिये स्वर्गका सुख नहीं है। अत एव मनुष्यको सदुपायसे पुत्र अवश्य उत्पन्न करना चाहिये। पुरुष स्वय जो कुछ भी दान देते हैं, परलोकमे वे सभी उसके सामने ही उपस्थित रहते हैं। अपने हाथोसे जो नाना प्रकारके स्वादिष्ट एव विविध व्यञ्जन खानेके लिये दिये जाते हैं वे सभी मृत्युके पश्चात् अक्षय फल प्रदान करते हैं। जो गौ भूमि स्वर्ण वस्त्र भोजन और पद-दान अपने हाथसे दिये जाते हैं, वे सभी दान जिस-जिस योनिमे जहाँ-जहाँ दानकर्ता जाते हैं, वहाँ-वहाँ उपस्थित रहते हैं[१]।

जबतक प्राणीका शरीर स्वस्थ रहता है, तबतक धर्मका सम्यक् पालन करना चाहिये। अस्वस्थ होनेपर दूसरोकी प्रेरणासे भी वह कुछ नहीं कर पाता है। यदि अपने जीवनकालमे व्यक्ति और्ध्वदैहिक कर्म नहीं कर लेता अथवा मरनेके बाद अधिकारी पुत्र-पौत्रादिकोके द्वारा भी यह कर्म नहीं होता है तो वह वायुरूपमे भूख-प्याससे पीडित रात-दिन भटकता रहता है। वह कृमि कीट अथवा पतिगा होकर बार-बार जन्म लेता है और मर जाता है। वह कभी असत् मार्गसे गर्भमे प्रविष्ट होता है एव जन्म लेते ही तत्काल विनष्ट हो जाता है।

जबतक यह शरीर स्वस्थ और नीरोग है, जबतक इससे बुढापा दूर है जबतक इन्द्रियोकी शक्ति किसी भी प्रकारसे क्षीण नहीं हुई है और जबतक आयु नष्ट नहीं हुई है, तबतक अपने कल्याणके लिये महान् प्रयत्न कर लेना चाहिये, क्योकि घरमें महाभयकर आगके लग जानेपर कुआँ खोदनेके उद्योगसे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है—

यावत्स्वस्थमिद शरीरमरुज यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुष ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य प्रयत्नो महान्
सदीप्ते भवने तु कूपखनने प्रत्युद्यम कीदृश ॥
(१३।५)

(अध्याय १३)

और्ध्वदैहिक क्रिया गोदान एव वृषोत्सर्गका माहात्म्य

गरुडने कहा—हे विभो! मृत्युको प्राप्त कर रहे दु खित व्यक्तिके द्वारा जो दान दिया जाता है उसका क्या फल है? स्वस्थ अवस्थामे और विधिहीन जो दान दिया जाता है, उसका क्या फल है?

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिश्रेष्ठ! स्वस्थ चित्तवाले मनुष्यके द्वारा दानमे दी गयी एक गौ रोगी पुरुषके द्वारा दानमे दी गयी एक सौ गाय मर रहे प्राणीके द्वारा दानमे धनको छोडकर दी गयी हजार गाय तथा व्यक्तिके मर जानेपर विधिवत् पुत्र पौत्रादिके द्वारा दानमे दी गयी एक लाख गायोके बराबर होती है। तीर्थ एव पात्रके समायोगसे यथाविधि एक ही गोदान कर दिया जाय तो वह अकेली गौ दाताको एक लाख गोदानका पुण्य प्रदान करती है।

१-व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च। स्वहस्तेन प्रदत्तानि देहान्ते चाक्षय फलम्॥
गोभूहिरण्यवासांसि भोजनानि पदानि च। यत्र यत्र वसेज्जन्तुस्तत्तत्रोपतिष्ठति॥ (१३।२०-२१)

हे खगराज! सत्पात्रको दिया गया दान दिन-दिन बढता है। दाताके दिये हुए दानको यदि ज्ञानी ग्रहण करता है तो उसे पाप नहीं लगता। विष और शीतका अपहरण करनेवाले मन्त्र और अग्नि क्या दोषभाजन होते हैं? अत प्रतिदिन सत्पात्रको विशेष उद्देश्याकी पूर्तिके लिये दान देना चाहिये। अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाल व्यक्तिका अपात्रको कुछ भी नहीं देना चाहिये। यदि कदाचित् अपात्रके लिये गौका दान दिया जाता है तो वह दाताको नरकमे ले जाता हे और अपात्र ग्रहीताको इक्कीस पीढियाके सहित नरकमे ढकेल देता है।

हे खगेश! जिस प्रकारसे अपने हाथसे भूमिम निवश किया गया धन मनुष्यका आवश्यकतानुसार वह जब चाह काममे आ सकता है, उसी प्रकार अपने हाथसे किया गया दान भी देहान्तरमे प्राप्त होता है। निर्धन होनेक बाद भी अपुत्र व्यक्तिको मोक्षकी कामनासे अपना ओर्ध्वदैहिक क्रिया अवश्य कर लेनी चाहिय। थोडे धनस भी अपन हाथसे की गयी अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया उसी प्रकारसे अक्षय फल देनेवाली हाती है जिस प्रकार अग्निमे डाली हुई आज्याहुति। दान लनेके योग्य व्यक्तिका ही शय्या कन्या एव गौका दान देना चाहिये ओर यह भी ध्यान रखना चाहिये कि दो शय्याएँ एकको न दी जायँ दा कन्याएँ एकको न दा जायँ तथा दो गाय भी एकको न दी जायँ। इसका आशय यह है कि भलीभाँति गोपालनम समर्थ, गोपालनके प्रति आस्थावान तथा दान लेने योग्य प्रतिग्रहीताको ही गोदान करना चाहिये। इसक अतिरिक्त यह भी विशेषरूपम ज्ञातव्य है कि दो दान लेने योग्य व्यक्तियोको भी एक गौ कदापि न दी जाय, क्योकि यदि वह किसीके हाथ बेची जाती है अथवा उसका किन्हीं दो या दोसे अधिक लोगोके बीच विभाजन होता है तो ऐसा करनेवाले मनुष्यको सात पीढियाके सहित वह दान जला देता है। अत इस नश्वर जीवनम समस्त और्ध्वदैहिक कर्म स्वय सम्पन्न कर लेना चाहिये। पाथेयके रूपम दिये गये दानादिको प्राप्त करके प्राणी उस महाप्रयाणके मार्गमे सुखपूर्वक जाता है, अन्यथा पाथेयरहित जीवात्मा अनेक प्रकारका कष्ट झेलता है। ऐसा जानकर मनुष्य विधिवत् वृषोत्सर्ग करे। जो पुत्रहीन वृषात्सर्ग किये बिना ही मर जाता है, उसे मुक्ति नहीं प्राप्त हाती है। अत पुत्रविहीन मनुष्य इस धर्मका पालन विधिवत् करे। ऐसा करनेसे यमके उस महापथम वह सुखपूर्वक गमन करता है। अग्निहोत्र, विभिन्न प्रकारके यज्ञ और दानादिसे प्राणीका वह सद्गति नहीं प्राप्त होती है, जो गति वृषोत्सर्गसे प्राप्त होती है। समस्त यज्ञोम वृषोत्सर्ग यज्ञ श्रेष्ठतम है, इसलिय प्रयास करके मनुष्यको भलीभाँति वृषोत्सर्ग सम्पन्न करना चाहिये।

गरुडने कहा—हे गोविन्द! आप मुझे क्षयाह और और्ध्वदैहिक क्रियाके विषयम उपदेश दे कि इस क्रियाको किस काल, किस तिथि और किस प्रकारकी विधिसे सम्पन्न करना चाहिय। इसको करके मनुष्य क्या फल प्राप्त करता है इसे भी आप मुझ बताय। हे गोविन्द! आपकी कृपास ता प्राणी मुक्त हो जाता है।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिन्! कार्तिक आदि मासमे सूर्यके दक्षिणायन हो जानपर शुक्लपक्षकी द्वादशी आदि शुभ तिथियाम, शुभ लग्न और मुहूर्तमे तथा पवित्र देशम समाहितचित्त होकर विधिज्ञ, शुभलक्षणासे युक्त सत्पात्र ब्राह्मणका बुलाकर जप हाम तथा दानसे अपने शरीरका सर्वप्रथम शाधन कर। उसके बाद वह अभिजित् नक्षत्रम ग्रहा और देवताओको विधिवत् पूजा करक विभिन्न वैदिक मन्त्रास यथाशक्ति अग्निम आहुति प्रदान करे। ह खगश्वर! तदनन्तर ग्रहस्थापन-कार्य करके मातृका-पूजनका कार्य

करना चाहिये। तत्पश्चात् वह वसुधारा हवन सम्पन्न करे। अग्नि-स्थापन करके पूर्णाहुतिका कार्य करे। इसके बाद शालग्रामको स्थापित कर वैष्णव श्राद्ध करे। वस्त्राभूषणासे वृषका सुसज्जित करके उसकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पहले चार बछियोंको सुगन्धित पदार्थोंसे सुवासित करे। वस्त्र और अलकारसे विभूषित कर उन्हे उस यज्ञमे वृषके साथ स्थान दे। उसके बाद उनकी प्रदक्षिणा एव होम करके अन्तमे विसर्जन करे। तत्पश्चात् उत्तराभिमुख होकर इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

धर्म त्व वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मित पुरा॥
तवोत्सर्गप्रभावान्मामुद्धरस्व भवार्णवात्।
(१४। २६-२७)

'हे धर्म! पुराकालमे ब्रह्माने आपको वृषके रूपमे निर्मित किया है। आपके उत्सर्गके प्रभावसे मेरा भवसागरसे उद्धार हो।'

इसके बाद पवित्र करनेवाले शुभ मन्त्रासे विधिपूर्वक वृषका अभिषिक्त करके 'तेन क्रीडन्ति०' इस मन्त्रसे वृषोत्सर्ग करे। पुन रुद्र नामक कुम्भके जलसे उस नील वृषका अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद उस नील वृषके नाभिभागमे घरका स्पर्श कराके वह जल अपने सिरपर भी डालना चाहिये। हे पक्षिराज! तदनन्तर अन्नश्राद्ध कर द्विजोत्तमका दान देना चाहिये। इन कार्योंको करके जलाशयपर पहुँचे और वहाँ जलाञ्जलि क्रिया करे। मनुष्यको अपने जीवनमे जो वस्तु प्रिय हो, उसका यथाशक्ति वहाँपर दान करना चाहिये। वृषोत्सर्ग करनेपर न्यूनता पूरी हो जाती है। मृत व्यक्ति इससे भलीभाँति तृप्त होकर यमलोकके कठिन मार्गमे सुखपूवक गमन करता है इसमे सदेह नही है। सदैव दानादिकी क्रियाआमे अनुरक्त मनुष्य यमलोकका दर्शनतक नहा करते है। जबतक प्राणीका एकादशाह श्राद्ध नहीं किया जाता है तबतक अपने द्वारा दिया गया दान अथवा दूसरेके हाथसे दिया गया दान न इस लोकमे प्राप्त होता है और न परलोकमे ही।

हे गरुड! श्रद्धाभावपूर्ण प्राणीको क्रमश तेरह सात पाँच तथा तीन पद-दान करना चाहिये। अत दाता पहले यथाक्रम सात एव पाँच तिलपात्राका दान करे। वह ब्राह्मणाको भोजन कराकर उन्हे एक गौका दान भी दे। तत्पश्चात् 'वृष हि श नो देवी०' इस वेदमन्त्रसे यथाविधि चार बछियाके साथ वृषका विवाह करना चाहिये। तदनन्तर उसके शरीरमे बायीं ओर चक्र और दाहिनी ओर त्रिशूलका चिह्न अकित करके और जिसका वृषदान किया गया है, उसको उसका मूल्य देकर विसर्जन कर दे।

बुद्धिमान् व्यक्तिका एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार क्रमश प्रयत्नपूर्वक एकादशाह तथा द्वादशाह श्राद्ध करना चाहिये। सपिण्डीकरणके पहले षोडश श्राद्ध सम्पन्न करे। ब्राह्मणोको भोजन कराकर उन्हे पद-दान दे। उसके बाद ताम्रपात्रमे कार्पास (सूती) वस्त्रपर भगवान् विष्णुकी मूर्तिको स्थापित करे और वस्त्रसे आच्छादित करके शुभ फलसे अर्घ्य समर्पित करे। तत्पश्चात् ईंखके पेडासे नौकाका निर्माण करके रेशमी सूत्रसे उसको लपेट दिया जाय। वैतरणीके निमित्त कास्यपात्रमे घृत रखकर नौकारोहणकी क्रिया हो और भगवान् गरुडध्वजकी पूजा करे। सामर्थ्यके अनुसार किया गया दान अनन्त फलोको देनेवाला है। भगवान् जनार्दन इस ससार-सागरमे डूब रहे शोक-सतापसे दु खित तथा धर्मरूपी नौकासे रहित जनोके उद्धारक हैं।

हे तार्क्ष्य! तिल लौह, सुवर्ण, कार्पास वस्त्र लवण सप्तधान्य, पृथ्वी और गौ एक-से-एक बढकर पवित्र माने गये हैं। श्राद्धमे तिलसे परिपूर्ण पात्राका दान देकर शय्यादान देना चाहिये। दीन-अनाथ एव विशिष्टजनोको सामर्थ्यानुसार दक्षिणा भी प्रदान करे। पुत्रहीन अथवा पुत्रवान् जो भी इसे करता है, उसको वही सिद्धि प्राप्त होती है, जो एक ब्रह्मचारीको प्राप्त होती है। मनुष्य इस पृथ्वीपर जबतक जीवित रहता है तबतक उसे नित्य-नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। जो कोइ जीवित-श्राद्ध करता है, तीर्थयात्रा व्रत एव सावत्सरिक श्राद्धादि धर्मकार्य करता है, उसको अक्षय फल उसे प्राप्त होता है। देवता, गुरु और माता-पिताके निमित्त पुरुषको प्रयत्नपूर्वक दान करना चाहिये। वह दान प्रतिदिन अभिवृद्धिको प्राप्त होता है।

इस यज्ञमे जिसके द्वारा प्रचुर धन दानमे दिया जाता है वह सब अक्षय होता है, जिस प्रकार इस ससारमे सन्यासी और ब्रह्मचारी अत्यधिक पूज्य हैं उसी प्रकार वृषोत्सर्गादि कर्मोंको करनेवाले सभी पुण्यात्मा भी इस ससारमे पूजे जाते हैं। उन पुण्यात्माओको मैं, चतुर्मुख ब्रह्मा और शिव सदैव वरदान देते हैं। वे सभी परम लोककी गति प्राप्त करते हैं। मेरा यह वचन सत्य है।

छोडा गया वृषभ जिस जलाशयमे जलपान करता है अथवा सींगसे जिस भूमिको नित्य खोद-खोदकर प्रसन्न होता है, उससे पितरोके लिये अन्न और पेय पदार्थ अत्यधिक मात्रामे उत्पन्न होता है।

पूर्णिमा अथवा अमावास्या तिथिमे तिलसे परिपूर्ण पात्रका दान देना चाहिये। हजार सक्रान्तिया और सैकडो सूर्यग्रहणके पर्वोपर दान देकर जो पुण्य अर्जित हाता है, वह मात्र नील वृषको छोडकर ही मनुष्य प्राप्त कर सकता है[1]। ब्राह्मणोको बछिया, पद-दान तथा शिव-भक्तोको तिलसे पूर्ण पात्रोका दान देना चाहिये। उस समय उमा-महेश्वरको भी परिधानसे अलकृत कर दान करना चाहिय। अतसी (तीसी) पुष्पके सदृश कान्तिवाले पीताम्बरधारी भगवान् अच्युतकी प्रतिमाको वस्त्राच्छादित कर प्रदान करना चाहिये। जो लोग भगवान् गोविन्दको नमन करते हैं, उनके लिये भय नहीं रहता है। प्रेतत्वसे मोक्ष चाहनेवाले जो प्राणी इस सत्कर्मको करेगे, वे श्रेष्ठ लोकोको प्राप्त करगे। मेरा यह कथन सत्य ही है।

हे गरुड। मैंने तुमसे जो सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रिया कही है, इसे सुनकर मनुष्य अपने समस्त पापोसे मुक्त हो जाता है, इसम सदेह नहीं है।

इस प्रकारका अनुपम माहात्म्य सुनकर गरुड अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और उन्हाने मनुष्योके हितमे पुन भगवान् केशवसे पूछा। (अध्याय १४)
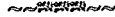
मरनेके समय तथा मृत्युके अनन्तर किये जानेवाले कर्म, पापात्माओको रौद्ररूपमे तथा पुण्यात्माओको सौम्यरूपमे यम-दर्शन, यमदूतोद्वारा दी जानेवाली यातनाका स्वरूप, शवके निमित्त प्रदत्त छ पिण्डोका प्रयोजन, शवदाहकी विधि, सक्षेपमे दशाहसे त्रयोदशाहतकके कृत्य, यममार्गमे पडनेवाले सोलह पुर तथा प्रेतका विलाप

गरुडने कहा—हे भगवन्। जीवात्माके प्रयाण-कालसे लेकर यमलोकके मार्गविस्तारतकका वर्णन एव माहात्म्य मुझे सुनाय।

श्रीभगवान्ने कहा—हे तार्क्ष्य। मैं यथाक्रम यममार्गका और जीवात्माके गमनमार्गमे पडनेवाले सोलह पुराका वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो।

हे गरुड। प्रमाणत यमलाक और मृत्युलोकके मध्य छियासी हजार योजनकी दूरी है। हे खगेश। इस ससारमे पूर्वार्जित सुकृत और दुष्कृत कर्मोका फल भाग कर अपने कर्मके अनुसार ही किसी व्याधिका जन्म हाता है और अपने द्वारा किये गये कर्मोके आधारपर निमित्तमात्र बनकर कोई व्याधि उत्पन्न होती है। जिसकी जिस निमित्तसे मृत्यु निश्चित है, वह निमित्त किये गये कर्मोके अनुसार उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है।

जीवात्मा कर्मभोगके कारण जब अपने वर्तमान शरीरका परित्याग करता है तब भूमिको गोबरसे लीपकर उसक ऊपर तिल और कुशासन विछाकर उसीपर उसे लिटा द। तदनन्तर उस प्राणीक मुखम सुवर्ण डाल आर उसक समीप तुलसीका वृक्ष एव शालग्रामकी शिलाको भी लाकर रखे। तत्पश्चात् यथाविधान विभिन्न सूक्ताका पाठ करना चाहिये, क्योकि ऐसा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु मुक्तिदायक होती है। उसके बाद मरे हुए प्राणीके शरीरगत विभिन्न स्थानोम सोनकी शलाकाओको रखनेका विधान है, जिसके अनुसार क्रमश एक शलाका मुख, एक-एक शलाका नाकके दोना छिद्र, दो-दो शलाकाएँ नेत्र और कान एक शलाका लिङ्ग तथा एक शलाका उसके ब्रह्माण्डमे रखनी चाहिये। उसके दोना हाथ एव कण्ठभागम तुलसी रख। उसके शवको दो वस्त्रोसे आच्छादित करके कुकुम और अक्षतसे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसको पुष्पाकी मालासे विभूषित करके उसे बन्धु-बान्धवा तथा पुत्र, पुरवासियाके साथ अन्य द्वारसे ले जायँ। उस समय अपन बान्धवाके साथ पुत्रको मरे हुए पिताके शवको कन्धेपर रखकर स्वय ले जाना चाहिये।

श्मशान देशम पहुँचकर पुत्र, पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख वहाँकी उस भूमिपर चिताका निर्माण कराये जो पहलेसे जली न हो। उस चिताम चन्दन तुलसी आर पलाश

[1] सक्रान्तीना सहस्राणि सूर्यपर्वशतानि च। दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तद्वै नीलविसर्जने॥ (१४।५८)

आदिकी लकडीका प्रयोग करना चाहिये।

जब मरणासन्न व्यक्तिकी इन्द्रियाका समूह व्याकुल हो उठता है चतन शरीर जब जडीभूत हो जाता है, उस समय प्राण शरीरको छोडकर यमराजके दूतोके साथ चल देते हैं। उस समय मृतकको दिव्य-दृष्टि प्राप्त होती है, जिसके द्वारा वह समस्त ससारको देखता है। जब मृतकके प्राण कण्ठमे आकर अटक जाते हैं, उस कालम उस आतुर व्यक्तिका रूप बडा बीभत्स और कठोर हो जाता है। कोई मरता हुआ प्राणी मुखसे फेन उगलता है, किसीका मुख लाला (लार)-से भर जाता है। उस समय जो प्राणी दुरात्मा होते हैं, उन्हे यमदूत अपने पाशबन्धनासे जकडकर मारते हैं। जो सुकृती हैं, उनको स्वर्गके पार्षद अपने लोकको सुखपूर्वक ले जाते हैं। यमलोकके दुर्गम मार्गमे पापियाको दु ख झेलते हुए जाना पडता है।

यमराज अपने लोकमे शङ्ख, चक्र तथा गदा आदिसे विभूषित चतुर्भुज रूप धारण कर पुण्यकर्म करनेवाले साधु पुरुषाके साथ मित्रवत् आचरण करते हैं। वे सभी पापियाको सनिकट बुलाकर उन्हे अपने दण्डसे तर्जना देते हैं। वह यमराज प्रलयकालीन मेघके समान गर्जना करनेवाला है। अञ्जनगिरिके सदृश उसका कृष्णवर्ण है। वह एक बहुत बडे भैंसेपर सवार रहता है। अत्यन्त साहस करके ही लोग उसकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। वह विद्युत्के तेजके समान विद्यमान है। उसके शरीरका विस्तार तीन योजन है। वह महाक्रोधी एव अत्यन्त भयकर है। भीमकाय दुराकृति यमराज अपने हाथमे लोहेका दण्ड और पाश धारण करता है। उसके मुख तथा नेत्राको देखनेसे ही पापियाके मनमे भय उत्पन्न हो उठता है। इस प्रकारका महाभयानक यमराज जब पापियोको दिखायी पडता है तब हाहाकार करता हुआ अगुष्ठमात्रका मृत पुरुष अपने घरको ओर देखता हुआ यमदूतोके द्वारा ले जाया जाता है।

प्राणोसे मुक्त शरीर चेष्टाहीन हो जाता है। उसको देखनसे मनमे घृणा उत्पन्न होने लगती है। वह तुरत अस्पृश्य एव दुर्गन्धयुक्त और सभी प्रकारसे निन्दित हो जाता है। यह शरीर अन्तमे कीट विष्ठा या राखमे परिवर्तित हो जाता है। हे तार्क्ष्य! क्षणभरमे विध्वस होनेवाले इस शरीरपर कौन ऐसा होगा जो गर्व करेगा। इस असत् शरीरसे होनेवाले वित्तका दान, आदरपूर्वक वाणी, कीर्ति, धर्म, आयु और परोपकार यही सारभूत है। यमलोक ले जाते हुए यमदूत प्राणीको बार-बार नरकका तीव्र भय दिखाते हुए डाँटकर यह कहते हैं कि हे दुष्टात्मन्! तू शीघ्र चल। तुझे यमराजके घर जाना है। शीघ्र ही हम सब तुझे 'कुम्भीपाक' नामक नरकमे ले चलेगे। उस समय इस प्रकारकी वाणी और बन्धु-बान्धवोका रुदन सुनकर ऊँचे स्वरमे हा-हा करके विलाप करता हुआ वह मृतक यमदूताके द्वारा यमलोक पहुँचाया जाता है।

हे गरुड! एकादशाहके दिन उचित स्थानपर श्राद्ध करना चाहिये। प्राणोत्क्रमणसे लेकर क्रमश छ पिण्डदान करने चाहिये। उन पिण्डाका दान यथाक्रम मृतस्थान, द्वार, चत्वर (चौराहा), विश्राम-स्थल, काष्ठचयन (चिता) और अस्थिचयनके स्थानपर करना चाहिये। हे पक्षिन्! इन छ पिण्डाकी परिकल्पनाका कारण तुम सुनो।

हे तार्क्ष्य! जिस स्थानमे मनुष्य मरता है, उस स्थानपर मृतकके नामसे 'शव'नामका पिण्ड दिया जाता है। उस पिण्डदानको देनेसे गृहके वास्तुदेवता प्रसन्न हो जाते हैं और उससे भूमि तथा भूमिके अधिष्ठातृ देवता प्रसन्न होते हैं। द्वारपर जो दूसरा पिण्डदान दिया जाता है, उसका नाम 'पान्थ' है। उस देनेसे द्वारस्थ गृहदेवता प्रसन्न होते हैं। चौराहेपर 'खेचर' नामक पिण्डदान होता है। इस पिण्डदानको देनेसे भूत आदि देवयोनियाँ बाधा नहीं करतीं। विश्राम-स्थलपर होनेवाला पिण्डदान 'भूत' सज्ञक है। इसको देनेसे पिशाच, राक्षस और यक्ष आदि जो अन्य दिग्वासी योनियाँ हैं, वे जलाये जाने योग्य उस मृतक शरीरको अयोग्य नहीं बनातीं। हे खगेश्वर! चिता-स्थलपर पिण्डदान देनेसे प्रेतत्वकी उत्पत्ति होती है। एक मतमे चितापर दिये जानेवाले पिण्डदानका नाम साधक है और प्रेतकल्पके विद्वानोने इस श्राद्धको प्रेतके नामसे अभिहित किया है। चितामे पिण्डदानके बाद ही 'प्रेत' नामसे पिण्डदान देना चाहिये। इस प्रकार इन पाँचो पिण्डोसे शव आहुतिके योग्य होता है अन्यथा पूर्वोक्त उपघातक होते हैं।

प्राणोत्क्रमणके स्थानपर पहला पिण्डदान देना चाहिये। उसके बाद दूसरा पिण्डदान आधे मार्गमे और तीसरा चितापर देना चाहिये। पहले पिण्डमे विधाता दूसरेमे

गरुडध्वज तथा तीसरेमे यमदूत—इस प्रकारका प्रयोग कहा गया है। तीसरा पिण्डदान देते ही मृत व्यक्ति शरीरके दोषासे मुक्त हो जाता है।

इसके बाद चिता प्रज्वलित करनेके लिये वेदिका निर्माण करके उसका उल्लेखन, उद्धरण और अभ्युक्षण आदि करके विधिपूर्वक अग्नि-स्थापन करके पुष्प और अक्षतसे क्रव्याद नामके अग्निदेवकी पूजा करके यह प्रार्थना करनी चाहिये—

त्व भूतकृज्जगद्योने त्व लोकपरिपालक ॥
उपसहारकस्तस्मादेन स्वर्ग मृत नय।
(१५।४४-४५)

'हे क्रव्याद अग्निदेव! आप महाभूततत्त्वोसे बने हुए इस जगत्के कारण पालनहार एव सहारक हैं। अत इस मृत व्यक्तिको आप स्वर्ग पहुँचाय।'

इस प्रकार क्रव्याद नामक अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके शवको जलानेका कार्य करे। मृतकका आधा शरीर जल जानेपर घृतकी आहुति देनी चाहिये। **'लोमभ्य स्वाहा०'** इस मन्त्रसे यथाविधि होम करना चाहिय। चितापर उस प्रेतको रखकर आज्याहुति देनी चाहिये। यम, अन्तक, मृत्यु, ब्रह्मा, जातवेदस्के नामसे आहुति देकर एक आहुति प्रेतके मुखपर दे। सबसे पहले अग्निको ऊपरकी ओर प्रज्वलित करे। तदनन्तर चिताके पूर्वभागका उसी अग्निसे जलाये। इस प्रकार चिताको जलाकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित तिलमिश्रित आज्याहुति पुन प्रदान करे—

अस्मात् त्वमधिजातोऽसि त्वदय जायता पुन ।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलितपावक ॥
(१५।४९)

'हे अग्निदेव! आप इससे उत्पन्न हुए हैं। पुन आपसे यह उत्पन्न हुआ है। इस मृतककी स्वर्गकामनाके लिये आपके निमित्त यह स्वाहा है।'

इस प्रकार तिलमिश्रित समन्त्रक आज्याहुति देकर पुत्रको दाह करना चाहिये। उस समय उसे तेज रुदन करना चाहिये। ऐसा करनेसे मृतकको सुख प्राप्त होता है। दाह-सस्कारके पश्चात् वहींपर अस्थि-सचयन करना चाहिये। उसके बाद प्रेतके दाहजन्य क्लेशकी शान्तिके लिये पिण्डदान दे।

दाह-सस्कारके पश्चात् मृत व्यक्तिके पुत्राको वस्त्रके सहित स्नान करना चाहिये। तदनन्तर नामगोत्रोच्चार करते हुए वे तिलाञ्जलि द। उसके बाद गाँव या जनपदके सभी लोग ताली बजा-बजाकर विष्णु-नाम-सकीर्तन और मृतकके गुणाकी चर्चा कर। सभी लोग उस मृत व्यक्तिके घर आकर द्वारके दक्षिण भागमे गोमय और श्वेत सरसोको रखे। अपने मनमे वरुणदेवका ध्यान कर नीमकी पत्तियोका भक्षण तथा घीका प्राशन करके वे सभी अपने-अपने घर जायँ।

हे खगश्वर! कुछ लोग चितास्थानका दूधसे सींचते हैं। मृतकको जलाञ्जलि देते हुए अश्रुपात नहीं करना चाहिये। बन्धु-बान्धवोके जो उस समय रोते हुए मुँहस कफ और नेत्रासे आँसू गिराया जाता है, उसको ही वह प्रेत विवश होकर खाता है। अत उन सभीको उस समय रोना नहीं चाहिये, अपनी शक्तिके अनुसार क्रिया करनी चाहिये।

हे तार्क्ष्य! सूर्यके अस्त हो जानेके बाद घरके बाहर अथवा कहीं एकान्तम चौराहेपर दाह-क्रियाके दिनसे लेकर तीन दिनतक मिट्टीके पात्रमे दूध और जल देना चाहिये, क्योकि मरनेके बाद जो मूढ-हृदय जीवात्मा है, वह पुन उस शरीरको प्राप्त करनेकी इच्छासे यमदूताके पीछे-पीछे श्मशान, चौराहा तथा घरका दर्शन करता हुआ यमलोकको जाता है। प्रतिदिन दशाहतक प्रेतके लिये पिण्डदान और जलाञ्जलि देनी चाहिये। जबतक दशाह-सस्कार न हो जाय, तबतक एक जलाञ्जलि प्रतिदिन अधिक बढाना अनिवार्य है। यह और्ध्वदैहिक सस्कार पुत्रके द्वारा अपेक्षित है। उसके अभावम पत्नीको करना चाहिये। पत्नीके न हानेपर शिष्य, उसके न होनेपर सहोदर भाई कर सकता है। श्मशान अथवा अन्य किसी तीर्थम मृतकके लिये जल और पिण्डदान देना चाहिये। पहले दिन शाक-मूल और फल, भात या सत्तू आदिमसे जिस-किसीद्वारा पिण्डदान दिया जाय, उसीके द्वारा बादके दिनाम भी पिण्डदान देना चाहिये।

ह खगेश! दस दिनातक प्रेतके उद्देश्यसे पुत्रगण पिण्डदान दते हैं। दिये गये पिण्डका प्रतिदिन चार भाग हो जाता है, उसके दो भागसे मृतकका शरीर बनता है, तीसरा भाग यमदूत ल लेत हैं और चोथा भाग मृतकका खानेके लिये मिलता है। नौ दिन रातम प्रेत पुन शरीरयुक्त हो जाता

है। शरीर बन जानेपर दसवे पिण्डसे प्राणीको अत्यधिक भूख लगती है।

दस दिनके पिण्डमे विधि, मन्त्र, स्वधा, आवाहन और आशीर्वादका प्रयोग नहीं होता है, केवल नाम तथा गोत्रोच्चारपूर्वक पिण्डदान दिया जाता है। हे पक्षिन्! मृतकका दाह-संस्कार हो जानेके पश्चात् पुन शरीर उत्पन्न होता है। पहले दिन जो पिण्डदान दिया जाता है, उससे मूर्धा दूसरे दिनके पिण्डदानमे ग्रीवा और दोनो स्कन्ध, तीसरे दिनके पिण्डदानसे हृदय, चौथे दिनके पिण्डदानसे पृष्ठ, पाँचवे दिनके पिण्डदानसे नाभि छठे दिनके पिण्डदानसे कटिप्रदेश, सातवे दिनके पिण्डदानसे गुह्यभाग, आठवे दिनके पिण्डदानसे ऊरु, नौवे दिनके पिण्डदानसे तालु-पैर और दसवे दिनके पिण्डदानसे क्षुधाकी उत्पत्ति होती है। जीवात्मा शरीर प्राप्त करनेके पश्चात् भूखसे पीडित हो करके घरके दरवाजेपर रहता है। दसवे दिन जो पिण्डदान होता है, उसको मृतकके प्रिय भोज्य-पदार्थसे बना करके देना चाहिये क्योकि शरीर-निर्माण हो जानेपर मृतकको अत्यधिक भूख लग जाती है, प्रिय भोज्य-पदार्थके अतिरिक्त अन्य किसी अन्नादिक पदार्थोसे बने हुए पिण्डका दान देनेसे उसकी भूख दूर नहीं होती है।

एकादशाह और द्वादशाहके दिन प्रेत भोजन करता है। मरे हुए स्त्री-पुरुष दोनोके लिये प्रेत शब्दका उच्चारण करना चाहिये। उन दिनो दीप अन्न, जल, वस्त्र जो कुछ भी दिया जाता है उसको प्रेत शब्दके द्वारा देना चाहिये, क्योकि वह मृतकके लिये आनन्ददायक होता है[2]।

त्रयोदशाहको पिण्डज शरीर धारण करके भूख-प्याससे पीडित वह प्रेत यमदूतोके द्वारा महापथपर लाया जाता है। जो प्रेत पापी होते हैं उनका मार्ग शीत, ताप शंकुके आकारका चुभनेवाला मास खानेवाले जन्तु तथा अग्निमे परिव्याप्त रहता है। जो सुकृती हैं उनका मार्ग सब प्रकारसे सौम्य है, उनको उस मार्गमे कोई कष्ट नहीं होता है। असिपत्रवनसे व्याप्त उस मार्गमे इतने दु ख हैं कि क्षुधा-प्याससे पीडित उस प्रेतको नित्य यमदूत अत्यधिक सन्त्रास देते हैं। प्रतिदिन वह प्रेत दो सौ सैंतालिस योजन चलता है। यमदूतोके पाशसे बँधा, हा-हा करके विलाप करता हुआ वह प्रेत अपने घरको छोडकर दिन और रात चलकर यमलोक पहुँचता है। उस महापथमे पडनेवाले प्रसिद्ध पुरोके शुभाशुभ भोग प्राप्त करते हुए वह यमलोकको जाता है। इस मार्गमे क्रमश —याम्यपुर सौरिपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धर्वनगर, शैलागम, क्रौञ्चपुर क्रूरपुर, विचित्रभवन, बह्वापद, दु खद नानाक्रन्दपुर, सुतप्तभवन, रौद्रनगर, पयोवर्षण, शीताढ्य और बहुधर्म-भीतिभवन नामक प्रसिद्ध पुर हैं।

त्रयोदशाह अर्थात् तेरहवेंके दिन यमदूत प्रेतको उस मार्गपर उसी प्रकारसे पकडकर ले जाते हैं, जिस प्रकार मनुष्य बंदरको पकडकर ले जाता है। उस प्रकारसे बँधा हुआ वह प्रेत चलते हुए नित्य 'हा पुत्र, हा पुत्र'का करुण विलाप करता है। वह कहता है कि मैंने किस प्रकारका कर्म किया है जो ऐसा कष्ट मैं भोग रहा हूँ। वह यह भी कहते हुए चलता है कि यह मनुष्य-योनि कैसे प्राप्त होती है। मैंने इसको व्यर्थमे गँवा दिया है। प्राणी इस मनुष्य-योनिको बहुत बडे पुण्यसे प्राप्त करता है। उसको पाकर मैंने याचकोको स्वार्जित धन दानमे नहीं दिया। आज वह भी पराधीन हो गया है। ऐसा कहकर वह गद्गद हो उठता है[3]। जब यमदूत उसको अत्यधिक पीडित करते हैं तो वह बार-बार अपने पूर्व-शरीरजन्य कर्मोका स्मरण करता हुआ इस प्रकार कहता है—

सुख-दु खका दाता कोई दूसरा नहीं है। जो लोग सुख-दु खका दाता दूसरेको समझते हैं, वे कुबुद्धि ही हैं। जीवात्मा सदैव पहले किये गये कर्मका भोग करता है। हे देही! तुमने जो कुछ किया है उसमे निस्तार करो[4]। मैंने न दान दिया है न अग्निमे आहुति डाली है न हिमालय पर्वतकी गुफामे जाकर तपस्या ही की है और न तो गङ्गाके

१-पार्वणादि श्राद्धोमे निर्दिष्ट पिण्डदानविधि।

२-दीपमन्नं जलं वस्त्रं यत्किंचिद्वस्तु दीयते। प्रेतशब्देन तद्देयं मृतस्यानन्ददायकम्॥ (१५।७५)

३-मानुष्यं लभ्यते कस्मादिति ब्रूते प्रसर्पति। महता पुण्ययोगेन मानुष्यं जन्म लभ्यते॥
न तत् प्राप्य प्रदत्तं हि याचकेभ्य स्वकं धनम्। पराधीनं तदभवदिति ब्रूते (रौति) सगद्गद॥ (१५।८६-८७)

४-सुखस्य दु खस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
पुरा कृतं कर्म सदैव भुज्यते देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ (१५।८९)

परम पवित्र जलका ही सेवन किया है। हे जीव! तुमने जो कुछ भी किया है, उसीका फल भोग करो। हे देही! पहले तुमने नित्य न दान दिया है, न गोदान किया है, न आह्निक कृत्य किया है, न तो वेदका दान किया, न शास्त्रका देखा और न शास्त्रबोधित मार्गका सेवन किया, इसलिये हे जीव! जैसा तुमने किया है, अब उसीमे अपना निस्तार करो। हे देही! तुमने जलरहित देशम मनुष्य और पशु-पक्षियाके लिये जलाशयका निर्माण नहीं करवाया है, न गायोकी क्षुधा-शान्ति लिये गोचर-भूमि ही छोडी है। हे देहो! जो कुछ किया है अब उसका फल भोग करो।'[1]

हे पक्षिन्! पुरुष प्रेतके द्वारा कहे गये उक्त वचनोको मैंने सुनाया। अब स्त्रीका शरीर लेकर देही पूर्व किये हुए कर्मोके सम्बन्धम जैसा कहता है, उसे सावधान होकर सुनो—'हे दहिन्! मैंने पतिके साथ रहकर उन्हे सुख नहीं दिया है। उनक मरनेपर मैं उनके साथ चितामे भी नहीं प्रविष्ट हुई हूँ और न तो उनके मर जानेपर उस वैधव्य-व्रतका ही पालन किया है, अतएव जो कुछ नहीं किया है उसका फलभोग में कर रही हूँ। मैंने मासोपवास अथवा चान्द्रायणव्रतके नियमासे इस शरीरका शोधन भी नहीं किया है। हे जीव! स्त्रीका शरीर बहुत-से दु खोका पात्र है, पहले किये गय बुरे कर्मोके अनुसार मैंने इसे प्राप्त किया और इसे भी व्यर्थ ही गँवा दिया। (अध्याय १५)

यममार्गके सोलह पुरोका वर्णन

श्रीभगवान्ने कहा—हे खगेश! इस प्रकार करुण-क्रन्दन और विलाप करते हुए अत्यधिक दु खित प्रेतका सत्रह दिनतक अकेले वायुमार्गम ही यमदूतोके द्वारा निर्दयतापूर्वक खींचा जाता हे। अट्ठारहवाँ दिन-रात पूर्ण होनेपर पहले वह 'याम्यपुर' पहुँचता है। उस रमणीक नगरम प्रेतोके महान् गण रहते हैं। वहाँ पुष्पभद्रा नदी तथा देखनेम सुन्दर लगनेवाला एक वटवृक्ष है। यमदूत वहाँ पहुँचकर उस प्रेतको विश्राम करनेका समय देते हैं। वहाँ प्रेत दु खित हाकर अपनी स्त्री और पुत्रादि सगे-सम्बन्धियोसे प्राप्त होनेवाले सुखका स्मरण करता है। मार्गमे पडनेवाले परिश्रमसे थका एव भूख-प्याससे व्याकुल वह प्रेत वहाँ करुण विलाप करता है। उस समय वह धन, स्त्री, पुत्र, घर सुख, नौकर और मित्रके विषयम तथा अन्य सभीके विषयमे सोचता है। उस नगरम भूख-प्याससे पीडित उस प्रेतको देखकर यमदूत कहते हैं।

यमदूतोने कहा—'हे प्रेत! कहाँ धन है कहाँ पुत्र है, कहाँ स्त्री है कहाँ घर है और कहाँ तू इस प्रकारका दु ख झेल रहा है। चिरकालतक अब तू अपने कर्मोंसे अर्जित पापोका भोग कर और इस महापथपर चल। हे परलाकके पथिक! तुम जानते हो कि राहगीराका बल पाथेयके वशम है। निश्चित ही तुझे उस मार्गसे चलना होगा, जहाँ कुछ क्रय-विक्रय करना भी सम्भव नहीं है।'

हे पक्षिराज! यमदूताके द्वारा इस प्रकार कहे जानेके बाद वह यमदूताके द्वारा मुद्गरासे मारा जाता है। तत्पश्चात् स्नहवश अथवा कृपा करके भूलोकमे पुत्राके हाथोसे दिये गये मासिक पिण्डको वह खाता है। उसके बाद वहाँसे वह 'सौरिपुर'के लिये चल देता है। उस नगरमे कालरूपधारी जगम नामका राजा है। उसको देखकर प्रेत भयभीत हो उठता है और विश्राम करना चाहता है। त्रैपाक्षिक श्राद्धमे दिये गये अन्न और जलका वह उसी नगरम उपभोग करके दिन और रात चलकर सुन्दर बसे हुए 'नगेन्द्रभवन' नामक नगरकी ओर जाता है। उस महापथपर चलते हुए महाभयकर वन देखकर वह करुण विलाप करता है। वहाँके कष्टोसे दु खित होकर वह बार-बार रोता है। दा मास बितानेके पश्चात् वह उस नगरम पहुँचता है। यहाँ वह अपन बन्धु-बान्धवोके द्वारा दिय गये अन्न और जलको खाता-पीता है। उसके बाद यमदूत पाशमे बाँधकर उसे दु ख देते हुए पुन आगेकी ओर ले जाते हैं। तीसरे मासमे वह 'गन्धर्वनगर' पहुँच जाता है। तीसरे मासम दिये गये श्राद्ध-पिण्डका यहाँ भक्षण करके चौथे मासम वह 'शैलागम'

१-मया न दत्त न हुत हुताशने तपो न तप्त हिमशैलगह्वरे । न सेवित गागमहो महाजल देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
न नित्यदान न गवाह्निक कृत न वेददान न च शास्त्रपुस्तकम् । पुरा न दृष्ट न च सेवितोऽध्वा देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतो पशुपक्षिहेतवे । गोतृप्तिहेतोर्न कृत हि गाचर देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
(१५।१०—१२)

नामक नगर पहुँचता है। यहाँ प्रेतके ऊपर पत्थराकी वर्षा होती है। वहाँ वह चौथे मासम दिये गये श्राद्ध-पिण्डको खाकर सतुष्ट होता है। इसके बाद प्रेत पाँचव मासम 'क्रौञ्चपुर' जाता है। उस पुरम पुत्राके द्वारा दिये गये पाँचव मासके श्राद्धके पिण्डको खाता है। तदनन्तर छठे मासमे प्रेत 'क्रूरपुर' नामक नगरकी यात्रा करता हे। उस पुरम छठे मासम पुत्रोद्वारा दिये गय श्राद्ध-पिण्डको खाकर उसकी सतृप्ति हाती है, किंतु आधे मुहूर्तभर विश्राम करनके बाद उसका हृदय पुन दु खसे काँपने लगता है। यमदूतास तर्जित होकर वह प्रेत उस पुरको लाँघकर 'विचित्रभवन'की ओर प्रस्थान करता है जहाँका राजा विचित्र है। यमराजका छोटा भाई सौरि ही यहाँके राज्यपर शासन करता है।

हे पक्षिराज! पाँच मास और पद्रह दिनपर ऊनपाण्मासिक श्राद्ध होता है। अत यमदूताके द्वारा सत्रस्त वह प्रेत उसी 'विचित्रभवन'म ऊनपाण्मासिक श्राद्ध-पिण्डका उपभोग करता है। मार्गम बार-बार उसको भूख पीडा पहुँचाती है। अत यमदूताक द्वारा रोके जानेपर भी वह उस मार्गम विलाप करता है कि क्या कोई पुत्र या बान्धव है? जो मरे मरनेपर शोक-सागरम गिरते हुए मुझे सुखी नहीं कर रहा है? इसी समय वहाँपर उसके सामने हजारा मल्लाह आत हैं और कहते हैं कि 'सौ योजन विस्तृत मवाद और रक्तसे पूर्ण नाना प्रकारकी मछलियासे व्याप्त, नाना पक्षिगणासे आवृत महावैतरणी नदीको पार करनेकी इच्छा करनेवाले तुम्हे हम लोग सुखपूर्वक तारगे। किंतु हे पथिक! यदि उस मर्त्यलोकम तुम्हारे द्वारा गोदान दिया गया है ता उस नावसे तुम पार जाओ।' मनुष्योका अन्त समय आनेपर वैतरणी-गादान ही हितकारी हाता हे। अत शरीर स्वस्थ रहनपर वैतरणी-व्रत करना चाहिये और वेतरणी नदीको पार करनेकी इच्छासे विद्वान् ब्राह्मणको गोदान करना चाहिये। वह पापीके समस्त पापाको विनष्ट करके उसे विष्णुलाक ले जाता हे। जिसने वैतरणी-दान नहीं किया है, वह प्रेत उसी नदीमे जाकर डूबने लगता है। डूबते हुए स्वय अपनी निन्दा करता हुआ कहता हे कि 'मैने पाथेय-हेतु ब्राह्मणको कुछ भी दान नहीं दिया है। न मैंने दान किया है न तो मैंन अग्निम आहुति दी है न भगवन्नामका जप ही किया है न तीर्थम जाकर स्नान ही किया है और न भगवान्‌की स्तुति ही की है। हे मूर्ख! जैसा कर्म तुमने किया है, अब वैसा ही भाग कर।' एसा कहनेके बाद यमदूतासे हृदयम मारा जाता हुआ वह प्रेत उसी समय किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है और वैतरणीके दूसरे तटपर दिये गये पाण्मासिक श्राद्धके घटादिक दान एव पिण्डका भोजन करके आगेको आर बढता है। अत हे तार्क्ष्य! पाण्मासिक श्राद्धपर सत्पात्र ब्राह्मणको विशेपरूपसे भोजन कराना चाहिये।

ह गरुड! इसके बाद वह प्रत एक दिन-रातम दा सौ सैंतालीस योजनको गतिसे चलता है। सातवाँ मास आनेपर वह 'बह्वापद' नामक पुरम पहुँचता है। सप्तम मासिक श्राद्धम जो कुछ दान दिया गया है, उसको खाकर आठवें मासकी समाप्तिपर उसकी यात्रा 'दु खदपुर' तथा 'नानाक्रन्दनपुर'की आर होती है। अत्यन्त दारुण क्रन्दन करते हुए नानाक्रन्दगणाको देखकर वह प्रेत स्वय शून्यहृदय एव दु खित होकर बहुत जोर-जोरसे रोने लगता है। वहाँ आठव मासके श्राद्धको खाकर वह सुखी होता है। नगरको छोडकर वह 'तप्तपुर' चला जाता है। 'सुतप्तभवन'मे पहुँचकर प्रेत नव मासके श्राद्धम पुत्रके द्वारा किये गये पिण्डदान एव कराये गये ब्राह्मण-भोजनको खाता है। दसवे मासम वह 'रौद्रनगर' जाता है। वहाँ वह दसवे मासके श्राद्धका भोजन करके आगे स्थित 'पयोवर्षण' नामक पुरके लिये चल देता है। वहाँ पहुँचकर वह ग्यारहवे मासके श्राद्धका भोजन करता है। वहाँ मेघाकी ऐसी जलवर्षा होती है, जिससे प्रेतको बहुत ही कष्ट होता है। तदनन्तर आगेका ओर बढता हुआ वह प्रेत अत्यन्त कडकती हुई धूप और प्याससे व्यथित हो उठता है। बारहवें मासम पुत्रने श्राद्धम जो कुछ दान दिया है, उसका ही वह दु खित प्रेत वहाँपर भोग करता है। इसके बाद वर्ष-समाप्तिके कुछ दिन शेष रहनेपर अथवा ग्यारह मास पद्रह दिन बीत जानेपर वह 'शीताढ्यपुर' जाता है जहाँ प्राणियाको अत्यन्त कष्ट देनेवाली ठडक पडती है। वहाँकी ठडीसे व्यथित, भूखस व्याकुल वह प्रेत इस आशाभरी दृष्टिसे दसा दिशाओको देखने लगता है कि 'क्या मेरा काई बन्धु-बान्धव है जो मेरे इस दु खको दूर कर दे?' उस समय यमदूत उस प्रेतसे यह कहते हैं कि 'तेरा पुण्य वैसा कहाँ है जो इस कष्टम सहायता कर सके।' उनके उस वचनका सुनकर वह प्रेत 'हाय दैव!' ऐसा कहता

है। निश्चित ही पूर्वजन्मम किया गया पुण्य दैव है। उसको 'मैंने सचित नहीं किया है', ऐसा मन-ही-मन अनेक प्रकारसे विचार करके वह प्रेत पुन धैर्यका सहारा लेता है।

इसके बाद वहाँसे चौवालीस योजन परिक्षेत्रमे फैला हुआ गन्धर्व और अप्सराआसे परिव्याप्त अत्यन्त मनोरम 'बहुधर्मभीतिपुर' पडता है, जहाँ चौरासी लाख मूर्त एव अमूर्त प्राणी निवास करते हैं। इस पुरमे तेरह प्रतीहार हैं। जो ब्रह्माजीके पुत्र हैं और श्रवण कहलाते हैं। वे प्राणियोके शुभाशुभकर्मका बार-बार विचार करके उसका वर्णन करते हैं। मनुष्य जो कहते और करते हैं, उन सभी बातोको ये ही ब्रह्माजीके पुत्र श्रवणदेव चित्रगुप्त तथा यमराजसे बताते हैं। वे दूरसे ही सब कुछ सुनने और देखनेम समर्थ हैं। इस प्रकारकी चेष्टावाले एव स्वर्गलोक और भूलोक तथा पातालमे सचरण करनेवाले वे श्रवण आठ हैं। उन्हींके समान उनकी पृथक्-पृथक् श्रवणी नामक उग्र पत्नियाँ हैं। उनकी भी शक्ति वैसी ही है, जैसी उनके पतियोकी है। वे मर्त्यलोकके अधिकारीक रूपम हैं। व्रत, दान, स्तुतिसे जो उनकी पूजा करता है, उसके लिये वे सौम्य और सुखद मृत्यु देनेवाले हो जाते हैं।

(अध्याय १६)

समस्त शुभाशुभ कर्मोके साक्षी ब्रह्माके पुत्र श्रवणदेवोका स्वरूप

श्रीगरुडने कहा—हे देव! यह एक सदेह मेरे हृदयको बाधित कर रहा है कि श्रावण किसके पुत्र हैं, यमलोकमे वे किस प्रकारसे रहते हैं? हे प्रभो! किस शक्तिक प्रभावसे वे मानव-कर्मका ज्ञान लेते हैं? वे कैसे किसी बातको सुन लेते हैं? उनको यह ज्ञान किससे प्राप्त हुआ है? हे देवेश्वर! उन्हे भोजन कहाँसे प्राप्त हाता है? आप प्रसन्न होकर मेरे इस समस्त सदेहको नष्ट करे। पक्षिराज गरुडके इस कथनको सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! सभी प्राणियाको सुख देनेवाले मेरे इस वचनको तुम सुनो। श्रवणसे सम्बन्धित उन समस्त बातोको तुम्हे मैं बताऊँगा। प्राचीनकालम जब समस्त स्थावर- जगमात्मक सृष्टि एकाकार हो गयी थी और मैं समस्त सृष्टिको आत्मलीन करके क्षीरसागरम सो रहा था। उस समय मेरे नाभिकमलपर स्थित ब्रह्माने बहुत वर्षोंतक तपस्या की। उन्हाने एकाकार उस सृष्टिको चार प्रकारके प्राणियाम विभक्त किया। तदनन्तर ब्रह्मासे ही बनी सृष्टिके पालनका भार विष्णुने स्वीकार किया। तत्पश्चात् ब्रह्माके द्वारा सहारमूर्ति रुद्रका निर्माण हुआ। उसके बाद समस्त चराचर जगत्मे प्रवाहित होनेवाले वायु, अत्यन्त तेजस्वी सूर्य तथा चित्रगुप्तके साथ धर्मराजकी सृष्टि हुई।

इन सभीको रचना करके ब्रह्मा पुन तपस्याम निमग्न हो गये। विष्णुके नाभिपङ्कजमे तपस्या करते हुए उनको बहुत वर्ष बीत गये। वहींपर लोकसृष्टिम लगे हुए ब्रह्माने कहा कि जिन लोगाकी उत्पत्ति पहले हुई है, उन सभीको अपनी योग्यताके अनुसार कर्मम लग जाना चाहिये। अत रुद्र विष्णु तथा धर्म पृथ्वीके शासन-कार्यमे लग गये, किंतु उन लोगोने कहा कि हम सभी लोगोको लोक-व्यवहारका कुछ भी ज्ञान नहीं है। इस सम्बन्धम आप ही कुछ बताये। इस विषयमे चिन्तित होकर सभी देवताआने उस समय परस्पर विचार-विमर्श किया। तत्पश्चात् देवताआने हाथमे पत्र-पुष्प लेकर ब्रह्म-मन्त्रका ध्यान किया। उसके बाद देवताआकी प्रेरणासे ब्रह्माने अत्यन्त तेजस्वी एव बडे-बडे नेत्रावाले तथा अत्यन्त तेजस्वी बारह पुत्रोको जन्म दिया। इस ससारम जो कोई जेसा भी शुभ या अशुभ बोलता है, उसे वे अत्यन्त शीघ्र ब्रह्माके कानोतक पहुँचाते हैं। हे पक्षिन्! दूरसे ही सुनने एव दूरसे ही देख लेनेका विशेष ज्ञान उन्हे प्राप्त है। चूँकि व सब कुछ सुन लेते हैं, उसीके कारण उन्ह 'श्रवण' कहा गया है। वे आकाशमे रहकर प्राणियाकी जो भी चेष्टा होती हे, उसको जानकर धर्मराजके सामने मृत्युकालके अवसरपर कहते हैं। उनके द्वारा प्राणियोके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोकी विवेचना उस समय धर्मराजसे की जाती है। हे वैनतेय! ससारम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार मार्ग हैं। जो उत्तम प्रकृतिवाले प्राणी हैं, वे धर्ममार्गसे चलते हैं। जो अर्थ अर्थात् धन-धान्यका दान करनेवाले प्राणी हैं, वे विमानसे परलोक जाते हैं। जा प्राणी अभिलषित याचककी इच्छाको सतुष्ट करनेवाले हैं। वे अश्वापर सवार होकर प्रस्थान करते हैं। जो प्राणा माक्षकी आकाङ्क्षा रखते हैं वे हसयुक्त विमानसे परलोकको जाते हैं। इनके अतिरिक्त प्राणी जो

धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयसे हीन है, वह पैदल ही काँटा तथा पत्थरोके बीचसे कष्ट झेलता हुआ 'असिपत्रवन'मे जाता है।

हे पक्षिराज! इस मनुष्यलोकम जो कोई भी पक्वान्न, वर्धनी और जलपात्रके द्वारा मेरे सहित इन श्रवण देवोकी पूजा करता हे, उसको मे वह प्रदान करता हूँ, जिसकी प्राप्ति देवताओके लिये भी दुर्लभ है। भक्तिपूर्वक शुभ एव पवित्र ग्यारह ब्राह्मण तथा बारहव सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन कराकर मेरी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। ऐसा मनुष्य सभी देवताआसे पूजित होकर सुख प्राप्त करता है। उनकी पूजासे मैं और चित्रगुप्तके सहित धर्मराज प्रसन्न होते हैं। उन्हींकी सतुष्टिसे धर्मपरायण लोग मेरे विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं।

हे खगेश्वर! जो प्राणी इन श्रवण देवाके माहात्म्य, उत्पत्ति और शुभ चेष्टाओको सुनता है, वह पापसे सलिप्त नहीं होता है। वह इस लोकम सुख भोगकर स्वर्गमें महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। (अध्याय १७)

विविध दानादि कर्मोका फल प्रेतको प्राप्त होना, पददानका माहात्म्य, जीवको अवान्तर-देहकी प्राप्तिका क्रम

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिन्! इन श्रवण देवाके वचनोको सुनकर चित्रगुप्त पुन क्षणभर स्वय ध्यान करके मनुष्य जो कुछ भी दिन-रात पाप-पुण्य करते हैं, उन्हे धर्मराजसे निवेदन करते हैं।

हे तार्क्ष्य! मनुष्य वाणी, शरीर और मनसे जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, उन सबका वह भोग करता है। इस प्रकार मैंने तुम्हे प्रेतमार्गका निर्णय सुना दिया। मृत्युके पश्चात् प्रेत कहाँ रुकते हैं, उन सभी स्थानाका भी वर्णन तुमसे कर दिया। जो मनुष्य यह सब समझकर अन्नदान तथा दीपदान करता है, वह उस महामार्गमे सुखपूर्वक गमन करता है।

जो दीपदान करते हैं, वे कुत्तासे परिव्याप्त लक्ष्यहीन मार्गमे पूर्ण प्रकाशके साथ गमन करते हैं। कार्तिकमासमे

कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको रात्रिमे किया गया दीपदान प्राणियाके लिये सुखकारी हाता है।

अब मैं सक्षेपमे तुम्हे प्राणियोके यम-मार्गके निस्तारका उपाय बताऊँगा।

हे गरुड! वृषोत्सर्गके पुण्यसे मनुष्य पितृलोकको जाता है, एकादशाहमे पिण्डदानसे देहशुद्धि होती है। जलसे परिपूर्ण घडेका दान करनेसे यमदूत सतुष्ट होते हैं। उस दिन शय्यादान करनेसे मनुष्य विमानपर चढकर स्वर्गलोकको जाता है। विशेषत द्वादशाहके दिन सभी प्रकारका दान देना चाहिये और तेरह पददानके लिये विहित श्रेष्ठ वस्तुओको द्वादशाहके दिन अथवा जो जीवित रहते हुए अपने कल्याणके निमित्त दान देता है, वह उसीके सहारे महामार्गमे सुखपूर्वक गमन करता है।

हे खगराज! उस यममार्गम सर्वत्र एक-जैसा ही व्यवहार होता है। उत्तम, मध्यम और अधमरूपमे किसी भी प्रकारका वर्गीकरण वहाँ वर्जित है। जिसका भाग्य जैसा होता है उसका उस मार्गम वैसा ही भोग प्राप्त हाता है। प्राणी स्वय अपने लिये स्वस्थचित्तसे श्रद्धापूर्वक जो कुछ दान देता है, उसको वहाँपर प्राप्त करता है। मरनेपर जो बन्धु-बान्धवाके द्वारा उसके लिये दिया जाता है उसका आश्रय ले करके वह सुखी होता है।

गरुडने कहा—हे देवेश! तेरह पददान किसलिये करना चाहिये? यह दान किसे देना चाहिये? यह सब यथोचित रूपसे मुझे बतायें।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे पक्षिराज! छत्र पादुका वस्त्र

मुद्रिका, कमण्डलु, आसन और भोजनपात्र—ये सात प्रकारके पद माने गये हैं। पूर्ववर्णित महापथमे जो महाभयकर 'रौद्र' नामक आतप (धूप) है, उसके द्वारा मनुष्य जलता है। छत्रका दान देनेसे प्रेतको तुष्टि देनेवाली शीतल छाया प्राप्त होती है। पादुका दान देनेसे मृतप्राणी अश्वारूढ होकर घोर असिपत्रवनको निश्चित ही पार कर जाते हैं। मृतप्राणीके उद्देश्यसे ब्राह्मणका आसन और भोजन देकर स्वागत करनेपर प्रेत महापथमे धीरे-धीरे चलता हुआ उस दान दिये गये अन्नको सुखपूर्वक ग्रहण करता है। कमण्डलुका दान देनेसे प्राणी उस यमलोकके महापथम फैले हुए बहुत धूपवाले, वायुरहित और जलहीन मार्गमे निश्चित ही यथेच्छ जल एव वायु प्राप्तकर सुखपूर्वक गमन करता है। मृतकके उद्देश्यसे जो व्यक्ति जलपूर्ण कमण्डलुका दान करता है, उसको निश्चित ही हजार पौसलोके दानका फल प्राप्त होता है।

उदारतापूर्वक वस्त्रका दान देनेसे प्रेतात्माको महाक्रोधी काले और पीले वर्णवाले अत्यन्त भयकर यमदूत कष्ट नहीं देते हैं। मुद्रिका दान देनेसे उस महापथमे अस्त्र-शस्त्रसे युक्त दौडते हुए यमदूत दिखायी नहीं देते हैं। पात्र, आसन, कच्चा अन्न भोजन, घृत तथा यज्ञोपवीतके दानसे पददानकी पूर्णता होती है। यममार्गमे जाता हुआ भूख-प्याससे व्याकुल एव थका हुआ प्रेत भैंसके दूधका दान करनेसे निश्चित ही सुखका अनुभव करता है।

गरुडने कहा—हे विभो! मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान अपने घरमे किया जाता है, वह प्रेततक किसके द्वारा पहुँचाया जाता है?

श्रीभगवान्ने कहा—हे पक्षिन्! सर्वप्रथम वरुण दानका ग्रहण करते हैं, उसके बाद वे उस दानको मेरे हाथम दे देते हैं। मैं सूर्यदेवके हाथामे सौंप देता हूँ और सूर्यदेवसे वह प्रेत उस दानको लेकर सुखका अनुभव करता है।[1]

बुरे कर्मके प्रभावसे वशका विनाश हो जाता है और उस कुलके सभी प्राणियाको नरकमे तबतक रहना पडता है जबतक पापका क्षय नहीं हो जाता है।

इन नरकोकी सख्या बहुत है। पर इनमस इक्कीस नरक मुख्यरूपसे उल्लेख्य हैं—तामिस्र लौहशकु, महारौरव, शाल्मली रौरव कुड्वल, कालसूत्र, पूतिमृत्तिका सघात, लोहतोद, सविष, सम्प्रतापन, महानरक, कालोल, सजीवन, महापथ, अवीचि, अन्धतामिस्र, कुम्भीपाक, असिपत्रवन और पतन नामवाले हैं। घोर यातना भोगते हुए जिनके बहुत-से वर्ष बीत जाते हैं और यदि सतति नहीं है तो वे यमके दूत बन जाते हैं। यमके द्वारा भेजे गये वे दूत मरे हुए मनुष्यके लिये प्रतिदिन बन्धु-बान्धवोसे दानस्वरूप प्राप्त अन्न और जलका सेवन करते हैं। मार्गके मध्यमे जब वे भूख-प्याससे व्याकुल हो जाते हैं तो मरे हुए प्राणीका हिस्सा ही लूटकर खा-पी जाते हैं। मासके अन्तमे जो भोजन और पिण्डदान देते हैं, जब उसकी प्राप्ति उन्ह हो जाती है तो वे सभी उसको खाकर सतुष्ट हो जाते हैं। इसीसे उन्ह प्रतिदिन वर्षभर तृप्ति मिलती है।

इस प्रकार किये गये पुण्यके प्रभावसे प्रेत 'सौरिपुर'की यात्रा करता है। तदनन्तर एक वर्ष बीतनेपर वह प्रेत, यमराजके भवनके सनिकट स्थित 'बहुभीतिकर' नामक नगरमे पहुँचकर दशगात्रके पिण्डसे निर्मित हस्तमात्र परिमाणके शरीरको छोड देता है। जिस प्रकार रामको देखकर परशुरामका तेज उनके शरीरसे निकलकर राममे प्रविष्ट हो गया था, उसी प्रकार कर्मज शरीरका आश्रय लेकर वह पूर्व शरीरका परित्याग कर देता है, अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला वायुरूप वह शरीर शमीपत्रपर चढकर आश्रय लेता है। 'जिस प्रकार मनुष्य चलते हुए एक पैर भूमिपर रखकर दूसरे पैरको आगे बढानेके लिये उठाता है, जैसे तृणजलौका (तृण जाक) एक पाँवपर स्थिर होकर दूसरे पाँवको आगे बढाती है, वैसे ही जीव भी कर्मानुसार एक देहसे दूसरे देहको धारण करता है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रका परित्याग कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, उसी प्रकार जीव अपने पुराने शरीरका त्याग करके नये शरीरको धारण करता है'—

व्रजस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।
यथा तृणजलौकेव देही कर्मानुगोऽवश ॥
वासासि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि सयाति नवानि देही॥

(१८।४१-४२)

(अध्याय १८)

१-गृह्णाति वरुणो दान मम हस्ते प्रयच्छति। अह च भास्करे दद्वे भास्करात् सोऽश्नुते सुखम्॥ (१८। २७)

जीवका यमपुरीमे प्रवेश, वहाँ शुभाशुभ कर्मोका फलभोग, कर्मानुसार अन्य देहकी प्राप्ति, मनुष्य-जन्म पाकर धर्माचरण ही मुख्य कर्तव्य

श्रीभगवान्ने कहा—वायुरूप हाकर भूखसे पीडित, कर्मजन्य शरीरका आश्रय लेकर जीव यमके साथ चित्रगुप्तपुरकी ओर जाता है। चित्रगुप्तपुर बीस योजन विस्तृत है। वहाँ रहनेवाले कायस्थ[1] सभी प्राणियाके पाप-पुण्यका भली प्रकारसे सर्वेक्षण करते हैं। महादान करनेपर वहाँ गया हुआ व्यक्ति सुखका भोग करता है। चौबीस योजन विस्तृत वैवस्वतपुर है। लौह, लवण, कपास और तिलसे पूर्ण पात्रका दान करनेपर इस दानके फलस्वरूप यमपुरम निवास करनेवाले दाताके पितर लोग सतृप्त होत हैं। वहाँपर धर्मध्वज नामका प्रतीहार सदैव द्वारपर अवस्थित रहता है। सप्तधान्यका दान देनेसे धर्मध्वज प्रसन्न हो जाता हे। वहाँ जाकर प्रतीहार प्रेतके शुभाशुभका वर्णन करता है। धर्मराजका जो प्रशस्त एव सुन्दर स्वरूप है, उस स्वरूपका दर्शन

सज्जन और सुकृतियाको प्राप्त होता है। जो दुराचारी जन हैं वे अत्यन्त भयकर यमके स्वरूपका दखकर भयभीत हाकर हाहाकार करते हैं।

जिन मनुष्यान दान किया है उनके लिय वहाँपर कहीं भी भय नहीं है। आये हुए सुकृती जनको दखकर यमराज अपन आसनका इसलिय परित्याग कर देते हैं कि यह सुकृती मेरे इस मण्डलका भेदन करके ब्रह्मलोकको जायगा।[2] दानसे धर्म सुलभ हो जाता है और यममार्ग सुखावह हो जाता है। इस यमलोकका मार्ग अत्यन्त विशाल है, इसकी दुर्गमताके कारण इसका अनुगमन कोई नहीं करना चाहता। हे वत्स! बिना दान-पुण्य किये प्राणीका धर्मराजके भवनम पहुँचना सम्भव नहीं है। उस रौद्र मार्गमे महाभयकर यमके सेवक रहते हैं। एक-एक पुरके आगे एक-एक हजार सेवकोकी उपस्थिति रहती है। यातना देनेवाले यमदूत पापीको प्राप्त करके पकाते हैं। वहाँपर यमदूत उसको एक मासतक रखते हैं। उस मासक बीतते ही वह एक चौथाई शेष रह जाता है।

हे कश्यपपुत्र! जिन लोगोने और्ध्वदैहिक क्रियामे विहित दानाको नहीं किया है, वे लोग बहुत कष्ट झेलते हुए उस मार्गम चलते हैं। अत प्राणीको यथाशक्ति दान दना चाहिये। दान न देनेपर प्राणी पशुके समान यमदूताके द्वारा पाशम बाँधकर ले जाया जाता है। मनुष्य जैसा-जैसा कर्म करता है, उसी प्रकारकी योनिमे उसको जाना पडता है। वैसा ही उन योनियोम भोग भोगता हुआ वह सभी प्रकारके लाकोम विचरण करता है। जब मनुष्य-योनि प्राप्त होता है, तब भी लौकिक सुखाको अनित्य जानकर प्राणीको धर्माचरण करना चाहिये।

कृमि भस्म अथवा विष्ठा ही शरीरकी परिणति है। जो मनुष्य-शरीर प्राप्त करके भी धर्माचरण नहीं करता वह हाथम दीपक रखता हुआ भी महाभयकर अन्धकूपमें गिरता है। मनुष्य-जन्म प्राणीको बहुत बड पुण्यसे प्राप्त होता है। जो जीव इस योनिको पाकर धर्मका आचरण करता है उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। धर्मको व्यर्थ माननवाला प्राणी दु खपूर्वक जन्म-मरण प्राप्त करता है। हे पक्षिन्! सैकडा बार विभिन्न योनियोंमें जन्म लेनेके बाद प्राणीको मनुष्य-योनि प्राप्त होती है, उसम भी द्विज हाना अत्यन्त दुर्लभ है। जो व्यक्ति

१-कायस्थ नामकी एक देवयोनि विशेष है।

२ प्रमं सुकृतिनं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति सूर्यज । एष मे मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥ (१९।०)

द्विज होकर धर्मका पालन करता है और विभिन्न व्रतोका आदर एव श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करता है, वह उस धर्मकी ही कृपासे अमरत्व हस्तगत कर लेता है।[1]

(अध्याय १९)

प्रेतबाधाका स्वरूप तथा मुक्तिके उपाय

श्रीगरुडने कहा—हे प्रभो। प्रेतयोनिम जो कोई भी प्राणी जाते हैं, वे कहाँ वास करते हैं? प्रेतलोकसे निकलकर वे कैसे और किस स्थानमे चले जाते हैं? चौरासी लाख योनियोंसे परिव्याप्त, यम तथा हजारा भूतोसे रक्षित होनेपर भी प्राणी नरकसे निकलकर कैसे इस ससारम विचरण करते हैं? इसे आप बतानेकी कृपा कर।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज। जहाँ प्रेतगण निवास करते हैं, उसको तुम सुनो। छलसे पराये धन और परायी स्त्रीका अपहरण तथा द्रोहसे मनुष्य निशाचर यानिका प्राप्त होते हं। जो लोग अपने पुत्रके हितचिन्तनमे ही अनुरक्त रहते हैं तथा सभी प्रकारका पाप करते हैं। वे शरीररहित होकर भूख-प्यासकी अथाह पीडाको सहन करते हुए यत्र-तत्र भटकते रहते हैं। वे प्रेत चोरके समान उस महापथके लिये पितृभागमे दिये गये जलका अपहरण करते हैं। तदनन्तर पुन अपने घरमे आकर वे मित्रके रूपमे प्रविष्ट हो जाते हैं और वहींपर रहते हुए स्वय राग-शोक आदिकी पीडासे ग्रसित होकर सब कुछ देखते रहते हैं। वे एक दिनका अन्तराल देकर आनेवाले ज्वरका रूप धारण करके अपने सम्बन्धियोका पीडा पहुँचाते हैं अथवा तिजरिया ज्वर बनकर और शीत-वातादिसे उन्हे कष्ट देते हैं। उच्छिष्ट अर्थात् जूठे अपवित्र स्थानामे निवास करते हुए उन प्रेताके द्वारा सदैव अभिलक्षित प्राणियाको कष्ट देनेके लिये शिरोवेदना, विपूचिका तथा नाना प्रकारके अन्य बहुत-से रोगाका रूप धारण कर लिया जाता है। इस प्रकार वे दुष्कर्मी प्रेत नाना दोपाम प्रवृत्त होत हैं।

गरुडने कहा—हे प्रभो। वे प्रेत किस रूपसे किसका क्या करते हैं? किस विधिसे उनकी जानकारी प्राप्त की जा सकती है? क्याकि वे न कुछ कहते हैं, न बोलते हैं? हे हृपीकेश। यदि आप मरा कल्याण चाहते हो तो मेरे मनके इस व्यामोहको दूर कर दे। इस कलिकालम प्राय बहुत-से लोग प्रेतयोनिको ही प्राप्त होते हैं।

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड। प्रेत होकर प्राणी अपने ही कुलको पीडित करता है, वह दूसरे कुलके व्यक्तिको तो कोई आपराधिक छिद्र प्राप्त होनेपर ही पीडा देता है। जीते हुए तो वह प्रेमीकी तरह दिखायी देता है, किंतु मृत्यु होनेपर वही दुष्ट बन जाता है। जो भगवान् श्रीरुद्रके मन्त्रका जप करता है, धर्ममे अनुरक्त रहता है, देवता और अतिथिकी पूजा करता है, सत्य तथा प्रिय बोलनेवाला है, उसको प्रेत पीडा नहीं दे पाते हैं। जो व्यक्ति सभी प्रकारकी धार्मिक क्रियाआसे परिभ्रष्ट हा गया है, नास्तिक है, धर्मकी निन्दा करनेवाला है और सदैव असत्य बोलता है, उसीको प्रत कष्ट पहुँचात हैं[2]। हे तार्क्ष्य। कलिकालम अपवित्र क्रियाओको करनेवाला प्राणी प्रेतयोनिको प्राप्त हाता है। हे काश्यप। इस ससारम उत्पन्न एक ही माता-पितासे पैदा हुए बहुत-से सतानामें एक सुखका उपभोग करता है, एक पाप कर्मम अनुरक्त रहता है, एक सतानवान् होता है, एक प्रेतसे पीडित रहता है ओर एक पुत्र धनधान्यसे सम्पन्न रहता है, एकका पुत्र मर जाता है, एकके मात्र पुत्रियाँ ही

१-यथा यथा कृत कर्म तां ता योनि व्रजेन्नर । तत्तथैव च भुञ्जाना विचरेत् सर्वलोकग ॥
अशाश्वत परिज्ञाय सर्वलोकात्तर सुखम् । यदा भवति मानुष्य तदा धर्म समाचरेत्॥
कृमयो भस्म विष्ठा वा देहाना प्रकृति सदा। अन्धकूपे महारौद्र दीपहस्त पतेत्तु वै॥
महापुण्यप्रभावेण मानुष्य जन्म लभ्यते। यस्तत् प्राप्य चरेद्धर्म स गच्छेत् परमा गतिम्॥
अपि जानन् वृथा धर्मं दु खमायाति याति च॥
जातीशतेन लभते किल मानुपत्व तत्रापि दुर्लभतर खग भो द्विजत्वम्।
यस्तत्र पालयति लालयति व्रतानि तस्यामृत भवति हस्तगत प्रसादात्॥ (१९।१६—२१)

२-रुद्रजापी धर्मरतो देवतातिथिपूजक । सत्यवाक् प्रियवादी च न प्रेतै स हि पीड्यते॥
सर्वक्रियापरिभ्रष्टो नास्तिको धर्मनिन्दक । असत्यवादनिरतो नर प्रेतै स पीड्यते॥ (२०।१६-१७)

होती हैं। प्रेतदोपके कारण बन्धु-बान्धवोके साथ विरोध होता है। प्रेतयोनिके प्रभावसे मनुष्यको सतान नहीं होती हे। यदि सतान उत्पन्न भी होती है तो वह मर जाती है। प्रेतबाधाके कारण तो व्यक्ति पशुहीन और धनहीन हो जाता है। उसके कुप्रभावसे उसकी प्रकृतिम परिवर्तन आ जाता ह, वह अपन बन्धु-बान्धवोसे शत्रुता रखने लगता है। अचानक प्राणीको जो दु ख प्राप्त होता है, वह प्रेतबाधाके कारण होता है। नास्तिकता, जीवन-वृत्तिकी समाप्ति, अत्यन्त लोभ तथा प्रतिदिन होनेवाले कलह—यह प्रेतसे पैदा हानेवाली पीडा है। जो पुरुष माता-पिताकी हत्या करता हे, जो दवता और ब्राह्मणोकी निन्दा करता है, उसे हत्याका दोप लगता है। यह पाडा प्रेतसे पैदा होती है। नित्य-कर्मसे दूर, जप-होमसे रहित और पराये धनका अपहरण करनेवाला मनुष्य दु खी रहता हे, इन दु खाका कारण भी प्रेतबाधा ही है। अच्छी वर्षा होनेपर भी कृपिका नाश हाता है, व्यवहार नष्ट हो जाता है समाजम कलह उत्पन्न होता है, ये सभी कष्ट प्रतबाधासे ही होते हैं। हे पक्षिराज! मार्गम चलत हुए पथिकको जा बवडरसे पीडा होती है, उसको भी तुम्हे प्रेतबाधा समझना चाहिये। यह बात मैं सत्य ही कह रहा हूँ।

प्राणी जो नीच जातिसे सम्बन्ध रखता है, हीन कर्म करता हे और अधर्ममे नित्य अनुरक्त रहता है, वह प्रेतसे उत्पन्न पीडा है। व्यसनासे द्रव्यका नाश हा जाता है, प्राप्तव्यका विनाश हो जाता है। चोर अग्नि और राजासे जो हानि हाता है यह प्रतसम्भूत पीडा है। शरीरम महाभयकर रागकी उत्पत्ति बालकाकी पीडा तथा पत्नीका पीडित होना—य सब प्रतबाधाजनित हें। वेद स्मृति-पुराण एव धर्मशास्त्रक नियमाका पालन करनवाल परिवारम जन्म हानेपर भा धर्मके प्रति प्राणीक अन्त करणम प्रेमका न हाना प्रतजनित बाधा ही है। जा मनुष्य प्रत्यक्ष अथवा पराक्ष रूपस दवता तीर्थ और ब्राह्मणकी निन्दा करता है, यह भी प्रेतात्पन्न पीडा है। अपनी जाविकाका अपहरण प्रतिष्ठा तथा वशका विनाश भी प्रेतबाधाक अतिरिक्त अन्य प्रकारस सम्भव नहीं है। स्त्रियाका गर्भ विनष्ट हा जाता है जिनम रजादर्शन नहीं हाता और बालकाकी मृत्यु हा जाती है वहाँ प्रेतजन्य बाधा ही समझनी चाहिये। जो मनुष्य शुद्ध भावसे सावत्सरादिक श्राद्ध नहीं करता है, वह भी प्रेतबाधा है। तीर्थमे जाकर दूसरेमे आसक्त हुआ प्राणी जब अपने सत्कर्मका परित्याग कर दे तथा धर्मकार्यम स्वार्जित धनका उपयोग न करे तो उसको भी प्रेतजन्य पीडा ही समझना चाहिये। भोजन करनेके समय कोपयुक्त पति-पत्नीके बीच कलह, दूसरासे शत्रुता रखनेवाली बुद्धि—यह सब प्रेत-सम्भूत पीडा है। जहाँ पुष्प और फल नहीं दिखायी देते तथा पत्नीका विरह होता है। वहाँ भी प्रेतोत्पन्न पीडा है।

जिन लोगोमे सदैव उच्चाटनके अत्यधिक चिह्न दिखायी देते हैं, अपने क्षेत्रम उसका तेज निष्फल हो जाता है तो उसे प्रेतजनित बाधा ही माननी चाहिये। जो व्यक्ति सगोत्रीका विनाशक है, जो अपने ही पुत्रको शत्रुके समान मार डालता है, जिसके अन्त करणमे प्रेम और सुखकी अनुभूतियाका अभाव रहता है, वह दोप उस प्राणीमें प्रेतबाधाके कारण होता है। पिताके आदेशकी अवहेलना, अपनी पत्नीके साथ रहकर भी सुखोपभोग न कर पाना व्यग्रता और क्रूर बुद्धि भी प्रेतजन्य बाधाके कारण होती है।

हे तार्क्ष्य! निषिद्ध कर्म दुष्ट-ससर्ग तथा वृषोत्सर्गके न होने और अविधिपूर्वक की गयी और्ध्वदैहिक क्रियासे प्रेत होता है। अकालमृत्यु या दाह-सस्कारसे वञ्चित होनेपर प्रेतयानि प्राप्त होती है, जिससे प्राणीको दु ख झेलना पडता हे। हे पक्षिराज! ऐसा जानकर मनुष्य प्रेत-मुक्तिका सम्यक् आचरण करे। जो व्यक्ति प्रेत योनियाको नहीं मानता है, वह स्वय प्रेतयानिको प्राप्त होता है। जिसके वशम प्रेत-दोप रहता है, उसके लिये इस ससारमे सुख नहीं है। प्रेतबाधा होनेपर मनुष्यकी मति, प्रीति, रति लक्ष्मी और बुद्धि—इन पाँचोका विनाश होता है। तीसरी या पाँचवीं पीढीमे प्रेतबाधाग्रस्त कुलका विनाश हो जाता है। ऐसे वशका प्राणी जन्म-जन्मान्तर दरिद्र, निर्धन और पापकर्ममें अनुरक्त रहता है। विकृत मुख तथा नेत्रवाले क्रुद्ध स्वभाववाले अपने गोत्र पुत्र-पुत्रा पिता भाई भौजाई अथवा वहूको नहीं माननेवाले लाग भी विधिवश प्रेत-शरीर धारण कर सद्गतिसे रहित हो 'बडा कष्ट है', यह चिल्लात हुए अपने पापको स्मरण करत हैं। (अध्याय २०)

प्रेतबाधाजन्य दीखनेवाले स्वप्न, उनके निराकरणके उपाय तथा नारायणबलिका विधान

श्रीगरुडने कहा—हे भगवन्! प्रेत किस प्रकारसे मुक्त होते हैं? जिनकी मुक्ति होनेपर मनुष्योंको प्रेतजन्य पीडा पुन नहीं होती। हे देव! जिन लक्षणोंसे युक्त बाधाको आपने प्रेतजन्य कहा है, उनकी मुक्ति कब सम्भव है और क्या किया जाय कि प्राणीको प्रेतत्वकी प्राप्ति न हो सके? प्रेतत्व कितने वर्षोंका होता है? चिरकालसे प्रेतयोनिको भोग रहा प्राणी उससे किस प्रकार मुक्त हो सकता है? यह सब आप बतलानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! प्रेत जिस प्रकार प्रेतयोनिसे मुक्त होते हैं, उसे मैं बतला रहा हूँ। जब मनुष्य यह जान ले कि प्रेत मुझको कष्ट दे रहा है तो ज्योतिर्विदोंसे इस विषयमें निवेदन करे। प्रेतग्रस्त प्राणीको बड़े ही अद्भुत स्वप्न दिखायी देते हैं। जब तीर्थ-स्नानकी बुद्धि होती है, चित्त धर्मपरायण हो जाता है और धार्मिक कृत्योंको करनेकी मनुष्यकी प्रवृत्ति होती है तब प्रेतबाधा उपस्थित होती है एवं उन पुण्य कार्योंको नष्ट करनेके लिये चित्त-भंग कर देती है। कल्याणकारी कार्योंमें पग-पगपर बहुत-से विघ्न होते हैं। प्रेत बार-बार अकल्याणकारी मार्गमें प्रवृत्त होनेके लिये प्रेरणा देते हैं। शुभकर्मोंमें प्रवृत्तिका उच्चाटन और क्रूरता—यह सब प्रेतके द्वारा किया जाता है। जब व्यक्ति समस्त विघ्नोंको विधिवत् दूर करके मुक्ति प्राप्त करनेके लिये सम्यक् उपाय करता है तो उसका वह कर्म हितकारी होता है और उसके प्रभावसे शाश्वत प्रेतनिवृत्ति हो जाती है।

हे पक्षिन्! दान देना अत्यन्त श्रेयस्कर है, दान देनेसे प्रेत मुक्त हो जाता है। जिसके उद्देश्यसे दान दिया जाता है उसको तथा स्वयंको वह दान तृप्त करता है। हे तार्क्ष्य! यह सत्य है कि जो दान देता है वही उसका उपभोग करता है। दानदाता दानसे अपना कल्याण करता है और ऐसा करनेसे प्रेतको भी चिरकालिक सतृप्ति प्राप्त होती है। सतृप्त हुए वे प्रेत सदैव अपने बन्धु-बान्धवोंका कल्याण चाहते हैं। यदि विजातीय दुष्ट प्रेत उसके वंशको पीडित करते हैं तो सतृप्त हुए सगोत्री प्रेत अनुग्रहपूर्वक उन्हें रोक देते हैं। उसके बाद समय आनेपर अपने पुत्रसे प्राप्त हुए पिण्डादिक दानके फलसे वे मुक्त हो जाते हैं। हे पक्षिराज! यथोचित दानादिके फलसे सतृप्त प्रेत बन्धु-बान्धवोंको धन्य-धान्यसे समृद्धि प्रदान करते हैं।[1]

जो व्यक्ति स्वप्नमें प्रेत-दर्शन, भाषण, चेष्टा और पीडा आदिको देखकर भी श्राद्धादिद्वारा उनकी मुक्तिका उपाय नहीं करता, वह प्रेतोंके द्वारा दिये गये शापसे संलिप्त होता है। ऐसा व्यक्ति जन्म-जन्मान्तरतक नि सन्तान, पशुहीन, दरिद्र, रोगी, जीविकाके साधनसे रहित और निम्नकुलमें उत्पन्न होता है। ऐसा वे प्रेत कहते हैं और पुन यमलोक जाकर पापकर्मोंका भोगद्वारा नाश हो जानेके अनन्तर अपने समयसे प्रेतत्वकी मुक्ति हो जाती है।

गरुडने कहा—हे देवेश्वर! यदि किसी प्रेतका नाम और गोत्र न ज्ञात हो सके, उसके विषयमें विश्वास न हो रहा हो, कुछ ज्योतिषी पीडाको प्रेतजन्य कहते हों, कभी भी मनुष्यको प्रेत स्वप्नमें न दिखायी दे, उसकी कोई चेष्टा न होती हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये? इस उपायको मुझे बतायें।

श्रीभगवान्ने कहा—हे खगराज! पृथ्वीके देवता ब्राह्मण जो कुछ भी कहते हैं, उस वचनको हृदयसे सत्य समझकर भक्ति-भावपूर्वक पितृभक्तिनिष्ठ हो पुरश्चरणपूर्वक नारायण-बलि करके जप, होम तथा दानसे देह-शोधन करना चाहिये। उससे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। यदि वह प्राणी भूत, प्रेत, पिशाच अथवा अन्य किसीसे पीडित होता है तो उसको अपने पितरोंके लिये नारायण-बलि करनी चाहिये। ऐसा कर वह सभी प्रकारकी पीडाओंसे मुक्त हो जाता है। यह मेरा सत्य वचन है। अत सभी

१-स भवेत् तेन मुक्तस्तु दत्त श्रेयस्कर परम्। स्वय तृप्यति भो पक्षिन् यस्योद्देश्येन दीयते॥
शृणु सत्यमिद तार्क्ष्य यद्ददाति भुनक्ति स। आत्मान श्रेयसा युञ्ज्यात् प्रेतस्तृप्ति चिर व्रजेत्॥
ते तृप्ता शुभमिच्छन्ति निजबन्धुषु सर्वदा। अज्ञातयस्तु ये दुष्टा पीडयन्ति स्ववंशजान्॥
निवारयन्ति तृप्तास्ते जायमानानुकम्पका। पश्चात् त मुक्तिमायान्ति काले प्राप्ते स्वपुत्रत॥ (२१। १२—१५)

प्रयत्नोंसे पितृभक्तिपरायण होना चाहिये।

नवे या दसवे वर्ष अपने पितरोके निमित्त प्राणीको दस हजार गायत्री-मन्त्राका जप करके दशाश होम करना चाहिये। नारायण-बलि करके वृषोत्सर्गादि क्रियाएँ करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके उपद्रवोसे रहित हो जाता है, समस्त सुखोका उपभोग करता है तथा उत्तम लोकको प्राप्त करता है और उसे जाति-प्राधान्य प्राप्त होता है। इस ससारमे माता-पिताके समान श्रेष्ठ अन्य कोई देवता नहीं है। अत सदैव सम्यक् प्रकारसे अपने माता-पिताकी पूजा करनी चाहिये। हितकर बातोका उपदेष्टा होनेसे पिता प्रत्यक्ष देवता है। ससारमे जो अन्य देवता हैं वे शरीरधारी नहीं हैं—

पितृमातृसम लोके नास्त्यन्यद्दैवत परम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजयेत् पितरौ सदा॥
हितानामुपदेष्टा हि प्रत्यक्ष दैवत पिता।
अन्या या देवता लोके न देहप्रभवो हि ता ॥

(२१।२८-२९)

प्राणियाका शरीर ही स्वर्ग एव मोक्षका एकमात्र साधन है। ऐसा शरीर जिसके द्वारा प्राप्त हुआ है, उससे बढकर पूज्य कौन है?

हे पक्षिन्। ऐसा विचार करके मनुष्य जो-जो दान देता है उसका उपभोग वह स्वय करता है, ऐसा वेदविद् विद्वानाका कथन है। पुन्नामका जो नरक है उससे पिताकी रक्षा पुत्र करता है। उसी कारणसे इस लोक और परलोकमें उसे पुत्र कहा जाता है—

पुन्नामनरकाद्यस्मात् पितर त्रायते सुत ।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्त इह चापि परत्र च॥

(२१।३२)

हे खगराज। किसीके माता-पिताकी अकालमृत्यु हो जाय तो उसे व्रत, तीर्थ, वैवाहिक माङ्गलिक कार्य सवत्सरपर्यन्त नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य प्रेत-लक्षण बतानेवाले इस स्वप्नाध्यायका अध्ययन अथवा श्रवण करता है, वह प्रेतका एक चिह्न नहीं देखता है। (अध्याय २१)

प्रेतयोनि दिलानेवाले निन्दित कर्म, पञ्चप्रेतोपाख्यान तथा प्रेतत्वप्राप्ति न करानेवाले श्रेष्ठ कर्म

श्रीगरुडने कहा—हे प्रभो। प्रेतोकी उत्पत्ति कैसे होती है? वे कैसे चलते हैं? उनका कैसा रूप और कैसा भोजन होता है? वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं और उनका कहाँ निवास होता है? हे प्रसन्नचित्त देवेश। कृपा कर मरे इन प्रश्नोका समाधान कर।

श्रीभगवान्ने कहा—हे पक्षिराज। सुनो। जो पूर्वजन्मसचित कर्मके अधीन रहकर पापकर्ममे अनुरक्त रहते हैं, व मृत्युके पश्चात् प्रेतयोनिमे जन्म लेते हैं। जो मनुष्य बावली कूप, जलाशय उद्यान दवालय प्याऊ, घर आम्रादिक फलदार वृक्ष रसोईघर पितृ-पितामहके धर्मको बेच देता है वह पापका भागी हाता है। एसा व्यक्ति मरनेके बाद प्रलयकालतक प्रेतयोनिमे रहता है। जो लोग लोभवश गोचारणकी भूमि ग्रामकी सीमा जलाशय उपवन और गुफाभागको जात लेते हैं, वे प्रेत होते हैं।[1] पापियाकी मृत्यु चण्डाल, जल, सर्पदश, ब्राह्मण-शाप विद्युत्-निपात, अग्नि, दन्त-प्रहार तथा पशुके आक्रमणसे होती है। जो लोग फाँसी लगानेसे विषद्वारा और शस्त्रसे मरते हैं, जो आत्मघाती हैं, जिनकी विषूचिका (हैजा) आदि रागोसे मृत्यु होती है जो क्षयादिक महारोग, पापजन्य रोग और चोर-डकैतोके द्वारा मारे जात हैं, जिनका मरनेपर सस्कार नहीं हुआ है, विहित आचारसे रहित वृषोत्सर्गादिसे रहित और मासिक पिण्डदान जिनका लुप्त हो गया है जिस मर हुए प्राणीके लिय तृण काष्ठ हविष्य तथा अग्नि शूद्र लाता है, पर्वता अथवा दीवालके ढहनेसे जिनकी मृत्यु हा जाती है निन्दित दोषासे जिनकी मृत्यु होती है जिनकी मृत्यु भूमिमे नहीं होती जिनकी मृत्यु अन्तरिक्षमे होती है,

१-पापकर्मरता ये वै पूर्वकर्मवशानुगा । जायन्ते त मृता प्रेतास्ताञ्शृणुष्व वदाम्यहम्॥
वापीकूपतडागाश्च आराम सुरमन्दिरम्। प्रपा सद्म सुवृक्षाश्च तथा भोजनशालिका ॥
पितृपैतामह धर्मं विक्रीणाति स पापभाक्। मृत प्रेतत्वमाप्नोति यावन्भूतसम्प्लवम्॥
गोचर ग्रामसीमा च तडागारामगह्वरम्। कर्षयन्ति च ये लोभान् प्रेतास्ते वै भवन्ति हि॥ (२२।३—६)

जो भगवान् विष्णुका स्मरण न करते हुए मर जाते हैं, जिनकी मृत्यु सूतक और श्वानादि निकृष्ट योनियोके ससर्गमे होती है, व प्रेतयोनिमे जाते हैं।[1] इसी प्रकारके अन्य कारणोसे जो प्राणी दुर्मृत्युको प्राप्त होते हैं उनको प्रेतयोनिमे मरुस्थल प्रदेशमे भटकना पडता है।

हे तार्क्ष्य। जो व्यक्ति निर्दोष माता, बहन, पत्नी, पुत्रवधू तथा कन्याका परित्याग करता है, वह निश्चित ही प्रेत होता है। जो भ्रातृद्रोही, ब्रह्मघाती, गोहन्ता, मद्यपी, गुरुपत्नीके साथ सहवास करनेवाला, स्वर्ण और रेशमका चोर है, वह प्रेतत्वको प्राप्त होता है। घरमे रखी हुई धरोहरका अपहारक, मित्रद्रोही, परस्त्रीरत, विश्वासघाती एव क्रूर व्यक्ति अवश्य प्रेतयोनिमे जन्म लेता है। जो वशपरम्परागत धर्मपथका परित्याग करके दूसरे धर्मको स्वीकार करनेवाला है, विद्या और सदाचारसे जो विहीन है, वह भी निस्सन्देह प्रेत ही होता है।[2]

हे सुव्रत। इस विषयमे एक प्राचीन इतिहास है, जो पितामह भीष्म और युधिष्ठिरके सवादमे कहा गया था। मैं उसीको कहता हूँ, उसे सुन करके मनुष्य सुख प्राप्त करता है।

युधिष्ठिरने कहा—हे पितामह। प्राणी किस कर्मफलसे प्रेत होता है? उसको कैसे और किस उपायसे मुक्ति होती है? इस बातको आप मुझे बतानेकी कृपा कर, जिसको सुन करके मैं पुन भ्रमित न हो सकूँ।

भीष्मने कहा—हे वत्स। मनुष्यको जैसे प्रेतयोनि प्राप्त होती है, वह जैसे उस योनिसे मुक्त होता है, जैसे वह दुस्तर घोर नरकमे जाता है, नरकम जाकर दु ख झेल रहे प्राणियाका जिसका नाम, गुण, कीतन और श्रवण करनस मुक्ति प्राप्त होती है, वह सब मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

हे पुत्र। ऐसा सुना जाता है कि प्राचीनकालम एक ख्यातिलब्ध सततक नामक सुव्रत तपस्वी ब्राह्मण वनमे रहता था। दयावान्, योगयुक्त, स्वाध्यायरत, अग्निहोत्री उस द्विजश्रेष्ठका समय सदैव यज्ञादिक धार्मिक कृत्यामे बीतता था। परलोकका भय उसे बहुत था, अत ब्रह्मचर्य, सत्य, शौचका पालन करते हुए और निर्मलचित्त होकर वह तपस्याम सलग्न रहता था। श्रद्धापूर्वक गुरुके उपदेश, अतिथि-पूजन तथा आत्मतत्त्वके चिन्तनम अनुरक्त वह तपस्वी सासारिक द्वन्द्वोसे रहित था। इस ससारको जीतनेकी इच्छासे योगाभ्यासमे सदैव अपनेका वह समर्पित रखता था। इस प्रकारका आचरण करते हुए उस जितेन्द्रिय मुमुक्षु ब्राह्मणको वनम ही बहुत-से वर्ष बीत गये। एक दिन तपस्वी सततकके मनम तीर्थाटनकी इच्छा उत्पन्न हुई। उसने मनमे यह सकल्प किया कि अब मैं तीर्थोंके पवित्र जलसे इस शरीरको पवित्र बनाऊँगा, अनन्तर वह स्नान तथा जप-नमस्कारादि कृत्योको सम्पन्न कर सूर्योदय होनेपर वह तीर्थ-यात्रापर निकल पडा।

चलते-चलते वह महातपस्वी ब्राह्मण मार्ग भूल गया। भ्रान्त मार्गमे चलते हुए उसे अत्यन्त भयानक पाँच प्रेत दिखायी पडे। उस निर्जन वनमे विकृत शरीरवाले भयकर प्रेताको देखकर ब्राह्मणका हृदय कुछ भयभीत हो उठा। अत वहींपर खडे होकर वह विस्फारित नेत्रोसे उसी ओर देखता रहा। तत्पश्चात् ब्राह्मणने अपने भयको दूरकर धैर्यका सहारा लिया और मधुर भाषाम पूछा—'हे विकृत मुखवालो। तुम सब कौन हो? कैसा पापकर्म तुम लोगाने किया है, जिसक फलस्वरूप तुम्हे यह विकृति प्राप्त हुई है? तुम सब कहाँ जानेका निश्चय कर रहे हो?'

प्रेतराजने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ। हम सभीने अपने-अपने कर्मके कारण प्रेतयानिको प्राप्त किया है। परद्रोहम रत होनेके कारण हम पाप और मृत्युके वशमे हुए। नित्य

१-असस्कृतप्रमीता ये विहिताचारवर्जिता ॥
वृषोत्सर्गादिलुप्ताश्च लुप्तमासिकपिण्डका । यस्यानयति शूद्रोऽग्नि तृणकाष्ठहवींषि स ॥
पतनात् पर्वताना च भित्तिपातन य मृता । रजस्वलादिदोषैश्च न च भूमौ मृताश्च ये॥
अन्तरिक्षे मृता य च विष्णुस्मरणवर्जिता । सूतके श्वादिसम्पर्के प्रेतभावा इह क्षितौ॥ (२२। ९—१२)

२-मातर भगिनीं भार्यां स्नुषा दुहितर तथा । अदृष्टदोषां त्यजति स प्रेता जायते ध्रुवम्॥
भ्रातृध्रुग्ब्रह्महा गोघ्न सुरापो गुरुतल्पग । हेमक्षौमहरस्तार्क्ष्य स वै प्रेतत्वमाप्नुयात्॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक् परदाररतस्तथा । विश्वासघाती क्रूरस्तु स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥
कुलमार्गांश्च सन्त्यज्य परधर्मरतस्तथा । विद्यावृत्तविहीनश्च स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥ (२२। १४—१७)

भूख-प्याससे पीडित रहकर यह प्रेत-जीवन बिता रहे हैं। हम लोगोकी वाणी उसी पापसे विनष्ट हुई है, शरीर कान्तिहीन हो गया है, हम सज्ञाहीन और विकृत चित्तवाले हो गये हैं। हे तात! हम दिशाओ तथा विदिशाओका कोई ज्ञान नहीं है। पाप-कर्मसे पिशाच बने हुए हम मूढ प्राणी कहाँ जा रहे हैं, इसका भी ज्ञान हमे नहीं है। हम लोगोके न माता हैं और न पिता हैं। अपने कर्मोंके फलस्वरूप, अत्यन्त दु खदायी यह प्रेतयोनि हम सभीको प्राप्त हुई है। हे ब्रह्मन्! आपके दर्शनसे हम लोग अत्यधिक प्रसन्न हैं। आप मुहूर्तभर रुके। आपसे हम अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त प्रारम्भसे कहेगे। उनमसे एक प्रेतने कहा—

हे विप्रदेव! मेरा नाम पर्युषित है, यह दूसरा सूचीमुख है तीसरा शीघ्रग, चौथा रोधक और पाँचवाँ लेखक है।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेत! प्राणीको कर्मफलानुसार प्रेतयोनि मिलती है यह तो ठीक बात है, पर अपने जो नाम तुम बताते हो, उसके प्राप्त होनेका क्या कारण है?

प्रेतराजने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने सदैव सुस्वादु भोजन किया और ब्राह्मणको बासी अन्न दिया है, इस कारण मेरा नाम पर्युषित (बासी) है। भूखे ब्राह्मणकी याचनाको सुनकर यह शीघ्र ही वहाँसे हट जाता था, इसलिये यह शीघ्रग नामका प्रेत हुआ। अन्नादिकी आकाक्षासे इसने बहुत-से ब्राह्मणोको पीडित किया था, इस कारण यह सूचीमुख नामक प्रेत हो गया। इसने पोष्यवर्ग एव ब्राह्मणोको दिये बिना अकेले ही मिष्टान्न खाया था, इसलिये इसको रोधक कहा गया है। यह कुछ माँगनेपर मौन धारण करके पृथ्वी कुरेदने लगता था अत उस कर्मफलके अनुसार यह लेखक कहलाया।

हे ब्राह्मण! कर्मभावसे ही प्रेतत्व और इस प्रकारके नामकी प्राप्ति हुई है। यह लेखक मेषमुख रोधक पर्वताकार मुखवाला शीघ्रग पशुकी तरह मुखवाला और सूचक सुईके समान मुखवाला है इसके बढगे रूपको देखें। हे नाथ! हम अत्यन्त दु खित हैं। मायावी रूप बनाकर हम लोग पृथ्वीपर विचरण करते हैं। हम सभी अपने ही कर्मसे विकृत आकारवाले लम्बे ओठवाले विकृत मुखवाले और बृहद् शरीरवाले तथा भयावह हो गये हैं। हे विप्र! यह सब मैंने आपसे प्रेतत्वका कारण बता दिया है। आपके दर्शनसे हम सभीमे ज्ञान उत्पन्न हो गया है आपकी जिस बातको सुननेकी अभिरुचि हो, वह आप पूछे, उसे मैं आपको बतानेके लिये तैयार हूँ।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतराज! पृथ्वीपर जो भी जीव जीते हैं, वे सब आहारसे ही जीवित रहते हैं। यथार्थरूपमें तुम लोगोके भी आहारको सुननेकी मेरी इच्छा है।

प्रेतोने कहा—हे द्विजराज! यदि आपकी श्रद्धा हमारे आहारको जाननेकी है तो सावधान हो करके आप सुने।

हम सभीका आहार समस्त प्राणियोके लिये निन्दनीय है, जिसको सुनकर आप बार-बार निन्दा करेगे। प्राणियोके शरीरसे निकले हुए कफ, मूत्र और पुरीषादि मल एव अन्य प्रकारसे उच्छिष्ट भोजन प्रेतोका आहार है। जो घर अपवित्र रहते है, जिनकी घरेलू सामग्रियाँ इधर-उधर बिखरी रहती हैं, जिन घरोमे प्रसूतादिके कारण मलिनता बनी रहती है, वहींपर प्रेत भोजन करते हैं। जिस घरमे सत्य, शौच और सयम नहीं होता, पतित एव दस्युजनोका साथ है, उसी घरमे प्रेत भोजन करते हैं। जो घर भूतादिक बलि, देवमन्त्रोच्चार, अग्निहोत्र, स्वाध्याय तथा व्रतपालनसे हीन है, प्रेत उसमे ही भोजन करते हैं। जो घर लज्जा एव मर्यादासे रहित है, जिसका स्वामी स्त्रीसे जीत लिया गया है, जहाँ माता-पिता और गुरुजनोकी पूजा नहीं होती है, प्रेत वहाँ ही भोजन करते हैं। जिस घरमे नित्य लोभ, क्रोध निद्रा, शोक, भय, मद, आलस्य तथा कलह—ये सब दुर्गुण विद्यमान रहते हैं, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं। हे दृढव्रत तपोनिधि विप्रदेव! हम सब इस प्रेतभावसे दु खित हैं, जिससे प्रेतयोनि प्राप्त न हो वह हमे बताये। प्राणीकी नित्य मृत्यु हो वह अच्छा है पर उसे कभी भी प्रेतयोनि न प्राप्त हो।

ब्राह्मणने कहा—नित्य उपवास रखकर कृच्छ्र एव चान्द्रायणव्रतमे लगा हुआ तथा अनेक प्रकारसे अन्य व्रतोंमें पवित्र मनुष्य प्रेत नहीं होता है। जो व्यक्ति जागरणसहित एकादशीव्रत करता है और अन्य सत्कर्मोंसे अपनेको पवित्र रखता है वह प्रेत नहीं होता है। जो प्राणी अश्वमेधादिक यज्ञोको सम्पन्न करके नाना प्रकारके दान देता है तथा क्रीडा उद्यान वापी एव जलाशयका निर्माता है, ब्राह्मणकी कन्याओका यथाशक्ति विवाह कराता है विद्यादान और

अशरणको शरण देनेवाला है, वह प्रेत नहीं होता है।[१]

खाये हुए शूद्रान्नके जठरस्थित रहते हुए जिसकी मृत्यु हा जाती है या जो दुर्मृत्युसे मरता है, वह प्रेत होता है। जो अयाज्यका याजक तथा मद्यपीका साथ करके-मदिरा पीनेवाली स्त्रीका ससर्ग करता है और अज्ञानवश भी मास खाता है, वह प्रेत होता है। जो देवता, ब्राह्मण ओर गुरुके धनका अपहारक है, जो धन लेकर अपनी कन्या देता है, वह प्रेत होता है। जो माता, भगिनी, स्त्री, पुत्रवधू तथा पुत्रीका बिना कोई दोष देख परित्याग कर देता है, उसे भी प्रेत होना पडता है। जो विश्वासपर रखी हुई परायी धरोहरका अपहर्ता है, मित्रद्रोही है सदैव परायी स्त्रीमे अनुरक्त रहता है, विश्वासघाती और कपटी है, वह प्रेतयोनिमे जाता है, जो प्राणी भ्रातृद्रोही, ब्रह्महन्ता, गोहन्ता, मद्यपी, गुरुपत्नीगामी, इनका ससर्गी और वशपरम्पराका परित्याग करके सदा झूठ बोलता रहता है, स्वर्णकी चोरी तथा भूमिका अपहरण करता है, वह प्रेत होता है।[२]

भीष्मने कहा—हे युधिष्ठर! इस प्रकार ब्राह्मण सतप्तक ऐसा कह ही रहा था कि आकाशमे दुन्दुभि बजने लगी। देवाने उस ब्राह्मणके ऊपर फूलाकी वर्षा की। प्रेतोके लिये वहाँ पाँच देवविमान आ गये। विधिवत् उस ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर वे सभी प्रेत दिव्य विमानामे बैठकर स्वर्ग चले गये। इस प्रकार ब्राह्मणके द्वारा प्राप्त ज्ञान एव उसके साथ सम्भाषण एव पुण्य-सकीर्तनके प्रभावसे उन सभी प्रेतोका पाप विनष्ट हो गया और उन्हे परम पदकी प्राप्ति हुई।
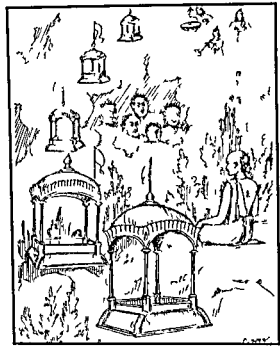
सूतजीने कहा—इस आख्यानको सुनकर गरुडजी पीपल-पत्रके समान काँप उठे। उन्हाने पुन मनुष्योके कल्याणक लिये श्रीभगवान् विष्णुसे पूछा।

(अध्याय २२)

प्रेतबाधाजन्य विविध स्वप्न तथा उसका प्रायश्चित्तविधान

श्रीगरुडने कहा—ह देवेश! पिशाचयोनिमे रहनेवाले प्रेत क्या-क्या करते हैं? वे क्या कहते हैं? उसे आप कहिये।

श्रीभगवान्ने कहा—हे पक्षिराज! उनका जैसा स्वरूप है जो उनकी पहचान है और जिस प्रकार वे स्वप्न दिखाते हैं, वह सब मैं तुम्हे सुनाता हूँ। भूख-प्याससे दु खित वे अपने घरम प्रवेश करते हैं। उसी वायुरूपी देहमे प्रविष्ट हाकर अपने वशजाका अपना चिह्न दिखाते हैं। प्रेत अपने

१-उपवासपरो नित्य कृच्छ्रचान्द्रायणे रत। व्रतैश्च विविधै पूतो न प्रेतो जायते नर॥
एकादश्या व्रत कुर्वञ्जागरेण समन्वितम्। अपरै सुकृतै पूतो न प्रेतो जायते नर॥
इष्टा वै चाश्वमेधादीन् दद्याद् दानानि यो नर। आरामोद्यानवाप्यादे प्रपायाश्चैव कारक॥
कुमारीं ब्राह्मणाना तु विवाहयति शक्तित। विद्यादोऽभयदश्चैव न प्रेतो जायते नर॥ (२२।६४—६७)
२-देवद्रव्य च ब्रह्मस्व गुरुद्रव्य तथैव च। कन्या ददाति शुल्केन स प्रेतो जायते नर॥
मातर भगिनीं भार्यां स्नुषा दुहितर तथा। अन्टदोषास्त्यजति स प्रेतो जायते नर॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक्परदाररत सदा। विश्वासघाती कूटश्च स प्रेतो जायते नर॥
भ्रातृध्रुग्ब्रह्महा गोघ्न सुरापो गुरतल्पग। कुलमार्गं परित्यज्य ह्यनृतोक्तौ सदा रत।
हर्ता हेम्नश्च भूमेश्च स प्रेता जायते नर॥
(२२।७१—७४)

पुत्र, अपनी स्त्री तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके पास जाता है और अश्व, हाथी, बैल अथवा मनुष्यका विकृत रूप धारण करके वह स्वप्नमें दिखायी देता है। जो व्यक्ति सोकर उठनेपर अपनेको शय्यापर विपरीत स्थितिमें देखता है, वह अवस्थिति प्रेतयोनिके कारण हुई है, ऐसा मानना चाहिये। यदि स्वप्नमें अपने-आपको जंजीरमें बँधा हुआ देखे और मरा हुआ पूर्वज निन्दनीय वेषमें दिखायी दे, खाते हुए व्यक्तिका अन्न लेकर भाग जाय और प्याससे पीडित वह अपना या परायेका जलपान कर ले तो उसे पिशाचयोनिमें गया हुआ माने।

यदि स्वप्नमें वह बैलकी सवारी करता है, बैलोंके साथ कहीं जाता है, डरकर आकाश या भूखसे व्याकुल होकर तीर्थमें चला जाता है, अपनी वाणीसे गौ, बैल, पक्षी और घोड़ेकी भाषामें बोलता है, उसे हाथी, देव, भूत, प्रेत तथा निशाचरके चिह्न दिखायी देते हैं तो उसे पिशाच योनि प्राप्त हुआ ही माने।

हे पक्षीन्द्र! प्राणीको स्वप्नमें प्रेतयोनिसे सम्बन्धित बहुत-से चिह्न दिखायी देते हैं। जो स्वप्नमें अपनी जीवित स्त्री, अपने जीवित भाई, पुत्र या पुत्रीको मरा हुआ देखे तो उसे प्रेतदोष समझना चाहिये। प्रेतदोषसे ही व्यक्ति स्वप्नमें भूख-प्याससे व्यथित होकर दूसरेसे याचना करता है तथा तीर्थमें जाकर पिण्डदान करता है। यदि स्वप्नमें घरसे निकलते हुए पुत्र, पिता, भ्राता, पति तथा पशु दिखायी दे तो ऐसा प्रेतदोषसे दिखायी देता है।

हे द्विजराज! स्वप्नमें ऐसे चिह्न दिखायी देनेपर प्रायश्चित्त करनेका विधान बताया गया है। घर या तीर्थमें स्नान करके मनुष्य बेलके वृक्षमें जल-तर्पण करे तथा वेदपारगत ब्राह्मणकी सम्यक् पूजा करके उन्हें काले धान्यका दान दे, तदनन्तर यथाशक्ति हवन करके गरुडमहापुराणका पाठ करे। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक प्रेतचिह्न बतानेवाले इस अध्यायका पाठ करता है अथवा सुनता है, उसका प्रेतदोष स्वतः ही नष्ट हो जाता है। (अध्याय २३)
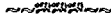
अल्पमृत्युके कारण तथा बालकोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका निरूपण

श्रीगरुडने कहा—हे प्रभो! वेदका यह कथन है कि अकालमें किसीकी मृत्यु नहीं होती है तो फिर राजा या श्रोत्रिय ब्राह्मण किस कारणसे अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं। ब्रह्मने जैसा पहले कहा था, वह असत्य दिखायी देता है। हे भगवन्! वेदोंमें यह कहा गया है कि मनुष्य सौ वर्षतक जीवित रहता है। इस भारतवर्षमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यवर्णवाली द्विजातियाँ, शूद्र और म्लेच्छ रहते हैं किस कारणसे कलिकालमें ये शतायु नहीं देखे जाते। बालक, धनवान्, निर्धन, सुकुमार मूर्ख, ब्राह्मण, अन्य वर्णवाले तपस्वी योगी महाज्ञानी, सर्वज्ञानरत, लक्ष्मीवान्, धर्मात्मा अद्वितीय पराक्रमी—जो कोई भी हो इस वसुधातलपर अवश्य मृत्युको प्राप्त करते हैं। इनके गर्भमें आनेके साथ ही इनके पीछे मृत्यु लगी रहती है। इसका क्या कारण है?

श्रीभगवान्ने कहा—हे महाज्ञानी गरुड! तुम्हें साधुवाद है। तुम मेरे प्रिय भक्त हो। अतः प्राणीकी मृत्युसे सम्बन्धित गोपनीय बातको सुनो।

हे पक्षिराज कश्यपपुत्र महातेजस्वी गरुड! विधाताद्वारा निश्चित की गयी मृत्यु प्राणीके पास आती है और शीघ्र ही उसे लेकर यहाँसे चली जाती है। प्राचीनकालसे ही वेदका यह कथन है कि मनुष्य सौ वर्षतक जीवित रहता है, किंतु जो व्यक्ति निन्दित कर्म करता है वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है, जो वेदोंका ज्ञान न होनेके कारण वंशपरम्पराके सदाचारका पालन नहीं करता है, जो आलस्यवश कर्मका परित्याग कर देता है, जो सदैव त्याज्य कर्मको सम्मान देता है, जो जिस-किसीके घरमें भोजन कर लेता है और जो परस्त्रीमें अनुरक्त रहता है, इसी प्रकारके अन्य महादोषोंसे मनुष्यकी आयु क्षीण हो जाती है। श्रद्धाहीन, अपवित्र नास्तिक, मङ्गलका परित्याग करनेवाले परद्रोही, असत्यवादी ब्राह्मणको मृत्यु अकालमें ही यमलोक ले जाती है। प्रजाकी रक्षा न करनेवाला धर्माचरणसे हीन, क्रूर व्यसनी मूर्ख वेदानुशासनसे पृथक् और प्रजापीडक क्षत्रियको यमका शासन प्राप्त होता है। ऐसे दोषी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय मृत्युके वशीभूत हो जाते हैं और यम-यातनाको प्राप्त करते हैं। जो अपने कर्मोंका परित्याग तथा जितने मुख्य आचरण हैं,

उनका परित्याग करता है और दूसरेके कर्मम निरत रहता है वह निश्चित ही यमलोक जाता है।'[1] जा शूद्र द्विज-सेवाके बिना अन्य कर्म करता है, वह यमलोक जाता है। तदनन्तर वह उत्तम-मध्यम या अधम कोटिवाले यमलोकमे पहुँचकर दु ख भोगता है।

जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन नहीं होता है, मनुष्योका वह दिन व्यर्थ ही जाता है—

स्नान दान जपो होमो स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥
यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्।

(२४।१७-१८)

रसोद्भूत यह शरीर अनित्य, अध्रुव तथा आधारहीन है।

हे पक्षीन्द्र! अब मैं अन्न और जलसे बने हुए इस शरीरके गुणोका वर्णन करता हूँ।

प्रात काल सस्कृत (सुपाचित) अन्न निश्चित ही सायकाल नष्ट हो जाता है, अत उस अन्नके रससे पुष्ट शरीरम नित्यता कैसे आ सकती है[2]? हे गरुड! अपने प्राकृत कर्मोंके अनुसार शरीर तो मिल चुका है, इस तरह यथायोग्य शरीर-निर्माणरूप आधा कार्य तो हो चुका है, पर आगे दुष्कर्मोंसे बचनेके लिये एव अपनी सुरक्षाके लिये परम औषधका सेवन करना चाहिये। क्या यह शरीर अन्नदाता पिता या जन्म देनेवाली माताका है अथवा उन दोनाका है? यह राजाका है या बलवान्‌का है, अग्नि अथवा कुत्तेका है? कीटाणु, विष्ठा अथवा भस्मके रूपमे परिणत होनेवाले इस शरीरके लिये श्रेष्ठतम यज्ञ कौन हो सकता है? पाप-विनाशके निमित्त प्राणीको उत्कृष्ट यत्न करना चाहिये। जीवने अनेक बार इस ससारमे जन्म ग्रहणकर मन वाणी और शरीरके द्वारा पापकर्म किया है। मनुष्य-जन्म मिलनेपर प्राणीको पूर्व सभी जन्मोके पापोका स्मरण करके तपके द्वारा उन्हे विनष्ट करनेका प्रयास करना चाहिये। कर्मके अनुसार प्राप्त होनेवाले गर्भवासके महान् कष्टको देखकर भी जो मनुष्य पुन गर्भवासम आता है अर्थात् मानवयोनिमे ही उससे मुक्तिका प्रयास नहीं करता, वह पातकी अण्डजादि योनियोमे जहाँ-जहाँ जाता है, वहीं आधियाँ-व्याधियाँ, क्लेश और वृद्धावस्थाजनित रूप परिवर्तन होते रहते हैं।[3]

हे द्विजोत्तम (पक्षिश्रेष्ठ)! गर्भवाससे निकला हुआ प्राणी अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छन्न हो जाता है। बाल्यावस्थामे रहनेके कारण वह सदसद्‌का कुछ भी ज्ञान नहीं रखता है। यौवनान्धकारसे वह अन्धा हो जाता है। इस बातको जो देखता है वह मुक्तिका भागी होता है। प्राणी चाहे बालक हो चाहे युवा हो अथवा वृद्ध हो, वह जन्म लेनेके बाद मृत्युको अवश्य प्राप्त होता है। धनी-निर्धन, सुकुमार, कुरूप, मूर्ख, विद्वान्, ब्राह्मण या अन्य वर्णवाले जनोकी भी वही स्थिति होती है। मनुष्य चाहे तपस्वी, योगी, परमज्ञानी, दानी, लक्ष्मीवान्, धर्मात्मा, अतुलनीय पराक्रमी कोई भी हो मृत्युसे नहीं बच सकता है। बिना मनुष्यदेहको प्राप्त किये सुख-दु खका अनुभव नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति प्राकृत कर्मके पाशम बँधकर मृत्युको प्राप्त करता है। गर्भसे लेकर पाँच वर्षतक मनुष्यके ऊपर पापका अल्प प्रभाव पडता है, किंतु उसके बाद वह यथायोग्य पापके न्यूनाधिक प्रभावका भागी होता है। इस प्रकार प्राणीको बार-बार इस ससारमे आना-जाना पडता है। इस पृथ्वीपर मरा हुआ

१-विधातृविहितो मृत्यु शीघ्रमादाय गच्छति। ततो वक्ष्यामि पक्षीन्द्र काश्यपेय महाद्युते॥
मानुष शतजीवीति पुरा वेदेन भाषितम्। विकर्मण प्रभावेण शीघ्र चापि विनश्यति॥
वेदानभ्यसनेनैव कुलाचार न सेवते। आलस्यात्कर्मणा त्यागो निषिद्धेऽप्यादर सदा॥
यत्र तत्र गृहेऽश्नाति परक्षेत्ररतस्तथा। एतैरन्यैर्महादोषैर्जायते चायुष क्षय॥
अश्रद्दधानमशुचि नास्तिक त्यक्तमङ्गलम्। परद्रोहानृतकर ब्राह्मण यत (म) मन्दिरम्॥
अरक्षितार राजान नित्य धर्मविवर्जितम्। क्रूर व्यसनिन मूर्ख वेदवादबहिष्कृतम्॥ (२४।९—१४)

२-यत्प्रात सस्कृत साय नूनमन्न विनश्यति॥ तदीयरससम्पुष्टकाये का बत नित्यता॥ (२४।१९-२०)

३-कर्तव्य परमो यत्न पातकस्य विनाशने। अनेकभवसम्भूत पातक तु त्रिधा कृतम्॥
यदा प्राप्नोति मानुष्य तदा सर्व तपत्यपि। सर्वजन्मानि सस्मृत्य विषादी कृतचेतन॥
अवेक्ष्य गर्भवासाश्च कर्मजा गतयस्तथा। मानुषोदरवासी चेत्तदा भवति पातकी॥
अण्डजादिषु भूतेषु यत्र यत्र प्रसर्पति। आधयो व्याधय क्लेशा जरारूपविपर्यय॥ (२४।२३—२६)

मनुष्य दानादि सत्कर्मोंके प्रभावसे पुन जन्म लेकर अधिक दिनोतक जीवित रहता है।[1]

सूतजीने कहा—भगवान् कृष्णके ऐसे वचनको सुनकर गरुडजीने यह कहा—

गरुडने कहा—हे प्रभो! बालककी मृत्यु हो जानेपर पिण्डदानादि क्रियाओंको कैसे करना चाहिये? यदि विपन्नावस्थामें फँसे हुए भ्रूणकी मृत्यु गर्भमें ही हो जाती है अथवा चूडाकरणके बीच शिशु मर जाता है तो कैसे, किसके द्वारा दान दिया जाना चाहिये? मृत्युके बाद कौन-सी विधि है?

गरुडके ऐसे वाक्यको सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—

हे गरुड! यदि स्त्रीका गर्भपात हो जाय अथवा गर्भस्राव हो जाय तो जितने मासका गर्भ होता है उतने दिनका अशौच मानना चाहिये। आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको उसके लिये कुछ भी नहीं करना चाहिये। यदि जन्मसे लेकर चूडाकरण-संस्कारके बीच बालककी मृत्यु हो जाती है तो उसके निमित्त यथाशक्ति बालकोंको दूधका भोजन देना चाहिये। यदि चूडाकरण संस्कार होनेके बाद पाँच वर्षतक बालककी मृत्यु होती है तो शरीरदाहका विधान है उसके लिये दूध देना चाहिये और बालकोंको भोजन कराना चाहिये। पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु होनेपर अपनी जातिके लिये विहित समस्त और्ध्वदैहिक क्रियाओंको सम्पन्न करना अपेक्षित है। ऐसे मृत बालकके कल्याणार्थ जलपूर्ण कुम्भ तथा खीरका दान करना चाहिये क्योंकि उसका ऋणानुबन्ध हो जाता है।

हे पक्षीन्द्र! जन्म लेनेवालेकी मृत्यु और मृत्युको प्राप्त हुए प्राणीका जन्म निश्चित है। अत पुन शरीरका जन्म न हो इसके लिये व्यक्तिको जीवनकालमें जो कुछ अच्छा लगता था, उसीका दान करना चाहिये। ऐसा न करनेपर उस प्राणीका जन्म निर्धनकुलमें होता है। वह स्वल्पायु और निर्धन होकर प्रेम तथा भक्तिसे दूर रहता है। उसे पुनर्जन्म प्राप्त होता है, अत मृत शिशुके लिये यथेप्सित दान आवश्यक है। ऐसा होनेपर ब्राह्मण-बालकोंको मिष्टान्न-भोजन अवश्य देना चाहिये। पुराणमें इससे सम्बन्धित जिस गाथाका गान हुआ है सब प्रकारसे वह मुझे सत्य प्रतीत होती है। गाथा इस प्रकार है—

भोज्ये भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरस्त्रिय ॥
विभव दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपस फलम्।
दानाद्भोगानवाप्नोति सौख्य तीर्थस्य सेवनात्।
सुभाषणान्मृतो यस्तु स विद्वान्धर्मवित्तम ॥
अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो
दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान्नरक प्रयाति
पुनर्दरिद्र पुनरेव पापी॥
(२४।४४—४६)

भोज्य वस्तु एवं भोजनशक्ति, रतिशक्ति रहनेपर श्रेष्ठ स्त्रीकी प्राप्ति तथा धन-वैभव एवं दानशक्ति—ये तीनों अल्प तपस्याका फल नहीं है ऐसा साथ-साथ होना बडा ही दुर्लभ है। दान देनेसे प्राणीको भोगोंकी प्राप्ति होती है। तीर्थसेवनसे सुख मिलता है और सुभाषण करता हुआ जो मरता है वह विद्वान् धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ है। दान न देनेपर प्राणी दरिद्र होता है, दरिद्र होनेपर पाप करता है, पापके प्रभावसे नरकमें जाता है, तदनन्तर बार-बार वह दरिद्र एवं पापी बनता जाता है। (अध्याय २४)

---

[1] गर्भवासाद्विनिर्मुक्तस्त्वज्ञानतिमिरावृत । न जानाति खगश्रेष्ठ बालभाव समाश्रित ॥
यौवने तिमिरान्धश्च य पश्यति स मुक्तिभाक्। अथानान्मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा॥
सधनो निर्धनश्चैव सुकुमार कुरूपवान्। अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणस्त्वितरो जन ॥
तपोरतो योगशीलो महाज्ञानी च यो नर । महादानरत श्रीमान् धर्मात्मातुलविक्रम ।
विना मानुषदेह तु सुख दु ख न विन्दति॥
प्राक्तनै कर्मपाशैस्तु मृत्युमाप्नोति मानव । आधानात्पञ्च वर्षाणि स्वल्पपापैर्विपच्यते॥
पञ्चवर्षाधिको भूत्वा महापापैर्विपच्यते। योनि पूरयते यस्मान्मृतोऽप्यायाति याति च॥
मृता दानप्रभावेण जीवन्त्यत्यधिर भुवि॥ (२४।२७—३३)

बालकोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका स्वरूप, सत्पुत्रकी महिमा तथा औरस और क्षेत्रज आदि पुत्रोद्वारा अन्त्येष्टि करनेका फल

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! इसके बाद अब मैं पुरुष-स्त्रीका निर्णय कहूँगा। बालक जीवित हो अथवा मृत्युको प्राप्त हो गया हो, पाँच वर्षसे अधिक अवस्था हो जानेपर उसमे पुरुषत्व प्रतिष्ठित हो जाता है। वह अपनी समस्त इन्द्रियोको जान लेता है और रूप तथा कुरूपके विपर्ययको जाननेकी क्षमता भी उसमे आ जाती है। पूर्वजन्मार्जित कर्मफलसे प्राणियोका वध और बन्धन होता है। पाप ही सभी लोगोको नष्ट करता है।

हे पक्षिराज! गर्भक नष्ट होनेपर कोई और्ध्वदैहिक क्रिया नहीं है। शिशुकी मृत्यु होनेपर दुग्धका दान देना चाहिये, शैशवके बादकी अवस्थामे बालककी मृत्यु होनेपर पायस तथा खीरका दान देना चाहिये। कुमारकी अवस्थामे मृत्यु होनेपर एकादशाह, द्वादशाह, वृषोत्सर्ग तथा महादानको छोडकर अन्य सभी और्ध्वदैहिक कृत्य करनेका आदेश किया गया है। मरे हुए कुमार और बालकोके निमित्त भोजन-वस्त्र तथा वेष्टन देना चाहिये। बाल, वृद्ध अथवा तरुणके मरनेपर घट-बन्धन करना चाहिये।

हे खगश्रेष्ठ! दो माह कम दो वर्षतकके बालककी मृत्यु होनेपर उसको पृथ्वीमे गड्ढा खोदकर गाड देना चाहिये, इससे अधिक आयुवाले मृत बालकके लिये दाह-संस्कारका ही विधान उत्तम है। सभी शास्त्रामे जन्मसे लेकर दाँत निकलनेतककी अवस्थावाले बच्चेको शिशु, चूडाकरण-संस्कारतककी अवस्थावालेको बालक और उपनयन-संस्कारतककी आयुवालेको कुमार कहा गया है।

हे गरुड! उपनयन-संस्कारका विधान न होनेके कारण शूद्रादिका अन्तिम संस्कार कैसे होना चाहिये? यह संशय है। गर्भाधानसे नौ मासतकके कालको छोडकर सोलह मासतकके बच्चाको शिशु, सत्ताईस मासतकके अवस्थाप्राप्त बच्चेको बालक, पाँच वर्षकी आयुवालेको कुमार, नौ वर्ष-वालेको पौगण्ड सोलह वर्षवालेको किशोर और उसके बादका यौवन-काल है। पाँच वर्षकी अल्पायुम मृत कुमार चाहे उसका व्रतबन्ध हुआ हो अथवा न हुआ हो, वह पूर्वकथित विधानके अनुसार दशपिण्ड-कृत्यकी कामना करता है। स्वल्प कर्म, स्वल्प प्रसग, स्वल्प विषयबन्धन, स्वल्प शरीर तथा स्वल्प वस्त्रके कारण प्राणी स्वल्प क्रियाकी इच्छा करता है।[1] जीव जबतक वृद्धिकी ओर बढ रहा हो, जबतक वह सासारिक विषय-वासनाओसे घिरा हो, तबतक उसे अपने उस मृत परिजनको वे सभी भोज्य पदार्थ और आवश्यक वस्तुएँ देनी चाहिये, जो उसके लिये उपजीव्य[2] और इच्छित थीं।

हे खगेश! चाहे बालक हा या वृद्ध हो अथवा युवा हा सभी प्राणी घटकी इच्छा करते हैं। सर्वत्रगामी देही जीवात्मा सदैव सुख-दु खका अनुभव करता है। जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी केंचुलका परित्याग कर देता है, उसी प्रकार जीव अपने पुराने शरीरका परित्याग कर अगुष्ठमात्र परिमाणवाला होकर तथा वायुभूत हो भूखसे पीडित हो जाता हे। अत बालककी भी मृत्यु होनेपर निश्चित ही दान देना चाहिये। जन्मसे लेकर पाँच वर्ष-तककी अवधिम मरा हुआ प्राणी दानम दिये गये असस्कृत[3] भोजनका उपभोग करता है। यदि पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु हो जाती है तो वृषोत्सर्ग और सपिण्डीकरणको छोडकर द्वादशाहके आनेपर षोडश श्राद्ध करने चाहिये। उस दिन यथाक्रम पायस (खीर)-से बने पिण्डका दान देना चाहिये। यह पिण्डदान गुडसे भी किया जा सकता है। उसी दिन सान्नोदक कुम्भ और पददान देना चाहिये। ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये और यथाशक्ति महादानादि भी करने चाहिये। पक्षिश्रेष्ठ! दीप-दानादि जो कुछ शेष कर्म हैं उन्हे पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले कुमारकी मृत्यु होनेपर करना चाहिये।

हे पक्षिराज! व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) होनेसे पहले जिसका मरण हुआ है उसकी सतृप्तिके लिये पूर्वोक्त कर्म करना चाहिये। यदि मनुष्यके द्वारा सारी क्रिया नहीं की

१-जिस व्यक्तिका मरण हुआ है वह अपनी अवस्थाके अनुसार एव अपने कर्मोंके अनुसार जिस मात्रामे जिस रूपमे अन्न वस्त्र आदिसे तुष्ट होता रहा है उसी मात्रामें उसी रूपमे उसकी और्ध्वदैहिक क्रियामें अन्न वस्त्र आदि देना चाहिये।

२-पुष्टि एव तुष्टिके लिये उपयोगी।

३-मन्त्र आदिके बिना दिया हुआ अन्न।

जाती है तो वह जीव पिशाच हो जाता है। व्रतबन्धक पूर्व मृत बालकके लिये पूर्वोक्त सब कर्म करना चाहिये। उसके बाद 'स्वाहा' शब्दसे समन्वित मन्त्रके द्वारा षोडश एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। ऋजु[1] कुशसे श्वेत तिलके द्वारा अपसव्य होकर समस्त क्रिया करनेसे पितृगण परम गतिको प्राप्त करते हैं और दीर्घायु होकर पुनः अपने ही कुलमें जन्म लेते हैं।

सभी प्रकारके सुखोंको प्रदान करनेवाला पुत्र माता-पिताके प्रेमका अभिवर्धक होता है। जैसे एक आकाश एक चन्द्र और एक आदित्य आश्रय-भेदसे पृथक्-पृथक् घटादिमें दिखायी देते हैं, वैसे ही पिताका आत्मा सभी पुत्रोंमें सदैव विचरण करता रहता है। जिसकी जो प्रकृति शुक्र-शोणित-संगमके पूर्व होती है, वही पुत्रोंमें आकर सन्निहित हो जाती है। वैसे ही वे अपने जीवनमें कर्म करते हैं। किसीका पुत्र पिताका रूप लेकर उत्पन्न होता है पिताकी अपेक्षा कोई अत्यधिक रूपवान्, गुणवान् तथा दानपरायण होता है। इस संसारमें कोई भी प्राणी एक-समान न हुआ है और न होगा। अन्धेसे अन्धा, गूँगेसे गूँगा, बहिरेसे बहिरा तथा विद्वान्से विद्वान् जन्म नहीं लेता है। इस सृष्टिमें कहीं भी अनुरूपता दिखायी नहीं देती।

गरुडने कहा—औरस और क्षेत्रज आदि दस प्रकारके पुत्र माने गये हैं। जो संगृहीत (कहींसे प्राप्त) तथा दासीसे उत्पन्न हुआ है, उससे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है? मृत्युके वशमें गये हुए प्राणीको उस पुत्रसे कौन-सी गति प्राप्त होती है? जिस व्यक्तिके न पुत्री है और न पुत्र है न दौहित्र (लडकीका पुत्र-नाती) है उसका श्राद्ध किसके द्वारा किस विधिसे होना चाहिये?

श्रीभगवान्ने कहा—हे गरुड! पुत्रके मुखको देख करके मनुष्य पितृऋणसे मुक्त होता है। पौत्रको देखनेसे मनुष्यको तीनों ऋणसे मुक्ति मिल जाती हैं। पुत्र-पौत्र तथा प्रपौत्रोंके होनेसे व्यक्तिको आनन्त्य लोक और स्वर्गकी प्राप्ति होती है।[2] जो क्षेत्रज पुत्र हैं वे पिताको मात्र लौकिक सुख प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं। औरस पुत्रको विधिवत् पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। अन्य पुत्र एकोद्दिष्ट श्राद्ध करते हैं, पार्वण नहीं। ब्राह्म-विवाहके नियमोंसे विवाहिता स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र पिताको स्वर्ग ले जाता है। संगृहीत पुत्र प्राणीको अधोगतिमें ले जाता है। यदि वह सांवत्सरिक श्राद्ध करता है तो उससे पिताको नरककी प्राप्ति होती है। अन्नदानके अतिरिक्त वह सब प्रकारका दान अपने पालक पिताके लिये कर सकता है। संगृहीत पुत्रको एकोद्दिष्ट श्राद्ध ही करना चाहिये पार्वण नहीं। माता-पिताके लिये वार्षिक श्राद्ध करके वह पापसे लिप्त नहीं होता। यदि वह एकोद्दिष्ट श्राद्धका परित्याग करके पार्वण श्राद्ध करता है तो अपनेको और पितरोंको यमलोक पहुँचाता है। जो संगृहीत पुत्र और दासीसे उत्पन्न हुए पुत्रादि हैं, उन्हें तीर्थमें जाकर पितृश्राद्ध करना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये।

यदि संगृहीत पुत्र पाक-श्राद्ध[3] करता है तो उसके श्राद्धको वैसे ही वृथा समझना चाहिये, जैसे शूद्रान्नसे द्विजत्व नष्ट हो जाता है। वह श्राद्ध परलोकमें गये हुए पिता-पितामहादि पितरोंको प्रसन्न नहीं कर पाता। हे पक्षिश्रेष्ठ! ऐसा जानकर व्यक्तिको हीन जातिमें उत्पन्न हुए पुत्रोंका परित्याग[4] कर देना चाहिये। [यदि अपरिणीता] ब्राह्मणीके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा पुत्र उत्पन्न किया जाता है तो वह चाण्डालसे भी नीच होता है। जो पुत्र संन्यासीसे जन्म लेता है या शूद्रसे ब्राह्मणीके गर्भमें उत्पन्न होता है तो ऐसे पुत्रोंको तुम चाण्डाल ही समझो। जो सगोत्रा कन्यासे जन्म ग्रहण करता है, वह भी चाण्डाल ही होता है। हे खगेश्वर! यथाविधान विवाहिता स्त्रीसे पुत्र पैदा करके व्यक्ति स्वर्ग जाता है। ऐसे सदाचारी पुत्रोंके आचरणसे मनुष्यको सुखकी प्राप्ति निश्चित है। जो दुराचारी पुत्र है वह अपने कुत्सित आचरणसे पिताको नरकमें ले जाता है। हीन जातिसे उत्पन्न हुआ सदाचारी पुत्र अपने माता-पिताको सुख प्रदान करता है।[5] जो मनुष्य कलिकालके पापसे निर्मुक्त है, सिद्ध जनोंसे पूजित है, देवलोककी अप्सराओंके

१-पवित्रक या मोटक आदिके बिना बनाये ही कुशका उपयोग ऋजु कुश है।

२-मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुच्यते पैतृकादृणात्॥
पौत्रस्य दर्शनाज्जन्तुर्मुच्यते च ऋणत्रयात्। लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः॥ (२५।३३-३४)

३-अन्न पकाकर उसके द्वारा किया गया श्राद्ध पाक-श्राद्ध है।

४-ऐसे पुत्रोंसे यथासम्भव अपना धार्मिक कृत्य नहीं करवाना चाहिये।

५-इसका तात्पर्य सदाचारकी महिमासे है।

द्वारा सम्मानमे डुलाये जा रहे चँवर और पहनायी गयी मालासे सुशोभित है, वह अकेले ही सौ पितरो तथा नरकमे गय हुए बन्धु-बान्धवा, पुत्र-पोत्रा और प्रपौत्रोका उद्धार कर देता है। (अध्याय २५)

सपिण्डीकरण श्राद्धका महत्त्व, प्रतिवर्ष विहित मासिक श्राद्ध आदिकी अनिवार्यता, पति-पत्नीके सह-मरण आदिकी विशेष परिस्थितिमे पाक एव पिण्डदान आदिकी विभिन्न व्यवस्थाका निरूपण तथा बभ्रुवाहनकी कथा

गरुडने कहा—हे देवश्रेष्ठ! हे प्रभो! आप मेरे ऊपर कृपा करके यह बताये कि मरे हुए प्राणियोका सपिण्डीकर्म किस समय करना चाहिये? सपिण्डीकर्म होनेपर प्रेत कैसी गति प्राप्त करता है और जिस प्रेतका सपिण्डीकर्म नहीं होता उसकी कैसी गति होती है? स्त्री और पुरुषका किसके साथ सपिण्डीकर्म होना चाहिये। हे सुरेश्वर! स्त्री और पुरुष एक साथ सपिण्डीकर्मके भागीदार बनकर कैसे उत्तम गति प्राप्त कर सकते हैं? पतिके जीवित रहते हुए स्त्रियोका सपिण्डीकरण कैसे हो सकता है? वे किस प्रकार पतिलोक या स्वर्गको जाती हैं? अग्न्यारोहण हो जानेपर स्त्रियाका श्राद्ध कैसे होता है? उनका वृषात्सर्ग किस प्रकारसे किया जाय? हे स्वामिन्! सपिण्डीकरण हा जानेपर मृतकके लिये घट-दान कैसे हो? हे हरे! आप ससारके कल्याणार्थ इसे बतानेकी कृपा कर।

श्रीभगवान्ने कहा—हे पक्षिन्! जिस प्रकार सपिण्डीकरण होता है वैसा ही मैं तुम्हे सुनाऊँगा। हे खगराज! जब मनुष्य मरनेके बाद एक वर्षकी महापथ-यात्रा करता है तो पुत्र-पौत्रादिके द्वारा सपिण्डीकरण हो जानेपर वह पितृलोकमे चला जाता है। इसलिये पुत्रको पिताका सपिण्डीकरण करना चाहिये। वर्षके पूर्ण हो जानेपर पिण्डप्रवेशन अर्थात् सपिण्डीकरण करना चाहिये। हे पक्षियाके सिह। वर्षके अन्तम निश्चित रूपसे प्रेत-पिण्डका मेलन होता है। पितृपिण्डाके साथ प्रेत-पिण्डका सम्मिलन हो जानेपर वह प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह प्रेत नामका परित्याग करके पितृगण हो जाता है। अपने गोत्र या सापिण्ड्यम जितने लोगाका अशौच शास्त्रानुसार होता है उनके यहाँ यदि विवाह या कोई शुभ कार्य होना है तो तीसरे पक्ष या छ मासमे भी सपिण्डीकरण किया जा सकता है।

हे खगेश्वर! गृहस्थके घरमे यदि किसीका मरण हुआ हो तो विवाह आदि शुभ कार्य नहीं करने चाहिये। जबतक सपिण्डीकरण नहीं हो जाता है तबतक भिक्षुक उस घरकी भिक्षाको स्वीकार नहीं करता है। अपने गोत्रम अशौच तबतक रहता है, जबतक पिण्डका मेलन नहीं हा जाता है। पिण्डमेलन होनेपर 'प्रेत' शब्द निवृत्त हो जाता है। कुल-धर्म अनन्त है, पुरुषकी आयु क्षयशील है और शरीर नाशवान् है, इस कारण बारहवाँ दिन ही सपिण्डीकरण-कमके लिये प्रशस्त समय होता है। मृत व्यक्ति अग्निहोत्री रहा हो अथवा न रहा हो, उसका सपिण्डीकरण द्वादशाहको ही कर देना चाहिये। तत्त्वद्रष्टा ऋषियोने बारहवे दिन, तीसरे पक्षम, छठे मासम अथवा वर्ष पूर्ण होनेपर सपिण्डीकरणका विधान किया है।

पुत्रवान्का सपिण्डीकरणके बाद कभी भी एकोद्दिष्ट नहीं करना चाहिये। सपिण्डीकरणके पश्चात् जहाँ-जहाँ श्राद्ध किया जाय, पुत्रवान्का एकोद्दिष्ट कभी न किया जाय। वहाँ-वहाँ तीन-तीन श्राद्ध (पार्वण श्राद्ध) करने आवश्यक है, अन्यथा कर्ता पितृघातक कहलाता है। अशक्त होनेपर भी पार्वण श्राद्ध करना चाहिये।[1] ऐसा मुनियाने कहा है। यदि दिन और मास न ज्ञात हो तो उनका पार्वण श्राद्ध ही करना उचित है। पितरोके साथ वह पिता इस लोकमे पुत्रके द्वारा दिये गये दानका फल तबतक नहीं प्राप्त करता, जबतक उसके शरीरकी उत्पत्ति पुन [दशगात्रके पिण्डसे] नहीं हो जाती। ऐसी स्थितिमे पुत्रद्वारा किय गय इन्हीं सालह श्राद्धासे प्रेत यमपाशके बन्धनसे मुक्त होता है। पुत्ररहित

१-(क) यहाँपर ऊनमासिक आदि तथा सावत्सरिक [मृत्यु-तिथि आदि] श्राद्ध एकोदिष्ट श्राद्धके स्थानपर पार्वण श्राद्धकी विधि कात्यायनके मतस लिखी गयी है। जो कुछ प्रदेशाम भी प्रचलित है। परतु सामान्तया ऊनमासिक सावत्सरिकादि श्राद्धामे शौनकके मतानुसार एकोदिष्ट-विधिस ही श्राद्ध किया जाता है।

(ख) सपिण्डीकरणं कृत्वा गया गत्वा च धर्मवित्। एकोद्दिष्ट न कुर्वीत साग्निर्वा नाग्निमानपि॥ (दिवादासप्रकाश)

पुरुषका सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये।[1] पतिके जीवित रहनपर स्त्राका भी सपिण्डन नहीं हाना चाहिय।

जिस कन्याका विवाह ब्राह्मादि-विवाह-विधिसे हुआ है उसकी पिण्डादक-क्रियाएँ पतिक गोत्रस करनी चाहिय। आसुरादि-विधिस जिसका विवाह हुआ है, उसकी पिण्डादक-क्रिया पिनाक गात्रस करनी चाहिय। पिताका सपिण्डीकरण सदव पुत्र कर। यदि पुत्र नहीं हैं तो स्वय उसकी पत्नी उस क्रियाका निवाह कर। उसक भी न रहनपर सहादर भाई भाईका पुत्र अथवा शिष्य सपिण्डीकरण कर सकता ह। सपिण्डीकरण करक वह नान्दीमुख श्राद्ध कर। हे खग! पुत्र न रहनेपर ज्येष्ठ भाईका सपिण्डीकरण कनिष्ठ भाई कर। उसक अभावम भतीजा या पत्नी उस कर्मको सम्पन्न करे। मनुने कहा है कि—यदि सहादर भाइयामसे एक भी भाई पुत्रवान् हो जाय तो उसी पुत्रसे अन्य सभी भाई पुत्रवान् हो जाते हैं।[2] यदि सभी भाई पुत्रहीन हैं तो उनका सपिण्डीकरण उनकी पत्नीको करना चाहिये अथवा वह पत्नी स्वय न करक ऋत्विज्से या पुरोहितसे कराये।

चूडाकरण एव उपनयन-सस्कारस सम्कृत पुत्र पिताके श्राद्धको करे। जिस पुत्रका उपनयन-सस्कार नहीं हुआ है कवल चूडाकरण-सस्कार हुआ है वह श्राद्धम स्वधाका उच्चारण तो कर सकता है पर वदमन्त्रका उच्चारण नहीं कर सकता। स्त्रीका सपिण्डीकरण उसके पति, ससुर तथा परश्वशुरक साथ करना चाहिये। स्त्री-जातिका यह कर्म भतीजा तथा सहोदर छोटा भाई भी कर सकता है। सवत्सरपूर्ण होनेके पहले अथवा वर्षक पूण होनपर दूसरे वर्षके सधिकालम जिन प्रताका सपिण्डीकरण हाता हे उनकी क्रिया पृथक् नहीं की जाती। हे वत्स! सपिण्डीकरण हो जानक पश्चात् पृथक् क्रिया करना निन्दनीय माना गया हैं। जा व्यक्ति अपन पिताका पृथक् पिण्डदान देता है, वह पितृहन्ता हाता ह। सपिण्डाकरणक बाद पृथक् श्राद्ध उचित नहीं है। यदि कोई पृथक् पिण्डदान करता है ता वह पुन सपिण्डीकरण करे। जा मनुष्य सपिण्डीकरण करके एकोद्दिष्ट श्राद्ध करता है, वह स्वयको तथा प्रतका यमराजके अधीन कर देता है।

ह पक्षिन्! वर्षपर्यन्त प्रतसे सम्बन्धित जा भी क्रिया की जाय उसके नाम और गात्रके सहित विद्वान् व्यक्ति कर। सपिण्डीकरण कर देनपर भोजन और घटादिका दान पददान तथा अन्य जा दान हैं उन्ह एकको (मृत व्यक्तिको) ही उद्देश्य करके देना चाहिये। वर्षभरके लिय अन्न और जलपूर्ण घटादिकी सख्याका निर्धारण करके ब्राह्मणको प्रदान कर। पिण्डदान दनक पश्चात् यथाशक्ति वर्षभरके लिये उपयोगी समस्त सामग्री दानम द। ऐसा होनेपर मृत व्यक्ति दिव्य देह धारण करके विमानद्वारा सुखपूर्वक यमलोक चला जाता है।[3]

पिताके जीवित रहनेके कारण मृत पुत्रका पिताके साथ सपिण्डीकरण नहीं हो सकता अर्थात् उसका सपिण्डीकरण पितामह आदिक साथ होगा ऐसे ही पतिक जीवित हानेपर स्त्रियोका सपिण्डीकरण उसकी श्वश्रू आदिके साथ हागा।[4] पतिकी मृत्यु हो जानेके बाद चौथे दिन जो पतिव्रता स्त्री अपन शरीरको अग्निमे समर्पित कर देती है उसका वृषोत्सर्गादि कर्म पतिका क्रियाक ही दिन करना चाहिये। पुत्रिका पुत्रोत्पत्तिके पूव पतिके गोत्रवाला होती है। पुत्रोत्पत्तिके बाद वह पुन पिताके गोत्रमे आ जाती है। पुत्रिका उस कन्याको कहते हैं जिस कन्याका पिता

१-उपर्युक्त श्लोकोमे अपुत्रस्य यह वाक्य पुत्रोत्पादन की विधिकी प्रशसामे पर्यवसित है। इसका तात्पर्य अपुत्रवान् पुरुषके सपिण्डन-निषेधमें नहीं है। अन्यथा—

पुत्राभाव स्वय कुर्यु स्वभर्तृणाममन्त्रकम्। सपिण्डीकरण तत्र तत पार्वणमन्वहम्॥ (श्राद्धकल्पलता पृष्ठ २४३)

पुत्राभावे तु पत्नी स्यात् पत्न्यभावे सहोदर । (२६।२३)

सर्वेषा पुत्रहानाना पत्नी कुर्यात् सपिण्डनम्। (२६।२७)

—इन वाक्याका विरोध हो जायगा। अत यथाविधि योग्य पुत्र उत्पन्न करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

२-भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत् पुत्रवान् भवेत्। सर्वे त तन पुत्रण पुत्रिणा मनुरब्रवीत्॥ (२६।२६)

३-अन्न पानायसहित सख्या कृत्वाब्दिकस्य च। दातव्य ब्राह्मण पक्षिन्नन्नपूर्णघटाब्दिकम्॥
पिण्डान्ते तस्य सकला वर्षवृति स्वशक्तित । दिव्यदेहो विमानस्थ सुख याति यमालयम्॥ (२६।३५-३६)

४-पिताके जीवित रहनपर पुत्रके मर जानस पुत्रका सपिण्डीकरण पिताके साथ न करके पितामहक साथ करनेका विधान है। इसी प्रकार पतिके जीवित रहनपर मृत पत्नीका पतिके साथ सपिण्डीकरण न करक उसके श्वश्रू, परश्वश्रू और वृद्ध परश्वश्रू (सास परसास वृद्धपरसास) क

विवाहके समय जामातासे यह तय कर लेता है कि इस कन्यासे जो पुत्र पैदा होगा वह मेरा पुत्र होगा। यदि स्त्री अपने पतिके साथ अग्निमे आरोहण करती है तो उसकी उसके पतिके साथ समस्त और्ध्वदैहिक क्रिया करनी चाहिये किंतु क्षय-तिथिमे पुत्रको उसका श्राद्ध पृथक्‌रूपमे करना चाहिये। यदि पति-पत्नी पुत्ररहित हैं और वे दोनो एक ही दिन मर जाते हैं तथा उनका दाह-संस्कार एक ही चितापर होता है तो उन दोनोके श्राद्धाको पृथक्-पृथक् करना चाहिये, किंतु पत्नीका सपिण्डीकरण पतिके साथ ही होगा। यदि पतिके साथ पत्नीका पिण्डदान पृथक्-पृथक् होता है तो उस पिण्डदानसे वह दम्पति पापलिप्त नहीं होता, यह मेरा सत्य वचन है। यदि पति-पत्नी दोनोका एक ही चितापर दाह संस्कार होता है तो उन दोनाके लिये पाक एक ही साथ बनाया जाय, किंतु पिण्डदान पृथक्-पृथक् होना चाहिये। एकादशाहको वृषोत्सर्ग, षोडश प्रेतश्राद्ध, घटादि-दान, पददान और जो महादान हैं उन्हें पति पत्नीका वर्षपर्यन्त पृथक्-पृथक् ही करना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रेतको चिरकालीन सतृप्ति प्राप्त होती है।

एक गोत्रसे सम्बन्धित एक साथ मरे हुए स्त्री अथवा पुरुषसे सम्बद्ध-कृत्यमे आहुतिकी वेदी एक ही होनी चाहिये। किंतु होम पृथक्-पृथक् होना चाहिये। पति एव पत्नीका एक साथ मरण हानेपर उनका एकादशाहका श्राद्ध एव उनके निमित्त पिण्डदान, भोजन आदि पृथक्-पृथक् होगा, पर पाककी व्यवस्था एक ही होगी—यह विधान केवल पति-पत्नीके एक साथ मरणमे ही है अन्य किसीके मरणमे ऐसा विधान गर्हित है। पुत्र माता-पिताके लिये एक ही पाकसे यथाविधान श्राद्ध करता है। विकिरान्नदान एक और पिण्डदान पृथक्-पृथक् करने चाहिये। इसी विधिका पालन तीर्थ पितृपक्ष अथवा चन्द्र और सूर्य-ग्रहणके अवसरमे भी होना चाहिये।

जब स्त्री अपने मृत पतिके साथ अग्निमें जलती है तो अग्नि उसके शरीरको अवश्य जला देती है, किंतु आत्माको कष्ट नहीं दे पाती है, जिस प्रकार अग्निमे प्रज्वलित धातुओका मात्र मल ही जलता है, उसी प्रकार अमृतके समान अग्निमे प्रविष्ट हुई नारीका शरीर दग्ध होता है। पुरुष शुद्ध होकर दिव्य देहधारी हो जाता है, जिसके कारण वह खौलते हुए तेल, दहकते हुए लौह तथा अग्निसे कदापि नहीं जलता, इसी प्रकार पतिके साथ चितामे जली हुई स्त्रीको कभी जला हुआ नहीं मानना चाहिये, क्योकि उसकी अन्तरात्मा मरे हुए पतिकी अन्तरात्मासे मिलकर एक हो जाती है।

यदि स्त्री पतिका साथ छोड करके अन्यत्र अपने प्राणोका परित्याग करती है तो वह पतिलोकमे तबतक नहीं पहुँच पाती, जबतक प्रलय नहीं हो जाता। धन-दौलतसे युक्त माता-पिताको छोडकर जो स्त्री अपने मरे हुए पतिका अनुगमन करती है, वह चिरकालतक सुखोपभोग करती है। वह पतिसयुक्ता नारी उस स्वर्गमे साढे तीन करोड दिव्य वर्षोतक नक्षत्राके साथ स्वर्गमे रहकर अन्तमे महती प्रीति प्राप्त करके ऐश्वर्यसम्पन्न कुलमे उत्पन्न होती है।

धर्मपूर्वक विवाहिता जो स्त्री यदि पति-सगति नहीं करती है, तो जन्म-जन्मान्तरतक दुखी, दु शीला और अप्रियवादिनी होती है। जो स्त्री अपने पतिको छोडकर परपुरुषकी अनुगामिनी हो जाती है, वह अन्य जन्मामे चमगादडी, छिपकली, गोहनी अथवा द्विमुखी सर्पिणी होती है। अत स्त्रीको मन-वाणी और कर्म—इन सभीके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अपने मृत या जीवित पतिकी सेवा करनी चाहिये। पतिके जीवित रहते हुए अथवा उसके मरनेपर जो स्त्री व्यभिचार करती है, वह अनेक जन्मोतक वैधव्य जीवन प्राप्त करती है और दुर्भाग्य उसका साथ नहीं छोडता। देवता और पितराको श्रद्धापूर्वक जो कुछ दिया जाता है, उसका समग्र फल उसे पतिकी पूजा करनेसे ही

साथ सपिण्डीकरण करना चाहिये। इसके समर्थनमें ये वाक्य द्रष्टव्य हैं—
अपुत्राया मृताया तु पति कुर्यात् सपिण्डनम् । श्वश्र्वादिभि सहैवास्या सपिण्डीकरण भवेत्॥ (पैठीनसि)
अपुत्राया मृताया तु पति कुर्यात् सपिण्डनम्। श्वश्रूमात्रादिभि सार्धमेव धर्मेण युज्यते॥ (व्यास)

प्राप्त हो जाता है, इसलिये स्त्रीको पतिकी ही पूजा करनी चाहिये।

हे पक्षिश्रेष्ठ! पातिव्रत्यधर्मरूप सत्कर्मका पालन करनेपर स्त्री चिरकालतक पतिलोकमे निवास करती है। जबतक सूर्य और चन्द्र विद्यमान हैं, तबतक वह स्वर्गमे देवतुल्य बनी रहती है। उसके बाद दीर्घायु प्राप्त करके इस लोकमे वैभवशाली कुलमे जन्म लेती है तथा कभी भी पति-वियोगका दु ख नहीं झेलती।

हे खगराज! मैंने यह सब तुम्हे बता दिया। अब मृत प्राणीको सुख प्रदान करनेवाले विशेष कर्मको बताऊँगा। मृत्युके बाद द्वादशाहके दिन यथाविधि सपिण्डनादि समस्त कार्य करके वर्षपर्यन्त प्रतिदिन जलपूर्ण घट और अन्नका दान एव मासिक श्राद्ध करना चाहिये। हे पक्षिन्! प्रेतकार्यको छोडकर अन्य किये हुए कार्यकी आवृति नहीं होनी चाहिये[1]। यदि कोई मनुष्य अन्य कर्म करता है तो पूर्वका किया गया कार्य विनष्ट हो जाता है। मृतकके द्वादशाहके दिन विहित कृत्य वर्षपर्यन्त पुन करने चाहिये, इससे प्रेत अक्षयसुख प्राप्त करता है। प्रतिमास जलसे परिपूर्ण सान्नोदक घटका दान करना चाहिये। हे तार्क्ष्य! वृद्धिश्राद्धके कारण जो पुत्र अपने पिताका सपिण्डीकरण श्राद्ध कर देता है तो भी उसे प्रत्येक मासमे एक पिण्ड अन्न और जलसे पूर्ण कुम्भका दान करना चाहिये।

तार्क्ष्यने कहा—हे विभो! आपने जिन प्रेतोका वर्णन किया है, वे इस धरतीपर कैसे निवास करते हैं उनके रूप किस प्रकारके होते हैं वे कौन-कौन-से कर्म-फलोके द्वारा महाप्रेत और पिशाच बन जाते हैं और किस शुभ दानमे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जाती है? हे मधुसूदन! समस्त जगत्के कल्याणार्थ मुझको यह सब बतानेकी कृपा करे।

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! तुमने मानव-कल्याणके लिये बहुत अच्छी बात पूछी। प्रेतका लक्षण मैं कह रहा हूँ, उसे सावधान होकर सुनो। यह अत्यन्त गुप्त है। जिस-किसीके सामने इसको नहीं कहना चाहिये। तुम मेरे भक्त हो, इसलिये मैं तुम्हारे सामने इसे कह रहा हूँ।

हे पुत्र गरुड! पुराने समयमे बभ्रुवाहन नामका एक राजा था जो महोदय (कान्यकुब्ज) नामक सुन्दर नगरमे रहता था। वह धर्मनिष्ठ, महापराक्रमी, यज्ञपरायण, दानशील लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणहितकारी साधुसम्मत, सुशील, सदाचारी तथा दया-दाक्षिण्यादि सद्गुणोसे सयुत था। वह महाबली राजा सदैव अपनी प्रजाका पालन पुत्रवत् करता तथा क्षत्रिय-धर्मका सम्यक् पालन करते हुए सदैव अपराधियोको दण्डित किया। कभी विशाल भुजाओवाले उस राजाने अपनी सेनाके सहित शिकार करनेके लिये नाना प्रकारके वृक्षोसे भरे हुए सैकडो सिंहोसे परिव्याप्त विभिन्न प्रकारके पक्षियोके कलरवसे निनादित एक घनघोर वनमें प्रवेश किया। वनके बीचमे जाकर राजाने दूरसे ही एक मृगको देखा और उसके ऊपर अपने बाणको छोड दिया। उसके द्वारा छोडे गये उस कठिन बाणसे वह मृग अत्यन्त आहत हो उठा और शरीरमे बिंधे हुए उस बाणके सहित वह मृग वहाँसे भागकर वनमे लुप्त हो गया, किंतु उसकी कोखसे बह रहे रक्तके चिह्नोसे राजाने उसका पीछा किया। इस प्रकार उसके पीछे-पीछे वह राजा दूसरे वनमे जा पहुँचा।

भूख और प्याससे उसका कण्ठ सूख रहा था तथा परिश्रम करनेके कारण अत्यन्त थकानका अनुभव करता हुआ वह मूर्च्छित-सा हो गया था, उसको वहाँ एक जलाशय दिखायी दिया। जलाशय देखकर घोडेके सहित उसने वहाँ स्नान किया और कमलपरागसे सुवासित शीतल

१-उत्तम षोडशी आदि जो प्रेतोद्देश्यक कार्य हैं सपिण्डनके बाद भी इनकी पुनरावृत्ति ऊनमासिक आदि श्राद्धके द्वारा वर्षपर्यन्त करना चाहिये। परंतु पितरोके उद्देश्यसे किये गये कर्मकी पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिये—

द्वादशाहे कृत सर्वं वर्षं यावत्सपिण्डनम्। पुन कुर्यात्सदा नित्यं घटान्न प्रतिमासिकम्॥
कृतस्य करण नास्ति प्रेतकार्यादृते खग। य करोति नर कश्चित्कृत पूर्वं विनश्यति॥
मृतस्यैव पुन कुर्यात्प्रेतोऽक्षयमवाप्नुयात्। प्रतिमास घटा देया सोदना जलपूरिता॥
अर्वाक्च वृद्ध करणाच्च तार्क्ष्य सपिण्डन य कुरुते हि पुन। तथापि मास प्रतिपिण्डमेकमन्न च कुम्भ सजल च दद्यात्॥ (२६।६४—६७)

श्री जुबली नागरी भण्डार

जलका पान किया। तत्पश्चात् उस जलसे निकलकर राजा बभ्रुवाहन विशाल वटवृक्षकी मनमोहक शीतल छायाके नीचे बैठ गया, जो पक्षियोके कलरवसे निनादित तथा उस समूचे वनकी पताकाके रूपमे अवस्थित था। इसके बाद उस राजाने वहाँपर भूख-प्याससे व्याकुल इन्द्रियोवाले एक प्रेतको देखा जिसके सिरकी केशराशि ऊपरकी ओर खडी थी। उसका शरीर मलिन, कुब्जा (रूक्ष), मासरहित और देखनेमे महाभयकर लगता था। मात्र शरीरम शेष स्नायु-तन्त्रिकाओसे जुडी हुई हड्डियोवाला वह अपने पैरोसे इधर-उधर दौड रहा था और अन्य बहुत-से प्रेत उसको चारो ओरसे घेरे हुए थे।

हे तार्क्ष्य! उस विकृत प्रेतको देखकर बभ्रुवाहन विस्मित हो गया और उस प्रेतको भी महाभयकर वनमे आये हुए राजाको देखकर कम आश्चर्य नहीं हुआ। प्रसन्नचित्त होकर प्रेतने उस राजाके पास जाकर कहा—

प्रेतने कहा—हे महाबाहो! आज आपके दर्शनका यह सयोग प्राप्त कर मैंने प्रेतभावको त्याग कर परम गति प्राप्त कर ली है। मुझसे बढकर धन्य कोई नहीं है।

राजाने कहा—हे प्रेत! तुम मुझे कृष्णवर्णवाले भयकर प्रेतके समान दिखायी दे रहे हो। तुम्हे इस प्रकारका स्वरूप जैसे प्राप्त हुआ है वैसा मुझे बताओ।

राजाके ऐसा कहनेपर उस प्रेतने अपने सम्पूर्ण जीवनवृत्तको इस प्रकार कहा—

प्रेतने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! मै अपने सम्पूर्ण जीवन-वृत्तका विवरण आपको आदिसे सुना रहा हूँ, मेरे इस प्रेतत्वका कारण सुन करके आप दया अवश्य करेगे। हे राजन्! नाना रत्नोसे युक्त तथा अनेक जनपदोमे व्याप्त समस्त सम्पदाओसे भरा हुआ विभिन्न पुण्योसे प्रख्यात अनेकानेक वृक्षोसे आच्छादित विदिशा नामका एक नगर है। मैं वहींपर निरन्तर देवपूजामे अनुरक्त रहकर निवास करता था। उस जन्ममें मेरी जाति वैश्यकी थी और नाम मेरा सुदेव था। मैं उस जन्मम हव्यसे देवताओको कव्यसे पितरोको तथा नाना प्रकारके दानसे ब्राह्मणोको सदैव सतृप्त किया करता था। मेरे द्वारा दीन-हीन अनाथ और विशिष्ट जनोकी अनेक प्रकारसे सहायता की गयी थी किंतु दुर्भाग्यवश वह सब कुछ मेरा निष्फल हो गया। मेरे वे पुण्य जिस प्रकारसे विफल हुए, मैं आपको वह सुनाता हूँ।

हे तात! पूर्वजन्ममे न मेरे कोई सतान हुई, न कोई ऐसा बन्धु-बान्धव या मित्र ही रहा जो मेरी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करता। हे नृपोत्तम! उसीके कारण मुझे यह प्रेतयोनि प्राप्त हुई है। हे राजन्! एकादशाह, त्रिपक्ष षाण्मासिक, सावत्सरिक, प्रतिमासिक और इसी प्रकारके अन्य जो षोडश श्राद्ध हैं, वे जिस प्रेतके लिये सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, उस प्रेतकी प्रेतयोनि बादमे स्थिरताको प्राप्त कर लेती है, भले ही बादमे क्यो न उसके लिये सैकडो श्राद्ध किये जायँ। हे महाराज! ऐसा जानकर आप मेरा इस प्रेतयोनिसे उद्धार करे। राजाको सभी वर्णोका बन्धु कहा जाता है। मैं आपको एक मणिरत्न दे रहा हूँ। हे राजेन्द्र! इस नरकसे मुझे उबार ले। हे नृपश्रेष्ठ! हे महाबाहो! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो जिस प्रकारसे मुझे शुभ गति प्राप्त हो मेरे लिये वही उपाय करे और आप अपना भी समस्त प्रकारसे और्ध्वदैहिक कार्य करे।

राजाने कहा—हे प्रेत! और्ध्वदैहिक कर्म करनेपर भी प्राणी कैसे प्रेत हो जाते हैं? किन कर्मोको करनेसे उन्हे पिशाच होना पडता है? तुम उसे भी बताओ।

प्रेतने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! जो लोग देवद्रव्य, ब्राह्मण-द्रव्य और स्त्री एव बालकोके सचित धनका अपहरण करते हैं, वे प्रेतयोनि प्राप्त करते हैं। जिनके द्वारा तपस्विनी, सगोत्रा एव अगम्या स्त्रीका भोग किया जाता है, जो कमलपुष्पोकी चोरी करते हैं, वे महाप्रेत होते हैं। हे राजन्! जो हीरा-मूँगा-सोना और वस्त्रके अपहर्ता हैं, जो युद्धमे पीठ दिखाते हैं, जो कृतघ्न, नास्तिक क्रूर तथा दुःसाहसी हैं जो पञ्चयज्ञ नहीं करते, किंतु बहुत बडे-बडे दान देनेमे अनुरक्त रहते हैं, जो अपने स्वामीसे वैर करते हैं, जो मित्र और ब्राह्मणद्रोही हैं, जो तीर्थमे जाकर पापकर्म करते हैं, वे प्रेतयोनिमे जन्म लेते हैं। हे महाराज! इस प्रकार इन सभी प्राणियोका जन्म प्रेतयोनिमे होता है।

राजाने कहा—हे प्रेतराज! इस प्रेतत्वसे तुम्हे और तुम्हारे साथियोको कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है? मैं किस प्रकारसे अपना और्ध्वदैहिक कर्म कर सकता हूँ? वह कार्य किस विधानसे सम्भव है? यह सब कुछ मुझे बताओ।

प्रेतने कहा—हे राजेन्द्र! सक्षेपमे नारायणबलिकी विधि सुने। मैंने सुना है कि सद्ग्रन्थोका श्रवण, विष्णुका पूजन तथा सज्जनोका साथ प्रेतयोनिको विनष्ट करनेमे समर्थ

होता है। अतः मैं आपको प्रेतत्वभावको नष्ट करनेवाली विष्णुपूजाका विधान बताऊँगा॥ ४२-४३॥

हे राजन्! दो सुवर्ण[1] ले करके उससे भगवान् नारायणकी सभी आभूषणोंसे विभूषित प्रतिमाका निर्माण करवाना चाहिये। मूर्तिको दो पीले वस्त्रोंसे आच्छादित करके चन्दन तथा अगुरुसे सुवासित करे। तदनन्तर नाना तीर्थोंसे लाये गये पवित्र जलके द्वारा सविधि स्नान कराकर तथा अधिवासितकर पूर्वमें भगवान् श्रीधर, दक्षिणमें भगवान् मधुसूदन, पश्चिममें भगवान् वामन, उत्तरमें भगवान् गदाधर, मध्यभागमें पितामह ब्रह्मा और भगवान् महेश्वरकी विधिवत् पूजा गन्ध-पुष्पादिसे पृथक्-पृथक् रूपमें की जाय। तत्पश्चात् उस देवमण्डलकी प्रदक्षिणा करके अग्निमें देवताओंकी संतुष्टिके लिये आहुति दे। घृत, दही और दूधसे विश्वदेवोंको संतृप्त करे। उसके बाद यजमान फिरसे स्नान करके विनम्रतापूर्वक एकाग्रचित्तसे भगवान् नारायणके सामने विधिवत् अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करे। विनीतभावसे क्रोध एवं लोभरहित होकर कार्य आरम्भ करना चाहिये। इस अवसरपर सभी श्राद्ध और वृषोत्सर्ग करने चाहिये। तेरह ब्राह्मणोंको वस्त्र, छत्र, जूता, मुक्तामणिजटित अँगूठी, पात्र, आसन और भोजन देकर संतुष्ट करे। उसके बाद प्रेतकल्याणके लिये अन्न और जलपूर्ण कुम्भका दान देना चाहिये। शय्यादान करके घटदान भी प्रेतके उद्देश्यसे करे। तदनन्तर 'नारायण' नाम ही सत्य है—ऐसा कहकर सम्पुटमें स्थित भगवान् नारायणकी पूजा करे। ऐसा विधिवत् करनेपर निश्चित ही प्राणीका शुभ फल प्राप्त होता है।

राजाने कहा—हे प्रेत! प्रेतघट कैसा होना चाहिये, उसको प्रदान करनेका क्या विधान है? सभी प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये तुम प्रेतके लिये मुक्तिदायक घटके विषयमें मुझे बताओ।

प्रेतने कहा—हे महाराज! आपने बड़ा अच्छा प्रश्न किया है। जिस दानसे प्रेतत्व प्राप्त नहीं होता, उसे मैं कहता हूँ, सुनें।

प्रेतघट नामका दान समस्त अमङ्गलोंका विनाशक है। दुर्गतिको क्षय करनेवाला यह प्रेतघटका दान सभी लोकोंमें दुर्लभ है। संतप्त स्वर्णमय घट बनवाकर उसे घृत और दूधसे परिपूर्ण करके लोकपालोंसहित ब्रह्मा, शिव और केशवको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर ब्राह्मणको दानमें दे। अन्य सैकड़ों दान देनेसे क्या लाभ? इसके मध्यभागमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा पूर्वादिक सभी दिशाओंमें और कण्ठभागमें यथाक्रम लोकपालोंकी विधिवत् पुष्प, धूप एवं चन्दनादिसे पूजा करके उसे दूध और घीसे पूर्ण स्वर्णमय घट दानमें देना चाहिये। यह सभी दानोंसे बढ़कर दान है। इस दानसे सभी महापातकोंका विनाश हो जाता है। प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये श्रद्धापूर्वक यह दान अवश्य करना चाहिये।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे वैनतेय! उस प्रेतके साथ इस प्रकारका वार्तालाप राजाका चल ही रहा था कि उसी समय उनके पदचिह्नोंका अनुगमन करती हुई हाथी, घोड़े तथा रथसे परिव्याप्त उनकी सेना वहाँ आ पहुँची। सेनाके वहाँ आ जानेपर प्रेतने राजाको एक महामणि देकर प्रणाम किया और अपने प्रेतत्व-विमुक्तिकी प्रार्थना करके अदृश्य हो गया। उस वनसे निकलकर राजा भी अपने नगरको चला गया। हे पक्षिन्! नगरमें पहुँचकर राजाने उस प्रेतके द्वारा कही गयी सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रियाका विधि-विधानसे सम्पन्न किया। उसके पुण्यसे वह प्रेत बन्धन-विमुक्त होकर स्वर्ग चला गया।

हे गरुड! पुत्रके द्वारा दिये गये श्राद्धसे पिताको सद्गति प्राप्त होती है, इसमें आश्चर्य क्या है? जो मनुष्य इस पुण्यदायक इतिहासको सुनता है और जो सुनाता है, वह पापाचारसे युक्त होनेपर भी प्रेतत्व-योनिको प्राप्त नहीं होता है।

(अध्याय २६-२७)

प्रेतत्वमुक्तिके उपाय

गरुडजीने कहा—हे मधुसूदन! जिस दान या सत्कर्मसे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जाती है, उसे बतानेकी कृपा करें। इसके ज्ञानसे लोगोंका बड़ा कल्याण होगा।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! सुनो। मैं तुम्हें समस्त अमङ्गलोंको विनष्ट करनेवाले दानको बता रहा हूँ। शुद्ध स्वर्णका घट बनाकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा लोकपालोंसहित

१ सुवर्णमय।

उसकी पूजाकर दुग्ध और घृतसे परिपूर्ण उस घटको सुपात्र ब्राह्मणको दानमे देनेसे प्रेतत्वसे मुक्ति मिल जाती है।

हे गरुड! पुत्रहीन व्यक्तिकी सद्गति नहीं होती, अत यथाविधान पुत्र उत्पन्न करना चाहिये। मृत व्यक्तिको गोबरसे लीपी गयी मण्डलाकार भूमिम स्थापित करना चाहिये। भूमि गोबरसे लीपनेपर पवित्र हो जाती है तथा मण्डलका निर्माण करनेसे उस स्थानपर देवताओका वास हो जाता है। ऐसे ही मृत व्यक्तिके नीचे तिल और कुश बिछानेसे जीवको उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है, साथ ही मृत व्यक्तिके मुँहमे पञ्चरत्न डालनेसे जीवको शुभ गति मिलती है।

हे तार्क्ष्य! तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हैं, इसलिये वे सदा पवित्र हैं—'**मम स्वेदसमुद्भूतास्तिलास्तार्क्ष्य पवित्रका**।' (२९। १५)। इसी प्रकार कुशकी उत्पत्ति मेरे रोमसे हुई है '**दर्भा मल्लोमसम्भूता** (२९। १७)। कुशयुक्त भूमि अपने ऊपर विद्यमान मृत जीवको नि सदेह स्वर्ग पहुँचा देती है। कुशम ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीनो देव प्रतिष्ठित रहत हैं—'**त्रयो देवा कुशे स्थिता**।' हे पक्षिराज! ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि तथा तुलसी—ये बार-बार प्रयोगम लाये जानेपर भी पर्युषित (बासी) नहीं होते—

विप्रा मन्त्रा कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर।
नैते निर्माल्यता यान्ति क्रियमाणा पुन पुन ॥
(२९। २१)

इसी तरह विष्णु, एकादशीव्रत, भगवद्गीता, तुलसी, ब्राह्मण तथा गौ—ये छ इस ससारसागरस मुक्ति दिलानेवाले हैं;—

विष्णुरेकादशीगीतातुलसीविप्रधेनव ।
अपारे दुर्गससारे षट्पदी मुक्तिदायिनी॥
(२९। २४)

इसीलिये हे गरुड! तिल, कुश और तुलसी—ये आतुर व्यक्तिकी दुर्गतिको रोककर उसे सद्गति दिलाते हैं। आतुर-कालम दानकी भी विशेष महिमा है। भगवान् विष्णुकी दहसे लवणका प्रादुर्भाव हुआ है अत आतुर-कालम लवण-दान करनेसे भी जीवकी दुर्गति नहीं होती।[1] (अध्याय २८-२९)

दानधर्मकी महिमा, आतुरकालके दानका वैशिष्ट्य, वैतरणी गोदानकी महिमा

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! दवताओके लिये परम गोपनीय दानामें उत्तम और सभी दानामें श्रेष्ठ दानको सुनो—

हे गरुड! रुईका दान सभी दानोमे उत्तम तथा महान् है। उसका दान मनुष्यको अवश्य करना चाहिये, उसके दानसे **भू**, **भुव**, **स्व** अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग—ये तीनो लोक प्रसन्न हो उठते हैं। इस कार्यसे ब्रह्मा आदि सभी देवाको प्रसन्नता होती है। प्रेतका उद्धार करनेके लिये इस महादानको करना चाहिये। ऐसे महादानका दाता चिरकालतक रुद्रलोकमे रहता है तदनन्तर इस लोकमे जन्म लेकर रूपसम्पन्न सौभाग्यशाली, वाक्चतुर, लक्ष्मीवान् और अप्रतिहत-पराक्रमी राजा हाता है। अपने सुकृतोसे यमलोकको जीतकर वह स्वर्गलोकमे जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको गौ, तिल, भूमि तथा स्वर्णका दान देता है उसके जन्म-जन्मार्जित सभी पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं। तिल और गौका दान महादान है, इसमे महापापोको नाश करनेकी शक्ति होती है। ये दोनो दान केवल विप्रका देने चाहिये, अन्य वर्णोको नहीं। दानके रूपमे सकल्पित तिल, गौ तथा पृथ्वी आदि द्रव्य, अपने पोष्य-वर्ग एव ब्राह्मणेतर वर्णको न दे। पोष्यवर्ग और स्त्री-जातिको असकल्पित वस्तु दानम देनी चाहिये। रुग्णावस्थाम अथवा सूर्य एव चन्द्रग्रहणके अवसरपर दिये गये दान विशेष महत्त्व रखते हैं। रोगीके लिये जो दान दिया जाता है, वह उसके लिये तत्काल यथोचित फल देनेवाला होता है। यदि रोगी दान देनेके बाद रोगमुक्त होकर पुन जीवन प्राप्त कर लेता है तो उसके निमित्त दिया गया दान निश्चित ही उसे प्राप्त होता है। विकलेन्द्रियकी विकलाङ्गताको नष्ट करनेके लिये जो दान दिया जाता है वह दान भी अवश्य ही यथायाग्य फलदायक होता है। जिस दानका पुत्र

[1] २८वें तथा २९वें अध्यायका विषय प्रथम तथा द्वितीय अध्यायम पूर्णरूपसे आ गया है इसलिये इसे यहाँ सक्षिप्तरूपमे दिया गया है। पूर्ण विवरण प्रथम तथा द्वितीय अध्यायम देखना चाहिये।

अनुमोदन करता है, उस दानका फल अनन्त होता है। अत उसके सगे-सम्बन्धी अथवा पुत्रको तबतक दान देना चाहिये जबतक उसका आतुर सम्बन्धी या पिता जीवित हो, क्योकि आतिवाहिक प्रेत उसका भोग करता है।

अस्वस्थ-अवस्थामे—आतुरकालमे देहपात हो जानेपर पृथ्वीपर पडे रहनेकी स्थितिमे दिया गया दान अतिवाहिक शरीरके लिये प्रीतिकारक होता है। लँगडे, अधे काने और अर्धनिमीलित नेत्रवाले रोगीके लिये तिलके ऊपर कुश बिछाकर उसके ऊपर आतुरको लिटाकर दिया गया दान उत्तम और अक्षय होता है।

तिल लौह, स्वर्ण, रुई, नमक, सप्तधान्य, भूमि तथा गौ—ये एकसे बढकर एक पवित्र माने गये हैं। लौह-दानसे यमराज और तिल-दानसे धर्मराज सतुष्ट होते हैं। नमकका दान करनेपर प्राणीको यमराजसे भय नहीं रह जाता। रुईका दान देनेपर भूतयोनिसे भय नहीं रहता। दानमे दी गयी गाये मनुष्यको त्रिविध पापासे निर्मुक्त करती हैं। स्वर्ण-दानसे दाताको स्वर्गका सुख प्राप्त होता है। भूमि-दानसे दाता राजा होता है। स्वर्ण और भूमि—इन दोनाका दान देनेसे प्राणीको नरकम किसी प्रकारकी पीडा नहीं होती। यमलोकम जितने भी यमराजके दूत हैं, वे सभी उसी यमके समान ही महाभयकर हैं। सप्तधान्यका दान देनेसे वे प्रसन्न होकर दानदाताओके लिये वरदाता बन जात हैं।

हे गरुड। भगवान् विष्णुका स्मरणमात्र करनेसे प्राणीको परम गति प्राप्त होती है। मनुष्य जो गति प्राप्त करता है वह सब मैंने तुम्हे बता दिया। पिताकी आज्ञासे जो पुत्र दान देता है उसकी सभी प्रशसा करते हैं। भूमिपर सुलाये गये मरणासन्न पिताके उद्देश्यसे जो पुत्र सभी प्रकारका दान देता है, वह पुत्र कुलनन्दन है। उसके द्वारा दिया गया दान गया-तीर्थमे किये गये श्राद्धसे भी बढकर है। वह पुत्र अपने कुलको आनन्दित करनेवाला होता है। जिस समय अपने लोकको छोडकर बेचैन पिताकी परलोक-यात्राका काल समीप हो उस समय पुत्राको प्रयत्नपूर्वक दान देना चाहिये क्याकि वे ही दान पिताको पार करते हैं। पुत्रको पिताकी अन्त्येष्टि-क्रिया अवश्य सम्पन्न करनी चाहिये। इतना करनेमात्रसे अन्य सभी बहुविध दानाका फल प्राप्त हो जाता है क्याकि अश्वमेध-जैसा महायन भी इस पुण्यके सोलहवें अशकी क्षमता नहीं रखता। पृथ्वीपर पडे हुए आतुर पितासे जो धर्मात्मा पुत्र दान दिलाता है उसकी पूजा देवता भी करते हैं।

लौहका दान करनेवाला दाता महाभयानक आकृतिवाले यमराजके निकट न तो जाता है और न तो नारकीय लोकको ही प्राप्त करता है। पापियोको भयभीत करनेके लिये यमराजके हाथाम कुठार मूसल, दण्ड, खड्ग और छुरिका रहती है, इसलिये प्राणीको चाहिये कि वह ब्राह्मणको लौह-दान दे। यह दान यमराजके आयुधोकी सतुष्टिके लिये कहा गया है। गर्भस्थ प्राणी, शिशु, युवा और वृद्ध—ये जो भी हैं, इन दानोसे अपने समस्त पापोको जला देते हैं। श्याम एव शबल वर्णके पण्ड तथा मर्क और गूलरके सदृश मासल हाथमे छूरी धारण करनेवाले, काले-चितकबरे यमके दूत लौह-दानसे प्रसन्न होते हैं। यदि पुत्र-पौत्र, बन्धु-बान्धव, सगोत्री और मित्र अपने रोगीके लिये दान नहीं देते तो वे ब्रह्महन्ताके समान ही पापी हैं।

हे पक्षीन्द्र। भूमिपर स्थित प्राणीकी मृत्यु हो जानेपर उसकी क्या गति होती है, इसे सुनो। अतिवाहिक शरीरवाला प्रेत वर्ष समाप्त होनेके पश्चात् पुन पुण्यका लाभ प्राप्त करता है। इस ससारमे तीन अग्नि तीन लोक तीन वेद तीन देवता, तीन काल, तीन सधियाँ, तीन वर्ण तथा तीन शक्तियाँ मानी गयी हैं। मनुष्यके शरीरमे पैरसे ऊपर कटिप्रान्ततक ब्रह्मा निवास करते हैं। नाभिसे लेकर ग्रीवा-भागतक हरिका वास रहता है और उसके ऊपर मुखसे लेकर मस्तकतक व्यक्त तथा अव्यक्त-स्वरूपवाले महादेव शिवका निवास है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इनका शरीरम तीन भागोम अवस्थान है।

मैं ही जरायुज, अण्डज स्वेदज तथा उद्भिज्जके शरीरामे प्राणरूपसे स्थित रहता हूँ। धर्म-अधर्म सुख-दु ख तथा कृत-अकृतम बुद्धिको मैं ही प्रेरित करता हूँ। मैं ही स्वय प्राणीकी बुद्धिमे बैठकर पूर्व-कर्मके अनुसार उसको फल प्रदान करता हूँ। प्राणियाको मैं ही कर्मम प्रेरित करता हूँ। उसीके अनुसार प्राणी निश्चित ही स्वर्ग नरक और मोक्ष प्राप्त करता है। स्वर्ग अथवा नरकमे गये हुए प्राणीकी तृप्ति श्राद्धके द्वारा होती है इसलिये विद्वान् व्यक्तिको नाना प्रकारका श्राद्ध करना चाहिये। मत्स्य कूर्म वराह नारसिंह वामन परशुराम श्रीराम कृष्ण बुद्ध तथा कल्कि—ये दस नाम सदैव मनीषियाके लिये स्मरण करने योग्य हैं। इनका स्मरण करनेस स्वर्गमे गये हुए प्राणी सुखका भोग करते

हैं और स्वर्गसे पुन इस लोकमे आनेपर सुख और धन-धान्यसे पूर्ण होकर दया-दाक्षिण्य आदि सद्गुणासे भरे रहते हैं, वे पुत्र-पौत्रमे युक्त और धनाढ्य होकर सौ वर्षतक जीते हैं। रोगग्रस्त होनेपर मनुष्यके लिये दान देना चाहिये और भगवान् विष्णुकी पूजा करनी या करानी चाहिये। उस समय उसे अष्टाक्षर अथवा द्वादशाक्षर-महामन्त्रका जप करना चाहिय।

श्वेत पुष्पसे, घीमे पकाये गये नैवेद्यसे, गन्ध-धूपसे भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये तथा श्रुतियो और स्मृतियामे अभिवर्णित स्तुतियोसे भगवान् विष्णुकी स्तुति इस प्रकार करनी चाहिये—'विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं, विष्णु ही अपने स्वजन और बान्धव हैं। जहाँपर मैं विष्णुको नहीं देखता हूँ, वहाँ निवास करनेसे मुझे क्या लाभ? विष्णु जलमे हैं, विष्णु स्थलमे हैं, विष्णु पर्वतकी चोटीपर हैं और विष्णु चारो ओरसे मालारूपमे घिरी हुई ज्वालामालास व्याप्त स्थानमे अवस्थित हैं। यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है'—

> विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णु स्वजनबान्धवा ।
> यत्र विष्णु न पश्यामि तत्र वासेन कि मम॥
> जले विष्णु स्थले विष्णुर्विष्णु पर्वतमस्तके।
> ज्वालामालाकुले विष्णु सर्वं विष्णुमय जगत्॥
> (३०।४१-४२)

ब्राह्मण, जल पृथ्वी आदि जितने भी पदार्थ है, उन्हे अपना ही स्वरूप समझना चाहिये। इसलिये हे खगेश! किसी भी स्थानपर मनुष्य पूर्वजन्मार्जित पाप-पुण्यके अनुसार जिस कर्मको करता है, उसका फलदाता मैं ही हूँ। मैं ही प्राणीकी बुद्धिको धर्ममे नियुक्त करता हूँ और मुक्ति मैं ही देता हूँ।

हे तार्क्ष्य! अन्त-समय आनेपर मनुष्योका हित करनेवाली वैतरणी नदी मानी गयी हैं। उसीके जलसे अपन पाप-समूहको धोकर प्राणी विष्णुलोकको जाता है। बाल्यावस्थाका जो पाप है, कुमारावस्थामे जो पाप हुआ है, यौवनावस्थाका जो पाप है और जन्म-जन्मान्तरमें समस्त अवस्थाओके बीच भी जो पाप किया गया है, रात्रि-प्रात, मध्याह्न-अपराह्न तथा दोना सध्याओंके मध्य मन, वाणी और कर्मसे जो पाप हुआ है, उन सभी पापोंके समूहसे प्राणी अपना उद्धार अन्तिम क्षणम सर्वकामनाआको सिद्ध करनेवाली एक भी श्रेष्ठतमा कपिला गौका दान दे करके कर सकता है। [गोदान करते समय परमात्मासे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—परमात्मन्!] 'गाये ही मेरे आगे रहे, गाये ही मेरे पीछे और पार्श्वभागमें रहे गाये ही मरे हृदयमे निवास करें, मैं गायोंके बीचमें ही रहूँ। जो सभी प्राणियाकी लक्ष्मीस्वरूपा हैं, जो देवताआमे प्रतिष्ठित हैं वे गौरूपिणी देवी मेरे सभी पापोको विनष्ट करे—

> गावो ममाग्रत सन्तु पृष्ठत पार्श्वतस्तथा।
> गावो मे हृदये सन्तु गवा मध्ये वसाम्यहम्॥
> या लक्ष्मी सर्वभूताना या च देवे व्यवस्थिता।
> धेनुरूपेण सा देवी मम पाप व्यपोहतु॥
> (३०।५२-५३)

(अध्याय ३०)

और्ध्वदैहिक क्रियामे विहित पद आदि विविध दानोका फल तथा जीवको प्राप्त देहके स्वरूपका वर्णन

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! जो मनुष्य पापाचारमे लगे हुए हैं, वे यमलोकको जाते हैं। यदि मुझको साक्षी बनाकर मनुष्यके द्वारा दान दिया जाता है, तो वह अनन्त फलदायी होता हे। भूमिदान देनेवाला प्राणी दानमे दी गयी भूमिके रजकणाकी जितनी सख्या होती है, उतने वर्षोंतक स्वर्गम निवास करता है। जो जूतका दान दत हैं घोर यममार्गम वे घोडेपर सवार होकर चलते हैं। छत्रदान करनेस प्रन यमलोकम कहींपर भी धूपसे नहीं जलते, वे सुखपूर्वक अपन पथम चलते चल जात हें। जिसके उद्देश्यसे मनुष्य जो अन्न-दान देता है, उससे वह सतृप्त हो जाता है। यमलोकके महापथमे एक ऐसा भी स्थान है, जहाँ घनघोर अन्धकार है, वहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता किंतु दीपदान देनेसे मनुष्य उस मागम प्रकाशस युक्त प्राणाके समान जाते हैं। आश्विन, कार्तिक तथा माघमास, मृत-तिथि और चतुर्दशी तिथिम दिया गया दान सुखकारक हाता है। जबतक वर्ष न पूरा हो जाय, तबतक प्रतिदिन प्रतको ऊबड-खाबड मार्गमे सुखपूर्वक गमन करानेकी इच्छासे लोगाको दीपदान करना चाहिये। जो मनुष्य दीपदान करता

है, वह स्वय प्रकाशमय होकर ससारका पूज्य हो जाता है। वह शुद्धात्मा अपने कुलमे द्योतित होता है और प्रकाशस्वरूपको प्राप्त करता है।

हे खगेश। देवालयम पूर्वाभिमुख, ब्राह्मणक लिये उत्तराभिमुख तथा प्रेतके निमित्त दक्षिणाभिमुख होकर सुस्थिर दीपकका दान जलसे सकल्पपूर्वक करना चाहिये। इस ससारमे जो सभी प्रकारके उपहारासे युक्त तरह पददान मृत व्यक्तिके लिय तथा जीवित दशामे अपन लिये करता है, वह महान् कष्टोसे मुक्त होकर महापथकी यात्रा करता है। आमन पात्र और भोजन जो ब्राह्मणको देता है वह उसीक पुण्यसे सुखपूर्वक खाता-पीता हुआ महापथको पार करता है। कमण्डलुका दान दनेसे प्यासा प्रत जल प्राप्त करता है। प्रेतका उद्धार करनेके लिये एकादशाहको पात्र वस्त्र, पुष्प तथा अँगूठीका दान देना चाहिये। इसी प्रकार प्रेतका शुभेच्छु बनकर जो पुत्र यथाशक्ति तेरह पदाका दान करता है, उससे प्रेतको प्रसन्नता प्राप्त होती है। भोजन, तिल, जलपूर्ण तेरह घट, अँगूठी तथा उत्तरीय एव अधोवस्त्रका जो दान देता है, उस दानके पुण्यसे प्रेत परम गतिको प्राप्त करता ह।

जो अश्व, नौका अथवा हाथीका दान ब्राह्मणको देता है वह उसी देय वस्तुकी महिमाके अनुसार उन-उन सुखोको प्राप्त करता है। जो मनुष्य भैंसका दान देता है, वह नाना प्रकारके लोकोम विचरण करता है। यमदूताके हर्षवर्धनके लिये ताम्बूल और पुष्पका दान देना चाहिये, इससे सतुष्ट होकर वे दूत उस प्रेतको कष्ट नहीं देते।

प्राणीको यथाशक्ति गो भूमि, तिल तथा स्वर्णका दान अवश्य करना चाहिये, ऐसा मनीषियाने कहा है। जो व्यक्ति मृत प्राणीके लिये जलसे परिपूर्ण मिट्टीका पात्र दान करता है, उसे हजार जलपूर्ण पात्रके दानका फल प्राप्त होता है। यमराजके दूत महाक्रोधी, महाभयकर आकृतिवाले काले तथा पीले वर्णके हैं वे वस्त्र-दान किये जानेपर मृत प्राणीको यमलोकमे कष्ट नहीं देते। तृषा और श्रमसे पीडित हाकर महापथम आगे बढता हुआ प्रेत अन्न और जलसे पूर्ण घटका दान दनेसे निश्चित हो सुखी हो जाता है। दक्षिणा अस्त्र शस्त्र वस्त्र तथा विष्णुकी स्वर्ण-प्रतिमास युक्त शय्याका दान भी ब्राह्मणका देना चाहिय। एसा करनस प्रतयानिका परित्यागकर प्राणी स्वर्गम देवताआके साथ

क निवास करता है।
र्य। यह अन्त्येष्टि-कर्मम होनेवाला दान मैंने
। मृत प्राणी अन्य शरीरमे कैसे प्रवेश करता है,
प्रसन्नतापूर्व सको कहूँगा।
हे ता रतप। मृत्युलोकमे जन्म लेनेवाल प्राणीकी मृत्यु
तुमसे कहा, इसलिये अपने-अपने धर्मक अनुसार मृत
अब मैं उ श्राद्धादिक कृत्य करना चाहिये। हे खगेश्वर। मरे
'हे प याके मुखमण्डलसे पहल जीवात्मा वायुका सूक्ष्म
निश्चित है। करके निकल जाता है। लोगाके नेत्र आदि नौ
व्यक्तिका तथा तालुरन्ध्रसे भी जीवात्मा बाहर हो जाता है,
हुए प्राणि पापी हैं उनका जीवात्मा अपान-मार्गसे शरीर
रूप धारण

द्वार, रोम य मृत्युलोके वै प्राणिनो मरण ध्रुवम्।
कितु जो कुर्यात् स्वधर्मेण यास्यतश्च परतप॥
छोडता है ाले मृताना च प्राणिना च खगेश्वर।
जातर । भूत्वा त्वसौ वायुर्निर्गच्छत्यास्यमण्डलात्॥
मृति रै रोमभिश्च जनाना तालुरन्ध्रके।
पूर्वक ष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम्॥
(३१।२५-२७)
सूक्ष्म

नवद्व वायुके निकल जानेपर शरीर पृथ्वीपर वैसे ही गिर
पापि जैसे वायुके थपेडोसे आहत होकर निराधार वृक्ष
गिर पडता है। मृत्युके बाद शरीरम स्थित
प्राण पृथ्वीमे, जलतत्त्व जलम, तेजस्तत्त्व तेजमें
पडता है वायुम, आकाशतत्त्व आकाशम तथा सर्वव्यापी
भूमिपर व शिवमे लीन हो जाता है।
पृथ्वीतत्त्व ताक्ष्र्य। काम-क्रोध तथा पञ्चेन्द्रियाका समूह
वायुतत्त्व चोरके समान स्थित कहा गया है। देहम काम-
आत्मतत्त्व था अहकारसहित मन भी रहता है, वही सबका
हे है। पुण्य-पापसे सयुक्त होकर काल उसका
शरीरम बन जाता है। ससारमे भोगके लिये योग्य शरीरका
क्रोध त अपने कर्मके अनुसार होता है। मनुष्य अपने
नायक और दुष्कर्मसे दूसरे शरीरम प्रविष्ट होता है। जिस
सहारक पुराने घरके जल जानेपर गृही नये घरम जाकर शरण
निर्माण है उसा प्रकार यह जीव भी विषयाक साथ
सत्कर्म यासे युक्त नौ द्वारवाले एक शरीरको छोडकर दूसरे
प्रकार आश्रय ग्रहण करता है। शरीरमें विद्यमान धातुएँ
लता पितासे ही प्राप्त हैं इन्हींस निर्मित यह शरार
पञ्चेन्द्रि
शरीरम
माता-पि

पाट्कौशिक[1] कहलाता है। ह गरुड! शरीरम सभी प्रकारके वायु रहते हैं, मूत्र-पुरीष तथा उन्हींक योगसे उत्पन्न अन्यान्य व्याधियाँ रहती हैं। अस्थि, शुक्र तथा स्नायु शरीरके साथ ही जल जाते हैं।

ह पक्षिन्! सभी प्राणियोके शरीरका विनाशक्रम यही है इस मैंने कह दिया। प्राणियाका शरीर कैसा होता हे उसका अब मैं फिरसे कह रहा हूँ।

हे गरुड! पुरुषका शरीर छाटी-बडी नसासे बँधा हुआ एक स्तम्भ है जिसका नीचसे पैररूपी दा अन्य स्तम्भ धारण किये हैं। पञ्चेन्द्रियासहित उसम नो द्वार हैं। सासारिक विषयास युक्त एव काम-क्रोधस बचैन जीव इसी शरीरम रहता है। राग-द्वेषसे व्याप्त यह शरीर तृष्णाका दुस्तर दुर्ग है। नाना प्रकारक लोभासे भर हुए जीवका यह शरीर पुर है। यही स्थिति सभी शरीरोकी है। इसी शरीरम सभी देवता और चौदहा लाक स्थित हैं। जा लाग अपनेको नहीं पहचानते, वे पशुके समान मान गये है।

ह पक्षिराज! इस प्रकार ऊपर बतायी गयी प्रक्रियासे निर्मित शरीरका वर्णन मैंने किया। सृष्टिम चौरासी लाख यानियाँ बतायी गयी हैं जो उद्भिज्ज स्वदज, अण्डज और जरायुज—इन चार मुख्य भागाम विभक्त हैं। (अध्याय ३१)

शुक्र-शोणितके सयोगसे जीवका प्रादुर्भाव, गर्भमे जीवका स्वरूप तथा उसकी वृद्धिका क्रम, शरीरके निर्माणमे पञ्चतत्त्वादिका अवदान, षाट्कौशिक शरीर, गर्भसे जीवके बाहर निकलनेपर विष्णुमायाद्वारा मोहित होना, आतुर व्यक्तिके लिये क्रियमाण कर्म तथा उनका फल, पिण्ड और ब्रह्माण्डकी समान स्थिति

तार्क्ष्यने कहा—हे प्रभा! उद्भिज्ज स्वदज अण्डज तथा जरायुज—ये चार प्रकारके प्राणी किस प्रकार उत्पन्न होते हैं? त्वचा, रक्त, मास, मेदा मज्जा और अस्थिम जीव कैसे आता है? दो पैर दो हाथ गुह्यभाग, जिह्वा केश नख सिर, सधिमार्ग तथा नाना प्रकारकी बहुत-सी रेखाआकी उत्पत्ति कैसे हाती ह? काम क्रोध भय, लज्जा हर्ष सुख और दु खका भाव मनम कैसे आता है? इस शरीरका चित्रण छिद्रण और विभिन्न प्रकारकी नसासे वेष्टन कैसे हुआ है? हे हृषीकश! इस असार भवसागरम शारीरिक रचनाको मैं इन्द्रजाल ही मानता हूँ। ह स्वामिन्! नाना दु खासे भरे हुए इस असार सागररूप ससारका कर्ता कौन है?

श्रीविष्णुने कहा—ह गरुड! कोशक निर्माणकी परम गोपनाय प्रक्रियाको मैं कहता हूँ, इसके जाननेमात्रसे व्यक्ति सर्वज्ञ हो जाता है। हे वैनतेय! ससारक प्रति दया करते हुए तुमने जीवके कारण-तत्त्वपर अच्छा प्रश्न किया है। एकाग्रचित्त होकर तुम उसे सुनो।

स्त्रियाँ ऋतुकालम चार दिन त्याज्य होती हैं, क्याकि प्राचान कालम ब्रह्मान वृत्रासुरक मारे जानेपर लगी हुई ब्रह्महत्याको इन्द्रके शरीरस निकालकर एक चौथाई भाग स्त्रियाको द दिया था उसीके कारण स्त्रियाँ ऋतुकालके आरम्भम चार दिन अपवित्र मानी जाती हैं आर उस समयतक इनका मुख नहीं दखना चाहिये, जबतक वह पाप उनक शरीरमे विद्यमान रहता है। स्त्रीको ऋतुकालके पहले दिन चाण्डाली, दूसर दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजकी मानना चाहिये। चौथे दिन वह शुद्ध हाती ह। एक सप्ताहमे वह देवता और पितराके पूजनयोग्य हा जाती है। प्रथम सप्ताहके बीच जो गर्भ स्त्रामे रुक जाता है उसकी उत्पत्ति मलिम्लुचूसे माननी चाहिये। वीर्यस्थापनके समय माता-पिताके चित्तम जैसी कल्पना होगी, वैसे ही गर्भका जन्म होगा इसम सदह नहा है।

युग्म तिथिवाली रात्रियाम सहवास करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रियाम सहवास करनसे कन्याका जन्म होता है। अत ऋतुकालक पहले सप्ताहको छोडकर दूसरे सप्ताहकी युग्म तिथियाम सहवासम प्रवृत्त होना चाहिये। सामान्यत स्त्रियाका ऋतुकाल सोलह रात्रियाका होता है। यदि चौदहवीं रात्रिमे गर्भाधानकी क्रिया हाती हे तो उस गर्भसे गुणवान्, भाग्यवान्, धनवान् तथा धर्मनिष्ठ पुत्रका जन्म होता है। हे

---

[1] त्वचा रक्त मास मदा मज्जा तथा अस्थि—इन षट् धातुआस निर्मित शरार पाट्कौशिक कहलाता है।

पक्षिराज! वह रात्रि सामान्य लोगोंको प्राप्त होना सम्भव नहीं है। प्रायः स्त्रीमें गर्भोत्पत्ति आठवीं रात्रियोंके मध्यमें ही हो जाती है। ऋतुकालके पाँचवें दिन स्त्रियोंको कटु, क्षार, तीक्ष्ण और उष्ण भोजनका परित्याग करके मधुर भोजन करना चाहिये, क्योंकि उनकी कोख औषधिपात्र है और पुरुषका बीज अमृततुल्य है। उसमें (स्त्रीरूप ओषधिपात्रमें) बीज वपन करके मनुष्य सम्यक् फल प्राप्त कर सकता है, इसलिये उसको क्रोधादिकी ज्वालासे बचाकर मधुर भोजन तथा मृदु स्वभावकी शीतलतासे अभिसिंचित करना चाहिये। पुरुषको चाहिये कि वह पहले ताम्बूल और पुष्पोंकी माला तथा चन्दनसे सुवासित होकर स्वच्छ एवं सुन्दर वस्त्र धारण करे। तदनन्तर शुद्ध मनसे स्त्रीकी शय्यापर शयन करनेके लिये जाय। वीर्य-वपनके समय उसके चित्तमें जैसी कल्पना होगी, उसी स्वभाववाली संतान जन्म लेगी। प्रारम्भमें शुक्र और रक्तके संयोगसे जीव पिण्डरूपमें अस्तित्वको प्राप्त करता है और गर्भमें वह उसी प्रकार बढ़ता है, जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रमाकी अभिवृद्धि होती है।

शुक्रमें चैतन्य बीजरूपसे स्थित रहता है। जब काम, चित्त तथा शुक्र ऐक्यभावको प्राप्त हो, उस समय स्त्रीके गर्भाशयमें जीव एक निश्चित रूप धारण करनेकी पूर्वावस्थामें आता है। रक्ताधिक्य होनेपर कन्या और शुक्राधिक्य होनेपर पुत्र होता है। जब रक्त तथा शुक्र समान होते हैं तो गर्भमें स्थित संतान नपुंसक होती हैं। शुक्र तथा शोणित पहले दिन और रातमें कलल, पाँचवें दिन बुद्बुद तथा चौदहवें दिन मांस-रूपमें हो जाता है। उसके बाद वह घनीभूत मांस गर्भमें रहता हुआ क्रमशः बीसवें दिनतक पिण्डरूपमें बढ़ता है। तदनन्तर पचीसवें दिन उसमें शक्ति और पुष्टताका संचार होने लगता है। एक मास पूरा होते ही वह पञ्चतत्त्वोंसे युक्त हो जाता है। तत्पश्चात् उस गर्भस्थ जीवके शरीरपर दूसरे मासमें त्वचा और मेदा, तीसरे मासमें मज्जा तथा अस्थि, चौथे मासमें केश एवं अँगुली, पाँचवें मासमें कान, नाक तथा वक्ष:स्थलका निर्माण होता है। उसके बाद छठे मासमें कण्ठ, रन्ध्र और उदर, सातवें मासमें गुह्यादि भाग तथा आठवें मासमें वह सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे पूर्ण हो जाता है। आठवें मासमें ही वह जीव माताके गर्भमें बार-बार चलने लगता है और नवें मासमें उस गर्भस्थ शिशुका ओजगुण परिपक्व हो जाता है। उसके बाद गर्भवासका काल बीतनेपर वह गर्भस्थ शिशु गर्भसे निकलना चाहता है। वह चाहे कन्या हो, चाहे पुत्र, चाहे नपुंसक हो, फिर उसका जन्म होता है।

इस प्रकार जन्म, पुष्टि तथा संहार—इन तीनोंकी शक्तिसे युक्त षट्कोशोंके भीतर विद्यमान पाँच इन्द्रिय, दस नाडी, दस प्राण और दस गुणसे समन्वित शरीरको जो जान लेता है, वही योगी है। जीवका पाञ्चभौतिक शरीर मज्जा, अस्थि, शुक्र, मांस, रोम तथा रक्त—इन छः कोशोंसे निर्मित पिण्ड एक है। नवें या दसवें मासमें इसका पाञ्चभौतिक स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। प्रसवकालीन वायुसे आकृष्ट, तात्कालिक पीडासे बेचैन माताकी सुषुम्णा नाडीके द्वारा दी जा रही शक्तिसे पुष्ट वह जीव गर्भसे निकलनेका यथाशीघ्र प्रयास करता है। पृथ्वी, जल, हवि, भोक्ता, वायु तथा आकाश—इन छः भूतोंसे पीडित होता हुआ जीव स्नायु-तन्त्रिकाओंसे आबद्ध रहता है। इन्हींको विद्वानोंने मूलभूत तत्त्व कहा है, ये शरीरमें फैली हुई सात नाडियोंके बीचमें रहते हैं। त्वचा, अस्थि, नाडी, रोम और मांस—ये पाँच पृथ्वीतत्त्वके कारण-शरीरमें आते हैं।

हे काश्यप! इसी प्रकार लार, मूत्र, शुक्र, मज्जा तथा रक्त—ये पाँच जलतत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। हे तार्क्ष्य! क्षुधा, तृषा, निद्रा, आलस्य एवं कान्ति—ये पाँच तेजस्तत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। ऐसे ही राग, द्वेष, लज्जा, भय और मोह—ये पाँच वायुतत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। आकुञ्चन, धावन, लंघन, प्रसारण तथा निरोध—ये भी पाँचों वायुतत्त्वके कारण-शरीरमें ही पाये जाते हैं। हे गरुड! शब्द, चिन्ता, गाम्भीर्य, श्रवण और सत्यसंक्रम (सत्य और असत्यका विवेक)—ये पाँच आकाशतत्त्वके कारण-शरीरमें आते हैं, ऐसा तुम्हें जानना चाहिये।

श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा तथा नाक—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जबकि हाथ, पैर, गुदा, वाणी और गुह्य—ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। इडा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, गजजिह्वा, पूषा, यशा, अलम्बुषा, कुहू तथा शंखिनी—ये दस नाडियाँ मानी गयी हैं। यही प्रधान दस नाडियाँ पिण्ड (शरीर)-के मध्य स्थित

रहती हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय नामके दस वायु प्राणियोके शरीरमे विद्यमान रहते हैं। केवल खाया गया अन्न ही देहधारियोके शरीरको पुष्ट करता है और इस खाये गये अन्नको प्राणवायु ही शरीरमे तथा उसकी सभी सधियोम पहुँचाता है। भोजनके रूपमे ग्रहण किया गया आहार वायुके द्वारा दो रूपामे विभक्त किया जाता है। इसके अनन्तर यह प्राणवायु ही गुदाभागमे प्रविष्ट हाकर अन्न और जलको पृथक्-पृथक् कर देता है तथा यही प्राणवायु अग्निके ऊपर जलको एव जलके ऊपर अन्नको पहुँचाकर स्वय अग्निके नीचे रहते हुए अग्निको धीरे-धीरे उद्दीप्त करता है। तत्पश्चात् वायुसे उद्दीप्त किया हुआ अग्नि अन्नके रसभागको अलग और शुष्कभागको अलग कर देता है। यही शुष्कभाग बारह प्रकारके मलोके रूपमे शरीरसे बाहर आता है। शरीरमें विद्यमान कान, नेत्र नाक जिह्वा, दाँत नाभि गुदा तथा नख—ये सब मलके आश्रय हैं। ऐसे ही विष्ठा मूत्र शुक्र एव शोणित-रूपसे ये मल अनन्त प्रकारके हैं।

हे विनतासुत! मनुष्यके शरीरमे सामान्यत साढे तीन करोड रोम और बत्तीस दाँत होते हैं। सिरमे बालोकी सख्या सात लाख तथा नख बीस हैं। हे तार्क्ष्य! पुराने लोगोंने सामान्य रूपसे शरीरमे एक हजार पल मास, सौ पल रक्त, दस पल मेदा, दस पल त्वचा, बारह पल मज्जा तीन पल महारक्त, दो कुडव (अन्नकी एक माप जो बारह मुट्ठीके बराबर होती है) शुक्र तथा एक कुडव सतानोत्पत्तिके लिये उपयोगी स्त्रीके विद्यमान शोणित (रज)-को माना है। इसी प्रकार मानव-शरीरम छ प्रकारके कफ, छ प्रकारकी विष्ठा छ प्रकारके मूत्र और तीन सौ साठसे अधिक अस्थियाँ होती हैं। इस प्रकार पिण्ड (शरीर)-के विषयम बताया गया। इसे ही शरीरका वैभव कहते हैं। इन सबके अतिरिक्त शरीरमे कुछ नहीं है।

कर्मानुसार ही मनुष्यको सुख-दु ख भय तथा कल्याण प्राप्त होता है। कर्मका अनुष्ठान शरीरके द्वारा ही सम्भव होनेसे शरीरका महत्त्व है। इस शरीरके द्वारा ही जीव उत्तम-से-उत्तम अथवा अधम-से-अधम गति प्राप्त करता है। इसलिये शरीरकी उत्पत्तिकी प्रक्रिया यहाँ बतायी जा रही है—वायु जीवको गर्भसे बाहर करता है। उस समय उसके दोनो पैर ऊपर और मुख नीचेकी ओर रहता है। ऐसा जीव पहले तो यथाक्रम माँके गर्भम रहकर ही धीरे-धीरे बढता है। माताके द्वारा ग्रहण किये गये अन्न, फल, दूध, घृत और जलके आहारसे उस जीवके शरीरकी हड्डियाँ पुष्ट होती हैं तथा वह जीवित रहता है। उस जीवके नाभिप्रान्तसे शक्तिवर्धिनी नाडी जुडी रहती है, जिसको आप्यायनी कहा जाता है। उसका सम्बन्ध स्त्रियोके आँत-छिद्रसे होता है। उनके द्वारा खाया-पिया गया पदार्थ गर्भमे स्थित प्राणीके पेटमे आप्यायनी नाडीके द्वारा पहुँचता है। माँके द्वारा भुक्त पदार्थोंसे पुष्ट देहवाला होकर वह जीव प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता है। इसी वृद्धिक्रममे ससारकी पूर्वानुभूत अनेक विषयाकी स्मृतियाँ उसे होती हैं और इन्हीं स्मृतियाके कारण दु खित वह प्राणी खिन्न हो जाता है तथा अनेक प्रकारकी पीडाका अनुभव कर इधर-उधर गतिमान् होता है एव 'गर्भमे निकल करके मैं पुन ऐसा कुछ नहीं करूँगा जिससे मुझे पुन गर्भकी प्राप्ति हो'—यह सोचकर जीव अपने उन सैकडा पूर्वजन्माका स्मरण करता है, जिनमे उसको सासारिक, देवयोनिया और मृत्युलोककी नाना योनियोके सुख-दु खका अनुभव प्राप्त हुआ था। उसके बाद समयानुसार वह प्राणी अधोमुख होकर नव या दसवे मासमे गर्भसे बाहर आता है।

प्राजापत्य वायुके प्रभावसे गर्भ छोडकर बाहर निकलता हुआ वह जीव दु खी होता है। उस समय दु खसे पीडित वह प्राणी विलाप करता हुआ बाहर निकलता है। उदरसे बाहर होते हुए उस जीवको असह्य कष्ट देनेवाली मूर्च्छा आ जाती है, किंतु कुछ ही क्षणमे वह जीव पुन चेतनामे आ जाता हैं। वायुके स्पर्शसे उसको सुखानुभूति होती है। तत्पश्चात् ससारको मोहित करनेवाली विष्णुकी माया उसके ऊपर अपना प्रभाव जमा लेती है। उस मायाशक्तिसे विमोहित जीवात्माका पूर्व ज्ञान नष्ट हो जाता है। ज्ञान नष्ट होनेके बाद वह जीव बालभावको प्राप्त करता है। तदनन्तर उसे कौमार्य, यौवन और वृद्धावस्था भी प्राप्त होती है। उसके बाद मनुष्य पुन उसी प्रकार मरता है और जन्म लेता है। इस ससार-चक्रम वह घडा बनानेवाले चक्रयन्त्रके समान घूमता रहता है। प्राणी कभी स्वर्ग प्राप्त करता है और कभी नरकमे जाता है।

स्वर्ग तथा नरक मनुष्यको अपने कर्मानुसार ही प्राप्त होते है। हे पक्षिश्रेष्ठ! स्वर्ग और नरकमे कर्मफलका भोग करके प्राणी कभी थोडेसे शेष पाप-पुण्यका भोग करनेके लिये पृथ्वीपर आ जाता है। जो स्वर्गमे निवास करते हैं, उन लोगोको यह दिखायी देता है कि नरकलोकोमे प्राणियोको बहुत दु ख है। यहाँपर यमराजके दूतोसे प्रताडित व नरकवासी कभी प्रसन्न नहीं होते हैं, उन्हे तो दु ख-ही-दु ख झेलना पडता है। जबसे मनुष्य विमानमे चढकर ऊपरकी ओर प्रस्थान करता है तभीसे उसके मनमे यह भाव स्थान बना लेता है कि पुण्यके समाप्त होनेपर मैं स्वर्गसे नीचे आ जाऊँगा। इसलिये स्वर्गमे भी बहुत दु ख है। नरकवासियोको देख करके जीवको महान् दु ख होता है, क्योकि मेरी भी इसी प्रकारकी गति होगी—इस चिन्तासे वह रात-दिन मुक्त ही नहीं होता है। गर्भवासमे प्राणीको योनिजन्य बहुत कष्ट होते हैं। योनिसे पैदा होते समय उसे महान् दु ख होता है। उत्पन्न होनेके बाद बालपनमे भी उसे दु ख है और वृद्धावस्थामे भी दु ख है। काम क्रोध तथा ईर्ष्याका सम्बन्ध होनेसे युवावस्थामे भी उसके लिये असहनीय दु ख है। दु स्वप्न, वृद्धावस्थामे तथा मरणके समय भी उत्कट दु ख उसे होता है। यमदूतोके द्वारा खींचकर नरकमे भी ले जाये जा रहे जीवको अधोगति प्राप्त होती है। उसके बाद फिर जीवका गर्भसे जन्म होता है और मृत्यु होती है। ऐसे ससार-चक्रमे प्राणी कुम्भकारके चक्रके समान घूमते रहते हैं। पूर्वजन्ममे किये गये पुण्य-पापसे बँधे जीव बार-बार इसी ससारके आवागमनका दु ख भोगते हैं।

हे पक्षिन्! सैकडो प्रकारके दु खसे व्याप्त इस ससारक्षेत्रमें रञ्चमात्र भी सुख नहीं है। हे विनतासुत! इसलिये मनुष्योको मुक्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। जीवकी जैसी स्थिति गर्भमे होती है वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब मैं पूर्वक्रमसे पूछे गये प्रश्नका ही उत्तर दूँ या इसी अन्तरालमे कुछ अन्य प्रश्न करनेकी तुम्हारी इच्छा है?

गरुडने कहा—हे देवेश! पूछे गये प्रश्नोमेसे दो महत्त्वपूर्ण प्रश्नोके उत्तर तो मुझे प्राप्त हो गये हैं अब मुझे तीसरे प्रश्नका उत्तर प्रदान करनेकी कृपा करे।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षीन्द्र! मरणासन्न प्राणीके लिये क्या करना चाहिये? यह तुमने प्रश्न किया है? उसका उत्तर सुनो। मैं सक्षेपमे उसे कह रहा हूँ।

मृत्युको सनिकट जानकर मनुष्यको सबसे पहले गोमूत्र, गोमय, तीर्थोदक और कुशोदकसे स्नान कराये। तदनन्तर स्वच्छ एव पवित्र वस्त्र पहना दे और गोमयसे लिपी हुई भूमिपर दक्षिणाग्र कुशाका एव तिलका आस्तरण करके सुला दे। सुलाते समय उस मरणासन्न प्राणीके सिरको पूर्व अथवा उत्तरकी ओर करके उसके मुखमे सोनेका टुकडा डाले। हे खगेश! उसीके सनिकट भगवान् शालग्रामकी मूर्ति और तुलसीका वृक्ष लाकर रख दे। तत्पश्चात् वहींपर घीका एक दीपक जलाये और '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'— इस मन्त्रका जप करे? पूजा-दान तथा नाम-स्मरण आदिमे मन्त्रसे 'ॐ'का योग करे। पुष्प-धूपादिसे भली प्रकार हृषीकेश विष्णुदेवकी पूजा करे। तदनन्तर विनम्रभावसे स्तुति-पाठ करते हुए उनका ध्यान करे। उसके बाद ब्राह्मणो दीनो और अनाथोको दान देकर भगवान् विष्णुके चरणोको हृदयमे स्थान देते हुए पुत्र, मित्र स्त्री खेती-बारी तथा धन-धान्यादिके प्रति अपनी ममताका परित्याग कर दे। उस समय जीवको बहुत ही कष्ट होता है। उसके निवारणके लिये पुत्रादि सभी परिजनोको मरणासन्न प्राणीके कल्याण-हेतु ऊँचे स्वरमे 'पुरुषसूक्त'का पाठ करना चाहिये।

हे गरुड! मृत्युके आ जानेपर जो कर्म करना चाहिये वह सब मैंने तुम्हे सुना दिया। अब इस समस्त कर्मका फल क्या है? उसको मैं सक्षेपमे कहता हूँ, तुम सुनो।

हे पक्षिराज! स्नान करनेसे प्राणीको स्वच्छता प्राप्त होती है। उससे शरीरकी अपवित्रता दूर होती है। उसके बाद भगवान् विष्णुका स्मरण होता है और उनका स्मरण सभी प्रकारके उत्तम फल प्रदान करता है। कुश और कपास आतुर प्राणीको स्वर्ग ले जाते हैं इसमे सदेह नहीं है। तिल तथा कुश जलमे डालकर मरणासन्न व्यक्तिको कराया गया स्नान यज्ञमे किये गये अवभृथ-स्नानके समान होता है। ऐसे ही गोमयसे लिपी हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसपर तिल कुश आदि डालकर यदि मरणासन्न व्यक्तिको सुलाया जाय तो विष्णु आदि देव प्रसन्न होते हैं क्योंकि ब्रह्मा विष्णु, रुद्र लक्ष्मी और अग्निदेव मण्डलमे रहते हैं। इसीलिये मरणासन्न व्यक्तिको जिस भूमिपर शयन कराना

है वहाँपर मण्डलका निर्माण करना चाहिये। हे खगेश! पूर्व अथवा उत्तरकी ओर यदि मरणासन्न व्यक्तिका सिर कर दिया जाय यदि उसके पाप कम हा तो इतनेमात्रसे उसे उत्तम लोक प्राप्त हो सकते हैं। आतुर व्यक्तिके मुखम पञ्चरत्न डालनेपर उसमे ज्ञानका उदय होता है। हे पक्षिन्! तुलसी, ब्राह्मण, गौ, विष्णु और एकादशीव्रत—ये पाँच ससार-सागरमे डूबते हुए मनुष्याके लिये नौकाके समान हैं।[१] विष्णु, एकादशी, गीता तुलसी, ब्राह्मण एव गौ—यह षट्पदी इस असार और जटिल ससारम प्राणीको भक्ति प्रदान कराती है। '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस प्रकार भगवान् विष्णुके मन्त्रका जप करता हुआ मनुष्य निस्सदेह उन्हींका सायुज्य प्राप्त करता है। पूजा करनेसे भी मेरे (भगवान् विष्णु) लोकको प्राप्ति होती है, मेरी पूजा करनेवाला साक्षात् स्वर्गलोकको जाता है। हे काश्यप! 'पुरुषसूक्त'के पाठसे अपने परिजनाके व्यामोहम फँसा हुआ प्राणी बन्धनसे मुक्त हो जाता है। परलाक-प्राप्तिके जितने साधन बताये गये हैं, उनम जिन साधनाकी अधिकता होगी, उन्हींका फल मनुष्यको अधिकाधिक प्राप्त हागा। यथाशक्ति ब्राह्मणा, दीनो और अनाथोको दान देना चाहिय ऐसा करनेसे वह सदैव प्रसन्न रहता है।

हे साधो! स्नानादि करनेपर मनुष्यको प्राप्त होनेवाले समस्त फलोका विवरण यही है, इसको मैंने कह दिया। अब इस ब्रह्माण्डमे जो गुण विद्यमान हैं, उन्हे तुम सुनो। वे सब तुम्हारे शरीरम भी हैं। पाताल, पर्वत, लोक, द्वीप, सागर, सूर्यादि सभी ग्रह तुम्हारे शरीरमे ही स्थित हैं। यथा—पैरक नीचे तललोक, पैरके ऊपर वितललोक, दोनो जानुओमे सुतललोक और सक्थि-प्रदेशम महातल नामक लोक समझने चाहिये। वैसे ही ऊरु-भागम तलातललोक तथा गुह्य-स्थानम रसातललोक स्थित है। ऐसे ही प्राणीक कटिप्रदेशमे पाताललोककी स्थिति समझे। नाभिके मध्यमे भूर्लोक, उसके ऊपर भुवर्लोक हृदयम स्वर्गलोक कण्ठदेशमे महर्लोक मुखम जनलोक मस्तकमे तपोलोक एव महारन्ध्रमे सत्यलोक है। इस प्रकार मनुष्यके इसी शरीरमे चौदह भुवन विद्यमान हैं।

शरीरके त्रिकोणम मरु, अध कोणमे मन्दर, दक्षिणम कैलास, वामभागमे हिमालय, ऊर्ध्वभागम निषध, दक्षिणमे गन्धमादन और वामरेखामे मलय—इन सात कुल पर्वताकी स्थिति है। इस देहके अस्थिभागम जम्बूद्वीप, मज्जामे शाक-द्वीप, मासम कुशद्वीप शिराओम क्रौञ्चद्वीप, त्वचामे शाल्मलिद्वीप, रोम-समूहमे प्लक्षद्वीप और नखोमे पुष्कर नामका द्वीप है। उसके बाद शरीरम सागराका स्थान है। जैसे मूत्रमे क्षारोदसागर, शरीरके क्षारतत्त्वमे क्षीरसागर, श्लेष्मामे सुरोदधिसागर, मज्जाम घृतसागर, रसमें रसोदधिसागर, रक्तमे दधिसागर, काकुमे लटकते हुए मासलभागम स्वादूदक-सागर तथा शुक्रम गर्भोदकसागर है। नादचक्रमे सूर्य, बिन्दुचक्रम चन्द्रमा, नेत्रम मगल, हृदयमे बुध, विष्णुस्थानम गुरु, शुक्रम शुक्र, नाभिस्थानमे शनि, मुखम राहु और पायुम केतुको माना गया है। इस प्रकार शरीरम ग्रहमण्डलकी स्थिति है।

मनुष्यका आपादमस्तक—सम्पूर्ण शरीर इसी सृष्टिके रूपमे विभक्त है। जो लोग इस ससारम उत्पन्न होते हैं, वे मृत्युको निश्चित ही प्राप्त होते हैं। भूख, प्यास, क्रोध, दाह, मूर्च्छा, बिच्छूके डक तथा सर्पके दशसे उत्पन्न कष्ट सब इसी शरीरम हैं। समयके पूरा हो जानेपर सभी प्राणियाका विनाश निश्चित है। यमलोकम गये हुए जीवके आगे-आगे वही लोग दौडते हैं, जो पापी हैं, अधम हैं और दया-धमसे दूर हैं। यमदूत उनके बाल पकडकर घसीटते हुए अत्यन्त सतप्त मरुस्थल तथा दहकते हुए अगारोके बीचसे ले जाते हैं। अत्यन्त दु खसे कातर इन पापियोको यमलोककी एक झोपडीमे तबतक रहना पडता है, जबतक पुनर्जन्म नहीं होता है।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार जीव कर्मानुसार जन्म लेता है और मृत्युको प्राप्त होता है। इस ससारम जो उत्पन्न हुए हैं, वे अवश्य ही मरेगे—इसमे सदेह नहीं है। 'आयु, कर्म, धन विद्या और मृत्यु—ये पाँचा गर्भमे प्राणीके रहनेके समय ही निश्चित हो जाते हैं'—

१-पञ्चरत्ने मुखे मुक्ते जीवे ज्ञान प्ररोहति । तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग॥
पञ्चप्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जता नृणाम् । विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनव ॥
असारे दुर्गससारे षट्पदी भक्तिदायिनी । नमो भगवते वासुदेवायेति जपेन्नर ॥ (३२।९९—१०१)

आयु कर्म च वित्त च विद्या निधनमव च॥
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिन ।
(३२।१२५-१२६)

जीव कर्मसे ही जन्म लेता है और विनष्ट होता है। सुख-दु ख, भय एव कल्याण कर्मसे ही प्राप्त हाते हैं। नीचेकी ओर मुख तथा ऊपरकी आर पैर किये हुए प्राणीको गर्भसे वायु ही खींचकर बाहर लाता है। जन्म लेत ही उस देहधारीको सद्य विष्णुकी माया सम्मोहित कर लेती है। अपन द्वारा किये गये पाप-पुण्यसे सम्बन्धित योनिम जीवका जन्म प्राप्त होता है।

ह खगेश्वर! उत्तम प्रकृतिवाला व्यक्ति अपने सुकृतसे अच्छे भाग भागता ह, उसका जन्म भी सत्कुलमे हाता है। किंतु जैसे-जैसे उसके द्वारा दुष्कृत होता है, वैसे-ही-वैसे उसका जन्म भी नी कुलम होने लगता है। वह उसी दुष्कर्मसे दरिद्र रोगी मूख और अन्यान्य दु खाका पात्र बन जाता है। (अध्याय ३२)

यमलोक, यममार्ग, यमराजके भवन तथा चित्रगुप्तके भवनका वर्णन, यमदूतोद्वारा पापियोको पीडित करना

गरुडने कहा—हे तात! आपने अपने इस पुत्रको जीवकी उत्पत्तिका सम्पूर्ण लक्षण बता दिया, किंतु सचराचर—इन तीना लाकाके बीच यमलोकका कितना परिमाण है? उसका विस्तार मुझे बताये। उसके मागकी कितनी दूरी ह? हे देव! किन पापाक करनमे अथवा किस शुभ कर्मके प्रभावसे मानवजाति वहाँ जाती हे? विशेष रूपस बतानेकी कृपा करे।

श्रीभगवान‌्ने कहा—ह पक्षिराज! प्रमाणत यमलाकका विस्तार छियासी हजार याजन हे। मनुष्यलोकक बीचसे ही उस लोकका मार्ग है जो धौकनीसे दहकाये गये ताँबेके समान प्रज्वलित ओर दुर्गम महापथ ह। पापी तथा मूर्ख व्यक्ति वहाँ जाते हैं। अत्यन्त तेज दखनेमे महाभयकर लगनेवाले अनेक प्रकारके काँटे उस महापथमे हैं। उन्हीं काँटासे परिव्याप्त, ऊँची-नीची अग्निके समान दहकती हुई उस महापथकी भूमि है। वहाँ वृक्षाका कोई छाया भी नही है जहाँपर ऐसा मनुष्य रुक करक विश्राम कर सक। उस मार्गमे अन्नादिकी भी व्यवस्था नहीं है जिसके द्वारा प्राणी अपन प्राणाकी रक्षा कर सक। वहाँ जल भी नहीं दिखायी दता है जिसस उसकी प्यास बुझ जाती हो। भूख-प्याससे पीडित वह पापी उसी महापथम चलता हे। अत्यन्त दुर्गम उस यममार्गम वह ठडकसे काँपने लगता है। जिसका जितना आर जिस प्रकारका पाप है उसका उतना वैसा ही मार्ग है। अ---न दीन-हीन-कृपण और मूख तथा दु खसे व्याप्त प्राणी उसी मार्गका पार करत हैं। आत्मकृत दोषास बारम्बार सतप्त कुछ लोग वहाँके असह्य कष्टसे व्यथित होकर करुण चीत्कार करते हैं, कुछ लाग वहाँकी कुव्यवस्थाके प्रति विद्रोह कर दते हैं।

हे खगेश! उस कठोर मार्गका ऐसा ही जानना चाहिये। जो लोग इस ससारक प्रति किसी प्रकारकी तृष्णा नहीं रखते हैं, वे उस मार्गपर सुखपूर्वक जाते हैं। पृथ्वीपर मनुष्य जिन-जिन वस्तुआका दान देता है वे सभी वस्तुएँ यमलोक तथा उस महापथम उसके सामने उपस्थित रहती हैं। जिस पापीको श्राद्ध और जलाञ्जलि नहीं प्राप्त होती है, वे पाप-कर्म करनेवाले क्षुद्र प्राणी वायु बनकर भटका करते हैं।

हे सुव्रत! मैंने इस प्रकारके उस रौद्र पथको तुम्हे बता दिया है। अब मैं पुन यममार्गकी स्थिति बताऊँगा।

दक्षिण और नैर्ऋत दिशाके मध्यम विवस्वत्पुत्र यमराजकी पुरी है। वह सम्पूर्ण नगर वज्रमय तथा दिव्य है। देवता और असुर भी उसका भेदन नहीं कर सकत हैं। वह चौकोर है उसमे चार द्वार तथा सात चहारदीवारी एव तोरण हैं। यमराज स्वय अपने दूताके साथ उसीमे निवास करते हैं। प्रमाणत उसका विस्तार एक हजार याजन है। सभी प्रकारक रत्नोसे परिव्याप्त चमकती हुई बिजली तथा सूर्यके तेजस्वी स्वरूपके समान वह पुरी दिव्य है। उस पुरीमें धर्मराजका जा भवन है, वह स्वणक समान कान्तिमान् है। उसका विस्तार पाँच सौ योजन ऊँचा है। हजार खभोवाले उस भवनका वैदूर्य मणियोसे सुसज्जित किया गया है। उसके जालमार्ग अर्थात् गवाक्ष मुक्तामणियासे बने हैं।

सैकडो पताकाएँ उसकी शोभा बढाती हैं। घण्टाकी सैकडो ध्वनियाँ उस भवनमे होती रहती हैं। उसमे सैकडो, तोरणद्वार बनाये गये हैं। इसी प्रकारसे वह भवन अन्यान्य आभूषणोसे विभूषित रहता है।

वहाँ दस योजनमे विस्तृत नीले मेघके समान शोभा-सम्पन्न, सम एव शुभ आसनपर भगवान् धर्मराज स्थित रहते हैं। ये धर्मज्ञ, धर्मशील, धर्मयुक्त और कल्याणकारी हैं। ये ही पापियोको भय देनेवाले तथा धार्मिकोको सुख देनेवाले हैं। यहाँपर शीतल मन्द वायु बहती रहती है, अनेक प्रकारके उत्सव और व्याख्यान होते रहते हैं, सदैव शख आदि माङ्गलिक वाद्योकी ध्वनियाँ सुनायी देती हैं। उन्हींके बीच धर्मराजका सम्पूर्ण समय बीतता है।

उस पुरके मध्यभागमे प्रवेश करनेपर चित्रगुप्तका भवन पडता है, जिसका विस्तार पचीस योजन है। उसकी ऊँचाई दस योजन है। वह लोहेकी परिखाके द्वारा चारो ओरसे घिरा हुआ एक महादिव्य भवन है। इसमे आने-जानेके लिये सैकडो गलियाँ हैं और सैकडो पताकाओसे यह सुशोभित रहता है। सैकडो दीपक इस भवनमें प्रज्वलित रहते हैं। बदीजनोके द्वारा गाये-बजाये गीत और वाद्य-यन्त्रोकी ध्वनियोसे यह भवन गुञ्जायमान रहता है। चित्रगुप्तके इस भवनको सुन्दरतम चित्रोसे सजाया गया है। इस भवनमे मुक्तामणियोसे निर्मित, परम विस्मयकारी एक दिव्य आसन है जिसके ऊपर बैठकर चित्रगुप्त मनुष्यो अथवा अन्य प्राणियोकी आयु-गणना करते हैं। किसीके पुण्य और पापके प्रति कभी उनमे मोह नहीं होता है। जिसने जबतक जो कुछ अर्जित किया है, वे उसको जानते हैं, वे अठारह दोषोसे रहित जीवद्वारा किये गये कर्मको लिखते हैं।

चित्रगुप्तके भवनसे पूर्व ज्वरका बहुत बडा भवन है। उनके भवनसे दक्षिण शूल और लताविस्फोटकके भवन हैं। पश्चिममे कालपाश, अजीर्ण तथा अरुचिके भवन हैं। मध्य पीठके उत्तरमे विषूचिका, ईशानकोणमे शिरोऽर्ति, आग्नेयकोणमे मूकता, नैर्ऋत्यकोणमें अतिसार, वायव्यकोणमें दाहसज्ञक रोगका घर है। चित्रगुप्त इन सभीसे नित्य परिवृत रहते हैं।

हे तार्क्ष्य! कोई भी प्राणी जो कुछ कर्म करता है, वह सब कुछ चित्रगुप्त लिखते हैं। धर्मराजके भवनके द्वारपर रात-दिन दूतगण उपस्थित रहते हैं। यमदूतोके महापाशसे बँधे पापी और नीच व्यक्ति मुद्गरोसे मार खाते हैं। वहाँ नाना प्रकारके पूर्वकृत पापकर्मोंसे युक्त मनुष्योको विभिन्न धारदार अस्त्र-शस्त्रो तथा अनेक यन्त्रोसे मारा जाता है। पापियोको दहकते हुए अगारोंके द्वारा घेर दिया जाता है। पूर्वकर्मोंके अनुसार लौह-पिण्डके समान वे उसीमे दग्ध किये जाते हैं। अन्य बहुत-से पापियोको पृथ्वीपर पटक करके कुल्हाडेसे उन्हे काटा जाता है। पूर्वकर्मके फलानुसार वे चिल्लाते हुए दिखायी देते हैं। कुछ पापियोको गुडपाक और कुछको तैलपाकमे डालकर पकाया जाता है। इस प्रकार उन यमदूतोसे पापियोको अत्यधिक कष्ट भोगना पडता है। अन्य पापी उन अत्यन्त निर्दयी दूतोसे बार-बार क्षमादानकी प्रार्थना करते हैं, पर यमदूत उनकी एक नहीं सुनते हैं।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार पापियोंके लिये कर्मानुसार बहुत-से नरक कहे गये हैं। (अध्याय ३३)

इष्टापूर्तकर्मकी महिमा तथा और्ध्वदैहिक कृत्य, दस पिण्डदानसे आतिवाहिक शरीरके निर्माणकी प्रक्रिया, एकादशाहादि श्राद्धका विधान, शय्यादानकी महिमा एव सपिण्डीकरण-श्राद्धका स्वरूप

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! शास्त्रके अनुसार धर्म और अधर्मका जो लक्षण किया गया है उसको तुम सुनो।

प्राणियोके आगे-आगे [illegible] दौडता है। विद्वानोने कृत (सत्य)-युगमे तप [illegible]युगमे ज्ञान, द्वापरमे यज्ञ और दान तथा कलियुगमे एकमात्र दानकी प्रशसा की है। मनीषियोने उत्तम प्रकृतिवाले गृहस्थजनोके लिये इस धर्मको स्वीकार किया है कि वे [illegible] इष्टापूर्तकर्म[1] करे, उसके करनेसे उन्हे [illegible] नही

[1] १-तालाब कुआँ आदि खुदवाना तथा देवालय औषधालय आदि बनवाना 'इष्टापूर्तकर्म' है।

होता। जो मनुष्य वृक्षारोपण करता है, गुफा, कुआँ और जलाशय खुदवाता है, उसको यममार्गमें चलते समय अत्यधिक सुखकी प्राप्ति होती है। जो लोग ठंडकसे पीडित ब्राह्मणको तापनेके लिये अग्नि प्रदान करते हैं, वे सभी कामनाओंको पूर्ण करके अतिशीतल यमलोकके मार्गमें अग्नि तापते हुए सुखपूर्वक जाते हैं। जिस मनुष्यने पृथ्वीका दान दिया है, उसने मानो स्वर्ण, मणि-मुक्तादि बहुमूल्य रत्न वस्त्र और आभूषणादिका सम्पूर्ण दान दे दिया। इस पृथ्वीपर मानव जो कुछ दानमें देते हैं, वे सब दिये गये पदार्थ यमलोकके महापथमें उनके समीप उपस्थित रहते हैं। पुत्र विधिपूर्वक अपने मृत पिताके लिये नाना प्रकारके जिन सुन्दर भोज्य-पदार्थोंका दान देता है, वे सभी पिताको प्राप्त होते हैं।

आत्मा (शरीर) ही पुत्रके रूपमें प्रकट होता है। वह पुत्र यमलोकमें पिताका रक्षक है। घोर नरकसे पिताका उद्धार वही करता है, इसलिये उसको पुत्र कहा जाता है। अतः पुत्रको पिताके लिये आजीवन श्राद्ध करना चाहिये तभी वह अतिवाहात्मक प्रेतरूप पिता, पुत्रद्वारा दानमें दिये गये पदार्थोंके भागोंसे सुख प्राप्त करता है। दग्ध हुए प्रेतके निमित्त परिजनोंके द्वारा जो जलाञ्जलि दी जाती है, उससे प्रसन्न होकर वह प्रेत यमलोकमें जाता है। प्रेतकी संतृप्तिके लिये तीन दिनतक रात्रिमें एक चौराहेपर रस्सी बाँधकर तीन लकडियोंके द्वारा बनायी गयी तिगोडियाके ऊपर कच्ची मिट्टीके पात्रमें दूध भरकर रखना चाहिये। हे पक्षिन्! वायुभूत वह प्रेत मृत्युके दिनसे लेकर तीन दिनतक आकाशमें स्थित उस दूधका पान करता है। दाहसे चौथे दिन अस्थि-संचयका कार्य करना चाहिये[1]। उसके बाद जलाञ्जलि प्रदान करे, किंतु इन जलाञ्जलियोंको पूर्वाह्न मध्याह्न अपराह्न तथा उनकी संधिकालोंमें न दे बल्कि दिनके प्रथम प्रहरके बीत जानेपर दे। नदीमें पुत्रके द्वारा जलाञ्जलि दिये जानेके पश्चात् सभी सगोत्री हितैषी और बन्धु-बान्धव-स्वजातियों तथा परजातियोंके साथ जलदान करें। किसी भी कारण शीघ्रतावश मुख्य अधिकारी पुत्रके जलाञ्जलि देनेके पूर्व ही जलाञ्जलि नहीं देनी चाहिये। जब स्त्रियाँ श्मशानभूमिसे वापस हो जायँ तभी लोकाचार किया जाय।

शूद्रकी मृत्यु हो जानेपर जो ब्राह्मण उसकी चिताके लिये लकड़ी लेकर जाता है अथवा उसके पीछे-पीछे चलता है, वह तीन रात्रियोंतक अशुद्ध रहता है। तीन रात्रियोंके पश्चात् समुद्रमें मिलनेवाली गङ्गा आदि पवित्र नदीके तटपर पहुँचकर वह स्नान करे। तदनन्तर सौ प्राणायाम करके गोघृतका प्राशन करे, तब उसकी शुद्धि होती है। शूद्र सभी वर्णोंके शवोंका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है, वैश्य तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य)-के शवोंका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है क्षत्रिय दो वर्णों (ब्राह्मण और क्षत्रिय)-के शवोंका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है और ब्राह्मण केवल अपने ही वर्णके शवका अनुगमन कर उसे जलाञ्जलि दे सकता है।[2] हे काश्यप! जलाञ्जलि देनेके पश्चात् दन्तधावन करना चाहिये। सभी सगोत्री नौ दिनोंतक दन्तधावनका परित्याग कर देते हैं तथा यथाविधान नौ दिनतक जलाञ्जलि देनेके लिये जलाशयपर जाते हैं। विद्वानोंका कहना है कि जो भी मनुष्य जिस स्थान मार्ग अथवा घरमें मृत्युको प्राप्त करता है उसको वहाँसे श्मशानभूमिके अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं ले जाना

१-अस्थि-संचयनके विषयमें संवर्त-वचनके अनुसार—

(क) प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसञ्चयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह॥

(ख) अपरह्णस्तृतीये वा दाहानन्तरमेव वा।

प्रथम दिन तृतीय सप्तम अथवा नवम दिन या दाहके पश्चात् ही चिताको जलसे शान्त करके अपने गोत्रवालोंके साथ अस्थि संचयन करना चाहिये।

२-इसका तात्पर्य यह है कि इस व्यवस्थाके अनुसार शवका अनुगमन करनेमें किसी विशेष प्रकारकी अशुचिता एवं उसकी शुद्धिके लिये किसी विशेष प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं होती। किसी तरहके आपत्कालमें अथवा लोकसंग्रहकी दृष्टिसे या अन्य किसी सहायकके अनुपलब्ध होनेपर जिस किसी भी जातिके शवकी अन्त्येष्टिके लिये यथोचित सहयोग सबको ही करना चाहिये और ऐसा करनेपर शास्त्रीय व्यवस्थाके अनुसार अशुचिताके निराकरणके लिये यथाविधान प्रायश्चित्त भी कर लेना चाहिये।

चाहिये। दाह-संस्कारके पश्चात् स्त्रियोंको आगे-आगे चलना चाहिये। उनके पीछे-पीछे अन्य व्यक्तियोंके समूहको चलना चाहिये। वहाँसे आनेके बाद उन सभीको एक पत्थरके ऊपर बैठकर आचमन करना चाहिये। तत्पश्चात् वे पूर्णपात्रमें रखी गयी यव, सरसों और दूर्वाका दर्शन करें, नीमकी पत्तियोंका प्राशन कर तथा तेल लगाकर स्नान करें। सगोत्रियोंमें जिनके यहाँ मृत्यु हुई है, उनका भोजन नहीं करना चाहिये। अपने घरका अन्न नहीं खाना चाहिये और न ही खिलाना चाहिये। भोजन करनेमें मृत्पात्रका प्रयोग करना चाहिये एवं उस उच्छिष्ट पात्रको ऊपर मुख करके ही एकान्त स्थानमें रख देना चाहिये। मृतकके गुणोंका कीर्तन करें, 'यमगाथा' का पाठ करें और पूर्व जन्ममें संचित शुभाशुभका चिन्तन करें।

वह मृत प्राणी वायुरूप धारण करके इधर-उधर भटकता है और वायुरूप होनेसे ऊपरकी ओर जाता है। वह प्राप्त हुए शरीरके द्वारा ही अपने पुण्य और पापके फलोंका भोग करता है। दशाह-कर्म करनेसे मृत मनुष्यके लिये शरीरका निर्माण होता है। नवक एवं षोडश श्राद्ध करनेसे जीव उस शरीरमें प्रवेश करता है। भूमिपर तिल और कुशका निक्षेप करनेपर वह कुटी धातुमयी हो जाती है। मरणासन्न प्राणीके मुखमें पञ्चरत्न डाल देनेसे जीव ऊपरकी ओर चल देता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो जीवका शरीर नहीं मिल पाता अर्थात् वह इधर-उधर भटकता रहता है। इसलिये आदरपूर्वक भूमिपर तिल और दर्भका बिछाना चाहिये।

जीव जहाँ-कहीं भी पशु या स्थावरयोनिमें जन्म लेता है, जहाँ वह रहता है, वहींपर उसके उद्देश्यसे दी गयी श्राद्धीय वस्तु पहुँच जाती है। जिस प्रकार धनुर्धारीके द्वारा लक्ष्यवेधके लिये छोड़ा गया बाण उसी लक्ष्यको प्राप्त करता है, जो उसको अभीष्ट है, उसी प्रकार जिसके निमित्त श्राद्ध किया जाता है, वह उसीके पास पहुँच जाता है। जब-तक मृतकके सूक्ष्म शरीरका निर्माण नहीं होता है तबतक किये गये श्राद्धोंसे उसकी संतृप्ति नहीं होती है। भूख-प्याससे व्यथित होकर वायुमण्डलमें इधर-उधर चक्कर काटता हुआ वह जीवात्मा, दशाहके श्राद्धसे संतृप्त होता है। जिस मृतकका पिण्डदान नहीं हुआ है, वह आकाशमें भटकता ही रहता है। वह क्रमशः—तीन दिन जल, तीन दिन अग्नि, तीन दिन आकाश और एक दिन (अपने प्रिय जनोंके ममतावश) अपने घरमें निवास करता है। अग्निमें शरीरके भस्म हो जानेपर प्रेतात्माको जलसे ही तृप्त करना चाहिये। इसके बाद जलसे ही उसकी तेल-स्नानकी क्रिया पूर्ण करे तथा घरमें पूआ और कृशर अन्नसे श्राद्ध करे। मृत्युके पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें अथवा ग्यारहवें दिन जो श्राद्ध होता है, उसको नवक श्राद्ध कहा जाता है। गृहद्वार, श्मशान, तीर्थ या देवालय अथवा जहाँ-कहीं भी प्रथम पिण्डदान दिया जाता है, वहींपर अन्य सभी पिण्डदान करने चाहिये। एकादशाहके दिन जिस श्राद्धको करनेका विधान है, उसका सामान्य श्राद्ध कहा गया है। ब्राह्मणादि चारों वर्णोंकी शरीर-शुद्धिके लिये स्नान ही एकमात्र साधन है। एकादशाह-संस्कारके पूर्ण हो जानेके पश्चात् पुनः स्नान करके शुद्ध होना चाहिये। अनन्तर शय्यादान करना चाहिये, क्योंकि शय्यादानसे प्रेतको मुक्ति मिलती है। यदि प्रेतका कोई सगोत्री न हो तो उसके अन्त्येष्टि कार्यको किसी औरको करना चाहिये अथवा उसकी भार्या करे या किसी ऐसे पुरुषको करना चाहिये, जो मृत व्यक्तिसे तुष्ट अर्थात् उसके सद्व्यवहारसे उपकृत हो। पहले दिन विधिपूर्वक श्राद्धयोग्य जिस अन्नादिसे पिण्डदान दिया जाता है, उसी अन्नादिसे सभी श्राद्ध करने चाहिये।[१] दशाह-श्राद्धका कर्म मन्त्रोंका प्रयोग बिना किये ही नाम-गोत्रोच्चारसे हो जाता है। जिन वस्त्रोंको धारण करके संस्कर्ता श्राद्धकर्म करता है, अशौचका दिन बीतनेके बाद उन्हें त्याग करके ही घरमें प्रविष्ट होना चाहिये। पहले दिन जो और्ध्वदैहिक कर्म आरम्भ कर उसीको दस दिनतक समस्त श्राद्धकृत्य सम्पन्न करना चाहिये। वह क्रिया करनेवाला चाहे सगोत्री हो या दूसरे गोत्रसे सम्बन्धित हो स्त्री हो अथवा पुरुष हो।

जिस प्रकार गर्भमें स्थित प्राणीके शरीरका पूर्ण विकास दस मासमें होता है, उसी प्रकार दस दिनतक दिये गये

१-प्रथमेऽहनि यः पिण्डो दीयते विधिपूर्वकम्। अन्नाद्येन च तेनैव सर्वश्राद्धानि कारयेत्॥ (३४। ४१)

पिण्डदानसे जीवके उस शरीरकी सरचना होती है। जिस शरीरसे उसे यमलोक आदिकी यात्रा करनी है। जबतक घरमे इसका अशौच होता है, तबतक पिण्डोदक-क्रिया करनी चाहिये। यह विधि ब्राह्मणादि चारा वर्णोके लिये मानी गयी है। पुत्रके अभावम जिनके लिये अशौच तीन राताका ही माना जाता है, व पहले दिन तीन, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन तीन पिण्डदान करे। प्रेतके लिये पृथक्-पृथक् मिट्टीके पात्रमे दूध तथा जल और चौथे दिन उसे एकादिष्ट-श्राद्ध करना चाहिये।

हे अण्डज! पहले दिन जो पिण्डदान दिया जाता है उससे जीवकी मूर्द्धाका निर्माण होता है। दूसरे दिनके पिण्डदानसे आँख, कान और नाककी रचना होती है। तीसरे दिनके पिण्डदानद्वारा दाना गण्डस्थल मुख तथा ग्रीवाभाग बनकर तैयार होता है। उसी प्रकार चौथे दिन उसक हृदय, कुक्षिप्रदेश एव उदरभाग, पाँचवे दिन कटिप्रदेश, पीठ और गुदाका आविर्भाव होता है। तत्पश्चात् छठे दिन उसके दोना ऊरु, सातवे दिन गुल्फ, आठवे दिन जघा नौव दिन पैर तथा दसवें दिन पिण्डदान देनेस प्रबल क्षुधाकी उत्पत्ति होती है। एकादशाहम जो पिण्डदान हाता है, उसको पायस आदि मधुर अन्नसहित प्रदान करे। निमन्त्रित ब्राह्मणके दोना पैर धोकर तथा उन्हे अर्घ्य धूप दीपादिसे पूजकर और सिद्धान्न कृशर, अपूप एव दूध आदिसे परिपूर्ण भोजन कराकर सतृप्त किया जाय। द्वादश मासिक श्राद्ध तथा ऊनमासिक त्रिपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक तथा ऊनाब्दिक—ये षोडश श्राद्ध कहे जाते है। (ग्यारहवे दिन इन श्राद्धोको करनकी विधि है।) प्राणीकी जो मृत्यु-तिथि हा, उसी तिथिपर प्रतिमास श्राद्ध करना चाहिये। प्रथम मासिक श्राद्ध मृताहके दिन न करके एकादशाहके दिन करना चाहिये। जिस तिथिको मनुष्य मरता है वही तिथि (अन्य) मासिक श्राद्धके लिये प्रशस्त होती है। ऊनमासिक ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक तथा त्रिपाक्षिक—इन श्राद्धाके लिये मृत्यु-तिथिका विचार नहीं करना चाहिये। उदाहरणार्थ—पूर्णिमा तिथिमें जो व्यक्ति मरता है, उसके लिये अगली चतुर्थी तिथिको ऊनमासिक श्राद्ध करना चाहिये। जिसकी मृत्यु चतुर्थी तिथिको होती है, उसके लिये ऊनमासिक श्राद्ध नवमीको होना चाहिये और जो मनुष्य नवमी तिथिको मरता है, उसके लिये चतुर्दशी ऊनमासिक श्राद्धकी तिथि है। अत अन्त्येष्टि-कर्मकुशल विद्वान्‌को यह जान लेना चाहिये कि ये सभी तिथियाँ यथाविहित मृत्यु-तिथिके अनुसार रिक्ता ही हागी।

एकादशाहको जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम नवक है। इस दिन चौराहेपर प्रेतके निमित्त भोजन रख करके श्राद्धकर्ता पुन स्नान करे। एकादशाहसे वर्षपर्यन्त श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन सान्नोदक घटका दान करना चाहिये। मानव-शरीरमे जो अस्थियोका एक समूह विद्यमान है, जिसमें उनकी कुल सख्या तीन सौ साठ है। जलपूर्ण घटका दान देनेसे उन अस्थियाको पुष्टि मिलती है। इसलिये जो घट-दान दिया जाता है उससे प्रेतको प्रसन्नता प्राप्त होती है। जगल या किसी विषम परिस्थितिमे जीवकी मृत्यु जिस दिन होती है उस दिनसे घरमे सूतक होता है और उसीके अनुसार दशाहादि क्रियाएँ करनी चाहिये, दाह-सस्कार जब कभी भी हो।

तिलपात्र अन्नादिक भोज्यपदार्थ, गन्ध धूपादि एव पूजन-सामग्रीका जो दान है, उसको एकादशाहमें देना चाहिये। उससे ब्राह्मणकी शुद्धि होती है। मृत्यु और जन्ममे घरमे हानेवाले सूतकसे क्रमश —क्षत्रिय बारहवे दिन वैश्य पद्रहवे दिन तथा शूद्र एक मासमे शुद्ध होता है। मृत्युके तीन मास होनेपर त्रिरात्र छ मास होनेपर पक्षिणी, सवत्सर पूर्ण होनेसे पूर्व अहोरात्र तथा सवत्सर पूर्ण होनेपर जलदानकी क्रिया करनेसे शुद्धि होती है। इसीके अनुसार सभी वर्णोंकी शुद्धि होती है। कलियुगमे सूतककी समाप्ति दशाहम ही है। एकादशाहसे लेकर सावत्सरिक आदि सभी श्राद्धाके अवसरपर विश्वेदेवोकी पूजा करके अन्य पिण्डदान करना चाहिये। जैसे सूर्यकी किरणे अपने तेजसे सभी तारागणोको ढक देती हैं उसी

१-एकादशाह-श्राद्धक अनन्तर वर्षपर्यन्त किया जानेवाला एकोद्दिष्ट-श्राद्ध तथा प्रति सावतसरिक एकोद्दिष्ट-श्राद्ध विश्वेदेवपूजनपूर्वक करनेकी परम्परा नहीं है।

प्रकार प्रेतत्वपर इन क्रियाओका आच्छादन होनेसे भविष्यमे पुन प्रेतत्व नहीं मिलता है। अत सपिण्डनके अनन्तर कहीं 'प्रेत' शब्द प्रयोग नहीं होता।

श्रेष्ठ ब्राह्मण सर्वदा शय्यादानकी प्रशसा करते हैं। यह जीवन अनित्य है, उसे मृत्युके बाद कौन प्रदान करेगा? जबतक यह जीवन है, तबतक अपने बन्धु-बान्धव हैं और अपने पिता हैं। मृत्यु हो जानेपर यह मर गया है, ऐसा जान करके क्षणभरम ही वे अपने हृदयसे स्नेहको दूर कर देते हैं। इसलिये आत्मा ही अपना बन्धु है, ऐसा बारम्बार विचार करक जीते हुए ही अपने हितके कार्य कर लेना चाहिये। इस ससारमें मरे हुए प्राणीका कौन पुत्र है, जो बिस्तरके सहित शय्याका दान ब्राह्मणको दे सकता है? ऐसा सब कुछ जानते हुए मनुष्यको अपन जीवनकालम ही अपने हाथासे शय्यादानादि सभी दान कर देना चाहिये। अत अच्छी एव मजबूत लकडीकी सुन्दर शय्या बनवा करके उसे हाथीके दाँत तथा सोनेकी पट्टियासे अलकृत करक उस शय्याके ऊपर लक्ष्मीके सहित विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाको स्थापित करे। उसके बाद उसी शय्याके सनिकट घीसे परिपूर्ण कलश रखे। हे गरुड! वह कलश अपने सुखक लिये ही हाता है। विद्वानोने तो उसको निद्राकलश कहा है। ताम्बूल, केशर कुकुम, कपूर, अगुरु, चन्दन दीपक पादुका, छत्र, चामर, आसन, पात्र तथा यथाशक्ति सप्तधान्य उसी शय्याके बगलम स्थापित कर। इन वस्तुओके अतिरिक्त शयन करनेवालेके लिये जो अन्य उपयागी वस्तु हो उसको भी वहाँ रख। सोने-चाँदी या अन्य धातुसे बनी झारी, करक (करवा), दर्पण और पञ्चरगी चाँदनीसे उस शय्याको सयुक्त करके उस ब्राह्मणको दान दे दे।

कल्याणके लिये यजमान स्वर्गमे सुख प्रदान करनेवाली शय्याकी विधिवत् रचना करके सपत्नीक द्विज-दम्पतिकी पूजा करके उसका दान करे। कर्णफूल कण्ठहार अगूठी भुजबद तथा चित्रकादि आभूषण एव गौसे युक्त घरेलू उपकरणोसे परिपूर्ण घर उसको दानम दे। तदनन्तर पञ्चरत्न, फल और अक्षतसे समन्वित अर्घ्य उस ब्राह्मणका देकर यह प्रार्थना करनी चाहिये—

यथा न कृष्णशयनं शून्य सागरकन्यया।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि॥ (३४।८१)

जिस प्रकार समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीसे भगवान् विष्णुकी शय्या शून्य नहीं होती है, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरम मेरी शय्या भी शून्य न हो।

इस प्रकार ब्राह्मणको उस निर्मल शय्याका दान देकर क्षमापन करके उसे विदा करे। यही प्रेतशय्याकी विधि एकादशाह-सस्कारमे बतायी गयी है।

हे गरुड! अपने बान्धवकी मृत्यु होनेपर उनके निमित्त बन्धुजन धर्मार्थ जा दान देते हैं, उसके विषयम विशेष बात मैं कह रहा हूँ, उसको तुम सुनो।

हे पक्षिराज! अपने घरम पहलेसे जो कुछ उपयुक्त वस्तु हो, उस मृतकके शरीरसे सम्बन्धित जो वस्त्र, पात्र और वाहन हो, जो कुछ उसको अभीष्ट रहा हो, वह सब एकत्र करे। शय्याके ऊपर भगवान् विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाको स्थापित करके विद्वान् व्यक्ति उनकी पूजा करे और जैसा पहले कहा गया है, उसीके अनुसार ब्राह्मणको उस मृतशय्याका दान कर दे।

शय्यादानके प्रभावसे प्राणीको प्राप्त होनेवाला सम्पूर्ण सुख इन्द्र और यमराजके घरमे विद्यमान रहता है। इसके प्रभावसे महाभयकर मुखवाले यमदूत उसको पीडित नहीं करते हैं। वह मनुष्य यमलोकमे कहीं धूप और ठडकसे कष्ट नहीं पाता है। शय्यादानके प्रभावसे प्रेत बन्धनमुक्त हो जाता है। इस दानसे पापी व्यक्ति भी स्वर्गलाक चला जाता है। जो प्राणी पापसे रहित है वह अप्सराआसे सेवित विमानपर चढकर प्रलयपर्यन्त स्वर्गमे रहता है। जा नारी अपने पतिके लिये नवक षोडश और सावत्सरिक श्राद्ध तथा शय्यादान करती है, उसका अनन्त फल प्राप्त होता है। मृत पतिका उपकार करनेके लिये जो स्त्री जीवित रहती है, उसक साथ मरती नहीं ता वह सती जीवित रहते हुए भी अपने पतिका उद्धार कर सकती है। स्त्रीको अपने मृत पतिके लिये दधि, अन्न, शयन, अञ्जन कुकुम वस्त्राभूषण तथा शय्यादि सभी प्रकारक दान दना चाहिये। स्त्रियोके लिये इस लाकम जो कुछ वस्तुएँ उपकारक हा जो कुछ

शरीरपर प्रयाग किये जान याग्य वस्त्राभूषण और भाग्य वस्तुएँ हो, उन सभीको मिला करके प्रेतकी प्रतिमा बनाकर उन्हे यथास्थानपर नियाजित करके लाकपाल इन्द्रादि देवगण सूर्यादिक ग्रह, गौरी तथा गणेशकी पूजा करे। उसके बाद श्वेत वस्त्र धारण करके पुष्पाञ्जलि सहित ब्राह्मणके समक्ष इस मन्त्रका उच्चारण करे—

प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा सर्वोपकरणैर्युता।
सर्वरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता॥
आत्मा शम्भु शिवा गौरी शक्र सुरगणै सह।
तस्माच्छय्याप्रदानेन सैष आत्मा प्रसीदतु॥
(३४।९६-९७)

हे विप्रदेव! प्रेतकी यह प्रतिमा सभी उपकरणो और समस्त रत्नोसे युक्त है। मैं आपको इसे प्रदान करता हूँ। आत्मा ही शिव है। यही शिवा और गौरी है। यही सभी देवताओके साथ इन्द्र है। अत इस शय्यादानसे यह आत्मा प्रसन्न हो।

इसके बाद उस शय्याको परिवारवाले आचार्य ब्राह्मणको प्रदान करे। ब्राह्मण उसको ग्रहण करनेके बाद 'कोऽदात०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। तत्पश्चात् उस ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करे और उन्हे वहाँसे विदा करे।

हे पक्षिन्! इस विधिसे एक शय्याका एक ही ब्राह्मणको दान देना चाहिये। एक गौ एक गृह, एक शय्या और एक स्त्रीका दान बहुतोके लिये नहीं होता है। विभाजित करके दिये गये ये दान दाताको पापकी कोटिमे गिरा देते है।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार बतायी गयी विधिके अनुसार जो प्राणी शय्यादिका दान करे तो उसे जो फल प्राप्त होता है, उसको तुम सुनो। इस दानसे दाता सौ दिव्य वर्षोतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। व्यतीपात योग कार्तिक पूर्णिमा, मकर तथा कर्ककी संक्रान्तिमे सूर्य-चन्द्रग्रहणमे द्वारका प्रयाग नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र अर्बुद (आबू) पर्वत गङ्गा यमुना तथा सिन्धु नदी और सागरके संगम-तटपर जो दान दिया जाता है, यह उससे भी बडा दान है। इस शय्यादानके सोलहवे अंशको भी वे सभी दान प्राप्त नहीं कर पाते हैं। वह प्राणी जहाँ जन्म लेता है वहीं उस पुण्यका फल भोगता है। स्वर्गमे रहने योग्य पुण्यके क्षय होनेके बाद वह सुन्दर स्वरूप धारण करके पृथ्वीपर पुन जन्म लेता है। वह महाधनी, धर्मज्ञ तथा सर्वशास्त्रोंका निष्णात पण्डित होता है और मृत्यु होनेके बाद वह नरश्रेष्ठ पुन वैकुण्ठलोक चला जाता है। अद्भुत है! अप्सराओसे चारो ओर घिरा हुआ वह प्राणी दिव्य विमानपर चढकर स्वर्गमे अपने पितरोके साथ हव्य-कव्य ग्रहण करते हुए प्रसन्न रहता है।

हे तार्क्ष्य! यदि पितर प्रेतत्वको प्राप्त हैं तो सपिण्डीकरणके बिना अष्टका, अमावास्या, मघा नक्षत्र तथा पितृपर्वमे किये गये जो-जो श्राद्ध हैं वे पितरोको नहीं प्राप्त होते हैं। सपिण्डीकरणका कार्य वर्ष पूरा हो जानेपर करना चाहिये। इसमे संशय नहीं है। शवकी शुद्धिके लिये आद्य श्राद्ध करके षोडशीका सम्पादन करे। तदनन्तर पितृपंक्तिकी (पितरोकी पंक्तिमे प्रवेशके लिये) शुद्धिके लिये पचासवे प्रेतपिण्डका अन्य पिण्डोके साथ मेलन करे। वृद्धि श्राद्धकी सम्भावना होनेपर एक वर्षके पहले ही (छ अथवा तीन माह या डेढ माहमे एव बारहवे दिन सपिण्डीकरण श्राद्ध कर देना चाहिये। शूद्रका श्राद्ध स्वेच्छापूर्वक हो सकता है। अग्निहोत्री ब्राह्मणकी मृत्यु होनेपर द्वादशाहको सपिण्डन-कर्म होना चाहिये। जबतक वह कर्म नहीं किया जाता है तबतक वह मृत अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रेतयोनिमे ही रहता है। अत अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मणको द्वादशाहमे ही सपिण्डीकरणकी क्रिया कर देनी चाहिये। गङ्गा आदि महानदियोमे अस्थि-क्षेपण गयातीर्थ-श्राद्ध पितृपक्षमे होनेवाले श्राद्ध सपिण्डीकरणके बिना वर्षके मध्यमे नहीं करना चाहिये। यदि बहुत-सी सपत्नियाँ हो और उनमेसे एक भी स्त्री पुत्रवती हो जाय तो उसी एक पुत्रसे ही वे सभी पुत्रवती होती हैं।

असपिण्ड अग्निहोत्री पुत्रको पितृयज्ञ नहीं करना चाहिये। यदि वह ऐसा आचरण करता है तो पापी होगा और उसे पितृहत्याका भी पाप लगेगा। पतिकी मृत्यु होनेपर जो स्त्री अपने प्राणोका परित्याग कर देती है तो पतिके साथ ही उसका भी सपिण्डीकरण कर देना चाहिये। पिताकी अनुचित रूपसे लायी गयी विवाहिता वैश्यवर्णा अथवा क्षत्रिया जो भी पत्नियाँ हो उनका सपिण्डन कोई भी पुत्र

कर सकता है। जब प्रमादवश ब्राह्मण किसी शूद्रा कन्यासे ही विवाह कर लेता है तो मरनेके बाद उसके लिये एकोद्दिष्ट-श्राद्ध बताया गया है और सपिण्डीकरण-श्राद्ध उसीके साथ करना चाहिये। अन्य चारों वर्णोंसे ब्राह्मणके चाहे दसों पुत्र हों, किंतु उन्हें अपनी-अपनी माँके सपिण्डीकरणकी क्रियामें नियुक्त होना चाहिये। अन्वष्टका पौष, माघ और फाल्गुनमासके कृष्णपक्षकी नवमी तिथि (जो साग्नियोंका मातृक श्राद्ध होता है)-को होनेवाला तथा वृद्धिहेतुक श्राद्ध एवं सपिण्डन-श्राद्धमें पितासे पृथक् माताका पिण्ड प्रदान करना चाहिये।[1] हे तार्क्ष्य! पितामहीके साथ माता और पितामहके साथ पिताका सपिण्डन अपेक्षित है ऐसा मेरा अभिमत है। यदि स्त्री पुत्रहीन ही मर जाती है तो उसका सपिण्डन पति करे। धर्मतः पतिको अपनी माता, पितामही एवं प्रपितामही—इन तीनोंके साथ अपनी पत्नीका सपिण्डन करना चाहिये।

हे गरुड! यदि स्त्रियोंके पुत्र तथा पति दोनों नहीं हैं तो वृद्धिकालके आनेपर स्त्रीका भाई अथवा दायभागका गृहीता या देवर उसका सपिण्डन करे। यदि पति एवं पुत्ररहित स्त्रियोंके न तो कोई सगोत्री हो और न देवर ही हो तो उस समय अन्य व्यक्ति उसके भाइयोंके साथ उसका एकोद्दिष्ट विधानसे श्राद्ध कर सकता है। यदि भूलवश अथवा विघ्नके कारण सपिण्डन-क्रिया किसीकी नहीं हो सकी है तो उसके पुत्र या बन्धु-बान्धवको चाहिये कि वे नवक श्राद्ध षोडश श्राद्ध तथा आब्दिक श्राद्ध करे।

जिसका दाह नहीं हुआ है, उसके लिये श्राद्ध नहीं करना चाहिये। दर्भका पुत्तल बनाकर अग्निसे उसे जलाकर ही श्राद्ध करना चाहिये। पुत्रके द्वारा पिताका सपिण्डीकरण किया जा सकता है, किंतु पुत्रमें पिताका पिण्डमेलन नहीं किया जा सकता। प्रेमाधिक्यके कारण भी पिताको पुत्रमें सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये। जब बहुत-से पुत्र हो तब भी ज्येष्ठ पुत्र ही उस क्रियाको सम्पन्न करे। नवक सपिण्डन तथा षोडशादि अन्य सभी श्राद्धोंको करनेका अधिकारी वही एक है। धनका बँटवारा न होनेपर भी एक ही पुत्रको पिताके समस्त और्ध्वदैहिक कृत्य करना चाहिये। मुनियोंने भी इस बातको कहा है कि पिताकी अन्त्येष्टि एक ही पुत्र करता है। यदि पुत्रोंमें परस्पर बँटवारा हो गया है तो उन सभी पुत्रोंको पृथक्-पृथक् सांवत्सरादिक क्रिया करनी चाहिये। स्वयं प्रत्येक पुत्रको अपने पिताका श्राद्ध करना चाहिये। जिनके निमित्त ये षोडश प्रेतश्राद्ध सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, उनका अन्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी पिशाचत्व स्थिर रहता है।

हे खगेश्वर! पुत्रहीनका सपिण्डीकरण उसके भाई, भतीजे, सपिण्ड अथवा शिष्यको करना चाहिये। सभी पुत्रहीन पुरुषोंका सपिण्डन पत्नी करे अथवा ऋत्विज् या पुरोहितसे उस कार्यको सम्पन्न कराये। पिताकी मृत्यु हो जानेपर वर्षके मध्य जब सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हो तो पुत्रोंको पार्वणश्राद्ध नान्दीश्राद्ध नहीं करना चाहिये। माता-पिता और आचार्यकी मृत्यु होनेपर वर्षके मध्यमें तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध तथा अन्य पैतृक श्राद्ध नहीं करना चाहिये। पितृपक्ष, गजच्छाया योग, मन्वादि और युगादि तिथियोंमें सपिण्डीकरणके बिना पिताको पिण्डदान नहीं देना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि वर्षके मध्यमें भी यज्ञपुरुष तथा देवतादिके लिये जो देय है, उसका दान देना चाहिये। पितरोंको भी अर्घ्य और पिण्डसे रहित जो कुछ देय है, वह सब दिया जा सकता है। यही विधि कही गया है।

देवोंके लिये पितर देवता हैं, पितरोंके पितर ऋषि हैं, ऋषियोंके पितर देवता हैं इस कारण पिता सर्वश्रेष्ठ है। पितर देवतागण और मनुष्योंके यज्ञनाथ भगवान् विभु हैं। यज्ञनाथको जो कुछ दिया जाता है, वह समस्त शरीरधारियोंको दिया हुआ माना जाता है। पिताके मरनेपर वर्षके मध्य जो पुत्र अन्य श्राद्ध करता है, निस्सन्देह सात जन्मोंमें किये गये अपने धर्मसे हीन हो जाता है। पिण्डोदक क्रियादिसे रहित प्राणी प्रेत हो जाते हैं, वे इसी रूपमें भूख-प्याससे अत्यन्त पीडित होकर वायुके साथ चक्कर काटते हैं। यदि पिता प्रेतत्वयोनिमें पहुँच जाता है तो पुत्रके द्वारा की गयी समस्त पैतृकी क्रिया नष्ट हो जाती है। यदि माताकी मृत्यु हो जाती है तो पितृकार्य नष्ट नहीं होता है।

१-अन्वष्टकासु यच्छ्राद्धं यच्छ्राद्धं वृद्धिहेतुकम्। पितुः पृथक् प्रदातव्यं स्त्रिया पिण्डं सपिण्डने॥ (३४। १२०)

यदि माताकी मृत्यु हो जाय, पिता और पितामही अर्थात् दादी जीवित रहती है तो माताका सपिण्डन प्रपितामहीके साथ ही करना चाहिये। हे गरुड! मेरे इस वचनको सुनो। यह सर्वथा सत्य है। इस पृथ्वीपर जिन मरे हुए मनुष्योंका पिण्डमेलन अर्थात् सपिण्डीकरण नहीं होता है, उनके लिये पुत्रोंके द्वारा अनेक प्रकारसे दिया गया हन्तकार, उपहार, श्राद्ध तथा जलाञ्जलि उन्हे प्राप्त नहीं होती है। *(अध्याय ३४)*

~~~

सपिण्डीकरण-श्राद्धमे प्रेतपिण्डके मेलनका विधान, पितरोकी प्रसन्नताका फल, पञ्चक-मरण तथा शान्तिविधान, पुत्तलिकादाह, प्रेतश्राद्धमे त्याज्य अठारह पदार्थ, *मलिनषोडशी, मध्यमषोडशी तथा उत्तमषोडशी श्राद्ध, शवयात्रा-विधान*

तार्क्ष्यने कहा—हे जनार्दन! अब मुझे दूसरा सदेह उत्पन्न हो गया है। यदि किसी भी पुरुषकी माताका देहावसान हो गया है, किंतु उसकी पितामही, प्रपितामही, वृद्धप्रपितामही जीवित है और यदि पिता भी जीवित हो, मातामह, प्रमातामह एव वृद्धप्रमातामह भी जीवित हो तो उस माताका सपिण्डन किसके साथ किया जायगा? हे प्रभो! इसको बतानेकी कृपा करे।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिन्! पूर्वमे कहे गये सपिण्डीकरणविधानको मैं पुन कह रहा हूँ। यदि माताके उपर्युक्त सभी सम्बन्धी जीवित हैं तो माताके पिण्डका सम्मेलन उमा, लक्ष्मी तथा सावित्रीके साथ कर देना चाहिये। इस ससारमे तीन पुरुष पिण्डका भोग करनेवाले हैं तीन पुरुष त्याजक हैं तीन पुरुष पिण्डानुलेप और दसवाँ पुरुष पक्तिसनिध होता है। पिता तथा माताके कुलमे इन्हीं पुरुषोकी प्रसिद्धि होती है। यजमान अपनेसे पूर्व दस पुरुषो एव अपनेसे बादके दस पुरुषोका उद्धार कर सकता है। पहले जो तीन पुरुष बताये गये हैं अर्थात् पिता पितामह तथा प्रपितामह—ये सपिण्डीकरण करनेपर सपिण्ड माने गये हैं। जो प्रपितामहके पूर्व वृद्धप्रपितामह और उनसे दो पूर्व पुरुष हैं उन्हे त्याजक रूपमे स्वीकार करना चाहिये। इस अन्तिम त्याजक पुरुषके बाद जो पुरुष होता है वह प्रथम लेपक होता है उसके पूर्वमे जो अन्य दो पुरुष होते हैं उन्हे भी उसी लेपककी कोटिमे समझना चाहिये। इस कोटिके तीसरे पुरुषके पूर्व जो पुरुष होता है वह पक्तिसनिध है। इस प्रकार दस पूर्व पुरुषोंके बाद स्वय यजमान एक पुरुष है। भविष्यमे जो यथाक्रम दस पुरुष होते हैं उन सभीको मिलाकर पितरोकी सख्या इक्कीस होती है।

इस ससारमें विधिपूर्वक जो मनुष्य उक्त श्रेष्ठतम श्राद्ध करता है, उसम कर्ताकी ओरसे कोई सदेहकी स्थिति नहीं रह जाती है तो उसका जो फल होता है उसे भी तुम सुनो।

हे खगेश! पिता प्रसन्न होकर पुत्रोको सतान प्रदान करता है, जिससे उनकी वश-परम्परा अविच्छिन्न होती है। *श्राद्धकर्ताका प्रपितामह प्रसन्न हो करके स्वर्णदाता हो जाता* है। वृद्धप्रपितामह प्रसन्न होकर श्राद्धकर्ताको विपुल अन्नादि प्रदान करते हैं। *श्राद्धके जो ये फल हैं, ये ही पितरोंके* तर्पणसे भी प्राप्त होते हैं। हे पक्षिन्! इस मर्त्यलोकमे जिस पुरुषकी सतान-परम्परा नष्ट हो जाती है, वह मृत्युके बाद उसी प्रकार नरकलोकम वास करता है, जिस प्रकार कीचडमे फँसा हुआ हाथी होता है। (नरक-भोग प्राप्त करनेके बाद) वह प्राणी वृक्ष अथवा सरीसृप-योनिमे जन्म लेता है। वह उस नरकसे बिना सतानके निश्चित ही मुक्त नहीं होता है। अत सतानविहीन मरे हुए प्राणीके लिये आचार्य, शिष्य अथवा दूरके सगोत्री (अबान्धव)-को उसके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक 'नारायणबलि' कर देनी चाहिये। उस कृत्यसे पापविमुक्त होकर वह विशुद्धात्मा निश्चित ही नरकसे छुटकारा पा जाता है और स्वर्गम जाकर वास करता है। इसम कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

धनिष्ठासे लेकर रेवतीपर्यन्त जो पाँच नक्षत्र हैं ये सभी सदैव अशुभ होते हैं। उन नक्षत्रामे ब्राह्मण आदि समस्त जातियोका दाह-सस्कार या बलिकर्म नहीं करना चाहिये। इन नक्षत्रामे मृत प्राणीके लिये जल भी प्रदान करना उचित नहीं है ऐसा करनेसे वह अशुभ हो जाता है। दु खार्त

१- विनापि प्रत्यय पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्य —इस वार्तिकसे प्र शब्दका लोप हो जानेसे मूलमें पितामही पदको प्रपितामही समझना चाहिये।
~~~

(मृत) स्वजन हो ता भी इस कालम लोक (शव)-यात्रा नहीं करनी चाहिये। स्वजनको पञ्चककी शान्तिके बाद ही मृतका सब सस्कार करना चाहिये, अन्यथा पुत्र और सगोत्रियाको उस अशुभ पञ्चकके कुप्रभावस दु ख ही झलना पडता है। जो मनुष्य इन नक्षत्रोम मृत्यु प्राप्त करता है, उसके घरम हानि हाती है।

इस पञ्चककी अवधिम जो प्राणी मर जाता है उसका दाह-सस्कार तत्सम्बन्धित नक्षत्रके मन्त्रसे आहुति प्रदान करके नक्षत्रक मध्यकालम भी किया जा सकता है। सद्य की गयी आहुति पुण्यदायिनी हाती है, तीर्थम किया गया दाह उत्तम होता है। ब्राह्मणाका ंयमपूर्वक यह कार्य मन्त्रसहित विधिपूर्वक करना चाहिये। वे यथाविधि अभिमन्त्रित कुशकी चार पुत्तलिकाआका बना करके शवके समीपम रख द। उसके बाद उन पुत्तलिकाआके सहित उस शवका दाह-सस्कार कर। तदनन्तर सूतकक समाप्त होनेपर पुत्रको शान्तिकर्म भी करना चाहिये।

जो मनुष्य इन धनिष्ठादि पाँच नक्षत्राम मरता है, उसका उत्तम गति नहीं प्राप्त होती है। अतएव उसके उद्देश्यसे तिल गौ सुवर्ण और घृतका दान विप्राको देना चाहिये। ऐसा करनेसे सभी प्रकारके उपद्रवाका विनाश हो जाता है। अशौचके समाप्त होनेपर मृत प्राणी अपने सत्पुत्रासे सद्गति प्राप्त करता है। जा पात्र, पादुका छत्र, स्वर्ण मुद्रा, वस्त्र तथा दक्षिणा ब्राह्मणको दी जाती है, वह सभी पापाको दूर करनेवाली है। पञ्चकम मरे हुए बाल युवा आर वृद्ध प्राणियाका और्ध्वदेहिक सस्कार प्रायश्चित्तपूर्वक जा मनुष्य नहीं करता है उसके लिय नाना प्रकारका विघ्न जन्म लेता है।

प्रतश्राद्धमे अठारह वस्तुएँ त्याज्य होती हैं। यथा—आशीर्वाद द्विगुण कुश (मोटक), प्रणवका उच्चारण एकसे अधिक पिण्डदान अग्नौकरण उच्छिष्ट श्राद्ध, वैश्वदेवाचन, विकिरदान, स्वधाका उच्चारण और पितृशब्दाच्चार नहीं करना चाहिय[1]। इस श्राद्धम 'अनु' शब्दका प्रयोग, आवाहन तथा उल्मुख वर्जित है। आसीमान्तगमन विसर्जन, प्रदक्षिणा, तिल-हाम और पूर्णाहुति तथा बलिवैश्वदव भी नहीं करना चाहिय। यदि कर्ता ऐसा करता है तो उसे अधोगति प्राप्त हाती है[३]।

प्रथम पोडशीको मलिन-श्राद्धके नामसे अभिहित किया जाता है। यथा—मृत्युस्थान, द्वार, अर्धमार्ग, चितामें, (श्मशानवासी प्राणिया एव पडासियाक उद्देश्यस) शवके हाथमें तथा छठा श्राद्ध अस्थि-सचय-कालम होता है। उसक बाद दस पिण्ड-श्राद्ध जा प्रतिदिन एक-एक करके दस दिन किये जाते हैं वे भी मलिन-श्राद्धकी कोटिम आते हैं। इस प्रकार इन्हे प्रथम पाडश श्राद्ध कहा गया है। हे तार्क्ष्य! अन्य मध्यम या द्वितीय पोडशोका भी तुम मुझसे सुना।

इन पोडश श्राद्धाकी क्रियाम सबसे पहले विधिवत् एकादश श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और तत्पुरुषके नामसे पाँच श्राद्ध हा, ऐसा तत्त्वचिन्तकाने कहा है। हे खगेश! इन पोडश श्राद्धोके बाद प्रतिमास एक श्राद्धके अनुसार बारह श्राद्ध, ग्यारहव मासम ऊनाब्दिक श्राद्ध, त्रिपाक्षिक श्राद्ध, ऊनमासिक और ऊनपाण्मासिक श्राद्ध करनका विधान है। शव-शोधनके लिये आद्य श्राद्ध करके तथा अन्य त्रिपोडश श्राद्ध करके पितृपक्तिकी विशुद्धिके लिय पचासवे श्राद्धसे मिलाना चाहिये। जिसका पचासवाँ श्राद्ध नहीं किया गया है, वह पितृपक्तिमे मिलने योग्य नहीं है। उक्त त्रिपोडश अर्थात् अडतालीस श्राद्धास मृत प्राणीके प्रेतत्वका विनाश होता है। उनचास श्राद्ध हो जानेपर पक्तिसनिध (पितृगणाका सामीप्य) प्राणीको मिल जाता हे। पचासवे श्राद्धसे पितृके साथ सधि-मेलन करना चाहिय।

अब शव-विधि बतायी जाती है। शव-यात्रा प्रारम्भ

१-किन्हीं आचार्योके मतम मृत व्यक्तिके अनन्तर उनके अनुयायियोंको 'य च त्वामनुगच्छन्ति तभ्यश्च०'—ऐसा उच्चारण करके पिण्डशपात्र पिण्डक समीपमे दिया जाता है वह प्रत-श्राद्धमे नहीं करना चाहिये।

२-श्राद्धमे ब्राह्मण-भोजन करानके अनन्तर ब्राह्मणक पीछ-पीछे गाँवकी सीमातक जाकर उसकी प्रदक्षिणा करके उसका विसर्जन किया जाता है। यह आसीमान्तगमन प्रेत-श्राद्धम नहीं करना चाहिये।

३ अष्टादशैव वस्तूनि प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् । आशिषा द्विगुणान् दर्भान् प्रणवान् नैकपिण्डताम्॥
अग्नौकरणमुच्छिष्ट श्राद्धं वै वैश्वदैविकम् । विकिर च स्वधाकार पितृशब्द न चाचरत्॥
अनुशब्द न कुर्वीत नावाहनमथाल्मुकम् । आसीमान्त न कुर्वीत प्रदक्षिणविसर्जनम्॥
न कुर्यात् तिलहाम च द्विज पूर्णाहुति तथा । न कुर्याद्बलिं च यत्कर्ता गच्छत्यधागतिम्॥ (३५ । २९—३२)

करनेके पूर्व बनायी गयी पालकीमें शवके हाथ-पैर बाँध देना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो वह पिशाच-योनियोंके हाथ पहुँच जाता है। शवको अकेला नहीं छोडना चाहिये। यदि उसको अकेला छोड दिया जाता है तो दुष्ट योनियोंके स्पर्शसे उसकी दुर्गति होती है। गाँवके मध्य शव विद्यमान है—ऐसा सुननेके बाद इच्छानुसार यदि भोजन कर लिया जाता है तो उस अन्न और जलको क्रमशः मांस तथा रक्त समझना चाहिये। गाँवके बीच शवके रहनेपर ताम्बूल-सेवन, दन्तधावन, भोजन, स्त्री-सहवास तथा पिण्डदान त्याज्य हैं। स्नान, दान, जप, होम, तर्पण और देवपूजनका कार्य करना भी व्यर्थ ही हो जाता है।

हे पक्षिराज! बन्धु-बान्धव और सगे-सम्बन्धियोंके लिये मृतकालमें ऐसा ही उपर्युक्त व्यवहार अपेक्षित है। इस धर्मके त्यागनेसे प्रेत पाप-संलिप्त हो जाता है।

(अध्याय ३५)

तीर्थमरण एवं अनशनव्रतका माहात्म्य, आतुरावस्थाके दानका फल, धनकी एकमात्र गति दान तथा दानकी महिमा

तार्क्ष्यने कहा—हे प्रभो! अनशनव्रतका पुण्य किस कारणसे मनुष्यको अक्षय गति प्रदान करनेमें समर्थ है? यदि प्राणी अपने घरको छोडकर तीर्थमें जाकर मरता है अथवा तीर्थमें न पहुँचकर मार्गमें या घरमें ही मर जाता है अथवा कुटीचर अर्थात् सन्यास-आश्रमके धर्मका स्वीकार करके प्राण छोड देता है तो उसे कौन-सी गति प्राप्त हो सकती है? जो व्यक्ति तीर्थ अथवा घरमें भी रहकर सन्यासीका जीवन व्यतीत करता है, उसकी मृत्यु हुई हो या न हुई हो तो पुत्रको क्या करना चाहिये? हे देव! यदि प्राणीका तत्सम्बन्धी नियम-पालनमें उसके चित्तकी एकाग्रता भंग हो जाती है तो ऐसी परिस्थितिमें उसकी सिद्धि कैसे सम्भव है? यदि उस नियमको पूरा किया जाय अथवा नहीं भी किया जाय तो ऐसी दशामें उस व्यक्तिको सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है?

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! यदि जो कोई भी प्राणी अनशनव्रत[1] करके मृत्युका वरण करता है तो वह मानव-शरीर छोडकर मेरे समान हो जाता है। निराहारव्रत करते हुए वह जितने दिन जीवित रहेगा, उतने दिन उसके लिये समग्र श्रेष्ठ दक्षिणासहित सम्पन्न किये गये यज्ञोंके समान हैं। यदि मनुष्य सन्यास-धर्मको स्वीकार करके तीर्थ अथवा घरमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है तो उस अवधिमें वह प्रतिदिन पूर्वोक्त पुण्यका दुगुना फल प्राप्त करता है। शरीरमें महाभयंकर रोगके हो जानेपर अनशनव्रत करके जो मृत्युको प्राप्त करता है, पुनर्जन्म होनेपर उसके शरीरमें रोगकी उत्पत्ति नहीं होती है। वह देवतुल्य सुशोभित होता है। जो मनुष्य रुग्णावस्थामें सन्यास ग्रहण कर लेता है, वह इस दुःखमय अपार संसार-सागरकी भूमिपर पुनः जन्म नहीं लेता है। प्रतिदिन यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन, तिल-पात्र और दीपकका दान एवं देवपूजनका कर्म करना चाहिये। इस प्रकारका आचरण जो व्यक्ति करता है, उसके छोटे-बडे सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। वह मृत्युके बाद सभी महर्षियोंके द्वारा प्राप्त की जानेवाली मुक्तिका सवरण करता है। अतः यह अनशनव्रत मनुष्योंको वैकुण्ठपद प्रदान करनेवाला है। इसलिये प्राणी स्वस्थ हो या न हो, उसे इस मोक्षदायक व्रतका पालन अवश्य करना चाहिये।

जो मनुष्य पुत्र और धन-दौलतका परित्याग करके तीर्थयात्रापर चल देता है, उसके लिये ब्रह्मादि देवगण तुष्टि-पुष्टिदायक बन जाते हैं। जो व्यक्ति तीर्थके सामने उपस्थित होकर अनशनव्रत करता है, वह यदि उसी मध्यावधिमें मृत्युको भी प्राप्त कर लेता है तो उसका वास सप्तर्षिमण्डलके बीच निश्चित है। यदि अनशनव्रत करके प्राणी अपने घरमें भी मर जाता है तो वह अपने कुलोंको छोडकर अकेले स्वर्गलोकमें जाकर विचरण करता है। यदि मनुष्य अन्न और जलका त्याग करके विष्णुके चरणोदकका पान करता है तो वह इस पृथ्वीपर पुनर्जन्म नहीं लेता है। अपने प्रयत्नसे तीर्थमें गये हुए उस प्राणीकी रक्षा वनदेवता करते हैं। विशेष बात यह है कि यमदूत और यमलोककी यातनाएँ उसके

१-मृत्युका निश्चय होनेपर तीन या चार दिन अन्न-जलका सर्वथा परित्याग अनशन है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि यह अनशन आत्महत्या न होकर व्रत है।

सनिकटतक नहीं आ पाती हैं। जो व्यक्ति पापोसे दूर रहता हुआ तीर्थवास करता है, यदि वह वहाँपर मृत्युको प्राप्त करे और उसका शवदाह हो तो वह उस तीर्थके फलका भागीदार होता है। सदेव तीर्थसेवन करनेपर भी प्राणी यदि किसी दूसरे स्थानपर मरता है तो वह श्रेष्ठ कुल और उत्तम देशमे जन्म लेकर एक विद्वान् वेदज्ञ ब्राह्मण हाता है। हे तार्क्ष्य! यदि निराहारव्रत करके भी मनुष्य पुन जीवित रहता है तो ब्राह्मणोको बुलाकर जो कुछ उसके पास हो वह सर्वस्व उन्ह दानम दे दे। ब्राह्मणोकी आज्ञा लेकर वह चान्द्रायणव्रतका पालन करे, सदा सत्य बोले और धर्मका ही आचरण करे।

मृत्युके उद्देश्यसे तीर्थमे जाकर कोई भी मनुष्य पुन अपने घर वापस आ जाता है तो वह ब्राह्मणोकी आज्ञा प्राप्त करके प्रायश्चित्त करे। स्वर्ण, गौ, भूमि, हाथी और घोडेका दान करके जो मनुष्य मृत्युकालम तीर्थम पहुँच जाय, वह भाग्यवान् है। मरण-कालके सनिकट होनेपर घरसे तीर्थके लिये प्रस्थान करनेवाले व्यक्तिको पग-पगपर गोदानका फल प्राप्त होता है यदि उससे हिसा न हो। घरमे जो पाप किया गया है, वह तीर्थ-स्नानसे शुद्ध हो जाता है। परतु यदि प्राणी तीर्थमे पाप करता है तो वह वज्रलेपके समान हो जाता है[१]। जबतक सूर्य चन्द्र तथा नक्षत्र आकाशमे विद्यमान रहते हैं तबतक वह निस्सदेह कष्ट झेलता है। वहाँपर दिये गये दानाका फल प्राप्त नहीं होता है। आतुरावस्थामे निर्धन प्राणियोको विशेष रूपसे गौ, तिल, स्वर्ण तथा सप्तधान्यका दान करना चाहिये।

दान देनेवाले पुरुषको देखकर सभी स्वर्गवासी देवता ऋषि तथा चित्रगुप्तके साथ धर्मराज प्रसन्न होते हैं। जबतक अपने द्वारा अर्जित धन है तबतक ब्राह्मणको उसका दान देना चाहिये क्याकि मरनेपर वह सब पराधीन ही हो जायगा[२]। वैसी स्थितिम दयावान् बन करके भला कौन दान देगा? मृत पिताके पारलौकिक सुखके उद्देश्यसे जो पुत्र ब्राह्मणका दान देता है, उसस वह पुत्र-पौत्र और प्रपौत्रांके साथ धनवान् हो जाता है। पिताके निमित्त दिया गया दान सौ गुना माताके लिये हजार गुना, बहनके लिये दस हजार गुना, सहोदर भाईके लिये किया गया दान असख्य गुना पुण्य प्रदान करनेवाला होता हे। यदि लाभ, प्रमाद अथवा व्यामाहसे ग्रसित होकर लोग अपने मृतकाके लिये दान नहीं दते हैं तो सभी मरे हुए प्राणी यह सोचते हैं कि मरे परिवारके सगे सम्बन्धी कजूस ओर पापी हैं। अत्यन्त कष्टसे अर्जित और स्वभावत चञ्चल धनकी गति मात्र एक ही है ओर वह है दान। उसकी दूसरी गति तो विपत्ति ही है[३]।

यह मेरा पुत्र है, ऐसा समझकर पुत्रसे प्रेम करनेवाले अपने पतिको देख करके जिस प्रकार दुराचारिणी स्त्री उसका उपहास करती है, उसी प्रकार मृत्यु शरीरक रक्षक और पृथ्वी धनके रक्षकका उपहास करती हे। हे तार्क्ष्य! जो मनुष्य उदार, धर्मनिष्ठ तथा सोम्य स्वभावसे युक्त है, वह अपार धन प्राप्त करके भी अपनेको तथा धनको तिलके समान तुच्छ मानता हे। ऐसे उदात्त चरित्रवाले श्रेष्ठ पुरुषको अर्थोपद्रव नहीं होता है, उसको किसी प्रकारका मोहजाल अपने चक्करमे नहीं जकड पाता है। मृत्युकालम यमदूताके द्वारा उत्पन्न किया गया किसी प्रकारका भय उसके सामने टिकनेम समर्थ नहीं होता है।

हे काश्यप! धर्मकी रक्षा या किसीके उद्दश्यसे जलम डूब करके प्राणात्सर्ग करनसे सात हजार वर्ष अग्निमे कूदकर आत्मदाह करनेपर ग्यारह हजार वर्ष, वायुके वेगम जीवनलीला समाप्त करनेपर सोलह हजार वर्ष, युद्धभूमिम वीरगति प्राप्त करनेपर साठ हजार वर्ष तथा गोरक्षार्थ मरण होनेपर अस्सी हजार वर्षतक स्वर्गकी प्राप्ति होती है, किंतु निराहारव्रतका पालन करते हुए प्राणाका परित्याग करनपर व्यक्तिको अक्षयगतिका लाभ होता हे[४]। (अध्याय ३६)

१-गृहात् प्रचलितस्तीर्थं मरणे समुपस्थिते। पद पदे तु गादान यदि हिसा न जायते॥
गृहे तु यत् कृत पाप तार्थस्नानेन शुध्यति। कुरुते तत्र पाप चेद्वज्रलेपसम हि तत्॥ (३६। २४-२५)

२-आत्मायत्त धन यावत् तावद् विप्रे समर्पयत्। पराधीन मृते सर्वं कृपया क प्रदास्यति॥ (३६। २९)

३-पितु शतगुण दत्त सहस्र मातुरुच्यत। भगिन्या शतसाहस्र सादर्ये दत्तमक्षयम्॥
यदि लाभान्न यच्छन्ति प्रमादान्माहतोऽपि वा। मृता शाचन्ति ते सर्वे कदर्या पापिनस्त्विति॥
अतिक्लेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च। गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तय॥ (३६। ३१—३३)

४ सप्त सहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्नौ पवने च षाडश। महाहवे षष्टिरशीतिगाग्रह अनाशक काश्यप चाक्षया गति॥ (३६। ३७)

धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

[विशेषाङ्क पृ० ४७२ से आगे]

तीर्थमरणकी महिमा, अन्त समयमे भगवन्नामकी महिमा, शालग्रामशिला तथा तुलसीकी सन्निधिमे मरणका फल, मुक्तिदायक तथा स्वर्गदायक प्रशस्त कर्म, इष्टापूर्तकर्म तथा अनाथ प्रेतके संस्कारका माहात्म्य

ताक्ष्यने कहा—हे प्रभो! दान एव तीर्थ करनेवालेका स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। अब आप इसका ज्ञान मुझे कराये। हे स्वामिन्! किस दान और तीर्थ-सेवनसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है? किस दान एव तीर्थके पुण्यसे प्राणी चिरकालतक स्वर्गमें रह सकता है? क्या करनेसे वह स्वर्गलोक एव सत्यलोकसे तेजोलोकमें जाता है। किस पापसे मनुष्य नाना प्रकारके नरकोंमे डूबता रहता है। हे भक्तोको मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् जनार्दन! आप मुझको यह भी बतानेकी कृपा करे कि कहाँपर मृत्यु होनेसे प्राणीको स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्त होता है जिससे कि पुनर्जन्म नहीं होता।

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! भारतवर्षमे मानवयोनि तरह जातियोमे विभक्त है। यदि उसको प्राप्त करके मनुष्य अपने अन्तिम जीवनका उत्सर्ग तीर्थमे करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। अयोध्या मथुरा, माया काशी, काञ्ची अवन्तिका और द्वारका—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली है।[१] प्राणोके कण्ठगत हो जानेपर 'मैं सन्यासी हो गया'—ऐसा जो कह दे तो मरनेपर विष्णुलोक प्राप्त करता है। पुन पृथ्वीपर उसका जन्म नहीं होता।

जो मनुष्य मृत्युके समय एक बार 'हरि' इस दो अक्षरका उच्चारण कर लेता है, वह मानो मोक्ष प्राप्त करनेके लिये कटिबद्ध हो गया है। जो मनुष्य प्रतिदिन 'कृष्ण कृष्ण-कृष्ण'—यह कहकर मेरा स्मरण करता है उसको मैं नरकसे उसी प्रकार निकाल देता हूँ जिस प्रकार जलको भेदन कर कमल ऊपर निकल जाता है। जहाँपर शालग्राम शिला है या जहाँपर द्वारवती शिला है किवा जहाँपर इन दोनो शिलाखण्डोका सगम है वहाँ प्राणीको मुक्ति निस्सदेह ही प्राप्त होती है। समस्त पाप एव दोषोका विनाश करनेवाली शालग्राम शिला जहाँ विद्यमान है वहाँ उसके सान्निध्यमे मृत्यु होनेसे जीवको निस्सदेह मोक्ष मिलता है—

मृतो विष्णुपुर याति न पुनर्जायते क्षितौ।
सकृदुच्चरित येन हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
बद्ध परिकरस्तेन मोक्षाय गमन प्रति।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मा स्मरति नित्यश ॥
जल भित्त्वा यथा पद्म नरकादुद्धराम्यहम्।
शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवती शिला॥
उभयो सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न सशय।
शालग्रामशिला यत्र पापदोषक्षयावहा॥
तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिर्जन्तो सुनिश्चिता।
(३८।७—११)

हे खग! तुलसीका वृक्ष लगाने, पालन करने, सींचने, ध्यान-स्पर्श और गुणगान करनेसे मनुष्योके पूर्व जन्मार्जित पाप जलकर विनष्ट हो जाते हैं—

रोपणात् पालनात् सेकाद्ध्यानस्पर्शनकीर्तनात्।
तुलसी दहते पाप नृणा जन्मार्जित खग॥
(३८।११)

राग-द्वेषरूपी मलको दूर करनेमे समर्थ, ज्ञानरूपी जलाशयके सत्यरूपी जलसे युक्त मानसतीर्थमे जिस मनुष्यने स्नान कर लिया है वह कभी पापोसे सलिप्त नहीं होता। देवता कभी काष्ठ और पत्थरकी शिलामे नहीं रहते वे तो प्राणीके भावमे विराजमान रहते हैं। इसलिये सद्भावसे युक्त भक्तिका सम्यक् आचरण करना चाहिये—

ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे।
य स्नातो मानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकै ॥
न काष्ठे विद्यते देवो न शिलाया कदाचन।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भाव समाचरेत्॥
(३८।१२ १३)

मछुआरे प्रतिदिन प्रात काल जाकर नर्मदा नदी (पुण्य तीर्थ)-का दर्शन करते हैं, किंतु वे शिवलोक नहीं पहुँच पाते हैं क्योकि उनकी चित्तवृत्ति बलवान् होती है। मनुष्योके चित्तमे जैसा विश्वास होता है वैसा ही उन्हे अपने कर्मोका फल प्राप्त होता है। वैसी ही उनकी परलोक-गति होती है। ब्राह्मण गौ स्त्री और बालकको हत्या रोकनेके लिये

१ अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका॥ पुरी द्वारवती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिका । (३८।५ ६)

जा व्यक्ति अपने प्राणाका बलिदान करनेम तत्पर रहता ह उसे मोक्ष प्राप्त हाता है—

ब्राह्मणार्थे गवार्थे च स्त्रीणा बालवधेषु च।
प्राणत्यागपरो यस्तु स वै माक्षमवाप्नुयात्॥

(३८।१६)

जो निराहार व्रतके द्वारा मृत्यु प्राप्त करता है, उसे भी मुक्ति प्राप्त होती है। वह सभी वन्धनासे निर्मुक्त हा जाता है। ब्राह्मणाका दान दनस मनुष्य माक्षका प्राप्त कर सकता ह।

हे गरुड! सभी प्राणियाक लिये जैसे मोक्षमार्ग हैं, वैस हा स्वर्गके मार्ग भी ह। यथा—गोशालाम, दश-विध्वस होनेपर युद्धभूमि एव तीर्थस्थलम मृत्यु श्रयस्कर है। प्राणा वहाँ अपन शरीरका परित्याग करक चिरकालतक स्वर्गवासका लाभ ले सकता है। पण्डितको जीवन और मरण इन दो तत्त्वापर ही ध्यान देना चाहिय। अत वे दान तथा भागसे जीवन धारण कर और युद्धभूमि एव तीर्थम मृत्युको प्राप्त कर। जो मनुष्य हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र भृगुक्षेत्र प्रभास श्रीशैल अर्बुद (आबू पर्वत), त्रिपुष्कर तथा शिवक्षेत्रम मरता हैं वह जवतक ब्रह्माका एक दिन पूरा नहीं हा जाता, तवतक स्वर्गमे रहता है। उसके बाद वह पुन पृथ्वीपर आ जाता है। जा व्यक्ति सच्चरित्र ब्राह्मणका एक वर्षतक जीवन-निर्वाहके लिये अन्न-वस्त्रादिका दान देता है, वह सम्पूर्ण कुलका उद्धार करक स्वर्गलाकम निवास करता है।

जो अपनी कन्याका विवाह वेदपारगत ब्राह्मणक साथ करता है वह अपने कुल-परिवारके सहित इन्द्रलोकम निवास करता है। महादानाको देकर भी मनुष्य ऐसा ही फल प्राप्त करता हे। वापी कूप, जलाशय उद्यान एव देवालयोका जीर्णोद्धार करनेवाला पूर्व कर्ताकी भाँति फल प्राप्त करता है अथवा जीर्णोद्धारसे कर्ताका पुण्य दुगुना हा जाता है। जा मनुष्य विद्वान् ब्राह्मणके परिवारकी शीत, वायु और धूपसे रक्षा करनेक लिय घास फूस और पत्तासे बना झोपडीका दान देता है, वह साढ तीन कराड वर्षतक स्वर्गमे निवास करता है।

जा सवर्णा सती स्त्री अपन मृत पतिका अनुगमन कर वह मृत्युक बाद शरीरम रामाका जितना सख्या ह, उतन वर्षोतक स्वर्गका भाग करती है। पुत्र-पौत्रादिका परित्याग करक जा अपने पतिका अनुगमन करता हैं व दाना पति-पत्नी दिव्य स्त्रियोसे अलकृत होकर स्वर्गका सुख-वैभव प्राप्त करत ह। सदव पतिसे द्रोह रखनवाली स्त्री अनेक प्रकारके पापोको करके भी जब मरे हुए उस पतिका अनुगमन चितापर चढकर करती ह ता उन सभी पापाको धो डालती हे। यदि किसी सच्चरित्र नारीका पति महापापाका आचरण करता हुआ दुष्कर्मी बन जाता है तो वह स्त्री अपन सदाचरणसे उसके सभी पापाको विनष्ट कर देती है।

जो व्यक्ति नियमपूर्वक प्रतिदिन मात्र एक ग्रास भाजनका दान करता ह वह चार चामरस युक्त दिव्य विमानपर चढकर स्वर्गलाक जाता हे। जिस मनुष्यक द्वारा आजीवन पाप-कम किया गया हे वह ब्राह्मणका एक वर्षक लिय जीवन-निर्वाहकी वृत्ति दकर उस पापको विनष्ट कर दता है। विप्र-कन्याका विवाह करानेवाला व्यक्ति भूत भविष्य आर वर्तमानक तीना जन्मक अर्जित पापाको नष्ट कर देता ह।

दस कूपके समान एक बावली होती है। दस बावलीके समान सरावर हाता है आर दस सरावरक समान पुण्य-शालिनी वह प्रपा (पौसरा) होती है। जो वापी जलरहित वनम बनवायी जाती है और जो दान निर्धन ब्राह्मणको दिया जाता है तथा प्राणियापर जो दया की जाती है, उसके पुण्यस कर्ता स्वर्गलोकका नायक बन जाता हे।[1]

इसी प्रकार अन्य बहुत-से सुकृत है, जिनको करके मनुष्य स्वर्गलोकका भागी हाता हे। वह उन सभी पुण्याके फलको ग्रहण करके परम प्रतिष्ठाको प्राप्त करता है।

व्यर्थक कार्योका छाडकर निरन्तर धमाचरण करना चाहिय। इस पृथ्वीपर दान, दम और दया—ये ही तीन सार हैं। दरिद्र सज्जन ब्राह्मणका दान, निर्जन प्रदेशम स्थित शिवलिङ्गका पृजन आर अनाथ प्रतका सस्कार—कराडा यज्ञका फल प्रदान करता ह—

फल्गु काय परित्यज्य सतत धर्मवान् भवत्।
दान दमो दया चति सारमतत् त्रय भुवि॥
दान साधोर्दरिद्रस्य शून्यलिगस्य पूजनम्।
अनाथप्रतसस्कार कोटियज्ञफलप्रद ॥

(३८।३९-४०)

(अध्याय ३८)

१-दशकूपसमा वापा दशवापासम सर। सराभिदशभिस्तुल्या या प्रपा निजल वन॥
या यापी निर्जले दशे यद्दान निर्धने द्विन। प्राणिना यो दया धत्त स भवन्नाकनायक॥ (३८।३६-३७)

आशौचकी व्यवस्था

तार्क्ष्यने कहा—हे प्रभो! चित्तमें शुचित्व और अशुचित्वके विवेकके लिये और जनहितार्थ आप मुझपर दया करके सूतक-विधिका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षीन्द्र! मृत्यु तथा जन्म होनेपर चार प्रकारका सूतक होता है, सामान्यतः जो चारों वर्णोंके द्वारा यथाविधि दूर करनेके योग्य है। जननाशौच और मरणाशौच होनेपर दस दिनोंतक उस कुलका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। इस कालमें दान, प्रतिग्रह, होम और स्वाध्याय बंद हो जाता है। देश, काल, आत्मशक्ति, द्रव्य, द्रव्यप्रयोजन, औचित्य तथा वयको जान करके ही अशौच-कर्मके विहित नियमोंका पालन करना चाहिये।

गुफा और अग्निमें प्रवेश तथा देशान्तरमें जाकर मरे हुए परिजनोंका अशौच तत्काल वस्त्रसहित स्नान करनेसे समाप्त हो जाता है। जो प्राणी गर्भस्राव या गर्भसे निकलते ही मर जाते हैं, उनका अग्निदाह, अशौच एवं तिलोदक संस्कार नहीं होता है। शिल्पी, विश्वकर्मा, वैद्य, दासी, दास, राजा और श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी सद्यः शुद्धि बतायी गयी है। याज्ञिक (व्रतपरायण), मन्त्रपूत, अग्निहोत्री तथा राजा सदैव शुद्ध होते हैं। इन्हें अशौच नहीं होता है। राजागण जिसकी इच्छा करते हैं, वह भी पवित्र ही रहता है।

हे द्विज! बच्चेका जन्म होनेपर सपिण्डों और सगोत्रियोंका एक-जैसा अशौच नहीं होता। दस दिनके बाद माता शुद्ध हो जाती है और पिता तत्काल स्नान करके ही स्पर्शादिकके लिये पवित्र हो जाता है। मनुने कहा है कि विवाहोत्सव तथा यज्ञके आयोजनमें यदि जन्म या मृत्युका सूतक हो जाता है तो पूर्व मानससे सङ्कल्पित धन और पूर्वनिर्मित खाद्यसामग्रीका उपयोग करनेमें दोष नहीं है। सभी वर्णोंके लिये अशौच समानरूपसे मानना चाहिये। माता-पिताको जो सूतक होता है, उसमें माताके लिये तो सूतक होता है और पिता स्नान करके तुरंत शुद्ध हो जाता है। दस दिनके लिये प्रवृत्त जननाशौच और मरणाशौचके अन्तर्गत यदि पुनः जन्म-मरण हो जाता है तो पूर्वप्रवृत्त अशौचको तीन भागोंमें विभक्त करके यदि पुनर्जन्म-मरण दो भागके अन्तर्गत हुआ है तो पूर्व अशौचकी निवृत्तिके दिनसे उत्तराशौचकी भी निवृत्ति हो जायगी। किंतु यदि पूर्वप्रवृत्त अशौचके तीसरे भागमें पुनराशौच प्रवृत्त हुआ है तो उत्तराशौचमें प्रवृत्तिके समाप्तिपर ही यदि सूतक दशाहके बीच पुनः किसी सगोत्रीका मरण या जन्म होता है तो इस अशौचकी जबतक शुद्धि नहीं होती तबतक अशौच रहता है।[1]

ऋषियोंने कहा है कि मनमें दान देनेकी भावना उत्पन्न हो जानेपर समय जैसा भी हो दान-दुःखी ब्राह्मणको विनम्रतापूर्वक दान देना चाहिये, उसमें दोष नहीं होता है।

अशौच होनेपर मनुष्य पहले मिट्टीके पात्रसे तिलमिश्रित जलका स्नानकर शरीरपर मिट्टीका लेप करे, तत्पश्चात् स्वच्छ जलसे पुनः स्नान करके शुद्ध हो।

अशौचके बाद दान सभासदको देना चाहिये। सुवर्ण, गौ और वृषका दान ब्राह्मणको देना चाहिये। ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रिय दुगुना, वैश्य तिगुना तथा शूद्र चौगुना धन ब्राह्मणको दान दे। गृह्यसूत्रोक्त संस्कारसे रहित होनेपर सातवें अथवा आठवें वर्षमें मृत्यु हो जाय तो जितने वर्षका वह मृतक व्यक्ति था उतने दिनका अशौच मानना चाहिये। ब्राह्मण और स्त्रीकी रक्षाके लिये जो अपने प्राणोंका परित्याग करते हैं तथा जो लोग गोशाला तथा रणभूमिमें प्राणोंका परित्याग करते हैं, उनका अशौच एक रात्रिका होता है। जो नरश्रेष्ठ अनाथ प्रेतका संस्कार करते हैं, उन ब्राह्मणोंको किसी शुभ कर्ममें कुछ भी अशुभ नहीं होता है। ब्राह्मणके सहयोगसे अन्य वर्णवाले जो इस कर्मको सम्पन्न करते हैं, उनको भी कुछ अशुभ नहीं होता है। स्नान करनेसे उनकी सद्यः शुद्धि हो जाती है।

अशौचमें विधिवत् शुद्ध होकर जब गृह स्नानके पश्चात् स्नान कर रहे हों तभी ब्राह्मणको उन्हें देखना चाहिये।

(अध्याय ३९)

---

[1] [illegible] (मनुस्मृति)

दुर्मृत्यु होनेपर सद्गतिलाभके लिये नारायण-बलिका विधान

तार्क्ष्यने कहा—भगवन्! जिन्हीं ब्राह्मणाकी अपमृत्यु होता है, उनका पारलाकिक मार्ग कैसा है? उन्हे वहाँ कैसा स्थान प्राप्त होता है? उनकी कौन-सी गति होती है? उनके लिये क्या उचित है ओर क्या विधान है? ह मधुसूदन! में उन सभी बातोका सुनना चाहता हूँ। कृपया आप उनका वर्णन करे।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! जो ब्राह्मण विकृत मृत्युके कारण प्रेत हो गये हैं, उनक मार्ग, पारलाकिक गति, स्थान और प्रतकर्म-विधानको में कह रहा हूँ। यह परम गोपनीय है इसे तुम सुनो। जा ब्राह्मण खाई नदी नाला लाँघते हुए और सर्प आदिके काटनेस मर जाते हैं, जिनकी मृत्यु गला दबान तथा जलम डुबानेसे हाती है, जा दुर्बल ब्राह्मण हाथीकी सूँडके प्रहारसे, विषपानस, क्षीण होकर, अग्निदाह, साँड-प्रहार तथा विषूचिका (हेजा) रोगसे मरते हैं, जिनके द्वारा आत्महत्या कर ली जाती है, जो गिरकर फाँसी लगाकर ओर जलम डूबकर मर जाते हैं, उनकी स्थितिका तुम सुना।

जो ब्राह्मण म्लेच्छादि जातियाद्वारा मार जात ह, वे घोर नरक प्राप्त करते हैं। जा कुत्ता सियारादिके स्पर्श दाह-सस्काररहित काटाणुआस परिव्याप्त, वर्णाश्रम-धर्मसे दूर और महारोगासे पीडित होकर मरते है, दापसिद्ध व्यङ्ग्यपूर्ण बात, पापियाक द्वारा प्रदत्त अन्नका सेवन करत हैं चाण्डाल जल सर्प ब्राह्मण विद्युत्-निपात, अग्नि दन्तधारी पशु तथा वृक्षादि पतनके कारण जिनकी अपमृत्यु होती है, जो रजस्वला, प्रसवा शूद्रा और धाबिनके सहवासस दोषयुक्त हो गये हैं वे सभी उस पापसे नरक-भाग करक प्रेतयानि प्राप्त करते हैं। परिजनाको उनका दाह-सस्कार अशौच-निवृत्ति एव जलक्रियाका कर्म नहीं करना चाहिय। हे तार्क्ष्य! ऐसे पापियाका नारायणबलिके बिना मृत्युका आद्य कर्म और्ध्वदैहिक कर्म भी नहीं करना चाहिये।

हे पक्षिराज! सभी प्राणियाका कल्याण करनेक लिय पाप और भयको दूर करनेवाली उम नारायणबलिके विधानका सुनो। छ मासकी अवधिम ब्राह्मण तीन मासम क्षत्रिय डढ मासमें वैश्य तथा शूद्रकी तत्काल दाह (पुत्तलिका-दाह)-क्रिया करनी चाहिय। गङ्गा यमुना नैमिष पुष्कर जलपूर्ण तालाब स्वच्छ जलयुक्त गम्भार जलाशय बावला कूप गाशाला घर या मन्दिरम भगवान् विष्णुक सामने ब्राह्मण इस नारायणबलिका सम्पन्न कराय। पाराणिक और वैदिक मन्त्रास प्रतका तर्पण किया जाय। इसक बाद यजमान सभी आषधियास युक्त जल तथा अक्षत लकर विष्णुका भी तर्पण पुरुषसूक्त अथवा अन्य वष्णवमन्त्रास करक दक्षिणाभिमुख होकर प्रेतका विष्णुरूपम इस मन्त्रस ध्यान कर—

अनादिनिधनो दव शङ्खचक्रगदाधर ॥
अव्यय पुण्डरीकाक्ष प्रेतमोक्षप्रदा भवेत्।
(४०।१७-१८)

अनादि, अनन्त, शङ्ख चक्र आर गदा धारण करनेवाले अव्ययदव पुण्डरीकाक्ष भगवान् प्रतका मोक्ष प्रदान कर।

तर्पण समाप्त हा जानेके पश्चात् रागमुक्त ईर्ष्या-द्वेष-रहित जितन्द्रिय, पवित्र, धर्मपरायण, दानधर्मम सलग्न शान्तचित्त एकाग्रचित्त होकर भगवान् विष्णुका प्रणाम करके तथा वाणीपर सयम रखते हुए अपने बन्धु-बान्धवाक साथ यजमान शुद्ध हो। उसक बाद भक्तिपूर्वक वहाँ एकादश श्राद्ध करे। समाहित हाकर जल, धान यव साठी धान, गहूँ, कगनी (टाँगुन), शुभ हविष्यान्न मुद्रा छत्र पगडी वस्त्र, सभी प्रकारक धान्य दूध तथा मधुका दान ब्राह्मणका द। वस्त्र और पादुकास युक्त आठ प्रकारके पददान बिना पक्तिभेद किय (समानरूपसे) सभी ब्राह्मणोका इस अवसरपर दना चाहिये।

पृथ्वीपर पिण्डदान हा जानके पश्चात् शङ्खपात्र तथा ताम्रपात्रम पृथक्-पृथक् गन्ध-अक्षत-पुष्पयुक्त तर्पण करे। ध्यान-धारणासे एकाग्र मन हो, घुटनाके बल पृथ्वीपर टिक करके वेद-शास्त्राक अनुसार सभी ब्राह्मणाको दान देना चाहिये। एकादिष्ट श्राद्धम ऋचाआसे पृथक्-पृथक् अर्घ्य दना चाहिय। उस समय 'आपोदेवीर्मधुमती०' इत्यादि मन्त्रसे पहल पिण्डपर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। उसक बाद 'उपयाम गृहीतोऽसि०' इस मन्त्रसे दूसरे 'यनापावक चक्षुषा०' मन्त्रसे तीसर, 'ये दवास ०' मन्त्रस चौथे 'समुद्र गच्छ०' मन्त्रसे पाँचव 'अग्निर्ज्योति०' मन्त्रसे छठे, 'हिरण्यगर्भ०' मन्त्रस सातव, 'यमाय०' मन्त्रस आठव, 'यज्जाग्र०' मन्त्रस नव 'या फलिनी०' मन्त्रस दसव तथा 'भद्र कर्णेभि ०' मन्त्रस ग्यारहव पिण्डपर अर्घ्य प्रदान करक उनका विसजन कर।

एकादशदेवत्य श्राद्ध करक दूसर दिन श्राद्ध आरम्भ कर। उस दिन चारा वदक ज्ञाता विद्याशील आर

सद्गुण-सम्पन्न वर्णाश्रम-धर्मपालक शीलवान्, श्रेष्ठ अविकल अङ्गोंवाले प्रशस्त और कभी त्याज्य न होनेयोग्य उत्तम पाँच ब्राह्मणोंका आवाहन करे। तदनन्तर सुवर्णसे विष्णु, ताम्रसे रुद्र, चाँदीसे ब्रह्मा, लोहेसे यम, सीसा अथवा कुशसे प्रेतकी प्रतिमा बनवा करके 'शन्नोदेवी०' इस मन्त्रसे विष्णुदेवको पश्चिम दिशामें, 'अग्न आयाहि०' मन्त्रसे रुद्रको उत्तर दिशामें, 'अग्निमीळे' मन्त्रसे ब्रह्माको पूर्व दिशामें, 'इषत्वार्जेत्वा०' मन्त्रसे यमको दक्षिण दिशामें तथा मध्यमें मण्डल बनाकर कुशमय नर स्थापित करना चाहिये।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और प्रेत—इन पाँचोंके लिये पञ्चरत्नयुक्त कुम्भ अलग-अलग रखे। इन सभी देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् रूपसे वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा मुद्रा प्रदान करे एवं पृथक्-पृथक् तत्तन्मन्त्रोंसे उनका जप करे। उसके बाद यथाविधि देवोंके निमित्त पाँच श्राद्ध करने चाहिये। तत्पश्चात् शङ्ख अथवा ताम्रपात्र या इनके अभावमें मिट्टीके पात्रमें सर्वौषधिसमन्वित तिलोदक लेकर पृथक्-पृथक् पीठपर प्रदान करे। हे खगेश्वर! आसन, पादुका, छत्र, अँगूठी, कमण्डलु, पात्र, भोजन-पदार्थ और वस्त्र—ये आठ पद माने गये हैं, इनके साथ ही स्वर्ण तथा दक्षिणासे युक्त एक तिलपूर्ण ताम्रपात्र विधिपूर्वक मुख्य ब्राह्मणको दान देना चाहिये। ऋग्वेद-पारंगत ब्राह्मणको हरी-भरी फसलसे युक्त भूमि, यजुर्वेद-निष्णात ब्राह्मणको दूध देनेवाली गाय, शिवके उद्देश्यसे सामवेदका गान करनेवाले ब्राह्मणको स्वर्ण, यमके उद्देश्यसे तिल, लोह और दक्षिणा देनी चाहिये।

सर्वौषधिसे समन्वित कुशद्वारा निर्मित पुरुषाकृति पुत्तलकका निर्माण करके कृष्णाजिनको बिछाकर उसे स्थापित करे और पलाशका विभाग करके तीन सौ साठ वृन्तोंसे पुत्तलककी हड्डियोंका निर्माण करे। यथा—शिरोभागमें चालीस वृन्त, ग्रीवामें दस, वक्षःस्थलमें बीस, उदरमें बीस, दोनों भुजाओंमें सौ, कटिप्रदेशमें बीस, दोनों ऊरुओंमें सौ, दोनों जंघाओंमें तीस, शिश्न-स्थानमें चार, दोनों अण्डकोशोंमें छः और पैरकी अंगुलियोंमें दस वृन्तोंसे उस कल्पित प्रेत- पुरुषकी अस्थियोंका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके शिरोभागपर नारियल, तालुप्रदेशमें लौकी, मुखमें पञ्चरत्न, जिह्वाभागमें केला, आँतोंके स्थानपर कमलनाल, घ्राणभागमें बालू, वसाके स्थानपर मेदक नामक अन्न, मूत्रके स्थानपर गोमूत्र, धातुओंके स्थानमें गन्धक, हरिताल एवं मनःशिला तथा वीर्यस्थानमें पारद, पुरीष (मल)-के स्थानमें पीतल, सम्पूर्ण शरीरमें मनःशिला, सन्धिभागोंमें तिलकी पीठी, मांसभागमें यवका आटा, मधु और मोम, केशराशिके स्थानमें बरगदकी बरोह, त्वचाभागमें मृगचर्म, दोनों कर्णप्रदेशमें तालपत्र, दोनों स्तनोंके स्थानमें गुंजाफल, नासिकाभागमें कमलपत्र, नाभिप्रदेशमें कमलपुष्प, दोनों अण्डकोशोंके स्थानमें बैंगन, लिंगभागमें सुन्दर गाजर एवं नाभिमें घी भरे। कौपीनके स्थानपर त्रपु, दोनों स्तनोंमें मुक्ताफल, सिरमें कुंकुमका लेप, कपूर, अगुरु, धूप तथा सुगन्धित पुष्प-मालाओंका अलंकरण, परिधानके स्थानपर पट्टसूत्र और हृदयभागमें रजत-पत्र रखे। उसकी दोनों भुजाओंमें ऋद्धि तथा वृद्धि इन दोनों सिद्धियोंको संकल्पित करके यजमान दोनों नेत्रोंमें एक-एक कौड़ी भरे। तदनन्तर नेत्रोंके कोणभागमें सिन्दूर भरकर उसको ताम्बूलादि विभिन्न उपहारोंसे सुशोभित करे।

इस प्रकार नाना वस्तुओंसे निर्मित और अलंकृत उस प्रेतको सर्वौषधि प्रदान करके जैसा कहा गया है, उसीके अनुसार उसकी पूजा करनी चाहिये। जो प्रेत अग्निहोत्र करनेवाला हो, उसको यथाविधि यज्ञपात्र भी देना आवश्यक है। उसके बाद 'शिरोमे श्रीं०' तथा 'पुनन्तु वरुण०'—इन मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा शालग्राम शिलाको धोकर यजमान उसीसे प्रेतका पवित्रीकरण करे। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये एक दूध देनेवाली सुशील गौका दान किया जाय। तिल, लौह, स्वर्ण, रूई, नमक, सप्तधान्य, पृथ्वी और गौ एक-से-एक बढ़कर पुण्यदायक होते हैं। अतः गोदान करनेके बाद यजमान तिलपात्र-दान और पद-दान एवं महादान दे। उसके बाद सभी अलंकारोंसे विभूषित वैतरणी धेनुका दान करे।

प्रेतकी मुक्तिके लिये इस अवसरपर आत्मवान्को भगवान् विष्णुके निमित्त श्राद्ध करना चाहिये। तत्पश्चात् हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके प्रेतमोक्षका कार्य करे। अतएव 'ॐ विष्णुरिति०'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित उस प्रकल्पित प्रेत-पुतलेकी मृत्यु मानकर उसका दाह-संस्कार करे। तदनन्तर तीन दिन सूतक माने। दशाह कर्म करनेवाला यजमान इस बीच प्रेतमुक्तिके लिये पिण्डदान और सभी वार्षिक क्रियाओंको सम्पन्न करता है तो प्रेत अपनी मुक्तिका अधिकार प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय ४०)

वृषोत्सर्गकी सक्षिप्त विधि

श्रीविष्णुने कहा—हे खगेश्वर! कार्तिक आदि महीनाकी पूर्णमासी तिथिको पडनेवाले शुभ दिनपर विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग करना चाहिये। नान्दीमुख श्राद्ध करके वत्सतरीके साथ वृषका विवाह और वृषके खुरके पास श्राद्ध करनेके पश्चात् उन दोनाका उत्सर्ग करे।

वापी और कूपके निर्माणोत्सर्गके समय गोशालामे विधिवत् सस्कारके अनन्तर अग्निकी स्थापना करनी चाहिये।[१] विवाह-विधिके समान ब्रह्मा-वरण करना चाहिये। यज्ञीय पात्राकी क्रमिक स्थापना पायस-खीरका पाक उपयमन कुशादिका क्रमश स्थापन करे। यज्ञीय पात्राका सिचन करनेके बाद होम करना चाहिये। प्रथम दो आहुति आघार और उसके बाद दो आज्य-भाग सज्ञक आहुतियाँ हैं। अत, 'प्रथमेऽहरिति०' मन्त्रसे यजमानको छ आहुतियाँ देनी चाहिये।

आघार और आज्य-भाग सज्ञक चार आहुतियाके अनन्तर अङ्गदेवता अग्नि रुद्र, शर्व पशुपति उग्र शिव भव महादेव, ईशान और यमको आहुति दे। तत्पश्चात् 'पूषागा०' इस मन्त्रसे एक पिष्टक होम, चरु तथा पायस दोनासे स्विष्टकृत् होम करे। तदनन्तर प्रथम व्याहृति होम प्रायश्चित्त हाम, प्रजापति होम, सस्रव (अवशिष्ट जल) प्राशन करे। इसके बाद प्रणीताका परिमोक्षण करे। पवित्र-प्रतिपत्ति (परित्याग) करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे। षडङ्ग रुद्रसूक्तका पाठ करनेसे प्रेतको मोक्षकी प्राप्ति होती है।

एक रगके वृष और एक वत्सतरीको स्नान कराकर सभी अलकारासे विभूषित करके उन दोनोको प्रतिष्ठापित करनेसे प्रेतको मोक्ष प्राप्त होता है। इस कर्मके बाद वृषभकी पूँछसे गिरे हुए जलके द्वारा मन्त्रपूर्वक तर्पण-कार्य करना चाहिये। उसके बाद ब्राह्मणोको भोजनसे सतृप्त करके दक्षिणासे सतुष्ट करे।

तदनन्तर यथाविधि एकोद्दिष्ट श्राद्ध करनेका विधान है। उसे करके प्रेतके उद्धार-हेतु ब्राह्मणको जल और अन्नका दान दिया जाता है। उसके बाद द्वादशाह श्राद्ध और मासिक श्राद्ध पृथक्-पृथक् करने चाहिये।

इस विधिका सम्यक् पालन करनेवाला प्रेतको उस योनिसे मुक्त कर देता है। (अध्याय ४१)

भूमि तथा गोचर्म भूमि आदि दानोका माहात्म्य और ब्रह्मस्वहरणका दोष

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! जिस प्रकार एक वत्स हजार गायोके बीच स्थित अपनी माताको प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार पूर्वजन्मम किया गया कर्म अपने कर्ताका अनुगमन करता है—

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृत कर्म कर्तारमनुगच्छति॥
(४२।१)

भूमिदान करनेवाले प्राणीका अभिनन्दन सूर्य-चन्द्र वरुण, अग्नि ब्रह्मा, विष्णु और भगवान् त्रिशूलधारी शिव करते हैं। इस ससारमे भूमिके समान दान नहीं है। भूमिके समान दूसरी निधि नहीं है। सत्यके समान धर्म नहीं है और असत्यके समान पातक नहीं है—

नास्ति भूमिसम दान नास्ति भूमिसमो निधि ।
नास्ति सत्यसमो धर्मो नानृतात्पातक परम्॥
(४२।३)

अग्निका प्रथम पुत्र सुवर्ण है, पृथ्वी वैष्णवी कहलाती है तथा गाय सूर्यकी पुत्री है। अत जो व्यक्ति स्वर्ण गौ एव पृथ्वीका दान देता है, उसने मानो त्रैलोक्यका दान कर दिया। गौ पृथ्वी और विद्या इन तीनाको अतिदान[२] कहा गया है। जप-पूजन तथा होम करके दिये गये ये तीनो दान नरकसे उद्धार करते हैं। बहुत-से पाप तथा क्रूर कर्म करके भी मनुष्य गोचर्म[३] भूमिका दान करनेसे शुद्ध हो जाता है।

१-काम्य और नैमित्तिक दो प्रकारका वृषोत्सर्ग होता है। काम्यम गणेशपूजन नान्दी श्राद्ध आदि करके ही वृषोत्सर्ग किया जाता है। मरणाशौचके ग्यारहव दिन किया जानेवाला वृषोत्सर्ग नैमित्तिक वृषोत्सर्ग है। इसमें नान्दी श्राद्ध नहीं किया जाता।

२-त्रीण्याहुरतिदानानि गाव पृथ्वी सरस्वती। नरकादुद्धरन्त्येते जपपूजनहोमत ॥ (४२।५)

३-गवा शत सैकवृष यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम्। तत्क्षेत्र दशगुणित गोचर्मपरिकीर्तितम्॥ (पराशरस्मृति १२।४३)
अर्थात् जितने स्थानपर एक हजार गौएँ और दस बैल स्वतन्त्ररूपसे घूम-फिर सकते हैं उतना भूमिभाग गाचर्म कहलाता है।

इस दानमे दी हुई वस्तुको लोभवश हरण करनेवालेको हरण करनेसे रोकना चाहिये। जो उसका परिरक्षण नहीं करता है, वह घोर नरकमे जाता है।

प्राण भले ही कण्ठमे आ जायँ तो भी निषिद्ध कर्म नहीं करना चाहिये, कर्तव्य कर्म ही करना चाहिये ऐसा धर्माचार्योंने कहा है। किसीकी आजीविकाको नष्ट करनेपर हजार गौओके वधके समान पाप लगता है तथा किसी जीविकारहितको आजीविका प्रदान करनेपर लक्ष धेनुके दानका फल प्राप्त होता है। गो-हत्यारे आदिसे एक गायको छुडा लेना श्रेष्ठ है, उसकी तुलनामे सौ गो-दान करना श्रेष्ठ नहीं है। सौ गो-दान करना गो-हत्यारेसे एक गायको बचा लेनेकी समता नहीं कर सकता।[१] जो व्यक्ति स्वय दान देकर स्वय ही उसमे बाधक बन जाता है, वह प्रलयकालतक नरकका भोग करता है।

जीविकारहित निर्धन ब्राह्मणकी रक्षा करनेपर जैसा पुण्य मनुष्यको प्राप्त होता है, वैसा पुण्य विधिवत् दक्षिणासहित अश्वमेध-यज्ञ करनेपर भी सम्भव नहीं है। दुर्बल, त्रस्त ब्राह्मणकी रक्षा करनेमे जो पुण्य है, वह वेदाध्ययन और प्रचुर दक्षिणासे युक्त यज्ञ करनेपर नहीं है। बलात् अपहरण किये गये ब्राह्मणके धनसे पाले-पोसे तथा समृद्ध बनाये गये वाहन और सैन्य शक्तियाँ युद्धकालमे वैसे ही नष्ट हो जाती हैं जैसे बालूके द्वारा बनाये गये पुल विनष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति स्वय अथवा दूसरेके द्वारा दी हुई भूमिका अपहरण करता है, वह साठ हजार वर्षतक विष्ठामें कृमि होकर जन्म लेता है। प्रेमसे जो ब्राह्मणका धन खाता है, वह अपने कुलकी सात पीढीको भस्म कर देता है। उसी ब्रह्मस्वका उपयोग यदि चोरी करके किया जाय तो जबतक चन्द्रमा और तारागणकी स्थिति रहती है तबतक उसकी कुल-परम्परा भस्म हो जाती है। पुरुष कदाचित् लोहे और पत्थरके चूर्णको खाकर पचा सके, किंतु तीनो लोकमे कौन ऐसा व्यक्ति है जो ब्राह्मणके धनको पचानेमे समर्थ हो सकेगा?

देव-द्रव्यका विनाश करनेसे, ब्राह्मणके धनका हरण करनेमे और उसकी मर्यादाका उल्लघन करनेसे प्राणियोके कुल निर्मूल हो जाते हैं। यदि ब्राह्मण विद्यासे विवर्जित है तो आचार्यत्वादिके लिये वरण करनेके सन्दर्भमे उसका परित्याग करना ब्राह्मणातिक्रमण नहीं है। जलती हुई आगको छोडकर राखमे हवन नहीं किया जाता है।

सक्रान्तिकालमें जो दान और हव्य-कव्य दिये जाते हैं, वह सब सात कल्पोतक बार-बार सूर्य दानदाताको प्रदान करता है। प्रतिग्रह, अध्यापन और यज्ञ करवानेके कार्योमे विद्वान् प्रतिग्रहको ही अपना अभीष्टतम कहते हैं। प्रतिग्रहसे जप-होम और कर्म शुद्ध होते हैं, याजन-कर्मको वेद पवित्र नहीं करते। निरन्तर जप एव होम करनेवाला तथा इसके द्वारा बनाये गये भोजनको न करनेवाला ब्राह्मण रत्नोसे परिव्याप्त पृथ्वीका प्रतिग्रह करके भी प्रतिग्रहके दोषसे निर्लिप्त रहता है।[२] (अध्याय ४२)

शुद्धि-विधान

श्रीविष्णुने कहा—जो जल, अग्नि तथा अन्य किसी बन्धनके भयसे धर्मपथसे विचलित हो गये हैं और जो सन्यास-धर्मका परित्याग करके पतित हो चुके हैं वे गौ और वृषभका दान देकर दो चान्द्रायणव्रतसे शुद्धि प्राप्त करते हैं। बारह वर्षसे कम और चार वर्षसे अधिक आयुके बालकके पापका प्रायश्चित्त माता-पिता अथवा अन्य बान्धवको करना चाहिये। चार वर्षसे कम आयुवाले बालकका न कोई अपराध है और न कोई पाप। उसके लिये न तो राजदण्ड है और न कोई प्रायश्चित्तका विधान ही है।

यदि रजोदर्शन होनेपर स्त्री रोगग्रस्त हो जाय तो वह चौथे दिन वस्त्रादिका परित्याग करके स्नानमे शुद्ध हो सकता है। आतुरकालमे जननाशौचप्रयुक्त स्नान होनेपर कोई जो रुग्ण न हो ऐसा व्यक्ति दस बार स्नान करके प्रत्येक स्नानके बाद यदि उस आतुर व्यक्तिका स्पर्श करता जाय तो वह आतुर शुद्ध हो जाता है। (अध्याय ४३)

१-वरमेकाप्यपहृता न तु दत्तं गवां शतम्। एकां हृत्वा शतं दत्त्वा न तेन समता भवेत्॥ (४२।१०)

२-सदा जापी सदा होमी परपाकविवर्जितः। रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्णन्न लिप्यते॥ (४२।२२)

दुर्मृत्यु तथा अकालमृत्युपर किये जानेवाले श्राद्धादि कर्म और सर्पदशसे मृत्युपर विहित क्रिया-विधान

श्रीविष्णुने कहा—हे तार्क्ष्य! जिनकी मृत्यु स्वेच्छासे आत्मघातके द्वारा होती है, जो सींग और दाँतवाले पशु, सरकनेवाले जीव, चाण्डालादि निम्न जातीय पुरुष, आत्मघात विषादि अहितकर पेय पदार्थ, आघात-प्रतिघात, जल-अग्निपात और वायु तथा निराहारादिके द्वारा जिनकी मृत्यु होती है उन्हे पापकर्म करनेवाला कहा गया है।[1] जो पाखण्डी, वर्णाश्रमधर्मसे रहित, महापातकी तथा व्यभिचारिणी स्त्रियाँ और आरूढपतित (सन्यासाश्रममे जाकर पतित होनेवाले) हैं, उनका दाहसस्कार, नव श्राद्ध एव सपिण्डन नहीं करना चाहिये। श्राद्ध सोलह बताये गये हैं, उनको भी ऐसे पापियोके लिये न करे। यदि अग्निहोत्र करनेवाला ब्राह्मण ऐसा पापकर्म करता है तो घरवाले मरनेपर उसकी जो जीविकावृत्ति है, उसको जलमे फेक दे और उसके घरकी अग्निको चौराहेपर ले जाकर डाल दे तथा उसके पात्राको अग्निमे जला दे।

हे काश्यप! पूर्वोक्त पापियाकी मृत्युका एक वर्ष पूर्ण हो जाय तो दयावान् परिजनाको शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिको गन्ध-अक्षत-पुष्पादिसे विष्णु और यमकी पूजा करके कुशोके ऊपर मधुयुक्त और घृतमिश्रित दस पिण्ड देना चाहिये।

मौन होकर तिलके सहित विष्णु और यमका ध्यान करते हुए दक्षिणाभिमुख होकर पूर्वोक्त दस पिण्ड प्रदान करे। उन पिण्डोको उठाकर और एकमे मिलाकर तीर्थके जलमे डालते हुए मृतकके नाम और गोत्रका उच्चारण करना चाहिये।

इसके बाद पुष्प चन्दन धूप दीप नैवेद्य तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थोसे विष्णु और यमकी पुन पूजा करे। उस दिन उपवास रहकर कुल विद्या, तप और शीलसे सम्पन्न यथासामर्थ्य नौ अथवा पाँच साधु ब्राह्मणोको निमन्त्रित करे। उसके दूसरे दिन मध्याह्न कालमे पूर्वदिनके समान पुन विष्णु एव यमकी पूजा करके उत्तराभिमुख उन ब्राह्मणाको आसनपर बैठाये। उसके बाद यज्ञोपवीती कर्ता आवाहन, अर्घ्य तथा दानादिमे विष्णु और यमसे समन्वित प्रेतके नामका कीर्तन करे तथा प्रेत, यम और विष्णुका स्मरण करते हुए श्राद्ध सम्पन्न करे। उस अवसरपर पिण्डदानके लिये अन्य देवाका भी आवाहन करना चाहिये। उसके बाद उन्हे क्रमश दस अथवा पाँच पृथक्-पृथक् पिण्ड दे। यथा—पहला पिण्ड विष्णुदेव दूसरा पिण्ड ब्रह्मा, तीसरा पिण्ड शिव चौथा पिण्ड भृत्यसहित शिव और पाँचवाँ पिण्ड प्रेतके लिये देय है। प्रेतके नाम एव गोत्रका स्मरण तथा विष्णु शब्दका उच्चारण करना चाहिये। पिण्डदान होनेके बाद सिर झुकाकर नमस्कार करते हुए पाँचवे पिण्डको कुशोपर स्थापित करे। तदनन्तर यथाशक्ति गौ-भूमि और पिण्डदानादिके द्वारा उस प्रेतका स्मरण करते हुए कुश तथा तिलसे युक्त उन ब्राह्मणोके कुशयुक्त हाथोमे तिल-दान दे।

इसके बाद ब्राह्मणोको अन्न, ताम्बूल और दक्षिणा देकर श्रेष्ठतम ब्राह्मणकी स्वर्णदानसे पूजा करे। यह दान नाम-गोत्रका स्मरण करते हुए 'विष्णु प्रसन्न हो', ऐसा कहकर देना चाहिये।

तदनन्तर ब्राह्मणाका अनुगमन करके यजमान दक्षिणाभिमुख होकर प्रेतके नाम-गोत्रका कीर्तन करते हुए 'प्रीतोऽस्तु' ऐसा कहकर भूमिपर जल गिरा दे। तत्पश्चात् मित्र एव बन्धु-बान्धवोके साथ श्राद्धके अवशिष्ट भोजनको सयत वाक् होकर ग्रहण करे।

तदनन्तर प्रतिवर्ष सावत्सर श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधानसे करना चाहिये। इस प्रकारकी क्रिया करनेसे पापीजन स्वर्ग चले जायँगे। इसके बाद वे सपिण्डीकरण आदिकी क्रियाओका करनेपर उसे प्राप्त करते हैं।

यदि प्रमादवश किसी मनुष्यकी जल आदिमे डूबकर अपमृत्यु हो जाती है तो उसके पुत्र या सगे-सम्बन्धीको यथाविधि सभी और्ध्वदैहिक कर्म करने आवश्यक हैं।

१-स्वेच्छया तार्क्ष्य मरण शृङ्गिदष्ट्रिसरीसृपै। चाण्डालाद्यात्मघातैश्च विषाद्यैस्ताडनैस्तथा॥
जलाग्निपातवातैश्च निराहारादिभिस्तथा। येषामेव भवेन्मृत्यु प्रोक्तास्ते पापकर्मिण॥ (४४।१-२)

प्रमादवश अथवा इच्छापूर्वक भी प्राणीको सर्पके सामने कदापि नहीं जाना चाहिये। (ऐसी स्थितिमे सर्प-दशसे मृत्यु होनेपर) प्रतिमास दोनो पक्षोकी पञ्चमी तिथिको नागदेवताकी पूजा करे। भूमिपर शालिचूर्णसे नागदेवकी आकृति बनावे। श्वेत पुष्प, सुगध, धूप, दीप और सफेद अक्षतसे उसकी पूजा करके कच्चा पीसा हुआ अन्न तथा दूध अर्पित करे। उसके बाद उठकर द्रव्य और वस्त्र छोडते हुए 'नागराज पसन्न हो'—ऐसा कहे।

उस दिन श्राद्ध सम्पन्न करनेके पश्चात् मधुर अन्नका भोजन करे। यथाशक्ति वह उस दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणको सुवर्णकी बनी हुई नाग-प्रतिमाका दान दे। तदनन्तर उसे गौका दान देकर पुन 'नागराज प्रीयताम्'—हे नागराज। आप अब मेरे ऊपर प्रसन्न हो—ऐसा कहे। इसके बाद सामर्थ्यानुसार पूर्ववत् उन कर्मोको भी निर्देशानुसार करे।

जो मनुष्य अपनी वैदिक शाखाकी विधिके द्वारा ऐसे कर्मको यथावत् करता है, वह उन अपमृत्यु-प्राप्त प्राणियोको प्रेतत्वसे विमुक्त करके स्वर्गलोकको ले जाता है।

(अध्याय ४४)

पार्वण आदि श्राद्धोके अधिकारी, एकसे अधिककी मृत्युपर पिण्डदान आदिकी व्यवस्था, मृत्युतिथि-मासके अज्ञात होनेपर तथा प्रवासकालमे मृत्यु होनेपर श्राद्ध आदिकी व्यवस्था, नित्य एव दैव तथा वृद्धि आदि श्राद्धोकी कर्तव्यताका प्रतिपादन

श्रीविष्णुने कहा—हे खगेश्वर। अब मैं प्रतिवर्ष होनेवाले पार्वण श्राद्धका वर्णन तुमसे कर रहा हूँ। मृत व्यक्तिके औरस और क्षेत्रज पुत्रको प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। औरस एव क्षेत्रज पुत्रोके अतिरिक्त अन्यको एकोदिष्ट-विधिसे श्राद्ध करना चाहिये पार्वण श्राद्ध नहीं।

अग्निहोत्र न करनेवाले मृत ब्राह्मणके क्षेत्रज तथा औरस दोनो पुत्र यदि अग्निहोत्री नहीं हैं तो उन्हे एकोदिष्ट श्राद्ध नहीं करना चाहिये। प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। यदि पुत्र अथवा पितामसे कोई एक साग्निक हो तो प्रतिवर्ष क्षेत्रज और औरसको पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। किंतु कुछ लोगोका कहना है कि पुत्र अग्निहोत्री हो या न हो पितृगण भी अग्निहोत्री रहे हो या न रहे हो फिर भी एकोदिष्ट श्राद्ध पुत्रोको अपने पिताकी मृत्यु-तिथिपर करना चाहिये। जिसकी मृत्यु दर्शकाल अथवा प्रेतपक्षमे होती है, उसके सभी पुत्र प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करे।

एकोदिष्ट श्राद्ध पुत्रहीन पुरुष और स्त्रीका भी हो सकता है। एकोदिष्ट यज्ञकर्ममे समूल कुशाका प्रयोग करना चाहिये। बाहरसे कटे हुए अथवा एक बार काटे गये कुश ही श्राद्धमे वृद्धिदायक होते हैं। यदि किये जानेवाले पार्वण श्राद्धके बीच अशौच हो जाता है तो यजमान उस अशौचके समाप्त होनेके बाद श्राद्ध करे। एकोदिष्ट श्राद्धका काल आ जानेपर यदि किसी प्रकारका विघ्न आ जाता है तो दूसरे मास उसी तिथिपर वहा एकोदिष्ट श्राद्ध किया जा सकता है। शूद्र तथा उसकी पत्नी और उसके पुत्रका श्राद्ध मौन अर्थात् मन्त्रोच्चार-रहित होना चाहिये। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—इन तीनो द्विजातियोकी कन्या और यज्ञोपवीत-सस्कारसे हीन ब्राह्मणका भी श्राद्ध तूष्णी (मौन) होकर ही करना धर्म-विहित है। एक ही समयमे एक ही घरके बहुत-से लोगोकी अथवा दो व्यक्तियोकी मृत्यु हो गयी हो तो उनके श्राद्धका पाक एक साथ और श्राद्ध पृथक्-पृथक् करना चाहिये। साथमे मरनेपर विधि इस प्रकार है—पहले पूर्वमृतको, तदनन्तर द्वितीय और तृतीयको क्रमश पिण्डदान करना चाहिये।

जो आलस्यरहित होकर इस विधानके अनुसार अपने माता-पिताका प्रत्येक वर्ष श्राद्ध करता है वह उनका उद्धार करके स्वय भी परम गतिको प्राप्त करता है। यदि किसी प्राणीकी मृत्यु और प्रस्थान-कालका दिन स्मरण नहीं है किंतु वह मास ज्ञात है तो उसी मासकी अमावास्या-तिथिमें उस मृतककी मृत्यु-तिथि माननी चाहिये। यदि किसीको मृत्युका मास ज्ञात नहीं है किंतु दिनकी जानकारी है तो मार्गशीर्ष (अगहन) अथवा माघमासमे उसी दिन उसका श्राद्ध किया जा सकता है। जब अपने सम्बन्धीकी मृत्युका दिन एव मास दोनो अज्ञात हो तो श्राद्ध-कर्मके लिये यात्राके दिन और मास ग्रहण करने चाहिये। जब मृतकके

प्रस्थानका भी दिन और मास न ज्ञात हो तो जिस दिन एव मासम मृत्युकी बात सुनी गयी हो, उसे ही श्राद्धके लिये उपयुक्त मान ले। बिना प्रवासके भी मृत्यु होनेपर दिन तथा मास दोना विस्मृत हो गया हो तो पूर्ववत् मृत-तिथिका निर्णय करना चाहिये।

यदि कोई गृहस्थ प्रवासम है और उसके प्रवासके ही दिनोमे उसक घरमे किसीकी मृत्यु हुई हो तथा मृत्युके बाद अशौचके दिन बीत चुके हो और अशौचके अनन्तर जो एकादशाह-द्वादशाह आदि श्राद्ध विहित हैं वे चल रहे हो, इसी बीच प्रवासमे रहनेवाला वह गृहस्थ घर आ जाता हो और आनेके बाद ही मृत्युकी जानकारी उसे मिलती हा तो कवल वह गृहस्थ ही अशौचसे ग्रस्त हागा और तत्काल यथाशास्त्र अपनी अशौचकी निवृत्तिके लिय अपेक्षित विधि अपनायेगा। उसके द्रव्यादिपर अशौच नहीं होगा। उसके घर आनेमात्रसे उसकी अशुचिताका प्रभाव श्राद्धके उपयागम आनेवाली वस्तुआपर नहीं पडेगा। इसक अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि यदि श्राद्धका मुख्य अधिकारी सुदूर देशमे है और उसके घर आकर यथाधिकार श्राद्ध करनेकी सम्भावना नहीं बनती है ऐसी स्थितिमे अन्य अधिकारी पुत्रादिद्वारा यदि श्राद्धकर्म प्रारम्भ कर दिया गया है तो उसे भी श्राद्धप्रक्रिया पूर्ण करनी चाहिये। दाता और भोक्ता दानोको जननाशौच अथवा मरणाशोच ज्ञात न हो तो उन दोनामे किसीको भी दाप नहीं लगता। जननाशौच और मरणाशौचका ज्ञान भोक्ताको हो जाय और दाताका न हो ता उस समय भोक्ताको ही पाप लगता है उसमे वह दाता दोषी नहीं हागा।

जिस मृत व्यक्तिकी तिथि ज्ञात नहीं है, उसकी मृत-तिथिका निर्धारण पूर्वोक्त प्रकारसे करके जो श्राद्धादि करता है वह मृत व्यक्तिको तार देता है।

नित्य-श्राद्धम निमन्त्रित ब्राह्मणोकी सभी पितराके साथ भक्तिपूर्वक अर्घ्य, पाद्य तथा गन्धादिके द्वारा पूजा करके पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणाको यथाविधि भोजन कराना चाहिये। आवाहन स्वधाकार, पिण्डदान, अग्नौकरण, ब्रह्मचर्यादि नियम और विश्वेदेवकृत्य—ये कर्म नित्य-श्राद्धमे त्याज्य हैं। इस श्राद्धमे ब्राह्मणाको भोजन करानेके बाद उन्हे यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रणाम निवेदन करते हुए बिदा करे।

विश्वेदेव आदिके उद्देश्यसे ब्राह्मणाको नित्य-श्राद्धकी भाँति जो भोजन कराया जाता है वह 'देवश्राद्ध' कहा जाता है।

यदि अग्रिम दिन कोई शुभ कार्य—विवाह अथवा यज्ञोपवीत आदि करने हैं तो उसके पूर्व-दिन मातृश्राद्ध और पितृश्राद्ध एव मातामहश्राद्ध (श्राद्धत्रय) करन चाहिये। इन तीना श्राद्धाक लिये अपेक्षित विश्वेदेव-कार्य एक ही बार करना चाहिये। अर्थात् तीना श्राद्धोके लिये तीन बार विश्वेदेव कार्य नहीं करने चाहिये। पहले मातृपितामही तथा प्रपितामहीके लिये, तदनन्तर पितृपितामह और प्रपितामहके लिये तत्पश्चात् मातामहादिके लिये क्रमश आसनादिके दानकी क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। यदि मातृश्राद्धम ब्राह्मणोका अभाव हो तो श्रेष्ठ परिवारम उत्पन्न हुई पति-पुत्रसे सम्पन्न सौभाग्यवती आठ साध्वी स्त्रियोका ही निमन्त्रित किया जा सकता है।

इष्ट और आपूर्त-कृत्यामे आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये। उत्पात आदिकी शान्तिक लिये नित्य-श्राद्धके समान नैमित्तिक श्राद्ध करनेका विधान है।

हे तार्क्ष्य! जैसा मैंने कहा है, उसी प्रकारसे नित्यश्राद्ध दैवश्राद्ध,, वृद्धिश्राद्ध, काम्यश्राद्ध, तथा नैमित्तिक श्राद्ध—इन पाँचों श्राद्धोको करता हुआ मनुष्य अपने समस्त अभीष्टाको प्राप्त करता है। इस तरह मैंने सब बता दिया अब तुम मुझसे और क्या पूछ रहे हो? (अध्याय ४५)

सत्कर्मकी महिमा तथा कर्मविपाकका फल

तार्क्ष्यने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मनुष्योको स्वर्ग और नाना प्रकारके भोग तथा सुख एव रूप बल-बुद्धि एव पराक्रम पुण्यके प्रभावसे प्राप्त हाते हैं। पूर्वोक्त प्रकारके लौकिक एव पारलौकिक भोग पुण्यवान् व्यक्तियाका उनके पुण्यसे ही प्राप्त होते हे अन्यथा नहीं—ये वेदवाक्य सर्वथा सत्य हैं।

जिस प्रकार धर्मकी ही विजय होती हे, अधर्मकी नहीं। सत्यकी ही विजय होती है, असत्यकी नहीं। क्षमाकी ही विजय होती है, क्राधकी नही। विष्णु ही विजय प्राप्त करते हे असुर नहीं—

धर्मो जयति नाधर्म सत्य जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुर ॥

(४६।३)

—उसी प्रकार मैंने सत्य-रूपसे यह जाना है कि सुकृतसे ही कल्याण होता है। जिसका पुण्य जितना उत्कृष्टतम है वह मनुष्य भी उतना ही श्रेष्ठतम है। जिस प्रकार पापी जन्म लेते हैं जिस कर्मफलके अनुसार जीव जिस भोगका भागी होता है, वह जिन-जिन योनियोंको जिस रूपमें प्राप्त करता है जैसा उसका रूप होता है वह सब मैं सुनना चाहता हूँ। हे देव! संक्षेपमें आप मेरी इस इच्छित बातको बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे कश्यपपुत्र गरुड! शुभाशुभ फलोंके भोगके अनन्तर जिन लक्षणोंसे युक्त होकर मनुष्य इस लोकमें उत्पन्न होते हैं, उनको तुम मुझसे सुनो।

हे पक्षिश्रेष्ठ! इस लोकमें आत्मज्ञानियोंका शासक गुरु है। दुरात्माओंका शासक राजा है और गुप्तरूपसे पाप करनेवाले प्राणियोंका शासक सूर्य-पुत्र यम है—

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्।
इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥

(४५।८)

अपने पापोंका प्रायश्चित्त न किये जानेपर उन्हें अनेक प्रकारके नरक प्राप्त होते हैं। वहाँकी यातनाओंसे विमुक्त होकर प्राणी मर्त्यलोकमें जन्म लेते हैं। मानवयोनिमें जन्म लेकर वे अपने पूर्व-पापोंके जिन चिह्नोंसे युक्त रहते हैं मैं उन लक्षणोंको तुम्हें बताऊँगा।

सभी पापी यमराजके घर पहुँचकर नाना प्रकारके कष्ट सहन करते हैं। जब उन यातनाओंसे उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है तो उनके पापोंका भावी शरीरपर चिह्नाङ्कन होता है। उन्हीं चिह्नोंसे संयुक्त होकर वे पुनः इस पृथ्वीलोकमें जन्म ग्रहण करते हैं। यथा—असत्यवादी हकलाकर बोलनेवाला गायक विषयमें झूठ बोलनेवाला गूँगा ब्रह्महन्ता कोढ़ी मद्यपी काले रंगके दाँतोंवाला स्वर्णचोर कुत्सित एवं विकृत नखोंवाला और गुरुपत्नीगामी चर्मरोगी होता है तथा पापियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला निम्नयोनिमें जन्म लेता है और दान न देनेवाला दरिद्र अयाज्यका यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण ग्रामसूकर बहुतोंका यज्ञ करानेवाला गधा और अमन्त्रक भोजन करनेवाला कौआ होता है।

बिना परीक्षण किये हुए भोजनको ग्रहण करनेवाले निर्जन वनमें व्याघ्र होते हैं। अन्य प्राणियोंको बहुत तर्जना देनेवाले पापी बिलार कभकी जलानेवाला जुगुनू, पात्रको विद्या न देनेवाला बैल ब्राह्मणको बासी अन्न देनेवाला कुत्ता, दूसरेसे ईर्ष्या और पुस्तककी चोरी करनेवाला जात्यन्ध और जन्मान्ध होता है।

फलोंकी चोरी करनेसे मनुष्यके संतानकी मृत्यु हो जाती है इसमें संदेह नहीं है। वह मरनेके बाद बंदरकी योनिमें जाता है। तदनन्तर उसीके समान मुख प्राप्त कर पुनः मानवयोनिमें उत्पन्न होता है और गण्डमालाके रोगसे ग्रस्त रहता है। जो बिना दिये स्वयं खा लेता है, वह संतानहीन होता है। वस्त्रकी चोरी करनेवाला गोह, विष देनेवाला वायुभक्षी सर्प संन्यास-मार्गका परित्याग करके पुनः अपने पूर्व आश्रममें प्रविष्ट हो जानेवाला मरुस्थलका पिशाच होता है। जलापहर्ता पापीको चातक धान्यके अपहरणकर्ताको मूषक और युवावस्थाको न प्राप्त हुई कन्याका संसर्ग करनेवालेको सर्पकी योनि प्राप्त होती है।

गुरुपत्नीगामी निश्चित ही गिरगिट होता है। जो व्यक्ति जलप्रपातके स्थानको तोड़कर नष्ट करता है, वह मत्स्य होता है। न बेचने योग्य वस्तुको जो खरीदता है वह बगुला तथा गिद्ध होता है। अयोनिग व्यक्ति भड़िया और खरीदी जा रही वस्तुमें छल करनेवाला उलूककी योनि प्राप्त करता है। जो मृतकके एकादशाहमें भोजन करनेवाला होता है तथा प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंको धन नहीं देता, वह सियार होता है। रानीके साथ सम्भोग करके मनुष्य दद्रुी होता है। चोरी करनेवाला ग्रामसूकर फलविक्रेता श्यामलता होता है। वृषलीके साथ गमन करनेवाला वृष होता है। जो पुरुष पैरोंसे अग्निका स्पर्श करता है वह बिलौटा दूसरेका मांस भक्षण करनेवाला रोगी रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेवाला नपुंसक, सुगन्धित वस्तुओंकी चोरी करनेवाला दुर्गन्धदायक प्राणी होता है। दूसरेका थोड़ा या बहुत जिस-किसी भी प्रकारसे जो कुछ भी मनुष्य अपहरण करता है वह उस पापसे निश्चित ही तिर्यक् योनिमें जाता है।

हे खगेन्द्र! ऐसे तो पहलेवाले चिह्न हैं ही, किंतु इनके अतिरिक्त भी अन्य बहुत-से चिह्न हैं, जो अपने-अपने कर्मानुसार प्राणियोंके शरीरमें व्याप्त रहते हैं। ऐसा पापी क्रमशः नाना प्रकारके नरकोंका भोग करके अवशिष्ट कर्मफलके अनुसार इन पूर्वकथित योनियोंमें जन्म लेता है। हे काश्यप! उसके बाद मृत्यु होनेपर जबतक शुभ और अशुभ कर्म समाप्त नहीं हो जाते हैं तबतक सभी योनियोंमें

सैकडा बार उसका जन्म होता है इसमे सदेह नहीं है। जब स्त्री तथा पुरुषके सयोगसे गर्भमे शुक्र और शोणित जाता है तो उसीमे पञ्चभूतासे समन्वित होकर यह पाञ्चभौतिक शरीर जन्म लेता है। तदनन्तर उसमे इन्द्रियाँ मन, प्राण ज्ञान आयु, सुख धैर्य धारणा प्ररणा, दु ख, मिथ्याहकार, यत्न, आकृति वर्ण राग-द्वेष और उत्पत्ति-विनाश—ये सब उस अनादि आत्माका सादि मानकर पाञ्चभौतिक शरीरके साथ उत्पन्न होते हैं। उसी समयसे वह पाञ्चभौतिक शरीर पूर्वकर्मोसे आबद्ध होकर गर्भमे बढने लगता है।

हे तार्क्ष्य! मैंने जैसा तुमसे पहले कहा है, वैसा ही जीवका लक्षण है। चार प्रकारके प्राणिसमूहमे इसी प्रकारके परिवर्तनका चक्र घूमता रहता है। उसीमे शरीरधारियोका उद्भव और विनाश होता है। यथाविहित अपने धर्मका पालन करनेसे प्राणियोका ऊर्ध्वगति तथा अधर्मकी ओर बढनेसे अधोगति प्राप्त होती है। अत सभी वर्णोकी सद्गति अपने धर्मपर चलनेसे ही होती है। हे वैनतेय! देव और मानवयोनिमे जो दान तथा भोगादिकी क्रियाएँ दिखायी देती हैं वे सब कर्मजन्य फल हैं। घोर अकर्मसे और काम-क्रोधके द्वारा अर्जित जो अशुभ पापाचार हैं उनसे नरक प्राप्त होता है तथा वहाँसे जीवका उद्धार नहीं होता है। (अध्याय ४६)
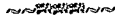
यममार्गमे स्थित वैतरणी नदीका वर्णन, पापकर्मोसे घोर वैतरणीमे निवास, वैतरणीसे पार होनेके लिये वैतरणी धेनुदान, भगवान् विष्णु, गङ्गा तथा ब्राह्मणकी महिमा

गरुडने कहा—हे देवदेवेश! महाप्रभो! अब आप परम कृपा करके दान दानके माहात्म्य और वैतरणीके प्रमाणका वर्णन करे।

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! यमलोकके मार्गमे जो वैतरणी नामकी महानदी है, वह अगाध दुस्तर और देखनेमात्रसे पापियोको महाभयभीत करनेवाली है। वह पीब और रक्तरूपी जलसे परिपूर्ण है। मासके कीचडसे परिव्याप्त एव तटपर आये हुए पापियाको देखकर उन्हे नाना प्रकारसे भयाक्रान्त करनेवाले स्वरूपको धारण कर लेती है। पात्रके मध्यमे घीकी भाँति वैतरणीका जल तुरत खौलने लगता है। उसका जल कीटाणुओ एव वज्रके समान सूँडवाले जीवोसे व्याप्त है। सूँस घडियाल वज्रदन्त तथा अन्यान्य हिसक एव मासभक्षक जलचरासे वह महानदी भरी हुई है। प्रलयके अन्तमे जैसे बारहा सूर्य उदित होकर विनाशलीला करते हैं वैसे ही वे वहाँपर भी सदैव तपते रहते हैं, जिससे उस महातापमे वे पापी चिल्लाते हुए करुण विलाप करते हैं। उनके मुखसे बार-बार हा *भ्रात* हा *तात*, यही शब्द निकलता है। वे जीव उस महाभयकर धूपमे इधर-उधर भागते हैं, उस दुर्गन्धपूर्ण जलमे डुबकी लगाते हैं और अपनी आत्मग्लानिसे व्यथित होते हैं। वह महानदी चारो प्रकारके प्राणियासे भरी हुई दिखायी देती है। पृथ्वीपर जिन लोगोने गोदान किया है, उस दानके प्रभावसे वे उसे पार कर जाते हैं अन्यथा जिनके द्वारा यह दान नहीं हुआ है, वे उसीमे डूबते रहते हैं।

जो मूढ मेरी, आचार्य गुरु, माता-पिता एव अन्य वृद्धजनाकी अवमानना करते हैं मरनेके बाद उनका वास उसी महानदीमे होता है। जो मूढ अपनी विवाहिता पतिव्रता, सुशीला और धर्मपरायणा पत्नीका परित्याग करते हैं उनका सदैवके लिये उसी महाधिनौनी नदीके जलमे वास होता है। विश्वासमे आये हुए स्वामी मित्र, तपस्वी स्त्री बालक एव वृद्धका वध करके जो पापी उस महानदीमे गिरते है, वे उसके बीचमे जाकर करुण विलाप करते हुए अत्यन्त कष्ट भोगते है। शान्त तथा भूखे ब्राह्मणको विघ्न पहुँचानेके लिये जो उसके पास जाता है, वहाँ प्रलयपर्यन्त कृमि उसका भक्षण करते हैं। जो ब्राह्मणको प्रतिज्ञा करके प्रतिज्ञात वस्तु नहीं देता है अथवा बुलाकर जो 'नहीं है'—ऐसा कहता है उसका वहाँ वैतरणीमे वास होता है। आग लगानेवाला, विष देनेवाला झूठी गवाही देनेवाला मद्य पीनेवाला यज्ञका विध्वस करनेवाला, राजपत्नीके साथ गमन करनेवाला, चुगलखोरी करनेवाला कथामे विघ्न करनेवाला स्वय दी हुई वस्तुका अपहरण करनेवाला खेत (मेड) और सेतुका तोडनेवाला, दूसरेकी पत्नीको प्रधर्षित करनेवाला रस-विक्रेता तथा वृषलीपति ब्राह्मण प्यासी गायाकी बावलीको तोडनेवाला, कन्याके साथ व्यभिचार करनेवाला दान देकर पश्चात्ताप करनेवाला कपिलाका दूध पीनेवाला शूद्र तथा मासभोजी

ब्राह्मण—ये निरन्तर उस वैतरणी नदीमे वास करते हैं। कृपण, नास्तिक और क्षुद्र प्राणी उसमे निवास करते हैं। निरन्तर असहनशील तथा क्रोध करनेवाला अपनी बातको ही प्रमाण माननेवाला दूसरेकी बातको खण्डित करनवाला नित्य वैतरणीमे निवास करता है। अहकारी, पापी तथा अपनी झूठी प्रशसा करनेवाला, कृतघ्न गर्भपात करनेवाला वैतरणीमे निवास करता है। कदाचित् भाग्ययोगसे यदि उस नदीको पार करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाय तो तारनेका उपाय सुनो।

मकर और कर्ककी सक्रान्तिका पुण्यकाल व्यतीपात योग दिनोदय सूर्य चन्द्रग्रहण सक्रान्ति, अमावास्या अथवा अन्य पुण्यकालके आनेपर श्रेष्ठतम दान दिया जाता है। मनमे दान देनेकी श्रद्धा जब कभी उत्पन्न हो जाय, वही दानका काल है क्योकि सम्पत्ति अस्थिर है।

शरीर अनित्य है और धन भी सदा रहनेवाला नहीं है। मृत्यु सदा समीप है इसलिये धर्म-सग्रह करना चाहिये—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वत ॥
नित्य सनिहितो मृत्यु कर्तव्यो धर्मसग्रह ।

(४७। २४-२५)

काली अथवा लाल रगकी शुभ लक्षणावाली वैतरणी गायको सोनेकी सींग चाँदीके खुर, कास्यपात्रकी दोहनीसे युक्त दो काले रगके वस्त्रोसे आच्छादित करके सप्तधान्य-समन्वित करके ब्राह्मणको निवेदित करे। कपाससे बने हुए द्रोणाचलके शिखरपर ताम्रपात्रमे लौहदण्ड लेकर बैठी हुई स्वर्णनिर्मित यमकी प्रतिमा स्थापित करे। सुदृढ बन्धनोसे बाँधकर इक्षुदण्डोकी एक नौका तैयार करे। उसीसे सूर्यसे उत्पन्न गौको सम्बद्ध कर दे। इसके बाद छत्र पादुका अगूठी और वस्त्रादिसे पूज्य श्रेष्ठ ब्राह्मणको सतुष्ट करके जल तथा कुशके सहित इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए वह वैतरणी गौ उसे दानमे समर्पित करे—

यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम्।
तर्तुकामो ददाम्येना तुभ्य वैतरणीं नम ॥
गावो मे अग्रत सन्तु गावो मे सन्तु पार्श्वत ।
गावो मे हृदये सन्तु गवा मध्ये वसाम्यहम्॥
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर।
सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्य वैतरणीं नम ॥

(४७। ३०—३२)

'हे द्विजश्रेष्ठ! महाभयकर वैतरणी नदीको सुनकर मैं उसको पार करनेकी अभिलाषासे आपको यह वैतरणी दान दे रहा हूँ। हे विप्रदेव! गौएँ मेरे आगे रहे, गौएँ मेरे बगलमे रहे, गौएँ मेरे हृदयमे रहे और मैं उन गायोके बीचमे रहूँ। हे विष्णुरूप! द्विजवरेण्य! भूदेव! मेरा उद्धार करो। मैं दक्षिणासहित यह वैतरणी गौ आपको दे रहा हूँ। आप मेरा प्रणाम स्वीकार करे।

इसके बाद सबके स्वामी धर्मराजकी प्रतिमा और वैतरणी नामवाली उस गौकी प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणको दान दे। उस समय वह ब्राह्मणको आगे कर उस वैतरणी गौकी पूँछ हाथमे लेकर यह कहे—

धेनुके त्व प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये॥
उत्तारणाय देवेशि वैतरण्ये नमोऽस्तु ते।

(४७। ३४-३५)

'हे गौ! उस महानदीसे मुझे पार उतारनेके लिये आप महाभयकारी यमराजके द्वारपर मेरी प्रतीक्षा करे। हे वैतरणी! देवेश्वरि! आपको मेरा नमस्कार है।'

ऐसा कहकर उस गौको ब्राह्मणके हाथमे देकर उनके पीछे-पीछे उनके घरतक पहुँचाने जाय। हे वैनतेय! ऐसा करनेपर वह नदी दाताके लिये सरलतासे पार करनेके योग्य बन जाती है। जो व्यक्ति इस पृथ्वीपर गौका दान देता है वह अपने समस्त अभीष्टको सिद्ध कर लेता है।

सुकर्मके प्रभावसे प्राणीको ऐहिक और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है। स्वस्थ जीवनमे गोदान देनेसे हजार गुना एव रोगग्रस्त जीवनमे सौ गुना लाभ निश्चित है। मरे हुए प्राणीके कल्याणार्थ जितना दान दिया जाता है उतना ही उसका पुण्य है। अत मनुष्यको अपने हाथसे ही दान देना चाहिये। मृत्यु होनेके बाद कौन किसके लिये दान देगा? दान-धर्मसे रहित कृपणतापूर्वक जीवन जीनेसे क्या लाभ? इस नश्वर शरीरसे स्थिर कर्म करना चाहिये। प्राण अतिथिकी तरह अवश्य छोडकर चले जायँगे।

हे पक्षिराज! इस प्रकार प्राणिवर्गके समस्त दु खका वर्णन मैंने तुमसे कर दिया है। इसके साथ यह भी बता दिया है कि प्रेतके मोक्ष एव लोकमङ्गलके लिये उसके और्ध्वदेहिक कर्मको करना चाहिये।

सूतजीने कहा—हे विप्रगण! परम तेजस्वी भगवान् विष्णुके द्वारा दिये गये ऐसे प्रेत-चरितसे सम्बन्धित

उपदेशको सुनकर गरुडको अत्यन्त सतुष्टि प्राप्त हुई।

हे ऋषियो! जीव-जन्तुओके जन्मादिका यही सब विधान है। यही जन्म, मरण, प्रेतत्व तथा और्ध्वदैहिक कृत्यका नियम है। मैंने सब प्रकारसे उनके मोक्ष आदि कारणका वर्णन कर दिया है।

'जिनके हृदयमे नीलकमलके समान श्यामवर्णवाले भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्हींको लाभ और विजय प्राप्त होती है। ऐसे प्राणियाकी पराजय कैसे हो सकती है? धर्मकी जीत होती है, अधर्मकी नहीं। सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। क्षमाकी विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही जीतते हैं, असुर नहीं। विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं और विष्णु ही अपने स्वजन बान्धव हैं, जिनकी बुद्धि इस प्रकार स्थिर हो जाती है, उनकी दुर्गति नहीं होती है। भगवान् विष्णु मङ्गलस्वरूप हैं, गरुडध्वज मङ्गल हैं, भगवान् पुण्डरीकाक्ष मङ्गल हैं एव हरि मङ्गलके ही आयतन हैं। हरि ही गङ्गा और ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण तथा गङ्गा उन विष्णुके मूर्तरूप हैं। अत गङ्गा, हरि एव ब्राह्मण ही इस त्रिलोकक सार हैं'—

मया प्रोक्त वै मुक्त्यै निदान चैव सर्वश ।
लाभस्तेपा जयस्तेपा कुतस्तेपा पराजय ।
येपामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दन ॥
धर्मो जयति नाधर्म सत्य जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरा ॥
विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णु स्वजनयान्धवा ।
येपामेव स्थिरा युद्धिर्न तेपा दुर्गतिर्भवेत्॥
मङ्गल भगवान्विष्णुर्मङ्गल गरुडध्वज ।
मङ्गल पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतन हरि ॥
हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरि ।
भागीरथी हरिर्विप्रा सारमेतज्जगत्त्रये॥

(४७। ४५—४९)

इस प्रकार सूतजी महाराजके मुखसे निकली हुई सभी शास्त्राके मूल तत्त्वासे सुशोभित भगवान् विष्णुकी वाणी-रूपी अमृतका पान करके समस्त ऋषियोको बहुत सतुष्टि प्राप्त हुई। वे सभी परस्पर उन सर्वार्थद्रष्टा सूतजीकी प्रशसा करने लगे। शौनक आदि मुनि भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। 'प्राणी चाहे अपवित्र हो या पवित्र हो, सभी अवस्थाआम रहते हुए भी जो पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतरसे पवित्र हो जाता है'—

अपवित्र पवित्रो वा सर्वावस्था गतोऽपि वा।
य स्मरेत्पुण्डरीकाक्ष स बाह्याभ्यन्तर शुचि ॥

(४७।५२)

(अध्याय ४७)

दु खी गर्भस्थ जीवका विविध प्रकारका चिन्तन करना, यमयातनाग्रस्त जीवका सदा सुकृत करनेका उपदेश देना

तार्क्ष्यने कहा—हे प्रभो! इस मर्त्यलोकमे अपनी पुण्यकी सख्याके अनुसार सभी जातियामे जो मनुष्य निवास करते हैं, वे अपना काल आ जानेपर मृत्युको प्राप्त करते हैं—ऐसा लोकम कहते हैं, इसके विपयम आप मुझे बताये। विधाताके द्वारा बनाये गये उस मार्गमे स्थित व प्राणी अत्यन्त कठिन मार्गसे होकर गुजरते हैं। किस पुण्यसे वे प्रसन्नतापूर्वक जाते हैं और किससे वे यहाँ रहते हैं और कुल बल तथा आयुका लाभ प्राप्त करते हैं।

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! यह सुनकर जिनके द्वारा इस पृथ्वीका निर्माण हुआ है, जिन्होने समस्त चराचर जगत्की सृष्टि की है और समर्थ यमको अपने विहित कार्यमें नियोजित किया है उन महाप्रभुने मनुष्यके शरीर कर्म भय और रूपका स्मरण करके गरुडस इस प्रकार कहा—

भगवान्ने कहा—हे गरुड! यम-मार्गमे गमन करनेवाले जीवात्माआका ऐहिक शरीर नहीं, अपितु धर्म, अर्थ, काम तथा चिरकालीन मोक्ष प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखनेवाला अगुष्ठमात्र परिमाणमे स्थित दूसरा शरीर होता है। वह उसी रूपमे अपने पाप-पुण्यके अनुसार लोक एव निवासगृह प्राप्त करता है। हे द्विज! उस यातना-शरीरम स्थित होकर यम-पाशसे बँधा हुआ वह जीव पुन -पुन रोदन करता है—अत्यन्त पवित्र देशमे द्विजका शरीर प्राप्त करके भी मैंने न भगवान् विष्णुकी पूजा की, न पितरो एव देवताआको तृप्त किया न मैंने याग, दान आदि किया और न योग्य पुत्रादि सतति ही। मुझ यम-मार्गगामीका कोई बन्धु नहीं है। मुझे पुन द्विजका शरीर प्राप्त हो इस इच्छासे कोई पुण्य

कार्य भी नहीं किया है। अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त करके वेद और पुराणकी संहिताओंका भी अध्ययन मैंने नहीं किया है। इस प्रकार रुदन करते हुए देहीसे यमदूत कहते हैं कि हे देहिन्! हाथमें आये हुए ब्राह्मणशरीर, पवित्र देश आदि रूपी अनमोल रत्न भी खो दिये। हे देहिन्! तुम उसीके अनुसार अपना निर्वाह करो, जैसा कि तुमने किया है।'

मनुष्य क्षत्रियवंशका हो अथवा वैश्यवंशका हो, वह शूद्र हो या नीचवर्णका हो, किंतु यदि वह देवता, ब्राह्मण बालक स्त्री वृद्ध दीन और तपस्वियोंका हन्ता है अथवा इन्हें उपद्रवग्रस्त देखकर (इनके संरक्षणसे) पराङ्मुख हो जाता है तो उसके सभी इष्टदेव उससे विमुख हो जाते हैं। पितृगण उसके द्वारा दिये गये तिलोदकका पान नहीं करते हैं और अग्निदेव उसके द्वारा दिये गये हव्यको भी नहीं स्वीकार करते हैं। हे पक्षीन्द्र! संग्रामके उपस्थित होनेपर शस्त्र लेकर जो क्षत्रिय शत्रु-सेनाके समक्ष द्वेष और भयवश नहीं जाता है तथा बादमें मारा जाता है तो उसका क्षत्रबल मानो व्यर्थ ही हो गया।

जो युद्धमें वीरगति प्राप्त करता है। उसने मानो चन्द्र एवं सूर्यग्रहणके अवसरपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान दे दिया श्रेष्ठ तीर्थोंमें जाकर सदा स्नान कर लिया, गयातीर्थमें पहुँचकर सदा पितरोंको पिण्डदान दे दिया। जो क्षत्रिय अपने कर्तव्योंका पालन बिना किये हुए शरीरको छोड़ता है वह सदा चिंता करता रहता है कि समरभूमिमें मारे गये स्वामीके लिये बलात् अपहृत गौके लिये, स्त्री-बालककी हत्या रोकनेके लिये तथा मार्गमें लूटे जानेवाले साथियोंके लिये अपने प्राणोंका परित्याग मैंने नहीं किया। यमपाशमें आबद्ध वैश्य अपने किये हुए कर्मोंके विषयमें सोचता है कि मैंने किसी प्रकारका पुण्य-संचय नहीं किया, कुटुम्बके लिये मोहान्ध होकर क्रय-विक्रयमें मैंने सत्यका भी प्रयोग नहीं किया। ऐसे ही शूद्रका शरीर प्राप्त करनेवाला भी अपने कर्तव्यसे विमुख रहते हुए यदि शरीर त्याग करता है तो वह भी यह चिंता करता है कि मैंने ब्राह्मणोंको न तो यशस्कर दान दिया है और न उनकी पूजा की है। मेरे द्वारा इस पृथ्वीपर जलाशयका निर्माण नहीं करवाया गया है। मैंने किसी संस्कारहीन ब्राह्मणश्रेष्ठका संस्कार करानेमें योगदान भी नहीं किया है। शास्त्रविहित अपने कर्मोंका परित्याग करके मदान्ध होकर मैं जीवित रहा। श्रेष्ठ तीर्थमें जाकर अपने शरीरका परित्याग भी नहीं किया। मैंने धर्मार्जन भी नहीं किया है। कभी सद्गति प्राप्त करनेके लिये मैंने देवताओंकी पूजा भी नहीं की है।

समस्त लोकोंमें पृथ्वी स्वर्ग और पाताल—ये तीन लोक सारभूत हैं। सभी द्वीपोंमें जम्बूद्वीप समस्त देशोंमें देवदेश अर्थात् भारतवर्ष और सभी जीवोंमें मनुष्य ही सार है। इस जगत्‌के सभी वर्णोंमें ब्राह्मणादि चार वर्ण तथा उन वर्णोंमें भी धर्मनिष्ठ व्यक्ति श्रेष्ठ हैं। इस लोकयात्राके मार्गमें स्थित जीवात्मा धर्मसे सभी प्रकारका सुख और ज्ञान प्राप्त करता है। हे पक्षिन्! गर्भस्थ जीवको अपने पूर्वजन्मोंका ज्ञान रहता है वह वहाँ स्मरण करता है कि आयुके समाप्त होनेपर शरीरका परित्याग करके अब मैं मलादिमें रहनेवाले छोटे-छोटे कृमि या कीटाणुओंकी एक विशेष योनिमें स्थित हूँ, मैं सरककर चलनेवाले सर्पादिकी योनिमें पहुँचा मच्छर हो गया था चार पैरोंवाला अश्व या वृषभ नामक पशु बन गया था अथवा जंगली सूकरकी योनिमें प्रविष्ट था। इस प्रकार गर्भमें रहते हुए उस जीवात्माको पूर्ण ज्ञान रहता है, किंतु उत्पन्न होते ही वह तत्काल उसे भूल जाता है। गर्भमें पहुँचकर जो जीवात्मा चिन्तन करता है, शरीरधारी वैसा ही जन्म लेकर बालक युवा और वृद्ध होता है। यदि गर्भमें सोची गयी बात सांसारिक व्यामोहके कारण विस्मृत हो जाती है तो पुनः मृत्युकालमें उसकी याद आ जाती है। यदि शरीरके नष्ट होनेपर वह हृदयमें ही रह गयी है तो पुनः गर्भमें जानेपर उसका स्मरण होना निश्चित है। उसे याद आता है कि मैं दूसरेको छलनेका विचार करता रहा। मैंने शरीरकी रक्षाके लिये धर्मका परित्याग करके द्यूत, छल-कपट और चोरवृत्तिका आश्रय लिया।

अत्यन्त कष्टसे मैंने स्वयं लक्ष्मीको एकत्र किया था किंतु अभिलषित धनका उपभोग मैं नहीं कर सका। अग्निदेव अतिथि और बन्धु-बान्धवोंको स्वादिष्ट अन्न फल गोरस तथा ताम्बूल दे करके मैं उन्हें संतुष्ट करनेमें असफल रहा। चन्द्रग्रहण हो या मेष-मकर राशियोंपर सूर्यके प्रवेशका पुण्यकाल हो ऐसे अवसरपर भी श्रेष्ठ तीर्थोंका सेवन मैंने नहीं किया। इसलिये हे देहिन्! तुम मल-मूत्रसे भरे हुए अपने इस कोशको परिपुष्ट करनेमें लगे रहे। अतः तुम्हारा उद्धार कहाँ हो सकता है? इस पृथ्वीपर

स्थित त्रिविक्रम भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका दर्शन मैंने नहीं किया, उन्हे प्रणाम नहीं किया और न तो उनकी पूजा की है। प्रभासक्षेत्रमे विराजमान भगवान् सोमनाथकी भक्तिपूर्वक पूजा एव वन्दना भी मेरे द्वारा नहीं हुई है। जब ऐसी चिता मृत प्राणी करता है, तब यमदूत उससे कहते हैं कि हे देहधारिन्! जैसा तुमने किया है, उसके अनुसार अपना निस्तार करो। हे देहिन्! पृथ्वीके श्रेष्ठतम तीर्थोंकी सनिधिमे जाकर उनमे स्नानकर तुम्हारे द्वारा विद्वानो, ब्राह्मणा एव गुरुजनाके हाथमे कुछ नहीं दिया गया, अत जैसा तुमने किया है, वैसा भोगो। हे जीव! तुमने चन्दन और नैवेद्यादि पञ्चोपचारसे और चन्दनादियुक्त बलि प्रदान करके मातृकापूजा नहीं की, न तो तुम्हारे द्वारा विष्णु, शिव, गणेश, चण्डी अथवा सूर्यदेव ही पूजे गये हैं। अत तुमने जो कर्म किया है, उसीम अपना निर्वाह करो। हे देहिन्! तुम्हे तो देवत्व प्राप्त करने योग्य मानवयोनिकी प्राप्ति हुई थी, किंतु (लौकिक आसक्तिमे) मोहवश यह सब समाप्त हो गया। विमूढबुद्धि तुमने अपनी गतिको नहीं देखा इसलिये जो तुमने किया है, अब उसीमें निस्तार करो।

हे पक्षिन्! धर्म, अर्थ तथा यशको प्रदान करनेवाले ऐसे पूर्वोक्त परलोकपथके पथिक जीवाके पश्चात्ताप-वाक्यका विचार करके इस मनुष्यलोकमे जो धर्माचरण करते हुए पुण्य देशम निवास करते हैं, वे इसी मनुष्यलोकम जीवन्मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

ऊपर किये हुए वर्णनके अनुसार विलाप करते हुए प्रेतको यमदूत अपने कालस्वरूप मुद्गरोंसे बहुत मारते हैं। वह 'हा दैव! हा दैव!' यह स्मरण करता हुआ अपनेको कोसते हुए कहता है कि तुमने अपनी कमायीसे जो धन अर्जित किया था, उसमसे किसीको दान नहीं दिया। पृथ्वीपर रहते हुए तुमने भूमिदान गोदान, जलदान वस्त्रदान फलदान, ताम्बूलदान अथवा गन्धदान भी नहीं किया तो अब भला क्या सोच रहे हो? तुम्हार पिता और पितामह मर गये, जिसने तुमको अपने गर्भमे धारण किया वह तुम्हारी माता भी मर गयी, तुम्हारे सभी बन्धु भी नहीं रहे ऐसा तुमने दखा है। तुम्हारा पाञ्चभौतिक शरीर अग्निमे जलकर भस्म हा गया। तुम्हारे द्वारा एकत्र किया गया सम्पूर्ण धन-धान्य पुत्रोने हस्तगत कर लिया। जो कुछ तुम्हारा सुभाषित है और जो कुछ तुमने धर्मसचय किया है, वह तुम्हारे साथ है। इस पृथ्वीपर जन्म लेनेवाला राजा हो अथवा सन्यासी या कोई श्रेष्ठतम ब्राह्मण हो, वह मरनेके बाद पुन आया हुआ नहीं दिखायी देता है। जो भी इस धरातलपर उत्पन्न हुआ हे, उसकी मृत्यु निश्चित है। हे पक्षीन्द्र! दूताके सहित धर्मराजके पार्षद जब प्रेतसे इस प्रकारसे कहते हैं तो दु खी वह प्रेत उन गणाकी महान् आश्चर्यपूर्ण बातको सुनकर मनुष्यकी वाणीमे कहने लगता है—

जब दानके प्रभावसे व्यक्ति विमानपर आरूढ होता है, उस समय धर्म उसका पिता है, दया उसकी माता है, मधुर एव अर्थगाम्भीर्ययुक्त वाणी उसकी पत्नी है और सुन्दर तीर्थमें किया गया स्नान उसका हितैषी बन्धु है। जब मनुष्य अपने हाथसे सुकृत करके उसको भगवान्‌के चरणोमे अर्पित कर देता है तब उसके लिये स्वर्ग किंकरकी भाँति हो जाता है। जो प्राणी धर्मनिष्ठ है वह अत्यन्त सुख-सुविधाओको प्राप्त करता है और जो पापी है वह नाना दु खोका भोग करता है। जो धर्मशील, मान-सम्मान तथा क्रोधको जीतनेवाला विद्या-विनयसे युक्त, दूसरेको कष्ट न देनेवाला अपनी पत्नीमे सतुष्ट और परायी स्त्रीसे दूर रहनेवाला है, वह पृथ्वीपर हमारे लिये वन्दनीय है। जो मिष्टान्नदाता, अग्निहोत्री, वेदान्ती हजारो चान्द्रायणव्रत करनेवाला, मासपर्यन्त उपवास रखनेमे समर्थ पुरुष तथा पतिव्रता नारी है—ये छ इस जीवलोकमे मेरे लिये वन्दनीय हैं। इस प्रकारका सम्यक् आचरण करते हुए जो मनुष्य वापी, कूप और जलसे पूर्ण तालाब बनवाता है जो प्याऊ, जलकुण्ड, धर्मशाला तथा देवमन्दिरका निर्माण कराता है वह उत्तम धर्म करनेवाला है। वेदज्ञ ब्राह्मणको दिया गया वर्षाशन, कन्याका विवाह, ऋणी ब्राह्मणकी ऋणमुक्ति, सुगमतासे बोयी-जोती जानेवाली भूमिका दान तथा प्याससे दु खी प्राणियोके लिये उसीके अनुकूल कूप, तडागादिका निर्माण ये ही सब सुकृत हैं।

शुद्ध भावसे जो प्राणी इस सुकृतसाररूप अध्यायको सुनता और पढता भी है वह कुलीन है। वह धर्मनिष्ठ व्यक्ति मृत्युके बाद निश्चित ही उस अनन्त ब्रह्माण्डके एकमात्र आश्रय नारायणको प्राप्त करता है। (अध्याय ४८)

भगवान् विष्णुद्वारा गरुडको दिये गये महत्त्वपूर्ण उपदेश, मनुष्ययोनिप्राप्तिकी दुर्लभताका वर्णन, मनुष्य शरीर प्राप्तकर आत्मकल्याणके लिये सचेष्ट रहना, संसारकी दु:खरूपता तथा अनित्यता और ईश्वरकी नित्यताका वर्णन, कालके द्वारा सभीके विनाशका प्रतिपादन, सत्संग और विवेकज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति, तत्त्वज्ञानरूपी मोक्षप्राप्तिके उपाय, गरुडपुराणकी वक्तृ-श्रोतृपरम्परा तथा गरुडपुराणका माहात्म्य

गरुडने कहा—हे दयाके सागर! अज्ञानके कारण ही जीवकी उत्पत्ति इस संसारमें होती है, इस बातको मैंने सुन लिया। अब मैं मोक्षके सनातन उपायको सुनना चाहता हूँ। हे देवदेवश! शरणागतवत्सल! प्रभो! सभी प्रकारके दु:खोंसे मलिन बनाये गये इस दुस्तर असार संसारमें नाना प्रकारके शरीरोंमें प्रविष्ट जीवोंकी अनन्त राशियाँ हैं। वे इसी संसारमें जन्म लेती हैं और इसीमें मर जाती हैं किंतु उनका अन्त नहीं होता है। वे सदैव दु:खसे व्याकुल ही रहती हैं। यहाँ कहीं कोई भी सुखी नहीं है। हे मोक्षदाता! स्वामिन्! वे किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं? उसको आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान्ने कहा—हे तार्क्ष्य! जो तुम मुझसे पूछ रहे हो, जिसको सुनने मात्रसे ही मनुष्य इस संसारके आवागमनके चक्रसे मुक्त हो जाता है। उसे मैं कह रहा हूँ, तुम सुनो।

हे खगेश! इस जगत्‌से परे परब्रह्मस्वरूप, निरवयव, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता सर्वेश, निर्मल, अद्वय-तत्त्व स्वयंप्रकाश आदि-अन्तसे रहित विकारशून्य परात्पर निर्गुण और सच्चिदानन्द शिव हैं, उसीके अंश ये जीव हैं। जो अनादि अविद्यासे वैसे ही आच्छादित हैं जैसे अग्निमें उसके अंश विस्फुल्लिङ्ग स्थित हैं। अनादि कर्मोंके प्रभावसे प्राप्त शरीरादि नाना उपाधियोंमें होनेके कारण परस्पर भिन्न-भिन्न हो गये हैं, सुख-दु:ख प्रदान करनेवाले पुण्य और पापोंका उनके ऊपर नियन्त्रण है। उसी कर्मके अनुसार उन्हें जाति देह आयु तथा भोगकी प्राप्ति होती है। सूक्ष्म या लिङ्ग शरीरके बने रहनेतक पुन:-पुन: जन्म-मरणकी परम्परा चलती रहती है।

स्थावर, कृमि पक्षी, पशु, मनुष्य धार्मिक देवता और मुमुक्षु यथाक्रम चार प्रकारके शरीरोंको धारण करके हजारों बार उनका परित्याग करते हैं। यदि पुण्य कर्मके प्रभावसे उनमेंसे किसीको मानवयोनि मिल जाय तो उसे ज्ञानी बनकर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। चौरासी लाख योनियोंमें स्थित जीवात्माओंको बिना मानवयोनि मिले तत्त्वज्ञानका लाभ नहीं मिल सकता है। इस मृत्युलोकमें हजार ही नहीं, करोड़ों बार जन्म लेनेपर भी जीवको कदाचित् ही संचित पुण्यके प्रभावसे मानव-योनि मिलती है। यह मानवयोनि मोक्षकी सीढ़ीके समान है। इस दुर्लभ योनिको प्राप्त कर जो प्राणी स्वयं अपना उद्धार नहीं करता है, उससे बढ़कर पापी इस जगत्‌में दूसरा कौन हो सकता है—

सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
यस्तारयति नात्मानं तस्मात् पापतरोऽत्र कः॥
(४९।१५)

अन्य योनियोंसे भिन्न सुन्दर-सुन्दर इन्द्रियोंवाले इस जन्मका लाभ लेकर जो मनुष्य आत्महितका ज्ञान नहीं रखता है, वह ब्रह्मघाती है। किसीका भी पुरुषार्थ शरीरके बिना सम्भव नहीं है। अतः शरीररूपी धनकी रक्षा करते हुए पुण्य कर्म करना चाहिये। आत्मा सभीका पात्र है, इसलिये उसकी रक्षामें मनुष्य सदा संलग्न रहे। जो व्यक्ति आजीवन उस आत्माकी रक्षामें प्रयत्नशील रहता है, वह जीवित रहते हुए ही अपना कल्याण देखता है। मनुष्यको ग्राम, क्षेत्र, धन, घर शुभाशुभ कर्म और शरीर बार-बार नहीं प्राप्त होता है। विद्वान् लोग सदैव शरीरकी रक्षाके उपायमें लगे रहते हैं। कुष्ठादि महाभयंकर रोगोंसे ग्रस्त होनेपर भी मनुष्य उस शरीरको छोड़ना नहीं चाहता है। शरीरकी रक्षा धर्मके लिये धर्मकी रक्षा ज्ञानके लिये और ज्ञानकी रक्षा ध्यानयोगके लिये तथा ध्यानयोगकी रक्षा तत्काल मुक्तिप्राप्तिके लिये होती है। यदि आत्मा ही अहितकारी कार्योंसे अपनेको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है तो अन्य दूसरा कौन ऐसा हितकारी होगा जो आत्माको सुख प्रदान करेगा।

यहीं इसी लोकमें नरकरूपी व्याधिकी चिकित्सा नहीं की गयी तो औषधिविहीन देश (परलोक-)में जाकर रोगी उससे मुक्तिका क्या उपाय करेगा? बुढ़ापा तो बाघिनके समान है। जिस प्रकारसे फूटे हुए घड़ेका जल धीरे-धीरे

बह जाता है, उसी प्रकार आयु भी क्षीण होती रहती है। शरीरमे विद्यमान राग शत्रुके सदृश कष्ट देते हैं, इसलिये कल्याण इसीम ह कि इन सभीस मुक्ति प्राप्त करनेका सत्प्रयास किया जाय। जबतक शरीरमे किसी प्रकारका दु ख नहीं हाता है, जबतक विपत्तियाँ सामन नहीं आती हैं और जबतक शरीरकी इन्द्रियाँ शिथिल नहीं पडती हैं तबतक ही आत्मकल्याणका प्रयास हो सकता है। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, तबतक ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सम्यक् प्रयत्न किया जा सकता ह। कोशागारम आग लग जानपर मूर्ख कुआँ खादता हे, ऐस प्रयत्नस क्या लाभ—

इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सा न करोति य ।
गत्वा निरौषध दश व्याधिस्थ कि करिष्यति॥
व्याघ्रीवास्त जरा चायुर्याति भिन्नघटाम्बुवत्।
निघ्नन्ति रिपुवद्रोगास्तस्माच्छ्रेय समभ्यसेत्॥
यावन्नाश्रयते दु ख यावन्नायान्ति चापद ।
यावन्नेन्द्रियवैकल्य तावच्छ्रेय समभ्यसेत्॥
यावत् तिष्ठति देहाऽय तावत् तत्त्व समभ्यमत्।
सदीप्तकोशभवन कूप खनति दुर्मति ॥
(४९।२३—२६)

मनुष्य नाना प्रकारक सासारिक कार्योम व्यस्त रहनेस (बीतत हुए) समयका नहीं जान पाता है। वह दु ख-सुख तथा आत्महितको भी नहीं जानता है। पेदा हानेवालाको, रागियाको मरनेवालेको आपत्तिग्रस्तको आर दु खी लागाको देखकर भी मनुष्य माहरूपी मदिराको पीकर (जन्म-मरणादि दु खसे युक्त ससारसे) नहीं डरता। सम्पदाएँ स्वप्नके समान हैं, यौवन पुष्पके सदृश हे, आयु चञ्चल विजलीके तुल्य नष्टप्राय ह, ऐसा जानकर भी किसका धैर्य हा सकता है? सो वर्षका जीवन अत्यल्प ह। वह भी निद्रा तथा आलस्यम आधा चला जाता हे। तदनन्तर बाल्यावस्था राग, वृद्धावस्था एव अन्यान्य दु खाम व्यतीत हा गया ओर जो थोडा बचा वह भी निष्फल हा जाता है—

कालो न ज्ञायत नानाकार्यै समारसम्भवै ।
सुख दु ख जनो हन्त न वत्ति हितमात्मन ॥
जातानार्त्तान्मृतानापद्भ्रष्टान् दृष्ट्वा च दु खितान्।
लोको मोहसुरा पीत्वा न बिभेति कदाचन॥
सम्पद स्वप्नसकाशा यौवन कुसुमोपमम्।
तडिच्चपलमायुष्य कस्य स्याज्जानतो धृति ॥
शत जीवितमत्यल्प निद्रालस्यैस्तदर्धकम्।
बाल्यरोगजरादु खैरल्प तदपि निष्फलम्॥
(४९।२७—३०)

जिस कार्यको तुरत आरम्भ कर देना चाहिये, उसके सदर्भम जो उद्योगहीन हाकर बैठा है, जहाँ जागते रहना चाहिये, वहाँ जो सोता रहे तथा भयके स्थानपर जो आश्वस्त होकर रहता है—ऐसा वह कौन मनुष्य है, जो मारा नहीं जाता? जलके फेनके समान इस शरीरको आक्रमण करके जीव स्थित है, यहाँ जिन प्रिय वस्तुओके साथ सनिवास है, वे अनित्य हैं। अत जीव कैसे निर्भय होकर नितान्त अनित्य, शरीर, भोग और पुत्र-कलत्रादिके साथ रहता है। जा अहितम हित अनिश्चितमे निश्चित और अनर्थम अर्थको विशप रूपसे जाननेवाला ह वह व्यक्ति अपने मुख्य प्रयाजनका नहीं जानता। जा दखते हुए भी गिर जाता है, जा सुनते हुए भी सद्ज्ञानको नहीं प्राप्त कर पाता है, जो सद्ग्रन्थाका पढते हुए भी उसे नहीं समझ पाता हे, वह दवमायासे विमाहित है—

प्रारब्धव्ये निरुद्योगी जागर्तव्ये प्रसुप्तक ।
विश्वस्तश्च भयस्थाने हा नर को न हन्यते॥
तोयफेनसमे देहे जीवेनाक्रम्य सस्थिते।
अनित्यप्रियसवासे कथ तिष्ठति निर्भय ॥
अहिते हितसज्ञ स्यादध्रुवे ध्रुवसज्ञक ।
अनर्थे चार्थविज्ञान स्वमर्थ यो न वेत्ति स ॥
पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुध्यति।
पठन्नपि न जानाति देवमायाविमोहित ॥
(४९।३१—३४)

कालके इस गहरे महासागरम यह सम्पूर्ण जगत् डूबता-उतराता रहता हे। मृत्यु, रोग और बुढापारूपी ग्राहोसे जकडे जानपर भी किसी व्यक्तिको ज्ञान नहीं हो पाता है। मनुष्यक लिय प्रतिक्षण भय है, समय बीत रहा है, किंतु वह उसी प्रकार दिखायी नहीं देता है, जैस जलम पडा हुआ कच्चा घडा गलता हुआ दिखायी नहीं देता। कदाचित् वायुका बाँधकर रखा जा सकता है, आकाशका खण्डन हो सकता ह तरगाको किसी सूत्रादिमे पिरोया जा सकता है, किंतु आयुमे विश्वास नही किया जा सकता है। जिसके (प्रलयाग्निके) प्रभावसे पृथ्वी दहकती है, सुमेरु पर्वत विशार्ण हा जाता है तथा सागरका जल सूख जाता है। फिर

इस शरीरके सम्बन्धमें तो बात ही क्या? पुत्र मरा है, स्त्री मरी है, धन मरा है, बन्धु-बान्धव मरे हैं। इस प्रकार 'मे, मे' चिल्लाते हुए बकरेकी भाँति कालरूपी भेड़िया बलात् मनुष्यको मार डालता है—

तन्निमज्जज्जगदिदं गम्भीरे कालसागरे।
मृत्युरोगजराग्राहैर्न कश्चिदपि बुध्यते॥
प्रतिक्षणमयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते।
आमकुम्भ इवाम्भःस्थो विशीर्णो न विभाव्यते॥
युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम्।
ग्रथनञ्च तरङ्गाणामास्था तासुपि युज्यते॥
पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विशीर्यते।
शुष्यते सागरजलं शरीरस्य च का कथा॥
अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे।
जल्पन्तमिति मर्त्याजं हन्ति कालवृको बलात्॥

(४९।३५—३९)

यह मैंने किया है, यह मुझे करना है, यह किया गया है या नहीं किया गया है—इस प्रकारकी भावनासे युक्त मनुष्यको मृत्यु अपने वशमें कर लेती है। कल किये जानेवाले कार्यको आज ही कर लेना चाहिये। जो दोपहरके बाद करना है, उसको दोपहरसे पहले ही कर लेना चाहिये क्योंकि कार्य हो गया है अथवा नहीं हुआ है, इसकी मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती। वृद्धावस्था पथ-प्रदर्शक है, अत्यन्त भयंकर रोग सैनिक है, मृत्यु शत्रु है, ऐसी विषम परिस्थितिमें फँसा हुआ मनुष्य अपने रक्षक भगवान् विष्णुको क्या नहीं देखता है। तृष्णारूपी सूईसे छिद्रित विषयरूपी घृतमें डूबे राग-द्वेषरूपी अग्निकी आँचमें पकाये गये मानवको मृत्यु खा लेती है। बालक, युवा, वृद्ध और गर्भमें स्थित सभी प्राणियोंको मृत्यु अपनेमें समाहित कर लेती है, ऐसा है यह जगत्। यह जीव अपने शरीरको भी छोड़कर यमलोक चला जाता है तो भला स्त्री, माता-पिता और पुत्रादिका जो सम्बन्ध है, वह किस कारणसे प्रेरित होकर बनाया गया है। संसार दुःखका मूल है, वह किसका होकर रहा है अर्थात् इसमें जो और जिसका मन अधिक रम गया है, वही दुःखित है। जिसने इस सांसारिक व्यामोहका परित्याग कर दिया है, वह सुखी है। उसके अतिरिक्त कहींपर भी अन्य कोई दूसरा सुखी नहीं है—

इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम्।
एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वशम्॥
श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं वाप्यथ वाऽकृतम्॥
जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम्।
अधिष्ठितो मृत्युशत्रुं त्रातारं किं न पश्यति॥
तृष्णासूचीविनिर्भिन्नं सिक्तं विषयसर्पिषा।
रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम्॥
बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि।
सर्वानाविशते मृत्युरेवम्भूतमिदं जगत्॥
स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम्।
स्त्रीमातृपितृपुत्रादिसम्बन्धः केन हेतुना॥
दुःखमूलं हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः।
तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित्॥

(४९।४०—४६)

यह जगत् सभी दुःखोंका जनक, समस्त आपदाओंका घर तथा सब प्रकारके पापोंका आश्रय है। अतः क्षणभरमें ही मनुष्यको इसका त्याग कर देना चाहिये। लोह और काष्ठके जालमें फँसा हुआ पुरुष मुक्त हो सकता है, किंतु पुत्र एवं स्त्रीके मोहजालमें फँसा हुआ वह कभी मुक्त नहीं हो सकता। मनुष्य मनको प्रिय लगनेवाले जितने पदार्थोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित करता जाता है, उतनी शोककी कील उसके हृदयमें चुभती जाती हैं। विषयका आहार करनेवाले देहस्थित तथा सभी प्रकारके अशेष सामर्थ्यसे वञ्चित कर देनेवाले जिन इन्द्रियरूपी चोरोंके द्वारा लोक विनष्ट हो रहे हैं। हाय, यह बड़े कष्टकी बात है। जैसे मांसके लोभमें फँसी हुई मछली बंसीके काँटेको नहीं देखती है, वैसे ही सुखके लालचमें फँसा हुआ शरीरी यमकी बाधाको नहीं देखता है—

प्रभवं सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम्।
आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत्क्षणात्॥
लोहदारुमयैः पाशैः पुमान्बद्धो विमुच्यते।
पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन॥
यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान्।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥
वञ्चिताशेषवित्तैस्तैर्नित्यं लोको विनाशितः।
हा हन्त विषयाहारैर्देहस्थेन्द्रियतस्करैः॥
मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशङ्कुं न पश्यति।
सुखलुब्धस्तथा देही यमबाधां न पश्यति॥

(४९।४७—५१)

हे खगश! अपन हित अहितको न जानते हुए जो नित्य कुपथगामी हैं, जिनका लक्ष्य मात्र पेट भरना ह, व मनुष्य नारकीय प्राणी हैं। निद्रा, भय, मेथुन तथा आहारकी अभिलाषा सभी प्राणियाम समान रूपसे रहती है, उनम ज्ञानीको मनुष्य ओर अज्ञानीको पशु माना गया है। मूर्ख व्यक्ति प्रात कालमे मल-मूत्र, दोपहरमे भूख-प्यास तथा रातमे मैथुन और निद्रासे पीडित रहते ह। बडे दु खकी बात है कि अज्ञानसे मोहित होकर सभी प्राणी अपने शरीर, धन एव स्त्री आदिम अनुरक्त होकर जन्म लेते हैं आर मर जाते हैं। अत व्यक्तिका उनकी ओर बढी हुई अपनी आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। यदि आसक्ति छोडी न जा रही हो तो महापुरुषाक साथ उस आसक्तिको जोड देना चाहिये, क्याकि आसक्ति रूपी व्याधिकी औषधि सज्जन पुरुष ही हैं—

> हिताहित न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिन ।
> कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नरा नारका खग॥
> निद्राभीमैथुनाहारा सर्वेषा प्राणिना समा ।
> ज्ञानवान्मानव प्रोक्तो ज्ञानहीन पशु स्मृत ॥
> प्रभाते मलमूत्राभ्या क्षुत्तृड्भ्या मध्यग रवौ।
> रात्रौ मदननिद्राभ्या बाध्यन्ते मूढमानवा ॥
> स्वदेहधनदारादिनिरता सर्वजन्तव ।
> जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताज्ञानमोहिता ॥
> तस्मात्सङ्ग सदा त्याज्य सचेत् त्युक्त न शक्यते।
> महद्भि सह कर्तव्य सन्त सङ्गस्य भेषजम्॥
> (४९।५२—५६)

सत्सग और विवेक—य दो प्राणीक मलरहित स्वस्थ दो नेत्र हैं। जिसके पास ये दोनो नहीं हैं, वह मनुष्य अन्धा है। वह कुमार्गपर कैसे नहीं जायगा? अर्थात् वह अवश्य ही कुमार्गगामी होगा—

> सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मल नयनद्वयम्।
> यस्य नास्ति नर सोऽन्ध कथ न स्यादमार्गग ॥
> (४९।५७)

अपने-अपने वर्णाश्रम धर्मका माननेवाले सभी मानव दूसरेके धर्मको नहीं जानते हैं, किंतु वे दम्भके वशीभूत हो जायँ तो अपना ही नाश करत हैं। व्रतचर्यादिम लगे हुए प्रयासरत कुछ लोगासे क्या बनेगा? क्याकि अज्ञानसे स्वय अपने आत्मतत्त्वको ढके हुए लोग प्रचारक बनकर दश दशान्तरम विचरण करते हैं। नाममात्रस स्वय सतुष्ट कर्मकाण्डम लगे हुए मनुष्य तथा मन्त्रोच्चार एव होमादिसे युक्त याज्ञिक यज्ञविस्तारके द्वारा भ्रमित हैं। मेरी मायासे विमोहित मूढ लाग शरीरका सुखा देनेवाले एकभक्त तथा उपवासादि नियमासे अपने पुण्यरूप अदृष्टकी कामना करते हैं।

शरीरकी ताडना मात्रसे अज्ञानीजन क्या मुक्ति प्राप्त कर सकते है? क्या वामीको पीटनेस महाविषधारी सर्प मर सकता है? यह कदापि सम्भव नहीं ह। जटाओके भार और मृगचर्मसे युक्त वेष धारण करनेवाले दाम्भिक ज्ञानियाकी भाँति इस ससारमे भ्रमण करते हैं और लोगोको भ्रमित करते ह। लाकिक सुखम आसक्त 'में ब्रह्मको जानता हूँ' एसा कहनेवाल, कर्म तथा ब्रह्म—इन दोनोसे भ्रष्ट, दम्भी एव ढोगी व्यक्तिका अन्त्यजके समान परित्याग कर देना चाहिये। घरको वनके समान मानकर निर्वस्त्र और लज्जारहित जो साधु गधे अन्य पशुओकी भाँति इस जगत्मे घूमते रहते हैं, क्या वे विरक्त होते हैं? कदापि नहीं। यदि मिट्टी, भस्म तथा धूलका लप करनेसे मनुष्य मुक्त हो सकता है तो क्या मिट्टी ओर भस्मम ही नित्य रहनेवाला कुत्ता मुक्त नही हा जायगा? वनवासी तापसजन घास, फूस, पत्ता तथा जलका ही सवन करते ह, क्या इन्हींके समान वनम रहनवाले सियार, चूहे और मृगादि जीवजन्तु तपस्वी हो सकते है? जन्मसे लकर मृत्युपर्यन्त गङ्गा आदि पवित्रतम नदियाम रहनेवाल मेढक या मछली आदि प्रमुख जलचर प्राणी योगी हो सकते हैं? कबूतर, शिलाहार और चातक पक्षी कभी भी पृथ्वीका जल नहीं पीते हैं, क्या उनका व्रती हाना सम्भव ह। अत य नित्यादिक कर्म, लोकरञ्जनक कारक है। ह खगेश्वर! मोक्षका कारण तो साक्षात् तत्त्वज्ञान है।

हे खगेश्वर! षड्दर्शनरूपी महाकूपम पशुके समान गिरे हुए मनुष्य पाशस नियन्त्रित पशुकी भाँति परमार्थको नहीं जानते। वेद-शास्त्रादिक महासमुद्रमे इधर-उधरसे अनुमान लगानवाल इस षडदर्शनरूपी तरगसे ग्रस्त होकर कुतर्की बन जाते हैं। जा वद-आगम और पुराणका ज्ञाता परमार्थको नहीं जानता है, उस कपटीका सब कथन कौवेका काँव-काँव ही है। यह ज्ञान है यह जाननेक याग्य है, ऐसी चितास भलीभाँति वचन तथा परमार्थतत्त्वसे दूर प्राणी दिन-रात शास्त्रका अध्ययन करता है। वाक्य ही छन्द हे और उस छन्दमे गुम्फित काव्याम अलकार सुशाभित हाता है। इस चितासे दु खित मूर्ख व्यक्ति अत्यधिक व्याकुल हो

जाता है। उस परमतत्त्वका अन्य ही अर्थ ह किंतु लोग उसका दूसरा अर्थ लगाकर दु खित हात है। शास्त्राका सद्भाव कुछ और ही है, किंतु वे उसकी व्याख्या उससे भिन्न ही करते हैं। उपदेशादिसे रहित कुछ अहकारी व्यक्ति उनमनीभावकी बात कहते है, किंतु स्वय उसका अनुभव नही करते हैं। वे वेद-शास्त्राको पढत ह आर परस्पर उसको जाननका प्रयास करते हैं किंतु जेसे कलछी पाकका रसास्वाद नहीं कर पाती ह, वेस ही व परमतत्त्वका नहीं जान पात हैं। सिर पुष्पाको ढोता है, परतु उसकी सुगन्धका अनुभव नासिका ही करती ह। बहुत-से लाग वद-शास्त्र पढत हैं, किंतु उनके भावको समझनेवाला दुर्लभ है। अपने ही भीतर विद्यमान उस परमतत्त्वको न पहचान कर मूर्ख प्राणी शास्त्राम वैंस हा व्याकुल रहता ह जैसे कछारमे आये हुए बकरी या भेडके बच्चको एक गाप कुएँमे खोजता है। सासारिक माहका विनष्ट करनम शब्दज्ञान समर्थ नहीं है, क्याकि दीपककी वार्तासे कभी अन्धकारको दूर नही किया जा सकता है। बुद्धिरहित व्यक्तिका पढना वस ही ह जस अन्धेक हाथम दर्पण हो। अत प्रज्ञावान् पुरुषाके द्वारा अधीत शास्त्र तत्त्वज्ञानका लक्षण है। यह ज्ञान ह, यह जाननक याग्य है एस विचाराम फँसा हुआ मनुष्य सब कुछ जाननकी इच्छा करता है किंतु हजार दिव्य वर्षोतक पढनपर भी वह शास्त्राका अन्त नहीं समझ पाता है। शास्त्र तो अनेक हैं किंतु आयु बहुत ही कम है और उसम भी कराडा विघ्न-बाधाएँ हैं। इसलिये जलम मिले हुए क्षीरका जैसे हस ग्रहण कर लेता, है वसे ही उनक सार तत्त्वका ग्रहण करना चाहिय—

अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटय ।
तस्मात् सार विजानीयात् क्षीर हस इवाम्भसि॥
(४९।८४)

हे तार्क्ष्य! वेद-शास्त्राका अभ्यास करके जो बुद्धिमान् व्यक्ति उस परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसका उन सभीका परित्याग उसी प्रकार करना चाहिय जिस प्रकार एक धान्यार्थी पुरुष धान ग्रहण कर लता है और पुआलको फेंक दता है। जैसे अमृतके पानसे सतृप्त प्राणीका भाजनस कोई सरोकार नहीं रह जाता है वैस ही तत्त्वका जाननवाल विद्वान्‌का शास्त्रमे काई प्रयाजन नहीं रह जाता है। ह विनतात्मज! वदाध्ययनस मुक्ति सम्भव नहीं है आर न ता शास्त्राको पढनेस वह प्राप्त हा सकती है वह कैवल्य ज्ञानम ही सुलभ है, किसी अन्य साधनसे नहीं। आश्रम उस मोक्षका कारण नहीं हा सकता ह। दर्शन भी उसकी प्राप्तिके कारण नहीं ह। वस ही सभी कर्मोका उसका कारण नहीं मानना चाहिय। उसका कारण ज्ञान है। मुक्ति देनेवाली गुरुकी एक वाणी है। अन्य सभी विद्याएँ विडम्बना करनेवाली हैं। हजार शास्त्राका भार सिरपर होनपर भी प्राणीका तो सजीवन दनवाला वह परमतत्त्व अकला ही है। सभी प्रकारकी क्रियाओसे रहित वह अद्वैत शिवतत्त्व कहा गया ह। उसका गुरुके मुखम प्राप्त करना चाहिये। वह कराडा आगम-शास्त्राका अध्ययन करनस मिलनवाला नहीं है।

ज्ञान दा प्रकारका कहा जाता ह। एक ह शास्त्रकथित ज्ञान आर दूसरा है विवकस प्राप्त हुआ ज्ञान। इसम शब्द ही ब्रह्म है एसा आगम-शास्त्र कहते हैं। वह परमतत्त्व ही ब्रह्म ह एसा विवेकीजन कहते हैं। कुछ लाग अद्वतका प्राप्त करनेका इच्छा रखत हैं आर कुछ लाग द्वतका चाहत हैं किंतु वे सभी यह नहीं जानते हैं कि वह परमतत्त्व समभाववाला है। वह द्वैताद्वैतस रहित ह।

बन्धन और माक्षक लिय इस ससारम दो ही पद हैं। एक पद है 'यह मरा ह' और दूसरा पद है 'यह मेरा नहीं ह'। 'यह मरा है' इस ज्ञानसे वह बँध जाता है आर 'यह मेरा नहीं हे' इस ज्ञानसे वह मुक्त हा जाना है—

द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च।
ममेति बध्यत जन्तुर्न ममति प्रमुच्यते॥
(४९।९३)

जा कर्म इस जीवात्माका बन्धनम नहीं ले जाता है, वही सत्कर्म है। जा प्राणाको मुक्ति प्रदान करनेम समर्थवती है वही विद्या है। इसक अतिरिक्त दूसरा कर्म ता परिश्रम करनक लिय हाता है और दूसरा विद्या कलानैपुण्यको प्रदर्शित करनेक लिय हाती है। जबतक प्राणियाको कर्म अपनी ओर आकृष्ट करते हैं जबतक उनम सासारिक वासना विद्यमान है और जबतक उनकी इन्द्रियाम चञ्चलता रहती है तबतक उन्ह परमतत्त्वका ज्ञान कहाँ हो सकता है—

तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा।
आयासायापर कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्॥
यावत् कर्माणि दीप्यन्ते यावत् ससारवासना।
यावदिन्द्रियचापल्य तावत् तत्त्वकथा कुत ॥
(४९।९४ ९५)

जबतक व्यक्तिम शरीरका अभिमान है, जबतक उसमे ममता है, जबतक उस प्राणीम प्रयत्नकी क्षमता रहती है, जबतक उसमे सकल्प तथा कल्पना करनेकी शक्ति है, जबतक उसके मनम स्थिरता नहीं है, जबतक वह शास्त्र-चिन्तन नहीं करता है एव जबतक उसपर गुरुकी दया नहीं होती है, तबतक उसको परमतत्त्व-कथा कहाँसे प्राप्त हो सकती है?

'तभीतक ही तप, व्रत, तीर्थ, जप तथा होमादिक कृत्य एव वेद-शास्त्र तथा आगमकी कथा है, जबतक व्यक्ति उस परमार्थ-तत्त्वको नहीं जान जाता है। हे तार्क्ष्य! यदि व्यक्ति अपना मोक्ष चाहता हो तो वह सभी अवस्थाआमे प्रयत्नपूर्वक सदैव तत्त्वनिष्ठ होकर रहे। दैहिक, दैविक और भौतिक—इन तीनो तापासे सतप्त प्राणीको धर्म और ज्ञान जिसका पुष्प है, स्वर्ग तथा मोक्ष जिसका फल है, ऐसे मोक्षरूपी वृक्षकी छायाका आश्रय करना चाहिये। अत श्रीगुरुदेवके मुखसे प्राप्त ज्ञानके द्वारा आत्मतत्त्वको जानना चाहिये। ऐसा करनेसे जीव इस दुर्धर्ष ससारके बन्धनसे सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है'—

तावत् तपा व्रत तीर्थं जपहोमार्चनादिकम्।
वेदशास्त्रागमकथा यावत् तत्त्व न विन्दति॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा।
तत्त्वनिष्ठो भवेत् तार्क्ष्य यदीच्छेन्मोक्षमात्मन ॥
धर्मज्ञानप्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च।
तापत्रयादिसतप्तश्छाया मोक्षतरो श्रयेत्॥
तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्व विज्ञेय श्रीगुरोर्मुखात्।
सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोरससारबन्धनात्॥

(४९।९८—१०१)

हे गरुड! उस तत्त्वज्ञका अन्तिम कृत्य सुना, जिसके द्वारा ब्रह्मपद या निर्वाण नामवाला मोक्ष प्राप्त हाता है, अब मैं उसे कहूँगा।

अन्त समय आ जानेपर पुरुष भयरहित होकर असगरूपी शस्त्रसे देहादिकी आसक्तिको काट दे। घरसे सन्यासी बनकर निकला धीरवान् पुरुष पवित्र तीर्थम जाकर उसक जलमे स्नान करे। तदनन्तर वहीपर एकान्त देशमे किसी स्वच्छ एव शुद्ध भूमिमे विधिवत् आसन लगाकर बैठ जाय तथा एकाग्रचित्त होकर गायत्री आदि मन्त्रोके द्वारा उस परम शुद्ध ब्रह्माक्षरका ध्यान करे। ब्रह्मके बीजमन्त्रको बिना भुलाये वह अपनी श्वासको रोककर मनको वशमे करे। मनरूपी घोडेको बुद्धिरूपी सारथीद्वारा सासारिक विषयासे उसका नियन्त्रण करे। अन्य कर्मोसे मनको रोककर बुद्धिके द्वारा शुभकर्मम मनको लगाये।

मैं ब्रह्म हूँ। मैं परम धाम हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। परमपद मैं हूँ। इस प्रकारकी समीक्षा करक आत्माको निष्कल आत्माम प्रविष्ट करना चाहिये। 'जो मनुष्य 'ॐ' इस एकाक्षर ब्रह्मका जप करता है, वह अपने शरीरका परित्याग कर परमपद प्राप्त करता है'—

ओमित्येकाक्षर ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
य प्रयाति त्यजन्देह स याति परमा गतिम्॥

(४९।१०८)

जहाँ ज्ञान-वैराग्यसे रहित अहकारी प्राणी नहीं जाते हैं वहाँ सुधीजन जाते हैं। उनके विषयमे अब तुम्ह बताता हूँ—

मान-मोहसे रहित, आसक्ति-दोपसे परे, नित्य अध्यात्म-चिन्तनमे दत्तचित्त, सासारिक समस्त कामनाआसे रहित और सुख-दु ख नामक द्वन्द्वसे मुक्त ज्ञानी पुरुष हैं, वे ही उस अव्ययपदको प्राप्त करते है—

निर्मानमोहा जितसगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामा ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदु खसज्ञैर्गच्छन्त्यमूढा पदमव्यय तत्॥

(४९।११०)

'जो व्यक्ति ज्ञानरूपी ह्रदमे राग-द्वेष नामवाले मलको दूर करनेवाले सत्यरूपी जलसे भरे हुए मानसतीर्थम स्नान करता है, उसीको मोक्ष प्राप्त होता है'—

ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे।
य स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

(४९।१११)

'प्रौढ वैराग्यम स्थित होकर अनन्यभावसे जो मनुष्य मेरा भजन करता है वह पूर्ण दृष्टिवाला प्रसन्नात्मा व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है'—

प्रौढवैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक्।
पूर्णदृष्टि प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

(४९।११२)

'घर छाडकर मरनेकी अभिलाषासे जो तीर्थम निवास करता हे और मुक्ति-क्षेत्रमे मरता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। अयोध्या मथुरा माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका तथा द्वारका—ये सात पुरियाँ मोक्षप्रदा हैं'—

त्यक्त्वा गृह च यस्तीर्थे निवसन्मरणोत्सुक ।
मुक्तिक्षेत्रेषु म्रियते स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारवती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिका ॥

(४९।११३-११४)

हे तार्क्ष्य! ज्ञान-वैराग्यसे युक्त यह सनातन मोक्ष-धर्म ऐसा ही है। इसको तुम्हे सुना भी दिया है। दूसरा प्राणी भी ज्ञान-वैराग्यपूर्वक इसको सुनकर मोक्ष प्राप्त करता है।

'तत्त्वज्ञ मोक्ष प्राप्त करते हैं, धर्मनिष्ठ स्वर्ग जाते हैं। पापी नरकमे जाते हैं। पक्षी आदि इसी ससारमे अन्य योनियामे प्रविष्ट होकर घूमते रहते है'—

मोक्ष गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिका स्वर्गति नरा ।
पापिनो दुर्गति यान्ति ससरन्ति खगादय ॥

(४९।११६)

सूतजीने कहा—हे महर्षियो! अपने प्रश्नके उत्तरके रूपमे भगवान्‌के मुखसे इस प्रकार सिद्धान्तको सुनकर प्रसन्न शरीरवाले गरुडने जगदीश्वरको प्रणाम किया और कहा—प्रभो! आपके इन आह्लादकारी वचनामे मेरा बहुत बडा सदेह दूर हो गया। ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् विष्णुसे जानेकी आज्ञा ली और वे कश्यपजीके आश्रममे चले गये।

हे ब्राह्मणो! जिस प्रकार प्राणी मृत्युके बाद तत्काल दूसरी योनिमे चला जाता है अथवा जैसे वह विलम्बसे देहान्तरको प्राप्त करता है, इन दोना बातामे परस्पर कोई विरोध नहीं है। हे तात! जैसा मैंने भगवान्‌से सुना है, वैसा ही मैंने आपको सुना दिया है। लक्ष्मीपति भगवान् नारायणके इन वाक्याको सुनकर मरीचपुत्र कश्यप भी बहुत प्रसन्न हुए। ब्रह्मासे इस महापुराणको सुनकर मैंने आप लोगाको भी वही सुनाया है। इससे आप सभीका सदेह भी दूर हो गया। गरुडके द्वारा कहा गया यह महापुराण बडा ही विचित्र है।

इस महापुराणको गरुडने हरिसे प्राप्त किया था। उसके बाद गरुडसे भृगुको प्राप्त हुआ। तदनन्तर भृगुसे वसिष्ठ वसिष्ठसे वामदेव वामदेवसे पराशरमुनि पराशरमुनिसे व्यास और व्याससे मैंने इसे सुना है। हे ऋषियो! मेरे द्वारा अब आप सबको परम गोपनीय यह वैष्णवपुराण सुनाया गया है। जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जो इसको पढे वह इस लोक और परलोक सभीमे सुख प्राप्त करता है। सयमनी पुरीमे जाते हुए प्रेतको जो दु ख प्राप्त होता है उसका जैसा निरूपण इस महापुराणमे किया गया है। इसे सुननेसे जो पुण्य होता है उसके कारण वह प्रेत मुक्त हो जाता है। इस महापुराणमे कहे गये कर्म-विपाकादिको सुननेसे मनुष्यको यहींपर वैराग्य प्राप्त हो जाता है। अत जिस प्रकारसे हो सके प्राणीको इसे अवश्य सुनना चाहिये।

हे जितेन्द्रिय ऋषियो! आप लोग मुनीश भगवान् श्रीकृष्णका भजन करे, जिनके मुखसे निकली हुई सुधासारकी धाराके मात्र एक वर्णरूपी सीकरका श्रुतिपूरकरूपी चिल्लूसे पीकर परमात्माके साथ ऐक्य प्राप्त हो जाता है।

व्यासजीने कहा—इस प्रकार सूतके मुखसे निकली हुई समस्त शास्त्राके अर्थसे सुशोभित भगवान् विष्णुकी वाणीका अमृत पान करके ऋषिगण परम सतुष्ट हुए। परस्पर उन लोगाके बीच सर्वार्थदर्शी सूतजी महाराजकी प्रशसा होने लगी। शौनक आदि ऋषियोको भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सूतजीके द्वारा कही गयी पक्षिराज गरुडके सदेहाको विनष्ट करनेवाली भगवान् विष्णुकी वाणीको सुनकर जितेन्द्रिय मुनिराज शौनकने मन-ही-मन अपनेको धन्य माना। उस समय अपनी उदार वाणीसे उन मुनियोने सूतजीको बार-बार धन्य हैं, आप धन्य हैं—कहकर धन्यवाद दिया। तदनन्तर यज्ञ समाप्त होनेपर उन्हे विदाई दी।

'यह गारुडमहापुराण बडा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापाका विनाशक एव सुननेवालोकी समस्त कामनाआका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये'—

पुराण गारुड पुण्य पवित्र पापनाशनम्।
शृण्वता कामनापूर श्रोतव्य सर्वदैव हि॥

(४९।१३२)

इस महापुराणको सुननेके बाद वाचकको शय्यादि सभी प्रकारके विधिवत् दान देनेका विधान है अन्यथा कथा सुननेका लाभ उन्हें नहीं प्राप्त होता। श्रोताको सर्वप्रथम इस महापुराणकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद वस्त्र, अलकार गौ तथा दक्षिणा आदिसे वाचककी ससम्मान पूजा करनी चाहिये। अधिक पुण्य-लाभके लिये अधिकाधिक अन्नदान स्वर्णदान और भूमिदानसे वाचककी पूजा करनी चाहिये। 'जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो, वैसे ही उसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयकर यातनाआको तोडकर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है'—

यश्चेद शृणुयान्मर्त्यो यथापि परिकीर्तयेत्।
विहाय यातना घोरा धूतपापो दिवं व्रजेत्॥

(४९।१३६)

॥ धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प सम्पूर्ण ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नम

ब्रह्मकाण्ड[1]

भगवान् श्रीहरिकी महिमा तथा उनके सर्वेश्वरत्वका प्रतिपादन, श्रीहरिको श्रीमद्भागवत, विष्णु तथा गरुड—ये तीन पुराण विशेष प्रिय हे, इनका निरूपण तथा गरुडपुराणका माहात्म्य

प्राचीन समयकी बात है जगत्के नेत्रस्वरूप उन परमब्रह्म श्रीहरिका स्तवन करते हुए सभी शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ शौनक आदि ब्रह्मवादी ऋषिगण नैमिष नामक महापुण्य-क्षेत्रमे उत्तम तपस्याम सलग्न थे। वे सभी जितन्द्रिय, भूख-प्यासको जीत लनेवाले सत्यपरायण तथा सत थे। वे विशिष्ट भक्तिके साथ समस्त ससारका ज्ञान प्रदान करनवाले भगवान् विष्णुकी निरन्तर पूजा करते थे। वहाँ कोई यज्ञाके द्वारा यज्ञपतिकी, कोई ज्ञानके द्वारा ज्ञानात्मक परमब्रह्मकी और कुछ ऋषिगण परम भक्तिके द्वारा नारायणकी पूजामे लगे रहते थे।

एक बारकी बात है धम अर्थ, काम तथा माक्ष—इन चार पुरुषार्थोंकी प्राप्तिका उपाय जाननेकी इच्छासे वे महात्मागण एक स्थानपर एकत्र हुए। ऊर्ध्वरेता वे मुनिगण सख्याम छब्बीस हजार थे एव उनके शिष्य-प्रशिष्याकी सख्या तो बहुत अधिक थी। ससारपर अनुग्रह करनेवाले वीतराग एव मात्सर्यरहित वे महातजस्वी मुनि आपसम विचार करने लगे कि इस ससारमें दु खित प्राणियाकी भगवान् हरिके प्रति अचल भक्ति कैसे हा सकगी? और कैसे आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धि हो सकेगी? उन ऋषियोकी इस जिज्ञासाको जानकर महामुनि शौनकने हाथ जोडते हुए बडे ही विनयपूर्वक उनसे कहा—

शौनकजीने कहा—हे ऋषियो। पौराणिकाम उत्तम सूतजी महाराज इस समय पवित्र सिद्धाश्रममे विराजमान हैं। वे भगवान् वेदव्यासजीके शिष्य हैं और यतियाके ईश्वर हैं। वे आपकी जिज्ञासाविषयक सभी बाताको जानते हैं। इसलिये उन्हींके पास चलकर हमलोग पूछ। शौनक मुनिके ऐसा कहनेपर वे सभी उस पुण्य सिद्धाश्रमम गये। नैमिषारण्यवासी उन ऋषियाने सुखपूर्वक आसनपर बैठे हुए सूतजीसे पूछा—

ऋषियोने कहा—हे सुव्रत। किस उपायके द्वारा भगवान् विष्णुको प्रसन्न किया जा सकता है? और कैसे इनकी पूजा करनी चाहिये? इसे आप बताये साथ ही यह भी बतलानेकी कृपा कर कि मुक्तिका साधनभूत तत्त्व क्या है?

इसपर सूतजी महाराजने कहा—हे ऋषिगणा। भगवान् विष्णु, देवी लक्ष्मी, वायु, सरस्वती, शेषनाग, गुरुश्रेष्ठ कृष्णद्वैपायन व्यासजीका नमस्कार कर मैं अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन करता हूँ, आप लोग उन श्रेष्ठ तत्त्वस्वरूप भगवान् हरिके विषयम सुने।

ऋषियो। नारायणके समान न कोई है, न हुआ है और न भविष्यम ही कोई होगा।[2] इस सत्यवाक्यके द्वारा आप सभीके प्रयोजनको सिद्ध कर रहा हूँ।

शौनकजीने पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ। सर्वप्रथम भगवान् विष्णुका क्या नमस्कार करना चाहिये? हे विद्वन्। हे सुव्रत। यह आप बतानेकी कृपा कर।

सूतजी बोले—हे शौनक। सभी वेदाके द्वारा एकमात्र वेद्य—जानने योग्य वे हरि ही हैं, वेदादि शास्त्रा तथा इतिहास एव पुराणाम उन्हींकी महिमा गायी गयी है, इसलिये वे विष्णु सर्वप्रथम वन्दनीय हैं, वे विष्णु ही सबमे ज्ञानरूपसे प्रकाशित हैं। इसलिये हरि प्रणामके योग्य हे। वे सभीम प्रधान हैं और सबसे बढकर हैं, इसलिये भी वे हरि सर्वप्रथम नमस्कार करने योग्य हैं।

१-गरुडपुराणके कई सस्करणाम 'पूर्व' और 'उत्तर' केवल दो ही खण्ड दिये गये हैं। 'ब्रह्मकाण्ड' वेकटेश्वर प्रस द्वारा प्रकाशित सस्करणम ही उपलब्ध है। इसका सक्षिप्त साराश यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

२-नास्ति नारायणसम न भूत न भविष्यति। (१।१८)

भगवान् विष्णुके समान न कोई दवता है और न वायुके समान कोइ गुरु। विष्णुपदीके समान कोई तीर्थ नहीं है आर विष्णुभक्तक समान कोई भक्त नहीं है।

कलियुगम सभी पुराणामे तीन पुराण भगवान् हरिको प्रिय और मुख्य हैं। उनमे भी कलिकालम मनुष्याका कल्याण करनवाला श्रीमद्भागवत महापुराण मुख्य पुराण है। इसम जिनसे सर्वप्रथम सृष्टि हुइ हे उन श्रीहरिका प्रतिपादन हुआ है, इसीलिये यह भागवत पुराण श्रेष्ठ माना गया हे। इस पुराणम भगवान् विष्णुस ही ब्रह्मा और महेश आदिकी सृष्टि बतायी गयी हे, हे विप्र। इसी प्रकार इसमे अनेक प्रकारके अर्थोका तथा तत्त्वज्ञानका निरूपण हुआ है, इन्हीं सब विशेषताआके कारण यह भागवत श्रेष्ठतम पुराण माना गया ह। इसी प्रकार विष्णुपुराण तथा गरुडपुराणको श्रेष्ठ कहा गया हे। कलियुगम ये तीन पुराण मनुष्यके लिये प्रधान बताय गय ह। उनम भी गरुडपुराणकी विशेषता कुछ अधिक ही है।

यह गरुडपुराण तीन अशाम विभक्त है। इमक प्रथम अशको कर्मकाण्ड द्वितीय अशको धर्मकाण्ड और तृतीय अशको ब्रह्मकाण्ड कहा जाता है। उन तीनो काण्डामे भी अन्तिम यह ब्रह्मकाण्ड श्रेष्ठ है।

ह विप्रो! इस तृतीयाश अर्थात् ब्रह्मकाण्डके श्रवणसे जो पुण्य होता है उसे भागवत-श्रवणक समान पुण्य फलवाला कहा गया है। इतना ही नहीं इस ब्रह्मखण्डके पारायणसे वेदपाठके समान फल प्राप्त हाता है। इसम सदह नहीं है। हे विप्रगणो! इसके पाठ करनेका जो फल कहा गया है वह केवल श्रवण करनेसे भी मिल जाता है। भगवान् हरिने ही व्यासरूपमे अवतरित होकर भागवत विष्णु, गरुड आदि पुराणाकी रचना की है। विष्णु-धर्मका प्रतिपादन करनम गरुडपुराणक समान कोई भी पुराण नहीं हे।[1] जैसे देवाम जनार्दन श्रेष्ठ हैं आयुधाम सुदर्शन श्रेष्ठ है यज्ञामे अश्वमेध श्रेष्ठ है, नदियोंम गङ्गा श्रेष्ठ हैं, जलजाम कमल श्रेष्ठ है, वैसे ही पुराणोमे यह गरुडपुराण हरिके तत्वनिरूपणम मुख्य कहा गया है। गरुडपुराणम हरि ही प्रतिपाद्य हैं, इसलिये हरि ही नमस्कार करने योग्य हैं और हरि ही शरण्य हैं तथा वे हरि ही सब प्रकारसे सेवा करने याग्य हैं।[2] (अध्याय १)

गरुडजीको कृष्णद्वारा भगवान् विष्णुकी महिमा बताना तथा प्रलयकालके अन्तमे योगनिद्रामे शयन कर रहे उन भगवान् विष्णुको सृष्टि-हेतु अनेक प्रकारकी स्तुति करते हुए जगाना

सूतजीने पुन कहा—हे शौनकजी! एक बार गरुडजीन भगवान् विष्णु (कृष्ण)-से किस प्रकार उन्हान सृष्टिकी रचना की इस विषयम प्रश्न किया था तब उन्हाने कहा था कि हे सुव्रत! इस सृष्टिके मूल कारण अव्यय विष्णु हैं आर वे व्यापक तत्व हे, वे सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। पूर्ण होनेके कारण वे ही अवतार ग्रहण करते हैं अनेक रूपोंवाले इस दृश्य जगत्का वे एक रूप बनाकर प्रलयकालमे अपनेमें लीन करके शयन करते हैं। उनक गुण, रूप अवयव तथा वैभवादि एश्वर्योम भेदरूप दिखायी पडनेपर भी अभेदरूपम उनका दर्शन करना चाहिये, क्योंकि भेदरूपम दशन करनपर शीघ्र ही अन्धकारक गर्तम पतन हो जाता है।

जिस समय प्रलयकालान समुद्रमे व्यापक भगवान् सभी जीवाका अपने उदरम प्रविष्ट कराकर शयन करते हैं, ब्रह्मा तथा इन्द्र मरुत् आदि देवाका, मुक्ताका तथा मुक्तिके लिये सचेष्ट जनाको भी वे अपनेम अवस्थित करक कल्पपर्यन्त स्थित हाते हैं उस समय सर्ववेदात्मिका लक्ष्मी भक्तिसे समन्वित हो भगवान्की स्तुति करती हैं। उस समय विष्णु और लक्ष्मीको छोडकर कुछ भी नहीं रहता। पर्यङ्करूपमे वे ही देवी हा जाती हैं एव वासरूपसे लक्ष्मीके रूपम भी विराजमान रहती हैं, व दवी उस समय बहुत रूपाम सुशाभित होती हैं।

ह शौनक! गरुडको पुन उन परम देवकी महिमाको बतात हुए श्रीकृष्णने कहा—ह विष्णो! आप सभीम उत्कृष्ट हैं सभी देवाम उत्तम होनेके कारण आप उत्कृष्ट हैं,

---

१ गारुडन सम नास्ति विष्णुधर्मप्रदर्शने॥ (१।७१)

२ गारुडाख्यपुराणे तु प्रतिपाद्यो हरि स्मृत। अतो हरिर्नमस्कार्यो गम्यो याच्यो हरि स्मृत॥ (१।७४)

आपके समान अथवा आपसे अधिक बडा और कोई नहीं है। आप ही एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म हैं। आपमें ही ब्रह्म शब्दका मुख्य प्रयोग है। अन्य ब्रह्मा रुद्रादिमें अमुख्य है। अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण होनेके कारण आप हरिको ही ब्रह्म कहा जाता है। गुण आदिकी पूर्णताके अभावसे अन्यको ब्रह्म नहीं कहा जा सकता। गुण और कालसे देशका आनन्त्य होता है किंतु देश-कालमें गुण या कार्यसे आनन्त्य नहीं होता। हे विष्णो! आपमें गुणोंकी अनन्तता है। आपको न मैं जानता हूँ न ब्रह्मा तथा रुद्रादि देव ही जानते हैं। इन्द्र अग्नि यम आदि देव आपके गुणोंको जाननेमें असमर्थ हैं। देवर्षि नारद आदि ऋषि गन्धर्व आदि कोई भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते, फिर सामान्य लोगोंकी तो बात ही क्या है? आपसे ही देवोंकी सृष्टि हुई है। आपकी ही शक्तिसे ब्रह्मा-आदि सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं। ब्राह्मणोंके द्वारा वेदादिके जितने अक्षरोंका पाठ होता है वे सभी आप हरिके नाम ही हैं, आपको वे अति प्रिय हैं। मेरे स्वामी भी आप हरि ही हैं, सभीके एकमात्र स्वामी आप ही हैं। वेदोंमें आपकी स्तुतिका गान किया गया है, ऐसा जानकर जो वेदोंका पाठ करता है वह द्विजोंमें उत्तम है। उसे वेदपाठी कहा गया है, इससे विपरीत भाव रखनेवाला वेदवादी कहलाता है।

श्रीकृष्णजीने गरुडजीको विष्णुतत्त्व बतलाते हुए पुनः कहा—हे महात्मन्! संसारमें अज्ञानी जीवद्वारा सैकडों-करोडों महान्-से-महान् अपराध बनते रहते हैं पर वे हरि बडे ही दयालु हैं कृपालु हैं उनका तीन बार नाममात्र लेनेसे ही वे उन्हें क्षमा कर देते हैं—

> महापराधाः सन्ति लोके महात्मन्
> सहस्रशः शतशः कोटिशश्च।
> हरिश्च तान् क्षमते सर्वदेव
> नामत्रयस्मरणाद्वै कृपालुः॥ (२।६०)

कल्पान्तमें शयन कर रहे उन विष्णुको इस प्रकार स्तुति करते हुए जगाया गया—

वेदोंके द्वारा जानने योग्य यज्ञस्वरूप हे गोविन्द! आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जायँ और जगत्‌की रक्षा करें। हे केशव! अब आप अपनी योगनिद्राका परित्याग कर उठें। हे आनन्दस्वरूप! आप सृष्टि और प्रलय करनेमें समर्थ हैं।

हे प्रभो! ब्रह्माको प्रादुर्भूत कर आप उन्हें सृष्टि करनेके लिये प्रेरित करें और रुद्रको सृष्टिके संहारके लिये प्रेरित

करें। हे हर! हे मुरारे! कल्पादिका अन्त करनेके लिये आप उठें। हे महात्मन्! जो दुःखस्वरूप अन्धकार व्याप्त है उसे दूर करें। हे देव! भक्तोंको दुःखी देखकर आप भी दुःखी हो जाते हैं।

हे नारायण! हे वासुदेव! हे कृष्ण! हे अच्युत! तथा हे माधव! अब आप उठें, हे वैकुण्ठ! हे दयामूर्ते! हे लक्ष्मीपते! आपको बार-बार नमस्कार है।

हे सरस्वतीके ईश! हे रुद्रेश! हे अम्बिकेश! हे चन्द्रेश! हे शचीपते! आप ब्राह्मणों तथा गौओंके स्वामी हैं, आपका नाम शास्त्रप्रिय है। हे ऋग्वेद और यजुर्वेदके प्रिय! हे निदानमूर्ते! हे साम तथा अथर्वप्रिय! हे मुरारे! आप पुराणमूर्ति हैं और स्तुतियाँ आपको प्रिय हैं, इसलिये आप स्तुतिप्रिय कहलाते हैं। हे विचित्रमूर्ते! आप कमला (लक्ष्मी)-के पति हैं आप शीघ्र ही उठें इस योगनिद्राका परित्याग करें संसारमें व्याप्त अन्धकारको दूरकर जगत्‌की रक्षा करें।

—इस प्रकार स्तुति करनेपर अजन्मा विष्णु योगनिद्राका परित्याग कर शीघ्र ही जाग गये। (अध्याय २)

नारायणसे सृष्टिका प्रादुर्भाव तथा तत्त्वाभिमानी देवोंका प्राकट्य

श्रीकृष्णने कहा—हे विनतासुत गरुड! योगनिद्रासे जागनेपर भगवान् विष्णुकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई। यद्यपि इच्छाशक्ति उनमें सदा ही विद्यमान रहती है फिर भी उस समय उन्होंने उसी इच्छाशक्तिसे लौकिक स्वरूप धारण किया और अपने उस रूपके द्वारा प्रलयकालीन अन्धकारको नष्ट किया।

महाविष्णुके सभी अवतार पूर्ण कहे गये हैं। उनका परस्वरूप भी पूर्ण है और पूर्णमें ही पूर्ण उत्पन्न हुआ। विष्णुका परत्व और अपरत्व व्यक्तिमात्रसे है। देश और कालके सामर्थ्यसे परत्व और अपरत्व नहीं है। उनका पूर्ण रूप है, उस पूर्णसे पूर्णका ही विस्तार होता है और अन्तमें उस रूपको ग्रहण करके पुनः पूर्ण ही बच जाता है। पृथ्वीके भारका रक्षण आदि जो कार्य है वह उनका लौकिक व्यवहार है। अपनी गुणमयी मायामें भगवान् अपनी शक्तिका आधान करते हैं। वे वीर्यस्वरूपी भगवान् वासुदेव सभी देश तथा सभी कालमें सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। इसी कारण वे पुरुष ईश्वर कहलाते हैं।

हे विनतापुत्र! अपनी मायामें प्रभु हरि स्वयं वीर्यका आधान करते हैं। वीर्यस्वरूप ही भगवान् वासुदेव हैं और सभी कालोंमें सभी अर्थोंसे युक्त हैं।

इनके अचिन्त्यवीर्य और चिन्त्यवीर्यके भेदसे दो रूप हैं, एक स्त्रीरूप है और दूसरा पुरुषरूप। हे खगेन्द्र! दोनों स्वरूप वीर्यवान् हैं, इनमें अभेदका चिन्तन करना चाहिये।

देवी लक्ष्मी परमात्मासे कभी वियुक्त नहीं हैं, वे नित्य उनकी सेवामें अनुरक्त रहती हैं। नारायण नामसे प्रसिद्ध हरि यद्यपि पूर्ण स्वतन्त्र हैं किंतु लक्ष्मीके बिना वे अकेले कैसे रह सकते हैं। मुकुन्द हरिके चरणारविन्दमें परम आदरसे शुश्रूषा करती हुई वे लक्ष्मी सदा विराजमान रहती हैं। हरिके बिना देवी श्री भी किसी देश और कालमें पृथक् नहीं हैं। मायामें वे वीर्यवान् परमात्मा अपनी शक्तिका आधान करते हैं। पुरुष नामक विभु उन हरिने तीनों गुणोंकी सृष्टि की है।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—जिस प्रकार भगवान् हरिने प्रकृतिके तीन गुणोंकी सृष्टि की, उसी प्रकारसे लक्ष्मीने भी तीन रूप धारण किये, जिनका नाम हैं—श्री, भू और दुर्गा। इनमेंसे सत्त्वाभिमानी रूपको श्रीदेवी, रजोगुणाभिमानी रूपको भूदेवी और तमोऽभिमानी रूपको दुर्गादेवी कहा गया है। तीनों रूपोंमें अन्तर नहीं जानना चाहिये। हे खगेश्वर! गुणोंके सम्बन्धसे ही दुर्गा आदि तीन रूप हैं। इनमें अन्तर नहीं है। इनमें जो अन्तर मानते हैं, वे परम अन्धतमस् नरकमें जाते हैं। साक्षात् परमात्मा पुरुष हरिने भी तीन रूप धारण किये जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहे गये हैं।

लोकोंकी वृद्धि (पालन) करनेके लिये स्वयं साक्षात् हरि सत्त्वगुणसे विष्णु नामवाले कहलाये। सृष्टि करनेके लिये साक्षात् हरिने रजोगुणके आधिक्यसे ब्रह्मामें प्रवेश किया और संहार करनेके लिये वे हरि तमोगुणसे सम्पन्न होकर रुद्रमें प्रविष्ट हुए। वे अव्यय हरि त्रिगुणमें प्रविष्ट होकर जब सृष्टि-कार्योन्मुख होते हैं तो उनमें क्षोभ उत्पन्न होता है, फलस्वरूप तीनों गुणोंसे महत्तत्त्वका प्रादुर्भाव होता है। पुनः उस महान्‌से ब्रह्मा और वायुका प्राकट्य हुआ। यह महत्तत्त्व रजःप्रधान है। इस सृष्टिको गुणवैषम्य नामक सृष्टि जानना चाहिये।

इस प्रकारके विशिष्ट महत्तत्त्वमें लक्ष्मीके साथ स्वयं हरि प्रविष्ट हुए। हे महाभाग! उसके बाद उन्होंने उस महत्तत्त्वको क्षुब्ध किया। क्षोभके फलस्वरूप उससे ज्ञान-द्रव्य-क्रियात्मक अहम् तत्त्व उत्पन्न हुआ।

इस अहंतत्त्वसे तत्त्वाभिमानी देव शेष उत्पन्न हुए तथा गरुड और हर उत्पन्न हुए। हे खग! इस अहंतत्त्वमें साक्षात् हरि प्रविष्ट हुए। लक्ष्मीके साथ भगवान् हरिने स्वयं उस अहंतत्त्वको संक्षुब्ध किया। वैकारिक, तामस और तैजस-भेदसे अहम् तीन प्रकारका है, उस अहम्‌के नियामक रुद्र भी तीन प्रकारके हुए। वैकारिक अहम्‌में स्थित रुद्र वैकारिक कहे गये हैं। तामसमें स्थित रुद्र तामस कहे गये और तैजसमें स्थित रुद्र लोकमें तैजस कहे गये। तैजस अहंतत्त्वमें लक्ष्मीके साथ स्वयं हरिने प्रविष्ट होकर उसे संक्षुब्ध किया। इससे वह दस प्रकारका हुआ जो श्रोत्र, चक्षु, स्पर्श, रसना और घ्राण तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ—इन कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियोंके रूपमें दस प्रकारका कहा जाता है। वैकारिक अहंतत्त्वमें प्रविष्ट होकर हरिने उसे संक्षुब्ध किया। महत्तत्त्वसे एकादश इन्द्रियोंके एकादश अभिमानी देवता प्रकट हुए। प्रथम मनके अभिमानी

इन्द्र और कामदेव उत्पन्न हुए। अनन्तर अन्य इन्द्रियाके अभिमानी देवोका प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार अष्ट वसु आदिका भी प्राकट्य हुआ। द्रोण, प्राण ध्रुव आदि ये आठ वसु देवता ह।

रुद्राकी सख्या दस जाननी चाहिये। मूल रुद्र भव कहे जाते ह। हे पक्षिश्रष्ठ! रैवन्तेय भीम, वामदव, वृपाकपि, अज समपाद अहिर्बुध्न्य, बहुरूप तथा महान्—ये दस रुद्र कहे गये ह। ह पक्षीन्द्र! अब आदित्याको सुन—उरुक्रम शक्र, विवस्वान्, वरुण, पर्जन्य अतिवाहु सविता अर्यमा, धाता पूषा त्वष्टा तथा भग—ये बारह आदित्य हैं। प्रभव और अतिवह आदि उनचास मरुद्गण कहे गये हैं। हे खगेश्वर! विश्वेदेव दस हैं, उनके नाम इस प्रकार हे—पुरूरवा, आर्द्रव, धुरि, लोचन क्रतु, दक्ष, सत्य, वसु, काम तथा काल।

इन्द्रियाके अभिमानी दवोके समान ही स्पर्श, रूप रस आदि तत्त्वाक अभिमानी अपान, व्यान, उदान आदि वायुदेवोकी उत्पत्ति हुई। ऐसे ही च्यवनको महर्षि भृगु और उतथ्यको बृहस्पतिका पुत्र कहा गया है। रैवत चाक्षुप, स्वारोचिप, उत्तम ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि दक्षसावर्णि तथा धर्मसावर्णि इत्यादि मनु कहे गये हैं। ऐसे ही पितरोके सात गण भी प्रादुर्भूत हुए ओर इनसे वरुण आदिकी पत्नीरूपम गङ्गादिका आविर्भाव हुआ। इस प्रकार परमात्मा श्रीहरिसे सभी देवोका प्रादुर्भाव हुआ और वे नारायण लक्ष्मीके साथ उनमे प्रविष्ट हुए। (अध्याय ३-५)

देवताओंद्वारा नारायणकी स्तुति

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर! अपने-अपने तत्त्वम स्थित उन-उन तत्त्वाके अभिमानी देवताओने नारायण हरिकी अनक प्रकारसे पृथक्-पृथक् स्तुति की।

सर्वप्रथम श्री (देवी लक्ष्मी)-ने स्तुति प्रारम्भ की उस समय उन्हाने मनम सोचा कि प्रभुके ता एक-एक करके अनन्त गुण हैं। उन गुणाकी स्तुति करनेम मेरी कहाँ शक्ति है। ऐसा विचार कर वे देवी लज्जासे अवनत हाकर इस प्रकार कहने लगीं—

श्रीने कहा—ह नाथ! म आपके चरणारविन्दोपर नतमस्तक हूँ। आपके चरणोके अलावा अन्य में कुछ भा नहीं जानती। ह दवदेव! हे ईश्वर! आपमे अनन्त गुण विद्यमान है। हे दामादर! हे यागन्द्र! आप अपने शरीरमे स्थान दकर मरी रक्षा कर। स्तुति करनेके लिये मरे लिय आपसे अधिक आर काई प्रिय नही हे।

ब्रह्माजीने कहा—हे लक्ष्मीपते! ह जगदाधारस्वरूप विश्वमूर्ते! कहाँ आप ज्ञानक महासागर और कहाँ मैं अज्ञानी! आपम असीम शक्ति ह। मैं अल्पज्ञ हूँ ओर मरी शक्ति भी अल्प है। हे प्रभा! ह मुरारे! आप सदैव मुझको अहकार ओर ममताक भावस दूर ही रखे। ह रमश! मेरी इन्द्रियाँ सदा असन्मार्गपर प्रवृत होती हैं। वे सदा आपके चरणकमलम अनुरक्त रह ऐसी कृपा कर। आपकी स्तुति करनकी सामर्थ्य मुझम नहीं ह। इसलिय आप प्रसन्न हा। स्तुतिके अनन्तर विधाता ब्रह्मा हाथ जाडे उनक सामने खड हो गये।

देवदेव ब्रह्माजीके बाद वायुदेव भगवान् नारायणके प्रमसे विह्वल हो हाथ जोडते हुए गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करन लग—

वायुने कहा—हे प्रभो! सभी देवगण आपके सेवक हैं और आपके चरणारविन्दाका सानिध्य परम दुर्लभ है। हे रमेश! हे नाथ! लाकमे जा आपकी भक्तिसे विमुख हैं, जो पापकर्म करनेवाले हैं तथा जो अत्यन्त दु खी है ऐसे प्राणियापर अनुग्रह करनेके लिये ही आपका अवतरण होता है। हे वासुदेव! आप अपने अवताराके द्वारा गो, ब्राह्मण और देवताआ आदिके क्षेम तथा कल्याणक लिये नाना प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं आपके अवतारका अन्य दूसरा प्रयोजन नहीं है। हे पुण्यश्रष्ठ! आपक जो चरितामृत हैं उनका गुणानुवाद करनेसे मेरा मन तृप्त नहीं होता, इसलिये हे मुकुन्द! एक अविचल भक्तिवाल भक्तके समान मुझ भक्ति प्रदान कर ताकि मेरा मन आपक पादारविन्दमें लगा रहे।

ह प्रभो! मेरी निद्रा आपकी वन्दनारूप बन जाय मेरा सम्पूर्ण आचरण आपकी प्रदक्षिणा हो जाय और मेरा व्यवहार आपकी स्तुति बन जाय ऐसा समझकर मैं आपके चरणाम स्वयका समर्पित करता हूँ। हे दव! जितने पदार्थ हैं उन्ह देखकर 'यह हरिकी ही प्रतिमा है' एसा मानकर ह दवदेव! में उसम स्थित हरि-रूप समझकर आपका

भजन करूँ ऐसी आप कृपा कर। आप हरिके प्रसन्न हानपर लाकम कान-सी वस्तु दुर्लभ रह जाती ह अर्थात् उस सब प्राप्त हा जाता ह। इस प्रकार स्तुति कर महात्मा वायुदव हरिक आग हाथ जाडकर स्थित हा गय।

सरस्वतीने कहा—हे मुरार! हे हरे! ह भगवन्! कान एसा रसज्ञ है जो अपनी स्तुति अथवा कीर्तनसे सतुष्ट हो पायेगा अर्थात् काई नहीं, किसीमे एसी बुद्धि नहीं है जो आपकी स्तुति—प्रशसा कर सक। ह दवदेव! आपके गुणानुवादका कीतन ज्या हा कानम पहुँचता ह वस हा वह सासारिक दहानुरक्तिको नष्ट कर देता ह इतना ही नहीं वरन् जो घर भार्या, पुत्र पशु, धन-सम्पत्तिका व्यामाह आसक्ति रहती है वह भी दूर हो जाता हे।

ह अनन्तदेव! वेदास प्रतिपादित जो आपका स्वरूप ह उस लक्ष्मी भा नही जानतीं, चतुर्मुख ब्रह्मा भी नहीं जानन हें, वायुदेव भी नहीं जानते हैं, फिर मुझम यह शक्ति कहाँ है कि में आपकी स्तुति कर सकूँ। इसलिये हे हर! आप मेरी रक्षा करे।

हे खगेश्वर! इस प्रकार स्तुति कर दवी सरस्वता चुप हा गयीं। तदनन्तर भारतीने हरिकी स्तुति करना प्रारम्भ किया।

भारतीने कहा—हे ब्रह्म! हे लक्ष्मीश! हे हरे! ह मुरार! जो आपके गुणामे नित्य श्रद्धा रखता है वह उन गुणाका गान करते हुए सासारिक असत् विषयाम प्रवृत्त अपनी बुद्धिमे ससारक प्रति विराग उत्पन्न कर लता है और उसकी आपमे दृढ भक्ति हो जाती है और इस भक्तिके बलपर हे देवदेव! आपकी प्रसन्नता प्राप्त हा जाती है। हरिके पसन्न हो जानेसे भगवान्‌का भक्तक लिये प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है इसलिये ह प्रभो! आपक गुणाक कीर्तनम मेरी रति बनी रह, जब एसी अनुरक्ति पुरुषम हा जाती है ता वह प्रीति समस्त सासारिक दु खाका काट डालती है और परमानन्दस्वरूप फलकी प्राप्ति करा दती है। हरिक गुणाकी जो स्तुति नहीं करत उन्‍ह पाप लगता है और उनका पुण्य भी क्षीण हा जाता है।

ह खगश्वर! इस प्रकार स्तुति कर भारता मौन हो गयीं। उसके बाद शषने हाथ जाडकर स्तुति करत हुए कशवसे इस प्रकार कहा—

शेषने कहा—हे वासुदव! मैं आपक चरणाक प्रभावको नहीं जानता। इसे न रुद्र जानत हैं और न गरुड ही जानत हैं मैं ता बहुत हा न्यून हूँ। अत शरण दकर मरा रक्षा कर।

हे खगेश्वर! इस प्रकार स्तुति करके शेष मौन हो गये। उसक बाद पक्षिराज गरुडने स्तुति करना आरम्भ किया।

गरुडने कहा—ह प्रभो! आपके चरणाकी स्तुति मैं क्या कर सकता हूँ। मरा मन ता आपके चरणकमलम ही समर्पित है। म ता पक्षियानिम उत्पन्न हूँ। इस मुझसे आपकी स्तुति कैसे सम्भव ह? आपके अनन्तगुणाका प्रशसा करनका शक्ति भला मुझम कहाँ है?

इस प्रकार विनयपूर्वक स्तुति कर गरुड मौन हा गये। इसक बाद रुद्र स्तुति करन लग।

रुद्रने कहा—हे भूमन्! हे भगवन्! आपकी जैसी स्तुति हानी चाहिय वह म नहीं जानता। आपके कल्याणकारी चरणाके मूलम मरी भक्ति बनी रह। ईश! अपनम स्थान दकर मरी रक्षा कर।

इस प्रकार स्तुति कर रुद्रदव शान्त हा गये। ह पक्षिश्रेष्ठ! तदनन्तर वारुणी सापर्णी तथा पार्वती आदि देवियान भी उन हरिकी बड ही भावभक्तिसे स्तुति कर उनकी शरण ग्रहण की।

श्रीकृष्णने पुन कहा—हे खगेश्वर! अनन्तर इन्द्रने उनकी स्तुति करते हुए कहा—

ह दवदव! आपके स्वरूपका हृदयम जानत हुए भी जा मूढ स्तवनक लिय उत्सुक हाता है, ह चक्रपाणि! बिना जाने भी तुम्हारी स्तुति करना यह आपका अनादर ही है, क्याकि आपक यथार्थ स्वरूपका, गुणोको वाणीके द्वारा व्यक्त करना सम्भव नहीं है फिर भी आपको स्तुति करनम आपक नामका उच्चारण हागा अत यह पुण्य फल ता देनेवाला ही हागा। एसा समझकर आपकी स्तुति की हा जाता है। हे प्रभो! जब रुद्रादि देव भा आपकी स्तुति करनेका शक्ति नही रखत ता मुझम एसी सामर्थ्य कहाँ? इस प्रकार दवाधिदव हरिकी स्तुति कर नतमस्तक हो अजलि बाँधकर इन्द्र मौन हा गय।

दवी शचीन स्तुति करते हुए कहा—ह दव! वज्र अकुश ध्वज तथा कमलसे चिह्नित आपक चरणकमलाका मैं सदा चिन्तन करती हूँ। हे इश! आपक चरणरजका मैं सदा स्मरण करता हूँ। ह कृपालु! ह भक्तवत्सल! आप मरा रक्षा कर। इस प्रकार शचा दवा स्तुतिकर चुप हा गयीं। इसके बाद रतिन स्तुति करना आरम्भ किया।

रतिन कहा—हे नर-रूप धारण करनवाल हर! आपन अपन भक्तापर अनुकम्पा करनक लिय यह अवतार

धारण किया है, मैं आपके उस मुखारविन्दका सदा चिन्तन करती हूँ। हे देव! जो कुञ्चित केशराशिसे सुशोभित है तथा ब्रह्मा, रुद्र, लक्ष्मी आदिद्वारा स्तुत्य है, मैं आपके उस श्रीनिकेतन मुखकमलका ध्यान करती हूँ, आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार अतिशय आदरके साथ रति स्तुति कर भगवान्‌के समीप ही स्थित हो गयीं। रतिके बाद दक्षने स्तुति आरम्भ की।

दक्षने कहा—भगवान्‌का चरणोदकरूप जो तीर्थ है उसका मैं सदा चिन्तन करता हूँ। वह चरणजल ब्रह्माके द्वारा भलीभाँति सेवित है। ब्रह्मा आदि सभी देवोंके द्वारा वन्दनीय है। वही पवित्रतम चरणोदक गङ्गारूपी नदियोंमें श्रेष्ठ तीर्थ हुआ, जिस पवित्र पदरजमिश्रित गङ्गाको अपने जटाकलापमें धारण करनेसे अशिव भी शिव हो गये। हे करुणेश! हे विष्णो! ऐसे कृपावतार आपकी स्तुति करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। हे निदानमूर्ते! आप सभी प्रकारसे मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर दक्ष चुप हो गये। इसके बाद बृहस्पतिने स्तुति करना आरम्भ किया।

बृहस्पतिने कहा—हे ईश! मैं आपके मुखकमलका सतत चिन्तन करता हूँ, आप मुझे सांसारिक विषयोंसे विरक्त करें। स्त्री पुत्र मित्र तथा पशु आदि ये सभी नाशवान् हैं, इनके प्रति मेरी जो आसक्ति है उसे आप नष्ट कर दें। हे देव! इस संसारचक्रमें भ्रमण करते हुए मैंने यह अनुभव किया है कि 'यह संसार दुःखसे परिव्याप्त है।' इसीसे मुक्ति पानेके लिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे देवाधिदेव! मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर बृहस्पति मौन हो गये। तदनन्तर अनिरुद्धने स्तुति करना आरम्भ किया।

अनिरुद्धने कहा—हे हरे! आपकी रसमयी कथाके आस्वादका परित्याग करके जो स्त्रियोंके विष्ठा आदिसे परिपूर्ण शरीर-रसके आनन्दमें निमग्न रहता है, वह मन्दबुद्धि सूकरके समान है। हे मुरारे! मज्जा अस्थि, पित्त, कफ रक्त तथा मलसे परिव्याप्त और चर्म आदिसे आवेष्टित स्त्री-मुखमें आसक्त व्यक्तिका पतन ही होता है। हे विभो! मुझ-ऐसे पापमतिके लिये आपकी मायाका ही बल है। इस अत्यन्त मात्र दुःखरूप तथा लेशमात्र सुखसे भी रहित संसार-चक्रमें भ्रमण करता हुआ मैं मल-निःसारण करनेवाले नौ छिद्रोंसे युक्त इस शरीरमें आसक्त होता हुआ अत्यन्त मूढबुद्धि हूँ। हे देव! आपके सत्कथामृतको छोड़कर मैं घरमें रहते हुए परिवारके पालनमें अनुरक्त तथा दान आदि शुभ कर्मोंसे विरत हो गया हूँ। हे देव! आपको नमस्कार है। आप मेरे इस संसार-मलको दूर करें और दिव्य कथामृतके पानकी शक्ति दें। मैं आपके सद्‌गुणोंका स्तवन करनेमें समर्थ नहीं हूँ।

हे खगेश्वर! अनिरुद्ध इस प्रकार स्तुति करके चुप हो गये। इसके बाद स्वायम्भुव मनुने स्तुतिका उपक्रम किया—

स्वायम्भुव मनुने कहा—हे देव! आपकी स्तुति करनेके लिये प्रयत्नशीलमात्र होनेसे गर्भका दुःख नहीं होता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। हे प्रभो! आपकी इसी कृपासे मैंने परम पूज्यपदको प्राप्त किया है।

तदनन्तर स्तुति करते हुए वरुणने कहा—हे प्रभो! आपकी इच्छासे रचित देहरूपी घरमें, पुत्रमें, स्त्रीमें धनमें, द्रव्यमें 'यह मेरा है' और 'मैं इसका हूँ' इस अल्पबुद्धिके कारण मूर्खजन संसाररूपी दुःखमें निमग्न हो जाते हैं, इसलिये मेरी ऐसी कुबुद्धिका विनाश कर आप अपने चरणोंकी दासता मुझे प्रदान करें। इस प्रकार स्तुति कर वरुण हाथ जोड़कर वहीं स्थित हो गये। इसके बाद देवर्षि नारदने हरिकी स्तुति की।

नारदने कहा—हे विष्णो! मेरे लिये आपके नामके श्रवण तथा कीर्तनके अतिरिक्त अन्य कोई स्वादुयुक्त तत्त्व नहीं है इसलिये आप मुझे पवित्र करें। मेरी जिह्वाके अग्रभागमें आपका नाम सदा विद्यमान रहे। जिसकी जिह्वामें हरिनाम नहीं है वह मनुष्यरूपमें गदहा ही है। हे देव! मैं आपके स्वरूपको नहीं जानता, मुझपर आप कृपा करें। इस प्रकार नारद स्तुति कर देवाधिदेवके सामने स्थित हो गये। अनन्तर महात्मा भृगु स्तुति करने लगे।

भृगुने कहा—गरुड जैसे आसन पर आसीन होनेवाले हे देव! आपके लिये कौन-सा आसन शेष रह जाता है। कौस्तुभ-जैसा आभूषण धारण करनेवाले आपके लिये और कौन-सा भूषण रह जाता है। लक्ष्मी जिसकी पत्नी हो उसको और क्या प्राप्तव्य रह जाता है। हे वागीश! आप वाणीके ईश हैं फिर आपके विषयमें क्या कहना? इस प्रकार भगवान् हरिकी स्तुति कर भृगु मौन हो गये। इसके बाद अग्निने पुरुषोत्तमकी स्तुति की।

अग्निने कहा—जिसके तेजसे मैं तेजस्वी और आज्यसिक्त हव्यका वहन करता हूँ। जिसके तेजसे मैं उदरमें

प्रविष्ट होकर पूर्णशक्तिसम्पन्न हो अन्नका परिपाक करता हूँ इसलिये मैं आपके सद्गुणोंको कैसे जान सकता हूँ?

प्रसूतिने कहा—जिसके नामके अर्थका विचार करनेमें भी मुनिगण मोहमग्न हो जाते हैं और सदा जिससे देवगण भी भयभीत रहते हैं, मान्धाता ध्रुव, नारद, भृगु, वैवस्वत आदि जिसकी प्रेमसे स्तुति करते हैं ऐसे हितचिन्तक आप विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

हे खगेश्वर! प्रसूतिने इस प्रकार स्तुति कर मौन धारण कर लिया। तदनन्तर ब्रह्मनन्दन वसिष्ठने विनयसे अवनत होकर स्तुति करना प्रारम्भ किया।

वसिष्ठने कहा—विधाता पुरुषको नमस्कार है, असत्-स्वरूपको नष्ट करनेवाले देवको पुनः-पुनः नमस्कार है। हे नाथ! मैं आपके चरणकमलोंमें सदा नतमस्तक हूँ। हे भगवन्! हे वासुदेव! मेरी सदा रक्षा करें। इस प्रकार स्तुति करके वसिष्ठ मौन हो गये। इसके बाद ब्रह्माके पुत्र महर्षि मरीचि तथा अत्रिने अतिशय भक्तिके साथ स्तुति करते हुए नारायणको प्रसन्न किया।

तदनन्तर स्तवन करते हुए महर्षि अंगिराने कहा—हे नाथ! मैं आपके अनन्त-बाहु अनन्त-चक्षु और अनन्त मस्तकसम्पन्न विराट् स्वरूपको देखनेमें असमर्थ हूँ। आपका यह स्वरूप हजारों-हजार मुकुटोंसे अलंकृत है। अतिशय मूल्यवान् अनेक अलंकारोंसे सुशोभित ऐसे अनन्तपार-स्वरूपकी स्तुति करनेमें भी मैं असमर्थ हूँ।

हे खगेश्वर! इस प्रकार अंगिराने स्तुति कर मौन धारण किया। इसके बाद पुलस्त्य स्तुति करनेके लिये उद्यत हुए।

पुलस्त्यने कहा—हे भगवन्! आप अपने उपासकोंके लिये जैसा मङ्गलकारी स्वरूप धारण करते हैं, उसी भुवनमङ्गल स्वरूपका दर्शन मुझे भी करायें। ऐसे रूपवाले आपको नमस्कार है। आप नरकसे रक्षा करनेवाले हैं। हे देव! मैं आपके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे भगवन्! मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर पुलस्त्यजी मौन हो गये। इसके अनन्तर पुलह स्तुति करने लगे।

पुलहने कहा—हे भगवन्! महापुरुषोंका कथन है कि निष्काम तथा रूपरहित भगवान्‌को समर्पित स्नान, उत्तम वस्त्र दूध फल पुष्प भोज्य पदार्थ तथा आराधन आदि सब व्यर्थ ही हैं तो फिर ऐसे निष्काम आपको ये सब अर्पित न करके मैं निष्काम बुद्धिसे आपको प्रणाम समर्पित करता हूँ। हे वैकुण्ठनाथ! आपके स्तवनकी शक्ति मुझमें नहीं है।

इस प्रकार स्तुति कर पुलह मौन हो गये। उसके बाद क्रतु स्तुति करने लगे।

क्रतुने कहा—हे भगवन्! प्राणोंके निकलते समय आपके नाम ही संसारजन्य दुःखके विनाशक हैं। जो अनेक जन्मोंके पापको सहसा विनष्ट कर निर्मल मुक्ति प्रदान करते हैं, मैं उन नामशक्तिकी शरणमें हूँ।

हे विष्णो! जो आपकी भक्ति करनेमें असमर्थ हैं और केवल आपका नाममात्र लेते हैं वे भी मुक्तिको प्राप्त करते हैं फिर जो भक्तिपूर्वक आपका स्मरण करते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या!

ये भक्त्या विवशा विष्णो नाममात्रैकजल्पका।
तेऽपि मुक्तिं प्रयान्त्याशु किमुत ध्यायिनः सदा॥ (७।६४)

इस प्रकार स्तुति करके क्रतु भी मौन हो गये तब वैवस्वत मनुने स्तुतिसे नारायणको प्रसन्न किया।

विश्वामित्रने स्तुति करते हुए कहा—हे भगवन्! मैंने आपके चरणकमलोंका न तो ध्यान किया और न नित्य संध्योपासना ही की। ज्ञानरूपी द्वारके किवाड़को खोलनेमें दक्ष धर्मका उपार्जन भी मैंने नहीं किया। अन्तःकरणमें व्याप्त मलके विनाश करनेमें अत्यन्त कुशल आपकी कथा भी मैंने कानोंसे नहीं सुनी इसलिये हे देव! मुझ अनाथकी आप सदा रक्षा करें—

न ध्याते चरणाम्बुजे भगवतो संध्यापि नानुष्ठिता
ज्ञानद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः।
अन्तर्व्याप्तमलाभिघातकरणे पट्वी श्रुता ते कथा
नो देव श्रवणेन पाहि भगवन् मामत्रितुल्यं सदा॥ (७।७१)

—इस प्रकार स्तुति कर महामुनि विश्वामित्र हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

हे खगेश्वर! क्रतुके बाद मित्रने जगत्‌के कारण नारायणकी स्तुति करना आरम्भ किया।

मित्रने कहा—संसारके बन्धनको विनष्ट करनेवाले हे देव! आप प्राणियोंको संसारसे मुक्ति दिलानेवाले हैं तथा कल्याणके निधान हैं मैं अज्ञानी हूँ, आपके चरणारविन्दोंको मैं प्रणाम करता हूँ। आप भगवान् वासुदेव ही अपने

विषयमे जानते हैं। आपके यथार्थ स्वरूपको न मैं जानता हूँ न अग्नि तथा न ब्रह्मा-विष्णु-महेश—ये तीनो देवता, न मुनीन्द्र ही जानते हैं, परम भागवत भी आपके स्वरूपको नहीं जान सकते तो अन्यकी बात ही क्या है? हे परात्पर स्वामी! आप मेरी नित्य रक्षा करे।

हे खग! इस प्रकार हरिकी स्तुति कर मित्र मौन हो गये उसके बाद ताराने स्तुति करना प्रारम्भ किया।

ताराने कहा—हे विष्णो! अनन्य-भावसे जो आपके प्रति दृढ भक्ति करते हैं आपके लिये जो सभी कर्मोंको त्याग देते हैं और अपने स्वजनो तथा बान्धवोका परित्याग कर देते हैं, आपकी कथाको सुनकर जो दूसरेको सुनाते हैं और कहते हैं इस प्रकारके ये साधुगण सभीके प्रति आसक्तिसे रहित हो जाते हैं। हे प्रभो! जैसे आप उन साधुगणों-भक्तोकी रक्षा करते हैं वैसे ही मेरी भी सदा रक्षा करे।

निर्ऋतिने कहा—यागपूर्वक आपके प्रति समर्पित जन भक्तिसे परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। भक्त श्रद्धाभावसे की गयी सेवासे, सासारिक विषयोकी अनासक्ति और चित्तका निग्रह करनेसे विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं, इसलिये हे प्रभो! दयापूर्वक उनके समान मेरी भी रक्षा करे।

तदनन्तर भगवान्‌के पार्षद वायुपुत्र महाभाग विष्वक्सेनने हरिकी स्तुति करना प्रारम्भ किया।

विष्वक्सेनने कहा—पूर्णानन्दस्वरूप भगवान् कृष्ण यदि सदा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, यदि मेरी अपरोक्ष साधनरूपा परम भक्ति है और गुरुसे लेकर ब्रह्माण्डके साधुओके प्रति यदि मेरी निष्कपट भक्ति है साथ ही तुलसी आदिके प्रति यदि मेरी प्रीति है और इनका सदा मुझे स्मरण है तो निश्चित ही मुझे आपका आशीर्वाद प्राप्त होगा, इसमे सदेह नहीं है।

इस प्रकार स्तुति कर महाभाग विष्वक्सेन चुप हो गये।

हे पक्षिराज! इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवो तथा लक्ष्मी आदि देवियाने भगवान् हरिकी पृथक्-पृथक् स्तुति की और वे अजलि बाँधकर मौन हो उनके सामने स्थित हो गये।

भगवान्‌ने उन सभीमे प्रविष्ट होकर उन्हे अपने शरीरमे आश्रय प्रदान किया। (अध्याय ६—९)

नारायणसे प्राकृत तथा वैकृत सृष्टिका विस्तार

गरुडजीने कहा—हे प्रभो! देवताओके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये गये भगवान् विष्णु उन्हे आश्रय देकर स्वय उन्हींमे किस प्रकार प्रविष्ट हुए और किस प्रकार सृष्टि हुई? हे कृपालो! आप इसे भलीभाँति बताये।

श्रीकृष्णने कहा—वे भगवान् महाप्रभु उन सम्बन्धरहित तत्त्वोंमे प्रविष्ट हुए, इससे उनमे क्षोभ उत्पन्न हुआ। सबसे पहले भगवान्‌ने हिरण्मयात्मक ब्रह्माण्डकी सृष्टि की, जो पचास कोटियोजनमे चारो ओर विस्तृत था। उसके ऊपर अवस्थित अत्यन्त सूक्ष्म भाग उतने ही विस्तारमे फैला था, जितनेमे उस हिरण्मय अण्डका विस्तार था। उसके भी ऊपर पचास कोटि भूतल था। वह सात आवरणोसे चारो ओर परिधिद्वारा घिरा हुआ था। पहले आवरणका नाम कबन्ध है। दूसरा आवरण अग्निदेवका है, तीसरा आवरण महात्मा हरका है चौथा आवरण आकाशका है, पाँचवाँ आवरण अहकारका है छठा आवरण महत्तत्त्वात्मक है और सातवाँ आवरण त्रिगुणात्मक है। इसके अनन्तर अव्याकृत आकाश है इसके विस्तारकी कोई सीमा नहीं है। इसी मण्डलके मध्यमे अव्यय हरि विराजमान रहते हैं। आठवाँ आवरण आकाशका है। उसके मध्यमे विरजा नदी है। इसकी परिधि पाँच योजन विस्तीर्ण है। यह अतिशय पुण्यवती नदी है। विरजा नदीमे भलीभाँति स्नान करके लिग-देहका भी परित्याग कर हरिके मोक्षपदकी प्राप्ति होती है। प्रारब्ध कर्मोका क्षय हो जानेपर ही विरजा नदीमे स्नान करना सम्भव होता है।

हे खगेश्वर! प्रलयमे भी इस विरजा नदीका लय नहीं होता, उसे लक्ष्मीस्वरूपा समझे, क्योकि वह प्राणियोके लिगशरीरका नाश करनेवाली है। विरजा नदीके बाद व्याकृत आकाश है जो नि सीम है, उसकी अभिमानिनी देवता लक्ष्मी हैं। सृष्टिके समय उस ब्रह्माण्डके अभिमानी देवता ब्रह्मा थे, जो विराट् नामसे कहे गये। इस प्रकार ब्रह्माण्ड आदिका सर्जन कर अव्ययात्मा भगवान् हरि उन-उन तत्त्वाभिमानी देवताओके साथ उस ब्रह्माण्डके ऊपर-नीचे-सर्वत्र व्याप्त होकर नित्य स्थित रहते हैं। हे पक्षिराज! यह प्राकृत सृष्टि है अव्यक्त आदिसे लेकर पृथ्वीतकके जो भी तत्त्व इस अण्डरूप जगत्में बाह्यरूपसे उत्पन्न हुए हैं, वे सभी प्राकृत सृष्ट कहे जाते हैं और ब्रह्माण्ड तथा

ब्रह्माण्डान्तर्वर्ती सृष्टि वैकृत सृष्टि कही जाती है।

हे अण्डज! जिन्हे पुरुष कहा गया है वे हरि तो साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम ही हैं। उन विष्णुने उस हिरण्मय अण्डके मध्य विद्यमान जलराशिमे एक हजार वर्षतक शयन किया था। उस समय लक्ष्मी ही जलरूपमे थीं शय्यारूपमे विद्या थीं तरगरूपमे वायु थे और तम ही निद्रारूपमे था। इसके अतिरिक्त वहाँ और कोई नहीं था। उसी उदकके मध्यमे नारायण योगनिद्रामे स्थित थे। हे पक्षिश्रेष्ठ! उस समय लक्ष्मीने उस जलगर्भमे शयन कर रहे हरिकी स्तुति की। हरिकी प्रकृति उस समय लक्ष्मी तथा धरा (भूदेवी)-इन दो रूपोंको धारण कर लेती है और शेष वेदका रूप धारण करके जलके मध्य सोये हरिकी स्तुति करते हैं। स्तुतिसे प्रसन्न हुए नित्य प्रबुद्ध वे महाविष्णु निद्राका परित्याग कर प्रबुद्ध हो उठे। उस समय उनकी नाभिसे सम्पूर्ण जगत्‌का आश्रयभूत हिरण्मय पद्म प्रादुर्भूत हुआ। इसे प्राकृत सृष्टिके रूपमे समझना चाहिये। उस सृष्टिकी अभिमानिनी देवता भूदेवी थीं। वह पद्म असख्य सूर्योंके समान प्रकाशवाला कहा गया है। चिदानन्दमय विष्णु उससे भिन्न हैं उस पद्मको भगवान्‌के किरीट आदि आभूषणोंके समान समझना चाहिये।

हरिके किरीट आदि भी दो प्रकारके हैं—एक स्वरूपभूत तथा दूसरे स्वरूपभिन्न। उस पद्मसे सभी लोकोंके विधायक ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुई। उस हिरण्मय पद्मसे चतुर्मुख ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। किसने मेरी सृष्टि की है वह प्रभु कौन है? ऐसी जिज्ञासावश ब्रह्मा उस पद्मके नालमे प्रविष्ट हो गये। किंतु अज्ञानवश जब वे नारायणके विषयमे कुछ जान न सके तब उस समय उन्हें 'तप' 'तप' इस प्रकार ये दो शब्द सुनायी दिये। उन शब्दोंके अभिप्रायको ठीक-ठीक समझते हुए विष्णुमे एकमात्र निष्ठा रखनेवाले ब्रह्माने हरिकी प्रीति प्राप्त करनेकी इच्छासे दिव्य हजार वर्षतक तपस्या की। हे खगेन्द्र! तपस्यासे प्रसन्न होकर हरि भक्त-श्रेष्ठ ब्रह्माको दिव्य वर प्रदान करनेके लिये प्रकट हो गये। भगवान् चतुर्भुजधारी थे कमलके समान उनके नेत्र थे, वक्षःस्थल श्रीवत्ससे सुशोभित था तथा गला कौस्तुभमणिकी मालासे अलकृत था वे अत्यन्त प्रसन्न मुद्रामे थे उनके नेत्र करुणासे आर्द्र थे। ऐसे उन नारायणका ब्रह्माको दर्शन हुआ।

भक्तोंके वशमे रहनेवाले, अत्यन्त दयालु परब्रह्मस्वरूप नारायणको अपने समक्ष देखकर ब्रह्माने बडी ही श्रद्धा-भक्तिसे उनकी पूजा की और उनके पादतीर्थको मस्तकपर धारण किया। तदनन्तर भक्तिमानोमे श्रेष्ठ तथा महाभागवतोंमे प्रधान ब्रह्माने उन हरिकी अनेक प्रकारसे स्तुति की और उनके सामने वे हाथ जोडकर खडे हो गये।

श्रीकृष्णने पुन कहा—ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति किये जानेपर दयाके सागर भगवान् मधुसूदन मेघके समान गम्भीर वाणीमे बोले—हे ब्रह्मन्! मेरे प्रसादसे इन देवताओंकी वैसी ही सृष्टि आप करें, जिस प्रकार पूर्वकालमे आपके द्वारा हुई थी। यद्यपि इस सृष्टि-कार्यसे आपका कोई प्रयोजन नहीं है, फिर भी मेरी प्रसन्नताके लिये आप ऐसा करें। हरिके ऐसा कहनेपर ब्रह्माने उन हरिकी स्तुति करके उनकी प्रसन्नताके लिये मनमे सृष्टि करनेका निर्णय लिया। तब महत्तत्त्वात्मक ब्रह्माने सर्वप्रथम जीवके अभिमानी देवता वायुदेवकी सृष्टि की। हे गरुड! वे ही प्रथम सृष्टिके पुरुषात्मा हैं। तदनन्तर ब्रह्माने अपने दाहिने हाथसे ब्रह्माणी तथा भारती नामक दो देवियोंकी सृष्टि की। बाये हाथसे सत्यके पुत्र महत्तत्त्वात्मक अनलको उत्पन्न किया। ब्रह्माके दाहिने हाथसे ही अहकारात्मक हरकी सृष्टि हुई। इसी प्रकार गरुड, शेष वायु, गायत्री वारुणी, सौपर्णी चन्द्र, इन्द्र, कामदेव, इन्द्रियोंके अभिमानी देवताओं मनु-शतरूपा दक्ष नारदादि ऋषियों, कश्यप, अदितिदेवी वसिष्ठ आदि ब्रह्मज्ञानी ऋषियों कुबेर विष्वक्सेन तथा पर्जन्य आदि देवसृष्टिका उनसे प्रादुर्भाव हुआ। हे खगेश्वर! मेरी कृपासे ही ब्रह्मा इस सृष्टि-कार्यमे समर्थ हो सके। (अध्याय १०—१७)

नारायणकी पूर्णताका वर्णन तथा पदार्थोंके सारासारका निर्णय

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! जो मूलस्वरूप पूर्ण गुणसम्पन्न सर्वथा स्वतन्त्र पुरातन पूर्ण शरीरवाले आनन्दस्वरूप भगवान् अनन्त हैं उनके समान कोई भी नहीं है। उनके चरण आदि सभी अङ्ग अपनेमे पूर्ण हैं। उनके एक-एक रोममें उतना ही बल है जितना उनका समग्र बल है। इस प्रकार वे सब प्रकारसे पूर्ण हैं। अत वे ही सबके कर्ता हैं वे ही सबके हर्ता हैं और वे ही इस सृष्टिके सार अंशके भोक्ता भी हैं।

हे पक्षीन्द्र! वे हरि सारहीन अथवा असार-अशका भाग नहीं करत समस्त द्रव्य पदार्थोक सारभागका ही ग्रहण करते है। वे नित्य भक्तोक प्रति दयालु और भक्ताके हितचिन्तक हैं। भक्तोद्वारा निवेदित भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थो तथा उपचाराक सारभागका व बड ही आदरक साथ ग्रहण करते ह। समयद्वारा दूषित एव भावदुष्ट पदार्थोको नारायण ग्रहण नहीं करते, द्राक्षा आदि जो फल उन्ह समर्पित किय जात हैं व भी काल आदिके प्रभावसे दोपयुक्त हो जाते हैं इसलिये हे पक्षिश्रेष्ठ! अब आप द्रव्योंके सारासारके विषयम सुने—

जामुन आदिके फल अतिशय पकनेके बाद चार दिनम सारहीन हो जाते है। एक मासक बाद कटहल असार हा जाता है। छ मासके बाद खजूर तिक्त पदार्थके समान हा जाता हे। पवित्र नारिकेल फोडनेके बाद एक दिन-रातके अनन्तर असार हो जाता हे। सूखे नारिकेल और खजूरम यह दोप नहीं आता।

हे पक्षिराज! एक वर्पके बाद सुपाडी, एक घडी (२४ मिनट)-के बाद ताम्बूल तीन घटेके बाद पके हुए अन्न और सूप आदि असार हो जाते हैं। तीन पक्षके बाद तेलमे पकाया पदार्थ आर बारह घटेके बाद घीमे पकाया हुआ पदार्थ असार हो जाता है। नौ घटेके बाद शाक नि सार हो जाता है। जम्बीरी नीबू, शृगवेर आँवला, कपूर तथा आम एक वपके बाद नि सार हो जाते हैं। परतु हे द्विज! तुलसी सदा सारयुत ही रहती है, एकादशीके दिन गीली हो या सूखी हा अथवा जलक साथ हा वह सदा सारवान् ही बनी रहती है-

तुलसी सर्वदा सारा एकादश्यामपि द्विज।
आर्द्रा वाप्यथवा शुष्का सार्द्रा सारवती स्मृता॥
(१४।२९)

सारयुता तुलसीको ग्रहण करना चाहिये। एकादशीके दिन अन्न नि सार हो जाता है। हे खगेश्वर! एकादशीके दिन मनुष्याक लिय हरिका तीर्थ (चरणामृत) सार होता हे। हे गरुड! आपाढ मासम शाक, भाद्रपद मासम दही, आश्विन मासमे दूध नि स्सार हा जाता हे, इसी प्रकार हरिके नामोच्चारसे विहीन मुख और हरिको नैवेद्यक रूपमे अर्पित किये बिना बना हुआ पमस्त भोजन नि सार हा जाता है—

हरिनाम विहीन तु मुख नि सारमुच्यते।
हरिनैवेद्यहीनस्तु पाको नि सार उच्यते॥
(१४।३७)

तीन दिनमे अलसीका पुष्प एक प्रहरम मल्लिका, आधे पहरके बाद चमेली सारहीन हो जाती है। तीन वर्पतक केसर, दस वर्पतक कस्तूरी तथा एक वर्षतक कपूर सारवान् कहा गया है, परतु चन्दनको सदा सारवान् ही कहा गया हे—

ससारमितिसम्प्रोक्त चन्दन सर्वदा स्मृतम्॥
(१४।४१)

(अध्याय १४)

परमात्मा हरि तथा देवी महालक्ष्मीके विभिन्न अवतारोका वर्णन

हे पक्षिश्रेष्ठ! हरि पूर्णानन्दस्वरूप हैं। उनके समान किसी भी देश अथवा कालमे कोई नहीं है। उन्हीं हरिने लोककल्याणके लिये सम्पूर्ण सद्गुणाके सागरके रूपमे अवतार ग्रहण किया। वे ही विष्णु समस्त अवताराके बीजभूत हैं वे ही वासुदेव कहलाते हैं व वासुदेव ही सकर्षण प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धके रूपम प्रकट हुए। उन्हीं विष्णुने स्थूल देहस ब्रह्मादि देवाकी सृष्टि की। उन्हीं विष्णुने सनत्कुमार आदिक रूपम शरीर धारण किया आर तपस्या ब्रह्मचर्य तथा इन्द्रियनिग्रहकी शिक्षा दी। उन्हाने ही पृथ्वीके तथा दैत्यराज हिरण्याक्षके उद्धार हतु एव भूमिकी स्थापना और सज्जनाकी रक्षाके लिय वराहका अवतार धारण किया। पञ्चरात्रकी शिक्षा दनके लिय भी उन्होंने स्वरूप धारण किया। बदरिकाश्रमम उन्हाने ही नारायण नामसे अवतार लिया। वे ही हरि कपिल मुनिके रूपम अवतरित हुए ओर उन्होने ही कालकवलित चौवीस तत्त्वावाले साख्यशास्त्रका आसुरिके लिये उपदश किया। वे ही नारायण अत्रिपत्नी दवी अनसूयास दत्तात्रेयके रूपम प्रकट हुए और उन्हाने ही राजा अलर्कको आन्वीक्षिकी नामक तर्कविद्याका उपदेश दिया। वे ही सच्चिदानन्द हरि सूर्यक वशम आकूतिके गर्भस प्रादुर्भूत हुए आर उन्हाने ही स्वायम्भुव मन्वन्तरम दवाक साथ प्रजाका पालन किया। वे ही विष्णु अग्नीध्रपुत्री मरुदेवीक गर्भस नाभिके पुत्र-रूपम उरुक्रम नामसे अवतरित हुए। उन हरिन ही देवता तथा असुराद्वारा समुद्रके मन्थनके समय मन्दराचल पर्वतको

अपनी पीठपर धारण करनेके लिये कूर्मरूप धारण किया। पुन वे ही हरि हरितमणिके समान द्युतिवाले महात्मा धन्वन्तरिके रूपमे हाथमे अमृतकलश धारण किये हुए अपथ्यजनित दोषोको दूर करनेके लिये अवतरित हुए। विष्णुने ही दितिपुत्र असुरोको मोहित करनेके लिये मोहिनीका रूप धारण किया तथा पुन नृसिहरूपसे अवतरित होकर उन्होने ही हिरण्यकशिपुको अपने ऊरुओपर रखकर नखोसे विदीर्ण कर डाला। अनन्तर अदिति और कश्यपसे वामनरूपमे अवतरित हुए। बलिसे अधिगृहीत सम्पूर्ण त्रैलोक्यके राज्यको पुन इन्द्रको प्रदान करनेकी इच्छासे तथा बलिकी दानशीलताका विस्तार करनेके लिये उन्होने यह रूप धारण किया। पुन वे जमदग्निके पुत्र परशुरामके रूपमे विख्यात हुए और उन्होने ब्रह्मद्वेषी क्षत्रियोसे इस पृथ्वीको विहीन कर दिया। तदनन्तर उन हरिने ही सूर्यवशमे रघुकुलमे देवी कौसल्यासे श्रीरामके रूपमे अवतार धारण किया। समुद्रबन्धन तथा रावण आदिके वध आदि कार्य उन्होने ही किये। तदनन्तर द्वापरमे उन विष्णुने ही व्यासरूपमे अवतरित होकर वेदसहिताको चार भागोमे विभक्त कर अपने पैल सुमन्तु आदि शिष्योको ऋगादि वेदोको पढाया। वे पराशरके द्वारा सत्यवतीमे प्रादुर्भूत हुए थे। तदनन्तर वे ही हरि वसुदेवके पुत्र-रूपमे-देवकीमे कृष्णरूपमे अवतरित हुए। उन्होने ही कस आदिका वध किया और पाण्डवोकी रक्षा की। तदनन्तर कलियुगकी प्रवृत्ति होनेपर वे ही असुरोको मोहित करनेके लिये कीकट देशमे बुद्ध नामसे प्रादुर्भूत हुए। इसके बाद कलियुगकी मध्यसधिमे वे हरि विष्णुगुप्त (विष्णुयश)-के घर दस्युप्राय राजाओका वध करनेके लिये कल्कि नामसे अवतीर्ण होगे।

इस प्रकार सकर्षण आदि ये सभी अवतार हरिके हुए। हरिके असख्य अवतार हैं, उन्हे स्वय नारायण ही जानते हैं। इन सभी अवतारोमे बलकी दृष्टिसे रूपकी दृष्टिसे और गुणकी दृष्टिसे किसी भी प्रकारका भेद नहीं किया जा सकता। अनन्त नाम-रूपवाले विष्णु अनन्त गुणोसे सम्पन्न हैं।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर! जिस प्रकार हरिके अनन्त नाम-रूपात्मक अवतार हैं, उसी प्रकार हरिप्रिया भी विभिन्न अवतारोके रूपमे प्रकट हुई हैं। वे लक्ष्मी ज्ञानस्वरूपा हैं। वे एकमात्र हरिके चरणोका आश्रय ग्रहण कर नित्य उनके साथ रहती हैं। वे ही पुरुषकी पत्नी और प्रकृतिकी अभिमानिनी देवी हैं। जब ब्रह्माण्डके सृजनकी इच्छा हरिने की थी, उस समय गुणोकी सृष्टि करनेके लिये ये प्रकृति नामसे प्रादुर्भूत हुई थीं। वासुदेवकी पत्नी माया सकर्षणकी पत्नी जया, अनिरुद्धकी पत्नी शान्ता तथा प्रद्युम्नकी पत्नी कृतिके रूपमे इन्हींका अवतार हुआ। विष्णुकी पत्नी सत्त्वाभिमानिनी श्रीदेवी, तमोगुणकी अभिमानिनी देवी दुर्गा और रजोगुणकी अभिमानिनी वराहपत्नी देवी भूदेवी तथा भगवान् वेदकी अभिमानिनी देवी अन्नपूर्णा आदि सब इन्हीं देवीके अवतार हैं। साथ ही यज्ञपत्नी दक्षिणा विदेहराजपुत्री सीता तथा रुक्मिणी, सत्यभामा आदि रूपोमे भगवती लक्ष्मीका ही प्राकट्य हुआ है। इस प्रकार पृथक्-पृथक् देवी लक्ष्मीके अनन्त अवतार हुए हैं। ऐसे ही पाण्डवोकी पत्नी द्रौपदी भी शची आदि देवियोके रूपमे उत्पन्न हुई थीं।

(अध्याय १५—१७)

भगवान् शेष तथा भगवान् रुद्रके विविध अवतार

श्रीकृष्णने कहा—भगवान् शेष अनन्त शक्तिसम्पन्न हैं। इनका आविर्भाव भगवान् हरि तथा रमादेवीके शयनके लिये हुआ है। योगनिद्रामे लक्ष्मीके साथ भगवान् नारायण शेषशय्यापर ही शयन करते हैं। 'मैं सर्वदा हरिका दास बना रहूँ और सदा उनकी पूजा करता रहूँ। मैं प्रत्येक जन्मोमे हरिको नमस्कार करता रहूँ' इस इच्छासे गरुडने हरिके शयनस्थानके समीपमे आश्रय प्राप्त किया। विनताके पुत्र काल नामक गरुडका भगवान्‌के वाहनके रूपमे प्रादुर्भाव हुआ।

शेष भगवान् नारायणके भक्त हैं। उनमे विष्णु, वायु तथा अनन्त—इन तीन देवोका अश सदा विद्यमान रहता है। हे खग! दशरथके पुत्रके रूपमे देवी सुमित्राके अशसे जिन लक्ष्मणने जन्म लिया वे शेषके ही अश हैं इसलिये शेषावतार कहे जाते हैं। भगवान् श्रीराम तथा देवी सीताकी

सेवा करनेके लिये उनका पृथ्वीपर अवतार हुआ। वे ही शेष वसुदेवके पुत्रके रूपमे देवी रोहिणीसे बलभद्र नामसे अवतरित हुए। गरुडजीका पृथ्वीपर कोई अवतार नहीं हुआ इसमे भगवान्‌की आज्ञा ही है। भगवान् रुद्रने भी अनेक रूप धारण किये हैं, वामदेव, ईशान, अघोर तथा सद्योजात आदि इनके कई अवतार हैं। इसी प्रकार आवेशावतार दुर्वासा तथा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आदि भी रुद्रके ही अंशावतार हैं। (अध्याय १८)

श्रीकृष्णपत्नी देवी नीला (नाग्नजिती)-की कथा

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! कृष्णपत्नी नाग्नजिती पूर्वजन्ममे पितरामे श्रेष्ठ कव्यवाहकी पुत्री थी। वह कन्या पतिरूपमे भगवान् कृष्णका अनन्यचिन्तन किया करती थी। जब वह विवाहके योग्य हुई तो पिताने उसके विवाहके लिये बहुत प्रयत्न किया, किंतु उस कन्याने कृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यको वरण न करनेका अपना निश्चय बताया तब पिताने उससे कहा—किसी दूसरेका पतिरूपमे क्यो नहीं ग्रहण कर लेती हो? तब उसने अपने पितासे कहा—'हे तात! सर्वगुणसम्पन्न हरिके अतिरिक्त मेरा और कोई पति नहीं हो सकता। हे तात! मुझे ऐसा लगता है कि इस जन्ममे मुझ सौभाग्यकी प्राप्ति है ही नहीं, क्योंकि मेरे तो एकमात्र भर्ता वे भगवान् हरि ही हैं और कोई नहीं। यद्यपि इस संसारमे सभी स्त्रियाँ सदा सौभाग्यवती मानी जाती हैं किंतु उन्हे विधवा ही समझना चाहिये, क्योंकि अनादि नित्य, सम्पूर्ण संसारके एकमात्र सारस्वरूप परम सुन्दर, मोक्षदाता तथा सभी इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाले भगवान्‌को जो पतिरूपमे नहीं मानती हैं, वे सदैव विधवाके समान ही हैं। जिन स्त्रियोंके पति विष्णुभक्त है, उन स्त्रियोंका जन्म सफल है। अनेक जन्मोमे संचित किये गये पुण्योंसे ही विष्णुभक्त पति प्राप्त होता है। कलियुगमे विष्णुभक्त दुर्लभ हैं, हरिभक्ति तो सदा ही दुर्लभ रही है। कलियुगमे हरिकी कथा दुर्लभ है। हरिके भक्तोंकी सत्संगति और भी दुर्लभ है। कलियुगमे शेषाचलपर विराजमान रहनेवाले भगवान् विष्णुका दर्शन दुर्लभ है। विष्णुपदी कालिन्दी नदीके तटपर विराजमान रहनेवाले भगवान् रंगनाथका दर्शन करना बडा ही दुर्लभ है। काञ्चीक्षेत्रमे जाकर भगवान् वरदराजकी सेवा करना और दर्शन प्राप्त करना भी सुलभ नहीं है। रामसेतुका दर्शन सरल नहीं है। श्रेष्ठ जनोंने कहा है कि भीमा नदीके तटपर रहनेवाले विष्णुका दर्शन प्राप्त करना सुलभ नहीं है और न तो रेवा नदीके तटपर स्थित विष्णुका एवं गयाक्षेत्रमे विष्णुपादका दर्शन ही सुलभ है। मृत्युलोकमे रहनेवाले लोगोंके लिये बदरीवनमे भगवान् विष्णुका दर्शन पाना भी सुलभ नहीं है। श्रीलक्ष्मीनारायणकी निवासभूमि शेषाचलपर रहनेवाले तपस्वी भी दुर्लभ हैं। प्रयाग नामक तीर्थमे नित्य निवास करनेवाले भगवान् माधवका दर्शन करना मनुष्योंके लिये सरल नहीं है। इसीलिये हे तात! कृष्णसे अतिरिक्त किसी दूसरेको पतिरूपमे वरण करनेकी मेरी इच्छा नहीं है।' अपने पितासे ऐसा कहकर वह कुमारी शेषाचल पर्वतकी ओर चली गयी।

कपिल नामक महातीर्थमे पहुँचकर उसने वहाँ विराजमान भगवान् श्रीनिवासका दर्शन कर उन्हे प्रणाम किया। तीन दिनतक सम्यक् रूपसे उनकी सेवा करके वह पापविनाशन नामक तीर्थमे चली गयी। विवाहकी इच्छासे उस तीर्थमे स्नान करके उस तीर्थके उत्तर दिशामे दो कोसके विस्तारमे फैले हुए गुफारूपी एकान्त स्थानमे जाकर भगवान् नारायणके ध्यानमें-तपश्चर्यामे स्थित हो गयी और उसने अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की।

उस कुमारीने स्तुति करते हुए कहा—'हे देव! आप ही मेरे माता पिता, पति सखा, पुत्र गुरु, श्रेष्ठ स्वजन, मित्र और प्राणवल्लभ हैं। हे प्रभो! ये सभी सांसारिक पिता आदि स्वजन तो निमित्तमात्रसे अपने बने है, पर आप तो बिना निमित्त ही सदासे मेरे सब कुछ हैं। इसीलिये हे मुरारे! मैं आपकी ही भार्या होना चाहती हूँ इसी कारण मैंने यह कौमार्यव्रत धारण किया है। हे श्रीनिवास! आपको मेरा नमस्कार है। आप मुझपर प्रसन्न हो।

उसकी पराभक्तिसे प्रसन्न हो करुणासागर भगवान् श्रीनिवासने प्रकट होकर कहा—'हे कुमारिके! हे सुभगे! कृष्णावतारमे मैं तुम्हारा पति होऊँगा।' ऐसा वर देकर भगवान् वहीपर अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर कव्यवाहकी पुत्री वह कुमारी भी योगिक रीतिसे वहीं अपना शरीर छोडकर कुम्भकके घरमे नीला नामसे उत्पन्न हुई। हे

पक्षिराज! दितिसे उत्पन्न दैत्योंका मार करके मैंने नीला नामकी लक्ष्मीको प्राप्त किया। तत्पश्चात् नग्नजित् नामक राजाके घरमें उस कुमारीने जन्म लिया। नग्नजित् ही पूर्वमें *कव्यवाह थे और उनकी पुत्री कुमारी भी नीला नामसे* विख्यात हुई थी। उसके स्वयंवरमें मैंने देवताओं और मनुष्योंके द्वारा न जीते जाने योग्य सात दुर्दान्त बैलोंके साथ अनेक राजाओंको जीतकर बंदी बनायी गयी नीलाको भार्यारूपमें प्राप्त किया। (अध्याय १९)

भद्रा तथा मित्रविन्दाद्वारा श्रीकृष्णकी भार्या बननेकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! पूर्वजन्ममें विष्णुपत्नीने ही नलकी पुत्रीके रूपमें भद्रा नामसे शरीर धारण किया था। जो परम विष्णुभक्त थी, वह सभी प्रकारके भद्र गुणोंसे सम्पन्न थी, इसी कारण उसका भद्रा यह नाम पड़ा था। वह कन्या भगवान् कृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये नित्य उन्हें प्रणाम निवेदन और उनकी *प्रदक्षिणा किया करती थी। कन्याभावमें स्थित अपनी भद्रा* नामक पुत्रीकी वैसी कठिन तपस्या देखकर पिता नलने कहा कि 'हे नन्दिनी! पुत्री! भद्रे! किसलिये तुम अपने शरीरको कष्ट दे रही हो, ऐसा करनेसे तुम्हें कौन-सा फल मिल जायगा, उसे मुझे बताओ।'

भद्रा बोली—हे तात! आप मेरे पिता हैं, भला मैं आपको क्या बता सकती हूँ। भगवान्‌को नमस्कार आदि क्रियाओंके फलको बतानेमें कौन समर्थ हो सकता है? फिर भी आप सुनें—'हे तात! करुणानिधान भगवान् विष्णु ही सदा मेरे स्वामी रहे हैं। मैं हरिके दासोंकी भी दासी हूँ।' हे विष्णो! मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ। मेरी रक्षा करें, ऐसा कहती हुई भद्राने दण्डवत्-रूपमें भूमिपर गिरकर अपने स्वामी नारायणको प्रणाम किया। पुनः भद्रा कहने लगी। हे तात! भगवान् विष्णुको नित्य-निरन्तर प्रणाम करना चाहिये। जिस प्रकार वन्दना करनेसे वे देव प्रसन्न होते हैं, उस प्रकार वे पूजन करनेसे प्रसन्न नहीं होते। हे तात! नामस्मरण अथवा प्रणाम-निवेदन तथा वन्दन करनेसे जिस प्रकारसे पापसे मुक्ति हो जाती है, उस प्रकारसे अन्य साधनोंसे नहीं होता।

हे तात! भगवान् विष्णुको प्रणाम निवेदन किये बिना जो लोग शरीरका पोषण करते हैं, उनका वह शरीर-पोषण *व्यर्थ ही है। ऐसे लोगोंको नरकमें महान् दुःख भोगना* पड़ता है। जो देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा नहीं करता, उसे यमराज अत्यन्त त्रास देते हैं। जिनकी जिह्वा 'हरि' 'कृष्ण' इस प्रकारसे भगवान्‌के मङ्गलमय नामोंका नित्य कीर्तन नहीं करती है, ज्ञानीजनोंद्वारा उस जिह्वाको व्यर्थ ही कहा गया है।

हे तात! *काशीमें निवास करने अथवा प्रयागमें मरनेसे क्या लाभ! अथवा युद्धमें वीरगति प्राप्त करनेसे अथवा यज्ञादिका अनुष्ठान करनेसे क्या लाभ है! समस्त तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे अथवा शास्त्रके अध्ययनसे किस प्रयोजनकी सिद्धि हो सकती है? जिनकी जिह्वाके अग्रभागपर हरिनाम नहीं है, जिनके शरीरसे भगवान् विष्णुको नमन नहीं किया गया है, जिनके पैरोंने भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा नहीं की है, ऐसे लोगोंका सब कुछ करना व्यर्थ ही है? ऐसा महान् लोगोंका कहना है।'*[1] अतः हे तात! भगवान् विष्णुको नमन करना और उन्हें निरन्तर स्मरण रखना ही प्राणीका वास्तविक कार्य है। निश्चित ही यह मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, किंतु दुर्लभ होनेपर भी वैसे ही नश्वर है, जैसे जलमें स्थित बुलबुला होता है। हे तात! इस नश्वर शरीरका कोई भरोसा नहीं है, अतः जो समय प्राप्त है उसमें भगवान्‌का नमस्कार, वन्दन आदि करते रहना चाहिये। हे पिताजी! आप भी ऐसा ही करें।

हे पक्षिराज! पुत्रीके ऐसे निर्मल वचनोंको सुनकर श्रद्धासमन्वित हो पिता नलने भगवान् विष्णुको नमस्कार किया और यथाशक्ति उनकी प्रदक्षिणा की। तदनन्तर पुनः वह भद्रा भगवान्‌को प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्हींके ध्यानमें निमग्न हो गयी, इसीमें उसका नश्वर शरीर भी कब शान्त हो गया, इसका उसे भान ही नहीं रहा।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिश्रेष्ठ! पुनः मेरे पिता वसुदेवकी

[1] काशीनिवासेन च किं प्रयोजनं किं वा प्रयागे मरणेन तात॥
किं वा रणाग्रे मरणेन सौख्यं किं वा मखादेः समनुष्ठितेन। समस्ततीर्थेष्वटनेन किं किमधीतशास्त्रेण सुताऽऽप्यबुद्ध्या॥
यस्य जिह्वाग्रे हरिनाम नास्ति यस्य गात्रैर्नमनं नापि विष्णोः। यस्य पद्भ्यां नास्ति हरेः प्रदक्षिणं तस्य सर्वं व्यर्थमाहुर्महान्तः॥ (२०।१०—१२)

बहिनके उदरसे कैकेयी इस नामसे उस भद्रा नामवाली कन्याने जन्म लिया। भद्र गुणास युक्त होनेके कारण वह उस जन्ममे भी भद्रा नामसे ही प्रसिद्ध हुई और उसे मैंने प्राप्त किया।

श्रीकृष्णने गरुडसे पुन कहा—हे गरुड! जिस प्रकार मित्रविन्दाका विवाह हुआ अब म उसे बताता हूँ। मित्रविन्दा हरिकी सदैव प्रिय रही है। पूर्वजन्मम हरिको मित्ररूपम प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली वह देवी सदा उनके विषयम चिन्तन करती रहती थी कि किस उपायसे भगवान् विष्णुको प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि उन्हे प्राप्त करनेके बहुत-से उपाय ह, पर श्रेष्ठतम उपाय कौन हो सकता है वह एसा विचार करने लगी। उसने निश्चय किया कि सभी साधनोमे श्रेष्ठ साधन है 'सात्त्विक पुराणाम वर्णित भगवान्‌की कथाओका श्रवण करना'। जो व्यक्ति भगवान् विष्णुकी कथाका श्रवण नहीं करता उसका जन्म लेना व्यर्थ है जिसने भगवान् विष्णुके गुणानुवादका कीर्तन करनेवाले भागवत पुराणको नही सुना उसका जीवन व्यर्थ है इसलिये सदा हरिकथाका श्रवण करना चाहिय।

हे तात! जहाँ भगवान् विष्णुसे सम्बन्धित कथारूपी महानदी प्रवाहित नहीं होती तथा जहाँ नारायणके चरणाम्बुजाका आश्रय नहीं हे और जहाँ मुखसे भगवान् विष्णुका नामस्मरण नहीं हाता, वहाँ किसी प्रकारसे क्षणमात्र भी नहीं रहना चाहिये। 'जिस गाँवम भागवतशास्त्रकी चर्चा नहीं होती और न जहाँ भागवतक रसको जाननेवाले ही होते हैं, साथ ही जिस घरमे भगवान् विष्णुके द्वारा कही गयी गीताके अर्थोका निष्कर्ष जाननेवाले नहीं है अथवा जिस ग्रामम भगवान्‌की सहस्रनामावली (विष्णुसहस्रनाम)-की चर्चा नहीं होती अथवा जहाँ उन दोना (गीता और विष्णुसहस्रनाम)-क रसाका ज्ञान रखनेवाले नहीं हैं' वहाँ क्षणमात्र भी किसी प्रकारसे नहीं रहना चाहिय अथवा मनुष्यके जीवनमे जिस दिन भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाका श्रवण नहीं होता है, उस दिन उस प्राणीकी आयु व्यर्थ हो जाती है—

यस्मिन् ग्रामे भागवत न शास्त्र न वर्तते भागवता रसज्ञ ।
यस्मिन् गृहे नास्ति गीतार्थसार यस्मिन् ग्रामे नामसहस्रक वा ॥
तयो रसज्ञा यत्र न सन्ति तत्र न सवसत् क्षणमात्र कथचित्।
यस्मिन् दिने दिव्यकथा च विष्णोर्न वास्ति जन्तोस्तस्य चायुर्वृथैव ॥

(२०।२९—३०)

रसपारखी विद्वान् स्वर्णादिसे निर्मित आभूषणोसे विभूपित कानाको सुन्दर नहीं कहते, भगवान् विष्णुकी मङ्गलमयी कथाआसे पूरित कानाको ही सुन्दर बताते हैं। इस कारणसे जो लोग सर्वदा भागवतके अर्थतत्त्वका श्रवण करते हैं और निरन्तर उसका वाचन करते हैं, उन्हींका जन्म सफल है ऐसा श्रष्ठ जनोका कहना है। ससारमे हरि सर्वत्र व्याप्त हैं, वे ही नित्य हैं, अन्तर्यामी हैं ऐसा समझत हुए जिनके द्वारा सदा भलीभाँति प्रभुका चिन्तन किया जाता हे, उनके योगक्षेमका वहन वे विष्णु स्वय ही करते हैं एसे भक्तोका [कभी] अशुभ नहीं होता हे।

भगवान् हरि शुभ-अशुभ फल कर्मानुसार ही देते ह, इसलिये धनप्राप्तिके लिये काई यत्न नहीं करना चाहिय। प्रयत्न तो हरितत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही करना उचित है।

इसी कारण हे तात! मै भी सदेव भगवान्‌की सत्कथाआका श्रवण किया करती हूँ। पूर्वकालम मैंन भगवान्‌की कथाका श्रवण किया था ओर फिर शरीरका परित्यागकर आपकी पुत्रीके रूपमे पृथ्वीपर मैने जन्म लिया है।

श्रीकृष्ण बोले—ह पक्षिन्! उस मित्रविन्दाने पृथ्वीपर रहनेके लिये वसुदेवकी बहिनके उदरम सुमित्रा नामसे जन्म लिया। भागवतकथाके श्रवणसे ही वह भगवान् विष्णुको मित्रके रूपम प्राप्त कर सकी हे। इसी कारण उसका मित्रविन्दा यह नाम पडा हे। हे खगराज! स्वयवरमे अनेक राजाआक मध्य भामिनी उस मित्रविन्दाने मरे गलेम जयमाला डाल दी और मैं समस्त राजाआको परास्त कर मित्रविन्दाको साथ लेकर अपनी पुरी आ गया। (अध्याय २०)

सूर्यपुत्री कालिन्दीकी कथा

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर! अव मैं कालिन्दीकी उत्पत्तिके विषयम बता रहा हूँ, आप सुन—विवस्वान् नामके सूर्यकी कालिन्दी नामवाली एक पुत्री उत्पन्न हुई। हे पक्षिराज! उस कालिन्दीको यमुना तथा यमानुजाके नामस भी कहा गया है। भगवान् कृष्णकी पत्नी बननेकी इच्छासे उसन विशिष्ट तप किया था। पूर्वजन्मम अर्जित

पापाका अनुताप अर्थात् उनका शमन करना तप है। ह पक्षिराज। अब आप अनुतापके विषयमे सुने—पूर्वजन्ममे जिसने भगवान् मुकुन्दके दिव्य मन्त्रोका जप नहीं किया, हरिनामामृतका स्मरण नहीं किया, भगवान्‌के पादारविन्दोकी वन्दना नहीं की, हरिके नैवेद्यको ग्रहण नहीं किया, सुन्दर गन्धसे युक्त पुष्पाको मुरारिको अर्पित नहीं किया भगवान्‌की भक्ति नहीं की, ऐसा सोच-साचकर मनमे जो पश्चात्ताप होता है दु ख होता है वह कहन लगता है—हे मुकुन्द! मैं इस पुत्र-मित्र-कलत्रादिसे युक्त ससारमे अत्यन्त सतप्त हो रहा हूँ, हे भगवन्! कब मैं आपक मुखारविन्दका दर्शन करूँगा मुझसे आपकी सेवा-पूजा नहीं हुई है, मेरा उद्धार कैसे होगा? हे हर। में महान् पापी हूँ कब मुझे आपके दर्शन हागे! हे प्रभो! मैंने अनन्त जन्माम सासारिक सम्बन्धाके द्वारा अणुमात्र भी सुख नहीं प्राप्त किया और न तो मैं आपकी सेवा ही कर सका हूँ आर न आपक भक्तजनाकी सगति ही कर सका हूँ, हे मुरारे! मेरा शरीर कष्टसे जल रहा है। एसा अगतिक मैं अब आप मुकुन्दकी शरण छाडकर और किसकी शरणमे जाऊँ? हे भगवन्! मुझपर दया कर मेरी रक्षा करे।'

श्रीकृष्णन पुन कहा—हे पक्षिराज! इस प्रकारका पश्चात्ताप करना ही अनुताप हे। इसका नाम तप भी है। हे पक्षिराज! सूर्यपुत्री उस कालिन्दीने भी इसी प्रकारका अनुताप करते हुए यमुनाक तटपर तपस्या की ओर श्रीहरिके ध्यानमे वह निमग्न हो गयी।

तत्पश्चात् हे पक्षिराज! एक दिन मैं अर्जुनके साथ यमुनाके तटपर गया। तप करती हुई उसका वहाँ देखकर

मैंने अपने मित्र अर्जुनसे कहा कि हे पार्थ! आप शीघ्र ही उस कन्याके समीपम जाकर पूछ कि 'वह किस कारणसे तप कर रही है' मर ऐसा कहनपर अर्जुनने वेसा ही किया और कालिन्दीका सब वृत्तान्त भी बता दिया। तत्पश्चात् मैंने शुभ मुहूर्त आनेपर सम्यक् रीतिसे वहाँ जाकर उस कालिन्दीका पाणिग्रहण किया। हे पक्षिश्रेष्ठ! मुझ पूर्णानन्दको किस सुखकी अभिलाषा है? फिर भी उसपर अनुग्रह करनेकी दृष्टिसे ही मैंने उस कालिन्दीका पाणिग्रहण किया है। (अध्याय २१)

लक्ष्मणाद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त करनेकी कथा

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! जो ये लक्ष्मणा हैं पूर्व-सृष्टिम वेदाके पारगत अग्निदेवकी पुत्री थीं। सभी प्रकारके शुभ लक्षणोसे सम्पन्न हानेके कारण सुलक्ष्मणा इस नामसे इनकी प्रसिद्धि हुई। जिस प्रकार लक्ष्मी सभी लक्षणासे पूर्ण हैं जैसे भगवान् विष्णु सभी लक्षणासे परिपूर्ण हैं उसी प्रकार लक्ष्मणा भी सभी गुणासे पूर्ण हैं। वह सुलक्ष्मणा श्रीकृष्णको पतिरूपमे प्राप्त करनेके लिये नित्य विविध उपचारास उनकी पूजा किया करती थी, एक बार उसने अपने पिताजीम कहा—ह तात! व हरि सर्वत्र व्याप्त हैं सबमें स्थित हैं और सर्वान्तयामी हैं। दान आदि जो भी शुभ कर्म किया जाता है उन्हींका उद्दश्य करक करना चाहिय। उनकी सतुष्टिके लिये उन्ह भक्तिपूर्वक विविध उपचाराका समर्पित करना चाहिये। भक्तिपूर्वक समर्पित किये गये अन्न-पानादि पदार्थोको वे मुकुन्द निश्चित ही ग्रहण करते हैं।

गृहस्थका चाहिये कि वह सर्वप्रथम भोग्य पदार्थोंका समर्पण भगवान् हरिक लिये अवश्य करे। जो गृहस्थ ऐसा करता है वह गृहस्थ धन्य है। अन्यथा उसका जीवन व्यर्थ है। माधव नामसे अभिहित वे भगवान् हरि इस प्रकारसे हमारे द्वारा समर्पित अन्नादिका ग्रहण करते हैं। ऐसा समझकर उन्ह पदार्थ अर्पित करना चाहिये। इस प्रकारस दिय गय अन्नादिक नैवेद्यसे भगवान् विष्णु अत्यन्त सतुष्ट

होते हैं। इसके विपरीत भावसे दिये गये पदार्थको वे ग्रहण नहीं करते, उनके लिये वह सब व्यर्थ ही है। हे सुपर्ण! वासुदेव हरि हमारे घरमे नित्य निवास करते हुए प्रसन्न रहते हैं। ऐसा समझकर अपने घरको देवालय मानकर सर्वदा अलकृत रखना चाहिये। हे तात! अनन्तरूपी ऐसे वे हरि अनन्त रूपासे सबमे स्थित रहते हैं।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! अपने पितासे इस प्रकार कहकर वह उन भगवान्को पतिरूपमे वरण करनेके लिये अनन्य-मनसे उनकी सपर्याम लग गयी और की जा रही मेरी इस सेवासे भगवान् हरि ही मेरे पति हो ऐसा चिन्तन करती हुई उस लक्ष्मणाने अपने शरीरका परित्याग कर दिया और पुन मद्रदेशके राजाकी पुत्रीके रूपमे जन्म लिया। हे पक्षिश्रेष्ठ! तदनन्तर उस लक्ष्मणाके स्वयवरमें लक्ष्यका भेदन करके मैंने ही वहाँ उपस्थित राजाओका मान-मर्दन कर उसका पाणिग्रहण किया और अपनी पुरीम आकर उस देवीके साथ मैं निवास करने लगा। (अध्याय २२)

सोमपुत्री जाम्बवतीकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिश्रेष्ठ गरुड! इस सृष्टिसे पूर्व-सृष्टिकी बात है। जाम्बवती श्रीसामकी पुत्री थी। श्रीसोम श्रीविष्णुकी सेवामे लगे रहते थे। उनकी पुत्री जाम्बवती भी पिताका अनुसरण करती थी। वह नित्य पुराण सुनती, प्रतिक्षण भगवान्का स्मरण करती उनके चरणाकी वन्दना करती और उनकी सेवामे लगी रहती। धीरे-धीरे जाम्बवतीके अन्त करणमे ससारकी नश्वरता घर करती चली गयी। वह समझ गयी कि सुख-दु ख मायाक खेल हैं। इनसे ऊपर उठकर वह भगवत्प्रेमम आनन्द-विभोर रहने लगी। उसकी वाणीसे भगवान्के नाम और गुणका कथन होता रहता। आँखें प्रभुकी प्रतीक्षामें रत रहतीं कान उनकी मीठी बात सुननेके लिये उत्सुक रहते हाथ अर्चनाके सम्भारम लगे रहते और पैर उनकी प्रदक्षिणामें व्यस्त रहते। हृदयमे एक ही कामना रह गयी थी कि मैं भगवान्के चरणोकी दासी कैसे बन जाऊँ। वह सारा कार्य भगवान्के लिये करती थी और सम्पन्न होनेपर उन्हे भगवान्को ही समर्पित कर देती थी। ब्राह्मणा और सताकी पूजाम उसे रस मिलता था।

एक दिन श्रीसोमने तीर्थयात्राका विचार किया। इस समाचारसे जाम्बवती फूली न समायी। वह पहलेसे ही उन स्थलोको देखना चाहती थी, जहाँ भगवान्ने अपनी लीलाएँ की हैं और जहाँ वे अदृश्य-रूपस आज भी विराजते हैं। भगवान् श्रीनिवासमे जाम्बवतीका मधुर भाव था। शेषाचलपर अब प्रियतमके दर्शन हा जायँगे, इस आशासे उसका रोम-रोम खिल उठा। पिताका भी भगवान्म पूरा लगाव था। दोनाकी उत्सुकता अनिर्वचनीय थी। यात्रा प्रारम्भ हा गयी। पिता-पुत्रीके पग बिना बढाय बढ रहे थे। धीरे-धीरे कपिल नामक तीर्थ आ गया। सद्गुरु जैगीषव्यकी आज्ञासे पिताने मुण्डन कराया स्नान किया और तीर्थ-श्राद्ध किया। फिर विविध प्रकारके दान दिय। इसक बाद सद्गुरुन वकटाद्रिका महत्त्व सुनाया। इससे उन यात्रियोके मनमे श्रद्धाका अतिरेक हो गया। वे लोग बहुत प्रेमसे इस पवित्र पर्वतपर चढने लगे।

सद्गुरु जैगीषव्य नारद, प्रह्लाद, पराशर, पुण्डरीक आदि महाभागवताकी कथा सुनाते रहे। नामके रसका आस्वादन करते हुए लोग चल रहे थे। सच पूछा जाय तो वे चल नहीं रहे थे, अपितु आनन्द-वापीम डूब-उतरा रहे थे और तरगे स्वय उन्हे आगे पहुँचाती जाती थीं। जाम्बवती तो मानो आनन्द-वारिधिम उतराती चली जा रही थी।

चढते-चढते एक मनोरम तीर्थ आया। जाम्बवतीने पूछा—'गुरुदेव! यह कौन-सा तीर्थ है? वह कौन भाग्यशाली है, जिसपर भगवान्ने यहाँ अनुग्रह किया है।' इस प्रश्नसे जैगीषव्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्हाने कहा—'बेटी! इस तीर्थका नाम नारसिह तीर्थ है। भक्तराज प्रह्लाद प्रेमवश भगवान् श्रीनिवासके दर्शनोके लिये यहाँ पधारे थे। उनके साथ दैत्योके कुमार भी थे। वे यहाँ भगवान्के दर्शनोके लिये उत्कण्ठित हो गये थे। उन्होने प्रह्लादसे कहा था—'मित्र! जब नृसिह-रूप भगवान् श्रीनिवास कण-कणमे व्याप्त हैं, तब इस जलमे क्यो नहीं दिखायी देते? कृपाकर उनके दर्शन करा दीजिये।'

भक्तराज प्रह्लादने अपने भगवत्प्रेमी मित्राको बहुत आदर दिया। इसके बाद उन्हाने भगवान्से प्रार्थना की कि 'वे सबको दर्शन दे दे।' भगवान्ने सतराजकी प्रार्थना स्वीकार की। दैत्यकुमार दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गये और भगवान् 'इस जलमे स्नान करनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होगी'—ऐसा वरदान देकर प्रह्लाद तथा दैत्यकुमारोके साथ सदाके लिये इस तीर्थमे बस गये। उनका यह वास आज भी वैसे ही है और आगे भी वैसा ही रहेगा। मध्याह्नके बाद आज भी चारो ओर जय-जयके शब्द सुनायी पडते हैं।

इस इतिहासको सुनकर सबको रोमाञ्च हो आया।

सभीको भगवान् श्रीनिवासने दर्शन दिया। जाम्बवतीके मधुर भावके अनुरूप भगवान्ने हजारों कामदेवके समान अपना कमनीय रूप दिखाया। देखते ही जाम्बवतीका प्रत्येक अङ्ग शिथिल हो गया, रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे प्रेमके अश्रु ढलने लगे। किसी प्रकार टूटे-फूटे शब्दोंमें जाम्बवतीने कहा—'नाथ! श्रीचरणोंमें रख लो।'

अबतक भगवान्ने अपने सौन्दर्य-सुधाका ही पान कराया था अब उन्होंने अपने वचन-सुधाका पान कराते हुए कहा—'जाम्बवति! मैं तुम्हें वेंकटेश-मन्त्र बताता हूँ। तुम यहीं रहकर इसका जप करो।' जाम्बवतीको लगा कि उसके कानोंमें अमृत उँडेल दिया गया हो। वह आनन्दसे बेसुध होने लगी। उसे न अपना पता था, न परायेका। जन्मकी साथिन लाज कहाँ चली गयी, इसका भी उसे पता न था। आनन्दावेशमें वह नाचने लगी। जाम्बवतीके उस नृत्यसे सारा ब्रह्माण्ड रस-विभोर हो उठा। स्वर्गसे अप्सराएँ उतर आयीं और जाम्बवतीके अगल-बगलमें नाचने लगीं। देवताओंने दुंदुभी बजायी और आकाशसे पुष्पकी वृष्टि की।

इसी प्रकार भगवान्के प्रेममें आह्लादित होते हुए जाम्बवतीकी तीर्थयात्रा चलती रही। गुरु जैगीषव्यने भगवान् वेंकटेशका माहात्म्य उसे सुनाया। स्वामिपुष्करिणी तीर्थ जहाँ श्रीनिवास सदा विराजमान रहते हैं[1]-का इतिहास बतलाया। जिसे सुनकर वह आनन्दसे भर गयी श्रीनिवासके प्रति उसका अनुराग बढ़ता ही गया। गुरुद्वारा बताये गये वेंकटाद्रिके सभी तीर्थोंका जाम्बवतीने बड़े ही भावसे सेवन किया। अन्तमें वह ऋषितीर्थ पहुँची। सप्तर्षियोंसे सेवित उस पुण्य-पवित्र ऋषितीर्थमें उसका मन रम गया वह वहीं रुक गयी। दीर्घ समयतक उसने वहाँ तपका अनुष्ठान किया।

हे पक्षिराज! वह कन्या-जाम्बवती मेरे कृष्णावतार-धारण करनेतक वहाँ तपस्यामें अनुरक्त रही। उसका शरीर अत्यन्त पवित्र हो चुका था। अन्तमें उसने मुझे पतिरूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे योगधारणाद्वारा अपने उस शरीरका परित्याग कर दिया और वह भक्तराज जाम्बवान्के घरमें पुनः उत्पन्न हुई। वहाँ उसका नाम भी जाम्बवती हो पड़ा। भक्तिपरायणा जाम्बवती पिताके घरमें धीरे-धीरे बढ़ने लगी पूर्व-जन्मके समान ही इस जन्ममें भी वह एकमात्र हरिनिष्ठ थी। उसके पिता जाम्बवान् भी महान् भक्त थे। उन्होंने अपनी पुत्री जाम्बवतीको पत्नीरूपमें मुझे समर्पित कर अपनेको धन्य माना।

जाम्बवतीने भगवान् श्रीकृष्णको सदाके लिये अपना पति बना लिया। उसकी भक्ति सफल हो गयी। त्रिभुवनके नाथने विधिके साथ जाम्बवतीसे विवाह किया। सब ओर आनन्द-ही-आनन्द छा गया।

जाम्बवतीके विवाहकी पवित्र कथा बताकर श्रीकृष्णने पक्षिराज गरुडको उन कृपालु भगवान् श्रीनिवासकी भक्तिका विस्तारसे माहात्म्य बतलाया और कहा कि हे गरुडजी! भगवान्को कभी भूलना नहीं चाहिये, निरन्तर उनके हरि आदि मङ्गलमय नामोंका उच्चारण करते रहना चाहिये—

हरिं हरिं प्रवदेत् सर्वदैव। (२९।६४)

कल्याणकामी मनुष्यको चाहिये कि वह अपने शास्त्रविहित कर्मोंको करते हुए प्रत्येक समय वासुदेव हरिका स्मरण करता रहे—

पूर्तिर्यदा क्रियते कर्मणा च
सम्यक् स्मरेद्वासुदेवं हरिं च॥
(२९।६८)

ऐसा करनेसे नारायण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं इसलिये हे गरुडजी! भगवान् हरिको प्रिय लगनेवाले कार्योंमें ही सदा व्यक्तिको अनुराग रखना चाहिये—

हरिप्रीतिकरे धर्मे प्रीतियुक्तो भवेत् सदा॥
(२९।७०)
(अध्याय २३-२९)

॥ गरुडपुराणान्तर्गत ब्रह्मकाण्ड सम्पूर्ण॥

॥ गरुडपुराण सम्पूर्ण॥

---

१ स्वामिपुष्करिण्यामध्ये श्रीनिवासोऽस्ति सर्वदा॥ (२६।३८)

गरुडपुराण—सिंहावलोकन

[विशेषाङ्क पृष्ठ-संख्या १६ से आगे]

मृत्युका स्वरूप

हे पक्षीन्द्र! अब मृत्युके स्वरूपको सुनो। मृत्यु ही काल है। मृत्युका समय आ जानेपर जीवात्मासे प्राण और देहका वियोग हो जाता है। मृत्यु अपने समयपर आती है। मृत्यु आनेके कुछ समय-पूर्व प्राय प्राणीके शरीरम कोई रोग उत्पन्न हो जाता है, इन्द्रियाँ विकल हो जाती हैं, प्राणीको एक साथ करोडा बिच्छुआके काटनेका अनुभव हो तो उससे मृत्युजनित पीडाका अनुमान करना चाहिये। उसके बाद ही चेतनता समाप्त हो जाती है, जडता आ जाती है। तदनन्तर समीप आकर खडे यमदूत उसके प्राणाको बलात् अपनी ओर खींचना शुरू कर देते हैं। उस समय प्राण कण्ठम आ जाते हैं। उसके बाद शरीरके भीतर विद्यमान रहनेवाला वह अङ्गुष्ठ-परिमाणका पुरुष अपने घरको देखता हुआ यमदूताके द्वारा परलोक ले जाया जाता है।

परतु भक्तजनो एव भोगमे अनासक्त जनाकी अधोगतिका निरोध करनेवाला वायु ऊर्ध्वगतिवाला हो जाता है। जो लोग झूठ नहीं बोलते हैं, जो प्रीतिका भेदन नहीं करते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, जो काम, ईर्ष्या और द्वेषके कारण स्वधर्मका परित्याग नहीं करते, सदाचारी और सौम्य होते हैं, वे सब निश्चित ही सुखपूर्वक मरते हैं।

जो झूठी गवाही करनेवाले, असत्यभाषी, विश्वासघाती और वेदनिन्दक हैं, वे मूर्च्छारूपी मृत्युको प्राप्त करते हैं। उनका ले जानेके लिये लाठी एव मुद्गरसे युक्त, दुर्गन्धसे भरपूर एव भयभीत करनेवाले दुरात्मा यमदूत आते हैं। उसके बाद वह प्राणी वेदनासे सत्रस्त होकर अपने शरीरका परित्याग करता है और उसके बाद ही वह सबके लिये अस्पृश्य एव घृणायोग्य हो जाता है। हे गरुड! मैंने यथाप्रसग मृत्युका स्वरूप सुना दिया।

भगवान् गरुडसे कहते हैं कि पूर्वजन्मम किये गये विचित्र प्रकारके भोगाको भोगता हुआ प्राणी इस जगत्मे विभिन्न योनियोमे भ्रमण करता है। देव असुर और यक्ष आदि योनियाँ प्राणीके लिये सुखप्रदायिनी हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियाँ अत्यन्त दु खदायिनी हैं। इन योनियाम कर्मफलके तारतम्यसे प्राणीका जन्म होता है। इसी प्रसगमे भगवान्ने कर्मविपाकका वर्णन करत हुए प्राणीके विभिन्न पापाके परिणामस्वरूप जिन-जिन यानियोम जन्म होता है, उसका विस्तृत वर्णन किया है।

नरकोका वर्णन

गरुडके जिज्ञासा करनेपर भगवान्ने मुख्य-मुख्य नरकोका वर्णन किया, जिसमे 'रौरव' नामक नरकको प्रधान बताया। झूठी गवाही देनेवाला और झूठ बोलनेवाला व्यक्ति रौरव नरकमे जाता है। इसके साथ ही महारौरव, अतिशीत, निकृन्तन, अप्रतिष्ठ, असिपत्रवन, तप्तकुम्भ आदि प्रधान नरकाका भी वर्णन किया। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से नरकोका वर्णन किया।

ये सभी नरक यमके राज्यम स्थित हैं। जो मनुष्य गौकी हत्या, भ्रूणहत्या और आग लगानेका दुष्कर्म करता है, वह 'रोध' नामक नरकमे गिरता है। जो ब्रह्मघाती, मद्यपी तथा सोनेकी चोरी करनेवाला है, वह 'सूकर' नामके नरकमे गिरता है। क्षत्रिय और वैश्यकी हत्या करनेवाला 'ताल' नामक नरकमे जाता है।

इन नरकके लोकाके अतिरिक्त भी सैकडो नरक हैं। जिनमे पहुँचकर पापी प्रतिदिन पकता है, जलता है, गलता है, विदीर्ण होता है, चूर्ण किया जाता है, गीला होता है, क्वाथ बनाया जाता है, जलाया जाता है और कहीं वायुसे प्रताडित किया जाता है। ऐसे नरकोमे एक दिन सौ वर्षके समान होता है। इन सभी नरकामे भोग भोगनेके बाद पापी तिर्यक्-योनिमे जाता है। तत्पश्चात् उसे कृमि, कीट, पतग, स्थावर तथा एक खुरवाले गधेकी योनि प्राप्त होती है। तदनन्तर मनुष्य जगली हाथी आदिकी यानियाम जाकर गौकी योनिम पहुँचता है। गधा, घोडा, खच्चर, गौर-मृग, शरभ और चमरी—य छ योनियाँ एक खुरवाली होती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-सी पापाचार-योनियाँ भी हैं, जिनमे जीवात्माको कष्ट भोगना पडता है। उन सभी यानियाको पारकर प्राणी मनुष्य-यानिम आता है और कुबडा,

कुत्सित, वामन, चाण्डाल तथा पुल्कस आदि नर-योनियाम जाता है। अवशिष्ट पाप-पुण्यसे समन्वित होकर जीव बार-बार गर्भमे जाते हैं और मृत्युको प्राप्त करते हैं। उन सभी पापाक समाप्त हो जानेके बाद प्राणीको शूद्र वैश्य तथा क्षत्रिय आदिकी आरोहिणी-योनि प्राप्त होती है। कभी-कभी वह सत्कर्मसे ब्राह्मण देव और इन्द्रत्वके पदपर भी पहुँच जाता है।

हे गरुड। यमद्वारा निर्दिष्ट योनिम पुण्य गति प्राप्त करनेमे जो प्राणी सफल हो जाते हैं, वे दिव्य देह धारण करके विमानम आरोहण कर स्वर्गलोकको जाते हैं। पुण्यकी समाप्तिक पश्चात् जब वे वहाँसे पुन पृथ्वीपर आते हैं तो वे राजा अथवा महात्माओके घरमे जन्म लेकर सदाचारका पालन करते हैं तथा समस्त भोगोको प्राप्त करके पुन स्वर्गको प्राप्त करते हैं अन्यथा पहलेक समान आरोहिणी-योनिम जन्म लेकर दु ख भोगते हैं।

चौरासी लाख योनियाँ हैं। उद्भिज्ज (पृथ्वीमे अकुरित होनेवाली वनस्पतियाँ) स्वेदज (पसीनसे जन्म लेनेवाले जुएँ और लीख आदि कीट), अण्डज (पक्षी) तथा जरायुज (मनुष्य)-म यह सम्पूर्ण सृष्टि विभक्त है।

मृत्युके पूर्व तथा बादमे किये जानेवाले कर्म

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे गरुड। जानमे या अनजानमे मनुष्य जो भी पाप करते हैं, उन पापोसे शुद्धिके लिये उन्हे प्रायश्चित्त करना चाहिये। शास्त्राम दशविध स्नान तथा कृच्छ्र आदि चान्द्रायण व्रत अथवा गोदान आदिकी प्रक्रिया प्रायश्चित्तरूपम बतायी गयी है। यदि मनुष्य उनम अक्षमताके कारण सफल न हो रहा हो तो आधा या चौथाई कुछ-न-कुछ प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये। तत्पश्चात् दस महादान—गौ भूमि तिल हिरण्य (स्वर्ण), घृत वस्त्र धान्य गुड रजत और लवण—इनका दान करना चाहिये।

यमद्वारपर पहुँचनेके लिये जो मार्ग बताये गये हैं वे अत्यन्त दुर्गन्धियुक्त मवाद आदि तथा रक्त आदिसे परिव्याप्त हैं। अत उस मार्गमे स्थित वैतरणी नदीको पारकरनेके लिये वैतरणी-गौका दान करना चाहिये। जो गौ सर्वाङ्गम काली हो जिसके स्तन भी काले हों उसे वैतरणी-गौ माना गया है।

तिल लोहा स्वर्ण कपास लवण सप्तधान्य, भूमि और गौ—ये पापसे शुद्धिके लिये पवित्रताम एक-से-एक बढ़कर हैं। इन आठ दानाको महादान कहा जाता है। इनका दान उत्तम प्रकृतिवाले ब्राह्मणको ही देना चाहिये—

> तिला लौह हिरण्य च कर्पास लवण तथा।
> सप्तधान्य क्षितिर्गाव एकैक पावन स्मृतम्॥
> एतान्यष्टौ महादानान्युत्तमाय द्विजातये।
> (२१४।७ ८)

अब पददानका वर्णन सुनो। छत्र, जूता, वस्त्र अगूठा, कमण्डलु, आसन, पात्र और भोज्यपदार्थ—ये आठ प्रकारके पद हैं—

> छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलु।
> आसन भाजन भोज्य पद चाष्टविध स्मृतम्॥
> (२१४।९)

तिलपात्र घृतपात्र, शय्या उपस्कर तथा और भी जो कुछ अपनेको इष्ट हो वह सब देना चाहिये। अश्व, रथ भैंस भोजन, वस्त्रका दान ब्राह्मणाको करना चाहिये। अन्य दान भी अपनी शक्तिके अनुसार देने चाहिये।

हे पक्षिराज। इस पृथ्वीपर जिसने पापका प्रायश्चित्त कर लिया है, वह दस प्रकारके दान भी दे चुका है वैतरणी-गौ एव अष्टदान कर चुका है, जो तिलसे पूर्ण पात्र, घीसे भरा हुआ पात्र, शय्यादान और विधिवत् पददान करता है वह नरकरूपी गर्भम नहीं आता है। अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता—

> प्रायश्चित्त कृत येन दश दानान्यपि क्षितौ॥
> दान गोर्वैतरण्याश्च दानान्यष्टौ तथापि वा।
> तिलपात्र सर्पिःपात्र शय्यादान तथैव च॥
> पददान च विधिवन्नासौ निरयगर्भग।
> (२१४।१२—१४)

पण्डित लोग स्वतन्त्र रूपसे भी लवण-दान करनेकी इच्छा रखते हैं क्योकि यह लवण-रस विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। इस पृथ्वीपर मरणासन्न प्राणीके प्राण जब न निकल रहे हो तो उस समय लवण-रसका दान उसके हाथसे दिलवाना चाहिये क्योकि यह दान उसके लिये स्वर्गलोकके द्वार खोल देता है। मनुष्य स्वय जो कुछ दान देता है परलोकम वह सब उसे प्राप्त होता है वहाँ उसके आगे रखा हुआ मिलता है। हे पक्षिन्। जिसने यथाविधि

अपने पापोका प्रायश्चित्त कर लिया है, वही पुरुष है। वही अपने पापोको भस्मसात् करके स्वर्गलोकम सुखपूर्वक निवास करता है।

हे खगराज! गौका दूध अमृत है। इसलिये जो मनुष्य दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह अमृतत्वको प्राप्त करता है। उपर्युक्त तिलादिक आठ प्रकारके दान देकर प्राणी गन्धर्वलोकमे निवास करता है। यमलोकका मार्ग अत्यधिक भीषण तापसे युक्त है, अत छत्रदान करना चाहिये। छत्रदान करनसे मार्गमे सुख प्रदान करनेवाली छाया प्राप्त होती है। जो मनुष्य इस जन्मम पादुकाओका दान देता है, वह 'असिपत्रवन'के मार्गको घोडेपर सवार होकर सुखपूर्वक पार करता है। भोजन और आसनका दान देनेसे प्राणीको परलोकगमनके मार्गमे सुखका उपभोग प्राप्त होता है। जलसे परिपूर्ण कमण्डलुका दान देनेवाला पुरुष सुखपूर्वक परलोकगमन करता है।

यमराजके दूत महाक्रोधी और महाभयकर हैं। काले एव पीले वर्णवाले उन दूतोको देखनेमात्रसे भय लगने लगता है। उदारतापूर्वक वस्त्र-आभूषण आदिका दान करनेसे वे यमदूत प्राणीको कष्ट नहीं देते। तिलसे भरे हुए पात्रका जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है, वह मनुष्यके मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये त्रिविध पापोका विनाश कर देता है। मनुष्य घृतपात्रका दान करनेसे रुद्रलोकको प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सभी साधनासे युक्त शय्याका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकम नाना प्रकारकी अप्सराओसे युक्त विमानमे चढकर साठ हजार वर्षतक अमरावतीम क्रीडा करके इन्द्रलोकके भोग भोगनेके बाद पुन वहाँसे गिरकर इस पृथ्वीलोकमे आकर राजाका पद प्राप्त करता है। जो मनुष्य काठी आदि उपकरणोसे सजे-धजे, दोषरहित जवान घोडेका दान ब्राह्मणको देता है, उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। हे खगेश! दानम दिये गये इस घोडेके शरीरम जितने रोय होते हैं, उतने वर्ष (कालतक) स्वर्गके लोकोका भोग दानदाताको प्राप्त होता है। प्राणी ब्राह्मणको सभी उपकरणोसे युक्त चार घोडोवाले रथका दान दे करके राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति सुपात्र ब्राह्मणको दुग्धवती, नवीन मेघके समान वर्णवाली सुन्दर जघन-प्रदेशसे युक्त और मनमोहक तिलकसे समन्वित भैंसका दान देता है तो वह परलोकमें जाकर अभ्युदयको प्राप्त करता है, इसम कोई सदेह नहीं है।

तालपत्रसे बने हुए पखेका दान करनेसे मनुष्यको परलोकगमनके मार्गमे वायुका सुख प्राप्त होता है। वस्त्र-दान करनसे व्यक्ति परलोकम शोभासम्पन्न-शरीर और उस लोकके वैभवसे सम्पन्न हो जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको रस, अन्न तथा अन्य सामग्रियोसे युक्त घरका दान देता है, उसके वशका कभी विनाश नहीं होता, वह स्वय स्वर्गका सुख प्राप्त करता है। हे खगेन्द्र! इन बताये गये सभी प्रकारके दानोमे प्राणीकी श्रद्धा तथा अश्रद्धासे आयी हुई दानकी अधिकता और कमीके कारण उसके फलमे श्रेष्ठता और लघुता आती है।

यदि मृत्युके समीप पहुँचे हुए मनुष्यको लोग किसी पवित्र तीर्थमे ले जाते हैं और उसकी मृत्यु उसी तीर्थम हो जाती है तो उसको मुक्ति प्राप्त होती है और यदि प्राणी मार्गके बीच ही मर जाता है तो भी मुक्ति प्राप्त करता ही है, साथ ही उसको तीर्थतक ले जानेवाले लोग पग-पगपर यज्ञ करनेके समान फल प्राप्त करते हैं—

> आसन्नमरणो मर्त्यश्चेत् तीर्थं प्रतिनीयते।
> तीर्थप्राप्तौ भवेन्मुक्तिर्म्रियते यदि मार्गग ।
> पदे पदे क्रतुसम भवेत् तस्य न सशय ॥
>
> (२।४।३८)

हे द्विज! मृत्युके निकट आ जानेपर जो मनुष्य विधिवत् उपवास करता है, वह भी मृत्युके पश्चात् पुन इस ससारम नहीं लौटता।

हे खगश! मृत्युके सनिकट होनेपर कौन-सा दान करना चाहिये। इस प्रश्नका उत्तर मैंने बता दिया है। मृत्यु और दाहके बीच मनुष्यक क्या कर्तव्य हैं? इस प्रश्नका उत्तर अब तुम सुनो।

व्यक्तिको मरा हुआ जान करके उसके पुत्रादि परिजनोको चाहिये कि वे सभी स्नान करक शवको शुद्ध जलसे स्नान कराकर नवीन वस्त्रसे आच्छादित करें। तदनन्तर उसके शरीरमे चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोका अनुलेप भी करें।

दाह-सस्कारके अन्तर्गत छ पिण्ड देनेकी विधि है। पहला पिण्ड मृत्यु-स्थानपर, दूसरा द्वारपर, तीसरा चौराहेपर,

चौथा विश्रामस्थान, पाँचवाँ काष्ठचयन (चिता) और छठा अस्थि-सचयनके समय—ये छ पिण्डदानके स्थान हैं। सभी बन्धु-बान्धवाको श्मशानभूमिमे शवका ले जाना चाहिये तथा वहाँ शवको दक्षिण दिशाकी ओर सिर करके स्थापित करना चाहिये। दाहकी क्रियाक लिय पुत्रादि परिजनाको स्वय तृण, काष्ठ, तिल और घृत आदि ल जाना चाहिये। शूद्राके द्वारा श्मशानम पहुँचायी गयी वस्तुआसे वहाँ किया गया सम्पूण कर्म निष्फल हो जाता है। वहाँपर सभी कर्म अपसव्य और दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिय। शवदाहक पूर्व पाँच पिण्डदान करनेसे शवमें आहुति (अग्निदाह)-की याग्यता आ जाती है। किसी कारणवश उपयुक्त पिण्ड नहीं दिय जानपर शव राक्षसाके भक्षण-योग्य हो जाता है। दाहकार्यम चाण्डालके घरकी अग्नि, चिताकी अग्नि और पापीके घरकी अग्निका प्रयोग नहीं करना चाहिये। स्वच्छ भूमिपर अग्नि स्थापित कर क्रव्याददेवकी विधिवत् पूजा करक शवको चिताम जलानेका उपक्रम करना चाहिये। जब शवके शरीरका आधा भाग चिताम जल जाय तो उस समय कर्ता तिलमिश्रित घृतकी आहुति चिताम जल रहे शवक ऊपर छाडे। उसक बाद भावविह्वल होकर उस आत्मीय जनके लिय रोना चाहिय। इस कृत्यको करनेस उस मृतकको अत्यधिक सुख प्राप्त होता है।

दाहक्रिया करनेके पश्चात् अस्थि-सचयन क्रिया करनी चाहिय। तदनन्तर किसी जलाशयपर जाकर सभी परिजनाको सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिये तथा दक्षिणाभिमुख होकर मृत प्राणीके लिये तिलयुक्त जलाञ्जलि देनी चाहिये।

शवदाह तथा तिलाञ्जलिके बाद मनुष्यको अश्रुपात नहीं करना चाहिये, क्याकि उस समय रोते हुए अपन बन्धु-बान्धवाके द्वारा आँख और मुँहसे गिराये हुए आँसू और कफका मृतकको पान करना पडता है। इसके बाद जीवनकी क्षणभगुरताकी चर्चा करते हुए घरकी आर प्रस्थान करे। जिसमे स्त्रियाँ आगे-आग तथा पुरुष उनके पीछे-पीछे चल। घरके द्वारपर पहुँचनेपर नीमकी पत्तियाका दाँतसे काटकर आचमन कर, बादम घरमे प्रवेश करे।

पुत्र-पौत्रादि तथा सगोत्री परिजन दस रात्रियाका अशौच मनावे। इस अशौच-कालम ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिय। पृथ्वीपर ही सोय। अपना आसन अलग रखना चाहिये तथा किसीको स्पर्श नहीं करना चाहिये। इस कालमे दान, अध्ययन एव भोग-विलास आदि कर्मोंसे दूर रहना चाहिये। अङ्गमर्दन और सिर धोना भी छोड देवे। अशौचकी अवधिमे मिट्टीके बने पात्र या पत्तलमे भोजन करना चाहिये। इसके बाद दशगात्रके अन्तर्गत दस पिण्डदान आदिकी प्रक्रिया बतायी गयी है। दाह-सस्कारके समयके छ पिण्ड तथा दशगात्रके दस पिण्डको मलिनषोडशी कहा गया है, जो मृत-दिनसे दस दिनमे पूर्ण होती है। दशगात्रकी प्रक्रियामे यह बताया गया है कि नौ दिनमे मृत व्यक्तिका शरीर अपने अङ्गोसे युक्त हो जाता है। दसवें पिण्डदानसे उस शरीरमें पूर्णता, तृप्ति और भूख-प्यासका उदय होता है।

इसके बाद पतिके मरनेपर स्त्रीके कर्तव्यका बात बतायी गयी है, जिसमे चितापर पतिका अनुगमन करनेपर सतीधर्मको सबसे अधिक महत्त्व प्रदा किया गया है। पतिकी मृत्युक समय जा स्त्रियाँ गर्भरहित हैं और जिनके छाट बच्च नहीं हैं, उनको सतीधर्मका पालन करना चाहिये।

अपमृत्युका निवारण

यदि काई प्राणी भूखसे पीडित होकर मर जाता है, हिसक प्राणियोके द्वारा मारा जाता है, गलेम फाँसीका फदा लगानेसे जिसकी मृत्यु हो जाती है, जो विष तथा अग्नि आदिसे मृत्युको प्राप्त होता है, जा आत्मघाती है, जो गिरकर या रस्सी आदिके द्वारा किय गय बन्धन अथवा जलमे डूबनेसे मर जाते हैं जो सर्प तथा जगली हिसक पशु, वृक्षपात, विद्युत्पात, लोहेसे पर्वतपरसे गिरनेसे, दावारक गिरनसे, खाट या मध्य कक्षम मृत्युको प्राप्त होत हैं, जो शस्त्राघातसे, विषैले कुत्तेके मुखको स्पर्श करनेसे तथा शास्त्रविधिसे रहित जा मृत्यु हो जाती है, उस दुर्मरण समझना चाहिये। इस स्थितिम नारायणबलि किये जानेपर ही और्ध्वदैहिक कर्मकी याग्यता आती है। अपमृत्यु हानेपर ऐसे प्राणीका शुद्धीकरण इसी नारायणबलिसे सम्भव है, अन्यथा नहीं। नारायणबलि एकादशाहक दिन करना चाहिये। नारायणबलिको विधिका यहाँ सक्षेपम वर्णन किया गया है। नारायणबलिका वर्णन करते हुए कहा गया है कि नारायणबलिसे मृत व्यक्तिका नरकलोकसे उद्धार हो जाता है, इसम तनिक भी सदेह नहीं है।

प्रवासम मृत्यु होनेपर या सपदश आदिसे मृत्यु हानेपर

पुत्तल-दाहकी विधिका निरूपण किया गया है। इसके अनन्तर रजस्वला और सूतिका स्त्रीके मरनेपर कौन-सा विशेष कर्म करना धर्मसम्मत है, यह भी बताया गया है।

पञ्चकमे मृत्यु-प्राप्तके कृत्य

पञ्चकमे मृत्यु होनेपर दाह-सस्कारकी विधि भगवान्के द्वारा गरुडजीको बतायी गयी है।

मासके प्रारम्भमे धनिष्ठा नक्षत्रके अर्ध-भागसे लेकर रेवती नक्षत्रतकका समय पञ्चककाल कहलाता है। इसको सदैव दोषपूर्ण और अशुभ माना गया है। इसमे मरे हुए व्यक्तिका दाह-सस्कार करना उचित नहीं है। यह काल सभी प्राणियोम दु ख उत्पन्न करनेवाला हे। पञ्चककालके समाप्त होनेपर ही मृतकके सभी कर्म करने चाहिये, अन्यथा पुत्र एव पारिवारिक जनोके लिये यह कष्टप्रद हाता है। इन नक्षत्रोमे मृतकका दाह-सस्कार करनेपर घरम किसी-न-किसी प्रकारकी हानि होती है। पञ्चकम दाह-सस्कार करना हो तो कुशके मानवाकार चार पुतले बनाकर नक्षत्रमन्त्रोसे उनको अभिमन्त्रित करक शवपर रख दे। तदनन्तर उन्हीं पुतलोके साथ मृतकका दाह-सस्कार करना चाहिये। अशौचके समाप्त हो जानेपर मृतकक पुत्रोद्वारा पञ्चक-शान्ति भी करानी चाहिये। मृतकके पुत्राको प्राणीके कल्याण-हेतु तिल, गौ, स्वर्ण और घीका दान देना चाहिये। समस्त विघ्नाका विनाश करनेके लिये ब्राह्मणाको भोजन पादुका, छत्र, स्वर्णमुद्रा और वस्त्र देना चाहिये। यह दान मृतकके समस्त पापाका विनाशक हे।

मलिनपोडशीके बाद मध्यमपोडशीकी विधिका वर्णन किया गया है। विष्णुसे आरम्भ करके विष्णुपर्यन्त एकादश श्राद्ध तथा पाँच देवश्राद्ध—इस प्रकार पोडश श्राद्ध किये जाते हैं। इन्हींका नाम मध्यमपोडशी है। यह कृत्य एकादशाहको किया जाता है। इसी दिन वहींपर वृपोत्सर्ग भी करना चाहिये। जिस जीवका ग्यारहव दिन वृपात्सर्ग नहीं होता है, सैकडा श्राद्ध करनेपर भी उस जीवकी प्रेतत्वसे मुक्ति नहीं होती। अत स्वजनकी मृत्युक पश्चात् निश्चित ही वृपोत्सर्ग करना चाहिये। चार बछियासे युक्त विधानपूर्वक अलकृत वृप जिसक निमित्त छोडा जाता है, उसको प्रतत्वकी प्राप्ति नहीं होती। यदि एकादशाहक दिन यथाविधान साड उत्सर्ग करनेक लिय उपलब्ध नहीं है ता विद्वान् ब्राह्मणको कुश या चावलके चूर्णसे ही साडका निर्माण करके उसका उत्सर्ग करना चाहिये। जीवनकालमे प्राणीको जो भी पदार्थ प्रिय रहा हो उसका भी दान इसी एकादशाह श्राद्धके दिन करना उचित है। इसी दिन मर हुए स्वजनको उद्देश्य बनाकर शय्या, गो आदिका दान भी करना चाहिये। इतना ही नहीं, उस प्रेतकी क्षुधा-शान्तिके लिये बहुत-से ब्राह्मणोको भोजन भी कराना चाहिये।

इसके बाद भगवान् तृतीयपोडशी (उत्तमपोडशी) श्राद्धका वर्णन करते हैं। प्रत्येक बारह मासके बारह पिण्ड, ऊनमासिक (आद्य), त्रिपाक्षिक, ऊनपाण्मासिक एव ऊनाब्दिक—इन्हे मतभेदसे तृतीय अथवा उत्तमपोडशी कहा जाता है।

गरुडके पूछनेपर भगवान्ने कहा—हे खगराज! जब मनुष्य मरनेके बाद एक वर्षकी महापथकी यात्रा करता है तो वह पुत्र-पौत्रादिके द्वारा सपिण्डीकरण हा जानेपर पितृलोकमे चला जाता है। इसलिये पुत्रका पिताका सपिण्डीकरण अवश्य करना चाहिये। वर्षके अन्तम पितृ-पिण्डोके साथ प्रेत-पिण्डका सम्मिलन हा जानेके बाद वह प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है।

गृहस्थ पिताकी मृत्यु होनेपर यदि सपिण्डीकरण श्राद्ध नहीं हुआ है तो किसीका विवाह-सस्कार नहीं हो सकता। जबतक सपिण्डीकरण नहीं हो जाता तबतक भिक्षुक उस घरकी भिक्षा स्वीकार नहीं करता। अपने गोत्रम अशौच तबतक रहता हे जबतक पिण्डका मेलन नहीं हा जाता। पिण्डमेलन होनेपर 'प्रेत' शव्द निवृत्त हो जाता है। कुलधर्म अनन्त हैं, पुरुपकी आयु नष्टप्राय है और शरीर नाशवान् है। इस कारण द्वादशाह ही इस कर्मके लिये प्रशस्त समय माना गया है। अत क्रिया करनेवाले पुत्रको द्वादशाहको ही सपिण्डीकरण कर देना चाहिय। तत्त्वद्रष्टा ऋपियाने सपिण्डीकरणके लिये द्वादशाह, त्रिपक्ष छठा मास अथवा वार्पिक तिथिको कहा है। सपिण्डीकरणके पूर्व उत्तमपाडशी होनी आवश्यक है, क्याकि बारहवे दिन ही प्राय सपिण्डीकरण करना लाकम प्रसिद्ध है इसलिये उत्तमपाडशी श्राद्ध एकादशाह या द्वादशाहको कर देना चाहिये। सपिण्डीकरण करनेके बाद भी बारह महीनतक पोडश श्राद्ध एकोद्दिष्ट-विधिस नियमानुसार करना चाहिय।

हे खगराज! मृतकका दाह-सस्कार हो जानेक पश्चात्

दशगात्रके पिण्डदानसे पुन शरीर उत्पन्न होता है। दसवे पिण्डसे शरीर बन जानेपर प्राणीको अत्यधिक भूख लगती है। एकादशाह तथा द्वादशाह—इन दो दिनोमे प्रेत भोजन करता है। इन दोनो दिन जो कुछ भी प्राणीके निमित्त दिया जाता है, उसे 'प्रेत' शब्दके द्वारा दिया जाना चाहिये क्योकि वह मृतकके लिये आनन्ददायक होता है। सपिण्डीकरण कर देनेके बाद जो भी दान किया जाय वह नाम-गोत्रका उच्चारण करके पितृ-निमित्त करना चाहिये। भोजन तथा घटादिका दान, पददान, शय्यादान एव अन्य जो भी दान हैं उन्हे मृत प्राणीके निमित्त एकको ही उद्देश्य करके देना चाहिये। पिण्डदानके पश्चात् यथाशक्ति उपयोगी समस्त सामग्री दानमे दे। ऐसा होनेपर वह दिव्य देह धारण करके विमानद्वारा सुखपूर्वक यमलोकको चला जाता है।

प्रेतके द्वादशाह-सस्कारके अवसरपर जलपूरित कुम्भोका दान विशेष महत्त्व रखता है। यजमान उस दिन जलसे भरे बारह घटोका सकल्प करके दान करे। उसी दिन वह पक्वान्न और फलसे परिपूर्ण एक वर्धनी (विशेष प्रकारका जलपात्र) भगवान् विष्णुके लिये सकल्प करके सुयोग्य एव सच्चरित्र ब्राह्मणको प्रदान करे। तदनन्तर वह एक वर्धनी पक्वान्न तथा फल धर्मराजको समर्पित करे। उससे सतुष्ट होकर धर्मराज उस प्रेतको मोक्ष प्रदान करते हैं। उसी समय एक वर्धनी चित्रगुप्तके लिये दानमे देना चाहिये। उसके पुण्यसे प्रेत वहाँ पहुँचकर सुखी रहता है।

दानमे एक शय्या एक ही ब्राह्मणको देना चाहिये। एक गौ एक गृह एक शय्या और एक स्त्रीका दान बहुताके लिये नहीं होता। विभाजित करके दिये गय ये दान दाताको पापकी कोटिमे गिरा देते हैं। आत्मा ही पुत्रका नाम है। वही पुत्र यमलोकमे पिताका रक्षक है। घोर नरकसे वही पिताका उद्धार करता है। इसलिये उसे पुत्र कहा जाता है। अत पुत्रको पिताके लिये आजीवन श्राद्ध करना चाहिये तभी वह आतिवाहिक प्रेतरूप पिता पुत्रद्वारा दिये गय उन भोगोका सुख प्राप्त करता है।

शय्यादानकी प्रशसा करते हुए कहते हैं—यह जीवन अनित्य है। जबतक यह जीवन है तभीतक अपने बन्धु-बान्धव हैं। मृत्यु हो जानेपर 'यह मर गया है' ऐसा जानकर क्षणभरमे ही अपने हृदयसे स्नेहको दूर कर देते हैं। 'आत्मा ही अपना बन्धु है।' ऐसा बारम्बार विचारकर अपने जीते ही हितका कार्य कर लेना चाहिये।

इसके अनन्तर गरुडने प्रेतोके सम्बन्धमे इस प्रकार जिज्ञासा की—'भगवन्। प्रेतके अनेक रूप किस प्रकार होते हैं? वे कौन-कौनसे कर्मके द्वारा महाप्रेत और पिशाच बन जाते हैं? और किस शुभ दानसे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जाती है?' इन सबका उत्तर देते हुए भगवान्ने कहा—जो पूर्वजन्मसचित कर्मके अधीन रहकर पापकर्ममे अनुरक्त रहते हैं, वे मृत्युके पश्चात् प्रेतयोनिमे जन्म लेते हैं तथा जो वशपरम्परागत धर्मपथका परित्याग करके दूसरे धर्मको स्वीकार करता है, विद्या और सदाचारसे जो विहीन है वह भी नि सदेह प्रेत ही होता है। इसके साथ और भी कई कारण विस्तारसे बताये गये हैं। इस विषयमे एक प्राचीन इतिहास[1] जो पितामह भीष्म और युधिष्ठिरके सवादमे कहा गया था। प्रेतके लक्षण बताते हुए बभ्रुवाहन नामके एक राजाकी कथा सुनायी। इस राजाको किसी प्रेतका साक्षात्कार हुआ तथा उससे वार्तालाप भी हुआ। राजासे प्रेतने बताया कि मृत्यूपरान्त उसके और्ध्वदैहिक सस्कार तथा श्राद्ध आदि कर्म न होनेके कारण उसे प्रेतयोनि प्राप्त हुई। उसने इस योनिसे मुक्त करानेके लिये राजासे प्रार्थना की। राजाके पूछनेपर उस प्रेतने प्रेतयोनि मिलनेके कारण तथा इस योनिसे मुक्तिका उपाय भी बताया। नगरमे पहुँचकर राजाने उस प्रेतके द्वारा कही गयी सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रियाको विधि-विधानसे सम्पन्न किया। उसके पुण्यसे वह प्रेत बन्धनविमुक्त होकर स्वर्गको चला गया।[2]

जीव अपने कर्मानुसार दूसरे शरीरको प्राप्त करके यमलोकमें नाना प्रकारके कष्ट भोगता है। यमलोकके मार्गमे सोलह पुर पडते हैं जिसका विस्तृत वर्णन भगवान् श्रीहरिने किया है।[3] ससारमे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार मार्ग हैं। जो उत्तम प्रकृतिवाले प्राणी हैं, वे धर्ममार्गमे

१-पृष्ठ संख्या ४३७ पर देखिये।

२-स्थानाभावके कारण यह कथा पूरी नहीं दी गयी। विस्तृत कथा पृष्ठ-सख्या ४१० में देखनी चाहिये।

३-यह कथा पृष्ठ-संख्या ४२७ पर देखनी चाहिये।

चलते हैं। जो अर्थ अर्थात् धन-धान्यका दान करनेवाले प्राणी हैं, वे विमानसे परलोक जाते हैं। जो प्राणी अभिलषित याचककी इच्छाको संतुष्ट करनेवाले हैं, वे कन्धोंपर सवार होकर प्रस्थान करते हैं। जो प्राणी मोक्षकी आकांक्षा रखते हैं, वे हंसयुक्त विमानसे परलोकको जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो प्राणी धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयसे हीन है, वह पैदल ही काँटों तथा पत्थरोंके बीचसे कष्ट झेलता हुआ असिपत्रवनमें जाता है।

इसके पश्चात् श्रीकृष्णने एक पुण्यशाली इतिहासका वर्णन किया जो महर्षि वसिष्ठने राजा वीरवाहनसे कहा था। इसके अन्तर्गत महर्षि वसिष्ठने धर्मवत्स नामक एक ब्राह्मणकी कथा सुनायी तथा उसके पूर्वजन्मका एक शिक्षाप्रद कथानक भी प्रस्तुत किया।[१] जिसमें लोमश ऋषि और वैश्यका संवाद है। ऋषिने कहा—हे वैश्यवर! यह मन अत्यन्त बलवान् है और नित्य ही विकारयुक्त स्वभाववाला है, तथापि जिस प्रकार पीलवान मतवाले हाथीको भी वशमें कर लेते हैं वैसे ही सत्संगतिसे, आलस्यरहित होकर साधन करनेसे, तीव्र भक्तियोगसे तथा सद्विचारके द्वारा अपने मनको वशमें कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें नारदके पूर्वजन्मके जीवनवृत्तसे जुड़ी हुई कथा भी ऋषिने सुनायी।[२] जिसका आशय यह था कि सत्संगति तथा भगवद्भक्तिसे विशुद्ध निर्मल और शान्त स्वभाववाला मन सुखी हो जाता है। साधुसंगति होनेपर अनेक जन्मोंमें किया हुआ पाप शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जिस प्रकार शरत्कालके आनेपर वर्षा समाप्त हो जाती है।

तदनन्तर श्रीकृष्णने सतप्तक नामक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथा सुनायी जिसमें सत्संगति तथा भगवत्कृपासे पाँच प्रेतों तथा ब्राह्मणका उद्धार हो गया।

श्राद्ध करनेके अधिकारी

गरुडके पूछनेपर और्ध्वदैहिक क्रियाके अधिकारीका वर्णन भगवान्ने प्रस्तुत किया। मृत प्राणीका और्ध्वदैहिक कार्य पुत्र पौत्र प्रपौत्र, भाई भाईकी संतान अथवा सपिण्ड या जातिके लोग कर सकते हैं। इन सभीके अभावमें समानोदक संतान इस कार्यको करनेका अधिकारी है। यदि दोनों कुलों (मातृकुल-पितृकुल)-के पुरुष समाप्त हो गये हों तो स्त्रियाँ इस कार्यको कर सकती हैं। जो लोग अपने सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा दिये गये श्राद्धसे संतुष्ट हो जाते हैं, वे श्राद्धकर्ताको पुत्र स्त्री और धन आदिके द्वारा तृप्त करते हैं।

जीवित-श्राद्धका विधान

गरुडके यह पूछनेपर कि हे देव! यदि उपर्युक्त अधिकारियोंमेंसे एक भी न हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये?

भगवान्ने कहा—यदि कोई अधिकारी व्यक्ति न हो तो ऐसी स्थितिमें मनुष्यको स्वयं अपने जीवनकालमें ही जीवित-श्राद्ध करना चाहिये। जीवित-श्राद्धकी विधि पृष्ठ ४०८ में प्रस्तुत की गयी है। गरुडके जिज्ञासा करनेपर भगवान्ने कहा—श्राद्धके द्वारा प्रेतको जिस प्रकार तृप्ति होती है उसे सुनो—

मनुष्य अपने कर्मानुसार यदि देवता हो जाता है तो श्राद्धान्न अमृत होकर उसे प्राप्त हो जाता है। वही अन्न गन्धर्वयोनिमें भोगरूपसे पशुयोनिमें तृणके रूपमें प्राप्त होता है। वही श्राद्धान्न नागयोनिमें वायुरूपसे, पक्षी होनेपर फलरूपसे और राक्षसयोनिमें आमिषरूपसे बन जाता है। वही श्राद्धान्न दानवकी योनिके लिये मांस, प्रेतके लिये रक्त, मनुष्यके लिये अन्न-पानादि, बाल-योनिके लिये भोगरस हो जाता है। पितर जिन योनियोंमें जिस आहारवाले होते हैं श्राद्धके द्वारा उन्हें वहाँ उसी प्रकारका आहार प्राप्त होता है।

यदि श्राद्धकर्ता श्राद्धमें एक ही ब्राह्मण आमन्त्रित करता है तो उस ब्राह्मणके उदरभागमें पिता, वामपार्श्वमें पितामह, दक्षिणपार्श्वमें प्रपितामह और पृष्ठभागमें पिण्डभक्षक पितर रहते हैं। श्राद्धकालमें यमराज प्रेत तथा पितरोंको यमलोकसे मृत्युलोकके लिये मुक्त कर देते हैं। नरक भोगनेवाले भूख-प्याससे पीडित पितृजन अपने पूर्वजन्ममें किये गये पापका पश्चात्ताप करते हुए अपने पुत्र-पौत्रोंसे मधुमिश्रित पायसकी अभिलाषा करते हैं, अतः विधिपूर्वक पायसके द्वारा उन पितृगणोंको तृप्त करना चाहिये।

गरुडके इस प्रश्नके उत्तरमें कि 'मृत्युके बाद प्राणीको तत्काल दूसरे शरीरकी प्राप्ति हो जाती है अथवा विलम्बसे

१-यह कथा पृष्ठ-संख्या ३९९ पर देखनी चाहिये।
२ यह कथा पृष्ठ-संख्या ४०२ पर देखनी चाहिये।

उसको दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है?'

भगवान्‌ने कहा—हे गरुड! मृत्युके पश्चात् तुरंत और विलम्ब दोनों प्रकारसे दूसरे शरीरमें प्राणी प्रविष्ट होता है।

शरीरके अंदर जो ज्योति स्वरूप जीवात्मा विद्यमान रहता है, वह मृत्युके बाद तुरंत ही वायवीय शरीर धारण कर लेता है। भूत-प्रेत और पिशाचोंका शरीर ऐसा ही कहा गया है। पुत्रादिके द्वारा दशगात्रके जो पिण्डदान दिये जाते हैं उससे पिण्डज शरीर बनता है। इस पिण्डज शरीरसे वायवीय शरीर एकाकार हो जाता है। यदि पिण्डज शरीरका साथ नहीं होता है तो वायुज शरीर कष्ट भोगता है।

कोई-कोई जीवात्मा पिण्डज शरीर विलम्बसे प्राप्त करता है, क्योंकि मृत्युके बाद स्वकर्मानुसार वह यमलोकको जाता है। चित्रगुप्तकी आज्ञासे वह वहाँके नरक भोगता है। वहाँकी यातनाओंको झेलनेके पश्चात् उसे पशु-पक्षी, तिर्यक्, कीट-पतंग आदिकी योनि प्राप्त होती है। प्राणी जिस शरीरको ग्रहण करता है उसी शरीरमें मोहवश ममता हो जाती है। शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगकर वह मुक्त हो जाता है।

गरुडके यह पूछनेपर कि बहुत-से पापोंको करनेपर भी इस संसारको पारकर प्राणी आपको कैसे प्राप्त कर सकता है?

भगवान्‌ने कहा—हे पक्षिराज! मनुष्य अपने-अपने कर्ममें रत रहकर संसिद्धि प्राप्त कर लेता है। सत्कर्मसे जिसने अपने कालुष्यको नष्ट कर दिया है वह व्यक्ति वासुदेवके निरन्तर चिन्तनसे विशुद्ध हुई बुद्धिसे युक्त होकर धैर्यसे अपना नियमन करके स्थिर रहता है। जो शब्दादि विषयोंका परित्याग कर तथा राग-द्वेषको छोड़कर विरक्तसेवी और यथाप्राप्त भोजनसे संतुष्ट रहता है, जिसका मन, वाणी, शरीर संयमित है, जो वैराग्य धारण करके नित्य ध्यान-योगमें तत्पर रहता है, जो अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह—इन षड्विकारोंका परित्याग करके निर्भय होकर शान्त हो जाता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इसके बाद मनुष्योंके लिये कुछ करना शेष नहीं रह जाता।

नाभिसे मूर्धापर्यन्त शरीरमें आठ छिद्र हैं। जो सत्कर्म करनेवाले पुण्यात्मा हैं उनके प्राण शरीरमें ऊर्ध्व छिद्रोंसे निकलकर परलोक जाते हैं। जो अनासक्त भावसे सत्कर्ममें रत रहता है वह मृत्युके बाद सुखी रहता है और सांसारिकताके मायाजालमें नहीं फँसता है। जो विकर्ममें निरत रहता है, वह मनुष्य पाशबद्ध हो जाता है।

इस संसारमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। इन सभीमें मनुष्ययोनि परम दुर्लभ है। पाँच (ज्ञान) इन्द्रियोंसे युक्त यह योनि प्राणीको बड़े ही पुण्यसे प्राप्त होती है। स्वर्ग और मोक्षके साधनभूत मनुष्ययोनिको प्राप्त करके जो प्राणी उन दोनोंमेंसे एक भी लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाता है निश्चित ही उसने अपनेको ठग लिया। सौका मालिक एक हजारकी कामना करता है, एक हजारवाला लाखकी, लक्षाधिपति राज्यकी इच्छा करता है, जो राजा है वह सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वशमें रखना चाहता है, चक्रवर्ती नरेश देवत्वकी इच्छा करता है, देवत्व-पदके प्राप्त होनेपर उसकी अभिलाषा देवराज इन्द्रके पदकी होती है, देवराज होनेपर वह ऊर्ध्वगतिकी कामना करता है, फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती। तृष्णासे पराजित व्यक्ति नरकमें जाता है। जो लोग तृष्णासे मुक्त हैं, उन्हें उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

इस संसारमें जो प्राणी आत्माधीन है वह निश्चित ही सुखी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये जो पाँच विषय हैं, इनकी अधीनतामें रहनेवाला निश्चित ही दुःखी रहता है। लौह और काष्ठसे बने पाशसे बँधा व्यक्ति मुक्त हो जाता है किंतु स्त्री, पुत्र-धन आदिके मोहपाशमें बँधा प्राणी कभी मुक्त नहीं हो पाता।

पाप एक मनुष्य करता है किंतु उसके फलका उपभोग बहुत-से लोग करते हैं। भोक्ता तो अलग हो जाता है, पर कर्ता दोषका भागी होता है। सबके देखते-देखते मृत प्राणी सबको छोड़कर चला जाता है। इस मर्त्यलोकमें प्राणी अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही पाप-पुण्यका भोग करता है। बन्धु-बान्धव मरे हुए स्वजनके शरीरको पृथ्वीपर लकड़ी और मिट्टीके ढेलेकी भाँति छोड़कर पराङ्मुख हो जाते हैं। धर्म ही उसका अनुसरण करता है। प्राणीका धन-वैभव घरमें ही छूट जाता है, मित्र एवं बन्धु-बान्धव श्मशानमें छूट जाते हैं, शरीरको अग्नि ले लेता है, पाप-पुण्य ही उस जीवात्माके साथ जाते हैं। मनुष्यने जो भी शुभ या अशुभकर्म किया है, वह सर्वत्र उसीको भोगता है।

मनुष्य स्वयं जो कुछ भी सत्कर्म करते हैं अथवा दान देते हैं, परलोकमें वे सभी उसके सामने उपस्थित रहते हैं। दानमें जो गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, भोजन और पदत्राण अपने

होती है। देव और मानवयोनिमे जो दान तथा भोगादिकी क्रियाएँ दिखायी देती हैं, वे सव कर्मजन्य फल हैं। घोर अकर्मसे और काम-क्रोधके द्वारा अर्जित जो अशुभ पापाचार हैं उनसे नरक प्राप्त होता है तथा वहाँसे जीवका उद्धार नहीं होता। सुकर्मके प्रभावसे प्राणीको ऐहिक और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है।

जिनके हृदयमे नीलकमलके समान श्याम वर्णवाले भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्हींको लाभ और विजय प्राप्त होती है। ऐसे प्राणियाकी पराजय कैसे हो सकती है? धर्मकी जीत होती है, अधर्मकी नहीं। सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। क्षमाकी विजय हाती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही जीतते हैं असुर नहीं। विष्णु ही माता है, विष्णु ही पिता हैं और विष्णु ही अपने स्वजन-बान्धव हैं। जिनकी बुद्धि इस प्रकार स्थिर हो जाती है उनकी दुर्गति नहीं होती। भगवान् पुण्डरीकाक्ष मङ्गल करते हैं।

मोक्षप्राप्तिका उपाय

अन्तमे गरुडजी भगवान्से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात पूछते हुए कहते हैं—हे दयासागर! अज्ञानके कारण ही जीवकी उत्पत्ति इस ससारम होती है, इस बातको मैंने सुन लिया। अब में माक्षके सनातन उपायको सुनना चाहता हूँ। इस दुस्तर असार-ससारम नाना प्रकारके शरीराम प्रविष्ट जीवाकी अनन्त श्रेणियाँ हैं, वे इसी ससारम जन्म लेती हैं और इसीम मर जाती हैं, किंतु उनका अन्त नहीं होता। वे सदैव दु खमे व्याकुल रहती हैं। यहाँ कहीं कोई भी सुखी नहीं है। वे किस उपायसे सुखी हा, इसे आप बतानकी कृपा करे। श्रीभगवान् इसका उत्तर दते हुए कहते हैं—अनेक जन्माम कर्मोंके अनुसार प्राणीको जातीय देह, आयु तथा भुक्ति प्राप्त हाती हे और सुख-दु ख प्रदान करनेवाले पुण्य और पापाका उनके ऊपर नियन्त्रण रहता है तथा, पुन -पुन जन्म-मरणकी प्रथा चलती रहती है।

इस मृत्युलोकमे हजार ही नहीं करोडा बार जन्म लेनेपर भी जीवको कदाचित् ही सचित पुण्यके प्रभावसे मानव-यानि मिलती हे। यह मानव-योनि मोक्षकी सीढी है। चौरासी लाख योनियोम स्थित जीवात्माआको बिना मानव-योनि मिले तत्त्वका ज्ञान नहीं हो सकता। अत इस दुर्लभ योनिको प्राप्त करके जो प्राणी स्वय अपना उद्धार नहीं कर लेता, उससे बढकर मूढ इस जगत्म दूसरा कौन हो सकता है? कोई भी कर्म शरीरके बिना सम्भव नहीं है, अत शरीररूपी धनकी रक्षा करते हुए पुण्यकर्म करना चाहिये। शरीरकी रक्षा धर्मके लिय, धर्मकी रक्षा ज्ञानके लिये और ज्ञानकी रक्षा ध्यानयोगके लिये तथा ध्यानयागकी रक्षा तत्काल मुक्ति-प्राप्तिके लिये होती है। यदि स्वय ही अहितकारी कार्योंसे अपनेको दूर नहीं कर सकते हैं तो अन्य कोई दूसरा कौन हितकारी होगा जो आत्माको सुख प्रदान करेगा? जैसे फूटे हुए घडेका जल धारे-धारे बह जाता है, उसी प्रकार आयु भी क्षीण होती है। जबतक यह शरीर स्वस्थ है तबतक ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सम्यक् प्रयत्न किया जा सकता है। सौ वर्षका जीवन अत्यल्प है। इसमे भी आधा निद्रा तथा आलस्यम चला जाता है। इसके साथ ही कितना ही समय बाल्यावस्था रुग्णावस्था वृद्धावस्था एव अन्यान्य दु खाम व्यतीत हो जाता है इसके बाद जो थोडा बच जाता वह भी निष्फल हा जाता है। अपने हित-अहितको न जानते हुए जो नित्य कुपथगामी हैं, जिनका लक्ष्य मात्र पेट भरना है वे मनुष्य नारकीय प्राणी हैं। अज्ञानसे मोहित होकर प्राणी अपने शरीर धन एव स्त्री आदिमे अनुरक्त होकर जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। अत व्यक्तिको उनकी बढी हुई अपनी आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। यदि आसक्ति न छोडी जा रही हो तो महापुरुषाके साथ उस आसक्तिको जोड देना चाहिये क्याकि आसक्तिरूपी व्याधिकी औषधि सज्जन पुरुष ही हैं।

सत्सग और विवेक—ये दो प्राणीके मलरहित स्वस्थ दो नेत्र हैं। जिसके पास ये दोनो नहीं हैं, वह मनुष्य अन्धा है। वह कुमार्गपर कैसे नहीं जायगा अर्थात् वह अवश्य ही कुमार्गगामी होगा। जो व्यक्ति दम्भके वशीभूत हो जाता है वह अपना ही नाश करता है। जटाओका भार और मृगचर्मसे युक्त साधुका वेश धारण करनेवाले दाम्भिक ज्ञानियाकी भाँति इस ससारमे भ्रमण करते हैं और लोगाको भ्रमित करते हैं। लौकिक सुखमें आसक्त 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' ऐसा कहनेवाले कर्म तथा ब्रह्म दानोसे भ्रष्ट दम्भी और ढागी व्यक्तिका अन्त्यजके समान परित्याग कर देना चाहिये।

बन्धन और मोक्षके लिये इस ससारमे दो ही पद हैं—

एक पद है 'यह मेरा नहीं है।' और दूसरा पद है 'यह मेरा है। 'यह मेरा है' इस ज्ञानसे वह बँध जाता है, और 'यह मेरा नहीं है' इस ज्ञानसे वह मुक्त हो जाता है—

द्वे पक्षे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते॥

(२।४९।९३)

जो कर्म जीवात्माको बन्धनमे नहीं ले जाता वही सत्कर्म है। जो विद्या प्राणीको मुक्ति प्रदान करनेमे समर्थ है, वही विद्या है। जबतक प्राणियोको कर्म अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, जबतक उनम सासारिक वासना विद्यमान है और जबतक उनकी इन्द्रियोमे चञ्चलता रहती है, तबतक उन्हे परम तत्त्वका ज्ञान कहाँ हो सकता है? जबतक व्यक्तिम शरीरका अभिमान है, जबतक उसम ममता है, जबतक उस प्राणीमे प्रयत्नकी क्षमता रहती है, जबतक उसमे सकल्प तथा कल्पना करनेकी शक्ति है, जबतक उसके मनमे स्थिरता नहीं है, जबतक वह शास्त्रचिन्तन नहीं करता है तथा उसपर गुरुकी दया नहीं होती है तबतक उसको परमतत्त्व कहाँसे प्राप्त हो सकता है?

श्रीभगवान् कहते है—हे गरुड! उस तत्त्वज्ञका अन्तिम कृत्य सुनो, जिसके द्वारा ब्रह्मपद या निर्वाण नामवाला मोक्ष प्राप्त होता है। अन्त समय आ जानेपर पुरुष भयरहित होकर सयमरूपी शस्त्रसे देहादिकी आसक्तिको काट दे। अनासक्त भावसे धीरवान् पुरुष पवित्र तीर्थम जाकर उसके जलमे स्नान करे तदनन्तर वहाँपर एकान्त देशमे किसी स्वच्छ एव शुद्ध भूमिमे विधिवत् आसन लगाकर बैठ जाय तथा एकाग्रचित्त होकर गायत्री आदि मन्त्रोके द्वारा उस शुद्ध परम ब्रह्माक्षरका ध्यान करे। ब्रह्मक बीजमन्त्रको बिना भुलाये वह अपने श्वासको रोककर मनको वशम करे तथा अन्य कर्मोसे मनको रोककर बुद्धिके द्वारा शुभकर्ममे लगाये।

'मैं ब्रह्म हूँ' 'मैं परम धाम हूँ' 'मैं ही ब्रह्म हूँ' 'परम पद मैं हूँ' इस प्रकारकी समीक्षा करके निष्कल आत्मामे मनको प्रविष्ट करना चाहिये। जो मनुष्य 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह अपने शरीरका परित्याग कर परम पदको प्राप्त करता है।

मान-मोहसे रहित आसक्तिदोपस परे नित्य अध्यात्म-चिन्तनमे दत्तचित्त, सासारिक समस्त कामनाओसे रहित और सुख-दु ख नामके द्वन्द्वसे मुक्त ज्ञानी पुरुष ही उस अव्यय पदको प्राप्त करते हैं।

प्रौढ वैराग्यमे स्थित हो करके अनन्य भावसे जो व्यक्ति मेरा भजन करता है, वह पूर्णदृष्टिवाला प्रसन्नात्मा व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है।

घर छोडकर मरनेकी अभिलाषासे जो तीर्थमे निवास करता है और मुक्तिक्षेत्रमे मरता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है।

हे तार्क्ष्य! ज्ञान तथा वैराग्यसे युक्त यह सनातन मोक्षधर्म ऐसा ही है, उसको तुम्हे सुना भी दिया है।

तत्त्वज्ञ मोक्ष प्राप्त करते हैं। धर्मनिष्ठ स्वर्ग जाते हैं, पापी नरकमे जाते हैं। पक्षी आदि इस ससारमे अन्य योनियामे प्रविष्ट होकर घूमते रहते हैं—

मोक्ष गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिका स्वर्गति नरा।
पापिनो दुर्गति यान्ति ससरन्ति खगादय॥

(२।४९।११६)

अपने प्रश्नाके उत्तरके रूपमे भगवान्के मुखसे इस प्रकार सिद्धान्तको सुनकर प्रसन्न शरीरवाले गरुडने जगदीश्वरको प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! आपके इन आह्लादकारी वचनोसे मेरा बहुत बडा सदेह दूर हो गया।' ऐसा कहकर उन्होने भगवान् विष्णुसे आज्ञा ली और वे कश्यपजीके आश्रममे चले गये।

यह गरुडमहापुराण बडा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोका विनाशक एव सुननेवालाकी समस्त कामनाआका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये—

पुराण गारुड पुण्य पवित्र पापनाशनम्।
शृण्वता कामनापूर श्रोतव्य सर्वदैव हि॥

(२।४९।१३२)

जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो वैसे ही इसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयकर यातनाओको तोडकर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है—

यश्चेद शृणुयान्मर्त्यो यश्चापि परिकीर्तयेत्।
विहाय यातना घोरा धूतपापो दिव व्रजेत्॥

(२।४९।१३६)

—राधेश्याम खेमका

नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण'के विशेपाङ्कके रूपमे 'सक्षिप्त गरुडपुराणाङ्क' पाठकोकी सेवामें प्रस्तुत है। पिछले कई वर्षोसे कुछ महानुभावोका यह विशेष आग्रह था कि 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमे 'गरुडमहापुराण'का प्रकाशन किया जाय। हम चाहते हुए भी अबतक यह कार्य नहीं कर सके थे। इस वर्ष यह सम्भव हो सका।

अठारह महापुराणोके अन्तर्गत गरुडमहापुराणका अपना एक विशेष महत्त्व है। इसके द्वारा असार-ससारकी क्षणभङ्गुरता तथा अनित्यताका दिग्दर्शन तो होता ही है, इसके साथ ही इसमें परलोकका वर्णन तथा ससारके आवागमनसे मुक्त होनेकी विधि भी वर्णित है। चतुर्वर्गचिन्तामणि, वीरमित्रोदय, हेमाद्रि, विधानपारिजात आदि सभी प्राचीन निबन्ध-ग्रन्थोमे अनुष्ठान व्रत, दान एव श्राद्ध आदिके प्रकरणमे मूल श्लोकोका सदर्भ भी प्राय गरुडपुराणका ही मिलता है। इन सब कारणोसे इस ग्रन्थकी श्रेष्ठता एव महत्त्व विशेषरूपसे परिलक्षित होनेपर भी सामान्य जन इसके विषय-वस्तुसे अनभिज्ञ-जैसे ही हैं। अत स्वाभाविक रूपसे यह प्रेरणा हुई कि गरुडमहापुराणका कथा-वस्तुको जनता-जनार्दनकी दृष्टिमे लानेके लिये इस बार इसी महापुराणका अनुवाद 'विशेषाङ्क'के रूपमे प्रस्तुत किया जाय। इस प्रेरणाके अनुसार ही यह निर्णय कार्यरूपमे परिणत हुआ।

वास्तवमे गरुडमहापुराण एक पवित्र वैष्णव ग्रन्थ है। इसके अधिष्ठातृदेव भगवान् विष्णु हैं। यह महापुराण अधिकतम तीन खण्डोमे विभक्त है—पूर्वखण्ड (आचारकाण्ड) उत्तरखण्ड (धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प) और ब्रह्मकाण्ड। अधिकाश सस्करणोमे केवल दो ही खण्ड (पूर्व और उत्तर) दिये गये हैं। जबकि खेमराज श्रीकृष्णदासद्वारा प्रकाशित पुस्तकमे इन दोनो काण्डोके अतिरिक्त ब्रह्मकाण्ड भी दिया गया है। पूर्वखण्ड (आचारकाण्ड)-मे भक्ति ज्ञान वैराग्य सदाचार एव निष्काम कर्मकी महिमा तथा यज्ञ दान तप तीर्थसेवन देवपूजन श्राद्ध तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभ कर्मोमे जनसाधारणको प्रवृत्त करनेके लिये अनेक लौकिक एव पारलौकिक पुण्यप्रद फलादिका वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त इसमे व्याकरण, छन्द, स्वर, ज्योतिष, आयुर्वेद रत्नसार, नीतिसार आदि अन्यान्य उपयोगी विविध विषयोका यथाक्रम समावेश हुआ है।

गरुडमहापुराणमे मुख्य रूपसे उत्तरखण्डमे प्रेतकल्पका विवेचन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसमे मृत्युका स्वरूप मरणासन्न व्यक्तिकी अवस्था और उसके कल्याणके लिये अन्तिम समयमे किये जानेवाले कृत्यो तथा विविध प्रकारके दानोका निरूपण हुआ है। मृत्युके बाद और्ध्वदेहिक सस्कार, पिण्डदान, श्राद्ध, सपिण्डीकरण कर्मविपाक, पापोके प्रायश्चित्तका विधान आदि वर्णित है। इसमे नरकोका तथा स्वर्ग एव वैकुण्ठ आदि लोकोके वर्णनके साथ ही पुरुषार्थचतुष्टय धर्म अर्थ काम और मोक्षको प्राप्त करनेके विविध साधनोका निरूपण भी हुआ है। इसके अतिरिक्त जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होनेके लिये आत्मज्ञानका प्रतिपादन भी किया गया है।

वास्तवमे गरुडमहापुराणकी समस्त कथाओ और उपदेशोका सार यह है कि हमे आसक्तिका त्यागकर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सासारिक बन्धनोसे मुक्त होनेके लिये एक मात्र परमात्माकी शरणमे जाना चाहिये। यह लक्ष्यप्राप्ति कर्मयोग और ज्ञान अथवा भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है इसकी विशद व्याख्या इस महापुराणमे हुई है। यह पुराण भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यको सामने रखते हुए साधकोके लिये उनके ग्रहण करने योग्य विभिन्न अनुभूत सत्य मार्गोके विघ्नोका तथा विघ्नोसे छूटनेके उपायोका बडा ही सुन्दर निरूपण करता है। मनुष्य इस लोकसे जानेके बाद अपने पारलौकिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्ध एव शान्तिप्रद बना सकता है तथा उसकी मृत्युके बाद उस प्राणीके उद्धारके लिये पुत्र-पौत्रादिक—पारिवारिक जनोके कर्तव्यका विशद वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है। यह महत्त्वपूर्ण प्रकरण अन्य किसी पुराण या ग्रन्थमे हमे उपलब्ध नहीं होता।

इस गरुडमहापुराणके श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्य-लाभ तथा अन्त करणकी परिशुद्धि और भगवान्मे

रति एव विषयोसे विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्योको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमे कर्तव्य निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा भी मिलती है। साथ ही, जो जिज्ञासु शास्त्र-मर्यादाके अनुसार अपना जीवनयापन करना चाहते हैं, उन्हे इस पुराणसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन तथा सुन्दर एव पवित्र जीवनयापनकी शिक्षा भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त पुत्र-पौत्रादि—पारिवारिक जनोकी पारमार्थिक आवश्यकता और उनके कर्तव्यबोधका परिज्ञान भी इसमे कराया गया है। इस प्रकार यह महापुराण जिज्ञासु जनोके लिये अत्यधिक उपादेय, ज्ञानवर्धक, सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदय और कल्याणमे पूर्णतया सहायक है।

चूँकि इस पुराणमे विविध विषयोका समावेश हुआ है। अत पाठकोकी सुविधाके लिये गरुडमहापुराणके भावोंका सार-सक्षेप इस 'विशेषाङ्क'के प्रारम्भमे 'सिंहावलोकन'-के रूपमे प्रस्तुत किया गया है। इसके अवलोकनसे गरुडमहापुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय पाठकोके ध्यानमे आ सकेगे, यद्यपि जिज्ञासु जनोको यह 'विशेषाङ्क' आद्योपान्त पूरा पढना चाहिये। यदि पूरा न पढ सके तो कम-से-कम उत्तरखण्ड (धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प) तो अवश्य पढना चाहिये, जिससे उन्हे परलोक-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो सके।

सामान्यत ससारके लोगोमे यह जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि मृत्युके बाद प्राणी कहाँ जाता है और उसकी क्या गति होती है? ससारमे सुख-दु खका वैषम्य भी दिखायी पडता है। परलोकमे स्वर्ग और नरककी बात भी हम लोग सुनते हैं। इन सब प्रश्नोका उत्तर इस गरुडमहापुराणमे सविस्तार प्रतिपादित हुआ है।

यद्यपि 'विशेषाङ्क'के प्रकाशनमे कभी-कभी कुछ असुविधाएँ भी आती हैं, परतु इस बार गरुडपुराणके प्रकाशनमे विशेष कठिनाइयोकी अनुभूति हुई। सयोगवश इस महापुराणका कोई अनुवाद अथवा टीका उपलब्ध न होनेके कारण मूलरूपसे सम्पूर्ण ग्रन्थका अनुवाद करना पडा। उपलब्ध मूल ग्रन्थोमे भी पाठभेद और अशुद्धियोके बाहुल्यसे बीच-बीचमे कुछ भ्रमकी स्थिति बन जाती थी। अपने शास्त्रोमे स्पष्ट निर्देश है—'पितरो वाक्यमिच्छन्ति भावमिच्छन्ति देवता'—पितृगण शुद्ध वाक्य और शुद्ध प्रक्रियाकी अपेक्षा रखते हैं और देवगण शुद्ध वाक्य और प्रक्रियामे त्रुटि होनेपर भी मनुष्यके आन्तरिक शुद्ध भावोसे भी सतुष्ट हो जाते हैं। गरुडपुराणका मुख्य प्रतिपाद्य विषय श्राद्ध आदि प्रक्रिया-प्रधान होनेके कारण इसके अनुवाद करनेमे विशेष सावधानी बरतनी पडी। प्राय यह प्रयास किया गया कि ग्रन्थके मूल भावोको सुरक्षित रखते हुए यथासाध्य श्राद्धकी प्रचलित और व्यावहारिक प्रक्रियाओका सामञ्जस्य बना रहे, जिससे सर्वसाधारणको व्यावहारिक प्रक्रियामे असुविधाका अनुभव न हो, फिर भी कदाचित् द्विविधाकी स्थितिमे मूल श्लोकोके भावोको ही प्राथमिकता दी गयी है। भावोके स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे कुछ आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी गयी है। इसके साथ ही कुछ महत्त्वपूर्ण मूल श्लोकोका भी समायोजन किया गया है।

प्राय यह प्रयास किया गया है कि इस 'विशेषाङ्क'मे गरुडपुराणके सभी श्लोकोका अनुवाद समायोजित कर दिया जाय, परतु अपने पुराणमे कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जो सर्वसाधारणके समझकी क्षमताके बाहर हैं, जिनके अवलोकनसे सामान्य जनोके मस्तिष्कमे सशय-विपर्ययकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। ऐसे कुछ स्थलोके अनुवादको सक्षिप्त करना ही हितकर समझा गया। प्रारम्भमे यह विचार था कि गरुडपुराणके मूल श्लोक भी अनुवादके साथ प्रस्तुत किये जायँ, परतु एक वर्षमे प्रकाशन सम्भव न होनेके कारण सर्वसाधारणके उपयोगकी दृष्टिसे केवल भाषानुवादमे इसे प्रकाशित किया गया है। भगवदिच्छा हुई तो आगे पुस्तकरूपमे मूलके साथ पुन इसके प्रकाशनका प्रयास किया जा सकता है।

आजकल विशेषरूपसे प्रचलित 'गरुडपुराण सारोद्धार' नामका एक ग्रन्थ उपलब्ध होता है, जो सोलह अध्यायोमे है तथा इसीको प्राय श्राद्ध आदि पितृ-कार्योमे सुनाया जाता है और इसे ही सामान्य लोग गरुडपुराणके रूपमें जानते हैं, परतु वास्तवमे यह ग्रन्थ मूल गरुडपुराणसे भिन्न है। कुछ समय-पूर्व राजस्थानके विद्वान् प० नवनिधि शर्माके द्वारा किया गया यह सकलन है। इसमें शकराचार्यके विवेकचूडामणि भगवद्गीता नीतिशतक, वैराग्यशतक एव अन्य पुराणोके

साथ गरुडपुराणके श्लोकोका सग्रह है। कुछ लोगोमे यह भ्रान्त धारणा बनी है कि गरुडपुराणको घरमे नहीं रखना चाहिये। केवल श्राद्ध आदि प्रेत-कार्योंमे ही इसकी कथा सुनते हैं। यह धारणा अत्यन्त भ्रामक और अन्धविश्वाससे युक्त है, कारण, इस महापुराणम ही यह बात लिखी है कि 'जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो वैसे ही इसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयकर यातनाओको तोडकर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है।' यह गरुडमहापुराण बडा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोका विनाशक एव सुननेवालोकी समस्त कामनाओका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये—

पुराण गारुड पुण्य पवित्र पापनाशनम्।
शृण्वता कामनापूर श्रोतव्य सर्वदैव हि॥
(२।४९।१३२)

अत आस्तिक जनोको इस प्रकारकी भ्रामक शका कदापि नहीं रखनी चाहिये।

इस पुराणके अनुवादका सशोधन परिवर्धन आदि कार्योको प्रयागराजके श्रीहरीराम सस्कृत महाविद्यालयके पूर्व प्राचार्य आदरणीय प० श्रीरामकृष्णजी शास्त्रीने पूर्ण मनायोगसे सम्पन्न किया। यह काय भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम भावसे इनके द्वारा सम्पन्न हुआ। इसके साथ ही अग्निहोत्री प०श्रीजोखनरामजी शास्त्री सस्कृत विश्वविद्यालयके प्राध्यापक प० श्रीसुधाकरजी दीक्षित, आदरणीय प० श्रीविश्वनाथजी शास्त्री दातार तथा प० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री आदि महानुभावाने भी इस कार्यम कृपापूर्वक पूर्ण सहयोग प्रदान किया। मे इन महानुभावोके चरणोम प्रणति निवेदन करता हूँ। गरुडमहापुराणके प्रकाशनके लिये 'सर्व भारतीय काशिराज न्यास'-क अध्यक्ष महाराज काशिराज डॉ० श्रीविभूति-नारायण सिहजीने हमे प्रेरणा प्रदान की तथा अपने न्यासद्वारा सशोधित आचारकाण्डका मूल पाठ भी उपलब्ध कराया। हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। 'कल्याण'-सम्पादकीय विभागक प० श्रीजानकीनाथजी शर्माके सहयोगके प्रति भा हम आभारा ह। इस 'विशेषाङ्क'के सम्पादन प्रूफ-सशोधन, चित्रनिर्माण तथा मुद्रण आदि कार्योंमे जिन-जिन लोगोसे हमे सहृदयता मिली वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हे धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते। अनुवादकी आवृति, प्रूफ-सशोधन तथा सम्पादनके कार्योंमे सम्पादकीय विभागके मेरे सहयोगी विद्वानोने तथा अन्य सभी लोगोने मनोयोगपूर्वक सहयोग प्रदान किया है। फिर भी अनुवाद, सशोधन, छपाई आदिमे कोई भूल हो तो इसके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है। अत हम इसके लिये अपने पाठक-पाठिकाओसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

आस्तिक जन इस गरुडपुराणको पढकर लाभ उठावे और लोक-परलोकमे सुख-शान्ति तथा मानव-जीवनके परम लक्ष्य परमात्मप्रभुको प्राप्त कर, यही प्रार्थना है। मानव-जीवनका लक्ष्य है आत्मोद्धार करना। इस लक्ष्यकी सिद्धि इस पुराणमे वर्णित आचारके श्रद्धापूर्वक सेवनसे प्राप्त हो सकती है। गरुडपुराणके समस्त कथानक एव उपदेशोका सार यही है कि हमे आसक्तिका त्यागकर कर्तव्यकर्मोंको करते हुए वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सासारिक बन्धनोसे मुक्त होनेके लिये एक मात्र विश्वस्रष्टा परमात्माकी शरण ग्रहण करना चाहिये। इस लक्ष्यकी प्राप्ति कर्म ज्ञान और भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है, इसकी विशद व्याख्या भी इस पुराणमें वर्णित हुई है। इसके साथ ही अपने पितृजनोको परलोकमे सद्गति प्राप्त करानेके लिये पुत्र-पौत्रादिके कर्तव्यका भी निरूपण हुआ है। यदि इस 'विशेषाङ्क'के अध्ययनसे हमारे देशवासियाको मनुष्य-जीवनके वास्तविक ध्येयको हृदयङ्गम करन तथा उसकी ओर बढनेमे कुछ भी सहायता मिली तो यह भगवान्‌की बडी कृपा होगी, श्रम सार्थक होगा और हम इसे अपना सौभाग्य मानेगे।

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु खभाग्भवेत्॥

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकोंका सूचीपत्र

(जनवरी २०००)

कोड	विवरण	मूल्य	डाकखर्च
	श्रीमद्भगवद्गीता		
	गीता-तत्त्व विवेचनी—		
	(टीकाकार—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)		
	गीताविषयक २५१५ प्रश्न और उनके		
	उत्तर रूपमें विवेचनात्मक हिन्दी		
	टीका सचित्र सजिल्द आकर्षक		
1	बहुरंगे आवरणके साथ बृहदाकार	८ ००	■ १५
2	ग्रन्थाकार	५ ०	■ ९ ०
3	„ साधारण संस्करण	३० ०	■ ८ ०
1118	बँगला	६५ ०	■ १० ०
800	तमिल	६५ ०	■ १० ०
1100	उड़िया	७० ००	■ १ ०
457	अँग्रेजी अनुवाद	३५.००	■ ८
	गीता साधक-संजीवनी—(टीकाकार स्वामी श्रीरामसुखदासजी)		
	गीताके मर्मको समझने हेतु व्याख्यात्मक		
	शैली एवं सरल सुबोध भाषामें		
	हिन्दी टीका सचित्र सजिल्द		
5	बृहदाकार	१३० ०	■ २२ ००
6	ग्रन्थाकार परिशिष्टसहित	७ ०	■ ९
7	मराठी अनुवाद	७० ०	■ १ ०
467	गुजराती अनुवाद	७५ ०	■ १ ०
1180	अँग्रेजी अनुवाद I	३५	■ ५.००
1181	अँग्रेजी अनुवाद II	३५	■ ५. ०
763	बँगला	७० ०	■ १ ०
1121	उड़िया	९ ०	■ १५.०
1014	साधक संजीवनी परिशिष्ट		
	ग्रन्थाकार (एक जिल्दमें)	२५	■ ६ ०
949	पुस्तकाकार		
	(१ से ६ अध्याय)	८.	■ २ ०
788	(७ से १२ अध्याय)	८.	■ २ ०
896	(१३ से १८ अध्याय)	७ ०	■ २ ०
8	गीता दर्पण—(स्वामी रामसुखदासजीद्वारा)		
	गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश, लेख गीता		
	व्याकरण और छन्द सम्बन्धी गूढ़		
	विवेचन सचित्र सजिल्द	३ ००	■ ५ ०
504	„ (मराठी अनुवाद) सजिल्द	२५ ०	■ ५
556	„ (बँगला अनुवाद) सजिल्द	३० ०	■ ५.००
468	„ (गुजराती अनुवाद)	३० ०	■ ५.००
784	ज्ञानेश्वरीगूढार्थदीपिका (मराठी)	१००	■ १ ००
748	„ मूल गुटका (मराठी)	२ ०	■ ४ ००
859	मूल मझला (मराठी)	३	■ ४ ००
10	गीता शांकर भाष्य	५	■ ६
581	गीता रामानुज भाष्य	३५	■ ५.००
11	गीता चिन्तन—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीताविषयक लेखों विचारों पत्रों आदिका संग्रह)	२ ०	■ ३ ००
	गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय		
	भाषा टीका, टिप्पणीप्रधान और मुख्य		
	विषय एवं 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति		
17	लेखसहित, सचित्र सजिल्द	१५ ०	■ ४ ००
12	(गुजराती) २ ० 13 (बँगला)	१५.	
14	(मराठी) २ ०० 726 (कन्नड)	२०	
772	(तेलगू) १८ ० 823 (तमिल)	२०	
16	गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्य सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें	२ ०	■ ३ ०
15	(मराठी अनुवाद)	२५ ०	■ ४
18	गीता—भाषा टीका टिप्पणी-प्रधान विषय मोटा टाइप	१ ०	■ २ ०
502	सजिल्द	१३	■ ३
771	(तेलगू) १ ०		
815	गीता श्लोकार्थसहित (उड़िया)	१३ ०	
718	गीता तात्पर्यके साथ (कन्नड)	१० ००	
743	(तमिल)	१५	
19	गीता—केवल भाषा	५.	■ १
663	(तेलगू)	५ ०	
795	(तमिल)	५.	
750	भाषा पाकेट साइज (हिन्दी)	३	■ १
20	—भाषा टीका पाकेट साइज (हिन्दी)	५.०	■ १ ०
633	गीता—भाषा टीका पाकेट साइज सजिल्द	८ ०	■ २
455	(अँग्रेजी)	४	
534	(अँग्रेजी) सजिल्द	७	
496	(बँगला)	५	
714	(असमिया)	५ ००	
1008	(उड़िया)	५.	
936	(गुजराती)	५	
1034	(गुजराती) सजिल्द	८	
21	श्रीपञ्चरत्नगीता—गीता विष्णुसहस्रनाम भीष्मस्तवराज अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें)	१ ००	■ २
22	गीता—मूल मोटे अक्षरोंवाली	५.	■ २
23	गीता—मूल विष्णुसहस्रनामसहित	२	■ १
661	(कन्नड़) ४ 662 (तेलगू)	३	
793	(तमिल)	५	
739	(मलयालम)	३ ०	
541	„ (उड़िया)	२ ०	
488	नित्यस्तुति—गीता मूल, विष्णुसहस्रनामसहित	४ ००	■ १
700	गीता छोटी साइज मूल	१ ००	■ १
1036	लघु आकार (उड़िया)	२	■ १ ००
24	गीता—मूल (माचिस आकार)	२	■ १
566	गीता—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (कम से कम १ प्रति एक साथ भेजी जा सकती है।)	१५	
288	गीताके कुछ श्लोकोंपर विवेचन—	२	▲ १ ००
289	गीता निबन्धावली—	२ ५०	▲ १
297	गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप—	७५	▲ १
873	गीता माधुर्य (डीलक्स संस्करण) (हिन्दी)	१ ००	■ ३
388	गीता माधुर्य सरल प्रश्नोत्तर शैलीमें (हिन्दी)	६	▲ १ ०
389	(तमिल) ८ 391 (मराठी)	५.००	
392	(गुजराती) ५. 393 (उर्दू)	८ ०	
395	(बँगला) ४ 624 (असमिया)	४	
754	(उड़िया) ४ 487 (अँग्रेजी)	५	
679	(संस्कृत)	६	
470	गीता—रोमन गीता मूल, श्लोक एवं अँग्रेजी अनुवाद	१०	■ २
874	गीता दैनन्दिनी (२०००)—डीलक्स संस्करण	३५ ००	■ ५
503	(२०००)—पुस्तकाकार-प्लास्टिक कवर	२५ ००	■ ४ ०
615	पाकेट साइज	१२	■ १ ००
506	पाकेट साइज (विशिष्ट)	१५	■ २ ०
464	गीता ज्ञान प्रवेशिका—(स्वामी रामसुखदास)	१२ ००	■ २
508	गीता सुधा तरंगिनी—गीताका पद्यानुवाद रामायण	४ ०	■ १
80	श्रीरामचरितमानस बृहदाकार, मोटा टाइप सजिल्द आकर्षक आवरण	२ ०	■ १९ ०
81	मोटा टाइप सजिल्द आकर्षक आवरण	१	■ १ ०
697	साधारण	८ ०	■ १ ०
82	मझला साइज सजिल्द	५ ००	■ ५. ०
456	अँग्रेजी अनुवादसहित	७० ०	■ ९
786	मझला	५	■ ६
83	मूलपाठ मोटे अक्षरोंमें सजिल्द	५	■ ६
84	मूल मझला साइज	३	■ ४
85	मूल गुटका	२	■ २ ०
790	केवल भाषा	६	■ ७
954	ग्रन्थाकार बँगला	१ ०	■ १
799	गुजराती ग्रन्थाकार	८५	■ १० ०
785	गुजराती मझला साइज	४५	■ ५.
878	गुजराती मूल मझला	२५	■ ४ ००
879	मूल गुटका	१५	■ २ ००
	[श्रीरामचरितमानस-अलग अलग काण्ड (सटीक)]		
94	बालकाण्ड	१२ ०	■ २ ०
95	अयोध्याकाण्ड	११	■ २ ००
98	सुन्दरकाण्ड	४ ००	■ १ ००
832	„ कन्नड ४ 753 तेलगू	३ ०	
101	लंकाकाण्ड	६	■ २
102	उत्तरकाण्ड	६ ०	■ २ ००
141	अरण्य किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड	७	■ २
99	सुन्दरकाण्ड मूल गुटका	२ ०	■ १ ०
100	सुन्दरकाण्ड-मूल, मोटा टाइप	४ ००	■ १ ००
948	(गुजराती) ४		

- ■ जिन पुस्तकोंका मूल्य अंकित नहीं है। बादमें मिल सकती है।
- ■ पुस्तकोंके मूल्योंमें परिवर्तन होनेपर पुस्तकपर छपा मूल्य ही देय होगा।
- ■ पुस्तकें डाकसे मँगवानेपर कम-से-कम 5% पैकिंग खर्च, डाकखर्च तथा १४ रु० प्रति पैकेट रजिस्ट्री-खर्च अतिरिक्त देय है। डाकसे पुस्तकें मँगवानेके पूर्व गीताप्रेसकी निकटतम दूकान, स्टेशन-स्टाल अथवा स्थानीय पुस्तक-विक्रेतासे सम्पर्क करें। इससे आप भारी डाकखर्चकी बचत कर सकते हैं।
- ■ पूरी जानकारी-हेतु सूचीपत्र मुफ्त मँगायें। विदेशोंमें निर्यातके लिये मूल्यका अलग सूचीपत्र उपलब्ध है।
- ■ जो पुस्तकें अन्य भाषाओंमें छपी है उनका विवरण भाषाक्रममें भी दिया है।

कोड		मूल्य	डाकखर्च
858	श्रीरामचरितमानस—सुन्दरकाण्ड मूल लघु आकार	२	■ १ ०
86	मानसपीयूष (श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड)	७०० ०	■ ६ ०
75 / 76	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सटीक दो खण्डोंमें सेट	१५	■ १६
77	केवल भाषा	१ ०	■ १
583	(मूलमात्रम्)	८	■ १
78	सुन्दरकाण्ड मूलमात्रम्	१ ०	■ ३
452 / 453	(अँग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट)	२२	■ १९ ०
1002	सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क	६५ ०	■ ८
74	अध्यात्मरामायण—सटीक, सजिल्द	४	■ ५
845	—(तेलगू)	५	■ ७
223	मूल रामायण	१	■ १
935	सं० रामायण—(गुजराती)	२ ०	■ १ ०
460	रामाश्वमेध	१ ०	■ २
401	मानसमें नाम वन्दना	५ ०	▲ २
103	मानसरहस्य	२४	■ ५ ०
104	मानस शङ्का समाधान	८ ०	■ २ ०
	अन्य तुलसीकृत साहित्य		
105	विनयपत्रिका—सरल भावार्थसहित	१७	■ ३ ०
106	गीतावली	१७	■ ३ ०
107	दोहावली	९ ०	■ २ ०
108	कवितावली	८	■ २ ०
109	रामाज्ञाप्रश्न	४	■ २
110	श्रीकृष्णगीतावली	३ ०	■ १
111	जानकीमंगल	२	■ १
112	हनुमानबाहुक	२	■ १ ०
113	पार्वतीमंगल	२	■ १
114	वैराग्यसंदीपनी	१	■ १
115	बरवै रामायण	१	■ १
	सूर साहित्य		
555	श्रीकृष्ण माधुरी	१२	■ ३
61	सूरविनय पत्रिका	१२	■ ३
62	श्रीकृष्ण बाल माधुरी	१३	■ ३
735	सूररामचरितावली	११	■ ३ ०
547	विरह पदावली	१	■ ३ ०
864	अनुराग पदावली	१२ ०	■ ३ ०
	पुराण उपनिषद् आदि		
28	श्रीमद्भागवत सुधासागर—सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, सचित्र सजिल्द	१	■ १ ०
25	शुकसुधासागर बृहदाकार, बड़े टाइपोंमें	२२	■ २
26 / 27	श्रीमद्भागवत महापुराण—सटीक दो खण्डोंमें सेट	१८	■ १८
564 565	श्रीमद्भागवत महापुराण अँग्रेजी सेट	१५	■ १६
29	श्रीमद्भागवत मूल मोटा टाइप	७५	■ ८
124	श्रीमद्भागवत महापुराण—मूल मझला	५	■ ६
1092	भागवतस्तुति संग्रह—भावानुवाद	५५	■ ६
30	श्रीप्रेम सुधासागर—श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धका भाषानुवाद, सचित्र, सजिल्द	३	■ ५
31	भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र, सजिल्द	१६	■ ३
7 8	महाभारत—हिन्दी टीका सहित, सजिल्द, सचित्र [छ खण्डोंमें] सेट	७२	■ ६२
38	महाभारत खिलभाग हरिवंशपुराण—हिन्दी टीका	१	■ ११
637	जैमिनीय अश्वमेधपर्व	५	■ ७
39 511	संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें)	१५	■ १३
44	संक्षिप्त पद्मपुराण सचित्र, सजिल्द	८५	■ १

कोड		मूल्य	डाकखर्च
769	सं० शिवपुराण मोटा टाइप	८ ०	■ १
539	संक्षिप्त मार्कण्डेय ब्रह्मपुराणाङ्क	७५. ०	■ ९
46	संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत केवल भाषा	७ ०	■ १ ०
48	श्रीविष्णुपुराण सानुवाद, सचित्र सजिल्द	५००	■ ६ ०
640	नारद विष्णु पुराणाङ्क	८	■ १ ०
279	संक्षिप्त स्कन्दपुराण सचित्र सजिल्द	१	■ ११
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	७५	■ ८
517	गर्गसंहिता भगवान् कृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन सचित्र सजिल्द	७ ०	■ ७
47	पातञ्जलयोग प्रदीप पातञ्जलयोग सूत्रोंका वर्णन	७५	■ ७ ०
135	पातञ्जलयोगदर्शन	७ ०	■ ७
582	छान्दोग्योपनिषद् सानुवाद शांकरभाष्य	५ ०	■ १ ०
577	बृहदारण्यकोपनिषद्	७	■ ५
66	ईशादि नौ उपनिषद् अन्वय हिन्दी व्याख्या	३	■ ८ ००
67	ईशावास्योपनिषद् सानुवाद, शांकरभाष्य	३	■ ५
846	(तेलगू)	२	■ १ ०
68	केनोपनिषद् सानुवाद, शांकरभाष्य	७ ०	■ १
578	कठोपनिषद्	८	■ १
69	माण्डूक्योपनिषद्	१५	■ ३ ०
513	मुण्डकोपनिषद्	६	■ १
70	प्रश्नोपनिषद्	६	■ १ ०
71	तैत्तिरीयोपनिषद्	१५	■ ३ ०
72	ऐतरेयोपनिषद्	५	■ १
73	श्वेताश्वतरोपनिषद्	१३	■ २ ०
65	वेदान्त दर्शन हिन्दी व्याख्यासहित, सजिल्द	३	■ ४
639	श्रीनारायणीयम् सानुवाद	२५	■ ४
908	मूलम् (तेलगू)	१	■ ३
201	मनुस्मृति दूसरा अध्याय सानुवाद		
	भक्त चरित्र		
40	भक्त चरिताङ्क सचित्र सजिल्द	८	■ ९
51	श्रीतुकाराम चरित जीवनी और उपदेश	२२ ०	■ ४
121	एकनाथ चरित्र	१ ०	■ २
53	भागवतरत्न प्रह्लाद	११	■ २
123	चैतन्य चरितावली सम्पूर्ण एक साथ	८ ००	■ ८
751	देवर्षि नारद	८	■ २
167	भक्त भारती		
168	भक्त नरसिंह मेहता	७	■ २ ०
613	(गुजराती)	७ ०	■ २
169	भक्त बालक गोविन्द मोहन आदिकी गाथा	३	■ १
68	(तेलगू)	४	■ १ ०
721	(कन्नड)	४	■ १
170	भक्त नारी मीरा, शबरी आदिकी गाथा	३	■ १
171	भक्त पञ्चरत्न रघुनाथ दामोदर आदिकी	६	■ १
682	भक्त पञ्चरत्न (तेलगू)	५.०	■ १
172	आदर्श भक्त शिबि रन्तिदेव आदिकी गाथा	५.	■ १
	657 (तेलगू) ५ 920 (कन्नड) ५		
173	भक्त सप्तरत्न दामा रघु आदिकी भक्तगाथा	५.	■ १
174	भक्त चन्द्रिका सख्, विमल आदि छ भक्तगाथा	४	■ १
89	भक्त चन्द्रिका (गुजराती) ४ 931 (कन्नड) ५ 91 (तेलगू) ५		

कोड		मूल्य	डाकखर्च
175	भक्त कुसुम जगन्नाथ आदि छ भक्तगाथा	४ ०	■ १ ००
176	प्रेमी भक्त बिल्वमंगल, जयदेव आदि	५ ०	■ १ ०
177	प्राचीन भक्त मार्कण्डेय उत्तङ्क आदि	७	■ २ ००
178	भक्त सरोज गङ्गाधरदास श्रीधर आदि	५ ०	■ १
179	भक्त सुमन नामदेव राँका बाँका आदिकी भक्तगाथा	५ ०	■ १ ०
180	भक्त सौरभ व्यासदास प्रयागदास आदि	५	■ १
181	भक्त सुधाकर रामचन्द्र, लाखा आदिकी भक्तगाथा	५ ०	■ १ ००
875	(गुजराती)	५ ०	■ १ ०
182	भक्त महिलारत्न रानी रत्नावती हरदेवी आदि	५	■ १ ०
183	भक्त दिवाकर सुव्रत, वैश्वानर आदि आठ भक्तगाथा	५	■ १ ०
184	भक्त रत्नाकर माधवदास विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	५.	■ १ ००
185	भक्तराज हनुमान् हनुमान्‌जीका जीवनचरित्र	३ ०	■ १ ०
	854 (उड़िया) ३ ० 609 (तमिल) ६ ०		
	767 (तेलगू) ३ ०		
	835 (कन्नड) ४ 806 (गुजराती) ३		
186	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	३ ०	■ १ ००
187	प्रेमी भक्त उद्धव	२ ५ ०	■ १ ००
	642 (तमिल) ५ 686 (तेलगू) ३		
	890 (गुजराती) ३		
188	महात्मा विदुर	२५	■ १
	947 (गुजराती) ३		
	741 (तमिल) ३ ०		
136	विदुर नीति	६.	■ १ ०
138	भीष्म पितामह	८	■ १
691	(तेलगू)	८.	■ १
189	भक्तराज ध्रुव	३ ०	■ १
688	(तेलगू)	२	■ १
292	नवधा भक्ति भरतजीमें नवधा भक्ति सहित	३	▲ १ ००
	परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन		
683	तत्त्वचिन्तामणि (सभी खण्ड एक साथ ग्रन्थाकार	६ ०	■ १० ००
814	साधन कल्पतरु	५० ००	■ ८ ०
527	प्रेमयोगका तत्त्व (हिन्दी)	९.०	■ २
521	प्रेमयोगका तत्त्व (अँग्रेजी अनुवाद)	६	▲ २ ०
242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा	१	■ २ ०
760	" (तेलगू)	३	▲ १ ०
528	ज्ञानयोगका तत्त्व (हिन्दी)	८	▲ २ ०
520	(अँग्रेजी अनुवाद)	८ ०	▲ २ ०
266	कर्मयोगका तत्त्व (भाग १)	६	▲ १ ०
267	" (भाग २)	७	▲ १
303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय (भक्तियोगका तत्त्व भाग १)	६	▲ १
298	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य (भक्तियोगका तत्त्व भाग २)	६	▲ १ ०
243	परम साधन (भाग १)	६	▲ १ ०
244	" (भाग २)	५	▲ १ ०
245	आत्मोद्धारके साधन भाग १	७	▲ १ ०
335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति (आत्मोद्धारके साधन भाग २)	६ ०	▲ १ ०
877	" " (गुजराती)	६	▲ ३
5 9	अमूल्य समयका सदुपयोग	५ ०	▲ १ ००
666	" " (तेलगू)	५	▲ १ ०

कोड	मूल्य	डाकखर्च
246 मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग १)	६०	▲ १
247 (भाग २)	६	▲ १ ०
611 इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति	५०	▲ १०
588 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	६०	▲ १
1007 (तमिल) ८.		
1015 भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भावकी प्रधानता	५०	▲ १
248 कल्याणप्राप्तिके उपाय (त चि म भा १)	९	▲ २
75 (बँगला)	८	▲ २
249 शीघ्र कल्याणके सोपान (भाग २) (खण्ड १)	८	▲ २०
250 ईश्वर और संसार (भाग २) (खण्ड २)	७	▲ २०
519 अमूल्य शिक्षा (भाग ३) (खण्ड १)	६ ०	▲ १ ०
253 धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि (भाग) (खण्ड २)	६	▲ १
251 अमूल्य वचन (भाग-४) (खण्ड-१)	८०	▲ २
252 भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा (भाग-४) (खण्ड २)	७	▲ २
254 व्यवहारमें परमार्थकी कला (भाग ५) (खण्ड १)	७ ०	▲ १
255 श्रद्धा विश्वास और प्रेम (भाग ५) (खण्ड २)	८ ०	▲ २
258 तत्त्वचिन्तामणि (भाग ६) (खण्ड १)	५	▲ १
257 परमानन्दकी खेती (भाग ६) (खण्ड २)	५	▲ १
260 समता अमृत और विषमता विष (भाग ७) (खण्ड १)	६	▲ २
259 भक्ति भक्त भगवान् (भाग ७) (खण्ड २)	७	▲ २०
256 आत्मोद्धारके सरल उपाय	६	▲ २
261 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३०	▲ १
839 (कन्नड) २		
689 (तेलगू) ३ 643 (तमिल) ३		
889 (गुजराती) २		
262 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	५०	▲ १
768 (तेलगू) ५ 833 (कन्नड) ६.०		
933 (गुजराती) ५		
263 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	४	▲ १
766 (तेलगू) ४० 720 (कन्नड) ५०		
894 (गुजराती) ४		
264 मनुष्य जीवनकी सफलता (भाग १)	६	▲ १
265 (भाग २)	५	▲ १
268 परमशान्तिका मार्ग (भाग १)	६.	▲ १
269 (भाग २)	२६	▲ १
543 परमार्थ सूत्र संग्रह	५	▲ १
769 साधन नवनीत	५	▲ १
945 (कन्नड)	७ ०	▲ १
599 हमारा आश्चर्य	५.	▲ १
681 रहस्यमय प्रवचन	५	▲ १
1021 आध्यात्मिक प्रवचन	५	▲ १
1022 निष्काम श्रद्धा और प्रेम	५.	▲ १
273 नल दमयन्ती	२ ००	▲ १
645 (तमिल) ५. 836 (कन्नड) २ ०		
274 महत्त्वपूर्ण चेतावनी	३०	▲ १
276 परमार्थ पत्रावली बँगला (भाग १)	३५	▲ १ ०
277 उद्धार कैसे हो?-५१ पत्रोंका संग्रह	४	▲ १
278 सच्ची सलाह ८ पत्रोंका संग्रह	५.	▲ १
280 साधनोपयोगी पत्र ७२ पत्रोंका संग्रह	४०	▲ १
281 शिक्षाप्रद पत्र-७ पत्रोंका संग्रह	६ ०	▲ २
282 पारमार्थिक पत्र ९१ पत्रोंका संग्रह	६ ०	▲ २

कोड	मूल्य	डाकखर्च
284 अध्यात्मविषयक पत्र–५४ पत्रोंका संग्रह	४०	▲ १
283 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	५ ०	▲ १
480 (अँग्रेजी)	४	▲ १०
716 (कन्नड)	५ ०	▲ १
680 उपदेशप्रद कहानियाँ	६	▲ १०
818 (गुजराती)	५ ०	▲ १
891 प्रेममें विलक्षण एकता	५०	▲ १
958 मेरा अनुभव	५	▲ १
1120 सिद्धान्त एव रहस्यकी बातें	८ ०	▲ १०
320 वास्तविक त्याग	४	▲ १
285 आदर्श भ्रातृप्रेम	३	▲ १ ०
286 बालशिक्षा	२ ००	▲ १ ००
690 (तेलगू) २ 719 (कन्नड़) २		
287 बालकोंके कर्तव्य	३ ०	▲ १
272 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा	५	▲ १ ०
834 (कन्नड)	६ ००	▲ १
290 आदर्श नारी सुशीला	२०	▲ १०
312 (बँगला) २ ० 665 (तेलगू) ३०		
644 (तमिल) ३		
291 आदर्श देवियाँ	२०	▲ १ ०
300 नारीधर्म	२ ०	▲ १
293 सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय	१ ०	▲ १
1050 (गुजराती) १ ००		
294 संत महिमा	१	▲ १
1038 (उडिया) १ 1048 (गुजराती) १ ०		
295 सत्सगकी कुछ सार बातें (हिन्दी)	१ ००	▲ १
296 (बँगला) ५		
466 (तमिल) १ 678 (तेलगू) १०		
844 (गुजराती) १ 1040 (उडिया) १०		
301 भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म	१	▲ १ ०
310 सावित्री और सत्यवान (हिन्दी)	२	▲ १
609 (तमिल) २ 664 (तेलगू) १५		
717 सावित्री सत्यवान और आदर्श नारी सुशीला (कन्नड)	३	▲ १
299 श्रीप्रेमभक्ति प्रकाश ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	२	▲ १
907 श्रीप्रेमभक्ति प्रकाशिका (तेलगू)	१	▲ १ ००
304 गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति	१	▲ १ ०
1060 (गुजराती) १		
703 (असमिया)	१०	▲ १ ०
536 गीता पढ़नेसे लाभ सत्यकी शरणसे मुक्ति (तमिल)	३	▲ १
305 गीताका तात्त्विक विवेचन एव प्रभाव	२०	▲ १
309 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय (कल्याण प्राप्तिकी कई युक्तियाँ)	२ ००	▲ १
311 वैराग्य परलोक और पुनर्जन्म	१	▲ १
306 भगवान् क्या हैं?	१	▲ १
307 भगवान्की दया	१	▲ १ ०
1051 (गुजराती) १		
1039 भगवान्की दया एव भगवत्कृपा (उडिया)	१ ००	▲ १०
725 भगवान्की दया एवं भगवान्का हेतु रहित सौहार्द (कन्नड)	२ ०	▲ १
672 सत्यकी शरणसे मुक्ति (तेलगू)	१ ०	▲ १०
316 ईश्वर साक्षात्कार नाम जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति	१	▲ १
722 सत्यकी शरणसे मुक्ति और गीता पढनेके लाभ (कन्नड)	२	▲ १
314 व्यापार सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य	१०	▲ १ ०
623 धर्मके नामपर पाप	१	▲ १०
315 चेतावनी और सामयिक चेतावनी	१	▲ १०
1056 (गुजराती) १		

कोड	मूल्य	डाकखर्च
318 ईश्वर दयालु और न्यायकारी है अवतारका सिद्धान्त	१	▲ १ ००
270 भगवान्का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते है ?	१	▲ १
673 भगवान्का हेतुरहित सौहार्द (तेलगू)	१	▲ १ ०
271 भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?	१	▲ १०
302 ध्यान और मानसिक पूजा	१०	▲ १०
326 प्रेमका सच्चा स्वरूप और शोक नाशके उपाय	१	▲ १
324 श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव		
328 चतु श्लोकी भागवत	१ ०	▲ १०

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी) के अनमोल प्रकाशन

कोड	मूल्य	डाकखर्च
820 भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)	५	■ ८
050 पदरत्नाकर	३५	■ ५
049 श्रीराधा माधव चिन्तन	४	■ ६ ०
058 अमृत कण	१४ ०	■ ३
332 ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	१५	■ २०
333 सुख शान्तिका मार्ग	११	■ २०
343 मधुर	११ ०	■ २
056 मानव जीवनका लक्ष्य	९	■ २
331 सुखी बननेके उपाय	९.	■ २ ००
334 व्यवहार और परमार्थ	१	■ २०
514 दु खमें भगवत्कृपा	९	■ २०
386 सत्सग सुधा	९	■ २
342 संतवाणी ढाई हजार अनमोल बोल	१ ०	■ २
850 (तमिल) (भाग १)	६०	▲ २
952 ( ) (भाग २)	६०	▲ २
853 ( ) (भाग ३)	६	▲ २
347 तुलसीदल	१	■ २ ०
339 सत्सगके बिखरे मोती	९	■ २
349 भगवत्प्राप्ति एव हिन्दू संस्कृति	१२	■ ३
350 साधकोंका सहारा	१५ ०	■ ३
351 भगवच्चर्चा (भाग ५)	१५	■ ३
352 पूर्ण समर्पण	१५	■ ३
353 लोक परलोक सुधार (भाग १)	८	▲ २
354 आनन्दका स्वरूप (लोक परलोक सुधार भाग २)	८५	■ २
355 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर २९२ (भाग ३)	१	■ ३
356 शान्ति कैसे मिले ?- (लोक परलोक सुधार भाग ४)	१२	■ ३ ००
357 दु ख क्यों होते है ? (भाग ५)	१	■ ३०
348 नैवेद्य	९	■ २
337 दाम्पत्य जीवनका आदर्श-	६	▲ १
905 (तेलगू)	८०	▲ १
336 नारीशिक्षा	७	▲ १०
340 श्रीरामचिन्तन	८	▲ २
338 श्रीभगवन्नाम चिन्तन	८	▲ २
345 भवरोगकी रामबाण दवा	७	▲ १०
346 सुखी बनो	६ ०	▲ १ ०
341 प्रेमदर्शन	८	▲ २
358 कल्याण कुज (भाग १)	६	▲ १
359 भगवान्की पूजाके पुष्प (भाग २)	६	▲ १
360 भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (भाग ३)	७ ०	▲ १
361 मानव कल्याणके साधन (क कु भाग ४)	१ ०	■ २
362 दिव्य सुखकी सरिता (भाग ५)	५	▲ १ ०
363 सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ (भाग ६)	५	▲ १०
364 परमार्थकी मन्दाकिनी (भाग ७)	४ ०	▲ १
366 मानव धर्म	५	▲ १

कोड मूल्य डाकखर्च

367 दैनिक कल्याण सूत्र ४० ▲ १
368 प्रार्थना इक्कीस प्रार्थनाओंका संग्रह २५ ▲ १०
865 (उड़िया) ३०० ▲ १
777 प्रार्थना पीयूष ३०० ▲ १०
369 गोपीप्रेम २ ▲ १००
370 श्रीभगवन्नाम २० ▲ १००
373 कल्याणकारी आचरण १०० ▲ १०
374 साधन पथ सचित्र ३०० ▲ १
375 वर्तमान शिक्षा २ ▲ १०
376 स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी ३०० ▲ १
377 मनको वश करनेके कुछ उपाय १ ▲ १००
378 आनन्दकी लहरें १०० ▲ १००
848 (बँगला) १० ▲ १०
1011 (उड़िया) १०० ▲ १००
379 गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य ३ ▲ १०
380 ब्रह्मचर्य २०० ▲ १००
1041 ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके उपाय (उड़िया) १०० ▲ १००
381 दीनदुखियोंके प्रति कर्तव्य १० ▲ १००
382 सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन २ ▲ १०
344 उपनिषदोंके चौदह रत्न ४ ▲ १०
371 राधा माधव रस सुधा (षोडशगीत) सटीक १५ ▲ १
384 विवाहमें दहेज १० ▲ १००
809 दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय और जीवन कैसे बनें १०० ▲ १०

परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

465 साधन सुधा सिन्धु ७० ■ १०००
400 कल्याण पथ ५० ▲ २
605 जित देखूँ तित तू ५ ▲ २०
406 भगवत्प्राप्ति सहज है ५.० ▲ २
535 सुन्दर समाजका निर्माण ६०० ▲ २००
403 जीवनका कर्तव्य ५० ▲ २
436 कल्याणकारी प्रवचन (हिन्दी) ४ ▲ १००
404 (गुजराती) ७
816 (बंगला) ३०
405 नित्ययोगकी प्राप्ति- ५.० ▲ १०
407 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता ५.० ▲ १००
593 (कन्नड) ५००
881 मराठी ४
408 भगवान्‌से अपनापन ३ ▲ १०
861 सत्संग मुक्ताहार ३ ▲ १०
1003 (उड़िया) ३ ▲ १०
860 मुक्तिमें सबका अधिकार १०० ▲ १००
409 वास्तविक सुख ४० ▲ १०
411 साधन और साध्य ३ ▲ १
880 (मराठी) ३ 956 (बंगला) २
412 तात्त्विक प्रवचन (हिन्दी) ३ ▲ १
1004 (उड़िया) ३
955 (बंगला) ३०
413 (गुजराती) ४ 885 (मराठी) ३०
414 तत्त्वज्ञान कैसे हो ? ४० ▲ १
410 जीवनोपयोगी प्रवचन ४० ▲ १
822 अमृत बिन्दु ५.० ▲ १०
940 (गुजराती) ४०० ▲ १
821 किसान और गाय १० ▲ १
416 जीवनका सत्य ४० ▲ १
942 ,, (गुजराती) ३ ▲ १
417 भगवन्नाम २ ▲ १
898 ,, (मराठी) ३० ▲ १
418 साधकोंके प्रति ३ ▲ १
419 सत्संगकी विलक्षणता २ ▲ १
545 जीवनोपयोगी कल्याण मार्ग २ ▲ १
420 मातृशक्तिका घोर अपमान २ ▲ १

805 (तमिल) २०० 849 (बंगला) १००
882 मराठी २०० 939 (गुजराती) २०
421 जिन खोजा तिन पाइयाँ ३ ▲ १०
422 कर्मरहस्य (हिन्दी) ३ ▲ १००
423 (तमिल) ३००
325 (कन्नड) २५
817 (उड़िया) २
424 वासुदेव सर्वम् ३० ▲ १०
425 अच्छे बनो ३ ▲ १०
426 सत्संगका प्रसाद ३०० ▲ १०
946 (गुजराती) ५ ▲ १०
1019 सत्यकी खोज ४० ▲ १
1035 सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण १० ▲ १००
431 स्वाधीन कैसे बनें १०० ▲ १
702 यह विकास है या विनाश जरा सोचिये १ ▲ १
652 हम कहाँ जा रहे हैं ? विचार करें ५ ▲ १
589 भगवान् और उनकी भक्ति ४ ▲ १
617 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम ३ ▲ १०
625 (बँगला) ३० 758 (तेलगू) ३०
796 (उड़िया) २० 831 (कन्नड) २
941 (गुजराती) २००
427 गृहस्थमें कैसे रहें ?- (हिन्दी) ५.०० ▲ १
428 (बँगला) ३
429 (मराठी) ६ 128 (कन्नड) ४००
430 (उड़िया) ४० 472 (अँग्रेजी) ३
553 (तमिल) ६० 733 (तेलगू) ४००
943 (गुजराती) ४००
432 एकै साधे सब सधै ३ ▲ १
655 (तमिल) ४ 761 (तेलगू) ५००
607 सबका कल्याण कैसे हो ? (तमिल) २ ▲ १०
433 सहज साधना ३ ▲ १
903 सहज साधना (बंगला) २ ▲ १०
434 शरणागति (हिन्दी) ३ ▲ १
568 (तमिल) ३ 757 (उड़िया) २०
759 (तेलगू) ३
435 आवश्यक शिक्षा ३० ▲ १०
1012 पद्मामृत १० ■ १०
1037 हे मेरे नाथ मैं आपको भूलूँ नहीं १० ■ १
1072 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ३ ▲ १
730 संकल्प पत्र २ ▲ १००
515 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन १ ▲ १
938 (गुजराती) १ 606 (तमिल) २
770 अमरताकी ओर ४० ▲ १
438 दुर्गतिसे बचो (हिन्दी) १ ▲ १
449 (बँगला) (गुरुतत्त्व सहित) २ 900 मराठी १००
439 महापापसे बचो (हिन्दी) १० ▲ १
451 (बँगला) १ 731 (तेलगू) १०
549 (उर्दू) १२५, 597 (कन्नड़) १
591 महापापसे बचो संतानका कर्तव्य (तमिल) ३ ▲ १०
440 सच्चा गुरु कौन ?- १ ▲ १
798 गुरु तत्त्व (उड़िया) १० ▲ १
732 नित्य स्तुति आदित्य हृदयस्तोत्र (तेलगू) १० ■ १
736 ,, ,, (कन्नड़) १० ■ १०
781 अलौकिक प्रेम १ ▲ १
443 संतानका कर्तव्य (बँगला) १ ▲ १
884 मराठी १ 797 (उड़िया) १
444 नित्य स्तुति और प्रार्थना १० ▲ १
729 सार संग्रह एवं सत्संगके अमृत कण १ ▲ १
445 हम ईश्वरको क्यों मानें ? (हिन्दी) १ ▲ १
450 (बँगला) १ 554 (नेपाली) २५

446 आहार शुद्धि (मराठी) १०० ▲ १००
451 (तमिल) १०० ▲ १००
745 भगवत्तत्त्व १ ▲ १०
632 सब जग ईश्वररूप है ३० ▲ १०
447 मूर्तिपूजा नाम जपकी महिमा १०० ▲ १०
852 उड़िया १०० 469 (बँगला) १००
569 (तमिल) १
734 (तेलगू) २०० 883 (मराठी) १
723 नाम जपकी महिमा आहार शुद्धि (कन्नड) २ ▲ १
671 (तेलगू) १ 550 (तमिल) १०

नित्यपाठ साधन भजन हेतु

592 नित्यकर्म पूजा प्रकाश ३० ■ ३००
610 व्रत परिचय २० ■ ३००
045 एकादशी व्रतका माहात्म्य ४ ■ १००
052 स्तोत्ररत्नावली सानुवाद १५०० ■ २
914 (तेलगू) १५.०
117 दुर्गासप्तशती मूल मोटा टाइप १ ■ २००
876 दुर्गासप्तशती मूल गुटका ५. ■ १
909 मूलम (तेलगू) ८०० ■ २००
843 मूल (कन्नड) ६ ■ १०
118 सानुवाद ११० ■ २
489 सजिल्द २०० ■ २०
866 केवल हिन्दी १० ■ २
819 श्रीविष्णुसहस्रनाम शांकरभाष्य १२०० ■ २०
206 विष्णुसहस्रनाम सटीक ३ ■ १०
226 मूलपाठ १०
740 (मलयालम) १ 670 (तेलगू) १००
737 (कन्नड) २ 794 (तमिल) २००
937 (गुजराती) १०
509 सूक्ति सुधाकर सूक्ति संग्रह १० ■ ३००
207 रामस्तवराज (सटीक) २०० ■ १०
211 आदित्य हृदयस्तोत्रम् हिन्दी अँग्रेजी अनुवाद सहित १० ■ १
224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र भक्त बिल्वमंगलरचित २०० ■ १
674 (तेलगू) २०० ■ १०
231 रामरक्षास्तोत्रम् १ ■ १०
912 सटीक (तेलगू) १० ■ १
675 सक्षिप्त रामायणम् और रामरक्षास्तोत्रम् (तेलगू) २०० ■ १
715 महामन्त्रराजस्तोत्रम् २५ ■ १०
704 श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् २०० ■ १०
705 श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम् २ ■ १०
706 श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम् २०० ■ १०
707 श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम् २० ■ १
708 श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम् २ ■ १०
709 श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम् २० ■ १
710 श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रम् २०० ■ १०
711 श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम् २० ■ १०
712 श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम् २ ■ १०
713 श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम् २ ■ १०
810 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम् २० ■ १
495 दत्तात्रेय वज्रकवच सानुवाद २० ■ १
229 नारायणकवच सानुवाद १०० ■ १
230 अमोघशिवकवच सानुवाद १० ■ १०
563 शिवमहिम्नस्तोत्र २० ■ १०
054 भजन संग्रह पाँचों भाग एक साथ १८. ■ ४०
063 पद रत्नाकर ५. ■ १
140 श्रीरामकृष्णलीला भजनावली ३२८ भजनसंग्रह १ ■ २०
142 चेतावनी पद संग्रह (दोनों भाग) १३ ■ २
144 भजनामृत ६७ भजनोंका संग्रह ५. ■ १०
153 आरती संग्रह १ २ आरतियोंका संग्रह ४ ■ १०
807 सचित्र आरतियाँ ८ ■ १०
385 नारद भक्ति सूत्र सानुवाद १० ▲ १
330 नारद भक्ति सूत्र सानुवाद (बँगला) १ ▲ १

कोड		मूल्य	डाकखर्च
499	नारद भक्ति सूत्र सानुवाद (तमिल)	१ ०	▲ १
208	सीतारामभजन	२ ०	■ १
221	हेरामभजन दो माला (गुटका)	२ ०	■ १ ०
222	हेरामभजन १४ माला	७	■ २
576	विनय पत्रिकाके पैंतीस पद	२ ०	■ १ ०
225	गजेन्द्रमोक्ष सानुवाद हिन्दी पद्य भाषानुवाद	१ ०	■ १ ०
677	सानुवाद, (तेलगू)	१ ०	■ १ ०
699	गङ्गालहरी	१	■ १ ०
232	श्री रामगीता	२	■ १ ०
383	भगवान् कृष्णाकी कृपा	१	▲ १
1054	हनुमानचालीसा हिन्दी भावार्थसहित	३	■ १ ०
227	हनुमानचालीसा (पाकेट साइज)	१ ०	■ १
695	(छोटी साइज)	१	■ १
	600 (तमिल) २ 626 (बँगला) १ ०		
	676 (तेलगू) १ ० 828 (गुजराती) १		
	738 (कन्नड) १ 856 (उडिया) १		
228	शिवचालीसा	१	■ १ ०
851	दुर्गा चालीसा विन्ध्येश्वरी चालीसा	१	■ १
1033	दुर्गा चालीसा लघु	१ ०	■ १ ०
203	अपरोक्षानुभूति	२	■ १ ०
139	नित्यकर्म प्रयोग	६	■ २
524	ब्रह्मचर्य और सध्या गायत्री	२	■ १
210	सन्ध्योपासनविधि एव तर्पण बलिवैश्वदेवविधि मन्त्रानुवादसहित	३	■ १ ०
236	साधकदैनन्दिनी	२	■ १ ०
614	सन्ध्या	१	■ १
	बालोपयोगी पाठ्यपुस्तकें		
573	बालक अङ्क (कल्याण वर्ष २७)	८	■ १
461	हिन्दी बालपोथी (भाग १)	२	■ १ ०
212	(भाग २)	२	■ १ ००
684	(भाग ३)	२	■ १ ०
764	(भाग ४)	४	■ १
765	(भाग ५)	४	■ १
125	रंगीन (भाग १)	३	■ १
216	बालककी दिनचर्या	२	■ १
214	बालकके गुण	२ ५	■ १
217	बालकोंके सीख	२	■ १ ०
219	बालकके आचरण	२	■ १ ०
218	बाल अमृत वचन	२	■ १ ०
696	बाल प्रश्नोत्तरी	२	■ १
215	आओ बच्चों तुम्हें बतायें	२	■ १ ०
213	बालकोंकी बोल चाल	२ ०	■ १
145	बालकोंकी बातें	६ ०	■ २
146	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	५ ०	■ २
150	पिताकी सीख	६	■ २
197	सस्कृति माला (भाग १)	२	■ १
516	आदर्श चरितावली	३	■ १
396	आदर्श ऋषिमुनि	३	■ १
39	आदर्श देशभक्त	३	■ १
398	आदर्श सम्राट्	३	■ १
399	आदर्श सत	३	■ १
402	आदर्श सुधारक	४	■ १
897	लघु सिद्धान्त कौमुदी	१	■ ३
148	वीर बालक	४ ०	■ १
149	गुरु और माता पिताके भक्त बालक	४ ०	■ १
152	सच्चे ईमानदार बालक	३	■ १
155	दयालु और परोपकारी बालक बालिकाएँ	४	■ १
156	वीर बालिकाएँ	३	■ १
727	स्वास्थ्य सम्मान और सुख	२	■ १
09	रामायण मध्यमा परीक्षा पाठ्य पुस्तक	७५	■ १

कोड		मूल्य	डाकखर्च
	सर्वोपयोगी प्रकाशन		
698	मार्क्सवाद और रामराज्य स्वामी करपात्रीजी	५ ०	■ ५ ०
202	मनोबोध	४ ००	■ १
746	भ्रमण नारद	२ ०	■ १ ०
747	सप्तमहाव्रत	२ ००	■ १ ०
542	ईश्वर	२ ००	■ १ ०
196	मननमाला	१ २५	■ १
57	मानसिक दक्षता (मनोवैज्ञानिक विश्लेषण)	१५	■ ३ ०
59	जीवनमें नया प्रकाश (ले रामचरण महेन्द्र)	१ ००	■ २
60	आशाकी नयी किरणे	११ ०	■ २ ००
132	स्वर्णपथ	८	■ २ ०
55	महकते जीवनफूल	१५ ०	■ ३ ०
64	प्रेमयोग	१३	■ ३ ०
774	गीताप्रेस परिचय	४	■ १ ०
387	प्रेम सत्सग सुधामाला	१ ०	■ २ ०
668	प्रश्नोत्तरी	१	■ १
501	उद्धव सन्देश	१०	■ २ ०
191	भगवान् कृष्ण	३५	■ १ ००
	601 (तमिल) ५ ००		
	641 (तेलगू) ४ 895 (गुजराती) ३		
193	भगवान् राम	३ ०	■ १
195	भगवान्पर विश्वास	३ ००	■ १
120	आनन्दमय जीवन	१०	■ २
130	तत्त्व विचार	९	■ २
133	विवेक चूडामणि	८	■ २
701	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२	▲ १ ०
	826 (उडिया) २ 762 (बँगला) २		
	742 (तमिल) २५ 752 (तेलगू) २		
	802 (मराठी) २ 783 (अंग्रेजी) २		
	804 (गुजराती) २ 838 (कन्न*) २		
131	सुखी जीवन	७	■ १
122	एक लोटा पानी	८	■ २
888	परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनायें	८ ०	■ २ ०
134	सती द्रौपदी	७	■ २ ०
137	उपयोगी कहानियाँ	७ ०	■ १
	127 (तमिल) ५ 724 (कन्नड) ५ ०		
157	सती सुकला	३	■ १
147	चोखी कहानियाँ	४	■ १
	692 (तेलगू) ३ 646 (तमिल) ५		
159	आदर्श उपकार (पढो समझो और करो)	६ ०	■ २ ०
160	कलेजेके अक्षर ( )	७	■ २
161	हृदयकी आदर्श विशालता (पढो समझो और करो)	६	■ २ ०
162	उपकारका बदला ( )	६ ०	■ २ ०
163	आदर्श मानव हृदय( )	६	■ २ ००
164	भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा (पढो समझो और करो)	६	■ २ ०
165	मानवताका पुजारी ( )	६	■ २ ०
827	तेइस चुलबुली कहानियाँ	६	■ २ ०
166	परोपकार और सच्चाईका फल	६	■ २
510	असीम नीचता और असीम साधुता	६	■ २ ०
129	एक महात्माका प्रसाद	१२ ०	■ २ ०
151	सत्सगमाला एवं ज्ञानमणिमाला	६	■ २
	चित्रकथा		
190	बाल चित्रमय श्रीकृष्णलीला	८	■ २
192	रामायण	५	■ २ ०
1032		३	■ २ ०
869	कन्हैया (धारावाहिक)	६	■ २
647	(तमिल) (धारावाहिक)	७	■ २

कोड		मूल्य	डाकखर्च
870	गोपाल (हिन्दी) (धारावाहिक)	६ ००	■ २ ०
649	(तमिल) (धारावाहिक)	७ ०	■ २ ००
871	मोहन (हिन्दी)	६ ०	■ २ ०
650	(तमिल)	७ ००	■ २ ००
872	श्रीकृष्ण (हिन्दी)	८ ०	■ २ ०
648	(तमिल)	७ ००	■ २ ०
1018	नवग्रह चित्र एवं परिचय	८ ००	■ २ ०
79	रामलला	६ ००	■ २ ०
862	मुझे बचाओ मेरा क्या कसूर?	१५ ०	■ ३
529	श्रीराम	६ ०	■ २ ००
1017	नवीन संस्करण	१५ ०	■ ३ ००
829	अष्टविनायक	८	■ २
857	(मराठी)	६	■ २
204	ॐ नम शिवाय (द्वादश ज्योतिर्लिंगोंकी कथा)	१५.०	■ ३
787	जय हनुमान	१५	■ ३ ०
	887 (तेलगू) १२ ० 1009 (उडिया) १५ ०		
779	दशावतार	८ ००	■ २ ०
205	नवदुर्गा	८ ००	■ २
	825 (असमिया) ५ ०		
	808 (अंग्रेजी) ८ 863 (उडिया) ८ ०		
	1043 (बगला) ८ ००		
537	बाल चित्रमय बुद्धलीला	५ ०	■ १
194	बाल चित्रमय चैतन्यलीला	३ ०	■ १ ००
693	श्रीकृष्ण रेखा चित्रावली	६	■ २ ००
656	गीता माहात्म्यकी कहानियाँ	५ ०	■ १ ०
651	गोसेवाके चमत्कार	६	■ १ ०
	रंगीन चित्र प्रकाशन		
237	जयश्रीराम—भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१५	■
546	जयश्रीकृष्ण—भगवान् कृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१५ ००	■
1001	जगज्जननी श्री राधा	५	■
1020	श्रीराधाकृष्ण युगल छवि	५	■
491	हनुमान्जी (भक्तराज हनुमान्)	५.०	■
492	भगवान् विष्णु	५.	■
560	लड्डु गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप)	५	■
548	मुरलीमनोहर (भगवान् मुरलीमनोहर)	५	■
776	सीताराम युगल छवि	५	■
630	गोसेवा	५ ००	■
531	श्रीबाँके बिहारी	५	■
812	नवदुर्गा (माँ दुर्गाके नौ स्वरूपोंका चित्रण)	५	■
	कल्याण के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क		
635	शिवाङ्क (कल्याण वर्ष ८)	८ ००	■ १
41	शक्ति अङ्क (९)	८० ००	■ १०
616	योगाङ्क (१)	६० ००	■ ८ ०
627	सत अङ्क (१२)	१०	■ १०
604	साधनाङ्क (१५)	७५	■ ८ ००
028	श्रीभागवत सुधासागर (१६)	१ ०	■ १
1002	सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क (१८)	६५.००	■ ८.००
44	संक्षिप्त पद्मपुराण (१९)	८५	■ १
539	मार्कण्डेय ब्रह्मपुराणाङ्क (२१)	७५	■ ९
43	नारी अङ्क (२२)	७ ०	■ ८
659	उपनिषद् अङ्क (२३)	९	■ १ ०
518	हिन्दू सस्कृति अङ्क (२४)	१०० ००	■ १०
279	सं० स्कन्दपुराण (२५)	१०	■ ११
40	भक्त चरिताङ्क (२६)	८०	■ ९.

कोड	मूल्य	डाकखर्च
600 हनुमानचालीसा	२	■ १
601 भगवान् श्रीकृष्ण	५ ०	■ १
608 भक्तराज हनुमान्	६	■ १ ०
642 प्रेमी भक्त उद्धव	५	■ १
647 कन्हैया (धारावाहिक चित्रकथा)	७ ०	■ २
648 श्रीकृष्ण ( )	७ ०	■ २
649 गोपाल ( )	७ ०	■ २
650 मोहन ( )	७ ०	■ २
850 संतवाणी (भाग १)	६	▲ २
952 (भाग २)	६ ०	▲ २
953 (भाग ३)	६	▲ २
741 महात्मा विदुर	३ ०	■ १
1042 पंचामृत	२ ०	■ १
742 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२५	▲ १ ०
553 गृहस्थमें कैसे रहें ?	६	▲ २
536 गीता पढ़नेके लाभ सत्यकी शरणसे मुक्ति	३ ०	▲ १
591 महापापसे बचो सतानका कर्तव्य	३ ०	▲ १
466 सत्सगकी सार बातें	१	▲ १ ०
365 गोसेवाके चमत्कार		
423 कर्मरहस्य	३	▲ १
568 शरणागति	३	▲ १ ०
569 मूर्तिपूजा	१ ०	▲ १
551 आहारशुद्धि	१ ०	▲ १
645 नल दमयन्ती	५ ०	▲ १ ०
644 आदर्श नारी सुशीला	३	▲ १
643 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३	▲ १
550 नाम जपकी महिमा	१	▲ १ ००
499 नारद भक्ति सूत्र	१	▲ १
606 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२ ०	▲ १
609 सावित्री और सत्यवान	२	▲ १
805 मातृशक्तिका घोर अपमान	२	▲ १ ०
607 सबका कल्याण कैसे हो ?	२ ०	▲ १ ०
792 आवश्यक चेतावनी	२	▲ १ ०
655 एकै साधे सब सधै	४ ०	▲ १
1007 कडैयोनुक्कुम् कडवुल् काक्षि कन्नड़	८ ०	▲ ३
726 गीता पदच्छेद	२०	■ ४
718 गीता तात्पर्यके साथ	१	■ ३
661 गीता मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	४	■ १
736 नित्यस्तुति आदित्य हृदयस्तोत्रम्	१ ०	■ १
738 हनुमत स्तोत्रावली	१ ०	■ १
737 विष्णुसहस्रनाम	२ ०	■ १
721 भक्त बालक	४	■ १
951 भक्त चन्द्रिका	५ ०	■ १
716 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	४	■ १
724 उपयोगी कहानियाँ	५ ०	■ १
832 श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड	४	■ १
835 श्रीरामभक्त हनुमान	४	■ १
837 विष्णुसहस्रनाम सटीक	३ ०	■ १ ०
840 आदर्श भक्त	५	■ १ ०
841 भक्त सप्तरत्न	५ ०	■ १
842 ललितासहस्रनाम स्तोत	४ ०	■ १ ०
843 दुर्गासप्तशती मूल	६	■ २
390 गीतामाधुर्य	४५	▲ १
128 गृहस्थमें कैसे रहें ?	४ ०	▲ १
720 महाभारतके आदर्श पात्र	५.	▲ १ ०
945 साधन नवनीत	७	▲ १
717 सावित्री सत्यवान और आदर्श नारी सुशीला	३ ००	▲ १ ०
723 नाम जपकी महिमा और आहार शुद्धि	२ ०	▲ १ ०

कोड	मूल्य	डाकखर्च
725 भगवान्की दया एवं भगवान्का हेतुरहित सौहार्द	२	▲ १
722 सत्यकी शरणसे मुक्ति गीता पढ़नेके लाभ	२	▲ १
325 कर्म रहस्य	२५	▲ १
593 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	५ ०	▲ १ ०
597 महापापसे बचो	१ ०	▲ १
598 वास्तविक सुख	४ ००	▲ १
719 बाल शिक्षा	२ ०	▲ १
831 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	२ ००	▲ १
833 रामायणके आदर्श पात्र	६ ०	▲ २
834 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा	६	▲ १
836 नल दमयन्ती	२	▲ १
838 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२	▲ १
839 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	२	▲ १
असमिया		
714 गीता भाषा टीका पाकेट साइज	५ ०	■ १ ०
825 नवदुर्गा	५	■ २
624 गीतामाधुर्य	४ ०	▲ १
703 गीता पढ़नेके लाभ	१ ०	▲ १
उड़िया		
1100 गीता तत्त्व विवेचनी ग्रन्थाकार	७	■ १ ०
815 गीता श्लोकार्थसहित	१३	■ २
541 गीता मूल विष्णुसहस्रनामसहित	२ ०	■ १
1008 गीता पाकेट साइज	५ ००	■ १ ०
1009 जय हनुमान्	१५	■ ३ ०
863 नवदुर्गा	८	■ २
854 भक्तराज हनुमान्	३ ०	■ १
856 हनुमान चालीसा	१	■ १
754 गीतामाधुर्य	४	▲ १
1003 सत्सग मुक्ताहार	३	▲ १
1004 तात्त्विक प्रवचन	३	▲ १
798 गुरुतत्त्व	१	▲ १
797 सन्तानका कर्तव्य सच्चा आश्रय	१	▲ १ ०
817 कर्म रहस्य	२ ०	▲ १
1010 अष्ट विनायक	६	▲ २
1036 गीता मूल लघु आकार	२ ००	■ १ ००
1070 आदित्यहृदयस्तोत्र	१	■ १
1068 गजेन्द्रमोक्ष	१	■ १ ०
1069 नारायण कवच	१	■ १
1078 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	३ ००	▲ १ ०
1079 बाल शिक्षा	३	▲ १
1038 संत महिमा	१	▲ १
1039 भगवान्की दया एवं भगवत्कृपा	१	▲ १
1040 सत्संगकी कुछ सार बातें	१ ००	▲ १
1041 ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके कुछ उपाय	१ ००	▲ १ ०
1011 आनन्दकी लहरें	१	▲ १ ०
826 गर्भपात उचित या अनुचित	२	▲ १
757 शरणागति	२ ०	▲ १ ०
430 गृहस्थमें कैसे रहें ?	४	▲ १ ०
852 मूर्तिपूजा नाम जपकी महिमा	१ ०	▲ १ ०
865 प्रार्थना	३ ०	▲ १
796 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	२ ००	▲ १ ०
नेपाली		
394 गीतामाधुर्य		
554 हम ईश्वरको क्यों मानें		
उर्दू		
393 गीतामाधुर्य	८ ०	▲ २
549 महापापसे बचो		
590 मनकी खटपट कैसे मिटे	८	▲ १

कोड	मूल्य	डाकखर्च
तेलगू		
845 अध्यात्म रामायण	५	■ ७
908 नारायणीयम मूलम्	१ ००	■ ३
909 दुर्गासप्तशती मूलम्	८ ००	■ २
910 विवेक चूडामणि	१ ०	■ ३
846 ईशावास्योपनिषद्	२ ०	■ १ ०
771 गीता तात्पर्यसहित	१	■ २ ०
772 गीता पदच्छेद अन्वयसहित	१८ ०	■ ३
692 चोखी कहानियाँ	३	■ १ ०
682 भक्त पञ्चरत्न	५	■ १
686 प्रेमीभक्त उद्धव	३	■ १
687 आदर्शभक्त	५.	■ १
917 भक्त चन्द्रिका	५	■ १
685 भक्तबालक	४ ०	■ १
918 भक्त सप्तरत्न	५	■ १
929 महाभक्तलु प्रेमी भक्त	६	■ १
670 विष्णुसहस्रनाम मूल	१	■ १
1025 स्तोत्र कदम्बम्	२	■ १
688 भक्तराज ध्रुव	२ ०	■ १ ०
753 सुन्दरकाण्ड सटीक	३ ०	■ १
691 श्रीभीष्मपितामह	८	■ १
732 नित्यस्तुति आदित्यहृदयस्तोत्रम्	१ ००	■ १
904 प्रेम दर्शन (नारदभक्तिसूत्रम्)	९	■ ३
887 जय हनुमान पत्रिका	१२	■ ३
912 रामरक्षास्तोत्र सटीक	१	■ १
914 स्तोत्र रत्नावली	१५	■ २
905 आदर्श दाम्पत्य जीवनमु	८ ०	▲ १
906 भगन्तुडे आत्मेयुण्डु	२	▲ १
676 हनुमानचालीसा	१	■ १
641 भगवान् श्रीकृष्ण	४ ०	■ १
662 गीता मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	३	■ १
663 गीता भाषा	५	■ १
670 श्रीविष्णुसहस्रनाम मूलम्	१ ०	■ १
674 गोविन्द दामोदरस्तोत्र	२ ००	■ १
675 सं० रामायणम् रामरक्षास्तोत्रम्	२	■ १ ०
677 गजेन्द्रमोक्षम्	१	■ १
767 भक्तराज हनुमान्	३	■ १
801 ललिता सहस्रनाम	२	■ १
919 मंचि कथलु (उपयोगी कहानियाँ)	५	■ १ ०
920 परमार्थ पत्रावली	३ ०	▲ १ ०
913 भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनमु नाम स्मरणमें	१ ०	▲ १
766 महाभारतके आदर्श पात्र	४	▲ १ ०
760 महत्त्वपूर्ण शिक्षा	३	▲ १
768 रामायणके आदर्श पात्र	५	▲ २
733 गृहस्थमें कैसे रहें ?	४	▲ १
761 एकै साधे सब सधै	३	▲ १
759 शरणागति एवं मुकुन्दमाला	३	▲ १
752 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२	▲ १
734 आहार शुद्धि मूर्ति पूजा	२	▲ १
664 सावित्री सत्यवान	१५	▲ १
665 आदर्श नारी सुशीला	३	▲ १ ०
666 अमूल्य समयका सदुपयोग	५. ०	▲ १ ०
672 सत्यकी शरणसे मुक्ति	१	▲ १
671 नामजपकी महिमा	१	▲ १ ००
678 सत्संगकी कुछ सार बातें	१ ०	▲ १
731 महापापसे बचो	१	▲ १
758 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३ ०	▲ १
689 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३	▲ १
690 बालशिक्षा	३	▲ २ ०
907 प्रेमभक्ति प्रकाशिका	१ ०	▲ १
673 भगवान्का हेतु रहित सौहार्द	१	▲ १ ०
मलयालम		
739 गीता विष्णुसहस्रनाम मूल	३ ०	■ १.००
740 विष्णुसहस्रनाम मूल	१ ००	■ १

वर्ष १९९९ के कुछ महत्त्वपूर्ण नवीन प्रकाशन

कोड	मूल्य
1014 श्रीमद्भगवद्गीता साधक संजीवनी (परिशिष्ट)	२५.००
1002 संक्षिप्त वाल्मीकि रामायणाङ्क (कल्याण वर्ष ६८)	६५.००
958 मेरा अनुभव	५.००
1015 भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता	५.०
1019 सत्यकी खोज	४.०
1072 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं	३.०
1021 अध्यात्मिक प्रवचन	५.०
1035 सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण	१.०
1012 पंचामृत (कलेण्डरके आकारमें)	१.००
1037 प्रार्थना हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं	१
1001 चित्र जगज्जननी श्रीराधा	५.००

कोड	मूल्य
बंगला	
954 श्रीरामचरितमानस सटीक ग्रन्थाकार	१०.०
955 तात्त्विक प्रवचन	३.०
956 साधन और साध्य	२.००
उड़िया	
1009 जय हनुमान (चित्रकथा)	१५.०
1003 सत्संग मुक्ताहार	३.०
1004 तात्त्विक प्रवचन	३
मराठी	
1071 श्रीनामदेवांची गाथा	४५.०
884 सन्तानका कर्तव्य	१.०
901 नामजपकी महिमा	१.०

कोड	मूल्य
883 मूर्तिपूजा	१.०
900 दुर्गतिसे बचो	१.००
902 आहार शुद्धि	१
881 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	४
898 भगवन्नाम	३.००
882 मातृशक्तिका घोर अपमान	२.०
गुजराती	
936 गीता छोटी भाषा टीका	५.०
948 रामायण सुन्दरकाण्ड मूल मोटा टाइप	४.०
950 रामायण सुन्दरकाण्ड मूल गुटका	२

Our English Publications

कोड	मूल्य	डाकखर्च
457 Shrimad Bhagavadgita—Tattva-Vivechani (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary	35.00 ■	8.00
1080 Shrimad Bhagavadgita—Sadhak-Sanjivani (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Medium Part I	35.00 ■	5.00
1081 „ Medium Part II	35.00 ■	5.00
455 Bhagavadgita (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	4.00 ■	1.00
534 Bound	7.00 ■	1.00
470 Bhagavadgita—Roman Gita (With Sanskrit Text and English Translation)	10.00 ■	2.00
808 NavaDurga (Story with the Picture)	8.00 ■	2.00
452 Shrimad Valmiki Ramayana (With Sanskrit 453 Text and English Translation) Set of 2 volumes	220.00 ■	19.00
456 Shri Ramacharitamanas (With Hindi Text and English Translation)	70.00 ■	9.00
786 „ Medium	50.00 ■	6.00
564 Shrimad Bhagvat (With Sanskrit 565 Text and English Translation) Set	150.00 ■	16.00
783 Abortion Right or Wrong you Decide	2.00 ▲	1.00

कोड	मूल्य	डाकखर्च
824 Song From Bharthari	2.00 ■	1.00
494 The Immanence of God (By MadanMohan Malaviya)	2.00 ■	1.00
By Jayadayal Goyandka		
477 Gems of Truth [Vol I]	5.00 ▲	1.00
478 [Vol II]	5.00 ▲	1.00
479 Sure Steps to God-Realization	8.00 ▲	2.00
481 Way to Divine & Bliss	4.00 ▲	1.00
482 What is Dharma? What is God?	1.00 ▲	1.00
480 Instructive Eleven Stories	4.00 ▲	1.00
684 Dialogue with the Lord During Meditation	2.00 ▲	1.00
520 Secret of Jnana Yoga	8.00 ▲	2.00
521 Prem Yoga	6.00 ▲	2.00
522 Karma Yoga	7.00 ▲	2.00
523 Bhakti Yoga	8.00 ▲	2.00
658 Secrets of Gita	4.00 ▲	1.00
1013 Gems of Satsang	1.00 ▲	1.00
By Hanuman Prasad Poddar		
484 Look Beyond the Veil	6.00 ▲	1.00
622 How to Attain Eternal Happiness?	6.00 ▲	1.00
483 Turn to God	7.00 ▲	1.00
485 Path to Divinity	7.00 ▲	1.00

कोड	मूल्य	डाकखर्च
847 Gopis Love for Sri Krsna	4.00 ▲	1.00
620 The Divine Name and its Practice	2.50 ▲	1.00
486 Wavelets of Bliss & the Divine Message	1.50 ▲	1.00
By Swami Ramsukhdas		
498 In Search of Supreme Abode		
619 Ease in God-Realization	4.00 ▲	1.00
471 Benedictory Discourses	5.00 ▲	1.00
473 Art of Living	3.00 ▲	1.00
487 Gita Madhurya (English)	5.00 ▲	1.00
1101 The Drops of Nectar (Amrta Bindu)	4.00 ▲	1.00
472 How to Lead A Household Life	3.00 ▲	1.00
570 Let us Know the Truth	3.00 ▲	1.00
638 Sahaj Sadhna	2.00 ▲	1.00
634 God is Everything	3.00 ▲	1.00
621 Invaluable Advice	2.00 ▲	1.00
474 Be Good		
497 Truthfulness of Life	2.00 ▲	1.00
669 The Divine Name	2.00 ▲	1.00
476 How to be Self Reliant	1.00 ▲	1.00
552 Way to Attain the Supreme Bliss	1.00 ▲	1.00
562 Ancient Idealism for Modernday Living	1.00 ▲	1.00

Subscribe our English Monthly

"KALYANA-KALPATARU"

"MANUSMRTISĀRAM NUMBER"

(Vol 45, N0 1 Oct 1999) 'Yearly Subscription Rs 60.00

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित

'कल्याण' वर्ष ७४ (सन् २००० ई०) का विशेषाङ्क

संक्षिप्त गरुडपुराणाङ्क

वार्षिक सदस्यता-शुल्क रु० १००(सजिल्द रु० ११०)

दस वर्षीय-सदस्यता-शुल्क रु० ७५०(सजिल्द रु० ८५०)

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय-गीताप्रेस, गोरखपुर—273005

॥ श्रीहरि ॥

'कल्याण'का उद्देश्य और इसके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोद्वारा जन-जनको कल्याणके पथपर अग्रसरित कर प्रयत्न करना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम

१-भगवद्भक्ति, भक्तचरित ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याण-मार्गमे सहायक, अध्यात्मविषयक व्यक्तिगत आक्षेपरहित ले अतिरिक्त अन्य विषयोके लेख 'कल्याण'म प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोको घटाने-बढाने और छापने-न-छापनेका अ सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

२-'कल्याण'का वार्षिक शुल्क (डाक-व्ययसहित) नेपाल-भूटान तथा भारतवर्षमे १०० रु० (सजिल्द विशेषाङ्कका ११० और विदेश (Foreign)-के लिये US $ 11 डालर (Sea mail) रु० ४७५ भारतीय मुद्रा तथा US $ 22 डालर (Air m रु० ९५० भारतीय मुद्रा नियत है।

३-'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अत ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनमे ग्राहक बनाये जा सकते हैं, तथापि जनवरीसे उस समयतकके प्रकाशित (पिछले) उपलब्ध अङ्क उन्हे दि हैं। 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते छ या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

४-ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क मनीआर्डर अथवा बैंकड्राफ्टद्वारा ही भेजना चाहिये। वी० पी० पी० स 'कल्याण' म ग्राहकोको वी० पी० पी० डाकशुल्कके रुपमे १० रु० अधिक देना पडता है एव 'कल्याण' भेजनेमे विलम्ब भी हो जाता

५-'कल्याण'के मासिक अङ्क सामान्यतया ग्राहकोंको सम्बन्धित मासके प्रथम पक्षके अन्ततक मिल जाने चाहिये। अङ्क द बार जाँच करके भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयसे न मिले तो डाकघरसे पूछताछ करनेके उपरान्त हमे सूचित

६-पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम ३० दिनोके पहले कार्यालयम पहुँच जानी चाहिये। पत्रोमे 'ग्राहक-सख्या', और नया—पूरा पता स्पष्ट एव सुवाच्य अक्षरोम लिखना चाहिये। यदि कुछ महीनोके लिये ही पता बदलवाना अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता बदलनेकी सूचना समयसे न मिलनेपर दूसरी प्रति कठिनाई हो सकती है। यदि आपके पतेमे कोई महत्त्वपूर्ण भूल हो या आपका 'कल्याण'के प्रेषण-सम्बन्धी कोई अनिवा सुझाव हो तो अपनी स्पष्ट 'ग्राहक-सख्या' लिखकर हम सूचित करे।

७-रग-बिरगे चित्रोंवाला बडा अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। पुन प्रतिमास साधारण ग्राहकोको उसी शुल्क-राशिमे वर्षपर्यन्त भेजे जाते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण'का प्रकाशन बद हो ज जितने अङ्क मिले हो, उतनेमे ही सतोष करना चाहिये।

आवश्यक सूचनाएँ

१-ग्राहकोको पत्राचारके समय अपना नाम-पता सुस्पष्ट लिखनेके साथ-साथ पिन-कोड-नम्बर एव अपनी 'ग्राहक-स अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमे अपनी आवश्यकता और उद्देश्यका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

२-एक ही विषयके लिये यदि दोबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रका सदर्भ—दिनाङ्क तथा पत्र-सख्या अवश्य लिखनी च

३-'कल्याण'म व्यवसायियोके विज्ञापन किसी भी दरमे प्रकाशित नहीं किये जाते।

४-कोई भी विक्रेता-बन्धु विशेषाङ्कको कम-से-कम २५ प्रतियाँ हमारे कार्यालयसे एक साथ मँगाकर इसके प्रचार- सहयोगी बन सकते हैं। ऐसा करनेपर १० रुपये प्रति विशेषाङ्ककी दरसे उन्हे प्रोत्साहन-राशि (कमीशन) दिया जायगा। मासका विशेषाङ्क एव फरवरी मासका साधारण अङ्क ट्रासपोर्ट अथवा रेल-पार्सलसे भेजा जायगा एव आगेके मासिक अङ्क (दिसम्बरतक) डाकद्वारा भेजनेकी व्यवस्था है। रकम भेजते समय अपने निकटस्थ स्टेशनका नाम लिखना चाहिये।

'कल्याण'की दसवर्षीय ग्राहक-योजना

दसवर्षीय सदस्यता-शुल्क ७५० रुपये (सजिल्द विशेषाङ्कके लिये ८५० रुपये) हैं। विदेश (Foreign)-के लिये US डालर (Sea mail) तथा US $ 180 डालर (Air mail) है। इस योजनाके अन्तर्गत व्यक्तिके अलावा फर्म प्रतिष्ठान आदि स ग्राहक भी बन सकते हैं। यदि 'कल्याण'का प्रकाशन चलता रहा तो दस वर्षोतक ग्राहकोंको अङ्क नियमितरूपसे जाते रहेंगे।

-व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरख

रजि० समाचारपत्र—रजि०न० २३०८/५७
प्र०ति० २०-१-२०००

पजीकृत-सख्या—जी० आर०—१३
LICENCE NO 3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE PAYMENT

४३० जानकी प्रतिका ३-३-२००४

पितृस्तोत्रम्

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम्। नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम्॥
इन्द्रादीनां च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा। सप्तर्षीणां तथान्येषां तान् नमस्यामि कामदान्॥
मन्वादीनां च नेतारः सूर्याचन्द्रमसोस्तथा। तान् नमस्याम्यहं सर्वान् पितॄनप्युदधावपि॥
नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा। द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलि ॥
देवर्षीणां जनितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान्। अक्षय्यस्य सदा दातॄन् नमस्येऽहं कृताञ्जलि ॥
प्रजापते कश्यपाय सोमाय वरुणाय च। योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलि ॥
नमो गणेभ्य सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु। स्वयम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे॥
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्तिधरास्तथा। नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम्॥
अग्निरूपास्तथैवान्यान् नमस्यामि पितॄनहम्। अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषत ॥
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्तय । जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिण ॥
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्य पितृभ्यो यतमानस । नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रसीदन्तु स्वधाभुज ॥

रुचि बोले—जो सबके द्वारा पूजित, अमूर्त, अत्यन्त तेजस्वी, ध्यानी तथा दिव्यदृष्टिसम्पन्न हैं, उन पितरोको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो इन्द्र आदि देवताओ, दक्ष, मारीच (कश्यप), सप्तर्षियो तथा दूसरोके भी नेता हैं, कामनाकी पूर्ति करनेवाले उन पितरोको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मनु आदिके तथा सूर्य और चन्द्रमाके भी नायक हैं तथा जल और समुद्रमे भी निवास करनेवाले हैं, उन समस्त पितरोको मैं नमस्कार करता हूँ। नक्षत्रो, ग्रहो, वायु, अग्नि, आकाश और द्युलोक तथा पृथ्वीके भी जो नेता हैं, उन पितरोको मैं हाथ जोडकर प्रणाम करता हूँ। जो देवर्षियोके जन्मदाता, समस्त लोकोद्वारा वन्दित तथा सदा अक्षय फलके दाता हैं, उन पितरोको मैं हाथ जोडकर प्रणाम करता हूँ। प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण तथा योगेश्वरोके रूपमे स्थित पितरोको सदा हाथ जोडकर प्रणाम करता हूँ। सातो लोकोमे स्थित सात पितृगणोको नमस्कार है। मैं योगदृष्टिसम्पन्न स्वयम्भू ब्रह्माजीको प्रणाम करता हूँ। चन्द्रमाके आधारपर प्रतिष्ठित तथा योगमूर्तिधारी पितृगणोको मैं प्रणाम करता हूँ। साथ ही सम्पूर्ण जगत्के पिता सोमको नमस्कार करता हूँ तथा अग्निस्वरूप अन्य पितरोको भी प्रणाम करता हूँ, क्योकि यह सम्पूर्ण जगत् अग्नि और सोममय है। जो पितर तेजमे स्थित हैं, जो इन चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके रूपमे विद्यमान हैं तथा जो जगत्स्वरूप एव ब्रह्मस्वरूप हैं, उन सम्पूर्ण योगी पितरोको मैं एकाग्रचित्त होकर प्रणाम करता हूँ। उन्हे बारम्बार नमस्कार है, वे स्वधाभोजी पितर मुझपर प्रसन्न हों।